ज्येष्ठ, १९८९
June, 1932

"ज्ञानप्रवाहा विमलादिगङ्गा"
—शङ्कराचार्य

वार्षिक मूल्य ५)
एक प्रति ॥)
विदेशोंके लिये ७)

गङ्गा
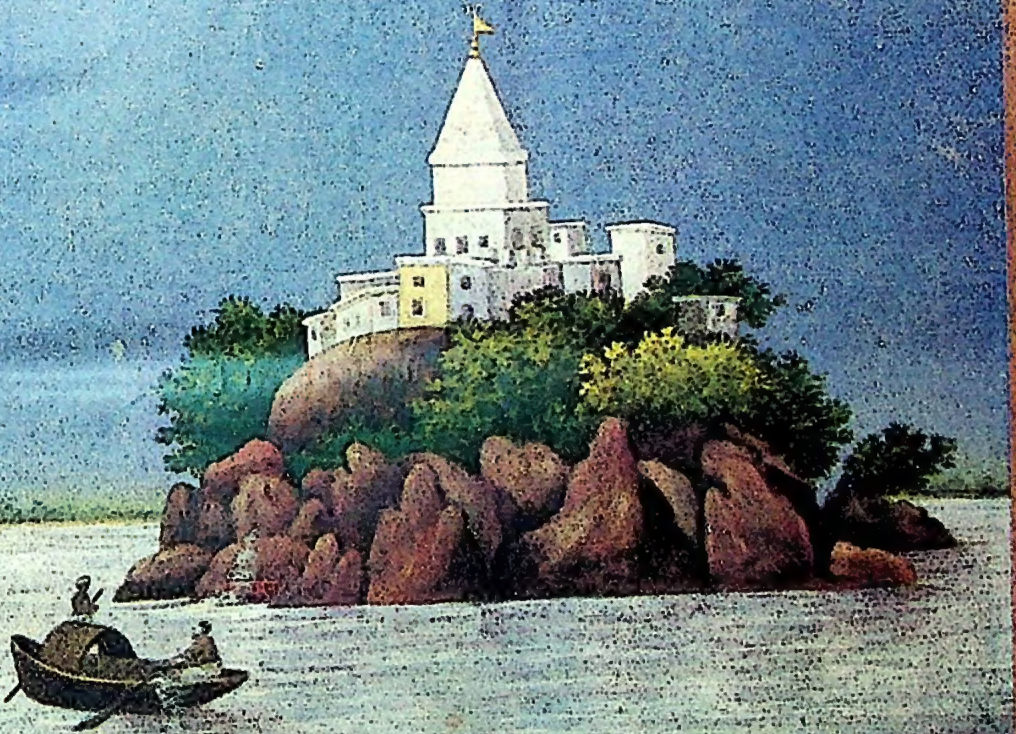
प्रधान सम्पादक—रामगोविन्द त्रिवेदी, सम्पादक—गौरीनाथ झा

लेख-मालिका

चित्र-सूची

"बुद्धं शरणं गच्छामि"

गङ्गा

सचित्र मासिक पत्रिका

प्रवाह २ | ज्येष्ठ, संवत् १९८९; जून, सन् १९३२ | तरंग ६ पूर्ण तरंग १८

मधुर मिलन

बा० धर्मचन्द खेमका "चन्द्र"

किसीपर मर मिटनेका भाव,
कहींसे आया था मनमें ।
किसीकी भूली-सी मृदु याद,
समायी थी नव यौवनमें ॥
उसीका चिन्तन बस दिन-रात,
सरस मधु-सा था जीवनमें ।
वेदना विकल तड़फती थी,
उमङ्गें भरे हुए तनमें ॥
स्नेहसे सिक्त सुधामय स्रोत,
भरा करता मादक प्याला ।
नहीं रुकने-थकनेका नाम,
रहा पीता मन मतवाला ॥

वेदोंका भाष्य

बाबू वासुदेवशरण अग्रवाल एम० ए०

वेदोंके विषयमें विद्वानोंमें बहुत मतभेद है। ऋषियों और तदनुयायी पण्डितोंका विश्वास है कि, वेद दैवी ज्ञान-विज्ञानका वर्णन करते हैं। श्रीकृष्णने भगवद्गीतामें वेदोंका ध्येय बताया है—

"वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः।"

अर्थात् सब वेद मेरा ही गुण-गान करते हैं। जिस समय गीताके ही अनुसार लोग स्वर्ग-विषयक अनेक मनोरम कल्पनाओंकी सृष्टि करके अपनी कामनाओंको साधनेके हेतु वेदोंको कर्मकाण्डपरक प्रसिद्ध करके उनके उच्च विज्ञान-दर्शनका तिरस्कार कर रहे थे, उस समय यह घोषणा कि, वेद ब्रह्मके ही वर्णनमें निरत रहते हैं, बहुत ही महत्त्व-पूर्ण थी। कृष्णने बुद्धिहीन कर्मकाण्डकी जिस प्रकार भर्त्सना की, उसी प्रकार हृदय-हीन अक्षर-ज्ञानको भी निन्दनीय ठहराया। दोनों ही पक्ष बुद्धिगम्य और उचित थे। प्रकृतिके भोगोंकी लिप्सासे अनुष्ठित कर्मकाण्ड अनात्माकी उपासना है। भारतीय ऋषि उसका समर्थन नहीं कर सकते थे। इसी प्रकार वेदोंके शब्द मात्रका पाण्डित्य निम्न कोटिका चातुर्य है। शुष्क शब्दज्ञानकी श्लाघा यहाँके यास्क, कृष्ण प्रभृति मनीषियोंने कभी नहीं की। वेदोंके विराट् ज्ञानका मर्म तो उस ज्ञानके अनुभवसे ही प्राप्त होता है।

इसलिये भारतवर्षके लिये वेद कभी अतीत कुतूहलकी सामग्री नहीं बने। वेद यहाँके जीवन-प्रवाहके रोम-रोममें समाये हुए हैं। एतद्देशीय समस्त ज्ञान-विज्ञानका आदि सूत्र वेदों-से ही निर्गत हुआ है।

इस प्रकार विश्व-ज्ञानके मूल भंडारके रूपमें नित्य उद्घोषित किये जानेवाले इन ग्रन्थोंका आधुनिक शताब्दीके लिये क्या मूल्य है ? ब्रह्माण्ड-व्यापी नियमोंका वैज्ञानिक अनुसन्धान जब इतनी उच्चताको पहुँच चुका है, तब वेदोंके गीत गानेसे क्या लाभ है ? आधुनिक विज्ञान बुद्धिवाद-की कसौटीपर कसा जाकर खरा सिद्ध हुआ है। उसकी चुनौती हमको स्वीकार करनी ही पड़ती है। वस्तुतः आर्ष भावसे विनीत प्रत्येक व्यक्ति अर्वाचीन विज्ञानकी विस्मय-कारिणी विजयोंका सहर्ष स्वागत करता हुआ उनको प्रकृति-के कृत्स्न ज्ञानके लिये आवश्यक समझे विना नहीं रहेगा। ध्यान-योगके द्वारा जिन विश्व-व्यापी नियमोंका उद्घाटन आधुनिक वैज्ञानिकोंने किया है, वे अतीव पवित्र हैं। विज्ञान-वैजयन्तीकी महिमाको इस प्रकार सौम्य भावसे मान लेने-पर जिज्ञासुके मनमें प्रश्न होता है कि, जिन श्रुतियोंके आर्ष ज्ञानका संरक्षण भारतवर्षके लोगोंने बराबर किया है, उनकी महिमाका, हमारे नूतन विज्ञानकी तुलनामें, क्या वास्तविक मूल्य है ? विना इस प्रश्नका समाधान किये हम वैदिक विज्ञानके माहात्म्यको सिद्ध नहीं कर सकते। इस वस्तुको उपपाद्य मान लेनेसे वेदोंके आधुनिक भाष्यके विषयमें हमारा दृष्टिकोण स्थिरतया निर्मित हो जाता है अर्थात् वैदिक भाष्य-प्रणेताओंका यह कर्तव्य हो जाता है कि, वे शब्दार्थ, प्रकृति-प्रत्ययका व्याख्यान करके ही तृप्त न हों, वरन् वैदिक विज्ञानकी आधुनिक विज्ञानके साथ तुलना करके इस बातको बतानेकी कृपा करें कि, जिन नियमोंको विवृत करना इस समयके वैज्ञानिकोंका लक्ष्य है, उन्हीं प्रकृति-व्यापी ब्रह्माण्ड-पिण्ड-गत नियमोंके अनुसन्धानमें प्राचीन विचारकोंने भी प्रयत्न किया था। इस दृष्टिसे अध्ययन करनेपर हम यह जान सकेंगे कि, विश्वकर्त्ताकी अत्यन्त दुरूह और मायावी रचनाको तथा जीवनके साथ उसके सम्बन्ध-को पूर्व युगके क्रान्तदर्शी ऋषियोंने किस गहराईतक पहचाना था और इस युगके महारथी उनसे कितना पीछे गये या आगे निकल सके हैं।

यहाँ एक स्वाभाविक प्रश्न हो सकता है कि, प्रारम्भसे ही वेदोंको गम्भीर ज्ञान-विज्ञानका ग्रन्थ मान लेना कहाँतक संगत है ? इस प्रकारका एक प्रबल पक्ष है, जो वेदोंको अतीत इतिहासकी कहानी मानकर उन्हें किसी युगमें रहनेवाले आर्योंके धार्मिक विश्वासोंकी जड़ पुस्तक मानता है। इस मतके पोषक विद्वानोंने ही अबतक यूरोप, अमेरिका आदि देशोंसे वेदोंके कितने ही भाष्य निकाले हैं। इन लोगोंने वैदिक शब्द-शास्त्रका भी बहुत अनुसन्धान किया है। इस पक्ष-का आधिपत्य, विद्वत्समाजमें, इस समय, सर्वोपरि है। यदि इस पक्षके मत और व्याख्यान वेदके विषयमें अन्तिम, ध्रुव, सत्य हों, तो श्रुतियोंका माहात्म्य अनुपयोगी दम्भ है और अब उस धर्मध्वजाको वितत रखनेसे कोई लाभ नहीं होगा। राथ, मैक्समूलर, लुडविग, वेगो, पिशल, गेल्डनर, ओल्डन-बर्ग आदि पण्डितोंने जिन सिद्धान्तों और अर्थोंकी स्थापना की है, उनको वेदार्थकी जिज्ञासासे बारम्बार पढ़नेसे मनमें एक धारणा बहुत दृढ़ हो जाती है। वह यह है कि, वैदिक मंत्रोंका चाहे अन्य कोई संगति-विशिष्ट, बुद्धि-परक अर्थ हम बता सकें या नहीं, कम-से-कम इन विद्वानोंके अर्थ परस्पर बहुत ही असंगत हैं; और, ऋषियोंकी बात तो दूर, कोई भी थोड़ी बुद्धि रखनेवाला व्यक्ति कभी इतनी असमीचीन बकवाद नहीं कर

सकता। इन्द्र, अग्नि, पूषा, सोम आदिमेंसे चाहे जिस एक देवताको हम ले लें, उसका बुद्धि-विशिष्ट स्वरूप उनके किये हुए अर्थोंसे हमारे सामने प्रतिष्ठित नहीं होता। देवताओंके स्वरूपोंकी भौतिक सत्ता मानकर ही पश्चिमके विद्वानोंने बहुत से अर्थ किये हैं; पर यह प्रणाली भी बहुत दूरतक कृतकार्य नहीं होती और किसी देवताके भौतिक स्वरूपमें जैसा हम उसे स्थूल जगत्में पाते हैं, इतनी सामर्थ्य नहीं मिलती कि, वेदों और ब्राह्मणोंमें प्रसिद्ध तत्सम्बन्धी समस्त वर्णन उसमें पूरी तरह ठीक-ठीक घट जायँ। पाश्चात्य विद्वान् अपने भाष्योंकी इस बड़ी कमीको जानते हैं। वे अपने किये हुए अर्थोंकी निस्सारता अथवा पारस्परिक विरोधिता अथवा बुद्धि-पराङ्मुखताका अनुभव करते हुए भी उस सम्बन्धमें उससे अच्छा और कुछ उपस्थित नहीं कर सकते। डाक्टर ई० जे० टामसने ब्रोवसन्त बी० रीले कृत "वैदिक गाड्स" [Vedic Gods] नामक पुस्तककी भूमिकामें एक बहुत मार्केकी बात कही है—

" It will help the scholars of India to realise, as we are learning in the West, that the great problem is not yet solved."

अर्थात् रीले महाशयकी पुस्तकसे भारतवर्षके लोगोंको यह मालूम हो जायगा—जैसा कि, अब हम पश्चिमके विद्वान् भी अनुभव करने लगे हैं—कि, वेदार्थका महत्त्वपूर्ण प्रश्न अभी तक हल नहीं हुआ है। इसका तात्पर्य यह है कि, हमने बड़े प्रमाण और आग्रहसे जिन अर्थोंका अबतक मण्डन किया है, वे अन्तिम नहीं हैं और उन मंत्रोंके तदन्य अर्थ भी सम्भव हैं, जो कदाचित् हमारे अर्थोंकी अपेक्षा सत्यके अत्यधिक सन्निहित हो सकते हैं।

पाश्चिमी विद्वानोंको वेद-सम्बन्धी किसी पुस्तकको पढ़ते समय, उसके प्रारम्भमें ही प्रायः, आपको इस प्रकारके उद्गार मिल जायँगे कि, वैदिक-कालीन ऋषि बहुत ही असभ्य थे, वे लोग सभ्यताके विकासकी पहली श्रेणीमें ही थे और गूढ़ रहस्योंको अवगत करनेके लिये जिस परिष्कृत मस्तिष्क और उन्नत संस्थाओंकी आवश्यकता है, उनसे वे अपरिचित थे। एक महानुभावको, वेदके विषयमें, सम्मति है—

"Mock profundity and impotent reaching out after the inexpressible."

अर्थात् श्रुतियोंमें गहराई तो है; पर थोथी है; उनके कर्त्ताओंने अगम्य तत्त्वोंतक पहुँचनेका प्रयास तो किया; पर उनके प्रयत्न नपुंसक होनेसे निष्फल रहे। इस प्रकारकी बद्धमूल भ्रान्तियोंसे जकड़े हुए मस्तिष्कोंसे जो होना चाहिये था, वही हुआ। जहाँ-कहीं गम्भीर ज्ञानके लक्षण दृष्टिगोचर हुए, उनपर अधिक विचार करना तो दूर, उन्हें जाली, थोथा और दाम्भिक समझकर उनसे नाक-भौं सिकोड़ लेना बहुत बड़ी मूर्खता और चरम कोटिकी अवैज्ञानिक पद्धति थी। वेदोंको जो कहना था, हमने उसपर गम्भीरतापूर्वक ध्यान नहीं दिया। हमारे कल्पित विचारोंके अनुसार वेदोंमें जो ज्ञान-विज्ञान हो ही नहीं सकता था, उसकी सत्ताका आभास बारम्बार मिलने पर भी हम उसे सदैव ठुकराते रहे! इससे वैज्ञानिक पद्धतिकी बहुत भारी क्षति हुई। विज्ञान, दर्शन, मनोविज्ञान, अध्यात्मके जो गम्भीर तत्त्व वेदोंमें आये हैं, उनकी ज्योतिको हमारे तमसावृत चक्षु नहीं देख सके।

पश्चिमी दृष्टि-कोणसे भाष्य करनेवाले देशी-विदेशी विद्वानोंने ब्राह्मण-ग्रन्थोंकी वेदार्थ-परिपाटीपर ध्यान नहीं दिया। ब्राह्मणों और उपनिषदोंमें बारम्बार वैदिक मन्त्रोंके आध्यात्मिक अर्थोंकी ओर ध्यान दिलाया गया है। स्थान-स्थानपर इस प्रकारके शब्द मिलते हैं— "इत्यधिदैवतम्। अथाध्यात्मम्।" अर्थात् इस मन्त्र या विधिके आधिदैविक

[Cosmic, relating to universe outside] अर्थ इस प्रकार हैं और इसीके आध्यात्मिक [relating to the human body in its inner working, spiritual] अर्थ इस प्रकार हैं। उदाहरणार्थ छान्दोग्य उपनिषद्में संवर्ग-विद्या [Doctrine of physical sub-stratum] का व्याख्यान करते हुए रैक्वने कहा है—

"वायुर्वाव संवर्गः......वायुर्ह्येवैतान्संवृङ्क्ते इत्यधिदैवतम् । अथाध्यात्मम् प्राणो वाव संवर्गः ।"

अर्थात् बाह्य प्रकृतिमें वायुके सदृश तनु पदार्थ [Ethereal Substance] सबका भौतिक आधार है । मानवी देहमें प्राण सबका अन्तिम आधार है, जिसके वशवर्ती होकर अन्य सब इन्द्रियाँ कार्य करती हैं । ऐतरेय-ब्राह्मण [२।२९] में एक बहुत ही सुन्दर कथा दी है । सब देवताओंने सोमपानके लिये दौड़ लगायी । उसमें वायु इन्द्र सर्वप्रथम हुए । उसके बाद मित्र और वरुण और फिर अश्विनीकुमार । इन्हीं देवता-द्वन्द्वोंको लेकर सोमपानके लिये निम्न लिखित तीन ग्रह या प्याले कल्पित किये गये—

"ऐन्द्रवायव, मैत्रावरुण, आश्विन ।"

अब यूरोपीय लेखकोंको कथा ही महत्त्वपूर्ण मालूम होती है । वस्तुतः कथाके व्याजसे ऋषिने एक बहुत ही आवश्यक आध्यात्मिक नियमकी व्याख्या की है । उसके निम्न लिखित शब्द सोमपानकी कथाकी कुंजी हैं—

"ते वा एते प्राणा एवयद् द्विदेवत्या वाक्च प्राणश्चैन्द्रवायवः, चक्षुश्च मनश्च मैत्रावरुणः, श्रोत्रं चात्मा चाश्विनः ।"

(ऐतरेय ब्राह्मण, २।२६)

अर्थात् मनुष्यके प्राण ही दो-दो देवताओंवाले ग्रह हैं, जिनके आश्रयसे हममेंसे प्रत्येक व्यक्ति अपने सोम या वीर्यशक्तिको अपने अभ्यन्तरमें पी रहा है अथवा क्षीण कर रहा है । इन ग्रहोंके नाम ये हैं—

1st pair	इन्द्र	=	वाक्
	वायु	=	प्राण
2nd Pair	मित्र	=	चक्षु
	वरुण	=	मन
3rd Pair	दो अश्विनी	=	श्रोत्र
		=	आत्मा

इन्द्रियाँ और उनको अव्यक्त संचालक शक्तियोंके द्वारा ब्रह्मचर्य-साधनको क्रियाका आलंकारिक वर्णन सोमपानकी कथा है ।

इस प्रकारके अनेक उदाहरण देकर यह दिखाया जा सकता है कि, पाश्चात्त्य ऐतिहासिक व्याख्याताओं और भारतवर्षीय आध्यात्मिक व्याख्याताओंमें एक ही शब्द-समुदायको लेकर भी अर्थ-वैषम्य किस प्रकार उत्पन्न हो जाता है । इस विषयको स्पष्टतर करनेके लिये और भी उदाहरण देखने आवश्यक हैं । वेदोंमें पञ्चजनोंका बहुत बार वर्णन है । ऐतिहासिकोंने पञ्चजनोंको Five tribes कहा है । वे लोग इन पञ्च आर्य-जातियोंकी भौगोलिक स्थितियोंका भी निर्देश किया करते हैं। परन्तु आध्यात्मिकोंके अनुसार पञ्चप्राण या पञ्चेन्द्रियाँ हैं । बृहदारण्यक-उपनिषद् (४।४।१७)में लिखा है—

"यस्मिन् पञ्च पञ्चजना आकाशश्च प्रतिष्ठितः ।
तमेव मन्य आत्मानं विद्वान् ब्रह्मामृतोऽमृतम् ॥"

यहाँ सारा प्रकरण आध्यात्मिक है । 'कतम आत्मा' इस प्रश्नके उत्तरमें आत्मतत्त्वका प्रतिपादन करते हुए याज्ञवल्क्यने कहा है कि, पाँचो पञ्चजन जिसमें बसते हैं, वह आत्मा है । निस्सन्देह यहाँ पञ्चजन पञ्चेन्द्रियोंके लिये ही आया है । पञ्चजनका यह अर्थ वैदिक वर्णनोंको ऐतिहा-

हासिक सीमासे मुक्त करके शाश्वत बना देता है। इन पञ्चजनोंका आधिपत्य इन्द्र या आत्मा संतत करता है या उसको करना अभीष्ट है। इस अर्थसे सनातनत्वकी ख्याति होती है और हमें बाधित होकर वेदार्थकी महत्ताको, अर्वाचीन जीवनके लिये भी, स्वीकार करना पड़ता है।

एक दूसरा उदाहरण वैदिक देवताओंका है। पश्चिमी विद्वानोंको इन्द्र या अग्निके रूढ़ अर्थको मानकर अर्थ करना पड़ता है। ब्राह्मणोंके अनुसार इन शब्दोंके अनेक अर्थ प्रचलित थे। ऋग्वेदके अनेक सूक्तोंमें इन्द्रका अर्थ आत्मा चरितार्थ होता है। इसके अतिरिक्त राजा, वीर्य, सूर्य, वाक्, अग्नि, वायु, प्राण, मन, हृदय, सुवर्ण, क्षत्र, यजमान, मेघ, वज्र, रेत आदि भी इन्द्रके अर्थ ब्राह्मणग्रन्थोंमें दिये हुए हैं। (इनके प्रमाणोंका संकलन श्रीयुत भगवद्दत्तकृत "वैदिक कोष" में बड़ी सुन्दरतासे कर दिया गया है।) इन्द्र-परक वर्णनोंको इन अर्थोंपर भी घटाकर देखना चाहिये। वस्तुतः वैदिक शब्दोंकी व्यञ्जना बड़ी सर्वतोमुखी होती है। वहाँ रात्रिसे सिर्फ रातका ही बोध नहीं होता। रात्रि नाम अपान, कर्म-प्राणका भी है। ये अर्थ बहुत स्वाभाविक हैं। अध्यात्म-दृष्टिसम्पन्न पुरुष वैदिक परिभाषाओंको जानते हुए स्वभावतः ही इन अर्थोंको विचार लेता है। प्रकृतिके द्वैतका विचार करते हुए हम इन द्वन्द्वोंको देखते हैं—

दिन	रात्रि
प्राण	अपान
ज्ञान	कर्म
मन	प्राण
ब्रह्म	क्षत्र
त्रिपाद्	एकपाद्
ब्रह्म	जगत्

इनपर ध्यान-पूर्वक विचारनेसे मंत्रोंके सरल शब्दोंसे भी बहुत गम्भीर अर्थोंकी ख्याति होती है। जीवन-मृत्यु एक द्वन्द्व है; सृष्टि-प्रलय, प्रकृति-पुरुष दूसरे युग्म हैं। द्वन्द्वोंका पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट करनेके लिये अनेक सूक्तों और कर्मकाण्डोंका जन्म हुआ है। अपने भीतर तथा बाहरकी सृष्टिमें भी इन द्वन्द्वोंको हम नित्य देखते हैं। चौबीस घण्टोंमें दिन-रातका चक्र हमारे सामने घूम जाता है। दिनमें सृष्टिकी क्रियाएँ होती हैं। रात्रिमें प्रलयका आभास रहता है। प्रकृतिके लिये दोनों आवश्यक हैं। विना रात्रिके दिनकी पूर्णता नहीं है। दिनकी संज्ञा क्षोभ (dynamic) और रात्रिकी शान्ति (static) है। विना क्षोभ और शान्तिके नाम-रूपात्मक जगत्की स्थिति असम्भव है। शान्तिसे स्थिति और क्षोभसे विकास या परिवर्तन होता है। इसी प्रकार एक मासमें शुक्लपक्ष और कृष्ण-पक्षमें यही द्वन्द्व दृष्टिगोचर होता है। एक प्रकाश-प्रधान और दूसरा तमः-प्रधान है। वर्षमें उत्तरायण और दक्षिणायनके रूपमें उसी तरहके प्रेङ्ख (Pendulum)की गति है। इन सबको समझानेके लिये विविध दृष्टियोंकी कल्पना की गयी थी। प्रातःसायं अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास, अयनान्त्येष्टि तथा संवत्सरेष्टिका समस्त कर्मकाण्ड प्रकृतिकी संतत परिवर्तनशीलता तथा मानवी जीवनको तदनुकूल विहित करनेकी विधिका परिचायक है। सृष्टि और प्रलयकी आर्य-कल्पना चक्रवत् या प्रेङ्खकी तरह है। शांखायन-आरण्यक (१।७) में इस प्रेङ्खका बहुत विशद वर्णन है। पाश्चात्य दृष्टिसे जो विधि निरर्थक और हास्यास्पद मालूम होती है, वही आध्यात्मिक उपदेशके लिये अमूल्य है। प्रजापतिरूप आत्मा झूलेपर सवार होकर प्रेङ्ख ले रहा है। वायु या प्राण उसको प्रेङ्ख देनेवाला है—

"प्रजापतिर्वा एतदारोहतु। वायुः प्रेङ्खयति यजीवम्।"

इस प्रेङ्खपर बैठकर यजमान ध्यान-योग द्वारा देखता है कि, रात और दिनमें, कल्प और प्रलयमें, परमाणु और सूर्यमें सर्वत्र झूलेकासा प्रेङ्ख (Pendulum) है। वह स्वयं अपने आपको इस सत्-असतके द्वन्द्वसे ऊपर अनुभव कर लेता है। शक्तिका प्रवाह, जिसे विज्ञानमें second law of Thermodynamics के नामसे पुकारा जाता है, सृष्टि है। इसके विपरीत जब शक्ति योगनिद्राके द्वारा पुनः संचित होती है, वह प्रलय है। वैज्ञानिक शब्दोंमें इसकी संज्ञा Reversibility of energy from lower to higher availability है। हम लोगोंके पुराणोंने इसे विष्णुकी योगनिद्रा कहा है। वस्तुतः प्रलयमें शक्तिका जो संचय होता रहता है, उस क्रमको हम निद्रामें देखते हैं। जाग्रतके क्षोभमें शक्ति क्षीण होती है (flow from higher to lower levels);स्वप्नमें शक्ति सञ्चित होती है, जिसे विज्ञानके शब्दोंमें flow from lower to higher level कह सकते हैं। इस अखण्ड व्यापक नियमको बतानेके लिये महाव्रतकी प्रेङ्ख-विधि है। "सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः।" इस नियमका साक्षात् अनुभव करनेसे मनुष्यको कितनी शान्ति और आनन्द प्राप्त होता है ! संसारके सब व्रतों और संकल्पोंमें आत्म-ज्ञान महाव्रत है। वेदोंमें महाव्रतकी बहुत महिमा है। ऐतेरय-आरण्यके प्रारम्भमें ही कहा है कि, महाव्रतके करनेसे इन्द्र महान् हुए। महाव्रत इन्द्रकी आत्मा है (शां० आ०)। महाव्रतके करनेसे इन्द्रने वृत्रका वध किया। 'शं' अर्थात् आत्माका आवरण करनेवाला शम्बर या वृत्रासुर है। इन्द्र उसका वध करके महेन्द्रत्वको प्राप्त हुए। "यन्महानिन्द्रोऽभवत्तन्महेन्द्रस्य महेन्द्रत्वम्।"(ऐ० ब्रा० ३।२१) वृत्रहन्ता इन्द्रने प्रजापतिसे कहा—"मैं तुम्हारे समान हूँगा; मैं महान् हूँगा।" प्रजापतिने कहा—"मैं कौन हूँ" (कोऽहमिति)? इन्द्रने भी कहा, "तुम कौन हो (को वै नाम) ?" आत्मज्ञानके द्वारा इन्द्रने ब्रह्मके साथ अपनी एकताका अनुभव किया; परन्तु आत्मा और ब्रह्मके यथार्थ रूपको जानना असम्भव है। उसके लिये सदा 'नेति नेति' या 'को वै नाम' यही कहना पड़ेगा। वेदोंमें 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' कहकर इसी भावका परिचय दिया गया है। शांखायन-आरण्यकमें कहा है कि, अनेक विधानोंसे ऋङ्मय, यजुर्मय, साममय अर्थात् त्रिगुणात्मक या ज्ञान-कर्म-उपासनामय पुरुषका संस्कार किया जाता है। महाव्रत उस पुरुषकी आत्मा है। वृत्र-वध इन्द्रका महाव्रत है। जब इन्द्रने अपने आपको जान लिया, तब वह सब देवोंके श्रैष्ठ्य, स्वाराज्य और आधिपत्यको प्राप्त हुए [कौ० उ०] । श्रीरोले महोदयने वृत्रको autonomic centre of brain अर्थात् प्रसुप्त मस्तिष्क माना है । योगकी साधनाके द्वारा हम इसी मस्तिष्कपर अधिकार प्राप्त करते हैं। आत्मज्ञानसे भी यही फल प्राप्त हो जाता है । योगका लक्ष्य भी आत्मानुभव है। इस प्रकार इन्द्र-वृत्रकी कथा आध्यात्मिक तत्त्वका प्रतिपादन करनेवाली है। पाश्चात्य पण्डितोंने इसी उपाख्यानके आधारपर स्टार्म थ्योरी, डान थ्योरी आदिकी कल्पना की है। वृत्रके वधसे ही सप्त नदियोंका प्रवाह निर्बाध प्रवाहित होता है। ये सप्त नदियाँ सप्त-शीर्षण्य-प्राणोंकी नाड़ियाँ हैं, जो अप्रसुप्त मस्तिष्क [Sub-conscious mind] की विजयके बाद जाग्रत् मनके अधिकारमें निर्बाध होकर कार्य करती हैं।

यहाँ हमारा अभीष्ट यह प्रदर्शित करना है कि, जिन मंत्रों और उपाख्यानोंसे पाश्चात्य विद्वानोंने अपनी शैलीके अर्थ किये हैं, उनका ही आध्यात्मिक अर्थ भारतीय ऋषियोंको

अभीष्ट था। वेदका निरुक्त-शास्त्र बहुतही दुरुह और व्यापक है। यहाँ अग्निका अर्थ केवल भौतिक आग ही नहीं होता। प्राण, मन, आत्मा, सब अग्नि हैं। सबको ही हम हवि देते हैं। ज्ञान अग्नि है, जो अज्ञान-रूप तमका विनाश करता है। आचार्य एक अग्नि है, जो शिष्यकी अज्ञान-समिधाओंको भस्म करके ज्ञानका उज्ज्वल आलोक प्रकट करता है। अग्नि ज्योति है, बुद्धिरूपी सूर्यसे प्रकट होकर आन्तरिक जगत्‌को प्रकाशित करता है। बाह्य ब्रह्माण्डमें सूर्याग्नि सबको प्रकाश और ताप [Light and Heat] का वितरण करता है। अग्नि ऋत्विजोंमें होता है। होताका सम्बन्ध ऋग्वेद, सत्त्वगुण या ज्ञानसे है। अग्निके वर्णनोंमें भी उसका सम्बन्ध ज्ञान या ब्राह्म गुणसे बताया गया है। मंत्रोंके अर्थोंमें भौतिक और आध्यात्मिक, दोनों प्रकारके भावोंकी गुंजाइश रहती है—

"उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि।"

अर्थात् हे अग्ने, रात और दिन बुद्धिपूर्वक नमस्कार करते हुए हम तुम्हारे समीप आते रहें।'

यह एक शुद्ध संकल्प [auto-suggestion] है। यह असम्भव है कि, भौतिक अग्निके समीप रात और दिन कोई प्रणाम करता हुआ बैठा रहे। यद्यपि मंत्रका अर्थ भौतिक अग्निके लिये भी आंशिक रूपसे ठीक है; परन्तु सर्वांशमें उसकी व्यञ्जना अध्यात्मस्थित ज्ञानाग्निके लिये है। हे ज्ञानाभिमानिनी देवता, हम सदा-सर्वदा बुद्धिपूर्वक तुम्हारे सन्निहित रहकर तुम्हारी उपासना करते रहें। अन्य भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष, जितने प्रकारके शिवात्मक अग्नि हैं, सबके लिये उपर्युक्त प्रार्थना चरितार्थ हो सकती है।

वैदिक निरुक्त-शास्त्रको ठीक तरहसे समझ लेना प्रत्येक भाष्य-कर्ताका आवश्यक कर्तव्य है। वेदमें शत और सहस्र निश्चित संख्याओंके द्योतक न होकर अनन्त परिमाणके वाचक हैं। शतक्रतु और सहस्रशीर्षा शब्दोंके अर्थोंसे यह मालूम हो जाता है। अन्य संख्याओंके अर्थोंका संकेत भी आध्यात्मिक होता है। पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोकमें व्याप्त ग्यारह-ग्यारह रुद्र आध्यात्मिक प्राणोंके अतिरिक्त भौतिक सत्ता नहीं रखते। पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक भी शरीरके भीतर ही मेरुदण्ड, मस्तिष्क और तन्मध्यवर्ती स्थानके वाचक हैं। शरीरस्थ इन्द्रियाँ देवता हैं, जिन्होंने इस देहको दैवी सभा (ऐ०उ०) बना रखा है। उन इन्द्रियोंका संचालक-स्थान [motor-centre] मस्तिष्क है। यही स्वर्ग है, जिसे देवताओंका लोक कहा जाता है। यहीं इनका अधिपति इन्द्र रहता है। इन्हीं मौलिक कल्पनाओंका अनन्त विस्तार पुराणोंकी कैलास, हिमालय, सुमेरु आदि कल्पनाओंके रूपमें हुआ है। थोड़ी सूक्ष्म दृष्टिसे ही ये परिभाषाएँ स्पष्ट हो जाती हैं। भौतिक जगत्‌की गंगा-यमुनाके अनुरूप ही अध्यात्ममें भी इडा-पिंगलाका नामकरण गंगा-यमुना किया गया था। भौतिक संगममें सरस्वतीको अन्तःसलिला कहा जाता है। आध्यात्मिक प्रयागमें सुषुम्णा भी इडा-पिंगलाकी अपेक्षा अन्तर्लीन होकर रहती है। निम्न लिखित त्रिकको ध्यानमें रखनेसे वैदिक भाष्यकारोंको बहुत सहायता मिल सकती है—

ऋक्	यजुष्	साम
ज्ञान	कर्म	उपासना
होता	अध्वर्यु	उद्गाता
वाक्	प्राण	मन
अग्नि	इन्द्र	सूर्य
गायत्री	त्रिष्टुप्	जगती
भूः	भुवः	स्वः

पृथिवी	अन्तरिक्ष	द्यौ
सत्व	रज	तम
विष्णु	ब्रह्मा	शिव
प्रातः सवन	माध्यन्दिन सवन	सायं सवन
वसन्त	ग्रीष्म	शरद्
ब्रह्मचर्य	यौवन	जरा
आज्य	इध्म	हवि
चन्द्र	सूर्य	अग्नि
विष्णुका प्रथम चरण	द्वितीय चरण	तृतीय चरण
आदि	मध्य	अन्त
जाग्रत्	स्वप्न	सुषुप्ति
अ	उ	म्

इस प्रकारका त्रिपर्ण वेदों, ब्राह्मणों और उपनिषदोंमें सर्वत्र पाया जाता है। पुराणोंमें इसका बड़ा-बड़ा विस्तार है। आर्य संस्कृतिकी यह आधार-शिला है। ज्ञान-विज्ञान इस त्रैगुण्यसे परिवेष्टित है। मनुष्यका समस्त जीवन ज्ञान, क्रिया, इच्छा, इन तीन शक्तियोंसे व्याप्त है। वैदिक परिभाषामें ये ही अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैव कहे गये हैं।

"इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं। समूढमस्य पांशुरे।"

इस मंत्रने विष्णु या निखिल ब्रह्माण्डके जिस त्रेधा विचक्रमणका वर्णन किया है, वही उक्त त्रिक है। पौराणिकोंने इसे ही त्रिविक्रम विष्णुकी सुन्दर कथाके रूपमें निबद्ध किया है। जो वामन मालूम होता है, वही विराट् है। स्वरूपसे प्रत्येक इन्द्रिय वामन है; पर भोगके समय वही विराट् हो जाती है। जो पिण्डमें है, वही ब्रह्माण्डमें है। जो आभ्यन्तरिक रचना एक परमाणुकी है, वही सौरमण्डलकी है। "यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे, यथा ब्रह्माण्डे तथा पिण्डे" इस शाश्वत वैज्ञानिक नियमका उपदेश करनेवाला मंत्र सनातन महत्त्वका है। इसकी सामान्यता सर्वव्यापिनी है। अर्वाचीन विज्ञान इतने दुर्धर्ष, पर सरल, नियमोंका आविष्कार करके अपनेको 'बड़भागी' मानता है। फिर प्राचीन ऋषियोंके, इस प्रकारके विराट् अनुभवोंके प्रति सत्यान्वेषी वैज्ञानिकोंका हृदय श्रद्धा और भक्तिसे झुके बिना कैसे रह सकता है? आवश्यकता इस बातकी है कि, वेदोंके ज्ञान-विज्ञानको हम नये ढंगसे समझनेका प्रयत्न करें। उनकी परिभाषाओंसे अवरुद्ध और भीत न होकर हमें उनके अभिधेय तत्त्व तक पहुँचनेका प्रयत्न करना चाहिये। यह स्मरण रखना चाहिये कि, सिद्धान्त और नियम विनियोगसे स्वतन्त्र होते हैं। सिद्धान्तोंसे ही हम विश्वकी पहेलीको समझनेमें सफल होते हैं। वायुयानका चमत्कार विश्वके नियमोंको नहीं सुलझाता। सौ मील अथवा दो सौ मीलसे यात्रा करनेकी क्षमतासे हमारे वास्तविक जीवनमें कुछ अन्तर नहीं पड़ता। यह उथले जीवनकी चकाचौंध है। जीवन और मृत्यु, सृष्टि और प्रलय, बन्ध और मोक्षकी पहेलीको हल करनेमें जो विज्ञान सहायक होता है, वही पूज्य, स्तुत्य और उपास्य है। वैदिक विज्ञानका प्रयोग आत्म-संस्कृति (Soul-culture) के लिये किया जाता था। उसके आविष्कारका ध्येय बहुत उच्च था। अवश्य ही सांसारिक भोगोंकी लिप्सामें सने हुए जीवोंने वेदोंके साथ भी बहुत अन्याय किया। पर ज्ञान-विज्ञानकी सहायतासे आसुरी वृत्तियोंकी कृतकार्यतापर ध्यान देना हमारा प्रयोजन नहीं है। उससे जगत्‌का कल्याण कहाँतक हो सकता है, यही बात देखी है। शक्तिका संचय करके उसका सदुपयोग और दुरुपयोग, दोनों हो सकते हैं। सदुपयोग दैवी और दुरुपयोग आसुरी है। वैदिक विज्ञान यह सिद्धान्त बता कर विरत हो जाता है। मनुष्यको बुद्धिपूर्वक कर्म करनेकी स्वतन्त्रता है। वह उसका भला और

बुरा प्रयोग अपने देवासुरी संस्कारोंके वशीभूत होकर करता रहता है। दैवी मार्ग अमृतत्वकी ओर ले जाता है, आसुरी प्रवृत्ति बन्धनमें डालनेवाली है। यही तत्त्व देवासुर-संग्रामकी असंख्य वैदिक और पौराणिक कथाओंमें प्रकट किया गया है। उन कथाओंको अतीत इतिहासकी सत्य घटनाएँ मान बैठना भूल है। वे सनातन सिद्धान्तोंके द्वन्द्वको बतानेवाली हैं। इस दृष्टिसे श्रुतिका ज्ञान-विज्ञान न केवल पूर्व युगके लिये ही था, वरन् इस युगमें भी उसका बहुत मूल्य है। विप्रर्षियोंने दीक्षा और तपकी उपासनासे जिस ज्ञानका साक्षात्कार किया, वह अमृतत्वको प्राप्ति करानेके लिये आज भी पूर्व जैसा ही महत्त्व रखता है।

महाराजा हर्षवर्द्धन शिलादित्य

साहित्याचार्य प० बाबूलाल भार्गव बी० ए० "कीर्त्ति"

विक्रमादित्य (चन्द्रगुप्त द्वितीय) के जितने भी उत्तराधिकारी थे, वे प्रायः सभी निर्बल थे; अतएव ज्यों ही गुप्त-वंशका अंत हुआ, त्यों ही बहुतसे छोटे-छोटे राजाओंने, जो कि, गुप्त-साम्राज्यके ही आश्रित थे, स्वतंत्र होकर उत्तरी भारतमें छोटे-छोटे राज्य स्थापित कर लिये। वायव्यमें हूणोंने अपने पैर फैलाये और पश्चिमी भागमें राजपूत प्रबल हो उठे। इन दिनों सबसे प्रसिद्ध राज्य थानेश्वर (दिल्ली) था। यहाँपर प्रभाकरवर्धन नामक एक राजा राज्य करता था। वह पहले मालवा-नरेशके आश्रित था; परन्तु पीछे स्वतंत्र बन बैठा। छठी शताब्दीके प्रारंभमें इसने हूणोंपर आक्रमण किया और उन्हें हराकर भगा दिया। हूणोंके अतिरिक्त इसने अपने आसपासके भी अन्य राजाओंको पराजित किया और उनके राज्योंपर अपना अधिकार जमा लिया। हार जानेके बाद हूण लोग कुछ समयतक तो बेशक चुपचाप बैठे रहे; परन्तु उन्होंने एक बार फिर अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त करनेकी कोशिश की। इस बार उनसे लड़नेके लिये प्रभाकरवर्धनने अपने दोनों पुत्रों (राज्यवर्धन तथा हर्षवर्धन) की अध्यक्षतामें सेनाएँ भेजीं। इन दोनों भाइयोंने वहाँ जाकर लड़ाई शुरू ही की थी कि, इतनेमें इन्हें खबर मिली कि, प्रभाकरवर्धन अत्यन्त रोग-ग्रस्त हैं।

यह खबर पाकर राज्यवर्धनने अपने छोटे भाई हर्षवर्धनको तो राजधानीको लौटा दिया और आप हूणोंसे लड़ने लगा। हर्षवर्धनके रणक्षेत्रसे लौटनेके कुछ ही दिन बाद प्रभाकर-वर्धनका स्वर्गवास हो गया; अतएव अपने बड़े भाईके आनेतक हर्षवर्धनने ही राज-काज सँभाला। जब राज्यवर्धन हूणोंको हराकर वापस लौटा; तब उसने उसको गद्दी उसे सौंप दी। परन्तु राज्यवर्धनके राजा हुए अभी थोड़े ही दिन हुए थे कि, मालवाके राजाने, राज्यवर्धनके बहनोई कन्नौज-नरेशपर, जिसका कि, नाम गृहवर्मन् था, चढ़ाई की; और, उसे मार भी डाला। जब यह खबर राज्यवर्धनको मिली, तब वह तुरत अपनी बहन राज्यश्रीकी रक्षा करनेके लिये दौड़ा पहुँचा। उसने कन्नौज जाकर मालवाके राजाको हरा दिया। परन्तु इसी समय एक दुर्घटना घटी। वह यह थी कि, गौड़ देश (बंगाल)के राजा शशाङ्कने, जो कि, मालवाके राजाका मित्र था, कपट करके राज्यवर्धनको मार डाला।

जिस समय राज्यवर्धनकी मृत्यु हुई, उस समय उसका लड़का बहुत ही छोटा था। किसी किसी इतिहासकारका कथन है कि, राज्यवर्धनके पुत्र था ही नहीं; अतएव मंत्रियों आदिने हर्षवर्धनको ही सिंहासनपर आरूढ़ होनेके लिये कहा। इस प्रकार सन् ६०६ में हर्षवर्धन, १७ वर्षकी अवस्थामें, थाने-श्वरके सिंहासनपर बैठा। बहनोईके मारे जानेके कारण उसकी बहन राज्यश्रीका कन्नौज-राज्य भी अब हर्षवर्धनको ही मिला। गद्दीपर बैठते ही हर्षने बंगाल जाकर वहाँके राजाको पराजित कर अपने भाईका बदला चुकाया तथा बंगालको अपने राज्यमें मिलाकर वापस लौट आया। लौट आने पर उसने शिलादित्य की उपाधि ग्रहण की तथा अपनी गद्दीपर बैठनेके स्मारक रूपसे हर्ष-संवत् चलाया। कहा जा चुका है कि, जब वह गद्दी पर बैठा, तब उसकी अवस्था केवल १७ वर्षकी थी; इसलिये थानेश्वर और कन्नौज, दोनों राज्योंका प्रबंध करना उसे कुछ कठिन प्रतीत हुआ; इसलिये उसकी बहन तथा मंत्रियोंने उसे सलाह दी कि, राजधानी थानेश्वरसे हटाकर कन्नौजमें बनायी जाय। हर्षने वैसा ही किया। कन्नौजमें राजधानी हटायी जानेके कारण उसने वहाँ बहुतसे महल, तालाब, मंदिर, बाग आदि बनवाये।

गद्दीपर बैठते ही हर्षकी इच्छा दिग्विजय करनेकी हुई; परन्तु ऐसा करनेके पहले उसे दो बातोंकी अत्यन्त आवश्यकता थी—(१) प्रजामें शान्ति स्थापित करना, (२) सेनाका संगठन करना। इसलिये पहले उसने इन दोनों बातोंकी ओर ही अपना ध्यान लगाया। करीब ६ वर्ष तक वह प्रजामें शान्ति स्थापित करता रहा और इसी बीच सेनाका संगठन भी करता रहा। इस प्रकार हर्षने एक बड़ी भारी सेना तैयार की। कहा जाता है कि, उसके पास एक लाख पैदल, ६० हजार हाथी-वाले और २० हजार घुड़सवार सैनिक थे। सेना एकत्र हो जानेपर पहले हर्षने उत्तरीय भारतको अपने कब्जेमें करके सौराष्ट्र, गुजरात, नेपाल, कामरूप आदि देशोंके राजाओंको अपने आधीन बनाया। कहा जाता है कि, इसके बाद उसने बलभी (काठियावाड़) राज्योंको भी वशमें किया। हर्षको अपना यह सब राज्य जीतनेमें ३० वर्ष लगे। इस प्रकार जब उसका राज्य नर्मदा नदीसे लेकर सतलज नदी तक, सारे उत्तरी भारतमें, जम गया, तब उसने दक्षिणकी ओर भी अपने पैर फैलानेकी कोशिश की। दक्षिणमें इस समय चालुक्यवंशीय राज्य बहुत बढ़ा-बढ़ा था। वहाँ इस समय पुलकेशी (द्वितीय) राजा था। जब उसे हर्षके आनेका समाचार मिला, तब उसने उसका मार्ग रोकनेका दृढ़ निश्चय किया और सेना लेकर रणक्षेत्रमें आ डटा। मार्ग रोके जानेके कारण हर्षकी थकी सेना आगे न बढ़ सकी; अतएव वह अपनी राजधानीको

वापस लौट गया। हर्षके जीवनमें यदि कोई विफलता हुई थी, तो वह केवल एक यही थी।

हर्षके राज्यके विस्तृत वर्णनका पता दो बातोंसे चलता है। एक तो चीनी यात्री ह्यूनसांगके भारत-भ्रमण-वृत्तान्तसे और दूसरे संस्कृत कवि बाणभट्टके "हर्षचरित" नामक ग्रन्थसे। ह्यूनसांग दूसरा चीनी यात्री था। वह सन् ६३० में, भारत-वर्षमें, आया था। यहाँ आकर उसने १६ वर्ष तक सारे भारतमें भ्रमण किया था। इतिहासकारोंका कथन है कि, वह फरगाना, समरकन्द, बुखारा, बल्क, काबुल, नगरहर (जलालाबाद), गांधार (पेशावर), कश्मीर, छोटा तिब्बत, मथुरा, थानेश्वर, हरद्वार, कौशांबी; श्रावस्ती, कपिलवस्तु, कुशीनगर, वैशाली, पाटलिपुत्र, नेपाल, नालंद, सारनाथ, वाराणसी (बनारस), मगध, हिरण्यपर्वत (मुँगेर), चम्पा, बंगाल, उड़ीसा, कन्योध, कलिंग, आंध्र (अमरावती),द्रविड़, महाराष्ट्र, कोकण, भरुकच्छ [भड़ोंच], कच्छ, वलभी [काठियावाड़], मुलतान, खोटान आदि स्थानों तथा बौद्ध तीर्थोंमें गया एवं वहाँका वर्णन लिखा। ह्यूनसांग कुछ काल तक हर्षकी राजधानीमें भी था। वह लिखता है कि, सन् ६३४ में हर्षने एक बृहत् सभा की। इसमें २० राजा उपस्थित हुए थे। किसी किसी इतिहासकारका कथन है कि, छोटे-मोटे राजा मिलाकर राजाओंकी कुल संख्या २१० थी। इन सब नरेशोंने आकर हर्षकी आधीनता स्वीकार की। इस सभाके साथ ही एक धर्मोत्सव भी हुआ। उसमें पहले दिन हर्षने बुद्धकी मूर्ति स्थापित कर उसकी पूजा की, दूसरे दिन सूर्यकी और तीसरे दिन शिवकी। कहा जाता है कि, यह उत्सव लगातार ७७ दिनों तक होता रहा। हर्षने उसमें प्रजाको बड़े-बड़े भोज दिये और इसके पश्चात् बौद्ध तथा हिन्दूधर्मके विद्वानोंको दान, दक्षिणा, वस्त्राभूषण आदि देकर बिदा किया। कहा जाता है कि, सभा-विसर्जनके दिन हर्षने अपनी सारी राजसी पोशाक अलग कर दी तथा सन्यासियों-सरीखे भगवे वस्त्र धारण किये। ह्यूनसांग यह भी लिखता है कि, हर्षके राज्य-कालके समय अफगानिस्तानमें बौद्धधर्म उन्नतिशील स्थितिमें था। वहाँ बुद्धधर्म माननेवाले तथा बुद्धकी मूर्त्तिके पूजक अधिक थे। परन्तु कश्मीरमें यह अवनत दशामें था। वहाँ बुद्ध-धर्मका दिन पर दिन लोप होता जा रहा था तथा हिन्दूधर्म वृद्धिको प्राप्त हो रहा था। वह हर्षकी राजधानी (कन्नौज)का वर्णन करते हुए लिखता है कि, उस समय वहाँ १०० बौद्ध मठ (बिहार) थे। राजा हर्ष हिन्दू और बौद्ध, दोनों धर्मोंका पालन करते, दोनों धर्मोंके देवताओंकी पूजा करते तथा दोनोंके विद्वानोंका आदर करते थे। वह लिखता है कि, उस समय नालंदमें एक बड़ा भारी विश्वविद्यालय था, जिसमें पर्वताकार बड़ी-बड़ी ऊँची गुंबजों तथा खिड़कियोंदार जड़ाऊ इमारतें थीं, जिनके मलगे और चौखटे चित्रकारोंके उत्तम नमूने थे। पास ही विकसित-कमल-दल-सुशोभित सुन्दर शुभ्र सरोवर स्थित थे। नालंदके इस सुप्रसिद्ध विश्वविद्यालयमें दूरसे सहस्रों विद्यार्थी विद्याभ्यास करने आते थे। उस समय इसमें १६००० विद्यार्थी थे। नालन्दके समान ही तक्षशिला, वाराणसी, धनकटक और विक्रमशिला नामक स्थानोंमें भी इसी प्रकारके अन्य विश्वविद्यालय थे। नालन्दके भिक्षुओंका भी उस समय बड़ा आदर होता था। सम्पूर्ण भारतवर्षके पण्डित शंका-समाधान करनेको उस समय वहीं जाते थे। वह लिखता है कि, सारनाथमें भी इस समय संघाराममें १६०० भिक्षु रहते थे। महाराष्ट्रोंके विषयमें भी वह लिखता है कि वे लोग बड़े कृतज्ञ हैं; पर शत्रुओंपर दया करना नहीं जानते। अपमानका बदला लेनेमें वे प्राणोंका मोह नहीं करते। आपत्तिमें पड़ा हुआ कोई यदि उनसे सहा-

यता माँगे, तो कुछ भी खयाल न रखकर उसे सहायता देते हैं। यदि शत्रुसे भेंट हो जाती है, तो ये उसे पहले सावधान करा देते और जब उसे शस्त्र मिल जाता है, तब उससे लड़ते हैं। भाले ही उनके प्रधान हथियार हैं। यदि कोई सेनापति हारकरों आता है, तो उसे स्त्रियोंके कपड़े पहनाये जाते, जिससे मारे शम वह प्रायः पहले ही आत्मघात कर लेता है!

हर्षके राज्यप्रबन्धके विषयमें वह लिखता है कि, हर्षके राज्यमें प्रजा अत्यन्त ही सुखी थी। लोगोंको किसी प्रकारका भी कष्ट न था। अपराधियोंको कड़ी सजा दी जाती थी। अन्य राजाओंको अपेक्षा हर्षके समयमें कानून तथा दण्डविधान भी कुछ तीव्र थे। समुचित प्रबन्धके लिये राज्य कई सूबोंमें विभक्त था और हर एक सूबेमें एक-एक सूबेदार था। शासन-सम्बन्धी सारे काम लिख कर ही किये जाते थे। कर्मचारी लोग सब सीधे-सादे थे; इसलिये उनसे प्रजाको किसी प्रकारका कष्ट नहीं पहुँच सकता था। राजा स्वयं अत्यन्त विद्वान् था; इसलिये राज्यके कार्य्योंको स्वयं देखा करता था। शिक्षाका प्रचार भी हर्षके समयमें बहुत था। वह लिखता है कि, राजा हर पाँचवें वर्ष प्रयाग जाकर, गंगा-यमुनाके संगमपर, ब्राह्मणों और बौद्ध भिक्षुओंको इतने वस्त्र और आभूषण देता था कि, दान करनेके बाद वह स्वयं एक भिखमंगेके वेषमें राजधानी वापस आता था! राजाकी निजकी भूमिके भी चार भाग थे। एक भागकी आमदनी राजकी खर्च तथा धार्मिक कार्योंमें व्यय होती थी। दूसरे भागसे राज-कर्मचारियों तथा मंत्रियोंका वेतन दिया जाता था। तीसरी आमदनी योग्य पुरुषोंके सम्मानार्थ व्यय की जाती थी और चौथे द्वारा धार्मिक संस्थाओंको दान दिया जाता था। प्रजाको कभी बेगार नहीं करनी पड़ती थी। जो काम उससे कराया जाता था, उसका उचित वेतन दिया जाता था। उसे केवल थोड़ा-सा ही कर देना पड़ता था। सब लोग खेती द्वारा अपना जीवन निर्वाह करते और शान्तिपूर्वक अपने द्रव्यकी रक्षा करते थे। प्रजाको फसलका केवल $\frac{1}{6}$ भाग, कर स्वरूप, देना पड़ता था। राज्यमें चोर-डाकुओंका डर बिलकुल नहीं था। व्यापारी एक स्थानसे दूसरेको निडर होकर यात्रा करते थे। रात्रिके समय सैनिक लोग गाँवमें पहरा देते थे। न्यायाधीशों आदि कर्मचारियोंको उस समय वेतन न देकर जीविकाके लिये जमीन ही दी जाती थी। प्रजा सांसारिक बातोंको विशेष महत्त्व न देकर परलोकका भय रखती थी। वे लोग वचनके बड़े पक्के होते थे। वे कभी कपट और विश्वासघात नहीं करते थे। न्याय करते समय दयाका उपयोग किया जाता था। लेन-देन सच्चा और खरा था। राज्यमें जगह-जगह अनाथालय और धर्मशालाएँ थीं।

हर्षका स्वभाव भी अत्यन्त दयालु, नम्र तथा सुशील था। विद्यासे उसे बड़ा प्रेम था। वह स्वयं कविता करना जानता था और दरबारमें कवियोंको रखता था। उसके दरबारका सबसे बड़ा कवि बाणभट्ट था, जिसने कि, "कादम्बरी" और "हर्षचरित" नामक संस्कृतके विशाल ग्रंथोंकी रचना की है। "हर्षचरित"में बाणने हर्षके पूर्वजों और राजा हर्ष तथा उसके राज्य-कालका विस्तृत वर्णन किया है। यह वर्णन ह्यूनसांगके भारत-भ्रमण-वृत्तान्तसे बिलकुल मिलता-जुलता है। हर्षने स्वयं ही "रत्नावली," "प्रियदर्शिका" और "नागानन्द" नामक तीन ग्रन्थ लिखे हैं, जिनमें "रत्नावली" सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है। संस्कृतज्ञोंका कथन है कि, "रत्नावली" संस्कृत भाषाकी आदर्श तथा सर्वश्रेष्ठ नाटिका है। कहा जाता है कि, वेदान्तके "खण्डन-खण्ड-खाद्य" और "नैषध-चरित"को भी हर्षने ही बनाया था।

हर्षकी इन पुस्तकोंसे भी भारतकी तत्कालीन अवस्थाका पूरा-पूरा परिचय मिलता है। इन ग्रन्थोंसे यह भी पता चलता है कि, वह पहले हिन्दूधर्मको मानता था; परन्तु बादमें अपनी बहन राज्यश्री, जो कि, पतिके मारे जानेपर बौद्ध भिक्षुनी हो गयी थी, द्वारा तथा ह्यूनसांगके सत्सङ्गके प्रभाव द्वारा वह बौद्ध मतकी महायान-शाखामें श्रद्धा रखने लगा था।

हर्षकी मृत्युके समयका ठीक-ठीक पता नहीं चलता। पर इतना अवश्य है कि, उसकी मृत्यु सन् ६४६-६४७ ई० के लगभग हुई होगी। हर्षके मरनेके बाद उसका कोई भी वंशज राजा ऐसा न था, जो उसके इस विस्तृत साम्राज्यकी रक्षा करनेमें समर्थ होता। अतएव हर्षकी मृत्युके कुछ समय बाद उत्तरी भारतमें फिर वही स्थिति हो गयी, जो कि, उसके राज्यारोहणके पूर्व थी। जगह-जगह कई छोटे २ राज्य हो गये। इसी समय दक्षिणमें एक बड़ा भारी राजा था, जो कांचीमें राज्य करता था। इसका नाम नृसिंह वर्मा था। इसीने ६४२ ई० में चालुक्य-राज पुलकेशी द्वितीयको, जिसने कि, अशोकको दक्षिण जानेसे रोका था, हराया था। हर्षकी मृत्यु होनेपर इसने अपने राज्य-विस्तारका अच्छा मौका देखा और यह दक्षिणके उन सब छोटे २ राजाओंको हराकर महाराजाधिराज हो गया। कहा जाता है कि, हर्षकी मृत्युके बाद उसकी प्रजामें अशान्ति फैल गयी तथा लोगोंको बड़ा कष्ट होने लगा। सच तो यह है कि, हर्षकी मृत्युके बाद उसके राज्यकी वही स्थिति हुई, जो चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक, समुद्रगुप्त आदिके राज्योंकी हुई थी। देशका सारा धन-धान्य, वैभव-विक्रम, हर्षकी धधकती हुई चिताके साथ ही, भस्म हो गया और उसके बाद भारतका ऐतिहासिक सूर्य क्रमशः मंद होकर अस्त हो गया! पर धन्य है प्रजा-हृदयरंजन नरेश हर्षको और धन्य है उसके देदीप्यमान प्रतापको, जिसका सारे भारतमें आज भी बोलबाला है!
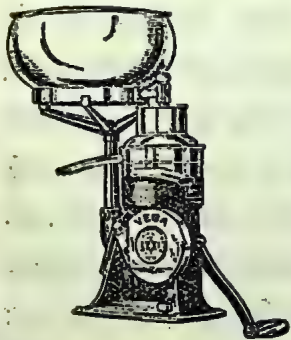
रूसकी पञ्चवर्षीय कार्य-योजना

श्रीयुत रमेश

बीसवीं सदीकी क्रान्तियोंमें रूसकी क्रान्ति सबसे बड़ी और इतिहासमें अपने ढंगकी अनोखी है। इन थोड़े दिनोंमें रूसके शासन-निर्माणमें जो महान् परिवर्तन हुआ है, वह अभूतपूर्व है। इसी प्रकार उन्नतिकी घुड़दौड़में रूस जैसी सरपटसे दौड़ रहा है, वह संसारके राष्ट्रोंके लिये एक विस्मयोत्पादक और कौतूहलवर्धक बात है। महात्मा लेनिनके मनसूबे आज रूसमें अपना चमत्कार दिखा रहे हैं। सिद्धान्तोंके प्रतिपादन और उन्हें रचनात्मक रूप देनेका जो श्रेय लेनिनको मिला है, वह अन्य किसी इसी कोटिके व्यक्तिको नहीं मिला। बोल्शेविकोंकी सबसे बड़ी चिन्ता यह है कि, उनका यह नया प्रयोग दुनियामें सफल हो, उनकी शासन-पद्धतिमें लोग सबसे अधिक सुखी, उन्नतिशील तथा कृषि, विज्ञान, शिल्प आदि बातोंमें सबसे आगे रहें। इसके लिये कर्मवीर लेनिनने सन् १९२१ ई०में ही रूसके लिये एक ऐसी योजना बनायी थी, जिसके अनुसार कार्य करनेपर पन्द्रह वर्षके अन्दर रूस एक शक्तिशाली राष्ट्र बन जाय। उसके बाद उसके योग्य शिष्योंने लेनिनके विचारोंको उसकी नियत सीमासे अधिक कार्य-रूपमें पूरा करके दिखाया। लेनिन जिस सफलताकी सीढ़ीपर सन् १९३६ ई०में पहुँचनेका इरादा रखता था, उसको रूसवालोंने सन् १९२८ ई० तक पूरा करके दिखला दिया और दिसम्बर, सन् १९२८ ई०, में जो आगेकी पंचवर्षीय योजना बनी, उसमें रूस लेनिनके मनसूबेसे बहुत अधिक बढ़ जायगा। इस पंचवर्षीय योजनाका आजकल बड़ा महत्त्व है। यदि रूस इस योजनाको व्यावहारिक रूप देनेमें पूर्ण सफल हुआ, तो निःसन्देह उसके जोड़के संसारमें फिर दो ही तीन राष्ट्र रह जायँगे। इस पंचवर्षीय योजनामें कृषि, वाणिज्य, शिल्प तथा साहित्य और समाज, सभी प्रकारकी उन्नतियाँ शामिल हैं। अब रूस दुनियाके लोगोंसे यह कहलवाना छोड़ देगा कि, रूस केवल खँडहर या खेतिहरोंका देश है। उसकी इच्छा है कि, यह

तिरासी लाख वर्ग मीलकी पृथ्वीका छठा भाग दुनियाकी पैदावार, व्यापार और उद्योग-धन्धोंकी दृष्टिसे अन्य देशों से आगे बढ़ जाय। उसके सोलह करोड़ निवासी संसारके लोगोंसे कला-कौशलमें आगे रहें। इसके लिये इस पाँच सालोंमें (१९२९—१९३३), भिन्न-भिन्न विभागोंमें, उन्नति करनेके लिये रूसने ९६९००,०००,००० रुपयेकी पूँजी लगायी है।

भारतवर्षकी तरह रूस भी एक खेतिहर देश है। लेकिन रूस अब पुराने ढंगका खेतिहर नहीं रहा। अब तो रूसने तमाम भूमिको बड़े-बड़े फार्मोंमें बाटकर, अमेरिकाके ढंगपर, उसमें खेती करनेकी योजना बनायी है। अबतक ७००००००० एकड़ भूमि फार्मोंमें विभक्त हो चुकी है, जिससे दो करोड़ रूसी किसानोंका सम्बन्ध है। यह कार्य बड़ी शीघ्रता और सफलताके साथ हो रहा है। सन् १९२९ ई० में १९७६००० एकड़ भूमिमें फार्म बनाये गये। सन् १९३०में १३,९८९,००० एकड़ और गत वर्षके अन्ततक २०,०००,००० एकड़ भूमि फार्मोंके रूपमें आ गयी है। पंचवर्षीय योजनामें तो रूसकी सारी भूमि बड़े १७०,००० फार्मोंमें बदल देनेका आयोजन है। अबतक इस योजनामें वहाँकी सरकारको चालीस प्रतिशत सफलता मिल चुकी है। जो गाँव अभीतक इसके बाहर हैं, उनमें कड़ाईके साथ यह स्कीम काममें लानेका उद्योग हो रहा है।

रूसमें खेतिहर सैनिकोंका एक नया प्रयोग है, जिसकी देखा-देखी अब जर्मनी आदि देशोंने भी अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया है। प्रायः सब देशोंमें सेनाके सिपाही अबतक लड़ाई लड़नेके ही काममें आते रहे हैं। जब लड़ाई नहीं होती, तब वे निठल्ले रहते हैं। रूसकी सरकारने उन्हें हुकुम दिया है कि, ऐसे सैनिक कृषि फार्मोंमें आकर काम सीखें। एक लाख सिपाही इसीके लिये ट्रेण्ड किये गये हैं। उनमें पचहत्तर हज़ार फ़ार्मोंमें खेतीका कार्य करते हैं। एक सेनाके पचास हजार किसान खेतोंमें कार्यके लिये भेजे गये हैं। ये लोग किसानोंके साथ मिलकर उनके समान ही खेतोंमें कार्य करते हैं। यही नहीं, शहरोंसे मजदूर लोग भी, खेतोंमें विशेष रूपसे कार्य करनेके लिये, भेजे जाते हैं। पहले पहल जब यह योजना कार्यमें लायी गयी, तब रूसके किसान इससे भड़के; लेकिन बादको उन्हें उसके सब लाभ मालूम हुए और अब तो वे स्वेच्छापूर्वक इसी योजनाके अनुकूल कार्य कर रहे हैं। इस प्रयोगसे समान पूँजी और समान भूमि द्वारा किसानोंको समान ही फल मिलता है। यही प्रयोग पृथक्-पृथक् करनेसे उसके लिये भारी धनकी आवश्यकता पड़ती। इस कार्यमें रूस ३४,९००,०००,००० रुपये खर्च करेगा।

ऊपर कहा जा चुका है कि, फार्मों द्वारा भूमिकी उत्पादक शक्तिको बढ़ानेके लिये रूस अमेरिकाकी होड़ कर रहा है; लेकिन दोनोंके साधन और मार्ग एकसे होनेपर भी रूस और अमेरिकाके उद्देशोंमें बहुत अन्तर है। अमेरिकाकी भूमि पूँजीपतियोंके आधीन है। दूसरे, लोग उसमें मजदूरी करके अपने पेट पालते हैं; लेकिन रूसी फार्मोंमें रूसके प्रत्येक किसानका बराबरका भाग रहता है। अमेरिका जहाँ कृषि फार्मों द्वारा ग्रामीण जीवनको नष्ट कर रहा है, वहाँ रूस देहाती जीवनको बरकरार रखते हुए उसीको उन्नति-शील बनानेका प्रयत्न करता है। अमेरिकाके कृषि फार्मोंका काम मशीनोंसे लिया जाकर वहाँका पशुधन केवल गोश्तके काम आता है; बड़े-बड़े चारागाह केवल इसी लिये रखाये जाते हैं कि, उनमें पशुओंको चरा-चराकर मोटा-ताजा किया जाय और वे बूचड़खानोंके शिकार बनें। इसके विरुद्ध रूस अपने पशुधनको बढ़ा रहा है। इसके लिये भूमि संगठनके साथ-साथ रूसने अपने यहाँ डेरी फार्मोंका संगठन किया है। गौ और दूध देनेवाले चौपाये बड़ी होशियारीसे पाले जाते हैं। सोवियट यूनियनका 'Economic Review' लिखता है कि, "सन् १९२९ ई० से अबतक रूसमें बीस लाख गायें

बढ़ गयी हैं। आठ हजार फैक्टरियाँ दूध, मक्खन आदिके लिये हैं, जिनमें आधीसे अधिक केवल पिछले चार सालोंमें बनी हैं।" इन डेरी फार्मोंके संगठनमें सरकारने ९०,०००,००० रुपये लगाये हैं। दिनोंदिन इसकी और भी उन्नति हो रही है। इस सालके अन्ततक अनुमान है कि, इन फार्मोंमें साठ लाख दूध देनेवाले पशु होंगे। गाँवोंके लिये को-आपरेटिव फार्म और खोले जा रहे हैं, जिनमें अस्सी लाख दूध देनेवाले पशु काममें लाये जायँगे। देहाती जनताको इन फार्मोंसे अच्छा दूध और मक्खन आदि काफी संख्यामें मिलता रहेगा। सोवियट सरकार इसके लिये और भी विशाल आयोजन कर रही है। अभी २९९९००००) की लागत लगाकर एक संयुक्त डेरी फार्म, रूसके बच्चोंको ताजा और अच्छा दूध पहुँचानेके लिये, उद्योग करेगा। इससे मालूम होता है कि, रूस अपनी भावी पीढ़ीके स्वास्थ्यको सबल बनानेके लिये कितना प्रयत्न करता है। एक देश भारत भी है, जहाँके बच्चे दूध तो क्या अन्नके लिये भी तरसते हैं!

शिल्प-कला-विभागमें रूसने आश्चर्य-जनक काम करके दिखलाया है। उसे सबसे अधिक चिन्ता इस बातकी है कि, औद्योगिक उन्नतिमें वह पश्चिमके किसी भी राष्ट्रसे पीछे न रहे। गत वर्ष इसके लिये उसने ४९९०,०००,००० खर्च किये हैं। इनमें ३९०,०००,००० रुपये कोयला, तेल, लोहा आदिके बड़े-बड़े कार्योंमें लगाये हैं और ७९०,०००,००० रुपये छोटी छोटी दस्तकारीमें। इसके लिये सरकार प्रतिवर्ष डेढ़ अरब रुपये उधार लेती है। उसकी इच्छा है कि, पन्द्रह वर्षोंके अन्दर अपनी दस्तकारीको अमेरिकाके जोड़-तोड़की कर ले। इसके लिये रूसके पास प्राकृतिक साधन भी उपलब्ध हैं। बिजलीकी शक्तिके उत्पादनके लिये रूसमें काफी नदियाँ हैं। टून्ड्राके मैदानोंमें बहुतसा प्राकृतिक सामान, लकड़ी आदि, पैदा होता है। अनुमानतः चार खरब टन कोयला रूसकी खानोंमें भरा पड़ा है। इतनी ही तादाद लोहेकी भी कूती गयी है। संसारमें तेलकी जितनी उत्पत्ति है, उसका पैंतीस सैकड़ा केवल रूसमें पैदा होता है। प्लेटीनम, सोना, चाँदी, ताँबा आदि भी रूसमें अधिकतासे पैदा होते हैं। इन सब साधनोंसे रूस काम ले रहा है और वह कुछ दिनोंमें अपना औद्योगिक क्षेत्र अमेरिका और ब्रिटेनके बराबर ही बढ़ा लेगा।

इन दिनों वायुयानकलाकी भी रूसमें खूब उन्नति हुई है। इस दिशामें सन् १९२२ ई०में सबसे पहले रूसने प्रयत्न किया था और जर्मनीकी सहायतासे किंग्सबर्ग और मास्कोके बीच वायुयान-मार्ग खोला गया; लेकिन तबके और अबके हिसाबमें बहुत अन्तर पड़ गया है और तबसे अब रूसका इस विभागमें दसगुना व्यय हो गया है। अब ट्रान्स काकेशियन, उक्रेनियन और डोबरोलेट नामकी तीन बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ वायुयान-कलाका कार्य कर रही हैं। इनमें पिछली कम्पनीका हवाई मार्ग मध्य एशिया और साइबेरियातक है। ट्रान्स काकेशियन, काकेशश प्रान्त और बाकू बन्दरगाहपर होती हुई ईरानके तेहरानतक जाती है। तीसरी लाइन जर्मनी और मास्कोसे रीगा तिम्बस वर्ग, बर्लिन तथा लेनिन ग्राड आदिका सम्बन्ध मिलाती है। पचवर्षीय योजनामें तो रूसने अपने राज्यके हर भागमें वायुयान द्वारा मार्ग तय करने और डाक पहुँचानेका प्रयत्न किया है। अतः सन् १९३३ ई० में रूसका हवाई मार्ग पूर्वमें बहरिंग मुहाने, ब्लाडी बोस्टक और आगे कोरियाको पार करते हुए जापानके टोकियोतक मिल जायगा। दक्षिणमें मास्कोसे डाक ले जानेवाला वायुयान तेहरानमें केवल पन्द्रह घण्टेमें पहुँचा करेगा! इसके अतिरिक्त अन्तर्देशीय हवाई मार्गों द्वारा साम्राज्यके एक भागका दूसरेसे सम्बन्ध मिलाया जायगा तथा रातमें उड़ जानेका मार्ग भी तैयार होगा। इस विभागमें काम करनेके लिये रूसने अभी ७९०००००० की लागतसे कम्पनी खड़ी की है। वायुयान-फोटोग्राफीकी भी अच्छी उन्नति हो रही है। विशेष बात यह है कि, इन वायुयानोंकी उड़ानमें रूसमें कोई उल्लेखनीय

घातक घटना भी नहीं घटित हुई है। सब कार्य सफलता और प्रगतिके साथ हो रहा है।

वर्तमान रूसकी उन्नतिका सबसे महत्त्वपूर्ण अंग शिक्षा है। शिक्षाकी उन्नतिके लिये रूस जितना प्रयत्न कर रहा है, उतना इटलीके सिवा शायद ही और कोई देश कर रहा हो। पन्द्रह वर्षकी उम्रतकके बच्चोंके लिये अनिवार्य शिक्षा कर दी गयी है। इसके अनुसार १९३० में जहाँ ११००००००० रूसी बालक शिक्षा प्राप्त करते थे, उनकी संख्या अब १९००००००० से भी ज्यादा होगी। लड़ाईके पूर्व रूसकी सत्तर फी सदी जनसंख्या मूर्ख थी। वह इन थोड़े वर्षोंके प्रयत्नसे केवल चौंतीस फी सदी रह गयी है। जहाँ सुराज्य और स्वराज्य होता है, वहाँ उन्नतिकी इस कदर प्रगति होती ही है। इस साल शिक्षाके लिये रूसके बजटमें २८६६९०००० रुपये रखे गये हैं और अगले सालके लिये रकम ३३८८९००००० कर दी गयी है। सन् १९१४ में रूसमें ७००,०००० बालक शिक्षा पाते थे। १९२८ में यह संख्या ९९०००००० पहुँच गयी और सन् १९३३ में यह १७०००००० होगी। युवा पुरुष भी शिक्षित किये जाते हैं। पहले ऐसे लोगोंकी संख्या २२००० थी और अब ३४००० है। ४००० चलते-फिरते पुस्तकालय हैं, जिनके द्वारा घर बैठे हुए लोगोंको अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़नेको मिल जाती हैं। हालमें ही दस टेकनिकल कालेज और पौने दो सौ हाई स्कूल खोले गये हैं, जिनमें ६४००० विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते हैं। उनमें नब्बे फी सदी विद्यार्थियोंको सरकारसे वजीफा मिलता है। इसके अतिरिक्त पिछले दस वर्षोंमें पन्द्रह लाख मजदूर पढ़-लिखकर शिक्षित हुए हैं!

खेलों द्वारा शिक्षाकी सर्वतोमुखी उन्नतिकी ओर अपने देश-निवासियोंको जगाकर रूसने उनकी विनोद-प्रियता नष्ट नहीं की है; बल्कि इस ओर सोवियट सरकारका सदैव ध्यान रहा है कि, वह शिक्षाके सुलभ साधनोंको काममें लाये। पंचवर्षीय योजनामें उसने यह भी रखा है कि, उसके यहाँ पैंतीस लाख रेडियोकी दूनी संख्या हो जाय। इसी प्रकार सिनेमा ८२९० से बढ़कर ९०००० और समाचार-पत्र १७००००० से ९०००००० हो जायँगे। इन सब साधनोंसे रूस विद्याकी उन्नतिमें बड़ा काम लेगा। मनोरंजन और हास्य-विनोदके साथ शिक्षामें बालकोंकी मानसिक और शारीरिक, दोनों शक्तियोंमें विकास होता है। रूसने यह गुण अच्छी तरह सीख लिया है।

इस प्रकार रूस उन्नतिके मार्गमें आगे बढ़ रहा है। अपनी पंचवर्षीय योजनाकी सफलता पर उसे पूरा विश्वास है और इसकी सफलताके साथ फिर संसारकी बड़ी-से-बड़ी शक्ति रूसका लोहा मानने लगेगी। रूस आशावादी है और उसकी आशाका कारण उसका पुरुषार्थ है।

राष्ट्रीय विकाश और हिन्दीप्रचार

एक राष्ट्रभाषाका भक्त

राष्ट्र पुरुष है, तो राष्ट्रभाषा प्रकृति है। भाषाके द्वारा ही राष्ट्रकी नींव सुदृढ़ होती है। जिस राष्ट्रकी अपनी भाषा नहीं है, वह राष्ट्र रह नहीं सकता। किसी राष्ट्रकी राष्ट्रीयताका नाश करनेके लिये उसकी राष्ट्रीय भाषा विनष्ट की जाती है। उसी तरह, किसी छिन्न-भिन्न राष्ट्रकी राष्ट्रीयता पुनः स्थापित करनेके लिये, राष्ट्रभाषा नींवका काम करती है। जिस देशमें राष्ट्रीय भाषाकी एकछत्र सत्ता है, वहाँ राष्ट्रीयता है; और, जिस देशमें पूरी राष्ट्रीयता है, वहाँ राष्ट्रभाषाका सर्वाङ्गपूर्ण विकाश है।

भारतवर्षकी राष्ट्रीयता बिखरी हुई है। विज्ञजन सुधारनेकी चेष्टा कर रहे हैं। अतः परमावश्यक है कि, एक राष्ट्र भाषा स्थिर कर ली जाय और उसीपर राष्ट्रीयताकी नींव दृढ़ की जाय। संतोषकी बात है कि, अब यह विषय स्पष्ट हो गया है कि, इसकी राष्ट्रभाषा होने योग्य हिन्दी ही है। कोई भी राष्ट्राभिमानी भारतीय, यदि उसके हृदयमें किसी अन्य-भाषाका अन्ध-मोह या अनुचित पक्षपात नहीं है, वह इसे अस्वीकार नहीं कर सकता। वास्तविक रहस्य तो यह है कि, राष्ट्र-निर्माणके कार्य, इसके बिना हो ही नहीं सकते। बाहरी उदाहरणोंकी आवश्यकता नहीं; तनिक वर्तमान आन्दोलनपर ही दृष्टि डाली जाय, तो पता चल जायगा कि, राष्ट्रके जीवनके लिये राष्ट्रभाषाकी कितनी अनिवार्य आवश्यकता है और उसके सहारे कठिन-से-कठिन कार्य किस सुगमतासे सम्पादित हो सकते हैं। १९२१–२२ और १९३०-३१ की जागृतिकी ज्योति, जो इतने जोरोंसे जगमाती रही है, कारण क्या है ? मोहनकी मुरलीकी मधुर मूर्च्छना किस वायु-विद्युत्के सहारे, आज घर-घरमें गूँज रही है ? कहना होगा कि, हमारी हिन्दीकी बदौलत राष्ट्रका साथ देनेमें इसने वैसा ही कर्त्तव्य कर दिखाया है, जिस प्रकार वीर नारी युद्धस्थलमें वीर पतिका साथ देती है।

जैसे-जैसे हिन्दीका प्रचार बढ़ा है, राष्ट्रीय विकाशमें

सहायता पहुँची है अथवा जैसे-जैसे राष्ट्रीयता बढ़ती गयी, हिन्दीका प्रचार भी बढ़ता गया है। १९०७-८के स्वदेशी आन्दोलनके समय यद्यपि अंगरेजीका ही बोलबाला था, तथापि 'हिन्दी-केसरी', 'कर्मयोगी', 'हिन्दी बंगवासी' आदि उस समयके हिन्दी-पत्रोंने हिन्दी-भाषाभाषी जनताके बीच, समयानुकूल सनसनी फैलानेमें, यथोचित सफलता प्राप्त की थी। राष्ट्रीय भावसे प्रेरित होकर, उस समयके नवयुवकोंने इन पत्रोंकी ग्राहक-संख्या बढ़ानेमें बहुत काम किया था। इससे दोनों कार्य हुए; राष्ट्रीय भावनाका फैलाव बढ़ा और हिन्दीका प्रचार भी हुआ।

सन् १९१२-१३ से हिन्दीका प्रचार नियमित और सफलता-पूर्वक होने लगा। 'हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन'ने हिन्दी-आन्दोलनको बहुत आगे बढ़ाया। देश भरमें स्थान-स्थानपर हिन्दी-प्रचारके लिये सभाएँ हुईं। हिन्दी-संस्थाएँ, हिन्दी-पुस्तकालय एवम् हिन्दी-वाचनालय आदि स्थापित होने लगे। हिन्दी प्रेसोंकी संख्या बढ़ने लगी। 'प्रभा', 'मर्य्यादा', 'इन्दु', 'नवनीत', 'चित्रमयजगत्' आदि मासिक पत्रिकाओं और 'प्रताप' जैसे साप्ताहिक पत्रसे हिन्दीका कलेवर सुशोभित होने लगा। प० अम्बिका-प्रसाद वाजपेयी और प० बाबूराव विष्णु पराड़करकी संयुक्त लेखनी 'दैनिक भारतमित्र'के द्वारा अपनी करामात दिखाने लगी। इससे हिन्दीके प्रचारके साथ-साथ राष्ट्रीयताकी लहरी भी लहराने लगी। उस समयके लेखों, सम्पादकीय विचारों, कविताओं और हिन्दी-प्रचारकोंके व्याख्यानोंके आच-रणमें राष्ट्रीयताकी पुट, बड़ी कारीगरीसे, रखी जाती थी। इस विषयमें स्वामी सत्यदेवजीने बहुत-कुछ कार्य किया। 'हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन'के प्रचार-मंत्रीकी हैसियतसे और इसके बाद, अपनी 'सत्य-ग्रन्थ-माला' के प्रचारकी आड़में, स्वामीजीने देश-भरमें हिन्दी-प्रचारके साथ-साथ राष्ट्रीयताकी लगन उत्पन्न कर दी। जिस ओज और कलाके साथ स्वामी जी प्रचारका जादू बिछाते थे, उसका नवयुवकोंपर विलक्षण प्रभाव पड़ता था। प० जीवानन्द शर्म्मा (भू० पू० 'कमला' और 'प्रजाबन्धु' के सम्पादक) ने भी, 'हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' के उपदेशककी हैसियतसे, इस सम्बन्धमें यथाशक्ति कार्य किया। इसी समय महात्मा (उस समयके कर्मवीर) गाँधीने दक्षिण अफ्रीकामें सत्याग्रहकी धूम मचायी। भारत-वर्ष भरमें आन्दोलन छिड़ा। स्वदेशी आन्दोलनके बाद देशमें यह दूसरा सार्वजनिक आन्दोलन था। इससे सर्व-साधारणमें, समाचार-लालसाके कारण, पत्र-पत्रिकाओंकी ग्राहक-संख्या बढ़नेसे हिन्दीका प्रचार बढ़ा; और, प्रवासी भाइयोंकी सहानुभूतिसे राष्ट्रीयताकी प्रगतिमें भी जान आयी।

इसके बाद ही 'यूरोपीय महाभारत'का संसारव्यापी भीषण कुहराम मचा। यद्यपि इसमें कई अरब रुपये और कई लाख जानें, साम्राज्य-वादकी नींव दृढ़ करनेमें, बरबाद हुईं; मगर लाभ भी कम न हुआ—हमारी आँखें ऐसी खुलीं कि, हम सदाके लिये सचेत हो गये! इस लड़ाईके समाचारोंकी उत्सुकता और पर-राष्ट्र-ज्ञान-लालसाने सहस्रोंको हिन्दीका प्रेमी बना डाला। जिन्होंने स्वप्नमें भी समचार-पत्रों या पुस्तकोंके दर्शन नहीं किये थे, उन्हें भी उनका अनुरागी बना डाला। कितने ही नये प्रेस और प्रकाशन-मण्डल खुले। नवीन समाचर-पत्रों और पुस्तकोंके द्वारा हिन्दी-भाषाकी कलेवर-वृद्धि की जाने लगी। कौन कह सकता है कि, उन साहित्योंके द्वारा पत्रोंके सम्पादकीय विचार, और पुस्तकोंसे प्राप्त अन्ताराष्ट्रीय जानकारीके कारण, युद्ध-विषयक जिज्ञासा-तृप्तिके साथ-साथ, राष्ट्रीय भावनाओंका प्रचार नहीं हुआ?

इसी परिस्थितिमें, सन् १९१६ में, लखनऊमें ऐतिहासिक काँग्रेस हुई, जिसमें श्रीमती एनी बेसेण्टके उद्योगसे, गोम-तीके उसी पवित्र तटपर, राम-लक्ष्मणकी भाँति, नरम-गरम और हिन्दू-मुसलमानोंका अपूर्व सम्मेलन हुआ। उस समय

तक सार्वजनिक रूपसे मुसलमान ही नहीं, वरन् अधिकांश हिन्दू-जनता भी काँग्रेस, स्वराज्य और राष्ट्रीयतासे एकदम दूर थी। यह त्रिविध ताप अधिकतर अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगोंतक ही व्याप्त थे। इसी काँग्रेसमें पहले पहल म० गांधीजीने हिन्दीकी दुंदुभि फूँकी और नेताओं तथा काँग्रेसियोंको सुझाया कि, काँग्रेसकी कार्यवाही हिन्दीमें हो। यही नहीं, वरन् उन्होंने चेतावनी भी दे दी कि, 'आगामी वर्षसे मैं काँग्रेसके अन्दर हिन्दीमें ही भाषण करूँगा।' और, उसी समय [आर्य-समाज-पण्डालमें] महात्माजीके सभापतित्वमें प्रथम राष्ट्रभाषा-सम्मेलनका आयोजन किया गया, जिसके द्वारा देशमें एकराष्ट्रीय भाषा-की आवश्यकतापर जोर डाला गया। इसके बाद ही 'होम-रूल'का आन्दोलन जगमगाया। लो० तिलकके 'स्वराज्य-सङ्घ'के अतिरिक्त देवी बेसेण्टकी 'होमरूल-लीग'ने, विशेष रूपसे, राष्ट्रीयताकी लहरी वेगवती की। ऐसी सार्वजनिक हलचल इतने व्यापक रूपसे, पहले कभी न मची थी। भारत सरकारसे लेकर ब्रिटिश-मंत्रि-मण्डलतक हिल उठा! फल-स्वरूप तत्कालीन भारतमंत्री स्व० माण्टेगू महोदयको जिस प्रकार यहाँ आना और उस समयके वायसराय चेम्स-फोर्ड साहबके साथ मिलकर जो कुछ करना-धरना पड़ा, वह सभी जानते हैं। उस समय देवी बेसेण्ट भारतीयोंकी हृदय-सम्राज्ञीके पदपर पहुँच गयीं। १९१७ ई० की कलकत्ता काँग्रेसने उन्हें प्रेसीडेण्ट निर्वाचित किया। उस समयकी मतवाली जनता, कविवर प० माधव शुक्लके शब्दोंमें—"न लें बहिश्त भी हम होमरूलके बदले"; और, स्वर्गीय शायर 'श्रीचकबस्त'के अल्फाजोंमें—"संतरी देखके इस जोशको शरमायँगे, गीत जंजीरकी झनकारपर हम गायँगे" के मस्त गाने गाती थी, तो भला एक विदेशी महिलाके नेतृत्वमें, देशकी पहलेसे भी बढ़ी-चढ़ी आवाज, इतनी सफलताके वायुमण्डलमें गूँजित हो, इसका कारण-आधार क्या है? बात यह हुई कि, सार्वजनिक रूपसे देशकी प्रत्येक जाति विशेषकर हिन्दू-मुसलमानोंने उस आन्दोलनमें पूरा-पूरा भाग लिया और सम्मिलित स्वरसे आवाज उठायी। कौन अस्वीकार करेगा कि, उस आवाजकी अधिकतर गूँज, जिसके रन्ध्रसे निकल रही थी, वह राष्ट्रभाषा हिन्दीकी ही मनोरम मुरली नहीं थी?

यह रहस्य धीरे-धीरे नेताओंकी समझमें भी आने लगा। महात्माजीकी प्रेरणासे 'हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन'ने जब मद्रासमें हिन्दी क्लास खोलना निश्चित किया, तब वहाँके श्रीयुत सत्यमूर्त्ति आदि प्रमुख नेताओंने पूरी सहानुभूति दिखलायी। फलस्वरूप, मद्रासके अतिरिक्त आन्ध्र और मैसूरके कितने ही स्थानोंमें भी आज हिन्दीकी जड़ अच्छी तरह जम चली है। उस समय, [१९१७ ई०] की कलकत्ता-काँग्रेसके अवसरपर, जब 'द्वितीय-राष्ट्र-भाषा-सम्मेलन' हुआ, तब उसमें देशके प्रायः सभी प्रान्तोंके उपस्थित नेताओंने स्पष्ट शब्दोंमें हिन्दीको राष्ट्रभाषा स्वीकार किया। उसके सभापति स्व० लो० तिलकके अंगरेजी भाषणके लिये महात्माजीने भरी सभामें उन्हें बेतरह संकोचमें डाल दिया था। कदाचित् इसीका यह परिणाम हुआ कि, उसके दूसरे ही दिन लोकमान्यने एक सार्वजनिक सभामें, लोगोंके अनुरोधपर, कुछ देरतक हिन्दीमें भाषण किया।

इस समय हिन्दीका सितारा भली भाँति चमकने लगा था। सर्वसाधारणका आधार हिन्दी तो थी ही, नेताओंने भी इसकी ओर ध्यान देना आरम्भ किया। इस शुभ वातावरणमें कितनी ही नवीन पत्र-पत्रिकाओंके जन्म हुए। हिन्दी दैनिक जितने इस समय निकले, उतने न पहले कभी निकले और न आज ही निकल रहे हैं। यद्यपि इन पत्रोंका मुख्य उद्देश्य समाचारोंके द्वारा व्यापारिक लाभ उठानेका था; परन्तु साथ साथ राष्ट्रीयताकी पूरी लगन भी थी। 'भारतमित्र', 'कलकत्ता-समाचार', 'वर्त्तमान' के अतिरिक्त 'अभ्युदय', 'प्रताप,'

'जयाजी-प्रताप', 'वेंकटेश्वर-समाचार', 'हिन्दी-बिहारी' आदि साप्ताहिक पत्रोंने भी दैनिक संस्करण निकाले। लो० तिलक के 'मराठी' और 'केसरी' तथा देवी बेसेण्टके 'न्यू इण्डिया'में हिन्दी अंश प्रकाशित होने लगा।

इसके अनन्तर जैसे-जैसे लोगोंमें देशके प्रति अनुराग बढ़ता गया, सामयिक परिस्थितिमें जनता जिस प्रकार दिलचस्पी बढ़ाती गयी, हिन्दीका प्रचार भी बढ़ता गया। अथवा, यों कहिये कि, हिन्दीका जितना प्रचार होता गया, देशके प्रति जनतामें उतना ही अनुराग भी बढ़ता गया। असहयोग-आन्दोलनने जनताकी भावनाओं और आकांक्षाओंको कितना व्यापक और उच्च बना दिया है, कितनी शीघ्रतामें बिजली दौड़ा दी है तथा किस तरह सिद्ध कर दिया है कि, भाषाके सहारे भावोंकी रुचिमें कितना परिवर्त्तन कराया जा सकता है, यह लिखनेकी जरूरत नहीं। इसका प्रधान कारण हिन्दी ही है। इसका मुख्य श्रेय महात्मा गांधीको ही है, जिनकी कृपासे न केवल हिन्दीका ही इतना व्यापक प्रचार हुआ; वरन् देशकी साधारण जनता यह जान सकी कि, कांग्रेस किस चिड़ियाका नाम है, स्वराज्य किसे कहते हैं और राष्ट्रीयता किस मजकी दवा है। महात्माजीने, जिस प्रकार शिक्षितों तक ही सीमा-बद्ध न रख, काँग्रेसको वास्तविक रूपसे जनता की काँग्रेस बना कर उसे 'राष्ट्रीय महासभा'का रूप प्रदान किया, उसी तरह उसकी एक 'राष्ट्रभाषा' नियत करनेमें भी प्रधान भाग लिया है। महात्माजी संसारके सबसे महापुरुष सिद्ध हुए, सत्याग्रह जैसे अद्वितीय अमोघ-अस्त्रका आविष्कार किया तथा सत्य और अहिंसाके पूज्य पुजारी प्रमाणित हुए सही; परन्तु उनकी इन सफलताओंका प्रधान कारण यही है कि, उन्होंने देशकी साधारण जनता और उसकी भाषा हिन्दी को कसकर अपनाया। और, यही कारण है कि, देशकी सब तरहसे गिरी हुई अवस्थाकी वर्तमान राजनीतिक परि-स्थितिमें, दक्षिण अफ्रीका जैसे एक छोटे देशका एक योद्धा, भारतवर्ष जैसे महान् देशके सर्वमान्य राजनीतिज्ञ महारथी लो० तिलकसे बाजी मार ले गया! आज देशकी राष्ट्रीयताके रूपमें काँग्रेसका जैसा प्रबल प्रभाव संसारपर है, काँग्रेसपर भी उससे कम प्रभाव राष्ट्रभाषा हिन्दीका नहीं है। भगवान् करें, पुरुष और प्रकृतिकी तरह भारतीय राष्ट्र और उसकी रानी राष्ट्रभाषा सदा चिरंजीवी रहें।

तेरे

तेरी दुनियामें तुझे ढूँढ़
हो गया व्यर्थ हैरान देख।
माया-छायामें लगी नींद
धुँधली जीवनकी हुई रेख॥
"ये जीव अंश तेरे प्रमाण"
गाते उपनिषद् पुराण वेद।
माया-बन्धन सन्ताप-ताप
तपते तेरे सम्मुख सखेद॥

नतशिर अपराधी खड़ा एक
वह बना एक जल्लाद नीच।
किसकी आज्ञा पाकर कठोर
मारा उसको तलवार खींच॥
रमता कण-कणमें तू सदैव
पाते न तुम्हारे तुम्हें खोज।
क्यों मूक भवनमें रहा बैठ
तेरे लाखों लुट रहे रोज॥

प० जगदीश झा 'विमल'

धनुर्वेद या शस्त्रास्त्र-कला

उपाध्याय महेन्द्रकुमार वेद-शिरोमणि

साधारण जनताका यह खयाल है कि, केवल बाँसके धनुष् तथा सरकण्डेसे निर्मित बाणके निर्माण एवं प्रयोगकी विधिको बतलानेवाले शास्त्रको ही धनुर्वेद कहते हैं। उनको धनुष् शब्द ही भ्रममें डाल देता है। परन्तु उनका विचार तथ्यतासे बहुत परे है। वस्तुतः धनुर्वेद-शास्त्र उस प्रत्येक शस्त्र और अस्त्रके निर्माण तथा प्रयोगकी विधिका बोधक है, जिसका परिचालन रणस्थलीमें किया जाता है। हमारे इस विचारको विश्वकोष परिपुष्ट करता है। उसमें "धनुर्वेद" शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की गयी है—'धनूंषि उपलक्षणेन धनुरादीन्यस्त्राणि विद्यन्ते ज्ञायन्त अनेनेति' अर्थात् धनुष्के उपलक्षण (व्याज) धनुष्, तोप, बन्दूक, भाला, तलवार और छुरी इत्यादिका प्रयोग तथा निर्माणकी विधि जिससे बोधित हो, उसे धनुर्वेद-शास्त्र कहते हैं। 'प्रस्थान-भेद'में भी इसी अभिमतका पोषण किया गया है। उसमें धनुर्वेदका विवेचन करते हुए लिखा है—'अथ धनुःशब्दो चतुर्विधायुधे वर्ण्यते। तच्चतुर्विधम्—मुक्तं, अमुक्तं, मुक्तामुक्तं, यन्त्रमुक्तं च। मुक्तं चक्रादि, अमुक्तं खड्गादि, मुक्तामुक्तं शक्त्यवान्तरभेदादि, यन्त्रमुक्तं शरादि'। अर्थात् धनुष् शब्दकी प्रवृत्ति निम्न वर्णित चारों प्रकारके शास्त्रास्त्रोंमें होती है। वे चार विभाग इस प्रकार हैं—मुक्त, अमुक्त, मुक्तामुक्त और यन्त्र-मुक्त। मुक्त चक्र इत्यादि, अमुक्त तलवार इत्यादि, मुक्तामुक्त शक्ति तथा इसी प्रकारके अन्य आयुध, जिन्हें फेंककर और धारण किये हुए दोनों प्रकारसे प्रयुक्त किया जाता है तथा यन्त्रमुक्त वे युद्धोपकरण कहे जाते हैं, जो धनुष् या मशीनोंसे छोड़े जाते हैं; जैसे बाण, गोली-गोले तथा विविध प्रकारके चक्र और छुरियाँ।

धनुष् उन आयुधों या यन्त्रोंको भी कह सकते हैं, जिनसे कोई युद्धोपकरण फेंका जासके। निरुक्तकार यास्क इसका निर्वचन यों करते हैं—"धनुर्धन्वतेर्गतिकर्मणो वधकर्मणो वा, धन्वन्त्यस्मादिषवः" अर्थात् गत्यर्थक 'धवि' धातुसे

कर्त्तामें तथा वधार्थक "धवि" धातुसे करणमें उस् प्रत्यय करनेसे यह शब्द सिद्ध होता है। 'धन्वन्ति गच्छन्ति अस्मादिषव इति धनुः', 'धन्वन्ति हन्यन्तेऽनेन इति धनुः' अर्थात् जिसके द्वारा बाण चलाये जाते हैं और जिससे शत्रुओंका वध किया जाता है, उसे धनुष् कहा जाता है। 'इषु' कहते हैं चलाये जाने तथा वध करनेवाले औजारको। इसकी भी सिद्धि धन्वर्थक धातुओंसे होती है। 'इषु ईशतेर्गतिकर्मणो वधकर्मणो वा'। उक्त निर्वचनोंसे यह मालूम होता है कि, 'धनुर्बाण' शब्द रूढ़ि नहीं हैं; किन्तु इनका प्रयोग उपचारसे 'तीर-कमान'में होता है। इस विचारपर वासिष्ठ-धनुर्वेदकार कहते हैं—

'नालीका लघवो बाणा नलयन्त्रेण चोदिताः'

अर्थात् गोलियाँ एक प्रकारके लघु बाण हैं, जो नलयन्त्र अर्थात् बन्दूकसे छोड़ी जाती हैं। इस कथनसे जब गोली और बाण अभिन्न वस्तु सिद्ध हुए, तब निस्सन्देह बन्दूक और धनुषको भी भिन्न न जानना चाहिये। उक्त व्यवस्थासे धनुर्वेदकारने—'धनुर्बाण या बन्दूक'के अर्थ विवादका अस्तित्व ही मिटा दिया। दोनों धनुर्वेदके अङ्ग हैं।

अथवा, धनुर्वेद शब्दका अर्थ इस प्रकार करना चाहिये—'शस्त्रास्त्रादि विद्याका शास्त्र, जिसमें धनुष् प्रधान है या आदिमें वर्णित है।'

धनुष् और बाणका मोटा रूप यों रख सकते हैं कि, जिस साधन या युद्ध-यन्त्रसे युद्धोपकरण छोड़ा जाय, वह धनुष् है। जो फेंका जाय, वह बाण शब्दसे कहा जा सकता है। इसका कारण है। संसारके सारे-के-सारे प्रक्षेप्ता यन्त्र धनुषके ही सिद्धान्त एवं मूलसे निर्मित प्रतीत होते हैं। संसारके आदिम पुरुष, चाहे वे आर्य हों या यूरोपियन, धनुर्बाणका ही प्रयोग किया करते थे। धनुर्बाणके ही रूपान्तरित, परिशोधित एवं परिवर्द्धित रूपमें आजकल बन्दूक, पिस्तौल और तोप इत्यादि दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

यहाँ 'प्रस्थान-भेद' और 'विश्वकोष'के अनुसार व्युत्पत्ति प्रदर्शित की गयी है; परन्तु वस्तुतः सेनाविज्ञान (Military Science)-सम्बन्धी समस्त विषयोंका समावेश धनुर्वेदमें होता है, जैसा कि, वासिष्ठ धनुर्वेदमें, पृष्ठ ६४ से पुस्तकान्ततक, भली प्रकार प्रदर्शित है। वहाँपर 'अथ व्यूहादिभिर्युद्धकथनम्' लिखकर विषयको प्रारम्भ करते हुए व्यूह-रचना, सेनापति, अश्व आदिकी शिक्षाका उत्तम प्रकारसे वर्णन है। शुक्रनीतिमें भी धनुर्वेदकी पाँच कलाओंमें कवायत, मल्ल-युद्ध और बाजेके संकेतसे सैन्य-संचालनको भी स्थान दिया गया है, जिससे उक्त अभिमतकी परिपुष्टि होती है।

प्राचीन भारतीय युद्धोंमें, बन्दूक, तोपके अतिरिक्त भारी-भारी मशीनोंका भी प्रयोग हुआ करता था। हमारे विचारसे तो प्राचीन भारतीय युद्धोंमें वर्त्तमान कालमें आविष्कृत समस्त युद्ध-यन्त्रोंका प्रयोग होता था। परन्तु लोककी अपेक्षा परलोक और अपवर्गकी ओर भारतीय अधिक दृष्टि रखते थे। इस जगत्‌की अपेक्षा उन्हें आध्यात्मिक जगत् अधिक प्रिय था। रक्तके स्थानपर परमानन्द-पीयूषका पान करना वे अधिक पसन्द करते थे। इसीलिये नरसंहारकारी महायन्त्रोंका आविष्कार करते हुए भी इधरसे वे उदासीन हो रहते थे।

प्राचीन समयमें बन्दूकके लिये भुशुण्डी, लघुनालिक या नालिक, बारूदके लिये अग्निचूर्ण या रंजक और तोपके लिये शतघ्नी या बृहन्नालिक शब्दोंका प्रयोग होता था। शुक्रनीतिमें इसका विस्तारसे वर्णन है—"नालीकं द्विविधं ज्ञेयं बृहत्क्षुद्र-विभेदतः।"

अर्थात् नालीक दो प्रकारका होता है—एक छोटा (बन्दूक), दूसरा बड़ा (तोप)। नैषधचरितके द्वितीय सर्गके २८ वें श्लोकमें दमयन्तीकी नाककी बन्दूकसे तुलना की गयी है।

"भारतचम्पू" (३।९४)के लेखकने वर्षा-काल-विषयक एक

श्लोक लिखते हुए उपमा बाँधी है, जिसमें योद्धा वर्षाकाल, अपने शत्रु ग्रीष्मपर घनघोर-गर्जन-युक्त कालाम्बुद-रूपी नालिकास्त्रसे वर्षा-बिन्दुरूपी पत्थरसे क्षणमात्र चमकती हुई विद्युद्रूपी बत्तीसे छलगा कर प्रहार करता है।

वासिष्ठ धनुर्वेदमें लिखा है कि,

"नालीक छोटे बाण होते हैं, जो कि, बन्दूकसे छोड़े जाते हैं; बहुत दूर और ऊँचा फेंकने और किलेके युद्धमें काम आते हैं। सिंहासनकी रक्षाके लिये किलेपर तोपें चढ़ा दे तथा पर्याप्त मात्रामें बारूद भी एकत्र रखे।"

चाणक्यके शिष्य कामन्दकने भी बन्दूकका वर्णन लिखा है—"रक्षक लोग भोगमें लिप्त राजाको बन्दूक और तोप इत्यादिका घनघोर गर्जन कराते हुए चेत कराते रहें, जिससे राजा अपने कर्त्तव्यको विस्मृत न कर दे और राजकार्यमें दत्तावधान रहे।"

१२ वीं सदीकी प्रसिद्ध पुस्तक "पृथ्वीराज-रासो' में भी तोपका वर्णन समुपलब्ध होता है।

"रामचन्द्र"के उत्तर मदुरा जिलेमें तिरुपल्लनीके मन्दिरमें पाषाण–निर्मित मण्डपके बाह्य दृश्यमें छोटी-छोटी बन्दूकें लिये कतिपय सिपाहियोंकी तसवीरें खींची हुई हैं।

कुम्भकोण-प्रदेशमें शार्ङ्गपाणिका एक मन्दिर है। यह बहुत ऊँचा है। इसमें ११ मंजिलें हैं। सामनेके दरवाजेकी बाईं ओर पाँचवीं मञ्जिलपर एक नृपालका चित्र चित्रित है और उसके हाथमें पिस्तौलके समान एक हथियार है।

काञ्जीवरम्में एक प्रसिद्ध मण्डप है। इसके अन्य नाम शतमण्डप या ज्युतिकाल मण्डप भी हैं। मण्डपको कोटि-कम्पादान ताताचार्य नामक सेठने निर्मित कराया था। इस मण्डपके पूर्व और पश्चिममें बारह तथा उत्तर और दक्षिणमें आठ खम्भे हैं। उत्तरके चार खम्भोंमें परस्पर दो सिपाहियोंका युद्ध प्रदर्शित किया गया गया है। एक अश्वारोही और दूसरा पदाति अपनी बन्दूकका निशाना साध रहा है। इस मण्डपका निर्माण-काल १२६४ ई० माना जाता है।

प्रो० विल्सन कहते हैं कि, "गोलोंका आविष्कार सर्वप्रथम भारतवर्षमें ही हुआ था। यूरोपवासियोंके पहले-पहल सम्पर्क होनेके बहुत पहलेसे ही देशी सेनाओंमें उनका प्रयोग होता था।"

भारत सरकारके (१८४९ ई०) सेक्रटरी मिस्टर ईलियट कहते हैं कि, "यह आश्चर्यकी बात है कि, आज गोलोंको यूरोपमें लोग नवीन आविष्कार समझते हैं।"

महाभारत और वाल्मीकीय रामायणकी गवेषणासे यह भली प्रकार विदित हो जाता है कि, उस समय तोप और बन्दूक इत्यादि आग्नेयास्त्रोंका भली प्रकार प्रचार था। महाभारत उद्योगपर्वमें आया है कि, कर्णी (बाण-विशेष), नाराच (लौहमय शर) और गोलियाँ तो शरीरसे निकाली जा सकती हैं; परन्तु कटु-वाणी-रूप आयुध नहीं निकला जा सकता; क्योंकि वह तो हृदयमें धस जाता है।

भारतवर्षमें बन्दूक और तोप इत्यादिसे युद्ध करना मायायुद्ध कहलाता था, जो कि धर्म-युद्धमें निषिद्ध था। धर्म-युद्धमें नालीक, कर्णी और विषमें बुझे बाणोंका प्रयोग नहीं किया जाता था।

वाल्मीकीय रामायण (अयोध्याकाण्ड)में नगरीका वर्णन करते हुए लिखा है—

"उच्चाट्टालिकां ध्वजवतीं शतघ्नीशतसङ्कुलाम्।" नगरी बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओंवाली, पताकाओंसे युक्त और उसकी चहारदीवारीपर सैकड़ों तोपें चढ़ी हुई थीं। युद्धकाण्ड (८७)में लिखा है कि, हनूमानपर राक्षस लोगोंने तोप, गदा तथा भाले इत्यादि लेकर आक्रमण किया था—

"परिघैश्च गदाभिश्च कुन्तैश्च शुभदर्शनैः
शतश्च शतघ्नीभिरायसैरपि मुद्गरैः।"

अर्थात् परिघ, गदाएँ, भाले और सैकड़ो तोपें लेकर राक्षसोंने हनूमान्‌पर हमला किया। लंकाके किलेपर भी तोपें रखी हुई थीं, यह सुन्दरकाण्डसे भली प्रकार सूचित होता है। हम लिख आये हैं कि, रामायणमें बन्दूकोंका भी प्रयोग होता था। मेघनाद तथा लक्ष्मणके युद्धमें बन्दूकोंका प्रयोग हुआ था, यह निम्न लिखित श्लोकसे स्पष्टतया प्रतीत होता है—

"भुशुण्डयश्च शूलानि गदाः खड्गाः परश्वधाः।

तद् दृष्ट्वा लक्ष्मणः संख्ये घोरमस्त्रं सुदारुणम्॥"

(वा० युद्ध० सर्ग ९०, श्लो० ५९)

शूल, बन्दूक, गदा, तलवार, फरसे इत्यादिसे आक्रमण करते देखकर लक्ष्मणने भी भयंकर हथियार धारण किया; और,

"स तु नालीकनाराचैर्गदाभिर्मुसलैरपि।

रक्षोभिः संवृतः संख्ये वानरान् विचकर्ष ह॥"

अर्थात्—बन्दूक, लौहमय वाण, मुसल धारण किये हुए राक्षसोंसे युक्त उसने बानरोंको सन्तप्त कर दिया।

अथर्ववेद (काण्ड १ सूक्त १६) के भी दो-एक प्रमाण देखिये—

'शीशेकी गोलियोंसे मारनेका उपदेश वरुण, अग्नि और इन्द्रने इसलिये किया कि, वह शत्रुओंको मारनेवाला है। यदि शत्रु हमारी गौ, घोड़े और परिजनों या आश्रितोंका हनन करता है, तो हम उसे शीशेकी गोलियोंसे मार देंगे, जिससे आगे हमारे पुत्रोंको न मार सके।' अथर्वके एक अन्य स्थलपर भी नालीकका नाम आता है। शुक्रनीतिमें लिखा है—

'बन्दूक दो प्रकारकी होती है, लघुनालिक और बृहन्नालिक। लघुनालिकका छिद्र ऊपरको तिरछा हो जाता है यानी अन्तर कम होता जाता है, सर्वत्र एक समान नहीं होता है—बेंटपर चौड़ा और आगे क्रमशः पतला होता जाता है। उसका नाल पाँच बालिश्त लम्बा होना चाहिये। अग्रभागपर तिल-बिन्दु (मक्खी) बनी हो, जिससे लक्ष्य ठीक बाँधा जा सके। इसमें पीसी हुई बारूद भरनी चाहिये, घोड़ेको दबाकर चलाना चाहिये और इत्था मजबूत काष्ठका होना चाहिये। नाल भीतरसे एक अंगुल पोली तथा शलाकासे युक्त हो। शीशे तथा अन्य धातुओंकी गोलियाँ भी बनायी जा सकती हैं। तोपका नल जितना ही अधिक पक्का, मोटा और लम्बा होगा, तोप उतनी ही अधिक चोट करेगी। तोपके आधारमें कील लगी हो, जिससे अभीष्ट लक्ष्यपर किया जा सके। यह गाड़ीपर रखकर अन्य स्थानोंपर भी ले जायी जा सकती है। इसका गोला लोहे तथा रुचिधातुसार अन्य धातुओंका भी हो सकता है। इसके पेटमें बारूदको रखकर गजसे ठोकते हैं—फिर गोला और कानमें बारूदको रखकर अग्नि-संयोग करते हैं। गोला ठोस हो, यदि पोला हो, तो उसमें छोटी-छोटी गोलियाँ अन्तर्निहित की जा सकती हैं। बारूद बनानेके लिये शोरा ५ भाग, गन्धक और कोयला एक-एक भाग हो। स्नुही या केलेके, उत्तमतासे पिसे, कोयले प्रयोगमें लाये जा सकते हैं। वस्तुओंको भली प्रकार निर्माण कर पश्चात् अर्कका दूध और लहसुनके पानीका पुट देवे। फिर धूपमें सुखाकर पीसकर काममें लावे। कोयले इस विधिसे बनावे कि, लकड़ी जलाते समय धूम्र अन्दर रह सके। तोपकी बारूदके लिये शोरा ६ भाग और शेष वस्तुएँ एक-एक भाग ही पड़ती हैं। एक दूसरी प्रकारकी बारूदमें शोरा चार भाग ही पड़ता है।'

इसके अतिरिक्त कौटिल्य-अर्थ-शास्त्रमें अग्निधारण और अग्नियोग बारूदोंका उल्लेख है। अग्निधारण उस बारूदको कहते हैं, जो चोट करनेसे ही फूट जाती है। अग्नि दिखानेकी आवश्यकता नहीं होती। इसे गन्धक, पोटास इत्यादि विस्फोटक-पदार्थ-संयुक्त अग्निचूर्ण कह सकते हैं। बाँब (Bomb) की बारूद भी स्वयं अग्नि उत्पन्न कर लेती है। अग्नियोग उस बारूदको कहेंगे, जिसमें अग्नि

छुलानेसे ही विस्फोट होता हो। यह बन्दूकों और तोपोंमें काम आती है।

अशोकके शिलालेखोंमें अग्निस्कन्ध या अग्निस्कन्ध शब्द तमाशे (आतिशबाजी)के लिये आया है, जिससे बारूदकी प्राचीनता सिद्ध होती है। और इसलिये। लिखा है, यदि दुर्ग शत्रुओंसे घिर जाय, तो गृद्ध, कौआ, बगला और कबूतर आदि किलेकी दीवारोंपर घोंसला बनाकर रहनेवाले पक्षियोंको पकड़कर, उनकी पूछोंमें लहकनेवाले चूर्ण बाँधकर, उन्हें छोड़ दे, ताकि वे उड़ते चले जायँ और किलेमें आग लग जाय।

वाल्मीकि-रामयणमें लंकापुरीका वर्णन करते हुए अग्नि-चूर्ण (बारूद)का प्रयोग किया गया है—

"अग्निचूर्णमिवाविद्धं भास्वराम्बु महोरगम्। "

(युद्ध०, सर्ग ५, श्लो० ११४)

ऋषियों और स्मृतिकारोंने 'महायन्त्राणि वर्जयेत्' कहकर युद्धमें संहारकारी मशीनोंका प्रयोग बन्द कर दिया था; तथापि कराल स्थितिमें महायन्त्रोंका प्रयोग योगिराज श्री-कृष्णतकने कर दिखाया था। कृष्ण और शाल्वके युद्धमें इसका प्रमाण मिलता है।

कौटिल्य-अर्थशास्त्रका उदाहरण देते हुए "मौर्य-साम्राज्य" नामक प्रसिद्ध पुस्तकमें प्रो० सत्यकेतुजी विद्यालंकार उस समयकी कतिपय विकराल-बदना मशीनोंका वर्णन लिखते हैं—"स्थित यन्त्रों या एक स्थानपर स्थिर करके प्रयुक्त किये जानेवाले हथियारोंके ये भेद हैं—

(१) "सर्वतोभद्र—पहियोंसे युक्त एक गाड़ी, जिसे बड़ी तेजीके साथ प्रयुक्त किया जा सके। जब इसे घुमाया जाता है, तब सब दिशाओंमें पत्थरोंकी वर्षा होती है। कुछ लोग इसे भूमरिकयन्त्र भी कहते हैं।

(२) "जामदग्न्य—तीर छोड़नेकी एक बड़ी मशीन (महाशर-यन्त्र)।

(३) "पर्जन्यक—आग बुझानेके लिये यन्त्र। कुछ लोगोंकी सम्मतिमें, पर्जन्यक ५० हाथ लम्बा एक यन्त्र-विशेष होता था, जिसे कि दुर्गके बाहर रखते थे और शत्रुके समीप पहुँचनेपर इसे उनपर छोड़ा जाता था।"

नीति-प्रकाशिका (आध्याय ५) में गदाका इस तरह वर्णन लिखा है—"गदा अति कठोर लोहेसे निर्मित होती है। इसके मोटे सिरपर सौ अरे खूटोंकी नाईं छेद होते हैं। यह बड़ी भयानक, चार हाथ ऊँची, रथके अक्षि मात्र शरीर वाली (अर्थात् जिस प्रकार रथके नीचेके अर्द्ध भागमें दो पहिये लगे रहते हैं, उसी प्रकार इसमें भी दो पहिये लगे रहते हैं, जिनसे यह यथाभिलषित स्थानपर सुगम-तासे ले जायी जा सकती है), मस्तकपर मुकुटसे सुशोभित, स्वर्णके सदृश चमचमाती हुई, श्रृंखलाओंसे बँधी हुई (जिससे छोड़ते समय इधर-उधर न हिले), बड़े दिग्गज हाथियों और पर्वतोंतकको विदीर्ण कर देनेवाली होती है। इसके मण्डल, गतियाँ और प्रगतियाँ विचित्र होती हैं। इससे छोड़े जानेवाले छुरी इत्यादि अस्त्र, इससे सम्बन्धित यन्त्र और स्थान भी नाना प्रकारके होते हैं। परिमोक्ष, प्रहरण, वर्जन, परिधावन, अभिद्रावण, आक्षेप, सविग्रह, अवस्थान, परावृत्त, सन्निवृत्त, अवप्लुत, उपप्लुत, दक्षिण-मण्डल, स्वयंमण्डल, आविद्ध, प्रविद्ध, स्फोटन, ज्वालन, उपन्यस्त और अपन्यस्त, ये २० गतियाँ और प्रगतियाँ हैं।"

उक्त वर्णनसे गदाकी विकरालता स्पष्ट हो जाती है। इसे सौ मुखोंवाली तोप कहें, तो कदाचित् अत्युक्ति न होगी। इससे यह भी विदित होता है कि, गदाधारी भीमसेन तथा गदाधर विष्णुके हाथमें गदाका प्रतिनिधि तुच्छ मूसल पकड़ा देना कहाँतक संगत है। पाठक इसकी ज्वालन (जलाना) और स्फोटन (फोड़ना) नामक गतियोंपर ध्यान दें। वर्णित गतियोंमें इसके समस्त कार्य संक्षेपसे वर्णित हैं।

महाभारत, वनपर्व (अ० ४२, श्लो० ५-६)में लिखा है—"वहाँ अशनि भी आये, जिनमें चक्र (पहिये) लगे हुए थे और मन-मन भरके गोले छूटते थे। वायुमें भयंकर पटाखा होता तथा धड़ाकेके साथ-ही-साथ बड़ा धक्का लगता था। उसमेंसे जलते मुँहवाले नाग तथा श्वेत पत्थर भी छूटते थे।"

यहाँ कतिपय उन शस्त्रास्त्रोंका वर्णन भी पढ़ लीजिये, जिनका साहित्यक क्षेत्रमें नाम तो लिया जाता है; परन्तु बहुतोंको स्वरूपका ज्ञान नहीं है —

(१) प्रास—सात हाथ ऊँचा, बाँससे निर्मित, लोहेके सिर और तीक्ष्ण पैरोंवाला और रेशमी फूलोंके गुच्छोंसे सुशोभित होता है। आकर्ष, विकर्ष, धूनन और वेधन, ये चार इसकी गतियाँ होती हैं।

(२) तोमर—काठका बना हुआ, सिर लोहेका, गलेमें घण्टियोंका गुच्छा, तीन हाथ ऊँचा और लाल रंगका इसके नीचे पकड़नेका मुट्ठा भी लगा होता है।

(३) मुष्ण—टेढ़ी गर्दन, बड़ा सिर, ५० अंगुल ऊँचा, मुट्ठीके बराबर घेरेवाला, लोहेका पिण्ड। इसकी उन्नामन, प्रपात, स्फोटन, दारण, ये चार गतियाँ होती हैं।

(४) शक्ति—दो हाथ ऊँची, वक्र चालवाली, सीधी, तीक्ष्णधार, भयानक दाँतोंवाली, घण्टेके सदृश भयंकर नादकारी, बृहन्मुष्टिकासे जड़ी, दूरगामी, पहाड़ोंको भी तोड़ डालनेवाली "शक्ति" होती है। दोनों हाथोंसे चलायी जाती है। इसकी तोलन, भ्रामण, वल्गन, नामन, मोचन और भेदन, ये छः गतियाँ हैं।

(५) भिन्दिपाल—भिन्दिपालका टेढ़ा शरीर, झुका सिरा, बड़ा सिर, एक हाथ ऊँचा और हाथ भर परिधिका होता है। इसको बायाँ पैर आगे रखकर, तीन बार घुमाकर, फेंका जाता है। इसको पदातिगण अपने समीप रखते हैं।

(६) लगुड़—पतले पैर, लम्बा मध्यदण्ड और सिर मोटा होता है। इसके अग्रभागमें लोहा बँधा होता है। देह छोटी तथा मोटी होती है। सारे शरीरपर दाने होते हैं। दृढ़ और दो हाथ ऊँचा होता है। उत्तान, पातन, पेषण, और पोषण, ये चार गतियाँ होती हैं।

(७) गोशीर्ष—गौके सिरके सदृश, दो हाथ पसारे हुए, जिसके नीचे फेंकनेके लिये दारुयन्त्र लगा हो, ऊपर एक फला लगा हो, नीलवर्णका, तीन कोनोंका, उत्तम मूँठसे युक्त, १६ अंगुल परिमाणवाला, आगेसे तेज और मध्यमें चौड़ा होता है। इसकी मुष्टिग्रह, परिक्षेप, परिधि और परिकुण्डन, ये चार गतियाँ हैं।

(८) पिनाक—इसके तीन सिरे, श्वेताग्र, विकराल लोचन, काँसका शरीर, सिर लौह-निर्मित, ४ हाथ लम्बा, इसपर रीछके बालोंका गुच्छा और पीतलके छल्ले लटकते रहते हैं। धूनन और त्रोटन, दो ही गतियाँ पिनाककी हैं।

(९) पट्टिश—एक मनुष्य-प्रमाण लम्बा, दुधारा, शृंग तीन, हस्तरक्षक मूँठसे युक्त, खड्गका सहोदर होता है।

(१०) परिघ—गोलाकार, ताड़वृक्षके सदृश लम्बायमान, दृढ़ और उत्तम काष्ठसे निर्मित। सारी सेना इसे उठाकर मारती है।

(११) मुद्गर—सूक्ष्म पैरवाला, विना सिरका, तीन हाथ लम्बा, शङ्खके समान वर्ण, चौड़े कन्धे और आठ धड़ी भारी होता है। इसकी मूँठ नीले रंगकी, गोल और हाथ भर मोटी होती है। इसको घुमाकर मारा जाता है। इसकी भ्रामण और पातन, दो ही गतियाँ हैं।

(१२) मुसल—आँख, हाथ, पैर और सिरसे विहीन होता है। दोनों सिरोंपर खूब गढ़ा होता है। पातन और प्रोथन, ये दो गतियाँ हैं।

(१३) परशु—सूक्ष्म मूँठ, विशाल और आगेको बढ़ा हुआ मुख, अर्द्धचन्द्राकार अग्रभाग, रंग मलिन, मध्य

चमकता हुआ और बाहुमात्र लम्बा परशु होता है। इसकी पातन और छेदन दो गतियाँ हैं।

(१४) कुन्त—इसका समग्र शरीर लौह-निर्मित, तीक्ष्ण शृङ्ग, छ धार, पाँच हाथ लम्बा, पैर टेढ़ा होता है। उड्डीन, अवडीन, भूमिलोनक, तिर्यग् लीन और निखात, ये कुन्तकी गतियाँ हैं।

इतना संक्षेपसे लिखनेपर भी लेख बढ़ गया। धनुर्वेद अभी कुछ भी नहीं लिखा गया—उसकी निर्माण-विधि, उसके पदार्थ, प्रत्यञ्चा, परिचालन-विधि, स्थान, लक्ष्य-साधन इत्यादिकी भी चर्चा नहीं की गयी। जो सज्जन इन विषयों तथा धनुर्वेदके अन्यान्य विषयोंको देखना चाहें, वे हमारी लिखी "पौरस्त्य धनुर्वेद" नामक पुस्तकमें देख लें।

जिज्ञासा

कौन पथ जाता तेरी ओर ?

[१]

अरुण किरण आती जिस पथसे,
उतर रही ऊषा जिस रथसे,
चलूँ उधर ही क्या करुणानिधि ! चढ़ मृदु किरण हिँडोर
कौन पथ जाता तेरी ओर ?

[२]

रत्नोंसे भूषित नभ अम्बर,
बुनता विधु किरणोंकी झालर,
अरे बढ़ा दे छू लूँ मैं भी तेरे पटका छोर।
कौन पथ जाता तेरी ओर ?

[३]

हँसते कुसुम, चहकते द्विजदल,
ज्योतिमयी सरिताका कल-कल,
खोज रहा किस उद्गमसे उठती यह पुलक हिलोर।
कौन पथ जाता तेरी ओर ?

बाबू रामधारी सिंह "दिनकर", बी० ए० (आनर्स)

इटलीकी स्वतंत्रताका जन्मदाता

श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद मिश्र बी० ए०, बी० एल०

जोजेफ मेजिनीका जन्म सन् १८०५ ई० की २० वीं जूनको जेनोवा नगरके Via-Lomellina नामक स्थानमें हुआ था। उसका पिता चिकित्सकका काम करता था। बालक मेजिनीको प्यारसे उसके माता-पिता 'पिपो' कहा करते थे। लड़कपनमें वह सुकुमार, भाव-ग्राही, तीक्ष्ण-बुद्धि एवं जिज्ञासु-प्रवृत्तिका बालक था। पूर्ण स्वस्थ नहीं होनेपर भी उसका मुखमण्डल आकर्षक था। उसके ललाट प्रशस्त एवं विस्तृत थे, आँखें काली-चमकीली थीं और शिरके ऊपर खूब काले और घने बाल थे। उसकी मुद्रा गम्भीर एवं गौरव-से पूर्ण होनेपर भी बहुधा मधुर-मन्द-स्मित हास्योंसे खिल उठती थी। यद्यपि मेजिनीके पिता उसकी नाजुक तन्दुरुस्ती-पर सशंकित रहा करते थे; तथापि वह बड़ा ही परिश्रमी और कष्टसहिष्णु था। प्रारम्भ-कालमें ही उसके भविष्य जीवनकी महत्ताके लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे थे।

मेजिनीने अपने जीवनके सद्गुण और विशेषतः प्रजातंत्र-सम्बन्धी सिद्धान्त बहुत-कुछ विरासतके रूपमें अपने माता-पितासे ग्रहण किये थे, जिनका बर्ताव उच्च-नीच सभीके साथ समान हुआ करता था। उसके पिता एक चिकित्सकके रूपमें अपना अधिकांश समय दीन-दुखियोंकी सेवामें लगाया करते थे। उसका हृदय बड़ा ही कोमल था; यद्यपि बाहरसे कभी-कभी अहंकारी जैसा मालूम पड़ता था। उसकी माता एक कर्तव्य-परायण गृहिणीके रूपमें अपने घरका काम-काज, निपुणताके साथ, सम्हाला करती थी और साथ ही अपने बच्चोंपर पूरी निगरानी रखा करती थी। इटलीकी अन्य माताओंके समान उसमें नैसर्गिक दुर्बलताएँ बहुत कम पायी जाती थीं। उस समय कई शक्तिशाली आन्दोलनोंके प्रभावसे सारे यूरोपमें उथल-पुथल मची हुई थी और मेजि-नीकी माँ अपने घरके अन्दर उस समयके शासन एवं शासकके सम्बन्धमें आलोचनाएँ किया करती थी। मेजिनीको किशोरावस्थामें ही नेपोलियन द्वारा प्रवर्तित

शासन-प्रणालीका पतन और जेनोवाका Piedmont के विदेशी शासनाधीन हो जानेकी चर्चा चारो ओर छिड़ गयी थी और उसके अपने घरमें अक्सर इस विषयकी बातें हुआ करती थीं। इस प्रकार माता-पिताके सद्गुण एवं दृष्टान्त तथा घरके अन्दर जनसत्ता-विषयक चर्चाओंके फलस्वरूप उसके नवयुवक हृदयमें प्रजासत्तात्मक भावनाओंके पुष्ट होनेमें बहुत-कुछ सहायता मिली। स्वयं मेजिनीने ऐसे चार प्रभावशाली कारणोंका वर्णन किया है, जिनसे उसकी बाल-प्रकृति गण-तंत्रकी ओर प्रवृत्त हो गयी। वे कारण थे—उसके माता-पिताके सभी श्रेणीके लोगोंके साथ एक समान शिष्ट व्यवहार, उसके घरके अन्दर फरासीसी राज्यक्रान्ति-सम्बन्धी चर्चाओंको स्मृति, एक पुराने "Girondist" समाचार पत्रकी प्रतियाँ, जिन्हें उसके पिताने पुलिसके भयसे अपने वैद्यक ग्रन्थोंके अन्दर छिपाकर रखा था और सबसे बढ़कर चौथा कारण था उन प्राचीन साहित्य Classics ग्रन्थोंका पाठ, जिन्हें उसने अपने लाटिन भाषाके शिक्षकसे सीखा था। इस प्रकारकी परिस्थितियोंके बीच रहकर तथा विशेषतः इस प्रकारकी स्वाभाविक प्रवृत्तिके कारण मेजिनीके अधिकांश विचार राजनीति एवं तत्संबन्धी विषयोंकी ओर ही प्रधावित हुआ करते थे। इसके सिवा एक दिनकी घटनाने तो उसकी मनोवृत्तिको एकबारगी ही पलट दिया। Carbonari राज्यक्रान्तिके विफल हो जानेपर Pied mootese दलके लोग पराजित एवं परित्यक्त होकर इधर-उधर भाग गये थे। उनमें जो लोग भागकर जेनोवा आये हुए थे, उनके पास एक भी पैसा नहीं था और वे भूखों मर रहे थे। उनकी सहायताके लिये जिस समय शहरकी गलियोंमें चन्दा उगाहा जा रहा था, उस समय मेजिनीने अपनी माँके साथ घूमते हुए उनके हताश मुखमण्डलको बड़े ध्यानसे देखा था। उनकी यह स्मृति उसके मानसपटलपर चिरकालके लिये अंकित हो गयी और वीर पुरुषोंके प्रति अपने बालोचित आवेशके कारण उसका अनुसरण करने तथा उनके जैसा ही बननेकी महत्त्वाकांक्षा उसके हृदयमें उद्दीप्त हो उठी। उसी समयसे वह अन्य सभी विषयोंके प्रति उदासीन रहने लगा, सिवा इसके कि, स्वाधीनताकामी पराजित एवं अत्याचार-पीड़ित जातियोंके सम्बन्धकी कथाओंको सुनना और उनका अध्ययन करना। इस समयसे ही वह काले रंगकी पोशाक धारण करने लगा और उसकी यह आदत उसके जीवनके अन्तकालतक कायम रही। शायद उसका यह खयाल रहा हो कि, स्वतंत्रता प्राप्त किये बिना किसीको शोकपरिच्छद बदलनेका अधिकार नहीं होता।

अपने विद्यार्थि-जीवनके प्रारम्भमें मेजिनीने पहले-पहल चिकित्सा-शास्त्रका अध्ययन शुरू किया। किन्तु जिस दिन वह सर्वप्रथम चीर-फाड़के कमरेमें दाखिल हुआ, उसी दिन वहाँका दृश्य देखकर उसे मूर्च्छा आ गयी। इसके बाद वह कानून पढ़नेके लिये भेज दिया गया। उसने विश्वविद्यालयमें प्रवेश किया तो सही; किन्तु लगनसे उसने कानूनकी अपेक्षा काव्य एवं इतिहासके अध्ययनपर ही विशेष रूपसे ध्यान दिया। इसमें सन्देह नहीं कि, मेजिनी एक प्रतिभाशाली छात्र था और उसके शिक्षक उसके अध्ययनसे सर्वथा संतुष्ट रहा करते थे। किन्तु हालमें जो राज्य-क्रान्तियाँ संघटित हुई थीं, जिनसे सशंकित एवं सन्त्रस्त होकर इटलीकी सरकारको यह भय हो गया था कि, कुछ सौ नौजवान बागी बनकर राज्यके पायेको हिला न डालें; इसलिये सरकारकी ओरसे कुछ ऐसे नियम बना दिये गये थे, जिनका राजभक्तिके चिह्नस्वरूप छात्रोंके लिये पालन करना अनिवार्य था। एक पक्का ईसाई होनेपर भी मेजिनीने धार्मिक रीति-रस्मोंके अवसरपर अनिवार्य रूपसे उपस्थित होना अस्वीकार कर दिया। इसका कारण यह नहीं था कि, उसे उन रीति-रस्मोंपर विश्वास नहीं था, बल्कि उनके अनिवार्य होनेके कारण वह

उनके प्रति विद्रोही बन गया था। उसके बराबर इनकार करनेपर अन्ततः लाचार होकर विश्वविद्यालयके अधिकारियोंको उसके इस व्यवहारके प्रति आँख मूँद लेनी पड़ी। इनके अलावा कुछ और भी नियम ऐसे थे, जिन्हें मेजिनी जैसा स्वाभिमानी युवक कदापि सहन नहीं कर सकता था।

इस प्रकारके नियमोंमें एक नियम यह था कि, जिन छात्रोंके माता-पिताके पास भूसम्पत्ति नहीं होती थी, उन्हें कठोर परीक्षामें उत्तीर्ण होना पड़ता था। कोई विद्यार्थी मूँछ नहीं रख सकता था, चूंकि मूँछें रखना क्रान्तिकारीका एक चिह्न-विशेष समझा जाता था। इस प्रकारके अनुचित नियमोंके विरुद्ध मेजिनीने विद्रोहका काण्ड उठाया और वह बहुत शीघ्र विश्वविद्यालयके नौजवान और जोशीले छात्रोंका स्नेह-पात्र नेता बन गया।

विश्वविद्यालयमें शिक्षा प्राप्त करते समय और उसके बादमें मेजिनीका झुकाव बहुत कुछ साहित्यिक पठन-पाठन और लेखादिकी ओर रहा। जेनोवामें उसने साहित्य एवं राजनीति-के अध्ययनके लिये एक समिति स्थापित की और वर्जित पुस्तकें छिपाकर मँगाने लगा। उस समयके समसामयिक यूरोपीय साहित्यके जितने उत्कृष्ट ग्रन्थ थे, उनमें प्रायः आधी पुस्तकें वर्जित थीं और मेजिनी तथा उसके मित्रोंने उन्हीं वर्जित पुस्तकोंको प्राप्त करने तथा उन्हें आद्योपान्त आकलन करनेमें अपनी सारी शक्तियाँ लगा दीं। बाइबिल और दान्तेके काव्य मेजिनीको बहुत प्रिय थे। विशेषतः दान्तेके काव्यको पढ़कर ही उसके मनकी उच्च भावनाएँ अनुप्राणित हुई थीं। इस शिक्षाके प्रभावसे ही उसने मानवजाति एवं प्रकृति-नियमकी एकता, ज्वलन्त देश-प्रेम तथा इटली और रोमके एक बार फिरसे जगद्गुरु बननेका विश्वास अपने हृदयमें पोषित कर रखा था। यद्यपि उस समय दलबन्दी और अनैक्यके कारण इटलीकी राष्ट्रीयता छिन्न-भिन्न हो रही थी; तथापि उसे इटलीकी एकतापर दृढ़ विश्वास था और इस दृढ़ विश्वासकी नैतिक शक्तिके सहारे वह आजीवन अपने आदर्शके लिये लड़ता रहा। इसी समय अंग्रेजी कवि बायरनकी कीर्त्तिध्वजा चारों ओर उड्डीयमान हो रही थी और मेजिनी भी उसे तत्कालीन यूरोपीय कवियोंमें सर्वश्रेष्ठ समझता था। बायरनके सिवा गेटे, शेक्सपियर और शेलीका भी वह कम प्रशंसक नहीं था। स्वदेशके कवियोंमें Alfieri और Foseco उसके विशेष प्रियपात्र थे। पोलैण्डके राष्ट्रीय कवि Mic Kiewicz को वह अपने समयका सबसे शक्तिशाली लेखक समझता था। काण्ट, हेगिल और फिशेके दार्शनिक ग्रन्थोंका भी उसने अध्ययन किया था। हर्डर (Herder) नामक जर्मन दार्श-निकके विचारोंका उसके ऊपर विशेष प्रभाव पड़ा था। इन्हीं विचारोंसे प्रभावित होकर आत्माकी अमरता, मानवजातिकी उन्नति तथा परमेश्वरके कार्यमें मनुष्यके सहयोगके सिद्धान्त-पर उसका विश्वास दृढ़ हो गया था। राजनीतिक लेखकोंमें Macckiavelli (मेकियावेली) का उसपर विशेष प्रभाव पड़ा। Voltaire और Rousseau के सम्बन्धमें भी वह बहुत कुछ जानकारी रखता था।

मेजिनी केवल साहित्य, दर्शन एवं विज्ञानका एक अध्ययनशील विद्यार्थी ही नहीं था; बल्कि वह एक सुलेखक भी था। बीस वर्षकी अवस्थामें ही उसने दान्तेकी देशभक्ति-पर एक निबन्ध लिखा था, जिससे उसके गम्भीर विषय-ज्ञानका भली भाँति परिचय मिलता है। इसके बाद उसने 'Indicators Genovese' नामक एक वाणिज्यसम्बन्धी समाचारपत्रमें एक लेखमाला लिखनी आरम्भ कर दी। पीछे चलकर यह पत्र बिलकुल साहित्यिक बन गया और मेजिनीके लिखनेके एक वर्ष बाद ही बन्द कर दिया गया। इस समाचारपत्रके बन्द किये जानेके बाद शीघ्र ही एक दूसरा समाचारपत्र पहले ढङ्गपर ही निकाला गया और मेजिनीने उसमें भी अपना लेख भेजना शुरू कर दिया।

इन्हीं लेखोंमें उसका एक सुप्रसिद्ध लेख "Tendencies of European Literature" ('यूरोपीय साहित्यका झुकाव') शीर्षक प्रकाशित हुआ था। शीघ्र ही इस पत्रपर भी अधिकारियोंकी कुदृष्टि पड़े बिना न रही और एक वर्षके बाद ही यह पत्र भी दबा दिया गया। इसके बाद मेजिनी और उस पत्रके प्रकाशक Guerazzi एक दूसरेसे पृथक् हो गये और फिर वे उन्नीस वर्षके बाद एक दूसरेसे मिले, जब कि, ये दोनों काफी प्रसिद्ध हो चुके थे।

एक अध्ययनशील विद्यार्थीके रूपमें अथवा लेखकके रूपमें सभी अवस्थाओंमें मेजिनी राजनीति और राजनीतिसम्बन्धी विषयोंमें विशेष रूपसे दिलचस्पी लिया करता था। उसके खयालात रोज-ब-रोज इन्हीं बातोंमें गर्क रहने लगे। उस समय जेनोवापर Piedmont वंशका आधिपत्य था और वहाँके रईस तथा श्रमजीवी उस वंशके शासनसे सर्वथा असंतुष्ट थे।

शासकोंके विरुद्ध असंतोषका यह रूप यद्यपि व्यापक था; तथापि किसीकी यह हिम्मत नहीं पड़ती थी कि, उस असंतोषको दूर करनेके लिये कोई क्रियात्मक उपाय काममें लावे। परन्तु उस समय भी एक ऐसी पार्टी छिपी-छिपी काम कर रही थी, जिसके सदस्य अत्याचार, पराजय एवं अपमान बराबर सहन करते हुए भी अपना काम जारी रखे हुए थे। इस दलके लोग Carbonari नामसे परिचित थे और शासनसे असन्तुष्ट जेनोवा-वासियोंके एकमात्र प्रतिनिधि एवं पक्ष-समर्थक ये ही लोग थे। मेजिनी जिस समय विश्वविद्यालयका विद्यार्थी था, उस समय ही वह इस दलमें सम्मिलित हो गया था। वह इस दलमें इसलिये शामिल नहीं हुआ था कि, उसे उसके सदस्योंपर दृढ़ विश्वास था, बल्कि इसलिये कि, उस समय देशमें एकमात्र विप्लवकारिणी संस्था वही थी। यद्यपि मेजिनी उस दलके सदस्योंकी उद्देश्यहीनतासे खिन्न रहा करता था, फिर भी उसे ऐसे लोगोंकी वीरताके लिये आदर जरूर था, जो एक अनिश्चित उद्देश्य के होते हुए भी उसके लिये कारादण्ड एवं देशनिर्वासन सहनेको तैयार थे। इस दलमें सम्मिलित होनेके बाद मेजिनी को यह अनुभव होने लगा कि, दलके नेता अपने देशके सम्बन्धमें हल्केपनके साथ बातचीत किया करते हैं और इस बातका उपदेश करना चाहते हैं कि, देशकी मुक्ति केवल फूँसकी सहायतासे ही हो सकती है। दलके नेताओंकी इस मनोवृत्तिके विरुद्ध उसका इटालियन हृदय, विद्रोही होते हुए भी, उनके आदेशोंके अनुसार ही काम किया करता था; कारण, उसे अनुशासनपर सिद्धान्त-रूपमें विश्वास था। पीछे चलकर मेजिनी दलके लिये नया रंगरूट भर्ती करनेके काममें नियुक्त किया गया और उसने अपने बुद्धिबलसे एक ऐसी स्कीम तैयार की, जिसके अनुसार Carbonari और जेनोवा तथा पिडमोण्टके क्रान्तिकारियोंके बीच घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया। इसी समय फ्रांसमें विप्लवकी भेरी बज उठी और उसके प्रभावसे समस्त संसारकी अत्याचार-पीड़ित जातियोंके हृदयमें आशाका सँचार हो गया। मेजिनी और उसके साथी क्रान्तिकारी दलकी शाखाएँ स्थापित करने लगे; यद्यपि उनका यह काम शुरूमें ही दबा दिया गया। क्रान्तिकारी दलके आदमियोंमें भी सरकारके गुप्तचर काम कर रहे थे और उन्हीं गुप्तचरोंमेंसे एकको विप्लवमंत्रकी दीक्षा देनेके अभियोगमें मेजिनी गिरफ्तार कर लिया गया। वह गिरफ्तार होकर सेवोना (Savona) के किलेमें लाया गया और वहीं टरिनकी सिनेट सभाके सामने वह विचारार्थ उपस्थित किया गया। कानूनकी दृष्टिमें वह पूर्ण अपराधी माना गया; किन्तु उसने बड़ी होशियारीसे अपने विरुद्ध कुल कागजी सबूत नष्ट कर दिये थे और दीक्षाका अभियोग प्रमाणित करनेके लिये उसके विरुद्ध सिर्फ एक गवाह रह गया था, जब कि, कानूनके अनुसार दो गवाह

होना जरूरी था। मेजिनीने अपने ऊपर लगाये गये अभियोगको बिलकुल इनकार किया। अधिकारियोंके पास उसकी क्रान्तिकारिणी कार्य्यवाहियोंके सम्बन्धमें प्रमाण मौजूद थे; अतएव उसे वे यों ही छोड़ देना नहीं चाहते थे। उन्होंने उसे एक छोटे शहरमें नजरबन्द होने या देश-निर्वासन, इन दो सजाओंमें एक चुन लेनेकी आज्ञा दी। मेजिनीने बाहर रहकर अपने देशके लिये कुछ ठोस काम कर सकनेकी आशासे देश-निर्वासनके दण्डको ही अपने लिये उपयुक्त समझा और सन् १८३१ ई० के फरवरी महीनेमें उसने अपने परिवारवर्गसे विदा ग्रहण करके प्रस्थान कर दिया।

जिस समय मेजिनी सेवोनाके दुर्गमें कैद था, उस समय वह सारे प्रायद्वीपमें फैले हुए बुरे शासनको देख-सुनकर और भी अधिक प्रभावित हो गया था। कानूनकी रचनामें प्रजाको हस्तक्षेप करनेका कुछ भी अधिकार नहीं था; कर लगानेके सम्बन्धमें तथा शासकोंके ऊपर उसका कोई नियन्त्रण नहीं था; सार्वजनिक सभा करने, संस्था कायम करने तथा लिखने और बोलनेकी स्वतंत्रता नहीं थी। शासनकी बुराईका सबसे बड़ा रूप पुलिस-विभाग था। हर एक आदमीकी शक्ति एवं मान-मर्यादा पुलिसवालोंके भयसे खतरेमें पड़ गयी थी। सरकारको बात-बातमें क्रान्तिकी गन्ध मालूम होती थी और इस क्रान्तिके भयसे वह भय-प्रदर्शन द्वारा अपने बचावका उपाय सोचने लगी थी। सरकारकी इस स्थितिका एवं असहनीय कुशासनका मेजिनीके ऊपर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा और जिस समय वह कैदखानेमें कैद था, उसी समय उसने अपने देशके लिये स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके उद्देश्यसे एक नयी समिति स्थापित करनेका विचार किया।

कैदखानेके गवर्नरने मेजिनीको बाइबिल, बायरन और टसीटसके काव्यग्रन्थ आदि पढ़नेकी अनुमति दे दी थी। इन्हीं ग्रन्थोंके तथा दान्तेके काव्यके अध्ययनसे उसके मनमें "तरुण इटली" की भावना उत्पन्न हुई और जिस नयी समितिकी स्थापनाके सम्बन्धमें वह सोच रहा था, उसका नामकरण भी उसने इसी नामसे किया। उसने इस नामकी एक समिति स्थापित करनेका प्रबन्ध भी कर डाला। इस समितिकी ओरसे एक बार विद्रोहका झण्डा खड़ा भी किया गया; किन्तु उसका परिणाम असफल रहा। मेजिनीको मृत्यु-दण्ड मिला; किन्तु किसी प्रकार वह भाग निकला।

वहाँसे भागकर वह स्वीजलैंड पहुँचा, जहाँ उसने "तरुण स्वीजलैंड" नामसे एक समितिकी स्थापना की। यहीं उसके हृदयमें यह भावना उदित हुई कि, स्वतंत्रता एवं प्रजासत्ताके लिये संग्रामका प्रश्न सिर्फ इटलीको लेकर ही नहीं है; बल्कि इसका सम्बन्ध सारे यूरोपसे है। इस विचारसे ही उसने "तरुण यूरोप" का आन्दोलन खड़ा किया था; किन्तु वह जहाँ-कहीं जाता था, वहीं अधिकारियोंकी ओरसे सताया जाता था। आखिर वह फ्रांस और स्वीजलैंडसे भी निर्वासित कर दिया गया और अन्ततः सन् १८३७ ई०में वह इङ्गलैण्ड पहुँचा। इङ्गलैण्डमें रहते हुए लेख लिखकर बड़ी मुश्किलसे वह अपनी जीविकाका निर्वाह किया करता था और अक्सर उसकी यह हालत हो जाती थी कि, उसे अपनी पोशाक, कोट, हैट, बूट तथा सिगार-तक बेच देने पड़ते थे। यहीं उसने कार्लाइलके साथ मित्रता स्थापित की और उसकी स्त्रीके साथ, जो उसे बड़ी श्रद्धाकी दृष्टिसे देखा करती थी, वार्तालापमें अपना अधिकांश समय व्यतीत किया। सन् १८४८ ई०में इटलीका पुनर्जन्म हो रहा था, मेजिनी स्वदेशको लौटा और रोमन प्रजातंत्र-राज्यकी स्थापनामें उसने प्रधान भाग लिया। किन्तु इसके कुछ समय के बाद ही फरासीसियोंने इस प्रजातंत्र राज्यको उलट डाला और आखिर मेजिनी फिर इङ्गलैण्ड वापस चला गया। उसने अपने जीवनके अन्तिम दिन लण्डनमें व्यतीत किये। सिर्फ कुछ महीनोंके लिये वह पिसामें रहा था, जहाँ सन् १८७२ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी।×

×एक अंग्रेजी लेखकके आधारपर। —लेखक

भैयाकी सनक

पाण्डेय जगन्नाथप्रसाद सिंह

"आनन्द-भवन, शीतलपुर
२९ जून १९२९; १० बजे रात

"प्रिय बब्बन बाबू,

आज यहाँ एक अजीब घटना घटी है। सन्ध्याके समय नित्य कर्मसे छुट्टी पानेके निमित्त हाथमें जलसे भरा हुआ लोटा लिये और कानपर जनेऊ चढ़ाये हुए, धोतीका आधा हिस्सा नंगे शरीरपर डाले हुए, पांव-प्यादे मैं गुनगुनाता हुआ पच्छिम के खेतोंकी ओर बढ़ा चला जा रहा था। देहातमें आ जानेपर मैं पक्का देहाती बन जाता हूँ। यहाँ काशी-विश्व-विद्यालयके छात्रावासोंके संग पाखानोंमें घंटों बैठकर झख मारनेकी बनिस्बत कुछ देरतक मैदानोंकी सैर कर लेनेके बाद किसी झाड़ीके किनारे बैठना बड़ा ही भला मालूम होता है। खैर, मैं अपनी धुनमें आगे बढ़ता चला जा रहा था। इसी समय पासके वट-वृक्षकी ओटसे तलवार घुमाते हुए मेरे चचेरे भाई मेरे सामने आकर खड़े हो गये। मैं उन्हें इस रूपमें देखकर घबरासा गया। भाई साहबके परिवार और मेरे परिवारमें कई पुश्तोंसे मुकदमेबाजी होती रही है। और आज भी होती है; परन्तु यह स्वप्नमें भी न सोचा था कि, भाई साहब पारिवारिक झगड़ोंके कारण मुझे इस प्रकार धोखा देकर मार डालनेका विचार भी करेंगे। दोनों परिवारोंमें इतना वैमनस्य होते हुए भी वे मुझे छोटे भाईकी भाँति मानते हैं, इसमें सन्देह नहीं। फिर यह आँखोंसे देखकर भी कि, वे नंगी तलवार लिये विचित्र दृष्टिसे मुझे घूर रहे हैं, मुझे उनके प्रति एक आदरका ही भाव पैदा हुआ। मैंने कहा—"भैया! यह क्या करते हो? यदि मुझे मारकर ही तुम प्रसन्न होना चाहते हो, तो यह भी सही। मैं इसका कभी भी विरोध नहीं कर सकता। तुम मेरे बड़े भाई हो; लो मुझे मार डालो; मेरा मस्तक तुम्हारे सामने झुका हुआ है।" ऐसा कहकर और मैंने हाथके

लोटेको नीचे रखकर अपना सिर झुका दिया। भैया पिघल पड़े। उन्होंने बायें हाथसे मेरा सिर ऊपर उठाते हुए कहा—"जागो! मैं तुम्हारा नहीं, बल्कि स्वयं अपना खून करूँगा। लो यह देखो.........."—ऐसा कहकर उन्होंने तलवारकी नोक अपनी छातीपर भिड़ा दी। मैंने लपककर उनका हाथ पकड़ लिया और कहा—"प्यारे भाई ऐसा न करो। ऐसी क्या विपत्ति तुमपर पड़ी है, तुम्हें कौनसा मानसिक कष्ट है, जिसे तुम बर्दाश्त नहीं कर सकते! इस संसारमें जीवन धारण कर सब आपदाओंका सामना करना ही मनुष्यका कर्तव्य है। दुःखोंसे ऊबकर आत्महत्या करना तो कायरोंका काम है।" उन्होंने तलवारकी नोक अपनी छातीपर जमाये हुए ही उत्तर दिया—"जागो, यद्यपि हम दोनोंके परिवारोंमें तीन पुश्तका झगड़ा है; तथापि मैं तुम्हें सहोदर समझता आया हूँ। आज मैं जिस विपत्तिमें पड़ा हूँ, उससे तुम्हारे द्वारा ही मेरा उद्धार पाना संभव है। क्या तुम मेरे लिये कुछ त्याग नहीं कर सकते?" मैंने प्रेमके आँसू ढरकाते हुए कहा—"क्यों नहीं कर सकता भैया? यदि अपने प्राण देकर भी तुम्हारा उपकार मैं कर सका, तो भी मैं पीछे नहीं हटनेका।" भैया बोले, "प्राण दे सकते हो, यह सहज काम है; परन्तु क्या जीवित रहकर समाजकी आलोचनाएं सहनेके लिये तुम तैयार हो सकोगे?" मैंने रोते हुए कहा—"हाँ भैया? मैं सब कुछ कर सकूँगा। तुम्हें इस प्रकार आत्महत्या करते हुए मैं नहीं देख सकूँगा। बोलो न, क्या काम है?"

"तो तुम मुझे सहायता दोगे? जबतक तुम इस बातकी प्रतिज्ञा नहीं कर लेते, मैं वह बात तुम्हें नहीं बतलानेका।"

"हाँ भैया? मैं जरूर तुम्हारी सहायता करूँगा।"

"प्रतिज्ञा करते हो?"

"हाँ प्रतिज्ञा करता हूँ।"

"पीछे तो नहीं हटोगे?"

"हरगिज नहीं।"

"अच्छा तो सुनो। तुम जानते हो, आजसे दस वर्ष पहले जब मेरा विवाह हुआ था, तब मैं कितना प्रसन्न था। उस समय मेरी साली केवल पाँच वर्षकी थी; परन्तु आज वह एक युवती है। मैं उसे प्यार करता हूँ, वह मुझे प्यार करती है। मेरे एक स्त्री है सही; परंतु मैं उसकी छोटी बहनसे भी विवाह करनेका लोभ संवरण नहीं कर सकता, जागो! बोलो, क्या इस विवाहको करा देनेमें तुम मेरी सहायता करोगे? यदि किसी प्रकार भी यह विवाह न हुआ, तो फिर तुम मुझे इस संसारमें न पाओगे।"

"भैया, मैंने तो प्रतिज्ञा कर ही ली है; परंतु क्या तुम्हारे श्वशुर इस बातपर राजी होंगे? मैं तुम्हारे परिवारके लोगोंको ठीक रास्तेपर लानेकी चेष्टा कर सकता हूँ। भाभीको भी मना सकता हूँ; परंतु लड़कीका बाप भला एक पैंतीस वर्षके आदमीसे अपनी पन्द्रह वर्षकी कन्याका विवाह क्योंकर करनेको राजी होगा!"

"यह सब कुछ हो जायगा जागो! मैंने सब उपाय सोच लिया है। केवल एक सहायक चाहिये। वह भी तुम मिल ही गये। अब तो बेड़ा पार ही समझो। आज मेरे बराबर कौन है?"

"अच्छा, तो वह प्लाट है क्या भाई साहब?"

"सब कुछ कहूँगा जागो! घबराओ नहीं। बिना तुमसे कहे तुम्हारी सहायता मुझे कैसे मिलेगी? परन्तु इसे गुप्त रखना। कहीं भी प्रकट न होने पावे, नहीं तो सब बना-बनाया खेल चौपट हो जायगा।" इसके बाद भैयाने अपनी तरकीब कह सुनायी। उसे आज इस पत्रमें लिखना उचित नहीं जँचता। कहीं कोई दूसरा पढ़ लेगा, तो सब गुड़ गोबर हो जायगा और भैयाको फिर दूसरी बार आत्महत्या करनेके लिये तैयारी करनी पड़ेगी। अस्तु। आज यहींतक। और सब कुशल है; अपना कुशल-मंगल लिखना।

तुम्हारा—जागो।"

(२)

"हिन्दू-विश्वविद्यालय, काशी

१ सितम्बर १९२९; ४ बजे संध्या

"प्रिय बब्बन बाबू,

तुम्हारे कई पत्र मिले; परन्तु मैं भैयासे प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि, उनका वह प्लाट किसीको भी न सुनाऊँ। इसलिये तुम्हारे-जैसे मित्रसे भी छिपाकर काम करना पड़ता है। उत्सुकताको रोककर सब कुछ देखते जाओ। जब जैसे घटनाएँ होती जायँगी, मैं तुम्हें सूचना दे दिया करूँगा। आगेकी बात अभी मत पूछो।

तुम जानते हो कि, भाभी एक स्वस्थ महिला हैं; परन्तु यह बात प्रसिद्ध की गयी है कि, वे बीमार हैं। कुछ दिनों-तक छपरेके डाक्टर हरबन बछको दवा करनेके बाद भैया उन्हें काशी पहुँचा गये हैं और यहाँके प्रसिद्ध आयुर्वेदिक चिकित्सक त्र्यम्बक शास्त्रीकी चिकित्सा करानेकी घोषणा भाभीके पिताके घरमें कर दी गयी है। यद्यपि सच बात तो यह है कि, काशीके कालभैरव नामक महल्लेमें एक सुन्दर मकान भाड़े पर लेकर भाभीको रख दिया गया है। वे यहाँ सबल और स्वस्थ हैं। मैं भी होस्टलसे छुट्टी लेकर उनके पास ही रहता हूँ। भैयाके परिवारमें भी भाभीके बहुत बीमार होनेकी बात प्रचलित है। भैयाकी दोनों लड़कियाँ घरपर हैं। वकालतकी भीड़के कारण भैयाका छपरा छोड़ना सम्भव नहीं है। वे वहीं रहते हैं। उनका पत्र बराबर आता है; परन्तु होस्टलके पतेसे; और, वह यहीं पढ़कर फाड़ दिया जाता है। एक मजेकी बात और भी है। भैयाके इस षड्यंत्रसे भाभी एकदम अवगत नहीं हैं। वे काशीधाममें कुछ दिन रहनेमें अपूर्व सुखका अनुभव कर रही हैं। अस्तु। आज यहीं तक। आगे देखें, प्लाट किस प्रकार डेवलप् करता है।

तुम्हारा—जागो"

(३)

"कालभैरव, काशी

२९ सितम्बर १९२९; आधीरात

"प्रिय बब्बन बाबू,

भैया भी बड़े विचित्र जीव हैं। उन्हें एक अजीब सनक सवार है। उनके आदेशानुसार परसों एक तार उनके पास इस आशयका भेजा—"भाभीकी बीमारी बढ़ रही है, स्थिति चिन्ताजनक है।" फिर कल इस आशयका एक तार भेजा, "भाभीकी मृत्यु हो गयी; शीघ्र आइये।" यद्यपि भाभी अभी-अभी भी मेरे सामने स्वस्थ नींद ले रही हैं! भैया आज सबेरे आ भी गये हैं। फिर वे कल छपरा लौट जायँगे। खूबी तो यह है कि, भाभीको भी यह सब कुछ मालूम नहीं है! अन्य बातोंकी सूचना फिर दूँगा। अपने कुशल-मंगलका पत्र शीघ्र लिखो।

तुम्हारा—जागो।"

(४)

"हिन्दीमन्दिर, शीतलपुर

२७ दिसम्बर १९२९; ९ बजे दिन

"प्रिय बब्बन बाबू,

तुम्हारे कई पत्र काशी भी आये और यहाँ भी; परन्तु मैंने किसीका भी उत्तर नहीं दिया। कारण यह है कि, मुझे बातोंके फूट जानेकी आशंका थी; परन्तु हम दो भाइयोंके और तुम्हारे सिवा यह सभी जानते और विश्वास करते हैं कि, भाभीकी मृत्यु काशीमें हो गयी। उससे सम्बन्ध रखनेवाले सभी धार्मिक कृत्य भी, बड़ी तैयारीसे, किये गये। हालमें ही कार्य सम्पन्न हुआ है। बाहरके सम्बन्धी लोग भी निमंत्रित थे। भैयाका छोटा साला भी आया था। यहाँ जब यह प्रपंच रचा जा रहा था; तब भाभी आनन्द-पूर्वक काशीके कालभैरव महल्लेमें काल-यापन कर रही थीं। उन्हें सम्प्रति अपने काशीके एक मित्रके यहाँ रख आया हूँ।

उनका मकान भी कालभैरव महल्लेमें ही है। अस्तु ! अब भैयाने घोषणा कर दी है कि, वे विवाह ही नहीं करेंगे और लोग उन्हें विवाहके लिये तंग कर रहे हैं। उनका कहना है कि, मुझे दो लड़कियाँ हैं। बाहरकी दूसरी स्त्री आवेगी, वह न जाने इन बच्चोंके साथ कैसा व्यवहार करेगी; इसलिये मैं विवाहसे अलग रहना ही अच्छा समझता हूँ। परन्तु, भैयाके मनमें क्या है, यह मेरे और सवज्ञ भगवान्‌के सिवा और कौन जान सकता है! भैयाने एक चालाकी और की है। उनकी सालीकी शादी जहाँ-कहीं भी ठीक होती है, लड़केवालेके यहाँ वे वेश बदलकर चले जाते हैं और लड़की और उसके परिवारमें दोष बतलाकर विवाह काट देते हैं! वे समझते हैं कि, कहीं विवाह ठीक न होनेसे उनके श्वशुर महोदय झख मारकर उन्हींसे विवाहका प्रस्ताव करेंगे। परन्तु वह बूढ़ा भी बड़ा ही चालाक है। पैंतीस वर्षके जवानसे अपनी लड़कीको शादी करना वह अपनी तौहीनी समझता है। देखें, इस लोगोंका प्लाट आगे क्या रंग लाता है। हाँ, एक बात और भी है। भाई साहब अपने श्वशुरके पुरोहितको मिला लेनेकी चेष्टामें हैं। आगेकी बातें फिर लिखूँगा।

तुम्हारा—जागो।"

(९)

"हिन्दू-विश्वविद्यालय, काशी
१० फरवरी १९३०; आधी रात

"प्रिय बब्बन बाबू,

तुम्हारे दो पत्र मिले। मैं कल घरसे यहाँ आया। इस बीचमें भैयाने अपने श्वशुरके पुरोहितको रुपयोंके बलसे मिला लिया है। एक दिन पुरोहितजीने अपने यजमानसे बातों-ही-बातों कहा—"आप तो बराबर मुझे लड़का ढूँढ़नेको भेजते हैं; परन्तु कोई पसन्द लायक वर नहीं मिलता। जहाँ कहीं बातचीत भी पक्की होती है, वहाँ भी सम्बन्ध पक्का नहीं हो पाता। मैं क्या करूँ? लड़का तो समझिये घरमें ही मौजूद है; परन्तु सूझता नहीं। कहा भी है—गोदमें लड़का नगरमें ढिंढोरा। क्यों न आप अपने पहले दामादसे शादी ठीक कर लेते? यद्यपि उनकी उम्र तीससे कुछ ज्यादा हो चुकी है; परन्तु देखनेमें वे अभी भी पचीससे अधिकके नहीं जान पड़ते। ऐसा सुन्दर पात्र क्या कहीं ढूँढ़नेसे मिल सकता है?" श्वशुर महाशय भी लड़का ढूँढ़ते-ढूँढ़ते थक गये थे, कहीं भी शादी ठीक नहीं कर पाते थे। इसलिये मन न रहते हुए भी अपने पुरोहितकी बात कुछ-कुछ उन्हें जँची। बोले—"पुरोहितजी! ठीक तो है; परन्तु सुना है वे शादी करना चाहते ही नहीं।" पुरोहितजीने कहा—"ऐसा नहीं है यजमान! बात यह है कि, उन्हें दो लड़कियाँ हैं। इसीसे वे किसी अपरिचित लड़कीसे शादी नहीं करना चाहते। वे सोचते हैं कि, कहीं ऐसा न हो कि, नयी बहू आवे और लड़कियोंको कष्ट दे। परन्तु जब उन लड़कियोंकी मौसी ही उस घरमें प्रवेश करेगी, तब तो उन्हें अवश्य ही प्यारकी दृष्टिसे देखेगी। समझानेसे वे अवश्य ही इस बातको समझेंगे। यदि आप कहें, तो मैं चेष्टा करूँ।" श्वशुरजीने अन्यमनस्क होकर कहा—"अच्छा, चेष्टा कीजिये।" पुरोहितजीको माँगी मुराद मिली। वे भैयासे मिले और खुशखबरी सुनायी। प्लाट पहलेसे मँजा हुआ था ही; भैयाने नहीं-नहीं करते हुए भी स्वीकार कर लिया। बातचीत पक्की हो गयी। आगामी मार्चमें विवाह होना निश्चय हुआ है। एक बात लिखना तो मैं बराबर भूल जाया करता हूँ। जबसे भाभी काशीमें हैं, भैया जब-तब यहाँ आकर उनसे मिल जाया करते हैं। ऐसा नहीं है कि, भैया भाभीको मानते न हों। फिर भी दिल ही तो है, आ गया नयी नवेली सालीपर। इसमें हर्ज ही क्या है? विशेष फिर कभी। अपना कुशल-मंगल लिखते रहना।

तुम्हारा—जागो।"

(६)

"ट्रेनसे—

९ एप्रिल १९३०; १० बजे रात

"प्रिय बच्चन बाबू,

तुम्हारे कई पत्र मिले ; पर मैं किसीका भी उत्तर न दे सका । इसका कारण यह है कि, मैं भैयाकी शादीमें बेतरह फँसा हुआ था । भैयाकी शादी हो गयी । नयी भाभी घरमें आयी । मेरी यह भाभी भी बड़ी सज्जन है । दोनों लड़कियोंको अपनी ही समझती है । दस दिनोंसे आयी है; परन्तु इतने थोड़े समयमें ही अपने मिलनसार मिजाजसे सबका मन मोह लिया है । मेरी बड़ी भाभीका मिजाज भी ऐसा ही मिलनसार है । उसे जब कभी अपनी बड़ी बहनकी याद आ जाती है, तब रो देती है । कल मैंने उससे हँसते-हँसते कहा—"भाभी ! यदि मैं बड़ी भाभीको स्वर्गसे फिर एक बार यहाँ बुला लाऊँ, तो मुझे क्या उपहार दोगी ?" यह सुनकर वह रोने लगी । रोते हुए उसने कहा—"ऐसे मेरे भाग्य कहाँ ?" मैंने उसे समझाते हुए कहा—"यदि ऐसा होना संभव होता, भाभी, तो क्या तुम एक सौतका यहाँ आना पसन्द करती ?" भाभीने सूखी हँसी हँसकर उत्तर दिया—"मेरे देवर ! तुम मर्द हो, बहनके प्रति बहनका प्रेम कितना गहरा होता है, इसे तुम नहीं समझ सकते । सौत होते हुए भी वह मेरी बहन है । यदि आज वह यहाँ आ सकती......आह !" ऐसा कहते हुए भाभी जरा विचलित हो पड़ी । मैंने हँसते हुए कहा—"भाभी ! अच्छा तो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि, यदि मैं बड़ी भाभीको न ला सका, तो तुम्हें भाभी कहना ही छोड़ दूँगा । आज स्वर्गधामको जाऊँगा और कल उन्हें ले आऊँगा ।" भाभीने इसे केवल देवरका प्रलाप ही समझा । परन्तु मैंने तो प्रतिज्ञा की है न ? इसलिये जा रहा हूँ बड़ी भाभीको लाने । बेचारीको कबतक निर्वासित रखूँ । भैयाके कारण मैंने अबतक उन्हें निर्वासित रखा था ; पर अब देर सही नहीं जाती । यह काम भी मुझे ही करना पड़ेगा । भैया तो मुझे काशी जाते देख खिसक गये छपरा । दोनों बहनोंको मिला देना भी मेरा ही काम है । सच पूछो तो इस नाटकका नायक मैं ही हूँ, भैया नहीं । विशेष क्या लिखूँ । अपना समाचार लिखना । काशीसे लौटनेपर और बातोंकी सूचना दूँगा ।

तुम्हारा—जागो !"

(७)

"सेवाश्रम, शीतलपुर

८ एप्रिल १९३०; १ बजे दिन

"प्रिय बच्चन बाबू,

गत ९ एप्रिलको ट्रेनसे एक पत्र तुम्हें लिख चुका हूँ । कल भाभीको लेकर मैं घर वापस आ गया । काशी छोड़ते समय भाभीकी आँखोंमें आँसू थे । काशी नगरीपर उनकी ममता थी; परन्तु घर छोड़कर कोई कबतक काशीमें रह सकता है ? जिस समय भाभी घर पहुँची हैं, उस समयकी बात मत पूछो, दोस्त ! घरमें प्रवेश करते ही घरकी स्त्रियोंके आश्चर्यका ठिकाना नहीं था ! वे तो उन्हें मरी हुई समझ बैठी थीं ! पहले साक्षात्कारमें तो उन्होंने भाभीको भूत ही समझा था ; परन्तु मैं था न साथमें । गुलगपाड़ा सुनकर नयी भाभी दौड़ी हुई आयी और बहनके गलेसे लिपट गयी । अपनी बहनको यहाँ पाकर बड़ी भाभीके आश्चर्यका ठिकाना न था; परन्तु बात कबतक छिपती ? सबको सब बातोंका पता लग गया । मेरे भाई साहबका और साथ ही मेरा भी भण्डाफोड़ हो गया ; परन्तु अब क्या हो सकता था ? जो होनी थी, वह होकर ही रही । भैयाकी ससुरालवालोंने जब यह खबर सुनी, तो बड़े आगबबूला हुए । यदि वे भैयाको उस समय देख पाते, तो उन्हें बिना पीटे हुए न छोड़ते ! भैयाका छोटा साला तो अलग ही बलबला रहा है ! मैं

आचार्य प० महावीरप्रसाद द्विवेदी

(९ वीं मईको समस्त हिन्दी-संसारमें आपकी अड़सठवीं जयन्ती, बड़ी उमंग और तरंगसे, मनायी गयी थी। आपका "कृतज्ञता-ज्ञापन" अन्यत्र देखिये।)
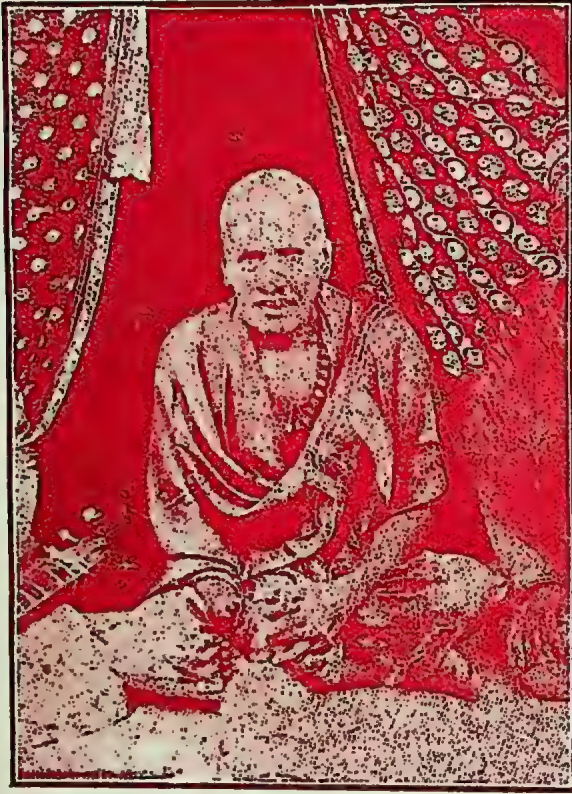
संगीताचार्य बच्चू मलिक

दर्शनाचार्य पं० नृसिंहदेव शास्त्री

कल ही संध्या समय छपरा जाकर भैयाको बुला लाया हूँ। भैया शर्मके मारे गड़ले गये हैं! बड़ोंके सामने वे शिर ऊँचा नहीं करते। परन्तु उनका मन प्रसन्न है। मेरी दोनों भाभियाँ भी आनन्दपूर्वक हैं। इस विवाहसे दोनोंमेंसे किसीको भी दुःख नहीं पहुँचा है। हाँ, बड़ी भाभीने एक दिन इतना अवश्य कहा था—"देवरजी, तुम्हारे भैया यदि मुझसे कहकर यह शादी करते, तो तुम्हें इतना कष्ट न उठाना पड़ता। मैं ही बीचमें पड़कर यह विवाह करा देती।" उस दिनसे बड़ी भाभीपर मेरी श्रद्धा और भी बढ़ गयी है। हिन्दू-स्त्रियाँ कितना त्याग कर सकती हैं, बब्बन बाबू? क्या अन्य देशों और अन्य जातियोंकी स्त्रियोंमें भी त्यागकी मात्रा इतनी अधिक है? भैया बड़ी भाभीके सामने भी कुछ झेंपसे जाते हैं।

आगामी रविवारको उत्सव मनाया जायगा। काशीसे एक विद्वान् कथा कहनेके लिये आवेंगे। तुम भी ऐसे मौके-पर जरूर आओ। यद्यपि तुम इस विवाहके पक्षमें नहीं थे; तथापि यह समझकर कि, इससे दोनों बहनोंको कष्ट न हुआ, तुम्हें इसके लिये अफसोस करनेकी कोई बात नहीं है। तुम्हें मेरी कसम, जलसेमें जरूर शरीक होना। लिखना, किस ट्रेनमें आते हो? मैं स्टेशनपर तुम्हारी प्रतीक्षा करता रहूँगा।

तुम्हारा—जागो।"

हृदयकी कथा

साहित्य-रत्न मुरलीधर श्रीवास्तव बी० ए० "शेखर"

जिनका हृदय मरुस्थल,
सिंचित न स्नेह-जलसे;
वे क्या समझ सकेंगे,
उरकी व्यथा हमारी? ॥१॥

बिखरी जो मोतियों-सी,
है बूँद आँसुओंकी;
वे वेदना हृदयकी,
परिचायिका हमारी ॥२॥

निचुड़ा कणों-कणोंमें—
है सार वेदनाका;
हर बूँदमें झलकती,
मेरी व्यथा-कथा है ॥३॥

चिनगारियाँ सुलगतीं—
हैं आहमें हृदयकी;
धधके हुए कलेजे—
की आँच आहमें है ॥४॥

पानी हृदय करेगा,
यह एक बूँद पानी;
है व्यक्त अश्रु-कणमें,
मेरी करुण-कहानी ॥५॥

वैदिक देवता

ब्रह्मचारी बालमुकुन्दजी एम० ए०, एल-एल० बी०, ऐडवोकेट

वेदका प्रत्येक मन्त्र किसी-न-किसी देवताको अवश्य बतलाता है। वह देवता कौन है और प्रत्येक मन्त्रका उस देवता-विशेषसे क्या सम्बन्ध है, इसका मर्म्म जानना जरा कठिन है। अनेक महानुभावोंने अनेक उत्तर दिये हैं। आज दिन यदि वेदोंका वह आदर संसारमें नहीं दिखलायी पड़ता, जो उनके लिये उचित है, तो उसका कारण यह प्रतीत होता है कि, वैदिक देवताओंका अर्थ और भाव हमको नहीं मालूम है।

"अग्नि", "इन्द्र" और "आदित्य" वेद-मन्त्रोंके प्रधान देवता हैं। आजकल हम "अग्नि"से साधारण आग, इन्द्रसे अप्सराओंके स्वामी एक व्यक्ति-विशेष तथा सूर्य्यसे यह चमकता हुआ सूरज, जो प्रतिदिन निकलता और डूबता है, समझते हैं। आगसे हम अपने भौतिक व्यवहारोंको सिद्ध कर लेते हैं। इन्द्र हमारी समझ और पहुँचसे बाहर है; अतएव वह हमको कपोल-कल्पित प्रतीत होता है। सूर्य्य-की बाबत तो कहना ही व्यर्थ है। कहाँ वह और कहाँ हम! ऐसी ही हमारी आधुनिक समझ है; और, इसी समझके अनुकूल वेदके प्रचारकी ओरसे हम उदासीन हैं। नहीं तो "अग्नि", "इन्द्र" और "आदित्य"से जहाँ कभी परमात्माके शुभ नामोंका ग्रहण होता था, जहाँ कभी इनके वास्तविक अस्तित्व और तत्त्व-भावका अनुभव करके, हमारे पूर्वज आत्माके पूर्ण स्वरूपको जानकर, परम पदको प्राप्त होते थे और सच्चिदानन्द परमात्माके शरणागत होकर परमानन्दका अनुभव करते थे; वहाँ आज हमको "अग्नि" से केवल भौतिक आग और आदित्यसे केवल चमकते हुए सूरजका बोध होता है!

सायणाचार्य्य देवताओंसे विशेष शक्तिशाली व्यक्तियोंका ग्रहण करते हैं और सम्भवतः इसी विचारका परिणाम आज हम यह पाते हैं कि, यदि कोई आगकी पूजा करता है, तो दूसरा सूरजको अपना इष्टदेव मानता है; परन्तु क्या यह वैदिक देवताओंका स्वरूप है?

सायणाचार्य्य परमात्माको माननेवाले हैं । उन्होंने अपनी प्रसिद्ध भूमिकामें, जो कि, उन्होंने ऋग्वेद-भाष्यके आरम्भमें लिखी है, "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" ऋक्का भी उल्लेख किया है। वे यास्काचार्य्यके मतसे भी परिचित थे और निरुक्तके प्रमाणोंसे भी उन्होंने जगह-जगहपर अपने भाष्यको भूषित किया है । फिर प्रश्न यह है कि उन्होंने यह भूल क्यों की ? इसका उत्तर हम केवल वही देना चाहते हैं, जो कि, प्रसिद्ध वेदज्ञ डाक्टर राथने दिया था। डाक्टर राथका यह विचार था कि, "सायणाचार्य्यने अपने वेद-भाष्यमें केवल उन्हीं अर्थोंको प्रकट किया है, जो कि उनके समयमें प्रचलित थे। उनसे पूर्व, किसी समयमें, वेद-मंत्रोंके दूसरे अर्थ भी समझे जाते थे।" हम राथ महाशयके इस विचारसे पूर्णतया सहमत हैं। यद्यपि महाशय गोल्ड-स्टकर अपनी "पाणिनि" नामक पुस्तकमें महाशय राथ-को उनके इस विचारके लिये अपमान-सूचक शब्दोंसे स्मरण करते हैं और यह कहकर उनके मतको अनुप-युक्त मानते हैं कि, "केवल दो—चार पुस्तकोंको पढ़कर कैसे कोई श्रीबुक्कमहीपतिके महापण्डित सायणाचार्य्यके प्रसिद्ध और कालसम्मानित मतके विरुद्ध कहनेका साहस कर सकता है।" गोल्डस्टकरका यह कथन अनुचित है। सायणाचार्य्यसे पूर्वके यास्काचार्य्यका मत है और यह कहने की अवश्यकता नहीं कि, यास्काचार्य्यके मतसे सायणा-चार्यके पक्षका समर्थन नहीं किया जा सकता।

देखना यह है कि, देवतासे वस्तुतः क्या प्रयोजन है। क्या यह सच है कि, बहुतसे देवता अथवा अधिष्ठाता व्यक्ति हैं, जिनकी स्तुति मन्त्रोंमें की गयी है और जिनकी उपासना हमारे लिये आवश्यक है ? अथवा, एक ही ब्रह्म हमारा उपास्य देव है और उसीकी स्तुति और उपासना हमको करनी चाहिये ?

पहले हम स्वयं ऋग्वेद (मं० १, सूक्त १००, मं० ७) को ही पाठकोंके समक्ष रखकर यह विचार करना चाहते हैं कि, इस विषयमें उसकी शिक्षा क्या है।

मन्त्रका भावार्थ है कि, "हे मनुष्यो, उसी (इन्द्र) को कुशलताका रक्षक करो, जो कि, युद्धमें अपने रक्षण और बलसे हमको युक्त करता है। वह सब कर्म्मोंका एक ही शासक है। वह प्राण, वायु तथा बलसे युक्त इन्द्र हमारी रक्षा करे।"

ऋग्वेद, मं० १, सूक्त ९४, मंत्र १३ का कहना है कि, "हे अग्नि, तुम देवोंके देव हो। तुम मित्र, आश्चर्य्य, वसुओंके वसु और यज्ञकी शोभा हो। तुम्हारी गोदमें हम सुखी हों और तुम्हारी मित्रतामें हमको कष्ट न हो।"

इन दो मन्त्रोंके देवता क्रमशः इन्द्र और अग्नि हैं। अब विचारणीय यह है कि, मंत्रोक्त इन्द्र कौन है और दूसरे मन्त्रमें आया हुआ अग्नि कौन है, जिनको मन्त्रोंमें बुलाया गया है

क्या क्षणमात्रके लिये भी कोई यह कह सकता है कि, मन्त्रोक्त इन्द्र और अग्नि परमात्मासे भिन्न किसी अन्यके नाम हो सकते हैं ? यदि दूसरोंके नाम भी हैं, तो मन्त्रोंमें इनका प्रयोग परमात्माके ही प्रति किया गया है। स्वयं सायणाचार्य्य भी ऐसा ही कहते हैं—

"तस्मात्सर्वैरपि परमेश्वर एव हूयते।"

लोकमत, जिसका निराकरण बहुत आवश्यक है. केवल भ्रमात्मक है और सामयिक विद्वानोंके यथार्थ उपदेश न करनेसे ही फैल गया है। इन्द्रको लोकमतमें अप्सराओं-का स्वामी बतलाया गया है।

राजा इन्द्रका अखाड़ा प्रसिद्ध है, जहाँ अप्सराएँ नित्य नृत्य और गान करती हैं। पहले मन्त्रमें इन्द्रको "विश्वस्य करुणस्येशः" (सारी करुणापर शासन करनेवाला) बतलाया है। अब यदि हम 'करुण' और 'अप्सराओं'की संगतिको बतला सकें, तो कदाचित् इन्द्रके अप्सराओंका राजा

अथवा शासक होनेका तात्पर्य्य क्या है, यह स्पष्ट हो जाय और लोकमतके क्रमका भी पता लग जाय।

निघण्टुमें 'करुण' और 'अपः' कर्म्मके २६ नामोंमें गिनाये गये हैं। अतः 'करुण' और 'अपः' एक अर्थवाले हैं (निघण्टु, अ० २,)। "कर्म्म कस्मात् क्रियत इति सतः" (निरुक्त, अ० ३, खं० २) (जो किया जाय, वह कर्म्म कहलाता है)। कर्म्म सत्ता या व्यक्तिका बोधक है अथवा जो कारक व्यक्ति करे, वह कर्म्म कहलाता है। "अप्सु सरतीति अप्सराः। अप्सारिणी भवति। अप्सरा कस्मात् सा हि" (जो कर्म्मोंमें चलें, उनको अप्सरा कहते हैं); जिस प्रकार समान गतिवाले समूहको सेना कहते हैं। समान कर्म्म करनेवाले व्यक्तियोंके समूहको यदि हम 'अप्सराः' नामसे पुकारें, तो कदाचित् अनुचित न होगा।

यास्काचार्य्यने उर्वशीको अप्सरा बतलाया है। उर्वशी विद्युत् और कर्म्म तथा ज्ञानसे युक्त स्त्रीको कहते हैं।

निरुक्तमें उर्वशीका निर्वचन तीन प्रकारसे किया गया है। तीनों ही निर्वचन शिक्षात्मक हैं और उर्वशीके दैवी वेश्या या परी होनेकी बातका खण्डन करते हैं। तीनों निर्वचनोंको, अपने विचारके साथ, पाठकोंके सामने रखनेके लिये क्षमा चाहता हूँ।

उर्वशी = उरु×अशी। (१) उरु अभ्यश्नुते। (२) उरुभ्यां अश्नुते। (३) उरुर्वा वशोऽस्याः।

(१) वह बहुव्यापक होती है। यह गुण विद्युत्का है। विद्युत् बहुत व्यापक होती है और स्त्री भी बहु-गुण-व्यापिका होती है।

(२) दो शक्तियोंसे व्याप्त होती है। विद्युत् पक्षमें धन और ऋण उसकी दोनों शक्तियाँ प्रसिद्ध हैं। ज्ञान और कर्म दूसरे पक्षमें प्रसिद्ध शक्तियाँ हैं। ज्ञान और कर्म्म अथवा धन और ऋण इन दोनों शक्तियोंसे युक्त तथा व्यापक सत्ताको उर्वशी कहते हैं। किन्हीं सज्जनोंने उरुको उरु जाँघ अर्थवाला पढ़ा है। यह असमर्थ है।

(३) इसका वश बहुत होता है। आकाश विद्युत्की शक्तिसे परिपूर्ण है और पृथ्वीपर भी इसकी शक्ति बहुत है; अतः विद्युत् उर्वशी है।

स्त्रीका वश बहुत है। ज्ञान और कर्मसे युक्त स्त्रीका प्रभाव बहुत होता है। केनोपनिषद्‌के तीसरे खण्डमें एक शोभमाना हैमवती उमा नामिका स्त्रीने ही इन्द्रको यह बतलाया था कि, जो यज्ञ देवताओंके मध्यमें प्रकट हुआ है, वह ब्रह्म ही है।

अप्सरा भी उर्वशीका नामान्तर है। विद्युत् जलसे प्रज्वलित होता है, जैसे अग्नि काष्ठसे जलता है। निरुक्तकार अप्सराका एक और निर्वचन करते हैं—वह रूपवती भी होती है। विद्युत् या स्त्रीके रूप प्रसिद्ध हैं।

विद्युत् वस्तुतः उर्वशी है। इसको अप्सरा भी कहते हैं। विद्युत्का स्वामी इन्द्र परमात्मा है।

अग्निसे परमात्माका ग्रहण होता था। प्रो० मैक्समूलर अपने "संस्कृत-साहित्यके इतिहास"में भी इसी पक्षका समर्थन करते हैं। अग्नि परमात्माका नाम है। परमात्मा हमारी भक्तिकी प्रतीक्षा करता है। जिस समय हमारा चित्त परमात्माकी ओर जाता है और उसको जाननेकी इच्छा हममें तीव्र होती है, तब परमात्माकी प्राप्तिमें जो हमारे पापरूपी अवगुण या दोष बाधक हैं, नष्ट होने लगते हैं। तत्पश्चात् परमात्माकी प्राप्तिसे अथवा दोषोंके नाशसे हम परम पदको पा जाते हैं। परमात्मा अग्निने इस भौतिक अग्निको उत्पन्न किया है। यह अग्नि भी वसु है। पृथिवीके भीतर जो अग्नि है, उसीके कारण पृथिवी पृथिवी है और हम सब प्राणी मात्र इसके ऊपर बसे हुए हैं और उस व्यावहारिक अग्निको हम पृथिवीके ऊपर प्रज्वलित करते हैं। इसका पृथिवीके मध्यस्थित अग्निसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिस समय पृथिवीके मध्यमें अग्नि नहीं रहेगा, पृथिवीके ऊपर हम आगको नहीं जला सकेंगे और अग्निके गुण

होनेके साथ ही जल पृथिवीसे लुप्त हो जायगा। समुद्र समुद्र न रह जायँगे और ऐसे बड़े-बड़े गड्ढोंके समान दीख पड़ेंगे, जैसे कि, चन्द्रमामें दिखलायी पड़ते हैं।

अग्नि देवता है; परन्तु उपास्य नहीं। उपास्य देव परमात्माका यह बोधक है। इसकी शक्ति परमात्माकी शक्ति है। इसका तेज, वास्तवमें, परमात्माका है।

पाठक, प्रायः सब-के-सब वेदमन्त्र परमात्माके ही बोधक हैं, चाहे उसको हम अग्निके नामसे पुकारें, वायु-के नामसे आह्वान करें वा सूर्य्य शब्दसे सम्बोधित करें।

उस परमात्माका आह्वान एक वचन, द्विवचन और बहुवचनमें भी होता है। इस कारण यदि परमात्माको द्विवचन वा बहुवचनमें सम्बोधित किया जाय, तो पाठकों-को घबराना नहीं चाहिये; क्योंकि "एक आत्मा बहुधा स्तूयते।"

वेदमें देवता क्या अर्थ रखता है, इसको यास्काचार्य्य-ने निरुक्तमें अच्छी प्रकारसे सिद्ध किया है। देवतासे तात्पर्य्य उस विषयका है, जिसका निरूपण किसी मंत्र वा सूक्त विशेषमें किया गया है। निरुक्तके मतको रखकर, देवतासे क्या-क्या सिद्ध होता है, यह यदि अवसर प्राप्त हुआ, तो कभी आगे पाठकोंके समक्ष रखूँगा।

अग्नि, वायु आदि जो भौतिक हैं, वह कदापि पूज्य नहीं हैं। वह सब केवल उसी परमात्माका निरूपण करते हैं और इसी आशयको यास्काचार्य्य (निरुक्त,, ७ अध्या०, ४ खण्ड) इस तरहपर प्रकट करते हैं—

"विपक्षोका प्रश्न यह होता है कि, वेदोंमें (अदेवता) पूजाके अयोग्य द्रव्योंकी (देवतावत्) पूज्य द्रव्योंके समान स्तुति की जाती है; जैसे, अश्वसे लेकर ओषधिपर्यन्त द्रव्य, उलूखल, मूसल आदि। उत्तर इसका यह है कि, जिस अर्थके प्रकाशकी कामना करता हुआ सर्वद्रष्टा परमात्मा जिस देवतामें इस अर्थके स्वामित्वकी इच्छा रखता हुआ, जिस देवताके लिये उस अर्थके वर्णनको प्रयुक्त करता है, वह मंत्र उस देववाला होता है।" यदि इससे भी वह तृप्त न हो, तो यास्काचार्य्यका उत्तर यह है कि, "वेद द्वारा यह प्रत्यक्ष देखा जाता है कि, एक ही सर्वव्यापक परमात्मा मुख्य है। वही आत्मदेव सर्वशक्तिमत्त्वादि अनेक-विध ऐश्वर्य्योंके होनेके कारण वेदोंमें अनेक नामोंसे पूजित किया जाता है। अन्य सब देव उसी एक परमात्माके एक अङ्गमें आ जाते हैं।

किन्हीं विद्वानोंके मतसे अश्वादि द्रव्योंकी कारण-परम्पराके विचारसे एक आत्माकी अनेक नामोंसे, वेदोंमें, ऋषिगण, स्तुति करते हैं।

परमेश्वरके सर्वत्र व्यापक होनेसे वह एक अनेक नामोंसे पूजित किया जाता है। अपनी व्यापकताके कारण वह अनेक नामोंका भागी बन सकता है।

सारे विश्वके पदार्थ किसी-न-किसी प्रयोजनके लिये पैदा हुए हैं। इनमेंसे कोई निष्प्रयोजन नहीं है, अतः यह कर्म्मजन्मा हैं। चूँकि यह परमात्माकी सामर्थ्य-से उत्पन्न हुए हैं; अतः आत्मजन्मा हैं। इनका रथ परमात्मा ही है। इनका आयुध परमात्मा ही है। इनके बाण भी परमात्मा हैं। प्रत्येक देवका सर्वस्व परमात्मा ही है। दूसरे शब्दोंमें अश्व, रथ आदि सब देवता परमे-श्वरवाची हैं और इन्हीं देवताओंमें हमें परमात्माका विचार करना चाहिये। जो ऐसा करता है, उसको ऋषि कहते हैं कि, "ते मन्ये विदितम्।"

कविवर "बीरन"

श्रीयुत गोपाल सिंह नेपाली

"The remembrances of the great poets and writers of the nation are above the idols of the gods in the temple."

——*A man of letters*.

जिस तरह निर्मल जलकी एक छोटी-सी धारा अपनी 'पहाड़ी चाल'को समाप्त कर तराईमें आनेके पहले कई छोटी-मोटी धाराओंसे मिलकर अपनी छोटी-सी धारा और भी मोटी बना लेती है, और तभी वह पूर्णताको पहुँचती भी है, उसी तरह आजसे कई वर्ष पूर्व, काव्य-क्षेत्रमें उतरनेके पहले, मैं भी ऐसी ही निर्मल धाराकी खोजमें था। फिर एकके बाद दूसरी चोटी लाँघते ही वैसी धारा मुझे मिल भी गयी।

वह धारा थी कविवर "बीरन" जीके शिक्षक होनेके नाते उत्तरदायित्वपूर्ण जीवनकी, उनके हिन्दी-प्रेमकी और उनकी हमारे-जैसे सैकड़ों नवजवानोंके मैले मनको धो डालनेवाली वैसी-वैसी धार्मिक कविताओं— Religious lyrics— को, जैसी-जैसी कविताओंको बदौलत 'कूपर' (William Cowper) आज 'महाकवि कूपर' और 'रवीन्द्र' 'कवीन्द्र' बन गये। उन्हीं गुरुदेवके सम्बन्धमें आज कुछ लिखूँ, यही इरादा है।

कविवर "बीरन"जीका पूरा नाम है भाषाचार्य प० महावीर सिंह "बीरन"। आप हिन्दी-संसारमें मानसलहरी, नलदमयन्ती-नाटक, मनोजशतक, विवाहोत्सव आदिके लेखकके नामसे परिचित हैं। आप वेदान्त तथा अध्यात्म-विद्या (Meta Physics) के पहुँचे हुए पण्डित और 'चम्पा-रण-चन्द्रिका' (हिन्दी साप्ताहिक) के भूतपूर्व सम्पादक हैं। आप 'गहरवार' वंशके राजपूत और काशीसे दस कोस दूर कादिराबादके निवासी हैं।

अब आप अपनी वृद्धावस्थाके कारण साहित्य-क्षेत्रसे एक-दम अलग हो गये हैं।

एक अँग्रेजका कहना है, "The most interesting and fascinating study in the world is the study of

human beings and their personalities." यानी संसारमें मनुष्यों और उनके व्यक्तित्वका अध्ययन ही सबसे सुन्दर और मनोरंजक अध्ययन है। है भी बात ठीक; क्योंकि संसार-रंगमंचका प्रधान पात्र मनुष्य ही है और मनुष्यमें व्यक्तित्व ही सब कुछ है। इसलिये सबसे पहले हम यहाँ श्रद्धेय "बीरन" जीके व्यक्तित्वपर ही कुछ प्रकाश डालेंगे।

आपका व्यक्तित्त्व किसीसे उधार लिया हुआ नहीं, खास अपना 'पेटेण्ट' है। हाँ, यह हो सकता है कि, स्व० साहित्याचार्य्य प० अम्बिकादत्तजी व्यासके प्रभावशाली व्यक्तित्वका कुछ असर उसपर पड़ा हो। आपका यह व्यक्तित्व, यदि हम स्व० रानाडेकी भाषामें कहें, तो 'भूत' और 'वर्तमान'का सम्मिश्रण है। पोशाकोंमें वह प्राचीनताका आवास और काट-छाँटमें नवीनताकी यह बानगी, दोनों मिलकर आजकलकी 'नयी रोशनी'में अपना अलग स्थान रखते हैं! जो आदमी स्वयं वैदान्तिक, कवि और नाटककार है, उसमें यदि वैदान्तिकोंकी सरल साधुता, कवियोंके दिमागकी लम्बी दौड़ान और ऊँची उड़ान तथा नाटककारोंके विभिन्न भाव दरसानेकी क्षमता आयी, तो क्या आयी! यह तो स्वाभाविक ही है। लेकिन जब हम यह देखते हैं कि, आप 'पण्डित' होते हुए भी प्राचीनताकी नींदमें नवीनताका मधुर स्वप्न देखते हैं, तब हमें यह कहना ही पड़ता है कि, आपका आजतकका मानव-जीवनका अध्ययन दुतर्फा रहा है,—एक नयी दुनियाका और दूसरा पुरानी दुनियाका। आपको 'नवीन भारत'से उतना ही स्नेह है, जितना कि, 'प्राचीन भारत' से प्रेम है। "बीरन" दो हैं—एक पुराने ढरेंके और दूसरे नये ढाँचेके! लेकिन अब दोनोंका नामोनिशान मिटकर 'एक' हो गया है। शायद आपमें यह अनोखा और सुन्दर सम्मिश्रण कविताके ही करते हुआ हो; क्योंकि "Poetry is the centre in which all arts unite." यानी—

"रुचिर रसात्मक काव्य-केन्द्र अस अनुपम अभिनव,
आई आप-सों-आप मिलहिं जहँ ललित कला सब।"×

फिर आपकी नम्र बोली और मधुर भाषण वे चीजें हैं, जिनके लिये किसीको भी आपकी ओर आकृष्ट होना पड़ता है। यदि कोई अनाथ भूलकर आपके पास पहुँच जाय, तो कम-से-कम थोड़ी देरके लिये ही सही, वह अपनी बेकसी भूलकर अपनेको सनाथ समझे—इतनी विशालता है आपके हृदयमें। कुछ ही दिन हुए हिन्दीके एक मासिक पत्रके सम्पादक, आपसे पहले-पहल मिलनेके बाद, बातचीतमें इन पंक्तियोंके लेखकसे कहने लगे, "जो कुछ हो, पण्डितजी हैं बड़े सज्जन; आदमी बहुत अच्छे हैं।" आपमें घमण्ड नहीं,—यह ठीक है; पर हिन्दुत्वका अभिमान भी कुछ कम नहीं। आप झूठे सम्मानके भूखे नहीं; फिर भी आत्म-सम्मानका खयाल भी काफी रखते हैं।

ये तो हुईं वे बातें, जो आपके व्यक्तित्वमें अपनी विशेषता रखती हैं; लेकिन एक बात और है, जिससे कम-से-कम हम हिन्दीवालोंको तो बड़ी हानि पहुँची है! वह यह कि, आजसे नहीं, शुरूसे ही आपमें बेहद असावधानी रही है। जो आदमी बुढ़ापेमें इतना असावधान हो, वह अपनी तरुणाईमें कितना असावधान रहा होगा—इसका अन्दाज लगाना कठिन है। इस असावधानीसे आज आपके पास न तो अपनी (प्रकाशित और अप्रकाशित) रचनाएँ ही हैं और न स्व० साहित्याचार्य प० अम्बिकादत्त व्यास, साहित्य-सरोज राजा कमलानन्द सिंह तथा सम्पादकाचार्य्य प० रुद्रदत्त शर्माकी लिखी अनुपम चिट्ठियाँ ही!

पर हमारी किस्मतमें बदा हो, तब तो! आज महाकवि गालिबकी पाँच सौ चिट्ठियाँ पुस्तक-रूपमें प्रकाशित कर 'उर्दू-साहित्य' धनी बन जाता है और हम अपनी अनुपम चिट्ठियों-

× कविरत्न प० सत्यनारायणजीकी जीवनी (पृष्ठ—९८)।

को दीमकके मुँहमें झोंक देते हैं! आज महाकवि 'शेली'की पुरानी हस्तलिखित चिट्ठियाँ पा जानेपर तमाम 'इङ्गलैण्ड' एकबारगी नाच उठता है और 'फ्लीट स्ट्रीट'में जलसा होने लगता है; और, हम अपनी अनुपम चिट्ठियाँ खोकर 'इलाहाबाद' (सम्मेलन-कार्य्यालय) में बैठे-बैठे सिर धुनते हैं! खैर। एक दिन हमने इस बातपर आपसे अपना सख्त अफसोस जाहिर किया था। आप हँसते हुए बोले, "क्या कहें! उस समय जवानीको उमंगमें मैं यही समझता रहा कि, ऐसी-ऐसी चीजें, जिन्दगी रही, तो कितनी ही मिलेंगी! मैंने इस ओर कुछ ध्यान दिया ही नहीं। अब तुम्हारे साथ-साथ मुझे भी अफसोस ही होता है!"

आपका स्वभाव भी कुछ कम संकोची नहीं! बरसों हुए प० शुकदेवबिहारी मिश्रने आपके पास एक पत्र लिखा था। उन्होंने अपने "मिश्र-बन्धु-विनोद"में देनेके लिये आपकी संक्षिप्त जीवनी माँगी थी। लेकिन आपने अपने स्वाभाविक 'मैनर'से यहाँतक काम लिया कि, मिश्रजीके पत्रका उत्तर भी न लिख भेजा! हमारे पूछनेपर कहने लगे, "अरे क्या होगा जी, हमारे-जैसे कितने हो साहित्यिक हिन्दी-संसारमें वर्त्तमान हैं!" कुछ समय गुजरा, विहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके प्रधान मन्त्री श्रद्धेय बाबू रामधारी प्रसादने आपसे आपकी संक्षिप्त जीवनीके लिये तकाजा किया था। मालूम नहीं, इसमें बाबू साहब कहाँतक सफल हुए। दूरकी बात जाने दीजिये, आपकी सारी रचनाओं (Works) का फिरसे सम्पादन करने तथा आपकी एक आलोचनात्मक जीवनी तैयार करनेमें मुझे ही जैसी-जैसी दिक्कतोंका सामना करना पड़ रहा है, वह मैं ही जानता हूं! यही कारण है कि, नवीन हिन्दी-साहित्यिकोंमें बहुत ही कम ऐसे होंगे, जिनसे आपकी जान-पहचान और भेंट-मुलाकात हो।

४०, ४६ वर्ष पहले पटनेकी साहित्यिक मण्डलीमें प० शालग्राम तिवारीका बड़ा सम्मान था। "बीरन"जीने उन्हींसे व्रजभाषामें कविता करना सीखा और उनके साहित्य-प्रेमसे विशेष प्रभावित भी हुए। फिर तो आपने 'बेतिया' आकार हिन्दी-प्रचारके लिये कई एक सभा-सोसाइटियाँ खोलीं और इसी पुण्य-कार्य्यमें बरसों बिताये। यहाँ तक कि, अछूतोंको भी हिन्दी सीखनेके लिये आप बराबर उत्साहित करते रहे। एक अवसरपर एक हिन्दी-प्रेमी सज्जनने कहा था कि, "बेतिया" (चम्पारन) में हिन्दी-प्रचारका बहुत-कुछ श्रेय इन्हीं महाशय (पण्डितजी) को प्राप्त है।"× एक समयकी बात है, बेतिया-राज-स्कूलमें, सरस्वती-पूजन-महोत्सवके लिये, शिक्षकों तथा छात्रोंकी एक मीटिंग बुलायी थी। इसके लिये मैंने ही एक नोटिस लिखी और उसपर दस्तखत करवानेके लिये आपके पास ले गया। नोटिस अंगरेजीमें थी। आप देखते ही बोले, "हुँह! मनावेंगे सरस्वती-पूजा और नोटिस लिखेंगे अंगरेजीमें! बेचारी हिन्दीकी ओर इतनी अच्छी निगाह क्यों है?" और, नोटिस फाड़कर फेंक दी। मैं बेतरह शर्मिन्दा हुआ। फिर, जब हिन्दीमें एक दूसरी नोटिस लिखी, तब जाकर कहीं उसपर आपका दस्तखत करा पाया!

आप न तो 'पॉलिटिशियन' ही हैं और न राजनीतिकी कलाबाजी ही जानते हैं। आप एक धर्मनिष्ठ साहित्यिक हैं और राजनीतिसे कोसों दूर रहते हैं। मेरा मतलब उस 'पालिटिक्स'से है, जैसा इन दिनों उसका अर्थ लगाया जाता है। यों तो एक लेखकके कथनानुसार "Naturally a man is a political animal." यानी मनुष्य स्वभावसे ही राजनीतिक जन्तु है। फिर भी आप अँग्रेजी साहित्य-महारथी 'बर्नार्ड शॉ'

× बिहार प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सन् १९२० वाले अधिवेशनमें पठित स्वागत-समितिके अध्यक्षका भाषण। —लेखक

(Bernard Shaw) की तरह यह तो कभी नहीं कहते कि, "इन दिनों वे ही पालिटिशियन हैं जो सोमवारको प्रतिज्ञा करते, मंगलको तोड़ते और बुधको फिर प्रतिज्ञा करते हैं—शनैश्चरको उत्सुक जनताकी बड़ी संख्याओंके द्वारा फिर (पार्लमेण्टके लिये) चुने जाते हैं !" × राजनीतिसे इतनी नफरत तो नहीं।

दिसम्बर सन् १८८७ ई०से बेतियाके चम्पारण-चन्द्रिका प्रेससे एक हिन्दी साप्ताहिक पत्रिका प० भुवनेश्वर मिश्रके सम्पादकत्वमें निकलती थी। नाम था 'चम्पारण-चन्द्रिका'। १८८९ ई० में आप पहले पहल बेतिया आये। संचालकके अनुरोधसे मिश्रजी (सम्पादक)के चले जानेपर आपने पत्रिकाका सम्पादन-भार अपने ऊपर लिया। तबसे लेकर सन् १८९३ ई०तक आप बराबर 'चन्द्रिका'का सम्पादन करते रहे। हिन्दी-माताकी पूजा करनेकी लगन ऐसी लगी थी कि, दिन भर प्रेसमें ही रहते और रातको भी वहीं—लोहेकी कलके सामने ही—सोते थे ! इसमें मिलते थे कुल २५-३० रुपये मासिक ! अनन्तर, किसी विशेष कारणसे, संचालकके माल-असबाब जब्त होनेसे प्रेस भी जब्त हो गया और 'चम्पारण'के आकाशसे 'चन्द्रिका' भी विलीन हो गयी ! प्रेसके साथ-साथ आपकी लिखी दो अप्रकाशित पुस्तकों (चम्पारनके इतिहास और 'गीता'के पद्यानुवाद)की हस्तलिखित प्रतियाँ भी नीलामपर चढ़ा दी गयीं !

अभी हालमें ही मैंने आपसे तीन-चार सवाल किये थे, उनका आपने इस तरह उत्तर दिया था—

प्र०—क्या हमारा यह अन्दाज ठीक है कि, आपपर गोस्वामी तुलसीदासजीकी जबर्दस्त छाप है ?

उ०—हाँ, ठीक है ; पर साथ-साथ 'कबीर'की रचनाओंकी भी कुछ कम छाप नहीं।

प्र०—आप व्रजभाषाके कवि हैं। अब लोग व्रजभाषाको उतना पसन्द नहीं करते। इससे आपको किसी तरहका दुःख तो नहीं है ?

उ०—नहीं जी, दुःख क्यों होने लगा ! बल्कि मैं तो और खुश हूँ। ऐसा होना तो स्वाभाविक ही है। हाँ, इतना अवश्य कहूँगा कि, कविताके अन्दर जितना भाव मैं व्रजभाषामें भर सकता था, उतना खड़ी बोलीमें नहीं भर सकता।

प्र०—आपके जीवनका सबसे बड़ा अरमान क्या था ? और, अब वह पूरा हुआ या नहीं ?

उ०—छोटेपनसे ही मेरी यह इच्छा थी कि, मैं पढ़कर संस्कृत और हिन्दीका जनसाधारणमें खूब प्रचार करूँ और जहाँतक हो सके, मेरा जीवन हिन्दी-सेवाका ही जीवन रहे। आज मेरा यह अरमान पूरा भी हुआ। मैं सन्तुष्ट हूँ और अब जबतक इस संसारमें हूँ, इसी खुशीमें मेरे दिन बीता करेंगे !

प्र०—आपने अपने जीवनमें कई पुराने साहित्यकोंके दर्शन किये थे। क्या आप उनके बारेमें कुछ कहेंगे ? मेरा मतलब भारतेन्दु, व्यासजी, रुद्रदत्त शर्मा और राजा कमलानन्द सिंहसे है।

उ०—भारतेन्दुसे तो मेरी कोई जान-पहचान न थी। अपने जीवनमें मैंने उन्हें केवल एक ही बार देखा—वह भी बनारसमें। वे बदनके मोटे-ताजे थे। ऊँची-सी टोपी पहनते थे। रंग गोरा, चेहरा बड़ा ही भव्य था। व्यासजीसे मेरी जान-पहचान पहले पहल 'खड्गविलास प्रेस', पटनामें हुई थी। उनका धार्मिक व्याख्यान बड़ा ही ओजस्वी होता था। कहाँ-कहाँकी बातें सुनाकर अपने भाषणको वे बहुत ही रोचक बना देते थे, जिससे सुननेवाले मन्त्रमुग्ध

× Now politicians who spend monday in making promises, tuesday in breaking them, and wednesday in being found out are re-elected by enthusiastic majorities on 'saturday. !
—Bernard Shaw.

ही रहते थे। उनके निवास-स्थानपर एकान्तमें, मैं उनसे हमेशा धार्मिक प्रश्न किया करता था। वे अपने तर्कसे मुझे निरुत्तर तो कर देते थे; लेकिन फिर भी सन्देह नहीं मिटता था। इसलिये उन्होंने मुझसे कह रखा था कि, जब-जब आपके दिलमें शंका उत्पन्न हो, मुझे लिखियेगा। मैं पत्र-द्वारा उसका समाधान कर दिया करूँगा। प० रुद्रदत्तजी शर्मा मेरे बुलानेपर बेतिया पधारे थे। यह बात संवत् १९९२-९३की है। उन्होंने तीन दिनोंतक यहाँ (बेतिया)की जनताके सामने धार्मिक व्याख्यान दिये थे, जिससे राज्यको पण्डित-मण्डलीमें बड़ी खलबली मच गयी थी। शर्माजी उस समय 'आर्यावर्त्त'के सम्पादन-कार्यसे अलग हो चुके थे। मेरी यह शिकायत करनेपर कि, आर्य्य समाजमें योग-शास्त्रपर एक भी अच्छा ग्रन्थ नहीं, शर्माजी बोले, "नहीं, है तो, 'पातंजल' सूत्रोंपर वेदव्यासके भाष्यका अनुवाद मैंने ही किया है। वह ग्रन्थ तुरत ही निकलेगा। उसे आप मँगाकर पढ़ें'।" उन्होंने मुझे अपनी लिखी दो-तीन किताबें (स्वर्गमें सबजेक्ट कमेटी आदि) भी दी थीं। वे शायद कहीं पड़ी हों। मैं खोजूँगा। 'साहित्य-सरोज' राजा कमलानन्द सिंहजीसे मेरी जान-पहचान उस समय हुई थी, जब मैं बनैली-नरेशके ब्याहमें निमन्त्रित होकर उनके यहाँ गया हुआ था। उन्होंने भी मुझे कई किताबें दी थीं और "विवाहोत्सव"की प्रशंसा करते हुए कहा था कि, "पण्डितजी, अच्छा हो, यदि आप राजपुतानेके इतिहासके आधारपर एक हिन्दी नावेल लिखें; क्योंकि अब लोग उपन्यास ही बहुत पसन्द करते हैं। उपन्यासमें राजपूतोंको वीरताका ओजस्वी वर्णन रहे।"

प्र०—व्यासजी और शर्माजीमें किसका व्याख्यान मनोहर होता था?

उ०—सरस भाषण देनेमें तो शर्माजीको ही कमाल हासिल था। वे श्रोताओंको घुमा-घुमाकर उस स्थानपर ले जाते थे, जहाँ पहुँचनेपर किसीका भी हृदय गद्गद हुए बिना नहीं रह सकता।

प्र०—इन दिनों जो हिन्दीका सुन्दर उत्थान हो रहा है, क्या उसपर आपको कुछ गर्व है?

उ०—हाँ, निस्सन्देह! मुझे इतना गर्व होता और हो रहा है कि, मैं कह नहीं सकता!

प्र०—हिन्दी-प्रचारके बारेमें आप क्या कहते हैं?

उ०—(कुछ रुककर) मैं तो शुद्धि-सभा, आर्य्य-समाज, हिन्दू-महासभा आदि हिन्दू-संस्थाओंसे बढ़कर हिन्दी-प्रचार-सभाको ही लाभदायक समझता हूँ। अच्छा हो, यदि हमारी सारी शक्ति हिन्दीके प्रचारमें ही लगे। इससे हमारी हिन्दू-संस्कृतिका भी, आशासे, अधिक प्रचार होगा; और, इसीसे हमारे सारे उद्देश्य भी सिद्ध होंगे। इससे अधिक क्या कहूँ? आयर्लैंडका उदाहरण हमारे सामने ही है।

आशा है, श्रद्धेय पण्डितजीकी सारी (अप्रकाशित और प्रकाशित) रचनाओंका आलोचनात्मक परिचय लेकर मैं जल्दी ही पाठकोंके सामने उपस्थित होऊँगा।

चुड़ैल

बा० श्रीमद्भागवतप्रसाद वर्मा

एक

भगत हीरा आदमी था इकबाली। उसके मरते ही, रामदास ही नहीं, समूचा टोला बेमाथका हो गया। कोई डाँट-डपट करनेवाला न रहा। जवान छोकड़े शोहदे और सैलानी हो गये; मानों उनके पैरोंकी बेड़ियाँ खुल गयीं! भगतका वह चौपाल, जहाँ रोज घड़ी-आध-घड़ी रामायण हुआ करती थी, जहाँ आये दिन सन्तोंकी धूनी जला करती थी, अब ख़ासा चण्डूख़ाना हो गया—उच्छृङ्खल प्रेमी-प्रेमिकाओंका प्रच्छन्न मिलन मन्दिर!

एक साल पहलेकी बात।

पहले तो भगतने अपने जीको बहुत समझाया; लेकिन हौसलेके ज़बर्दस्त धक्केसे उसके धैर्यका पाँव उखड़ गया; औलादकी हविसने बुढ़ापेकी मिन्नतोंपर मिट्टी डाल दी और महाजनने ऐसा जोश दिया कि, एक अल्हड़—लेकिन ख़ूबसूरत—छोकड़ी झमसे भगतके घर उतर आयी।

उसका नाम था रेखा।

× × × × ×

भगत जबतक ज़िन्दा रहा, रेखा घरमें राजरानी बनकर रही। अपने काम-काजसे उसे नफ़रत थी। तभी तो बाग़में जाकर सब्ज़ीकी क्यारियोंसे घास चूननेमें वह अपनी हेठी समझती थी—शानके ख़िलाफ़! यों तो जब कभी भगतकी आँखोंमें त्योरियाँ चढ़ते देखती, कुछ 'खुर-खार' कर देती। हाँ, कभी-कभी बक-बककर। भगत दाँत पीसकर रह जाता और अपने कर्म्मपर—अपने कियेपर—घण्टों पछताता।

टोलेवालियोंकी नज़रमें, रेखाके पैर लछनौत नहीं थे; इसलिये कि, साल लगते—पलक मारते—उसका सुहाग लुट गया, घरका माथ गिर गया! बिरादरीवाले उसे 'करकसा'

और गाँवकी औरतें उसे पातालकी डायन समझने लगीं! वे कहतीं · मायकेसे ही 'मत' सीखकर आयी थी, यहाँ मरद-को मारकर पक्की बन गयी। कितनियोंका तो ख़याल था—'छिनाल है, तभी तो सुहागका इतनी जल्दी धुल जाना नहीं अखरा। राज उजड़ गया और चलती है शानके साथ.........।'

रेखाके अंग-अंगमें बिखरते हुए यौवनको वैधव्यका आजन्म बन्दी बन जाना पड़ा!

दो

"भगत अपने जमानेका डकैत ओझा था। सैकड़ों भूतोंको बाँध रखा था। उसकी मृत्यु क्या हुई, डायन-भूतोंको आजादी मिल गयी! घर भूतोंका अड्डा हो गया।"

"कुछ नहीं। बस, 'दुरगा'का कोप है। दो साल हुए, आजतक घरवालोंने 'असथान' में होमतक नहीं कराया। घरमें चिराग नहीं जला। नहीं तो, यही 'दुरगा' हैं; रात-रात भर घीका चिराग जलता था। 'परब-तेहवार'के दिन सेरों घीका होम होता था; दस ब्राह्मण खाते थे। परिवार खिला रहता था · सेवक उठ गया, माईकी सेवकाई जाती रही!"

"हाँ, देवीकी ही 'किरपा'से भूतोंपर कब्जा था। देवी रूठ गयीं, घर जहन्नुम चला गया। हाथी-जैसी जमुना पाड़ी 'भुत-सँप'के काटेसे मर गयी; बे-चारेके हाथका लगाया हुआ पीपलका वैसा लहलहाता पेड़, रात-भरके अन्दर ससुरी डायनोंके करतबसे सूख गया।"

"और भाई, ऐसी बिगड़ैल औरत शायद ही कहीं हो। साँढ़िन है साँढ़िन! अपने आगे किसीको कुछ लगाती ही नहीं!......भगत भी मरती बेर मायामें फँस गया.........!"

बूढ़े रामसरनकी दालानमें चार-पाँचका मजमा बराबर लगा रहता था। उमर बहुत गिर गयी थी; वह ग़दरका जमाना देखे हुए था। मनचले लोग उसे 'चसमा' भी कहा करते थे। बात यह थी कि, जबसे उसकी आँखोंमें मोतियाबिन्दने डेरा डाला, तबसे उसका आधार चश्मा हो गया, जिसमें अब कमानीकी जगह धोतीकी मैली कोरने ले रखी थी। अपनी जवानी-में वह ओझाईके गुनमें बड़ा नाम पैदा किये हुए था। अब तो अपना सारा गुन उसने इकलौते बेटेको दे डाला था और बेटा भी बड़ा 'चलन्ता' ओझा निकल चला था।

हाँ, तो गाँजेका दम लग रहा था और साथ-ही-साथ गोलोकवासी भगत और उसकी विधवा स्त्री रेखाकी भी समालोचना हो रही थी।

भादोंका महीना। आकाशमें बादलोंने धावा बोल दिया। रोहिणी खेलने लगी। अमावसके उस सघन अन्धकार-में बिजली कौंधने लगी।

इतनेमें सरपर फटे कम्बलकी घोघी डाले रामदास आया और घबराया-सा बोला—"काकी छटपटा रही है, पेटमें 'खोंचा' हो रहा है। जरा चलके देख दो। और सुनो भाई, रोज-रोजका यह 'कुफत' सहा नहीं जाता। आज 'हस्त-नस्त' कर डालो। भूत हो, देवी हो, देवता हो—जो हो, ठिकाने लगा दो। मेरा हो, मुझे दे दो; नहीं, जिस सालेका हो, उसके यहाँ भेज दो,......हाँ!"

बूढ़े रामसरनने बेटेकी ओर इशारा किया। वह उठते-उठते बोला—"भूत है बड़ा जाबिर। खरच-खुराक पूरा लगाओ तो सालेको सात समुन्दर पार भेज दूँ।......सब सामान ठीक है न?"

"हाँ, ठीक है। चलो, देर न करो। काकी कहेगी, जाकर बैठ गया।" — रामदासने घरसे निकलते-निकलते कहा।

रामजतनने ताड़का छाता उठाया और संगी-साथियोंके साथ रामदासके पीछे हो लिया।

× × × ×

रामदासके घर।

मिट्टीके तेलका चिराग़ रो रहा था। टूटे-फूटे बर्तनोंसे घर

खचाखच भरा था। ऊपर-नीचे—तमाम, मकड़ोंने 'तारबर्की' कर डाली थी। हवाका निकास न होनेके कारण घरमें तेलकी बदबू—दम घुटानेवाली गैस—भरी थी। एक ओर बाँसकी बूढ़ी खाटपर रेखा अँाय-बाँय बक रही थी। कभी चिल्लाकर रोती, गन्दी गालियाँ बकती और कभी भीषण अट्टहासके साथ तमक कर उठ जानेको चेष्टा करती थी। कभी काटनेको झपटती और कभी सूखी मुस्कराहटके साथ गाने लगती थी -"सिवके कहलि गौरा नाहीं मनली, से नइहर रूसि गईलि ए......!"

रामजतन घरमें पैर रखते ही, अपनी मोटी शिखा खोलते-खोलते, न जाने क्या-क्या गुनगुनाया और अपने बदनमें तीन-चार बार 'छू-फू' किया। फिर, आँखें तरेरकर, डपटकर "बोला, चुप्प ! सबर कर; आज मैं ही नहीं या तू ही नहीं !" फिर रामदासकी ओर मुड़कर उसने कहा—"लाओ जी, सामान लाओ !"

ओझाके इशारेपर रेखा ज़मीनपर बैठायी गयी। उसकी दोनों शिथिल भुजाओंको दो जवान मुस्तैदीके साथ पकड़े हुए थे। सामने, आँखें बन्द किये हुए, कानोंमें उँगली दाबे रामजतन झूम-झूमकर पचड़ा गा रहा था। बीचमें कच्ची मिट्टीकी एक कड़ाही—जिसमें घीमें भिंगोये उपले और राई जल रही थी—रखी थी। दायीं ओर, मैली डलियामें, कोई आध पाव 'कौड़िया लोहबान'की बुकनी भी रखी थी।

इनके दिमाग़में यह बात क्योंकर घुसने लगी कि, रेखा सांघातिक हिस्टीरियाका शिकार हो रही है ! वहाँ तो रग-रगमें भूत भरे हुए थे।

थोड़ी देरके बाद रामजतनने रेखाकी बायीं बाँह पकड़ी, जोरोंका एक झटका दिया और अपनी ओर यहाँतक खींच लिया कि, रेखाका मुँह आगकी लपटसे सिर्फ़ 'बित्ते' भरके फासलेपर आ गया। फिर, उसने अपने दायें हाथसे बुकनी उठाकर रेखाके मुँहके सामने, आगकी लपटपर, फेंकने लगा। लपट झाँय-झाँय कर बेचारीके मुँहसे टकराकर लौट जाती थी। और रेखा, एक पिञ्जरबद्ध पक्षीकी भाँति, फड़फड़ा कर आह-आह करने लगती थी! इसके सिवा वह कर ही क्या सकती थी, उस हालतमें ?

दूसरे दिन रेखाको पहचानना कठिन हो गया। हुलिया ही बदल गयी थी ! जिन बच्चोंको वह घण्टों गोदमें लिये फिरती थी, वे ही अब उसकी सूरत देखते ही काँप जाते थे ! उसका मुँह, वह मुँह जिसे देखनेपर देखते ही रहनेको जी चाहता था, झुलस गया था! उसकी वह नीलम-सी आँखें, जिनमें कुछ ही दिन पहले घड़ों पानी था, भीतर धँस गयी थीं। बरौनियाँ—बाँकी भौंहें, जल गयी थीं; और, उसके वे होठ...... राम ! राम ! हाय रे भूत !!!

तीन

भूतोंका अखाड़ा।

हाँ, वह भूतोंका अखाड़ा था। हिन्दुस्तानमें भूतोंका वैसा अखाड़ा शायद दूसरी जगह देखनेको न मिलेगा। मानव-निवाससे दूर—बरसों पुराने विशाल आम्र-तरुओंकी गोदमें—थिनहू ब्रह्मका वह भूतैल घरौंदा, प्रति सोमवारको कुम्भ मेलेका टुकड़ा हो जाता है। वहाँ भले घरकी बहू-बेटियाँ भी पालकीपर जाती हैं—औलादके लिये। वहाँ जवान छोकड़ियोंके भी भूत भागते हैं। खपरैलकी एक छोटी-सी गन्दी कोठरीमें, टूटी-फूटी ईंटोंके स्तूपपर, पत्थरका एक टुकड़ा रखा है, यही थिनहू ब्रह्म हैं। उस दिन वहाँ सेरों नहीं, मनों घी जलता है, पावसकी बूँदोंकी तरह पैसे—अधिकतर गोरखपुरी बरसते हैं। भीतर बाबाके सेवक या स्वयम्भू प्रतिनिधि-स्वरूप तीन या चार मुस्टण्डे पण्डे हैं, सभी जवान। न विश्वास हो, कोई भीतर जाकर देख ले। सैकड़ों नहीं, हजारों लड़कियाँ—जवान औरतें, भूत खेलते वहाँ नज़र आयँगी। किसीको चक्की पीसनेका नाट्य करते पाइयेगा और किसीको कूटनेका। किसीको ज़मीनमें लोटते और किसीको नाचते

देखियेगा । गाते और रोते भी अनेक मिलेंगे । खूबी यह कि, किसीको अपने अङ्ग—अपनी इज्जतकी सुध नहीं रहती ! दर्जनों नं .... !

स्त्री-समाजकी आवश्यक वस्तुएँ भी—चूड़ियाँ, सिन्दूर, गिल्टी और काँसेके गहने, आलमोनियमके बर्तन, पीतल या अष्ट धातुकी नगदार चमकीली अँगूठियाँ, बच्चोंके लिये बाजे वहाँ बहुतायतसे मिलते हैं । सैकड़े सत्तानवे पार्चूनकी दूकानें आती हैं । कहनेको तो वह ब्रह्म-स्थान है; किन्तु है वास्तवमें वह देहाती कोर्टशिप्की जगह ! जासूसी नज़रसे देखनेपर आपको दर्जनों 'दिल्लीके दलाल' भी मिलेंगे !!

'ओझाई-मताई'में जब रामदासकी थैली हल्की हो गयी—रेखाके एक-एक गहने साहुके घर गिरो रख दिये गये, कुछ 'परतीत' नहीं पड़ी, तब टोलेकी बुज़ुर्ग औरतोंने घिनहू बाबाकी सरन लेनेकी सलाह दी । एकने कहा भी—"ओझासे जब अच्छी नहीं होती, दो-चार मासकी भी परतीत वह नहीं देता, तो बाबाके यहाँ इसे ले चलो । मुदा, पैसे-भर घी; और, जुरे तो एक पैसेका खरच है । देखो न, छगनकी माँको लगातार तीन मासतक ख़ून गिरता रहा, जबसे बाबाके यहाँ जाने लगी है, बहुत-कुछ चङ्गी हो चली है । परबतियाकी कोख डायनका ही मारा हुआ था । बेचारीकी बरसोंकी साध बाबाने पूरी की—'बंस' दिया । बड़ा चलावा है, बड़ा परताप है बाबाका ।"

"विश्वासः फल-दायकः" या भाग्यकी बात—आप जो समझिये । छः महीनोंकी ही दौड़-धूपमें रेखाने नया तन पाया । कङ्कालावशेष शरीर एक बार फिर हरा हो उठा । ऐसी दीखने लगी मानो जवानी अब फूट रही हो । बरौनियोंके अन्तरालमें सोया हुआ यौवन मुस्कराने लगा । आगमें तपकर वह आबदार सोना हो गयी । महीनोंके दबे हुए मस्ताने जोशने जगकर दिलमें गुदगुदी पैदा कर दी । जितनी देरतक वह बाबाके यहाँ रहती—बिसातीकी सजी दूकानोंको घूरती, उतनी देरतक वह बड़ी प्रसन्न रहती ; घरवालियोंके साथ हँसती—बोलती ; किन्तु घर आते ही उसका दिल उदास हो जाता । वह मन-ही-मन रोने लगती । कुछ भी पूछो, झनझनाकर जवाब देती । घरमें घड़ी-भर भी नहीं बैठती, मानों घरसे—घरकी मिट्टीसे—घरकी सूरतसे उसे भारी नफ़रत हो गयी हो ।

पहले तो घरवालोंकी आँख बचाकर, पीछे ढीठ और बेहया बनकर, वह रामजतनके यहाँ आने-जाने लगी । रामजतन कोई तीन-चार सालसे रँडुआ हो गया था । घरमें सिर्फ़ बूढ़ी माँ बच रही थी । रेखा उसे माँ कहकर पुकारती, उससे घण्टों बातें करती । कभी-कभी वह उसके घरेलू कामोंमें भी बड़े चावसे हाथ बटाती; चक्कीमें दाल दल देती, ढेँकीमें चावल छाँट देती । रामजतन जब कभी उसे भौजी कहकर पुकारता—पानी माँगता, तब उसके हृदयमें हलचल मचानेवाली गुदगुदी उठ जाती—सारा शरीर सिहर उठता ! वह झमसे लोटा उठाती, खूब माँजती और घड़ेसे पानी ढालकर रामजतनके आगे रख देती—आँखों और होठोंमें हल्की; किन्तु, सचेत मुस्कराहटके साथ ! और, रामजतन भी पानी पीता अमृत समझकर; न एक बूँद लोटेमें छोड़ता और न जमीनपर ही टपकने देता !

× × × ×

उस दिन, जब बाबाके अहातेसे सिर्फ़ चार ढीठ शोहदे, चमकते हुए छुरे दिखाकर, एक भले घरकी बेटीको ले भागे और लोगोंकी तेज हरकतोंसे बाल-बाल बच गये, तब हिन्दुओं में, कुछ दिनोंके लिये, खासी खलबली रही । रेखा वहाँ जानेसे रोक दी गयी; और, बात भी यह हुई कि, एक बार जब रेखा, बातों-ही-बातोंमें, अनायास बेहोश हो गयी—दाँत लग गये, तब रामजतनकी दी हुई पाँच फूल लौंगने जादूका काम किया । घर बैठे जब मुफ्तकी खाकमें फायदा मालूम होने लगा, तब ढाई कोस जमीन नाँपनेकी ज़रूरत ही क्या रही ?

रामजतन रेखाका देहधारी देवता होने लगा—दोनों पहलुओंसे !

× × × ×

धूमिल क्षितिजसे पूनोका चाँद झाँक रहा था । सरपर चैती फ़सलका बोझा लिये रेखा घरकी ओर, कुत्तेकी चाल, लौट रही थी। सामनेसे रामजतन आ रहा था—रेखाने अच्छी तरह देखा । उसका बहका हुआ दिल मचलने लगा—अनुकूल परिस्थिति देखकर; तभी तो उसने जान-बूझकर ठोकर खायी और 'अर्-र्-र्-धम्' हो गयी । इधर इसके प्रेममें जी-जीकर मरनेवाला और मर-मरकर जीनेवाला रामजतन भी कब चूकनेवाला था ! उसने झट जेबसे 'खैनी' तमाखू निकाली और चाल धीमी कर दी—बहुत धीमी !

जब वह पाससे होकर, आँखें नीची किये और मुस्कराते हुए. जाने लगा—चूँ तक नहीं किया, तब रेखाने टोका—

"जरा उठाते न जाओ ।"

रामजतन रुककर खैनी ठोकने लगा ।

"देर हो रही है, फिर खैनी बना लेना ।"

"एक बात पूछूँ, रेखा ?"

"उठाओ भी, देर हो रही है । कोई देखेगा तो······"

रेखा शर्मसे लाल हो गयी । चेहरा चौगुना चमक उठा ।

"तू मुझे प्यार करती है, रेखा ! बोलो ।"—बोझा उठाते हुए रामजतनने चोर-सा डरकर पूछा ।

रेखाके सरपर बोझा बैठ ही रहा था कि, हवाकी एक हलकी चोट खाकर उसका अञ्चल रामजतनके मुँहपर जा पड़ा और रामजतनके हाथ अनायास—या जान-बूझकर—रेखाके उभरे हुए गालोंसे छू गये ! रेखाने बोझा सम्हालते और आँखें नचाते हुए कहा—"दुत्" और एक—दो--तीन कदम जाते-जाते उसने पीछेकी ओर मुड़कर आँखोंसे हामी भी भर दी !

रामजतन, आँखोंमें प्राण भरकर, सामनेसे जाती हुई रेखाको देख रहा था । क्या देख रहा था, क्यों देख रहा था—यह तो वही जाने; किन्तु वह था बड़ा प्रसन्न । उसके अंग फर्र-फर्र उड़ रहे थे; मानो, वह आकाशमें उड़ा जा रहा हो !

चार

पूरे डेढ़ साल बाद ।

जबतक बात घरकी दीवारोंके ही अन्दर दबी रही, तब-तक तो एक तरहसे ख़ैरियत थी—यही कि, एक-आध ही डण्डे लगकर रह जाते थे । किन्तु जब मामला संगीन होने लगा और गाँव ही नहीं, सब जगह बात जाहिर हो गयी, तब सज़ा बढ़ा दी गयी—सिम्पुलसे रिगरस कर दी गयी । ख़ुराक कम कर दी गयी—तानोंकी चुटीली चाबुक तेज हो गयी—वजनी डण्डे लगने लगे । यह क्यों ?

रेखाके प्रसवके दिन पूरे हो रहे थे !

रामजतन रंग बेढंगा देखकर पहले ही हिरन हो चुका था ! वह कहाँ गया, ज़िन्दा है या मर गया—यह आजतक किसी-ने भी न जाना । दस्तकी बीमारीसे बाप चल बसा था और बूढ़ी माँ भी इन दोनोंकी 'हूक'से जाती रही । आफ़तके एक ही इशारेपर घरमें ताला लग गया ! भूत-परस्तोंके यहाँ भूत नाचने लगे !

घरवालों और घरवालियोंने तो रेखाको ज़िन्दा-दर-ग़ोर कर देना चाहा था, लेकिन दारोग़ा-पुलिसके डरसे इतनी हिम्मत नहीं पड़ी । हाँ, एक रोज, सबने बे-रहमीसे पीटा ज़रूर ।

बेबस रेखा निरुपाय थी ! वह जीते-जी मर रही थी । उस समय यदि कोई उससे मृत्युकी यन्त्रणा जानना चाहता, तो वह तौलकर बतला सकती थी । जब सभी सो जाते—रात झन्-झन् करने लगती, तब वह फूट-फूटकर रोने लगती और रोते-रोते भोर कर देती ! उसके रुदनमें टीस थी, दर्द था,

बेबसीकी आहें थीं ! उसका रोना सुनकर दिलवाले रो देते—उसकी हालतपर तरस खाते; बे-दिलवाले नफ़रतकी हँसी हँस देते, दाँत पीसते—'मर न जा छिनाल !'

प्रसवके दो दिन बाकी थे, तभी रेखा मर गयी—मर गयी रेखा सिसक-सिसककर, आँसुओंका बरसाती दरिया बहाकर ! घरकी बूढ़ी औरतोंने उसके पैरकी दोनों मोटी उँगलियोंमें और दोनों हथेलियोंमें, एकके ऊपर दूसरी रखकर, लोहेकी गर्म कीलें ठोक दीं ! यह टोटका इसलिये किया गया कि, एक तो रेखाकी देह भूतकी हो गयी थी, दूसरे वह पेटमें बचा लिये मरी थी !

किन्तु, तो भी टोलेवालोंका कहना है कि, रेखा भूत हो गयी है—चुड़ैल ! उन्होंने कई बार उसे, रातके तीसरे पहर, धप्-धप् उजली धोती पहने, रामदासके पिछवाड़ेवाले खेतमें, छम्म-छम्म टहलते देखा है ! कितनियोंका तो कहना है कि, दसहरेके दिनोंमें, घरके पिछवारे आकर, आधी रातको वह कराहती और रोया करती है !!

संयोग-गीत

सुना है वे आवेंगे आज,
अपना साज सजा लूँ मैं।
उनके स्वागत-हेतु बैठकर,
छोटा गान बनालूँ मैं ॥
'आओ प्रियतम' मुँहसे निकला,
अधिक न आगे कह पाया।
मनने कहा, तुझे क्या सूझी,
अरे बड़ा धोखा खाया ॥
सचमुचमें क्या लिखता था यह,
वे तो मुझमें रमे हुए।
उनकी रगमें मेरे तनके
सभी तन्तु हैं सने हुए ॥
अविरत वर्षा मादक रसकी,
पाते हो उन आँखोंमें ।
तनिक इधर भी देखो तो तुम,
क्या न मिला इन आँखोंमें ॥
उसकी निश्छलता जो चाहो,
तो इस ओर चले आओ ।
मेरे स्वार्थहीन प्रेममें,
उसकी छाया लख जाओ ॥
और देखना जो कुछ चाहो,
देखो पल भर ठहर यहीं ।
तनमें, मनमें वे ही वे हैं,
किसी औरका ठौर नहीं ॥
मुझमें, मैं-वे साथ बैठते,
हर्ष न हृदय समाता है।
मस्तीसे तब झूम-झूमकर,
मिलन-गान गाता है ॥

पं० सत्येन्द्रप्रसाद मिश्र 'पागल'

पलामू

बाबू हवलदारीराम गुप्त 'हलधर'

वर्त्तमान छोटा नागपुर कमिश्नरी, जो बिहार-उड़ीसा प्रान्तमें सम्मिलित है, प्राचीन कालमें झारखण्डके नामसे विख्यात थी। झारखण्डका अर्थ घोर जङ्गल है, जो अभी भी अपने नामको यहाँ सार्थक करता है। पलामू उसी झारखण्ड या छोटा नागपुरका एक उत्तरी-पश्चिमी जिला है, जिसके उत्तरमें गया, शाहाबाद; पूर्वमें गया, हजारीबाग, राँची; दक्षिणमें राँची और सरगूजा स्टेट; तथा, पश्चिममें सरगूजा-स्टेट और मिर्जापुर जिलेका भू-भाग है।

वर्त्तमान पलामू जिलेका क्षेत्रफल ४९१६ वर्ग मील है। इस जिलेकी आबादी, अन्तिम सेंससके अनुसार सात लाखसे कुछ अधिक है। यह छोटा नागपुरकी उस अधित्यकापर अवस्थित है, जो गया जिलेकी धरतीसे दक्षिणकी ओर उत्तरोत्तर ऊँची होती गयी है। इसकी दक्षिण, पश्चिम और पूर्वकी सीमाएं प्रायः पहाड़ोंसे घिरी हैं। दक्षिण भू-भाग ऊँचे पहाड़ों और घनघोर जङ्गलोंके लिये प्रसिद्ध है।

यह जिला पलामू, टोरी, बेलौंजा और जपला नामके चार प्राकृतिक परगनोंके मेलसे बना है। १८३४ में पलामू परगना लोहरदगा (जो अब राँचीमें सम्मिलित है) जिलेमें मिलाया गया था। फिर सन् १८९२ में पलामू उक्त तीन परगनोंको मिलाकर स्वतन्त्र जिला बना दिया गया। इस जिलेका सदर डालटेनगञ्ज है।

इस जिलेके नाम-करणका कारण इस जिलेकी प्राचीन राजधानीका "पलामू" किला है। यह बहुत पुराना और दृढ़ किला पलामू परगनेके एक ऊँचे पहाड़पर, औरङ्गा नदीके तट-पर, अभीतक खण्डहरके रूपमें, खड़ा है। अँग्रेजोंकी अमलदारी-के पहले इस भू-भागके प्राचीन राजपूत (चेरो) राजाओंकी राजधानी यहींथी। आज भी इस जिलेके घोर जङ्गलोंके अधिक निवासी चेरो और खरवार ही हैं। कहा जाता है कि, ये जातियाँ, १९ वीं शताब्दीके पूर्व, रोहतासगढ़ (शाहाबाद)के

आस-पास रहती थीं। उनके राजापर जब किसी अन्य जाति-ने आक्रमण किया, तब सोनके किनारे-किनारे भागते-भागते खरवार कोयल नदीके तटसे होकर पलामू किलेके पार्श्व-वर्त्ती घोर जङ्गलोंमें जा छिपे। सम्भव है, इस पलामू फोर्टका निर्माण उसी समयमें आरम्भ हुआ हो। इसके कुछ समयके बाद रकसेल राजपूतोंने पलामूपर कब्जा कर लिया। फिर १६ वी शताब्दीमें चेरो राजवंशका राज्य स्थापित हुआ। चेरो राजवंशवालोंने लगभग २०० वर्षोंतक स्वतन्त्र रहकर राज्य किया। इनमें महाराज मेदिनीराय सबसे बड़े शूर-वीर, न्यायी और पराक्रमी हुए थे। सोलहवीं शताब्दीके अन्तसे पलामूपर मोगलोंके आक्रमण आरम्भ हुए। पर मार्ग इतने बीहड़ थे कि, यहाँ वे जम नहीं सके। पलामू किलापर,अन्तिम चढ़ाई बिहारके शासक दाउद खाँकी हुई; पलामू किला घन-घोर लड़ाईके बाद तोड़ा गया। पुनः कर देनेके करारपर दोनोंमें सन्धि हुई। लगभग १७७० ई० के बाद पलामूमें अँग्रेज कम्पनीका आवागमन आरम्भ हुआ। चेरो राजवंश उस समय अपने घरेलू झगड़ेमें व्यस्त था। अतएव येन-केन प्रकारेण पलामू अँग्रेज कम्पनीके करद राज्यमें संयुक्त हुआ! तब भी उनके झगड़े नहीं मिटे। क्रमशः चेरो राजवंशकी निर्बलता बढ़ती गयी। अन्तिम राजा चुरामन राय दिवालिया बन गया। अँग्रेज सरकारने पलामूका परगना खरीद लिया और तबसे वह 'खास महाल'के नामसे शासित हो रहा है।

सोन नद पलामूकी उत्तरी सीमाको स्पर्श करते हुए बहता है। कोयल इस जिलेकी प्रधान नदी है। यह राँचीके बरवे पहाड़से निकलकर पश्चिमकी ओर बहती है। लगभग ३५ मील बहनेके बाद उत्तरको ओर जाती है। यह पलामूके मध्य होकर बहती हुई रोहतासगढ़के पास सोनमें जा मिलती है। इसकी सहायक नदियोंमें अमानत, ओरंगा और बूढ़ी हैं। कनहर नदी सरगूजाकी ओर बहती है। इस नदीमें बड़े-बड़े अजगर पाये जाते हैं

यों तो उत्तर भू-भागको छोड़कर सारा जिला छोटे-बड़े जंगलों और पहाड़ोंसे आच्छादित है; पर सबसे बड़ा पहाड़ नेतरहाट है, जो आजकल बिहार गवर्नरका ग्रीष्मावास बना हुआ है। यहाँ ज्येष्ठमें भी रजाईका जाड़ा पड़ता है।

इस जिलेमें कोयला, लोहा आदिकी प्रचुरता है। इसके अतिरिक्त शीशा, ताँबा, अबरख, सीमेण्ट, चूना, स्लेट, पत्थर आदि भी पाये जाते हैं। कोयला रजहरा, डालटेन-गंज, हुटार, औरंगा आदिमें प्रचुर परिमाणमें भरा पड़ा है। अब निकालनेका प्रबन्ध हो रहा है। रजहरा चालू है। सीमेण्टका कारखाना जपलामें अच्छा काम कर रहा है।

पलामूमें वर्षा साधारण, जाड़ा खूब और गरमी आफतकी पड़ती है। डालटेनगंजके उत्तर और आस-पासके देहातोंका जलवायु सुखद और स्वास्थ्यकर है। पर नितान्त पलामूके दक्षिण, महुआडाँड़, फेड़, गारू आदिका जलवायु अस्वास्थ्यकर है।

इस जिलेमें धान, मकई, मड़ूआ, सरसों, तीसी, तील, आदि अधिक पैदा होते हैं। भैंसें अधिक पाली जाती हैं, जिससे घीकी आमदनी अधिक है। घीका दूर-दूर चालान भेजा जाता है। इस जिलेमें महुआ और पलासके वन अधिक हैं। यहाँके निवासियोंका एक प्रधान धन लाह है। जब लाहकी तेजी रहती है, तब जंगलोंके गाँवोंमें रात-दिन "मानर" बजते रहते हैं। शराबकी भट्ठियोंमें दिन-रात हो-हल्ला मचा ही रहता है। इन दिनों हलवाई, बजाज, मनिहारीके दूकानदार आदिकी बाँछें खिल उठती हैं। सचमुच लाहकी तेजी यहाँके मुर्दोंमें भी जान ले आती है। पहले कचरी (पेंहटा), कपास, चिरौंजी और धूनाकी भी खासी आम-दनी होती थी। पर लाहकी तेजीने इन सबपर पानी फेर दिया है।

यहाँके खास निवासी,खरवार और चेरो हैं। ये जनेऊ लेते हैं और अपनेको राजपूतकी श्रेणीमें रखते हैं; पर चाल ढाल

जंगली और भाषा-भेष अन्य जिलोंसे एकदम भिन्न है। अहीरोंकी संख्या भी बहुत है। इनका काम है खेती और गाय, भैंसका पालन-पोषण। भेष-भूषा, रहन-सहन प्रायः जंगलीके-से हैं। बोली मगही और भोजपुरी मिली हुई है। इनके अतिरिक्त यहाँ अन्य जिलोंके बाशिन्दे भी बहुतायतसे पाये जाते हैं।

ई० आई० रेलवेके "सोन ईस्ट बैंक" स्टेशनसे एक ब्रान्च डालटेनगंजको गया है। यह आगेकी ओर पलामू किलेके निकट होते हुए चँदवाके पास टोरी परगनेमें बढ़ता है। वहाँसे बड़का काना होकर गोमो जंक्शनमें जा मिलता है। इस जिलेकी कच्ची-पक्की सड़कें स्वच्छ और सुन्दर हैं।

इस जिलेका प्रधान नगर, डालटेनगंज, कोयल नदीके किनारेपर बसा है। कोयलके किनारे, सड़कपर, टहलनेके समय, दोनों ओरका दृश्य बड़ा ही सुन्दर दीख पड़ता है। खासकर वर्षाकालमें इस नदीका दृश्य देखते ही बनता है बाढ़की लहरें सैकड़ों हाथ ऊँचे टूटते हुए गिरि-शिखरके समान उछलती आती हैं। जड़से उखड़े हुए सैकड़ो बड़े-बड़े वृक्ष एक साथ बहते दृष्टिगोचर होते हैं। जाड़ेमें कोयलका पानी बर्फका कान काटता है। यदि किरण निकलने-पर भी कमजोर और बूढ़ा आदमी उसमें डुबकी लगावे, तो सिकुड़कर उसीमें रह जाय! डालटेनगंजमें जिलेके डिपुटी कमिश्नर तथा अन्य सभी डिपार्टमेंटोंके हेड क्वार्टर्स तथा उनके आफिस हैं। इनके सिवा जिला स्कूल, म्युनिसिपल मि० इ० स्कूल, कन्नीराम गनपतराय मि० इ० स्कूल, मिशन मि० इ० स्कूल तथा अन्य कई छोटी-छोटी पाठशालाएँ भी यहाँ हैं। एक मौलवी ट्रेनिंग स्कूल भी है। यह जिला शिक्षामें अन्य जिलोंसे बहुत पिछड़ा हुआ है। खरवार, चेरो और ग्वालोंमें तो शिक्षाका प्रचार नहींके बराबर है। ब्राह्मणों, क्षत्रियों और कायस्थोंमें चन्द ग्रेजुएट अब निकले हैं। यह शहर हालका आबाद और छोटा है। धनाढ्योंको संख्या यहाँ न्यून है।

इस जिलेकी भाषाएँ हिन्दी, उराँव और कोरवा हैं। बिहारके अन्य जिलोंकी अपेक्षा यहाँ हिन्दीका प्रचार कम है सही; पर अपनी योग्यताके अनुसार नगरको हिन्दीका प्रेम सन्तोषजनक है। यहाँ दो हिन्दी-पुस्तकालय हैं—एक मारवाड़ी-सार्वजनिक-हिन्दी-पुस्तकालय और दूसरा अभ्युदय-हिन्दी-साहित्य-समाज। इनमेंसे पहलेमें वाचकोंकी संख्या अधिक है तथा पत्र-पत्रिकाएँ प्रचुर परिमाणमें आया करती हैं। पुस्तकोंका संग्रह भी अच्छा है। साहित्य-समाज यद्यपि बहुत पुरानी संस्था है; पर इन दिनों मृतप्राय हो चली थी। भाग्यसे तीन-चार वर्ष हुए यहाँके शिक्षकों और वकीलोंके उद्योगसे समाजका, कई हजार रुपयेकी लागतका, एक सुन्दर पक्का भवन बन गया। इसमें बिहारके शिक्षा-विभागके मंत्री महोदयने भी अच्छी सहायता पहुँचायी। पर अभीतक इसमें पुस्तक-संग्रह तथा वाचनालयका कोई उत्तम प्रबन्ध नहीं हो सका है। यहाँ प्रेस तथा पत्रका तो नाम लेना ही व्यर्थ है। इनसे सारा जिला वंचित है। इनके सिवा यहाँ और कोई भी उल्लेखनीय संस्था नहीं हैं। हाँ, कभी-कभी हरि-संकीर्तन, आर्य-समाज एवं राजनीतिक प्रचारकोंका झोंका आ जाया करता है; पर लोग स्थायी रूपसे जड़ नहीं जमा पाते। हालमें एक गोशालाका स्थापन भी हुआ है।

हिन्दीके शुभचिन्तकोंमें बाबू नवमीलाल 'देव', बाबू महादेवलाल तुलस्यान, बाबू सिद्धेश्वर सहाय, साहित्योपा-ध्याय प० रामदीन पाण्डेय, प्रोफेसर रामकृपाल मेहता, 'साहित्य-भूषण,' बाबू वासुदेव खेतान आदिका नाम उल्लेख-नीय है। राय साहब ठाकुर भोलानाथ सिंह और बाबू दयावन्तसहाय वर्माकी भी पुस्तकालयोंपर अधिक कृपा रहा करती है। जिले भरमें केवल सरकारी जिला स्कूलके सिवा और कोई हाई इङ्गलिश स्कूल न था। गत दो वर्ष हुए

गढ़वामें एक और हाइ स्कूलकी स्थापना हुई है। इसके अलावे मुफस्सिलमें कई एम० इ० और एम० व० स्कूल भी, बोर्डकी ओरसे, खुले हैं।

पलामू किला और नेतरहाट छोड़कर इस जिलेमें न कोई दर्शनीय स्थान है, न कोई तीर्थ। हाँ, जंगल-प्रेमियोंके लिये बड़े-बड़े घनघोर जंगल अवश्य हैं। जंगलोंमें बड़े-बड़े बाघ, भालू, चीता, नीलगाय, हरिण, साँवर आदि प्रचुरतासे पाये जाते हैं। बिहारके गवर्नर प्रतिवर्ष पलामूमें शिकार खेलने आया करते हैं। केड़का प्रधान जंगल ही, बड़े दिनोंमें, उनका क्रीड़ा-स्थल हुआ करता है।

यहाँ राय चैनपुर चेरो-राजवंशके प्रथम दीवान-वंशजोंका आवास है। यह डालटेनगंजसे तीन मीलपर बसा है। वहाँके राजा भागवतदयाल सिंह बड़े चतुर और सरकारके शुभचिन्तक थे। उनके पुत्र राजा ब्रह्मदेवनारायण सिंहजी भी बड़े उदार, न्यायी और सदाचारी राजा थे। पर युवावस्थामें ही उनकी मृत्यु हो गयी। अब उनका एक छोटा बालक सरकार की संरक्षकतामें है।

रंका भी इन्हींकी एक दूसरी शाखा है। यहाँके राजा गिरिवरदेवनारायण सिंह बड़े ही धर्मात्मा, सदाचारी और नीतिकुशल राजा हैं। इन्हींकी विशेष सहायतासे अभी हालमें गढ़वा हाई इङ्गलिश स्कूलकी स्थापना हुई है।

विश्रामपुर चेरो राजवंशके वंशजोंका निवास है। वे टिकैतके नामसे प्रसिद्ध हैं और एक बड़ी रियासतके मालिक हैं। टिकैत भागवत बख्श रायकी मृत्यु हालमें ही हुई है, जिनके कुमार इस समय गद्दीके मालिक हैं।

नावाजयपुर भी चेरो-राजवंशके वंशजोंका निवास-स्थल है। ये भी एक बड़ी रियासतके मालिक हैं। इनमें राय किशुनबख्श राय बहादुर भी सरकारके बड़े कृपा-पात्र थे। एक प्रसिद्ध शिकारी भी थे। इनकी मृत्युके पश्चात् राजके एक मात्र अधिकारी राय छत्रेन्द्रबख्श रायके आत्महत्या कर लेनेके कारण राज्य आजकल झगड़ेमें पड़ा है।

गढ़वा एक प्रसिद्ध बाजार है। रेलके मार्गपर है। सरगुजा-स्टेटसे इसका व्यापारिक सम्बन्ध बहुत अधिक है। लाह, धूना, तेलहन, घी, छतरी आदिकी खासी आमदनी होती है। यहाँ कई चपड़ेके कारखाने हैं। बाजारकी चुंगी पचीस हजार रुपये वार्षिकसे भी अधिक थी; पर लाहकी मन्दीने इसकी अवस्था खराब कर डाली है।

हरिहरगंज पलामू और गयाकी ठीक सीमापर बसा है। एक प्रसिद्ध बाजार है। पलामूमें प्रवेश करनेका द्वार है। यहाँका जलवायु उत्तम है। घी, तेलहन, गुड़, कोयला, लकड़ी, बाँस, चोप आदिकी खूब आमदनी होती है।

हुसेनाबादमें "शेर-उल-मुतखारीन" नामके इतिहासके लेखक नवाब गुलाम हुसेन खाँके वंशजोंका निवास है। यह भी एक अच्छा बाजार है। पासकी देवरीमें सीमेण्टका बड़ा कारखाना है। यहाँ हाई इङ्गलिश स्कूल स्थापित करनेकी तैयारी हो रही है।

नगर उँटारीमें एक राजपूत राजवंशके वंशजकी बड़ी रियासत है। यहाँके मन्दिरमें श्रीवंशीधरकी मूर्त्ति बड़ी भव्य और विशाल है।

सोनपुर-राजवंशकी एक शाखा उँटारीमें बसी हुई है। यहाँवाले भी एक बड़ी रियासतके अधिकारी हैं। आज कल सरकारकी संरक्षकतामें हैं।

लातेहार पलामूका एक सबडिवीजन अभी हालमें ही कायम हुआ है। जंगली जगह है। बाजार भी लगता है। शायद अब इसकी आबादी बढ़े।

सतबरवामें भी एक अच्छा बाजार है। लाहकी तेजीके जमानेमें इस बाजारकी अच्छी उन्नति थी। यहाँ गुरु ट्रेनिङ्ग स्कूल और बँगले आदि हैं।

चंदवा राँची और पलामूकी दक्षिणी सीमापर बसा

है। यहाँ कई सरकारी आफिस हैं। बाजार और अ० प्रा० स्कूल हैं। यह पलामूके सबसे ऊँची अधित्यकापर बसा हुआ है।

नारू, बालूमाथ और महुआडाँड़ बिलकुल दक्षिणके भयानक जंगलोंमें हैं। पुलिस और अस्पतालके आफिसरोंके लिये ये स्थान कालापानी हैं। जलवायु अस्वास्थ्यकर है। दिन-दहाड़े सरकारी अहातोंके पास बाघ उछलते देखे जाते हैं।

टोरीके लालजी, मनातूके मौआरजी, छादीके कुंअरजी, पथराके ठाकुरजी, कोशियाराके शेखजी, हैदरनगर और खरौंधाके साहजी, लुरगुमीके भैया साहब आदि भी बड़े जमींदार हैं।

पपीहा

कहा किसीने "अरी पपीहे,
क्यों करती तू करुणा-गान ?
दर्द-भरे स्वरमें पी-पी कर
करती तू किसका आह्वान ?"
कहा पपीहेने, "प्यारे,
यह है अतीत घटनाकी याद;
बहुत दिनोंके बिछुड़े पियसे
करती हूँ मैं यह फरियाद.
विरह-व्यथासे भरे हृदयमें
सखे, मचा है हाहाकार;
इसीलिये पी-पी कर निशि-दिन
प्रियतमको मैं रही पुकार;
नीरस और शून्य जीवनमें
यही एक है उरमें आस;
पी पसीज कर सखे, किसी दिन
मुझे बुला लेगा निज पास।"

बाबू यमुनाप्रसाद चौधरी 'नीरज' बी० ए०, बी० एल०

वेदोंमें बिजली

प० गाङ्गेय नरोत्तम शास्त्री

इस समय चारो तरफ बिजलीकी चकाचौंधसे लोग चकित हो रहे हैं। बैलों और घोड़ोंको हटाकरगाड़ीको बिजली खींचती है, बिजली झाड़ू देती है, बिजली पंखा झलती है, बिजली लकड़ी काटती है, बिजली घरोंमें मनुष्योंको ऊपर-नीचे ले जाती है। और-तो-और, बिजली ही नित्य सवेरे अखबार भी छापती है; इसलिये इस समय "वेदोंमें बिजलीकी खोज" करना अप्रासङ्गिक न होगा। पाश्चात्य लोगोंका और उनके अनुयायियोंका दावा है कि, इस विविध-गुणमयी बिजली देवीका हमीने आविष्कार किया है। हमींने इसे अनेक प्रकारकी सुन्दर साड़ियाँ पहनायी हैं। हम लोग ही इसके कारण, गुण और स्वरूपको अच्छी तरह जानते हैं। हमें ही पहले-पहल इसने अपना दिव्य दर्शन दिया है। इस 'पक्षणी'को हमलोग ही सिद्ध कर सके हैं। भारतके प्राचीन वैदिक ऋषि तो इसके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानते थे—इसकी बाँकी झाँकी करना तो दरकिनार। यह एक पक्षका मत है। दूसरे पक्षका कहना है कि, नहीं, ऐसा नहीं। वैदिक ऋ[illegible] साक्षात् कृतधर्मा थे। वे सब कुछ जानते थे। वेद सम[illegible] विद्याओंके भाण्डार हैं और उनके द्रष्टा ऋषियोंको [illegible] विद्युद्विद्या अविदित नहीं थी।

अब निष्पक्षपात विवेचकोंका कर्त्तव्य है कि, वे वेदों[illegible] खोज करें और उनमें प्राप्त वचनोंसे यदि दूसरे पक्षका मत स[illegible]र्थित होता हो,तो उसे मानें तथा फिरसे परिश्रम करके प्राची[illegible] और अर्वाचीन वैद्युतिक ज्ञान भारतीय राष्ट्र-भाषामें लावें[illegible] यहाँ कुछ प्रमाणोंके उद्धरणोंके पहले "गङ्गा"के पाठकों[illegible] हमारा निवेदन है कि, वे थोड़ी देरके लिये यह कल्पना क[illegible] कि, किसी भयङ्कर क्रान्ति या युद्धके कारण वर्तमान सभ्यता[illegible] नष्ट हो गयी है। अनेक रासायनिक तथा वैज्ञानिक ग्रन्थ भी जलाकर नष्ट कर दिये गये हैं। इस घटनाके कई शताब्दियों[illegible] बाद कुछ दार्शनिक और काव्यके ग्रन्थोंमें वर्तमान रेल, ता[illegible]

बिजली, हवाई जहाज आदिके प्रसङ्गतः, आंशिक, वर्णन मिलते हैं; किन्तु इन पदार्थोंके बनाने और उपयोगमें लानेके वर्णन नहीं मिलते। ऐसी अवस्थामें आप क्या समझेंगे? यही तो कि, ईसाकी बीसवीं शताब्दीके लोगोंको इन वस्तुओंका ज्ञान था। इसी प्रकार वेदोंके वर्णनसे भी समझना चाहिये। अच्छा, तो आइये। हम आपको वैदिक कालके शान्तिमय उपवनोंमें ले चलें। वह देखिये, सामने अपने आश्रममें बैठे हुए महर्षिगण बिजलीके विषयमें कैसा मार्मिक विवेचन कर रहे हैं। "बिजली"की ब्रह्म-रूपसे वे उपासना कर रहे हैं। ऐसी उपासनासे वंशका वंश तेजस्वी हो जाता है इत्यादि सिद्धान्तोंके प्रतिपादक उनके शब्द, जरा ध्यानसे, सुनिये—"य एवाऽसौ विद्युति पुरुष एतमेवाऽहं ब्रह्मोपास इति। स होवाचाऽजातशत्रुर्मा मैतस्मिन् संवदिष्ठास्तेजस्वीति वा अहमेतमुपास इति। स य एतमेवमुपास्ते तेजस्वी ह भवति तेजस्विनी हाऽस्य प्रजा भवति।"—बृहदारण्यक उपनिषद्।

वैदिक ऋषियोंको यह भी मालूम था कि, बिजली जलसे पैदा होती है। बिजलीके घनिष्ठ सम्बन्धी ताँबा, ऊन, रेशम आदिके गुणोंका ज्ञान भी ऋषियोंको था। इसीसे विभिन्न कर्म-काण्डोंमें उन्होंने इन वस्तुओंको प्रधानता दी है। बिजलीमें जो कई रंग हैं; उनका भी सूक्ष्म विवेचन ऋषियोंने किया था। देखिये— "यद्विद्युतो रोहितं रूपं तेजसस्तद्रूपं, यच्छुक्लं तदपां, यत्कृष्णं तदन्नस्य, अपागाद्विद्युतो विद्युत्त्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम्। एतद्धस्म वै तद्विद्वांस आहुः पूर्वे महाशालाः महाश्रोत्रियाः न नोऽद्य कश्चन अश्रुतममतमविज्ञातमुदाहरिष्यतीति ह्येभ्यो विदाञ्चक्रुः।"—छान्दोग्य उपनिषद्।

अर्थात् 'बिजलीका जो लाल रूप है, वह तेजका है, जो सफेद है, वह जलका है, जो काला है, वह अन्नका है। इस प्रकार बिजलीका बिजलीपन चला गया। तीन रूप ही सत्य हैं। इस बातको पहलेके महान् प्रतिष्ठित विद्वान् भी जानते थे।'

पाठकवृन्द, आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि, वैदिक सभ्यताके विकाश-कालमें "बिजलीके अस्त्र" भी बनते थे। ऋग्वेदमें जहाँ वृत्रासुर और देवराज इन्द्रके युद्धका वर्णन है, वहाँ लिखा है कि, "वृत्रने जो भयङ्कर बिजलियाँ (बिजलीके अस्त्र) इन्द्रपर फेंकीं, वे कुछ न बिगाड़ सकीं, बल्कि "इन्द्र उसकी अन्य सब मायाओंसे भी जीत गये।" यह वर्णन पढ़कर स्वयं देखिये—"नाऽस्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध न यां मिहमकिरद्ध्रादुनिं च। इन्द्रश्च यद्युयुधाते अहिश्चोताऽ परीभ्यो मघवा विजिग्ये।" —ऋग्वेद।

इसपर भाष्य देखिये—"इन्द्रं निषेद्धुं वृत्रो यान् विद्युदादीन् मायया निर्मितवान् ते सर्वेऽप्येनं निषेद्धुमशक्ताः। × × × × मघवा धनवान् इन्द्रः अन्यासामपि वृत्र-निर्मितानां मायानां सकाशाद्विजिग्ये विशेषेण जितवान्।"—सायण-भाष्य।

वरुण-सूक्तमें बिजलीके मुख्य अधिष्ठान जल-देवताकी स्तुति करते हुए शुनःशेप ऋषि कहते हैं—"बिभ्रद्द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजम्। परि स्पशो निषेदिरे।" ऋग्वेद।

इसपर सायण-भाष्य देखिये—'स्वर्णमय कवच (स्वर्ण-समान प्रकाशवाली या अधिकाधिक सोना देनेवाली बिजलीके रूपका कवच) धारण करते हुए वरुणदेव अपने पुष्ट (बलवत्तर, वेगवान्) शरीरको आच्छादित करते हैं। उनकी वे स्वर्णमयी किरणें चारो तरफ फैली हुई हैं। बिजलीके अन्तर्हित होनेसे उसकी स्वर्णमयी किरणें भीतर-ही-भीतर फैली हुई हैं।'

यह बात तो अनेक अवतरणोंसे सिद्ध की जा सकती है कि, ऋषियोंको जल और तेजके सम्बन्धका बहुत उच्च कोटिका ज्ञान था। आज हजारों वर्षों बाद पाश्चात्य विद्वान् जल और तेजके सम्बन्धमें जिन सिद्धान्तोंकी घोषणा करते हैं, वे हमारे

वेदोंमें पहलेसे ही उद्घोषित हैं। अपने समयके महान् वैज्ञानिक "महर्षि उद्दालक" छान्दोग्योपनिषद्में निजात्मज श्वेतकेतुको उपदेश देते हैं कि, जलके बिना तेजका क्या मूल हो सकता है। वे यह भी निश्चय करते हैं कि, तेज ही जलको इधर-उधर ले जाता है। जलसे तेज और तेजसे जलका सम्बन्ध उन्हें खूब ज्ञात था।

एक दूसरे स्थलमें "बिजली"को ब्रह्मका ज्योतिष्मान् पाद कहा गया है। विद्युत्की व्यापकता और कहीं भी रगड़नेसे जो गरमी पैदा होती है, उसका ज्ञान भी ऋषियोंको था। निम्न लिखित उद्धरणोंसे यह बात स्पष्ट हो जायगी। महर्षि गौतमके शिष्य सत्यकाम जाबाल जंगलसे गुरुके आदेशानुसार गौओंकी सेवा करके उनके साथ लौट रहे हैं। रास्तेमें "हंस" भगवान् उनको छान्दोग्योपनिषद्में उपदेश देते हैं:— 'हे सौम्य! ब्रह्मकी एक-एक कला अग्नि, सूर्य, चन्द्र, और बिजली हैं। ये चारो ब्रह्मके ज्योतिष्मान् नामक पाद हैं, ऐसा समझकर जो विद्वान् इस ज्योतिष्मान् पादकी उपासना (खोज, शोध, तदीय तत्त्वज्ञान आदि) करता है, वह इस लोकमें ज्योतिष्मान् होता है (सौर चिकित्सा, विद्युच्चिकित्सा आदिके कारण निरन्तर ज्योतिर्युक्त रहता है) और दूसरे ज्योतिर्मान् लोकोंको जीतता है (मङ्गलादि ग्रहमें प्रवेश-शक्ति प्राप्त करता है)।' इसके आगे कहा गया है कि, 'इस शरीरमें रगड़नेसे गर्माहट मालूम पड़ती है, कान बन्द कर सुननेसे जलती हुई अग्निके विचित्र शब्दोंकी तरह ध्वनि (गम्भीर साँ-साँ (सुनाई पड़ती है। इसलिये यह दृष्ट और श्रुत, दोनों है। (तेजोरूप ब्रह्म सर्वव्यापक होनेसे प्रत्यक्ष है)। यह सब दृश्यमान जगत् ब्रह्म-रूप है, उस ब्रह्मकी जल-रूपसे उपासना, शान्त होकर, करे (क्योंकि जल और तेजका अन्योन्याश्रय संबन्ध है)। बिजलीके सम्बन्धमें एक बड़ा मनोहर वैदिक इतिहास है। पाठकोंके मनोरञ्जनार्थ उसका उल्लेख किया जाता है। कामलायन "उपकोसल" नामके एक जिज्ञासु सज्जन सत्यकाम जाबालके यहाँ विद्यार्थि-रूपमें १२ वर्षतक रहे और गुरुकी बड़ी सेवा की। इस बीच गुरुजीने कई अन्य शिष्योंका समावर्तन (शिक्षा-समाप्ति-संस्कार) किया; किन्तु उपकोसलकी ओर विशेष दृष्टि न दी। इस बातसे गुरु-पत्नीको बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने पतिसे प्रार्थना की कि, इस गरीब विद्यार्थीको भी आप उपदेश दीजिये; पर गुरुजीने उधर फिर भी ध्यान नहीं दिया और "प्रवास" को चल पड़े। इधर "उपकोसल" ने आधि-व्याधिसे खिन्न होकर "अनशन" शुरू कर दिया। गुरु-पत्नीको इसपर बड़ी दया आयी। उन्होंने उससे खानेके लिये बहुत आग्रह किया; पर उसने नहीं खाया। इसके बाद रातमें अग्निहोत्र-शालाके "गार्हपत्य" आदि अग्नियोंने दया करके उसको ब्रह्मोपदेश देनेका निश्चय किया, जिससे वह कृत्यकृत्य हो गया। देखिये, "आहवनीय" नामक अग्नि उसे यह उपदेश देते हैं कि, "विद्युत्में जो पुरुष है, वही मैं हूँ। जो अच्छी तरह जानकर इस विद्युन्मय पुरुषकी उपासना करता है, वह सम्पूर्ण पापोंको दूरकर पूर्ण आयु प्राप्त करता है। नीरोग होकर सुखपूर्वक जीता है, उसके सामने उसके घरके छोटे आदमी नहीं मरते।" —छान्दोग्य उपनिषद्।

बिजलीकी खोजसे ऋषि-गण अनेक चमत्कारिक कार्य करते थे। जहाँतक तेजकी गति है, वहाँतक गति प्राप्त कर सकते थे। बहुत सम्भव है, उनके पास ऐसे "वैद्युतिक रथ" रहे हों, जिनकी अभीतक कल्पना ही नहीं हो सकी है। ऐसे रथों या हवाई जहाजोंके विषयमें हम दूसरे निबन्धमें अपने भाव व्यक्त करेंगे। यहाँ केवल बिजलीकी गतिके बारेमें कुछ दिग्दर्शन कराते हैं। आबाल ब्रह्मचारी महर्षि सनत्कुमारके पास देवर्षि नारद ब्रह्म-विद्याके अध्ययनके लिये आते हैं। वे उन्हें ब्रह्मकी अनेक दिव्य विभूतियोंकी उपासनाका उपदेश देते हैं। नारदजी क्रमशः एक-एक विभूतिके बाद उससे उत्कृष्टतर विभूतियोंका प्रश्न करते हैं। इसी सिलसिलेमें

सनत्कुमारजी जल-तत्त्वसे बढ़कर तेज तत्त्वको बतलाते हैं और तेजकी उपासनासे जहाँतक तेजकी गति है, वहाँतक उपासककी भी इच्छाके अनुकूल गति होती है, यह उपदेश देते हैं। पढ़िये उनकी इन पङ्क्तियोंको—"तेजो वा अद्भ्यो भूयः, तद्वा एतद्वायुमुपगृह्य आकाशमभितपति, तदाहुर्निशोचति नितपति वर्षिष्यति वा इति, तेज एव तत्पूर्वं दर्शयित्वा अथ अपः सृजते, तदेतद्ध ऊर्ध्वाभिश्च तिरश्चीभिश्च विद्युद्भिराह्रादाश्चरन्ति, तस्मादाहुर्विद्योतते स्तनयति वर्षिष्यति वा इति, तेज एव तत्पूर्वं दर्शयित्वाऽथापः सृजते, तेज उपास्वेति।"

पाठकवृन्द, देखा आपने महर्षियोंके दिव्य ज्ञानका भाण्डार? अच्छा, अब एक चीज और दिखाकर यह लेख समाप्त किया जाता है। वह चीज है बिजलियोंकी भी बिजली! उसके पास अभीतक पाश्चात्य वैज्ञानिक बिलकुल नहीं पहुँचे हैं। तबतक पहुँचेंगे भी नहीं, जबतक वे जड़-वादसे आगे बढ़कर भारतीय चैतन्य-वादका अनुशीलन न करेंगे।

आप लोगोंको मालूम होगा कि, भूकम्प आदि कई कारणोंसे कभी-कभी बिजलीकी लाइन-की-लाइन खराब हो जाती है। कभी आकाशसे बिजली गिरकर कितने ही मनुष्यों और मकानोंका विध्वंस कर देती है। वह कौन शक्ति है, जो इस प्रकार पृथ्वी और अन्तरिक्षकी बिजलियोंका सञ्चालन करती है? उसी दिव्य शक्तिके बारेमें वैदिक ऋषिका यह कथन सुनिये—"यस्तेजसि तिष्ठन् तेजसोऽन्तरो, यं तेजो न वेद, यस्य तेजः शरीरम्, यस्तेजोऽन्तरो यमयति, एष ते आत्मा अन्तर्यामी अमृतः × × ×॥" बृहदारण्यक उपनिषद्।

अर्थात् 'जो चैतन्य-तत्त्व तेजमें निवास करता हुआ तेजका भी अन्तर (सूक्ष्म तत्त्व) है, जिसको तेज (सूर्य, चन्द्र, अग्नि, बिजली आदि) भी नहीं जानता, सब प्रकारका तेज जिसका शरीर है, जो तेजका अन्तरङ्ग होकर तेजका नियमन (सञ्चालन) करता है, वही तुम्हारी अन्तस्सञ्चारिणी अमर आत्मा है।'

इस प्रकार वेदोंमें अनेक स्थलोंमें बिजली, तेज और जलके सम्बन्धमें मार्मिक विवेचन मिलते हैं, जिनपर अधिकाधिक प्रकाश डालनेकी बड़ी आवश्यकता है। किन्तु यह काम बड़ी मेहनत, लगन और योग्यताका है। ऐसी "खोज"के लिये एक "प्रयोग-शाला" होनी चाहिये, जिसमें न केवल शाब्दिक विवेचन हो, बल्कि शब्दोंमें उपलब्ध सिद्धियोंकी क्रियात्मक परीक्षा भी हो। वैदिक-साहित्य-मन्दिरका जीर्णोद्धार करनेवाले "गङ्गा"के सुयोग्य सम्पादक और सञ्चालक महोदय यदि अन्य उदार धार्मिक धनिकोंके सहयोगसे एक ऐसी "प्रयोग-शाला"का आयोजन कर सकें, तो बड़ा काम हो। प्राचीन और अर्वाचीन उभयविध ज्ञानके उपासक कुछ त्यागी-तपस्वी सज्जनोंके योग-क्षेमका प्रबन्ध कर दिया जाय और वे निरन्तर इसी काममें लगे रहें। वेद, पातञ्जल योगदर्शन तथा दक्षिणमार्गके तन्त्रागमोंमें कथित सिद्धियोंकी यहाँ प्रत्यक्ष परीक्षा हो। अब भी इस पराधीन देशमें प्रतिवर्ष लाखों रुपये धर्मशाला आदि साधारण धार्मिक कार्योंमें खर्च कर दिये जाते हैं। क्या कोई माईका लाल इस असाधारण धार्मिक कार्यके लिये भी अग्रसर होगा?

संगीताचार्य बच्चू मल्लिकजी

प्रोफेसर अक्षवट मिश्र "विप्रचन्द"

संगीत और साहित्यकी मर्य्यादा समान है। दोनोंके अभ्याससे मनुष्यकी चातुरी बढ़ती है। दोनोंके संसर्गसे मनुष्यको अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त होता है। दोनोंमें नायिकाओं और अलंकारोंकी शोभा है। दोनोंमें औदार्य, प्रसाद, चमत्कृति आदि गुणोंकी आवश्यकता होती है; किन्तु जैसी मोहिनी शक्ति संगीतमें है, वैसी साहित्यमें नहीं। साहित्यके श्रवणसे आनन्द नहीं मिल सकता, जबतक उसके अर्थका ज्ञान न हो; किन्तु संगीतमें यह विशेषता है कि, जो चीज गायी जाती है, उसका अर्थ यदि समझमें न आवे, तो भी, केवल मधुर स्वरसे ही, चित्त सम्मोहित हो जाता है। संगीतसे मनुष्यों की तो कोई बात ही नहीं, पशु-पक्षी आदि जीव भी मुग्ध हो जाते हैं। व्याध वंशी बजाकर हरिण आदि पशुओंको मोहित कर फँसाते हैं। नट 'तूँबड़ी' बजाकर महाविषधर सर्पोंको मोहित करते हैं।

संगीत दो अंगोंमें विभक्त है। एक गान, दूसरा वाद्य। ६ रागों और ३६ रागिनियोंका सम्बन्ध दोनोंसे है। दोनों का सम्बन्ध घनिष्ठ है। स्वर, ताल, मूर्च्छना आदि अनेक अंग भी इन्हीं दोनोंसे सम्बन्ध रखते हैं। गानके विना वाद्य और वाद्यके विना गानकी पूरी शोभा नहीं होती। दोनोंके सम्मेलनसे ही पूर्णरूपसे आनन्द प्रतिभासित होता है। इन दोनों का परम प्रिय मित्र नृत्य है। इसके संसर्गसे उन दोनोंकी शोभा चतुर्गण हो जाती है। नृत्यका प्रधान अंग भाव है। भावके होनेसे नृत्य पूर्ण रूपसे समुद्भासित होने लगता है। तात्पर्य यह कि, जब गान, वाद्य, नृत्य और भाव सम्मिलित होते हैं, तभी संगीत पूर्ण होता है और प्राणियोंके हृदयमें अनिर्वचनीय आनन्द उत्पन्न करता है।

प्रचीन समयमें कुलवधुएँ तथा कुलीन पुरुष भी, दम्पती-का सुख बढानेके लिये, संगीतका अभ्यास करते थे और गान

द्वारा अपनी प्रिया तथा प्रियतमको आनन्दित करते थे। पुरुष अपने मित्रोंमें और स्त्रियाँ अपनी सखियोंमें संगीतशास्त्रकी कुशलता दिखलाकर सबको प्रसन्न करती थीं। पहले इसमें निन्दा नहीं समझी जाती थी। इन सब बातोंके साक्षी पुराण, इतिहास, काव्य तथा नाटक हैं।

जो मनुष्य जीविकाके लिये संगीतका अवलम्बन करते हैं, वे गायक कहे जाते हैं। इनमें कई प्रकारके भेद हैं। एक वह हैं, जो गानसे जीविका करते तो हैं; पर आचार-विचार; पूजा-पाठ, संध्या-तर्पण आदि सब कर्म, ब्राह्मणोंकी भाँति, करते हैं। दूसरे यज्ञोपवीत भर धारण करते हैं; किन्तु संध्या-तर्पण आदि नित्य कर्म नहीं करते। जीविकाके लिये गाते-बजाते हैं और स्वयं नाचते हैं। तीसरे वे हैं, जो शूद्रोंकी भाँति रहते हैं। जीविकाके लिये गाते-बजाते हैं और अपनी पुत्री तथा भगिनीको नचाते हैं। चौथे वे हैं, जो विशेष प्रकारके शूद्र तथा यवनजातिके हैं। वे जीविकाके लिये गाते-बजाते और अपनी पुत्री तथा भगिनी को नचाते और उनके द्वारा द्रव्योपार्जन करते हैं।

आज हम जिसका जीवन-चरित्र लिख रहे हैं, वे प्रथम श्रेणीके गायक-वंशमें उत्पन्न हुए थे। इनकी जाति प्रयागसे पूर्व और वैद्यनाथ-क्षेत्रसे पश्चिममें बहुत है। ये लोग अपनेको "गौड़ मागध" ब्राह्मण कहते हैं अर्थात् मगध देशमें रहनेवाले "गौड़ ब्राह्मण"। इन लोगोंमें ब्राह्मणोंकी ही भाँति मिश्र, पाठक, उपाध्याय, त्रिपाठी आदि पदवियाँ, नामके साथ, लगायी जाती हैं; किन्तु सर्वसाधारणमें यह लोग 'मलिक' नामसे प्रसिद्ध हैं।

संगीताचार्य "बच्चू मलिकजी" ने अपनी जातिकी एक उत्पत्ति लिखी थी, जिसमें जरासंध तथा तात्कालिक अनेक भूपोंके इतिहासोंका अवलम्बन कर अपनेको ब्राह्मण सिद्ध किया था। जो हो, इन लोगोंकी चाल-चलन ब्राह्मणोंकी भाँति है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। ये लोग गानसे अपनी जीविका करते हैं; इससे ये लोग गायक कहे जाते हैं। यह प्रथा इन लोगोंके वंशमें अति प्राचीन है।

भोजपुराधीशकी राजधानी डुमराँवसे नौ कोस दक्षिण "धनगाईं" नामका एक गाँव है। वहाँ मलिक-वंशमें "श्रीजगन मलिक" थे। उनके पुत्र श्रीपदारथ मलिक थे। वे लोग गान-विद्यामें परम चतुर थे। श्रीमान् भोजपुरेशने उन्हें अपनी राजधानीमें बुलाकर रख लिया था। श्रीमान् संगीताचार्य्य बच्चू मलिकजीका जन्म विक्रम संवत् १८८१ में हुआ था। इनके पिता पदारथ मलिकने बड़े प्रेमसे इनका लालन-पालन किया और इनका नाम "प्रकाश मलिक" रखा; किन्तु प्यारसे इन्हें बच्चू कहते थे। अन्तमें "प्रकाश मलिक" नाम अन्तर्हित हो गया और बच्चू ही प्रसिद्ध हो गया। बाल्यावस्थामें इनने घना मलिक, काली मलिक, ठाकुर मलिक और श्रीकृष्ण मलिकसे गान-विद्या सीखी। महाराजने कालपीके रहनेवाले "अलीबख्श खाँ"को अपने दरबारमें रखा था। बच्चू मलिकने उनसे भी गाना सीखा था। जब महाराजसर महेश्वर बख्श सिंहजीका स्वर्गवास हो गया, तब उनके प्रिय पुत्र श्रीमान् महाराज सर राधाप्रसाद सिंहजीने राजमुकुट धारण किया और अपनी सुशीलतासे प्रजा तथा भारत सम्राट्के समस्त प्रतिनिधियोंको प्रसन्न किया। भारतेश्वरीकी ओरसे नवीन महाराजको के० सी० आई० ई०की उपाधि मिली। इन्होंने अपने पिताके सब आश्रित जनोंका भली भाँति प्रतिपालन किया। बच्चू मलिकजीको भी महाराजने अपने दरबारमें रख लिया। इनके गानसे प्रसन्न होकर महाराजने भूमि, वाटिका, भवन आदि देकर इन्हें सुखी कर दिया। महाराज कुछ कवितासे भी स्नेह रखते थे; इसलिये प० राधावल्लभ जोशी (विप्रवल्लभ कवि); रामचरित्र तिवारी, कुलास कवि आदि विद्वानोंको अपने दरबारमें रखते थे। बच्चू मलिकको भी कविता करनेकी आज्ञा दी गयी। मलिकजीने काशीमें रहकर काशी-नरेशके सभासद सरदार कविसे काव्य-सम्बन्धिनी

सब बातें सीखीं। धीरे-धीरे अभ्यास करके अच्छे कवि हो गये। फिर तो गीतों और कवित्तोंकी रचनासे सबको चमत्कृत करने लगे। गीत और काव्यमें इनका नाम प्रसिद्ध है। इनके बनाये निम्न लिखित ग्रन्थ मैंने देखे हैं—१ छरप्रकाश, २ रसप्रकाश, ३ संगीतप्रकाश और ४ भैरवप्रकाश। इनके पितृव्य घना मलिकजी कवि थे। उनके बनाये कृष्णरामायणको इनने बड़े परिश्रम तथा निज व्ययसे प्रकाशित कराया था। बचू मलिक संस्कृत तथा उर्दूके भी विद्वान् थे। इनकी सज्जनता, निरभिमानता तथा चतुरता प्रशंसाके योग्य थी। मलिकजी अन्य गुणोंमें प्रवीण होनेपर भी गानमें अद्वितीय थे। जिस समय ये राजसभामें गाते थे, उस समय जान पड़ता था कि, इन्द्रकी सभामें गन्धर्व गा रहा है! सभाके लोग आनन्दातिरेकसे मूर्तिके समान निश्चल हो जाते थे! मलिकजी एक गीतमें ६ राग, ३६ रागिनीयोंका रूप दिखलाते थे! होलीके गीतमें पावस आदि छओं ऋतुओंके गीतोंका आनन्द दिखलाते थे। शास्त्रीय रागोंके गानोंमें तो साक्षात् 'नाद'को रूपवान् बनाकर प्रकट कर देते थे! "सैंया विदेसी पुरुब जनि जाहु ऐ" जैसे साधारण गीतोंको भी गाकर बड़े-बड़े गवैयोंकी बुद्धिको आश्चर्यमें डाल देते थे। गोलोकवासी "भारतेन्दु" हरिश्चन्द्रकी सभामें भी एक बार इनने अपनी गान-चातुरी दिखायी थी। वे तो रसिक-शिरोमणि तथा गुण-ग्राहक-चूड़ामणि थे ही; इसलिये वे इनके गानसे अत्यन्त प्रसन्न हुए थे और इनको "संगीताचार्य"की पदवीसे विभूषित किया था। भारतेन्दुजीने एक लिफाफेमें नोट बन्द करके इन्हें देकर कहा, "मलिकजी इस लिफाफेमें एक भजन है। उसे आप याद कर लीजियेगा। यदि राग-तानमें कुछ त्रुटि हो,तो कल आकर बता दीजियेगा।" मलिकजी डेरेपर जाकर जब खा-पीकर स्वस्थ हुए, तब लिफाफेको खोलकर पढ़ने लगे; परन्तु उसमें गीतके बदले नोट निकला! ये घबराये कि, शायद बाबू साहबने गलतीसे दे दिया है। दूसरे दिन फिर बाबू साहबकी सभामें पहुँचे। उस समय बाबू साहब अकेले बैठे हुए थे। मलिकजीने कहा, 'यह नोट गलतीसे कल आपने भजनके बदलेमें दे दिया था।" बाबू हरिश्चन्द्रने हँसकर कहा—"मैंने इसलिये यह नोट सबसे छिपाकर आपको दिया था कि, यह आपके अनुरूप नहीं था। सबके सामने इतना अल्प पारितोषिक देनेमें मुझे लज्जा मालूम होती थी।"

मलिकजीके कोई सन्तति नहीं थी। इनके अनुज फूलचन्द मलिक थे। सितार, इसरार, मृदङ्ग आदि बजानेमें बड़े निपुण थे। शील-स्वभाव भी उनका बहुत अच्छा था। उनका शरीरान्त अल्प अवस्थामें ही हो गया था, जिससे मलिकजीके हृदयपर वज्रपात-सा हो गया था; किन्तु उनके दोनो पुत्रोंको देखकर उन्होंने धैर्य धारण किया था। उन्होंको अपना औरस पुत्र समझकर पाला-पोसा था। प्रथम पुत्र जगदीश्वरप्रसाद गाने और बजानेमें चतुर था। विक्रम संवत् १९६०में उसका भी शरीर-पात हो गया। अब इनके उत्तराधिकारी लघु भ्राताके पुत्र रामलाल उपाध्याय (लाले मलिक) हैं। मलिकजीने अपनी जन्मभूमि धनगाईंमें एक शिवमन्दिर और एक विष्णु-मन्दिर बनवाये थे, जो अबतक वर्त्तमान हैं और जिनका भोग-राग अबतक चला जाता है।

डुमराँव राजधानीके पाँच महाराजाओंका दरबार इनने किया था। प्रथम महाराज जयप्रकाश सिंहजी, द्वितीय महाराज जानकीप्रसाद सिंहजी, तृतीय महाराज महेश्वरबख्श सिंहजी, चतुर्थ महाराज राधाप्रसाद सिंहजी और पंचम श्रीमती महारानी वेनीप्रसाद कुमारीजी। महाराज प्रकाश सिंहजीके समयमें ये बालक थे, तो भी गानमें बड़े ही चतुर थे। इस सभी लोगोंने इनका अच्छा सत्कार किया था। इस कारण ये बहुत बुलानेपर भी दूसरी किसी राजधानीमें नहीं गये। हाँ, जहाँ महाराज आज्ञा देते थे, वहाँ तो अवश्य ही जाना पड़ता था; जैसे भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजीके पास।

बच्चू मलिकके पद्योंके कुछ नमूने देखिये—

"रजनी बरसे बरसे जा कहो, बर सेजा रचों तब लौं सजनी।
सज नीक पुलाक करों तनको, तनको मत देर अबै करनी॥
करनी धरि अंक करों पियको, पियको अधरामृत होव धनी।
धनी नहिं जोग सबैं अबला अब लाबहु पी पगलूँ रजनी॥१॥"

इस पद्यमें यमक और अनुप्रासकी बड़ी शोभा है।

(कुण्डलिया)

"पिस्ता मो मन काम है, मौनका करे पोय।
अंगु रतन वे दामके सूख छोहारो नीय॥
सूख छोहारो नीय, आवजोसौ गैहो ते।
तू अनारती सेव गरी बिन दे दुख नीते॥
सोचि लगो जा गरे बिही अन बीही रिस्ता।
किसमिस पाती लिखू आखरोटोना पिस्ता॥"

इसमें फलोंके नाम भी आ गये हैं; पर अर्थ दूसरे ही होते हैं। ध्यान देकर पढ़नेसे आनन्द मिलेगा।

(गीत)

"धरत न मन नर हर हर दम दम दमन सकल अघ लहत सदन पद परसत सब जन तर तर गत मगन रहत अस अचल रहत नभ टरत न घन धन।"

इसमें मात्रा-रहित सब अक्षर हैं

(भजन राग बरवा)

"अब प्रभु गुनाह कीजै माफ॥
अब अनेक जन्मनिके यह तन लखत रामते माफ॥
अति कलेश दुनिया यमपुर लों लखि छवि आवत जाफ।
त्राहि त्राहि अब नाथ पुकारों तनिक न कहत खिलाफ॥
कैसउ लोह चरण पारस लहि सोना मान सराफ।
महिमा श्रुति प्रकाश कलि नामहि आपुहि करु इनसाफ॥"

संगीताचार्य्य 'बच्चू मलिक' जीका देहान्त विक्रम संवत् १९६६ में हुआ। इनसे केवल डुमराँवकी ही नहीं, बल्कि जिला आरा और समस्त बिहार प्रदेशकी शोभा थी।

डुमराँवके वृद्ध जन अब भी कहा करते हैं, कि, "बच्चू मलिकजीके समान गवैया इस राजधानीमें अबतक नहीं देखा गया।" मैंने भी विष्णु दिगम्बरको छोड़कर भारतमें दूसरा ऐसा गवैया नहीं देखा। संगीताचार्य्यका चित्र डुमराँवके सर्व-प्रतिष्ठित धनशाली वैश्य, बाबू बद्रीनारायण साहुजीकी कृपासे प्राप्त हुआ है; इसलिये मैं साहुजीको धन्यवाद तथा आशीर्वाद देता हूँ।

मनुहार

ऋतु-वसन्तने प्रकृति-प्रिया—
को पहनाया वर माल।
प्राचीने मल दी गोरे—
गालोंमें ललित गुलाल॥

द्विज-दलका उमंगमें भरकर
'मधुर-माधवी' गाना।
किसे नहीं पुलकित करता
बौरोंका 'रस' बरसाना॥

आज अचानक हुई कल्पनाको भी है अनुराग!
त्याग-राग लौटा दो कवि, कविताको पुनः सुहाग!!

बाबू भुवनेश्वर सिंह "भुवन"

गोबिन्दीकी प्रार्थना

"मुन्नू"

१

"नहीं, अब नहीं बचूँगा, मर जाऊँगा। गोबिन्दी क्यों दुख देती है! अरे छोड़ दे।" आँसू बहाती हुई गोबिन्दी—"प्राणनाथ, अधीर न हो। क्या करूँ, आपकी यह अँगुली बिलकुल सड़ गयी थी; इसलिये तोड़ कर इसे फेंकना पड़ा।"

रातका समय है। नवलगढ़के एक आलीशान मकानके एक सुसज्जित कमरेमें दो पलंग बिछे हैं। एक खाली पड़ा है और एकपर एक मनुष्य लेटा है, जिसकी अवस्था करीब ६० वर्षकी होगी। वह कुष्ठ-रोगसे पीड़ित है। दोनो हाथ बिलकुल सड़ गये हैं! दो अगुलियाँ पहले ही गिर चुकी हैं। एक अभी नोचकर फेंकी गयी है। पासमें एक १८ वर्षकी युवती बैठी है। युवतीका रंग गोरा है और बदन सुडौल। लाल रंगका लहँगा, गोटेदार पीला दुपट्टा और ज़रीदार चो[ली] पहने हुए है। गोटेके पासके रंगसे मालूम होता है कि, दुप[ट्टा] पीला है। एकदम मवाद और खूनसे तर है। युवतीका ना[म] गोबिन्दी है। जो महाशय लेटे हैं, उनका नाम रामकुमार है। युवती बैठी हुई अपने आँचलसे रामकुमारका मवाद पों[छ] रही है।

रामकुमार—"गोबिन्दी, क्यों सताती है? अरे देख, देख, यह अँगुली भी फूट गयी! उफ़! जलन!! जलन!!!" —करता हुआ हाथको बार-बार ज़मीनपर पटकने लगा।

गोबिन्दी—"प्राणनाथ, तुम तो बड़ी जल्दी घबरा जा[ते] हो। देखो, भगवान् चाहेंगे, तो बहुत जल्दी अच्छे हो जाओगे। अधीर न हो मेरे प्राण!" रामकुमार आँ[खें] मूँदकर सुस्त हो गया।

२

"सो गये ! प्राणनाथ , सो गये ! आज बड़ी जलन रही। अँगुली आज लटक गयी थी। उसको निकालकर फेंकना पड़ा !' इतना कहकर गोविन्दी उठी, हाथ-पैर धोये और पलंगके पास घुटनेके बल बैठ गयी। आँखसे आँसूकी धारा बहने लगी। हाथ जोड़कर और सर उठाकर, वह प्रार्थना करने लगी—"हे दयानिधे, हे दीनानाथ, बताओ, मुझसे क्या अपराध हुआ, जो आपने यह रूप और यह नव वयस् देकर मेरे पितासे भी अधिक उम्रवाले एक कोढ़ी पतिसे शादी करवायी ! क्या इसी कारण मुझे एक अंगसे हीन कर दिया कि, मैं बचपनसे ही तुम्हारा ध्यान करती थी ? क्या आपने इसी कारण एक सड़े हुए शरीरसे बाँध दिया कि, मैं सदा शुद्धहृदया रही ? हे सत्यस्वरूप ! क्या आपने इसी कारण एक बूढ़े पञ्जरकी अर्धाङ्गिनी बनाया कि, मैं सदा जीवोंपर दया करती रही ! प्रभो, अशरण-शरण, मेरे पिताजी मामूली गृहस्थ थे। इन सेठ साहबको एक नवयुवती सुन्दरीकी अवश्यकता थी। बस १०,०००) रुपये मेरे पिताको देकर मुझे ले आये ! जिस समय मैं भाँवर फिरती थी, मेरे ये पतिदेव, यद्यपि इत्रसे सराबोर थे, तथापि इनके बदनसे सड़े मांसकी बू निकलती थी ! मेरा चित्त घबराया था। मैंने सोचा था कि, मैं पिताजीसे कह दूँ कि, मेरा विवाह कोढ़ीसे न कीजिये ; परन्तु फिर याद आयी कि, माताने बतलाया है कि, पिताकी आज्ञा मानना धर्म है। मैं मन मारकर रह गयी। भगवन् ! क्या मेरा यही अपराध है ? जिस समय मैं पतिदेवके पास आती हूँ और उन्हें तड़पता देखती हूँ, मेरे ! दिलसे भीषण आह निकलती है ! यह आह बुरी आह है। यह आपको शान्ति न लेने देगी। याद रखिये, अबलाओंकी ही आहने इस देशको रसातलमें पहुँचा दिया है। यह आह आपको चैन न लेने देगी। पिताजी, मैं नहीं चाहती कि,आपको दुःख हो ; परन्तु क्या करूँ, यह आग हृदयसे आपसे आप भड़क-भड़ककर निकलती है। आह ! हृदयमें बड़ी पीड़ा है।" ऐसा कहते-कहते दुःखोद्वेगमें उन्मत्त होकर गोविन्दी बेहोश हो गयी !

३

क़रीब १२ बजे होंगे। एक रूईके गुदाममें आग लगी है। कारण किसीको नहीं मालूम। सब लोग आग बुझानेके लिये दौड़े चले जा रहे हैं। जिनका यह गुदाम है, वह वंशीधर दौड़ता हुआ आगकी तरफ़ बढ़ा जा रहा है। लोग उसे पकड़ते हैं। वंशीधर—"अरे भाइयो, छोड़ दो, अब मैं जिन्दा रहकर क्या करूँगा। जब गुदाम ही न रहेगा, तब मेरा जीना बेकार है। हाय ! अपनी बेटीको कोढ़ीके हाथ बेचकर धन पाया और उससे रूई खरीदी थी। आज दस हजारकी मेरी और चालीस हजारकी बोहरेकी सब-की-सब रूई जली जा रही है। हे भगवन्, अब क्या मुँह दिखाऊँगा ? कैसे मैं संसारमें रहने पाऊँगा ? हाय, अपनी गोविन्दीको मैंने कोढ़ी को दिया; उसीका यह फल भुगतना पड़ रहा है। अंधकार ! मेरे लिये यह संसार अंधकारमय हो गया। अब जी कर क्या करूँगा ?" लोगोंका हाथ छुड़ाकर वह आगमें कूदनेको दौड़ा। इतनेमें पुलिसने उसे आत्महत्या-दोषमें गिरफ्तार कर लिया। वह बेहोश होकर पुलिसके हाथमें लटक गया !

"रामायणका दिवाला"

बाबू अनन्तप्रसाद बी० ए०, बी० एल०

"गंगा" की सोलहवीं "तरंग"में श्रीरजनीकान्त शास्त्री बी० ए०, बी० एल० ने "रामायणका दिवाला" शीर्षक एक लेख लिखा है। अपने लेखमें शास्त्रीजीने श्रीरामचन्द्र तथा श्रीसीता देवीकी समकालीनतापर सन्देह प्रकट किया है। दोनोंकी वंशावलियोंका उद्धरण देकर शास्त्रीजीने यह सिद्ध करनेका प्रयास किया है कि, सीताजीका जन्म श्रीरामचन्द्रके जन्मसे करीब एक हजार वर्ष पहले हुआ था। सीताजीका जन्म निमिकी २४ वीं पीढ़ीमें तथा श्रीरामचन्द्रजीका जन्म विकुक्षिकी साठवीं पीढ़ीमें हुआ था। यही एक दलील देकर शास्त्रीजीने विशाल हिन्दूजातिके पवित्र ग्रन्थ रामायणका दिवाला निकालनेकी कोशिश की है!

दूरदर्शी और निष्ठावान् विद्वानोंको सबसे पहले इस बातपर विचार करना चाहिये कि, पुराणोंके प्रणेताओंने सूर्य-वंशकी वंशावलियोंके उल्लेखनीय व्यक्तियोंका धारावाहिक रूपसे और पूरे विवरणके साथ नामोल्लेख किया है अथवा नहीं? विष्णुपुराणके चतुर्थ अध्यायके अन्तमें ग्रन्थकारने "एत इक्ष्वाकुभूपालाः प्राधान्येन मयोदिताः" कहकर सूर्य-वंशके खास-खास राजाओंका ही नामोल्लेख किया है। यही बात अन्य पुराणोंमें भी है। पुराणोंमें प्राचीन नृपतियोंकी धारावाहिक वंश-लताका वर्णन मिलना कठिन ही नहीं असम्भव भी है। अनन्त कालके अगणित नृपतियोंके नाम—पिता, पुत्र आदिके परम्परागत नाम और विशेषकर क्रमबद्ध नाम—पुराणोंमें नहीं मिलता। पुराणोंमें "अमुकका पुत्र अमुक" ऐसा लिखा अवश्य है; किन्तु उसे वहाँ "अमुक-वंश-संभूत अमुक"को ही जानना चाहिये। अब वर्त्तमान समयमें प्राप्त वंश-लताएँ केवल प्रधान-प्रधान व्यक्तियोंके नामोंके अनुसार ही प्रचलित हैं, पिता-पुत्रके अनुसार क्रमबद्ध नहीं। जहाँ यदुवंशमें ही तीन करोड़ अस्सी लाख

पण्डित महावीर सिंह 'वीरन'

पण्डित गांगेय नरोत्तम शास्त्री

शस्त्र-शास्त्रोंके शिक्षक थे, वहाँ अन्यान्य वंशोंमें कितने शासक थे, इस बातका पता लगाना मनुष्य-शक्तिसे बाहरकी बात है। यही कारण है कि, आधुनिक ग्रन्थोंमें प्रचलित वंश-लताओंको देखनेसे प्रायः सभी वंशोंके नृपतियोंके काल-निर्णयमें गोल-माल दीख पड़ता है। सबसे ज्यादा गोलमाल सूर्य-वंशमें है। समस्त पुराणोंके अनुसार इक्ष्वाकुके ज्येष्ठ पुत्रका नाम विकुक्षि है, जिनको कहीं-कहीं शशाद भी कहा गया है; किन्तु रामायणके अनुसार इक्ष्वाकुके पौत्रका नाम विकुक्षि है। रामयणके मतसे भगीरथके पुत्रका नाम ककुत्स्थ है और पुराण ककुत्स्थको विकुक्षिका पुत्र बताते हैं। समस्त पुराण सीताके पिता राजर्षि जनकका नाम "सीरध्वज" बताते हैं और रामायणके मतसे जनकके पिताका नाम "सीरध्वज" है! रामायणके मतके अनुसार ब्रह्माकी सैंतीसवीं पीढ़ीमें श्रीरामचन्द्रजी हुए; परन्तु ब्रह्मपुराण उनसठवीं पीढ़ी, विष्णुपुराण अड़सठवीं पीढ़ी, हरिवंश छप्पनवीं, शिवपुराण तिरपनवीं, भागवत सड़सठवीं और बृहद्धर्मपुराण चालीसवीं पीढ़ीमें, सूर्य-वंशमें, श्रीरामचन्द्रजीका होना बताता है। सूर्य-वंशके केवल एक व्यक्तिके बारेमें इस अपार असामञ्जस्यको देखकर कौन कह सकता है कि, सूर्य-वंशकी वंशलता कहीं भी क्रमबद्ध मिलती है? आश्चर्य तो इस बातपर है कि, पुराणोंमें सूर्य-वंशके बारेमें, इतनी गड़बड़ी होनेपर भी, शास्त्रीजीने अपने लेखमें लिखा है कि, "मैंने सूर्यवंशीय राजाओंकी वंशावलीको पूर्वोक्त विविध पुराणोंसे मिलाकर जो इसका शुद्ध रूप (!) ढूँढ़ निकाला है ...।" कहनेकी आवश्यकता नहीं कि, शास्त्रीजीने २२ करोड़ हिन्दू-हृदयोंके आराध्य देव सीता-रामकी पवित्र विरुदावलीका "दिवाला" निकालनेके बदले अपनी समझका ही "दिवाला" निकाल डाला है!

आपने अपने लेखमें एक जगह लिखा है, "पर हम आस्तिक हिन्दू हैं।" इस वाक्यके पूर्वान्तरके स्तम्भके एक वाक्यमें शास्त्रीजीकी आस्तिकताकी एक बानगी देखिये। आप लिखते हैं, "उसके कई सौ वर्ष पूर्व ही रामायणकी नायिका भगवती जानकीका खातमा हो गया होगा।" यहाँपर आपने "भगवती जानकीका खातमा" लिखकर अपने साहित्यिक भावोंके "दिवाला"के साथ अपनी आस्तिकताका भी खातमा कर डाला!

शास्त्रीजीने अपने लेखमें सूर्य-वंशीय राजाओंका राज्य-काल, औसत रूपसे, २९-२९ वर्ष मानकर श्रीरामचन्द्रजी और श्रीसीताजीके जन्ममें ९०० वर्षोंका अन्तर होनेका प्रमाण दिया है। अब यदि वंशावलीकी ही बात मानी जाय, तो भी ऐसा नहीं हो सकता; क्योंकि वह काल त्रेतायुगका था। कोई राजा बहुत दिनोंतक राज्य करते थे और कोई कुछ ही दिनोंके बाद वानप्रस्थाश्रममें दाखिल हो जाया करते थे। त्रेतायुगकी तुलना कलियुगसे करना ठीक नहीं। अतः शास्त्रीजीकी यह कल्पना भी असंगत है।

हाँ, एक बात और। वह यह कि, वंशावलियोंमें उपर्युक्त असामञ्जस्योंका एक कारण लिपिकारोंका प्रमाद भी है। प्राचीन कालमें यह रीति थी कि, ग्रन्थ-प्रणेता और होता था और ग्रन्थ-लेखक अन्य। ग्रन्थ-प्रणेता अनन्त कालके नृपतियोंकी वंशावलियोंको याद करके उन्हें ठीक-ठीक नहीं लिखा सके। दूसरे लिपिकारोंने भी लिखनेमें बेशुमार गलती कर दी। यही कारण है कि, महाराज पुरुरवाके पाँचवें पुत्रका नाम कहीं "सतायु" है, कहीं "सत्यायु" और कहीं "श्रुतायु!" इसी तरह एक ही व्यक्तिको कहीं पुत्र लिखा है और कहीं पौत्र! वंश-संभूतकी जगह कहीं पुत्र लिख मारा है और पुत्रकी जगह वंश-संभूत!

इन तमाम बातोंका निष्कर्ष यह है कि, वर्त्तमान पुस्तकोंमें प्राचीन भारतीय नृपतियोंकी जो वंश-लताएँ मिलती हैं, वे उन वंशोंके प्रधान-प्रधान व्यक्तियोंकी ही हैं और

लिपिकारोंने उनमें अगणित भूलें की हैं। अतः शास्त्रीजीको तो पहले वंश-लताओंका अध्ययन कर लेना चाहिये था और उनके असामञ्जस्योंपर भी गवेषणापूर्ण विचार कर लेनेके बाद सीता-रामकी समकालीनतापर कलम उठानी चाहिये थी। विद्वानोंको सबसे पहले प्राचीन वंश-लताओंकी गड़बड़ीमें सुधार करना चाहिये और इसीमें हिन्दूजातिका कल्याण भी हो सकता है। यह सुधार तो दूर रहा, शास्त्रीजीने उलटे प्रहार करना ही आरम्भ कर दिया ! यद्यपि शास्त्रीजीके निबन्धसे कुछ-कुछ सुधारका आशय प्रकट होता है; तथापि वह सुधार सुधार नहीं। यदि कोई व्यक्ति एक आँखसे पीड़ित हो, तो उसकी दूसरी आँखमें भी कील ठोक देना कहाँकी बुद्धिमानी है ? आशा है कि, चिन्ताशील और पक्षपातहीन विद्वान् हमारी इस उक्तिपर मनन करेंगे और समुचित आदेश देनेकी कृपा करेंगे।

तुलसीदास

(१)

शोणित-प्लावित यवन-ध्वजाका
भारत करता था सम्मान।
हिन्दी–हिन्दू–हिन्द देशका
डूब चला था दिनकर–मान॥
श्याम गगनमें प्रलय कालके
बादलके थे दुखद स्वरूप।
यवन–मूर्त्ति दिन-रात भयप्रद
अपना बना रही थी रूप॥

(२)

विषम ज्वालसे हो विदग्ध
जनताने किया तुम्हारा गान।
उथल-पुथल मच गया देशमें
होते ही तेरा आह्वान॥
साधु-शिरोमणि सुकवि सुधाकर
सुहृद् जनोंके जीवन--प्राण।
सत्साहित--कुल--कमल--दिवाकर
महाजनोंके भी श्रीमान॥

(३)

रघुकुल--कुमुद--सुधांशु--सुधारस
पिला किया आनन्द बिभोर।
पाप खचित टूटी नैया भी
पहुँचा ही डाली उस छोर॥
माताके सुपुत्र वीरवर
जगन्नियन्ताके साकार !
पतित-- पावनी-- रामायण-कवि
कविता रमणीके सिंगार !!

(४)

धन्य देव ! तव कार्य धन्य है
तव यश-सौरभ अपरम्पार।
करके याद फूल उठता है
कोमल मानस बारम्बार।
मन--मन्दिरके देव ! धन्य हो
सीता--पति--सरोज--पद दास।
धन्य धन्य स्वातन्त्र्य-देव हो !
धन्य धन्य श्रीतुलसीदास !!

बा० माहेश्वरी सिंह 'महेश'

चा रु च य न

१—विष्णुवर्द्धन और जैन-उत्पीड़न

इधरके रचे हुए वैष्णव-ग्रन्थोंके आधारपर जनसाधारणमें यह मिथ्या धारणा घर कर गयी है कि, दक्षिण भारतके होयसालवंशी विष्णुवर्द्धन राजाने, जैनसे वैष्णव हो जानेपर, जैनोंको बुरी तरह मरवाया था । 'गङ्गा'के वैष्ण-अङ्क (पृष्ठ ५३९) में भी लिखा गया है कि, "वैष्णव हो जाने पर विष्णुवर्द्धन जैन-पंडितोंको कोल्हूमें पिसवाकर मार दिया करता था।" यह कथन उतना ही सत्य है, जितना कि, अशोकके विषयमें बौद्धग्रंथोंका लिखना कि, अशोक अपने भाइयोंके खूनसे हाथ रंगकर राजसिंहासनपर बैठा था। अशोकके शासनलेख बौद्धग्रंथोंके ठीक विपरीत उसके भ्रातृ-प्रेमकी गवाही देते हैं। यही बात विणुवर्द्धनके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। उसके शिलालेख उसे जीवनके अन्त तक जैनधर्मका संरक्षक प्रकट करते हैं—वैष्णव हो जानेपर भी उसने जैनोंका सम्मान किया था। उसकी अग्रमहिषी जैन-धर्मानुयायिनी थी, उसके पुत्रके शिक्षक एक जैनाचार्य थे, उसका सेनापति भरतेश्वर और राजमंत्री गङ्गराज जैन वीर थे और उसने उनके कहनेसे जैनमंदिरोंको दान भी दिया था। उस धार्मिक पक्षपात और कट्टरताके दर्शन उसमें नहीं होते, जो उसे मनुष्यत्वसे गिरा देतो ! मालूम यह होता है कि, इधर जब साम्प्रदायिक असहिष्णुता दक्षिण भारतमें बढ़ गयो, तब प्रत्येक संप्रदायने अपने विरोधीको नीचा दिखानेके लिये झूठे-सच्चे कथानक रच डाले और इस सम्प्रदाय-मोहसे इतिहास भी दूषित होनेसे न बचा ! किन्तु लाख छिपानेपर भी सत्य नहीं छिपा रहता—वह बादलोंमें छिपे हुए सूरजकी तरह उठता है। विष्णुवर्द्धनका ठीक-ठीक इतिहास आज दक्षिण भारतके शिलालेख प्रकट कर रहे हैं।

विष्णुवर्द्धनने लगभग सन् ११०६ से ११४१ तक राज्य किया था। उनके अन्तिम राज्य-कालके लेखोंसे देखिये कि, वह जैनोंपर कितने सदय थे। श्रवणवेलगोलके शिलालेख नं० ५३ (१४३) सन् ११२८ में विष्णु-वर्द्धनकी प्रतापगाथा अङ्कित है। × उनकी पटरानी (अग्रमहिषी) शान्तल देवी जैनधर्मपरायण बतायी गयी है। शान्तल देवीकी माता भी जैन थीं, यद्यपि उनके पिता शैव थे। इस उल्लेखसे उस समयकी मत-सहिष्णुताका परिचय मिलता है। जहाँ दो भिन्न मतोंको पालते हुए स्त्री-पुरुष पति-पत्नीका जीवन निर्वाह सकते हैं, वहाँ धार्मिक उत्पीड़नका ख्याल करना एक असंभव-सी बात है! वहींके शिलालेख नं० ४९३ (११२९) से प्रकट

× जैन-शिलालेख-संग्रह पृ० ८८।

है कि, विष्णुवर्द्धनने जैन-मंदिरोंका जीर्णोद्धार कराया था और ऋषियोंके आहार-दानके लिये ग्रामदान किया था। लेख नं० १३८ (सन् ११९९) में विष्णुवर्द्धनको, जैनधर्म संरक्षक-रूपमें, कीर्ति-गाथा गायी गयी है। उनके पुत्र नरसिंह-देव जैनमंदिरकी बन्दना करते हुए प्रकट किये गये हैं। यदि विष्णुवर्द्धन वैष्णव होनेपर जैनधर्मके द्वेषी हो जाते, तो यह संभव नहीं था कि, उनका पुत्र जैनधर्मपरायण हो सकता और उसके लेखमें उन्हें जैनधर्मका संरक्षक कहा जाता!

लगभग ११७८ ई० के लेख नं० ९० से स्पष्ट है कि, विष्णुवर्द्धनने अपने अन्तिम जीवनमें गङ्गराजके पराक्रम पर मुग्ध होकर उनके कहनेसे गङ्गवाड़िका दान जैनतीर्थ गोम्मटेश्वरके लिये दिया था। इसी लेखमें विष्णुवर्द्धनके पुत्र नरसिंह और पौत्र बल्लालको भी जैनधर्मका भक्त प्रकट किया गया है। लेख नं० १४४ (सन् ११३९)में विष्णुवर्द्धनको 'सम्यक्त चूड़ामणि' कहा है। इससे प्रकट है कि, वह इस समयतक जैनधर्मके श्रद्धालु थे। इसके बाद वह वैष्णव धर्ममें दीक्षित हुए होंगे, तथापि जैन धर्मसे उनकी सहानुभूति बनी ही रही।

श्रवणवेलगोलमें और भी बहुतसे लेख हैं, जिनसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि, धर्म-परिवर्तनके बाद भी विष्णुवर्द्धनकी सहानुभूति जैनोंसे थी। उनकी रानी शान्तल देवी आजन्म जैन श्राविका रहीं और जिनमंदिर बनवाती तथा दान देती रहीं। उनके मंत्री गंगराज तो उस समय जैनधर्मके भारी स्तम्भ थे। उन्होंने विष्णुवर्द्धनके राज्यकी अद्वितीय उन्नति की थी और अपनी सारी समृद्धि जैनधर्मके उत्थानमें व्यय की थी। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि विष्णुवर्द्धनने, वैष्णव हो जानेपर, जैनोंके प्रति घोर अत्याचार किये थे या उन्हें कोल्हूमें पिसवाया था।

—कामताप्रसाद जैन

२—उन्नतिकी दौड़में अफगानिस्तान

हालमें ही अफगानिस्तानके बादशाह नादिर [illegible] उद्घोषित किया है कि, "अफगानिस्तान एक स्वतंत्र है"; और है भी वास्तवमें यह बात सोलहो आने [illegible] भारतकी, अपेक्षा अफगानिस्तानके जल-वायुमें स्वतन्त्रता लहर अधिक वर्त्तमान है। क्या मजाल कि, वहाँ कोई [illegible] को जबर्दस्ती गुलाम बना ले या बेगारी करनेको बाध्य [illegible] वहाँ प्रजाकी जर-जमीनकी रखवाली स्वयं सरकार करती [illegible] यों तो प्रजाकी रक्षा सब देशोंमें सरकार ही करती है, [illegible] वहाँकी रक्षामें कुछ विशेषता है।

अफगानिस्तानकी निश्चित जनसंख्या कितनी है, [illegible] ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता; क्योंकि गणना नहीं हुई। फिर भी करीब एक करोड़के यह कूती जा सकती है। वहाँ बाशिन्दोंमें बहुतेरे ऐसे भी हैं, जो घर-द्वार नहीं रखते, [illegible] परिवारके साथ सदा भटकते फिरते हैं। उन्हें बसानेके लिये सरकारने अभीतक कोई प्रबन्ध भी नहीं किया है; क्योंकि अन्दाजसे ज्यादा रुपया लग जानेका डर है।

अफगानिस्तान एक प्रकारसे कृषिप्रधान देश है। इस लिये कृषिको उन्नतावस्थामें पहुँचानेके लिये, सरकारकी ओरसे, बहुत सी कृषि-शालाएँ खोली गयी हैं। उनमें अच्छी जातिके गेहूँ और बढ़िया फलोंके पौधे तैयार करके बाँटे जाते हैं। कान्धारमें अब अच्छा गेहूँ उपजने लगा है। गेहूँ ही वहाँकी प्रधान फसल है।

अपने खर्च भरके लिये अफगानिस्तान काफी ऊन तैयार कर लेता है। अब कपासके लिये मिश्र और अमेरिकासे कपासके बीज मँगाये गये हैं; और, इन्हें अच्छी प्रकारसे उपजानेके लिये इन्हीं देशोंसे कुछ विशेषज्ञ भी बुलाये गये हैं। बहुत जल्दी ही अफगानिस्तान कपड़ोंके लिये भी दूसरे देशोंका मुहताज नहीं रहेगा।

दूधके लिये भी अफगानिस्तान विशेष प्रयत्नशील है। कई जगह गोशालाएं खोली गयी हैं। काबुलके पास जो गोशाला खुली है, उसमें अच्छे नस्लकी गायें और चुनिन्दे साँड़ रखे गये हैं। गो-सेवाका सफल प्रयत्न अफगानी मुसलमान इन दिनों कररहे हैं।

आजकल अफगानिस्तानमें नयी-नयी नहरें भी खोदी जा रही हैं। इस समय वहाँ बीस लाख एकड़ जमीनमें विना सिंचाईके खेती हो रही है; फिर भी अकाल बहुत कम पड़ता है। अगर नहरों द्वारा सब जगह ठीकसे सिंचाईका प्रबन्ध हो जायगा, तो अफगानिस्तानकी भूमि और भी उर्वरा हो जायगी।

यहाँ टैक्स भी बहुत कम लगता है। एक बार बादशाह अमानुल्ला खाँने वहाँ टैक्स बढ़ाया था, जिससे जनता में खूब असन्तोष फैल गया था। अब वह टैक्स उठ गया। अब फसल देखकर सचाईके साथ कर लगाया जाता है— ज्यादा-से-ज्यादा दसवाँ हिस्सा और कम-से-कम तीसरा हिस्सा। जहाँ सिंचाईका प्रबन्ध नहीं है, वहाँकी फसलपर कर नहीं लगता।

सेनामें सुधार हुआ है। अमलोंकी घूसखोरीपर सख्त नजर रखी जाती है। काबुलसे मास्कोतक बे-तारका तार लगा दिया गया है। हाँ, शिक्षाका प्रचार बहुत कम है; परन्तु इधर भी सरकारका पूरा ध्यान है। गरीब लोगोंका पढ़ना केवल कुरानकी कुछ आयतें रट लेना भर है। अखबार किस चिड़ियाका नाम है, बेचारे देहाती अभीतक नहीं जानते।

ऐसी भी खबर है कि, हिन्दुओंको सरकारी ओहदे मिलने लगे हैं। दीवान हुकुमचन्द शाही मजलिसमें नियुक्त किये गये हैं। पेशावरसे सीधे गजनी मोटर जाती है।

—अच्युतानन्द सिंह

३—भारतमें नमक-कर

सन् १९२९ तथा ३० में भारत सरकारको कुल नमक-कर की आमदनीमें ६,३४,६४,००० रुपये मिले। यह अदद कुछ थोड़ी नहीं है। भारत सरकारके प्रधान करोंमेंसे यह एक कर है। नमक-कर द्वारा काफी रुपया हमारी सरकारके कोषमें जाता है। अतएव इस करपर विशेष ध्यान देकर हमें इसका अध्ययन करना चाहिये।

इतिहासका पन्ना उलटनेसे हम यह देखते हैं कि, यह नमक-कर ब्रिटिश सरकारने अपने अगले राजाओंसे माँगा; परन्तु इस नमक-करके साथ-ही-साथ उसको अन्य बहुतसे करोंका भी अधिकार भारतके देशी राजाओंने दे दिया था! परन्तु एक बड़े ही अचम्भेकी बात यह है कि, भारत सरकार-ने अन्य अनेक ट्रांजिट (Transit) करोंको, जो इसीके साथ मिले थे, हटा दिया और नमक करको हटानेकी अपेक्षा कुछ और बढ़ा दिया। हमको इसका कारण ढूँढ़ना चाहिये।

भारतमें नमक पैदा करनेके चार प्रधान जरिए हैं। पंजाबमें कोहाटकी खानोंमेंसे, राजपूतानेकी साँभर झीलसे, कच्छ-रानके स्थानसे तथा बम्बईके निकट समुद्रसे। ये चारों ऐसी जगहें हैं, जहाँ अधिक-से-अधिक नमक पैदा किया जा सकता है। बंगालकी खाड़ीमें भी बहुत नमक निकलता है; परन्तु ब्रह्मपुत्र तथा गंगाके पानीसे वहाँ नमक निकालना कठिन हो जाता है। परन्तु तब भी इन चारों स्थानोंसे इतना नमक पैदा हो सकता है, जितना भारतमें सस्ते-से-सस्ते दामपर खर्च होकर अधिक संख्यामें बाहर भेजा जा सकता है। परन्तु यहाँ तो विधाताने भारतीयोंके भाग्यमें कुछ और ही लिखा है कि, वे अपना नमक (जो अधिक पैदा हो) समुद्रमें फेंक कर अपने खानेके लिये लिवरपूल, जर्मनी, अदन तथा अन्य दूसरे देशोंपर निर्भर रहें! इसका क्या अर्थ? इन बेचारे भारत-वासियोंको करोड़ों रुपयोंका नमक अन्य देशोंसे मँगाना पड़ता है!

नमकका बनाना करीब-करीब सरकारके अधिकारमें है। अधिक-से-अधिक नमक तैयार करनेका काम सरकार करती है और थोड़ा काम चार्टर्ड कम्पनियोंको दिया जाता है। कहनेका मतलब यह है कि, नमकपर लगभग सरकारका एकाधिपत्य है। नमक बनाने तथा बेंचनेका सर्वाधिकार सरकारको ही है। इसके लिये एक नमक विभाग ही है, जो किसी दूसरेको नमक बनानेका अधिकार नहीं देता। नमककी रक्षा करनेके लिये पलटनकी भी आवश्यकता पड़ती है!

भारतमें नमक-कर ब्रिटिश शासनमें घटता-बढ़ता था। सन् १८८८ से १९०३ तक प्रत्येक मन नमकपर २॥) कर था। परंतु १९०३ में यह घटाकर २) कर दिया गया। १९०५ में यह फिर घटकर १॥) हुआ; फिर १९०७ में १) प्रतिमन था और १९१६ में यह फिर बढ़ाकर १।) प्रतिमन कर दिया गया। सन् १९०३ से १९०८ तक नमक-कर बहुत घट जानेसे नमकका खर्च २५ प्रति सैकड़ा बढ़ गया। सन् १९२३ में यह कर फिर दूना अर्थात् २॥) प्रति मन किया गया। परन्तु फिर सन् १९२४ में यह १।) प्रति मन कर दिया गया।

इसके देखनेसे हमको यह पता चलता है कि, जब-जब जैसी-जैसी सरकारको रुपयेकी आवश्यकता पड़ी, नमक-कर भी घटता-बढ़ता गया।

यह कर एक ऐसा कर है, जो भारतके सभी प्राणियोंसे सम्बन्ध रखता है। इसका कारण यह है—नमक ऐसी आवश्यकीय वस्तु है, जिसको सभी लोग, गरीब-से-गरीब धनी-से-धनी लोग, लगभग बराबर ही खर्च करते हैं। इसकी आवश्यकता लगभग सभीके लिये बराबर ही है। इसकी कीमत कुछ भी हो; परंतु जिसको जितनी आवश्यकता है, वह उतना ही नमक खा सकेगा। नमककी सस्ती हो जानेसे लोग अधिक नमक खाना नहीं आरम्भ कर देते हैं और यदि कुछ बढ़ता भी है, तो अति अल्प। और, इसी प्रकार नमक महँगा भी हो जानेपर कोई इसका कम खर्च नहीं कर सकता। जो जितना भोग करता था, उतना ही वह भोग करता रहेगा। यदि वह कमी भी करेगा, तो बहुत कम अर्थात् नमककी माँग उसकी कीमतके घटने-बढ़नेसे बहुत कम साथ रखती है। कीमतके घटने-बढ़नेसे इसकी माँगपर बहुत कम असर पड़ता है अर्थात् इसकी माँगकी लोच प्रायः स्थिर है।

अतएव नमक-करके घटने-बढ़नेके कारण इसके मूल्यमें बहुत घटाव-बढ़ाव होता है; परन्तु अन्य वस्तुओंकी तरह इसकी मांगकी लोचमें कोई अधिक फरक नहीं पड़ता। इसका कारण यह है कि, नमकके बदले हम कोई दूसरी चीज़से काम चला सकते हैं या इसको खाना थोड़े दिनोंतकके लिये रोक दें अथवा इसका खर्च कम कर दें। यह असम्भव है। इस लिये नमकका कर गरीब आदमियोंके लिये भारी होता है। करके अधिक बढ़ जानेसे सरकारको अधिक आय हो जाती है; परन्तु गरीबोंको बड़ा धक्का लगता है; क्योंकि उनको तो नमक खरीदना ही पड़ता है, चाहे जो कुछ कीमत हो। भारतवर्ष एक गरीब देश है। यहाँके अधिकांश अत्यन्त दरिद्र हैं। यहाँकी कुल आर्थिक संपत्तिके ⅓ स्वामी केवल यहाँके धनी-धनी राजा लोग हैं, जिनकी संख्या केवल ५ प्रतिशत है। फिर ⅓ यहाँके मध्य श्रेणीके लोग, जो केवल ३० प्रतिशत हैं, भोग करते हैं। शेष बाकी ६५ प्रतिशत आदमी केवल बचे ⅓ में जीवन निर्वाह करते हैं।

और, यह नमक-कर ६५ प्रतिशत जनतापर बहुत बुरी तरह बोझा है। यह गरीब आदमियोंकी आमदनीका एक बड़ा हिस्सा अपहरण कर लेता है। यह कर एक प्रकारसे बहुत अधिक अनिवार्य कर है! इसके बनानेका खर्च बहुत कम है, परन्तु तो भी इसकी कीमत बहुत अधिक है।

—रामानुज [illegible]

४—हिन्दी-साहित्य-विद्यालयोंकी आवश्यकता

यह बात सर्ववादि-सम्मत है कि, अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका परीक्षा-विभाग, कई दृष्टियोंसे, बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है। उसके द्वारा पठित समाजमें हिन्दी-साहित्यके अध्ययनका अनुराग उत्पन्न हुआ है और इस विशाल देशके प्रायः प्रत्येक प्रान्तके निवासियोंको हिन्दी-साहित्यका परिचय प्राप्त हुआ है। इसलिये एक प्रकारसे परीक्षा-विभागके द्वारा प्रचारात्मक कार्य भी सन्तोषजनक हुआ है। कई देशी राज्यों एवं जिला-बोर्डोंने सम्मेलन-परीक्षोत्तीर्ण शिक्षकोंका समुचित सम्मान किया है और कतिपय सरकारी शिक्षण-संस्थाओंमें सम्मेलनके विशारदोंको स्थान दिया गया है। सरकारी कालेजोंमें साधारणतया हिन्दी-साहित्यके शिक्षणका समीचीन प्रबन्ध न रहनेके कारण कालेजके हिन्दी-प्रेमी विद्यार्थियों एवं ग्रेजुएटोंकी ज्ञान-पिपासा तृप्त नहीं होती। इस स्थितिमें सम्मेलन-परीक्षाओंसे उनकी यह पिपासा बहुत अंशोंमें शान्त हुई है। यही नहीं, इन परीक्षाओंने अंग्रेजीदाँ और संस्कृतज्ञ युवकोंको हिन्दी-साहित्यके अध्ययनके लिये यथेष्ट उत्तेजन भी दिया है। इसी प्रकार यदि समस्त सरकारी विश्वविद्यालय तथा देशभरके सभी जिला-बोर्ड सम्मेलन-परीक्षोत्तीर्ण व्यक्तियोंको उचित प्रोत्साहन दें तो, इन परीक्षाओंकी उपयोगिता और भी बढ़ सकती है।

यों तो सम्मेलनका परीक्षा-विभाग बहुत दिनोंसे काम करता आ रहा है; किन्तु गत कलकत्ता-सम्मेलनमें हिन्दी-विश्वविद्यालयकी स्थापनाका निश्चय किया गया है और सन् १९८९ एवं १९९० की परीक्षाओंकी विवरण-पत्रिका, उक्त विश्वविद्यालयके नामसे, प्रकाशित हुई है। इस कारण इन परीक्षाओंकी गम्भीरता और भी बढ़ जाती है। इस गम्भीरताकी रक्षाके लिये तथा हिन्दी-विश्वविद्यालयकी समुचित प्रतिष्ठा एवं सार्थकताकी दृष्टिसे ऐसी शिक्षण-संस्थाओंका प्रयोजन है, जिनका सम्बन्ध उक्त विश्वविद्यालयसे हो और जो उसके नियन्त्रणमें रहकर विवरण-पत्रिकाके अनुकूल पढ़ाईका प्रबन्ध करे। ऐसी संस्थाओंके अभावमें केवल प्रयागस्थ "हिन्दी-विद्यापीठ"से अभीष्ट कार्य नहीं हो सकता।

इस विषयमें यह बात भी विशेष विचारणीय है कि, केवल परीक्षा-केन्द्रोंकी स्थापनासे इन परीक्षाओंके द्वारा परीक्षार्थी पूर्ण लाभ नहीं उठा सकते। परीक्षार्थियोंके पूर्ण रूपसे लाभान्वित होनेके लिये यह भी परमावश्यक है कि, परीक्षाओंके पाठ्य क्रमके अनुसार अध्ययनकी भी उपयुक्त व्यवस्था हो। सम्प्रति परीक्षार्थी किसी व्यक्ति-विशेषसे निजी ढंगपर अध्ययन करते हैं; पर न तो सबको ऐसी सुविधा प्राप्त हो सकती है और न इससे सुचारु रूपसे अध्ययन ही हो सकता है। दूसरी बात यह है कि, और कुछ दिनोंतक इस प्रकार शिक्षण-संस्थाओंका अभाव रहनेसे परीक्षाकी उपयोगिताका भी ह्रास हो सकता है। परीक्षार्थियोंकी संख्या प्रति वर्ष बढ़ती जाती है और यह निश्चित है कि, कई परीक्षार्थी अध्ययनका उचित प्रबन्ध न कर सकनेके कारण येन केन प्रकारेण पुस्तकावलोकन करके केवल परीक्षोत्तीर्ण होनेके हीन उद्देश्यसे ही परीक्षाओंमें बैठते हैं; और, आगे ऐसे लोगोंकी संख्या और भी बढ़नेकी सम्भावना है। इस दशामें कच्चे विशारदों और साहित्य-रत्नोंकी वृद्धिसे शिक्षित समाजमें इन परीक्षाओंकी उपयोगिताके प्रति सन्देह उत्पन्न हो सकता है और ऐसा होना कदापि वाञ्छनीय नहीं है।

अबतक इस विषयपर सम्मेलन-परीक्षाओंकी उपयोगिता और सफलताकी दृष्टिसे ही विचार किया गया है; परन्तु एक और दृष्टिसे भी साहित्य-विद्यालयोंकी स्थापनाका प्रश्न महत्त्व-पूर्ण प्रतीत होता है। वह यह कि, देशमें यथेष्ट संख्यामें साहित्य-विद्यालयोंकी स्थापना होनेसे अध्यापकों

और परीक्षार्थियोंकी साहित्यिक वृत्तिका विशेष रूपसे अनुशीलन होगा और इससे ऐसे वायु-मण्डलकी सृष्टि होगी, जो हिन्दी-साहित्यके निर्माण तथा विकासके लिये भी परमोपयोगी सिद्ध होगी।

सम्प्रति यह अवस्था है कि, सम्मेलन-परीक्षाओंमें उत्तीर्ण विशारदों एवं रत्नोंको आत्म-विकासका यथोचित और यथेष्ट अवसर नहीं मिलता। सरकारी विश्व-विद्यालय अपनी-अपनी उपाधियोंके अनुचित और अनावश्यक मोहमें मग्न हैं तथा सच्चे साहित्य-मर्मज्ञोंका समुचित सम्मान नहीं करते—उन्हें अपने यहाँ प्रश्रय नहीं देते। हिन्दीके मुद्रणालयोंकी संख्या भी परिमित है और उनमें भी पहलेसे ही लोग भरे पड़े हैं। इस दशामें यदि काफी तादादमें साहित्य-विद्यालयोंकी स्थापना हो जाय, तो सम्मेलन-परीक्षाओंमें उत्तीर्ण व्यक्तियोंको आत्मोन्नतिका भी उचित अवसर मिले और उनको बेकारीका सवाल भी, किसी हदतक, हल हो जाय।

अब स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि, ऐसी संस्थाओंके स्थापनका कार्य्य कैसे हो? सरकारी विश्वविद्यालयोंसे इसकी आशा की नहीं जा सकती। इस अवस्थामें इन परीक्षाओंके प्रवर्त्तक तथा हिन्दी-विश्व-विद्यालयके संस्थापक अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनको ही इसके लिये यत्नशील होना चाहिये। उसका प्रथम कर्त्तव्य यह हो कि, हिन्दी-विद्यापीठ एक आदर्श साहित्य-शिक्षणालय बने और प्रत्येक प्रान्तमें कम-से-कम एक-एक हिन्दी-साहित्य-महा-विद्यालयोंकी स्थापना हो। मेरे विचारसे प्रयागस्थ हिन्दी-विद्यापीठ एवं अन्य सम्बद्ध साहित्य-महाविद्यालयोंमें उत्तमा परीक्षातकके पाठ्य क्रमको पढ़ाईका प्रबन्ध होना चाहिये।

अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनको अविलम्ब यह कार्य हाथमें ले लेना चाहिये। प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलनोंको, देवघरके गोवर्धन-साहित्य-विद्यालयके समान, कम-से-कम प्रत्येक जिलेमें एक-एक ऐसे हिन्दी साहित्य-विद्यालयकी स्थापना करनी चाहिये, जिसमें मध्यमा-परीक्षातकके पाठ्य क्रमकी पढ़ाईकी व्यवस्था हो। इस वर्ष बिहार प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनने, अपने देवघरके अधिवेशनमें, इस आशयका प्रस्ताव भी पास किया है कि, जिला-सम्मेलनोंका सङ्गठन इस वर्षके लिये स्थायी समितिका मुख्य कार्य्य-क्रम हो। इस सम्बन्धमें मेरा सानुनय अनुरोध है कि, जिला-सम्मेलनोंके सङ्गठनके साथ-साथ हर एक जिलेमें एक एक साहित्य-विद्यालय खोलनेका भी यथोचित प्रयत्न अवश्य होना चाहिये। प्रत्येक जिला-सम्मेलनको चाहिये कि, अन्य कार्य्योंके अतिरिक्त ऐसे विद्यालयके सञ्चालनको भी अपना मुख्य कार्य्य बनावे।

इस सम्बन्धमें अन्यान्य हिन्दी-हितैषी व्यक्तियों एवं संस्थाओंको भी उदासीन नहीं रहना चाहिये। नागरी-प्रचारिणी सभाओं एवं संयुक्त प्रान्तीय हिन्दुस्तानी एकेडेमी जैसी संस्थाओंको भी इस विषयमें, साहित्य-सम्मेलनको किसी न-किसी रूपमें, अवश्य सहायता करनी चाहिये। श्रीमान् बाबू घनश्यामदासजी बिड़ला, श्रीमान् सेठ गोकुलचन्दजी श्रीमान् बाबू शिवप्रसादजी गुप्त तथा श्रीमान् बाबू सीतारामजी सेखसरिया सरीखे धन-कुबेर एवं वदान्य हिन्दी-हितैषी महानुभावोंको भी इस कार्य्यमें सम्मेलनको पूर्ण साहाय्य प्रदान करना चाहिये।

अन्ततः सभी पत्र-सम्पादकों एवं अन्यान्य हिन्दी-प्रेमी विद्वानोंसे भी मेरा सविनय अनुरोध है कि, वे महानुभाव भी इसकी उपयोगिता एवं महत्तापर सम्यक् विचार करें और इस कार्य्य-क्रमकी सफलताके लिये अपने पाण्डित्य और प्रभावका पूर्ण उपयोग करनेकी कृपा करें।

—पुलकितलालदास "मधुर"

८—प्रतिभा

प्रायः लोग यह विचार कर संतुष्ट होते हैं कि, प्रतिभा नामक वस्तु अनुशीलन न किये जानेपर भी उत्पन्न होती है। उनकी समझसे प्रतिभाका जागरण और उसका प्रकाश आप-से-आप होता है। ऐसे पाठक कौतुक बोध करने अथवा आनन्दित वा विस्मित होनेमें ही सदा व्यग्र रहते हैं। वे चिन्ता करनेमें अपने मस्तिष्कको नहीं लगाना चाहते। इसीलिये प्रतिभा एक अद्भुत वस्तु समझी जाने लगी है।

प्रतिभाका आवेष्टन और उसका प्रकाश—दोनोंमें स्पष्टतः एक सामञ्जस्यका प्रभाव समझा जाता है। असामंजस्य जितना अधिक होगा, विस्मय उससे कहीं अधिक होगा। कोई कृषक यदि कवि हो, अथवा पुलिस-कर्मचारी यदि चित्रकार हो, तो साधारण व्यक्ति उसकी खूब प्रशंसा करते हैं। कविका व्यक्तित्व वा जीवन-कथा कविकी कविताके साथ सम्बन्ध नहीं रखती—ऐसा होनेपर ही साधारण-जन ठीक समझते हैं।

रचना-विषयकी सरलता और उसके प्रकाशनकी सुग-मता कभी-कभी बुद्धिका कार्य कहकर परिगणित होती है। जिस ग्रन्थकी सरलता जितनी ही अधिक होती है, वह उतना ही न्यून-शक्ति-प्रसूत समझा जाता है। मौलिकता, सृजन-शक्ति, कल्पना-शक्ति, धारणा-शक्ति, चिन्ता-शक्ति, आध्यात्मिक-शक्ति एवं सृष्टिका आवेग प्रभृतिको दृष्टि-कोण-में रखकर साधारण जन प्रतिभाका विचार नहीं करते। यह पथ उनके लिये अतीव क्लेशकर समझा जाता है। स्थूल ज्ञानसे उसे समझ जाना ही उनकी दृष्टिमें प्रतिभा-का मान-दण्ड है। वे प्रतिभाको एक मानसिक उपाधि समझते हैं; किन्तु वास्तवमें चासर, स्पेन्सर, शेक्सपियर, मिल्टन, वड्सवर्थ प्रभृति अँग्रेजी काव्यके बड़े-बड़े स्रष्टाओंके ऐसे कार्यकरी ज्ञान और साधारण-बुद्धि थे, जो सांसारिक जनोंके लिये ईर्ष्याका विषय समझे जाते हैं। चासरने अपनी 'कान्टरबरी टेल्स'को उस समय लिखा था, जिस समय वह जहाजपर माल बोझानेका बिल तैयार किया करते थे। आयरलैण्डके डिपुटी-गवनर-के सेक्रेटरी-पदपर आसीन हो कार्य-संचालन करते हुए स्पें-सरने 'फेयरी क्वीन' लिखनेका मनसूबा बाँधा था। शेक्सपियर था थियेटरका वक्ता, मैनेजर और वणिक्। वह जिस समय 'मेकबेथ' लिख रहा था, उस समय कुछ रुपयेके लिये एक मनुष्यके ऊपर मुकदमा चला रहा था। मिल्टनने स्कूल-मास्टरीके द्वारा जीविका-अर्ज्जन करते हुए 'एरियोपाजिटिका' लिखी थी। वर्डस्वर्थका विचार विलक्षण था, कल्पना-शक्ति संयत थी और कवितामें बड़ी पैनी बुद्धि थी। इनमेंसे कोई ऐसा न था, जो कविताके पीछे पागल न हो गया हो!

जिस तरह फलका गुण उसकी उत्पादनकी द्रुतता देखकर आँका जाता है, उसी तरह प्रतिभाका विचार किया जा सकता है उसकी रचनाकी द्रुतता देखकर। साधारण-जनोंकी यह भ्रान्त धारणा है कि, बिना आयास किये ही लोग बड़े-बड़े काव्य-ग्रन्थोंकी सृष्टि कर गये हैं। उनकी दृष्टिमें वे कवि आदरणीय नहीं समझे जाते, जो आमोद-प्रमोदको पसन्द करते हैं और जो अधिक परिश्रममें अपने समयको अति-वाहित करते हैं।

इस मान-दण्डके अनुसार आठ वर्षमें लिखी गयी 'ग्रे' की 'एलजी' कविताका कोई स्थान नहीं रह जाता। किन्तु जिसे प्रतिभा है, वही अपरिसीम परिश्रम कर सकता है। शेक्सपियरका रचना-क्षेत्र जितना ही विस्तृत था, उसका ज्ञान उतना ही व्यापक था। वह निश्चय ही सर्वग्राही पाठक था। मनुष्य और घटना-प्रवाहका वह विचक्षण तथा अध्ययनशील पर्यवेक्षक था।

प्रतिभाके कतिपय उपादान हो सकते हैं—मौलिकता, कल्पना-शक्ति, चित्त-व्यापकता, अनुभूति-प्रवणता, सरलता,

समवेदना, भावावेग, प्रकाश दक्षता, मात्रा-ज्ञान और संगीतका सहज कोमल बोध। किन्तु ये सभी व्यर्थ हैं, यदि प्रतिभाके अन्तस्तलमें वह असीम मनःशक्ति, वह आत्म-विलोपी लक्ष्य और साधन-निष्ठा न हो, जिनके द्वारा ये सभी उपादान अनुशीलित हो सकते हैं और जिनमें अमरकाव्य-सृजन-शक्ति निहित है। जिस प्रतिभाकी सृष्टि बुद्धि-वृत्तिको वर्द्धित करती है, भवावेगको आलोड़ित करती है एवं कल्पना-को प्रदीप्त करती है, वह प्रतिभा अमानुषिक परिश्रम भी करती है।*

—अनूपलाल मण्डल, साहित्य-रत्न

६—सब लिपियोंका मूल देवनागरी लिपि है

चित्रकारीकी ओर मेरी विशेष रुचि है; इस कारण मैं स्वभावतः अक्षरोंकी भी तोड़-मरोड़ किया करता हूँ। एक दिनकी बात है, मैं अँग्रेजी-वर्णमालाको बड़े ध्यानसे, अर्थात् चित्रकारीकी दृष्टिसे, देखने लगा। सबसे पहले 'R' अक्षरपर मेरी दृष्टि पड़ी; क्योंकि यह मेरे नामका पहला अक्षर है। अब ध्यान देनेकी बात है कि, "R" में पहले "I" आकारका चिह्न है, तब '२' = 'र' का। दोनों मिलाकर 'I२ = R' हो जाता है। यह सभीको स्वीकार करना होगा।

दूसरा अक्षर लीजिये —'Y' 'वाई'। वाईमें और अपने 'य' में भी पूर्ण समानता है—Y = य। थोड़ा भेद अवश्य पड़ता है; किन्तु वह वैसा ही है, जैसा मनुष्योंमें।

तीसरा अक्षर लीजिये—'G' इसमें और 'ग' में भी थोड़ी ही विभिन्नता है। ध्यान देनेपर ज्ञात होता है कि, 'ग' का ही वंशज "G = ग" है।

चौथा—J = जे = ९ में भी बहुत कुछ समानता है।

'M' = एम् = 'म' = 'M'। यह भी परस्पर सहानुभूति रखता है।

भी = भ = 'V'। इसमें भी कुछ मिलान है। अब 'पी' को देखिये। अपने 'प' में बायीं ओर पेट है; और 'P' में दाहिनी ओर पेट है; यही अन्तर है।

अंग्रेजीकी छोटी 'b' की भी यही हालत है। "व = b"। इसीसे मैं 'ब' की सन्तान 'बी' को समझता हूँ।

'क = K'। इसमें भी हमारे कौतुहलप्रिय पाठकों अवश्य समानता माननी पड़ेगी।

इसी प्रकार 'टी = T = 'त'। 'टी' अक्षरमें स्पष्ट समानता देखी जाती है।

पञ्चाशद्वर्णमातृका (देवनागरी लिपि) की महिमा अ... है। वही सरस्वती-स्वरूपा है। वही भूमण्डलस्थ ... भाषाओंकी, चारों वेदोंकी और सभी शास्त्रोंकी आदि-... है। संसारके सभी चराचर-जनक शब्द ब्रह्मका आधार 'अ' से लेकर 'क्ष' पर्य्यन्त, पचासों वर्णों के ही ऊपर, ... शब्द-जाल या शास्त्र-समूह रचे गये हैं। इन पचास वर्णों ... अतिरिक्त संसारमें एक अव्यक्त श्वास भी नहीं लिया ... सकता। वाग्देवीकी अक्ष-माला भी यही 'अ' से लेकर ... पर्य्यन्तकी है अथवा पाणिनीय व्याकरणके अष्टाध्यायी ... सूत्र-पाठका प्रथम "अ, इ, उण्"—इन चौदहों सूत्रों ... पञ्चाशद्वर्णमातृका, दोनोंमें ही अभेद सम्बन्ध है। ... सूत्र-जाल कहकर व्याकरणमें उसीकी प्रसिद्धि है।

—राजधर झा, काव्य...

७—कलियुगी मार्कण्डेय !

चीनमें लीचुङ्गमीन नामका एक २९५ वर्षका बूढ़ा ... चुयान नामक गाँवमें रहता है। इन दिनों इतनी उम्र... आदमी सचमुच एक पहेली है। इस बूढ़ेकी उम्रकी सच्चाई जाँच करनेका बीड़ा चीनके नामी अखबार "नार्थ चाइ... हेरल्ड" ने उठाया था; लेकिन उसने भी यही फतवा दि... जो लोगोंके दरमियान आम तौरपर जाहिर है। इतिहास... बातें पूछनेपर बिना हिचकिचाये बुड्ढा सच्ची-सच्ची बातें ...

* एक अंग्रेजी लेखके आधारपर।

देता है। इसने चौदह औरतोंसे शादी की है, जिनसे एक सौ अस्सी सन्तानें हुई हैं।

इसने अपनी उम्रके अस्सी सालोंतक दवा-दारू बेचनेका पेशा अख्तियार किया था। उसके बादसे यह चैनो-अमन कर रहा है। लड़कोंकी कमाई खाता है। लेकिन यह काहिल या सुस्त नहीं है। हवाखोरीमें जब कभी पैदल ही चालीस मीलों-तक चक्कर काट आता है। बिना चश्मा लगाये ही पढ़ता है और बाहरसे देखनेमें कुल पचास सालका हो मालूम पड़ता है!

यह शान-शौकतवाली चीजोंको छूतातक नहीं। इसको खाने-पीनेकी चीजें भी बहुत मामूली हैं। किसी कामको यह बिना सोचे-समझे, जल्दबाजीमें, नहीं कर बैठता। इसके चेहरेसे अभी भी रौब बरसता है। इसके पास मंचू सम्राट् कोगस्तीके दिये हुए तमगे मौजूद हैं। कई पहलुओंसे गौर करनेपर इसकी उम्रमें अब सन्देह नहीं नजर आता।

इसने बहुत दिनोंतक दवाफरोशका काम किया था। इससे इस पेशेमें इसे काफी तजर्बा है। ज्यादा उम्रका होनेके सबबसे लोग इसे हमेशा घेरे ही रहते हैं। दीर्घ-जीवनके बारेमें पूछे जानेपर यह अपने लम्बे नाखूनोंसे इशारा करते हुए, बड़ी अकड़से कहता है, "हृदयको शान्त रखो, कछुएकी तरह बैठो, कबूतरकी तरह चलो और कुत्तेकी नींद सोओ।" यानी किसी बातकी फिक्र मत करो, शान्त होकर विचरो, सीना तानकर चलो और जब सोनेकी ख्वाहिश हो, तब सोओ।

बीस साल पहले यह लड़ाईमें भी शामिल हुआ था। इसने समूचे पूर्वीय देशोंकी सैर की है! आजसे दो सौ वर्ष पहलेके भी बहुतसे खिताब इसके पास मौजूद हैं।

अपने गाँवमें इसकी बड़ी इज्जत है। अगर शांगचुयानमें कोई झगड़ा उठ खड़ा होता है, तो यही पंच बनकर उसका फैसला करता है। क्या मजाल कि, कोई इसके दिये फैसलेके खिलाफ काम करे। शादीके बारेमें या औरत-मर्दोंमें अगर कोई तकरार पैदा हुआ, तो जरूर ही इस बुड्ढेकी वहाँ जरूरत पड़ जाती है; क्योंकि इसने चौदह औरतोंके साथ गृहस्थी सम्हाली है; और, ऐसे मामलोंकी यह बहुत दूरतक खबर रखता है।

अपनी स्मरण-शक्तिके बलपर यह बहुतसी पुरानी घट-नाएँ सुनाया करता है। सदा कछुएकी तरह बैठता है और थोड़ा खाना खाता है। दीर्घजीवनके बारेमें जो इसका दिया हुआ नुस्खा है, उसीको यह हमेशा अमलमें लाता है। ब्रह्म-चर्यके ऊपर यह कुछ भी नहीं कहता। कहे भी कैसे—एक सौ अस्सी सन्तानोंके बीच बैठकर ब्रह्मचर्योपदेश यह दे भी तो कैसे!

प्रकृतिके नियमोंका सचाईके साथ पालन करनेसे अभी भी लोग बहुत दिनोंतक जी सकते हैं। भारतमें इस प्रकारके बहुतसे लोग थे, जो बहुत दिनोंतक जिया करते थे। "गङ्गा"के प्रथम "प्रवाह"की दूसरी "तरंग"में इसी प्रकारके एक वृद्ध ५० सनाथ झाका चित्र छपा है।

—रामेश्वरप्रसाद वर्मा "कण"

८—तेरह वर्षका अखण्ड व्रत!

रामायणमें लिखा है कि, "लक्ष्मणजीने चौदह वर्षोंतक कुछ खाया-पीया नहीं था।" बात कुछ अनहोनी-सी मालूम पड़ती थी; क्योंकि इस तरहका कोई ताजा उदाहरण नजर नहीं आ रहा था। लोग इसे भी पौराणिक गप्प समझे बैठे थे। लेकिन आज एक खबरने लोगोंमें हलचल मचा दी है कि, मद्रासके विजगापट्टम जिलेके गुंगुदी गाँवकी पपम्मा नामकी एक जोलाहिन तेरह बरसोंसे बिना खाये-पिये भी मौजूद है!

रहस्य ऐसा बताया जाता है कि, पपम्मा एक दिन ससु-रालसे मायके जा रही थी। गरीब होनेके कारण उसकी यात्रा

पाँव-प्यादे थी। कुछ दूर जानेके बाद वह अचानक गिर पड़ी। उसके दाँत लग गये। साथवालोंने बहुत उपचार किया; पर कुछ फायदा नहीं हुआ। अन्तमें लोगोंने उसे उसी हालतमें अस्पताल पहुँचा दिया। कुछ देर बाद उसकी चेतना तो लौट आयी; पर दाँत बैठे ही रहे। प्रयत्न करनेपर भी वह कुछ बोल नहीं सकी। चौदह दिनोंतक डाक्टरोंने अथक परिश्रम किया; पर पपम्माके दाँत बैठे ही रहे! वह उतने दिनोंमें न कुछ खा सकी, न पी सकी; लेकिन उसकी तन्दुरुस्तीमें कुछ भी फर्क नहीं हुआ! डाक्टरोंने लाख माथा मारा; पर कोई तरकीब नहीं सूझी। अन्तको वह घर भेज दी गयी।

पपम्मा बन्द मुँह लिये ही घर लौट आयी। उस समय उसे कुछ दुःख नहीं था, सिवा कुछ बोल नहीं सकनेके। तबसे आज तेरह बरस गुजरे, वह विना खाये-पिये मजेमें गृहस्थी चला रही है। हाँ, उसकी जुबान दो ही सालतक बन्द रही; जैसे वह बन्द हुई थी, वैसे ही एक दिन अचानक खुल भी गयी! तेरह बरसके दरमियानमें उसे तीन बच्चे भी हुए हैं!

पपम्मा तीस सालकी युवती है। देखनेमें हृष्ट-पुष्ट तो नहीं है; पर कोई उसे दुबला या अस्वस्थ कहनेकी भी हिम्मत नहीं कर सकता। वह पूछी जानेपर अक्सर बताती है कि, न मुझे भूख लगती है, न पानी पीनेकी जरूरत मालूम पड़ती है।

मजिस्ट्रेट और वकीलोंने इसकी सत्यताकी परीक्षा भी ली है। वनदेवियोंकी करामातें ही सुनी जाती थीं; पर उपवास-देवीको भी आज लोग जीती-जागती और प्रत्यक्ष देख रहे हैं!

—तारकेश्वर झा

९—विचार-विमर्श

"प्रवाह" १, "तरंग" ११ की "गंगा"में सारन जिलेका जो इतिहास लिखा गया है, उसमें भूमिहार ब्राह्मणोंके बारेमें लेखकने दो-चार मनगढ़न्त बातें लिख दी हैं। सक[illegible] (वैश्योंकी उपजाति), बिसेन राजपूत तथा बगौछिया भूमिहार ब्राम्हणोंका एक ही गोत्र देखकर लेखकने यह निष्[illegible] निकाल लिया है कि, ये सब जातियाँ पहले एक ही 'म[illegible]' नामक जातिमें सम्मिलित थीं, जो पीछे चलकर उन्हीं[illegible] अवनतिके कारण पृथक् हो गयीं। यों तो मनु भगवान्[illegible] मानव जातिकी उत्पत्ति माननेवालोंके लिये इसमें को[illegible] आपत्ति नहीं दिखाई पड़ती; पर लेखकने इतिहासकी दो[illegible] देकर इन तीनोको एक प्रमाणित करनेकी चेष्टा करते [illegible] व्याघ्रपद गोत्रवाले सरयूपारीण ब्राह्मणोंको अलग रख[illegible] इस बातका परिचय दिया है कि, उनका हृदय भूमिहार ब्राह्मणोंके प्रति साफ नहीं।

भिन्न-भिन्न जातियोंका एक गोत्र होना, कई प[illegible] कारणोंसे, सम्भव हो सकता है। हिन्दू-धर्म-शास्त्रके अनु[illegible] ब्राह्मणोंको छोड़कर और किसीके अपने गोत्र होते ही नहीं[illegible] यहाँतक कि, द्विजोंमें भी क्षत्रियों और वैश्योंका गोत्र पुरो[illegible] हितका गोत्र कहा गया है; जैसा कि, मर्यादा-पुरुषोत्[illegible] श्रीरामचन्द्रजीका गोत्र वशिष्ठ बतलाया गया है। फिर दूस[illegible] कारण, जो ऐतिहासिक मूल्य रखता है, यह है कि, एक[illegible] ऋषिकी कई एक सन्तानें भिन्न-भिन्न पेशा ग्रहण[illegible] विवाह-सम्बन्ध इत्यादिके कारण भिन्न-भिन्न जातियों[illegible] विभक्त हो जाती थीं; पर उनका गोत्र एक ही रह जाता था[illegible] पर इस विषयमें याद रखना यह है कि, आर्यजाति ऋषियों[illegible] ही अपनी वंशावली ढूँढ़ती है, किसी प्रभावशाली धन[illegible] सम्पन्न राजा-महाराजा तथा सौदागरोंसे नहीं!

महाराजा हथुआ और राजा मझौलीके समगोत्रीय होने[illegible] कारण तो वहाँके सब किसीको विदित ही है। शायद लेख[illegible] भी जानते ही होंगे। पण्डित मयरभट्टकी कई एक धर्मपत्नि[illegible] थीं, जिनमें एक क्षत्रियवंशकी थी। उसीके गर्भसे उत्प[illegible] बिसेन क्षत्रिय मझौलीके राज-परिवारके आदि पुरुष [illegible]

याचक ब्राह्मण-वंशकी जो स्त्री थी, उससे कई एक गाँववाले सरयूपारीण और एक जमीन्दार ब्राह्मण-वंशकी जो स्त्री थी, उसके गर्भसे बगौछिया भूमिहार ब्राह्मणके मूल पुरुष हुए।

फिर भी अपने उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिये लेखक महोदयने जो उपाधिका हवाला दिया है, वह भी भ्रमसे खाली नहीं। इससे पता चलता है कि, विना किसी प्रमाणकी लेकर ही लेखकने यह वितण्डा बढ़ा डाली है। हथुआ-राजवंशकी वंशावली मौजूद है, जिसमें वर्त्तमान महाराज १०३वीं पीढ़ीमें दर्साये गये हैं। इसको देखनेसे पता लगता है कि, प्रारम्भिक १९ पुश्तोंमें इस वंशको उपाधि 'सेन' थी, जो बदलकर ८२वीं पीढ़ीमें 'सिंह' हो गयी। फिर ८३वीं से ८६वीं पीढ़ी-तक इसकी उपाधि 'मल्ल' रही। अनन्तर ८७वींसे यह फिर बदलकर 'साही' हो गयी। जब महाराज खेमकरण 'महाराज बहादुर' उपाधिसे विभूषित हुए, तब मुसलमान बादशाहने उन्हें 'साही'की भी उपाधि प्रदान की।

फिर उपाधिके आधारपर यदि लेखक जातीय स्थिति कायम करने चले, तो उन्हें उचित था कि, वह'साही' शब्दको 'शाह'शब्दसे सम्बन्ध बताकर इस वंशके मूल पुरुषको मुसलमान कर देते! बस, सब ठीक हो जाता। इतिहासका गला घोट दिया जाता! बात तो यह जान पड़ती है कि, उन तीन-चार पुश्तोंके लोग बड़े-बड़े पहलवान होंगे, जो मल्ल कहलानेमें ही गौरव समझते होंगे। इससे यह कुछ थोड़े ही साबित हो सकता है कि, 'मल्ल' उपाधिवाली वैश्यजातिके ये वंशज थे? उपाधिके एक होनेपर कुछ जाति-जातिमें एकता थोड़े ही आ जाती है? यदि यह बात सिद्धान्त-जैसी मान ली जाय, तो आजकलके जितने 'सिंह' उपाधि विभूषित ब्राह्मणसे लेकर शूद्रतक राजा-महाराजा हैं, सब-के-सब क्षत्रिय ही हो जायँगे। जरा इसपर खूब गौर करें।

आगे चलकर लेखकने भूमिहार-ब्राह्मणोंको, ब्राह्मणोंसे अलग रखते हुए भी, एक बड़े महत्वकी बात कही है। वह यह है कि, बहुतसे 'भूमिहार' 'ब्राह्मण' बन जाते और बहुत 'ब्राह्मण' 'भूमिहार'। यह क्या? यह बात मेरी समझमें तबतक नहीं आती, जबतक मैं यह नहीं मान लूँ कि, एक ही जाति भिन्न-भिन्न पेशा ग्रहण कर भिन्न-भिन्न दलोंसे विवाह-सम्बन्ध कर उनमें मिल जाती है अगर नहीं, तो लेखकने किसी राजपूतको आजकल ब्राह्मण बनते और किसी ब्राह्मण-को राजपूत बनते न सुना होगा। हाँ, भले ही सब अन्यान्य जातियाँ अपनेको उच्चसे उच्च मान बैठें; पर उनका सम्बन्ध अपनी ही जातिवालोंमें समष्टि-रूपसे होगा। आदमी अपना पेशा भले ही आसानीसे बदल सकता है; पर अपनी जाति, हिन्दू समाजमें रहकर, नहीं बदलता। पेशेकी बदला-बदली देखकर लेखकको जातिमें अन्तर नहीं मान बैठना चाहिये था। परशुराम, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य तथा अश्वत्थामा क्षत्रिय-वृत्तिको ग्रहणकर ब्राह्मणत्वको नहीं खो बैठे थे। हाँ, वे भले ही ऋषि-महर्षि न कहला सके। यही हाल इन भूमिहार-ब्राह्मणोंका भी समझना चाहिये।

एक बात और। मूलका अर्थ है आदि-स्थान। जब कई एक जातियोंका एक ही मूल हो, तब उसका अर्थ यह होता है कि, वे सब जातियाँ पहले एक ही स्थानमें बसती थीं। यह नहीं कि, एक ही बाप-दादेकी वे औलाद हैं।

लेखक महाशयको खूब जान-बूझकर इन सब बातोंको लिखना चाहिये था। इस तरहके अनवधानतापूर्वक लिखे लेखोंसे पारस्परिक द्वेष फैलनेके सिवा और कुछ हाथ नहीं आता, जो हमारे राष्ट्रीय जीवनको नष्ट कर सकता है। खास-कर उस जातिके विरुद्ध लिखना, जिसकी गौरव-गरिमाका लेखक खुद ही कायल हो। आशा है, आगे ऐसी बात फिर देखने या सुननेमें न आयगी।

—राजपलटन सिंह बी० ए०, बी० एल०,

१०---आवश्यक निवेदन

"प्रवाह" १, "तरंग" ९ की "गङ्गा"में जो शाहाबाद जिलेका इतिवृत्त निकला है, उसमें अनेक साहित्य-महारथियों और साहित्य-सेवियोंके नाम छूट गये हैं। जमीन्दारों और रईसोंमें भी अनेक नाम ऐसे छूटे हैं, जिन्हें सम्मिलित करना अत्यावशक था। अच्छा होता, यदि निम्नलिखित महानुभावोंके नाम जोड़ दिये जाते।

साहित्य-सेविगण---१ राय साहब रघुवीरप्रसाद बी. ए., बी. टी., हेड मास्टर, सेकेण्डरी ट्रेनिङ्ग स्कूल, पटना, २ प० रामबचन द्विवेदी, 'अरविन्द', ३ प्रो०मनोरञ्जनप्रसाद एम. ए., हिन्दूविश्व-विद्यालय, ४ प० देवदत्त त्रिपाठी, काव्यतीर्थ, सांख्यरत्न, प्रो० पटना कालेज, पटना, ५ प० धर्मराज ओझा एम. ए., काव्यतीर्थ, प्रिन्सिपल, संस्कृत कालेज, मुजफ्फरपुर, ६ प०जगन्नाथ शर्मा एम. ए. स्थानापन्न हेड मास्टर, पाटलीपुत्र हाई स्कूल, पटना, ७ बाबू शिवस्वरूप वर्मा एम. ए., बी. एल., बी. एड्, आरा, ८ बाबू किशोरीप्रसन्न सिनहाएम. ए. (आक्स.) प्रो० रेवेन्शा कालेज, कटक, ९ बा० गुप्तेश्वरनाथ एम. ए. प्रोफेसर, पटना कालेज, १० प० नर्मदेश्वर शर्मा, सम्पादक, "विश्वमित्र", ११ बा० परमेश्वरीदयाल, 'परमेश', १२ बा० गुप्तेश्वरप्रसाद श्रीवास्तव्य, १३ बा० फूलनजी 'फूल', १४ बा० गङ्गाप्रसाद जायसवाल, 'गङ्गा', डुमराँव, १५ प० लालजी मिश्र काव्यतीर्थ, जगदीशपुर, १६ प० शीतल शुक्ल एम० ए०, काव्यतीर्थ, प्रो०जी० बी० बी० कालेज, मुजफ्फरपुर, १७ प० कपिलदेव मिश्र वैद्य, बक्सर, १८ बा० लक्ष्मीनारायण सिंह, हेड पण्डित, जिला स्कूल, मुजफ्फरपुर, १९ बा० श्रीमद्भागवतप्रसाद वर्मा, "गङ्गा"-सम्पादन-विभाग।

यद्यपि बाबू महेशचन्द्रप्रसाद एम० ए० ('स्वदेश सतसई' आदिके लेखक),बा० यदुनन्दन पाण्डेय एम० ए०(गोल्ड मेडलिस्ट), पाण्डेय रामावतार शर्मा एम० ए० इत्यादि इस जिलेके नहीं हैं, तथापि इन लोगोंने हिन्दीकी सेवा यहाँ रहकर की है।

जमीन्दारों और रईसोंमें निम्नलिखित नाम छूटे हैं---१ मुन्शी शिवकुमार लाल, डुमराँव, २ प०जगन दूबे, योगिनी (जगनारायण विद्यालयके संस्थापक), ३ प० हुकुमचन्द पाण्डे, दिअर, ४ बा० बद्रीनाराण साहु, ५ चौ० हरद्वार राय, ६ चौ० कालिका राय, ७ बा० गङ्गाप्रसाद जायसवाल, ८ बा० लालमोहर ठाकुर, गङ्गौली, ९ बा० धर्मदेव सिंह, रूपसागर, १० बा० कालीप्रसाद बी० ए०. बी० एल०, चैयरमैन, बक्सर म्युनिसिपैलिटी, ११ बा० रामनारायण साहु, डुमराँव, १२ बा० स्वार्थ साहु, जगदीशपुर, १३ बा० राधाप्रसाद सिंह, सिअरुआँ इत्यादि।

डुमराँवमें दो अच्छे पुस्तकालय और वाचनालय हैं, जिनमें बालविद्याप्रचारक-पुस्तकालय शाहाबादके किसी भी पुस्तकालय या वाचनालयसे टक्कर ले सकता है। इसमें हिन्दी, उर्दू तथा अँग्रेजीके लगभग सभी समाचार-पत्र तथा पत्रिकाएं आती हैं।

---चौधरी विन्ध्येश्वरीराय शर्मा

साहित्य-सरिता

१—काव्य-प्रवेशिका

लेखक, प० किशोरीदास वाजपेयी शास्त्री; प्रकाशक, गयाप्रसाद ऐण्ड सन्स, आगरा; पृष्ठ-संख्या, १३९; मूल्य नहीं लिखा; छपाई-सफाई न अच्छी, न खराब।

यह अलंकार-शास्त्रका ग्रन्थ है। परिशिष्ट लेकर इसमें सात प्रकरण हैं। साहित्य-सम्बन्धी रस, अलंकार, दोष और छन्दः आदिका इसमें सरलतासे वर्णन है। लक्षण गद्यमें समझाकर पद्यों द्वारा उदाहरण दिया गया है; फिर उदाहरणों-का भी लक्षणके साथ समन्वय किया गया है। पुस्तक केवल छात्रोंके लिये ही नहीं, वरन् पण्डितोंके लिये भी है। हाँ, एक बात मुझे कुछ अवश्य खटकी। आपने काव्यका स्वरूप-निरूपण करते समय लिखा है कि, "काव्यकी आत्मा चमत्कार है"; और, फिर आगे चलकर लिखा है—"ध्वनिसे अलग जब शब्द या अर्थमें कुछ आकर्षक चमत्कार हो, तब यह अलंकार कह-लाता है।" ध्वनि और आत्मामें कोई भेद नहीं है—"काव्य-स्यात्मा ध्वनिरिति"—आनन्दवर्द्धन। जब चमत्कार ही आत्म-ध्वनि है, तब ध्वनि-भिन्न वस्तुओंमें फिर कैसा चम-त्कार? यदि माना जाय, तो सब अलंकार ही काव्यकी आत्मा होने लगेंगे—"रसवद्" तो ताकपर पड़े रहें! आभूष्य और आभूषणोंमें तो महान् भेद है। फिर यह उक्ति कैसी?

२—मोलिएर

लेखक, डा० लक्ष्मणस्वरूप एम० ए०, डी० फिल० (आक्सन); प्रकाशक, राजपाल, सरस्वती-आश्रम, लाहोर; पृष्ठ-संख्या, ३२८; मूल्य २); छपाई-सफाई प्रशंसनीय; कई एकरंगे चित्रोंसे सुशोभित।

फ्रान्स देशके सुप्रसिद्ध लेखक मोलियर अपने कालमें अद्भुत नाटककार थे और हास्यरसके तो अद्वितीय लेखक थे। सामाजिक चरित्रोंका चित्रण करनेमें आप बे-जोड़ थे। आपके ही "बनिया चला नवाबकी चाल" नामक पाँच अंकोंवाला विनोदात्मक नाटकका यह शाब्दिक अनुवाद है। नायक जुरैदा सेठ है और नायिका श्रीमती जुरैदा। कथाका सारांश है कि, जुरैदाने जवानीमें बहुतसे पैसे इकट्ठे किये। पीछे बुढौतीमें उसे अमीरोंको नकल करनेका शौक चर्राया; किन्तु अपनी मूर्खताके कारण वह उलटी ही नकल करने लगा। उसे सफलता कहीं भी नहीं मिली। हाँ, उसकी कार्यवाही देखकर लोग उसका मुँह अवश्य चिढ़ाने लगे। स्त्रीके लाख रोकनेपर भी वह नहीं सुधरा। इन दिनों भारतमें जैसे "देशी मुर्गी विलायती बोल" वाले हैं, उन्हींकी तरह जुरैदा भी है; पर इसका आसन इन सबमें ऊँचा है।

पुस्तकके प्रारम्भमें डा० लक्ष्मणस्वरूपने १४१ पृष्ठोंमें मोलियरका बचपन कैसा था, पेरिसमें उसपर क्या बीती, उसके लिखे ग्रन्थोंका संक्षिप्त समालोचनात्मक परिचय, उसकी भाषापर गहरा विचार और उसके नाटकीय हृदयपर विद्वत्ता-पूर्ण शब्दोंमें गवेषणात्मक प्रकाश डाला है। यह अंश काव्य-रसिकोंके लिये पढ़नेकी चीज है। डा० लक्ष्मणस्वरूपके श्रमशील अध्ययन और उच्चावच ज्ञानका सुन्दर समागम इस (मोलियरकी जीवनी) अंशमें है। शाब्दिक अनुवाद

जितना नीरस होता है, उतना यह ग्रन्थ नहीं है। यही क्यों, मुझे तो इसे पढ़नेमें मौलिकताका स्वाद मिला।

३—रतिविलास

मूल अँग्रेजी पुस्तककी लेखिका, मेरी स्टोप्स; अनुवादक, लाला सन्तराम बी० ए०; प्रकाशक, नारायणदत्त सहगल ऐण्ड संस, आर्य बुक-डिपो, लोहारी दरवाजा, लाहोर; पृष्ठ-संख्या ,२०८; मूल्य १॥); अच्छी छपाई।

सम्भोगकी लालसा प्राणी मात्रमें सतत जागरूक रहती है। कोई भी हो, वह प्रच्छन्न सम्भोगका अंकुर लेकर ही युवावस्थामें पदार्पण करता है। इन्हीं युवकोंके चरित्रोंके चित्रणसे सारे उन्नत साहित्य भरे पड़े हैं। कालेजों या पाठशालाओंमें विद्यार्थियोंको जो शिष्ट शैलीमें शिक्षा दी जाती है, वह भी इन्हींके कार्योंको दोहरानेके लिये "रतिविलास" का भी वही विषय है; किन्तु यह गुप्त रूपसे अधूरा ज्ञान नहीं कराता है; बल्कि सब बातोंको स्पष्ट शब्दोंमें बतलाकर रतिका रहस्य सामने खोलकर रख देता है। इस एक ही पुस्तकके पढ़नेसे मनुष्य संसारमें आवश्यक आनन्द प्राप्त कर सकता है। मैं तो इस पुस्तककी तारीफमें इतना ही लिखना चाहता हूँ कि, जिन दम्पतियोंने इस किताबको नहीं पढ़ा है, वे रति-रहस्यसे प्रायः अनभिज्ञ होंगे। अपनी कमजोरी या अपन रति-वैभव यदि कोई जानना चाहे, तो इस किताबको पढ़े। इसमें तेरह प्रकरण हैं और तेरहो अमूल्य हैं। मुझे छठा और आठवाँ प्रकरण बहुत उत्तम जँचा। नुस्खे भी बहुतसे हैं; पर मालूम नहीं वे कहाँतक गुणकारी हैं। भाषा अपेक्षाकृत सरल है। उदाहरणों, उद्धरणों और डाक्टरोंकी सूक्तियोंका, स्थान-स्थानपर, सुन्दरतासे, प्रयोग किया गया है। नूतन विषयोंकी इतनी भरमार है कि, ठहर-ठहरकर पुस्तक पढ़नी पड़ती है।

४—विवाहित प्रेम

मूल अँग्रेजी पुस्तकका नाम है "मैरेड लव"; लेखिका, मेरी कार्माइकल स्टोप्स; अनुवादक, लाला सन्तराम बी० ए०; प्रकाशक, राजपाल, सरस्वती-आश्रम, लाहोर; पृष्ठ-संख्या, २०७; सजिल्दका मूल्य १॥); छपाई-सफाई अच्छी।

मूल पुस्तककी अँग्रेजी भाषामें बहुत इज्जत है। इसकी सोलह आवृत्तियाँ और ४७१९०० प्रतियाँ, कुल आठ वर्षोंमें, ही खप चुकी हैं! यूरोपकी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध दस भाषाओंमें इसका अनुवाद भी हो चुका है। आज उसी विख्यात पुस्तकका हिन्दी अनुवाद, लाला सन्तरामजीकी कृपासे, हिन्दी-भाषियोंको पढ़नेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अनुवादकने अत्यन्त परिश्रमसे शाब्दिक अनुवाद करके लेखिकाके भावोंको ज्यों-का-त्यों रखनेका प्रयत्न किया है; इसीसे पुस्तक कुछ क्लिष्ट हो गयी है। परन्तु प्रयत्न स्तुत्य है। यह किताब अँग्रेज समाजको लक्ष्य करके ही लिखी गयी है; इस कारण हिन्दुस्तानियोंके रस्म-रिवाज इसमें बहुत कम आये हैं। किन्तु अनुवादकने फुट-नोटमें हिन्दू-शास्त्रोंके उद्धरणों द्वारा विषयोंका स्पष्टीकरण कर दिया है। इसमें वैज्ञानिक तरीके अख्तियार किये गये हैं और धर्म-भावनाओंकी भी रक्षा की गयी है। आठवाँ अध्याय पढ़नेके काबिल है। लेखिकाके निजके अनुभवोंको पढ़कर आश्चर्यान्वित होना पड़ता है कि, नित्य प्रति सबकी नजरोंके सामने गुजरनेवाली बातें कितनी महत्त्वपूर्ण रहती हैं। पर लोग उन्हें जान नहीं सकते। अभिनव दम्पतियोंकी आँखें इस किताबसे अगर एकबार भी टकरा जायँगी, तो मेरा विश्वास है कि, वे निश्चय ही चैनो-अमनसे अपनी जिन्दगीके पूरे दिन बितावेंगे।

५—सन्तान-संख्याका सीमाबन्धन

लेखक, बाबू सन्तराम बी० ए०; प्रकाशक, राजपाल, अध्यक्ष, सरस्वती-आश्रम, अनारकली, लाहौर; पृष्ठ-संख्या, ३६८; मूल्य ३॥); छपाई-सफाई साधरण; मुखपृष्ठपर एक भावपूर्ण बहुसंततिवाले दम्पतीका चित्र।

भारत जैसा निर्धन देश है और जन-संख्या जितनी बढ़ा

रहा है, वह केवल अपनी मूर्खताके कारण ही। जो मज-दूरी करते हैं,उन्हें जब अपने ही पेटके लिये अन्न नहीं जुटता—लाले पड़े रहते हैं, तब सन्तानोंका चाराजोह वे कैसे कर सकते हैं? फिर भी कामका पिशाच उन गरीबोंके घर मेह-मान बना ही रहता है और वे बेचारे, प्रकृतिके लाड़ले अपने थके-माँदे कन्धोंपर उसे ढोते ही फिरते हैं! इसी बीच उन निरीहोंके क्षणिक सुखमें काँटा बोनेके लिये, उपद्रव मचानेके लिये, अभागे बच्चे भी एक-एक कर उन टूटी झोंपड़ियोंको झाँकने लगते हैं। इन बातोंका कारण केवल अपनी मूर्खता है। इन्हींको लक्ष्य कर यह पुस्तक लिखी गयी है। इसमें अनुभूत प्रयोगों तथा बहुविध उपायों द्वारा बाईस विषयोंपर भली भाँति विचार किये गये हैं। यत्र-तत्र गम्भीर स्थलोंपर चित्र आदि देकर भी अकथनीय अंशोंका स्पष्टीकरण किया गया है। गर्भ-सम्बन्धिनी बातोंमें एक भी छूटने नहीं पायी है। गर्भ रहे ही नहीं, इसके लिये तो बहुतेरे प्रयोग, नुस्खे और उपाय हैं। आज दिनों ऐसी पुस्तककी बड़ी जरूरत है। परन्तु एक बात है। इसमें अँग्रेजी ढंग और तरीके अधिक अपनाये गये हैं। जहाँ-कहीं हिन्दुस्तानी मुष्टियोग हैं भी, वह दालमें नमकके बराबर। बेचारे झोंपड़ीके बाशिन्दे, जिन्हें दो पैसे भी मुहाल हैं, इस शाहंशाहीमें नहीं टिक सकेंगे। हाँ, जिनके जिम्मे चार पैसे हैं, उनके लिये तो यह पुस्तक सचमुच अमृत है। बहु-सन्तति-रोगसे छुटकारा पानेके लिये यह पुस्तक जरूर पढ़नी चाहिये।

६—देशी राज्योंमें व्यभिचार

लेखक, साहित्यभूषण बाबू गोविन्द हयारण; प्रकाशक, इन्द्रप्रस्थ-पुस्तक-भण्डार, दरीबा कलाँ, लाहोर; पृष्ठ-संख्या, १९७; मूल्य १)।

कई देशी नरेशोंकी विलास-प्रियता विख्यात है। इनके पैशाचिक कार्य कितने लोमहर्षण होते हैं, इनकी कुत्सित इच्छा कितनी आगे बढ़ी है, इनके द्वारा सतियोंपर कैसे-कैसे भीषण बलात्कार किये जाते हैं, बेचारी दासियाँ दाँतोंके बीच जीभ-सी बनी रहकर भी मौके-बे-मौके किस तरह जबर्दस्ती कुचली जाती हैं और जाहिल मुसाहब किस प्रकार गन्दी ड्यूटी अदा करते हैं आदि-आदि बातें पढ़कर कोई भी सहृदय दो बूँद खूनकी आँसू गिरा देगा। घटाटोप घटनाओंके प्रेमी पाठकोंको भी चाहिये कि, एक बार इस दिल दहलानेवाली सच्ची घटनावाली पुस्तकका अवश्य पाठ करें। मैं दावा करता हूँ कि, इसमें लेखकोंको लिखनेके लिये, वक्ताओंको बोलनेके लिये और दुःखियोंको जी भरकर रोनेके लिये काफी मसाला है।

—साहित्याचार्य "मग"

७—प्रिय-मिलन

(खण्ड काव्य)

इस काव्यके प्रणेता चम्पारण-जिलान्तर्गत बेतिया राज-धानीके निकटस्थ राज-पुरोहित-वंशज पं० नन्दकिशोर झा एक प्रतिष्ठित मैथिल ब्राह्मण-वंशज और उदीयमान विद्वान् तथा कवि हैं।

इस खण्डकाव्यके छः उल्लासोंमें रुक्मिणी-विवाहकी कथा, रोचक तथा आधुनिक रीतिसे, लिखी गयी है; इसलिये विषय पुराना होते हुए भी मनोरञ्जक तथा शिक्षाप्रद भी हुआ है। काव्य-रचना भी श्लाघ्य है।

प्रारम्भमें पञ्च देवताकी वन्दना तथा कविका परिचय, संस्कृतके मनोहर छन्दोंमें है, जिससे कविकी संस्कृत-भाषामें भी खासी व्युत्पत्ति विदित होती है। प्रत्येक उल्लासमें पृथक्-पृथक् छन्दोंका प्रयोग है तथा उल्लासान्तमें संस्कृत-काव्योंकी परिपाटीके अनुसार छन्द बदल दिया गया है। छन्दोंपर कविका अधिकार-सा प्रतीत होता है; क्योंकि भाव प्राञ्जल भाषामें, बड़ी सुन्दर रीतिसे, व्यक्त हुए हैं, कहीं शिथिलता नहीं आने पायी है; यद्यपि यह कविकी प्रथम ही कृति है।

इस कवितामें प्रसङ्गानुसार राजकर्त्तव्य, प्रजा-कर्त्तव्य, सामयिक राजनीति, सुशासन-कुशासनका निर्देश, स्त्रियोंकी साम्प्रतिक दयनीय स्थिति, कुल-वधू-लक्षण, प्रचलित विवाह-विधि, धीर-लक्षण, सज्जन-लक्षण, दुर्जन-लक्षण, प्रेमियोंके हृदयका चढ़ाव-उतराव तथा उनकी पारस्परिक भावना इत्यादिका, अच्छे ढंगसे, समावेश किया गया है, जिससे कविका मनोविज्ञानमें स्वाभाविक प्रवेश सिद्ध होता है।

यह रहते हुए भी यदि कहीं अलङ्कारमें त्रुटि तथा भाषामें पण्डिताईका ढंग कुछ आ भी गया हो, तो उल्लेखनीय नहीं है। प्रथमोल्लासके पाँचवें छन्दमें विरुद्धालङ्कारका दृश्य दिखलाया गया है; परन्तु प्रथम चरणमें कुछ लचरपन आ गया है। पञ्चमोल्लासके अन्तिम छन्दमें "आयेमें ही" प्रयोग स्पष्ट पण्डितजीकी भाषा प्रमाणित करता है। हिन्दीमें संस्कृत-विभक्तियोंका प्रयोग वा "आय" जैसे अप्रचलित शब्दोंका व्यवहार चिन्त्य है।

पुस्तिका काशीके सुप्रसिद्ध "ज्ञान-मण्डल"-कार्यालयके सुपाठ्य अक्षरोंमें तथा अच्छे कागजपर छपी है। काव्य-प्रेमियों और हिन्दी-रसिकोंके लिये संग्रहणीय है। मूल्य ॥≈); ग्रन्थ-कर्त्ता (श्रीनगर, बेतिया, चम्पारन) से प्राप्य।

—त्रिलोचन झा

८—प्यास

डबल क्राउन सोलह-पेजी १४१ पृष्ठकी "प्यास" नामक पुस्तकके प्रकाशक हैं विज्ञान-जगत्‌के लेखक बाबू रमेशप्रसाद बी० एस० सी० और लेखक हैं हिन्दी-संसारके परिचित प्रोफेसर कृपानाथ मिश्र एम० ए०। "प्यास"में एक विद्वान् नवयुवककी प्यासी आत्माका घाट-घाटपर उतरकर प्यास बुझानेके प्रयत्नका आकर्षक कथानक है। विद्वान् लेखकने अपनी नवीन शैलीसे रचना-प्रणालीमें अभिनवताका आविर्भाव किया है। सम्भव है, लेखककी इस शैलीको कुछ विद्वान् न भी पसन्द करें; पर मेरे विचारसे इसकी नवीन प्रगतिमें प्राण है और है हृदयपर गुदगुदी पैदा करनेवाली सच्ची शक्ति। भाषा-प्रवाहमें गम्भीरता और निर्मलताका अभाव ढूँढ़नेपर भी नहीं मिलता। संज्ञाओंका प्रयोग विशेषण रूपमें खटकता नहीं; पर उसमें श्रुति-मधुरता है। कई सुन्दर नये मुहावरे प्यासेके अधरको चूमते नजर आते हैं,—"कई नये सितारे खिल गये मेरे दिमागमें, सरमें भीषण तूफान आ गया" इत्यादि। लेखककी लेखनीका खुलकर खेल देखते ही बनता है। भाषा मँजी हुई है और है उसमें दिलो-दिमागको तर करनेवाली तरावट। यह सब होते हुए भी पुस्तकमें कुछ खटकनेवाली त्रुटियाँ रह गयी हैं। वे हैं प्रूफ सम्बन्धी अशुद्धियोंकी भरमार और कुछ व्याकरण-सम्बन्धी भूलें। आशा है, अगले संस्करणमें वे सुधार दी जायँगी। पुस्तकका मूल्य है बारह आने और मिलनेका पता है—दी प्रिंटिङ्ग वर्क्स, मीठापुर, पटना। इतनी छोटी पुस्तकका मूल्य बारह आने बहुत अधिक है। यह इसके प्रचारमें बाधा पहुँचावेगा। छपाई-सफाई साधारण।

९—मणि गोस्वामी

"गंगा"के आकारके ९३ पृष्ठोंका यह एक सुन्दर सामाजिक नाटक है। लहेरियासरायके हिन्दी-पुस्तक-भण्डारसे पुस्तक प्रकाशित हुई है। इसके लेखक भी हैं वही प्रोफेसर कृपानाथजी।

अध्ययनशील विद्वान् लेखकने दो फर्मोंमें, पाण्डित्यपूर्ण भूमिका-रूपमें, तीन परिचय लिखे हैं। नाटक मौलिक है और है यह हृदय-पटपर समाजकी सच्ची कुरीतियोंके परिणामका रंगीन चित्र अंकित करनेवाली तूलिका। रंगमंचपर इस तरहका सर्वाङ्गसुन्दर नाटक खेलनेसे नाटक लिखनेका उद्देश्य सफल हो सकता है। हिन्दीमें ऐसे सुन्दर नाटकों का बिलकुल अभाव है। मिश्रजीको इसके लिखनेमें सफलता मिली है। सन्तान रहनेपर वृद्ध पुरुषका, अपनी काम-लिप्सा पूरी करनेके लिये, दूसरा विवाह करनेसे क्या

मन्दिरमें क्रान्तिका ताण्डव किस तरह भीषण परिस्थिति उत्पन्न कर धन, जन और सुखका संहार करता है, इसीका सजीव दृश्य, पुस्तक पढ़नेसे आँखोंके सामने झूलने लगता है। पुस्तकमें एकाध स्थलपर कुछ खटकनेवाली अस्वाभाविकता भी दीख पड़ती है—आठ महीनेकी गर्भवती युवती शामाका अपने पिता मणि गोस्वामीके गले लिपटकर दुलारसे हँसना और किलकिलाना, पिताके दूसरे विवाहके प्रस्तावपर उसको बन्दरतक कह देना लज्जाशीला कुलांगना हिन्दू युवतीके लिये बिलकुल असम्भव है। आनन्द प्राप्त करनेके स्थानमें "मजा मिलने"का प्रयोग भी खटकता है। सम्भव है, अगले संस्करण में त्रुटियाँ दूर कर दी जायँ।

१०—जैन-वीरांगनाएँ

इसके लेखक हैं बा० कामताप्रसादजी जैन एम० आर०ए० एस०; प्रकाशक, 'वीर'-कार्यालय, बिजनौर। पुस्तक मँझले आकारके ८० पृष्ठोंमें पूरी हुई है। इसमें सात जैन-वीराङ्ग-नाओंका चरित्र-चित्रण किया गया है। कथानकका आधार सच्चा है; किन्तु कल्पनाका अलंकार देकर कथाएं परिवर्द्धित की गयी हैं। इसमें सातवीं कहानी (पन्ना धाई) विशेष अच्छी है और सब साधारण। भाषा साधारण है। व्याकरण सम्बन्धी अनेक भूलें हैं। कुछ भद्दे प्रयोग देखिये—"देह खोल २ हुई मिलेगी", "पींजरेमें बन्द हुए शेर", "कहे ही कहे"। इस तरहके भद्दे प्रयोगोंसे पुस्तक भरी पड़ी है।

११—निर्झरिणी

नव वयुक कवि "सहृद"जीकी 'निर्झरिणी'में उनकी रचना निर्मल-धारा-रूपमें प्रवाहित हो रही है। पुस्तककी भूमिका हिन्दीके उदीयमान लेखक ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह 'सुधांशु' जीने लिखी है। कविताएँ अच्छी हैं। कोई-कोई पद तो बहुत ही अच्छा उतरा है।

कुछ कविताएँ बहुत साधारण श्रेणीकी हैं। कहीं-कहीं यतिभंग और मात्राओंकी न्यूनाधिकता बेतरह खटकती है। 'करुण गान' शीर्षक कविताके दूसरे और चौथे चरणोंको देखें।

दूसरे चरणमें १४ मात्राएँ हैं; किन्तु चौथे चरणमें १६ मात्राएँ! इसी तरह और भी कई स्थलोंपर ऐसी त्रुटियाँ रह गयी हैं। दूसरे संस्करणमें ये त्रुटियाँ दूर कर देनेकी सम्भावना है। 'निर्झरिणी' कह रही है कि, 'सहृद'जी आगे चलकर अच्छी कविता करने लगेंगे। पुस्तक प्रकाशित हुई है ज्ञानोदय-प्रकाशन-मण्डल, छपरासे। छपाई-सफाई नयनाभि-राम; मूल्य सिर्फ चार आने; पृष्ठ-संख्या, ६०।

१२—समाजकी वेदीपर

पुर्नियाके युगान्तर-साहित्य-मन्दिर-द्वारा प्रकाशित मँझले आकारकी १७२ पृष्ठोंकी "समाजकी वेदीपर" नामक पुस्तकके लेखक हैं बाबू अनूपलालजी मण्डल, साहित्य-रत्न। पुस्तकका मूल्य है सवा रुपया।

सुश्रृंखल १८ पत्रोंमें पुस्तक पूरी उतरी है। समाजकी वेदीपर एक वेश्या-पुत्रीका नावपर विहार करते समय अचानक नाव डूब जानेसे एक नवयुवक विद्वान् प्रोफेसर धीरेन्द्र कुमार द्वारा मुक्त की जानेपर उसी विद्वान्के सच्चे प्रेममें अनुरक्त होकर वेश्यावृत्तिसे विमुख हो उसको अपनानेका कथानक है। प्रोफेसर धीरेन्द्रके पिताका पचीस हजार रुपये तिलक सहित एक सुन्दरी युवतीके साथ पुत्रका विवाह ठीक कर लेनेपर धीरेन्द्रकुमारने उस प्रस्तावको अस्वीकार कर उसी वेश्या-पुत्रीको हिन्दू बनाकर उससे विवाह किया। मेरे विचारसे यहाँतक कथानक बहुत ठीक है। यदि लेखक इसके आगे, पुस्तकके नामानुसार, इस कार्यसे सामाजिक उत्क्रान्ति मचाकर समाजकी बन्द आँखें खोलनेका प्रयत्न करते, तो पुस्तक और भी सुन्दर होती; किन्तु ऐसा नहीं करके उन्होंने उस स्थानसे कथानककी धारा बदलकर धीरेन्द्रकुमारके इस कार्यसे एक धनी एम० एल० सी० के बहकानेपर जो उस वेश्या-पुत्रीको अपनाना चाहता था, पुलिस आफिसर (S. P.)

द्वारा झूठा षड्यन्त्र रचवाकर धीरेन्द्रकुमारको फाँसीपर टँगवा, वेश्या-पुत्रीसे उस वियोगमें आत्म-हत्या करायी गयी है। प्रोफेसर धीरेन्द्रकुमारका यह बलिदान समाजकी वेदीपर नहीं समझा जायगा। इसमें तो पुलिसकी झूठी करतूत दिखायी गयी। तो भी पुस्तक चोखी उतरी है। लेखकका प्रथम प्रयास प्रशंसनीय है। भाषा फड़कती हुई और मुहावरेदार है। लिखनेकी शैली आकर्षक है।

१३—स्वास्थ्यशिक्षा

मँझले आकारकी पुस्तकमें २६१ पृष्ठोंमें स्वस्थ्यसम्बन्धी शिक्षाएँ भरी पड़ी हैं। इस सुन्दर पुस्तकके लेखक हैं प्रोफेसर दयाशंकर पाठक, गोल्ड-मेडलिस्ट, जयपुर। मूल्य डेढ़ रुपये; मिलनेका पता—जयपुर प्रिंटिंग वर्क्स, चौड़ा रास्ता, जयपुर-सीटी। पुस्तक सचित्र और सुन्दर है। व्यायाम-सम्बन्धी सैकड़ों चित्र हैं। ऐसी सुन्दर पुस्तककी हिन्दी-संसारमें बड़ी आवश्यकता है, जब कि, पढ़ने-लिखनेवाले विद्यार्थी व्यायामसे विमुख होकर अपनी सोनेकी दुनियामें सुहागा रखकर स्वास्थ्यका संहार कर अनेक भयंकर रोगोंके शिकार बनते जा रहे हैं। व्यायाम मनुष्योंके दैनिक कार्यों में सबसे पहला और मूल्यवान् कार्य है। इसीपर जीवन निर्भर है। अतएव विद्यार्थियोंको अपनी पाठ्य पुस्तककी भाँति इस पुस्तकको अपनाकर इसके बताये हुए मार्गपर चलना चाहिये। तभी उनका मंगलमय भविष्य विहँसता हुआ उनके सामने आया करेगा।

१४—हास्यसरोवर

हास्य-रसात्मक बीस कहानियोंकी तरंगें इस 'सरोवर'में लहरा रही हैं। इसके स्रष्टा हैं हिन्दी-संसारके सुपरिचित समालोचक प० अवध उपाध्याय। पुस्तक अच्छी है। कोई-कोई कहानी पढ़नेपर हँसते-हँसते पेटमें बल पड़ जाता है। युगान्तर-साहित्य मन्दिर, पूर्णियासे पुस्तक प्रकाशित हुई है। मँझले आकारके ११४ पृष्ठोंकी पुस्तकका मूल्य ॥=) कुछ आने कुछ अधिक प्रतीत होता है।

—जगदीश झा 'विमल'

१५ आनन्दकी लहरें

लेखक, बाबू हनुमानप्रसाद पोद्दार; प्रकाशक, श्रीघनश्याम दास, गीता प्रेस, गोरखपुर; पृष्ठ-संख्या ३०; मूल्य ‌); छपाई-सफाई उत्तम। पुस्तकका आदि पृष्ठ भगवान् श्रीकृष्णके नयनाभिराम चित्रसे सुशोभित। पुस्तक प्रकाशकसे प्राप्य।

प्रस्तुत पुस्तकमें नीतिवाक्य संगृहीत हैं। पोद्दारजीने जीवनको सुखमय बनानेका बड़ा ही सुन्दर मार्ग दिखलाया है। मेरा विश्वास है कि, इस पुस्तकके पाठसे सन्तप्त प्राणियोंको बहुत कुछ शान्ति मिलेगी।

१६—गीता-निबन्धावली

लेखक, बाबू जयदयाल गोयन्दका; प्रकाशक वही; पृष्ठ-संख्या, ८४; मूल्य =)॥); छपाई-सफाई सराहनीय; पुस्तक प्रकाशकसे ही प्राप्य।

प्रस्तुत पुस्तकके लेखक गोयन्दकाजीको आध्यात्मिक संसार उनकी तत्सम्बन्धी सेवाओंके कारण अच्छी तरह जानता है और आदर करता है। यह उन्हींकी गीताके आधार-पर लिखे दस निबन्धोंका संग्रह है। लेखोंके पाठसे अवगत होताहै कि, विद्वान् लेखकका गीताका अच्छा अध्ययन है। स्थल-विशेषपर गीताके श्लोक उद्धृत कर लेखकने लेखोंके महत्त्वको और भी बढ़ा दिया है। इसके अध्ययनसे धर्मका अच्छा ज्ञान प्राप्त हो सकता है। लेखककी यह सुन्दर कृति अपनाने योग्य है।

१७—तुलसी-दल

लेखक, बाबू हनुमानप्रसाद पोद्दार; प्रकाशक, बाबू घनश्यामदास, गीता प्रेस, गोरखपुर; पृष्ठ-संख्या, २९६; मूल्य ॥) और सजिल्दका ॥=)‌; छपाई-सफाई उत्तम।

प्रस्तुत पुस्तकके लेखक महोदय 'कल्याण' द्वारा धार्मिक जगत्‌की सेवा बड़ी ही लगन और तत्परताके साथ कर रहे हैं। पुस्तक उन्हींके २६ धार्मिक लेखोंका संग्रह है। लेख सबके सब सुन्दर हैं। स्थल-विशेषपर दृष्टान्त देकर और भागवत, गीता, रामायण आदिकी सूक्तियाँ उद्धृत कर विद्वान् लेखकने लेखको साधारणसे साधारण पाठकोंके लिये भी सुलभ कर दिया है। पुस्तक पठनीय है। मैं इसका हृदयसे प्रचार चाहता हूँ।

१८—भारतीय नागरिक और उनकी उन्नतिके उपाय

लेखक, बाबू भगवानदास केला; भूमिका–लेखक, बा० शंकरसहाय सक्सेना एम० ए०, विशारद; प्रकाशक, व्यवस्थापक, भारतीयग्रन्थमाला, वृन्दावन; पृष्ठ-संख्या, ११०; मूल्य ॥); छपाई-सफाई और भाषा बढ़िया।

प्रस्तुत पुस्तकका विषय तो उसके नामसे ही प्रकट है। इसमें भारतीय नागरिक, नागरिकोंके अधिकार, उनके कर्त्तव्य, उनकी श्रेणियाँ, किसान, मजदूर, कारीगर, व्यापारी, सार्वजनिक नौकर, मानसिक कार्य्य करनेवाले आदि–आदि कई परिच्छेद हैं। विद्वान् लेखकने थोड़ेमें सभी आवश्यक विषयोंपर अच्छा प्रकाश डाला है। भावी स्वतन्त्र भारतके संगठनमें यह पुस्तक सहायक सिद्ध होगी। पुस्तकके अन्तमें, आठ पृष्ठोंमें, परिभाषिक शब्दकोष देकर पुस्तककी महिमा बढ़ा दी गयी है। पुस्तक पठनीय है।

१९—भजन-संग्रह (तीसरा भाग)

संग्रहकर्त्ता, श्रीयुत वियोगी हरिजी; प्रकाशक, घनश्याम दासजी, गीता प्रेस, गोरखपुर; गुटका साइज; पृष्ठ-संख्या, १४४; मूल्य =) मात्र; छपाई-सफाई उत्तम।

प्रस्तुत संग्रह–पुस्तकमें मीराबाई, सहजोबाई, बनीठनीजी, प्रतापबालाजी, युगलप्रियाजी और रानी रूपकुँवरीजीके १९२ गाने योग्य पद्य संगृहीत हैं। संग्रह बड़ा ही सुन्दर हुआ है। ऐसे तो इस संग्रहके सारे पद्य सुन्दर हैं; किन्तु मुझे मीराबाईके पद्य बड़े ही ललित और भावमय प्रतीत हुए। उनमें जितना आकर्षण, जितनी मादकता है, उतनी अन्य पद्योंमें नहीं। गान-विद्याके प्रेमियोंको इसे अवश्य देखना चाहिये।

२०—ऋषभदेवकी उत्पत्ति असंभव नहीं है

लेखक, बा० कामताप्रसाद जैन; प्रकाशक, विश्वम्भर दास जैन—मंत्री, प्रकाशन-विभाग, श्रीचम्पावती जैन पुस्तकमाला, अम्बाला-छावनी; पृष्ठ-संख्या, ८४; मूल्य ।); छपाई–सफाई साधारण।

प्रस्तुत पुस्तक श्री चम्पावती जैन–पुस्तक-मालाका छठा पुष्प है। श्रीयुत पण्डित देवेन्द्रनाथ शास्त्री नामक किन्हीं आर्यसमाजी सज्जनने 'श्री ऋषभदेवजीकी उत्पत्ति असम्भव है" नामक ट्रैक्ट लिखा था। उसीका सप्रमाण उत्तर विद्वान् लेखकने, जैन और हिन्दू शास्त्रोंके आधारपर, दिया है। अधिकांश उत्तर युक्ति-युक्त हैं। भाषा कहीं-कहीं कटु हो गयी है। उत्तर–प्रत्युत्तरकी भाषा खूब संयत होनी चाहिये, नहीं तो नाहक पारस्परिक विरोधकी सृष्टि होती है।

पुस्तक जैन भाइयोंके कामकी है।

२१—विश्व-विजयी (नाटक)

लेखक, श्री ज्ञानमोहन दास; प्रकाशक; नवयुवकसमिति, मुजफ्फरपुर; पृष्ठ-संख्या, ९६; मूल्य ।=); नेशनल स्टोर सौदागंज, मुजफ्फरपुर; बर्मन कम्पनी, मुजफ्फरपुरसे प्राप्य।

यह एक बालोपयोगी नाटक है। विश्व-विजयी महावीर सिकन्दरकी भारत-विजय एवं तत्कालीन भारतकी अवस्था इसमें वर्णित है। लेखकने अपने वक्तव्यमें लिखा है कि, प्रस्तुत पुस्तकका आधार बँगलाका 'बन्दी वीर' नामक नाटक

है । पुस्तकमें बहुत कुछ त्रुटियाँ रह गयी हैं । प्रेसकी भूलके सिवा इसमें भाषाका भी दोष है । इस पुस्तकमें पद्य बहुत ही कम दिये गये हैं । जो हैं भी, वे बड़े ही लचर । नाटक तीन अंकोंमें समाप्त हुआ है । —श्यामधारी प्रसाद

२२—मैथिलीय भाषा-व्याकरण-भास्कर

लेखक, प० हीरालाल झा "हेम"; प्रकाशक, बा०कन्हैयालाल कृष्णदास, श्रीरमेश्वर प्रेस, दरभङ्गा; पृष्ठ-संख्या, १०६; मूल्य ॥) ।

यह मैथिलीय भाषाका व्याकरण है । संक्षिप्त रूपमें 'भाषा-भास्कर'के ढंगपर लिखा गया है । मैथिलीय भाषा सर्वाङ्ग-पूर्ण तो नहीं; पर बहुत अंशोंमें पूर्णता रखती है । इस व्याकरणमें व्याकरणके प्रायः सभी विषय आ गये हैं । कुछ त्रुटियाँ भी हैं—भाषाकी परिभाषामें अस्पष्ट शब्दोंका प्रयोग, स्वरके लक्षणोंमें अस्पष्टता, 'प्रपरा' इत्यादि श्लोकमें छन्दोभङ्गता, 'मुकरी', 'मुहावरा' इत्यादि अमैथिलीय शब्दोंका प्रयोग; क्रिया-विशेषणके उदाहरण एवं भेदमें संस्कृतके बदले सं... तथा हिन्दीका अनुधावन । सन्धि-विचारके उदाह... प्रथमतः निर्भयके स्थानमें पीताम्बर आदि अच्छा हो... टिप्पणीमें संज्ञा प्रभृतिका भेद अँग्रेजी शब्द-खण्डमें लिखे... बदले मैथिलीयमें ही लिखना उचित था ।

२३—व्रतमाला

यह तारीखनामेकी नकलपर बनायी गयी है । ... हिन्दुओंके जितने त्योहार हैं, सब इसमें लिखे हुए हैं । ... बड़े बीसियों विद्वानोंने हस्ताक्षर करके इसे सही बतलाया । इसका सम्पादन प० भरत शर्माने किया है । यह तीन पै... धन्वन्तरि–दीनबन्धु-औषधालय, नरौली, पो० करौता स्टे... (पटना) से मिल सकती है । —...

सम्पादकीय विवेचन

१—हिन्दूत्वपर घात्रा

हिन्दू या आर्यजाति एक जाति है और कदाचित् संसारमें इससे प्राचीनतर जाति कोई भी नहीं। इसकी एक स्वतंत्र सभ्यता और संस्कृति है। इसके कला-कौशल, भेष-भाषा, आचार-विचार विशेषता रखते हैं और इसी विशेषताके कारण यह जाति अलग जाति कहलाती है। इस विशेषताको विदेशोंके बड़े-बड़े विद्वान् भी पसन्द करते हैं और इसी विशेषताके बल स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थने विज्ञान और स्वतंत्रताके गढ़ अमेरिकामें अपनी धाक जमायी थी। इसी विशेषताकी रक्षाके लिये दाहिर और अनंगपाल, प्रताप और शिवाजीने आमरण तुमुल संग्राम किया था। हमारे विचारसे इसी विशेषता—हिन्दूजातिके इसी अस्तित्वके लिये प्रत्येक हिन्दूकी सारी शक्ति लगनी चाहिये।

परन्तु बात उलटी हो रही है। देशमें ऐसे-ऐसे स्वच्छन्द दल अपना अटूट अड्डा जमानेकी चेष्टा कर रहे हैं, जो हिन्दूत्वको ही मिटानेमें अपना सारा विद्यावैभव, अपना अखिल वर्चस्व और अपना निखिल व्यापार-वैशद्य लगा रहे हैं! हिन्दूजातिमें हजारों वर्षोंसे चली आयी जाति-व्यवस्थाको जड़से खोद फेंकनेमें कोई अपनी महिमा समझता है, कोई संस्कृत-साहित्यकी विधान-पुस्तकोंको बंगालकी खाड़ीमें फेंकनेपर उतारू है, कोई वैदिक संस्कृतिको जंगलीपन साबित करनेमें पैरका पसीना चोटीको पहुँचाता है, कोई हमारी तपस्या और त्यागको बुजदिली बतानेमें निमग्न है, कोई रामायण और महाभारतको कपोल-कल्पना कहनेमें अपना बड़प्पन समझता है, कोई मुसलमानों-ईसाइयोंके साथ रोटी-बेटीका सम्बन्ध करनेमें अपनी मुक्ति मान रहा है! इस तरह हिन्दूपनके किलेपर चारों ओरसे भयंकर गोलाबारी हो रही है। कदाचित् इस किलेको तोड़े बिना उन्नतिका कोई रास्ता ही नहीं है!

अनेक हिन्दुओंने अपना भेष छोड़ दिया है। यूरोपियनोंकी नकलपर केश रखना तो मामूली बात हो गयी है—कर्जन फैशन, फ्रेंच कट और तुर्की मूँछसे शोभा जो बढ़ती है! बात-बातमें अंग्रेजी शब्दोंको घुसेड़नेमें हम अपनी गरिमा समझते हैं! इन पंक्तियोंके लेखकने हिन्दीके कई ऐसे प्रतिष्ठित सम्पादकोंके दर्शन किये हैं, जो केवल हिन्दी समझनेवाले सगे-सम्बन्धियोंसे बातें करते हुए भी दर्जनों अंग्रेजी शब्दोंका प्रयोग किया करते हैं! अंग्रेजीमें चिट्ठियाँ लिखना सभ्यताकी चोटी पकड़ना समझा जाता है! इस आश्चर्यकी भी कोई सीमा है कि, वैदिक सभ्यताके अभिमानी "गंगा"के कितने ही पाठक भी महीनेमें सैकड़ों पत्र अँग्रेजीमें लिखा करते हैं! यदि हम हिन्दीमें चिट्ठी लिखते हैं, तो वे उसका उत्तर अँग्रेजीमें देनेकी दया दिखाते हैं! हिन्दीके कई लेखक अपनी रचना हिन्दीमें भेजते हैं और उसके साथ चिट्ठी अँग्रेजीमें! बहुत तो चिट्ठी हिन्दीमें लिखते हैं और दस्तखत अँग्रेजीमें करते हैं!

हम "डेली मिरर"के चित्रोंको देखकर नाच उठते हैं और अजन्ताकी कारीगरीपर "फुश्" कह देते हैं! सादगी और संयमको हम "भोँदूपन" समझते हैं! शिखा और सूत्र धारण करना ब्राह्मणोंका "गुरुडम" कहा जाता है! "बाल-डान्स"के सामने भारतीय नृत्य बौड़मपन माना जाता है! एकान्त-शान्त स्थानमें भगवद्भजन करनेवाले साधु और ब्राह्मण समाजके ध्वंसक कहे जाते हैं! ऐसे अनेक दल हैं, जो ब्राह्मणोंको गालियाँ बकना ही अपना पवित्र कर्तव्य

समझते हैं! बहुत तो ऐसे हैं, जो हिन्दुओंको इतिहास-हीन जाति मानते हैं! कुछ "इण्डिया"को इंगलैण्ड बनानेपर तुले हैं और कुछ रूस! बस, इसीलिये इनका सारा आन्दोलन और समस्त चेष्टाएँ हैं!

अच्छा, कीजिये आन्दोलन और बनाइये हिन्दूजातिको सेमेटिक कौम या और कुछ। यदि रामायण और महाभारत कल्पना-प्रसूत हैं, यदि शिखा और सूत्र बखेड़े हैं, यदि हिन्दू, मुसल्मान, ईसाईमें कुछ फर्क नहीं, यदि हिन्दुओंमें कोई विशेषता नहीं, तो क्यों नहीं हिन्दूजातिको फौरन छोड़ देते? अधूरे विचारोंमें, त्रिशंकुकी तरह, क्यों लटकते हैं? यदि हिन्दुओंका धर्मशास्त्र और संस्कृत-साहित्य, यदि हिन्दुओंकी जाति-व्यवस्था और रीति-रस्ममें कुछ नहीं, तो फिर क्यों हिन्दूसभा और हिन्दू नामपर इतनी परेशानीमें पड़े हैं? फौरन ग्रहण कीजिये सेमेटिक या हेमेटिक सभ्यता, मंगोल या नीग्रो संस्कृति, स्वच्छन्दता-वाद या साम्य-वाद। हिन्दू नाम न रहे, बलासे—"इण्डियन" तो रहेगा! भारतवर्षको उड़ जाने दीजिये, "इण्डिया" तो बचेगा! नाम-ग्राम जाय जहन्नुम—स्वाधीनताका अलौकिक आनन्द तो लूटियेगा। "जाँत-पाँत"के पीछे यदि आपके आनन्द और स्वतंत्रतामें बाधा पड़ती है, तो मारिये गोली उसे! "जात-पाँत" लेकर क्या कीजियेगा? दुनियाके चिन्ताशील विद्वान् चिल्लाया करें कि, हिन्दूजाति अपनी विशेषता, अपनापन, छोड़कर, दूसरी जाति बन गयी, चली थी अपनी उन्नति करने, हो गयी उस जातिकी उन्नति, जिसकी नकल कर, वह जिसमें, विलीन हो गयी! चिल्लाने दीजिये इन औंधी खोपड़ीवालोंको। इतिहासमें तो हिन्दू नाम-ग्राम, हिन्दू "जात-पाँत", हिन्दू भेष-भाषा और हिन्दू आचार-विचारका उल्लेख मिलेगा! यही क्या कम है?

हमारी तो धारणा है कि, अभी हमें कुछ नहीं सूझेगा। जो हमें सुझानेकी चेष्टा करेगा, उसे भी हम पोंगापन्थी, ढोंगी और न मालूम क्या-क्या कहेंगे! परन्तु इसमें सन्देह मत कीजिये कि, उन दिनों भारतमाता अवश्य ही रोवेंगी जिन दिनों, ऐयाशीमें तबाह राय बहादुरोंकी सन्तानोंकी तरह, आपके वंशज कलपेंगे कि, जिस जातिकी गीता और उपनिषदोंपर एमर्सन और गेटे जैसे मनीषी मुग्ध थे, वह विदेशी कैसे बनी! जिस जातिके दर्शन, व्याकरण और गणितशास्त्र संसारमें बेजोड़ थे, वह दूसरेका शिष्य कैसे हुई! जिस जातिने परशियासे कोरियातक अपनी धर्म-पताका फहरायी थी, वह विधर्मी कैसे बनी! जिस जातिके त्याग, तपस्या, सादगी और दयालुतापर संसारकी जातियाँ लट्टू थीं, उसने दूसरेकी सभ्यताको क्यों ग्रहण किया! जिसकी संस्कृति ने सुमेरियन, द्राविड़ियन, बेबीलोनियन, ईजिप्शियन और इथियोपियन संस्कृतियोंपर भी धाक जमायी थी, वह [illegible] विजातीय क्यों हुई! जिन ब्राह्मणोंने घोर कष्ट उठाकर आर्योंके असंख्य ग्रन्थोंको कण्ठस्थ कर उनकी रक्षा की थी, जिन्होंने समर्थ रामदास और परशुरामके रूपोंमें सारे भारत का राज्य ठुकरा दिया, उनके द्वेषी हमारे पूर्वज क्यों हुए! जिस वर्ण-व्यवस्थाने धौंसेकी धुधुकारपर प्रलय-ताण्डव करने वाले शिशोदियों, राठौरों और चौहानोंकी शानपर आंच या बट्टा नहीं लगने दिया, उसे हिन्दुओंने क्यों छोड़ा!!! [illegible] निश्चय जानिये कि, उस दिन आपकी भारत-माता खून के आँसू रोवेगी, जिस दिन आपके वंशज, अनाथकी तरह करुणा-विगलित स्वरमें, तरसेंगे—

"रघुपतेः क्व गतोत्तरकोशला,
यदुपतेः क्व गता मथुरापुरी!"

२—द्वितीय अष्टक छप गया

"गंगा"के पाठकोंको विदित होगा कि, बनैली राज्याधिपति साहित्य-विभूषण कुमार कृष्णानन्द सिंह बहादुरकी सहायतासे "गंगा" के प्रवर्त्तनके साथ ही भारतीय

सहित चारो वेदोंका हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित करनेके लिये, "गंगा"-कार्यालयसे ही, "वैदिक-पुस्तकमाला" का संचालन प्रारम्भ किया गया था। प्रथम "ऋग्वेद-संहिता"का हिन्दी-अनुवाद निकालना निश्चित हुआ, जिसका प्रथम अष्टक, हिन्दी-अनुवाद, भूमिका, टिप्पनियों, चित्रों और कई ज्ञातव्य विषयोंसे अलंकृत कर, कुछ महीने हुए, जनताके सामने रखा गया था। "गंगा" के पाठकोंको सुनकर प्रसन्नता होगी कि, प्रथम अष्टकको विद्वानोंने खूब पसन्द किया। भारतवर्षके बड़े-बड़े वेदज्ञोंने तो प्रशंसाएँ लिख भेजीं ही; ब्रिटिश म्युजियम (लण्डन)के डा० बर्नेट, छरेके डा० ग्रियर्सन, ओरियेण्टल स्कूल (लण्डन) के प्रो० टैप्सन तथा चीनके "वर्ल्ड फिडरेशन"ने भी प्रथम अष्टकको बड़ी प्रशंसा की। "बाम्बे क्रानिकल", "हिन्दू", "न्यू इण्डिया" जैसे अँग्रेजीके विख्यात पत्रों और "प्रताप", "आज" तथा "माधुरी" जैसी प्रतिष्ठित हिन्दी-पत्र-पत्रिकओंने भी प्रथम अष्टकपर बढ़ियासे बढ़िया समालोचनाएँ छापीं।

"गङ्गा"के पाठकोंको सूचना देते हमें हर्ष हो रहा है कि, एक सप्ताह हुआ, द्वितीय अष्टक भी छप गया। इसका भी मूल्य, प्रथम अष्टककी तरह, २) रु० है। यह अष्टक भी चित्रों, टिप्पनियों, कई ज्ञेय विषयों और सरल हिन्दी-अनुवादसे सुसज्जित है। समस्त ऋग्वेदमें इस तरहके आठ अष्टक और चौसठ अध्याय हैं। दो अष्टक तो छप चुके; शेष छः अष्टक और प्रकाशित होंगे। सबमें एकसी ही शैली रहेगी।

पाठकोंको मालूम होगा कि, कुरानको प्रत्येक मुसलमान और बाइबिलको प्रत्येक ईसाई अपने प्राणसे भी बढ़कर मानता और इन दोनों ग्रन्थोंसे अपने घरको अवश्य पवित्र रखता है। किसी समय हिन्दुओंमें भी यह बात थी। यह तो क्या, पहलेके हिन्दू या आर्य वेद न जाननेवालेका जबर्दस्त जातीय बहिष्कारतक करते थे। परन्तु दुर्भाग्यसे हिन्दू-जातिका इतना मानसिक पतन हो चला है कि, वह अपनी सभ्यता, संस्कृति, धर्म और जातीयताके मूल ग्रन्थ वेदकी पुस्तकका अध्ययन करना और कम-से-कम पवित्र धर्म-ग्रन्थ जानकर उसे अपने घरमें रखना भी आवश्यक नहीं समझती! अवश्य ही इस काममें एक दूसरी अड़चन भी है। सारी "ऋग्वेद-संहिता"पर सायणको छोड़कर अन्य किसीका भी प्रामाणिक भाष्य नहीं है और यह बात निश्चित है कि, यदि सायणाचार्यका भाष्य नहीं रहता, तो ऋग्वेदका अर्थ समझना असम्भवसी बात होती। परन्तु यूरोप या भारतवर्षमें सायण-भाष्यके सस्ते-से-सस्ते संस्करणका मूल्य १५०) रु० है। निर्धन वेद-प्रेमीके लिये डेढ़ सौ खर्च करना कठिन है। इसी सायण-भाष्यका संक्षिप्त हिन्दी-अनुवाद निकालना "गंगा"-कार्यालयने प्रारम्भ किया है और डेढ़ सौकी जगह सिर्फ १६)रु०में समस्त "ऋग्वेद-संहिता"को, सम्पूर्ण सायण-भाष्यके सरल-संक्षिप्त हिन्दी-अनुवादके साथ, देना निश्चित किया है। आठ अष्टकोंमेंसे किसी भी अष्टकका मूल्य २) से अधिक रखनेका विचार नहीं है। यदि यही पुस्तक, ऐसे ही हिन्दी-अनुवादके साथ, जर्मनी, इङ्गलैण्ड आदिसे निकलती, तो कम-से-कम दो सौ रुपये मूल्य रखा जाता और खरीदनेवाले खुशीसे खरीदते। इसका उदाहरण शौनककी सर्वानुक्रमणीको ले सकते हैं। इस जरा-सी पुस्तकको प्रो० मैक्डानलने छापकर १८) रु० मूल्य रखा है, जिसे सब खरीदते हैं। खास ध्यान देनेकी बात है कि, प्रत्येक पुस्तकका मूल्य यथासम्भव कम रखा जाता है; क्योंकि हमारा उद्देश्य व्यापार करना नहीं। अनुवादके लिये १०००) से ऊपरकी तो पुस्तकें ही मँगायी गयी हैं। जो हो, हिन्दूसंस्कृति और हिन्दूधर्मके प्रति "गंगा"-कार्यालयने अपना कर्तव्य पूरा करनेकी चेष्टा की है; हिन्दूधर्मके सब भक्त इस ग्रन्थके प्रचारमें अपना जो कर्तव्य समझें, वह करें।

हिन्दीके कुछ कुरुचि-सम्पन्न प्रकाशकोंने प्रथम-प्रथम किस्से-कहानियों और भद्दी-रद्दी पुस्तकोंका अत्यधिक मूल्य रखकर उन्हें पौने मूल्यपर बेचना शुरू किया था; परन्तु पीछे देखा-देखी अधिक मूल्य रखकर कुछ अच्छे प्रकाशक

सो पौने मूल्यपर अपनी पुस्तकें बेंचने लगे। इसका नतीजा यह हुआ है कि, कितने ही पाठकोंको पौने मूल्यका ऐसा रोग हो गया है कि, वे किसी भी पुस्तककी महत्ता, व्यय-बहुलता और गम्भीरताका विचार न करके पौने मूल्यके पीछे हाथ धोकर पड़े रहते हैं। यद्यपि इस "ऋग्वेद-संहिता"के अनुवाद-में परिश्रम, समय और द्रव्यका जितना व्यय करना पड़ रहा है, उसके देखते हमारे यहाँ बहुत ही कम मूल्य रखा जाता है, तो भी "पौने मूल्य" के चखेंस हमें भी जबरन युद्ध करना पड़ रहा है! फलतः "वैदिक-पुस्तकमाला"के स्थायी ग्राहकों और "गंगा"के ग्राहकोंको २) रु० की जगह १॥) रुपयेमें ही प्रत्येक अष्टक मिलता है। परन्तु पोस्टेज, पैकिङ्ग, वी० पी० चार्ज आदिमें जो प्रायः ॥) का व्यय पड़ता है, वह ग्राहकोंके ही जिम्मे पड़ता है। अपना हिसाब स्थिर कर हमें यही नियम बनाना पड़ा है इसलिये जो ग्राहक १॥) में पुस्तक पानेके अधिकारी हैं, उन्हें भी दो रुपयेमें ही, पोस्टेज आदि मिलाकर, पुस्तक पड़ती है। यही कारण है कि, अब हमने यह सीधा नियम बना दिया है कि, मालाके स्थायी ग्राहकों और "गंगा"के ग्राहकोंको भी २) में ही पुस्तक मिलेगी और प्रत्येक अष्टकका ॥) का डाक-व्यय आदि हम देंगे। और हाँ, जो सज्जन आठ आने देकर मालाके स्थायी ग्राहक नहीं हुए हैं और न "गंगा" के ही ग्राहक हैं, उन्हें २) के सिवा डाक खर्च भी देना होगा और लगभग २॥) में उन्हें प्रत्येक अष्टक पड़ेगा।

इस अष्टकमें प्रथम मण्डलके १२२ सूक्तसे १९१, द्वितीय मण्डलके सब ४३ सूक्त और तृतीय मण्डलके ६ सूक्त आये हैं। प्रथम अष्टकमें सायण-भाष्यका जैसा संक्षिप्त हिन्दी-अनुवाद किया गया है, वैसा ही इस अष्टकमें भी किया गया है। प्रथम अष्टकमें जो इधर-उधर टिप्पनियाँ दी गयी थीं और वेदमें पौराणिक कथाओंका अंकुर दिखाया गया था, उन सबका संग्रह इस द्वितीय अष्टकमें भी है।

जिस "वेद-रहस्य" के लिखे जानेकी सूचना प्रथम अष्टकमें दी गयी थी, वह लिखा जा रहा है। सम्पूर्ण होनेपर उसे प्रकाशित किया जायगा।

तृतीय अष्टक छप रहा है। छपाई-सफाई आदिमें तृतीय अष्टक इन दोनों अष्टकोंसे बढ़कर होगा।

३—"पुरातत्त्वांक"के सम्बन्धमें

अप्रेल और मईकी "गंगा"में "पुरातत्त्वांक"के लिये आयी हुई सामग्रीकी चर्चा की गयी थी। इस महीनेमें भी अनेक उच्च कोटिके निबन्ध तथा शिलालेखोंकी कई प्रतिलिपियाँ आदि आयी हैं। सबका विवरण पढ़िये—

१ कलिंगका इतिहास
२ कलिंगके गंगराजवंशका इतिहास
३ गंगराजवंशका विजयराज्य सम्भाचार
४ गंग और केसरी राजवंशोंकी स्वर्ण-मुद्राएँ
५ महाराजा इन्द्रवर्माका टेकाली-स्थित ताम्र-दान-पत्र
६ उत्कलका कपिल-संवत्

— श्री३राजा लक्ष्मीनारायण हरिचन्दन जगदेव बहादुर, पुरातत्त्व-विशारद, विद्यावाचस्पति, एम०आर०ए०एस०, एम०बी०डी०एम०, टेकाली (मद्रास)

७ हिन्दी स्थानीय भाषाओंके बृहत्-संग्रहकी आवश्यकता
८ मागधी हिन्दीका विकास
९ महायान बौद्ध धर्मकी उत्पत्ति
१० मंत्रयान, वज्रयान और चौरासी सिद्ध
११ हिन्दीके प्राचीनतम कवि और उनकी कविता
१२ काल-निर्णयमें ईंटें और गहराई

— त्रिपिटकाचार्य महापण्डित प्रोफेसर राहुल सांकृत्यायन

१३ भूगर्भशास्त्र और पुरातत्त्व-विज्ञान—
प्रोफेसर कृष्णकुमार माथुर बी० एस-सी० (लण्डन)

१४ हिन्दुओंकी वर्ष-गणनाएँ—
कुमार गंगानन्द सिंह एम० ए०

१५ बिहारी भाषाओंकी उत्पत्ति और उनका विकास—
प्रोफेसर नलिनीमोहन सान्याल एम० ए०

१६ उत्तर-काशीका शक्तिस्तम्भलेख—
प० वीरभद्र शर्मा वेद-काव्यतीर्थ

१७ देवगढ़—बाबू कामताप्रसाद जैन

१८ कालीकी गुफाएँ—प० आनन्दराव जोशी

१९ भोजपुरी भाषा और उसका साहित्य-सौन्दर्य—
महाराजकुमार दुर्गाशंकरप्रसाद सिंह

२० छट्टी-खत्ती-मितानी } प० प्रभुदयालजी
२१ आसिका दुर्गकी सूर्य-प्रतिमा }

इन लेखोंके अतिरिक्त अन्यान्य कई महत्त्वपूर्ण लेख भी लिखे जा रहे हैं। इस महीनेके अन्ततक अनेक लेख आ जायँगे। इन लेखोंके अतिरिक्त ये सामग्रियाँ भी आयी हैं—

१ कर्क स्वर्णवर्णका दान-पत्र (तीन प्लेट)
२ राजा शंकरगणका शिलालेख और तत्सम्बन्धी चित्र
३ उत्तरकाशीका शक्तिस्तम्भलेख (तीन प्लेट)
४ महाराजा इन्द्रवर्माका ताम्र-दान-पत्र (दस प्लेट)
५ गंग और केसरी राजवंशोंकी स्वर्णमुद्राएँ (दो प्लेट)
६ चौरासी सिद्ध (पचीस प्लेट)
७ गंगराजवंशकी शाही मुहर (लौह-वलयपर)
८ आसिकादुर्गकी सूर्य-प्रतिमा
९ मोहन्जोदारोके चित्र (आठ प्लेट)
१० जैन-मूर्त्तियाँ (इण्डिया कौंसिल, लण्डन; पाँच प्लेट)
११ भूगर्भशास्त्रके चार चित्र

इनके सिवा अन्य अनेकानेक दुर्लभ सामग्रियाँ भी संगृहीत की जा रही हैं।

संसार भरकी भाषाओंकी पुरातत्त्वविद्या-विषयक पुस्तकों, पत्रों आदिकी सूची और विश्वके पुरातत्त्व-वेत्ताओंके जो पते लिखे जा रहे हैं, उनका महत्त्व, उनके संग्रह-कर्त्ता डा० लक्ष्मणस्वरूप एम० ए०, डी० फिल (आक्सन) के निम्न लिखित पत्रांशसे, विदित होगा—

"सूची बन रही है। आशा है, जूनके अन्ततक समाप्त हो जायगी। इसमें बहुत ही परिश्रम करना पड़ रहा है। इसमें इतने परिश्रमकी आवश्यकता है कि, यदि मैं अकेला ही करता, तो कम-से-कम छ महीने लग जाते। मेरी सहायता तीन और एम० ए० कर रहे हैं। इस कार्यको करते हुए एक महीना पूरा हो गया है और एक महीना और लगेगा। जब आपके पास सूची पहुँचेगी, तब आप स्वयं देख लेंगे कि, कितना परिश्रम करना पड़ा है।"

४—जर्मन विश्व-विद्यालयोंमें भारतीयोंको छात्र-वृत्ति

जर्मनीके "इण्डियन इंस्टीट्यूट आफ् डयुट्स एकाडेमी" नामक पत्रने प्रकाशित किया है कि, निम्नलिखित जर्मन विश्वविद्यालयोंमें, भारतीय विद्यार्थियोंके लिये, सन् १९३२—३३तककी, छात्र-वृत्ति निर्धारित हो चुकी है। भारतीय विद्यार्थी, यदि चाहें, तो इसके लिये आवेदन-पत्र भेज सकते हैं—

(१) बेस्लो—इस विश्व-विद्यालयमें निःशुल्क शिक्षाके साथ-साथ, भारतीय विद्यार्थीको, अपने जरूरी खर्चके लिये, मासिक ३० मार्क मिलेंगे। पर यह ध्यान रखना चाहिये कि, यह छात्रवृत्ति केवल दर्शन, भाषा, गणित, शिल्प-कला एवं भारत-सम्बन्धी विषयोंके अध्ययनके लिये ही मिलेगी।

(२) डेस्डेन—यहाँकी टेकनालाजिकल यूनिवर्सिटीमें निःशुल्क शिक्षा मिलेगी।

(३) होहेनहीम—यहाँके कृषि-विश्व-विद्यालयमें निःशुल्क शिक्षा मिलेगी तथा यहाँ मुफ्तमें रहनेका भी प्रबन्ध होगा।

(४) नूरेनबर्ग—यहाँके वाणिज्य तथा श्रम-शिल्प-विश्व-विद्यालयकी वृत्तिसे मेनसा एकाडेमीमें निःशुल्क शिक्षा मिलेगी तथा मुफ्तमें भोजन भी मिलेगा।

ये ही चार छात्र-वृत्तियाँ, सन् १९३२ के नवम्बरसे लेकर सन् १९३३के जुलाई महीनेतक, रहेंगी। जो भारतीय विश्व-विद्यालय विदेशमें स्वीकृत हैं, उनसे निकले हुए ग्रेजुएट ही इन वृत्तियोंके अधिकारी हैं। जो ग्रेजुएट नहीं हैं, किन्तु यदि वे किसी प्रकार साहित्य अथवा विज्ञानकी परीक्षाओंमें सफल हो चुके हैं, तो उनके आवेदन-पत्रपर भी यहाँ विचार किया जा सकेगा। आवेदन-पत्र भेजनेवाले विद्यार्थियोंको अपने अध्यापकका प्रशंसापत्र भी भेजना होगा। यहाँ देखा जाता है कि, जिस अध्यापकके अधीन रहकर छात्रने शिक्षा पायी है, उसके विचार, उस छात्रके विषयमें, कहाँतक अच्छे हैं।

५—प्रवासी भारतीय

दक्षिण अफ्रीकामें निवास करनेवाले भारतीयोंकी स्वत्व-रक्षाके सम्बन्धमें तो कुछ सन्तोषजनक व्यवस्था की गयी है; किन्तु अन्यान्य प्रवासी भारतीयोंकी अवस्था अभी ज्यों-की-त्यों है। उनको अधिकार-रक्षाका प्रश्न आजतक हल नहीं हुआ।

भारतसे बाहर—ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत—२९२९०-६९ तथा अन्य राष्ट्रोंके अन्तर्गत १०९०२९ भारतीय आज निवास कर रहे हैं। निम्नाङ्कित सूचीसे आपको पता चलेगा कि, किस देशमें कितने प्रवासी भारतीय रहते हैं:—

देश	संख्या	मनुष्य-गणना
सिंहलद्वीप (लंका)	९९९०००	१९२९
ब्रिटिश मलाया	७०००००	१९२९
हांगकांग (चीन)	२९९९	१९११
मोरिशस	२८१०२९	१९२८
सिशेल द्वीप (हिन्द महासागर)	३३२	१९११
जिब्राल्टर	९०	१९२०
केनिया	२६७९९	१९२६
युगाण्डा	११६१३	१९२६
न्यासालैण्ड	५१९	१९२१
जंजीबार	१२८४१	[illegible]
टाङ्गानिका	१८४८३	[illegible]
जमैका	१७६७१	[illegible]
ट्रिनीडाड	१३०९४२	[illegible]
ब्रिटिश गायना	१२८२०९	[illegible]
फीजी	६८७३३	[illegible]
बसूटोलैण्ड और स्वाजीलैण्ड	१८६	[illegible]
रोडेशिया (एशिया-निवासी)	१३०६	[illegible]
कनाडा	१२००	[illegible]
आस्ट्रेलिया	२६०६	[illegible]
दक्षिण अफ्रीका	१६१३३९	[illegible]
अमेरिकाका युक्तराज्य (एशिया-निवासी)	३१७९ *	[illegible]
मेडागास्कर	९२७२	[illegible]
री-यूनियन द्वीप	२१९४	[illegible]
डच ईस्ट इण्डीज	६००००	[illegible]
सुरीनाम	३४९९६	[illegible]
मोजाम्बिक (एशिया-निवासी)	११००	[illegible]
फारस	३८२७	[illegible]

६—अमेरिकामें वेदान्तकी सभाएँ

अपनी अप्रतिम प्रतिभाके बल स्वामी विवेकानन्दजीने अमेरिकाको हिन्दूधर्मका जो गौरव दिखाया था, वह धु[illegible] नहीं हुआ—यह प्रसन्नताकी बात है। स्वामीजीके अनेक उद्भट विद्वान् अनुयायियोंने उसे स्थायी और परिवर्धित करनेके लिये, वहाँ कितनी ही मठ-सभाएँ स्थापित की हैं और

* अमेरिकाके युक्तराज्यमें निवास करनेवाले भारतीयों की संख्या ३१७९ से भी अधिक जान पड़ती है; क्योंकि अमेरिकाके केवल विप्लवी दलमें ही करीब ३००० भारतीय सम्मिलित बताये जाते हैं।

बड़ी योग्यतासे, व्याख्यान, पत्र, पुस्तक आदिके द्वारा, वे वेदान्त और हिन्दूधर्मके उत्कृष्ट सिद्धान्त अद्वैतवादका प्रचार कर रहे हैं। अमेरिकाके जिन स्थानोंपर जो महात्मा ऐसे पुण्यमय कार्य कर रहे हैं, उनके शुभ नाम ये हैं—

१ न्यूयार्क—स्वामी बोधानन्द

२ बोस्टन—स्वामी परमानन्द

३ सन-फ्रांसिस्को—स्वामी दयानन्द

४ केलीफोर्निया—स्वामी परमानन्द

५ पोर्टलैण्ड—स्वामी प्रभवानन्द

६ प्राविडेन्स—स्वामी अखिलानन्द

यह लिखनेकी आवश्यकता नहीं कि, हिन्दू-जाति आप लोगोंका सदा ऋणी रहेगी। नाम, रामकृष्ण-मठ और स्थान लिखनेसे ही आप लोगोंको पत्र मिल सकता है।

७—गंगाके गर्भमें सुरङ्ग

कलकत्तेमें, गंगाके सलिल-तलके अधोभागमें, जो सुरङ्ग, "कलकत्ता इलेक्ट्रिक् सप्लाई कारपोरेशन" द्वारा, खोदी जा रही थी, वह अब समाप्तप्राय है; थोड़ा-ही-बहुत काम बाकी है। जितना कार्य अभीतक हुआ है, उतनेसे ही इसकी व्यवहारोपयोगिता सिद्ध हो जाती है। यह सुरङ्ग एशिया महादेशकी नदियोंमें अपनी तरहकी पहली ही है।

सुरङ्गके भीतरका व्यास छः फीट है अर्थात् एक मनुष्यकी ऊँचाईसे कुछ ऊँचा। भू-पृष्ठसे यह १४५ फीट और गङ्गाके तल-प्रदेशसे ४० फीट नीचे है। सुरङ्गकी लम्बाई १७२५ फीट है। इञ्जीनियर Dalrymple Hay की व्यवस्थाके अनुरूप मि० Donovan की देख-रेखमें यह बनी है।

हवड़ा प्रभृति स्थानोंमें ज्यादा वोल्टका विद्युत्प्रवाह पाया जाता है; परन्तु नदीके उस पारमें नहीं। अतः उसे लानेके लिये दो उपाय सोचे गये थे—या तो वहाँ एक विशालकाय बिजली-घर बनाया जाय अथवा सुरङ्ग खोदकर मोटे तारों द्वारा कलकत्तेसे ही बिजली लायी जाय। पहला तरीका जरा ज्यादा खर्चीला था; इसलिये उसे छोड़ दिया गया और गङ्गाके गर्भमें सुरङ्ग खोदी गयी।

८—शर्माजीकी जयन्ती

व्याख्यानवाचस्पति प० दीनदयालु शर्मा सनातनधर्मी संसारकी तेजःशालिनी विभूति हैं। उनकी विजयिनी वाणीमें मुर्दोंमें भी जान फूँकनेवाली शक्ति है। श्रोताओंको हँसाना, खेलाना और रुलाना उनके बायें हाथका खेल है। भक्तिपर भाषण करते समय वे इस खूबीसे—ऐसे मधुमय शब्दोंका उपयोग करते हैं कि, प्रचण्ड नास्तिकको भी रोना पड़ जाता है! वे सचमुच व्याख्यान-कलामें वाचस्पति हैं। आजकलकी उच्छृङ्खलताके बवण्डरके सामने यदि आप अपनी अमोघ वाग्मिताकी आँधी नहीं बहाते, तो सनातनधर्मको एक भारी धक्का लगता। जिन दिनों आप जवानीके जोशमें थे, उन दिनों अपनी वाग्धारामें सारे भारतको बहा डाला था। आपने कितनी ही सभाएँ स्थापित कीं और कितने ही उपदेशक-महोपदेशक तैयार किये। भारतधर्म-महामण्डल, सनातनधर्म कालेज जैसी संस्थाओंके संस्थापकोंमें आप हैं। हिन्दू-विश्व-विद्यालयके लिये भी आपने कम परिश्रम नहीं किया है। इन दिनों आपकी अवस्था ७० वर्षोंकी है। आँखें कमजोर हो गयी हैं। भगवन्नाम-स्मरणमें दिन व्यतीत करते हैं। विगत २३ मईको असंख्य सनातनधर्मियोंने आपकी जयन्ती मनायी थी। हम भी आपको श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हुए आपके दीर्घायुष्य और आरोग्यके लिये परम पितासे प्रार्थना करते हैं।

९—आचार्य द्विवेदीजीका "कृतज्ञता-ज्ञापन"

आचार्य द्विवेदीजीकी अड़सठवीं जयन्ती ९ मईको प्रायः सारे हिन्दी-संसारमें मनायी गयी थी। इस शुभ अवसरपर द्विवेदीजीने जो "कृतज्ञता-ज्ञापन" किया है, वह सर्वथा

उनकी सज्जनता, सरलता, विनम्रता और विद्वत्ताके अनुकूल है। उसे पढ़नेपर आपमें किसकी श्रद्धा अविचल नहीं रहेगी? पाठकोंके आनन्द-वर्द्धनके लिये हम इस "ज्ञापन"को प्रकाशित करते हैं—

"मेरी जन्मतिथि वैशाख शुक्ल ४ संवत् १९२१ है। इस हिसाबसे ९ मई १९३२ को मैं ६८ वर्षका हो गया। अब मैंने उनहत्तरवें वर्षमें प्रवेश किया है। इस उपलक्ष्यमें मुझे मेरे अनेक मित्रों और हितैषियोंने बधाइयाँ दी हैं और खुशियाँ मनायी हैं। कितने ही पत्रों और तारों द्वारा मेरी शुभ कामना की गयी है। कई समाचारपत्रों और सामयिक पुस्तकोंमें भी मेरा अभिनन्दन किया गया है। मुझपर कृपा करनेवाले सज्जनोंने कहीं-कहीं समुदाय-रूपसे भी मेरी हितचिन्तना की है। इन सभी सज्जनों—लेखकों, पत्रप्रेषकों और अभिनन्दन करनेवालोंको मेरे शतशः प्रणाम। मैं उनके चरणोंपर, भक्ति-भावपूर्वक, अपना मस्तक झुकाता हूँ। मैं उन्हें अपना मातृ-पितृ-स्थानीय समझता हूँ; क्योंकि स्वाभाविकतया माता-पिता ही अपने बच्चेकी वर्ष-गाँठ मनाते हैं।

"पिता तो मेरे विदेशवासी थे। बारह-तेरह वर्षकी उम्र-तक मेरी माताने ही मेरी वर्ष-गाँठ मनायी थी। हर साल उस अवसरपर उसे जिस सुख और सन्तोष तथा मुझे जिस कौतूहल और आनन्दकी प्राप्ति होती थी, उसका स्मरण आज नया हो गया। इस स्मरणने मेरा कण्ठावरोध कर दिया और मेरे नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बरसा दिये। वर्ष-गाँठके दिन मैं अपनी माँसे खाने-पीने और पहनने आदिकी अपनी अभिलषित चीजें माँगता था और वह, जहाँतक उसका वश चलता था, उनकी पूर्ति करती थी। इस उम्रमें—अपनी वर्त्तमान स्थितिमें—मुझे अब उन चीजोंकी चाह नहीं। अब तो मुझे एक और ही चीजकी चाह है। अतएव, जिन उदारचरित महानुभावोंने मेरी वर्षगाँठ मनायी या मुझे बधाई दी है, उनसे मैं वही चीज माँगना चाहता हूँ। वे सभी सज्जन हैं। सज्जन न होते, तो मुझपर इतनी कृपा क्यों करते? उनसे मेरी माँग है—

"सन्त सरलचित जगतहित जानि सुभाउ सनेहु।
बालविनय सुनि करि कृपा रामचरन-रति देहु॥"

"इस समय मुझे इसीकी सबसे अधिक जरूरत है। आशा है, यदि वे मेरी अभिलषित वस्तुकी प्राप्ति करा दें, इसके लिये परमात्मासे प्रार्थना करेंगे, तो उससे मेरा अवश्य कल्याण होगा। अन्यथा—

"सर्वं नृजन्म मम निष्फलमेव याति।"

"किसी-किसीने ९ मई १९३२ को मेरी सरसठवीं वर्षगाँठ मनायी है! जान पड़ता है, इन सज्जनोंके हृदयमें मेरे विषयके वात्सल्य-भावकी मात्रा कुछ अधिक है। इसीसे इन्होंने मेरी उम्र एक वर्ष कम बता दी है! कौन माता-पिता या गुरुजन ऐसा होगा, जो अपने प्रेम-भाजनकी उम्र कम बताकर उसकी जीवनावधिको और भी आगे बढ़ा देनेकी चेष्टा न करेगा? अतएव इन महानुभावोंका मैं और भी अधिक कृतज्ञ हूँ।

"हिन्दी भाषा और साहित्यके सम्बन्धमें पूर्वोक्त अवसरपर बहुत कुछ कहा गया है। मैंने यह किया, मैंने वह किया आदि। मेरा निवेदन है कि, मैं इस प्रशंसाका पात्र नहीं। २२ वर्षोंतक रेलवेकी मुलाजिमत करके जब मैंने उसकी शृङ्खलाएँ तोड़ीं, तब मैंने अपनेको और किसी कामके योग्य ही न पाया। लाचार, हिन्दी लिखकर और उसके सम्बन्धमें कुछ काम करके मैंने अपनी और अपने आश्रितोंकी उदरपूर्ति की। मेरे इस कामसे यदि हिन्दी-साहित्यको कुछ लाभ पहुँचा हो, तो आप उसे मेरे कामका आनुषङ्गिक फल समझ लीजिये। बस, इससे अधिक और कुछ नहीं। मेरे इस कामको मेरे मित्रों और हितैषियोंने जो विशेष महत्त्व दिया है, वह मात्र उनकी उदारता और उनके हृदयकी महत्ताका सूचक है। सज्जन स्वभावसे ही उदार और कृपालु होते हैं। वे अनधिकारियोंको भी अपनी दयाका पात्र समझते हैं—

"सन्तस्त्वभाजनजनेष्वपि निर्निमित्तं।
चित्तं वहन्ति करुणामृतसारसिक्तम्॥"

दौलतपुर,
रायबरेली,
१३-५-३२

महावीरप्रसाद द्विवेदी"

१०—साहित्य-सेवियोंका स्वर्ग-गमन

इधर तीन ऐसे सरस्वतीके वर पुत्रोंका देहावसान हुआ है, जिनसे हिन्दीकी बड़ी क्षति हुई है। इन सज्जनोंके स्मरणीय नाम ये हैं—बा० शिवनन्दन सहाय, म० म० प० देवीप्रसाद शुक्ल कविचक्रवर्त्ती और पुरोहित रामप्रतापजी। बाबू शिवनन्दन सहाय बिहारमें हिन्दीके उन्नायकोंमें थे। वे बिहार-प्रान्तीय-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सभापति भी हो चुके थे। वे प० प्रतापनारायण मिश्रके समकालीन लेखक थे। अत्यन्त प्राचीन और प्रतिष्ठित लेखक थे। उनकी लिखी कई सुन्दर हिन्दी-पुस्तकें हैं। वे एकान्त-शान्त लेखक थे। उनके पुत्र "ब्रजवल्लभ" कवि भी सुलेखक हैं। उनके निधनसे प्रत्येक हिन्दी-सेवकको दुःख हुए बिना नहीं रहेगा। शुक्लजी वास्तवमें "कवि-चक्रवर्त्ती" थे। संस्कृत-साहित्यमें उनकी अपार गति थी। आपकी श्रेणीके संस्कृतके विद्वान् हिन्दीको "भाखा" कहते हैं; परन्तु आप हिन्दीके पक्के प्रेमी थे। हिन्दीमें लेख और कविताएँ लिखते थे। केवल संस्कृतके योग्य विद्वान् बहुत कम हिन्दी लिखते हैं। जो लिखते हैं, वे दालमें नमकके बराबर हैं। गिन लीजिये—तीर्थद्वय प० सकलनारायण शर्मा, प० चन्द्रशेखर शास्त्री, प० शालग्राम शास्त्री, प० किशोरीदास वाजपेयी, प० गयाप्रसाद शास्त्री आदि। कविचक्रवर्त्तीजीका हिन्दी-प्रेम भी इन विद्वानोंसे कम नहीं था। आपका हिन्दी-प्रेम संस्कृतके विद्वानोंके लिये आदर्श और अनुकरणीय है। आपकी अनुपस्थितिसे संस्कृत-साहित्यके समान ही हिन्दी-साहित्यकी भी बड़ी हानि हुई। पुरोहित रामप्रतापजीके उठ जानेसे भी हिन्दीकी कुछ कम हानि नहीं हुई। आपने हिन्दीकी बड़ी सेवा की थी। "श्रीकृष्ण-विज्ञान" लिखकर आपने गीता-भक्तोंका बड़ा उपकार किया था।

हम तीनों सज्जनोंकी दिवंगत आत्माकी शाश्वत शान्तिके लिये परमात्मासे विनय करते और इनके कुटुम्बियोंके साथ समवेदना प्रकट करते हैं।

११—"पुरस्कार-चर्चा"

हिन्दीके प्रसिद्ध दैनिक "आज"में श्रीयुत "ज्ञ"महोदयने जो पुरस्कारके सम्बन्धमें विचार प्रकट किये हैं, वे ध्यान देने लायक हैं—

"जो कार्यालय सारा समय देकर काम करनेवाले अपने कर्मचारियोंको उचित वेतन नहीं दे सकता, उसके लिये यह निश्चय ही कठिन है कि, वह कभी-कभी लेख देनेवालोंको पुरस्कार देनेका नियम बनावे। वह कार्यालय अधिकसे अधिक लेखकको बिना मूल्य और बिना डाकखर्चके अपना पत्र दे देता है।

"पहली बात तो यह है कि, हिन्दी-पत्र-पत्रिकाओंके लेखक अभी लेख लिखना अपने जीवन-निर्वाहका साधन न बनावें। जो ऐसा सोचेंगे, वे वर्तमान स्थितिमें बड़ी भूल करेंगे। उन्हें किसी पत्रके कार्यालयमें या किसी दूसरे रोजगारके कार्यालयमें नौकरी करते हुए अवकाश मिलनेपर या आवश्यकताके अनुसार कभी-कभी लेख लिख देना चाहिये। उन्हें पुरस्कार प्राप्त करनेके लिये बराबर यत्न करना चाहिये; पर यदि पुरस्कार मिलना सम्भव न हो, तो निराश नहीं होना चाहिये और असन्तुष्ट होकर लेख लिखना बन्द नहीं करना चाहिये। स्मरण रखना चाहिये कि, दस-बीस बरस पहले लेखक बिना पुरस्कारके लेख लिखते रहे हैं और आज तो कुछ लोगोंको पुरस्कार भी मिलने लगा है। आगे स्थितिमें और भी सुधार होगा और तब अधिक लेखकोंको पुरस्कार मिलेगा। लेखकके लिये सर्वोत्कृष्ट मार्ग तो यह है कि, वह लेख लिखना जारी रखे और अच्छेसे अच्छा लेख लिखनेका यत्न करे। लेखकोंको याद रखना चाहिये कि, यदि वे बराबर लेख लिखते रहेंगे, तो लिखनेका अभ्यास बढ़ेगा और उनका लेख पत्रोंमें प्रकाशित होनेसे उनका नाम प्रमुख लेखकोंमें हो जायगा; और, इससे भी पुरस्कार मिलनेमें सहायता मिलेगी।"

१२—ईस्टमैन कोडक

कोडक कैमेराके आविष्कारक करोड़पति जार्ज ईस्टमैनका मृत्यु-संवाद मिला है। इनका जन्म न्यूयार्कके वाटरविल नामक स्थानमें, १८५४ सालमें, हुआ था।

आठ वर्षकी ही उम्रमें इनके पिता मर चुके थे। चौदह वर्षकी उम्रमें ये किसी आफिसमें 'बेयरा'का काम करने लगे; और कुछ दिनों बाद, किरानीगिरी। इसी अवधिमें इन्होंने बड़े परिश्रमसे कुछ रुपये संचित किये। १८८० ई० में इन्होंने एक आदमीको साझीदार बनाकर कैमेरा बनानेका व्यवसाय प्रारम्भ किया। इस समय इन लोगोंका मूल धन ५००) रुपये था।

जिस समय Wet Plate पर फोटो लेनेकी प्रथा थी, उस समय कोडकने "ब्रिटिश जर्नल आफ् फोटोग्राफी" नामक पत्रिकाके एक-दो लेखोंके आधारपर १८७३ ई० में सर्व-प्रथम शुष्क प्लेट (Dry Plate) को पेटेण्ट बनाया और १८८४ सालमें स्वच्छ फिल्म (Transparent roll film) को पेटेण्ट बनाया। इसके पहले ही इन्होंने हैण्ड कैमेरा और पाकेट कैमेरा बना लिया था।

इसके बाद चलचित्रका आविष्कार हुआ, जिससे फिल्मोंकी माँग अधिक होने लगी और कोडक कम्पनी स्थापित हुई। १९१९ सालमें कम्पनीको ४५०००००) का लाभ हुआ था!

चिर कुमार ईस्टमैन अदृष्टवादी नहीं थे; पुरुषार्थके पक्षपाती थे। ये बड़े दानशील थे। इनके दानका परिमाण १५०००००० है। स्कूलोंमें, संगीत-विद्यालयोंमें और शिल्पकी उन्नतिके लिये ही ये विशेष दान किया करते थे। दन्त-चिकित्साकी उन्नतिके लिये भी इन्होंने यथेष्ट दान दिया था।

ये केवल व्यवसायी ही नहीं थे; बल्कि इन्हें संगीत और साहित्यसे भी बहुत प्रेम था।

१३—ग्राहकोंको सूचना

नीचे लिखे नम्बरोंके ग्राहकोंका चन्दा इस, जून अंकके साथ समाप्त हो जाता है। इन सज्जनोंसे [illegible] कि, आगामी वर्षका चन्दा ५) ७० मनी आर्डरसे [illegible] दया दिखावें; क्योंकि वी० पी० भेजनेसे व्यर्थ ही [illegible] खर्च पड़ेगा। यदि ५ जुलाईतक इन सज्जनोंके रुपये [illegible] कार्यालयमें नहीं पहुँचे, तो जुलाईका अंक ५।) [illegible] चार आनेकी वी० पी० से भेजा जायगा। हमें पूर्ण [illegible] है कि, वे वी० पी० छुड़ाकर हिन्दीकी उन्नतिमें [illegible] करेंगे। हाँ, जो सज्जन वी० पी० न छुड़ाना [illegible] कृपा कर हमें अवश्य सूचना देनेका कष्ट करें, ताकि [illegible] पी० भेजकर व्यर्थ हानि न उठावें।

ग्राहकोंके नम्बर—

४८८६	५१४७	५१८३	[illegible]
५१०५	५१४८	५१८४	[illegible]
५११२	५१४९	५१८६	[illegible]
५११४	५१५०	५१८७	[illegible]
५११५	५१५३	५१८८	[illegible]
५११६	५१५५	५१८९	[illegible]
५१२०	५१५७	५१९३	[illegible]
५१२३	५१५८	५१९६	[illegible]
५१२७	५१५९	५१९७	[illegible]
५१३५	७१६१	५१९८	[illegible]
५१३७	५१६२	५१९९	[illegible]
५१३८	५१६३	५२०१	[illegible]
५१३९	५१६४	५२०५	[illegible]
५१४०	५१६५	५२०६	[illegible]
५१४१	५१६६	५२०७	[illegible]
५१४२	५१७०	५२०८	[illegible]
५१४३	५१७४	५२०९	[illegible]
५१४४	५१७७	५२१०	[illegible]
५१४५	५१७८	५२११	[illegible]
५१४६	५१८१	५२१३	[illegible]
		५३६५	

लेख-मालिका

चित्र-सूची

नटीका पूजन

मिथिला प्रेस

गङ्गा

प्रवाह २, तरंग ७, पूर्ण तरंग १९

आषाढ़, संवत् १९८९; जुलाई, सन् १९३२
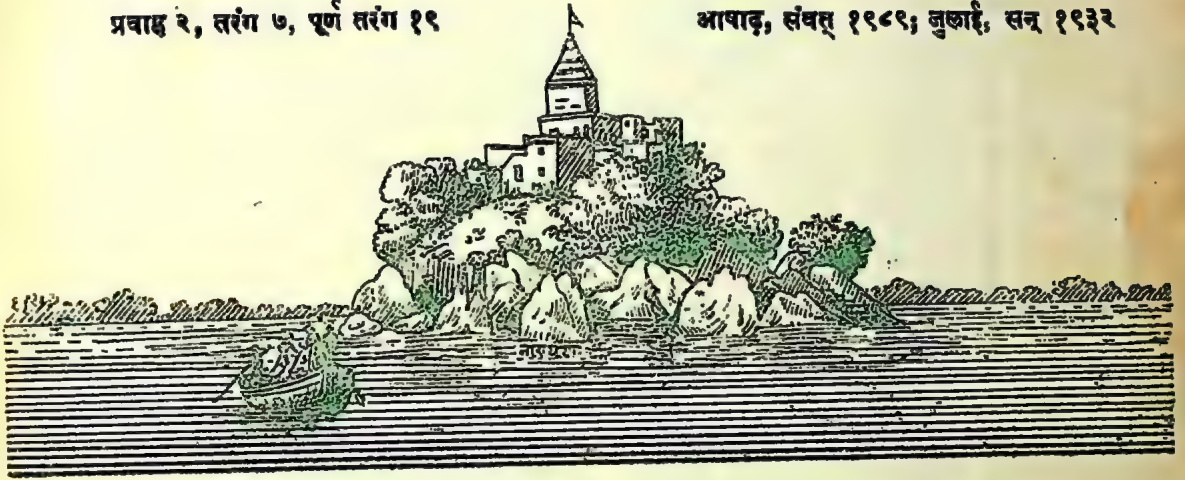
दुखियाकी वाणी

हँसते हो तो हँसो, अरे इन, अश्रु-कणोंपर हँस लो !
हँसा गया मैं बहुत और जी जितना चाहे हँस लो !!
अरे, सता लो हाजिर हूँ निर्मोही, जितना बल हो !
रे निर्मम ! जितना चाहो, इस दुःख-रज्जुसे कस लो !!

× × × × ×

त्यक्त, तिरस्कृत, दीन जनोंकी सुनता कौन पुकार ?
रे मन ! शान्त, धैर्य्य धर जगमें रोना है बेकार !!

बा० यमुनाप्रसाद चौधरी, 'नीरज' बी० ए०, बी० एल०

वैदिक सम्प्रदाय और दार्शनिक विचार : प० हरिसत्य भट्टाचार्य एम० ए०, बी० एल०

प्रायः यह सर्वसम्मत बात है कि, भारतमें उच्च-से-उच्च दार्शनिक तत्त्व एवं अत्यन्त प्राचीन धार्मिक क्रियाएं साथ-साथ चल सकती हैं। ये दोनों, दो असमान शक्तियोंकी तरह, एक दूसरेके विपरीत मार्गका अवलम्बन नहीं करतीं; बल्कि दोनोंका गतिमें सामञ्जस्य स्थापित है। प्राचीन यूनानमें ठीक इसके विपरीत बात थी। वहाँ प्लेटो, अरिस्टा-टल एवं अन्य पीछेके विद्वानोंके मतके अनुसार मनुष्यके लिये विचारमय जीवन ही सर्वश्रेष्ठ जीवन है। ये सिद्धान्त यूनानी धर्मके प्रचलित लौकिक व्यवहारोंसे स्पष्ट ही भिन्न थे। स्टोइसिज्म-जेनो-वाद (सुख-दुःखसे उदासीनता) एवं उसी प्रकारके अन्य सिद्धान्त, जिन्हें यूनानसे रोमवालोंने ग्रहण किया था, रोमन लोगोंके धार्मिक-कर्म-काण्डसे मेल न खा सके। ग्रीक और रोमन धार्मिक व्यवहारों एवं धार्मिक विचारोंका यह अगम्य भेद यह प्रमाणित करता है कि, उनके धार्मिक व्यवहार यदि बिल्कुल असत्य नहीं थे, तो कम-से-कम निरर्थक और अस्थायी तो जरूर थे। बढ़ते हुए खृष्टान धर्मके वेगके सम्मुख ग्रीक और रोमन धर्मोंके बह जानेके कारणोंमेंसे एक यह भी कारण था। भारतके आगे भी यह जटिल प्रश्न हल करनेको था और उसने बड़ी खूबीसे उसे हल किया। यहाँके धार्मिक तत्त्वों, धार्मिक व्यवहारों और क्रियाओंमें पूर्ण सामञ्जस्य है; और, दोनोंका ही अस्तित्व अक्षुण्ण है।

मध्यकालीन यूरोपमें दार्शनिक विचारको धार्मिक आचार-व्यवहारोंका गुलाम बनाकर दोनोंमें साम्य स्थापित किया गया था। अथवा, यों कहें कि, विचारका काम इतने ही तकमें ससीम था कि, मठोंके निरर्थक नियमोंकी उपयोगि-ताको साबित करे। पर, भारतके साथ यह बात नहीं। यह सत्य है कि, पूर्व मीमांसा-शास्त्रका उद्देश्य धर्म-ग्रन्थोंकी प्रधानता और अधिकारकी रक्षा करना और विधि तथा निषेधकी प्रयोजनीयताको प्रमाणित करना है; पर भारतीय विचारधाराके विकासका मार्ग केवल मीमांसा ही नहीं। उसके सिवाय उपनिषदें भी थीं, जिनके द्वारा भारतीय तर्क-विचार-धारा स्वतंत्र और पूर्णरूपसे प्रस्फुटित होती थी और जिनके द्वारा उस विवेक-बुद्धिका प्रकाश होता है, जो अमर है। अतएव यह स्पष्ट रीतिसे प्रमाणित होता है कि, प्राचीन भारतमें विवेक-बुद्धि कभी भी धार्मिक विश्वासके अनुगत न थी और न वह थी उसकी पार्श्व सीमा; परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि, तर्क-बुद्धि और धर्मकी एकताका यही अर्थ है कि, धर्माचार केवल विवेक-बुद्धिका स्थूल रूप था। उदाहरणार्थ यह नहीं कहा जा सकता कि, वेदका सत्यार्थ यह है कि, देवतागण केवल मात्र आध्यात्मिक या भौतिक जगत्के आध्यात्मिक या भौतिक सिद्धान्तोंके स्वरूप हैं। वेदमें निःसन्देह रूपकालंकार है। ऊँचे दरजेके विचारक वैदिक देवताओं और कथाओंको उनके शाब्दिक अर्थमें नहीं लेते थे, वरन् उनको एक विभिन्न रहस्यमय अर्थमें ग्रहण करते थे।

किन्तु इसका यह अभिप्राय लगाना कि, वैदिक धर्म जिस प्रकार व्यवहारमें लाया जाता था, वास्तवमें वह भौतिक एवं आध्यात्मिक नियमों और सिद्धान्तोंका स्थूल स्वरूप था, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार काम्टे Comte का मत है—हमारे विचारमें ठीक नहीं है। यहाँ वेदके उन अनेक विवरणों और कर्म-काण्डोंका उल्लेख करना आवश्यक है, जिनको तार्किक-बुद्धि द्वारा समर्थन नहीं कर सकते। कोई कह सकता है कि, यदि भारतीय विवेक-बुद्धि बिल्कुल स्वतंत्र रूपसे अनन्तकी ओर प्रधावित होती है और धर्मके कुछ ऐसे अंश हैं, जिनका समर्थन तर्कसे नहीं किया जा सकता, तब दोनोंमें सामञ्जस्य कहाँ रहा? बल्कि एक दूसरेसे उदासीन अथवा घोर विरोध भावमें रहे। ...

कथनमें कुछ बल अवश्य है। हम पहले ही कह चुके हैं कि, प्राचीन ग्रीस और रोममें दार्शनिक विचार और लोकधर्ममें कोई स्वभाव ही सामञ्जस्यसे नहीं रहा। यदि वहाँ दार्शनिक विचार एवं लोकधर्ममें खुल्लमखुल्ला आक्षेपोंका आदान-प्रदान नहीं रहा अथवा रक्तपात और अत्याचार एक दूसरेके नामपर नहीं किया गया, तो इसका कारण केवल यह था कि, वहाँकी दार्शनिक जनता एक दूसरेसे उदासीन थी! तथापि जब दार्शनिक विचार-प्रणालीकी प्रधानता बढ़ी, तब जनताने सुकरातको "देशके युवकोंका बिगाड़नेवाला" कहकर मार डाला! इसी कारण, हमारे विचारसे, "संसारके प्रकाश"का क्रौसपर बलिदान हुआ! यह बात किसीसे छिपी नहीं है कि, यूरोपमें मध्ययुगके उत्तरार्द्ध में, तार्किक विचार-प्रणाली जब चर्चके द्वारा जबरन दबाई जाने लगी, तब अत्याचार और असंख्य उत्पातोंकी भयंकरतासे पृथ्वी काँप उठी। किन्तु यदि इन अतीत कालोंमें धर्मने तलवार और गोला-बारूदके द्वारा स्वतंत्र विचारको कुचलना चाहा, तो आधुनिक भौतिकवादियों और स्वतंत्र विचारकोंकी रायमें लोकधर्म कूड़ा-करकटसे भी बदतर है और मानव जातिके उत्थानके लिये इसका जितना शीघ्र हो सके, नाश किया जाय। इस प्रकार मानव-समाजके इतिहाससे पता चलता है कि, जब शुद्ध तार्किक विचार और लोक-धर्म एक दूसरेसे बिलकुल स्वतंत्र हो जाते हैं, तब एक दूसरेके विरोधी हो जाते हैं अथवा एक दूसरेके प्रति उदासीनता प्रदर्शित करते हैं। तो भी, जैसा हम देख चुके हैं, भारतमें तर्क-विचार बिलकुल अबाध थे और वैदिक धर्म भी काम्टेके अनुयायियोंके धर्मकी तरह मानव-विचारकी कठपुतली नहीं था। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि, यदि प्राचीन भारतमें धर्मके नामपर अमानुषिक अत्याचार नहीं किये गये अथवा धर्मके प्रति दार्शनिकोंका घोर विरोध भाव नहीं था (चार्वाक प्रभृति नास्तिकोंकी संख्या और प्रभाव बहुत नगण्य था) और यदि एक दूसरेके प्रति आदर और श्रद्धाका भाव था, तो अवश्य ही इन दोनोंके बीच कोई सच्चा और अभेद्य सम्बन्ध और सामञ्जस्य था। यह सामञ्जस्य कैसे स्थापित किया गया? यही प्रश्न है।

इस प्रकरणमें यह बता देना आवश्यक है कि, भारतमें धार्मिक कर्मकाण्ड ज्ञानसे भयभीत नहीं होता था। बल्कि यह स्पष्ट रूपसे घोषित है कि, धार्मिक कृत्योंका मूल्य तब और भी अधिक बढ़ जाता है, जब वे शुद्ध ज्ञानसे प्रेरित होते हैं। ज्ञान-विहीन धार्मिक कृत्योंकी निन्दा, तामसी और राजसी कहकर, की गयी है। वास्तवमें वेद जो कर्मकाण्डका भाण्डार है, उसका अर्थ ही ज्ञान है और उपनिषदें, जिनमें उच्चतम दार्शनिक विचारोंका समावेश हैं, भी वेदके अंग हैं। धार्मिक आचरणोंके इस प्रकार ज्ञानका आदर करना भारतीय धर्मकी विशेषता है। दूसरे-दूसरे देशोंमें धर्मको बराबर तार्किकोंका भय बना रहता है और वह खुल्लमखुल्ला स्वतंत्र विचारको दबानेकी चेष्टा करता रहता है; क्योंकि वह उनकी अनवरत तीव्र आलोचनासे बचना चाहता है। यदि भारतमें धर्मने विवेकमय विचार-प्रणालीका आदर किया है, तो उसने भी धर्मके प्रति वही भाव प्रदर्शित किया है। किसी भी भारतीय शास्त्रने वैदिक कर्मोंकी उपयोगिता अस्वीकार नहीं की है। यहाँतक कि, न्यायशास्त्र भी, जिसमें तर्ककी प्रधानता है, वेदोंकी विशेषताको स्वीकार करता है और स्पष्ट शब्दोंमें कहता है कि, वैदिक कर्मोंका उचित फल अवश्य मिलेगा। उपनिषदें भी, जिनका उद्देश्य उच्चतम सत्यका विवेचन करना है, वैदिक क्रियाओंकी उपयोगिताको स्पष्टतया स्वीकार करती हैं। यह भी विश्वास करनेका कारण है कि, आदिम अवस्थामें बौद्ध धर्मने भी वैदिक क्रियाओंसे छेड़-छाड़ नहीं किया था। दूसरे-दूसरे देशोंमें, ठीक इसके विपरीत, तार्किक विचार खुल्लमखुल्ला या छिपे हुए, प्रचलित धर्मके प्रति घृणा प्रकट करता रहा है और इसीलिये जब कभी विचारको प्रधानताका आभास मिला, तभी धर्मने उसके विरुद्ध तैयारी आरम्भ कर दी। यहाँ यह पूछा जा सकता है कि, क्या उपनिषदें वैदिक कर्मोंके प्रति बगावत नहीं करती हैं और क्या वे वैदिक कृत्योंका स्पष्ट शब्दोंमें विरोध

नहीं करतीं ? इसका उत्तर यह है कि, वे वैदिक कृत्योंकी आलोचना अवश्य करती हैं; पर उस प्रकार नहीं, जिस प्रकार और-और देशोंमें तर्क-विचार लौकिक धर्मका किया करते हैं। और देशोंमें तार्किक विचारने प्रचलित धार्मिक आचार-व्यवहारोंको त्रुटि दिखानेमें तत्परता दिखायी; क्योंकि उसकी सत्यासत्य-विवेकिनी बुद्धिके आगे वे असत्य, निरर्थक और बहुत ही अनुपयोगी ठहरे; किन्तु भारतमें, जैसा हम पहले कह चुके हैं, उपनिषदोंने वैदिक कृत्योंकी उपयोगिता स्वीकार कर ली है। भारत तथा अन्य देशोंके तार्किक विचारोंमें यही अन्तर है। उपनिषदोंने वैदिक कर्मोंकी आलोचना इसलिये नहीं की है कि, वह उन्हें मिथ्या या व्यर्थ समझती हैं; बल्कि इसलिये आलोचना की है कि, उनके खयालमें जिस अर्थमें लोग वैदिक कर्मोंको करते थे, वह अर्थ-ज्ञान उच्चतम सत्य, परम सत्य, उस सत्यका भी सत्य जिसकी ओर पहुँचानेमें असमर्थ वे असमर्थ हैं। यही बात पूर्वकालिक बौद्धोंके विषयमें भी कही जा सकती है। जन्मकालके समय बौद्ध धर्मने वेदोंके कर्मकाण्डके प्रतिकूल जो आवाज उठायी थी, वह इसलिये नहीं कि, वैदिक कर्म मिथ्या है; बल्कि इसलिये कि, उनके द्वारा परिनिर्वाणकी प्राप्ति नहीं हो रही थी। इसके विपरीत जैन-धर्म आरम्भसे ही सनातन वेदसे विरुद्ध था; क्योंकि वैदिक कर्मकाण्ड और अहिंसामें छत्तीसका सम्बन्ध है। पीछे बौद्ध मतमें, जब जैनियोंका यह अहिंसावाद घुस गया, तब बौद्धमतने भी वैदिक कर्मकाण्डको बिल्कुल असत्य कहकर विरोध किया।

यहाँ यह जान लेना अत्यन्त आवश्यक है कि, ऊपर कहे अनुसार यद्यपि उपनिषदोंके गूढ़ उच्चतम तत्त्व और वैदिक कर्मकाण्डमें आकाश-जमीनका अन्तर है, तथापि यह अन्तर, यह असामञ्जस्य, अन्तमें मिट गया है और इस खूबीसे मिटा है कि, अन्य देशोंके दार्शनिकोंमें वह खूबी खोजे भी नहीं मिलती। भारतके दार्शनिकोंने विचार कर निश्चय किया है कि, इस संसारमें जीवन, दर असलमें, दुःखमय है और इसलिये यह उचित है कि, संसारमें बार-बार जन्म लेनेके क्रमका अन्त कर दिया जाय। इन दोनों बातोंमें भारतके सब दार्शनिक मतोंके लोग सहमत हैं, यद्यपि और-और बातोंमें उनमें आपसमें मतभेद हैं। अब, चूँकि, संसार-में अस्तित्व, दर असलमें, दुःखमय है; इसलिये उप-निषदोंके मतके माननेवाले दार्शनिकों एवं उनके अनुगमन करनेवाले षट् शास्त्रोंके माननेवाले दार्शनिकों की सम्मतिमें, गीताके अनुसार, "उसी प्रकार सभी कर्म दोषमय हैं, जिस प्रकार अग्निके साथ सदा धूम्र है।" अतः यह सिद्ध हुआ कि, कोई भी कर्म कितना ही पवित्र और नैतिक क्यों न हो, वह मनुष्यको अन्तिम ध्येयतक नहीं पहुँचा सकता। दूसरे शब्दोंमें, मुक्ति-प्राप्तिके लिये संसारमें बिल्कुल कर्मोंको त्यागना पड़ेगा। साथ ही यह भी मानी हुई बात है कि, कर्मोंका बिल्कुल त्याग भी असम्भव है। जैसा कि, गीताकार कहते हैं—"देह धारण भी उसके लिये असम्भव है, जिसने बिल्कुल कर्मोंका त्याग कर दिया।" "बिल्कुल कर्मोंका त्याग असम्भव है" तथा "मुक्ति-प्राप्तिके लिये बिल्कुल कर्मोंका त्याग अवश्यम्भावी है"—इन दो प्रत्यक्ष विरोधी भावोंके मध्य सामञ्जस्य स्थापित करनेका कठिन प्रश्न भारतीय दार्शनिकोंके आगे उपस्थित था। उन्होंने इसका ऐसा सामञ्जस्य किया कि, जिनका बिल्कुल त्याग असम्भव है, कर्मोंको जरूर करना चाहिये, परन्तु वे कर्म निष्काम होने चाहिये-यानी उन कर्मोंके फल-प्राप्तिकी कामना अथवा उनके प्रति मोह न रखना चाहिये। दूसरे शब्दोंमें, उनका सिद्धान्त था कि, कर्म कर्तव्य समझकर करना चाहिये, उनके फलको उपभोग करनेकी इच्छासे नहीं। उनके मतानुसार ये कर्म, जो बिल्कुल निष्काम भावसे किये जाते हैं, वास्तवमें कर्म नहीं हैं और मोक्ष-प्राप्तिके मार्गमें अड़चन नहीं होते।

यही सिद्धान्त, जिसे हम संन्यास-धर्म कह सकते हैं, हमें बताता है कि, किस खूबीके साथ भारतमें दार्शनिक विचार और धार्मिक कृत्योंके बीच सामञ्जस्य स्थापित किया गया है। भारतीय दार्शनिकोंके विचारानुसार कोई भी क

मोक्ष-प्राप्ति करानेमें स्वयं समर्थ नहीं है। साथ ही उन्होंने देखा कि, धार्मिक कर्मोंका बिल्कुल बहिष्कार असम्भव ही नहीं है, बल्कि उनके द्वारा ही 'मोक्षके लिये बिल्कुल कर्म त्याग' के सिद्धान्तका व्यावहारिक प्रवर्त्तन सुगमता-पूर्वक किया जा सकता है। इसीलिये वैदिक कर्मोंके प्रति उनकी धारणा यह थी—"वैदिक कर्म मिथ्या नहीं हैं; वे गुणकारी हैं और वे उन्हें निश्चित फल देते हैं, जो उन्हें इच्छित हैं; साथ ही, वैदिक कर्म यदि फलप्राप्तिकी लालसासे किये जायं, तो वे मोक्ष प्राप्त करानेमें न केवल असमर्थ हैं, बल्कि बाधक भी हैं।" तो भी मोक्षप्राप्तिके इच्छुकोंको वैदिक कर्मोंका त्याग करना जरूरी नहीं है; उन्हें वे कर्म करने चाहिये। किन्तु कठोर कर्तव्यके खयालसे, बिल्कुल समर्पण भावसे; और, सम्पूर्ण वैराग्य भावसे। दार्शनिक विचार और वैदिक कर्म-काण्डके बीचका यह सामञ्जस्य भारतमें प्रतिदिन उन धार्मिक पुरुषोंके धर्मकार्योंमें प्रत्यक्ष देख पड़ता है, जो उन कर्मोंको बिल्कुल शास्त्रके अनुसार करता है, ठीक उस मनुष्यकी भाँति जो यद्यपि कर्मोंको करते हुए उनकी फल-प्राप्तिकी आशा करता हुआ जान पड़ता है; पर जो प्रत्येक कर्मके अन्तमें कहता है "इस कर्मका बिल्कुल फल भगवान् श्रीकृष्णको अर्पित है।'

यह कहा जा सकता है कि, दार्शनिक विचार और धार्मिक कर्मोंमें यह सामञ्जस्य स्थापित करके भारतने अपने ज्ञानी पुरुष और सर्वसाधारण पुरुषमें एकता स्थापित कर दी है। केवल सिद्धान्तमें ही नहीं; बल्कि कार्यमें भी।

निस्सन्देह भारतीय धार्मिक त्यागी पुरुष जंगलमें, सर्व-साधारणसे बिल्कुल अलग, रहते थे। लेकिन वनवासका जीवन ही सत्पुरुषोंका एक मात्र जीवन नहीं था। एक गृहस्थके जीवनकी भी बड़ी महिमा रही है और विदेह जनक तथा उन्हींकी तरह और पुरुषरत्न, जो गार्हस्थ्य जीवन बिताते थे, ज्ञानी पुरुषोंके भी गुरु थे। एक ही प्रकारके शास्त्रीय धार्मिक कर्म सब लोगोंके लिये निर्धारित किये गये थे; अतः बुद्धिमान् ज्ञानी पुरुष भी उन्हीं सब धार्मिक कर्मोंका सम्पादन करते थे, जिन्हें अनपढ़ साधारण मनुष्य करते थे। सिर्फ उनके भावपर भारतीय मनुष्योंकी दार्शनिक एवं जनताकी एकता स्थापित की गयी थी।

धार्मिक कार्योंकी इस समानतापर बौद्ध और जैन धर्म द्वारा गहरा धक्का पहुँचाया गया, जब उन्होंने वैदिक धर्मके विरुद्ध बगावतका झण्डा ऊँचा करके मठ-जीवनकी श्रेष्ठता घोषित की। अहिंसाका सिद्धान्त निस्सन्देह बौद्ध और जैन धर्मोंके भिक्षुओं और साधारण जनतामें एकता स्थापित करनेके लिये था, तथापि यह बात प्रत्यक्ष थी कि, मठका जीवन, भिक्षुओंका जीवन—गृहस्थके जीवनसे बहुत भिन्न था। एवं यद्यपि ये दोनों धर्म वैदिक धर्मसे अधिक उदार कहे जाते थे; तथापि बौद्ध और जैन धर्मने मनुष्योंके अन्दर, ज्ञानी पुरुषों यानी भिक्षुओंके एवं सर्वसाधारणके मध्य एक भेदकी दीवार खड़ी कर दी। यह भेद-भाव समयकी गतिके साथ-साथ बढ़ता ही गया; भिक्षुगण केवल विचार और चिन्तनमें ही लिप्त हो गये और सर्वसाधारण जनताने बुद्ध, तीर्थङ्करों, संतों एवं असंख्य देवताओं और उप-देवताओंकी पूजामें मन लगाया। यह भेद-भाव जैन धर्मकी अपेक्षा बौद्ध धर्ममें अधिक उल्लेखनीय था। बौद्ध धर्ममें भिक्षुगण दिन-प्रतिदिन अधिक विचार-मग्न रहने लगे और साधारण जनता बुद्धके बताये आदि बौद्ध धर्मके तत्त्वों और सिद्धान्तोंसे दूर भागती गयी और दार्शनिक-विचार जीवन और संसारी गृहस्थ-जीवनके बीच साम्य स्थापित करनेकी चेष्टा नहीं की गयी। परिणाम यह हुआ कि, वैदिक सम्प्रदायके पुनरुत्थानके साथ ही, जिसके द्वारा दार्शनिक एवं धार्मिक कर्ममय जीवनके बीच सामञ्जस्य स्थापित किया गया, बौद्ध धर्म इस देशसे बिल्कुल लुप्त हो गया। जैन धर्ममें ठीक इसके विपरीत, यद्यपि मठ-जीवनकी प्रशंसा की गयी; तथापि वह अहिंसाके सिद्धान्तपर अड़ा रहा और जैन भिक्षु और जैन गृहस्थके जीवनके नियमोंमें जो भेद था वह, दूसरे प्रकारका था यानी सिर्फ इतना ही था कि, कौन अहिंसा-धर्मका किस हदतक पालन करता है। इसीलिये जैन धर्मके विशुद्ध तार्किक विचारमय जीवन एवं व्यावहारिक धार्मिक जीवनमें एक प्रकारकी समता देख पड़ती है। शायद इसी कारण जैन धर्म अबतक टिका है, यद्यपि पूर्वका गौरव और उत्साह उसमें नहीं रहा।

अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी

स्वामी मङ्गलानन्द

स्वर्गवासी प्रिय गणेशजीकी जीवनी कई लोगोंने छपायी है; परन्तु फिर भी उनकी कुछ बातें एकदम अज्ञात हैं; इसीलिये लेख लिखा गया है।

पाठकोंके सुभीतेके लिये प्रथम ही मैं यह लिख देना उचित समझता हूँ कि, गणेशजी मेरी सगी बड़ी बहनके सुयोग्य पुत्र थे। इनके पूर्वज प्रयाग और कानपुरके बीचके फतेहपुर नामक नगरके निवासी थे, ग्वालियरके नहीं। इनके पितामहका नाम मुन्शी देवीप्रसाद था। गणेशजीके पिता श्रीयुत जयनारायण लालजीने ग्वालियर राज्यके शिक्षा-विभागमें स्कूल मास्टरीकी नौकरी की थी। वहाँ नौकरी-के सिवा उनका और कुछ सम्बन्ध न था। शादी-विवाह रिश्ता-नाता सब प्रयागसे ही था।

ग्वालियार जानेसे पूर्व गणेशजीके पिता (पाठक आगे "मास्टरजी" से उनका सम्बोधन समझें) फतेहपुर ज़िले-के तहसील कल्याणपुरके तहसीलदार मुन्शी प्रकाश लालजी के लड़कोंको पढ़ानेपर नियुक्त थे। मैं उन दिनों प्रयागमें पढ़ता था। दैवयोगसे मास्टरजी प्रयाग आये। मेरी पढ़ाई देखकर उन्होंने मुझे प्रेरित किया कि, यदि मैं कल्याणपुर जाऊँ, तो दो वर्षका कोर्स वे मुझको एक वर्ष में ही करा सकेंगे। मैं वहाँ चला गया। यह गणेशजीके जन्मसे दो वर्ष पूर्वकी बात है। मास्टरजीने उक्त तहसी-लदार साहबके पुत्र अम्बिकाप्रसादके साथ मुझको भी उस समयकी मिडिल क्लासकी परीक्षामें शरीक करा दिया था। सन् १८९० के मार्चमें परीक्षा दी, जिसमें मैं पास हो गया; किन्तु मेरा क्लास फेलो फेल हो गया—यद्यपि उसके लिये मास्टरजीने भारी परिश्रम किया था। मास्टरजी ने इसी कारण वहाँसे पृथक् होनेकी मनमें ठान ली। उनके एक चाचा ग्वालियार राज्यमें अच्छे ओहदेपर नियुक्त थे। उन्हींसे पत्र-व्यवहार करके वहाँ जाना ठीक कर लिया। यद्यपि उक्त तहसीलदार साहबने तहसीलदारीमें कोई सरकारी नौकरी दिलानेका वादा किया था और रजवाड़ेकी नौकरीसे गवर्नमेण्टकी नौकरीका मूल्य कहीं ज्यादा समझा जाता था और है; परन्तु मास्टरजी जैसे सत्ययुगी मनुष्यका हृदय भला यह कब मान सकता था? बस यही है वृतान्त गणेशजीके पिताके ग्वालियर गमन का।

मास्टरजी आजन्म पक्के सनातनधर्मी हिन्दू रहे। भोजनसे पूर्व दो पहरको स्नान करनेपर तथा सायं-काल ८ बजे रात्रिके लगभग वे सन्ध्योपासना किया करते थे; दुर्गापाठ तथा अन्य स्तोत्रोंका पाठ और जप आदि भी किया करते थे। शिवजीका शिवरात्रि-व्रत करते थे। कायस्थोंमें मांसाहारका भारी प्रचार है। जो कायस्थ मांस नहीं खाते, उनको ठट्टेमें लोग "भगत" कहा करते हैं। उक्त तहसीलदार साहब भी हम दोनोंको इसी शब्दसे हास्य किया करते थे। मास्टरजी बड़े सरल स्वभाव और सच्चे-सीधे धर्मात्मा थे। वे उस समय उस अत्यन्त अल्प आयमेंसे भी भूखे-दूखेको भी खिलाना आवश्यक कर्त्तव्य समझते थे। ऐसे धर्मात्मा पिता और ईश्वर-परायणा माताकी सन्तान होनेसे ही गणेशजीमें वे गुण आये, जो उन्हें "अमर शहीद" बनानेमें सफल हुए। "आत्मा वै जायते पुत्रः"—यह शास्त्रका वचन सोलहों आने ठीक है। मास्टजीके दूसरे पुत्र—गणेशजीके ज्येष्ठ भ्राता—में भी पैतृक गुण विद्यमान हैं। यद्यपि वे, शिवव्रत नारायणजी, गणेशजी के सदृश विख्यात व्यक्ति नहीं हैं; परन्तु उनके विचार अत्यन्त उन्नत हैं। गणेशजी कहा करते थे कि, "भाई साहबने घर-गृहस्थीका सारा जञ्जाल अपने मत्थे ओढ़ लिया और मुझको राष्ट्रीय सेवाके निमित्त स्वच्छन्द कर दिया।"

शिवव्रत लाल (जिनको हम लोग "शिव बाबा" कहते

सम्बोधन किया करते हैं) की स्त्रीका देहान्त हो गया था । एक बालक था । मास्टरजी "शिव बाबा" का दूसरा विवाह करानेकी तैयारीमें थे; परन्तु इन्होंने इनकार कर दिया । तब मास्टरजीका पत्र मेरे पास गया । मैं बम्बईमें था । मास्टरजीने लिखा था, "शिव बाबाको समझाकर लिख भेजिये कि, वह पुनर्विवाहसे इनकार न करें ।" हमने पत्र लिखा; परन्तु अन्तमें यहाँतक नौबत आ पड़ी कि, उलटे मास्टरजीको ही यह समझकर लिखना पड़ा कि, शिव बाबाका निर्णय ही प्रशंसनीय है। वे ठीक कहते हैं कि, निर्धनताकी गृहस्थोंमें परिवार बढ़ाना दुःखोंको मोल लेना है। केवल ३०) मासिक मिलते हैं। उसीमें माता, भ्राता आदि सभीका पोषण करना है। गणेशके परिवारका भी पालन-पोषण करना है । हाँ, जो एक पुत्र है, उसीको सुशिक्षित बनानेमें सारी शक्ति लगा देना दो-चार सन्तानोंको उत्पन्न करनेसे बेहतर है। सबको शिव बाबाकी बात ठीक जँची।

दैववशात् शिव बाबाका वह एकलौता पुत्र भी १२ वर्षका होकर परम धामको सिधार गया! शोक शान्त होते ही फिर वही पुराना प्रश्न दुहराया गया कि, अब तो जो एक मात्र सन्तान थी, वह भी न रह गयी, फिर क्यों नहीं पुनर्विवाह स्वीकार करते। शिव बाबाका स्पष्ट उत्तर था कि, 'गणेशकी सन्तानोंको ही पढ़ाने-लिखानेमें अपनी-शक्ति खर्च करना मेरा सर्वोत्तम कर्त्तव्य है ।'

इस समयतक गणेशजी भी राष्ट्रीय नेता बन चुके थे। सन्तानें भी कई उत्पन्न हो चुकी थीं । शिव बाबाने ठीक ही विचारा कि, वे तो बार-बार जेल जाने या आज बम्बई तो कल कलकत्ताके पर्यटनमें तल्लीन हैं; अगर मैं इन बाल-बच्चोंका भार न उठाऊँ, तो कैसे काम चलेगा। शिव बाबाको जो रेलवे सर्विससे इन दिनों ७०) मासिक मिलते हैं, सो सब गणेशजीके परिवारके पालनमें अर्पित होते हैं। हाँ, यह लिख देना भी आवश्यक है कि, शिव बाबा-को मेरे पिताने पहले प्रयागमें १९) मासिककी रेलवेकी नौकरी शायद १९०० ई०में लगवा दी थी । कुछ वर्षोंके पश्चात् इनकी तबदीली कानपुर हो गयी; इसलिये कानपुर इस परिवारका निवास-स्थान बन गया था और गणेशजी प्रयागके स्थानमें कानपुरके राजनीतिक नेता गिने जाते थे। शिव बाबा मेरी सङ्गतिसे प्रथम आर्यसमाजी बने थे फिर वेदान्त तथा श्रीस्वामी रामतीर्थ महाराजकी पुस्त-कोंके प्रेमी बन गये हैं।

मेरे पिताजी (गणेशजीके नाना) सन् १९०० में एक पुस्तक या वंशावली लिखकर छोड़ गये हैं। उन्होंने उसमें उस समयके ९ वर्षके बालक गणेशजीके बारेमें अपना अनुभव या भविष्य वाणी की है कि, 'यह बालक बड़ा होनहार होगा।' सन् १९०४ में उनका परलोक हो गया। यदि वे जीवित रहते, तो गणेशजीके जीवनमें अपनी भविष्य वाणीको सत्य होती देखकर अत्यन्त प्रसन्न होते।

मास्टरजी ग्वालियर राज्यके भेलसा-मुंगावली स्थानोंपर थे। मैं बम्बईसे प्रयाग आते-जाते मार्गमें कई बार वहाँ ठहरा था। तब गणेशजी पढ़ते थे। सन् १९०३ में महाराजा ग्वालियरने अपने राज्यमें बाहरसे जमींदारोंको लाकर मुफ्त जमीन लेकर बसती बसानेकी घोषणा की थी। एतदर्थ एक मोहकमा ही खोला गया था। उसका हेड क्वार्टर मुंगावली था। उसमें एक हेड क्लर्ककी आवश्यकता थी। इधर मैं सन् १९०१ में अफ्रीकाके उगाण्डा रेलवेकी नौकरी समाप्त करके वापस आया था। एक वर्ष भारतमें रहकर फिर अफ्रीकाको ही जानेकी तैयारीमें बम्बई पहुँचा था कि, मास्टरजीका पत्र मुझको मिला कि, 'अफ्रीका मत जाओ। यहाँ मुंगावलीमें हेड क्लर्कीको स्वीकार कर लो'। निदान मैं बम्बईसे वापस हुआ। उस समय एक वर्षतकमें मुंगावलीमें रहा था। गणेशजी १२ वर्षके विद्यार्थी थे। मेरे नाम अनेक उर्दू-हिन्दी-के समाचार-पत्र आते थे और मेरे लेख, उनमें, उन दिनों, खासकर "ग्वालियर राज्यकी मुफ्त जमीन" शीर्षकसे छपते थे। गणेशजीको यह पहला अवसर किसी समाचार-पत्रको पढ़नेका मिला था। अब गणेशजी मुझे समाचार-पत्र

पढ़ते देखते, तो धीरे-धीरे स्वयं भी पढ़ने लगते। मेरे नामके लेखोंको छपा देख-देखकर गणेशजी बड़े विस्मित होते और जब कोई नया अखबार आता, तो प्रथम उलट-पलट कर यही देखा करते कि, मेरे नामका कोई लेख तो नहीं छपा है! धीरे-धीरे उनकी ऐसी आदत हो गयी कि, मुंगावली पोस्ट आफिसमें डाक खोले जानेके समय, वहाँ जाकर डट जाते; मेरी डाक माँगकर समाचार-पत्रोंको खोलकर पढ़ते आते। अगर मेरे नामका लेख देख पाते, तो उछलते-कूदते आकर पुकारते—"मामा, आपका मजमून अमुक-पत्रमें छप गया है!" इस प्रकार एक ही वर्षमें बालक गणेशके अन्दर समाचार-पत्रोंको पढ़नेका अभ्यास घर कर गया। जब एण्ट्रेन्स पास करके गणेशजी प्रयागमें पढ़ने गये, तब "भारती भवन" मानों इनकी मनोवाञ्छित सम्पत्ति ही मिल गयी। मुंगावलीमें मेरे नामवाले लेखोंको जिस प्रेम, और श्रद्धाकी दृष्टिसे गणेशजी देखते थे, उससे यह भान होता था कि, इनके मनमें यह उत्साह और उमङ्ग हिलोरें मार रहा है कि, 'क्या कभी मैं भी लेख छपा सकूँगा!' किन्तु अभीतक गणेशजीको लेख लिखना नहीं आता था। निदान, शायद सन् १९०९की बात है कि, मैं कानपुरसे कलकत्ता जाने लगा तो गणेशजीने अपनी टूटी-फूटी और अशुद्धियोंसे भरी हिन्दीमें एक लेख तैयार करके मुझे दिया और कहा कि, "कलकत्तेमें अनेक हिन्दी समाचार-पत्र हैं। आप किसीमें इसको शुद्ध करके छपा दीजियेगा।" हमने उसको श्रीपराड़करजीके हवाले कर दिया था। गणेशजीके लेखक और सम्पादक बननेका यही मंगलाचरण है। सन् १९१९ में गणेशजीने मुझे एक पत्र भेजा था कि, "समाचार-पत्रोंके शौकका बीज मेरे अन्दर आपके ही द्वारा बोया गया था। न आपका मुंगावली निवास होता, न मुझको यह ज्ञान प्राप्त होता।" इत्यादि। किन्तु मैं समझता हूँ कि, तब नहीं तो कुछ समय पीछे "भारती भवन" आदिमें गणेशजीमें समाचार-पत्रोंका आकर्षण हो ही जाता। अस्तु।

उन दिनों मैं उर्दू समाचार-पत्रोंमें ही अधिकतर लेख लिखा करता था और पत्र-व्यवहार भी उसीमें किया करता था। एक बार एक पत्र गणेशजीने हिन्दीमें लिख भेजा; "मातृ-भाषा हिन्दीको ही अपनाना चाहिये। अंग्रेजी राजभाषा होने से, चालू रहेगी ही; पर उर्दूके बिना कोई हरज नहीं है। अतः मैं तो अब आपको उर्दूमें पत्र नहीं भेजूँगा और आप भी हिन्दीमें ही लिखा करें।" मैंने भी उर्दू लिखना, सिवाय विशेष अवस्थाओंके, त्याग दिया। जनताको ज्ञात ही है कि, जहाँ-कहीं मेरी बड़ी-बड़ी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, वे सब हिन्दीमें ही हैं। यदि गणेशजीकी ऐसी प्रेरणा न होती, तो मेरी कलमसे उर्दू पुस्तकें ही लिखी जातीं। इसके लिये मैं गणेशजीका आभारी हूँ।

ग्वालियर राज्यसे एण्ट्रेंस परीक्षा पास करके सन् १९०७में गणेशजी आगे पढ़नेकी अभिलाषासे प्रयाग पहुँचे थे। उनका मेरे पास सक्खर (सिन्ध) में पत्र पहुँचा कि, "पिताजी तो पढ़ाई बन्द करना चाहते हैं, परन्तु मैं कालेजमें पढ़ना चाहता हूँ। एक ट्यूशन का ठिकाना है। उससे कुछ मदद मिलेगी। कायस्थ कालेजमें फीस माफ हो जायगी। पर एफ० ए० के कोर्सकी पुस्तकें खरीदनी हैं। यह भारी सङ्कट है। क्या आप कुछ प्रबन्ध कर सकेंगे?" मैंने यथाशक्ति सहायता की। गणेशजी एफ० ए० में पढ़ने लगे। मुश्किलसे छः महीने पढ़ने पाये होंगे कि, इनके विद्याध्ययनपर वज्रपात हो गया। एक षड्यन्त्र रचा गया था, जिसका वर्णन उन्होंने करांचीमें पत्र द्वारा जो लिख भेजा था, उसका आशय यह था—

"मेरी पढ़ाई छूट गयी। कैसे छूटी, जरा सुनिये। पिताजी साहबके नामका कानपुरसे प्रयाग तार गया कि, पिताजी आये हैं। बीमार हैं। फौरन चले आओ। मैं कानपुर पहुँचा तो देखता हूँ कि, 'बीमार-वीमार' कुछ न थे, मुझे किसी भी प्रकार बुला लेनेका यह एक बहाना था। मुझसे पिताजीने कहा कि, "तुम्हारी शादी तै हो गयी है। लोग तिलक लेकर आये हैं। कल तिलक चढ़ानेकी साइत है। तिलक चढ़वा लो। तिलक न चढ़वाओगे और वे वापस जायँगे, तो

बड़ी बेइज्जती होगी । उसको न बरदाश्त कर सकनेके कारण मैं जहर खाकर मर जाऊँगा ।' पिताका ऐसा आग्रह देखकर मैं लाचार हो गया । तिलक चढ़ गया । शादी होनेवाली है । कालेज छूट गया । परमेश्वरकी मरजी । मैं तो कालेजके अन्तिम दरजेतक पूरा करनेवाला ही था ।"

यह है अद्भुत वृतान्त, गणेशजी जैसे विद्यार्थीके कालेजसे जबरदस्ती हटाये जानेका । मुझे यह घटना सुनकर जो भारी दुःख हुआ था, वह अकथनीय है । पत्र द्वारा मैंने मास्टर-जीको कुछ कम फटकार नहीं सुनायी । किन्तु उन्हींकी बात क्या है, हजारों-लाखों बाल-विवाह और दायज आदिके लालची हिन्दू माता-पिताओंने भारतकी भविष्य सन्तानोंका सत्यानाश कर दिया है । अरे बाल-विवाह-प्रथा ! कम्बखत, तू कब भारतका पीछा छोड़ेगी ! अस्तु । मास्टरजी इस फिक्रमें परे-शान थे कि, गणेशजीकी शादीमें काफी दहेज मिले । इस सत्यानाशी रिवाजने हिन्दू-गृहस्थोंको भारी मुसीबतमें डाल रखा है । मैंने मास्टरजीको इसका उपाय बतलाया था कि, कायस्थ कान्फेरेन्सके निर्णयानुसार कार्य करें; पर भला उनका लकीरका फकीरीवाला मस्तिष्क ऐसे सुधारकी बातको कब मानने लगा ? हाँ, गणेशजी अपनी कन्याके विवाहपर मेरे उस उपदेशको अमलमें लानेवाले थे । इतना ही नहीं, उन्होंने तो मुझसे यह भी कह रखा था कि, उप-जातिका झंझट तोड़कर कायस्थोंके १२ प्रकारोंमेंसे जिस-में भी अच्छा घर मिल सके, आप बतलाइयेगा । पर उनके असमय परलोक-गमनके कारण अब वह कार्य भी दूसरोंकी मरजीपर निर्भर हो गया है !

बातें तो बहुत हैं; पर मैं एक घटना और सुना कर इस लेखको समाप्त करूँगा ।

मैंने सन् १९०७में संन्यास ले लिया था; गणेशजी आदि-से पूर्ववत् सम्बन्ध जारी रखा; इस खयालसे कि, जब कि, संन्यासीका कर्तव्य समस्त संसारको बन्धुवत् मानना है, तब इन पूर्वके बन्धुओंको क्यों शत्रु समझा जाय ? मैं सन् १९०८ में जंजीबार अफ्रीका गया । सन् १९०९में वापस आया । बम्बईसे कलकत्ता जाना था । मार्गमें कानपुर तथा प्रयाग ठहरना तै किया ।

कानपुरमें उन दिनों गणेशजीका परिवार इनके एक चाचा स्व० लाला सम्पतिरायके साथ रहता था । चूँकि मैं संन्यासी हो चुका था, जात-पाँतवालोंकी समझमें धर्म-भ्रष्ट, पतित और "कुजात" बन चुका था; इसलिये उन्होंने स्थिर किया कि, चौकेसे बाहर—पत्तलपर—भोजन परसवा दिया जाय; परन्तु गणेशजीने (यद्यपि उस समय नवयुवक ही थे) यह न होने दिया । अपने भ्राता तथा माताको भी डाँट दिया कि, चाचा साहबकी बातपर कोई कान न दे । गणेशजीने मेरे खान-पानमें कुछ भी भेद-भाव न होने दिया, वरन् पूर्वकालसे अधिक श्रद्धा-भक्ति दिखायी ! अन्तसको जब ! गणेशजीके प्रभावसे उनके परिवारने परवाह न की, तब उन्होंने नौकरको सुझा दिया कि, "देख, ये बाबा जी समुद्र पारसे वापस आ रहे हैं । मुसलमानों, क्रिस्तानों, सभीका छूआ खा-पी आये हैं । ये जिन बरतनोंमें खायें पीयें, उनको तू मत माँजना; नहीं तो, हम तुझे निकाल देंगे ।" पर गणेशजीने ऐसा प्रबन्ध कराया कि, मुझे कुछ भी पता न लगा । उस नौकरके इनकार कर देनेके कारण मेरी जूठी थाली मेरी बड़ी बहनको माँजनी पड़ती थी । इस घटनाका वृतान्त कलकत्तेसे वापस आनेपर, चिरकालके पीछे, मैं सुन सका था ।

गणेशजी समय-समयपर मेरी आर्थिक सहायता भी करते थे ! सन् १९२९में मैं सिंगापुरकी यात्रामें पेनाङ्ग स्थान में, रोगी हो गया था । खर्चकी कमी थी । गणेशजीने तार मनी आर्डरसे १००) भेजकर मुझे सहायता दी थी । परमात्मा उनकी आत्माको मुक्ति प्रदान करें ।

भ्रम

पं० शशिनाथ चौधरी बी० ए०

[१]

"मैं भारी भ्रममें पड़ गया था"—हठात् चन्द्रकान्तके मुँहसे निकल पड़ा। "प्रत्येक मनुष्यके जीवनमें इस प्रकारका भ्रम होता है; इसके लिये पश्चात्तापकी आवश्यकता नहीं"—श्यामसुन्दरने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया।

चन्द्रकान्त—"इसमें पश्चात्तापकी बात नहीं है, श्यामसुन्दर। मैं तो मनोरमाको प्रेम करता हूँ और करता ही रहूँगा; क्योंकि मेरा प्रेम शुद्ध है। मैं काम-वासनाकी पूर्तिके लिये लालायित नहीं हूँ। मैं उसकी सुन्दरतासे आकृष्ट नहीं हुआ हूँ; क्योंकि तुम जानते हो कि, सावित्री उससे अधिक सुन्दर है। फिर भी, मोनोरमाकी बात ऐसी मीठी मालूम होती है कि, मैं उसे प्रेम किये विना रह नहीं सकता।"

श्यामसुन्दर—"चन्द्रकान्त, मैं मानता हूँ कि, तुम्हारा प्रेम शुद्ध है, तुम मनोरमाको बुरी दृष्टिसे नहीं देखते हो; परन्तु समाजका यश-अपयश भी कोई चीज है। इसलिये यदि तुम मनोरमाका प्रेम करना चाहते हो, तो करो; परन्तु सम्हलकर। क्या तुम्हें मालूम नहीं कि, गिरिजानन्दन आदि कितने ही व्यक्तियोंको पूरा शक हो गया है कि, तुम मनोरमाके साथ पत्र-व्यवहारादि करते हो!"

चन्द्रकान्त—"श्यामसुन्दर, गिरिजाका नाम तुम क्या ले रहे हो? वह तो अधम है। क्या उसकी गणना मनुष्योंमें ही होगी? रही बात उसके शककी। वह स्वयं, अपने दुराचरणके कारण, अपनी बहनके आँगनमें प्रवेश नहीं करने पाता है। यही कारण है कि, वह मनोरमाके प्रेमीको फूटी नजरसे भी नहीं देखना चाहता।"

श्यामसुन्दर—"सुनो, तुम मेरे मित्र हो। इसी हेतु तुम्हारी भलाईकी बात तुमसे कहे देता हूँ। तुम यह अच्छी तरह जानते हो कि, मैं अपने चलते तुम्हें गड्ढेमें गिरने न दूँगा। यदि तुमने अपने प्रेमकी बात, जब यह प्रेम मनोरमाके साथ प्रारम्भ हुआ था, मुझसे पहले ही कही होती, तो आज इतनी गड़बड़ी उपस्थित नहीं होती, परिस्थिति इतनी विपरीत नहीं हो जाती।"

चन्द्रकान्त—"श्यामसुन्दर, मैं तुम्हारी सदिच्छाके लिये अनेक धन्यवाद देता हूं। मुझे इसकी आशङ्का बिलकुल नहीं थी कि, परिस्थिति इस प्रकारका रूप धारण कर लेगी। मैं तो मनोरमाको पवित्रहृदया बालिका समझे हुआ था, बल्कि अब भी उसे वैसी ही समझ रहा हूँ। मेरा हृदय गवाही दे रहा है कि, इस अफवाहके फैलानेमें, मनोरमाका कोई दोष नहीं है। जरूर कोई तीसरा व्यक्ति, पर्देके भीतरसे, खेल रहा है।"

श्यामसुन्दर—"हो सकता है; परन्तु मनोरमापर इतना अधिक विश्वास नहीं करना चाहिये। 'स्त्रियश्च रित्रं पुरुषस्य भाग्यम्' कोई नहीं जानता।"

चन्द्रकान्त—"श्यामसुन्दर, मनोरमाके विरुद्ध एक शब्द भी न निकालो। मेरे हृदयपर इससे आघात पहुँचता है। क्षमा करो, मित्र!"

श्यामसुन्दर—"मैं नहीं समझता था कि, तुम मनोरमाको इतना अधिक प्यार करते हो, अन्यथा तुम्हारे हृदयपर चोट पहुँचानेवाली बात नहीं कहता।"

जबसे चन्द्रकान्त सुन्दरपुरमें आये हैं, श्यामसुन्दरसे अकारण मैत्री हो गयी है। दोनों ही एक दूसरेके हितैषी हैं। श्यामसुन्दर पूर्वमें ही चन्द्रकान्तसे सुन्दरपुरकी कुछ बातें कह चुके थे और चैतन्य होकर रहनेके लिये कह दिया था। कौन सत्पात्र है, कौन अपात्र, कौन घर कैसा है, कौन स्थान कैसा है, किसके साथ मिलना चाहिये, किससे

साथ नहीं आदि बातोंकी सूचना श्यामसुन्दरने पूर्वमें ही चन्द्रकान्तको दे दी थी, तो भी एक घटना अचानक घट पड़ी, जिसका खयाल चन्द्रकान्तको जरा भी नहीं था।

[२]

डाक्टर कृपालुसिंह सुन्दरपुरके रहनेवाले हैं। सुन्दरपुर एक साधारण गाँव है, जहाँ डक्टरोंकी अधिक आय नहीं हो सकती। इसी कारण कृपालु बाबू शेरगंजमें जाकर डाक्टरी कर रहे हैं। अपने साथ वह केवल एक नौकर और एक रसोई बनानेवाला ब्राह्मण रखते हैं। इनके परिवारमें इनकी स्त्री, दो लड़के, दो लड़कियाँ और एक विधवा बहन हैं। ये सब सुन्दरपुरमें रहते हैं। दो-तीन महीनेपर कृपालु बाबू घर आते और घरका प्रबन्ध कर पुनः शेरगंज चले जाते हैं।

डाक्टर कृपालु सिंहके दो भाई हैं। मुजफ्फरनगरमें एक वकालत करते हैं और दूसरे सुन्दरपुरमें एक अलग मकानमें दूकानदारीसे अपना निर्वाह करते हैं। वकील साहब प्रति सप्ताह तो नहीं, १५ दिनोंमें एक बार सुन्दरपुर आ जाते हैं और अपने भाई कृपालु सिंहके बाल-बच्चोंकी सुध लेते हैं। दूसरे भाई गाँवमें रहनेपर भी अन्यमनस्क रहते हैं। वकील साहबका नाम करतार सिंह और दूसरे भाईका नाम करम सिंह। करम सिंहको, जो सुन्दरपुरमें रहते हैं, कोई लड़का नहीं हुआ; इसलिये इन्होंने, कृपालु सिंहके साले गिरिजानन्दनको गोद ले लिया है।

डाक्टर कृपालु सिंहकी लड़की मनोरमा अभी १६ वर्षकी है। यदि डाक्टर साहबकी आर्थिक अवस्था सन्तोष-जनक रहती, तो मनोरमाकी शादी शायद दो वर्ष पूर्व ही हो जाती। द्रव्याभावके कारण ही मनोरमा अविवाहिता है; इसीलिये मनोरमाकी छोटी बहन तारा, जिसकी अवस्था १४ वर्ष की होगी, की भी शादी नहीं हुई है।

१२ वर्षकी अवस्थातक मनोरमा शुद्ध बालिकाके रूप में रही। इसके अनन्तर मन और शरीरमें स्वाभाविक परिवर्त्तन होने लगा। इसकी आँखें सुन्दर रूप देखनेको लालायित होने लगीं, सुन्दर शब्दोंको सुनकर वह प्रसन्न होने लगी, पुरुषको सशङ्कित होकर देखने लगी, स्त्रियाँ जब प्रेमकी बातें करतीं, तो वह अनजान-सी होकर प्रेम-मधुका पान करती। कामदेवकी कृपासे उसके शरीरके अङ्ग-प्रत्यङ्ग परिपुष्ट हो गये। आँखोंमें चञ्चलता आ गयी।

यों तो सौन्दर्य्य और प्रेम सबके हृदयमें रहते हैं; परन्तु किसी-किसी व्यक्तिके हृदयमें इनके लिये अधिक स्थान रहता है। मनोरमा सौन्दर्य्यकी ओर बहुत शीघ्र आकृष्ट हो जाती और प्रेम-पात्रको पाकर तुरत प्रेम करने लग जाती। मनोरमाकी माँ बहुत चतुर थी, मनोरमाकी चंचल चित्तवृत्तिको वह सशङ्कित होकर देखने लगी। मनोरमाको बाहर जानेको निषेध किया गया। बाजारसे मनोरमाकी छोटी बहन तारा आवश्यक चीजें खरीद लाती थी। पर मनोरमाकी माँ सर्वज्ञ नहीं थी। गिरिजानन्दनका आना-जाना जारी था। मनोरमाकी माँ, सुशीलाने, इसे सोचा भी नहीं था कि, गिरिजा जिसकी अवस्था लगभग १८ वर्षकी होगी, मनोरमासे प्रेम कर रहा है। एक दिन सुशीलाने गिरिजा और मनोरमाको बाहु-पाशमें आबद्ध देख लिया। सुशीला इसे सहन न कर सकी। गिरिजाको उसने साफ-साफ कह दिया कि, तुम मेरे आँगन आजसे फिर कभी नहीं आओ। गिरिजा और मनोरमाका प्रेम अङ्कुरित भी न हो पाया था। आज भी गिरिजा कृपालुसिंहकी विधवा बहनसे आकर बातें कर लेता है और मनोरमाको सजल नेत्रसे देख लेता है। परन्तु उसके हृदयकी प्यास नहीं बुझती।

मनोरमाका मुँह, उसके चेहरेका काट, उसकी आकृति आकर्षक न होनेपर भी उसका मधुर भाषण और दयालु स्वभाव सब किसीके मनको अपनी ओर बरबस खींच लेते थे। सुन्दरपुरके मनचले नवयुवकोंकी दृष्टि मनोरमापर पड़ी। उसके घरकी चारो ओर चंचल नवयुवक चक्कर लगाने लगे। मनोरमापर कड़ी नजर थी। हृदय रहते हुए भी मनोरमा किसीपर अपना प्रेम नहीं प्रकट कर सकी। इस कारण चिढ़कर कतिपय दुष्ट नवयुवक मनोरमाकी कलङ्क-कहानी, बना-बनाकर, प्रचारित करने लगे। मनोरमाको

लोग दुश्चरित्रा समझने लगे । इस जाल-साजोका पता बहुत कमको था ।

[२]

चन्द्रकान्त आयुर्वेदीय चिकित्सक थे । सुन्दरपुर धनी बस्ती है, यही सुनकर चन्द्रकान्तजी सुन्दरपुरमें आकर ठहर गये । जमींदारके यहाँ प्रवेश भी हो गया । एक गृहस्थने उन्हें अपने यहाँ ठहरनेके लिये जगह भी दे दी । वैद्यको खातिर सब करते ही हैं; इसलिये उन्हें मकानका किराया नहीं देना पड़ता था । पन्द्रह दिनोंके भीतर गाँववालोंको इनके आनेकी खबर मिल गयी । गाँवमें कोई दूसरा वैद्य न रहनेके कारण चन्द्रकान्तका सत्कार अधिक होने लगा ।

चन्द्रकान्त जिस मकानमें ठहरे हुए थे, वह डाक्टर कृपालु सिंहके मकानके पास ही था । बीचमें एक पगडण्डी थी, एक ओर डाक्टर साहबका मकान था और दूसरी ओर वैद्यजी रहने लगे । समीपमें रहनेके कारण चन्द्रकान्त वैद्य (जिनकी अवस्था लगभग ३० वर्षकी थी) का ध्यान मनोरमाकी ओर गया । मनोरमा भी चन्द्रकान्तको छिप-छिपकर जब कभी मौका मिलता तो देख लिया करती थी । संयोगवश, मनोरमाको ज्वर हो आया । चन्द्रकान्तको सुशीलाने बुला भेजा । वैद्यजी गये । सुशीलाने चन्द्रकान्तको कहला भेजा कि, मनोरमाकी दवा वह अच्छी तरह करें, उन्हें उचित पुरस्कार मिलेगा । सुशीलाने यह भी कहला भेजा कि, मनोरमाके पिता डाक्टरी करते हैं; उनके आनेपर दवाकी कीमत दे दी जायगी । चन्द्रकान्तने उत्तर दिया कि, डाक्टर और वैद्यके बीच लेन-देन उचित नहीं है । वह बिना मूल्य ही कीमती-से-कीमती दवा देंगे । मूल्यके लिये चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं । चन्द्रकान्तने मनोरमाकी नाड़ी-परीक्षा की, तो मालूम हुआ कि, उसे दूसरा ही ज्वर है ।

चन्द्रकान्तने चन्दनको घिसकर उसका लेप तैयार करने को कहा । उसमें उन्होंने एक दवा मिला दी । चन्द्रकान्तने कहा कि, इस लेपको मनोरमाके कपाल और वक्षःस्थलपर लगाया जाय । दिनमें तीन बार लेप लगाया गया । सन्ध्या समय ज्वर कम होने लगा । प्रातःकाल होते-होते मनोरमाके ज्वरका पता नहीं रहा । सुशीला चन्द्रकान्त प्रसन्न हुई । मनोरमा मन-ही-मन चन्द्रकान्तसे करने लगी ।

चन्द्रकान्त चंचल प्रकृतिके थे । जबसे उन्होंने मनोर को देखा, वह बेचैन रहने लगे । मनोरमाकी माँ पहले चन्द्रकान्तसे परदा करती थी; परन्तु धीरे-धीरे परदा ह लगा । जब सुशीला चन्द्रकान्तसे वार्तालाप करने लगती मनोरमा अपनी माँके पास बैठ जाती और चन्द्रकान्तको एक टक देखती रहती । चन्द्रकान्त बात करते देखते थे सुशीलाको ओर; परन्तु मन रहता था मनोरमा तरफ । चन्द्रकान्त मनोरमापर इतने मुग्ध हो गये सुन्दरपुरसे बाहरकी बुलाहटको वह धीरे-धीरे छोड़ने लगे खास सुन्दरपुरमें भी सर्व-साधारणके यहाँ नहीं जाते केवल जमींदारोंके घरपर कभी-कभी जाते थे; पर थे बहुत थोड़े समयतक ।

प्रेम छिपानेसे थोड़े ही छिपता है । चन्द्रका और मनोरमा एक दूसरेकी ओर आकृष्ट होने ल जब मनोरमाने समझा कि, चन्द्रकान्त मुझे प्रेम करते तब उनके भावको ताड़कर दूर रहने लगी । जब चन्द्रका सुशीलासे बात करते रहते, तब बिना किसी आवश्य कार्य्यके वह उनके समीप नहीं जाती । मनोरमाका चन्द्रकान्तके प्रति, कम नहीं हुआ था । मनोरमा प लिखी भी थी । वह यह नहीं चाहती थी कि, किसीको प्रेमका पता लगे; परन्तु चन्द्रकान्तपर इसका असर पड़ा । वह समझने लगे कि, मनोरमा मुझे चाहती है । उनका शोक-सागर उमड़ पड़ा । वह वि होकर कहने लगे—"यां चिन्तयामि सततं मयि सा विर

× × ×

चन्द्रकान्त प्रेमी थे, सौन्दर्य्योपासक थे । अधिक गुण उनमें यह था कि, वह कभी घबराते नहीं उन्होंने सोचा, हो सकता है मुझसे कोई भूल हो गयी

मैंने मनोरमाके हृदयपर आघात पहुँचाया हो, जिसकी सजा मुझे मिल रही हो। परन्तु जो कुछ भी हो, मैं तो मनोरमाका प्रेम करता ही रहूँगा; वह चाहे मुझसे कितनी ही दूर रहे।

सुन्दरपुरकी नवयुवक-मण्डलीका ध्यान चन्द्रकान्तपर पूर्णरूपसे था। चन्द्रकान्तका सुशीलाके साथ बात करना, मनोरमाका उनके समीप रहना, चन्द्रकान्तका अधिक समयतक मनोरमाके आँगनमें रहना, अपने घरपर नहीं जाना आदि बातोंका अर्थ नवयुवक भिन्न-भिन्न प्रकारसे लगाने लगे। नवयुवकोंने यह अफवाह खूब अच्छी तरह फैला दी कि, चन्द्रकान्तका अनुचित सम्बन्ध मनोरमाके साथ हो गया है। मनोरमाका मामा गिरिजा इस अफवाहको और भी अधिक जोरसे फैलाने लगा। यह अफवाह धीरे-धीरे पड़ोसकी स्त्रियों द्वारा सुशीलाके पासतक पहुँची। सुशीलाने चन्द्रकान्तको बुलाकर कह दिया कि, गाँवमें बुरी अफवाह फैल गयी है; इस हेतु यह उचित है कि, अब आप मेरे यहाँ आना-जाना बन्द कर दें। चन्द्रकान्तपर मानों वज्राघात हुआ।

× × × ×

चन्द्रकान्त बीमार हो गये। उनके बीमार होनेकी खबर गाँववालोंके कानमें पहुँच गयी। जो उनसे सहानुभूति रखते थे, सब उनको देखनेके लिये आने लगे। उन्हें आशा थी कि, इस बहाने भी, एक दिनके लिये, मनोरमासे भेंट हो जाय; परन्तु न तो मनोरमा आयी और न उसकी माँ सुशीला ही।

चन्द्रकान्तने एक पत्र मनोरमाको लिखा और उसे एक लड़केकी मार्फत मनोरमाके पास भेज दिया। उसमें केवल इतना ही था—

"मनोरमा,

मैं बीमार हूँ। मुझे यहाँ देखनेवाला कोई नहीं है। मैंने तुम्हारा उपकार किया है। मुझे आशा थी कि, मेरी बीमारीमें तुम सहायता पहुँचाओगी। परन्तु वह तो दूर रही, एक बार देखनेके लिये भी न आयी।

चन्द्रकान्त।"

चन्द्रकान्तका पत्र लेकर ज्यों ही वह लड़का मनोरमाके पास पहुँचा कि, वहाँ एक नवयुवक किसी कामके लिये मनोरमाके आँगनमें जा पहुँचा था, मनोरमा झटपट पत्रको छिपाने लगी। नवयुवककी आँख "चन्द्रकान्त" शब्दपर जा पड़ी। युवकके चले जानेपर मनोरमाने पत्रको फाड़ डाला।

उस युवकने मनोरमाकी माँके पास आकर चन्द्रकान्तके पत्रकी बात कही। सुशीला आगबबूला हो गयी। उसने मनोरमासे क्रोधपूर्वक कहा—"चन्द्रकान्त वैद्यने जो पत्र तुम्हें लिखा है, वह कहाँ है। शीघ्र दिखलाओ।" मनोरमा काठ हो गयी। काटो तो खून नहीं। उसने उत्तर दिया—"पत्रमें कुछ नहीं था, वैद्यजी बहुत बीमार हैं; उन्होंने लिखा था कि, मुझे देखने-सुननेवाला यहाँ कोई नहीं है। यदि तुम्हारी माँको फुर्सत हो, तो उसे भेज देना।" सुशीलाने डपटकर कहा—"तुम्हारी सब चाल मुझे मालूम है। मुझे पता लगा है कि, तुम दोनों बराबर पत्र-व्यवहार करते हो और मौका पाकर तुम दोनों मिलते भी हो। गिरजानन्दन, रामकुमार, शिवनन्दन, दुर्गा आदिसे सब बातें मुझे मालूम हुई हैं। यहाँतक कि, तुम्हारा लिखा हुआ एक पत्र भी मैंने स्वयं देखा है। लो, यह अपना पत्र"—यह कहकर उसने एक पत्र मनोरमाके सामने फेंक दिया। मनोरमाने पत्रको उठा लिया। एक-एक अक्षर गौरसे वह पढ़ती रही। पत्र यों था—

"प्यारे चन्द्रकान्त,

मैं तुमसे प्रेम करती हूँ, यह तुम जानते हो; परन्तु मैं सबके सामने इस लिये उपस्थित नहीं होती या तुमसे बात नहीं करती कि, लोग मुझे चरित्र-भ्रष्ट समझने लगेंगे। यदि तुम सचमुचमें मुझसे प्रेम करते हो, तो आधी रातके समय, मेरे घरके पीछे जो तालाब है, उसकी पश्चिम ओर भीटपर, आमके पेड़के नीचे, आकर मिलो। आज अमावसकी रात है, डरनेकी कोई बात नहीं।

मनोरमा"

मनोरमा इस पत्रको पढ़कर सन्न हो गयी। उसके हाथ थरथर काँपने लगे; कलेजेमें धड़कन पैदा हो गयी; आँखोंके सामने अँधेरा छा गया। अश्रुपात होने लगा। वह अपनी माँके चरणोंपर एका-एक गिरकर बेहोश हो गयी! जब होशमें आयी, तो मनोरमाने कहा—"माँ, यह पत्र मेरा लिखा नहीं है। यह जाली पत्र है। किसी दुष्टने मुझे कलंकित करनेके लिये इसे लिखा है। मेरी परीक्षा तुम जिस प्रकार चाहो, कर सकती हो। माँ, अपने भ्रमको दूर करो। मनोरमा सच्चरित्रा है, इसके साक्षी ईश्वर हैं।"

तरुसे

१
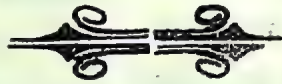
तुम्हारी चेतनाका रूप,
खींचता मुझे अनन्तकी ओर!
विशालतामें विलीन क्यों न हो—
बताओ चेतन विश्व विभोर!!

२

तुम्हें 'जड़' कह-कहकर यह विश्व,
तुम्हारे भोलेपनसे—आह!
साधता प्रतिदिन कितना स्वार्थ,
तुम्हारी उसको क्या परवाह!!

३

हृदयमें लेकर अगणित घाव,
विहँसते ही दिखते तुम मौन!
त्यागका ऐसा व्यापक रूप—
लखे फिर लौकिक मानस कौन!

४

चूमकर निर्मम-चेतन-चोट—
किया करते सेवा निष्काम!
ओटसे चोटोंको हँस रहे—
दयामय 'घट-घट बासी' राम!!

५

विश्व क्या थाह सकेगा, अहे!
क्षमाका गहरा पारावार!
डूबकर हो जायगा लुप्त—
आप ही रेणु-सा यह संसार!!

६

तुम्हींसे भक्ति, तुम्हींसे दया
अतिथि-स्वागतके शुचि उपदेश!
तुम्हींसे सहनशीलता लिखे—
तुम्हें 'जड़' कहनेवाला देश!!

—श्रीमद्भागवतप्रसाद वर्मा

क्वेटासे कराची

पं० दिगम्बरनाथ पाठक काव्यतीर्थ

ता० ६ सितम्बर १९३१ को रात कोई एक बजेका समय था। सब लोग मैदानमें सोये थे; परन्तु मैं घरमें ही सोया था। भूकम्प आया। नींद टूटी। बाहर आकर देखा, तो लोगोंमें त्राहि-त्राहि मची हुई है। मानों पृथिवी अब फटती है या तब। इस समयका करुण क्रन्दन हृदयद्रावी था। मैंने भी तुरत सूर्य्य निकलते ही, बिस्तर-बोरिया बाँधकर—१० बजेकी गाड़ीके लिये, स्टेशनपर, आ बैठा।

स्टेशनपर आया, तो मुझे वहाँ हरिद्वारका कुम्भसा मेला जान पड़ा। चार आने देनेपर एक पठान कुली टिकट लाया। राम-रामकर गाड़ीमें बैठा। कुशल यही थी कि, ठण्डी वेला थी।

अभिनव सुषमा देखनेके लिये प्रायः प्राणिमात्र लालायित रहता है। समुद्रों, जङ्गलों और पहाड़ोंके दर्शन साक्षात् प्रकृतिके सन्दर्शन हैं। इसलिये यात्रियोंको चाहिये कि, वे नये देशमें दिनकी गाड़ीमें ही यात्रा करें। ऐसा करनेसे नये मनुष्योंकी भाव-भाषा, वेश-भूषा आदिके दर्शन ज्ञानके द्वारा अनेक लाभ होते हैं। इसके ठीक विपरीत रातकी यात्रा है। पारसलकी तरह एकसे दूसरी जगह उतर जाइये। यह तो पर्दानशीन औरतोंकी यात्रा है। आजकी कष्टमयी यात्रामें एक यह लाभ हुआ कि, मैं अविराम दृष्टिसे निर्जन और निष्किञ्चन, बिलोचिस्तानके भूभागोंका दर्शन करता रहा। इरादा था कि, दिन छिपनेपर किसी शहरमें उतर पड़ूँगा; परन्तु एक तो प्रबल गर्मी, दूसरे चौबीस घण्टेमें एक ही गाड़ी रहनेके कारण मुझे भी उसीपर पारसल बनना पड़ा। ४ बजे प्रातः सक्कर उतरा। ३।=) आने रेल किराया खतम हुआ और "क्षीणे पुण्ये मृत्युलोकं विशन्ति"का अनुभव भी साथ ही हुआ।

सिन्धुके तटपर सक्कर नगर अवस्थित है। बन्दर रोडपर हृषीकेश नामक सुखद धर्म्मशालामें डेरा डाला। प्रातः ८—९ बजते-बजते गर्म्मीके मारे व्याकुल हो गया। एक तो इस प्रदेशमें यों ही गर्म्मी ज्यादा होती है, दूसरे मैं क्वेटेकी शीतल हवा, महीनों, खाकर उतरा था; इस कारण मैं तो मछलीकी तरह तड़पने लगा। गरीब आदमी यदि थोड़े दिन भी अमीर बनाकर रखा जाय, तो वह अमीरोंसे भी नाजुक हो जाता है। ईश्वर न करे कोई सुखसे दुःखमें आवे। दुःखसे सुखकी गोदमें बैठनेवालेसे बढ़कर भाग्यवान् कोई नहीं। वस्तुतः दुःखानुभवी ही सुखानुभवी होता है।

इन दिनों सिन्धुकी सामुद्रिक छटा देखने ही लायक थी। शाम ९ बजे साधुवेलाके श्रीमहन्तजीके पास पहुँचा। यहाँ ३—४ बार मैं प्रथम भी आ चुका था; इसलिये महाराज महन्तजी सुपरिचित थे। आप कहने लगे—"आप जान-बूझ कर भी क्यों पारमें ठहरे? सीधे यहाँ आना चाहिये था।" आपने तुरत ही अपना आदमी भेजकर सामान मँगवा लिया और अपने पासका एक सुन्दर कमरा ठहरने को दिया। चारो तरफ जल-प्रवाहके अन्दर सिन्धूदरस्थ एक छोटी-सी पहाड़ीपर साधुवेला नामक बड़ा ही भव्य स्थान बना हुआ है। सुलतानगंजमें जो गंगाके बीच जह्नु ऋषिका आश्रम है; कदाचित् उससे इसकी खूब तुलना हो सकती है।

गोहाटी (कामरूप), आसामके ब्रह्मपुत्रके अन्दर (नाम भूलता हूँ) पहाड़ोका मोहक छटा, श्रीनगर (कश्मीर)के सुनिर्म्मित भवन, उदयपुर (मेवाड़)के पिछोला महा-सरोवरमें जगमन्दिर, जगनिवास (बम्बई)का एलिफेण्टा (समुद्रमें है, इसको पाण्डुगुफा भी कहते हैं), सुलतानगञ्ज-

में जह्नु ऋषिका आश्रम और सक्करमें साधुबेला एवं कराचीका समुद्र-गर्भस्थ राम झरोखा—ये सब तारतम्य भेदसे एक ही हैं। इनका एकदा अवलोकन ही दर्शकको आजन्म सुखी रखता है।

एक दिन श्रीमान् महन्तजीके साथ एक यज्ञ-स्थानमें गया। यहाँ ग्रन्थसाहबका अखण्ड पाठ और श्रीमद्भागवत-सप्ताह-की पूर्णाहुति थी। कई एकके उपदेश हुए। महन्त जीकी कथा हुई। मैंने भी कुछ समय लिया, जिससे ऋषिकुलका थोड़ा प्रचार हुआ।

साधुबेला स्थानकी महत्ता उल्लेखनीय है। जलप्रवाहके बीच इस सुन्दर पहाड़ीके ऊपर लाखों रुपयोंके सुन्दर स्थान बने हुए हैं। मन्दिर, घाट, पुस्तकालय, गुरुद्वारा आदि-आदिके सङ्गमरमरके उत्तुङ्ग, नयनाभिराम स्थान दर्शनीय तो हैं ही, साथ ही नल, बिजलीका प्रबन्ध, बागोंकी रमणीयता इत्यादि ऐसे सुन्दर दृश्य हैं कि, यात्रियोंको देखते हुए कभी भी जी नहीं भरता है। वैरागियोंके त्रिपतिबालाजी, और वल्लभियोंका श्रीनाथजीकी तरह उदासी साधुओंका यह स्थान प्रधानतम है। इसके महन्त श्रीमान् हरिनामदासजी महाराज योग्य व्यक्ति हैं। आप सुचतुर, उदार और समयज्ञ पुरुष हैं। आपका एक प्रयास मुझे अच्छा नहीं लगा। वह यह कि, स्वामी ज्ञानानन्दजीकी शक्तिगीता आदि पुस्तकोंकी तरह आप भी अपनी मनगढ़न्त बातोंको ऋषि-प्रणीत कहकर प्रकाशित करते हैं! अभी हालमें ही एक "मुनिपरशुराम-सूत्र" आपने निकाला है, जो चिन्तनीय है। राम, कृष्ण, शिव, ब्रह्मा आदि सभीको आपने उदासी मतका साधु ठहराया है। उदस्त, उदासीन आदि जितने भी शब्द कहीं शास्त्रोंमें उपलब्ध होते हैं, उन्हें खींचकर अपनी ही तरफ झुकानेकी चेष्टा कर बैठे हैं। यह साम्प्रदायिक आकर्षण-विकर्षण अपने नामसे भले हों; परन्तु ऋषियोंके नामपर ऐसा होना नितान्त अनुचित है।

सिन्धमें लोग खूब भक्त हैं। अकेले सक्करमें ही अनेक ऐसे स्थल बने हुए हैं, जहाँ नियम-पूर्वक प्रतिदिन कथाएँ होती ही रहती हैं। बूढ़ामण्डल, युवकमण्डल, [illegible] आदि द्रष्टव्य हैं। इधरके लोग धर्मभीरु, श्रद्धालु और [illegible] होते हैं। ब्राह्मणोंकी कदर आज भी यहाँ सब प्रदेशोंसे [illegible] है। इनकी जैसी अटूट भक्ति साधुओंमें है, वैसी किसी प्रा[illegible] की नहीं। ये हैं तो सनातनी; किन्तु इनका प्रेम वेदों[illegible] कर ग्रन्थसाहेबमें दीख पड़ता है। शहरमें मन्दिरकी [illegible] गुरुद्वारा ही ज्यादा मिलेंगे। इधर बरसातमें [illegible] ही नहीं होती, और यदि होती है, तो बहुत [illegible] कम। लोग नदीकी पूजा खूब करते हैं। सिन्धु महान[illegible] कृपासे पानी नहीं पड़नेपर भी उपजकी कमी नहीं रहती।

सायङ्काल शहरमें घूमने और कुछ लोगोंसे मिलने [illegible] आया। बन्दर रोडपर पञ्चायत थी। नौ बजेतक [illegible] रातमें लोग इकट्ठे न हो सके, तब ऋषिकुलके लिये प्रा[illegible] की आशाको कतई छोड़कर कराची मेलका स्मरण [illegible] हुआ साधुबेलाकी ओर बढ़ा। पारसे बिस्तर लानेके [illegible] नावघाटपर आया, तो पौन घण्टेकी देर होनेपर [illegible] नाव न मिली। नैनीतालकी तरह पानीमें जगमाती [illegible] बिजलीका प्रतिबिम्ब देखता हुआ सिन्धु-तटपर बैठ गया। बड़ी देरके बाद नाव पार जानेके लिये मिली; किन्तु [illegible] पकड़नेकी उम्मीद जाती रही। प्रारब्धको कोसता हु[illegible] फिर उसी जगह बैठ गया। "न ययौ न तस्थौ" की [illegible] हो गयी। अन्तको जीमें आया कि, जब गाड़ी छूट ही [illegible] तब लौट चलूँ उसी पञ्चायतमें; कहीं लोग इकट्ठे ही हो[illegible] हों, तो रात शहरमें ही काट लूँगा। इतनेमें ताँगा भी मिल[illegible] पञ्चायतमें पहुँचनेपर २९) रुपयेकी प्राप्ति हुई। [illegible] कहा, इसी लिये गाड़ी छूटी थी। ठीक इसी तरहकी [illegible] यहीं, २० ई०में, हुई थी; परन्तु उस समय २[illegible] मिले थे। इस बार दुष्कालने खा लिया। तो भी मन प्रसन्न हुआ। क्योंकि ईश्वर जो करता है सो अच्छा [illegible] करता है।

१३—९—३१ को ४=) सक्करसे कराचीतकका [illegible] भाड़ा देकर गाड़ीमें बैठा और रोरीका प्रसिद्ध पुल [illegible]

हुआ १४ सितम्बरको प्रातः आठ बजे क्वेटा-कराची मेलसे कराची पहुँच गया।

आजसे प्रथम चार बार यहाँ और आ चुका था। डेढ़-डेढ़ दो-दो मासतक ठहरा था। अतः यहाँ नयी जगह ढूँढ़नेकी तकलीफ न हुई। बहुधा सुपरिचित ठाल्लमल बसरियामल-की धर्म्मशाला, खारादरमें डेरा डाला। इनमें बड़ा आराम रहता है। क्वेटासे आनेका हाल सुनकर लोग प्रश्न पूछने लगे, "कहिये क्वेटा गर्क तो नहीं हुआ?" मैंने कहा, "क्वेटा तो नहीं; परन्तु मच (एक छोटा कसबा) अवश्य भू-चालमें गर्क हुआ देखा। मचमें एक भी ऐसा घर नहीं था, जो भूकम्पमें खड़ा रहा हो।" प्रकृतिकी अनन्त शक्तिका पता मच बतला रहा था।

यहाँ मुझे महीनों ठहरकर लोगोंसे चन्दा माँगना था; इसलिये विचार हुआ कि, सनातनधर्म्म-सभामें प्रथम व्याख्यान दिया जाय, जिससे लोगोंमें प्रचार हो। अतः इसके प्रधान और मंत्रीसे मिला। पत्र प्रथम दे ही दिया था, परिचय भी पहलेका था ही। किन्तु ये कब हाथ आवें! कहने लगे—'आज कई वर्षोंसे देखा है, ऐसे धार्म्मिक व्याख्यान सुननेको पैसेवाले तो अब एक भी यहाँ नहीं आते। खोमचेवालोंके आनेसे ऋषिकुलका काम ही नहीं होनेका!' बात ठीक थी। काँग्रेसके सामने ये धार्म्मिक आन्दोलन कुछ नहीं हैं; परन्तु कुछ भाई-चारेकी बात भी थी। एक संस्थावाले दूसरे संस्थावालेके पास जावें, तो मेरा अनुभव है, वे कभी भी पैसेकी मदद दूसरेको नहीं दिला सकते। कारण खुदकी आमदनी मारी जानेका जो भय रहता है। अतः वे "ब्राह्मणो ब्राह्मणं दृष्ट्वा"को ही अधिकतर चरितार्थ करते हैं।

सेठ साहुकार सब पुराने परिचित थे ही, जिनसे मिलनेपर काम प्रयासमय होने लगा। सत्सङ्ग और कई एक जगहकी कमेटियोंमें भाषणसे ऋषिकुलका प्रचार भी हुआ, जिससे महीनोंतक इस व्यापारिक हाहाकारमें कराची ठहरनेका सौभाग्य फिर भी हासिल हो ही गया।

कराची समुद्र-तीरस्थ विशाल शहर है। बम्बई, कलकत्ता, मद्रासके बाद चौथा नम्बर इसीका है। नया शहर होनेसे अभी कुछ ही वर्षोंसे करोड़ों रुपये खचकर यहाँका सुन्दर बन्दरगाह तैयार किया गया है, जो सर्वथा द्रष्टव्य है। कयाड़ी, मनेरा, सरकारी बाग, भूतखाना (अजायबघर) और हवा-बन्दर—ये सब यहाँ अवश्य दर्शनीय हैं। लेख बड़ा होनेके भयसे इनकी विस्तृत चर्चा छोड़ता हुआ यहाँकी कुछ ही बातोंपर विहङ्गम दृष्टि डाल रहा हूँ।

कराची एक बड़ा व्यापारी शहर है। विदेशी कपड़ों और अन्यान्य वस्तुओंके आयात एवं यव, गेहूँ, रुई, अलसी आदि देशी वस्तुओंके निर्यातके लिये यह काफी प्रसिद्ध है। आज कल यहाँ विदेशी कपड़ेके बायकाटसे शहरमें हाहाकार मचा हुआ है। सैकड़ों वस्त्र-व्यवसायी, मारवाड़ी, पञ्जाबी आदि तो यहाँसे दिवाला निकालकर चले गये। जो बचे हैं, वे भी सिरपर हाथ धरे बैठे दिन गिन रहे हैं। व्यापारिक न्यूनताके कारण यहाँके ये उत्तुङ्ग, नयनाभिराम, चित्ताकर्षक प्रासाद भी सुन्दरी विधवाके मुखमण्डल जैसे श्रीहीन बने हुए हैं।

बन्दरगाहपर भी सन्नाटा दीख पड़ा। पहले हजारों कुली हल्ला करते, कामसे जहाँ व्यग्र दीख पड़ते थे, वहाँ कठिनाईसे सौ-पचास देखे जाते हैं। गेहूँ, चनोंकी बोरियाँ इस बन्दरगाहपर पहाड़ीसी दीखती थीं। लाखों मन गल्लेकी नङ्गी ढेरी पहाड़ीकी शकलमें देखी जाती थी। रुईका लगाव एक हिमालयका छोटा खण्ड होता था। वहाँ आज सन्नाटा छाया हुआ है, कराची शहरका निवास नये ढङ्गसे,बड़ा ही सुन्दर हुआ है और हो रहा है। "दिन दूना रात चौगुना"की कहावत यह शहर आज भी चरितार्थ कर रहा है। अभी इसी वर्ष हजारों बीघे मैदानमें (जहाँ काँग्रेसका अधिवेशन हुआ था) अब सरकारी आज्ञासे शहर बसता जा रहा है। मकान कोई सुन्दर नकशेके खिलाफ नहीं बना सकता। इसी तरह वरुण-

मन्दिरके पास खारादरके नजदीक मोलोंतक जहाँ समुद्र लहराता था, वहाँ आज पत्थरोंका बाँध डालकर बन्दरगाहसे करोड़ों मन मिट्टी भर दी है। मोलोंतकका यह सुन्दर मैदान, जो अभी-अभी भरा और भर रहा है, देखने लायक है। बम्बईकी तरह कराचोमें भी पारसी, गुजराती, कच्छो, मारवाड़ी, पञ्जाबी आदि व्यवसायियोंके अनेक दल हैं। सिन्धियोंका तो देश ही ठहरा। सिन्धी भी बड़े व्यापार-कुशल होते हैं। यदि मारवाड़ी देशभरमें फैले हैं, तो ये सिन्धी, जावा, सुमात्रा, जापान और सीलोन ही तक नहीं; बल्कि अमेरिकातक चले गये हैं। छुआछूत, खानपानमें ये बड़े आजाद होते हैं।

सिन्धका प्रदेश वैसा सुन्दर नहीं है, जैसा बिहार, आसाम और बङ्गालका है; परन्तु सिन्धके निवासो बड़े सुन्दर होते हैं। स्त्रियोंमें तो सौन्दर्य्य और भी ज्यादा है। ये प्रकृतिके बड़े सरल, धर्म्मभीरु और ब्राह्मण-साधुके परम भक्त होते हैं। सिन्धियोंमें आर्य्यसमाजी विरला ही कोई मिलेगा। अन्धपरम्परा, भोलापन इनमें बहुत ही ज्यादा है। ये ग्रन्थसाहेबके बड़े भक्त हैं और पीर-पूजा कब्र-पूजा भी करते हैं। नदी-पूजा तो इनमें ब्राह्मणकी सन्ध्या है। नदी पास न रहनेपर स्त्रियाँ नलको ही चावल और फूल तथा दूधकी धारा छोड़कर सुबह-शाम पूजा कर लेती हैं।

शास्त्र कहता है कि, कारणके अनुरूप ही कार्य्य होता है। इसीसे "जैसा खाओ अन्न, वैसा होवे मन" भी प्रसिद्ध है। परन्तु यहाँ आपको इसका प्रतिवाद मिलेगा। सिन्धी मांस, मछली और शराब खूब खाते-पीते हैं; किन्तु विनीत और शान्त होते हैं।

कश्मीरकी तरह सिन्धमें मुसलमानोंकी प्रधानता रहने पर भी कराची शहरमें हिन्दुओंकी ही प्रधानता है। मुसलमान अधिकतर नौकरी, कुली-पेशेके ही हैं। कुछ खोजा मुसलमान यहाँपर बोहरोंकी तरह व्यवसायी होनेसे मालदार हैं, जो अब इस व्यापक दारिद्र्यमें अपनी जातिमें मिलते जा रहे हैं।

यदि आप आचारी हैं, तो सिन्ध आनेकी इच्छा न करें। कारण जाति भ्रष्ट अवश्य हो जायगी। यहाँ दूध निकालने और देनेवाले सब-के-सब मुसलमान हैं। ऊँट, खच्चर, गदहे परम धन हैं। मुसलमान मिट्टीके ही लोटेसे पायखाना हैं और उसीमें दूध दूहकर मिट्टीके बड़े घड़ेमें जमा करते दूधका घड़ा गदहेपर दो-तरफी रखकर बच्चेको गोदमें ले जाते हैं। रोटी दूधके घड़ेमें फूलती रहती है, जिसे ये खुद खाते और बच्चेको खिलाते, गीत गाते, शहरमें करते हैं। दूकानपर दूध तुल गया। पीतल लोहेकी कड़ाही में गर्म्म होकर केसरिया रङ्ग बना। आप हम पैसे देकर रने लगते हैं। उधर स्वयंपाकीजी (जो ब्राह्मणोंका छुआ तक नहीं खाते) फलाहार करने लगते हैं। इस अनर्थसे कर मथुराके चौबे लोगोंने घोसियोंको पीतलके बड़े बरतन दिये; किन्तु फिर भी कई बार दूध छानते हुए मांस, रोटीके टुकड़े निकलते ही रहे। क्या करें! सहना ही पड़ता है; मुसलमानोंकी प्रधानता जो ठहरी।

यहाँकी सनातनधर्म-सभा बड़े नजारेकी जगहमें चारो तरफ वाराङ्गनाओंके भव्य भवन हैं। एक दिन सभामण्डपमें, टट्टीसे आनेपर, कोनेमें रखे हुए लिया, तो श्रीमाली पुजारीजी बड़े जोर-शोरसे कारण ऐसा अपवित्र हाथसे छू दिया और उससे तथा श्रीठाकुरजीका पात्र साफ किया करते थे। अन्य ब्राह्मणोंके हाथसे जलतक नहीं पी सकते मारवाड़ी थे।

सिन्धियोंमें आप जितनी ही असाम्भविक करेंगे, ये उतने ही खुश होंगे। शामको, समुद्र आटेकी गोली पाव-आधा सेर मछलियोंको आप लोगोंको अवश्य देखेंगे। देखिये इनको दया, पावें तो कच्ची ही चबा जायँ। प्रायः मद्य-मांस क्रोधी, तामसी, झगड़ालू देखे जाते हैं; परन्तु डरपोक हैं। तभी तो हिन्दू-मुसलिम-लड़ाईमें मुसलमानों इनकी अच्छी खबर ली। सिन्ध व्यापारी शामको दो तोला शराब अवश्य पीयेगा। परन्तु अन्दाज रहता है। बाहरका आदमी इनको न तो पहचान और न इनके काममें ही बाधा होती है। ये बड़े भाषी होते हैं।

क्या भारतके आदि-निवासी असभ्य थे ?

बा० रामधारी सिंह "दिनकर"
बी० ए० (आनर्स)

आर्य्यों के आक्रमणके बादके भारतका इतिहास लिखते हुए बड़े-बड़े विद्वानोंने एक बड़ी भारी भूल की है । बहुतोंने भ्रमवश यह समझ लिया कि, आर्य्योंके पूर्व भारतवर्ष एक विशाल जंगल था, जिसमें वन्य पशुओंके साथ-साथ कुछ अनार्य्य (द्राविड़, कोल, भील) पेड़ोंके नीचे या पृथ्वीके अन्दर नग्न एवं असंस्कृत अवस्थामें रहते थे । ज्यों-ज्यों आर्य लोग पूर्वसे पश्चिमकी ओर बढ़ते गये, त्यों-त्यों ये अनार्य जातियाँ, उनके शस्त्रोंके सामने, उनको राह बनाती गयीं । अन्तमें सारा उत्तर भारत आर्योंसे भर गया और विजित जातियाँ जंगलोंमें अथवा दक्षिण-पथकी ओर शरण खोजने लगीं । किन्तु, अवैज्ञानिक लेखकोंकी कल्पना-प्रधान बुद्धिका यह अनुमान अन्वेषणके सामने निराधार सिद्ध होता है । भारतके आदिनिवासियोंको केवल इस लिये असंस्कृत समझ लेना बुद्धिमानी नहीं है कि, वे अनार्य्य नामसे पुकारे जाते हैं, प्रत्यत यह समझना कहीं अधिक सत्य है कि, आर्य्यों के पूर्व भारतमें विश्व-विख्यात सभ्यताका प्रचार था, "सच तो यह है कि, आर्य्योंके आक्रमणके समय भारतवर्षमें सभ्य मनुष्य थे, जिनके बीच द्राविड़ तथा मुण्डा बोलियोंका प्रचार था । वे Primitive tribes नहीं थे । वे खेत जोतते थे और तरह-तरहके अन्न उपजाते थे । वे धातुओंका काम करना जानते थे तथा सुन्दर-सुन्दर रथ और गहने भी बनाते थे । यही नहीं, बल्कि वे लोग अन्य देशोंसे व्यापार भी करते तथा टिक, मोर, मसाला, मोती और बुने हुए कपड़े बाहर भेजते थे ।

भारतमें बस जानेपर हम आर्य्यों को बहुत सभ्य पाते हैं । स्टील ढालना आजकल उन्नत कलामें गिना जाता है । लेकिन वेदोंमें उसका वर्णन है । यह तो निश्चित है कि, इस प्रकारकी सभ्यताको विकसित होनेमें कई सौ वर्ष लगे होंगे; किन्तु प्रश्न यह रह जाता है कि, इस सभ्यताका विकास कैसे हुआ ? वैदिक सभ्यताके कुछ विद्यार्थी तो गत दस वर्षों में इस निर्णयपर पहुँचे हैं कि, आर्य्यों के आगमनके पूर्व ही भारतमें उत्तम सभ्यताका प्रचार था और कदाचित् आर्य्यों ने उसीके संसर्गसे अपनी संस्कृतिका विकास किया । परशिया, मेसोपोटामिया, सीरिया, पेलेस्टाइन, ईजिप्ट, ग्रीस, उत्तर अफ्रीका, बिलोचिस्तान, हरप्पा, मोहेंजोदारो, कन्नौज, बक्सर, पटना, नागपुर तथा मैसूर आदि जगहोंमें खोदाईके द्वारा प्राप्त सामग्रियोंकी तुलना करनेपर कई बड़े-बड़े विद्वानोंने भी यही मत स्थिर किया है । अत्यन्त प्राचीन कालमें युफ्रेटससे येलो नदीतक, सारी जगहोंमें करीब-करीब एक ही सभ्यताका प्रचार था । वह सभ्यता पूर्णरूपसे विकसित तथा बहुत पुरानी थी । इसी प्रसंगमें पूर्व जगतका इतिहास लिखते हुए मिस्टर हालने लिखा है कि, "ईसासे ४०००० वर्ष पूर्व हम सुमेरियन जातिको बहुत संस्कृत पाते हैं; किन्तु, इन लोगोंने यह सभ्यता बेबिलोनमें नहीं सीखी ।" सभ्यता-विकासका यह नाटक शायद भारतवर्षमें खेला गया है । हालके मतानुसार ये सुमेरियन निश्चय ही भारतीय थे ।

आर्य्यों के आक्रमणके पहले—बहुत पहले—भारतवर्ष सभ्यताके इने-गिने केन्द्रोंमेंसे था और भारतके विजित लोगोंने विजयी आर्य्यों को संस्कृतिकी दीक्षा दी है । उपर्युक्त खोदी गयी जगहोंकी ऐतिहासिक सामग्रियोंकी तुलनासे यह प्रत्यक्ष है कि, आर्य्यों से पूर्व परशियासे लगभग चीनतक करीब-करीब एक ही सभ्यताका प्रचार था । उस सभ्यताके लोग केशोंको सजाना जानते थे । वे धातुओंके सुन्दर आभूषण पहनते थे । कुछ विद्वोंसे

यह भी पता चलता है कि, उनमें धार्म्मिक तथा आध्यात्मिक भाव भी विद्यमान थे।

वेदसे भी यह बात सिद्ध है कि, आर्य्योंने अपनी सभ्यताका बहुत बड़ा भाग अनार्य्योंसे सीखा है। यह कोई अचरजकी बात नहीं है। जो अनार्य्य ईसासे ४०००० वर्ष पूर्व, सुदूरस्थ बेबिलोनसे, व्यापार करते थे, वे साधारण सभ्यतावाले न होंगे। आक्रमणकारी आर्य्योंसे पराभूत होते-होते भी वे सांस्कृतिक विजयकी छाप लगानेसे नहीं चुके। सच पूछिये, तो अनार्य्योंकी पराजयसे भारतवर्षकी आदि-सभ्यताको शृंखला नहीं टूटी। वह अब भी वैदिक सभ्यतामें, परोक्ष रूपसे, विद्यमान है। वर्तमान आर्य्य-संकृतिके वातावरणमें अनार्य्य-सभ्यताका ही सार भरा हुआ है। प्रसंगवश, सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डाक्टर सुविमल-चन्द्र सरकारके लेक्चरसे दो-चार उदाहरण उद्धृत किये जाते हैं, जिनसे पता चलेगा कि, आर्य्य-सभ्यता अनार्य्योंसे किस प्रकार प्रभावित हुई है।

यजुर्वेदमें, राज्याभिषेकके वर्णनमें, यह कहा गया है कि, राजा चीतेके चमड़ेपर खड़ा होकर प्रजाके सामने नीतिपरायण रहनेको शपथ लेता था। इससे यह अनुमान होता है कि, हो-न-हो इस प्रथाका जन्म उस भूभागमें हुआ होगा, जहाँ चीता-चर्म प्राप्य हो; किन्तु आर्य्योंके आदि-निवास-स्थान मध्य एशिया जैसे शीतप्रधान देशमें चीता मिलनेकी संभावना नहीं हो सकती। इसके प्रतिकूल, गंगाकी तराइयोंमें, चीतेकी असीमताके कारण यह मानना अधिक युक्तियुक्त है कि, यह प्रथा प्रथम-प्रथम भारतमें अनार्य्योंके बीच ही उत्पन्न हुई है और आर्योंने इसे अपनो विजित प्रजासे लिया है।

उसी वेदमें हमें अग्नि-पूजाकी चर्चा मिलती है। जिस प्रकार अनावृष्टिसे त्राण पानेको आर्य्योंने इन्द्रकी पूजा की, उसी प्रकार अतिवृष्टि तथा नदियोंकी बाढ़से बचने[illegible] उन्होंने अग्निकी पूजा चलायी। कारण यह था कि, [illegible] द्वारा ईंटें तैयार हो जानेपर ऐसे घर बन सकते थे, [illegible] पानीसे नष्ट न हो सकें। ईंटोंके बनानेके भी [illegible] वेदोंमें मिलते हैं, जिनसे पता चलता है कि, इस [illegible] भी लगोंमें खूब प्रचार था। किन्तु, यहाँ भी यह [illegible] युक्ति-संगत न होगा कि, इस कलाका पूर्ण विकास [illegible] एशिया जैसी पथरीली और [illegible]कत भूमिमें हुआ हो। [illegible] वृष्टि तथा बाढ़का भय भी गंगा और ब्रह्मपुत्रकी तरा[illegible] घोर है; इसलिये मानना पड़ता है कि, इस [illegible] विकास भी अनार्य्योंने ही किया और आर्य्यों[illegible] उन्हींसे सीखा।

इसके सिवा वेदमें ऐसे शब्द भी हैं, जिनकी [illegible] संस्कृत धातुओंसे नहीं हो सकती। "बीबी"नामक [illegible] ऐसा ही है। इसका प्रयोग वेदोंमें कपड़े बुननेके [illegible] हुआ है। हालमें ही पता चला है कि, इस orphan [illegible] के माँ-बाप द्राविड़ धातु-समूहमें हैं। "कर्मार" नामक [illegible] शब्द भी "करुमा" नामक द्रविड़-शब्दका रूपान्तर [illegible] है। यही नहीं, बल्कि वेदोंके विभागके नाम भी [illegible] द्राविड़ धातुओंसे निकले हुए दीखते हैं, जिससे [illegible] होता है कि, एक-आध वेदका नामकरण भी द्राविड़ [illegible] प्रभावकी छायामें हुआ है।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि, दक्षिण भारतके [illegible] ग्रामोंको बनावट भी ऋग्वेदमें वर्णित ग्रामोंकी [illegible] अनेक आक्रमणोंके कारण उत्तर भारतकी प्राचीन [illegible] टूटकर छिन्न-भिन्न हो गयी; किन्तु दक्षिण-पथ [illegible] ताकी छायाको लिये हुए मानों अब भी यह कह रहा है [illegible] भारतकी आदि-सभ्यताका बीज दक्षिण भारत—[illegible] देश—में है।

वैदिक यज्ञ

प्रोफेसर धर्मदेवजी वेदवाचस्पति

वैदिक धर्मका स्वरूप क्या है, इस प्रश्नका उत्तर दे देना कठिन है। धर्म शब्द संस्कृत-साहित्यमें अत्यन्त व्यापक शब्द है। यह शब्द देव-पूजा, सदाचार, कर्तव्य तथा नियम आदि अनेक अर्थोंमें प्रयुक्त होता है। परन्तु जबतक हम धर्मके वास्तविक मर्मको नहीं समझ लेते, तबतक धार्मिक जीवन व्यतीत कर सकना दुष्कर है। क्षेत्र तथा परिस्थितिके भेदसे विषम समस्याओंके उपस्थित हो जानेपर "क्या धर्म है और क्या अधर्म" यह निश्चय कर सकना कठिन हो पड़ता है। एक ही कार्य एक समयमें धर्म हो जाता है और दूसरे समयमें अधर्म। हिंसा किसी समय धर्मरूप होती है और किसी समय वही हिंसा अधर्मका कारण बन जाती है। आवश्यकता इस बातकी है कि, धर्मका वास्तविक मर्म अवगत किया जाय, जिससे मनुष्य समय और स्थानके अनुसार स्वयं धर्माधर्मका निश्चय कर सके। यद्यपि धर्मका वास्तविक रहस्य अत्यन्त गूढ़ है, उसका जान सकना सरल काम नहीं; तथापि नितान्त अज्ञानसे स्वल्प ज्ञान भी श्रेयस्कर है। अन्यथा समयोपयोगी बातें अन्ध विश्वासका कारण बनकर कालान्तरमें हानिकारक सिद्ध होती हैं।

वैदिक धर्ममें धर्मका क्या स्वरूप है, इसको यदि हम कहना चाहें, तो 'यज्ञ' शब्दसे कह सकते हैं। परन्तु यज्ञ शब्द स्वयं एक पहेली है, जिसे व्याख्याकी अपेक्षा रहती है।

प्रत्येक धर्ममें विशेष-विशेष कार्यको मुख्यता दी गयी है। बौद्ध तथा जैन-धर्ममें अहिंसाको, ईसाइयतमें दयाको, इस्लाममें निमाजको, सिक्ख-धर्ममें भक्तिको तथा वैदिक धर्ममें यज्ञको मुख्यता दी गयी है। वैदिक धर्म यज्ञ-मूलक है। यज्ञ उसका प्राण है, आत्मा है। यज्ञकी नींवपर वैदिक धर्मके विशाल भवनका निर्माण किया गया है। कतिपय भारतीय विचारकोंने वेद-मन्त्रोंका सम्पूर्ण विनियोग यज्ञमें ही किया है। वेदमन्त्रोंकी व्याख्याका प्रथम प्रयास करनेवाले ब्राह्मणकार, याज्ञवल्क्य आदि ऋषि-मुनियोंने भी वेदोंको यज्ञ-मूलक माना है। भारतवर्षमें याज्ञिक सम्प्रदाय बहुत महत्त्वपूर्ण तथा शक्तिशाली सम्प्रदाय रहा है। यह तो ठीक है कि, यज्ञका वास्तविक अभिप्राय न समझकर बाह्य क्रिया-कलापमें ही इति-श्री समझ लेनेसे भारतवर्षका सामाजिक तथा धार्मिक वातावरण अत्यन्त कलुषित हो गया और परिणामतः उसके विरोधमें बौद्ध धर्मकी उत्पत्ति हो गयी। इसी बाह्य-क्रिया-कलापकी प्रधानताको देखकर पाश्चात्य विचारक वैदिक धर्मको अविकसित धर्म (Primitive Religion) कहते हैं। कुछ भी हो, हम इस बातसे इनकार नहीं कर सकते कि, वैदिक धर्मकी भित्ति यज्ञपर स्थित है। परन्तु यज्ञ क्या वस्तु है—यह एक विचारणीय विषय है। यज्ञका वास्तविक स्वरूप जान लेनेपर हम यह भी भली भाँति समझ सकेंगे कि, यज्ञ वैदिक धर्मका प्राण किस लिये है।

धर्मका आधार ईश्वर है। सिसरो प्रभृति अनेक विद्वानोंने ईश्वरमें विश्वास करनेको ही धर्म कहा है। कोई मनुष्य ईश्वरमें विश्वास न रखता हुआ भी सदाचारी कहा जा सकता है; लेकिन धार्मिक नहीं। धार्मिक कहलानेके लिये अपनेसे किसी उच्च शक्तिमें विश्वास करना आवश्यक है। ईश्वर-विश्वास धर्मका आवश्यक अंग है। अतएव वेदमें ईश्वरको यज्ञ नामसे पुकारा गया है। ऋग्वेदके 'पुरुष सूक्त'में एक मन्त्र आता है। — "तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।" (ऋग्वेद १० । ९० । ६) 'तपस्वी और ज्ञानी ऋषियोंने उस यज्ञ-रूप पुरुष—परमात्मा—को अपने हृदयमें प्रबुद्ध किया।' आगे चलकर उसी यज्ञ-पुरुषसे वेदों तथा

सृष्टिकी उत्पत्ति बताई है। × शतपथ-ब्राह्मणमें "प्रजापतिर्वै यज्ञः" तथा "विष्णुर्वै यज्ञः" इत्यादि अनेक रूपोंमें परमात्मा-का नाम यज्ञ बताया है; क्योंकि परमात्मा धर्ममें अनन्यतम साधक कारण है। अतः परमात्मा यज्ञ नामसे पुकारा गया है। परन्तु यज्ञ शब्द वस्तुतः धर्मका ही प्राचीन पर्यायवाची शब्द है। भारतीय दर्शनकारोंने धर्मका लक्षण इस प्रकार किया है—"यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।" 'जिस कार्यसे ऐहिक अभिवृद्धि तथा पारलौकिक समृद्धि प्राप्त हो, वह धर्म है।' इसी बातको शतपथकारने, यज्ञका स्वरूप बताते हुए, कहा है—"यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म।" (शतपथ १।७।४।५) 'सर्वश्रेष्ठ कर्मको यज्ञ कहते हैं।' परन्तु उपर्युक्त दोनों लक्षणोंमेंसे धर्म वा यज्ञका स्पष्ट अभि-प्राय ज्ञात नहीं होता। इन दोनों लक्षणोंमें धर्म वा यज्ञके पर्यायवाची शब्द बता दिये हैं। परन्तु अभ्युदय या निःश्रेयस-की प्राप्तिके साधक कर्म कौनसे हैं अथवा श्रेष्ठतम कर्म क्या हैं—यह ज्ञात नहीं हुआ। इस बातका स्पष्टीकरण इसी "पुरुष-सूक्त' के अन्तिम मन्त्रमें ही मिलता है। वहाँ लिखा है—

"यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।"
(ऋग्वेद १०।९०।१६)

'ज्ञानी पुरुषोंने ध्यान यज्ञ द्वारा पूजनीय परमात्माका यजन किया। यही उनका मुख्य धर्म था। ऐसे ईश्वरभक्त पुरुष ही उन्नत होकर उस मोक्षको प्राप्त होते हैं, जहाँ सिद्ध महात्मा पुरुष जाया करते हैं।'

इस मन्त्रमें ईश्वर-प्रणिधानको मुख्य धर्म (प्रथम धर्म) बताया गया है। यही श्रेष्ठतम कर्म है और इसीसे अभ्युदय एवं निःश्रेयसकी सिद्धि होती है। परन्तु विचारना यह है कि, क्या केवल ईश्वरके नामका जाप मात्र करना ही मुख्य धर्म है? क्या इतनेसे ही मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है? इस बातपर विचार करनेके लिये हमें पूर्वोक्त मन्त्रके 'अयजन्त' शब्दपर दृष्टि डालनी चाहिये। यह शब्द 'यज' धातुसे बना है। यह धातु देव-पूजा, संगतिकरण तथा दान अर्थमें प्रयुक्त होता है। प्रत्येक कार्यका कोई उद्देश्य होता है और कुछ साधन भी। एवमेव देव-पूजाके उद्देश्यसे आत्म-त्याग करते हुए संगतिकरण करनेको ही यजन या यज्ञ कहते हैं। इस प्रकार परमात्माके यजनका तात्पर्य यह है कि, विद्वान् पुरुषोंने देवाधिदेव परमात्माके देवत्वकी—दया, सत्य, प्रेम आदि दिव्य गुणोंकी—पूजाके पवित्र उद्देश्यसे आत्म-त्याग (Self surrender) करते हुए संगतिकरण किया अर्थात् परमात्माके गुणोंके अनुकूल अपना आचरण करके एकता उत्पन्न की। इसी संगतिकरण या यजनको ही उपनिषदोंने परम साम्य या एकता प्राप्त करना कहा है। यही जीव-ब्रह्म की एकता है। यही यज्ञ है और मुख्य धर्म है। इसीमें मुक्ति है। इसके अनुसार मनुष्यका मुख्य उद्देश्य परमात्माको लक्ष्य रख करके, उसके अनुरूप अपनेको बनाते हुए, संसारमें अनासक्त होकर, मोक्ष प्राप्त करना है। यही यज्ञ है। इसी यज्ञकी वेदोंमें महिमा बतायी गयी है। यह यज्ञ ही वैदिक धर्मका मुख्य गुण है, प्राण है, आत्मा है। यज्ञ शब्दमें बीज रूपसे धर्मका मर्म बता दिया गया है। केवल ईश्वरमें विश्वास करना ही धर्म्म नहीं; परन्तु उसमें पूर्ण विश्वास रखते हुए उससे संगतिकरण करना धर्म है। धर्मका यही लक्षण सर जे० जी० फ्रेज़र ने "The Golden Bough" नामक पुस्तक में, करते हुए, लिखा है—"A propitiation or conciliation of Powers superior to men which are believed to direct and control the course of Nature and of human life." 'मनुष्यका अपनेसे उन उच्च शक्तियोंके साथ संगति-करणको धर्म कहते हैं, जिन शक्तियोंको वह प्रकृति एवं मनुष्य-जीवनपर नियन्त्रण रखनेवाली एवं प्रेरणा करनेवाली समझता है।' इसके अतिरिक्त सरविलस, ...

× तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात् यजुस्तस्मादजायत॥
तस्मात् यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये॥
(ऋ० १०।९०।८, ९)

शियस तथा आगस्टाइन प्रभृति पाश्चात्य विद्वानोंने—Religion (धर्मका पर्यायवाची अँग्रेजी शब्द) की व्युत्पत्ति Re × ligare इन दो शब्दोंसे की है। Re उपसर्गका अर्थ है Back, पीछे और ligare धातु Bind बाँधनेके अर्थमें प्रयुक्त होता है। तदनुसार Religion शब्दका अर्थ है—इस संसारके पीछे वर्तमान महती शक्तिके साथ अपनेको बाँधने अथवा उसके साथ सम्बन्ध स्थापित करनेको धर्म कहते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि, जो अर्थ Religion शब्दका है वही यज्ञका है। इसी लिये मैंने यज्ञका पर्यायवाची शब्द धर्म बताया है। महाभारतमें आचार्य भीष्म पितामहने युधिष्ठिर महाराजको धर्मका तत्त्व समझाते हुए कहा है—"धरणाद्धर्म इत्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।" 'जिन कार्यों-से मनुष्य या समाजका धारण होता है, वह धर्म है और जिससे विनाश होता है, अधर्म है। धर्माधर्मका निश्चय करनेकी यह एक कसौटी है।' यही बात वेदमें, रूपान्तरसे, यज्ञके सम्बन्धमें कही गयी है। अथर्ववेदमें लिखा है—

"अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः।"

'यह यज्ञ सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको बाँधनेवाला है।' इस यज्ञ या धर्मके नष्ट हो जानेपर समाज विशृंखल हो जाता है। मनुष्य-जीवनका स्वास्थ्य जाता रहता है।

इस समय आवश्यकता इस बातकी है कि, हम यज्ञ-प्रथाको पुनः जारी करें। यज्ञका वास्तविक स्वरूप समझते हुए तदनुकूल अपना जीवन व्यतीत करें। यज्ञका तात्पर्य बाह्य क्रिया-कलापसे नहीं। अग्नि तो एक चिह्नमात्र (Symbol) है। जिस प्रकार ईसाइयोंका चिह्न क्रास है और मुसलमानोंका चाँद; उसी प्रकार आर्योंका चिह्न अग्नि समझना चाहिये। इसी कारण आर्योंको अग्निपूजक कहा जाता है। प्राचीन समयमें आर्य लोग जहाँ-जहाँ जाते थे, वहाँ-वहाँ अग्निको आगे-आगे ले जाते थे। अग्नि आर्योंके जीवनका अङ्ग बन चुका था। उन्हींके संसर्गसे ईरानवासी पारसी लोग भी अग्नि-उपासक बन गये। अग्निको, वैदिक ऋचाओंमें, देवताओंका दूत बताया गया है। पार्थिव या भौतिक जीवन (Material life) से आध्यात्मिक जीवन (Spiritual life)में प्रवेश करनेके लिये अग्नि एक शृंखला (Link) है। इसके द्वारा पुरुष मनुष्यसे देव पदवीको प्राप्त करता है। अग्नि देवदूत (Holy Ghost) है। अग्निका गुण स्वयं प्रकाशमान् होते हुए दूसरोंको प्रकाशित करना तथा सदा ऊर्ध्वगामी रहता है। अपनेमें प्रकाश लाते हुए औरोंको प्रकाशित करना तथा नित्य उन्नति-शील रहना ही अग्निको पूजा करना है। हमें अपना जीवन यज्ञमय बना लेना चाहिये। अग्निके गुणोंका ध्यान करते हुए हमें यज्ञका सम्पादन करना चाहिये। गीतामें ध्यानयज्ञ, जपयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ, ज्ञानयज्ञ, तपोयज्ञ तथा द्रव्ययज्ञ आदि अनेक यज्ञ बताये गये हैं। मनुष्य अपनी अवस्था तथा रुचिके अनुसार किसी भी यज्ञका आश्रय ले सकता है। परन्तु प्रत्येक यज्ञ तभी सम्पन्न हो सकेगा, जब कि, मनुष्य आध्यात्मिक शक्तिमें विश्वास रखता हुआ दिव्य गुणोंको प्राप्त करे और उसके लिये अपनेको स्वाहा कर दे, अपने जीवनका लक्ष्य उसीको बना ले।

यही वास्तविक यज्ञ है। यही यज्ञ वैदिक धर्मका प्राण है। इसके बिना आध्यात्मिक जीवन नहीं रह सकता।

महाकवि क्षेमेन्द्र

प्रो० अक्षयवटमिश्र "विप्रचन्द्र"

प्राचीन समयके विद्वान् बड़े परिश्रमी होते थे। उनका एक क्षण भी व्यर्थ नष्ट नहीं होता था। उनका हृदय सदा साहित्य-सागरकी गोदमें गोता खाया करता था। उनके मस्तिष्कमें निरन्तर साहित्यके अनन्त दृश्य भासमान हुआ करते थे। उन्हें गम्भीर विषयोंकी ही चिन्ता हुआ करती थी। वे एकान्त शान्त स्थानमें बैठकर अनेक प्रकारकी भावनाएँ किया करते थे, जिनके फलस्वरूप अनेक ग्रन्थ उत्पन्न हो जाया करते थे। प्राचीन विद्वानोंको आयुका पता उनके किये कार्यों वा उनके लिखे ग्रन्थों द्वारा सुगम रीतिसे लग जाया करता था। आजकलके विद्वानोंके समान वे धन-लोलुप और विषयासक्त नहीं होते थे। वे ईश्वराराधन कर अपना परलोक सुधारना वा ग्रन्थ-रचना द्वारा देश, जाति और समाजका उपकार करना ही अपना परम कर्तव्य समझते थे। आजकलके पगड़धारी विद्वानोंके समान "मुझे अवकाश ही नहीं मिलता, क्या करें"—ऐसा बहाना कर वे दूसरोंको ठगना नहीं चाहते थे। प्राचीन विद्वान् बिना किसीके कहे ही देशोपकारार्थ अनेक यत्न किया करते थे। क्या पाणिनिसे किसीने कहा था कि, "आप एक विलक्षण व्याकरणकी रचना कीजिये"? क्या पतञ्जलिसे किसीने भाष्य बनानेकी प्रेरणा की थी? क्या शङ्कराचार्यसे किसी राजाने कहा था कि, "आप सनातन-धर्मका पुनरुज्जीवन कीजिये"? क्या भारतेन्दु बाबु हरिश्चन्द्रने किसीकी आज्ञासे हिन्दीकी नयी प्रणालीकी नींव दी थी? उन प्राचीन विद्वानोंके कार्यों वा रचित ग्रन्थोंसे जब हम अपने देश और समाजका उपकार देखते हैं, तब हमारा सिर उपकार-भारसे झुक जाता है। इन्हीं अनेक कारणोंसे कितने ही ग्रन्थकार देव-दृष्टिसे देखे जाते हैं। महर्षि बाल्मीकि, कृष्ण द्वैपायन व्यास, वशिष्ठ, नारद, शङ्कराचार्य, बुद्ध, तुलसीदास, सूरदास आदि मनुष्य शरीर-धारी होकर भी देवता बन गये। [इन] लोगोंके रचित ग्रन्थोंका मनन करनेसे मनुष्यका [हृदय] ऊँचा हो सकता है, दुर्वासना मिट सकती है, नयी [शक्ति]का संचार हो सकता है और सांसारिक व्यवहारकी [उ]त्तम तथा निर्दोष शिक्षा मिल सकती है। उनके [रचित] ग्रन्थ मनोरञ्जक और शिक्षादायक हुआ करते [थे]। आजकलके लिखे उपन्यासोंके समान चरित्रको बिगा[ड़ने] वाली बातें उनमें नहीं रहती थीं। उनमें जिनकी [कथाएँ] लिखी गयी हैं, उनके चरित्रोंका अनुकरण कर [के] मनुष्य "आदर्श पुरुष" बन सकता है। लाखों मनु[ष्य] पुराण पढ़कर सनातन-धर्मावलम्बी, नारद-कृत भक्ति[सूत्र] पढ़कर भक्त, शङ्कर-भाष्य पढ़कर विरागी और तुल[सी]-कृत रामायण पढ़कर वैष्णव हो गये हैं। इसके सैकड़ों नहीं, हजारों नहीं, वरन् लाखों ही उदाहरण विद्यमान [हैं]।

उनके अगणित ग्रन्थोंको देखकर यदि हम लोग "[समय] को व्यर्थ न करना" भी सीख जायँ, तो भी बहुतसे [कार्य] हम लोगोंके हाथसे सिद्ध हो जाँय, इसमें तनिक भी सन्दे[ह] नहीं। जब हम प्राचीन विद्वानोंके बनाये ग्रन्थों और उनके श्लोकोंकी संख्यापर ध्यान देते हैं, तब एक बार हम आश्च[र्य] महासमुद्रके अतलस्पर्शी हृदयमें डूब जाते हैं। पुरा[ने] कवियोंकी बात जाने दीजिये। मैं केवल कलिके कवियों[की] ही ग्रन्थों की बात कहता हूँ, जिनका जीवन सौ वर्षसे अधिक होना कदापि सम्भव नहीं है।

शङ्कराचार्य की कितनी अवस्था थी? और उनने कितने ग्र[न्थ] बनाये? उनकी श्लोक-संख्या कितनी है? याद रहे, ये सब बातें उनने ३४ ही वर्षकी अवस्थामें समाप्त कर दीं। उनके ग्रन्थोंकी श्लोक-संख्या लाखोंके लगभग है।

गोस्वामी तुलसीदासजीने कितने दिनोंमें बीसों ग्रन्थ लिखे! सूरदास जीने सवा लाख पद कितने वर्षोंमें तैया[र]

सि. वेन्कटराम्न

ஸி. வெங்கடராமன்

काव्य-कलाकार
साहित्यरत्न प० अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"
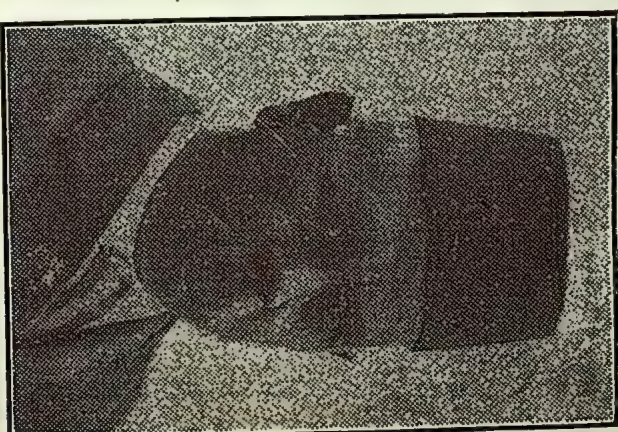
छन्दःशास्त्रके मर्मज्ञ विद्वान्
राय बहादुर जगन्नाथप्रसादजी "भानु"

किये ! भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रका शरीरान्त ३४ ही वर्षकी अवस्थामें हो गया था; पर उनके रचित, अनूदित, संगृहीत तथा सम्पादित ग्रन्थोंकी संख्या दो सौके लगभग है, जिनकी श्लोक-संख्या दो लाखके लगभग होगी। स्फुट लेखों-का तो कुछ ठिकाना ही नहीं।

आज हम जिनके विषयमें दो-चार बातें कहते हैं, उनका भी जन्म कलियुगमें ही हुआ था। यही क्यों जिनको हुए आज हजार वर्ष भी न बीते होंगे, उन्हींकी बातें लिखी जा रही हैं। क्या आप लोगोंने कभी "महाकवि क्षेमेंद्र"का नाम सुना है ?

वे साधारण कवि नहीं थे। यदि हम उनके ग्रन्थोंकी श्लोक-संख्यापर ध्यान देते हैं, तो उनका नम्बर व्यासके बाद ही पड़ता है; क्योंकि (यदि अठारहों पुराण कृष्णद्वैपायन व्यासके ही मान लिये जायँ, तो व्यासजीके बनाये ग्रन्थोंकी श्लोक-संख्या चार लाख है और क्षेमेन्द्रके बनाये ग्रन्थोंकी श्लोक-संख्या दो लाखसे कुछ अधिक। क्षेमेन्द्रके बनाये ग्रन्थोंकी संख्या ३४ से भी अधिक है। चौंतीस ग्रन्थोंका पता लग गया है और उनमें बहुतसे प्रकाशित भी हो चुके हैं। न मालूम, कालकी कुटिल गतिसे कितनी पुस्तकें सदाके लिये लुप्त हो गयी हों। बहुतसे ग्रन्थोंके नाम तो सुननेमें आते हैं; पर उनके दर्शन आजकल नितान्त दुर्लभ हो गये हैं। आप ही कहिये न ? "धनुर्वेद"का नाम तो सदासे सुनते आते हैं; पर आपने उसे कभी देखा भी है ? कदाचित् नहीं। जिस भारतकी अमूल्य पुस्तकें जलवाकर यवनोंने महीनों रसोयी बनवायी, उस भारत-में पुस्तकें दुर्लभ क्यों न हों! यदि आधुनिक समयकी भाँति उस समय भी मुद्रण-कलाका पूरा प्रचार होता, तो वे पुस्तकें अवश्य कहीं-न-कहीं मिल ही जातीं; पर इस कलाके अभावसे वे पुस्तकें सर्वदाके लिये काल-महासागरकी गोदमें विलीन हो गयीं। याद रहे, जिन पुस्तकोंके लिये या उनमें लिखित विषयोंके लिये आज हम लोग दूसरोंका मुँह जोहा करते हैं, वे सभी पुस्तकें हम लोगोंके आचार्योंने लाखों बरस पहले ही लिखकर दी थीं। जिस समय अन्य जातियाँ असभ्यताके गाढ़ अन्धकारमें छिपी पड़ी थीं, उसी समय भारतवर्षीय जन सभ्यताके ऊँचे शिखरपर आरूढ़ हो चुके थे और उनके विस्तारित विद्या-प्रकाशसे सारा संसार प्रकाशित हो गया था। आज वही भारत नीच और विदलित समझा जाता है और उसके निवासियोंकी गणना अभागे असभ्योंमें होती है। समय सदा एकसा नहीं रहता। जो सूर्य मध्याह्नमें, मध्याकाश-स्थित होकर अपनी प्रखर किरणोंसे सारे संसार को संतप्त करता है, वही सूर्य सायंकालको निस्तेज होकर अनन्त सागरकी गभीर गोदमें मिट्टीके घड़ेके समान डूब जता है। जो चन्द्रमा आधी रातको अपनी शीतल चन्द्रिका फैलाकर सारे संसारको उज्ज्वल बना देता है और सबका संताप मिटा देता है, वही दिनको आकाशके एक कोनेमें, बादलके टुकड़ेके समान, निस्तेज होकर पड़ा रहता है। कोई आँखें उठाकर उसकी ओर देखता भी नहीं, आदर-सत्कार, पूजा-पाठकी तो बात ही दूर है। यदि उसी नियमसे क्षेमेन्द्रके भी दो-चार ग्रन्थ लुप्त हो गये हों, तो आश्चर्य ही क्या है ?

हम लोगोंके सौभाग्यसे, क्षेमेन्द्रके नीचे लिखे ग्रन्थोंके नाम सुननेमें आते हैं और बहुतसे देखे भी जाते हैं। उनकी बनायी बहुतसी पुस्तकें प्रायः दक्षिणमें ही मिलती हैं। उनके नाम ये हैं—

१ अवदानकल्पलता, २ बृहत्कथामञ्जरी, ३ दशावतार-चरित, ४ भारतमंजरी, ५ रामायणमंजरी, ६ कलाविलास, ७ अमृततरङ्गकाव्य, ८ औचित्यविचार-चर्चा, ९ कनकजानकी, १० कविकण्ठाभरण, ११ चतुर्वर्गसंग्रह, १२ चारुचर्या, १३ चित्रभारत-नाटक, १४ देशोपदेश, १५ नीतिकल्पतरु, १६ पद्यकादम्बरी, १७ पवनपञ्चाशिका, १८ मुक्तावली, १९ राजावली, २० लावण्यवती, २१ लोकप्रकाश-कोश,

२२ वात्स्यायनसूत्र-सार, २३ व्यासाष्टक, २४ शशिवंश-महाकाव्य २५ समयमातृका, २६ सुवृत्ततिलक, २७ सेव्यसेवकोपदेश, २८ हस्तिजनप्रकाश, २९ अवसरसार ३० नीतिलता, ३१ मुनिमतमीमांसा, ३२ ललितरत्नमाला, ३३ विनयवल्ली और ३४ दर्पदलन।

इन पुस्तकोंमें दो-चारको छोड़कर सभी पुस्तकें बड़ी हैं। औरकी बात जाने दीजिये, केवल अवदान-कल्पलता मेंही बाईस हजारसे अधिक श्लोक हैं। भारतमञ्जरी, रामायणमञ्जरी, बृहत्कथामंजरी, शशिवंश-महाकाव्य आदि पुस्तकोंकी भी यही दशा है। हम इन पुस्तकोंकी पूरी-पूरी समालोचना इस छोटे लेखमें नहीं कर सकते। विज्ञ पाठक अनुमान कर सकते हैं कि, यदि इन पुस्तकोंकी समालोचना भली भाँति की जाय, तो एक बहुत बड़ी पुस्तक ही अलग तैयार हो जाय। इसलिये हम यहाँ क्षेमेन्द्रको रचना-प्रणालीका वर्णन कर कुछ उदाहरण मात्र लिख देते हैं, जिससे क्षेमेन्द्रकी विद्वत्ता और उनकी पुस्तकोंकी उत्तमताका ज्ञान भली भाँति हो जायगा।

जिस कोमल प्रणालीसे वाल्मीकि, व्यास, कालिदास आदि महाकवियोंने अपने ग्रन्थोंकी रचना की है, ठीक उसी प्रणालीसे क्षेमेन्द्रने भी अपने ग्रन्थोंका निर्माण किया है। कहीं-कहीं तो क्षेमेन्द्रकी कविता जान पड़ती है कि, उन्हीं तीनों महानुभावोंमेंसे किसीकी रचना है। उनके शब्दोंमें मधुरता, अर्थोंमें गम्भीरता और पदोंमें विचित्रता प्रकट होती है। अलङ्कारोंकी भी कमी नहीं है। उपमा, यमक, श्लेष आदिकी भी पूरी शोभा है। उनकी सुन्दरतापर ध्यान देनेसे सभी विद्वान् उनको "महाकवि" और उनके बनाये काव्योंको महाकाव्य या उत्तम काव्य कहनेमें तनिक भी संकोच नहीं करेंगे। हम तो निर्भय होकर कहते हैं कि, यदि क्षेमेन्द्र वाल्मीकि, व्यास या कालिदासके समयमें हुए होते, तो क्षेमेन्द्र भी उन्हीं तीनों महानुभावोंके समान ऊँचा आसन पाते और आधुनिक कविसमूह उनको महर्षि समझता। यश भी तो बड़े भाग्यसे मिलता है, जो प्रतिष्ठा कालिदासकी हो गयी, क्या वह प्रतिष्ठा किसी दूसरे [illegible] भाग्यमें है। यदि कालिदास केवल अभिज्ञानशाकुन्तल, मेघदूतको ही बनाकर छोड़ जाते, तो उनका नाम [illegible] जाता। यदि सभी विद्वान् क्षेमेन्द्रको कालिदासके [illegible] ऊँचा आसन न भी दें, तो भी कालिदासके बाद [illegible] देनेमें कोई संकोच न करेंगे।

जो विद्वान् उनके बनाये ग्रन्थोंका भली भाँति [illegible]लोकन करेंगे, वे अवश्य ही हमारी सम्मतिको मान [illegible] उनने अलङ्कार, छन्दः, इतिहास, नाटक, धर्म, [illegible] षड्दर्शन आदि सभी विषयोंपर ग्रन्थ लिखे हैं।

क्षेमेन्द्रका जन्म कश्मीर देशमें हुआ था। [illegible] पीढ़के मन्त्री नरेन्द्रके वंशमें "भोगीन्द्र" का जन्म था। भोगीन्द्रके पुत्र "सिन्धु", सिन्धुके पुत्र "प्रकाशे[illegible]" और प्रकाशेन्द्रके पुत्र "क्षेमेन्द्र" थे। इनका दूसरा [illegible] "व्यासदास" भी था। ये जातिके ब्राह्मण थे; क्योंकि [illegible] समयमें विशेषतः ब्राह्मण ही मन्त्री हुआ करते [illegible] इनके प्राचीन पुरुष "नरेन्द्र" कश्मीरके राजा [illegible] मन्त्री थे।

क्षेमेन्द्र, कश्मीरके राजा "अनन्तराज" के [illegible] थे। अपने स्वामीका वर्णन करना कवियोंका [illegible] ही है। इसीलिये क्षेमेन्द्रने भी "सुवृत्ततिलक" [illegible] ग्रन्थोंमें अनन्तराजकी प्रशंसा लिखी है। अनन्तराज[illegible] राज्य-काल सन् १०२८ई० से १०८० ई० तक है। [illegible] इसी समय क्षेमेन्द्रका भी रहना सिद्ध होता है। [illegible] तरङ्गिणी (७-२५९) में लिखा है कि, उसी समय [illegible] स्वामी भोजराज भी विद्यमान था। क्षेमेन्द्र अनन्तराजके [illegible] "कलशदेव" की सभामें भी कुछ दिनोंतक थे। [illegible] सन् १०८३ ई० में राज्यसिंहासनपर बैठे थे। इस [illegible] क्षेमेन्द्रका सन् १०८३ ई० तक जीवित रहना निर्विवाद [illegible] क्षेमेन्द्रने कई स्थानोंमें लिखा है कि, "वे अनन्तराज [illegible] अनन्तदेवके समयमें थे।" "समयमातृका" नामक [illegible] एक काव्यके अन्तमें उनने लिखा है कि, "तस्यानन्तराज[illegible]

विरजसः प्रासाधिराज्योदये। क्षेमेन्द्रेण सुभाषितं कृतमिदं सत्पक्षरक्षाक्षमम्।" फिर वे जब कलशदेवके साथ रहने लगे, तब उनने "दशावतारचरित" बनाया। उसमें आपने लिखा है—

"एकाधिकेऽब्दे विहितश्चत्वारिंशेस कार्तिके।
राज्ये कलशभूभर्तुः काश्मीरेष्वच्युतस्तवः॥"

यह ग्रन्थ सन् १०८६ ई० में लिखा गया है।

"क्षेमेन्द्र वैष्णव थे"—यह बात उन्हींके लिखे हुए श्लोकोंसे सिद्ध होती है। "दशावतारचरित"के अन्तमें उनने लिखा है—

"स्तुतिसङ्कीर्त्तनाद्विष्णो—
विपुलं यन्मयार्जितम्।
तेनास्तु सर्वलोकानां
कल्याणकुशलोदयः॥"

इत्येष विष्णोरवतारमूर्त्तेः,
कथामृतस्वादविशेषभक्त्या।
श्रीव्यासदासान्यतमाभिधेन,
क्षेमेन्द्रनाम्ना विहितस्तवाग्र्यः॥

जिस समय उनने इस ग्रन्थकी रचना की थी, उस समय वे वृद्ध होकर एकान्तवास करते थे। क्षेमेन्द्रने "दशावतारचरित"में अपना वंशपरिचय यों लिखा है।

"काश्मीरेषु बभूव सिन्धुरधिकः सिन्धोश्च निम्नाशयः।
प्राप्तस्तस्य गुणप्रकर्षयशसा पुत्रः प्रकाशेन्द्रताम्॥
विप्रेन्द्रप्रतिपादितान्नधनभूगोसंघकृष्णाजिनैः।
ख्यातातिशयस्य तस्य तनयः क्षेमेन्द्रनामाभवत्॥"

इस श्लोकसे भी क्षेमेन्द्रका ब्राह्मण होना सिद्ध होता है। यदि कभी अवकाश मिल गया, तो "क्षेमेन्द्र" नामक एक बहुत बड़ी पुस्तक लिखूँगा, जिसमें बहुत विस्तारसे क्षेमेन्द्रका परिचय और उनके सब ग्रन्थोंकी पूरी-पूरी समालोचना रहेगी।

रविसे

ढलते देख सूर्यको रजनी—
सम्बोधित कर बोली यों!
अरे सूर्य! मतवाली लाली—
ढलती जाती तेरी क्यों?
मैं तो हूँ जननी तेरी ही—
नित देती नवजीवन दान!
सुखद सलोने मतवाले—
नित प्रकटित करके दिवस महान्!!

—कृष्णचन्द्र मुद्गल 'दुःखित'

विडम्बना

ठाकुर अच्युतानन्द सिंह

अगर विषमें मृत्यु है, तो शान्ति भी है। अगर कलाधरकी शीतल शुभ्र ज्योत्स्नाकी सुधाधारामें विरहिणियोंको जलानेकी शक्ति है, तो जलते हुएको उबारनेकी भी। अगर कामिनियोंकी चितवनमें घायल करनेकी शक्ति है, तो मरहम पट्टी करनेकी भी। अगर निशाकी घोर अँधियालीमें निर्जनता है, तो भय भी अगर बरसाती निशीथकी श्यामल मेघ-मालाओंमें भयावनी बनानेकी शक्ति है, तो दीपक-दानकी भी। तो क्या इसी तरह उसका भी जीवन भिन्न-भिन्न प्रतिकूल वस्तुओंका मिलन है? किसका? शिविकाका। हाँ, उसका भी जीवन अमृत है और हलाहल भी। उसके हृदयकी धुकधुकीमें दर्द है और आह भी। आशाकी शीतल ज्योति है और नैराश्यकी घनघोर घटा भी। क्यों? क्यों क्या, बस यही तो इस संसारकी विचित्रता है।

जीवनके अन्तिम छोरसे कोई उसके कानोंमें कहता, "दुर पगली, अब व्यर्थका प्रयास न कर।" दूसरे छोरसे कोई "कहता, शिविका, धैर्य्य रखो।' किन्तु चिन्ता सर्वदा उसके प्यासे हृदयपर अपनी चिता तपाये रहती। आशा भी यथाशक्ति उसे बुझाती रहती, सींचती रहती। उसके जीवनका पतझड़ था। सभी हरे-भरे पत्ते झड़ चुके थे, उड़ चुके थे। फिर भी कुछ हरियाली थी, सरसता थी, उत्सुकता थी, एक तरहकी मस्ती थी, जो हजारोंमें एक थी। तो क्या प्राकृतिक वसन्तके प्रादुर्भावके पतझड़से उसके जीवन पतझड़में समानता थी? नहीं, वसन्तके पतझड़में तो पत्ते पीले पड़ जाते, नीरस बन जाते, झड़कर उड़ जाते हैं। वृक्ष सूखे शंखकी तरह प्रतीत होते हैं। परन्तु इसकी नीरसता अधिक दिनोंतक रहने न पाती। किसलय लगते, पनपते। फिर वृक्ष अंग-प्रत्यंगसे सज्जित होकर बिहँसने लगते। नवजात पल्लवोंपर बैठकर वसन्त दोनों हाथोंसे मधु लुटाने लगता, थि- थिरककर नाचने लगता। हाँ, उसके कुछ समय ऐसे भी थे कि, प्रेमकी लचीली डालियोंपर झूला झूली थी। मल-निलका शीतल समीर उसके कमनीय केशोंसे खेल चुका था, आनन्दकी मधुर थपकियोंमें सो चुकी थी। उस समय उसका हृदय सांसारिक सुखोंका केन्द्रस्थल रह चुका था। वह हँस चुकी थी, खेल चुकी थी; परन्तु कितने दिनोंतक? उसके वे स्वर्ण दिन पूसके दिनके समान बीत चुके। केवल स्मृति-स्वरूप हृदयमें एक अमिट रेखा बच रही थी।

दुनिया आनन्दकी सामग्रियाँ पाकर हँसती है, खेलती है। पर शिविका दूसरोंके सुखको देखकर तिलमिला उठती है, उसकी आँखोंमें प्रलय नाच उठता है। उसका जीवन अनेक शंका-समाधानोंके रूपमें परिणत हो गया है। पड़ोसके धूलि-धूसरित बच्चोंको देखकर वह बड़े चावसे पुकारती, गोदमें बिठाती; शरीरमें लगी हुई धूलिको झाड़ती, चूमती। उस समय उसकी आँखोंमें प्रसन्नता नृत्य करने लगती; परन्तु कितनी देरतक? कुछ क्षण बाद ही मुखाकृति पीली पड़ जाती, आँसू आ टपकते। वह बच्चोंको झिड़क देती, डाँट देती, भगा देती। उतावलीसे बड़बड़ाने लगती। साधु-अभ्यागत आते, बड़ी खातिरके साथ नम्रतापूर्वक अतिथि-सत्कार करती। साधु लोग ठाकुरजीका भोग लगाते, शिविका भी चरणामृत लेती। प्रतिदिन ब्रह्मवेलामें उठती। हाथमें एक छोटी-सी बाँसकी बनी डाली लेकर न जाने कहाँ जाती। ... शिवमन्दिरसे आते समय कितनोंने उसे देखा था। उसके जीवनके दिन प्रतिवर्ष हँसते हुए आते हैं और रोते हुए चले जाते हैं।

२

चन्द्रभाल अपने गाँवके साधारण परिस्थितिके मनुष्योंसे एक हैं। संस्कृत-साहित्यसे प्रेम रखते हुए भी वे एक नये विचार और नयी शैलीके आदमी हैं। यद्यपि वे जानते थे कि, जिस कामको मैं चाहूँ वह हो सकता है, मेरी इच्छाके विरुद्ध कोई काम नहीं हो सकता, तो भी वे अपनी स्त्रीके विपरीत चूँ तक नहीं करते थे। उनकी स्त्री जो चाहती, वही होता। चन्द्रभाल, दरबारियोंकी तरह, हाँ-में-हाँ मिलानेके सिवा कुछ नहीं कर सकते थे। अगर पत्नीकी इच्छाके विरुद्ध कुछ बोलते तो, वह तुरत कह उठती, "इसी लिये तो आपकी यह दशा हो रही है। अपने साथ-साथ मुझे भी सत्यानाशको पहुँचा रहे हैं।" चन्द्रभाल चुप रह जाते। अपनी स्त्रीकी बोलीका मर्मातक नहीं समझते। अपनी भूलोंको ढूँढ़नेके लिये विवेचन शक्ति दौड़ाते; पर कुछ नहीं पाते। चिन्ता बढ़ती ही जाती थी। हिम्मतकर फिर पूछते, "जरा कहो भी तो, मैं तुम्हारा क्या सत्यानाश कर रहा हूँ?" अविलम्ब ही उत्तर मिल जाता, "अभी तो क्या हुआ है, आगे और होगा।" चन्द्रभाल और घबरा जाते। बेचारे उसकी बातोंका छोर ही नहीं पाते। "अच्छा न कहो, तुम्हारी ईच्छा।" कहते हुए दरवाजे जाकर बैठ जाते। किन्तु वहाँ भी अपनी स्त्रीकी नुकीली बातें, रह-रहकर उन्हें व्याकुल कर देती थीं।

ढलती जवानीका युवतीसे विवाह-सम्बन्ध भी बड़ा ही महत्त्व और ममत्व रखता है। शायद इसीसे चन्द्रभाल भी उसके दास थे। चन्द्रभालकी उम्र करीब ४९ वर्षकी थी और शिविकाकी २९की। उनकी पहली पत्नीको यह संसार छोड़े एक जमाना बीत गया था। यह शिविका उनकी दूसरी स्त्री थी। इसीलिये ये उसके अनन्य दास थे। शिविकाकी कनखियोंके इशारे नाचना, उसकी हृदयवीणाकी झङ्कारपर ताल देना, उसकी नस-नसकी रक्त-संचालन-क्रियाको परखना, उसकी मनचाही वस्तुओंको जुटाना ही उनका काम था। बस, शिविकाके मनमें जो आता, वही होता। शिविकाकी गोद सूनी थी।

शिविकाको पूरा विश्वास था कि, साधु-फकीर जिस बातका वचन दे देंगे, वह अवश्य हो जायगी। इसीलिये उसे साधु-फकीरोंसे बड़ा प्रेम था। कोई ऐसा दिन नहीं जाता जिस दिन चन्द्रभालके दरवाजेपर दो-चार साधु नहीं डटे रहते। शिविका उन लोगोंको बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे खिलाती-पिलाती और चलते समय विदाई देती। उन लोगोंकी खातिरदारीमें ही उसे तृप्ति मिलती, शायद उसीमें उसकी दुनिया भी बसती थी; परन्तु अपनी बटोरी हुई कौड़ी-कौड़ी सम्पत्तिका अपव्यय देखकर चन्द्रभालकी आत्मा कलप जाती। इन्हीं सब यंत्रणाओंसे दबकर चन्द्रभाल हिम्मत कर दूधकी उफानकी तरह आन्तरिक भावोंको व्यक्त करनेकी कोशिश करते; पर शिविका उसपर पानीके दो-चार छींटे छिड़क देती। उफान अन्तःपुरमें जाकर सो जाती। अगर कुछ बोलते, तो शिविका खाना-पीना छोड़ देती; इसी डरसे कुछ नहीं बोलते। कोई ऐसी युक्ति और शक्ति नहीं थी, जो शिविकाको इस सत्यानाशके पथसे विचलित करती। उसके हृदयपर सांसारिक कल्पनाओंकी अमिट छाप लग चुकी थी। शिविकाके लिये साधु-फकीरोंकी बात ब्रह्म-रेख थी।

३

हाँ, एक रोज शामका समय था और जाड़ेका दिन। चन्द्रभालके दरवाजेपर साधुओंकी एक बड़ी मण्डली पहुँची। उन लोगोंकी याचना थी कि, "सभी मूर्त्तियोंकी एक-एक कम्बल और ठाकुरजीके भोग लगानेका एक सालका सामान चाहिये।" शिविका अन्दर थी केवल चन्द्रभाल ही दरवाजेपर बैठे थे। इन साधुओंकी माँग सुनकर चन्द्रभालने दाँतों तले अँगुली दबा ली। पहले तो अथक परिश्रम किया कि, किसी तरह कुछ ले-देकर शिविकाके अनजानमें ही गला छुड़ा लिया जाय; परन्तु यह कब होनेवाला था। ये हठी साधु अपनी टेकसे ईंचभर भी नहीं डिगे। चन्द्रभालके हृदयमें आँधी तो

चल ही रही थी, आज लूक भी लग गयी । जब चन्द्रभाल इस बातको पूरी तरह जान गये कि, इन साधुओंसे पिण्ड छूटना मुश्किल है, तब दबे पावोंसे, डरते-डरते, शिविकाके समीप गये और कहने लगे, 'देखो न साधुओंका एक झुण्ड आया है । उन लोगोंको माँगको रकम इतनी बड़ी है कि, बिना कर्ज लिये पूरी नहीं की जा सकती । अब तो केवल भरण-पोषणके लायक जायदाद भी बच रही है । तब अगर इसे भी उड़ा दिया जाय, तो काम कैसे चलेगा । धन रहनेपर ही दुनिया दोस्त है । काबू रहनेपर ही दुनिया भी काबूवाली दीख पड़ती है ! जब यह सब कुछ भी नहीं रहेगा, तो दुनिया हम लोगोंपर जली नज़रोंसे भी दृष्टिपात न करेगी ।" इन सब बातोंको सुनकर शिविकाका हृदय भाँड़के चनेके समान भुन उठा । शिविका बड़े तीव्र स्वरमें बोली, "मैं तो आपकी सभी बातोंको सिरपर चढ़ाती हूँ, पर दुनिया मुझे देखकर हँसती क्यों है ?"

"क्यों, दुनिया तुम्हें देखकर क्यों हँसती है ?"

"यही कि, चन्द्रभालको सन्तान नहीं है । शिविका बाँझिन है ।"

"हँसने दो । दुनिया हँसकर क्या करेगी ? ईश्वरने ही हम लोगोंके नसीबमें वृक्ष नहीं लगाया; तब फल पानेकी इच्छा रखना व्यर्थ है । अगर धन रहेगा, तो दुनियाकी हँसी नहीं लग सकती ।"

"अगर सारी सम्पत्ति बिक जानेपर भी भगवान् मेरे दुःखको सुन लेगा, तो मैं, रंक हो जानेपर भी, रानी ही रहूँगी । दुनियाकी हँसीका प्रत्युत्तर मिल जायगा । मेरी छातीकी प्यास बुझ जायगी ।"

"तो क्या तुम्हें विश्वास है कि, धन लुटानेसे ही तुम्हारी गोद भर जायगी ?"

"अवश्य ।"

"नहीं, तुम्हारा यह खयाल गलत है ।"

"आप यह क्या बोलते हैं । ऐसा न बोलिये । ईश्वर सुनते हैं ।"

शिविका दान-पुण्य करनेका अवहेलना और साधु-फकीरों पर अविश्वासकी बातें सुनकर काँप उठी थी । वह आकाशकी ओर दोनों हाथोंको उठाकर न जाने किसे प्रणाम करने लगी ।

"नहीं, शायद तुम नहीं जानती हो । आजकलके कितने साधु-फकीर हैं, ढोंगी हैं । गैरिक वस्त्रमें रहनेसे इन लोगोंका उदर-पोषण होता है; इसलिये इसे ये लोग एक रोजगारका साधन समझते हैं ।"

"आप तो यों ही सब बातें जान जाया करते हैं ! रहने दीजिये अपने वेदको । उन साधुओंकी माँगको पूरी करनेका प्रबन्ध कीजिये ।"

चन्द्रभालकी एक भी न चली । छातीपर पहाड़ रखकर उन साधुओंकी विदाई करनी ही पड़ी ।

रात-दिन चन्द्रभाल इसी चिन्तामें पड़े रहते, ईश्वरसे विनय करते, ताकि शिविकाकी बुद्धिमें परिवर्तन हो जाय । सिरपर दरिद्रताके नंगे नृत्यका आभास देखकर काँप उठते । इसी परिस्थितिमें शिविकाने एक रोज प्रलय-सा प्रस्ताव पेश किया, "मेरी तबीयत चाहती है कि, सब तीर्थोंका एक बार दर्शन कर आऊँ । कहिये आपकी क्या राय है ?"

चन्द्रभालके ऊपर आकाश टूट पड़ा ! कराहती हुई आवाजमें बोले, "तीर्थ करनेके लायक पैसे कहाँ हैं ! इतना भारी महायज्ञ मुफ्तमें कैसे पार लगेगा । कहाँसे लाऊँ ?"

"कहींसे तो प्रबन्ध करना ही पड़ेगा । बिना तीर्थों का दर्शन किये मनकी मुराद पूरी नहीं हो सकती ।"

शायद किसी साधु-फकीरने उसे कह दिया था कि, "तीर्थोंका दर्शन करनेसे ईश्वर तुम्हारे ऊपर खुशी हो जायँगे । तुम्हारा दुःख दूर हो जायगा ।"

चन्द्रभालने बहुत समझाया-बुझाया; पर सब व्यर्थ । अन्तको थोड़ी भी जो जायदाद बची थी, उसे ही रेहन रखकर कर्ज लेना पड़ा ।

एक-एककर चन्द्रभाल और शिविका सारे तीर्थों दर्शन कर आये । हाँ, घर वापस आते समय, शिविकाके

में एक पोटली थी, जिसे वह दूसरोंको छूनेतक भी नहीं देती थी। न जाने उसमें उसके हृदयकी कौन-सी अमूल्य विभूति थी।

४

साल भरके बाद।

चन्द्रभाल अब दाने-दानेको मुहताज हैं। एक-एककर सारी सम्पत्ति बिक चुका है। जो बचा है, उसपर महाजनने कुर्की करा ली है। नीलामी भी हो चुकी है। सिर्फ रहने भर का एक मकान बच रहा है। अब तो उनके यहाँ साधु-फकीर भी नहीं आते। भिखमंगे ब्राह्मण भी अब पुण्य लुटाने नहीं आते। दुनिया ताकतीतक नहीं। ताके ही क्यों? अब उनके पास है ही क्या है। दुनिया तो खूब छूटकर लूट चुकी है। उनके धनके साथ मौज उड़ा चुकी है। चन्द्रभाल बिक चुके हैं। अपने स्वर्ण घरको लुढ़का चुके हैं। पर शिविका? शिविकाके हाथोंमें जो तीर्थसे लौटते समय एक पोटली थी, उसमें उसके जीवनकी सबसे अमूल्य सम्पत्ति थी। वह थी तीर्थ-स्थानोंमें बिकनेवाले देव-देवताओंके चित्र। उसे ही उसने घरके दीवारमें टाँग रखा है। धूप दिखाती है, पूजा करती है। सारे बदनमें चन्दन लपेटे हाथमें रुद्राक्षकी माला लिये, चित्रोंपर ध्यान रखती है। चित्रोंमें ही स्वर्ग पानेका मार्ग ढूंढ़ती है।

५

दो साल बाद।

गर्मीका दिन था और वैशाखका महीना। जलते हुए गाँवोंकी महक लेकर पुरवा हवाका एक झोका पश्चिमावस्थित शंकरपुर ग्रामको भेदता हुआ पार हो गया। उस समय, शंकरपुरके पूरब, कुछ दूरपर, एक मैदानमें, एक साधुने अपना आसन जमाया था। कुछ दिनोंके बाद यह अफवाह उड़ी कि, वे बड़े ही सिद्ध पुरुष हैं; जो कह देते है, वह हो जाता है। दूसरोंके मनकी बातें बिना बताये ही जान जाया करते हैं। फैलते-फैलते यह अफवाह बिजलीकी तरह दूर-दूरतक फैल गयी। दूर-दूरसे लोग मनोवाञ्छित फल पानेकी इच्छासे आने लगे। उनकी कुटीपर सदा भीड़-सी लगी रहती। प्रतिदिन सैकड़ोंकी तादादमें स्त्रियाँ आने लगीं। धीरे-धीरे यह खबर शिविकाके कानोंसे भी नहीं बच सकी। खबर पाकर शिविका आनन्दातिरेकसे विह्वल हो उठी। मन-ही-मन बाबाके चरणोंमें हाजिर होनेकी शिविका भी तैयारी करने लगी। एक रोज शिविकाने चन्द्रभालसे कह ही तो दिया, "सुनती हूं, शंकरपुरमें एक बड़े भारी महात्मा आये हुए हैं, मेरी भी इच्छा है कि, उनके चरणोंमें हाजिर होती।"

पुत्रकी इच्छा किसे नहीं धर दबाती। गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करनेवाले सभी उसके दास हैं। चन्द्रभाल भी उसकी बातोंकी उपेक्षा नहीं कर सके। चन्द्रभाल हँसते हुए बोले, "जैसी तुम्हारी इच्छा। पर मैं भी साथ चलूँगा।" पतिका आश्वासन पाकर शिविका जानेकी तैयारी करने लगी। दूसरे ही दिन, भोरमें, चन्द्रभाल और शिविकाने वहाँके लिये प्रस्थान किया। दिनके दस बजे होंगे, वे लोग वहाँ पहुँच गये। हजारोंकी भीड़ थी। शिविकाने बाबाके चरणोंपर पूजा चढ़ायी; अपने दुःखको कह सुनाया। बाबाने बगलकी धुईंसे भभूत उठाते हुए शिविकाके, अंचलमें दे दी। शिविकाने अपने अंचलके एक छोरमें उसे बाँध लिया। अन्तको एक-एक कर सब भीड़ हट गयी; पर शिविका और चन्द्रभाल अभी नहीं हटे थे। एक बगल पाँच-छः आदमी और बैठे थे। आपसमें धीरे-धीरे न जाने क्या बातचीत कर रहे थे। कुछ ही देरके बाद वे सब उठकर बाबाके सामने गये और एकने अपने पाकेटसे एक कागज निकालकर बाबाके हाथोंमें दे दिया। बाबाका मुखमण्डल उस कागजको देखकर पीला पड़ गया। वे काँपने लगे। उनमें एक बोलने लगा,—"धूर्त, बदमाश कहींका, इसे पहचाना कि, नहीं? यह क्या है?"

बाबा इसका कुछ भी उत्तर नहीं दे सके। क्षणभरमें, जादूकी तरह, उन लोगोंकी वेश-भूषामें परिवर्तन हो गया। झनझनाती हुई बेड़ी बाबाके हाथोंमें, पड़ गयी। कमरमें

रस्सी लगाकर बाबाको मारते-पीटते सब ले चले। चन्द्रभाल और शिविका इन सब बातोंको देख रहे थे। शिविका तो अवाक् हो गयी। चन्द्रभाल बोले, "देखा न आजकलके साधुओं को ? तुम्हें इन्हीं लोगोंपर विश्वास है। यह एक नम्बरका बदमाश है। शायद चोरी करनेका अभियोग इसपर चलाया गया है। उसीके डरसे यह अपने रूपको बदलकर साधु बना था। आजकलके प्रायः सब साधु ऐसे ही होते हैं।"

शिविकाके विस्तृत नीले हृदयाकाशके एक कोनेसे एक तारा उगा और ज्योति करता हुआ अस्त हो गया। वे वहाँसे घर वापस आये। शिविका उस घरमें चली गयी जिसमें उसके हृदयकी अमूल्य निधियाँ टँगी थीं। पहुँचकर शिविका उन चित्रोंको उतारने लगी और दुर्बल-कल्पित विड़म्बनाओंका सर्वनाश करने लगी। उस घोष हुआ "विड़म्बना ! विड़म्बना !!" आजन्म शिविकाके श्वाँसोंसे शब्द होता रहा, "विड़म्बना ! विड़म्बना"

उसका जीवन अमृत था, विष था।
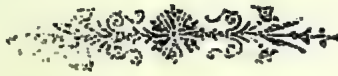
मेरे शिकारके अनुभव

राजा कीर्त्यानन्द सिंह बहादुर बी० ए० (बनैली-नरेश)

(४)

सन १९०४ ई० के अगस्त (सावन-भादो) महीनेकी बात है। चारो ओर बाढ़ आयी हुई थी। एक दिन अपने निवास-स्थानके निकट ही एक शेरके आनेकी खबर पाकर मुझे बड़ा जोश आया एक हलवाहा अपने खेतमें हल चला रहा था। अचानक उसने एक शेरको अपने खेतमें एक तरफसे दूसरी तरफ जाते देखा। उस समय सूर्योदय हो रहा था। अपने दो बेचारे भयभीत बैलोंके सिवा अन्य कोई साथी न रहनेके कारण वह अपने निकटस्थ गाँवकी ओर बड़ी तेजीसे दौड़ पड़ा। गाँववालोंने ज्यों ही शेरकी खबर सुनी, त्यों ही कुछ देरके लिये सवेरेके सभी कामोंको बन्दकर, शेरको देखनेके लिये सब जंगलको चल पड़े। जबतक वे वहाँ पहुँचे, तबतक शेर आमके घने बागीचेमें—जो पटुएके खेतोंसे घिरा था—घुस गया। वहाँ उसे छिपनेकी अच्छी जगह मिल गयी। उन लोगोंमेंसे कुछ इस खुशखबरीको सुनानेके लिये मेरे पास दौड़ आये।

खबर सुनते ही मेरे साथी शिकारियोंमें हलचल मच गयी। कुछ तो घोड़ेपर सवार होकर शेरकी टोह लेने दौड़े और कुछ शेरका शिकार देखनेके लिये पैदल ही पीछे पड़े। मेरे सभी हाथी चाराके लिये बाहर निकल गये थे। पिछले पहरसे पहले उनके लौटनेकी आशा न थी। तमाशा देखनेवालोंकी भीड़ इतनी बढ़ी कि, कुछ लोगोंने यह विचार किया कि, पैदल ही चलकर शेरको मारनेकी कोशिश की जाय। साथ ही, कुछ लोगोंने यह भी चाहा कि, ढोल बजाकर शेरको बाहर निकाला जाय और तब फिर गोलियाँ चलायी जायँ।

जब ये सब बातें हो ही रही थीं कि, जलपानकी घण्टी बजी और हम लोग कुछ देरके लिये अपने शिकारकी तैयारी छोड़कर खाने लगे। किन्तु मैं सच कहता हूँ, जोशके मारे खानेका आनन्द नहीं मिला। प्रत्येक क्षण उस हृदयको देखनेकी व्यग्रता बढ़ रही थी। उस समय एक क्षणका रुकना भी मुझे बड़ा बुरा लग रहा था।

मेरे हाथी वापस न आ सके, यद्यपि इसी कामके वास्ते चारो ओर सवार भेजे गये थे। लगभग तीन बजे दिनतक हम लोग रुके रहे। आखिर सभी हाथी वापस आये। उन्हें आरामका मौका दिये बिना हो, महावतोंको भी खानेका समय न देकर, मैंने गद्दियोंके कसनेका हुक्म दिया। जितनी शीघ्रतासे हो सका, हम लोग उस स्थलपर पहुँच गये।

वहाँ पहुँचनेपर हम लोगोंने उस जानवरके पंजेकी छापें देखीं। हम लोगोंको यह विश्वास हो गया कि, वास्तवमें वह शेर ही है—तेन्दुआ नहीं, जैसा कि, हमारे दलके कई लोगोंने सोचा था। पहले आमके बागीचेका चारो ओरके पटुएके खेतोंको हम लोग रौंदने लगे। कुछ ही मिनटोंके अन्दर शेर बाहर निकला। मेरे दलके एक शिकारीने गोली चलायी। आगेके एक पैरमें शेरको गोली लगी; पर इतनेसे ही वह शक्तिहीन नहीं हुआ, क्रोधके आवेशमें उसने हाथियोंपर धावा किया। एक हाथीके मस्तक-पर उछलकर पंजेसे आघात करने लगा। पीड़ित हाथीने उसे इतने जोरसे झकझोरा कि, वह दूर जा गिरा। गिरते ही जंगलमें घुस गया। वहाँसे उसे फिर बाहर निकालना बड़ा कठिन था।

मेरे साथ लगभग दस हाथी थे। चार हाथियोंको छोड़ सभी बहुत डर रहे थे। महावत और शिकारी हाथी भी जंगलके भीतर घुसनेमें बड़े भयभीत हो रहे थे। कारण, बड़े-बड़े वृक्षोंकी डालोंसे जल्दबाजीमें चोट लगनेका भय था। साथ ही, कँटीली लताओं और झाड़ियोंने सबके शरीरको नोच-खरोच डाला था। हाथियोंके ही नहीं, हम लोगोंके शरीरमें भी यत्र-तत्र खून निकल आया था। मेरे दलमें ऐसा कोई न था, जिसकी पोशाक खराब न हो गयी हो। सबसे बढ़कर निराश होनेकी बात तो यह थी कि, जंगलमें अपनी आँखों शेरको घुमते देखकर भी हम लोग उसे ललकार न सके।

सूरज डूबनेमें केवल डेढ़ घण्टेकी देर थी। तो भी बड़ी कड़ी धूप थी। हम लोग थक गये थे। विश्रामकी बड़ी इच्छा हुई; क्योंकि चार हाथियोंके दलके साथ छः बार जंगलको रौंदनेपर भी शेरका कुछ पता न चला। गर्मीसे सब व्याकुल हो गये। बागीचेसे बाहर निकलकर, करीब आध घण्टेतक साफ हवामें चित्तको शान्त किया। फिर नये जोशके साथ अपने उसी काममें लग गये।

इस बार भाग्यने हमारा साथ दिया। ज्यों ही हम लोग भीतर घुसे, त्यों ही एक दँतैल हाथीने, अपनी राहको साफ करनेकी नीयतसे, एक घनी झाड़ीकी लत्तरदार लम्बी शाखाओंको सूँड़से ऊपर उठाया। सौभाग्यसे शेर उसी झाड़ीमें दबककर बैठा था। हाथीने उसे एक ठोकर दी। मैंने अपनी प्यारी बन्दूक (·५७७) की दोनों नालें उसीपर साफ कीं। वह बड़े जोरसे गुर्राया। एक ही झपट्टेमें वह मेरी दाहिनी ओरके एक हाथीपर टूट पड़ा! हाथी डरपोक था, डरकर पीछे घूम गया और अपनी जगहसे भागनेवाला ही था कि, शेरने उसके पिछले दाहने पैरको पकड़कर अत्यन्त क्रूरतासे भँभोर डाला। मुझे कोई दूसरा उपाय न सूझा। मैं शून्य आकाशमें दनादन गोलियाँ दागने लगा; क्योंकि शेरपर वार करनेसे सम्भव था कि, कोई गोली हाथीके पैरमें लग जाय। इसी कारण मैं लक्ष्य-हीन गोलियाँ छोड़ रहा था; किन्तु जो मैं चाहता था, वही हुआ भी। शेरने हाथीका पिण्ड छोड़ दिया। इस समय शेरके शरीरसे बहुत खून बह रहा था। मेरे बड़े भाईने अपने हाथीको आगे बढ़ाया। मैंने उन्हें उस शिकारपर हाथ साफ करनेका मौका दिया। परन्तु हिम्मती शेर चुप न बैठा रहा। उसने फिर मेरी बायीं ओरकी एक हथिनीको ललकारा; उसका एक पिछला पाँव पकड़ लिया। बेचारी भीत—प्रकम्पित होकर बैठ गयी। हथिनी भी बड़ी थी। उसके बैठते ही बड़ा तहलका मचा। उस समयका दृश्य दुःखजनक ही नहीं, बरन् बड़ा भयोत्पादक भी था। कुछ देर तक हथिनी शान्त रही। शेर उसकी पीठपर जमा रह गया। सवार और महावत प्राण ले भागे।

हथिनीके ऊपर कोई आदमी न रहनेके कारण मैंने आखिरी गोली चलायी। शेर लुढ़ककर ढेर होगया! हथिनीकी जान-में-जान आयी, वह खड़ी हुई। मुझे यह बात खेदके साथ लिखनी पड़ती है कि, बहुत यत्न करनेपर भी विषैले लहूके कारण, बेचारी हथिनी दो महीनेसे ज्यादा न बच सकी?

यह गुस्ताख़ शेर, जिसने मेरे तीन हाथियोंको घायल करनेका दुस्साहस दिखलाया था, अन्तमें अँधेरा होतेहोते मारा गया। वह बहुत बड़ा जानवर था। उसकी लम्बाई ग्यारह फीटसे एक ही इञ्च कम थी। उसका मुखड़ा भी बड़ा और भयावना था। कोसी नदीके किनारेसे बहुत दूर पूरबकी तरफ उसका निकल आना एक आश्चर्यजनक बात थी। मैंने बस्तीके आसपास तेन्दुओं और चीतोंके आनेकी खबरें, तो बहुत सुनी थीं; लेकिन शेरकी नहीं। सम्भवतः बाढ़के कारण ही वह इस ओर निकल आया था।

एक बार शिकारकी यात्रामें हम लोग बारह दिनोंतक व्यर्थ ही एक जगह-से-दूसरी जगह घूमते रहे! प्रतिदिन शिकारकी खोजमें कैम्पको आगे बढ़ाते रहे। 'बहुरा' बस्तीके आसपास बनैले भैंसेकी खबर पाकर हम लोग उसी ओर चल पड़े। रास्तेमें 'करमनचक'में डेरा डाला। कैम्पके समीप ही कोसी नदीकी पुरानी धारा बहती थी। उसमें अगणित मगर थे। उसे मगरोंकी खान ही समझिये! हमने बहुत

मगरोंका शिकार किया, जिनमेंसे तीन तो करीब १८ फीट-तक लम्बे थे !

एक दिन, करसनचकके कैम्पमें आराम कर, नौकर और रसोइया तथा सारे सामानको 'बहदुरा'के लिये रवाना कर, हम लोग भी अपने हाथियोंपर सवार हो पीछे-पीछे चले। वहाँसे 'बहदुरा' पाँच मील दक्षिण था। यात्राको मनोरंजक बनानेके लिये हमने असली रास्ता छोड़ दिया। जंगल-ही-जंगल हिरनों और चिड़ियोंका शिकार करते हुए आगे बढ़े। उस दिन शिकार भी बहुतेरे हाथ लगे; किन्तु रातको हम लोगोंको दुःखकी तीखी अनुभूति भी हुई। जबतक हम लोग अपने लक्ष्य स्थानके कुछ पास पहुँचे, तबतक भी असबाबवाली बैल-गाड़ियोंका कुछ पता न चला। अपने प्रस्थानके पहले ही मैंने अपने सब नौकरों और सामानोंको 'बहदुरा'के लिये रवाना कर दिया था; परन्तु यहाँ उनका कुछ चिह्न भी न पाकर मैं झुँझला उठा।

गोधूलिकी बेला थी। धीरे-धीरे अंधेरा बढ़ता ही गया। आस-पास गीदड़ोंने शोर मचाना आरम्भ कर दिया, मानों वे वहाँ हमारे पहुँचनेका घोर प्रतिवाद कर रहे हों !

हम लोग वहीं रुके। कान लगाकर बैलगाड़ियोंकी आहट लेनेकी कोशिश करने लगे। कहीं कुछ न पता चला। हम लोग बिलकुल सूनसान जगहमें थे। न वहाँ कोई बड़ा सायादार वृक्ष ही था, न रास्ता बतलानेवाला कोई आदमी ही मिला। बड़ी विकट परिस्थिति थी। रात क्रमशः अँधेरी होती जा रही थी। बहुत दूर टिमटिमाती हुई रोशनी दीख पड़ी। हम लोगोंने भाँपा कि, 'बहदुरा' पास ही है। धीरे-धीरे उसी ओर बढ़े। घने अँधेरेके कारण, बड़ी-बड़ी दिक्कतोंके बाद, करीब दो घण्टेमें, हम लोग बस्तीके बिलकुल नजदीक पहुँचे। वहाँ जोरसे चिल्लाकर पुकारा गया। बन्दूककी कई आवाजें भी की गयीं; पर कहींसे कुछ प्रत्युत्तर न मिला। उलटे बस्तीवाले डाकुओंका
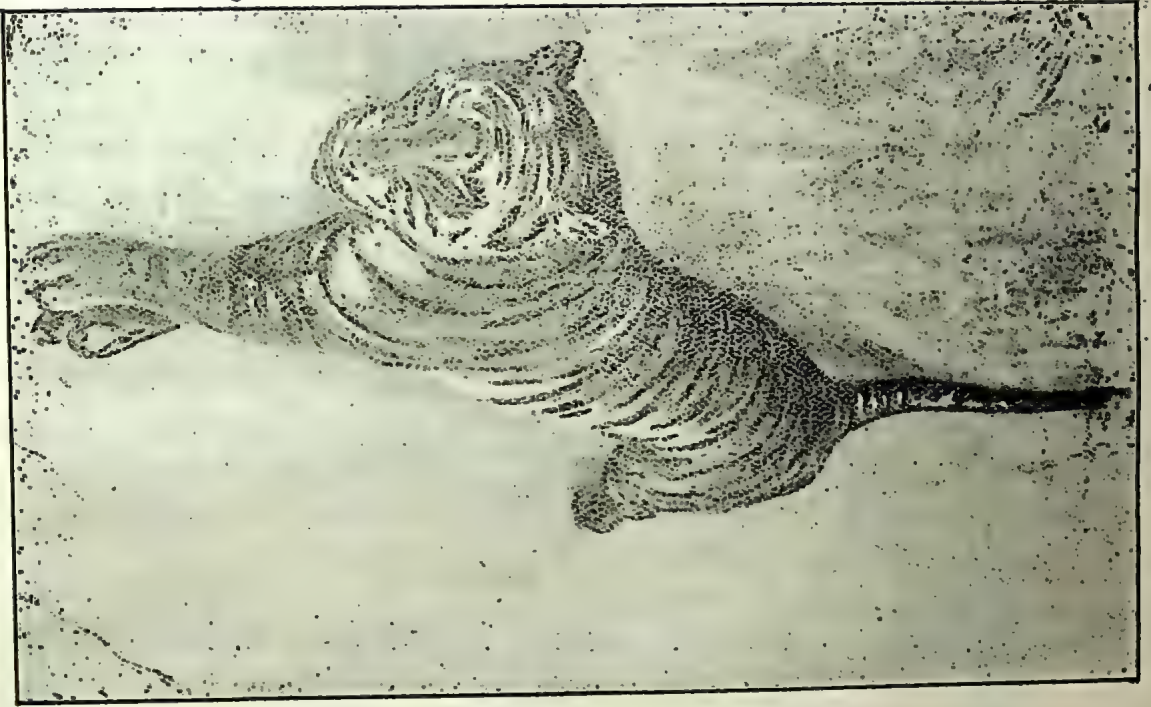
इस गुस्ताख शेरने मेरे तीन हाथियोंको घायल करनेका दुस्साहस दिखलाया था

दल सज्झकर हम लोगोंकी ओर बन्दूककी गोलियाँ चलाने लगे ! हम लोग बड़े चक्करमें पड़े ।

जल्दीसे मैंने अपने कुछ आदमियोंको बस्तीमें भेजकर अपना परिचय दिलाया । ऐसा करनेपर हम लोग रात-भर के लिये बस्तीमें एक बड़े सघन वृक्षके नीचे उतरे; लेकिन इतनेसे ही उस रातके दुर्भाग्यका अन्त नहीं हुआ। दो घण्टेके बाद ही मूसलधार वर्षा होने लगी। अशुभ-सूचक बिजलियाँ कड़कने लगीं। वज्र घहराने लगे रात बड़ी कष्टदायिनी हुई !

कुछ देरके बाद शनैः-शनैः आकाश स्वच्छ हुआ। पूर्व-दिशाकी ओर उषाकी लाली झलकने लगी। सूर्योदय हुआ। उस समय गाड़ियोंको बस्तीकी तरफ आते देखकर हम लोग बड़े प्रसन्न हुए। नौकरोंसे विलम्बका कारण पूछनेपर ज्ञात हुआ कि, गाड़ीका रास्ता अच्छा नहीं था, चारो ओर जंगल-ही-जंगल था, मुश्किलसे धीरे-धीरे गाड़ियाँ आ सकती थीं। गाड़ियोंके साथवाले हाथी एक दलदलमें तरह फँस गये थे, बड़ी मशक्कतके बाद बाहर निकल सके।

नाश्ता कर चुकनेके बाद हम लोग शिकार खेलने निकले। रातके जागरण और थकावटके कारण हम लोग थोड़ी देरमें लौट आये। कुछ हिरन और चिड़ियाँ मिलीं। बनैले भैंसोंका कुछ भी पता न चला। रातको शेर की आवाजें हुई थीं, उन्हींके भयसे सभी भैंसे वहाँसे निकल भागे थे।

दोपहरके बाद हम लोग तीतरके शिकारमें निकले। ... भी लगा खूब। सौभाग्यसे एक २३ फीट लम्बे मगरका शिकार किया ! अबतक मैंने मगरके जितने शिकार किये, सबसे यही अधिक लम्बा है।

वेदना

अपनी मूक वेदनाका मैं पाती ओर-न-छोर !
किस निर्ममने दिया अचानक अन्तस्तल झकझोर !!
किस छलियाने मुझ दुखियापर छोड़ा बाण कठोर !
हाय, तड़पती रहती निशिदिन धर आशाकी डोर !!
नहीं टूटते नखके मोती दिशा न करती शोर !
कौन कहेगा उनसे जाकर मेरी विपद अथोर ?

—मैथिलीशरण "नेहनिधि"

"द वैदिक गाड्स"

प्रोफेसर रुद्रदेव शास्त्री, वेदाचार्य, दर्शनालङ्कार

'द वैदिक गाड्स"—ऐज़ फिगर्स आफ़ बयालाजी (The Vedic Gods—as figures of Biology) नामकी पुस्तक डा० वी० जी० ऐले, एल० एम० एण्ड एस ने अभी हाल (१९३१ ई०)में हा प्रकाशित की है। पुस्तकके प्रारम्भ-में एडवर्ड जे० टामस, एम०ए०, डो०लिट् (जो कि "द लाइफ आफ़ बुद्ध" और "ट्रॉसलेशन्स आफ़ द ऋग्वेद ह्मिस" के लेखक हैं) का प्राक्कथन है। वाई० जा० नेड्गिर, एम० एस० (जो कि बाम्बे यूनिवर्सिटीके फेलो तथा ग्रैण्ट मेडिकल कालेज, बाम्बेके अनाटमा (शरीर-व्यवच्छेद-शास्त्र) के प्रोफेसर हैं) ने भी पुस्तकको पाण्डु-लिपिको पढ़कर, अल्प शब्दोंमें, पुस्तकका परिचय दिया है, वह भी उक्त पुस्तकमें प्राक्कथनके रूपमें गुम्फित कर दिया गया है। डी० बी० तारापुरवाला सन्स एण्ड को०, किताब महाल, हार्नबाई रोड, बाम्बेको लिखनेसे यह पुस्तक ६॥) में प्राप्त हो सकती है। पृष्ठ-संख्या १३४ है।

इस पुस्तकको पढ़नेसे विदित हो जाता है कि, होरेस हेमन विलसन, रुडाल्फ राथ, मैक्समूलर, मैक्डानल, जिमर, हेलेब्राण्ड और ग्रिफिथ आदि पाश्चात्य देशीय विद्वानोंने वेदार्थ करनेमें जिस प्रक्रियाका अनुसरण किया है, उस प्रक्रियासे कितनी भिन्न वैदिकी-अर्थप्रक्रिया, वैदिक ऋषियों-के मनमें, सम्भव हो सकती है। डा० ऐलेकी पुस्तकको बहुतसी बातें काल्पनिक होनेपर भी सर्वथा निराधार नहीं हैं। उन्होंने अपनी विद्वत्ता और प्रतिभाका सुन्दर परिचय इस पुस्तकको प्रकाशित करनेसे पूर्व ही दे दिया था। वे "द मिस्टीरियस् कुण्डलिनी" और "भगवद्गीता—ऐन एक्सपोजिशन" नामक पुस्तकोंके द्वारा पर्याप्त ख्याति उपलब्ध कर चुके हैं। पुस्तककी हस्त-लिखित प्रतिको पढ़कर प्रसिद्ध ऐतिहासिक श्रीयुत चिन्तामण विनायक वैद्यने अपनी "द हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर"में लिखा है 'शरीर विज्ञानके अप्रमत्त और सुदक्ष पण्डित डा० ऐलेने ऋग्वेदको गम्भीर आलोचनात्मक दृष्टिसे पढ़कर अपनी विशुद्ध प्रतिभा एवं सुन्दर कल्पनाके द्वारा, जो नवीन रूप अर्पित किया है, उससे सम्पूर्ण विद्वन्मण्डली निःसन्देह चकित हो जायगी।"

यह उक्ति पुस्तकको आद्यन्त पढ़नेके अनन्तर सत्य ही प्रतीत हुई।

डा० ऐलेका कहना है कि, वैदिक ऋषियोंने बाह्य विश्वका पूर्ण और शुद्ध ज्ञान उपलब्ध कर लिया था। जब उन ऋषियोंने शरीर-विज्ञानपर विचार करना शुरू किया, तब उन्होंने अपनी पूर्व-परिचित संज्ञाओंका व्यवहार, आलङ्कारिक दृष्टिसे शरीर-विज्ञानमें भी करना प्रारम्भ किया। अतः ये संज्ञाएँ द्व्यर्थक अथवा नानार्थक हैं। इनको शरीर विज्ञानके पारिभाषिक शब्दकी भाँति भी समझा जा सकता है। वैदिक देवताओंका क्या स्वरूप है? इसपर बहुतसे व्यक्तियोंने विचार किया है। शौनका-चार्यकी "बृहद्देवता" तथा यास्काचार्यका "निरुक्त" (दैवत काण्ड) इस विषयके प्रधान ग्रन्थ हैं। उनमें वस्तुतः एक ही मुख्य देवता माना गया है। यास्कका कहना है कि, 'महाभाग्याद्देवतायाः एक आत्मा बहुधा स्तूयते।" अर्थात् महा-देवताके ऐश्वर्यके कारण उसी एक देवताको ही नाना नामोंसे स्मरण कर उसीकी स्तुति की जाती है।' "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति"के ऋग्वेदोक्त भावको लेकर मनुजीने भी मनुस्मृतिके १२ वें अध्यायमें कतिपय श्लोक उक्त विषयकी सम्पुष्टिमें ही लिखे हैं; तथापि इस विषयका

प्रधान पुस्तक "बृहद्देवता" ही है। "बृहद्देवता" में इस बातपर विचार किया गया है कि, देवताओंका नामकरण किस-किस कारणसे किया जाता है। "बृहद्देवता"में मधुक, श्वेतकेतु, गालव, यास्क, गार्ग्य, रथीतर और शौनकके मत, प्रधानतासे, प्रदर्शित किये गये हैं। यास्कके निरुक्तमें पृथिवी-स्थान, अन्तरिक्ष-स्थान और द्यु-स्थानके देवताओंकी तीन बड़ी कक्षाएँ मानकर पृथिवीस्थानीय देवताओंमें अग्निको, अन्तरिक्ष स्थानीय देवताओंमें वायु अथवा इन्द्रको और द्युस्थानीय देवताओंमें आदित्यको प्रधान कहा है। अन्य सम्पूर्ण देवताओंका एवं छन्द, स्तोम, ऋतु आदिका भी यथासम्भव उक्त देवताओंके साथ ही सम्बन्ध प्रदर्शित कर दिया गया है। वे इन तीनकी अपेक्षा गौण हैं। यास्काचार्यके निरुक्तसे विदित होता है कि, याज्ञिक, परिव्राजक, ऐतिहासिक और नैदान आदि कतिपय प्रसिद्ध सम्प्रदाय, प्राचीन कालसे ही, वेदके देवताओंकी व्याख्या, भिन्न-भिन्न प्रकारसे करते चले आ रहे थे। यास्कने बहुतसे वैयाकरणों और नैरुक्तोंके मतोंको, "निरुक्त" में उद्धृत करके यह बात भली भाँति सूचित कर दी है कि, ९०० ई० पू० से ही वैदिकी-अर्थप्रक्रियाके सम्बन्धमें तीव्र मतभेद प्रारम्भ हो गया था। "कौत्स"के सदृश कतिपय ऋषि वेदको न केवल स्वयं अनर्थक समझते थे, अपितु अनर्थकताको सिद्धिके लिये शास्त्रार्थ भी करते थे। युक्तियों और प्रमाणोंको प्रस्तुत कर, वेदके अर्थको व्यक्त करनेके निमित्त प्रवृत्त हुए पुरुषोंको भी वे संशययुक्त कर दिया करते थे। वेदकी कठिनता और जटिलता, वेदके दुर्बोध होनेसे, बढ़ती चली जा रही थी। वेदाध्ययन-विषयक नियमोंसे इसकी ही पुष्टि होती है। वेदाध्ययनके नियमोंके साथ ऋषि, छन्द, देवता और विनियोगका ज्ञान भी वेदाध्ययनके लिये आवश्यक कहा गया है; जैसा कि, निम्न श्लोकसे व्यक्त है—

"अविदित्वा ऋषिं छन्दो दैवं योगमेव च।
योऽध्यापयेद्‌ जपेद्वापि पापीयान् जायते तु सः॥"

अर्थात् 'ऋषि, छन्द, देवता और विनियोगको [न] जाने जो पढ़ाता है अथवा जप करता है, वह पापी है।'

इनमें भी दैवत ज्ञान तो परमावश्यक है। वेद[की] कुञ्जी भी यही दैवत ज्ञान है। दैवत ज्ञानकी प्रशंसा [करते] हुए "बृहद्देवता" के प्रारम्भमें लिखा है—

"वेदितव्यं दैवतं हि मन्त्रे मन्त्रे प्रयत्नतः।
दैवतज्ञो हि मन्त्राणां तदर्थमवगच्छति॥"

'दैवत ज्ञान परमावश्यक है, इसमें कोई सन्देह [नहीं]; परन्तु मन्त्रोंमें देवताओंका जानना ही सबसे कठिन है।' यास्कने लिखा है कि, "शाकपूणिः सङ्कल्पयाञ्चक्रे, [सर्वा] देवता जानामीति। तस्मै देवतोभयलिङ्गा प्रादुर्बभूव। [तां] न जज्ञे।" अर्थात् 'शाकपूणि ऋषिने विचारा कि मैं [सभी] देवताओंको जानता हूँ। उनके सम्मुख दो देवताओंके चिह्नवाला एक देवता आया। वह (शाकपूणि) [उसे न] जान सके।' शाकपूणि ऋषिके सदृश ही अन्य ऋषि[योंकी] भी अवस्था जाननी चाहिये।

"वैदिक गाड्समें" देवताओंका निर्णय वैज्ञानिक [आधार] पर किया गया है। डा० ऐलेका यह प्रयत्न सराहनीय [है]। इस प्रकारके अर्थोंका सङ्केत हमें निरुक्तके द्वितीय [अध्यायमें] भी मिलता है। यास्कने पृथिवीके नामोंकी व्याख्या [करते] हुए "निर्ऋति" शब्दकी व्याख्याके प्रसंगमें ऋग्वेदका [यह] मन्त्र उद्धृत किया है —

"य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात्।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश॥"

इस मन्त्रकी व्याख्या करते हुए यास्क लिखते [हैं]— "बहुप्रजाः कृच्छ्रमापद्यते इति परिव्राजकाः वर्षकर्मेति नैरुक्ताः।" अर्थात् 'बहुत सन्तानोंवाला व्यक्ति दुःख पाता है, [यह मत] परिव्राजक लोगोंका है (परिव्राजक इस मन्त्रका अर्थ सन्तान-परक करते हैं)। वर्षाके कर्मका वर्णन [है], यह मत नैरुक्तोंका है।' इसी स्थलपर यास्कने [योनि] शब्दका निर्वचन करते हुए लिखा है—"योनिः [अन्त]-रिक्षम्" अर्थात् योनि नाम अन्तरिक्षका है। ...

स्थानको भी योनि कहते हैं। "माता" अन्तरिक्षका नाम है और जननीको भी "माता" कहते हैं। इनके लिये यास्कने हेतु भी दिये हैं। अन्तरिक्ष वाह्य विश्वका पर्दा है। भग शरीरस्थ है। योनि शब्दको उभयत्र एकसी प्रवृत्ति है। अतः यह शब्द द्व्यर्थक है। डा० ऐलेके सम्पूर्ण देवता इसी प्रकारके द्व्यर्थक समझने चाहिये। वाह्य अर्थोंमें जिन शब्दोंकी प्रवृत्ति थी, वे ही शब्द शरीरके भिन्न-भिन्न स्थानोंको सूचित करनेके लिये भी प्रवृत्त होने लगे। वैदिक देवता प्रायः ज्ञान-तन्तु-संस्थानके भिन्न-भिन्न भाग हैं। डा० ऐलेने (१) त्वष्टृ, (२) ऋभु, (३) सवितृ, (४) अश्विनौ, (५) मरुत्, (६) पर्जन्य, (७) उषा, (८) विष्णु, (९) रुद्र, (१०) पूषा, (११) सूर्य, (१२) अग्नि, (१३) इन्द्र, (१४) अदिति और आदित्य, (१५) बृहस्पति अथवा ब्रह्मणस्पति, (१६) सोम, (१७) वरुण और मित्र, (१८) आपः —प्रधानतः इन्हीं देवताओंपर (Vedic Gods) में विचार किया है। कतिपय सुन्दर चित्रोंके द्वारा इन देवताओंके वेदोक्त गुणोंको शारीर विज्ञानके अनुसार, ज्ञानतन्तु-संस्थानके तत्तत् स्थानों-के साथ, सम्बद्ध भी किया गया है। निःसन्देह पुस्तक विद्वता पूर्ण है।

यहाँपर यह सूचित कर देना अप्रासङ्गिक न होगा कि, हमारे गुरु विद्या-वयोवृद्ध डा० सङ्गत रामजी (जो कि आज कल लगभग दस वर्षोंसे ऋषिकेशमें वास कर रहे हैं) भी इस विषयको एक सर्वाङ्गपूर्ण पुस्तक हिन्दीमें लिख रहे थे। जब मैं १९२८ ई० के मई मासमें ऋषिकेश गया था, तब उन्होंने उस पुस्तकका बहुतसा भाग, स्थालीपुलाकन्यायसे, मुझे सुनाया था। सम्भवतः यह पुस्तक विद्वन्मण्डलीका इससे भी अधिक मनोविनोद कर सकेगी। उसमें नरमेध, अश्वमेध, गोमेध, हरिश्चन्द्रोपाख्यान, यजुर्वेदके (शादं दद्भिः, इत्यादि) मन्त्रों अर्थ एवं यजुर्वेदके उनतालीसवें अध्यायके उन मन्त्रोंपर (जिनका विनियोग प्रायः अन्त्येष्टि-संस्कारके और कहीं भी सुन्दरतापूर्वक नहीं सम्भव है) वैज्ञानिक दृष्टिसे सुन्दर प्रकाश डाला है।

डा० सङ्गतरामजीसे जब मैं अनाटमी और फिजियालाजी पढ़ता था, तब उन्होंने वेदके बहुतसे मन्त्रोंसे ऐसी सुन्दर-सुन्दर बातें शारीर विज्ञान और आङ्गिरस तन्त्रकी निकाली थी, जो ग्रेकी 'टेक्स्ट बुक आफ् अनाटमी" [Text book of Anotomy by Grey] में तथा हेलिबर्टनकी पुस्तक "हैण्डबुक आफ फिजियालाजी" [Hand book of Physiology by Halliburton] में भी नहीं उपलब्ध होती थीं। यह कहना भी अनावश्यकसा ही है कि, डा० सङ्गतरामजी केमिस्ट्री, फिजीक्स, फाइलालाजी, फिजियालाजी, अनाटमी, माइथालाजी, इतिहास, दर्शन वेद, कुरान, पुराण और बाइबिल आदि-आदि विभिन्न प्रकारके साहित्योंमें अव्याहतगति रखते हैं।

डा० ऐलेका मत सर्वतन्त्र सिद्धान्त हो सकेगा, इसकी सम्भावना लगभग नहीं सी ही है। बहुतसे विद्वानोंका उक्त विषयमें मतभेद सम्भव है। ठीक ही है। कहा भी है— "नासौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्।" हम तो उन पुरुषोंके मतका भी समान दृष्टिसे ही स्वागत और अभिनन्दन करेंगे, जिनका मत उक्त मतसे सर्वथा भिन्न होते हुए भी युक्ति-प्रमाणानुमोदित होगा। वैदिक साहित्यके प्रेमियोंको इस पुस्तककी एक आवृत्ति करनेसे कुछ कौतूहल अवश्य होगा।

अन्तमें हम डा० ऐलेकी कुछ पंक्तियोंको उद्धृत कर उनके हृदयका पाठकोंके सम्मुख रख देना चाहते हैं—

"To my mind the whole description of the Vedic gods and their functions refer to that portion of the absolute embodied in us through the agency of Hiranyagarbha as Ashvatha the nervous system in the body."

अर्थात् मेरे विचारमें सम्पूर्ण वैदिक देवता और उनके कार्य हमारे मस्तिष्क संस्थानके भिन्न-भिन्न कार्योंके ही द्योतक हैं।'

"It is an admitted fact that the ancient Aryan races were far more

advanced in physical science than is yet recognised; they had discovered much that has since been re-discovered by modern science and much also that has yet to be discovered."

अर्थात् 'यह मानो हुईसी ही बात है कि, प्राचीन आर्य-जाति शारीर विज्ञानमें उससे कहीं बड़ी-चढ़ी थी, जितना कि, उसके शारीर ज्ञानके सम्बन्धमें अबतक स्वीकार किया जा चुका है। उन लोगोंने बहुतसी उन बातोंका पता चला लिया था, जो कि वर्तमान समयमें आधुनिक विज्ञानकी सहायतासे पुनः जानी जा सकी हैं एवं बहुतसी ऐसी बातों-का भी उन्हें ज्ञान था, जिनका ज्ञान अभी वर्तमान युगमें हमें करना अवशिष्ट ही है।

डा० रेलेकी शब्दार्थ-शैली वैज्ञानिक है। निरुक्त व्याकरणसिद्ध परम्परागत अर्थोंका अनुसरण करना [illegible] यद्यपि अनावश्यक समझा है, तथापि यत्र तत्र [illegible] देवता-सम्बद्ध आख्यानोंको उन्होंने पर्याप्त आश्रय [illegible] यास्क, पतञ्जलि और व्यास आदि भी वेदार्थ करने [illegible] स्वतन्त्रता ही देते आये हैं। अतः इस अंशको लेते [illegible] अर्थ भी सनातन कहा जा सकता है। वेदार्थ अनेक प्रकार यही है कि, जिनका जिस विषयमें अपना [illegible] अधिकार हो, वे उसी विषयको मुख्य मानकर उसी [illegible] वेदार्थका समुपबृंहण करें। कहा भी है —

"इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति॥"

हिन्दीकी प्रसिद्ध कवयित्री
श्रीमती महादेवी वर्मा बी० ए०

हिन्दीकी प्रसिद्ध कवयित्री
श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान

प्रतिज्ञा

श्रीयुत आनन्दराव जोशी 'विद्यार्थी'

[१]

स्वामीजीकी समाधि समाप्त हुई। विजय सिंहने आगे बढ़कर उन्हें प्रणाम किया। स्वामीजीने आशीर्वाद दिया और बोले—"बच्चा ! खूब सोच-विचार कर तो आये हो ?"

"हाँ ,महाराज ।"

"फिर क्या निश्चय है ?"

"संगीत-भिक्षा ।"

"संगीत ?"

"महाराज, हाँ ।"

"बेटा, उसके लिये तो कठोर संयमकी आवश्यकता है ।"

"मैं सब कुछ त्याग करनेके लिये तैयार हूँ ।"

"अच्छा, तो तुम्हें जीवनभर अखण्ड ब्रह्मचारी होनेकी प्रतिज्ञा करनी होगी ।"

"स्वीकार है ।"

"बच्चा, स्मरण रखना, जिस दिन तुम इस प्रतिज्ञाको भंग करोगे, उसी दिन तुम्हारी मृत्यु होगी । बोलो, स्वीकार है ?"

"हाँ ।"

"आजसे तुम मेरे शिष्य हुए"—कहकर स्वामीजीने विजय सिंहके सिरपर हाथ फेरा। अभिनव शिष्यने उठकर उन्हें प्रणाम किया।

[२]

स्वामीजीके सालभरके अनवरत परिश्रमसे विजय सिंह गजबका गवैया हो गया। उसकी ख्याति समस्त भारतवर्षमें हो गयी । बड़े-बड़े राजा-महाराजा उसका गान सुननेके लिये लालायित रहने लगे । जिसके दरबारमें विजय सिंह जाना स्वीकार कर लेता था, वह अपनेको धन्य समझने लगता था। उसकी प्रशंसा शाहजहाँके कानोंतक भी पहुँची । उसने विजय सिंहको अपने दरबारमें बुला लिया और उसे अपने दरबारका प्रधान गायक बनाया। शाहजहाँ हमेशा ऐशो-आराममें गर्क रहता था। उसे संगीतका बड़ा शौक था। उसके दरबारमें कई गायक तथा नर्तकियाँ भी थीं। इन्हीं नर्तकियोंमें अनारकली नामकी एक बड़ी ही खूबसूरत और नृत्यकलामें निपुण नर्तकी थी । शाहजहाँ उससे बहुत खुश था।

एक दिन अनारकली बादशाहकी आज्ञासे विजय सिंहको बुलानेके लिये उसके घर गयी। विजय सिंहको रहनेके लिये शाही बागमें एक कमरा मिला हुआ था । जिस समय अनारकली वहाँ पहुँची, उस समय विजयसिंह एक लता-मण्डपके नीचे बैठा हुआ वीणा बजानेमें मस्त था। उसकी वीणामें अजीब जादू था। अनारकली एक क्षणके लिये अपनी सुध भूल गयी । विजयसिंह अनारकलीको देखकर बोल उठा—"ओहो, कौन अनारकली ? आज तुम किधर रास्ता भूल गयी ?"

"मैं तुम्हारे ही पास आयी हूँ। शाहजहाँने तुम्हें याद किया है ।" अनारकलीने मुस्कुराते हुए कहा।

"यह हाजिर हुआ "

विजय सिंहको वीणा उठाते देखकर अनारकलीने उसका हाथ पकड़ लिया और बोली—"विजय सिंह ?"

"कहो, क्या कहना है ?" विजय सिंहने आश्चर्यसे अनारकलीके मुखकी तरफ देखते हुए कहा।

"तुम्हारी इस मस्तानी वीणाने मेरे ऊपर जादू कर दिया है। इच्छा होती है कि, इसे बजानेवालेका हाथ चूम लूँ !"

"जब वीणा ही तुम्हारे सामने है, तब इसे ही क्यों नहीं चूम लेती ?" विजयसिंहने वीणा आगे बढ़ाते हुए कहा और अनारकलीके हाथमेंसे अपना हाथ छुड़ाकर वहाँसे चल पड़ा।

[३]

विजय सिंह रोटी बना रहा था। अनारकलीने अचानक उसके कमरेमें प्रवेश किया।

"मैं आपके लिये खाना पका दूँ ?"

"तुम्हें तकलीफ करनेकी कोई जरूरत नहीं। मैं स्वयं ही पका लूँगा।"

"जिसका जो काम है, वही उसे अच्छी तरहसे कर सकता है।"

"अच्छे बुरेसे क्या मतलब ? जैसे-तैसे पेट भरना है।"

"अच्छा, तो विजय सिंह, तुम विवाह क्यों नहीं कर लेते ? अपनेसे कबतक रोटी बनाया करोगे ?"

"जबतक संसारमें रहना है।"

"तो क्या, तुम विवाह नहीं करोगे ?"

"नहीं।"

"जन्म भर अविवाहित ही रहोगे ?"

"हाँ।"

"भला ऐसा क्यों ? तुम्हें किसी बातकी कमी भी तो नहीं है ?"

"शाहंशाहके प्रधान गायकको किस बातकी कमी रह सकती है ?"

"फिर विवाह क्यों नहीं करना चाहते ?"

"मैं ऐसी प्रतिज्ञा कर चुका हूँ।"

"प्रतिज्ञा ! कैसी प्रतिज्ञा ?"

"आजन्म अविवाहित रहनेकी।"

"वाहरी तुम्हारी प्रतिज्ञा !"

"क्यों, इससे क्या हुआ ?"

"विजय सिंह ! इस प्रतिज्ञाका निर्वाह होना बड़ा कठिन है।"

"कठिन ! होगा और किसीके लिये, विजयसिंह के ... तो नहीं।"

"अच्छा, देखूँगी तुम्हारी प्रतिज्ञाको।"

अनारकली चली गयी।

[४]

उस दिन शाहजादाकी साल-गिरह थी। दरबार ... हुआ था। बादशाह शाहजहाँ तख्ते-ताऊसपर बैठ... नर्तकियोंका नाच हो रहा था। बादशाहने अनारकलीको ... किया। उसी समय अनारकलीका नाच होने लगा। अनार... कलीका नाच ! ओह ! उसके आगे इन्द्रकी अप्सराएं ... लज्जित थीं। चारो ओरसे वाह-वाहकी आवाज आ रही ... सब मन्त्र-मुग्धसे बैठे हुए थे। बादशाहकी तबीयत भी ... उठी। बादशाहने खुश होकर कहा, "अनार ! तेरे इस ... नाचने मुझे मस्त कर दिया। मैं खुश हूँ। बता, तू ... चाहती है ? आज तू जो माँगेगी, वही तुझे दिया जायगा।"

अनारकलीने एक बार झुककर मुजरा किया और बोली- "कसूर मुआफ हो, मैं प्रधान गायक विजय सिंहको दि... जानसे चाहती हूँ। अगर हुजूर मुझपर सचमुच ... हैं, तो हम दोनोंकी शादी........... !"

बादशाहने कहा—"अच्छा।"

दरबार खतम हुआ।

[५]

जब बादशाहको मालूम हुआ कि, विजय सिंह अनार... कलीके साथ विवाह करनेसे इनकार करता है, तब ... क्रुद्ध होकर विजयसिंहको बुलवाया और कहा—"वि... सिंह ! तुमने यह क्या झगड़ा मचाया है ? मेरी आज्ञा... यह अवहेलना ! याद रखो, अपनी जानसे हाथ धो बैठोगे।"

"हुजूर अपराध क्षमा हो। मैं आजन्म अविवाहित रहनेकी प्रतिज्ञा कर चुका हूँ; इसलिये आज्ञा पालन... लाचार हूँ।"

"मैं प्रतिज्ञा वगैरह कुछ नहीं जानता। तुम्हें अनार... कलीके साथ विवाह करना ही होगा।"

"हुजूर, इसके लिये लाचार हूँ ।"

"लाचार ! मेरी सूखी रोटीपर जीवित रहनेवाला गीदड़, तुझे इतना अभिमान ! कोई है ! इस घमंडी कीड़ेको मेरी आँखोंके सामनेसे दूर करो ! कल सुबह यह फाँसीपर लटका दिया जाय ।"

उसी समय विजय सिंहको हथकड़ी-बेड़ी पहना दी गयी और वह कैदखानेमें डाल दिया गया ।

[६]

बादशाह बैठा हुआ था । नाच हो रहा था । उसी समय दरबानने आकर झुककर सलाम किया और कहा—"हुजूर, कोई हिन्दू फकीर राजद्वारपर खड़ा है । कहता है कि, मैं हुजूरको अपनी अद्वितीय संगीत-कलाका चमत्कार दिखानेके लिये बहुत दूरसे आया हूँ ।"

बादशाहने कहा—"हाजिर करो ।"

दरबार लगा हुआ था । दरबारी पाषाण-मूर्तिवत् बैठे हुए थे । सबकी दृष्टि उस साधुकी ओर ही लगी हुई थी । साधुकी तेजस्विताको देखकर सब दंग थे । साधुने आते ही हाथमें वीणा ली और एक बार चारों तरफ दृष्टि डालकर गाना आरम्भ कर दिया । स्वर-लहरियोंके फैलते ही घीसे भरे हुए दीपक आप-ही-आप बल उठे ।

सबके आश्चर्यकी सीमा न रही । कुछ समय पश्चात् पानी झिम-झिम बरसने लगा । सबके वस्त्र पानीसे भींग गये; किन्तु सब मंत्र-मुग्धसे बैठे हुए थे । थोड़ी देर बाद पानीका पड़ना बन्द हो गया । फूलोंकी वर्षा होने लगी । दरबारमें फूलोंकी फर्श बिछ गयी । सब अपनी-अपनी सुध भूलकर स्वर्गीय सुखका अनुभव करने लगे । साधुने मुस्कुराते हुए वीणाको उठाकर जमीनपर रख दिया । सबके कानोंमें वीणाका कर्ण-मधुर स्वर अभीतक गूँज रहा था ।

साधुकी अद्भुत शक्ति तथा तेजस्वितासे प्रभावित होकर बादशाहने आदरके साथ कहा—"स्वामीजी, आज मेरे अहोभाग्य हैं कि, आपके समान महात्माके दर्शन हुए । क्या मैं आपका परिचय जान सकता हूँ ?"

स्वामीजीने मुस्कुराते हुए कहा—"इस संसारमें मेरा कोई परिचय नहीं है ।"

"अच्छा, तो मुझे अब क्या आज्ञा होती है ?"

"शाहंशाहको आज्ञा ? आज्ञा तो कुछ नहीं; किन्तु मेरा एक मनोरथ है । यदि वह पूर्ण हो जाय..........।"

"कहिये, आपका क्या मनोरथ है ?"

"मैं अपने एक शिष्यकी मुक्ति चाहता हूँ; इसीलिये मैं आज बहुत दूरसे आपके दरबारमें आया हूँ ।"

"आपका शिष्य और उसकी मुक्ति ! वह कौन है, कहाँ है और किस बन्धनमें है ?"

"वह है विजय सिंह—आपका प्रधान गायक, जो इस समय कारागारमें है और जिसे कल सुबह आपकी आज्ञासे फाँसी होनेवाली है ।"

"विजय सिंह !" बादशाहने अत्यन्त आश्चर्यान्वित होकर कहा !

"हाँ, विजय सिंह ।"

"वह आपका शिष्य है ?"

"हाँ ।"

"तब तो मुझसे आपका बड़ा अपराध हुआ ।"

"बादशाहसे कोई अपराध नहीं होता ।"

उसी समय विजय सिंह बादशाहकी आज्ञासे दरबारमें लाया गया । स्वामीजीको देखकर उसके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही । वह दौड़कर स्वामीजीके चरणोंपर गिर पड़ा । स्वामीजीने उसके सिरपर हाथ फेरते हुए गद्गदस्वरमें कहा—"बेटा, इसीका नाम है प्रतिज्ञा !"

महर्षि गौतम और न्यायदर्शन

"गंगा"के प्रधान सम्पादक द्वारा

बहुत कुछ अनुसन्धान करनेपर भी इस बातका पता नहीं चलता कि, श्रुतियों, स्मृतियों, पुराणों, रामायण और महाभारतके महर्षि गौतम एक हैं या अनेक ! तो भी इस बातपर सभी विद्वान् सहमत हैं कि, न्याय-दर्शनकार गौतम अत्यन्त प्राचीन पुरुष हैं। इस उक्तिकी पुष्टिमें लोग नीचे लिखा विवरण उपस्थित करते हैं।

महर्षि गौतमके न्यायदर्शनके ऊपर वात्स्यायनजीने भाष्य लिखा है। वात्स्यायनजीका एक नाम वात्स्यायमल्लामा भी है। कई विद्वानोंकी उक्तियोंसे जाना जाता है कि, वात्स्यायनजीके ही पक्षिल स्वामी, चणकात्मज, चाणक्य, कौटिल्य, मल्लनाग, द्रामिड़, विष्णुगुप्त और अङ्गुल आदि नाम हैं। हेमचन्द्रके अभिधानमें तो ये नाम स्पष्ट रूपसे ही लिखे गये हैं। इन नामोंमेंसे वाचस्पति मिश्रने केवल "पक्षिल स्वामी" शब्दका व्यवहार किया है। इधर सभी ऐतिहासिकोंने यह बात स्वीकार की है कि, नन्दवंशके विध्वंसक चाणक्य चन्द्रगुप्तकी राजसभामें उपस्थित थे। पाणिनिने भी गौरादिगणमें गौतम और दिगादिगणमें न्याय शब्दका उल्लेख किया है। महाभारतमें, (जिसका काल शकाब्दसे पाँच सौ वर्ष पहलेका है), कई स्थानोंमें, गौतम, न्याय, तर्क आदि शब्दोंका उल्लेख है। महाभारतके शान्तिपर्व (मोक्षधर्म) के ब्राह्मण-श्रृगालोपाख्यानमें आन्वीक्षिकी और तर्कविद्या शब्दोंका उल्लेख है। इसलिये कुछ लोगोंके मतसे इस बातमें जरा भी सन्देह नहीं कि, कमसे कम, सन् ईस्वीसे छः सौ वर्ष पूर्व महर्षि गौतम विद्यमान थे और उनके न्याय-सूत्र भी लगभग उसी समय बनाये गये थे। "गौतम-स्मृति" नामक ग्रन्थमें, कई स्थलोंपर, तर्कका आश्रय लिया गया है; इस लिये विद्वानोंका अनुमान है कि, दर्शनकार और स्मृति-रचयि[ता] गौतम एक ही थे। फलतः महर्षि गौतम अत्यन्त प्राचीन समयमें थे।

किन्तु कुछ लोगोंका यह कहना है कि, आदि ऋषिके पति गोतम ही, (गौतम नहीं), वर्तमान न्यायदर्शनके प्रणेता हैं।

छान्दोग्योपनिषद्में भी एक गौतम ऋषिका नाम आया है, जो महर्षि जाबालिके गुरु कहे गये हैं।

वायुपुराण (गया १, २ य अध्याय) में लिखा है कि श्वेतवराहकल्पमें ब्रह्माके मानस पुत्र महर्षि गौतम हुए थे।

रामायणके अहिल्योपाख्यानमें 'अहिल्यापति' का महर्षि गौतमका परिचय दिया गया है।

हरिवंशपुराण (७ म अध्याय) में लिखा है कि, वैवस्वत मन्वन्तरमें, सप्तर्षियोंमें, एक गौतम ऋषि ही थे।

कई पुराणोंमें भरद्वाज मुनिका गौतम नाम बताया गया है। शतानन्द और कृपाचार्यका भी एक नाम गौतम है।

बौद्धाचार्योंमें भी एक गौतमका नाम लिया जाता है।

पितृमेधसूत्र, वैदिक सूत्र और दाय-चन्द्रिकाके रचयिताओंके भी गौतम नाम हैं। वैदिक सूत्रोंका उल्लेख आश्वलायन गृह्यसूत्र और बौधायन-धर्मसूत्रमें भी है।

ऊपरके इन कथनोंसे तो यह बात नहीं मालूम होती कि, दर्शनकार महर्षि गौतम इनमेंसे कौन थे या उनके बनाये कौन-कौनसे ग्रन्थ हैं ! जो हो; परन्तु इसमें तो सन्देह नहीं कि, महर्षि गौतम प्रकाण्ड पण्डित, मानवजातिके कल्याण-कर्त्ता और भारत-माताके प्रतापी पुत्र थे।

न्याय-भाष्यकार वात्स्यायन, पराशर-उपपुराण-कर्त्ता और उद्योतकरके कथनानुसार गौतमका एक नाम अक्षपाद भी था। इस नामके सम्बन्धमें एक बड़ी विलक्षण किंवदन्ती प्रचलित है। कहा जाता है, एक बार व्यासजीने न्यायदर्शनकी निन्दा की। यह निन्दा महर्षि गौतमके भीषण क्रोधका कारण हुई। फलतः उन्होंने प्रण किया कि, मैं अब कभी व्यास का मुँह नहीं देखूँगा। ऐसी विकट प्रतिज्ञा सुनकर वेदव्यास गौतमके पास आये और उन्होंने बड़ी ही अनुनय-विनय की। परन्तु गौतमने उनकी एक न सुनी और न उन्होंने व्यासजी-की ओर दृष्टि उठाकर देखा ही। व्यासजीके बहुत प्रार्थना करनेपर गौतम ऋषिके चरणोंमें ही दृष्टि-शक्ति पैदा हो गयी और उन्होंने उससे ही व्यासजीको देखा। तभीसे गौतमका नाम अक्षपाद पड़ गया। इसके सिवा पण्डितोंमें यह किंवद-न्ती भी प्रचलित है कि, परम भक्त गौतम चलते-फिरते भी ध्यानस्थ रहा करते थे, जिसके फल-स्वरूप वे एक बार भया-वने कुएँमें गिर पड़े। इस दशापर दयाकर भक्तवत्सल भगवान्‌ने उनके पैरोंमें भी आँखें दे दीं। इसी किंवदन्तीके आधारपर लोग कहते हैं कि, जिसके पैरमें ही अक्ष या दृष्टि-शक्ति है, उसीका नाम अक्षपाद है। परन्तु कोई-कोई, इसके विपरीत, कहते हैं कि, जो ज्ञान द्वारा विख्यात है, उसका नाम अक्षपाद है।

महर्षि गौतमके निवास-स्थानके बारेमें भी बहुत मतभेद है। किसी-किसीका मत है कि, दरभङ्गेसे सीतामढ़ी जाते समय, दरभङ्गेसे उत्तर-पूर्वकी ओर तीन कोसकी दूरीपर, गौतम ऋषिका आश्रम था। वहाँ आजकल एक पत्थर है, जिसे लोग अहिल्याकी पाषाण-देह बताते हैं।

एक दल कहता है कि, बकसरके पास, भागीरथीके तट-पर, गौतमका स्थान था।

कुछ लोग कहते हैं कि, सारन जिलेके रेवेलगञ्जके पास गठना नामक जो गाँव है, वहाँ महर्षि गौतमका स्थान था।

इस तरह महर्षिके आश्रमके सम्बन्धमें भी "मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना" की कहावत चरितार्थ हो रही है। परन्तु मिथिला-प्रान्तके अनेक नैयायिक पण्डितोंका जन्म स्थान होनेके कारण अधिक लोगोंकी सम्मति यही है कि, दरभङ्गेके पास ही गौतमका स्थान था।

गौतमके न्यायदर्शनके अनेक नाम हैं, जिनमें आन्वीक्षिकी, तर्कविद्या, अक्षपाददर्शन, गौतमसूत्र आदि विशेष प्रचलित हैं। जिसमें प्रमाण द्वारा पदार्थोंका निरूपण किया गया हो अथवा जिसमें प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन आदि पाँचो अवयवोंकी अवतारणा की गयी हो, उसका नाम न्याय है। आत्मतत्त्व सुन लेनेके बाद मनन करानेवाले शास्त्रका नाम आन्वीक्षिकी है। "अमरकोष" में न्यायदर्शनका पर्यायवाची शब्द आन्वीक्षिकी शब्द आया है। न्यायदर्शनमें तर्ककी प्रधानता होनेके कारण उसका तर्कविद्या नाम भी खूब प्रसिद्ध है। गौतम या अक्षपाद द्वारा प्रणीत होनेके कारण न्यायदर्शनके गौतमसूत्र तथा अक्षपाददर्शन नाम भी विशेष प्रचलित हैं।

साधारणतः महर्षि गौतम द्वारा प्रणीत सूत्रोंका "प्राचीन-न्याय" नाम आजकल अधिक प्रचलित है। इस प्राचीन न्यायके तीन भाग हैं,—तर्कांश, न्यायांश और दर्शनांश। तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, छल, वितण्डा आदिका विवरण तर्कांशमें है। प्रमाण, अवयव आदिकी आलोचनावाले अंशका नाम न्यायांश है। आत्मा और देह आदिके सम्बन्ध-तत्त्वके विवेचनमें दर्शनांश परिपूर्ण हुआ है। न्यायांशकी विशेष अधिकताके कारण इस दर्शनका नाम न्यायदर्शन ही प्रचलित है। साधारणतः ज्ञान-बुद्धिका परिस्फुरण करानेमें ही न्याय-शास्त्रकी प्रधानता है। यही कारण है कि, अन्यान्य दर्शनोंकी अपेक्षा, भारतके कितने ही प्रान्तोंमें, आजतक न्यायदर्शन या न्याय-शास्त्रका अधिक प्रचार है।

न्यायदर्शनकी उत्पत्तिके विषयमें भी बड़ा ही मतभेद है। कितने ही पण्डितोंका खयाल है कि, बौद्ध धर्मका खण्डन करनेके लिये हिन्दुओंने तर्कका आश्रय लेकर न्यायदर्शनकी भित्ति निर्मित की, जिसके फल-स्वरूप सन् ईसवीसे पाँच सौ वर्ष पहले न्यायशास्त्रकी उत्पत्ति हुई। इसके पहले न्याय-

शास्त्रका अस्तित्व नहीं था। इधर किसी-किसी भारतीय विद्वान्‌की राय है कि, वैदिक वचनोंकी मीमांसा या निर्णय करनेके लिये, पहले पहल, जैमिनिने जो तर्क और विधिके वाक्य बनाये, उन्हींका न्याय-विद्या नाम था। तब न्याय शब्दका अर्थ मीमांसा था। इस उक्तिकी पुष्टिमें लोग कहते हैं, आपस्तम्ब-धर्मसूत्रके द्वितीय अध्यायमें जैमिनिकी पूर्व-मीमांसाके ही अर्थमें न्याय शब्दका व्यवहार हुआ है। इसी अध्यायमें जो न्यायवित् शब्द आया है, उसका अर्थ मीमांसक है। माधवाचार्यने जो पूर्वमीमांसाका स्वर-संग्रह किया है, उसका नाम न्यायमाला-विस्तार है। वाचस्पति मिश्रने भी एक न्यायकणिका नामका ग्रन्थ लिखा है, जो मीमांसा-ग्रन्थ है। इसलिये यह स्पष्ट है कि, वेदार्थको विस्तृत करनेके उद्देशसे जो सब तर्क या न्याय व्यवहृत होते थे, उन्हींको मीमांसा कहा जाता था और कालान्तरमें उनके सुव्यवस्थित संग्रहका नाम तर्कविद्या, न्यायशास्त्र या आन्वीक्षिकी पड़ गया। महर्षि गौतमने जो न्यायदर्शनमें शब्दोंके नित्यानित्यका विचार, जीवात्माके स्वरूपका निर्णय और मुक्तिका लक्षण दिया है, उससे भी जाना जाता है कि, न्यायदर्शनका बीज मीमांसा-दर्शनसे ही लिया गया है। *

जो हो; परन्तु थोड़े ही विचारसे ऊपरकी बातें अधिकांशमें असत्य प्रमाणित होती हैं। जैसे अन्यान्य दर्शनोंके सिद्धान्त उपनिषद्‌में हैं, वैसे ही न्यायदर्शनके सिद्धान्त भी उपनिषद्‌में हैं। कुछ चिन्ताशील वेदान्ती कहते हैं कि, उपनिषद्‌में केवल हेतु, उदाहरण और निगमन—ये तीन ही अवयव स्वीकार किये गये हैं। परन्तु इनकी अपूर्णताका अनुभव करके महर्षि गौतमने, अपूर्व युक्ति-कौशलके बल, प्रतिज्ञा और उपनय नामके दो और अवयवोंका, अपने सूत्रोंमें, निरूपण किया है। न्यायशास्त्र (१।२।३२) के न्यायभाष्यके "दशावयवानेके नैयायिका वाक्ये सञ्चक्षते" वचनको देखकर कुछ लोग कहते हैं कि, न्यायसू[त्र] होनेके पहले भी कितने ही नैयायिक थे, जो प्रत्ये[क] जगह दस अवयव मानते थे। इनके दस अ[वयवोंका] वात्स्यायनने खूब-खूब खण्डन किया है। इसी प्र[कार यह] भी कह देना उचित है कि, किसी भी प्रमाणसे [गौतमके] पूर्व दस अवयव माननेवाले किसी नैयायिकका [अस्तित्व] नहीं माना जा सकता। जो हो; परन्तु वात्स्या[यनके] भाष्यसे जो बात जानी जा सकती है, वह यहीं [है।] यहीं छोड़कर अब आगे चलिये।

महर्षि शौनकके "चरणव्यूह" में लिखा है कि, वेदका न्याय उपाङ्ग है—

"प्रतिपदमनुपदं छन्दो भाषा धर्मो मीमांसा न्या[यस्तर्क] इत्युपाङ्गानि।"

यहाँ स्पष्ट ही मीमांसा और न्यायका अल[ग-अलग] उल्लेख है। स्मृतियोंमें चतुर्दश विद्याओंके अन्तर्गत [न्याय] है। ब्रह्माण्डपुराण (२३ अध्याय) में लिखा है कि, व्यासके समय सोमशर्माका आविर्भाव हुआ था, [उनके] पुत्र न्यायशास्त्रके प्रणेता अक्षपाद हुए। बौद्धोंके [...] सूत्रमें भी न्यायशास्त्रका उल्लेख है। कुछ विद्वानोंका [मत है कि,] अक्षपाद या गौतमके पश्चात् कृष्णद्वैपायन हुए हैं। [उनके] समयमें अनेकानेक प्रसिद्ध नैयायिक विद्वान् थे, [जिनमेंसे] कितनोंने ही मीमांसाका खण्डन भी किया था। [...] है कि, वेदव्यासने महाभारत (आदिपर्व, [...] शान्तिपर्व १८०।४७-४८) में न्यायशास्त्रकी खूब [निन्दा की] है। यदि मीमांसाशास्त्रके आधारपर ही न्याय[शास्त्रकी] रचना हुई रहती, तो निस्सन्देह उपरि उक्त [...] उनमेंसे किसी एक ग्रन्थमें अवश्य ही मीमांसा[...] रहती। साथ ही मीमांसाके अनुकूल न्यायशास्त्र[...] व्यासजी न्यायशास्त्रकी कभी भी निन्दा नहीं [करते।] इसलिये मीमांसाशास्त्रसे बिलकुल पृथक् स्वतन्त्र[रूपसे न्यायका] प्रशस्त प्रणयन हुआ है, इसमें किसीको सन्देह न[हीं होना] चाहिये। न्यायके युक्ति-प्रधान होनेके कारण मीमांसा[...]

* Journal of the Bombay branch of the Royal Asiatic Society, Vl XIX (1897), P 325-27.

यह बिलकुल स्वतन्त्र शास्त्र है। वस्तुतः न्यायशास्त्रकी युक्तिवादिता ही व्यासजीकी निन्दाका कारण है। महाभारत-की दुर्घटार्थप्रकाशनी टीकाके प्रणेताने भी यही बात कही है। इसके सिवाय इधर मीमांसकोंने वेदको नित्य माना है और नैयायिकोंने अपौरुषेय; इसलिये नैयायिकोंकी निन्दाका कारण यह बात भी हो सकती है।

जो लोग कहते हैं कि, मीमांसाशास्त्रके अर्थमें न्याय-शास्त्र शब्दका व्यवहार हुआ है, इसलिये मीमांसाके आधारपर ही न्याय-रचना सूचित होती है; उनसे हमारा कहना है कि, न्याय शब्दके निर्णय, विचार आदि व्यापक अर्थोंमें प्रयुक्त होनेके कारण मीमांसकोंने ही नहीं, सभी दार्शनिकोंने न्याय शब्दका प्रयोग किया है। हमारी बात के मण्डनमें सांख्यका, कपिलकृत, न्यायभाष्य, वेदान्तका, आनन्दबोधकृत, न्यायमकरन्द, योगका, क्षेमानन्दकृत, न्यायरत्नाकर और वैशेषिककी, वल्लभाचार्यकृत, न्यायरत्नावली प्रमाण हैं। इन ग्रन्थोंको देखकर क्या यह बात कही जायगी कि, इन चारों शास्त्रोंके आधारपर भी न्यायशास्त्रकी रचना हुई है ? कभी नहीं। फलतः मीमांसाके आधारपर न्यायशास्त्र की सृष्टि मानना भ्रम है।

न्यायशास्त्रकी रचना कब हुई ? क्या सब शास्त्रोंके पीछे न्याय बना ? इन प्रश्नोंका कुछ उत्तर तो, हमारे "दर्शनपरिचय" के प्रथम खण्डमें मिल जायगा ; परन्तु विस्तृत रूपसे जाननेके लिये थोड़ी और चर्चा करना आवश्यक है। कुछ नैयायिक कहते हैं कि, अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थोंमें न्याय और गौतम शब्दका प्रयोग होनेके कारण न्याय प्राचीनतम दर्शन है। कम-से-कम न्यायका सिद्धान्त तो सर्वापेक्षा प्राचीन है ही। कई नैयायिक कहते हैं कि, जब कि, रामायणके अयोध्याकाण्डमें नैयायिक शब्दका उल्लेख है, तब यह अवश्य ही मानना पड़ेगा कि, रामायणकी अपेक्षा न्यायशास्त्र प्राचीन है और रामायण-कालमें न्याय-शास्त्रका खूब प्रचार था।

सुश्रुत और चरकसंहितामें भी न्यायशास्त्रके कई पारिभाषिक शब्दोंका उल्लेख है। अपने मीमांसा-भाष्यमें शबर स्वामीने उपवर्ष-भाष्यका जो वचन उद्धृत किया है, उससे स्पष्ट जाना जाता है कि, उपवर्ष भी गौतमके न्याय-सूत्रोंसे अभिज्ञ थे। इधर जैनियोंके उत्तराध्ययनवृत्ति, त्रिषष्टिशलाका-पुरुषचरित और ऋषिमण्डल-प्रकरणसे जाना जाता है कि, उपवर्ष महाराजा नन्दके समयमें, सन् ईस्वीसे ५०० वर्ष पूर्व, हुए थे। इन प्रमाणोंके आधारपर नैयायिक कहते हैं कि, न्यायशास्त्रका अस्तित्व अपने कई शास्त्रोंसे पूर्वका है।

महामहोपाध्याय पण्डित चन्द्रकान्त तर्कालङ्कारने लिखा है कि, सभी शास्त्रोंके सूत्रोंकी अपेक्षा वैशेषिक सूत्र प्राचीन हैं। कुछ लोगोंके मतसे सर्वान्तमें न्यायशास्त्रकी रचना हुई है। परन्तु जैसा कि, हम पहले लिख चुके हैं, विभिन्न शास्त्रोंका अध्ययन करनेपर यह निर्णय करना कठिन है कि, कौनसा शास्त्र पीछे बना है और कौन पहले! जो बात न्यायशास्त्रके ३।२ के १४ वें सूत्रमें है, ठीक वही बात वेदान्त के (द्वितीय अध्याय, प्रथम पाद) २४ वें सूत्रमें है। इधर न्यायशास्त्रके (प्रथम अध्याय, प्रथम आह्निक) १० वें सूत्र और वैशेषिकके ३।२ के चौथे सूत्रको मिलानेसे भी एक ही बात मालूम पड़ती है। इन तीनों शास्त्रोंके चारों सूत्रोंको देखनेसे यह नहीं मालूम पड़ता कि, कौन दर्शन किस दर्शन से पहले बना ? भाव और शब्दका साम्य छोड़कर यदि और दृष्टिसे देखा जाय, तो साङ्ख्यके (प्रथमाध्याय) २४ वें सूत्रमें स्पष्ट वैशेषिक मतका खण्डन है और पाँचवें अध्यायके २७ वें तथा ८४ वें सूत्रोंमें न्यायका खण्डन है। किसी किसीके मतसे साङ्ख्यके (प्रथम अध्याय) ९० वें सूत्रमें योगशास्त्रका खण्डन है। जैमिनिके मीमांसाशास्त्र (१।१।५) में वेदान्तके सिद्धान्तका निरसन है। वेदान्तसूत्र (१।२।२८, १।२।३१, १।३।२६, १।३।३१ और १।४।१८) में जैमिनिके मतका खण्डन है। इसी तरह वेदान्तके प्रथम अध्याय, प्रथम पादके ११ वें सूत्रमें न्यायके मतका परिहार किया गया है। वैशेषिकके परमाणुवादका योगशास्त्रमें भी जिक्र है। वैशेषिकमें भी न्यायशास्त्र और विभिन्न कई शास्त्रोंका

आभास है। इस तरह इस बातकी निश्चित मीमांसा करना असम्भव है कि, कौन शास्त्र सबसे प्रथम बना! फलतः न्यायशास्त्रके निर्माण-कालके सम्बन्धमें भी अधिक लिखना अनधिकार चेष्टा ही है।

न्यायदर्शनके पाँचवें सूत्रके भाष्यमें वात्स्यायनने जो मत व्यक्त किया है, उससे विदित होता है कि, बहुत समयसे न्यायशास्त्रके प्रकृत पाठ और प्रकृत अर्थमें घोर विवाद चला आता है। एक स्थानपर वात्स्यायनने यह भी लिखा है कि, विस्तारके भयसे महर्षि गौतमने जो अंश लिखना छोड़ दिया है, वह वैशेषिक दर्शनसे समझ लेना उचित है। इस उक्तिसे सूचित होता है कि, दोनों दर्शनोंका घनिष्ठ सम्बन्ध है। असलमें न्याय और वैशेषिक दर्शनोंकी आलोचना करनेसे ऐसा ही मालूम होता है। परन्तु वैशेषिककी अपेक्षा न्यायशास्त्रका यशोगान बहुत अधिक है। न्याय-सूत्रोंके भाष्यकारने तो इतनी दूरतक लिखा है कि, न्यायशास्त्र सारी विद्याओंका प्रकाशक, समस्त कर्मोंका प्रधान उपाय और अखिल धर्मोंका आश्रय-स्थान है।

बहुत लोगोंका विश्वास है कि, वात्स्यायन-भाष्य ही न्यायका प्राचीनतम और प्रथम भाष्य है। परन्तु मीमांसा-सूत्रोंके उपवर्ष-भाष्य, और स्वयं वात्स्यायन-भाष्यमें भी, यत्र-तत्र, ऐसे वचन हैं, जिनसे जाना जाता है कि, इस भाष्यसे पहले भी न्यायसूत्रोंपर अनेक विवरण-ग्रन्थ या भाष्य थे।

कुछ यूरोपीय और भारतीय विद्वानोंकी रायमें, पाँचवीं शताब्दीमें, वात्स्यायन हुए थे। परन्तु कितने ही सुयोग्य विद्वान् वात्स्यायनको इतना आधुनिक नहीं मानते। वे कहते हैं कि, छठी सदीके "वासवदत्ता"-कार सुबन्धुने मल्ल-नाग, उद्योतकर आदिका नाम लिखा है और उद्योतकरने दिङ्नागाचार्यका मत खण्डन कर वात्स्यायनके मतका संस्थापन किया है। इधर दिङ्नागने भी अपने "प्रमाण-समुच्चय" में वात्स्यायनके मतका, अच्छी तरह, खण्डन किया है। इसलिये यह बात माननी पड़ेगी कि, दिङ्नागके पहले वात्स्यायन थे। अब यह देखना है कि, दिङ्नागा-चार्य किस शताब्दीमें वर्त्तमान थे।

"मेघदूत"की टीकामें मल्लिनाथने दिङ्नागको कालिदास-का प्रतिद्वन्द्वी माना है। परन्तु मेघदूतपर जो [illegible] की प्राचीन टीकाएँ हैं, उनमें कहीं भी इस बातका अनु-मोदन नहीं किया गया है। किसी अन्य संस्कृत ग्रन्थमें भी इस बातका उल्लेख नहीं है। मैक्समूलरके मतसे दिङ्नागाचार्य छठी शताब्दीमें थे। [illegible] खण्डनमें प्रो० मैक्समूलरने लिखा है—"प्रसिद्ध चीनी परि-व्राजक हुएनसङ्ग ६३१ वीं ईस्वीमें नालन्द-विश्वविद्यालयके बौद्धाचार्य शीलभद्रके पास योगशास्त्रका अध्ययन करनेके लिये आया था। शीलभद्रने अपने जयसेन नामक [illegible] को इस कार्यके लिये नियुक्त किया और चीनी [illegible] ही योग सीखा। अस्तु। शीलभद्र और दिङ्नाग बोधिसत्त्व आर्य असङ्गके शिष्य थे; अतएव दोनों [illegible] कालीन थे। तारानाथ और रत्न धर्मराजके [illegible] कनिष्क तथा असङ्गके बीच केवल ५०० वर्षोंका अन्तर है। इसलिये षष्ठ शताब्दीका द्वितीय भाग ही असङ्गका [illegible] है। फलतः असङ्ग, कालिदास, विक्रमादित्य और [illegible] सम-सामयिक थे।"

मैक्समूलर साहबकी इस उक्तिपर बहुत लोगोंका [illegible] है। परन्तु स्थिर चित्तसे विचार करनेपर मैक्समूलरकी [illegible] बातोंपर सन्देह पैदा होता है। हुएनसङ्गके सम्पूर्ण वृत्तान्तको पढ़नेसे यह बात नहीं विदित होती कि, [illegible] गुरु असङ्ग थे। असङ्ग, शीलभद्र, वसुबन्धु आदि सबका [illegible] सङ्गने पूरा-पूरा परिचय लिखा है; परन्तु शीलभद्रको कहीं भी असङ्गका शिष्य नहीं बताया है। भला इस-लिये यह कब सम्भव था कि, वह असङ्ग जैसे [illegible] को अपना परदादा गुरु बनानेमें चूकता? इसलिये मैक्समूलरकी बातें भ्रान्तिमूलक हैं। चीनी बौद्ध ग्रन्थोंसे यह स्पष्ट जाना जाता है कि, वसुबन्धु और दिङ्नाग असङ्गके शिष्य थे। इस खयालसे तो, दिङ्नागका

२ री या ३ री शताब्दी है। इसके सिवा प्रसिद्ध जैनी विद्वान् प्रभाचन्द्रने अपने "प्रमेयकमलमार्त्तण्ड" नामक ग्रन्थमें और वसुबन्धुने अपनी "वासवदत्ता" में जो दिङ्नागकी चर्चा की है, उससे भी जाना जाता है कि, दिङ्नाग बहुत ही प्राचीन विद्वान् हैं। फलतः वात्स्यायनका समय पाँचवीं शताब्दी मानना अन्याय है।

श्वेताम्बर जैनियोंके प्रधान आचार्य समन्तभद्रसूरिका सन् ६८ ईस्वीमें यज्ञाभिषिक्त होना माना जाता है। इसके पहले ही आपने "सप्तमीमांसा" नामकी एक सुन्दर पुस्तक लिखी थी। इस पुस्तकमें न्यायभाष्यकार वात्स्यायनके मतका भी खण्डन है। इससे जाना जाता है कि, वात्स्यायन सन् ईस्वीके पहले हो गये हैं।

एक बात और है। वैशेषिकदर्शनके भाष्यकार प्रशस्तपादने, अनेक स्थानोंपर, बौद्ध मतका खण्डन किया है; परन्तु वात्स्यायनने अपने भाष्यमें कहीं भी बौद्ध मतका नामतक नहीं लिया है। इससे यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि, यदि वात्स्यायनके समयमें बौद्ध मतका कुछ भी जोर रहता, तो वे अवश्य ही उसका खण्डन करनेकी चेष्टा करते। इसलिये यही स्थिर किया जा सकता है कि, वात्स्यायनके समयमें बौद्ध मतका प्रचार—कम-से-कम विशेष प्रचार—नहीं था और वे अत्यन्त प्राचीन कालके मनुष्य हैं।

न्यायशास्त्रका इतिहास जाननेके लिये उसे पाँच स्तरोंमें विभक्त किया जा सकता है—१ सूत्रयुग, २ भाष्ययुग, ३ सङ्घर्षयुग, ४ व्याख्यायुग और ५ नव्यन्याययुग।

सूत्रयुगमें केवल महर्षि गौतमका सूत्ररूप मूलग्रन्थ था। तब उसी ग्रन्थके अध्ययन-अध्यापनकी शैली प्रचलित थी। शायद यह लिखनेकी जरूरत नहीं कि, उस समय सभी लोग सूत्रग्रन्थको कण्ठस्थ कर लेते थे। तब किसी भी नैयायिकको लिपिग्रन्थकी आवश्यकता नहीं थी। इसी तरह कई शताब्दियाँ व्यतीत हो गयीं। अन्तको सूत्रोंके अर्थमें विविध सन्देह होने लगे, जिससे उचित-अनुचित तर्क-प्रणालीकी सृष्टि हुई और सूत्रग्रन्थको लिपिबद्ध करनेकी आवश्यकता भी प्रतीत पड़ने लगी। प्रसिद्ध जैन तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ और महावीर आदि महात्माओंके अनुयायी विद्वान् नैयायिकोंने जब न्यायसूत्रोंके अर्थके अनर्थ कर डाले, तब बाध्य होकर सनातनी विद्वानोंको न्यायसूत्रोंके विस्तृत अर्थ बताने और वेदविरुद्ध मतका खण्डन करनेकी आवश्यकता हुई। यहींसे भाष्ययुगका प्रारम्भ हुआ।

महर्षि वात्स्यायन भाष्ययुगके प्रतापी सूर्य थे। न्यायसूत्रोंपर इन्होंने बहुत उच्च कोटिका भाष्य बनाया है। वात्स्यायन-भाष्यके अद्भुत तर्कों, असाधारण युक्तियों और ज्ञानगर्भ वर्णन-शैलीको देखकर एकबारगी चकित हो जाना पड़ता है। कितने ही लोग तो इन्हें भारतीय अरिस्टाटल भी कहते हैं। वात्स्यायनके जीवन-कालमें हिन्दू-नैयायिकोंका स्वच्छन्द साम्राज्य था। सन् ईस्वीसे पूर्व ५ म शताब्दीसे २ य शताब्दीतक भाष्ययुग था।

इसके बाद सङ्घर्षयुगका श्रीगणेश हुआ। महाराजा अशोकके प्राधान्यके समय बौद्धोंका भी खूब प्राधान्य था। हिन्दू-दार्शनिकोंको बहुत कुछ, इस समय, नीचा भी देखना पड़ा था। साथ ही न्यायदर्शनका बौद्धों और जैनियोंमें पूरा आदर भी था। इस समय जितने बौद्ध-जैन-ग्रन्थ बनाये गये हैं, सबमें न्याय और वैशेषिक दर्शनोंकी अमिट छाप लगी है। कर्मफलसे जन्मग्रहण, नाना-विध-योनि-भ्रमण, कर्मानुसार स्वर्ग या नरकमें जाकर पुरस्कार या दण्डका पाना, दुःख-विदूरक मुक्ति, ज्ञानान्तमें मुक्ति-लाभ आदि न्याय, वैशेषिकके सिद्धान्त, तत्तद्रूपमें ही, बौद्ध ग्रन्थोंमें हैं। इन दोनों दर्शनोंमें साम्य देखकर कितने ही हिन्दू-दार्शनिकों और धर्मशास्त्री विद्वानोंने न्याय और वैशेषिकको 'हेय दर्शन'तक कह डाला है! मेधातिथिने तो मनुस्मृतिकी टीकामें लोकायत आदिके नास्तिक मतवादोंके साथ न्याय, वैशेषिककी भी गणना कर डाली है! जो हो, प्रथम शताब्दीसे सङ्घर्षयुगका सूत्रपात हुआ है।

प्रथम शताब्दीमें बौद्धाचार्य नागार्जुनने "न्यायद्वारतारक-शास्त्र" नामकी एक बड़ी तार्किक पुस्तक लिखी थी। उसके बाद प्रसिद्ध नैयायिक अकलङ्कजीने "न्यायविनिश्चय" और "प्रमाणविनिश्चय" नामकी दो पुस्तकें लिखकर जैन-न्यायमें एक नवीन युग उपस्थित कर दिया। कुछ दिनों बाद नागार्जुनके "तारकशास्त्र"की एक विस्तृत व्याख्या (धर्मपालकृत) प्रकाशित या प्रचलित हुई। इसी समय बौद्ध न्यायके "न्यायानुसार-सूत्र" (सङ्घभद्रकृत) और "प्रमाणसमुच्चय" नामक दो अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थ प्रचारित हुए। कहना नहीं होगा कि, इन सब ग्रन्थोंमें वेद-विरुद्ध विचार ही प्रकट किये गये हैं। इन सब ग्रन्थोंमें "प्रमाणसमुच्चय" ही बौद्ध-न्यायशास्त्रका सर्वोच्च ग्रन्थ है। इसमें हिन्दून्यायके १६ पदार्थोंमेंसे प्रथम पदार्थ प्रमाणको लेकर ही विशेष आलोचना की गयी है।

इसी समय, हिन्दून्यायशास्त्रकी रक्षाके लिये, उद्योत-कराचार्यने "न्यायवार्तिक"की रचना की। इस ग्रन्थने बौद्धोंमें खलबली मचा दी। इसके बाद ही धर्मकीर्तिने "प्रमाणसमुच्चय" के ऊपर "प्रमाणवार्तिक" नामक पुस्तक लिखकर उद्योतकराचार्यके मतका खूब खण्डन किया। धर्मकीर्त्तिने "न्यायबिन्दु" नामक एक और ग्रन्थ लिखा। इसके ऊपर विनीतदेवने एक सुन्दर टीका लिखी। "प्रमाण-वार्तिकका" खण्डन करनेके लिये, कुछ दिनोंतक, किसी हिन्दू नैयायिकने कोई ग्रन्थ नहीं लिखा। अन्तको चतुर्थ शताब्दीमें प्रसिद्ध मीमांसक प्रभाकर और कुमारिलभट्टने उत्पन्न होकर दिङ्नाग, धर्मकीर्त्ति, समन्तभद्र आदि बौद्ध और जैन आचार्योंके मतोंका खूब-खूब निरसन किया। इसके कुछ ही काल अनन्तर धर्मोत्तराचार्यने "न्यायबिन्दु" की टीका लिखकर सभी मीमांसकोंके मतोंका खण्डन किया। इस समय जिस तरह हिन्दू और बौद्ध नैयायिकोंमें शास्त्र-संग्राम चल रहा था, उसी तरह बौद्ध और जैन नैयायिकोंमें भी। जैनियोंके "प्रबन्धचिन्ता-मणि" नामक ग्रन्थमें लिखा है,—"एक समय, शिला-दित्यकी सभामें, श्वेताम्बर जैनाचार्यों और बौद्धाचार्यों घोर शास्त्र-समर प्रारम्भ हुआ। इनमें यह शर्त थी— "जो हारेगा, उसे वनवासी हो जाना पड़ेगा।" समयकी महिमा अनोखी है। शास्त्रार्थमें बौद्धोंके ही गले जयमाल पड़ी। बेचारे जैनाचार्योंको वनकी शरण लेनी पड़ी। बौद्धोंके प्रधान मल्ल आदिनाथकी बड़ी प्रतिष्ठा हुई। कितने ही लोग इन्हें बौद्धावतार मानने लगे। इस संग्राममें जैनियोंकी ओरसे शिलादित्यके भागिनेय भी एक मल्ल थे। परन्तु वे अभी शिशु थे। फलतः उन्हें बालक जान कर बौद्धोंने वनवास-दण्डसे मुक्त कर दिया।

परन्तु बौद्धोंके हकमें उनकी दया बुरी सिद्ध हुई। बौद्धोंको पराजित करनेके लिये उक्त भागिनेयने सरस्व-तीकी कष्ट-साध्य उपासना की, जिससे सरस्वती उनपर प्रसन्न हुईं और उनकी दयासे उन्हें "नयचक्र"की प्राप्ति हो गयी। इस अमोघ चक्रके प्रभावसे उन्होंने सारे बौद्ध मल्लोंको परास्त कर डाला। अन्तको फिर श्वेताम्बर जैनियोंकी प्रधानता स्थापित हुई। भागिनेय महाशयका पहले नाम "वादी" था, परन्तु अन्तमें उन्हें "प्रसिद्ध मल्लवादी" की ख्याति मिली।

चतुर्थ शताब्दीमें मल्लवादीने "न्याय-बिन्दु-टिप्पन" लिख-कर धर्मोत्तराचार्यके मतका खण्डन किया। इसके किञ्चित् काला-नन्तर दिगम्बराचार्य विद्यानन्द पात्रकेसरीने समन्तभद्रके 'स्याद्वादमत' की पुष्टि और कुमारिलभट्टके मतका खण्डन करनेके लिये "जैनश्लोकवार्त्तिक" की रचना की। विद्यानन्द-जीने "प्रमाण-परीक्षा" नामका एक ग्रन्थ लिखकर दिङ्नागके मतका बहुत विस्तृत खण्डन किया। इस ग्रन्थकी जैन-समाजमें खूब प्रतिष्ठा भी है।

प्रायः विद्यानन्दजीके समयमें ही प्रसिद्ध वैदान्तिक शङ्क-राचार्यने जन्म ग्रहण किया। इनके सामने एक बार सब नैयायिकोंको नीचा देखना पड़ा। इनकी विद्वत्ताकी चारों ओर दुन्दुभि बजने लगी। उपवर्ष आदि जितने दार्शनिक

सबके मतोंका भगवान् शंकरने खूब खण्डन किया। चूँकि बौद्धों और जैनियोंमें नैयायिक तथा वैशेषिक मिलसे गये थे; इसलिये लगे हाथ शङ्कराचार्यने बौद्ध आदिके साथ इनका भी खण्डन कर डाला। वैशेषिकोंको तो कई स्थानोंमें शंकराचार्यने "अर्द्ध वैनाशिक" और "अर्द्ध बौद्ध" तक लिख डाला है! इस कारण कितने ही नैयायिक भी वैशेषिकोंको ओछी दृष्टिसे देखने लगे। इस तरह वैशेषिककी, साथ ही न्यायकी भी, अवनति होने लगी। कहना नहीं होगा कि, इस अवनतिका प्रधान कारण शंकराचार्यका ब्रह्मसूत्रपर "शारीरकभाष्य" बना।

इसके अनन्तर सन् ५२७ ई० में माणिक्यनन्दी नामके एक दिगम्बर जैन विद्वान्ने "प्रमाण-मुख" नामका एक व्याख्या-ग्रन्थ बनाया, जिसमें समन्तभद्र, अकलंक और विद्यानन्दके मतोंको मार्मिक आलोचना लिखी गयी। इसके बाद ही सुप्रसिद्ध जैन-कवि और नैयायिक प्रभाचन्द्रजीका आविर्भाव हुआ। इनका लिखा "प्रमेय-कमल-मार्त्तण्ड" नामका ग्रन्थ प्रचारित हुआ, जिसमें उपवर्ष, दिङ्नाग, उद्योतकर, धर्मकीर्त्ति, भर्तृहरि, शबर स्वामी, प्रभाकर और कुमारिल भट्टके मतोंका, स्थान-स्थानपर, खण्डन किया गया। इस ग्रन्थमें ब्रह्माद्वैतवादका भी निरसन है।

इसके पश्चात् प्रायः ८ म शताब्दीके मध्य भागतक किसी प्रसिद्ध नैयायिकके प्रख्यात ग्रन्थका पता नहीं चलता। हाँ, सन् ७ वीं शताब्दीमें बाणभट्टने "ईश्वरकारादिभिः" वचनसे नैयायिकोंका अवश्य उल्लेख किया है। भवभूतिके "मालती-माधव" से भी जाना जाता है कि, ८ वीं शताब्दीमें न्यायकी चर्चा अच्छी थी। इसी समय बौद्धाचार्य कमलशीलने "तर्क-संग्रह" बनाया, जिसमें हिन्दू-दार्शनिक मतवादका खण्डन किया गया है। कमलशीलने ईश्वरकारित्ववाद, कपिलके आत्मवाद, उपनिषदोंके आत्मवाद, शंकराचार्यके ब्रह्माद्वैतवाद आदिका खण्डन कर स्वतः प्रामाण्यवादका संस्थापन किया। यहीं संघर्षयुगकी समाप्ति हुई है।

सन् ईस्वीकी ९ वीं शताब्दीमें न्यायाचार्य शिवादित्यने वैशेषिक दर्शनके प्रशस्तपादभाष्यपर "व्योमवती" नामकी वृत्ति और "सप्तपदार्थी" नामका ग्रन्थ बनाया। प्राचीन मतकी संस्थापना ही शिवादित्यका उद्देश था। यहींसे समन्वयुग या व्याख्यायुगका प्रारम्भ है। महर्षि कणादने छः पदार्थ माने हैं और शिवादित्यने "अभाव" नामका एक नया पदार्थ भी स्वीकार किया है। वात्स्यायन, उद्योतकर आदिने जो ईश्वरकारणवाद (जिसमें ईश्वरको जगत्स्रष्टा माना जाता है) का प्रचार किया था, उसमें शिवादित्यने बड़ी सहायता पहुँचायी। किन्तु इनके थोड़े ही दिनों बाद जैनाचार्य अभयदेव सूरिने "वादमहार्णव" नामक ग्रन्थ लिखकर इनके मतका अच्छी तरह खण्डन कर डाला। तदनन्तर भट्टारक देवसेनने संवत् ९९० में 'नयचक्र' नामका एक तार्किकता-पूर्ण ग्रन्थ लिखा। इसके कुछ ही दिनों बाद षड्दर्शनटीकाकार वाचस्पति मिश्रका उदय हुआ। यद्यपि मिश्रजीके आविर्भाव-कालमें लोगोंमें बड़ा मतभेद था; परन्तु इनके "न्याय-सूची-निबन्ध" के प्रकाशित हो जानेपर सब संदेह दूर हो गया। उस ग्रन्थके अन्तमें लिखा है कि, इन्होंने इसे ८९८ शकाब्दमें पूर्ण किया। वाचस्पति मिश्रके कुछ ही वर्ष पश्चात् उदयनाचार्य हुए। इनका "लक्षणावली" नामक ग्रन्थ सर्व-जन-प्रसिद्ध है। कुछ लोग कहते हैं कि, वाचस्पति मिश्रकी "न्यायवार्त्तिकतात्पर्यटीका" की ओर लक्ष्य करके ही उदयनाचार्यने; "न्याय-वार्तिक-तात्पर्यपरिशुद्धि" नामका ग्रन्थ लिखा है। वास्तवमें नास्तिक-मतवादका निरास कर वाचस्पति मिश्रने विशेष रूपसे ईश्वरवादका प्रचार नहीं किया है। इधर हिन्दू-न्याय और ईश्वर-वादका मण्डन करनेके लिये ही उदयनाचार्यने "किरणावली," "कुसुमाञ्जलि," "आत्म-तत्त्वविवेक" और "बौद्ध-धिक्कार" आदि अनेक ग्रन्थ लिख डाले। ये ग्रन्थ हिन्दू-दर्शनके प्राण-स्वरूप माने जाते हैं। उदयनाचार्यने अपने प्रगाढ़ पाण्डित्य और असाधारण तर्क-शक्तिके प्रभावसे दर्शन-जगत्में युगान्तर उपस्थित कर दिया।

इसी समय श्रीधराचार्य नामके एक बङ्गीय विद्वान्ने "न्यायकन्दली" नामकी एक बड़ी प्रामाणिक पुस्तक लिखी। कुछ दिनों बाद भासर्वज्ञने "न्याय-सारभूषण" नामका एक बढ़ियासा ग्रन्थ लिखा। इसके अनन्तर बारहवें शतकके प्रारम्भमें काश्मीरमें आनन्द नामक एक नैयायिक हुए। परन्तु खेद कि, आजकल उनका कोई भी ग्रन्थ नहीं मिलता। इस समय नरचन्द्र सूरि नामके एक जैनाचार्यने "न्यायकन्दली-टिप्पन" नामक ग्रन्थ लिखकर जैनमतके संस्थापनकी पूरी चेष्टा की। इसके पश्चात् सिंहसेनने "प्रमाण-प्रकाश" और विजयसिंहमणिने "न्यायसार" लिखकर ईश्वरकारणवाद उड़ा देना चाहा; किन्तु सारङ्गपुत्र राघवभट्टने "न्यायसार-विचार" नामका एक सुबोध ग्रन्थ लिखकर, इनके मतका खण्डन कर डाला। तदनन्तर रामदेव मिश्रके पुत्र वरदराजने "न्यायदीपिका", "तार्किकरक्षा" आदि अनेक ग्रन्थ बनाये, जिनमें तार्किकरक्षाका सर्वदर्शन-संग्रहमें उल्लेख किया गया है। प्रायः तेरहवें शतकके अन्तमें जयन्तभट्ट नामके एक विद्वान्ने "न्यायकलिका" और "न्यायमञ्जरी" नामक दो ग्रन्थ बनाये। सन् १३०४ ई० में विख्यात जैनाचार्य जिनप्रभसूरिने "षड्दर्शनी" नामकी एक पुस्तक लिखकर ईश्वरकारणवादको बिलकुल ही उड़ा देनेकी चेष्टा की। अनन्तर तिलकसूरि, रत्नशेखरसूरि और राजशेखर-सूरिने क्रमशः "न्यायकन्दलीपञ्जिका" (तीन ग्रन्थ) बनायी। राजशेखरने अपनी पञ्जिकामें लिखा है, "पहले प्रशस्तपादने वैशेषिक-भाष्य बनाया। पश्चात् (व्योम) शिवादित्य या शिवाचार्यने "व्योममती" रची। अनन्तर क्रमशः श्रीधराचार्यने "न्यायकन्दली," उदनाचार्यने "किरणावली" और श्रीवत्साचार्यने "लीलावती" लिखी। शेषके इन चारों ग्रन्थोंको समझानेके लिये ही मैं यह पञ्जिका लिख रहा हूँ।" जो हो, राजशेखरसूरिकी पञ्जिकामें ईश्वरखण्डन और जैनमतमण्डनके साथ ही साथ न्याय और वैशेषिक दर्शनोंकी अनेक ज्ञातव्य बातें भी हैं। उधर उदयनाचार्यके समयसे बौद्ध नैयायिकोंका अधःपतन हो ही गया था, इधर राजशेखरके बाद जैन नैयायिकोंकी भी अवनति हो गयी। सुनते हैं, राजशेखरके कुछ पहले ही केशव मिश्रने "तर्क-भाषा" बनायी थी।

इसके पश्चात् नव्यन्यायके प्रतापी युगका प्रादुर्भाव हुआ। सन् ईस्वीकी १८वीं शताब्दीमें प्रख्यात पण्डित गङ्गेशो-पाध्यायका उदय हुआ। उन्होंने अपने असाधारण तर्क-प्रभावसे "तत्वचिंतामणि" नामका ग्रन्थ बनाकर नैया-यिकोंमें एकाएक हलचल मचा दी। यहाँ यह बात खूब ध्यानमें रखनेकी है कि, प्राचीन न्यायमें कैवल्य या मुक्ति, आत्मतत्त्व, देहतत्त्व, ईश्वरतत्त्व आदिका ही विशेष विवे-चन है; परन्तु गङ्गेशने "चिन्तामणि" बनाकर इन सबको गौण रूप दे दिया और न्यायके सोलह पदार्थों मेंसे केवल प्रमाण-विचारको ही मुख्य रखा! तत्त्वचिंतामणिमें अध्या-त्म-तत्त्वकी नाम मात्रकी ही चर्चा है। कहीं-कहीं तो गङ्गेशने महर्षि गौतमके मतका खण्डनतक कर डाला है। इनके ग्रन्थ में केवल तार्किक-वैभव है। इस वैभवकी आँधीमें पड़कर नव्य नैयायिक एकबारगी ही प्राचीन न्यायको भूल गये। इन्होंने वाक्यविचार, लक्षणों और विशेषणोंके खण्डन आदिके वाग्जालोंकी घटाका खूब विस्तार किया है। मालूम होता है, इन्होंने अपनी बुद्धि-शक्तिकी चरम सीमा दिखानेके लिये ही तर्कमार्गका आश्रय लिया है। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द आदि चारों प्रमाणोंको लेकर ही नव्य न्यायकी भित्ति पड़ी है। इस भित्तिके प्रधान प्रवर्तक स्वनामधन्य गङ्गेशोपाध्याय ही हैं। इनके पुत्र वर्द्धमान भी असाधारण नैयायिक थे। इनके अनन्तर पक्षधर मिश्र, रुचिदत्त, वासुदेव सार्वभौम, रघुनाथ शिरो-मणि, जयराम तर्कालङ्कार, मथुरानाथ तर्कवागीश, गदाधर भट्टाचार्य और दिनकर मिश्र प्रभृतिने नव्य न्यायको जड़ पातालतक पहुँचा दी। इनके ग्रन्थोंको देखनेसे इन की शक्तिपर चकित हो जाना पड़ता है।

अनेक विद्वानोंकी धारणा है कि, मिथिला ही नव्य न्यायका लीला-क्षेत्र है; परन्तु बङ्गदेशीय विद्वानोंके मत

हे नवद्वीप है। इस सम्बन्धमें एक किंवदन्ती प्रसिद्ध है। वह यह है कि, बङ्गालमें न्यायशास्त्रकी पहले विशेष चर्चा नहीं थी। बङ्गवासी विद्यार्थी मिथिलामें न्याय पढ़नेको जाते और उन्हें, अध्ययन समाप्त होनेपर, गुरु महाराजके पास पठित पुस्तकें रखकर आना पड़ता था। फलतः पुस्तकोंके अभावसे बङ्गालमें न्यायका पठन-पाठन नहीं हो सकता था। इस तरह बहुत वर्ष बीत गये। अन्तको वासुदेव सार्वभौमने मिथिला में जाकर कुसुमाञ्जलिका पद्यांश और न्यायदर्शन कण्ठस्थ कर डाले तथा वहाँसे नवद्वीप लौटते ही एक संस्कृत-पाठशाला खोलकर न्यायशास्त्रका अध्यापन कराना प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिनों बाद इनके प्रधान शिष्य रघुनाथ शिरोमणि भट्टाचार्यने मिथिलाके प्रसिद्ध नैयायिक पक्षधर मिश्रको परास्त कर नवद्वीपमें न्यायकी प्रधानता स्थापित की। वास्तवमें रघुनाथ शिरोमणि बड़े ही प्रखर पण्डित थे। इनकी "तत्त्व-चिन्तामणि" की "चिन्तामणिदीधिति" नामक टीकाको देखकर बड़े-बड़े नैयायिक अवाक् हो जाते हैं। यह भी सुननेमें आता है कि, प्रातःस्मरणीय श्रीचैतन्यदेवने भी एक बहुत बढ़िया तर्क-शास्त्रका ग्रन्थ बनाया था; परन्तु एक नैयायिकके उनके ग्रन्थकी लघुता दिखानेपर उन्होंने उसे गङ्गाजलमें प्रवाहित कर दिया! जो हो, इसमें तो सन्देह ही नहीं कि, एक समय नव्य न्यायका प्रधान केन्द्र नवद्वीप ही था और अभी कुछ दिन पहले वहाँ काशी, मिथिला, तैलङ्ग तथा काञ्ची आदिके अनेक विद्यार्थी न्यायका अध्ययन करने जाते थे।

नव्य न्यायके आज भी छोटे-बड़े हजारों ग्रन्थ पाये जाते हैं, जिनमें क्रमशः काशीवासी कृष्णभट्ट आर्डे, गदाधर भट्टाचार्य, मथुरानाथ तर्कवागीश और जगदीश तर्कालङ्कार (भट्टाचार्य) के बनाये सर्वाधिक हैं। नव्य न्यायके ग्रन्थोंमें तत्त्वचिन्तामणि, तत्त्वचिन्तामणिदीधिति, गादाधरी (तत्त्व-चिन्तामणिदीधिति और तत्त्वचिन्तामण्यालोककी टीका), जागदीशी (तत्त्वचिन्तामणिदीधिति-प्रकाशिका), माथुरी (तत्त्वचिन्तामणिटीका), परामर्श, व्याप्तिग्रहोपाय, व्यधिकरण (मथुरानाथकृत), सव्यभिचार, सत्प्रतिपक्ष, सामान्यनिरुक्ति (गदाधर-प्रणीत), केवलान्वयी, शब्दशक्ति-प्रकाशिका, शक्तिवाद, विधिवाद आदि विशेष प्रचलित हैं।

हमारे ग्रन्थोंमें न्याय-दर्शनकी पर्याप्त महिमा गायी गयी है। तर्क-कौशलकी दृष्टिसे तो यह सर्वापेक्षा महत्त्वपूर्ण दर्शन है। न्याय-दर्शनके भाष्यकार वात्स्यायनने तो स्पष्ट शब्दोंमें इसे सर्वश्रेष्ठ माना है। लिखा है—

> "प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्।
> आश्रयः सर्वधर्माणां विद्योद्देशे प्रकीर्त्तिता॥"

इसका तात्पर्य यह है कि, विद्या-गणनाके समय यह दर्शन समस्त विद्याओंका दीपकरूप, समस्त कर्मोंका उपायरूप और समस्त धर्मोंका अवलम्बनरूप कहा गया। कहीं-कहीं "विद्योद्देशे गरीयसी" भी पाठ है, जिसका अर्थ विद्यागणनामें श्रेष्ठतर विद्या है। वस्तुतः यह दर्शन इतना उच्चासन पाने योग्य भी है। क्या श्रुति, क्या स्मृति और क्या पुराण; सर्वत्र न्याय-दर्शनकी अत्यधिक प्रशंसा है। भगवान् वेदव्यासने भी महाभारतके मोक्षधर्म-प्रकरणमें कहा है—"मैंने आन्वीक्षिकी विद्याका अवलोकन करके उपनिषदोंका सारोद्धार किया है।"

यद्यपि प्राचीन न्यायका इधर पठन-पाठन बहुत कम है; परन्तु इसके वात्स्यायनके न्यायभाष्य, उद्योतकरके न्यायवार्त्तिक, वाचस्पति मिश्रकी न्यायवार्त्तिकतात्पर्यटीका, उदयनाचार्यकी न्यायवार्त्तिकतात्पर्यपरिशुद्धि, जयन्त भट्टकी न्यायमञ्जरी आदि ग्रन्थ आज भी विलुप्त होनेसे बचे हुए हैं।

न्यायदर्शनमें पाँच अध्याय दस आह्निक, सात प्रकरण और पाँच सौ इक्कीस सूत्र हैं। दो-दो आह्निकोंका एक एक अध्याय है। बहुत अर्थोंका सूचक जो शब्द-समुदाय है, उसे सूत्र कहा जाता है। शास्त्रान्तर्गत एक-एक अंश या प्रस्तावका नाम प्रकरण है। इस तरहके न्यायमें जितने प्रकरण हैं, वे

कहीं तीन, कहीं चार और कहीं तीनसे भी कम सूत्रोंमें हैं। कहीं-कहीं तो चारसे भी अधिक सूत्रोंमें हैं। अध्ययन और अध्यापनकी सुविधाके विचारसे जो विराम रखा गया है, उसका नाम आह्निक है। विद्वानोंके खयालसे एक दिन (अहन्) में अपने दर्शनका जितना भाग गौतमने बनाया है, उसका नाम आह्निक रखा है। इस हिसाबसे तो दस ही दिनोंमें वर्तमान न्याय-दर्शनकी रचना हुई है! न्यायमें इतने प्रस्ताव हैं—प्रतिपाद्य, प्रमाणलक्षण, प्रमेय, न्यायका पूर्वाङ्ग, न्यायाश्रित सिद्धान्तका आकार, न्याय-लक्षण, न्यायका उत्तराङ्ग, न्यायानुगत कथन, हेत्वाभास, छल, अशक्ति, दोष, संशय, प्रमाणसामान्य, प्रत्यक्षप्रमाण, अवयवी, अनुमानप्रमाण, वर्त्तमानता, उपमानप्रमाण्य, शब्दानित्यत्व, शब्दपरिणाम, शब्दशक्ति, इन्द्रियसामान्य, देहविशेषपरीक्षा, प्रमाणचतुर्विधत्व, शब्दसामान्य-परीक्षा, चक्षुरीन्द्रियैकता, मन और आत्माकी भिन्नता, अनादि-निधन आत्मा, शरीरोत्पत्तिका उपादान, इन्द्रियपरीक्षा, इन्द्रियानेकत्व, इन्द्रियविषय, ज्ञानानित्यता, क्षणभङ्गवाद, आत्मगुणबुद्धि, उत्पन्नप्रध्वंसिनी बुद्धि, बुद्धिका शरीरगुण-भिन्नत्व, मनःपरीक्षा, अदृष्टानुसार शरीरोत्पत्ति, प्रवृत्ति और दोषसामान्य, दोषपरीक्षा, जन्मान्तर, शून्यवादनिरास, जगद-नुपादान कारण ईश्वर, कारणोत्पन्न जगत, वस्तुओंका अनि-त्यतानिरसन, पञ्चात्मकता-भिन्न वस्तुएँ, सर्वशून्यवादनिरास, फलपरीक्षा, दुःख, मुक्ति, तत्त्वज्ञानोत्पत्ति, अवयव और अवयवी, निरवयव वस्तु, बाह्य वस्तु, तत्त्वज्ञानवृद्धि, तत्त्वज्ञानपरिपालन, सत्प्रतिपक्ष, षड्विधजाति और निग्रह-स्थान। इनमें प्रथमाध्यायके प्रथमाह्निकमें प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टांत, सिद्धान्त, अवयव, तर्क और निर्णयका विचार है। द्वितीयाह्निकमें वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास और छलका निरूपण है। द्वितीयाध्यायके दोनों आह्निकोंमें प्रमाण-परीक्षा है। तृतीय और चतुर्थ अध्यायोंमें प्रमेयपरीक्षा की गयी है। पञ्चम अध्यायके प्रथमाह्निकमें जाति और द्विती-याह्निकमें (विशेषतः) निग्रह-स्थानका निरूपण किया गया है। इस अध्यायमें प्रसङ्ग-क्रमसे अपरापर बातोंकी भी चर्चा की गयी है।

न्यायदर्शन जैसा सुश्रृङ्खला-सम्पन्न है, वैसा कोई हिन्दू-दर्शन नहीं है। इस दर्शनमें पहले प्रत्येक प्रति[illegible] पदार्थका सयुक्तिक उल्लेख है, पश्चात् उसका लक्षण कि[illegible] गया है; अनन्तर उसकी परीक्षा की गयी है। यह प्रणा[illegible] या परिपाटी अन्य किसी भी दर्शनमें नहीं है। इस प्रणा[illegible] से वैशेषिक दर्शनका अवश्य मेल है। एक तरहसे वैशे[illegible] दर्शन न्यायके ही अनुरूप है। परन्तु न्यायकी आलोच[illegible] प्रणाली उसकी अपेक्षा उच्चतर है। इसके प्रथम सूत्रमें न्यायदर्शनके समस्त प्रतिपाद्य विषयोंका क्रमबद्ध उल्लेख और तत्त्वज्ञानका फल उल्लिखित है। सूत्र यह है—

"प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्ता-
वयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डा-
हेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां
तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः।"

सूत्रका अर्थ यह है कि, प्रमाण, प्रमेय आदि जो सोल[illegible] पदार्थ हैं, उनके तत्त्वज्ञान या यथार्थ-ज्ञानसे मुक्ति-प्रा[illegible] होती है। न्यायका सिद्धान्त है कि, संसारके सम[illegible] पदार्थोंका तत्त्वज्ञान प्राप्त कर लेनेपर मिथ्याज्ञानकी निवृ[illegible] हो जाती है। फिर क्या, मिथ्याज्ञानकी निवृत्ति होते ही मनुष्यके धर्म, अधर्म, कर्त्तव्य, अकर्तव्य आदि विनष्ट हो जाते हैं। जिस मनुष्यका कोई धर्म या अधर्म नहीं, उस[illegible] जन्म भी नहीं होता। जन्म-विनाश हो जानेपर सा[illegible] लिये दुःख-निवृत्ति हो जाती है। न्यायके मतमें या दु[illegible] निवृत्ति ही मुक्ति है।

न्यायदर्शनके सिद्धान्तसे दुःखका कारण जन्म है, जन्म का कारण प्रवृत्ति है, प्रवृत्ति (चेष्टा) का कारण वासना है और वासना या दोष (यहाँ राग, द्वेष और मोह है वासना शब्दसे अपेक्षित हैं) का कारण मिथ्या ज्ञान है। फलतः आत्म-बन्धनका सबसे बड़ा कारण मिथ्याज्ञान है। उधर मुक्तिका सबसे बड़ा कारण यथार्थ ज्ञान है।

शरीर रहनेपर भी मुक्ति (जीवन्मुक्ति) हो सकती है; परन्तु न्यायदर्शनमें इसके सम्बन्धमें कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है। हाँ, परवर्ती नैयायिकोंने जीवन्मुक्तिकी चर्चा की है। यद्यपि प्रारब्ध कर्म रहनेके कारण जीवन्मुक्त पुरुषको भी कुछ शारीरिक दुःख अवश्य उठाने पड़ते हैं; परन्तु तत्त्वज्ञानके कारण उसे स्त्री-पुत्रादि-सम्बन्धी दुःख, मोह आदि नहीं सताते। फलतः जन्मनाश न होनेके समयतक वह जीवन्मुक्त ही कहाता है।

दर्पणमें

कोरक-युग था नलिनीका या विधु-मण्डल दो आया था।
सुधा उदधिसे रत्नयुगल या मूर्तिमान हो आया था॥
या रतीशके कुसुम-बाणकी छाया थी अङ्कित थोड़ी!
या सजीव मोहन प्रतिकृतिकी सुन्दर-सी वह थी जोड़ी॥
झुके हुए दो चपल मीन ललचाते थे ऊपर होने।
मोतीकी पाँती छिन-छिनमें जाती किसलयपर सोने॥
छलक रहा था नूर, लीन थी स्नेह-सरित्में वह बाला।
जैसे अंगूरी शराबमें डूबा हो चीनी प्याला॥

साहित्याचार्य "मग"

शिव-स्तुति

जाके वाम अङ्गमें विराजति हैं पारवती,
जाके शीश गंगा देत शोभा अपरम्पार है।
भाल पै जाके विराजत है बाल चन्द्र,
जाके उर शोभत सर्पनको हार है।
जाके सब अंगनमें छाय रह्यो विमल भस्म,
जाको नाम काटत भवसागरको धार है।
सोई प्रभु आशुतोष शंकर दयालु होवैं,
जाकी दयाकी दीठि हेरत संसार है।

—शालग्रीम शर्मा

किसको आशा

करे कोई किसकी आशा ?
जन्मसे जो जग पालन करे,
घोर संकट सिर सहकर आप।
खूनको भी पानी कर मरे,
न सुतके तनपर आवे ताप।
पिताका प्यारा प्राणाधार,
पुत्र है वैभवमय अरमान।

देख दुनियाकी न्यारी रीति,
यहाँ वह करता क्या सम्मान!
चिता रचकर सरिताके तीर,
मनों उठ-कठ कायापर डाल।
फूँककर निष्ठुरतासे आग,
जलाता पूज्य पिता तन-भाल॥
फेंकता जगजीवन-पाशा।
करे कोई किसकी आशा !!

—जगदीश झा 'विमल'

मनोरथ

पुनः सुना दे स्नेह-भावसे अपनी मधुर बाँसुरी-राग!
जिससे जाग उठे हीतलमें सरस स्नेह कोमल अनुराग!
गाने लगूं सतत मैं सुखसे तव गुण-गीता श्लोक ललाम!
यह संतप्त हृदय शीतल हो पाकरके दर्शन अभिराम!
पावन जीवन-पुष्प सरस यह विहँस उठे जब अन्तिम बार!
तेरे चरणोंपर अर्पण कर धन्य बनूं मैं हो सुकुमार!

—नवलकिशोर झा 'नवल'

प्रसिद्ध कहानी-लेखक
बाबू प्रेमचन्दजी बी० ए०

प्रसिद्ध कवि और नाट्यकार
बाबू जयशंकर 'प्रसाद'

तुलसी-ग्रन्थावलीमें "गोस्वामीजी का पर्यटन" शीर्षकपर विचार

साहित्यरत्न प० रासविहारीराय शर्मा,
एम० ए०, बी० एड्

कहते हैं, वर्तमान काल हिन्दी-भाषाका अभ्युदय काल है। हिन्दीकी जैसी उन्नति इन दस वर्षोंमें हुई है, वैसी ही उन्नति यदि और कुछ दिनोंतक होती रही, तो अवश्य ही बँगला या मराठीसे भी हिन्दी उन्नत हो जायगी। हिन्दीमें मौलिक ग्रन्थोंकी रचना तो हो ही रही है, साथ-ही-साथ कविताका एक नया युग भी आरब्ध हो गया है।

हिन्दीकी उन्नति तो अवश्य हो रही है; किन्तु इसके बड़े-बड़े विद्वान् भी अपने गुरुतर कार्यका उत्तरदायित्व नहीं समझ रहे हैं। जिन्हें हम लोग महारथी समझते, वे भी बिना सोचे-विचारे, बिना यथार्थ विवेचन किये ही, किसी भी बातको लिख देनेमें थोड़ा भी संकोच नहीं करते हैं। जिनकी लेखनीसे हिन्दीका भव्य भविष्य निर्मित हो रहा है, उन्हें भी इतिहासका इतना स्वल्प ज्ञान है कि, उनके लेखको देखकर अध्ययनशील अँग्रेज विद्वान् बिना हँसे नहीं रह सकते। स्व० प० रामावतारजी शर्मा दुःखके साथ बार-बार कहा करते थे कि, "विशेष कर मध्य भारतसे ऐतिहासिक सदा निकल गया है। अपने स्थानसे सौ-पचास कोस जाकर, कोई भी अन्वेषण करके लिखना पसन्द नहीं करता।"

विद्या-व्यसनी इङ्गलैण्ड धन्य है, जहाँ लोग शेक्सपियर, मिल्टन, ऐडिसन, जान्सन प्रभृति प्रसिद्ध साहित्यिकोंकी कुर्सियाँ, चिट्ठियाँ मेजें और आलमारियाँ देखनेको प्रतिवर्ष कोसों दूरसे आते हैं और अपनेको कृत्य-कृत्य मानते हैं; किन्तु हिन्दीके मार्त्तण्ड सूर, तुलसी, देव, विहारी, मतिराम आदिके विषयमें यहाँ अन्वेषण करना तो दूर रहे, सच्ची बातोंके बदले ऐसी भ्रमोत्पादक बातें लिखी जाती हैं कि, पाठक सन्देह-ग्रस्त हो जाते हैं। हाँ, इतिहासमें 'मिश्रबन्धु-विनोद' एक प्रामाणिक ग्रन्थ है।

'जायसी-ग्रन्थावली' का प्रकाशन श्रद्धेय प० रामचन्द्र शुक्लने किया है। 'तुलसी-ग्रन्थावली'का सम्पादन सभाने किया है। 'मिश्रबन्धु' ने इस ग्रन्थके प्रकाशित होनेके पूर्व ही गोस्वामीजीके विषयमें बहुत-सी ज्ञातव्य बातें बतलायी थीं। ये सब ऐतिहासिक ग्रन्थ और अच्छे हैं।

"तुलसी-ग्रन्थावली" एक विशेष ग्रन्थ है। इसका तृतीय भाग विशेष महत्त्वका है। इसीके पूर्वार्द्धमें स्वामीजीका जीवन-चरित और उत्तरार्द्धमें कई समालोचनात्मक लेख हैं। जिस समय यह ग्रन्थ-रत्न प्रकाशित हुआ था, उस समय हिन्दू-विश्वविद्यालयके लड़कोंने "गोस्वामीजीके पर्यटन" शीर्षक लेखपर विरोध उपस्थित किया था। "दीन"जीने कहा भी था कि, 'संशोधन कर दिया जायगा।' शुक्लजीसे भी यह बात छिपी न थी, उन्होंने भी यही कहा था; किन्तु आश्चर्य है, आजतक इसमें कुछ भी संशोधन नहीं हुआ है। इसके बाद जितनी प्रतियाँ रामायणकी प्रकाशित हुई हैं, सबमें उस शीर्षककी पंक्तियाँ ज्यों-की-त्यों हैं। यहाँतक कि, बाबू श्यामसुन्दरदासके द्वारा जो रामायण सन् १९२७ ई०में सम्पादित होकर प्रकाशित हुई है, उसमें भी इस पुस्तककी एतत्सम्बन्धी पंक्तियाँ अविकल रूपसे उद्धृत हैं। मैं उन पंक्तियोंको यहाँ उद्धृत कर देता हूँ—

पर्य्यटन "कहते हैं कि, एक समय गोसाईंजी भृगु आश्रम, हंसनगर और परसिया होते, गायघाटके राजा गम्भीरदेवका आतिथ्य स्वीकार करते, ब्रह्मपुरमें ब्रह्मेश्वर

नाथ महादेवके दर्शनकरके काँत नामक गाँवमें आए।... वहाँसे गोसाईंजी वेलापतौत आए। वहाँ गोविन्द मिश्र नामक एक शाकद्वीपी ब्राह्मण और रघुनाथ सिंह नामक क्षत्रियसे भेंट हुई। उन लोगोंने बड़े आदरसे गोसाईं-जीको अपने यहाँ ठहराया। गोसाईंजीने उस स्थानका नाम वेलापतौतसे बदलकर रघुनाथपुर रक्खा, जिसमें एक तो यह रघुनाथ सिंहका स्मारक हो, दूसरे इसी बहानेसे लाखों मनुष्य भगवान्‌का नाम लें। इसीके पास एक गाँव कैथो है। कहते हैं कि, वहाँके प्रधान जोरावर सिंहने भी गोसाईंजीका आतिथ्य किया था और इनके शिष्य हुए थे।"

परसिया, गायघाट, ब्रह्मपुर और काँतपर फुटनोट देते हुए प० रामचन्द्र शुक्लने लिखा है कि, "ये गाँव बलिया जिलेमें हैं।" यही बात बाबू श्यामसुन्दरदासजीकी सटोक रामायणकी भूमिकामें ज्यों-की-त्यों उद्धृत है। 'मानस-मकरन्द' नामकी पुस्तक, जो हालमें ही शर्मा-साहित्यमाला-साहित्यसदन, खरौंधी, जि० पलामूसे प्रकाशित हुई है और जो बिहार प्रान्तके स्कूलोंमें हिन्दी वर्नाक्युलरमें पढ़ायी जाती है, उसकी भूमिकामें भी यह भूल ज्यों-की-त्यों उद्धृत है। इसका कैसा प्रभाव पढ़नेवालोंपर पड़ेगा इसको विद्वान् लोग विचारें।

परसिया, गायघाट, ब्रह्मपुर और रघुनाथपुर ये गाँव शाहाबाद जिलेमें हैं। इनको शाहाबादका बच्चा-बच्चा जानता है। ये गाँव तो बक्सर सबडिवीजनके मुख्य गाँव हैं। यदि पूर्व भारतीय रेलवे (East Indian Railway) के मुख्य मार्गसे कोई यात्रा करे और मोगलसराय स्टेशनसे कूचकर आरा आवे, तो उसे दिलदारनगर, गहमर, चौसा, बक्सर, बरुणा, डुमराँव, ट्विनीगंज, रघुनाथपुर, बनाही, बिहिया और कारीसाथ स्टेशन अवश्य मिलेंगे। यही रघुनाथपुर है, जिसके विषयमें शुक्ल[जी]ने लिखा है कि, 'इसका नाम वेलापतौत था, पीछे रघुनाथपुर पड़ा।' इसीके पास ब्रह्मपुर काँत और परसिया है। फिर इन्हें बलिया जिलेमें लिखनेका क्या कारण है, समझ नहीं जाता ?

इसके लिये प्रमाणस्वरूप सरकारी कचहरी ... 'पाटलिपुत्र' का जो विशेषांक सन् १९१४ ई० में प्रकाशित हुआ था, उसमें "बिहारके तीर्थ" शीर्षक लेखमें प० सकलनारायण शर्माने लिखा है, कि, "रघुनाथपुर स्टेशनके पास ब्रह्मपुर स्थान है।" बुचानन साहबकी रिपोर्टके आधारपर ओल्डहम साहबने बिहारके रिसर्च सोसाइटीसे जो शाहाबाद जर्नल प्रकाशित कराया है, उसमें शाहाबादके अन्य गाँवोंमें इन गाँवोंका भी नाम है।

गोस्वामीजी बलिया आये होंगे और वहाँसे हल्दी ... होंगे। बलियाको भृगु–आश्रम और दरदर क्षेत्र भी कहते हैं। भृगु मुनिके आश्रम होनेसे यह भृगु आश्रम कहलाता है और उनके शिष्य दरदरके नामसे दरदर क्षेत्र कहलाता है। हल्दी गाँव बलिया जिलेमें है और हैहय-वंशीय क्षत्रियोंका राज्य-स्थान है। गोस्वामीजी हल्दी गाँवके सामने गंगाजी पारकर सपही होते हुए गायघाट आये होंगे। गायघाट अभी भी हैहयवंशी क्षत्रियोंका निवास-स्थान है।

इसके पास ही परसिया और ब्रह्मपुर है। ब्रह्मपुर बहुत ही प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ फाल्गुन और वैशाखमें मेला लगता है। पासमें ही काँत नामका गाँव है। गोसाईं-जीको यही कहानी प्रसिद्ध है। ब्रह्मपुरसे एक कोसकी दूरीपर रघुनाथपुर नामका स्थान है, जो रेलवे स्टेशन भी है। हो सकता है कि, गोसाईंजी रघुनाथपुरसे डुमराँव आये हों और बक्सर होते हुए काशी चले गये हों।

बालीकी बातें

बाबू श्रीमद्भागवतप्रसाद वर्मा

जावा टापूके पासका बाली द्वीप पहाड़ी द्वीप है। यह बर्मासे पूर्व हिन्द-महासागरमें अवस्थित है। इसकी गुनङ्ग अनङ्ग नामकी चोटी समुद्र-तलसे १२३७९ फीट ऊँची है। कहीं-कहीं आग्नेय पर्वत भी हैं। वेतुर नामकी चोटीसे सदैव द्रव धातुएँ निकला करती हैं। पहाड़ोंपर कई सुन्दर जलाशय हैं। गहरे तालाबों और छोटी-छोटी नदियोंके सहारे यहाँ धान, भुट्टा, कलाई, नारंगी आदिकी अच्छी उपज होती है।

यहाँके आदि-निवासियोंकी आकृति जावा और मलयद्वीप के निवासियोंसे बहुत मिलती-जुलती है। हाँ, वेश-भूषामें कुछ अन्तर अवश्य है। यहाँके निवासी चीन और शिलेबिस द्वीपके निवासियोंके साथ वाणिज्य-व्यापार करते हैं। सूती कपड़े, रुई, नारियल-तेल और पक्षियोंके घोंसलोंके बदले इन्हें अफीम, सुपारी, हाथीके दाँत, सोना-चाँदी आदि मिलते हैं। प्राचीन कालमें यहाँ दास-विक्रय भी होता था। कैदी, शत्रु, ऋणी और चोर चीनियोंके हाथ बेच दिये जाते थे!

इस द्वीपके अधिपति बाली और लम्बकोंके सम्राट् कहे जाते हैं। ये 'कोङ्गसिओसाचोपेनन' नामसे प्रसिद्ध हैं। इस साम्राज्यके अन्तर्गत आठ छोटे-छोटे राज्य हैं, जो सामन्तोंके अधीन हैं। इन राज्योंमें आठ लाख मनुष्य हैं। यहाँके निवासी पड़ोसी द्वीपोंके निवासियोंसे अधिक सभ्य, शिक्षित और साहसी हैं।

इस द्वीपके प्राचीन इतिहासका पता नहीं चलता। कुछ लोगोंका मत है कि, यहाँ पहले राक्षस रहते थे। कुछ दिनोंके बाद 'मजपहित'के हिन्दू आकर बस गये। 'उशन-बालि' नामक ग्रन्थमें लिखा है कि, मय राक्षस और उसके सहायकों को पराजित कर देवताओंने यहाँ अपना आधिपत्य स्थापित किया। जो हो, यह बात सभी मानते हैं कि, प्राचीन कालमें यहाँ हिन्दू-धर्मकी प्रधानता थी।

'उशन-यव' नामक प्राचीन ग्रन्थसे पता चलता है कि, मजपहित-राज अगुङ्गने यहाँके राजाको पराजित कर यहाँका राज्य अपने सामन्तोंके अधिकारमें छोड़ दिया। कुछ दिनोंके बाद, यवनोंके उत्थानके कारण, मजपहित-राजका अन्त हो गया। इसी सम्बन्धमें एक स्थलपर यह लिखा है कि, किसी समय मय राक्षस-वंशके मब्रदानवको 'मजपहित'-राजके दो प्रमुख सैनिकों—आर्यडामर और पति गजमह—ने मार डाला था, उन्होंने 'गेलगेल' नामक स्थानमें राजधानी बसायी थी। 'मजपहित'-राजके पतनके बाद यहाँके राज-वंशधरोंने यहाँ आकर निवास किया था। १६३३ ई० के डच या अलन्दाज राजदूतके वर्णनसे पता चलता है कि, उस समय बाली-द्वीपके एक मात्र अधिपति देव-अगुङ्ग थे; अन्य सभी सामन्त इनका अधिपतित्व स्वीकार करते थे। कालान्तरमें मुख्य 'गेलगेल' राजधानी क्लोङ्गकोङ्ग, बङ्गलि गियान्यर और बोलेलेङ्ग नामक छोटे-छोटे प्रदेशोंमें बँट गयी और देव-अगुङ्गके वंशधरोंके अधिकारमें रही। देव-अगुङ्ग क्षत्रिय थे। कुछ दिनों-के बाद यहाँके वैश्य शक्तिशाली हो गये।

इसी बीच सामन्तोंमें पारस्परिक विद्वेषकी आग भभक उठी, उसके फल-स्वरूप भारी राजनीतिक परिवर्त्तन हुआ। मेङ्गुईराजकी शक्ति बहुत बढ़ गयी और इसके साथ-साथ करङ्ग असेम आदि राज्योंकी विजय हुई। डामर-राजवंशपर आक्रमण हुआ और उनके ही एक सम्बन्धीने बोनानमें अपना अलग स्वाधीन राज्य स्थापित किया। गेलगेलकी राजधानीमें देव-अगुङ्गने किसी गजमह-वंशीय राजकुमारकी हत्या करा डाली और इसका प्रतिशोध लेनेके निमित्त मेङ्गुई और करङ्ग असेम-निवासियोंने देव-अगुङ्गके विरोध भयङ्कर विद्रोह कर डाला। गेलगेलकी राजधानी नष्ट-भ्रष्ट कर डाली गयी। परन्तु, कुछ दिनोंके बाद, देव-अगुङ्गका विवाह करेङ्ग असेस-राजकन्या

के साथ होते ही पारस्परिक मनोमालिन्य जाता रहा। राजनीति-कुशल रानीने इन दोनों राज्योंका शासन बड़ी योग्यतापूर्वक किया। यहींसे देव-अगुङ्गकी शक्तिका ह्रास होना आरम्भ हुआ और करेङ्ग असेम राजाओंका पराक्रम बढ़ने लगा। इन्होंने बोलेलेंग और लम्बक-राज्योंको जीत लिया। इस राजनीतिक क्रान्तिमें, दक्षिणमें तबनानके गोष्ठी (वैश्य) राजाओंने भी पश्चिम वेदाङ्ग (वेदोंग) और पूर्वके कुछ भागपर अपना अधिकार जमा लिया। कुछ दिनोंके बाद देव-अगुङ्गके वंशधरोंने भी गियान्यरको लूटकर वहाँपर अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया। यह ध्यान देने योग्य बात है कि, क्लोङ्ग-कोङ्गके प्राचीन क्षत्रिय-राजवंशके अतिरिक्त सभी निम्न श्रेणीमें सम्मिलित हो गये थे।

पूर्वमें कहा जा चुका है कि, समस्त बाली-राज्य आठ छोटे-छोटे राज्योंमें विभक्त हो गया था और उनपर सामन्तोंका अधिकार था। इन राज्योंका भी संक्षिप्त परिचय यहाँ देना अनुपयुक्त न होगा—

(१) क्लोङ्गकोङ्ग—राज्य देव-अगुङ्गवंशके द्वारा स्थापित हुआ था। जन-संख्या ६००० है। वर्तमान राजवंश एक शूद्रीके गर्भसे उत्पन्न हुआ है। महिषीको कोई पुत्र नहीं हुआ था। करेंग असेम और बोलेलेंगके सामन्तके परामर्शसे राज्यका शासन चलता है।

(२) गियान्यर—१८४१ ई० में देव मङ्गीकाकी मृत्युके बाद देवपहान राजा हुए। क्षत्रियवंशमें उत्पन्न होनेपर भी राजवंशीयोंको शूद्र और पुङ्गावन् कहा जाता था। देव पहानके प्रपितामह ही इस वंशके संस्थापक थे और पूर्वमें देव-अगुङ्गके पूर्वजोंके अधीन, वे दो सौ सेनाके नायक थे।

(३) बंगली—१८७८ में यहाँके राजा देवजह पुटङ्गेवान् थे। ये अपनेको देव-अगुङ्गके वंशधर बतलाते हैं; किन्तु मर्यादामें उनसे निम्न हैं। इस राज्यके वंशधर पूर्वमें देव-अगुङ्गके सेनापति थे। यहाँके लोग बड़े साहसी और वीर होते हैं। ये बन्दूकोंसे युद्ध करते हैं।

(४) मेंगुई—सेनापति पतिगजमद इस प्रदेशके शासनकर्ता नियुक्त हुए थे। इन्हें कोई पुत्र न था। आजकल यह राज्य आर्यडामरकी प्रपौत्री कियशनके वंशधरोंके हाथमें है। किसी समय इन्होंने लम्बक, करेंग असेम, बोलेलेङ्ग और वेदोङ्गपर भी अधिकार किया था। इन राजवंशोंके साथ इस राज्यका घनिष्ठ सम्बन्ध है। १८७८ ई० में अनक अगुङ्ग कटुट्-अगुङ्ग यहाँके राजा थे।

(५) करेंग असेम—यहाँके राजा अपनेको सेनापति गजमदके वंशधर कहा करते हैं; किन्तु मेंगुई राजवंशके साथ साथ इनका विवाह-सम्बन्ध हुआ करता है।। १८७८ में यहाँके राजा नम्र् राजदे थे। इस राज-परिवारकी ललनाएँ अपनी मर्यादा और सतीत्व-रक्षाके लिये अग्नि-प्रवेश कर प्राण-विसर्जनतक कर बैठती हैं। करेंग असेम राजाओंके बाद बोलेलेङ्ग और देव-अगुङ्ग-वंशके राजाओंने कुछ दिनोंतक राज्य किया था।

यहाँ धानकी अच्छी उपज होती है। साधारण श्रेणीके लोग लकड़ी बेंचकर जीवन निर्वाह करते हैं। वर्तमान लम्बक राजाका नाम नम्र्र कुट्ट करेंग असेम है। 'सेलपारंग' इनकी उपाधि है।

(६) बोलेलेङ्ग—यहाँके राजा पतिगजमदवंशीय हैं। देव अगुङ्गके वंशधरोंने प्रथम यहाँ सात पीढ़ियोंतक राज्य किया था। उनके बाद वैश्यवंशीय राजाओंका प्राबल्य हुआ। वर्तमान राजभ्राता गोष्ठी (वैश्य) जेलन्देग यहाँके सर्वेसर्वा हैं।

(७) तबानान्—यहाँके राजवंशवाले आर्य दामरकी सन्तान हैं। राजाको रटू नम्र्र अगुङ्ग कहते हैं। मेंगुई-राजके साथ युद्ध करनेपर इन्हें मार्ग-प्रदेश पारितोषिक-स्वरूप मिला। पहले यहाँके राजा शूद्र थे और उनके पूर्वज ताड़ी बेंचा करते थे। अब इन्हें 'पुङ्गव' कहा जाता है।

(८) वदोंग—(बन्दनपुर) पहले यह राज्य मेंगुई और आर्य वेलेतेङ्गके पिनतिह राज्यमें सम्मिलित था। तबानान राजगोष्ठीके किसी सामन्तने इसकी स्थापना की थी। कुछ पहले पिनतिह गियान्यरसे तजङ्ला, गुनङ्गारट्, समोर, तमन

कुङ्गारम, सह्ला, तोरङ्गान द्वीप, ग्रोवोकन, ओगियान, कुट, तुबन, जेम्बरन और बाली द्वीपका दक्षिण भाग इस राज्यके अन्तर्गत था। प्राचीन राजा नग्रूर बोलाके १० वीं पीढ़ीमें राजा काशीमन एक प्रख्यात राजा हुए थे। इसी वंशके राजा नग्रूर शक्तिके पाँच सौ विवाहिता स्त्रियाँ थीं।

इस द्वीपके निवासियोंमें अधिकांश हिन्दू और बौद्ध हैं। भारतवर्षकी तरह यहाँ भी चार वर्ण हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय (सत्रिय) वैश्य (वेश्य) और शूद्र। इन चार वर्णोंके अतिरिक्त और कोई भी जाति यहाँ नहीं है। यहाँ ब्राह्मणोंकी 'इदा', क्षत्रियोंकी 'देव' और वैश्योंको 'गोष्ठी' वर्ण-सूचक उपाधियाँ हैं। शूद्रकी कोई खास पदवी नहीं है। हाँ, साधारणतया ये 'कहुल' कहे जाते हैं।

भारतवर्षकी तरह यहाँ भी पूर्वोक्त तीनों वर्णोंको 'द्विज' कहते हैं। इनमें अन्तर्जातीय विवाहकी भी प्रथा है; किन्तु ऐसे सम्बन्ध आदरणीय नहीं माने जाते। इस तरहके सम्बन्धसे उत्पन्न सन्तान पितृ-वर्णमें सम्मिलित होती है। हाँ; ब्राह्मणोंमें, लगातार तीन पीढ़ीयोंतक, नीच जातिकी कन्याओंके साथ विवाह-सम्बन्ध होनेपर, वह ब्राह्मण-वंश शूद्रमें गिना जाता है। सभ्य और सुशिक्षित ब्राह्मणोंका विवाह क्षत्रिय राजकुमारियोंसे भी हो जाया करता है। कहीं-कहीं, राजमहलोंमें, शूद्रा स्त्रियाँ दासी या भोग्या कहकर रखी जाती हैं।

ब्राह्मणोंमें पाँच शाखाएँ हैं—कमेमु, गेलगेल, नुआवा, मास और कायशून्य। गियान्यर-प्रदेशके कमेमुनिवासी ब्राह्मणोंको 'कमेमु' कहा जाता है; यह श्रेष्ठ और कुलीन समझे जाते हैं। गेलगेल-निवासी ब्राह्मण द्विजेन्द्रकी क्षत्रिय-पत्नियोंसे उत्पन्न हैं। द्विजेन्द्रके औरस और क्षत्रिय बाल-विधवाओंसे उत्पन्न नुआवा-ब्राह्मण कहलाते हैं। मास-शाखाके ब्राह्मण वैश्य-कन्याओंसे और काय-शून्य-शाखाके ब्राह्मण शूद्रासे उत्पन्न हैं।

राज-दरबारोंमें विद्वान् ब्राह्मणोंका बड़ा आदर है। उच्च शिक्षा-प्राप्त शास्त्रज्ञ ब्राह्मणोंको 'पदण्ड' कहते हैं। ब्राह्मणोंमें सवर्णा स्त्रियोंका स्थान ऊँचा है। वे वेद, यज्ञ, दान, तर्पण आदि कार्योंमें समानाधिकारकी भागनी हैं। विद्वान् ब्राह्मणोंकी भाँति इन्हें भी 'पदण्ड' या 'पण्डित'की उपाधिसे विभूषित किया जाता है।

पहले यहाँ बहुत थोड़े ही क्षत्रिय भारतवर्षसे आये थे। यहाँके क्षत्रिय-राजवंशमें देव अगुङ्ग और उनके वैमात्रेय भाई आर्यडामरके वंशधर प्रमुख और श्रेष्ठ समझे जाते हैं। इस समय क्लोङ्गकोङ्ग, बङ्गाली और गियान्यर आदि राज्योंमें क्षत्रिय ही शासक हैं।

यहाँ क्षत्रियोंसे वैश्योंकी संख्या अधिक है। करङ्ग असेम, बोलेलेङ्गुगमेङ्ग इ, तबानान, वेदोंग, और लम्बक राज्योंपर इनका ही आधिपत्य है। ये वैश्य कृषि, वाणिज्य और शिल्पको घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। कोई-कोई वाणिज्य करते भी हैं तो अफीम खाने और युद्ध-व्यय चलानेके लिये ही।

द्विजोंकी सेवा करना ही यहाँके शूद्रोंका मुख्य धर्म माना जाता है। अपनी सम्पत्तिपर शूद्रोंका कुछ भी अधिकार नहीं रहता। गाँवका मुखिया या राजा, अपनी इच्छाके अनुसार, शूद्रके घरसे प्रत्येक वस्तु ले सकता है। पहले तो इससे भी अधिक अत्याचार किये जाते थे; किन्तु राजा काशीमन्ने यह प्रथा उठा दी। राज्य-कर्मचारियों और राजकुमारों द्वारा अब भी जो अत्याचार इनपर होते हैं, उन्हें हम मनुष्योचित कर्म नहीं कह सकते। कहीं-कहीं सभ्य शूद्र मण्डलेश्वर (तहसीलदार) आदि जैसे राज्य-पदपर नियुक्त हैं सही; किन्तु इस जातिकी अवस्था बड़ी शोचनीय है। यहाँ सङ्गल श्रेणीके शूद्र स्मृति-पुराण पढ़ते और मन्त्र पाठ भी करते हैं। कहते हैं, इनके पूर्वज ब्राह्मण थे।

इतना होनेपर भी चारों वर्णोंके मनुष्य विश्वासी, साहसी, विनम्र और कर्मनिष्ठ हैं।

अबतक बाली द्वीपमें कोई भी ऐसा शिला-लेख तथा ताम्र-पत्र नहीं मिला है, जिसके आधारपर यहाँकी प्राचीन वर्णमालाका निरूपण किया जा सके। वर्त्तमान वर्णमालामें कुल १८ अक्षर हैं।

जन-साधारणमें बोली जानेवाली भाषा दो प्रकारकी है। द्विजोंकी भाषा शूद्रोंकी भाषाकी अपेक्षा अधिक परिमार्जित और संस्कृत है। यहाँकी प्राचीन भाषापर मलय तथा छन्द आदि पलिनेशीय भाषाओंकी छाप पायी जाती है। प्रथम बार जब जावाद्वीप-निवासी यहाँ आये, तब बालचालकी भाषामें भारी परिवर्त्तन हुआ। कई भाषातत्त्वविदोंका कहना है कि, जावा द्वीपकी भाषाकी अपेक्षा बाली द्वीपकी भाषा निम्न-श्रेणीकी और अधिक असंस्कृत है।

लिखित भाषाकी उत्पत्ति सम्भवतः भारतवासियोंके इस द्वीपमें आगमन (सन् ५०० ई०) के पूर्व ही हो चुकी थी। प्राचीन ग्रन्थोंमें रचना-काल नहीं लिखे जानेके कारण यह ठीक नहीं कहा जा सकता कि सर्वप्रथम ग्रन्थ किस संवत्में लिपिबद्ध हुआ था।

भारतीय सनातन धर्मावलम्बी हिन्दू तथा बौद्ध परिव्राजकोंके इस द्वीपमें आनेपर यहाँकी भाषा विशेषरूपसे परिमार्जित हो गयी। शब्द-भाण्डार बढ़ गया। हिन्दुओंने संस्कृत तथा बौद्धोंने पाली एवं प्राकृतपर अधिक जोर दिया। किन्तु इतना होनेपर भी किसीने एक नवीन स्वतन्त्र संस्कृत भाषाका जन्म नहीं दिया। विभिन्न भाषा-भाषी जनसाधारणमें नवीन धर्म-प्रचारके साधन-स्वरूप अभिनव भाषाका सहारा लेना इन्होंने उचित और लाभ-दायक नहीं समझा, तो भी यहाँकी तत्कालीन साहित्यकी भाषामें प्राचीन संस्कृत, पाली तथा प्राकृतके अनेक शब्दोंका सम्मिश्रण हो ही गया आजकल उन शब्दोंको हम अपभ्रंश कह सकते हैं।

लिखित भाषाके भी यहाँ दो भेद हैं; कावि-भाषा और संकेत (संस्कृत ?) कावि-भाषा प्राचीन साहित्यकी तथा संकेत-प्राचीन धर्म-ग्रन्थोंकी भाषा है। कावि-भाषाके सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थका नाम 'बारतयुद्ध' (भारतयुद्ध) है।

भाषा-तत्त्वविदोंने इस द्वीपके साहित्यको तीन श्रेणियोंमें विभक्त किया है, १ संस्कृत ग्रन्थ जिनकी टीका बालीकी भाषामें दी हुई है। इस श्रेणीके ग्रन्थोंमें वेद, ब्रह्माण्डपुराण, तुतुर (तन्त्र ?) आदि हैं, (२) कावि-ग्रन्थावली, (क) पौराणिक ग्रन्थ—रामायण, उत्तरकाण्ड और पर्वसमूह (महाभारत), (ख) विवाह, बारतयुद्ध आदि खण्ड-काव्य ग्रन्थ और (३) जावा तथा बाली-द्वीपकी मिश्रित भाषाओंमें अन्य रचना।

यहाँके चारो वेदों—ऋग्, यजुर, साम और अथर्व-की वर्णमाला संस्कृतलिपिकी ही है और इनकी टीका कावि-भाषामें की गयी है। ब्रह्माण्डपुराणको ही यहाँवाले शैव पुराण समझते हैं। इसकी व्याख्या बाली भाषामें लिखी गयी है। इस पुराणमें सृष्टि-प्रकरण, विभिन्न मनुओंसे प्रजा-सृष्टि, जगद्वर्णन, पौराणिक उपाख्यान तथा प्राचीन राज-वंशोंका उल्लेख है। भगवान् व्यास इसके रचयिता समझे जाते हैं।

इसके अतिरिक्त यहाँ महाभारत, रामायण आदि भी हैं। मुख्य तान्त्रिक ग्रन्थोंकी संख्या १४ है। मेनव (मनु ?) शास्त्र नामक एक स्मृतिग्रन्थ भी पाया जाता है। तुतुर (तन्त्र) कामोक्ष नामक एक धर्म-ग्रन्थमें जन्मसे मृत्यु पर्यन्तकी धार्मिक या सांस्कारिक क्रियाओंका उल्लेख है

वर्षकी गणना शक संवत् (७८ ई०) से की जाती है। प्राचीन कालमें तो यहाँ दस ही मास माने जाते थे (ज्येष्ठ और आषाढ़ नहीं गिने जाते) थे। ३५ दिनोंका एक मास माना जाता था!

यहाँके लोग सूर्य-ग्रहणको 'ग्रह' और चन्द्रग्रहणको 'राहु' कहा करते हैं। ग्रहणके अवसरपर ये विविध वाद्य-यंत्रोंको बजाते और भीषण चीत्कार करते हैं। लोगोंका विश्वास है कि, इससे डरकर ग्रहण करनेवाले दुष्ट ग्रह शीघ्र ही भाग जाते हैं!

वेदोंमें गो-गाथा

पं० गणेशदत्त शर्मा गौड़ "इन्द्र" विद्यावाचस्पति

भारतवर्षके लिये "गोरक्षा" कितने महत्त्वका विषय है, यह किसीसे छिपा नहीं है। स्वराज्यकी भाँति यह विषय भी महत्त्वपूर्ण है। बिना गौओंके स्वराज्य भी व्यर्थ होगा और बिना स्वराज्यके गोरक्षाका प्रयत्न भी व्यर्थ हो रहा है। भारतीय गोवंशपर सृष्टिके आदि कालसे संकटके बादल मँडराये, जो आजतक मँडराते-मँडराते घनघोर घटाके रूपमें हो गये। हमारे इस कथनकी पुष्टिमें पुराणोंकी कथाएँ पेश की जा सकती हैं। या यों कहा जाय कि, हिन्दुओंके राम, कृष्ण आदि अवतारोंकी आवश्यकतामें गोजातिकी रक्षा मूल है, तो अत्युक्ति न होगी। गो भारतवर्षका एक अत्यन्त पवित्र एवं आदरणीय पशु है। इसे इतना महत्त्व क्यों मिला? इसपर अधिक विचार करनेके लिये यहाँ स्थान नहीं है। संक्षेपमें यही बतलाया जा सकता है कि, "गऊका दूध और उसके वत्स उसका महत्त्व बढ़ाते हैं।" गोदुग्ध जननीके दूधकी भाँति गुणकारक होनेके कारण भैंस, बकरी, आदि पशुओंके दूधसे श्रेष्ठ है; और, इसी कारण अर्थात् मातृ-तुल्य दुग्ध प्रदान करनेसे उसे आज "माता" जैसे परमोच्च शब्दसे सम्बोधित किया गया है। गऊके वत्स (बैल) भूमि जोतते हैं। उनके द्वारा मानव शरीरका आधार (अन्न) प्राप्त होता है। कृषिकार्यमें आरम्भसे अन्ततक बैलोंकी जरूरत होती है। अतएव वह भी गौकी तरह ही आदरणीय एवं मान्य है। सारांश कि, गोजाति हमारे लिये एक अत्यन्त उपयोगी पशुजाति है। इसकी रक्षाकी ओर हमारा बिलकुल ध्यान नहीं रहा। फल यह हो रहा है कि, उस भारतमें अब केवल ४ करोड़ गोजाति शेष है, जिसमें पहले अरबों थीं। और यदि इस ओर हमारा ध्यान नहीं गया, तो ये बची-खुची गौएँ भी यहाँ-वहाँ रह जायगी—ऐसी संभावना है।

भैंस यद्यपि गौसे अधिक दूध देती है और मूल्यमें भी गौसे ज्यादा होती है; किन्तु गोदुग्धके समान उसके दूधमें गुण नहीं हैं। भैंसका दूध शरीरके लिये हानिकारक होता है। हाँ, भैंससे घृत प्राप्त करनेमें कोई हानि नहीं है। भैंसके दूधसे शरीरमें गर्मी बढ़ती है और ग्रीष्मकालमें तो भैंसका दूध पीनेवालेको बड़ी ही बेचैनी होती है। भैंसका दूध शरीरको पुष्ट करता है; परन्तु गोदुग्ध शरीर और आत्मा दोनोंका पोषक है। इसके अतिरिक्त पाड़े भारत जैसे गर्म देशमें खेतीके कामके नहीं होते। सारांश यह कि, गौ एक ऐसा प्राणी है, जिसका दूध, दही, छाछ, घृत, मूत्र, गोबर, उसके वत्स एवं गोसम्बन्धी प्रत्येक वस्तु मानव जातिके लिये हितकर ही हितकर है। इसीलिये हिन्दुओंके आदरणीय ग्रन्थ वेदोंमें गो-सम्बन्धी अनेक मंत्र आये हैं। यदि उन सब मंत्रोंका यहाँ संग्रह किया जाय, तो "गंगा" का कलेवर उसके लिये पर्याप्त नहीं होगा; अतएव हम यहाँ थोड़ेसे मन्त्रोंपर ही विचार करेंगे।

देखिये, वेद गौके सम्बन्धमें कितना आदरभाव प्रदर्शित करता है—

"गोमें माता ऋषभः पिता मे·········।" (ऋग्वेद)

चारों वेदोंको पढ़ जाइये, किसी भी पशुजातिके लिये अथवा मानवजातिके लिये वेदने 'माता-पिता'के पदसे उपमा नहीं दी है। या तो ईश्वरके सम्बन्धमें "स नो बन्धुर्जनिता स विधाता······।" इत्यादि कहा है या गौको माता और वृषभको पिताकी उपाधिसे विभूषित किया है। यह कितने महत्त्वकी बात है, पाठक विचारें।

वेद कहता है—

"इहैव गाव एतनेशकेव पुष्यत।
इहैवोत प्रजायध्वं मयिसंज्ञानमस्तु वः ॥"

अथर्व ३।१४।४

'हे गौओ ! यहाँ आओ, हमें शक्तिमान्‌के समान पुष्ट करो और यहीं बच्चे पैदा करो । मुझमें तुम्हारा प्रेम होवे। अर्थात् गोदुग्ध पीनेसे शरीर पुष्ट और मजबूत बनता है। उनके वत्सोंको प्राप्त करके कृषिकार्य किया जाता है ।'

गोजाति प्रेमकी भूखी है; वह स्वयं अपने वत्सको बड़ा ही प्रेम करती है और वह अपने स्वामीके प्रेमकी सदा इच्छुक रहती है । गोदुग्ध पीनेवाला भी प्रेमी-स्वभावका बन जाता है, इसीलिये वेदमंत्र प्रेमका संकेत कर रहा है—

"शिवो वो गोष्ठो भवतु शारिशाकेव पुष्यत।
इहैवोत प्रजायध्वं मयवः संसृजामसि ॥"

अथर्व ३।१४।५

'गोशाला मंगलमय हो। चावलके खेतके समान पुष्ट होओ। यहीं सन्तानसे बढ़ो। अपने साथ तुम्हें छोड़ता हूँ।'

"मया गावो गोपतिना सचध्वमयं वो गोष्ठ इह पोषयिष्णुः।
रायस्पोषेण बहुला भवन्तीर्जीवा जीवन्तीरुपवः सदेम ॥

अथर्व ३।१४। ६

'हे गौओ, मुझ गोपालकसे मिलकर रहो। यहाँ यह पोषण करनेवाली तुम्हारी गोशाला है। धन द्वारा बढ़ती हुई जीवन देनेवाली तुम्हें हम प्राप्त करते रहें ।'

"या देवेषु तन्व १ मैरयन्त यासां सोमो विश्वारूपाणि वेद ।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः प्रजावती रिन्द्र गोष्ठे रिरीहि।"

ऋग्वेद १०।१६७।२

'जो गौएँ अपने शरीरसे प्राप्त होनेवाला दुग्ध विद्वानोंमें अथवा इन्द्रियोंमें भेजती हैं और जिनके सब रंग-रूप औषधि रसका प्रयोग कर्त्ता जानता है, वे गाएँ अपने दुग्धसे हमें पुष्ट करती हुई बच्चों सहित गोशालामें रहें। प्रभो ! उन्हें बहुत दूध देनेवाली बनाओ ।"

"प्रजापतिर्मह्यमेता रराणोविश्वैर्देवैः पितृभिः संविदानः।
शिवाः सतीरुपनो गोष्ठमाऽकस्तासां वयं प्रजया संसदेम।

ऋ० १०।१६९।४

'परमात्मा, मेरे लिये इन गौओंको देनेवाला हो और विद्वान् सब पालकोंके साथ ऐकमत्य करनेवाला हो। हमारे गोशालाओंके प्रति कल्याणमय श्रेष्ठ गौओंको प्राप्त करें। उनके बछड़ोंके साथ हम आनन्दसे विचरण करें।'

उक्त मंत्र हमें यह स्पष्ट बता रहे हैं कि, केवल धार्मिक दृष्टिसे ही, उन्हें माता समझकर गोपालन न हो, बल्कि वे बछड़े-बछड़ियाँ उत्पन्न करती हुई उत्तरोत्तर वृद्धि और स्वास्थ्य करती रहें अर्थात् ऐसा न हो कि, उनकी वृद्धि रुक जाय और उन्हें केवल दूध प्राप्त करनेका साधन मात्र समझ लिया जाय। गौएँ निरन्तर बढ़ती रहें, उनकी संतान हृष्ट-पुष्ट हों, ताकि उनका वंश उन्नत होता जाय । कहीं ऐसा न हो कि, रोग अथवा वधिकों द्वारा उनका नाश हो जाय । सामवेद उत्तरार्चिक अ० १४ में कहा है—

"......पति वो अघ्न्यानाम् धेनूनामिपुष्यसि।"

'न मारने योग्य गौओंके स्वामीकी प्रशंसा करता हूँ।'

"न्यग्वातो वाति न्यक् तपति सूर्यः ।
नीचीन मघ्न्या दुहे न्यग भवतु ते रपः ।" अथर्व ६।९१।२

'वायु नीचेकी ओर बहता है, सूर्य नीचेकी ओर तपता है । गौ नीचेको दूध देती है, तेरा दोष नीचेको ओर हो।' इन दो मंत्रोंमें विशेष विचारणीय "अघ्न्या" शब्द है। जो गऊके लिये प्रयुक्त है । इस शब्दका अर्थ है, न मारने योग्य अवध्य । जहाँ जहाँ अघ्न्या शब्द है, वहाँ उसका अर्थ गौ होता है अर्थात् वेद गोजातिको अवध्य ठहरा रहा है। सिवा गौके यह या ऐसा दूसरा कोई भी शब्द वेदमें किसी प्राणीके लिये नहीं आता । इससे गौकी श्रेष्ठता और महत्ता प्रकट होती है ।

वैदिक कालमें भी अनार्य लोग थे, जो आर्योंके हृदयको व्यथा पहुँचानेके निमित्त गो जैसे उपयोगी प्राणीका बध करते थे । इसीलिये गोघातकोंके प्रति वेदकी आज्ञा है—

"........यो अघ्न्याया भरति क्षीर मग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापिवृश्च ।" अथर्व ८।३।१६

'जो गोदुग्धको हरण करते हैं, हे राजन् ! उनके मस्तकोंको अपने पुरुषार्थ द्वारा काट डालो ।'

"विषं गवां यातुधाना भरन्तामा वृश्चन्तामदितये दुरेवाः ।" अथर्व ८।३।१६

'दुष्ट लोग गौओंके पीनेके जलको यदि बिगाड़ें, तो वे लोग सर्वथा काट दिये जायँ ।'

योगिराज श्रीकृष्णचन्द्रजीका कालिय-मदमर्दन वेदके उक्त मंत्रका पालन कर रहा है । नाग-जातिके लोगोंने जब उनकी गौओंके पीनेके पानीमें विष मिलाकर खराब कर दिया, तब उन्होंने नागराज कालियकी अच्छी तरह मिट्टी पलीद की; और, अन्तको उसकी स्त्रियोंके प्रार्थना करनेपर उसे छोड़ा था ।

"जहि शत्रूनभिगा इन्द्र वृन्धि ।" ऋ० ६।१७।३

"आरे गोहा नृहा वधो वो अस्तु ।" ऋ० ७।५६।१७

"गां मा हिंसीरदितिं विराजम् ।" यजु० १३।४३०

"घृतं दुहानामदितीजनायाग्ने माहिं सीः परमे व्योमन् ।" यजु० १३।४९

'गोरक्षा करो । गोवध हटाओ । गोवधके कारणोंका विनाश करो । मांसभोजियोंका बहिष्कार करो ।' इत्यादि अनेक वाक्य गऊके सम्बन्धमें वेदोंमें आये हैं ।

"आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं क्षयद्वीरसुम्नमस्मे ते अस्तु । मृलाचनो अधि च ब्रूहि देवाधाचनः शर्मयच्छद्विबर्हाः ॥" ऋ० १।११४।१०

'हे प्रभो ! आपकी सृष्टिमें जो गोवध करनेवाले तथा मनुष्य-घातक हों उन्हें हम लोगोंसे आप दूर देशमें फेंक दीजिये । हम लोगोंमें आपका आनन्दकारी पदार्थ हो । हमें सदैव सुखी कीजिये ।' तात्पर्य यह कि, राजाको चाहिये कि, गोघातकको अपने राज्यकी सीमासे बाहर निकाल देवे—स्वराज्यमें न रहने दे ।

अगले मंत्रोंमें गोशाला, गोपालक और गोवाचके सम्बन्धमें विचार किया गया है —

"तस्माद्वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वाह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते ।"
अथर्व० ११।८।३२

'इसलिये इस पुरुषको विद्वान् लोग ब्रह्म मानते हैं; क्योंकि इसमें देवता इस प्रकार इकट्ठे हैं, जैसे गौएँ गोशालाओंमें ।' इस मंत्रमें कितना सुन्दर आलंकारिक वर्णन है—मानों यह शरीर गोशाला है, इन्द्रियाँ गौएँ और आत्मा गोपाल है । गोशाला, गौएँ और गोपालका कैसा दृढ़ सम्बन्ध वर्णित है ! और देखिये—

"व्रजं कृणुध्वं सहिवो नृपाणो वर्म सीव्यध्वं बहुला पृथूनि ।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा माचः सुस्रोचमसो दृंहतातम् ।"
ऋ० १०।१०।८; अथर्व १७।९८।४

'गोशाला बनाओ ! वही आपका पानस्थान है ।

"संवो गोष्ठेन सुखदा रय्या संभूत्या ।
अहर्जातस्य यन्नामतेनावः संसृजामसि ।"
अथर्व ३।१४।१

'जिस गोशालामें साफ-सुथरी सुख देनेवाली बैठनेकी जगह है, उसमें शोभा और सुखके साथ मैं गौओंको इकट्ठी रखता हूँ । दिनके प्रकाशके गुणोंसे गौओंको रखता हूँ ।' मतलब कि, गोशाला साफ-सुथरी, लिपी-पुती और ऐसी होनी चाहिये, जिसमें रात्रिके समय स्वच्छ वायु और दिनमें सूर्य-प्रकाश खूब आता हो ।

"संजग्माना अबिभ्युषिरस्मिन् गोष्ठे करीषिणीः ।
बिभ्रतीः सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन ।" अथर्व ३।१४।३

'इस गोशालामें निर्भयतापूर्वक रहनेवाली, मिलकर चलनेवाली, गोबर उत्पन्न करनेवाली, अमृत-तुल्य मीठा दूध धारण करनेवाली नीरोग गौएँ हमारे पास हों ।'

गौएँ किस प्रकार पालनी चाहिये—

"प्रजावतीः सूयवसेरुशन्तीः शुद्धाः अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।

मावस्तेन ईशत माघशंसः परिवो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु ।"
अथर्व ४।२१।७

'सवत्सा, उत्तम आहार करनेवाली, उत्तम जलाशयोंमें शुद्ध पानी पीनेवाली गौएँ हों। गोपालो ! चोर और पापी तुम्हें अपने वशमें न करें अर्थात् गौओंके खान-पानकी ओर विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता है। वे खराब घास, खराब अन्न और गन्दा मैला पानी न पीने पावें।' वर्त्तमान समयमें मूत्र पुरीषादि खानेवाली गौओंकी ओर उनके स्वामियोंको ध्यान देनेकी आवश्यकता है। वेद कहता है कि, ग्वाले भी हृष्ट-पुष्ट एवं बलवान् हों, ताकि चोर और हिंसक उनसे गौएँ न छीन सकें।

"मयोभूर्वातो अभिवातूस्रा ऊर्जस्वतो रोषधीरा रिशंताम्।
पीवस्वतीर्जीवधन्याः पिबन्त्ववसाय पद्वते रुद्रमृळ ।"
ऋग्वेद १०।१६९।१

'आरोग्यप्रद वायु बहता रहे। बल देनेवाली गौएँ वनस्पतियाँ खाकर पुष्ट हों। प्राण देनेवाली गौएँ उत्तम पानी पियें। परमात्मन् ! गौओंको सुखी बना।'

अब जरा गोसेवाके फलको भी वेदों द्वारा ही सुन लीजिये।

"यूयं गावो मेदयथा कृशंचिदश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वोवय उच्यते सभासु ।"
अथर्व ४।२१।६

'हे गौओ ! तुम दुर्बलको हृष्ट-पुष्ट करती हो, शोभाहीन मनुष्यको रूप प्रदान करती हो। जिस घरमें तुम निवास करती हो, उसे मङ्गलमय बना देती हो। हे उत्तम शब्दवाली गौओ ! जहाँ लोग इकट्ठे होकर बैठते हैं, वहाँ तुम्हारे गुणोंका वर्णन होता है।'

गौएँ भारतवर्षके लिये या हिन्दुओंके लिये ही हैं—यह बात ठीक नहीं है। वेद कहता है—

"वशांदेवा उपजीवन्ति वशां मनुष्या उत ।
वशेदं सर्वमभवत् यावत्सूर्यो विपश्यति ॥"
अथर्व १०।१०।३४

जहाँतक सूर्य-प्रकाश पहुँचता है, गौएँ सबको समान लाभ-प्रद होती हैं। देव मनुष्य और राक्षस, सभी गोदुग्धादिसे लाभ उठाते हैं। तात्पर्य यह कि, गौके जीवनके साथ ही मनुष्यका जीवन है और उसके नाशके साथ ही विनाश। इस प्रकार गोजातिकी महान् आवश्यकता और उपयोगिता सिद्ध होनेपर ही वेदने कहा है कि,

"गोमें माता ऋषभः पिता मे दिवम् शर्म जगती मे प्रतिष्ठा।"
ऋग्वेद।

'गौ मेरी माता और साँड़ मेरा पिता है। ये दोनों मुझे पारलौकिक एवं ऐहिक सुख प्रदान करें। गौओंमें मेरी प्रतिष्ठा हो।'

इससे अधिक गौओंके प्रति और क्या आदरभाव प्रदर्शित किया जा सकता है ? प्राचीन कालमें गौओंका बड़ा ही आदर था। आदर तो इस युगमें भी है; किन्तु मौखिक है! हिन्दू लोग केवल गौको माता कहकर ही अपने कर्त्तव्यकी पूर्त्ति समझ लेते हैं! यही कारण है कि, लाखों गौएं प्रतिवर्ष वेदाभिमानी आर्य-देशमें, काट डाली जाती हैं। गोपालनकी तो पूछिये नहीं, चर्म-वेष्टित अस्थि-पञ्जरके रूपमें हमारी गो माता दीन-हीन दशामें दिखायी दे रही है! ईश्वर भारतवासियोंको 'गोरक्षा' करनेकी सुबुद्धि प्रदान करे, यही प्रार्थना है।

राजा चक्रधर सिंहजी

एक सुधार-प्रेमी औघड़

उत्कल प्रान्तकी पश्चिमीय सीमाके अति सन्निकट सी० पी० का रायगढ़ नामक एक छोटासा राज्य स्थित है। इसकी राजधानी भी रायगढ़के नामसे ही विख्यात है, जो तीन ओरसे एक प्रशान्त और अविराम प्रवाहित नदीसे परिवेष्टित है। क्षेत्र और जन-संख्याकी दृष्टिसे यद्यपि यह राज्य मध्यप्रदेशके और-और राज्योंसे छोटा है; तथापि स्वास्थ्य, शिक्षा आदि आवश्यक बातोंकी दृष्टिसे यह अधिक उन्नत है। यहाँकी आब-हवा बहुत अच्छी है। नगरकी सफाईके कारण यहाँ संक्रामक रोगोंका बहुत कम दौरा होता है। इस राज्यका चिकित्सा-विभाग एक कुशल और योग्य सर्जनके निरीक्षणमें इतना सुसंगठित और साधन-सम्पन्न है कि, उसके तात्कालिक प्रबन्धसे अधिक जन-हानि नहीं हो पाती।

रायगढ़में मुख्यतया धानकी फसल होती है। मूँग, उड़दकी भी खेती होती है और प्रायः गाँवमें गन्ने लगाये जाते हैं, जिनसे रस निकालकर गुड़ तैयार किया जाता है। परन्तु गेहूँकी फसल राज्यके आठ सौ गाँवोंमेंसे, केवल दो-चारमें ही होती है। देहातमें यदि एक ओर उत्कल प्रान्तसे आये हुए कोलतोंकी भरमार है, तो दूसरी ओर निपट छत्तीसगढ़ी बोलने वाले अघरिया बिलबिला रहे हैं। कोलतोंने पहले खूब परिश्रम कर इस राज्यमें जर-जमीन कमायी थी; पर अब यह जाति कई एक दुर्व्यसनोंमें फँसकर अधोगतिको पहुँच रही है। परन्तु अघरियोंकी ऐसी अवस्था नहीं है। वे इतनी सादगी और किफायतसारीसे रहते और दिनभर खेतोंमें जाकर इतना कठिन परिश्रम करते हैं कि, उन्हें सालके अन्तमें कुछ अच्छी रकम, बचतके रूपमें, मिल जाया करती है। पहननेके कपड़े ये कभी बाजारसे मोल नहीं लेते। अपनी जमीनमें यथेष्ट कपासकी खेती करके, ये लोग अपनी आवश्यकताएँ पूरी कर लेते हैं। स्त्रियाँ सूत कातती हैं और उनसे मजदूरी लेकर गाँवका मेहर उनके लिये मोटा-सा कपड़ा बीन देता है। कमाते ये लोग बहुत हैं और अपने लिये खर्च भी बहुत कम करते हैं; इसी लिये प्रायः प्रत्येक अघरिया-गृहस्थके पास थोड़ी बहुत पूँजी रहती है, जिसे वह काफी सूदमें लगाकर निरन्तर बढ़ाया करता है।

इस राज्यमें बोली जानेवाली मुख्यतः दो भाषाएँ हैं—(१) छत्तीसगढ़ी, जिसे अवधी हिन्दी भी कहते हैं और (२) उड़िया। यहाँ अधिक दिनोंतक रह जानेके कारण बोलचालमें हिन्दीका व्यवहार करनेवाले छत्तीसगढ़िये भी अपने घरपर पाठ-अनुष्ठान उड़िया पण्डितोंके द्वारा उड़ियामें ही कराते हैं। यहाँ कुछ भागमें उड़ियाका प्राधान्य होनेके कारण सम्बलपुरके कुछ 'स्वयम्भू' नेता भविष्यमें संगठित होनेवाले नये उत्कल-प्रान्तमें रायगढ़-राज्यको सम्मिलित करनेके फेरमें हैं; किन्तु उत्कल प्रान्तमें जाना, यहाँका एक उड़िया भाषा-भाषी देहाती भी पसन्द न करेगा। उसे तो छत्तिसगढ़ियोंके साथ रहनेमें ही मजा आता है। यदि भाषा-सम्बन्धी एक ही कारणसे उत्कल प्रान्तमें इस राज्यका मिलाया जाना सम्भव हो सके, तो इसे हम उत्कल-निवासियोंकी धींगा-धींगी ही कहेंगे। इस राज्यका भला इसीमें है कि, वह अपना सम्बन्ध हिन्दी-भाषी प्रान्तोंसे बनाये रखे।

रायगढ़ नगरकी आबादी केवल बारह हजार है, जिसमें समीपके दो छोटे गाँव भी शामिल हैं। नगरमें म्युनिसिपलिटीका शासन है, जिसके अधिकारमें पासके उन दो गाँवों-की भी सफाई-रोशनी आदिका प्रबन्ध-भार सौंप गया है। शहरकी सफाई साधारणतः अच्छी और नगरके बालकोंको शिक्षाका प्रबन्ध भी ठीक है।

नगरमें तीन हिन्दी प्रायमरी स्कूल, अँग्रेजीका एक हाई स्कूल और एक संस्कृत स्कूल है। संस्कृत स्कूलकी स्थापना रियासतके एक उदारचेता मालगुजारकी आर्थिक सहायतासे हुई है। देहातकी चालीस पाठशालाओंमें वैज्ञानिक रूपसे शिक्षा देनेके लिये नार्मल स्कूलमें योग्य शिक्षक तैयार किये जाते हैं, जिन्हें उनके शिक्षा-कालमें खर्चके लिये सरकारकी ओरसे छात्रवृत्ति भी मिलती है। चौदह वर्षोंके परिश्रमसे स्टेटके प्रायः सभी स्कूलोंमें ट्रेण्ड शिक्षक भरती हो गये हैं। भविष्यमें अब इसकी आवश्यकता न होनेके कारण यह स्कूल अब शीघ्र ही तोड़ दिया जानेवाला है। इसके अलावा हाई स्कूलसे पास होकर कालेजमें पढ़नेवाले विद्यार्थियोंको प्रति-मास करीब दो सौ रुपयोंकी छात्रवृत्ति दी जानेकी व्यवस्था है। कम आमदनीके इस छोटेसे राज्यके लिये यह व्यवस्था क्या कम है? नगरमें विद्युत् प्रकाशका काफी प्रबन्ध है, जिससे रात्रिमें सर्वत्र रोशनी-ही-रोशनी रहती है। रातमें पुलिसका पहरा भी उचित रूपसे होता है, जिससे शहरमें बहुत कम चोरी होती है। दरबारकी ओरसे दो बड़े-बड़े अस्पताल, निःशुल्क औषध वितरणके लिये रात-दिन खुले रहते हैं। इनके अतिरिक्त तीन प्रायवेट अँग्रेजी दवाखाना, चार आयुर्वेदालय और तीन यूनानी चिकित्सालय भी हैं। कहनेका मतलब यह कि, यहाँ चिकित्साके लिये किसीको इधर-उधर भटकना नहीं पड़ता। इसी तरह देहातमें भी चार अस्पताल खोल दिये गये हैं, जो सब असिस्टेण्ट डाक्टरों-के निरीक्षणमें देहाती लोगोंका अच्छा उपकार और सहायता करते हैं। स्थानीय जल-यंत्रके कारण लोगोंको आवश्यकतासे भी अधिक स्वच्छ और निर्विकार जल मिल जाया करता है। नगरमें एक ढोर अस्पताल भी है, जिससे मूक पशुओंकी यथाविधि चिकित्सा होती है। स्टेटके आदेशके अनुसार यहाँ-के पशु-चिकित्सकको देहातमें भ्रमण कर पशुओंके साधारण स्वास्थ्यकी ओर ध्यान देना पड़ता है। वह देहातियों-को पशु-पालनकी आवश्यक बातें बताया करता है। हम नहीं कह सकते कि, देहाती लोग उसकी हिदायतोंका कहाँ-तक पालन करते हैं; पर इतना तो अवश्य है कि, इस चिकि-त्सा-प्रणालीसे बड़े-बड़े पशु-संहारक रोगोंका यथाशीघ्र दमन हो जाता है और लोग प्रायः असामयिक अर्थ-हानिसे बच जाया करते हैं। नगरके इन सब लोक-हितके कार्योंमें राजवंशका म्युनिसिपलिटीके साथ पूर्ण सहयोग रहा है। यहाँ यह कह देनेमें अत्युक्ति न होगी कि, यदि इस राज्य-का दरबार इन कार्योंके निर्माणमें धनादिसे म्युनिसिपलिटी-का हाथ न बटाता, तो इसमें सन्देह ही था कि, यह नगर आज यों समस्त सुविधाओंसे परिपूर्ण हो पाता। नगर-में धनिकोंकी ओरसे बनी हुई बड़ी-बड़ी इमारतोंकी भी कमी नहीं। इसके विषयमें एक वाक्यमें यह कह देना उचित होगा कि, यह नगरी छोटी होनेपर भी सम्पूर्ण सुविधा-साधन-सम्पन्न है। रेलवे लाइनके अति सन्निकट होनेसे और चारों ओरसे दूसरी उन रियासतोंसे घिरे रहनेके कारण, जहाँ रेलवेकी लाइनें नहीं पहुँच सकी हैं, यह नगर व्यापारमें भी बढ़ा-चढ़ा है। यहाँके बाजारमें दूसरी रियासतोंसे आया हुआ हजारोंका माल प्रतिदिन बिकता है। व्यापार-क्षेत्रमें अधिकतर गुजराती, कच्छी, मारवाड़ी, जातिके लोग ही सफल देखे जाते हैं। देशी लोगोंमें, दो-एक बनियोंको छोड़-कर, यहाँ कोई दूसरा व्यापार नहीं करता। यहाँके लोग अधिकतर कृषि-कर्म और स्टेटकी नौकरी करते हैं। नगरमें अँग्रेजी पढ़े-लिखे नवयुवकोंकी काफी संख्या हो जानेके कारण उनके लिये स्टेटकी नौकरियाँ पर्याप्त नहीं हैं और इन नवयुवकोंको कृषि-कर्मकी न तो शिक्षा ही मिली है और न उनको इस व्यवसायसे अनुराग ही है। उन्हें तो अब चाहिये कि, किसी तरह वे व्यापारमें क्रमशः अग्रसर हों।

इस राज्यकी प्रजाओंके हक-हकूक भी और रियासतोंके हक-हकूककी अपेक्षा अधिक और स्थायी हैं। वे कई अंशोंमें खालसाके प्रचलित हक-हकूकोंसे भी अच्छे हैं। जमीन की लगान भी कोई अधिक नहीं, उसे किसान प्रतिवर्ष सहजमें ही पटा सकता है और प्रतिवर्ष नियमित रूपसे पटाता भी है। इस आर्थिक दुरवस्थामें भी प्रायः सभी

किसानोंने इस सालको लगान खजानेमें पटा दी है। यहाँकी देहाती प्रजा न तो अधिक धनी ही है और न अधिक निर्धन ही। ऐसे तो भारतवर्षकी प्रायः प्रत्येक रियासतमें बेगार-की नृशंस प्रथा प्रचलित है, उसी प्रकार यहाँ भी इस प्रथाका पालन किया जाता है। पर जहाँतक हमारा ज्ञान और अनुमान है, मध्य प्रदेशकी अन्यान्य रियासतोंकी अपेक्षा यहाँ बेगार कम मात्रामें तथा सहूलियतसे ली जाती है। हमारी इच्छा है कि, रायगढ़ जैसी उन्नति-शील रियासतके लिये इस असभ्य प्रथाका न रहना ही उत्तम है। यहाँकी प्रजा अपनी साधारण स्थितिसे सदैव सन्तुष्ट रहती और अपने राज-वंशके प्रति सेवा और स्वामि-भक्तिके भाव प्रदर्शित करनेमें सदैव तत्पर रहती है। प्रजा-समुदायने वर्तमान राजा साहबके इस अल्प कार्य-कालके भीतर उन्हें दो-दो, तीन-तीन बार मान-पत्रके सहित बहु-मूल्य उपहार दिये हैं। यहाँका राजवंश ही ऐसा मनोमोहक और लोकप्रिय है। उनकी सेवाके बदलेमें राजवंश भी उनके प्रति आदर और कृतज्ञताके भाव दिखाता है। ऐसा उसे चाहिये भी। इस राजवंशके विषयमें अनेक पीढ़ियोंसे यह बात देखी और सुनी जाती है कि, इस वंशमें उत्पन्न होने वाले कुमार स्वभावसे ही शान्त, निरुपद्रवी और सदाचारी होते हैं।

जिन लोगोंका परिवार राज्यमें कई पीढ़ियोंसे रहता आया है, उनका तो राजवंशमें घरकासा व्यवहार रहता है। इस राज्यके प्रायः सभी राजकुलोत्पन्न शासक मिलनसार और मिष्टभाषी होते आये हैं और उनके ये पैतृक गुण हमारे वर्तमान महाराजमें भी प्रचुरतासे पाये जाते हैं। महाराजके स्वर्गीय पूज्य पिता श्रीमान् राजा भूपदेव सिंह बहादुरके शासन-कालको तो लोग आजकल रामराज्यकी आदर्श भावना-से ही स्मरण करते हैं। वास्तवमें उनकी शासन-प्रणाली ऐसी सुन्दर और उदार भी थी। इसी सुप्रसिद्ध राजवंशमें हमारे चरितनायकका सन् १९०४ में पटरानीके द्वितीय गर्भसे जन्म हुआ था। बड़े भाई स्वर्गीय राजा नटवर सिंहकी असामयिक मृत्युके पश्चात् ब्रिटिश सरकारकी ओरसे ये रायगढ़के नरेश मनोनीत हुए और १९२७ ईस्वीमें, २३ वर्षकी अवस्थामें, उनको राज्यके सारे शासनाधिकार सौंप दिये गये। उनके स्वर्गीय पिता महाराजको प्राणोंसे भी अधिक चाहते थे। स्वर्गीय राजा नटवर सिंह बचपनमें ही कुसंगतिमें पड़ चुके थे। इससे उनके पिताको उनके प्रति घोर निराशा हो गयी थी। परम पिताकी परम दयासे ज्येष्ठ कुमारके जन्मके करीब बारह बरस बाद हमारे वर्तमान राजाका जन्म हुआ। इससे बूढ़े राजाके हृदयमें आशाका नवीन संचार हुआ और पुरानी उमंगें जागृत हो उठीं। वर्तमान राजाका जन्म क्या हुआ था, राजा और प्रजाको मानों अनायास कोई अपूर्व निधि मिल गयी थी। इन दोनोंने मिलकर इस जन्मके उपलक्षमें अभूतपूर्व हर्ष प्रकाश किया, उनका यह हर्ष-प्रकाश निरर्थक न था। राज्यके विषयमें उनकी तब की हुई आशा मिथ्या न थी और आज जब हम उन्हें राज्यका शासन-सूत्र हाथमें लिये हुए देखते हैं, तब प्रजासमुदायका प्राणी-प्राणी हर्षसे यह कहकर उनका अभिवादन करता है कि, अशान्ति और अन्यायके इस कठिन युगमें राजा साहब हमारे आराध्य देव बनकर रहें और उनका राज्य भूमंडलमें चिर स्थिर होकर रहे। आप हृदयके अति सरल, निष्कपट और गंभीर हैं। बड़े ही मिलनसार हैं। साहित्य और संगीतके पूर्ण विशारद राजा साहब अपना प्रायः सब समय इन्हीं बातोंमें व्यतीत करते हैं। ऐसा शास्त्र-नीति-कुशल शासक भी क्या अपने विलास-विनोद के लिये अपनी प्रिय प्रजाको कष्ट दे सकता है? आपका सबसे आत्मीयताका भाव प्रदर्शित करना अत्यन्त प्रशं-सनीय है।

संगीतके विषयमें तो हम नहीं कह सकते (क्योंकि दुर्भाग्यवश इस दिशामें हमारी विशेष जानकारी नहीं है;) पर यह अवश्य कह सकते हैं कि, हिन्दी-साहित्यमें राजा साहबकी सार्वजनिक सेवा स्तुत्य और औरोंके लिये अनु-करणीय है। राज-सुलभ भोगकी सहज सामग्रियोंको छोड़-कर गुणी जनोंकी संगतिमें रहनेका राजा साहबको अभ्यास-

सा हो गया है। अनावश्यक विषयोंकी ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता। इसीका फल यह है कि, राजा साहब थोड़े ही समयके भीतर हिन्दी-साहित्य-वाटिकाको तीन-तीन अनुपम पुस्तक-पुष्पोंसे सुशोभित कर सके हैं—(१) बैरागढ़िया राजकुमार, (२) मायाचक्र और (३) रत्नहार। इन पुस्तकोंको देखकर, जिनकी रचना तथा जिनका प्रकाशन राजा साहबने बड़े धन-व्यय कर बड़े सुन्दर ढंगसे किया है, यह कोई नहीं कह सकता कि, उनमें भाव-माधुरी, पद-लालित्य आदिका अभाव है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि, गृद्ध्र दृष्टिसे विवेचन करनेवाले साहित्यके प्रौढ़ समालोचकोंको उनमें त्रुटियाँ न मिल सकेंगी। पर किसी भी हिन्दी-प्रेमीको यह कहनेका साहस न होगा कि, साहित्यके प्रांगणमें एक देशी राजकुमारका पदार्पण और प्रवेश उत्तम नहीं हुआ। अथवा उन पुस्तकोंके शृंगारमें धनके अपव्ययके सिवा और कुछ सेवा नहीं हुई। यों तो उनको तीनों ही पुस्तकें कला और लोकरंजनकी दृष्टिसे अत्यन्त उपादेय और उत्तम हैं। इन पुस्तकोंमें दिये हुए चित्रोंसे राजा साहबके विशाल हृदयका पता एक सचेष्ट और सहृदय जनको लगे विना नहीं रह सकता। राजा साहबकी सदैव यही इच्छा रहती है कि, उनका अधिक-से-अधिक समय साहित्य-संगीतके अनुशीलनमें ही व्यतीत हुआ करे और कालान्तरमें वह मातृ-भाषाकी ठोस सेवा कर सकें। हमारी यही कामना है कि, हमारे राजा साहब दीर्घायु हों और उनकी यह हिन्दी-सेवा दूजके चन्द्रमाके समान उज्ज्वल और ऊर्ध्वमुखी हो, जिससे हिन्दीका कलेवर उनके सजाये हुए रत्नाभूषणोंसे द्विगुणित सुशोभित हो उठे।

साहित्य और संगीतके इस सुवर्ण-सुयोगमें उनकी शासन-व्यवस्थाकी साधुता भी जा अटकी है, जिससे उनका ऐश्वर्य और भी निष्कलंक और शोभायमान हो जाता है। राजा साहबसे कोई भी किसी समयमें भी जाकर मिल सकता और निर्भयतापूर्वक अपनी बातें सुना सकता है। कहते हैं, राजाओंको आँखें नहीं होतीं, उन्हें केवल कान ही होते हैं; परन्तु हमारे राजा साहब सहसा कोई कार्य नहीं कर बैठते और तबतक नहीं करते, जबतक वह उपस्थित विषयोंकी छानबीन नहीं कर लेते। शासन-विषयमें आज्ञा प्रचारित करनेके पूर्व वह हर पहलूपर विचार कर लेते और उसे फिर व्यवहारका रूप देते हैं। इस प्रणालीसे काम करनेके कारण उन्हें अबतक रियासती मामलोंमें, अनेक विघ्न-बाधाएं होते हुए भी, सफलता और विजय ही मिलती रही है। उनकी अमर-रचनाओंमें जिन साधु कल्पनाओंका अमृत स्रोत प्रवाहित हो रहा है, उन्हीं कल्पनाओंकी स्पष्टता आप उनके शासन-कार्योंमें भी देख पड़ती है। यही तो उनकी हृदय-क्षितिमें रहस्यमयी अद्भुत उपत्यका है, शस्य-श्यामल वाटिका है, जिसमें भिन्न-भिन्न आचार और विचारके प्राणी स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण कर नित्य नवीन नृत्य करनेमें समर्थ हो सकते हैं। धन्य है राजा साहबको, जिनने ऐसी मीठी और रसीली तबीयत पायी है और जिनका प्रत्येक निमिष ही लोक-रंजनमें लगा रहता है।

राजा साहबने अपने शासनके थोड़े ही समयमें लोकहितके अनेक कार्य कर अपनी महत्त्वाकाक्षाओंको व्यवहारका प्रत्यक्ष रूप प्रदान किया है। उनके राज्यसिंहासनपर समासीन होते ही राज्यके उस मूक प्राणी समुदायके दुःख-दर्दकी ओर राजा साहबका ध्यान आकर्षित हुआ, जिसे हम निरीह शिशु और स्त्रियोंके समुदायके नामसे व्यक्त करते हैं। उनके लिये राज्यमें कोई खास विशेषतापूर्ण चिकित्सालय तथा सार्वजनिक आश्रय न था। राजा साहबने वर्तमान कालीन अर्थाभावमें भी लाख सवा लाख रुपये खर्च कर उनकी व्यवस्था कर दी। महिला-औषधालय और मातृ-मन्दिर साल भर हुए, खुल चुके हैं और इन दिनों इस पिछड़े हुए प्रान्तकी प्राचीन रूढ़ियोंमें बेतरह फँसी हुई छत्तीसगढ़ी जनता हिचक-हिचककर इन संस्थाओंका उपयोग कर रही है। वह समय अब बहुत दूर नहीं है, जब लोग इन संस्थाओंकी उपयोगिता समझकर इनसे पूर्ण लाभ उठावेंगे। यहाँ यह कह देनेमें अत्युक्ति न होगी कि, मध्यप्रान्त भरमें केवल दो-

एक प्रमुख नगरोंको छोड़कर सम्पूर्ण साधनोंसे सज्जित ऐसी सुन्दर संस्था और कहीं नहीं है।

यूंसे तो रायगढ़ नगर पड़ोसके और-और नगरोंकी अपेक्षा बहुतेरी बातोंमें आगे बढ़ा हुआ है (क्योंकि इसमें बहुत पहलेसे ही उन्नति होती आयी है); पर हमें तो उन्हीं नवीन कार्योंका उल्लेख करना है, जिनपे हमारे चरितनायक-की असीम सहृदयता और उज्ज्वल परोपकारिताका सम्बन्ध है। नगरमें म्युनिसिपलिटीका अस्तित्व बहुत दिनोंसे है और जनताके चुने हुए व्यक्ति ही उनके सदस्य होते हैं। यहाँ व्यापारकी अधिकता होनेसे उसकी आय भी नगरके स्वास्थ्य, शिक्षा आदिके प्रबन्धके लिये यथेष्ट हो जाया करती है। अबतक म्युनिसिपलिटीपर कुछ ऐसे प्रौढ़ पुरुषोंका आधिपत्य था, जो अपने तथा अपने 'माननीय' दलके स्वार्थोंकी ओर ही अधिक दृष्टि रखते थे। अतएव 'अधिक जनोंकी अधिकाधिक सुविधा'की दृष्टिसे उससे कोई वास्तविक लोक-हितका कार्य नहीं हो सकता था ; पर अब हर्षका विषय है कि, नगरके स्वतन्त्र व्यवसाय करने-वाले पढ़े-लिखे नवयुवकोंने इन 'सयानों'को अलग कर दिया है और ये सभी सार्वजनिक बातोंमें दिलचस्पी लिया करते हैं। राजा साहब भी अपने विचार और कार्यसे इनको उत्साहित करते और यथोचित सहायता करते हैं।

अभी हालमें ही राजा साहबने अपने खजानेसे रुपये देकर एक सुविशाल टाउनहाल (सार्वजनिक विचारालय) का निर्माण कर और साथ-ही-साथ एक प्रशस्त भवनमें एक छोटा ; परन्तु अच्छा सा, पुस्तकालय खोलकर, जिसमें हिन्दीकी प्रायः सभी प्रकाशित पुस्तकें संगृहीत हैं, लोक-हितकार्यको बहुत बढ़ाया है। इस विचार या विवाद-भवनकी स्थापना करनेसे राजा साहबकी यह स्पष्ट अभिलाषा प्रतीत होती है कि, उनकी प्रजा इस सार्वजनिक गृहका उपयोग कर शासन-कार्योंके प्रति स्वतन्त्र रूपसे अपने विचार व्यक्त करे, जिससे उभय-पक्षका उपकार हो।

इस अवसरपर हम राजा साहबसे दो-एक बातें किये बिना नहीं रह सकते। जो कुछ हम उनसे यहाँ कहेंगे, सद्भावसे ही कहेंगे और इसी आशासे कहेंगे कि, उनके द्वारा बृहत्तर प्रजारंजन हो और उनके राज्य ऐश्वर्यकी निरन्तर वृद्धि होती रहे। किसी देशी राज्य या उसके शासकके प्रति एक आकिञ्चन साहित्य लेखक इससे अधिक और क्या कह सकता है ?

प्रथमतः हम राजा साहबकी साहित्य-सेवाको ही लेंगे। यद्यपि व्यक्तिगत रूपसे राजा साहबका उद्योग और कार्य सराहनीय है; तथापि उनके लिये उसे भव्य रूप प्रदान करनेका समय आ गया है। रायगढ़ नगरमें हो या समूचे छत्तीसगढ़-को लेकर रायपुरमें हो, राजा साहबको चाहिये कि, यू० पी० की हिन्दुस्तानी एकेडेमीकी तरह साहित्य-मण्डली, कुछ रुपये देकर, स्थापित कर दें। यह मण्डली अन्य कार्योंके अतिरिक्त ऐसे साहित्यको प्रकाशित और प्रोत्साहित करे, जिसका सम्बन्ध ग्रामीण जनताकी सामाजिक तथा आर्थिक उन्नतिसे हो। दूसरी बात राजा साहब जैसे साहित्यप्रेमी नरेशके राज्यमें तथा रायगढ़ जैसे उन्नत तथा शिक्षित नगरमें एक समाचार पत्रका अभाव बहुत ही खटकता है। या तो राजा साहब इसे स्वयं प्रकाशित करनेकी व्यवस्था करें या किसी दूसरेको प्रकाशित करनेमें अनावश्यक बाधाएँ उपस्थित न करें। पत्रके प्रकाशनसे राजा साहबको असंख्य लाभ होंगे, जिन्हें यहाँ गिनाना अनावश्यक होगा। प्रजाकी विचार-प्रगति तथा उनके दुःख-दर्दको जाननेका उन्हें अच्छा अवसर मिलेगा। प्रजाके विचारोंसे अनभिज्ञ रहकर इन दिनों शान्तिपूर्वक शासन करना कठिन ही नहीं, वरन् असम्भव है। दूसरे, पत्रके द्वारा उनके यशोकार्यका विस्तार तथा प्रचार होगा। प्रजाके किसी प्रमुख व्यक्तिके द्वारा संचालित ऐसे समाचार-पत्रसे उनकी हानि होनेकी रंच भर भी सम्भावना नहीं है। अतः उससे इस

क्रान्तिके युगमें उनके तथा उनकी प्रजाके विचारोंमें विनिमयका अलौकिक सम्बन्ध स्थापित हो जायगा। इसके अलावा पत्रसे उनके अधिकारोंकी वृद्धि और विपत्तिके समय रक्षा भी हो सकेगी। देशी राज्योंके ऊपर इस समय भयंकर विपदा-सी आयी हुई है और उनके लिये पत्र-प्रकाशनका यही उत्तम समय है, जब कि, राज्यकी समस्त प्रजा उनके तथा उनके कार्योंसे श्रद्धापूर्ण अनुराग रखती है। कौन जानता है कि, कल क्या हो ?

हिन्दीमें साहित्यकी सुन्दर-सुन्दर अनेक मासिक पत्रिकाएँ निकलती हैं और उनके द्वारा मातृभाषाकी अच्छी सेवा भी हो रही है। इस दिशामें राजा साहबसे कुछ करनेके लिये कहना निरर्थक है। चाहें तो राजा साहब "गंगा", "माधुरी" जैसी सर्वांग-सुन्दर पत्रिका निकाल सकते हैं और सम्पादन भी स्वयं योग्य सहायक रखकर कर सकते हैं। राजा साहबके पास नवीन प्रणालीकी प्रेस मशीनें भी हैं और उन्हें ऐसी पत्रिकाके प्रकाशनमें अधिक अड़चनें उठानी न पड़ेंगी।

संगीतके विषयमें भी एक बात है राजा साहबके दरबारमें संगीत-गुणज्ञोंकी कुछ भी कमी नहीं। ये लोग ग्वालियर, दिल्ली जैसे दूर देशोंसे आकर यहाँ रहते हैं और उन्हें यथेष्ट उदर-वृत्ति भी मिलती है। जहाँतक हमारा ज्ञान है, ये गवैये दिनभरमें केवल दो घण्टे राजा साहबके सामने अपनी ललित-कला प्रदर्शित करते हैं। अच्छा होता, यदि हमारे राजा साहब, इन गुणी जनोंकी सहायतासे, नगरमें एक स्वतंत्र संगीत पाठशाला स्थापित कर देते, जो अपने ढ़ंगकी एक ही होती। इससे केवल यहींके लोग फायदा नहीं उठाते, वरन् दूर-दूर स्थानोंसे भी लोग आकर यहाँ शिक्षा-ग्रहण करते।

राजा साहबके विषयमें हम एक बात ऊपर लिखना भूल गये। वह यह है कि, राजा साहब शेरके शिकारके भी पूरे शौकीन हैं। अबतक उन्होंने करीब-करीब ३०-३१ शेरोंका शिकार किया है। विदेशी साहित्योंकी तुलनामें हिन्दीका शिकार-साहित्य बिलकुल नहींका-सा है। शिकार-साहित्य जनताके मनोरंजन तथा शक्ति-संचयके लिये एक आवश्यक साधन है, जिसके प्रकाशनकी ओर राजा साहबको शीघ्र ही ध्यान देना चाहिये।

इस प्रसंग और अवसरका आश्रय लेकर हम राजा साहबसे लोक-हितकी अनेक बातें करना चाहते थे; पर ऐसा हम यहाँ न करेंगे। इसे हम भविष्यके लिये छोड़ते हैं। इस लेखको प्रकाशित करनेका हमारा अभिप्राय यही है कि, राजा साहब अपने राजपदको अलौकिक लोकहितोंसे दिव्य बनावें और जनताका यथोचित सत्कार और उपकार करते रहें। जिस प्रकार आपका जीवन साहित्य-संगीत-सेवामें व्यतीत हो रहा है, उसी प्रकार इसके साथ-साथ ग्राम्य सुधार आदि रचनात्मक कार्योंकी ओर भी आपकी क्रियात्मक दृष्टि होनी चाहिये। अनियमित रूपसे बसे हुए गाँवोंको नये सिरे और वैज्ञानिक रूपसे बसानेका कार्य आपको शीघ्र ही अपने हाथमें लेना चाहिये। अपने सहयोगपूर्ण कार्यों और विचारोंसे आप प्रजाको सुधारके कार्योंमें उत्साह प्रदान करें। अन्तमें राजा साहबसे हमारी विनीत प्रार्थना है कि, वह अपने राज्यको रामराज्य बनावें। इस राज्यमें रामराज्यकी अनेक बातें पायी भी जाती हैं, और, जो कुछ भी कमी है, उसे स्वामी-भक्त प्रजाका अखण्ड सहयोग प्राप्त कर पूरा कर दें। इसीमें राजा और प्रजा—दोनोंका कल्याण है।

रायगढ़-नरेश

साहित्यानुरागी राजा चक्रधर सिंहजी

वि चा र - वा टि का

१—स्वप्न और निद्रा

श्रीयुत रमेशप्रसाद बी० एस-सी०

स्वप्नका वास्तविक ज्ञान प्राप्त करनेके लिये हमें उसकी संगिनी निद्राके विषयमें भी कुछ जानना आवश्यक है। हमारी इन्द्रियोंका बाह्य जगत्से सारा सम्बन्ध तोड़ देनेका अर्थ निद्रा है। इस अवस्थामें इन्द्रियाँ आराम करती हैं और हमारे सभी ऐच्छिक आवेग रुक जाते हैं। निद्रितावस्थामें, हम अपने इच्छानुसार न तो अंग-संचालन ही करते हैं और न अपने मस्तिष्कसे ही काम लेते हैं; किन्तु शरीरके भीतरकी क्रियाएँ—जैसे श्वास लेना, भोजनका पचना, रसोंका शरीरमें सोखा जाना, रक्तका शरीरमें दौड़ना, पसीनेका निकलना, पुष्टि होना आदि—ज्यों-की-त्यों होती रहती हैं।

जाग्रदवस्थामें हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ तथा कर्मेन्द्रियाँ काम करते-करते थक जाती हैं और वे निद्रितावस्थामें आराम करती हैं। किन्तु ज्ञानेन्द्रियोंको उत्तेजित करनेवाले ऐसे बहुतसे कारण हैं, जो निद्रितावस्थामें व्याघात पहुँचाया करते हैं। इनके दूर हो जानेपर ही मनुष्य घोर निद्राकी गोदमें सो सकता है। किसीने निद्राके विषयमें ठीक ही कहा है—

"धन्य जगतकी मातु परिश्रम दुखसंहारिनी।
धन्य भवानी मोदप्रदा धनि जग-हित-कारिनी।
धन्य दिवस अरु रैन केरि मंगलमय अन्तर।
धनि सरीर-आरोग्य-करनि तन-ताप-हरनिवर॥"

निद्रा प्रकृति-प्रदत्त एक पौष्टिक पदार्थ है। ऐसा पौष्टिक अभीतक न तो वैज्ञानिकोंकी प्रयोगशालामें ही तैयार हो सका है और न इसका कोई बदला (Substitute) ही निकला है। निद्रा हमारी खोयी हुई शक्तियोंका पुनः सञ्चार कर देनेका अद्वितीय गुण रखती है। जो मनुष्य सुखकी नींद नहीं सो पाते, उनका-सा अभागा कोई नहीं होगा। हमारे शारीरिक तथा मानसिक कष्टोंको दूर करनेवाली निद्रा धन्य है! हमारी सारी चिन्ताओंपर पर्दा डाल देनेवाली निद्रा धन्य है!! और धन्य हैं वे, जिन्होंने हमारे लिये ऐसी उपयोगी वस्तुकी सृष्टि की है!!

निद्रा प्राणिमात्रके लिये आवश्यक है; विशेषकर मनुष्यों-के लिये, जो जाग्रदवस्थामें अपनी शक्तिका बहुतसा अंश नष्ट कर डालते हैं। नष्ट की हुई शक्तिकी पुनः प्राप्तिके लिये निद्राकी शरणमें जाना अत्यावश्यक है। यथेष्ट निद्राकी उपयोगिता प्राचीन कालके मनुष्योंको भी ज्ञात थी। उन दिनों जब किसी व्यक्तिको फाँसीकी सजा दी जाती थी, तब उसे जगाये रखनेके लिये पहरेदार नियत कर दिये जाते थे। जब-जब अपराधी सोनेकी चेष्टा करता था, तब-तब पहरेदार आग, बर्छी और तलवार आदिकी नोक जैसे कष्टदायी पदार्थोंसे तंग कर उसे सोने नहीं देते थे! अन्तमें, बेचारा आठवें या नवें दिन, अत्यन्त थकावटके कारण, मृत्यु-रूपी सुखद निद्राकी गोदमें, सर्वदाके लिये, सो जाता था!!

निद्राकी उपयोगिताका अनुभव, एक या दो रात जगनेके बाद, हम भली भाँति करते हैं। रातमें जगनेके बाद, दूसरे दिन भोरमें, सिर चकराने लगता है, आँखोंके सामने धुँधला प्रतीत होने लगता है; और, कभी-कभी हम विचार करनेकी शक्ति भी खो देते हैं। जो लोग यह सोचते हैं कि, आजकी खोयी हुई निद्राको हम कल अधिक देरतक सोकर पूरी कर लेंगे, वे भूल करते हैं। एक बारकी खोयी हुई निद्राको हम आसानीसे पूरी नहीं कर सकते।

निद्रा कई प्रकारकी होती है। गम्भीर निद्रा, घोर निद्रा, हलकी निद्रा, चिन्तायुक्त निद्रा, अनिद्रा आदि। ये एक दूसरेके साथ इतनी मिली हुई हैं कि, इनमें कोई विभेद-रेखा

नहीं दीख पड़ती। किसी मनुष्यके लिये चार घण्टेकी निद्रा ही यथेष्ट है और किसीके लिये आठ घण्टेकी। कोई-कोई मनुष्य एक घण्टा सोकर जितनी शक्ति प्राप्त करता है, उतनी ही शक्ति प्राप्त करनेके लिये दूसरे मनुष्यको दो या तीन घण्टेकी निद्रा आवश्यक हो सकती है।* व्यक्तिगत शारीरिक और मानसिक अवस्था, दैनिक जीवन, पेशा, सोनेके ठीक पहलेकी विचार-धारा, सोनेके स्थानकी चारों ओरकी परिस्थिति आदिपर निद्रा अवलम्बित है। इसीसे आप समझ सकते हैं कि, सभी मनुष्योंकी निद्रा एक सी नहीं होती—यह एक व्यक्तिगत विषय है।

सोने-सोनेके समयतक चिन्ता हमारा पीछा करती है। मस्तिष्क इससे छुटकारा पाकर, कुछ समयके लिये, आराम करना चाहता है। आप सोच सकते हैं कि, जो मनुष्य अधिक चिन्ता किया करते हैं, उन्हें अधिक निद्राकी आवश्यकता होती है। किन्तु वास्तवमें ऐसे मनुष्य कम सोते हैं; क्योंकि निद्रा-कालमें भी उनकी चिन्ताओंकी श्रृङ्खला नहीं टूटती। इसके विपरीत, जो मनुष्य कम चिन्ता किया करते हैं, उनका मस्तिष्क उतना थका हुआ नहीं रहता; किन्तु आश्चर्य है कि, वे अधिक सोते हैं! जो लोग अध्ययनशील जीवन व्यतीत करते हैं, वे कम सोते हैं; क्योंकि उनके मस्तिष्कपर अत्यधिक बोझ पड़ता है, जिससे वह निद्रा-कालमें भी छुटकारा नहीं पा सकता है। जो लोग मस्तिष्कसे कम काम लिया करते हैं, वे प्रायः गम्भीर निद्रामें सोते हैं।

निद्रा बुलानेके लिये रोशनी बुझा देना या शोर-गुलसे दूर, एकान्त स्थानमें, सोना आवश्यक नहीं। बिस्तरका नरम और गरम होना भी निद्राके लिये आवश्यक नहीं। कोई व्यक्ति तभी सो सकते हैं, जब चिराग जलता रे… लड़ाईके मैदानमें कानोंको फाड़नेवाली आवाजके शोरमें… सैनिक सुखकी नींद सोते हैं। भारतवासियोंमें अधिकांश… नरम और गरम बिस्तर नसीबमें नहीं; वे जमीनपर पड़ते… खर्राटे मारने लगते हैं। निद्राके लिये आवश्यक है शान्त… और चिन्तारहित मस्तिष्क। जिनका मस्तिष्क उत्तेजि… चंचल एवं चिन्तायुक्त होगा, लाख चेष्टा करनेपर भी सु… सुनिद्रा नहीं हो सकती। उसके मनमें एकके बाद दूस… विचार-धारा उठती जायगी और उनका मस्तिष्क शा… होनेके बजाय और भी कार्यशील होता जायगा।

सोनेके ठीक पहलेकी हमारी मानसिक दशापर… हमारी सारी रातकी निद्रा निर्भर करती है। सोनेके प… हमारी मानसिक अवस्था कैसी रहती है? चिन्ताओं… मस्तिष्क सदा किसी एक ही विषयपर अड़ा हुआ नहीं रह… एक विचार-धारा अन्यान्य विचार-धाराओंके साथ मिल… एक गोल-मटोल आकार ग्रहण कर लेती है। यही कारण… कि, कभी-कभी इस दशामें हम बड़े ही विचित्र स्वप्न दे… करते हैं। ऐसे ही स्वप्न बाह्य घटनाओं—जैसे मच्छड़… भनभनाना, दो मनुष्योंका परस्पर बात-चीत करना, कि… सुगन्ध या दुर्गन्धका सूँघना, किसी आवाजका सुन… खटमलका काटना आदि—से आसानीसे प्रभावित होते है… यदि ऐसा कोई व्याघात न पहुँचा, तो हमारे सभी विच… का तारतम्य नष्ट हो जाता है और हमें निद्रा घर … है। इसके बाद, निद्रितावस्थामें, मनश्चिन्ताके बाकी … जो सोनेके पूर्व या जाग्रदवस्थामें परितृप्ति लाभ नहीं … सके थे, ताना-बाना बुनने लगते हैं। ये हमें स्वप्नके … दिखायी दे सकते हैं। भोरमें उठनेपर, स्वप्नमें देखी … बातें अधिकांशमें भूल जाती हैं या केवल विकृत-रू… ही स्मरण रहती हैं। साधारणतः स्वप्नोंका भूल जाना … उनकी विशेषता है।

---

* इधर कुछ मनस्तत्त्वविदोंने पता लगाया है कि, मनुष्य चाहे चार घण्टे बिछावनपर पड़ा रहे या आठ घण्टे; किन्तु वह आध घण्टेसे अधिक गम्भीर निद्रामें नहीं सोता; इतनेसे ही उसका मस्तिष्क तरोताजा हो जाता है। बाकी समयमें वह चिन्ताओंके चपेटोंका शिकार बना रहता है और अर्द्ध-निद्रितावस्थामें करवटें बदलता रहता है। —लेखक

यह ठीक ही कहा गया है कि, 'सोनेके पहले सभी चिन्ताओंको मनसे दूर कर शान्त चित्तसे, ईश्वरका ध्यान कर लिया करो।' ऐसा करनेसे हमारी निद्रा स्वप्नरहित होती है।

२—बिहार-उड़ीसा प्रान्तकी खानें

प्रो० निरंजनलाल शर्मा एम० एस-सी०

बिहार-उड़ीसा प्रान्त करीब २२९ मील चौड़ा और ४९० मील लम्बा है। यह प्रान्त हिमालय पर्वतके तल-देशसे गंगा नदीके मैदान और छोटा नागपुर और उड़ीसाके पहाड़ी प्रदेशमें होता हुआ, दक्षिण कटकके पास, समुद्रतटतक फैला हुआ है। क्षेत्रफलमें यह प्रान्त कुल भारतवर्षका १६ वाँ भाग है। आबादी भी भारतकी कुल जन-संख्याके नवें भागसे कुछ अधिक है। यहाँके जन-साधारणकी माली स्थिति, अन्य पून्तोंके मुकाबिले, कदाचित् खराब हो; परन्तु खनिजात्मक सम्पत्तिमें यह पून्त भारतवर्षका सबसे धनी पून्त है। खनिजोंमें तो मद्य देशका भी इसके बाद ही नम्बर आता है। बिहार-उड़ीसाका करीब एक-चौथाई उत्तरीय भाग कृषिपूधान है। शेष दक्षिणीय भाग खनिजोंके लिये पूसिद्ध है। आधुनिक युगमें कोयला और लोहा किसी भी देशके लिये अति आवश्यक खनिज माने जाते हैं। इन दोनों पदार्थोंके वार्षिक व्ययको किसी भी देशकी सभ्यताका मापक कहा जाता है। कोई भी देश जितनी ही उन्नति करेगा, उतनी ही अधिक उस देशमें इन दोनों चीजोंकी आवश्यकता पड़ेगी। इस दृष्टिसे बिहार और उड़ीसाने भारतकी लाज रख ली है। कोयला और लोहेके खनिजोंका यहाँ पूचुर भाण्डार है। लोहेके खनिजोंकी पैदावारको भूगर्भवेत्ता संसारके उत्तम धनोंमें गिनते हैं।

इन दो अति उपयोगी खनिजोंके अतिरिक्त अबरख, ताँबा, चीनी मिट्टी, शोरा इत्यादि खनिजोंकी उपजमें भी इस प्रान्तका मुख्य स्थान है। पाठकोंकी जानकारीके लिये हम यहाँपर बिहार-उड़ीसा प्रान्तकी कुछ मुख्य खानोंकी, सन् १९३० ई० की, उपजके आँकड़े देते हैं, जिनसे इस प्रान्तका खनिजात्मक महत्त्व उनके ध्यानमें आ जायगा।

खनिज	प्रान्तीय उपजका मूल्य रु० में		भारतकी कुल उपजके मूल्यका अंश
१ अबरख	१९,९२,२०४)	करीब	७४ प्रतिशत
२ कोयला	९,९२,३३,३६०)	,,	६० प्रतिशत
३ लोहा	४६,२९,६००)	,,	९९ प्रतिशत
४ ताँबा	२४.३९,९७१)	,,	३९ प्रतिशत
५ क्रोमियम	९९,२२२)	,,	१० प्रतिशत
६ मैङ्गनीज	७,६३,६४१)	,,	९ प्रतिशत
७ चूनेका पत्थर तथा कंकड़	१८,९०,४९४)	,,	३८ प्रतिशत
८ बालूका पत्थर	९१,९७३)	,,	७ प्रतिशत
९ स्लेट	३९,७८९)	,,	२० पूतिशत
१० सेलखरी	८,०८६)	,,	४ पूतिशत
११ एपेटाइट	३,३००)	,,	९० पूतिशत
१२ काइनाइट (एक अग्नि-पूतिरोधक खनिज)	१,३१,९०९)	,,	१०० पूतिशत
१३ एस्बेस्टस	२०,४६०)	सन् १९२८ के आकड़े ,,	९४ पूतिशत
१४ चीनी मिट्टी	१,०६,२२६)	,,	६७ पूतिशत
१५ सोन	१,९००)	,,	मैसूरक्षेत्रके सोनेको निकालकर शेषका २२ पूतिशत

ऊपर बहुत थोड़ी ही खानोंकी सूची दी गयी है, जिनके आँकड़े पूप्त हैं। बिहार-उड़ीसा पून्तमें अन्य अनेक खनिज मिलते हैं। यदि अवकाश मिला अथवा "गङ्गा"के पाठकों-की रुचि इस विषयको जाननेकी हुई, तो हम पून्तीय खनिजोंका विस्तार-पूर्वक विवरण देनेका पूयत्न करेंगे।

३—मस्तिष्क

बा० शुकदेवपूसाद सिंह

आखिर बात कुल हो गयी। वैज्ञानिकोंकी गवेषणा-परायण आँखोंने उसे निकाल ही डाला। पता लग गया

कि, क्रोध, प्रेम, वासना, दया, वात्सल्य, घृणा आदि मनके उद्वेगोंका केन्द्र मस्तिष्क ही है। खोज यहीं आकर न रुकी। उन्होंने यह भी ढूँढ़ निकाला कि, किस मनोभाव-का उद्गम-स्थान मस्तिष्कका कौन-सा भाग है। मनुष्य आज प्राणि-संसारका राजा क्यों है ? विशालकाय हाथी, ६८-७० फीट लम्बी ह्वेल और बड़े-बड़े गरुड़ भी हमारी चतुरताके सामने हार क्यों मानते हैं ? बात यों है कि, हमारे दिमाग बड़े और उनके छोटे हैं; इसलिये हम विजेता और वे विजित हैं।

हाथीका औसत तौल ७० से ८९ मन होता है। हाथीके दिमागका तौल औसत १२ से १४ पौण्ड अर्थात् शरीरके तौलका २ प्रतिशत होता है। चूहे हाथीसे अधिक बुद्धिमान् होते हैं! उनके दिमागका तौल शरीरका ९ प्रतिशत होता है। कुत्तोंका औसत दिमाग १३९ ग्रामका होता है। जिन लोगोंका डारविनके विकासवादके सिद्धान्तसे परिचय होगा, वे जानते हैं कि, बन्दर मनुष्यके सिवा सबसे अधिक विकसित प्राणी है। उसमें भी वनमानुस, गोरिल्ला और औरंग-उत्तान तो मनुष्योंका चचेरा भाई ही है। कई बन्दर तो सिखानेपर आज घुड़सवारी करते, कपड़े बुनते और अँग्रेजी पोशाक पहने अकड़ कर चलते हैं! उनके दिमागका औसत ४३० ग्राम है!

अब प्राणि-राज मनुष्यकी बात सुनिये। उनका औसत दिमाग १३०९ ग्रामका होता है। किन्तु आस्ट्रेलियाके आदि-निवासी केवल ११८९ ग्रामका ही दिमाग रखते हैं। मनुष्योंमें छोटे मस्तिष्क १००० ग्रामके और बड़े १९००-१९०० ग्रामके मिले हैं। यूरोपियनोंके दिमाग १३६० ग्रामके होते हैं।

एक बार यूरोपके ४६ धुरन्धरोंके दिमागोंकी नाप-जोख हुई। उनमें ३३ तो औसत दिमागसे बड़े निकले; किन्तु शेष १३ औसत दिमागसे हलके। जहाँ फ्रांसके विश्व-विश्रुत प्राणि-विद्या-विशारद कुवेर (Cuvier) का दिमाग १८३८ ग्रामका निकला, वहाँ उसी देशके विश्व-विख्यात साहित्यिक, रवि बाबूके ही समान नोबेल-पुरस्कार पानेवाले, अनातोले फ्रांसका दिमाग १२०० ग्रामसे भी कमका निकला! इससे एक बात बड़े ही मार्केकी मालूम हुई। वह यह कि, दिमागका बड़ा होना ही बुद्धिमत्ताका परिचायक नहीं है। सूक्ष्म-बुद्धिके लिये दिमागके भूरे पदार्थ-का एक विचित्र प्रकारसे गठित होना भी परमावश्यक है। यहीं अन्त न समझिये। संसारमें बहुत ऐसे भी व्यक्ति हैं, जिन्हें ईश्वरने तो अपनी ओरसे बड़ा बननेका पूरा सामान दिया; किन्तु वे उस ईश्वर-प्रदत्त प्रतिभाको पूर्ण-रूपेण विकसित कर ही न पाये। कौन जानता है—रमन और जगदीशचन्द्र-से दिमागवाले हजारों भारतीय बालकोंको, दरिद्रताकी प्रबल प्रताड़नाके कारण, पाठशालामें बैठनेका मौका ही न मिला!

पुरुषोंका औसत दिमाग १३६० ग्रामका; किन्तु स्त्रियों-का केवल १२९० ग्रामका होता है। आप इतनेसे ही स्त्रियोंको "मूर्खा" और "बुद्धिहीना"की उपाधि न दें। बात कुछ उलटी ही है। पुरुषोंका औसत तौल ७१ किलोग्राम* और स्त्रियोंका ५९ किलोग्राम होता है। इस तरह पुरुषोंका दिमाग शरीरके तौलका १.९ प्रतिशत और स्त्रियोंका २.३ प्रतिशत होता है। इससे साफ प्रकट है कि, ईश्वरने स्त्री-जातिको पुरुषसे अधिक प्रतिभा दी है; किन्तु निर्बुद्धि और स्वार्थी पुरुष-जाति, उस प्रतिभाके विकासमें, सहायता नहीं, बाधा ही डालती है। यदि स्त्रियोंको भी पुरुषोंके समान ही सुविधा दी जाय, तो सम्भव है, उनमें पुरुषोंसे अधिक विविध विद्याओंकी विशारदाएँ उत्पन्न हों। सामाजिक और राजनीतिक, साहित्यिक और आध्यात्मिक क्षेत्रोंमें बहुत-सी अबलाएँ—नहीं नहीं—सबलाएँ नजर आने लग जायँ।

---

* हजार ग्रामका एक किलोग्राम होता है।

४—उपनिषद् और ब्राह्मण भी वेद हैं

महामहोपाध्याय प० सीताराम शास्त्री

वेद एक पदार्थ है, इतना तो सब मानते हैं; परन्तु वह है कौन-सा पदार्थ, इस विषयमें अनेकोंके अनेक मत हैं। कोई कहता है कि, केवल मन्त्र-भाग ही वेद है; ब्राह्मण-ग्रन्थ उसकी व्याख्या मात्र हैं। ऐसोंके मतसे ब्राह्मण-ग्रन्थ वेद नहीं हैं। दूसरा कहता है, मन्त्र-भागको तो श्रुति, आम्नाय इत्यादि कहना चाहिये, वास्तवमें तो ब्राह्मण-ग्रन्थोंका ही नाम वेद है।

यास्कने निरुक्तमें लिखा है—"साक्षात् कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः..." अर्थात् 'पहलेके ऋषि लोग धर्मका साक्षात्कार करनेवाले थे, जिन्होंने 'परवर्त्ती लोगोंके लिये मन्त्रोंको उपदेशके रूपमें सम्प्रदान किया। परवर्त्ती लोगोंके लिये मन्त्रोंके कठिन स्थलोंका ज्ञान कष्ट-साध्य था, अतः उनके लिये उन्होंने वेद, निघण्टु और वेदाङ्ग आदिको बनाया।' ऐसा कहनेसे मन्त्र और वेद परस्पर अलग हो जाते हैं; और, यह स्पष्ट हो जाता है कि, मन्त्र-भागका अभिधेय श्रुति इत्यादि शब्द हैं और ब्राह्मण-भागका नाम है वेद। उसके वेद नामका कारण यह है कि, उसमें "य एवं वेद"—इस रूपसे 'वेद' का बहुवार आम्रेडन है। परन्तु यह कथन सत्यतासे दूर है; क्योंकि मन्त्रका भी मन्त्रमें ही 'वेद' शब्दसे व्यवहार पाया जाता है—"यः समिधा य आहुती यो वेदे ददाश मर्तो अग्नये।" यहाँ जो 'वेद' शब्द है, उसका अर्थ मंत्र है। आपस्तम्बने भी कहा है—"मन्त्र-ब्राह्मणयोर्वेद इति नामधेयम्" यानी मन्त्र और ब्राह्मण, दोनोंका नाम वेद है।

वेद शब्दकी सिद्धि विद् धातुसे, घञ् प्रत्यय करनेसे, होती है। विद् धातुका अर्थ लाभ अथवा ज्ञान है अर्थात् जिससे कुछ प्राप्त होता है अथवा जाना जाता है। प्राचीनोंके विचारसे यहाँ 'प्राप्त होना' का अर्थ है पुरुषार्थ-लाभ। उव्वटके शब्दोंमें भी—"विद्यन्ते, ज्ञायन्ते, लभन्ते वा पुरुषार्था एभिरिति वेदाः।" सायणने भी कहा है—"प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते। एनं विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता।" अर्थात् पुरुषार्थका जो उपाय प्रत्यक्ष तथा अनुमानसे नहीं ज्ञात होता है, वह वेद द्वारा ही जाना जाता है।

पुरुषार्थ चार प्रकारका है। प्रथमके तीन पुरुषार्थ (अर्थ, धर्म और काम) तो मन्त्र और ब्राह्मण-ग्रन्थोंको जान लेनेसे और तदनुष्ठित कर्म करनेसे ही सिद्ध हो जाते हैं; परन्तु चतुर्थ पुरुषार्थ (मोक्ष) केवल उपनिषद् ग्रन्थोंसे ही सिद्ध होता है। अतः मन्त्रभाग, ब्राह्मण-भाग और उपनिषद्, ये सब वेद नामसे अभिहित हैं। उपनिषद् ब्राह्मण-ग्रन्थोंका ही भाग है; अतः वेद है। वाजसनेयी संहिताका अन्तिम भाग उपनिषद् है; अतः उपनिषद् वेदका ही अंश है। जैमिनिने कहा है—"शेषे ब्राह्मणशब्दः।" यानी ऋग्, यजुः और सामको छोड़कर बाकी बचे सब भागोंका नाम ब्राह्मण है। वेदके अन्तमें रहनेसे इसका एक नाम वेदान्त भी है। मन्त्रका ही नाम केवल श्रुति नहीं है, ब्राह्मणका भी है। मनुजीने कहा है—"उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा। सर्वथा वर्त्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः।" उदित या अनुदित होमकी चर्चा केवल ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें ही है। अतः मनुजीके मतसे ब्राह्मण-ग्रन्थ भी श्रुति हैं।

वेद विद्या-स्थानका नाम है। वह दोनोंमें लगता है, चाहे वह मूल-ग्रन्थ हो या व्याख्या-ग्रन्थ। जैसे पाणिनिका सूत्र भी व्याकरण है और उसकी व्याख्या वार्तिक आदि भी।

५—मधुकर

प० रामविलास चौरसिया

जीवनकी अतृप्त अभिलाषाओं और सुन्दरतम कामनाओंके साथ अपने हृदयमें तुम्हारा स्वर्गीय अभिषिञ्चन किया था। छल और प्रतारणासे परिपूर्ण इस संसारमें, पद-पदपर पराभिभूत होकर, अगर कहीं नूतन प्रेमकी अभिनव सृष्टि करनेका प्रयास किया था, तो तुम्हींमें। सोचा था, बहुत दिनोंकी

आशा-निराशा, हास-परिहास, हर्ष-विषाद, श्रद्धा और विश्वासकी धूप-छाँहके घात-प्रतिघातोंके मध्य, तुम्हारे पद-चिह्नोंपर चलकर, तुम्हारा अनुसरण करूँगा। मैंने यही संकल्प किया था। क्यों?

अपने जीवनकी अस्थिरता और शुष्कतासे तुम्हारे जीवनकी स्वच्छन्दता और सरसता कुछ अच्छी मालूम हुई। शायद इसलिये कि, मैं मूक था, अन्यमनस्क, उदासीन, दुनियासे परित्यक्त। और, अन्तमें यौवनके झंझाघातसे प्रताड़ित होकर कहींपर—स्थान-स्थानपर ठुकराये जानेके बाद—मनोरम आश्रयको ढूँढ़ रहा था—जहाँ शान्त कर सकूँ चिर कालसे प्रज्वलित हुई मानसिक अन्तर्ज्वालाओंको। जहाँ विश्वस्त होकर कुछ दिनों तो किसी निष्कपटके शत-शत धाराओंमें प्रवाहित होते हुए, स्वर्गीय संगीतको अपने कानोंसे सुन सकूँ और अनन्त विश्रामके अन्तिम दिवसोंमें—अन्तिम घड़ियोंमें—किसीके प्यार-भरे दिव्य हाथोंका आश्वासन तो पा सकूँ।

तो हाँ, एक दिन उषाकालमें मन्द और सुरभि पवनके झकोरोंसे हठात् मेरी नींद उचटी। उस प्रथम जागरणमें मैंने सुना कि, मेरे ऊपर बार-बार मँडराकर कोई अव्यक्त स्वरमें कुछ गुनगुना रहा है! मैं पहले झुँझलाया, उपेक्षा की और तिरस्कार भी। तुम और मैं, ओफ! कितना बड़ा पार्थक्य दोनोंके बीचमें अट्टहास कर रहा था! पर तुम्हारे चापलूसी-भरे मृदुल हठसे मैं विवश हो गया। मैंने सोचा, शायद तुम भी कहीं प्रणयको खोकर किसीकी खोजमें निकले हो और सिर धुन-धुनकर अपनी एकान्त दुःखद स्थितिपर शोक प्रकाशित कर रहे हो। प्रथम सहानुभूति, फिर दया, प्रेम और तब—सहसा सरोवरकी उत्ताल तरंगोंसे मैं आमूल कम्पायमान हो उठा और किसी दैवी प्रेरणासे विवश होकर मुझे तुम्हारे आत्मसमर्पणमें सहमति भी प्रकट करनी पड़ी। पर इसके बाद—

हाय! तुम्हारी चंचलता। संध्याकालीन सुनहरी अरुणिमामें जैसे इठलाते और झूमते हुए मेरी उत्संगमें आये थे, उसी प्रकार उषाकी लालिमाके धरित्रीपर बिखर जानेके बाद चले भी गये। मुझे फिर धोखा हुआ! और अब—

कृतघ्न!

उलटे मुझपर ही दोषारोपण करनेका विफल प्रयास कर रहे हो! जब भगवान् अंशुमालीकी सहस्र-सहस्र तीक्ष्ण रश्मियोंसे आहत होकर मैं पराभिभूत हो उठा, मेरे अंग-प्रत्यंग अनिर्वचनीय वेदनासे विकल हो छटपटाने लगे और जब मर्माहत हुई मेरी शत-शत पँखुड़ियाँ क्रमशः एक दूसरेसे, चिर कालके लिये, पृथक्-पृथक् हो गयीं—उस समय, हाँ, उस दयनीय दुर्दशामें तुम मुझे छोड़—मेरे स्नेहको छोड़—किसी अज्ञात व्यक्तिकी तरह चुपके-से निकल भागे! छिः!!

स्वार्थी!

तुम ठीक ही कहते हो कि, तुम्हें छोटेसे स्थानमें, संकुचित दायरेमें, बन्द किया था। पर क्यों? पागल! यह भी सोचा है, सोचनेकी चेष्टा भी की है? इच्छा थी कि, एक बार ही अपनी परागपूरित मधुरिमाका तुम्हें आकण्ठ आस्वादन करा दूँ, तुम्हारे कृष्ण वर्णको अपनी विमल धवलिमामें परिवर्तित कर दूँ; और, क्या क्या करने और न करनेके लिये। ओफ! तुम्हारे लिये तो मैं परम पितासे भी प्रतिद्वन्द्विता करनेको बद्धपरिकर हुआ था!

और तुम— आनन्दके लोभी! जब प्रकृति अपने निशामय आवरणसे तिमिराच्छन्न होती थी, तब—और जब दुधीली चाँदनी आसपास चारों ओर आच्छादित होती थी, तब वासनाओंसे उन्मत्त और अन्धे होकर, दूसरोंसे मिलनेके लिये, उत्सुक रहते थे! प्रेम सब कुछ सह सकता है—अपमान भी, यंत्रणाएँ भी। वह सह लेगा। बदलेमें सर्वस्व दान करके भी केवल प्रेमका प्रतिफल चाहता है। मेरी उसी सौहार्दकी प्रतिफलकी कामनाको तुमने निराशामें परिणत कर दिया और अब वियुक्त होते समय लाञ्छनोंसे तिरस्कृत करना चाहते हो!

अन्तमें—

आराध्य! यह सच है कि, मुझसे विलग होकर तुम्हारी

किसी सहस्रदलसे भी अनायास भेंट हो जाय। पर सोचो तो, जब वे तुम्हारी इस चंचलतासे परिचित होकर प्रतारित किये जायँगे, तब क्या प्रतिकारकी भावनाओंसे उद्वेलित होकर वे तुम्हें अभिशाप नहीं देंगे ? दें—पर मैं तो तब भी, पहलेकी ही तरह, अपनी सम्पूर्ण हार्दिक भावनाओंको एकत्र करके यही चाहूँगा कि, जहाँ रहो, जिसके भी पास रहो, सुखसे रहो । मैं तुम्हें देखकर उस समय भी, कुछ क्षणोंके लिये, आह्लादित तो हो सकूँ। क्योंकि सूरके शब्दोंमें वे "अपने ही आदमी"—

"दिल कहाँ हर किसीसे मिलता है ?
अपने ही आदमीसे मिलता है !!"

६—पुरुष-सूक्त

पाण्डेय रामावतार शर्मा एम०ए०,बी० एल०,साहित्यशिरोमणि

पूनेके प्रोफेसर बी० के० राजवाड़ेने ऋग्वेद-कालमें नर-बलिका समर्थन करते हुए पुरुष-सूक्तका प्रमाण दिया है और यह भी लिखा है कि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र शब्द प्रथमतः इसी सूक्तमें मिलते हैं। आपके एक भारतीय वैदिक विद्वान् होनेके कारण ऐसी धारणा आपको शोभा नहीं दे सकती। इसी प्रकारके अनेक निर्मूल और भ्रान्तिपूर्ण लेखोंसे वेदोंके प्राचीन गौरवका ह्रास हुआ है और अंग्रेजीके विद्वानोंके बीच वैदिक आलोकको प्रचार-गति मन्द रही है। राजवाड़े महोदयकी भूलका कारण उनका यूरोपीय मतमें अन्ध विश्वास रखनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता।

संस्कृत-साहित्यके इतिहासके प्रसिद्ध लेखक मैक्डानल महोदयने इसपर जैसा विचार किया है, उससे बहुतोंको इस सूक्तका सच्चा भाव कदापि नहीं विदित हो सकता, न वे उसके रहस्यको समझनेमें ही समर्थ हो सकते हैं। आरम्भमें ही मैक्डानल महोदयने ऐसी भूल की है, जो संस्कृत-साहित्यसे थोड़ा परिचित व्यक्ति भी नहीं कर सकता। आपने "पुरुष-सूक्त"का अनुवाद किया है—"The hymn of Man"—"मनुष्य-सम्बन्धी सूक्त।" ऋचाओंके अर्थ करनेमें भी एतदनुरूप ही भूल होना स्वाभाविक है इसीसे 'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्' आदि देखकर आपको 'हजार सिर, हजार आँखें और हजार पैर' के किसी राक्षसका बोध हो आया; और, आगे आपने नर-बलि आदिका भी स्वप्न देखा; किन्तु सूक्तके किसी भी मंत्रमें ऐसा भाव नहीं है। भाषा भी इसकी इतनी जटिल नहीं है कि, न समझ सकनेके कारण, ऐसी भ्रान्ति हुई हो।

पुरुष-सूक्त प्रसिद्ध भी कम नहीं। यह चारों वेदोंमें मिलता है। ऐतिहासिकोंका कहना है कि, ऋग्वेदके दशम मण्डलसे ही और वेदोंने उसे अपनाया है; किन्तु इसपर तर्क करनेसे कोई विशेष लाभ नहीं । हमें तो उसके सुन्दर भावकी आवश्यकता है। महत्तामें कोई वेद किसीसे कम नहीं । सभी समान हैं, एक हैं। विषय-क्रमके अनुसार ऋचाएँ यथास्थान संकलित की गयी हैं।

तुलना करनेसे चारो वेदोंमें आये मंत्रोंको भाषामें थोड़ा-बहुत अन्तर मिलता है। सामवेदके आरण्यक काण्ड (षष्ठ प्रपाठक)में यह सूक्त मिलता है; किन्तु, ऋग्वेदके सभी मंत्र वहाँ नहीं, केवल ५ मंत्र हैं। पाँचोंमें भी पाठ-भेद है, कुछ शब्द भी परिवर्त्तित हैं। इनमें 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्'वाली मुख्य ऋचा नहीं है। शुक्ल यजुर्वेदमें ऋग्वेदीय १६ ऋचाओंके अलावा ६ और हैं, जिनमें दो कृष्ण यजुर्वेदमें भी आयी हैं। इनमें प्रथम १६ के ऋषि नारायण और अन्तिम ६ के उत्तर नारायण बताये जाते हैं; किन्तु इनमें और ऋग्वेदके मंत्रोंमें कोई भारी अन्तर नहीं पाया जाता। १२ वें मंत्रकी दूसरी पंक्ति "श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत" ऋग्वेदको "पंक्तिमुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत" से स्पष्टतः भिन्न है। कृष्ण यजुर्वेदमें ऋग्वेदसे २ अधिक मंत्र हैं, जो अन्तिम 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त...'से पहले पाये जाते हैं। पुनः १५ वाँ मंत्र "सप्तास्य न परिधयस्त्रिः..." ७ वाँ किया गया है। अथर्ववेदके १९ वें काण्डमें पूरा पुरुष-सूक्त मिलता है ; किन्तु

१६ वाँ मंत्र ऋग्वेदीय सूक्तके १६ वें मन्त्रसे भिन्न है। किन्तु इन भेदोंसे अर्थमें कोई भेद उपस्थित नहीं होता। भाव सबोंका एक ही है, सभी उसी ब्रह्मकी व्यापकताकी एक-सी शिक्षा देते हैं।

'पुरुष' शब्दका अर्थ इस सूक्तमें 'मनुष्य' करना भारी भूल है; क्योंकि ऐसे अर्थका समर्थन किसी ऋचा द्वारा नहीं होता। ऋचाओंमें सृष्टि-विषयक बातें हैं और ब्रह्मकी सर्वव्यापकता बतलायी गयी है। इसे कौन नहीं जानता कि, महर्षि कपिलके सांख्यमें इस शब्दकी कितनी प्रधानता दी गयी है। वेदज्ञ कपिलने अपने दर्शनका आभास इसी सूक्तमें पाकर "पुरुष" और "प्रकृति"पर गूढ़ विचार लेखबद्ध किया। पुरुष शब्दका अर्थ "जीवात्मा" और "परमात्मा" दोनो हैं; और, इस सूक्तकी ऋचाएँ परमात्माकी महती शक्तिका ही उल्लेख करती हैं। संदेह-ग्रस्त सज्जनोंको इस शब्दका अर्थ निरुक्तमें देखना चाहिये। महर्षि दयानन्दने भी अपने भाष्य तथा "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" में इस शब्दका अर्थ स्पष्ट किया है। स्वयं मंत्र भी इस शब्दके गूढ़ार्थपर कम प्रकाश नहीं डालते।

पुरुष-सूक्तका पहला मंत्र "पुरुष" देवताकी स्तुति करते हुए कहता है कि, "सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्"—वह सहस्रों शिरों, सहस्रों आँखों और सहस्रों पैरोंवाला पुरुष "सर्वतः भूमि ॐ स्पृत्वा"—सर्वत्र भूगोलमें व्याप्त हो "अत्यतिष्ठत, दशाङ्गुलम्" जगतके दश अवयवोंसे पृथक् रहता है। हमारी सनातन धारणा कि, परमेश्वर सर्वव्यापक होकर भी सबसे पृथक् रहता है, इस मंत्रपर अवलम्बित है। उपनिषदोंमें इसकी विशेष व्याख्या भी है। आगे दूसरा मंत्र कहता है कि, उसी पुरुष द्वारा भूत और भविष्यकी रचना होती है। तीसरा मंत्र उसकी महिमा बतलाते हुए उपदेश करता है कि, "एतावान् अस्य महिमा" यह ब्रह्माण्ड उसी पुरुषकी महिमा है और वह "अतः ज्यायान्" इससे भी बड़ी महिमाका है।

कोई भी संस्कृतज्ञ विद्वान् इस पुरुष-सूक्तको पढ़ेगा, उसे परमात्म-विषयक ज्ञान ही मिलेगा। इस सूक्तका प्रत्येक मंत्र सर्वाधिष्ठाता सर्वानन्द सर्वोपास्य परमेश्वरकी महिमाका ही वर्णन करता है।

७—कविता और कवि

प० जगदीशनारायण शर्म्मा

कविता क्या है? कदाचित् इस प्रश्नपर प्रकाश डालनेके लिये ही विश्वकी सारी सामग्रियाँ रची गयी हैं। कल-कल शब्द करती हुई कल्लोलिनी अपनी उत्ताल तरंगों, अहर्निश अपने नियत द्रुत-वेगसे बहा करती है। चन्द्र-सूर्य प्रति दिन अपनी सुधा-सिञ्चित रश्मियों एवं आतप-तप्त प्रखर किरणों द्वारा संसारका पालन-पोषण करते हैं। वायु नित्य मलयाचलसे सौरभ-सिक्त हो, हिमालय-निर्गत हिमकणोंसे हिमाच्छादित हो, प्रवाहित होता है। कुसुम-कलियाँ दैनन्दिन क्रमसे प्रस्फुटित, विकसित एवं हसित होती हुईं, संसारको इसी क्रमका निर्देश करती हैं। और, कवि-हृदय इन्हीं सब भावनाओंके प्राकृत प्रेरणसे प्रेरित हो, अपने मानस-स्रोतमें नित नयी लहरें लहराता है।

कविता क्या है? कैसे कहें कि, कविता क्या है? इसका एक ही उत्तर हो सकता है और वह यह कि, कविता, कविता ही है। कविता तर्क-साध्य नहीं, वह तो अनुभव-साध्य है। इसीलिये तो कविता शाश्वत है, नित्य है और अगोचर है। कविता ईश्वरीय वस्तु है, सृष्टिकी प्राकृत कलाओंका उत्कृष्ट नमूना है, संसार-व्याप्त है, हृदयस्पर्शी है, वाणीके रहते मूक और शक्ति रहते पंगु है। कविता माँका हृदय है; शिशुकी तोतली बोली है, जननीका शिशुपर नैसर्गिक वात्सल्य है, प्यारकी पुचकार है। कविता पथ-भ्रष्ट पथिकोंका पथ-प्रदर्शक, असहायोंका अवलम्बन, निर्बलोंका बल, सच्चे योगियोंका समाधिध्यान और भावुक कवियोंका प्राण है। कविता उन्नति एवं अभ्युत्थानका सर्व-प्रथम सोपान है, तमोराशिका नाशक सूर्य प्रकाश है, बिछुड़े हुओंका मिलन है, दुखियोंकी आह है, नवयुवतियोंका शृङ्गार है, अधरोंकी मन्द मुसकान है और नैसर्गिक भावनाओंकी जननी है। यह सब कुछ

है ; पर लेखनी जड़ है और वाणी मूक है। किस प्रकार समझाया और कहा जाय कि, कविता क्या है ! उसे तो, उसकी चाहके मतवाले भावुक कवि ही अपने अन्तस्तलमें आराध्य देवोकी भाँति देखते हैं, पूसन्न होते हैं, अपने आपको उसपर न्योछावर करते हैं, खाक छानते हैं और दर-दरके भिखारी होकर उसके प्रेमियोंको यह बताते फिरते हैं कि, कविता क्या है !

कविता क्या है ? कविता मानव-हृदयकी सजीव पूर्ति-मूर्ति है, कल्पनाओंका जीता-जागता चित्र है, प्रेम-तरंगिणोकी लोल लहरें है। चरित्र-चित्रणका, प्राकृत वर्णनका, मानसकी नयी उमंगोंका और हृदयकी परखका सीधा-सादा परिष्कृत मार्ग है। कविता सांसारिक विभूतियोंका, न केवल चकाचौंध उत्पन्न करनेवाला, रत्न है, वल्कि परमार्थकी चरम सीमा है। वेदोंमें सत् पदार्थ, दर्शनोंमें तात्त्विक मर्म, स्मृतियोंमें मन्तव्य विषय और पुराण-इतिहासोंमें सत्य घटनाओंका उल्लेख है। कविता विश्वकी एक मात्र वस्तु, सात्त्विक ज्ञानका पूर्ण विकास, विभिन्न परिस्थितियोंका यथार्थ परिज्ञान और संगीतकी मधुर ध्वनि है। इन सबका कोई वास्तविक उपभोक्ता है, तो वह है—कवितामय हृदयवाला सच्चा सहृदय कवि।

संसार कवितामय है और कविता संसारमय। विश्वकी असंख्य अतुल वस्तुओंपर यदि गम्भीर दृष्टिका निक्षेप किया जाय, तो उनमेंसे प्रत्येकके भीतर कविताका प्रकाश मिलेगा और संसारकी सजीव सृष्टिके अन्तर्गत कविता निर्झरिणी बहती मिलेगी। कविताकी आभा आलोकित होती है—पर्वतोंकी शृङ्खलाबद्ध श्रेणियोंमें, नदियोंकी लहरोंके उतराव-चढ़ावमें, यमुनाके त्रिवेणी-संगममें, वर्षाकालकी मेघमालाओंमें, घनघोर घटाकी विद्युच्छटामें, हेमन्तके तुषारोंमें, वसन्तके नव समागममें, ग्रीष्मके लड़खड़ाते पतझड़ोंमें और प्रकृतिके नीरव, निविड़ विपिनमें।

कविताका प्रचण्ड प्रताप तमतमा उठता है—निर्दयीके अत्याचारोंपर, विधवाओंके करुण क्रन्दनपर, दुःखियोंकी दर्दनाक आहोंपर, कुरीतिपूर्ण सामाजिक बन्धनोंपर, उच्छृङ्खलतापूर्ण व्यवहारोंपर, सभ्यता-विरुद्ध आचारणोंपर और प्रकृतिके प्रतिकूल नियमोंपर।

कविता दिल मसोसकर रो देती है—निरंकुश अविवेकी मानवोंकी क्रूर प्रवृत्तियोंको देखकर, निरर्थक रूढ़ियोंसे होनेवाली परवश बुराइयोंका अवलोकन कर, धन-बल और जन-बलके द्वारा मिले हुओंके बरबस बिछुड़नको महसूस कर और दो दिनोंकी नीरस सूखी-साखी जीवन-घड़ियोंके लिये—निर्बल, असहाय, अपंग और दैन्य-दग्ध मानवोंके आँसुओंकी लड़ियोंपर।

कविता पसीज उठती है—सोनेकी आलीशान इमारतोंके मिट्टीमें मिलनेसे, वीणा-विनिन्दित स्वरके मूकीभावसे, दुग्ध-धवल शय्याके पथरीली होनेसे, क्षणिक युवावस्थाके नश्वर सौन्दर्यसे और जरीके बहुमूल्य आलंकारिक वस्त्रोंवाले सुन्दर एवं दीन-हीन मलिन-कुरूपोंके एक समान श्मशानवाससे।

यदि आकाशकी व्यापकताका छोर मिले, यदि वायुके शैत्यका अन्दाजा लग सके, यदि अग्नि, जल आदि महाभूतोंकी शक्तिका माप हो के, यदि प्राकृत सौन्दर्यकी सीमा सीमित हो जाय, तो कविता एवं कविकी नश्वरताकी प्रतीति हो।

इन अनित्य साधनों द्वारा तैयार किये गये इस छोटेसे लेखकी समाप्ति हो सकती है और होगी; पर इसके भावोंका प्रेममय विभुत्व सदाकी भाँति स्थिर रहेगा।

८—वेदकालीन स्त्री-समस्या

पं० सूर्यनारायण व्यास

वैदिक कालमें स्त्रियोंको बहुत आदरकी दृष्टिसे देखा जाता था। कात्यायनी, मैत्रेयी, गार्गी आदि विदुषी स्त्रियोंका नाम कौन नहीं जानता ? स्त्रियाँ ब्रह्मवादिनी रही हैं। यहाँ तक कि, वेदकी कतिपय ऋचाओंका निर्माणतक इन विदुषी देवियोंने किया है।

वेद-कालमें जिस कुटुम्बपर सामाजिक बन्धनका आधार रहता था, उस कुटुम्बमें स्त्रीके भाई, पतिके भाई तथा पतिकी बहनके लिये भिन्न-भिन्न शब्दोंका प्रयोग किया जाता

था। इस कुटुम्बका स्वामी 'पिता' समझा जाता था और पिता ही 'गृहपति' कहलाता था।

जो व्यक्ति विवाह करना चाहता था, वह जिस कन्याको अपने लिये उपयुक्त समझता था, उसके पिताके पास अपने निजी मित्र द्वारा विवाह करनेका संदेश पहुंचा देता था। परस्पर स्वीकृतिके अनन्तर कन्याके माता-पिताके घरपर ही विवाह-विधान किया जाता था। विवाहके दिन घरके इष्ट-मित्र, रिश्तेदार, एकत्र होकर वरयात्रा (बारात) निकालते थे। कन्याके घरपर आ जानेपर कन्या-पक्षकी ओरसे, आगत सज्जनोंके सत्कारके लिये, इसी प्रसंगपर, कहा जाता है कि, एक 'गो-बध' किया जाकर उसका मांस वितरण किया जाता था। इस विधानका नाम 'मधुपर्क' था। यज्ञ-विवाहके प्रसंगपर मांस-विरहित अर्घ्य नहीं दिया जाता था। श्राद्धमें भी मांसपिण्ड बनानेका विधान है! खड्ग लेकर और 'गौ' लाकर वह अर्घ्यदाता "आसमादाय गोर्गौर्गौः आऽ-भ्यतामिति।" (ऋग्वेद मं० ८, अ० १०, सू० ९०, मं १९) उच्चारण करता है और 'गो-बध' किया जाता है। जयन्ताचार्य-ने आगे चलकर, गौके स्थानपर 'अजा' लेनेको कहा है। स्मृतिकारोंने इसका भी विरोध किया है—"गोरुत्सर्गः कार्यः" अर्थात् गो-बध न करके उत्सर्ग (दान) ही कर देना चाहिये। आपस्तम्ब-सूत्रमें बतलाया है कि, "...... कलौ नैव पापं गोहत्यासमं, अतो विवाहे यज्ञे च गामानीय समुत्सृजेत्"। इस तरह गो-बधकी प्रथा बन्द हो गयी। निरुक्त, ब्राह्मण और ऐतरेय-ब्राह्मणमें गो-बधका जो समर्थन किया गया है, स्मृतिकारोंके विरोधसे वह बन्द हो गया है। यों तो आज भी विवाहके समय कर्मकर्ता ब्राह्मण दर्भ (डाब) लेकर उपर्युक्त वेद-मंत्रसे गोनिष्क्रय रखवा कर दर्भोंसे खण्ड करवा देते हैं। रूढ़िके तौरपर नियम निबाहा जाता है। इस विधानके बाद वर कन्याका हाथ पकड़कर अग्निकी प्रद-क्षिणा करता है। अथर्ववेदके नियमानुसार अग्नि-प्रदक्षिणाके बाद जमीनपर एक पत्थर रखा जाता है; और, 'वर'की ओरसे उस 'बधू' को कहा जाता है कि, "सन्तान-प्राप्तिके लिये उसपर वह अपना पैर रख दे।" पुनः कन्याको तैल लगा कर मंगल वस्त्र धारण कराये जाते हैं। लग्न समारम्भ समाप्त होनेपर 'वर' के साथ कन्याको एक सुसजित रथपर बिठलाकर ससुराल बिदा किया जाता है।

ऋग्वेदमें इस विवाह-विधानके लिये ४७ सूक्त हैं। पहले १ से ५ सूक्तोंमें स्वर्गके 'सोम' और 'चन्द्र' की एकता, गूढ़ शब्दोंमें, समझायी गयी है। इसके बाद ६ से १७ मंत्रोंमें 'सोम'का कुमारी सूर्याके साथ लग्न होना बतलाया गया है। आगे जाकर अश्विनोंको 'सूर्या' के पतिरूपमें बतलाया है और साथ ही उन्हें 'सूर्य'के सारथि-रूपमें भी हम देखते हैं।

'सोम'के लिये 'सूर्या'के पिता 'सविता'से 'सूर्या'की 'अग्नि' द्वारा मँगनी की जाती है। 'सविता' भी सोमके साथ सूर्यासे सम्बन्ध करनेकी अनुमति प्रकट करता है। स्वयं 'सूर्या' भी 'सोम' के साथ शादी करनेमें अपनी प्रसन्नता जाहिर करती है। इससे यह तो स्पष्ट है कि, 'वेदकालमें बाल-विवाहकी प्रथा नहीं थी! स्त्रियाँ बड़ी वयमें विवाह करती थीं। यही क्यों? वरकी पसन्दगीके कार्यमें भी लड़कियाँ अधिक स्वतंत्रता-पूर्वक भाग लेती थीं।*

पिताको भी लड़कीकी पसंदगीपर ही अधिक अवलंबित रहना पड़ता था। आज ऐसे सुधरे हुए विवाह जैसे पवित्र विधानको कलुषित कर दिया गया है!

हाँ, 'सूर्या'की स्वीकृतिके बाद 'सोम'के साथ उसका विवाह हो गया! शाल्मली (सेमल) वृक्षकी लकड़ी द्वारा बनाये गये लाल रंगके किंशुक-पुष्पोंसे सुसज्जित दो सफेद बैलोंके द्विचक्र रथपर 'सूर्या'को ससुराल बिदा करवाया गया।

वैदिक कालमें मानवी विवाहका यह प्रथम नमूना माना गया है। जिस समयका यह विवरण उपस्थित किया गया है, उस समय स्त्रियोंको आदरकी दृष्टिसे देखा जाता था। उस समय यज्ञ जैसे पवित्र कार्यमें पतिके साथ पत्नीको रहना पड़ता

* मं० १०, अ० १, सू० १०। मं० १०, अ० १, सू० ११। मं० १०, अ० २, सू० २—ऋग्वेद।२।३०।५—अथर्व आदि।

था। स्त्रियाँ 'गृह-स्वामिनी' कही जाती थीं। घरके भृत्य-गण और पतिसे अल्प वयके भाई-बहन आदिपर उसकी सत्ता रहती थी।

ऋग्वेदमें ऐसी लड़कियोंका कई जगह उल्लेख है, जो अपने पिताके घरपर ही अधिकवयस्का हो गयी थीं। उदाहरणार्थ 'सूर्या'को ही लीजिये। दशम मण्डलके ७ वें अध्यायके ९ वें मंत्रका सायण-भाष्य है—"……यद्यदा सूर्यां पत्ये शंसन्तीं पतिं कामयमानां पर्याप्तयौवनामित्यर्थः" अर्थात् 'पतिकी कामना करनेवाली पर्याप्तयौवना कुमारी थी।'

इसी तरह दशम मण्डलके एक स्थलपर 'कन्या' का लक्षण बतलाते हुए सायणाचार्य लिखते हैं—"कन्यात्वेन अभिनव-यौवना लक्ष्यते सा।" इससे स्पष्ट है कि, उस समय किसी 'दुधमुँही' को खूसटके गले नहीं बाँध दिया जाता था।

वेद-कालमें ऐसा कहीं भी नहीं उल्लेख है कि, स्त्रियोंको अशिक्षिता रखा जाता था। इसके विपरीत कई विदुषी नारियाँ हम देखते हैं।

याज्ञवल्क्यकी विदुषी धर्मपत्नी 'कात्यायनी'का मैत्रेयीके साथ जो संवाद है, वह अप्रकट नहीं। उस समय मैत्रेयी कुमारी थी। वह उस समय ही अपने पिताके साथ रहकर अनेक गहन विषयोंके मर्मको जानती थी। यह तो शक्य नहीं कि, मैत्रेयी 'अष्टवर्षा गौरी' होकर आत्मज्ञान (ब्रह्मज्ञान) जैसे महान् विषयकी जानकार हो गयी थी! फिर वाद-विवाद तो दूर ही रहा? इन दोनों स्त्रियोंका संवाद बृहदारण्यक उपनिषद्का एक उपयोगी विषय है और पण्डितोंकी चर्चाका विषय भी बना हुआ है।

सारांश यह कि, वेद-कालमें (१) स्त्रियाँ पूर्ण शिक्षिता होती थीं। उन्हें गम्भीर विषयोंका भी ज्ञान रहता था। (२) वे काफी होशियार हो जानेपर अपनी स्वीकृतिसे विवाह करती थीं। पतिके चुनावमें उनका हाथ रहता था। (३) वे आदरणीया एवं गृहस्वामिनी समझी जाती थीं।

६—नम्र निवेदन

पं० नन्दकिशोर झा

जेठकी "गङ्गा" (पूर्ण संख्या अठारहवीं) के पृष्ठ ७९३ में पं० त्रिलोचन झा द्वारा लिखित मेरे लिखे "प्रिय मिलन" (खण्ड काव्य) पर एक नोट छपा है।

उस संक्षिप्त नोटमें उदार-हृदय झाजी महोदयने पुस्तकके प्रायः सभी गुणोंका उल्लेख, बड़ी सहृदयतासे, किया है। मैंने उक्त पुस्तक पचीस-तीस विशिष्ट साहित्य-सेवियोंके पास भी समालोचनार्थ भेजी थी। जिनमेंसे श्रद्धेय पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, कविवर बाबू मैथिलीशरण गुप्त, सौहार्द-सम्पन्न श्रीयुत सत्यप्रकाश एम० एस-सी० तथा काव्य-मर्मज्ञ पं० भुवनेश्वर झा बी० ए० (आनर्स) के अतिरिक्त—मुझे जहाँतक मालूम है—अभीतक किसीने उक्त पुस्तककी समालोचना लिखनेका कष्ट नहीं उठाया। ऐसी स्थितिमें झा महोदयका पुस्तकको साद्यन्त पढ़कर सहृदयता-पूर्वक नोट लिखना तथा "गङ्गा"-सम्पादकोंका उसे प्रकाशित कर देना, मुझे पूर्ण प्रोत्साहन प्रदान करता है और इसके लिये मैं हृदयसे आभारी हूँ।

अब रही बात झा महोदयके दोषोद्धरणकी। वे लिखते हैं—"यह रहते हुए भी यदि कहीं अलङ्कारमें त्रुटि तथा भाषामें पण्डिताईका ढङ्ग कुछ आ भी गया हो, तो उल्लेखनीय नहीं।" लिखनेको तो लिख डालते हैं 'उल्लेखनीय नहीं' किन्तु लगे हाथों फिर उसीको लिखते हैं—"प्रथमोल्लासके पाँचवें छन्दमें विरुद्धालङ्कारका दृश्य दिखलाया गया है। परन्तु प्रथम चरणमें कुछ कचापन आ गया है। पञ्चमोल्लासके अन्तिम छन्दमें "आयेमें ही" प्रयोग स्पष्ट पण्डितजीकी भाषा प्रमाणित करता है। हिन्दीमें संस्कृत-विभक्तियोंका प्रयोग या "आय" जैसे अप्रचलित शब्दोंका व्यवहार चिन्त्य है।"

समालोच्य विषयका वास्तविक दोष दिखलाना सत्समालोचकोंका एक प्रधान कर्त्तव्य है। ऊपर कहे हुए

चारो सज्जनोंमेंसे अन्तिम दो सज्जनोंके पत्रोंमें भी दो एक दोषोद्घाटन किये गये थे, जिनका अनुभव मैं पहलेसे भी कर रहा था; अतएव वे मुझे अधिकांशमें समुचित जान पड़े; किन्तु झाजीके दोष दिखानेका ढंग तो कुछ निराला ही है। आप 'त्रिलोचन' ठहरे; इसलिये दूरकी ही सूझी।

प्रथमोल्लासका पाँचवाँ पूरा छन्द इस प्रकार है—

"देकर कोमल दृष्टि सभीका मन हरते थे।
रहकर भी वे मौन बात मानों करते थे॥
होकर भी नवयुवक परम प्रवयस-समान थे
श्याम-वरण भी वे प्रदीप-सम भासमान थे॥
अति उच्चासन-आसीन भी, नम्रभाव-संयुक्त थे।
नरतनु होकर भी सर्वथा, भव-बन्धनसे मुक्त थे॥"

इसके प्रथम चरणमें परिवृत्ति अलङ्कार रखा गया है; क्योंकि समन्यूनाधिक वस्तुओंका विनिमय ही परिवृत्ति अलङ्कार कहलाता है। जिस समय यह पंक्ति लिखी गयी थी, उस समय प्रायः मेरी बुद्धिमें भी यह बात नहीं आयी थी कि, आगे कौन अलङ्कार रखा जायगा। हाँ, जब उसके मुकाबिले-में "रहकर भी वे मौन बात मानों करते थे" पद रखा, तब विरुद्धाभास अवश्य सामने आया और मैंने अन्ततक उसीको स्थान दिया।

मेरे विचारमें पूर्वके अधिकांश चरणोंमें किसी भावका प्रतिपादन करके यदि अन्तिम चरणमें उसका निर्वाह नहीं हो पाता, तो लचरपन मानना ठीक है। यहाँ तो परिवृत्ति और विरोधाभासकी संसृष्टि हुई है। हाँ, यह बात दूसरी है कि, यदि पहले चरणमें भी विरोधाभास ही रहता, तो कैसा बनता? खैर, समालोचक जी यदि इसीको "उल्लेखनीय दोष" समझें, तो यह उनकी मर्जी।

अब जरा पञ्चमोल्लासके अन्तिम छन्दका भी मुलाहिजा किया जाय। पूरा छन्द इस प्रकार है—

"आते-आते कुछ समयमें द्वारका दृष्टि आयी।
सद्यः रत्नाकर-निधि जहाँ व्यक्त देती दिखायी॥
'आपेमें' ही भवन जिसके थे न फूले समाते।
श्री भार्याके सहित हरिको आज यों देख आते॥"

मुझे विश्वास है कि, नोटमें "आपेमें ही" लिखका [illegible] गया था, जैसा कि, मूल पुस्तकमें है; किन्तु प्रेसके [illegible] उसे "आयेमें ही" छाप दिया! पण्डितजी इसको [illegible] लित 'आप' शब्दसे संस्कृतकी (सप्तमीको) 'इ' [illegible] लगनेसे 'आये' बना मानते हैं; यद्यपि 'में' भी वहाँ [illegible] उसपर भी उक्तार्थता-दोष नहीं लगाया गया, यही [illegible] है! किन्तु मुझे लाचार होकर कहना पड़ता है कि, [illegible] यहाँ संस्कृतका कोई शब्द ही है, न संस्कृतकी कोई वि[illegible] ही। फिर इसमें पण्डिताईका ढंग क्या आ गया! [illegible] मालूम नहीं होता। यह आपत्ति यदि 'अधिनीर' जैसे [illegible] पर की गयी होती, तो मुझे कुछ कहना न पड़ता।

बोलचालकी हिन्दीमें "वे आपेसे बाहर हो [illegible] "वे आपेमें न रहे" यह बराबर बोला जाता है। [illegible] प्रयोग यहाँ भी है। यदि पण्डितजीको अबतक ऐसा [illegible] न मिला हो, तो गत चैत्र (अप्रेल) की "छाया" के ३[illegible] पृष्ठको खोलनेका कष्ट करें। उसपर श्रीयुत मुंशी [illegible] बख्श "हिन्दी-कोविद" जी लिखते हैं—"अच्छा तो, [illegible] आया जाता हूँ।" कोविदजीकी भाषा टकसाली [illegible] वे मेरे जैसे संस्कृतके पक्षपाती नहीं जान पड़ते। फिर [illegible] उनपर भी पण्डिताईका ही दोषारोपण किया जायगा!

मैं यह मानता हूँ कि, 'आपेसे' की अपेक्षा '[illegible] प्रयोग कम होता है; किन्तु क्या इतनेसे ही यह "[illegible] भाषा" कही जा सकती है? इसका निर्णय विज्ञ पाठक [illegible] करें।

मुझे वाद-विवाद करनेमें दिलचस्पी नहीं, न मुझे [illegible] लिये अवकाश ही है। अतएव मेरा पहला और अ[illegible] निवेदन यही समझना चाहिये।

पुस्तक-प्राप्ति

१—बुद्धचर्या

लेखक, महापण्डित और त्रिपिटकाचार्य श्रीयुत राहुल सांकृत्यायन, प्रोफेसर, संस्कृत, विद्यालंकार कालेज, केलानिया, लंका; प्रकाशक, बाबू शिवप्रसाद गुप्त, सेवा-उपवन, काशी; पृष्ठ-संख्या, ६९२; मूल्य, सजिल्द ६), अजिल्द ५)।

जिस पुस्तकके प्रकाशक बाबू शिवप्रसाद गुप्त जैसे धन-कुबेर हों, उसके कागज और छपाई-सफाईका क्या पूछना! सारी पुस्तक बहुमूल्य आर्ट पेपरपर छपी है! इस कागजपर अक्षर मोतीकेसे चमकते हैं। इसको छपाई-सफाई देखकर तबीयत फड़क उठती है। यह पुस्तक "सादगीमें सौन्दर्य"का ज्वलन्त नमूना है। इसकी बाह्य प्राञ्जलता परिदर्शनीय है। यह अपने ढंगकी अजीब और अनोखी पुस्तक है।

हिन्दीमें भगवान् बुद्धके अनेक जीवन-चरित निकले हैं। इनके आधार अँग्रेजी पुस्तकें हैं—जिन त्रिपिटकोंमें भगवान् बुद्धका प्रामाणिक जीवन-चरित है, उनके आधारपर एक भी पुस्तक नहीं थी। यह पुस्तक इसी अभावकी पूर्ति करती है। बल्कि यह पुस्तक त्रिपिटकानुवाद ही है। इसको पढ़नेसे अथ से इतितक बुद्धचर्या विदित हो जाती है। जिन बुद्ध भगवान् के अमर उपदेशोंने सारे संसारमें हिन्दू-जातिको महिमाकी पताका फहरायो है और जिन्होंने एशियाकी प्रायः सारी मंगोल और आर्य-जातिके ऊपर अपनी धाक जमायी है, उनकी कल्याण-दायिनी चर्या प्रत्येक हिन्दी-भाषीको, इस अपूर्व पुस्तकके द्वारा, अवश्य पढ़नी चाहिये। इस पुस्तकको हिन्दी-साहित्य-भण्डारका अमूल्य रत्न कहनेमें अत्युक्ति नहीं है।

सारे त्रिपिटक पाली भाषामें हैं और लेखक पाली भाषाके पूर्ण पण्डित हैं। हिन्दी भाषामें, वीतराग बौद्धोंमें, आपसे बढ़-कर बुद्ध-जीवनी लिखनेका कोई अधिकारी नहीं है। पाली ही नहीं, आप प्राकृत, हिन्दी, संस्कृत, अँग्रेजी, फ्रेञ्च, तिब्बती, चीनी, सिंहली, अरबी आदि आदिके भी विद्वान् हैं। साथ ही आप बहुज्ञ और अनुभवी पर्यटक भी हैं। बुद्धकी ही तरह आप उदासी, निःस्वार्थी और निर्मम हैं। इसके सिवा आप आदर्श समाजवादी हैं। आप "गंगा"के आगामी "पुरातत्वांक" के सम्पादक हैं; इसलिये नजदीकसे आपका अध्ययन करनेका हमें मौका मिला है। इस अध्ययनके बलपर हम कह सकते हैं कि, आप जैसे आदर्श साधु भारतमें दुर्लभ हैं। ऐसे साधु भारतीय साधु-समाजकी प्रदीप्त मणि हैं।

प्रस्तुत पुस्तकमें आपकी व्यापक विद्वत्ता और विशाल उदारता भली भाँति अभिव्यक्त हुई है। इस पुस्तककी मार्मिक भूमिका आप जैसे मनीषी ही लिख सकते हैं। यह पुस्तक निकलनेके पहले ही यह भूमिका "गंगा" के १ म वर्षके ९ वें अंकमें छप चुकी है। हमारे पाठक एक बार फिर उसे पढ़नेका अवश्य कष्ट उठावें; और, हो सके, तो इस पुस्तकको भी खरीदकर अवश्य पढ़ें।

एक बात हमें अवश्य खटकी। शायद जल्दीबाजीके कारण पुस्तकमें अनेक प्रूफ-सम्बन्धिनी भूलें रह गयी हैं। परदुःखकातर भगवान् बुद्धका मांस-भक्षण भी हमारी समझमें नहीं आता। जो बुद्ध भगवान् स्वर्ग-नरक, अदृष्ट, कर्मफल आदि मानते थे, वे ईश्वर और वेदके द्रोही क्योंकर हुए—यह भी हमारी समझसे बाहरकी बात है। जो हो; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, हिन्दीकी यह सर्व-श्रेष्ठ बुद्ध-जीवनी है और इसके द्वारा सांकृत्यायनजी जैसे महात्मा, विद्वान्, लोक-सेवक, पर्यटक और व्याख्याताका हिन्दी-साहित्यमें शोभन प्रवेश हुआ—यह आह्लादका विषय है। आप जैसे सुपुत्रसे हिन्दी-माताको बड़ी आशाएँ हैं।

इन दिनों आप, एक आवश्यक कार्यसे, इंगलैण्ड गये हुए हैं और यदि वहाँसे अमेरिका नहीं गये, तो छः महीनेके भीतर भारत लौट आवेंगे। जो सज्जन आपसे पत्र-व्यवहार करना चाहें, वे निम्न लिखित पतेसे कर सकते हैं—

श्रीयुत राहुल सांकृत्यायन,

C/o British Mahabodhi Society,

41, Gloucester Road,

London, N. W. I.

—सम्पादक

× × × × ×

२—रति-विज्ञान

लेखक तथा प्रकाशक, लाला सन्तराम बी० ए०; पृष्ठ-संख्या १८९; छपाई-सफाई साधारण। अग्रिम मूल्य ९।-) भेजनेपर लाला सन्तराम बी० ए०, साहित्य-सदन, लाहौरके पतेसे यह पुस्तक उन्हींको मिल सकती है, जो बीस वर्षकी उम्रसे अधिकके हैं और विवाहित भी। आरम्भमें बड़े-बड़े सुयोग्य विद्वानोंकी सुन्दर सम्पतियाँ हैं।

धर्म-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र आदिकी तरह ही काम-शास्त्र भी एक शास्त्र है। संस्कृतमें इस विषयकी बहुत-सी पुस्तकें हैं। विना काम-शास्त्रके अध्ययनके मनुष्योंमें पूर्णता नहीं आ सकती है। शङ्कराचार्यने मण्डनमिश्रको अपनी अगाध विद्वत्तासे हरा तो दिया था; परन्तु स्वयं उनकी स्त्री भारतीके सम्मुख झेंप गये थे। इसका यही कारण था कि, आजन्म ब्रह्मचारी शङ्कर काम-शास्त्रसे अनभिज्ञ थे।

प्रस्तुत पुस्तक संस्कृतकी सर्वमान्य प्राचीन पुस्तकोंके आधारपर लिखी गयी है, विशेषकर वात्स्यायन मुनिके "कामसूत्र" का सार-भाग इसमें संचित है। संस्कृतमें इस विषयके जितने भी ग्रन्थ उपलब्ध हैं, सबका परिचय भी इसमें है। मुद्रित-अमुद्रित, प्राप्य-दुष्प्राप्य तथा छोटे-बड़े सब प्रकारके ग्रन्थोंके वाक्यांश तथा, सार इसमें अत्यन्त परिश्रमके साथ, सन्निहित किये गये हैं। संस्कृत-साहित्यमें जहाँ-जहाँ इस विषयकी चर्चा है, चाहे वह वैदिक साहित्य है या पौराणिक, सब सरल तथा संयत भाषामें यहाँ संगृहीत हैं। इससे यह नहीं समझना चाहिये कि, पुस्तक केवल संस्कृतज्ञोंके लिये ही लिखी गयी है। यह "रति-विज्ञान" तो खासकर हिन्दीवालोंके लिये है।

लाला सन्तरामका ज्ञान इस दिशामें कितना उन्नत है, यह काम-शास्त्रसे प्रेम रखनेवालोंसे छिपा नहीं है। यह पुस्तक उन्हींकी लेखनीका अभिनव अभिजात है। इन्होंने इस पुस्तकमें जो विषयोंका चुनाव किया है, वही प्रथम मेरे आश्चर्यका विषय हो रहा है। इतनी सुन्दरतासे इन विषयोंका चुनाव मैंने अन्यत्र किसी भी ऐसी पुस्तकमें नहीं देखा है। "कुट्टनीमत"के आधारपर सुरतके समय स्त्रियोंकी चेष्टा कैसी होनी चाहिये, बड़ा ही सुन्दर है। काम-विह्वल औरतें धूर्तों द्वारा कैसे व्यभिचारिणी बनायी जाती हैं, बड़ी उम्रकी औरत और छोटी उम्रके पतियोंके कर्तव्य आदि प्रकरण भी बड़े मार्केके हैं। आसन-साधनके विषयमें जो प्रकरण है, वह भी अच्छा है। आलिङ्गनवाला प्रकरण भी सुन्दर है। हाव-भाव-विलास आदिके ऊपर भी सहृदयतापूर्वक, साहित्य-ग्रन्थोंसे, संग्रह किया गया है। पुस्तक पढ़ने योग्य है और सर्वथा उपादेय।

पुस्तकका मूल्य यद्यपि कुछ अधिक है; तथापि इसकी उपयोगिताके सम्मुख वह कुछ नहींके बराबर है।

३—बाईसवीं सदी

लेखक, श्रीयुत राहुल सांकृत्यायन; प्रकाशिका, चन्द्रावती देवी (जलविद्), युगान्तर-पुस्तकमाला-कार्यालय, महेन्द्रू, पटना; मूल्य १); छपाई-सफाई साधारण।

यह एक प्रकारसे साम्यवादकी पुस्तक है। साम्यवाद किसे कहते हैं, इससे हानि है या लाभ, साम्यवादियोंका संसार कैसा होगा एवं प्रकारकी बातें इसे पढ़नेसे, कोई भी, अनायास ही, समझ सकता है। यों यदि कोई साम्यवादका

सिद्धान्त छनाने लगे, तो निश्चय ही तुनुक-मिजाज साहब, थोड़ी ही देरमें, ऊब उठेगा और ज्ञानार्जन बड़ी देरके बाद भी थोड़ा ही कर सकेगा; परन्तु इसमें यह बात नहीं है। विद्वान् लेखकने बड़ी सहृदयतासे काव्यमयी भाषामें, साम्य-वादके सारे सिद्धान्तोंको लेकर उपन्यास रच डाला है। इसी ढंगसे आपने साम्यवादियोंके युगमें एक बार पाठकोंको भेज दिया है। जो कोई "बाईसवीं सदी" की दुनियाकी एक बार सैर कर लौट आवेगा, वह साम्यवादियोंके गाँव-नगर, खान-पान, वस्त्राभूषण तथा अध्ययन-जीविका आदिके विषयमें पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेगा। आप इस पुस्तकमें पढ़ेंगे— औरतोंको लड़के कहाँ होंगे, पाले कहाँ जायँगे, पढ़ाये कहाँ जायँगे और रोजगार कहाँ करेंगे। यह केवल किसी एक वरमें नहीं, बल्कि सारे राष्ट्रमें।

यह एक प्रकारसे सच्चे संन्यासीकी भविष्य वाणी है या बुद्धिमान् लेखककी, उदाहरण आदि दी गयी हुई अच्छी-सी स्कीम। कहानीकी भाषा सरल है और रोचक। देश-प्रेमि-योंको इसे एक बार पढ़ना चाहिये।

४—नैवेद्य

लेखक, बाबू हनुमानप्रसाद पोद्दार; प्रकाशक, घन-श्यामदास, गीताप्रेस, गोरखपुर; मूल्य ॥=); छपाई अच्छी। पृष्ठ-संख्या ३४१।

यह भक्ति और अध्यात्मका ग्रन्थ है। परब्रह्म श्रीकृष्ण-चन्द्रको अभिलक्ष्य कर यह लिखा गया है और उन्हें ही सम-र्पित हुआ है। इसमें गीताके बहुतसे उद्धरण दिये गये हैं। सुन्दर सूक्तियोंसे तो यह ग्रन्थ-रत्न भरा पड़ा है। कहीं-कहींका वर्णन शुद्ध साहित्यिक ढंगसे किया गया है; जैसे "गुरु-शिष्यसंवाद।" इस पुस्तकमें हिन्दू-सभ्यता और खासकर भक्तिवादकी छाप लगी हुई है। भक्तोंको यह पुस्तक एक बार जरूर पढ़नी चाहिये। इसमें ३४ प्रकरण हैं और अनेक विषय। नवीन साहित्यिकोंके लिये यह यद्यपि कुनैनकी टिकिया है; तथापि उन्हें भी एक बार, अभिमान-ज्वरविनाशके लिये, इसे देख लेना ही चाहिये। इसमें प्रसंगवश कई एक छोटी कहानियाँ भी हैं, जो उचित स्थानमें जड़ी रहनेके कारण विशेष महत्त्व रखती हैं।

५—संक्षिप्त जैन-इतिहास

यह सौभाग्यवती सविता बाई स्मारक-ग्रन्थमालाका २ नं० है और संक्षिप्त जैन-इतिहासके द्वितीय भागका प्रथम खण्ड। इसके लेखक हैं, बाबू कामताप्रसाद जैन और प्रकाशक, मूलचन्द किसनदास कापड़िया, मालिक दिगम्बर जैनपुस्तका-लय, कापड़ियाभवन, सूरत। पृष्ठ-संख्या ३००। मूल्य १॥=)। छपाई-सफाई साधारण। आरम्भमें लेखकका एक सादा चित्र भी है।

जैन-धर्मियोंके तीर्थङ्करोंके विषयमें इसमें प्रकाश डाला गया है। विशेष-विशेष घटनाओंका ईसासे पूर्व चौथी शताब्दी-से तेरहवीं शताब्दी तकका क्रम-बद्ध इतिहास भी है। जैनियों और बौद्धोंके आचरणोंको देखनेसे, दोनोंके धर्म प्रायः एकसे ही प्रतीत होते हैं, क्योंकि दोनों ही "अहिंसा परमो धर्मः" के उपासक हैं। लेकिन वास्तवमें दोनोंके सिद्धान्तोंमें महान् विभेद है। दोनों ही 'रत्न-त्रय' मानते हैं—बौद्धोंके 'रत्न-त्रय'में बुद्ध, धर्म और संघ हैं; पर जैनियोंके 'रत्न-त्रय'में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र्य हैं। दोनों ही अपने धर्मको स्वतन्त्र मानते हैं और दोनों ही अपने धर्मके आधारपर दूसरेके धर्मको प्रवर्तित भी जानते हैं। दिगम्बरों और श्वेताम्बरोंमें जो भेद हैं, वे भी इसमें वर्णित हैं। इसे पढ़नेसे जैनियोंके इतिहासका अवश्य ज्ञान हो जाता है। लेकिन पुस्तकमें इतनी लम्बी-लम्बी लाइनें और इतने अक्रम शब्द-विन्यास हैं कि, शीघ्रतासे अर्थावगमन होनेमें कठिनाई होती है। प्रूफकी अशुद्धियाँ भी सारी पुस्तकमें हैं। लेखकने भी कई संस्कृत-शब्दोंको लिखनेमें अशुद्धियाँ की हैं।

६—वैदिक विनय

लेखक, श्रीयुत "अभय" विद्यालंकार; प्रकाशक, मुख्या-धिष्ठाता, गुरुकुल-विश्वविद्यालय काँगड़ी (सहारनपुर); पृष्ठ-

संख्या २९६; मूल्य २); आदिसे अन्ततक दो रंगोंकी सुन्दर छपाई और सफाई बढ़िया।

इस पुस्तकको "अभय" जीने एकान्त शान्त मानससे कानपुर जेलमें लिखा है। पूरे वर्षके लिये प्रतिदिन नये-नये मंत्रोंसे प्रार्थना करनेके लिये, ऋतु, मास और तिथिके उपयुक्त मंत्रोंका, चारो वेदोंसे ढूँढ़-ढूढ़कर, इन्होंने, अत्यन्त परिश्रमसे, संग्रह किया है। उसी सिलसिलेमें चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ तथा आषाढ़ मासोंके लिये १३४ मंत्रोंका इसमें संग्रह है। ऊपर मंत्र हैं और दो या तीन पेजोंमें उनका सरल हिन्दीमें भावार्थ तथा अन्तमें मूल शब्दके अनुसार शाब्दार्थ है। सायण तथा यास्कको मनन कर "अभय" जीने सत्यार्थके निकटतक पहुँचनेका प्रयास किया है। चैत्र मासके पूर्व और ज्येष्ठ मासके पूर्व एक-एक भावपूर्ण तिरंगा चित्र है। प्रतिमासके आदिमें ऋतु तथा मासके अनुकूल प्राण-दायक नये-नये ढंगके व्यायामोंका भी वर्णन है। शुरूमें लेखकको ही लिखी २२ पृष्ठोंकी मार्मिक भूमिका है और अन्तमें अक्षरानुक्रमसे अनुक्रमणिका।

—साहित्याचार्य "मग"

× × × × ×

७—गोलमेज कान्फरेंस

लेखक, प० निरंजन शर्मा अजित (प्रधान सम्पादक, "श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार"); प्रकाशक, खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई; पृष्ठ-संख्या १००; मूल्य नहीं लिखा; छपाई साधारण।

देशकी वर्तमान हलचलको शान्तिका रूप देनेके लिये लन्दनमें जो गोलमेज कान्फरेंस हुई थी, प्रतिनिधियोंने जो महत्त्व-पूर्ण बातें कही थीं, उनपर जो वादविवाद हुआ था, भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंने जो माँगें पेश की थीं, देशी रियासतोंने अपनी स्वत्व-रक्षाके सम्बन्धमें जो अभिप्राय प्रकट किया था, उन्हीं बातोंको विस्तृत चर्चा इस पुस्तकमें की गयी है। इससे देशकी तत्कालीन राजनीतिक स्थितिका सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त हो सकता है। पुस्तक महत्त्व-पूर्ण और उपादेय है। प्रत्येक भारतीयको इसे अवश्य पढ़ना चाहिये।

पुस्तककी भाषा सरल है; सर्वसाधारणके लिये सहज-गम्य। प्रूफ-सम्बन्धी कुछ अशुद्धियाँ रह गयी हैं; किन्तु पुस्तककी उपादेयताको दृष्टिसे अचिन्त्य हैं।

—श्रीमद्भागवतप्रसाद शर्मा

आत्म-निवेदन

१—इन्दोरका सम्पादक-सम्मेलन

विद्या किसीके लिये संरक्षित नहीं है। जो कोई भी अमित-परिश्रमी होगा, अपनी धुनका पक्का होगा, पत्रों और पुस्तकोंका अध्ययन, मनोयोग देकर, करेगा, वह विद्याको अपनी मुट्ठीमें कर लेगा। दर्शन, काव्य, गणित और निरुक्तका मूल तत्त्व बनानेवाले हमारे पूर्वज कोई बड़ी परीक्षा नहीं पास किये हुए थे, स्व० प० मोतीलाल नेहरू और स्व० म० म० प० शिवकुमार शास्त्री पी-एच० डी० और डी० फिल, डी० लिट् और डी० एस-सी० नहीं पास थे; उन्होंने विद्याका सतत अभ्यास किया, विश्वविदित मनीषी हो गये। विद्या प्रतिभा-वान्‌के कब्जेमें रहती है और परिश्रमकी असीम शक्तिका नाम ही प्रतिभा है—"परिश्रमस्यापरिमितशक्तिः प्रतिभा।" इसीसे हमारा विचार है कि, विद्या किसीके लिये संरक्षित नहीं है।

हिन्दीके सम्पादकोंमें भी असीम-श्रम-शाली हैं। कितनोंने ही अध्ययनमें अपने खूनको सुखा डाला है। कई कितनी ही भाषाओंके प्रगाढ़ पण्डित और निष्णात लेखक हैं। लम्बी उपाधिवालोंको कितने ही पढ़ानेवाले सम्पादक भी हिन्दीमें मौजूद हैं। यह सब है; परन्तु हिन्दी-सम्पादकोंकी कहीं भी पूछ क्यों नहीं? गवर्नमेण्ट तो इन्हें पूछती ही नहीं! प्रोफेसर और कालेजोंके विद्यार्थी इन्हें बात-बातमें दुतकार बताते हैं! संस्कृतके विद्वान् इन्हें महामूर्ख समझते हैं! क्यों? इसलिये कि, इनकी कोई संघटित संस्था नहीं, इनकी शक्ति बिखरी हुई है—यद्यपि ये दुनियाका संघटन कराते फिरते हैं! यह मर्मान्तक विषय है।

इसी अभावकी पूर्तिके लिये इन्दोरके कुछ उत्साही हिन्दी पत्र-सम्पादक इन्दोरमें "अखिल भारतीय हिन्दी-सम्पादक-सम्मेलन" करने जा रहे हैं। इसके मुख्य कार्य-कर्त्ता "वीणा" के सम्पादक प० कालिकाप्रसाद दीक्षित "कुसुमाकर" हैं। यह शुभ लक्षण है। इसके पहले भी, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अवसरोंपर, प्रति वर्ष सम्पादक-सम्मेलन हो जाया करता था। परन्तु वह प्रकृत कार्य कुछ भी नहीं करता था। कई बार तो किसी गुटने किसी आन्दोलकको सभापति चुन लिया और दो-चार व्याख्यान दे-दिलाकर पत्रकार-सम्मेलन समाप्त किया गया। इसमें स्वार्थ-परता ही अधिक थी—उपकारातिशय-वादिता कम। इस शैलीने पत्रकारोंमें संघटनकी आग ही नहीं पैदा की। बिना सच्ची लगनके संघटन और प्रकृत कार्य होना कैसे सम्भव हो सकता था? अबकी जो चेष्टा की जा रही है, उसका हम हृदयसे अभिनन्दन करते हैं।

देशकी दशा यद्यपि डाँवाडोल है और अनेक उद्योगी पत्रकार जेलोंमें सड़ रहे हैं; परन्तु पत्रकार-सम्मेलनका विषय इतना आवश्यक है कि, इसमें एक दिनका भी विलम्ब हानि-कर सिद्ध होगा। जो जेलोंमें बन्द हैं, वे बाहर आते ही क्या फिर नहीं बन्द हो सकते या किये जा सकते? इसलिये उनकी प्रतीक्षामें समय बिताना अप्रासङ्गिक है। धूमधड़ाकेके साथ यथासम्भव शीघ्र इस सम्मेलनको कर डालना चाहिये। इसमें विवेचनीय विषय ऐसे रखे जायँ, इसकी कार्य-प्रणाली ऐसी निश्चित की जाय, इसके सभापति ऐसे अदम्य-उद्योगी और जागरूकताकी मूर्त्ति बनाये जायँ कि, पत्रकारोंके संघटन-का सुदृढ़ दुर्ग तैयार हो जाय। पत्रकार-सम्मेलनका निजत्व प्रतापी बन जाय। ऐसे सज्जनको सभापति बनानेसे क्या लाभ, जो सभापतित्वके लिये कृपा कर चार दिनोंका समय, मुश्किलसे, निकाल सकें—बाकी साल भर कानोंमें तेल डाले पड़े रहें? सभापति वह हों, जो पत्रकारोंके संघटन और उनके अभाव-अभियोगोंके दूरीकरणके लिये दिन-रात बराबर कर

डालें, अपना होम कर सकें। ७० सालकी उम्र, सनातनधर्म-महासभाका अलग कार्य, राजनीति-क्षेत्रका अनोखा तूफान, संभालना, समाज-सुधारका विकट कर्म-भार; तोभी वह प्रातः-स्मरणीय महापुरुष, जगद्वन्द्य ब्राह्मण, अपनी धुनका इतना पक्का है कि, हिन्दू यूनिवर्सिटी जैसे विश्वविद्यालयको आसानीसे चला रहा है। हमने एक बड़े नेताके मुखसे एक बार सुना था कि, "मालवीयजी विश्वविद्यालयके पीछे इतने पागल रहते हैं कि, यदि किसीको मरना हो, तो भी कहते हैं कि, 'चलिये, विश्वविद्यालयमें ही प्राण-त्याग कीजिये।'" पत्रकार-सम्मेलनको प्रभावशालिनी संस्था बनानेके लिये क्या कोई इस कोटिका "पागल" सभापति हमें भी मिल सकेगा? यदि 'नहीं,' तो सम्मेलन करना व्यर्थ है। तब तो प्रतिवर्ष जो सम्पादक-सम्मेलनका तमाशा हो जाया करता है, उसे होने दीजिये। यह बड़ा तमाशा करके समय, श्रम और शक्तिका विनाश क्यों कर रहे हैं? स्कीमें आपका संघटन नहीं कर सकतीं, पत्र-पत्रिकाओंको टिप्पनियाँ सम्मेलनको सफल नहीं बना सकतीं। अबतकके विचार-विमर्शोंने आपका संघटन नहीं किया, तो आगे भी सम्भव नहीं है। छोटीसे छोटी स्कीम बनाइये, अखबारोंमें कम-से-कम प्रोपेगेंडा कीजिये। परवाह नहीं, आपका सम्मेलन सफल होगा, बशर्त्ते कि, आपमें दृढ़ निश्चय और अविचल प्रतिज्ञा हो।

२—रत्नाकरजीका महाप्रस्थान

एकान्त परितापकी बात है कि, व्रजभाषाके अद्वितीय या अन्तिम कवि बाबू जगन्नाथदासजी "रत्नाकर" बी० ए० आज इस धरा-धाममें नहीं रहे! २१ जूनको हरिद्वारमें इन्होंने अपनी ऐहिक लीला संवृत कर ली। इस बुढ़ौतीमें व्रजभाषाके ये ही एक लाड़ले थे, जिनसे उसे देव और पद्माकरका भी बिछोह कम अखरता था। अब आज उसकी सूनी गोदको कौन भरेगा? छायावादियोंकी आपा-धापोमें उसके मुखमण्डलको कौन उज्ज्वल बनाये रखेगा? व्रजभाषाके मिठासकी पगी वह कोमल-कान्त पदावलियाँ अब किसकी लेखनीसे झरेंगी? सुधामें सानकर शब्दोंसे अब कविता-कामिनीका कलेवर कौन [illegible] करेगा? रसकी अबाध धारामें अब फिरसे कौन एक [illegible] साहित्यिकोंको बहा ले जायगा? और, अब कौन ऐसा है, [illegible] अपनी प्रखर प्रतिभाको जबर्दस्त मुहर कवि-गोष्ठियों[illegible] लगावेगा?

'रत्नाकर'जीका जन्म भादो सुदी ५, संवत् १९[illegible] विक्रमीयको, काशीमें, हुआ था। आप अग्रवाल वैश्य थे। आपकी गणना काशीके प्रतिष्ठित रईसोंमें थी। [illegible] गतवर्ष आप ही हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सभापति [illegible] थे। आपका उर्दू पर भी अधिकार था; क्योंकि आपने [illegible] लेकर ही बी० ए० पास किया था। एम० ए० भी [illegible] उर्दूमें ही देना चाहा था, जो कई कारणोंसे [illegible] हो सका।

'रत्नाकर'जी सचमुच रत्नाकर थे। आपकी [illegible] गजबकी थी। आपके पास घण्टों बैठे रहनेपर भी किसीका [illegible] नहीं ऊबता था। आप संगीतके भी प्रेमी थे। कविता [illegible] तो इतनी सुन्दरतासे, यति और विरामपर खयाल [illegible] किया करते थे कि, सुननेवालोंको बरबस मुग्ध होना पड़[illegible] था। आपको घनाक्षरी छन्द बहुत प्रिय था। प्रायः इ[illegible] छन्दमें आप फुटकर कविताएँ, सामयिक पत्र-पत्रिकाओंमें लिखा करते थे। आपने "हिण्डोला," "समालोचनादर्श," "साहित्य-रत्नाकर," "घनाक्षरी-नियम-रत्नाकर" और "हरिश्चन्द्र" नामक कविता-ग्रन्थोंकी रचना की थी। बिहारी-सतसईपर "बिहारी-रत्नाकर" नामक आपकी लिखी एक सुन्दर टीका भी है। आपका "गंगावतरण" नामक काव्य हिन्दी-संसारमें एक अनूठी वस्तु है। हिन्दुस्तानी एकेडेमीने इसपर रत्नाकरजीको ५००) का तथा अयोध्याकी महारानी साहबाने १०००) का पुरस्कार दिया था। [illegible] रुपयोंको आपने व्रज-भाषा-काव्योन्नतिके लिये काशी-नागरी-प्रचारिणी सभाको दे दिया था। अभी हालमें ही आपने "उद्धव-शतक" नामक सुन्दर काव्य लिखकर प्रकाशित [illegible]

"रसिक-मण्डल" को दे दिया था। इनके अतिरिक्त आपने "सूरसागर"के सम्पादनका गुरुतर कार्यभार अङ्गीकार किया था; परन्तु हिन्दीका दुर्भाग्य, जो आपके द्वारा यह कार्य नहीं हो सका। इसके लिये आपने केवल शारीरिक और मानसिक श्रम ही नहीं किया था; बल्कि नक़द सात हजार रुपयोंका व्यय भी किया था। आपके पास "सूरसागर" की उन्नीस हस्त-लिखित प्रतियोंका संग्रह हो चुका था और हो चुके न, मालूम कितने दिनोंसे, निरन्तर आपके साथ खट रहे थे। वास्तवमें हिन्दी हतभाग्या है कि, उसकी गोदसे ऐसा चुना हुआ वीर पृथक् हो गया! हम रत्नाकरजीकी निधन-वार्ता सुनकर अत्यन्त मर्माहत हुए हैं।

रत्नाकरजीकी आत्माकी चिर शान्तिके लिये हम ईश्वरसे प्रार्थना करते और उनके दुःखित परिवारसे समवेदना प्रकट करते हैं।

३—गोलोकमें गोस्वामीजी

हिन्दी-भाषियोंके दुर्भाग्यसे इधर हिन्दीके कई दिग्गज लेखकोंका स्वर्गवास हो गया है। इनमें काशी-वासी प० किशोरीलाल गोस्वामी सबसे अधिक पुस्तकोंके लेखक थे। आप बड़े ही आनन्द-निमग्न और सरस साहित्यिक थे। आप शरीरसे वृद्ध थे; परन्तु मनसे युवा थे। आपकी हास्य-भरी बातें हृदयमें गुदगुदी पैदा कर देती थीं। आपके पास बैठनेपर सांसारिक दुःख-दारिद्र्यको एकबारगी भूल जाना पड़ता था। चिन्ताका तो आप नाम नहीं जानते थे। आपकी अवस्था ६६ की थी; परन्तु आपमें जो विस्फूर्ति और ओजस्विता थी, वह किसी पचीस सालके नौजवानमें भी मिलना कठिन है।

आप संस्कृत और हिन्दीके पहुँचे हुए पण्डित थे। आपकी स्मृति-शक्ति आश्चर्यजनक थी। हिन्दी और संस्कृतके दर्जनों ग्रन्थ आपको कण्ठस्थ थे। आप अबतक १८० ग्रन्थ लिख चुके थे। गत वर्ष झाँसी सम्मेलनके आप सभापति भी हुए थे। हम आपकी दिवंगत आत्माकी शान्तिके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करते और आपके सुपुत्र प० छबीलेलाल गोस्वामीसे समवेदना प्रकट करते हैं।

४—दिवंगत कविकिङ्करजी

शीतलपुर, एकमा, छपराके बाबू दामोदरसहाय सिंह 'कविकिङ्कर' एल०टी०के स्वर्गवाससे बिहारको बड़ी भारी क्षति हुई है। ८ जूनको लगभग दस बजे दिनमें, ६० वर्षकी उम्रमें, आपका देहान्त हुआ। आप हिन्दीके प्राचीन लेखक थे। आपके काव्यगुरु स्व० साहित्याचार्य प० अम्बिकादत्त व्यास थे। आप ब्रजभाषा और खड़ी बोली, गद्य और पद्य, दोनोंके सुन्दर लेखक थे। आपकी लिखी कई पुस्तकें हैं। आपके हिन्दी-मन्दिरसे भी कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। आप शिक्षक और डिपटी इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स थे; परन्तु साहित्य-सेवा करना आपका प्रधान व्यसन था। कहा जाता है कि, आप ईश्वरके जितने भक्त थे, उतने ही हिन्दी माताके भी। आपकी-सी लगन हिन्दीके बहुत कम साहित्यिकोंमें होगी। लेखकोंके लिये आपका जीवन अनुकरणीय है। बिहारी लेखकोंके तो आप अलंकार थे। "गङ्गा"पर आपकी बड़ी दया रहती थी। हम शीघ्र ही आपकी सचित्र विस्तृत जीवनी छापनेकी चेष्टा करेंगे। आपके सुपुत्र पाण्डेय जगन्नाथप्रसाद सिंह भी सुयोग्य लेखक हैं। मंगलमय अपने अनन्य भक्त 'कविकिङ्कर'जीकी आत्माको सामीप्य मुक्ति दें और उनके कुटुम्बको धैर्य धारण करनेकी क्षमता प्रदान करें।

५—तुर्कोंका स्त्री-समाज

आधुनिक विश्वके उन्नत राष्ट्रोंमें तुर्किस्तान अपना विशेष स्थान रखने लगा है और इसका सारा श्रेय वहाँके आदर्श राष्ट्रपति मुस्तफा कमालपाशाको है। शासनकी बाग-डोर हाथमें लेते ही उन्होंने वहाँकी राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक कुरीतियोंमें युगान्तर उपस्थित कर दिया। फलतः सभ्यताके इस यौवन कालमें यह स्वतन्त्र राष्ट्र विना-

दुदिन उन्नतिके पथपर, बड़ी शीघ्रतासे, कदम बढ़ाये जा रहा है।

सबसे महत्त्वपूर्ण सुधार वहाँके स्त्री-समाजमें हुआ है। सितम्बर १९२६में वहाँ विवाह-सम्बन्धी नये कानून बनाये गये थे। इस कानूनके अनुसार वहाँके लोग बिना रजिस्टरी कराये विवाह-सम्बन्ध नहीं कर सकते थे। १७ वर्षकी आयुमें स्त्री और १८ वर्षकी आयुमें पुरुषको अपना विवाह कर लेना अनिवार्य हो गया। सबसे मार्केकी बात तो यह है कि, वहाँ अब कोई अविवाहित जीवन नहीं व्यतीत कर सकता। आजके ६ वर्ष पूर्वतक स्त्रियोंमें बुर्का नहीं पहनना पाप समझा जाता था—वे घृणा एवं तिरस्कारकी दृष्टिसे देखी जाती थीं; किन्तु अब बुर्का पहनना या पर्दा करना नवीन शासन एवं समाज-सुधारके प्रतिकूल समझा जाता है। कुछ प्राचीन रूढ़िवादियोंने इस नये सुधारके विरुद्ध घोर आन्दोलन—षड्यन्त्रतक करना चाहा; किन्तु वे नवीन सभ्यताके उपासक कमालपाशाकी तेज आँखोंसे न बच सके। बाध्य होकर उन्हें देश ही छोड़ देना पड़ा।

दूसरा महत्त्वपूर्ण सुधार वहाँके शिक्षा-विभागमें हुआ है। अभी १९२८ में ही वहाँ केवल १९ प्रतिशत व्यक्ति शिक्षित पाये जाते थे; किन्तु उसी सालके अप्रेल मासमें अंगोरामें जो राष्ट्रीय महासभा हुई थी, उसके अनुसार १६ वर्षकी आयुसे ४० वर्षकी आयुतकके स्त्री-पुरुषोंके लिये शिक्षा अनिवार्य हो गयी। राष्ट्र-भाषाका स्थान 'रोमन' लिपिने लिया। आज गत तीन वर्षोंमें ही वहाँ ८० प्रतिशत शिक्षित स्त्रियाँ पायी जाती हैं!

स्त्रियोंको पूर्ण अधिकार मिल गया है। पुरुषोंकी तरह उन्हें भी सरकारी नौकरियाँ मिल रही हैं। इस समय अंगोरा और स्तम्बोलकी अदालतोंमें चार स्त्रियाँ जजका कार्य कर रही हैं! देखें, आगे क्या-क्या होता है।

६—स्वदेशी वस्तुओंको अपनाइये

पूज्य प० मदनमोहन मालवीयजीके आदेशानुसार समस्त भारतवर्षमें २९ मईको, बड़ी धूमधामसे, "स्वदेशी दिवस" मनाया गया था। सचमुच देशकी आर्थिक दशाको उन्नत करनेके लिये स्वदेशी वस्तुओंका व्यवहार करना अनिवार्य है। इसीलिये संसारकी सभी जातियाँ और देश अपने यहाँकी वस्तुओंके प्रचारके लिये घोर परिश्रम करते हैं। भारतके आर्थिक उन्नयनके लिये भी नीचे लिखे दस कर्त्तव्योंका पालन करना अत्यन्त आवश्यक है—

(१) हिन्दुस्तानमें बनी हुई वस्तुएँ खरीदिये। (२) उन्हीं विदेशी वस्तुओंको खरीदिये, जो या तो हिन्दुस्तानमें तैयार न होती हों, या जिनके बदलेमें उपयुक्त स्वदेशी वस्तु व्यवहारमें नहीं लायी जा सकती हो। (३) अपने देशके उद्योग-धन्धों और कृषिकी पैदावारको बढ़ाइये। (४) हिन्दुस्तानका बना हुआ माल विदेश भेजकर, हिन्दुस्तानी व्यापार और उद्योग-धन्धोंकी बढ़तीमें, मदद कीजिये। (५) हिन्दुस्तानके द्रव्यको हिन्दुस्तानके व्यापार और उद्योग-धन्धोंकी उन्नतिके लिये खर्च कीजिये। (६) नये उद्योग-धन्धे जारी कीजिये और पुरानोंको विज्ञानकी सहायतासे बढ़ाइये। विज्ञानका, उद्योग-धन्धे बढ़ानेमें, पूरी मदद कीजिये। (७) कच्चे मालसे तैयार माल बनानेमें हिन्दुस्तानकी ही आवश्यक वस्तुएँ व्यवहारमें लाइये। (८) हिन्दुस्तानियोंको अपने यहाँ नौकर रखिये, हिन्दुस्तानी जहाज और बन्दरगाह तथा रेलवे कम्पनियोंसे अपना माल भेजिये, हिन्दुस्तानी बैंकोंसे लेन-देन कीजिये, हिन्दुस्तानी कम्पनियोंमें जीवन बीमा कराइये, हिन्दुस्तानी इंजीनियरों और वैज्ञानिकोंको आश्रय दीजिये। (९) वस्तुएँ बनानेमें एक दूसरेसे सहयोग कीजिये और इस तरह श्रेष्ठसे श्रेष्ठ वस्तु प्रकाशमें लाइये। (१०) कारखानेमें बनी हुई वस्तुओंको पूर्णताको पहुँचाइये। (११) खादीके वस्त्रोंका व्यवहार कीजिये।

७—स्वदेशी वस्तुओंके कारखाने

कुछ दिन हुए हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक बाबू रामदास गौड़ एम० ए० ने हिन्दीके विख्यात दैनिक पत्र "आज" में स्वदेशी वस्तुओंके कारखानोंकी एक सुन्दर तालिका छपायी

थे। पाठकोंकी जानकारीके लिये उस तालिकाको हम यहाँ प्रकाशित करते हैं—

इस समय हमारे देशमें स्वदेशी वस्तुओंके व्यवहारकी प्रवृत्ति, लोगोंमें, बड़े वेगसे बढ़ रही है। पर चूँकि हम लोग बहुत दिनोंसे स्वदेशी वस्तुओंको उपेक्षा करते आ रहे हैं; इसलिये स्वदेशी वस्तु-प्रेमियोंको यह पता लगानेमें बड़ी कठिनाई होती है कि कौन-सी स्वदेशी कहाँ मिलती है! इसलिये अपने स्वदेशी-प्रेमी भाइयोंके सुभीतेके लिये हम यहाँ एक सूची उन कारखानोंकी देते हैं जो देशी वस्तुएँ तैयार करते हैं और जिन्हें हम बढ़वा दें, तो हमारा बहुत काम चल सकता है। हमारे शहर और जिलेके बोर्डोंका ध्यान कमखर्ची और स्वदेशीकी ओर जाय, तो वे इस देशमें बड़ा काम कर सकते हैं। कोई यंत्र नहीं, जो भारतमें न बन सकता हो, कोई कल-पुरजा नहीं, जो यहाँ न ढल सकता हो। बोर्डोंमें लाखों रुपये विदेशी वस्तुओंपर खर्च होते हैं; उनकी जगह स्वदेशीपर ही खर्च हो, तो कम खर्च तो निश्चय ही समझिये। जो स्वदेशी कारखाने चल रहे हैं, उन्हें इन बोर्डोंकी ओरसे बढ़ावा मिलने लगे, तो स्वदेशी वस्तुएँ बड़ी जल्दी तैयार हों और खूब फैलें। कौन-सी स्वदेशी वस्तु कहाँ, किसके यहाँ, मिलती है, इसका संक्षिप्त परिचय यहाँ देनेका प्रयत्न किया गया है।

चूड़ियाँ या बांगड़ियाँ—

(१) क्षत्रिय रघुनाथ वेलजी दीव (काठियावाड़)। (२) भागवत ऐण्ड कम्पनी, पांडुरङ्ग निवास, कोल्हापुर नं० ३। (३) सेठ जीवराज त्रिभुवन, दूकान नं० ३९, कैथेड्रल स्ट्रीट, भूलेश्वर, बम्बई। (४) सिद्धाप्पा कुमाराप्पा, अक्तुस, डाकखाना घोड़वेसी, वाया गोकाक, ज़िला वेलगाम। (५) कांदीवली बेंगल्स मैन्युफेक्चरिङ्ग कम्पनी, कांदीवली, बी० बी० ऐण्ड सी० आई० रेलवे। (६) जुपल ग्लास वर्क्स, सिविल स्टेशन, जबलपुर। (७) एम० जी० वर्क्स, चिकानो (जिला थाना)। (८) चूड़ियोंके कारखाने, फीरोजाबाद (यू० पी०)।

बटन, हुक आदि छोटी चीजें—

(१) वर्धमान ऐण्ड संस, पायधुनी, बम्बई। (२) डी० एन० चन्द्र ऐण्ड कंपनी, नानापेठ, बम्बई। (३) भारत लक्ष्मी कम्पनी लिमिटेड, १३ काजी टोला, ढाका। (४) ईस्टर्न स्माल इण्डस्ट्रीज, लक्ष्मी बाजार, ढाका। (५) हार्न मैन्युफैक्चरिङ्ग कम्पनी, इस्माइल बिल्डिङ्ग, छतार चाल, बम्बई। (६) डेक्कन बटन फैक्टरी हैदराबाद, डेक्कन। (७) चितलीया ब्रादर्स, बम्बई नं० २। (८) बङ्गाल कमर्शियल एजेंसी, इस्माइल बिल्डिङ्ग, जामा मसजिद गली, छतार चाल, बम्बई। (९) दुर्लभदास मूलजी जवेरी, भूलेश्वर बंबाखाना सामें, २१ कोकल वाड़ी बम्बई। (१०) लीडर्स फोटो कम्पनी, विले पारले, बम्बई। (११) आर० आर० वाड्ये ऐण्ड ब्रादर्स, बम्बई २।

स्याही—

(१) काले इङ्क मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी, कुर्ला, बम्बई। (२) जी० एस० रानडे, इङ्क मैन्युफैक्चरर्स, बम्बई। (३) लोकमान्य एजेंसी, इङ्क ऐण्ड स्टेशनरी मैन्युफैक्चरर्स, बम्बई। (४) एच० डी० नरीमान ब्रादर्स, लोहार चाल, धोबी तालाब, बम्बई। (५) डी० ऐण्ड बी० ब्रादर्स, ६६७ ए, दादर, बम्बई। (६) गिरिधरलाल बी० संघवी, संघवी बिल्डिङ्ग, सैंडहर्स्ट रोड, बम्बई। (७) वलावलकर ब्रादर्स, मेजेस्टिक सिनेमाके पास, बम्बई। (८) भारत इंक्स, ५८ टेमेरिंड लेन, फोर्ट, बम्बई। (९) स्टार टेकनोलोजिकल वर्क्स, मातर, जिला खेड़ा। (१०) बङ्गाल सिलेकेमी लिमिटेड, १०४ मानीकतल्ला मेन रोड, कलकत्ता। (११) भागवत ऐण्ड कम्पनी, कोल्हापुर।

निब, लोहेके कलम—

(१) निब्ज मैनुफैक्चरिंग कम्पनी लिमिटेड, मालवण। (२) डी० आर० पुग्गी ऐण्ड संस, गुजरात (पंजाब)। (३) कुलकर्णी ब्रादर्स, पन्नालाल टेरेसेज, बम्बई ७। (४) नम्बर ब्रादर्स, लश्कर (ग्वालियर)। (५) एफ० एन० गुप्ता ऐण्ड कम्पनी, १२ बेलुरघाट रोड, कलकत्ता। (६) बा० हरिदास मुकर्जी, ३ काशीचेट्टी स्ट्रीट, जी० टी०, मदरास। (७) माडर्न इण्डस्ट्रीज,

दयालबाग, आगरा । (८) ईश्वर सिंह बी० एस-सी०, राबर्ट् स रोड, लाहोर । (९) नित्र मैन्यूफैक्चरिंग कम्पनी, टोपीवाला मैन्शन्स, संडहर्स्ट रोड, बम्बई ।

दाँत और हजामतके ब्रश आदि—

(१) आर्गन ब्रश कम्पनी, दादर, बम्बई । (२) ओरिजिनल ब्रश वर्क्स, ६६ कावसजी पटेल स्ट्रीट, फोर्ट, बम्बई । (३) शाह ब्रश फैक्टरी, अहमदाबाद । (४) क्लैमक्स ब्रश वर्क्स, ९ मराठा डिच लेन, कलकत्ता । (५) ब्रश-नेयर्स लिमिटेड, १२३-१ हालसी रोड, कानपुर । (६) आगरा ब्रश कम्पनी, जनोकी मंडी, बेलनगंज, आगरा । (७) गंगा ऐण्ड कम्पनी, क्लाक टावर, मेरठ सिटी । (८) इण्डियन ब्रश फैक्टरी, बाँसमंडी, कानपुर । (९) सत्यनारायण ऐण्ड कम्पनी, आगरा ।

कागज, स्याहीसोख—

[१] अपर इण्डिया कौपर पेपर मिल्स लिमिटेड, लखनऊ । [२] मीनाक्षी पेपर मिल्स कम्पनी, लिमिटेड, पुनालुर (त्रावनकोर) । [३] डेक्कन पेपर मिल्स लिमिटेड, मुँधवा [पूना] । [४] कर्णाटक पेपर मिल्स लिमिटेड, राजमहेन्द्री । [५] इण्डिया पेपर पल्प्स कम्पनी लिमिटेड, कलकत्ता । [६] गिरगाम पेपर मिल्स, ७७-७१ अपोलो स्ट्रीट, बम्बई । [७] महमदभाई कमालुद्दीन पेपर मिल्स, सूरत गेट, सूरत ।

खड़ियाकी पेंसिल (चाक)—

[१] इण्डियन क्रेयन वर्क्स, नगर । [२] नेशनल क्रेयन वर्क्स, कुम्भकोणम् । [३] गुरुनाथन चाक वर्क्स, कुम्भकोणम् । [४] भावन चाक पेंसिल फैक्टरी, गुजरानवाला (पंजाब) । [५] इण्डियन क्रेयन वर्क्स, अहमदनगर । [६] दि इण्डियन एजेंसी, धरमपुर और लाहोर । [७] बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी, बनारस ।

छुरी, चाकू, सरौता, कैंची, अस्तुरा आदि—

[१] भास रेजर वर्क्स, मीथगाँवणे, वाया जैतपुर, जिला रत्नागिरी । [२] स्वदेशी वस्तु कार्यालय, हाथरस । [३] इण्डियन केटलरी वर्क्स गुजरानवाला (पंजाब) । [४] डायमण्ड सोजर्स कम्पनी, मेरठ । [५] कृष्ण कटलरी वर्क्स, गुजरानवाला (पंजाब) । [६] राजा इण्डस्ट्रियल वर्क्स, वजीराबाद । (७) के० एन० अजाणी, बम्बई न० ३ ।

पेंसिल, होल्डर आदि—

[१] भारत ऐण्ड सन्स, पूना । [२] दि कामरेड ऐण्ड सन्स, दिल्ली । [३] इण्डियन इण्डस्ट्रीज, धरमपुरा, लाहोर । [४] मद्रास पेंसिल फैक्टरी, पोस्ट बाक्स ८६, मद्रास । [५] नेशनल क्रेयन वर्क्स, अहमदाबाद [६] इण्डिया क्रेयन कम्पनी, गवर्नर पेठ, बेजवाडा । [७] मारुती पेंसिल फैक्टरी, तुम्बकुर । [८] एफ० एन० गुप्ता ऐण्ड कम्पनी, कलकत्ता । [९] भगत एण्ड सन्स, कलकत्ता ।

मोमबत्तियाँ—

[१] सर देसाई ब्रादर्स, बिलिमोरा । [२] रोशन कैण्डल फैक्टरी, बायकला, बम्बई ८ । [३] दाऊदभाई अलीबोता, दि लैटहौस कैण्डल फैक्टरी, बम्बई । [४] बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी, बनारस । [५] केसरी कैण्डल वर्क्स, सोनाई, सालेम । [६] नारायणदास ऐण्ड कम्पनी, मद्रास । [७] सोप कैण्डल मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी, मझगाम, बम्बई १० ।

ताले—

[१] बी० एस० याज्ञिक ऐण्ड कम्पनी, अलीगढ़ । [२] सिंघल ऐण्ड कम्पनी, अलीगढ़ । [३] के० एन० अजाणी, दाणा बन्दर, बम्बई, २ । [४] माडर्न इण्डस्ट्रीज, दयालबाग, आगरा । [५] ताम्बट ब्रादर्स, लश्कर, ग्वालियर । [६] डी० आर० पुरी ऐण्ड सन्स, गुजरात (पंजाब) । [७] कुलकर्णी ब्रादर्स, पन्नालाल टेरेसेज, बम्बई ७ ।

कंघी—

[१] जेसोर कोंजर्स ऐण्ड सेलुफ, हुड फैक्टरी, जेसोर । [२] बंगाल स्टोर्स, छुतार चाल, बम्बई । [३] डी० एन० भट्टाचार्य ऐण्ड सन्स, ३३ केनिंग स्ट्रीट, बम्बई । [४] गुलाम ऐण्ड ब्रादर्स, जामा मस्जिदके पास, अब्दुर्रहमान स्ट्रीट, बम्बई ।

सावुन—

[१] गोदरेज सोप कम्पनी, बम्बई। [२] सौराष्ट्र उद्य सोप फैक्टरी, गायवाड़ी, बम्बई। [३] ताता बाइक मिल्स, लिमिटेड, बाम्बे हौस, फोर्ट, बम्बई [४] विक्टोरिया अलकली वर्क्स, न्यू भाण्डारी लेन, मांडवी, बम्बई। [५] दादमोवाला ऐण्ड सन्स, जोरावरनगर (काठियावाड़)।

चित्रके लिये स्वदेशी रंग—

नारायणदास ऐण्ड ब्रादर्स, किशनपाल बाजार, स्कूल आफ आर्ट, जयपुर सिटी।

काँचका सामान—

[१] ओगले ग्लास वर्क्स, ओगलेवाड़ी, औंध स्टेट, जिला सितारा। [२] दि नेशनल ग्लास वर्क्स, ट्राम टरमिनस, मजगाम, बम्बई। [३] पैसाफंड ग्लास वर्क्स, तलेगाम दाभड़े [पूना]।

केमेरा (फोटोका)—

[१] वेलीन्स केमेरा वर्क्स, वेलगाम। [२] शेवड़े केमेरा वर्क्स, वेलगाम।

खड़िया चीनीके बरतन आदि—

[१] ग्वालियर पाटरी वर्क्स, ग्वालियर। परशुराम पाटरी वर्क्स, मोरवी, [२] काठियावाड़। [३] पैसा फण्ड ग्लास वर्क्स, तलेगाम, जिला पूना।

दन्त-मञ्जन—

[१] सर देसाई ब्रादर्स, विलिमोरा। [२] दि बंगाल केमिकल ऐण्ड फारमास्यूटिकल वर्क्स, कलकत्ता। [३] भागवत ऐण्ड कम्पनी, कोल्हापुर।

बाम मरहम लेप—

[१] कर्मवीर बाम। [२] पाटणवाला बाम। [३] अमृताञ्जन बाम। [४] नोरमा पेन बाम। मिलनेका पता—बाम्बे को-आपरेटिव स्वदेशी स्टोर्स, बम्बई।

अगरबत्ती—

[१] कस्तूरी अगरबत्ती, मुंबई स्वदेशी को-आपरेटिव स्टोर्स, बम्बई। [२] सर देसाई ब्रादर्स, विलिमोरा। (३) भागवत ऐण्ड कम्पनी, कोल्हापुर।

डा॥।—

[१] केलिको मिल्स, अहमदाबाद। [२] सेण्ट्रल इण्डिया स्पिनिंग वीविंग ऐण्ड मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी, लिमिटेड, नागपुर।

बिजलीकी बत्तियाँ और बैटरियाँ—

[१] सुशीलकुमार कुण्डु ब्रादर्स, ४५ घोषाल बागान लेन सलकिया, हवड़ा।

स्लेट—

कान्तिलाल सेठ ऐण्ड कम्पनी, भरूच।

८—द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रन्थ

(श्रीमानों तथा साहित्यिकोंसे प्रार्थना)

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीने आधुनिक हिन्दी-सहित्यके लिये जो कुछ किया है, वह लोक-विश्रुत है। वे एक व्यक्ति नहीं, एक संस्था हैं। उनके द्वारा आधुनिक हिन्दीकी गद्य-पद्य-शैलीका यथोचित निर्माण एवं निर्धारण हुआ है। हिन्दीके इस शैली-निर्माणपर द्विवेदीजी महाराजकी अमिट छाप है।

आगामी वैशाख शुक्ल ४ को वे सत्तरवें वर्षमें पदार्पण करेंगे। हिन्दी-संसारका यह कर्तव्य है कि, उस अवसरपर ऐसे सम्माननीय आचार्यका समुचित समादर करे। अतएव काशी-नागरी-प्रचारिणी सभाने निश्चय किया है कि, उस समय एक विराट् उत्सव एवं समारोह करके उन्हें एक अभिनन्दन-ग्रन्थ अर्पित किया जाय। यह ग्रन्थ कला एवं साहित्य का अद्वितीय निदर्शन होगा। इसमें भारतके श्रेष्ठ चित्रकारों के उत्तमोत्तम चित्र रहेंगे एवं इसके साहित्यक अंशमें हिन्दी के सभी प्रमुख तथा यशस्वी साहित्यिकोंकी रचनाएँ तो रहेंगी ही—देश तथा विदेशकी अन्यान्य भाषाओंके प्रमुख विद्वानोंके लेखादि प्राप्त करनेका प्रबन्ध भी किया जा रहा है कि, यह सुयोग भारत तथा संसारकी उन्नत भाषाओंका

हिन्दीके साथ साहित्यिक सम्बन्ध स्थापनाका निमित्त बन जाय। यह सर्वाङ्ग-सुन्दर ग्रन्थ लगभग ६०० पृष्ठोंका होगा। इसके चित्रोंकी संख्या पचासके ऊपर होगी, जिनमें अधिकांश रंगीन होंगे।

सभाकी हार्दिक कामना है कि, उसकी इस योजनामें अभूत-पूर्व सफलता हो; किन्तु यह सफलता देशके श्रीमानोंके कृपा-दृष्टिपर ही अवलम्बित है; क्योंकि इसके लिये ९००) के व्ययका अनुमान किया गया है; पर सभामें यह व्यय-भार उठानेकी सामर्थ्य नहीं है, अतः गुणज्ञ तथा विद्या-प्रेमी श्रीमानोंसे प्रार्थना यह है कि, इस कार्यके लिये यथोचित सहायता प्रदान करके इस योजनाको सु-सम्पन्न करानेके यशोभागी हों। सभा आशा करती है कि, देशके उदारदाता इस आयोजनाको सिद्धिमें अग्रसर होकर सभाको चिर अभारी करेंगे।

अभिनन्दन-ग्रन्थको सर्वाङ्ग-पूर्ण बनानेके लिये साहित्यिकोंका पूर्ण सहयोग भी वाञ्छित है। हम उनसे साग्रह अनुरोध करते हैं कि वे यह सहयोग प्रदान करके सभाको कृतज्ञ करें। हमें पूर्ण आशा है कि, आचार्यके प्रति श्रद्धा-भक्ति-भावनासे प्रेरित होकर हिन्दीके सभी कोविद तथा साहित्यिक अपनी उत्कृष्ट रचना हमारे पास भेजनेकी कृपा करेंगे। इस सम्बन्धमें उनसे निवेदन है कि—

१—उनकी रचना उनके इच्छानुसार गद्य वा पद्यके किसी भी अंगमें हो।

२—वह उनकी रुचिके अनुकूल किसी भी विषयकी हो। सभा चाहती है कि, ग्रन्थ विभिन्न विषयोंसे पूर्ण करके आचार्य द्विवेदीको समर्पित किया जाय। हाँ, इन विषयोंका सम्बन्ध वर्तमान धार्मिक, सामाजिक अथवा राजनीतिक प्रश्नसे न हो।

३—रचना यथासम्भव बड़ी न हो।

अभिनन्दन-ग्रन्थको सभा जिस रंग-ढंगसे निकालना चाहती है, उसके लिये यह आवश्यक है कि, वह अविलम्ब प्रेसमें दे दिया जाय। इस बातपर ध्यान देते हुए लेखक-समुदाय शीघ्र ही अपनी कृति हमारे पास भेजनेका अनुग्रह करे।

—कृष्णदास, प्रधान मन्त्री,
नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी

६—अस्सी लाख विधवाएँ!

भारतवर्षमें चालीस वर्षसे कम उम्रकी विधवाओंकी संख्या, इस प्रकार है— पाँच वर्षसे कम उम्रकी विधवाएं १९१३९ हैं, पांचसे १० वर्षतककी १०२२९३ हैं, १० से १५ वर्षतककी २७९१२४ हैं, १९ से २० वर्षतककी ५१७८९८ हैं, २० से २४ वर्षतककी ९६६११७ हैं, २५ से ३० वर्षतककी विधवाएँ १९११०४७ हैं. ३० से ३१ वर्षतककी विधवाओंकी संख्या २३४१२२ हैं। इस प्रकार ४० वर्षसे कम उम्रकी ७९८४८०९ विधवाएं भारत-भूमिपर जीवित होते हुए भी मृतवत् जीवन व्यतीत कर रही हैं। उनमें चार लाखके करीब ऐसी हैं, जिन्हें यह होश भी अभी नहीं हुआ कि, विधवा या सधवा किसे कहते हैं। करीब सवा पाँच लाख ऐसी हैं, जिनकी उम्र अब विवाह करने योग्य हुई हैं। लगभग साढ़े सत्तर लाख विधवाएँ हैं, जो कुललक्ष्मियाँ बनकर गृहस्थोंको छत्रमय बनातीं; परन्तु आज निरवलम्ब होकर कष्ट पा रही हैं। भारतवर्षकी कुल आबादी ३१२१९-६८७६ बतायी गयी है। उसमें स्त्रियोंकी संख्या केवल १७१०३४९५२ है, जो पुरुषोंकी अपेक्षा प्रायः एक करोड़ कम है। स्त्रियोंमें भी अस्सी लाखसे कुछ कम विधवाएं हैं।

लेख-मालिका

चित्र-सूची

चीनी यात्री फाहियान

मिथिला प्रेस, सुलतानगंज

गङ्गा

प्रवाह २, तरंग ८, पूर्ण तरंग २० — श्रावण, संवत १९८९; अगस्त, सन् १९३२

गीत

पं० मोहनलाल महतो

अरे ओ यौवनका मतवाला !

एक घूँट पीकर ही तूने पटक दिया क्यों प्याला !
अपनेको रतनारे नयनोंके रंगमें रँग डाला,
एक रंग होकर जीवनका सारा हास निकाला।
हृदय, गूँथ ले विफल-मनोरथके सुमनोंकी माला,
मन-मयूर, इस मरुपर क्यों छाया है जलधर-काला।
जाल बिछा है कुंज-कुंजमें अँधियाला-उजियाला,
फँसा वहीं मेरा चंचल-खग नेह-नीड़का पाला॥

अरे ओ यौवनका मतवाला !

भारत-महत्ता

द्रुतविलम्बित

वृषभ-वाहन है शशि-मौलि है ।
वर-विभूति-विराजित-गात है ।
शिर-विभूषण है सुर-आपगा ।
भरत-भूतल हो भव-मूर्ति है ॥ १ ॥

प० अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"

सतत है अवनीतल-रंजिनी ।
कमल-लोचनकी कमनीयता ।
भुवन-मोहन है तन-श्यामता ।
भरत-भूमि रमापति-मूर्ति है ॥ २ ॥

मलिन-लोचनकी मल मूलता ।
विविध-मायिकता मनुजातकी ।
हरण है करती मद-अन्धता ।
भरत-भूतल श्याम-स्वरूपता ॥ ३ ॥

वसंततिलका

है हंस-वाहन चतुर्मुख चारुमूर्ति ।
है वेद-वैभव-विकासक बुद्धि-दाता ।
सत्कर्म-धाम कमलासनताधिकारी ।
नाना-विधान-रत भारत है विधाता ॥४॥

भारत-वसुन्धरा

रमा-समा है रमणीयता मिले ।
उमा-समा है वन-सिंह-वाहना ।
गिरा-समा है गरिमा-विभूषिता ।
विचित्र है भारतकी वसुन्धरा ॥ ५ ॥

गंगाकी लहर

बाबू रौशनलाल 'अम्बालवी'

यजनेश कुछ कठिन नाम होनेके कारण उसके मित्र उसे यजन ही कहा करते थे। वह अजीब ढङ्गका आदमी था। कपड़ा अगर बनवाता, तो हजार जाँच-पड़ताल करनेके बाद; और, अगर पहनता, तो बड़े नखरेके साथ; उसपर भी दूसरे ही दिन बदल डालता; खाना खाता, तो बड़ी देख-भालके बाद; और, वह भी अजीब ढङ्गसे। अपने रिश्तेदारोंमेंसे सिर्फ खास-खास लोगोंसे ही बातचीत करता था। उसके सभी काम निराले होते थे।

एक दिन एक दोस्तने कहा—"यजन तुम कैसे जीव हो; तुम्हारा कुछ उसूल (ध्येय) भी है!"

"अपना उसूल मैं खुद जानता हूँ। किसीको मेरे उसूलसे गरज—वास्ता! जो कुछ है, मेरे लिये है।"

"यजन, तुम्हें पीछे बहुत तकलीफ उठानी पड़ेगी। अभी तुम्हें दुनियाके बहुतसे फर्ज अदा करने हैं।"

"मैं दुनिया नहीं जानता। अगर जानता हूँ, तो मैं वही करता हूँ, जो दिल कहता है।"

"भाई यजन, दिल धोका दे दिया करता है! जाँच भी कोई चीज है।"

यजन गहरे समुद्रकी तहमें डूब गया। उसपर ऐसी खामोशी छा गयी, जैसी बियाबान, जंगलमें गर्मीके दिनोंमें, दो पहरको छा जाती है।

लोगोंकी नजरमें यजन एक पहेली था।

× × × ×

फागुनका पूनो था। आकाशमें चाँद जड़ाऊ चादर ओढ़े हँस रहा था। गुलाबी जाड़ा था। पेड़ोंमें नयी-नयी पत्तियाँ काँप रही थीं। फूलोंकी भीनी-भीनी महक हवामें बह रही थी। बागमें यजन टहल रहा था। वह कभी किसीका इन्तजार नहीं करता था; मगर आज उसे इन्तजार करना पड़ा था। वह टहलता-टहलता संगमरमरकी एक मूर्तिके पास पहुँचा, जो इटलीकी नफीस कारीगरीका नमूना था। लोग उसे कामदेवकी मूर्ति बताते थे। मूर्तिके हाथमें एक तीर था। सफेद संगमरमरपर चाँदकी रोशनी पड़ रही थी, जिसका हल्का नीला रंग चमक रहा था। मूर्तिको देखकर यजन दंग हो गया। वह बड़े गौरसे घूम-घूम कर उसे देखने लगा, मानों वह उसपर मुग्ध हो गया हो।

मूर्तिके सामने खड़े होकर उसने पूछा—"क्यों जी, तुम भी परीजाद हो हो? जिस परीने मेरे दिलपर निगाहोंका वार किया है, क्या तुम बता सकते हो कि, वह कौन है?"

इनसानी हाथोंका बनाया हुआ वह संगमरमरका पुतला भला यजनको बातका क्या जवाब देता? लेकिन किसी आमके पेड़से न जाने किस चिड़िया या जानवरकी कोई बोली यजनके कानोंमें आयी। वह चौंक पड़ा। फिर यह सोचकर कि, फूल और फलोंसे लदे हुए पेड़ोंपर चिड़ियोंकी क्या कमी हो सकती है, यजन चुप हो रहा।

किन्हीं नाजुक पाँवोंकी आवाज उसके कानोंमें पड़ी। उसके कान अवाज़पर लग गये। उसने पाज़ेबसे निकली हुई मीठी-मीठी घूंघुरोंकी आवाज़ सुनी। वह रुक न सका; आगे बढ़ा। चाँदकी चाँदनीमें कोई बिल्कुल सफ़ेद साड़ी पहने, कामदेवकी मूर्तिकी तरफ़, बड़ी शानसे आ रही थी। उसकी सफ़ेद साड़ीपर सफ़ेद सितारोंका काम था, जो कभी कभी चमककर आँखोंमें चकाचौंध पैदा कर देता था। उसके पैरोंमें स्याह मखमलकी कामदार चपल थी; इसलिये छड़क सड़कपर चलनेकी आवाज़ न होती थी।

यजनने आगे बढ़कर कहा—"शिवजीकी जटासे आज

गंगा ज़मीनपर आयी है। महाराज भी रोक न सके लहरोंको।"

"चाँदके निकलनेपर क्या चाँदनी रोकी जा सकती है? जब चाँद निकल आया, तो चाँदनीने भी फैलनेको हाथ-पाँव मारे। क्या कर रहे हो यजन, इस एकान्तमें?"

"गंगा, तुम्हें आनेमें आज देर हो गयी, तो मैं इधर आ गया। देखो तो इस संगमरमरका रूप!"

"क्या देखूँ इसका रूप। संगतराशने एक जगह कुछ सीधा-टेढ़ा तराश दिया है।"

"यह कामदेवकी मूर्ति है। आज रति इसके पास आयी है! गंगा, वह देखो संगमरमरका फव्वारा! इसके हौजमें भरा हुआ नीला पानी और उसमें चमकता हुआ चाँद—छिटके हुए सितारे!"

"ठीक है। इतनेसे हौजमें कुल आसमानका नक़्शा अगर आ सकता है, तो मनुष्यमें भी कुल ब्रह्माण्ड समा सकता है। क्या आदमी ब्रह्माण्डका नक़्शा नहीं! यजन, इस ब्रह्माण्डका प्रेम आत्मा है; इसीमें शक्ति है। सिर्फ़ फेर हमारी समझका है।"

"जिस तरह इस पानीके हौजमें चाँद और तारे नहीं हैं—इनकी परछाईं ही है, उसी तरह मुमकिन है, दुनियामें लोग परछाईंको ही असल ख़याल कर रहे हों। मैं कहता हूँ कि अगर कुछ मौजूद है, तो वह प्रेमकी शक्ति है, जिसकी उपासना करना हमारा फ़र्ज़ है। इसकी ताक़तसे इनसानकी ज़िन्दगी क़ायम हो सकती है और उसकी ताक़तसे ही दुनिया एक दूसरेसे बँधी गयी है। तुम जानती हो, वह ताक़त कहाँ है, गंगा?"

"नहीं।"

"भोली-भाली गंगा! वह ताक़त, वह कीमिया, वह जादू तुम्हारी—तुम जैसी औरतोंकी—आँखोंमें है।"

"जिसमें हर वक़्त एक तसवीर क़ायम रहती है—सिर्फ़ एक!"

"तुम मेरी परी हो!"

"तुम्हीं जानो।"

"मुझे परीकी तलाश थी। मैंने पा लिया!"

"जानते हो, परी किसे कहते हैं?"

"हाँ, जानता हूँ।"

"यजन, परी पानीकी लहर है। वह पानीसे पैदा होती और किनारेके चट्टानोंसे टकराकर फिर पानीमें मिल जाती है!"

बाग़में ठण्डी-ठण्डी हवा बह रही थी। खिले हुए फूलोंकी ख़ुशबू चारों ओर फैल रही थी। कामदेवने अपना तीर छोड़ दिया था। हर तरफ़ वसन्त ही वसन्त था। यजन अपनी ख़ुदी खो बैठा।

गंगा उसके क़दमोंमें मौजें मार रही थी!

× × × × × ×

दूसरे ही दिन, दिल्लीमें यह बात फैल गयी कि, यजन ग़ायब हो गया है; उसके साथ गंगा भी लापता है। किसीको यक़ीन आया; किसीको न आया। किसीने परवाह की, किसीने न की। इतने बड़े शहरमें ऐसी बातें हो ही आया करती हैं। दो-चार दिनोंतक अख़बारोंमें चर्चा होनेके बाद मामला ठण्डा पड़ गया। यजन और गंगाका पता किसीको न लगा।

हौसलेकी आँधीमें यजन और गंगा कानपुर आकर ठहर गये। यजनको किसी क्लॉथ मिलमें नौकरी मिल गयी। उसकी अलहड़पनी जाती रही। वह उदास दीखने लगा।

एक दिन गंगाने उससे कहा—"मेरे सरताज, तुम उदास न रहा करो।"

"वक़्त सदा एकसा कब रहता है, गंगा?"

गंगा चुप हो रही। वह यजनको नाराज़ करना नहीं चाहती थी। वह बराबर कोशिश किया करती थी कि, यजन ख़ुश रहे, हँसे-बोले, प्यार करे। जिसके लिये वह सारी दुनियाको छोड़ चुकी थी, अगर वही नाराज़ हो गया, तो फिर ठिकाना कहाँ?

(२)

बरसातका मौसम था। कमरेके अन्दर दिल घबराया जाता था। शाम हो चली थी। हवा बन्द थी। पूरबमें काली घटाएँ उठ रही थीं। ताज़ी हवा खानेको गंगा ऊपर छतपर चढ़ आयी। क्या करती ? दिनभर अकेले रहकर वक्त भी तो न कटता था ! कमरेकी छतपर ताजी हवा मिली। गंगा मुँह उठाये पूरबकी तरफ आती हुई घटाओंको देखने लगी।

पासकी छतपर बाँसुरी बज रही थी। बजानेवाली एक औरत थी। गंगाने मन-ही-मन कहा—'क्या औरतें भी बाँसुरी बजा सकती हैं ? उसको ताज्जुब मालूम हुआ। वह सामनेके मकानको गौरसे देखने लगी। बाँसुरी बजाने वालीकी देहपर काँसी रंगकी बेशक़ीमत बनारसी साड़ी थी। उसके हाथ और होंठ सुर्ख़ नज़र आते थे। बालोंमें बेलेकी कलियाँ गुथी हुई थीं। माथेपर एक सुर्ख़ बिन्दी थी। उम्र लगभग अठारह सालकी मालूम होती थी। वह खु़श दीखती थी।

जब कभी बाँसुरी छोड़कर वह सामने बैठे हुए नौजवानसे बातें करने लगती, तो ऐसा मालूम होता, मानों फूल झड़ रहे हों। नौजवानकी पीठ गंगाकी ओर थी; इसलिये वह तो उसे न देख सकी; लेकिन उसने सोचा, इस खूबसूरत औरतके मुहब्बतमें वह भी खु़श होगा।

हल्की-हल्की बूँदें पड़ने लगीं। वह दोनों बरसातीसे निकलकर खुली छतपर निकल आये। गंगाकी नज़र नौजवानपर पड़ी। उसके मुँहसे एक हल्की-सी चीख़ निकल गयी। वह यजन था ! वह मन-ही-मन सोचने लगी, "क्या गंगा ज़मीनपर उतरकर पवित्र नहीं रही ? परीने पर डाल दिये या कामदेवका जादू उतर गया ?"

वह घबरा गयी। उसे चक्कर-सा आ गया। उसने दीवारका सहारा ले लिया। सोचने लगी, 'कहीं आँखें धोखा न दे रही हों—घबराहटमें रस्सीका साँप न बन गया हो।'

उसे धोखा नहीं हुआ था। वह यजन ही था—वही निराली तबीयतवाला, अजीब ख़यालातवाला। हाँ, वह खु़श ज़रूर था, मस्त ज़रूर था, लेकिन गंगाके लिये नहीं, उस 'बाँसुरीवाली' के लिये। गंगाने पर उतार दिये थे; अब वह परी नहीं थी।

गंगा मकानकी छतसे उतरकर कमरेमें आयी। बिजलीकी बत्ती खोल लेनेपर भी उसे अँधेरा ही मालूम होता था। उसका दिल घबरा रहा था। उसे ताज़ी हवाकी ज़रूरत हुई। उसने दरवाजा खोला—दरवाजेके बाहर यजन खड़ा था ! गंगाका दिल जैसे बैठा जा रहा हो, वह बोली—"तुम... तुम...यजन ?......वह कौन है—बाँसुरीवाली ?"

"वह परी नहीं थी।"

"फिर, क्या था ?"

"परीकी परछाईं, जो ज़मीनपर पड़ी और चलते हुए बादलोंकी तरह निकल गयी।"

गंगाके पाँवोंके नीचेसे ज़मीन निकल रही थी। तिमंज़िलेकी छत उलट रही थी। यजनकी तसवीर धुँधली हो रही थी। गंगाको चक्कर आने लगा। न मालूम उसका हाथ यजनकी छातीपर कैसे लगा; तो भी, उसे सहारा न मिल सका, वह गिर पड़ी—बेहोश हो गयी।

पानी झमाझम बरस रहा था। बिजलीकी चमक और बादलोंकी गरजने गंगाको जगा दिया। उसकी आँखें खुलीं। मूसलधार पानी, बिजलीकी चमक और सूना मकान नज़र आया। यजन नहीं था !

गंगाने अपनी बन्द मुट्ठी खोली। उसमें यजनकी नेकटाईकी पिन थी, जिसमें हीरे जड़े थे। उसने पिनको ग़ौरसे देखा और साड़ीकी आँचलमें बाँध लिया। वह उठकर कमरेमें गयी—दीवारें काट खानेको दौड़ती थीं। जिस जगह उसका देवता रहता था, वह उजाड़ पड़ी थी !

गंगा वहाँ ठहर न सकी, नीचे उतर गयी। वह किसी चीजकी तलाशमें थी और वह चीज क्या थी, यह नहीं बतला सकती थी।

(३)

बड़ी-बड़ी बूँदें बरस रही थीं। काले-काले बादल आसमानमें दौड़ रहे थे। इसी समय गंगा चली जा रही थी। उसके पाँव उसे कानपुरके बाजारोंकी ओर लिये जाते थे।

वह बहुत दूर निकल गयी। उसके सारे कपड़े तर हो गये। रास्तेमें, एक मकानके नीचे, उसने दो घोड़ोंकी बन्द गाड़ी खड़ी देखी, जिसकी लालटेनें सड़कपर धीमी-धीमी रोशनी डाल रही थीं। इसी रोशनीको देखकर वह आगे बढ़ी। सामने एक आलीशान मकान था। जीनेपरसे गंगाको एक औरत नीचे उतरती हुई नज़र आयी। लपककर वह उसके पास पहुँची और भर्रायी हुई आवाज़में बोली—"आप ऊपरसे उतर रही हैं। क्या आप परी हैं?"

"परी! पगली तो नहीं हो गयी?"

"मैंने सुना है कि, परियाँ आसमानसे ज़मीनपर उतरा करती हैं। क्या आपने कभी परी देखी है?"

"तो क्या इस मूसलधार पानीमें, आधी रातके वक़्त, तुम परियाँ तलाश कर रही हो?"

"हाँ।"

"किस लिये—तुम्हें किसकी तलाश है?"

"मेरे पास भी एक परी रहती थी, जिसपर बालम रीझ गये थे। वह परी अब चली गयी है और उसके साथ ही प्रीतम भी चले गये हैं। मैं उस परीको ढूँढ़ रही हूँ, जिससे वे लौट आयें।"

गंगाकी बातसे वह ठिठक गयी। गंगाको ग़ौरसे देखनेके बाद बोली—"आओ, मेरे साथ चली आओ। मैं उस परीको ला सकती हूँ।"

गंगा उसके पीछे-पीछे चल पड़ी। वह सामनेके आलीशान कमरेमें गयी। उसकी सजावटसे गंगाकी आँखें चौंधिया गयीं। ज़मीनपर मख़मली फ़र्श था, जिसपर कलाबत्तूनी चादर बिछी थी। रेशमी कामदार नकटे दीवारके सहारे रखे थे। हसीन औरतोंकी तस्वीरें चारों तरफ़ दीवारसे लटक रही थीं। जगह-जगह आदमक़द शीशे सजे थे। कमरेकी छतसे बहुत-सी मोमी कन्दीलें लटक रही थीं, जिनमें मोमबत्तियोंकी जगह बिजलीके कुमकुमे लगे थे। बिजलीके चार पंखे भी धीरे-धीरे चल रहे थे।

उस औरतने बिजलीका बटन दबाया। कमरा एकबारगी चमक उठा; मानों, चाँद फट पड़ा। तेज़ रोशनीमें उस अधेड़ औरतने गंगाको एक बार फिर ग़ौरसे देखा। ख़ुशीसे उसका चेहरा खिल उठा। वह बोली—"घबराओ मत। तुम्हें परी मिल सकती है; और, बहुत जल्द। वक़्त कम है। लो, यह सूखी साड़ी पहन लो। इसके ऊपर यह रेशमी चादर डाल लो, सरदी लग रही होगी; और, जल्द मेरे साथ चलो।"

तैयार होकर गंगा उसके पीछे-पीछे चल पड़ी। नीचे उतरकर दोनों गाड़ीमें सवार हुईं और सीधे रेलवे-स्टेशन आयीं। अधेड़ औरतने, इलाहाबादके लिये, दो सेकेण्ड क्लासके टिकट लिये। थोड़ी ही देरके बाद 'तूफ़ान मेल' आयी और दोनों उसमें सवार हो गयीं।

× × × × ×

"तुम्हारा नाम?"

"गंगा। मगर अब मुझे रजनी कहा करना!"

"समझदार हो। अच्छा, आजसे तुम भी मुझे 'चम्पो मौसी' कहा करना। दुनियाकी ज़रूरत हो ऐसी बातकी है।"

कानपुरसे चलकर, 'चम्पो मौसी' के साथ, रजनी इलाहाबादमें रहने लगी। चम्पो मौसीने रजनीका अपने रंगमें रँग डाला। अब वह 'गंगा' न रही। उसके बदनपर बेश-क़ीमती साड़ी और गलेमें हल्के चाइना सिल्कका सादा जम्पर था, जिसपर सोनेका ख़ूबसूरत लाकिट था। उसके लम्बे बाल भी लेडी-सैलूनमें कट चुके थे। सिर्फ़ दो-चार घुँघराली लटें चेहरेपर पड़ी रहती थीं। मुँहपर हेज़लिन स्नो और पेरिसका पाउडर, होठोंपर गुलाबी रंग और हाथोंमें छोटा-सा ख़ूबसूरत हैण्डबेग था। वह अब ख़ासी पढ़ी-लिखी लेडी बन गयी थी। जज, बैरिस्टर और मुंसिफ़ क़ुर्सीसे बड़े

होकर उसका स्वागत करते थे। वह शरीफ़ोंमें शुमार होती थी।

एक दिन ख़ूब बनठन कर रजनी एक आदमक़द शीशेके सामने खड़ी थी। वह परी-सी दीखती थी। बदनमें जान आ गयी थी। वह अपना मुँह देख रही थी कि, इतनेमें ही चम्पो मौसी भी अन्दरसे आ गयी। वह रजनीको देखकर दंग रह गयी। उसने पूछा—"कहो रजनी, कुछ मिला ?"

"कुछ भी नहीं।"

"और, वह परी ?"

"दीवानी हो गयी हो ! अजी, परियाँ कभी दस हज़ार बरस पहले होती होंगी।"

"अरी नादान ! जिस परीकी तुम्हें तलाश थी, देख—वह शीशेमें मौजूद है !"

"किस जगह ?"

"तुम्हारी आँखोंमें, तुम्हारी हर अदामें, बदनके हर हिस्सेमें। अभी तो शहरका हर एक नौजवान तुमपर जाँ-निसार करनेको पागल हो रहे हैं !"

"तो क्या सचमुच वह परी आ गयी—मुझे मिल गयी ?"

"हाँ।"

"उड़ तो न जायगी ?"

"मुद्दतोंके बाद, जब कहीं तुम मेरी उम्रकी होगी।"

"तो अब प्रीतमको इस परीकी झलक दिखाकर मोहित करना चाहिये। मगर चम्पो, मुझे डर है, कहीं प्रीतम मिलें न और परी उड़ जाय !"

"क्या अब भी प्रीतमों और बालमोंका घाटा ही रहा ? अब तो अनेक हैं !"

"मगर" सर्द आह लेकर रजनीने कहा—"मगर, एक नहीं !......बेग़ैर......उफ़......बेग़ैर उसके यह परिस्तान मुझे सुनसान मकान-सा जान पड़ता है।"

"तो तुम्हें कैसे प्रीतमकी ज़रूरत है ? मुझे भी बता दो। सुनती हूँ, मगर बताया तुमने आजतक नहीं !"

"उसे मैं ही जानती हूँ। क्यों पूछती हो ? जाने दो। जब मिल जायगा, दिखा दूँगी। चम्पो, नाराज़ न होना। यही मेरा एक राज़ है।"

(४)

कुछ दिन योंही गुज़र गये। फागुनका महीना आया। रजनीपर मौसमका पूरा असर पड़ा। उसकी ख़ूबसूरती अंग-अंगसे फूट-फूट कर निखरी पड़ती थी। वह रोज शामको निकलकर अपने मकानकी छतपर आ जाती और नीचे बाजार-की ओर देरतक देखती रहती।

एक दिन उसकी नज़र किसीपर जम गयी। उसे वह ग़ौरसे देख रही थी कि, चम्पोने पीछेसे आकर पूछा—"क्या देख रही हो ?"

"यजन खड़ा है......यजनीक !"

"क्या कहा, कौन ?"

"तुम नहीं जानती क्या ?"

"यह एक संस्कृतका लफ्ज़ है। इसका मानी है पुजारी—परीका मुतलाशी।"

कुछ दिनोंसे उसे सैरका शौक़ हो गया था। वह हर रोज शामको बाग़में जाया करती थी। कभी-कभी चम्पो भी उसके साथ हो लेती थी। जब दिलमें आता, चली जाती थी। उसे यक़ीन था कि, रजनी अब कहीं नहीं जा सकती।

× × ×

पूनोकी रात थी। चाँदकी खिली रोशनीसे दुनिया रौशन थी। प्रयागके घाटोंपर बड़ी चहल-पहल थी। बहुत-से शौक़ीन क़िश्तियाँ लेकर चाँदनी रातमें क़ुदरती नज़ारेका लुत्फ़ उठा रहे थे।

एक क़िश्तीपर शहरकी मशहूर तवायफ़ रजनी और यजन सवार थे। क़िश्ती पानीपर धीमी चालसे चली जा रही थी। चाँदकी रोशनी दरियाके पानीपर पड़ती हुई बड़ी भली मालूम होती थी !

यजनने रजनीके गलेमें बाहें डाल दी थीं। वह ग़ौरसे

उसके चेहरेकी तरफ़ देख रहा था; लेकिन रजनीकी नज़र बहते हुए पानीकी तरफ़ थी। यजनने मुस्कुराकर पूछा—

"क्या देख रही हो ?"

"लहर।"

"कैसा भला मालूम होता है !"

"हाँ, देखो गंगाकी लहर कैसी भली मालूम हो रही है ! मैं तो इसे ही देख रही हूँ। भगीरथजीने भी इसी लहरको देखा होगा !"

"मगर, मैं तो तुम्हें देख रहा हूँ !"

"क्यों ?"

"इसलिये कि, तुम मेरी परी हो ! तुम जैसी परी आज-तक नहीं देखी।"

"आजतक नहीं देखी ?"

"बेशक।"

"पहचान लो !"

"पहचान लिया—ख़ूब देख लिया। तुम मेरी परी हो ! मैंने तुम्हें आज पाया है।"

"परी क्या होती है, यजन ?"

"जो हसीन हो, मासूम हो, लापरवाह हो। प्यार करना और प्यार कराना जानती हो !"

"तो मैं मासूम नहीं हूँ; पाक नहीं हूँ। मेरा प्यार झूठा है; मेरी बातें झूठी हैं। मैं वक्त-वक्त पर हालत बदलती हूँ।"

"मगर फिर भी तुम मेरी परी हो। तुम मुझे प्रेम करती हो।"

"नादान ! मेरा प्रेम झूठा है, मैं कह चुकी। तुम मुझमें क्या देखते हो ?"

"रतिका स्वरूप !"

"उफ़ ! मैं क्या छल रही हूँ !"

"मेरी प्रेम-भरी बातें।"

"तुम जिसे परी समझते हो, वह अब परी नहीं है; कभी थी। उठो, देखो—ग़ौर करो।"

"कौन, गंगा !......गंगा !"

"वह देखो ! लहरें उठ रही हैं और किनारेसे टकरा रही हैं !!"

जम्परके नीचे हाथ डालकर रजनीने नेकटाईको पिन निकाली और यजनके हाथपर रख दी। फिर बोली—"यजन ! परी तो दर-असल उड़ चुकी है। अब तो परीकी परछाईं है !"

यजनने आँखोंमें आँसू भरकर भर्रायी हुई आवाज़में कहा—"आह ! मेरी गंगा—मेरी परी ! मुझे माफ़ करो।"

मगर उस वक्त गंगा श्रीगंगाजीकी लहरोंमें चाँदनी रातका आनन्द ले रही थी ! आँसू-भरी आँखोंसे यजनने देखा कि, लहर चट्टानोंसे टकराकर फिर गंगाजीमें मिल गयी !!

स्वामी तुकारामजी

प्रो॰ सद्गुरुशरण अवस्थी एम॰ ए॰

भारतीय साहित्यमें कविताका स्थान बहुत ऊँचा है। वेदोंकी ऋचाओं और पुराणोंके श्लोकोंमें काव्यके उत्तम गुणोंने एक अद्भुत रोचकता लाकर सर्व-प्रियताका अंकुर बो दिया है। हमको इस बातका गौरव है कि, हमारी सारी साहित्य-सामग्री काव्यबद्ध है।

ललित कलाओंका सर्वश्रेष्ठ अंग काव्य है। मनोवेग, भाव और कल्पना काव्यकी अन्तरात्मा हैं और ताल-लय उसका शरीर है। शब्द-समूहका प्रयोग और सजावट कविताके वस्त्र हैं और अलङ्कार उसके आभूषण हैं।

प्रत्येक अच्छी कवितामें एक-न-एक रसकी धारा बहती हुई मालूम होती है। इस रसके सहारे हम कविके भावोंमें घुस सकते हैं। काव्य और संगीत, दोनों भिन्न-भिन्न कलाएं तो हैं; पर इन दोनोंमें अन्योन्याश्रय भाव है। संगीतसे रस-संचारमें सहायता मिलती है। यदि कोई सुन्दर कविता सुस्वर कण्ठसे अलापकर सुनायी अथवा पढ़ी जाय, तो अधिक हृदय-ग्राही होगी। वह कानोंसे सीधे हृदयमें जाकर अपनी छाप लगाती है और चित्त-वृत्तियोंको प्रसन्न करती है। किसीने ठीक कहा है कि, "कविता वही है, जो तीर-सी जाकर हृदयके अन्दर लगे।" एक बार सूखी तरहसे किसी कविताको पढ़ देनेसे उतना आनन्द नहीं मिलता। संगीतसे भाव-संचारमें मनोहरता और सरलता आ जाती है। ऐसे ही बिना काव्यके संगीत रूखा हो जाता है और मर्मस्पर्शी नहीं रहता।

संगीतके लिये कवितामें लयका होना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। अतएव अच्छी कवितामें (भाव, मनोवेग और कल्पना) अन्तरङ्ग और (ताल-लय) बाह्य स्वरूप, दोनों होने चाहिये।

आजकल रवीन्द्रनाथकी कविताएँ पाश्चात्य विद्वानोंको एक नवीन और अद्भुत चमत्कार दिखा रही हैं। वास्तवमें उनकी कविताओंमें सरलता, भावुकता और आध्यात्मिकता प्रशंसनीय है। रवीन्द्र हमारे उन्हीं कवियोंके अनुगामी हैं, जो भारतके कोने-कोनेमें अपना आत्मानुभव, शताब्दियोंसे, गाते चले आये हैं। इनकी रचनाओंसे प्रत्येक भारतीय साहित्य-सेवीको हर्ष तो हो रहा है; पर आश्चर्य नहीं।

उच्च कोटिके पुराने कवियोंमें महाराष्ट्र कवि तुकारामजीका स्थान ऊँचा है। इनकी स्वाभाविकता, सत्यता और काव्य-कुशलता असाधारण है। इनकी कविताओंमें भक्ति, प्रेम और दयाके भाव तो कूट-कूट कर भरे हैं। इनका अनुभव इतना बढ़ा-चढ़ा था कि, कहा जाता है, इन्हें दिव्य दृष्टि मिल गयी थी। हाँ, कल्पनाकी उड़ान इनमें बहुत ऊँची नहीं है और न मानव जीवनकी छान-बीन करना ही इन्होंने अपना ध्येय समझा था।

यह तो कबीरकी भाँति संत कवि थे। अन्तर इतना ही था कि, कबीर निर्गुणवादी थे और तुकारामजी सगुण भगवान्‌के उपासक थे। ये कबीरकी तरह सीधे थे। कबीरने अपना नीच कुलमें उत्पन्न होना स्पष्ट कह दिया है—

"तू बाम्हन मैं काशीका जुलहा बूझौ मोर गियाना।"

एक जगह और कहा है :—

"काशीका मैं वासी बाम्हन नाम मेरा परवीना।
एक बार हरिभजन बिसारा देकर जुलहा कीन्हा॥"

ऐसे ही तुकारामजी भी सच्चे और गम्भीर थे। इनका जन्म भी शूद्रके ही घरमें हुआ था। यह आठो पहर भजन-भावमें मस्त रहते थे। इन्होंने भी अपनी दशापर एक कविता कही है, जिसका हिन्दी-अनुवाद यह है—

"अब समझा है कुछ खेल दयासागरका।
हिरदेमें धरा छिपाय चित्र नागरका॥
था पतित हुआ बदनाम गया धिक्कारा,
सब धन खो बैठा दुष्ट मिल गयी दारा।
मैं दीन दुखी हो गया कालका मारा,
भव-सागरमें कवितासे दिया सहारा।
सिरसे जब उतरा बोझ पाप गागरका।
अब समझा है कुछ खेल दयासागरका॥
परवाह न की दुनियासे नाता तोड़ा,
सब छोड़ दिया बस नेह आपसे जोड़ा।
बस दया हुई जो दास जगत्से मोड़ा,
मझधार सहारा दिया जिन्होंने छोड़ा।
कैसा कोमल है हाथ रूप-आगारका।
अब समझा है कुछ खेल दया सागरका॥"

कैसा मनोहर, सच्चा और भक्ति-रससे सना हुआ वर्णन है! कहा जाता है कि, तुकारामजी बहुत बड़े भक्त थे; इस लिये इनके विषयमें छान-बीन करना और सर्व-साधारणको इनकी ओर ध्यान दिलाना हम अपना कर्तव्य समझते हैं; क्योंकि कहा जाता है—

"रामते अधिक रामकर दासा।"

महाराष्ट्रमें धार्मिक जागृति

इसके पहले कि, तुकारामजीकी जीवनी और उनकी कविताओंकी ओर बढ़ा जाय, इतिहासकी दृष्टिसे यह जान लेना आवश्यक है कि, इनके दो सौ वर्ष पूर्वसे महाराष्ट्रमें एक धार्मिक क्रान्ति मची हुई थी। तेरहवीं शताब्दीके बाद महाराष्ट्र देशमें धार्मिक और सामाजिक सुधारोंमें अच्छी उन्नति हुई। इसका फल यह हुआ कि, एक नये धर्मका आन्दोलन होने लगा और सर्वप्रियताका भाव बढ़ने लगा। तुकाराम इसी युगके प्रधान प्रवर्तक हैं।

इस धार्मिक संस्थाकी नींव ज्ञानदेव नामक एक निर्भीक ब्राह्मण-कुमारने डाली थी। ज्ञानदेव पूनाके पास अलन्दी ग्रामके निवासी थे। ज्ञानदेवके पिता संन्यासी थे; पर कुछ दिनोंसे गृहस्थाश्रममें आ गये और इनके चार पुत्र और एक कन्या हुई। माता-पिताकी मृत्युके बाद ये सभी जातिसे निकाल दिये गये और गाँवके बाहर एक झोंपड़ेमें रहने लगे। निवृत्तिदेव, जो सबसे बड़े भाई थे, बहुत ही शान्त-प्रकृति थे। दूसरे ज्ञानदेव ज्ञानी और चतुर थे। उन्होंने कुछ ऐसे विद्वान् पण्डितोंके पास जानेकी ठानी, जिनका आधिपत्य ब्राह्मण-समाज भरमें था, जिससे वे कोई ऐसा मार्ग बतावें कि, इस सामाजिक घृणा और दुःखसे उनका उद्धार हो। ज्ञानदेव अपने बहन-भाइयोंके साथ प्रतिष्ठनी नामक स्थानमें गये, जो आजकल निजाम-राज्यमें पैठन नामसे प्रसिद्ध है। उस समय प्रतिष्ठनी दक्षिणकी काशी कही जाती थी यह विद्याका केन्द्र थी। यहाँ ब्राह्मणोंकी एक वृहद् सभा हुई, जिसमें ज्ञानदेवने खड़े होकर कहा—

"हम लोग, एक संन्यासीकी सन्तान हैं। हमारे पिता गृहस्थाश्रममें लौट आये थे। इसी बातसे हम लोग जाति-बहिष्कृत कर दिये गये हैं। क्या हमें फिरसे हमारे धार्मिक और सामाजिक अधिकार मिल सकते हैं?" ब्राह्मणोंने उत्तर दिया, "नहीं।" ज्ञानदेवने बड़ी सावधानीसे कहा कि, "ऊँच और नीच, वे लोग जो जातिमें हैं अथवा वे, जो जातिसे निकाल दिये गये हैं, सबमें एक ही जीवात्मा है और प्रकृतिने सबको समान बनाया है। फिर उनमें यह अन्तर क्यों डाला जाता है?" एक ब्राह्मण देवता बिगड़ कर बोले कि, "जो जीवात्मा तुममें है, क्या वही इस बैलमें है, जो घास चर रहा है, और यदि बैल मारा जाय, तो क्या तुम्हें भी चोट लगेगी?" इतना कहकर वह गया और बैलके दो-तीन डण्डे मारे। ज्ञानदेवने घूमकर अपनी पीठ दिखायी, तो कहा जाता है कि, उनके लौंदें पड़ गयी थीं और पीठ सूज आयी थी। इसके बाद ज्ञानदेवने जाकर बैलके मुँहपर हाथ फेरा और उससे वेद-मन्त्र उच्चारण करवाये।

इस प्रकार ज्ञानदेवकी जीत हुई और उसका नाम चारों ओर फैलने लगा। उसने इस बातकी घोषणा कर दी कि, ईश्वर

एक है और उसकी दृष्टिमें सब बराबर हैं। तब वे लोग जाति द्वारा अपना लिये गये। जब ज्ञानदेवने देखा कि, ब्राह्मण और शूद्र सब अज्ञानके ढकोसलेमें पड़े हैं और पर ब्रह्मको भूल बैठे हैं, तब उन्होंने मराठी भाषामें, भगवद्गीताके आधारपर, "ज्ञानेश्वरी" नामकी एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी। यह पुस्तक धर्म-ग्रन्थ-रूपसे मानी जाने लगी और समाजने इसे आदरपूर्वक अपना लिया। ज्ञानदेवने "अनुभवामृत" नामका एक ग्रंथ लिखा, जिसमें इन्होंने अपने विचार और अनुभव काव्य-रूपमें बद्ध करके रखे। किन्तु यह ब्राह्मण-कुमार इक्कीस वर्षका भी न हुआ था कि, अपने तपोबलसे संसारसे नाता तोड़कर स्वर्गका फाटक खोल स्वयं तो अन्दर घुस ही गया, दूसरोंके लिये भी खुला छोड़ गया।

नामदेव और चोका मेला

ज्ञानदेवकी मचायी हुई यह धार्मिक हलचल दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही गयी। चौदहवीं शताब्दीके अन्तमें नामदेव नामक एक रहस्यवादी कविका जन्म हुआ। यह ९९ वर्ष जीवित रहे। इनकी कविताएँ सच्ची भक्तिकी हँसती-खेलती मूर्तियाँ हैं, जिनका दक्षिण भारतमें बड़ा आदर है। इसी समय पन्धरपुर-निवासी चोकमेल नामका, महर जातिका, एक महात्मा हुआ। यद्यपि यह सबसे नीच जातिका था; तथापि बाल्यावस्थासे ही इसे भक्ति-भावमें प्रेम था। यह मन्दिरों तथा पवित्र गलियोंमें न जाने पाता था; पर दूर ही, भीमा नदीके किनारेसे, जो पन्धरपुरके पास होकर बहती है, अपने देवताओंकी पूजा और प्रार्थना किया करता था। उसे जप-तप करनेकी मनाही थी। कई बार उसे इस बातपर दण्ड भी दिया गया; पर अन्तमें उसके सत्य भावकी विजय हुई और ब्राह्मणोंने स्वयं अपने मन्दिरोंमें आने-जानेकी आज्ञा दे दी।

नामदेव जातिके दर्जी थे और चोकमेल महरपर अपने सत्कर्मों द्वारा ऐसी उन्नतिको प्राप्त हुए कि, इन्हें महात्माओंका पद मिल गया। बड़े-बड़े कुलीन इनके सामने अपना मस्तक नीचा करते थे।

पन्धरपुर

भीमा नदीके किनारे पन्धरपुर नामक स्थान इस धार्मिक क्रान्तिका क्षेत्र था। बड़े-बड़े सुधारक, कवि और विद्वान् यहाँ सभाएँ करते और बड़ी संख्यामें आते थे। यहाँ भगवान् विठोबाकी मूर्ति थी, जिन्हें वे कृष्णजीका अवतार मानते थे। त्योहारोंमें यहाँ अनेक तीर्थ-यात्री आते और सन्तोंकी कथा और भजनोंमें भाग लेते थे। पन्धरपुर अबतक महाराष्ट्रोंका मुख्य तीर्थस्थान है, जहाँ हजारों यात्री जमा होते और पुराणकी कथाओं या पुरानी कविताओंको गा-गाकर ईश्वर-भजन करते हैं।

एकनाथजी

सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियोंमें इस वैष्णव धर्मकी बड़ी उन्नति हुई। इस समय यहाँ तीन बड़े-बड़े महात्मा हुए—एकनाथ, रामदास और तुकाराम। इन महात्माओंने इस धर्ममें हर प्रकारसे उन्नति की। एकनाथजी देशस्थ-वंशके कुलीन ब्राह्मण और प्रतिष्ठनोके निवासी थे। यह अद्भुत कवि और समाज-सुधारक थे। यह जयराम स्वामीके चेले थे। विद्याध्ययनके बाद एकनाथजीने विवाह किया और एक योग्य गृहस्थकी भाँति रहने लगे। यह प्रतिदिन प्रातःकाल भजन करते और थोड़े भोजन-विश्रामके बाद नियमपूर्वक नित्य कविता लिखते अथवा धार्मिक उन्नतिके उपाय सोचते थे। यह बड़े परोपकारी थे। बड़ी दूर-दूरसे लोग इनसे शिक्षा लेने आया करते और सायं कालसे सब भजनमें भाग लेते थे। इन्हें लोग सदा घेरे रहते थे।

एक महरने, जो नित्य उनके भजन सुना और गाया करता था, एक बार अपने यहाँ उनका निमंत्रण किया। एकनाथजीने उसके यहाँ भोजन करनेमें तनिक संकोच न किया। इस बातपर ब्राह्मण-समुदायने उन्हें जातिसे निकाल दिया।

एक बार श्राद्धके दिन उनके यहाँ तीन भिखारी आये और एकनाथजीने वह सब सामग्री, जो ब्राह्मणोंके भोजनके लिये रखी था, लाकर भिखारियोंको दे दी। इसपर ब्राह्मणोंने इनके यहाँ श्राद्ध न करवाया और बहिष्कार कर दिया। कहा जाता है कि, पितरोंने स्वयं स्वर्गसे आकर अपना भाग ग्रहण कर लिया। यह वैष्णव थे। इन्होंने भागवत-पुराणका मराठी भाषामें उलथा किया है। पहले तो इनका बड़ा विरोध हुआ; पर अन्तमें इनको मराठी भागवत-पुस्तक हाथीपर रखकर बनारस भरमें घुमायी गयी। इनके मतसे धार्मिक शिक्षा, ऊँच-नीच सबको समान देनी चाहिये। जो इसमें बाधा डाले, वह धर्म और समाज, दोनोंका विरोधी है।

देशभक्त स्वामी रामदास

जब एकनाथजीका स्वर्गवास हुआ, तब महाराष्ट्र भूमिमें स्वामी रामदास और तुकारामजी, दो विचित्र महात्माओंने जन्म लिया। रामदासजी ब्राह्मण और तुकारामजी शूद्र थे।

यद्यपि इन दोनोंकी रचनाओं और विचारोंमें अन्तर है, तथापि दोनों एक ही धर्मके अनुयायी थे और दोनोंका ध्येय एक ही था। रामदासजीका जन्म नासिकमें हुआ था। इन्हें आदिसे ही संसारसे वैराग्य रहा। कहा जाता है कि, यह अपने विवाहके दिन सबसे प्रेम छोड़कर जंगलको चले गये। बहुत दिनोंतक यह आस-पासके जंगलोंमें घूमते रहे और इसी बीच इन्होंने अपनी मानसिक शक्तियोंका विकास किया। पर्यटन समाप्त करके यह फिर समाजमें आये और गाँव-गाँवमें जाकर इन्होंने निर्मल भक्ति और सच्चे प्रेमकी शिक्षा दी।

रामदासजी केवल धर्म-सुधारक न थे, वरन् बहुत बड़े देश-भक्त भी थे। इन्होंने विचार किया कि, ऐसा संगठन होना चाहिये, जिससे महाराष्ट्र देश मुसलमानोंके भार और अन्यायसे बचा रहे। अतएव यह जहाँ जहाँ गये, वहाँ-वहाँ इन्होंने ऐसी पाठशालाएँ खुलवायीं, जहाँ शारीरिक और मानसिक, दोनों बल बढ़ानेकी शिक्षा दी जाती थी। अन्तमें रामदासजी शिवाजीसे मिले और प्रार्थना करनेपर उन्हें अपना शिष्य बना लिया। एक बार शिवाजीने अपना सारा राज्य गुरूजीको भेंट कर दिया, तब रामदासजीने उसे लौटाते हुए कहा कि, "लो, तुम्हीं मेरे नामसे राज्य करो; इसी भाव से कि, सारा राज्य एक योगीका है।" तबसे शिवाजीने गेरुआ झण्डा स्वीकार किया।

इनके विचार 'दास-बोध' और इनकी दूसरी-दूसरी रचनाओंमें सुरक्षित हैं। शिवाजीकी असाधारण वीरता और देश-प्रेमका अंकुर इन्हींकी शिक्षासे सींचा गया था, जिसका फल आजतक विद्यमान है।

शिवाजीकी मृत्यु उनके गुरुके सामने हो हुई थी। शिवाजीकी मृत्युके एक वर्ष बाद इनकी भी मृत्यु हो गयी। अन्त समय यह अपनी मृत्यु-शैयापर पड़े थे, इन्हें औरंगजेबकी सेनाके आ जानेका समाचार मिला। उस समय इन्होंने शिवाजीके पुत्र शंभाजीको यह सन्देश कहलवा भेजा—

"एक संगठित राज्य स्थापित करके महाराष्ट्र धर्मका प्रचार करो।"

तुकारामजी

सत्रहवीं शताब्दीमें महात्मा तुकारामजीका आविर्भाव हुआ। इनका जन्म पूनाके पास, इन्द्रायणी नदीके किनारे, देहू नामक एक छोटे-से गाँवमें, १६०८ में हुआ था। यह जातिके शूद्र थे; पर इनके यहाँ दूकानका काम होता था। इनके पुरखे शुद्ध आचार-व्यवहारके धार्मिक लोग थे। ये लोग देश-सेवी भी थे; क्योंकि इनके वंशके दो व्यक्ति मातृ-भूमिकी वेदीपर संग्राममें बलिदान हो चुके थे। ये लोग भगवान् विथोबाके उपासक थे।

जब तुकारामजी इक्कीस वर्षके थे, तब दक्षिणमें बड़ा भयंकर अकाल पड़ा। इनके माता, पिता, स्त्री और बच्चा, सब इसीमें समाप्त हो गये! इनके बड़े भाई साधु हो गये और भावजका भी स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार इनके दुःखका अन्त न रहा।

तुकाराम भी तुलसी और सूरकी तरह वैष्णव थे। इनका प्रारम्भिक जीवन गोस्वामीजीकी तरह दुःखमय रहा। माता-पिताकी मृत्युके बाद इन्हें संसारसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। इधर इनके पास जो धन-धान्य था, अकालमें सब काम आ गया। भूखके मारे स्त्रीका देहान्त हो गया! तब तो इन्हें बड़ी लज्जा आयी और दुःखसे व्याकुल हो उठे। इन्हें भगवान्‌में अटूट भक्ति हो गयी और यह धार्मिक गाने गा-गाकर उपदेश देने लगे। पहले तो इन्होंने कुछ पद कंठस्थ कर लिये, फिर स्वयं भी कविता करने लगे। इन्हें साधु-सन्तोंका साथ बहुत भाता था, धर्ममें पक्का विश्वास था और ये महात्माओंके चरणोंकी धूलि मस्तकपर लगाते थे। अपने शरीरकी तनिक भी चिन्ता न करके दूसरोंके काममें सदा तत्पर रहते थे। सांसारिक झगड़ोंसे उदासीन रहते थे। यह समाजके चाटुकार न थे। हर बातकी छान-बीन यह स्वयं कर लेते और परमात्माको छोड़कर किसीका अवलम्ब न लेते थे।

अकाल दूर होनेपर दक्षिण फिर धन-धान्यसे भर गया और तुकारामजीने दूसरा विवाह किया; पर आयुके साथ-ही-साथ इनके धार्मिक विचार भी बढ़ते गये। सूर्योदयके समय उठकर, स्नानादिसे निवृत्त हो, विठोबाकी पूजा करके, नित्य नियमपूर्वक भन्द्र नामक पहाड़ीपर जाकर समाधि लगाये घण्टों बैठे रहते थे। घर-बारकी तो इन्हें सुध ही न रहती थी। इसीसे इनकी स्त्री इनसे बहुत असंतुष्ट रहती थी।

इन्होंने लगभग सात हजार कविताएँ लिखी हैं। इन्होंने जीवनका अधिक समय भजन-भावमें लगाया है। इनके अनेक चेले थे। देओसके कुलीन वंशजोंने (जो चिंचवादी थे और साक्षात् गणपतिको अपना पुरखा कहते थे) तुकारामजीके साथ बैठकर भोजन किया। इस बातसे ब्राह्मण लोग बहुत बिगड़े। मम्बाजी नामक किसी व्यक्तिने इन्हें एक कँटीली झाड़ीमें फेंक-कर बहुत पीटा; परन्तु इन्होंने उसे क्षमा कर दिया और अन्तमें यह उनका चेला हो गया। किसी रामेश्वर भट्टने इन्हें एक-दफा बुलाया और कहा कि, "शूद्र होकर तुमने लोगोंको वेदोंकी शिक्षा क्यों दी?" तुकारामजी बोले "विठोबा भगवान्‌ने मेरे हृदयमें जैसी भावना उत्पन्न की, मैंने वैसा ही किया। अब आप जो भी दण्ड दें, मैं सहर्ष स्वीकार कर लूँगा।" इसपर उसने कहा कि, "अपनी कविताओंका संग्रह नदीमें बहा दो।" उन्होंने वैसा ही किया; पर इससे उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। यह बहुत दिनोंतक मन्दिरके द्वारपर बिना जल और भोजन ग्रहण किये पड़े रहे। अन्तमें भगवान्‌ने इनकी प्रार्थना सुनी और इनकी कविताओंकी कापी इन्द्रायणी नदीमें फिर उतराती हुई दिखायी दी! किसीने निकालकर तुकारामजीको कापी दे दी। तब तो रामेश्वर भट्ट भी उनका चेला हो गया।

इस समयतक शिवाजीने दक्षिणको मुसलमानोंके बन्धन-से छुड़ाकर वहाँ फिरसे हिन्दू-राज्य स्थापित कर दिया था। शिवाजीकी साधु-महात्माओंमें बड़ी श्रद्धा थी। एक समय जब शिवाजी लोहा गावोंमें थे, तब उन्होंने, यह सुनकर कि, तुकारामजी अच्छे महात्मा हैं और कवि भी हैं, उन्हें अपने यहाँ निमन्त्रित किया और सरदारोंको आज्ञा दी कि, महात्माजीकी सवारी बड़े समारोहके साथ दरबारमें लायी जाय। तुकारामजीने निमन्त्रण अस्वीकार कर दिया और जवाबमें एक पत्र भेजा। पत्रमें लिखा था—

"शिवाजी, संसारमें फकीरीसे बढ़कर किसी वेश अथवा किसी पदार्थमें आनन्द नहीं है। तुम धनाढ्य हो और संसार तुम्हारा आदर करता है; परन्तु तुम हरिके भक्तोंसे अधिक भाग्यवान् नहीं हो। मैं तुम्हारे यहाँ क्यों आऊँ? क्या मेरे मनको वहाँ अधिक शान्ति मिलेगी? राजाके यहाँ धनी व्यक्तिका आदर होता है। मुझे बुलाकर क्या करोगे? तुम्हारा धर्म है कि, अपनेको स्वामी रामदासका अंश समझो। तुम्हारा जन्म संसारमें धन्य है। तुम्हारा नाम तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है।" ऐसी ही और कई बातें भी लिख भेजीं।

यह सदा भजन-भावमें लिप्त रहते थे और बड़े अच्छे गायक भी थे। यह सितार भी अच्छा बजाते थे। कभी-कभी आस-पासके गावोंमें घूमा करते; पर अधिकतर पण्ढरपुरमें

ही रहते थे । एक बार पन्धरपुरमें विराट् सभा हुई, जहाँ शिवाजी भी आये थे । क्षत्रपति शिवाजीने राजा-महाराजाओंकी भाँति सब काम अपने हाथमें ले लिया और हर प्रकारसे साधु-महात्माओं और अभ्यागतोंकी सेवा की । आकाबाईने (जो रामदास स्वामीकी चेली थीं) उस महती सभामें "दासबोध" नामक तुकारामजीकी रचना पढ़कर सुनायी । रामदास स्वामीकी दूसरी चेली वेनूबाई थीं । ये दोनों स्त्रियाँ अपनी साथिनोंके सहित पालीगढ़की सभामें भी उपस्थित थीं ; परन्तु इन दोनों सभाओंमें तुकाराम ही प्रधान व्यक्ति थे । पालीगढ़के पहाड़ी किलेमें शिवाजीने रामचन्द्रजीका एक मन्दिर बनवाया था, जहाँ बड़ी दूर-दूरसे साधु-सन्तों और पण्डितोंको बुलवाया था । उत्सव समाप्त होनेपर शिवाजीने सब महानुभावोंकी पूजा की और सबोंको भेंटमें धन और पृथ्वी अर्पण किये । जब वह तुकारामजीके आसनपर पहुँचे, तब वह वहाँसे गायब हो गये ! यह बात शिवाजीको बुरी लगी । रामदासजीने शिवाजीको समझाकर कहा—

"तुकाराम त्यागी पुरुष हैं । सच्चे महात्माके सामने तीनों लोकोंका राज्य भी कुछ नहीं है । उन्होंने तो महासिद्धिको भी ठुकरा दिया । वह तो निष्काम होकर भगवान् विथोबाके प्रेममें मस्त हैं । चारों प्रकारकी मुक्ति उनके लिये कोई बड़ी बात नहीं है । फिर भला उन्हें सांसारिक पदार्थोंसे क्या वास्ता ?"

तुकारामजीके इस उदासीन भावको देखकर रामदासजी बहुत प्रसन्न हुए ।

तुकारामजीको ईश्वरपर विश्वास था । वह सदा अपने भीतर ही डूबे रहते थे और जो बात कहते वह बावन तोले पाव रत्ती तुली हुई । इन्होंने अपने उदासीन भावपर स्वयं ही एक कविता कही है, जिसका अर्थ यह है—

"अपने अनुभवसे अखिल विश्वमें देखा ।
बाहर भीतर बस एक ब्रह्म ही लेखा ॥
हम सदा मगन हैं हृदय भरा पूरा है ,
जगमगा रही है जहाँ ज्योतिकी रेखा ।
जब इच्छा ही दब गयी, याचना फिर क्या;
कुछ नहीं कामना रही परेखा-पेखा ॥"

किसीने ठीक कहा है—

"सन्तोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम् ।
कुतस्तद्धन-लुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् ॥"

'सन्तोषरूपी अमृतसे छके हुए सन्त मनुष्योंको जो आनन्द है, वह भला इधर-उधर दौड़नेवाले धनके लोभी मनुष्योंको कहाँ...... ?'

तुकारामजीकी कल्पना बड़ी मीठी है । विचारोंका तो कहना ही क्या है !

यह कोई दार्शनिक अथवा व्याख्यानदाता न थे । यह भक्त थे, कवि थे और सुन्दर गायक तथा अनुभवी थे । अतः यह जो भी वस्तु देखते थे, उसकी पूरी छाप इनके हृदयपर लग जाती थी और यह उसीको सुचारु-रूपसे अपनी छाप लगाकर कवितामें स्पष्ट कर देते थे । इतना ही नहीं, फिर उसीको राग-रागनियोंमें अलापकर दूसरोंपर भी अपनी छाप लगा देते थे । हम तो उनके भावोंपर ऐसे मुग्ध हैं कि, दूसरी बात न भी हो, तो सन्तोष है । इन्होंने भगवान्के गुणानुवादपर एक कविता लिखी है, जिसका भाव यह है—

"भला ऐसा, सबोंकी कामना पूरी कराता है।
मिठाई क्या कहूँ, बस नाम मीठा याद आता है।
दयामय देख लो, कैसा सलोना भोला-भाला है ।
नचंतामें सदा निज सेवकोंके काम आता है ।
समय औ मृत्युको जीता है मेरे ही रंगीलेने ।
जो अपनी ख्रियाँ भी दान देता ऐसा दाता है।
रसीला सब गुणोंकी खान है वह अपनी सत्तामें।
बना उसके लिये सब कुछ जिसे अपना बनाता है।
समयसे भी पुराना है अनेकों रूप हैं जिसके ।
छली है ग्वालिनोंमें ग्वाल-सा गौएँ चराता है।"

तुकारामजी 'अपने राम' के अनन्य भक्त थे। इन्होंने अपने इष्टदेवको हृदयमें सबसे ऊँची जगह दे रखी थी। इन्हीं जैसे पुरुषोंको लक्ष्य कर किसीने कहा है—

"दिलके आईनेमें है तस्वीरे यार।
जब ज़रा गरदन झुकाई देख ली।"

इनकी कविताओंमें प्रेम ही प्रधान है; पर यह प्रेम लौकिक नहीं। इनके विचारसे, ईश्वर प्रेमका खजाना है, इससे उसे प्रेमपूर्वक पूजना चाहिये। इनका हृदय स्वच्छ था। इन्होंने अपनी एक कवितामें कहा है—

"तप औ जप तो कुछ भी न किया अपने मनका मनमाना रहा
मैं जहाँ था वहीं रहा डोला नहीं मनमें जब यारका गाना रहा।
जल्को भी न पूछा तुम्हें अपनी बस चाहमें चित्त दिवाना रहा।
विनती जब कान हमारो करी फिर गुस क हाँ अपनाना रहा॥"

तुकारामजीको घमण्ड तो छू भी न गया था। यह स्पष्ट वक्ता थे। कोई भलाई करे या बुराई, कुछ चिन्ता ही न थी! हाँ, दूसरोंके दुःखसे इनके हृदयमें दर्द होता था और दूसरोंके सुखसे प्रसन्न होते थे। इनके धार्मिक विचार बहुत ऊँचे थे। इनकी कविताओंमें भक्ति तो टपकी पड़ती है। यह पुरुषार्थ करनेमें उत्साह दिखाते थे। इनका कहना था कि, यदि लक्ष्यतक पहुँचना है, तो राह चलना चाहिये; केवल मार्गका ध्यान करनेसे राह नहीं तै हो जाती। तुकारामजीकी रचनाओंसे यह व्यक्त होता है कि, यह वैष्णव-धर्मावलम्बी थे, जो धर्म उस समय उत्तर-भारतमें फैल रहा था। इन्होंने उस समयके लेखकों और कवियोंकी कृतियाँ देखी थीं, जिससे इन्हें अपने क्षेत्रमें बड़ी सहायता मिली। इन्होंने संसारमें प्रेम और सार्वजनिकताके भावोंका संचार किया।

दक्षिणमें वैष्णव धर्मका प्रचार रामानुजदासजीने किया था। दक्षिण भारतसे बहुतसे महात्मा और उपदेशक इस धर्मको उत्तर-भारतमें लाकर प्रचारित करने लगे। यह वह धर्म है, जिसमें परमात्मा सगुण माने जाते हैं। ईश्वर सर्वव्यापी, सर्वमित्र और शक्ति-स्रोत है। ऐसा ही तुलसीदासजीने भी अपने रामके लिये कहा है।

"सज्ञ कृतज्ञ अज्ञता भंजन। नाम नेक अनाम निरंजन॥"

इस धर्ममें आगे चलकर आत्मा और परमात्माका अन्तर भी दिखाया गया है विरागमें ही अनुराग इस धर्मका मुख्य अंग है।

तुकारामजी कहते हैं कि, "हमारे रामको किसीसे दुर्भाव नहीं है।" उनके लिये ऊँच-नीच सब बराबर हैं।

"ऊँच-नीचका भेद न जाना, शाक विदुर घर खाना।
भक्ति-भावसे देखा, उसका सदा प्रकट हो जाना।
खम्भ फाड़कर कनककशिपुसे जन प्रह्लाद बचाना।
प्रेम देख रैदास भक्तका संगमें चाम कमाना।
लाज बचानेको कबीरघर ब्राह्मण जाय जिमाना।
माँस बेचते सजन कसाई संग न तनक लजाना।
सेघतके खेतोंमें जाकर स्वयं घास कटवाना।
नरहरि स्वर्णकारकी फुँकनी लेकर आग जलाना।
चोकामेलाके संग जाकर गौएँ मृतक हुवाना।
गोबर नामाके चाकर जानीके साथ उठाना।
धर्मराजका पानी ढो-ढोकर अँगनाई धुलाना।
अर्जुनके रथमें जाकर फिर सारथि नाम धराना।
नहीं भूलता भक्त सुदामाके प्रिय तन्दुल खाना।
गोकुल गाय चराना, बलिका द्वारपाल बन जाना।
मीराबाईके हित विषका प्याला के पी जाना।
दमजीका बन महँ जाय गोराकी मट्टी लाना।
पंडालिका हेतु पन्धरपुर खड़े-खड़े विठुराना।
तुकाराम महिमा अपार है कठिन गुणोंका गाना।"

तुकारामजीका कहना था कि, जहाँ दया, क्षमा और शान्तिका वास है, वहीं ईश्वर रहता है। दूसरोंकी सेवा करना अपना ही मान बढ़ाना है और दूसरोंको दुःख देना अपनेको बदनाम करना है। बस, दूसरोंकी भलाई करनेसे ही ईश्वर मिलता है। सचाई ही सच्चा धर्म है। एक गुप्त बात यह है कि, हर एक बात, जो हम देखते हैं, ठीक नहीं होती। यही बात तर्क-शास्त्रमें भी समझाया गयो है—'सामने आलेमें एक सेव रक्खा है। मैं समझा कि, मेरे ही लिये मेरा मित्र रख गया है। जब चाकू लेकर सेवको उठाया और काटना चाहा, तब मालूम हुआ कि, मिट्टीका सेव है, जो

हमें वास्तविक फल मालूम होता है।' इसी तरह मानव शरीर, जिसे लोग अपना सर्वस्व माने बैठे हैं, एक मिट्टीका खिलौना है। यही हाल हर एक वस्तुका है। नीचे एक कविता दी जाती है, जिसके भाव तुकारामजीकी कवितासे बिलकुल मिलते जुलते हैं। इसमें मानव शरीरकी निस्सारता दिखायी गयी है दूसरे जानवरोंके चमड़ेके जूते बन जाते हैं और इस तरह मरनेके बाद भी वह दूसरोंके काम आ जाता है; पर मनुष्यके चमड़ेके जूते भी नहीं बन सकते—

"चामहि चामको चाह करै चमकावत चाम फुलेलन माहीं,
चाहत चित्त कछौ न करै निज चाम सजावनकी मनमाहीं।
स्वारथ जीव तजे जगमें 'सत' लागि परारथ देहु गवाँहीं,
का चितवैं निज-चाम चमार य चाम चमारके कामक नाहीं॥"

तुकारामजी सदा कर्तव्यपर दृढ़ रहे और भजन करते-करते अपना जीवन बिता दिया। यह भजन गाते-गाते विह्वल हो जाते थे। कंण्ठ गद्गद हो आता था और प्रेमाश्रु बहने लगते थे! यह भगवान् विथोबाके ध्यानमें ऐसे डूबे रहते थे कि, इन्हें तन-मनकी सुध न रहती थी। इनका मत था कि, संसारी वस्तुएँ तभीतक अपनी हैं, जबतक हम संसारमें हैं। कभी-न-कभी हमें संसार छोड़ना ही पड़ेगा। अतएव हमारा कर्तव्य है कि, वहाँके विषयमें भी कुछ सोच लें, जहाँ हमें जाना है; अन्यथा पछताना पड़ेगा। किसीने कहा है—

"कर ले सिँगार अली अलबेली तोहि
सजन घर जाना होगा।"

इस विषयपर गुरु नानकने भी कई अच्छे पद कहे हैं। उनमेंसे एक यह है—

"सब कुछ जीवनको व्यवहार।
मातु पिता भाई सुत बान्धव अरु पुनि गृहकी नार।
तनसे प्राण होत जब न्यारे टेरत प्रेत पुकार,
आध घड़ी कोई नहिं राखत घरतें देत निकार।
मृग-तृष्णा सब जग-रचना है देखहु हृदय विचार,
कह 'नानक' भज रामनामको जाते हो उद्धार॥"

तुकारामजी पूर्ण ज्ञानी थे। इनका अनुभव दोनों लोक (मर्त्यलोक और स्वर्गलोक) का था। मालूम होता है, इन्होंने वेदान्तका भी अध्ययन किया था। इन्होंने "अहं ब्रह्म" और "सर्वं ब्रह्ममयं जगत्"वाले मसलोंको अपनी एक कवितामें, बड़ी नवीनता और निपुणताके साथ, महाराष्ट्र भाषामें व्यक्त किया है, जिसका अनुवाद यह है—

"आपके नातेसे सब संसार नातेदार है।
हैं कई डोरे मगर रस्सीमें बस एक तार है।
ज्योतिके धागे गँसे सब जीवधारी एक हैं।
कौन कहता है जगत् रचना तेरी बेकार है।
दूसरोंके दुःख सुखका आत्माको ज्ञान हो
बस, यही तो प्रेमकी उज्ज्वल अनोखी धार है।"

यही भाव तुलसीदासजीकी इस चौपाईमें भी है—

"सियाराममय सब जग जानी।
करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी॥"

जब तुकारामजीका चलनेका समय आया, तब इन्होंने बहुत-कुछ अच्छी कविताएँ लिखीं, जिनमें इनके अंतिम ज्ञान, दिव्य दृष्टि और आत्मानुभवका दिग्दर्शन होता है। निम्नलिखित पद्य इन्हींकी कविताओंका अनुवाद है—

"संतोंने बुलाया, मुझे पियके घर जान आज,
जिसको सुनाना सुख-दुःखकी कहानी है।
द्रवित हुआ है मन प्रेमसे पसीजे नैन,
धर्मकी बसीठ बन जानेकी ठानी है।
खींचता है उस पार साकी ओर मेरा मन,
खोजमें जिसकी ज्ञानियोंने खाक छानी है।
राह है पुरानी मोह ममता हिरानी जहाँ।
ब्रह्मसुख खानी तुकारामकी अनुमानी है॥"

कैसे चमत्कृत विचार हैं! भावोंकी कैसी लड़ी-सी बाँधी गयी है। इसीको कहते हैं तत्त्वज्ञान। देखिये, कैसी सुन्दर चित कल्पनाका प्रयोग है! इनकी कविताओंमें कल्पना

राजा कीर्त्यानन्द सिंह बहादुर बी० ए०, बनैली-नरेश

अपने मारे हुए गैंड़ेके साथ

राजा कीर्त्यानन्द सिंह बहादुर बी० ए०, बनैली-नरेश

आप हिन्दीसाहित्यके प्रसिद्ध उन्नायक और हिन्दूधर्मके महान् पृष्ठ-पोषक हैं। आप "गङ्गा"के संरक्षक हैं। इस अंकमें आपके शिकार-सम्बन्धी लेख जा रहे हैं।
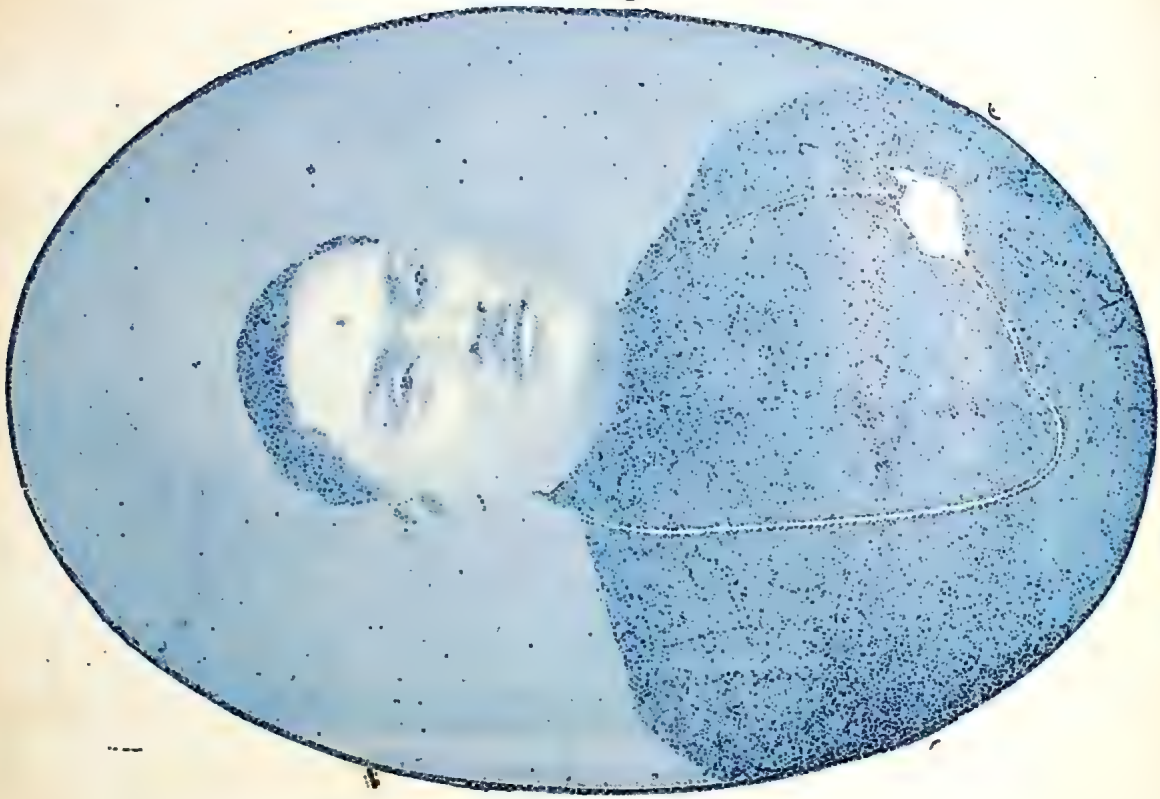
कुमार रमानन्द सिंह बहादुर

आप बनैली-राज्यके अन्यतम अधिपति, "गङ्गा"के संरक्षक और हिन्दीके परम हितैषी हैं। आपने हिन्दीमें कई सुन्दर पुस्तकें प्रकाशित [illegible] हैं। आपका [illegible] अभिनन्दनीय है।

स्वाभाविकताके बिल्कुल समान हो, रहती हैं। इनके घट-बढ़ जानेसे मनोवेगोंपर धक्का पहुँचता है। तुकारामजीकी काव्य-शक्ति और योग्यतामें तो कोई संशय करना ही व्यर्थ है; पर कहा जाता है कि, यह जितने बड़े कवि न थे उतने बड़े भक्त थे। यह ठीक भी है, क्योंकि इन्होंने अपने समयका बड़ा भाग भक्तिमें ही बिताया है। इन्होंने अपनी कविताएं भी भक्तिके लिये ही कही हैं; एक कविकी हैसियतसे नहीं। इनका उद्देश्य ईश्वराराधन था।

तुकारामजी और तुलसीदासजीमें बहुत कुछ समानता है। जैसे उत्तर-भारतमें और प्रायः भारतवर्षभरमें गोस्वामी-जीकी रामायण, ब्राह्मणसे लेकर शूद्रतक, घर-घरमें बड़े प्रेम और उत्साहसे पाठ करते हैं; वैसे ही दक्षिणमें तुकारामजीकी रचनाओंका बड़ा सत्कार है। इनके गाने पहाड़ोंमें गऊ चराने-वाले छोकड़े भी गाते हैं और नित्य पन्ढरपुर जानेवाले तीर्थ-यात्री भी गाते हैं। स्त्रियाँ भी गाती हैं, पुरुष भी गाते हैं। बच्चे भी अपनी तोतली बोलीमें गाते हैं और बूढ़े भी गाते हैं। इनकी कविताओंमें सच्चे प्रेमकी झलक है, जिसके प्रकाशसे भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। यदि एक बार आँखें बन्द करके इनके विचार-सागरकी तरल तरंगोंमें स्वयं बहा जाय, तो संसारकी बाह्य हलचलको तो भूल ही जाना पड़ेगा। अपना अस्तित्व भी, थोड़ी देरके लिये, बुद्धिकी आखोंसे ओझल हो जाता है।

साध

इस जीवनमें साध यही है,
तू नित मेरे पास रहे।
पलभर भी मत दूर कभी हो,
सदा सुखद सहवास रहे ॥
नहीं चाह है किसी वस्तुकी,
जब तेरा अधिवास रहे।
आँखोंमें हँसता मुख तेरा,
मनमें प्रेम हुलास रहे ॥
मेरे लिये स्वर्गसे सुन्दर, यह जीवन, जीवन हो।
तेरे शब्द-शब्दसे प्रतिपल, सुरभित मेरा मन हो ॥

बाबू धर्मचन्द खेमका "चन्द्र"

प्राण

बाबू वासुदेवशरण अग्रवाल एम० ए०

वेदों और ब्राह्मणोंमें प्राणका बहुत विस्तारसे वर्णन आया है। प्राणके वशमें सारा ब्रह्माण्ड है। परमाणुसे लगाकर विराट् सूर्यतक प्राणकी शक्तिके बलसे सञ्चालित होते हैं। प्राण चेतनाचेतनका मूलाधार (Sub-Stratum) है। इस प्राणके अनेक नाम और रूप हैं। कभी प्राण अन्न बनकर मनुष्यके सामने आता है, कभी सूर्य-रश्मिके रूपमें वह मानवी स्वास्थ्यको आप्यायित करता है। प्राचीन ऋषियोंने प्राणके संरक्षणको ही उच्च अध्यात्म जीवनका हेतु माना है। जो व्यक्ति अध्यात्म-जगत्के अनुभवोंमें जितना अधिक प्रवृत्त होगा, वह उतना ही अधिक प्राणके संचय और संवर्धनके सूक्ष्म नियमोंको जाननेका प्रयत्न करेगा। यह सत्य है कि, प्राचीन ग्रन्थोंके पारिभाषिक वर्णन अब हमारे लिये दुरूह हो गये हैं और बिना आधुनिक भाषामें उनका महत्त्व जाने हम उन्हें फिर जाग्रत् जीवनके लिये महार्घ-तत्त्वमें कल्पित नहीं कर सकते। हमें जानना चाहिये कि, प्राण क्या चीज है, हमारे चतुर्दिक् जगत्में उसकी वास्तविक सत्ता है या नहीं, किस प्रकार हम प्राणके साथ निर्बाध सम्पर्क प्राप्त करके अमृतत्वकी ओर बढ़ सकते हैं, कौनसा जीवन अपनी गति-विधिसे प्राणकी वृद्धि करता है और किस तरहके रहन-सहनसे हम प्राणको खोकर निष्प्राणता (Exhaustion) की ओर चले जा रहे हैं। प्राण-विद्यामें पारङ्गत ऋषि और आचार्य लोगोंने जिस आश्रम-प्रणालीकी व्यवस्था की थी, उसमें रहकर विद्यार्थी इस प्रकारकी रहन-सहन सीखते थे, जिसके द्वारा छोटे-से-छोटे कर्म द्वारा वे जीवनके चरम ध्येय अमृतत्व-प्राप्तिकी ओर ही अग्रसर होते थे। आज हम प्राण-विद्याके रहस्यको भूले हुए हैं; इसीलिये आसन, वसन, विहार, आहार, वार्तालाप, इन सब कार्योंके द्वारा प्राणवान् होनेकी कलाको नहीं जानते।

अपने चैतन्य जीवनकी अपेक्षासे जब हम अपने चारों ओर विस्तृत जगत्के अनेक पदार्थोंको देखते हैं, तब हमें एक विलक्षण विभिन्नताके दर्शन होते हैं। कहीं सूर्य अपनी रश्मियोंसे भुवनोंको आलोकित कर रहा है, कहीं स्वच्छ वायु चल रही है, कहीं निर्मल सरोवरोंमें जलका सञ्चय है, कहीं वनस्पति और फलोंके समुदाय पुञ्जीभूत हैं। इन विभिन्न वस्तुओंमें एकता करानेवाला कौन है? कौन इन सबके मूलमें छिपकर जलको भी शरीरके लिये उसी प्रकार आवश्यक बनाता है, जिस प्रकार सूर्य-प्रकाश, दिव्य वायु और मधुर फलोंको। वह शक्ति, जो सबमें अन्तर्निहित रहकर सबकी विभिन्न मूर्तियोंमें एकता स्थापित कर रही है, प्राण है। वस्तुतः सूर्य क्या है? शक्तिका एक मूर्त्त प्रकार है (Materialised form) कहीं इस शक्तिने मेघ-धान्तरोंका रूप धारण किया है, कहीं नाना सुस्वादु व्यञ्जन भोगोंका रूप धारण कर हमारे सामने प्रकट होती है। परन्तु विज्ञानी लोग विभिन्नतासे मोहित नहीं होते। उन्होंने ध्यान-योग या विज्ञान-योगसे इस बातका निश्चय कर लिया है कि, अनेक रूपोंमें विराजनेवाली शक्ति मूलमें एक ही है। उसकी संज्ञा विद्युत् (Electricity) है।

भारतीय मनीषियोंने जीवन-दायिनी महा शक्तिको प्राणकी उपाधि दी है। यह प्राण वनस्पति-रूपसे शरीरमें प्रविष्ट होता है। वहाँ रासायनिक उपायोंसे भस्मीभूत होकर एक विशिष्ट रासायनिक शक्ति उत्पन्न होती है, जो शरीर-स्थितिका प्रधान हेतु है। इसीका नामान्तर प्राण या (Metabolism) है। बिना इस मौलिक शक्तिके व्यक्ति निष्प्राण-सा बना रहता है। वनस्पति-रूपमें जिस प्राणकी मूर्तिके हमें दर्शन होते हैं, उसका पूर्व स्रोत क्या है? हम जानते हैं कि, मेघ जिस समय गरज-गरजकर पृथिवीको जलाप्लावित करते हैं,

इस समय जलके रूपमें प्राण ही इस पृथिवी-तलपर अवतीर्ण होकर ओषधि—वनस्पतियोंको वीर्यवती बनाता है। यदि एक साल भी मेघ इस प्राण वर्षासे पराङ्मुख हो जायँ, तो वसुन्धरा कहलानेवाली पृथिवी वन्ध्या हो जाय। प्रावृट् कालमें इस प्राणकी बाढ़से सभी चराचर कैसे प्रमुदित होते हैं! सब नये-नये रूप साजकर प्राणके स्निग्ध मेघके साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करते हैं। इस वर्षा-कालीन प्राणकी बाढ़का अत्यन्त चमत्कारिक वर्णन कालिदासकृत 'मेघदूत' काव्यमें है। कालिदासने अथर्ववेदके प्राण-सूक्तके विराट् तत्त्वको अपनी सहस्रमुखिनी प्रतिभासे आत्मसात् करके मेघदूतके रूपमें जन्म दिया है। मूर्त पदार्थोंसे परे उनके प्राणात्मक स्पन्दन या संगीतको अवगत कर लेना ही कविकी क्रान्तदर्शिता है। इसी उच्च भूमिकाका साक्षात्कार करके अथर्ववेदके ऋषिने एक अमर गीतका सूत्रपात किया है—

"प्राणाय नमो—यस्य सर्वमिदं वशे,

यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥"

'आओ, सब मिलकर उस प्राणकी उपासना करें', जिसके वशमें सब कुछ है, जो सबका ईश्वर है, जिसके बलपर सब कुछ स्वरूपमें ठहरा है।'

जो प्राण मेघरूपमें कड़कता और गरजता है, उस चमकने वाले और बरसनेवालेको हमारा नमस्कार हो। उसके अभिक्रन्दनसे औषधियाँ गर्भ धारण करतीं और नानारूपोंमें उत्पन्न होती हैं। ऋतुकालमें गर्जनशील प्राणके अवलोकनसे पृथिवीपर कौन मोद-संपन्न नहीं होता ? पशु भी उस वृष्टिरूपधारीके स्वागतसे मग्न होते हैं कि, अब हमारी बढ़ती होगी। औषधियाँ प्राणसे सिञ्चित होकर कहने लगीं—'देव, तुमने हमारी आयुको बढ़ाया और हमें सुरभित कर दिया। आते-जाते, उठते-बैठते सब रूपों और अवस्थाओंमें प्राणका स्वागत है। हे प्राण, तुम्हारे प्राण और अपान (Positive-Negative) दोनों रूपोंको प्रणाम है। पूर्व और पश्चिम दोनों सन्ध्याओंमें तुम्हारे ही द्विविध रूपोंकी ख्याति होती है। हे प्राण, तुमने जिसको अपना प्रिय धाम बनाया हो, जिस मेघजमें तुम सान्द्र होकर घनीभूत हुए हो, उसीके द्वारा हमारे आयुष्यकी वृद्धि करो।' प्राण सब प्रजाओंमें अनुप्रविष्ट रहता है, चेतनाचेतनमें सर्वत्र उसका वास है। जब मृत्यु आती है और अमृतत्व विषसे अभिभूत हो जाता है, तब भी उसे प्राणकी ही एक अपचीयमान कलाके रूपमें देखो। देवता लोग, समस्त इन्द्रियके स्वामी देवगण प्राणको ही चाहते रहते हैं। (उनको इच्छा होती है कि, हम प्राणसे अमर बनकर सहस्र वर्षों तक ययातिके समान भोग भोगते रहें)। सत्य-शीलको प्राण ही द्युलोकका भागी बनाता है। प्राण विराट् है, सबका नियामक है। प्राण ही सूर्य और चन्द्रमा है, प्राणका ही नाम प्रजापति है। व्रीहि और यव प्राण-पात्र केही रूप हैं। उनको पचानेवाला अनड्वान् भो प्राण ही है। पुरुष गर्भमें प्राणापानके द्वन्द्वसे विचेष्टित होता है प्राणकी ही प्रेरणासे मनुष्य जन्म लेता है दक्षिणसे उत्तरको चलनेवाली मातरिश्वा नामक वायु, जिससे संयमी लोग ऊर्ध्वरेता बनते हैं, प्राणका ही रूप है। भूत और भवि-ष्यत् नामक कालसे परिच्छिन्न वस्तुएँ प्राणके ही अपचयोपचयके रूप हैं। अन्नोंके मूल-रस (Metabolism) को स्थिर करनेवाली दिव्य (सूर्य चन्द्रादि) और मानुषी (ओषधि-वनस्पतियाँ) चिकित्साएं प्राणकी ही प्रेरणाके फल हैं। प्राणकी वृष्टिसे ओसको धारण करनेवाली ओषधियाँ जन्म लेती हैं। प्राण जिसमें रहता है, जो उसके दिव्य धाम हैं, सब उसकी उपासना करते हैं। सब प्रजाएँ प्राणको चाहती हुई, उसकी प्राप्तिके लिये, बलिका आहरण करती हैं और प्राणके सन्देशको सुनने-समझनेवालेकी भी पूजा करती हैं। रेतोरूपमें प्राण गर्भमें जाकर बारम्बार पिता-पुत्रके चक्रसे घूमता है। उसकी शक्तियोंके अनेक रूप हैं। प्राणका समस्त कार्य प्रेङ्खवत् (Pendulum-wise) होता है। यथा प्राणाधिपति हंस या सूर्य जिस समय इन लोकोंको प्राणरिक्त करके चला जाता है, वह केवल एक पैरको हटाता है; उसका अपानरूप दूसरा पैर इन्हीं लोकोंमें

प्रतिष्ठित रहता है, जिसके कारण वह फिर यहाँ प्रवर्तित होकर आता है। यदि वह अपने एक पदको भी हटा ले, तो अद्य-श्व अथवा रात्रि-दिनका क्रम व्युच्छिन्न हो जाय। अष्ट चक्रोंमें वितत सहस्ररूप प्राण वस्तुतः एकनेमि है। इसके प्रवृत्त होनेकी दिशा प्राची है और निवृत्त होनेकी अवस्थाका नाम प्रतीची है। प्राची-प्रतीचीके द्वन्द्वरूपमें व्यक्त प्राण केवल अर्धांश मात्र है। यह समस्त ब्रह्माण्ड अक्षर प्राणके अर्द्ध भागसे निर्मित हुआ है। उसके अवशिष्ट अर्द्ध भागको कोई नहीं जानता। चेष्टमान विश्वके स्वामी प्राणोंको नमस्कार है। क्षिप्रधन्वा अर्थात् सपदि कार्यमें प्रवृत्त प्राण उपास्य है। प्राण अतन्द्रित होकर रहता है, वह ब्रह्मसे संमनस् होकर कार्य करता है, वह सोते हुओंमें जागनेवाला महारथी है, उसके सो जानेपर फिर कोई नहीं सुनता। हे प्राण, हमारा तुम्हारा वियोग कभी न हो। तुम जलोंमें गर्भकी भाँति अन्तर्हित सूक्ष्म रूप हो, मैं तुम्हें अपने अन्तरमें बाँधकर (आयाम करके) अर्थात् कुम्भित करके रखता हूँ।' (अथर्ववेद, प्राण सूक्त ११।४)

विश्वव्यापी जीवन-शक्ति (life-force) के वैज्ञानिक विवेचनमें जो कुछ भी कहा जा सकता है और तत्सम्बन्धी जो सनातन नियम हैं, उनका समावेश एक सुन्दर उत्साहप्रद गीतमें बड़े ही कौशलसे ऋषिने किया है। पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोकमें, चर और अचरमें, भूत, भविष्य, वर्तमानमें, पूर्व और पश्चिममें, विराट् जगत् तथा अध्यात्म जगत्में सर्वत्र प्राणका जो अनन्त विस्तार है, वह सूत्र-सम मनोहारी रूपमें गाया गया है। इस प्राणके साथ तरंगित होना ही जीवन है, इससे वैषम्य ही मृत्यु है। यह जीवन प्राण सृष्टिकी मौलिक क्रिया है। स्थूल जड़ जगत्के पूर्व भी यह प्राणन-क्रिया स्पन्दित रहती है। योगी लोग ध्यानयोगसे इस प्राणको आत्मानुभवकी कोटिमें लाते हैं। इस प्राण या जीवन-शक्तिका संचय ही समाधि है। इससे व्यपेत रहना व्याधि है। जिन उपायोंसे और जिस प्रकारके मानसिक संकल्पोंसे प्राणकी वृद्धि होती है, वह समाधि-प्रक्रिया है। सात्त्विक लघु आहार, ब्रह्मचर्य, स्वल्प भाषण, विविक्त-सेविता, धैर्य, अक्रोध, शिव-संकल्प—ये सब समाधिके संवर्धक हैं। इनसे प्राणका आयाम (concentration) होता है। प्राणके हि[illegible] होनेसे अध्यात्म-प्रक्रियाएँ विशुद्ध होती हैं, अन्नमय [illegible] मनोमय दोनों कोष स्वस्थ होते हैं।

समाधिके विपरीत सब कर्म व्याधिके उत्पादक होते हैं। व्याधिसे शक्ति क्षीण होती है (Dissipation of Energy)। जिन कर्मोंसे प्राणकी हानि होती हो, वे [illegible] मृत्युकी ओर ले जाते हैं। चरम कोटिकी निष्प्राणता ही मृत्यु है। प्राण-संयुक्त जीवन अमृतत्व है। मृत्यु और अमृत [illegible] क्रियाएँ शरीरमें हर समय होती रहती हैं। देहमें [illegible] जीर्ण कोषोंकी मृत्यु हो रही है तथा नये स्वस्थ कोषों[illegible] निर्माण हो रहा है। मृत्यु और जीवनका द्वन्द्व प्राण[illegible] अहोरात्रके द्वन्द्वके समान, आयुके प्रत्येक क्षणमें चल[illegible] है। मृत्यु च्यवनकी क्रिया है। जीवन शरीरकी प्राण-शक्ति[illegible] जिसका वैदिक नाम वाज है, भरने अर्थात् भरद्वाज [illegible] नाम है। बस च्यवन और भरद्वाजके समन्वयसे जीवन[illegible] स्थिति है।

च्यवन-प्रक्रिया = katalytic process भरद्वाज-प्रक्रिया = Metabolic process शरीरकी वृद्धि अर्थात् चालीस[illegible] आयुतक भरद्वाज प्रक्रिया प्रधान रहता है अर्थात् जि[illegible] शक्तिके ह्रासकी अपेक्षा उसकी वृद्धि अधिक होती है। वृद्धि[illegible] चरम सीमा होनेपर कुछ समयतक समता और स्थिरता[illegible] रहती है। तदनन्तर च्यवन-प्रक्रिया बलवती हो जाती है। वैदिक परिभाषामें भरद्वाज-प्रक्रियाका नाम प्राण और च्यवन[illegible] शीलताका नाम अपान है। प्राणमें अमृत और अपानमें मृत्यु[illegible] निवास है। ऐतरेय-उपनिषद्में लिखा है—

"मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशत्।"

अर्थात् मनुष्योंके नाभिप्रदेश (Lumbar region) [illegible] मृत्यु अपान वायुके रूपमें, स्थित है। प्राणापानकी [illegible]

जानकर सतत प्राण-संवर्धनकी ओर दत्तचित्त होना हम सबका परम कर्तव्य है ।

प्राणके समानार्थक शब्द वाज, वीर्य, अमृत, सोम आदि हैं। वीर्य प्राणका परम धाम है। प्राण या अमृतत्वकी हानि करनेवालोंमें अब्रह्मचर्य सर्वातिशायी है। इसलिये प्राण अमृत और वीर्य समानार्थक हैं। यह ध्रुव सत्य है कि, बिना मानसिक ब्रह्मचर्य या इन्द्रिय-निरोधके हम अपने चारो ओर भरे हुए महाप्राणका अनुभव कर ही नहीं सकते। आध्यात्मिक मृत्युको प्राप्त करानेवाला भी अब्रह्मचर्य ही है। वेदों और ब्राह्मणों तथा पुराणोंकी ७९ प्रतिशत कथाओंका एक मात्र ध्येय ब्रह्मचर्य-सिद्धि, अथवा शिवात्मक संकल्पोंके द्वारा योग-निष्पत्ति है। वीर्य ही सर्वोत्तम रत्न या हिरण्य है। इसके शरीरमें सुरक्षित करनेकी विधि ही सोमपान है। इन्द्र या आत्माको सोमपान बहुत प्रिय है। सोमको पेय बनानेसे अमृतत्वकी प्राप्ति होती है। ब्रह्मचर्यकी निर्विकार पूर्णतासे शरीरके भीतर एक अद्भुत शान्तिका प्रादुर्भाव होता है। यही सोमात्मक सुधा है, जिसका देवता या इन्द्रियगण पान करके आप्यायित होते हैं। गायत्रीके सोमाहरण, शिवके मदन-दहन तथा स्कन्दके तारकासुर-वधके उपाख्यानोंमें बाह्य भेद होते हुए भी एक ही अध्यात्मतत्त्वका निर्देश किया गया है ।

प्राण यद्यपि एक है; तथापि उपाधि-भेदसे उसके अनेक भेद, वैदिक साहित्यमें, कहे गये हैं। कहीं प्राण और अपान नामसे उसके दो भेद कहे गये हैं। ऐसे स्थानोंमें प्राणकी मौलिक द्विविधताकी ओर संकेत किया गया है। यह द्वन्द्व समस्त विश्वमें फैला हुआ है। स्त्री-पुरुष-भेदसे यह मनुष्य, पशु तथा वनस्पति जगत्‌में समान रूपसे व्याप्त है। जहाँ शक्ति है, वहाँ द्वैत है। बिना द्वैतके कर्मकी अभिव्यक्ति असम्भव है। परमाणुकी कुक्षिमें भी यह द्वन्द्व Proton और Electron के रूपमें वर्तमान है ।

बहुत स्थानोंपर प्राणके पाँच भेद कहे गये हैं। पाँच प्राण पञ्च इन्द्रियोंकी संचालक शक्तियाँ (Motor forces) हैं। जहाँ प्राणके दस भेद हैं, वहाँ ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंके द्विविध होनेसे पञ्चप्राण ही दस प्रकारसे कहा गया है। ये दस प्राण "दशवीराः" कहे गये हैं। आत्मा अथवा जाग्रत् प्राणशक्ति इन सब इन्द्रियोंपर अधिष्ठात्री रूपसे शासन करती है। वह मुख्य प्राण इनका पति है और दस प्राणोंको उपचारसे उसका पुत्र कहा जाता है। पाँच प्राणोंको अलंकारसे "पञ्च जनाः" या "पञ्चपुत्राः" भी कहा गया है। इसी तरह दस प्राणोंको दस राजा भी कहा गया है, जो सुदास या आत्मा या इन्द्रसे हार जाते हैं। इन्द्र और प्राणके सम्बन्धको हमने "गंगा" के "वेदांक" में "इन्द्र" शीर्षक लेखमें विशद रीतिसे समझाया है। इन्द्रका सारथि मातलि पुराणोंमें प्रसिद्ध है। यह मातलि मातरि+श्वाका ही दूसरा रूप है। मातरिश्वा प्राण सब प्राणोंमें उत्कृष्ट है। दक्षिण अर्थात् स्वाधिष्ठान चक्रसे उत्तर अर्थात् आज्ञाचक्र या मस्तिष्ककी ओर चलनेवाली वायु मातरिश्वा प्राण है। मातरिश्वाके अनुकूल हुए बिना कोई मनुष्य कदापि ब्रह्मचारी नहीं हो सकता। मातरिश्वा प्राण-की सहायतासे ही आत्मा विजयी होता है। मातलि जैसे सुसारथिसे इन्द्र असुरोंका पराभव करते हैं।

बहुत जगह प्राणोंको 'सात' ही कहा गया है। यजुर्वेदके ३४ अध्यायके ९९ वें मंत्रमें प्राणोंको सप्तर्षि कहा गया है। इस मंत्रके देवता सप्त अध्यात्म-प्राण हैं। ये सप्तर्षि इस शरीरस्थ यज्ञको निर्विघ्न चला रहे हैं। सप्तर्षियोंसे तात्पर्य सप्त-शीर्षण्य प्राणोंसे है अर्थात् दो कान, दो आँख, दो नाक और एक मुख। इन सातोंके केन्द्र मस्तिष्कमें हैं और उन केन्द्रोंसे संवेदना या आज्ञा पाकर ये सातों काम करते हैं। पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोकके साथ इन्हीं सातोंका तार जुड़ा हुआ है; इसलिये इन्हें बहुत बार "त्रिः सप्त" या सातत्रिक (इक्कीस) भी कहा गया है। पुरुष-सूक्तमें कहा है कि, पुरुष-रूपी पशुको यज्ञमें बाँधनेके लिये देवोंने सात परिधि और त्रिः सप्त या इक्कीस समिधाएँ बनायीं।

"सप्तास्यासन् परिधयः त्रिःसप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥"

सात शीर्षण्य इन्द्रियोंके जो केन्द्र मस्तिष्कवर्ती (Cerebrum) हैं, उनकी बाह्याभ्यन्तरिक संवेदनाएँ (Afferent and efferent impulses) अन्तरिक्ष लोक (Spinal bulb) और पृथिवी (Spinal cord) के द्वारा संपादित होती हैं। मनुष्यका केन्द्रीय नाड़ी-जाल (Central nervous system) पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ (Spine bulb of cortical layer) के सहयोगसे ही कार्यक्षम होता है। ये २१ समिधाएँ जब समिद्ध होती हैं, तभी बुद्धिरूपी सूर्यकी प्रकाश-रश्मियाँ खिलती हैं। ऐसा भी कहा गया है कि, इस देहकी तनूनपात् अग्नि सप्तचितियोंके मध्यमें रखी हुई है। रससे रेततक सात चितियाँ (Layers) हैं, जिनमें शरीरका जमदग्नि metabolic heat सुरक्षित रहती है।

उपनिषदोंका सिद्धान्त है कि, प्रत्येक छोटी-बड़ी वस्तुका एक स्पन्दनात्मक संगीत (Rhythm) या उद्गीथ होता है। यह ब्रह्माण्ड ओ ३म्‌के त्रिकात्मक उद्गीथके अनुसार चल रहा है। इसी तरह प्रत्येक वस्तुके उद्गीथ (Music या Rhythm) को पहचानना बहुत आवश्यक है। मनुष्य शरीर, व्यक्ति, जाति, देश और राष्ट्र सबका अपना-अपना उद्गीथ हुआ करता है। प्रत्येक इन्द्रियका भी पृथक् उद्गीथ (Music) है। छान्दोग्य उपनिषद्‌की उद्गीथ-विद्यामें कहा गया है कि, सब इन्द्रियोंका अधिष्ठाता जो मुख्य प्राण है, उसके उद्गीथ या सङ्गीतको सूक्ष्म दृष्टिसे पहचानकर जो उस प्राणको वशमें कर लेता है, उसकी आसुरी वृत्तियाँ विनष्ट हो जाती हैं अर्थात् इन्द्रियोंकी उत्पथ पर भटकनेकी वृत्ति शान्त हो जाती है [छा० उ० १।२।७]। इसी छान्दोग्य उपनिषद्में सयुग्वा रैक्व ऋषिने राजा जानश्रुतिको उपदेश दिया है [छा० उ० ४।३।१], जिसमें यह बताया है कि, वाक्, चक्षु, श्रोत्र और मनका जो सुप्त आधार [Sub conscious sub stratum] है, वह प्राण ही है। जाग्रत् अवस्थाकी इन्द्रियगत चेतनाओंको अपने में संवृक्त करके शरीरमें गुहाशयास्थित होनेवाला मुख्य प्राण अन्य सब इन्द्रियोंका संवर्ग [Minglor absorbent] है।

प्राचीन अध्यात्म-ज्ञानी लोगोंने जीवनके जिस क्रमका विकास किया था, उसमें प्राणकी कम-से-कम हानि होती थी। आज बहुत लोग दुःखके साथ इस बातका अनुभव कर रहे हैं कि, बहुत शोरसे प्राणोंकी हानि होती है। (heavy strain on nerves) पश्चिमने जिस अयस्मयी सभ्यताका जाल बिछाया है, उसमें लय-ताल-हीन कर्कश निनादोंने मनुष्यकी शान्तिको ग्रस लिया है। रेलों, मोटरों, मशीनोंने कुछ भौतिक लाभ देकर मानसिक स्वास्थ्य और शान्ति (Mental rhythm and poise) की जड़ खोखली कर दी है। प्राण-विद्यासे अभिज्ञ लोग इस प्रकारकी दानवी ध्वनियोंका आविष्कार करनेसे पूर्व सौ बार सोच लेते हैं। ऋषियोंने जंगलों और बस्तियोंका समन्वय जिन आश्रमोंमें किया था, उनमें आहार, विहार, वार्तालाप, विचार, वस्त्र, उपकरणादि, सब बातोंमें प्राण-संवर्धनके तत्त्वपर सबसे अधिक ध्यान दिया था। प्राण-विद्याके आचार्य ही आश्रमोंके संस्थापक थे।

जयपुरकी सैर

बाबू धर्मचन्द्र खेमका

एक मित्रके साथ मैं जयपुरकी सैर करनेके लिये, लाडनूसे, एक दिन, रातकी गाड़ीसे, चल पड़ा। सवेरे जब हमारी आँख खुली, तब कुचामनरोड स्टेशनपर गाड़ी ठहरी हुई थी। जोधपुर रेलवेकी हद यहींतक है। यहाँसे बी० बी० सी० आई० रेलवे शुरू होती है।

ठण्डी-ठण्डी हवा खिड़कियोंमेंसे आकर डब्बेमें भर रही थी, देखते-देखते गाड़ीके दोनों तरफ नदीसी दिखलाई देने लगी। यहाँसे एक स्टेशन छोड़कर दूसरा स्टेशन साँभर पड़ता है। जोधपुर और जयपुरकी सीमाओंपर आयी हुई यह प्रसिद्ध "साँभर-झील" थी। इसका पानी सुखाकर नमक बनाया जाता है। दृश्य बड़ा ही सुहावना और मनोमोहक था। दोनों तरफ पानी भरा हुआ था और बीचमें गाड़ी मन्द गतिसे इठलाती हुई जा रही थी। कभी एक ओर पानी कम होता था, कभी दूसरी तरफ ज्यादा। कितनी दूर तो एक ओर पानी-ही-पानी नजर आता है। कहीं-कहीं पानीके बीचोबीच नमककी चट्टानें हैं और उनपर पड़ती हुई बाल रविकी सुनहरी किरणें स्वर्णका काम कर रही थीं। मालूम होता था, जैसे सोनेका पहाड़ खड़ा हो। यह नमकदार चट्टानें हैं। जब वर्षा चट्टानोंको धोती है। तब नमक झीलमें चला आता है। कहीं-कहीं पानी क्यारियोंमें भरा पड़ा था। बीच-बीचमें रेलकी छोटी-छोटी पटड़ियाँ पड़ी हुई थीं, उनपर छोटी-छोटी गाड़ियाँ, नमक ले जानेके लिये, खड़ी थीं। कोई-कोई क्यारियाँ जम भी गयी थीं। कुछ सूखनेको थीं। यहाँसे नमक ला-लाकर साँभर-स्टेशनके पास उसका पहाड़ खड़ाकर दिया जाता है। वहाँसे काट-काटकर वह जगह-जगह भेजा जाता।

साँभर जानेके बाद सरदी कम हो गयी। फुलेरा-स्टेशनपर हम लोग अजमेरसे आनेवाली गाड़ीमें बैठ गये। यह डाक गाड़ी थी। यहाँसे खुली हुई सीधी जयपुर जाकर ठहरती है। जब कि, गाड़ी स्टेशनसे बहुत दूर रहती है, तभी नाहरगढ़-पहाड़ी किला दिखायी देने लगता है। देखते-देखते अन्य छोटी बड़ी इमारतें भी दिखलाई देने लगी और ठीक ११ बजे गाड़ी जयपुर स्टेशनपर पहुँच गयी। जिस जयपुरको देखनेके लिये आँखें वर्षोंसे अन्धी हो रही थीं, वह जयपुर अब आखोंके सामने था।

स्टेशनके पास पञ्चायती धर्मशाला है। यहाँ बहुत सुविधा है। अच्छी जगह है। हम लोग यहीं ठहरे। स्टेशनके नजदीक होनेके कारण इस सड़कपर दिन-रात खूब चहल-पहल रहती है। एका और गाड़ी हर वक्त मिलता है, चाँदपोल, चौपड़ और जौहरी-बाजार आदिकी आवाज लगाते हुए एका और गाड़ीवाले चलते रहते हैं। यहाँसे प्रसिद्ध जौहरी-बाजार चौपड़ १॥—२ मील है। फी सवारी ~), ~)॥ लगता है।

जौहरी-बाजारका एक एका कर हम लोग बैठ गये। जिस सड़कपर हम लोग जा रहे थे, वह खूब लम्बी है। पहले सड़कोंपर गैसकी लालटेनें लगी हुई थीं, अब तो बिजलीकी बत्तियाँ लग गयी हैं। जगह-जगह स्वच्छ जल-कल लगे हुए हैं। चाँदपोल दरवाजेके पास ही सामने पागलखाना है। प्रत्येक दरवाजोंके पास चुंगी चौकी बनी हुई है, जिसे यहाँवाले 'राधारी' कहते हैं, यहाँ सरकारी कर्मचारी खड़े रहते हैं और आने-जाने वालोंके पास कुछ सामान दीख पड़नेपर गाड़ी खड़ी कराके चुंगी ले लेते हैं। कलकत्ता, बम्बई आदि बड़े-बड़े शहरोंकी तरह यहाँ भी चौराहेपर, खास उनके लिये बनी हुई जगहपर, पुलिस मैन खड़े रहते हैं। ये गाड़ियों और घोड़ोंकी भीड़से बचानेके लिये सीटी बजाकर सावधान करते हुए हाथ बताते रहते हैं।

शहरके चारो ओर करीब ३ मील लम्बा और १॥ मील चौड़ा, प्रायः २० फोट ऊँचो और ९ फीट मोटो, सुन्दर शहरपनाह है। इसका निर्माण संवत् १७८४ में हुआ था। इसपर गोली चलानेके लिये ऊँची-ऊँची मर्वरियाँ बनी हुई हैं। शहरपनाह में ७ दरवाजे हैं। उनके नाम क्रमशः पूर्व सूर्य्यपोल, पश्चिम चाँदपोल, आमेर दरवाजा, गंगापोल, दक्षिण किशनपोल, संगानेर दरवाजा और घाट-दरवाजा है। शहरकी लम्बाई २ मीलसे अधिक और चौड़ाई लगभग १। मील है।

दरवाजेके भीतर जाते ही सर्वाङ्ग-सुन्दर जयपुरकी सुन्दरता दिखलाई देने लगती है जयपुर बड़े सुन्दर ढङ्गसे बसा हुआ, राजपूतानेमें यह सबसे बड़ा प्रसिद्ध ऐतिहासिक शहर है। रचना सौन्दर्यमें इसकी जोड़का हिन्दुस्थान भर-में कोई दूसरा शहर नहीं है। राजपूतानेमें तो यह कहावत प्रसिद्ध है कि—

"जो नहीं देख्यो जयपुरियो, जगमें आकरके करियो ?"

अर्थात् जिसने जगमें आकर भी जयपुर नहीं देखा, उसने क्या किया! कुछ भी नहीं देखा। सूत-बन्ध सीधे प्रायः एकसे, एक ही रंगके, न छोटे, न बड़े, सैकड़ों मकान चौपड़-घटी सड़कके चारों ओर बड़े ही सुन्दर और सुहावने मालूम पड़ते हैं। पक्के पत्थरोंसे पाटी हुई साफ-सुथरी सड़कें, उसके दोनों तरफ पक्की फुट पाथ और ऊपर श्रेणी-बद्ध दूकानें खूब फबती हैं। शहरमें जितने मकान हैं, उनका सारा बाहरी भाग सदा गुलाबी रंगसे रंगा रहता है। कहीं-कहीं गुलाबी रंगपर सफेद रंगसे की हुई चित्रकारी बरबस अपनी ओर आँखोंको आकर्षित कर लेती है।

पश्चिमसे चाँदपोल सड़क, त्रिपोलिया बाजारसे होती हुई पूर्व रामगंज बाजारकी तरफ जाती है। दक्षिण जौहरी बाजार, उत्तर हवामहल बाजार सड़क और शहरके बीचमें मानिक चौकर, शहरके बीचसे, पश्चिमसे पूर्वकी ओर जो सड़क गयी है, उस सड़कको काटती हुई थोड़ी-थोड़ी दूरके फासलेसे दो और सड़कें दक्षिणसे उत्तरकी ओर चली गयी हैं। इस तरह शहरके चौकाने ६ भाग बन गये हैं। इन सड़कोंमेंसे गलियाँ वृक्षकी शाखा-प्रशाखाओंकी तरह चारों तरफ फैली हुई हैं। यहाँकी कई प्रधान सड़कें १११ फीट चौड़ी और खूब लम्बी हैं। गलियाँ २८ फीट चौड़ी हैं। सड़कें एक सिरेसे दूसरे सिरेतक सीधो चली गयी हैं। इन सड़कों-में जहाँ-जहाँ दूसरी सड़कें आकर मिलती हैं, उस चौराहे-पर बहुत सुन्दर चौक बने हुए हैं। उनपर खड़े होकर देखनेसे चारों तरफका दूर-दूरतकका नयनाभिराम सुन्दर दृश्य दीख पड़ता है। सड़कके बीचों-बीच कहीं-कहीं देवी-देवताओंकी, छोटी-छोटी गुमटियाँ बनी हुई हैं। ये गुमटियाँ, जिस समय जयपुर बसाया गया था, उसी समयकी बनी हुई, अबतक अच्छी हालतमें जहाँकी तहाँ हैं। प्रत्येक सड़क और गलीकी मोड़पर उनके नाम हिन्दी और अँगरेजीमें लिखे हुए हैं।

कलकत्तेके किलेके मैदानमें "इसार-लाट' है। उसी तरह यहाँ भी शहरके बीचमें महाराज ईश्वरसिंहकी बनायी हुई इसार-लाट (स्वर्ग-शूल) नामक विशाल मीनार है। "इसार-लाट"से थोड़ी दूर त्रिपोलिया बाजारके कोनेपर जौहरी बाजार चौपड़ है, यहाँ हम लोग एक्का छोड़कर जौहरी बाजारकी बहार देखते हुए पैदल चल पड़े।

स्टेशनकी तरह इस बाजारकी चौपड़में भी एक्के, गाड़ियों, मोटरों और आदमियोंकी खासी भीड़ रहती है। यहाँ टैक्सी गाड़ियाँ कम हैं। उस चौपड़से आसपासके गाँवोंमें सवारी लेकर लारियाँ आती-जाती रहती हैं। जौहरी बाजारमें जौहरियोंकी दूकानें तो हैं ही, और भी प्रायः सभी चीजें बेचनेवालोंकी दूकानें हैं। खरीददारोंकी भीड़ भी अन्य बाजारोंसे इस बाजारमें अधिक रहती है। इस बाजारमें प्रसिद्ध मिठाईवालोंकी दूकानें भी हैं। मथुराके पेड़ेकी तरह यहाँका 'कलाकन्द' भी मशहूर है।

संगानिरी दरवाजेके बाहर रामनिवास बाग है महाराज रामसिंहने इसे अपने समयमें डाक्टर डि० शावेककी देख-रेखमें बनाया था। इसको बनानेमें चार लाख रुपये खर्च हुए थे। इसका विस्तार ७० एकड़में है। बागपर वार्षिक तीस हजार रुपये व्यय होते हैं। इसके चारों तरफ ९-६ फीट

ऊँची लोहेकी रेलिंग लगी हुई हैं और यथोचित स्थानोंपर बड़े-बड़े फाटक लगे हुए हैं।

पहले हम लोगोंने इस बागके पूर्व भागमें बना हुआ 'मेयो हास्पिटल' देखा। लार्ड मेयो भारतके भूतपूर्व वायसराय और महाराज रामसिंहके मित्र थे। उन्हींके स्मारक-रूपमें यह विशाल अस्पताल बना हुआ है। इसमें लार्ड मेयोकी एक धातुमयी मूर्त्ति भी खड़ी है। तरह-तरहकी बीमारियोंके रोगियोंके रहनेके लिये अलग-अलग वार्ड हैं। यहाँ बहुतसे रोगी रहते हैं। इलाज अच्छा होता है। व्यवस्था सुन्दर है।

इसके दूसरे फाटकसे भीतर जानेपर चिड़ियाखाना आता है, इसे देखनेके लिये पैसे नहीं देने पड़ते। इसमें प्रायः सभी देशोंके अनेक प्रकारके पशु-पक्षी और जीव-जन्तु पाले हुए हैं। उनके रहनेके लिये जगह-जगह बड़े-बड़े जंगले बने हुए हैं। यह चिड़ियाखाना बहुत बड़ा है।

इस बागके एक भागमें कर्नल जेकवका तजवीज किया हुआ एक पाँच मंजिला दर्शनीय विशाल भव्य भवन है। इसकी नींव सन् १८७६ ई० में प्रिन्स आफ वेल्स (स्वर्गीय सप्तम एडवर्ड) ने अपने हाथों डाली थी। उनके पिताके नामपर इसका नाम 'अलबर्ट हाल' पड़ा। यह भवन संग-मर्मरका बना हुआ है। उसीमें अजायब घर है।

अजायब घर देखनेके लिये टिकट नहीं लेना पड़ता। इस गवेषणापूर्ण वृहत् सुन्दर संग्रहालयकी शोभा देखते ही बनती है। अलभ्य और अद्भुत चीजोंकी प्रदर्शिनी है। यह इतिहास, अर्थशास्त्र, शिल्प और शिक्षा, इन चार भागोंमें विभक्त है। इसमें जो-जो वस्तुएँ हैं, सबको सूची पुस्तक भी यहीं मिलती हैं। भीतर जाते ही एक पथ-प्रदर्शक साथ हो जाता है। वह सभ्यतापूर्वक प्रत्येक वस्तुका नाम और वर्णन हिन्दी और अँग्रेजीमें बताता है। चीजें बड़े ही सुन्दर बड़े काँचेकी आलमारियोंमें सुरक्षित रूपसे सजायी हुई हैं। चीजोंके नीचे उनका नाम, उनके विषयकी अन्य ज्ञातव्य बातें हिन्दी-अंगूजीमें लिखी हुई हैं। दीवारोंपर बहुत ही सुन्दर और मनोहर चित्रकारी हैं। कहीं राजाओंके, कहीं महाभारत, रामायण और कहीं अन्य ऐतिहासिक बातोंके आधारपर बहुत बड़े-बड़े चित्र बनाये हुए हैं। चित्र-विषयक सारी बातें स्पष्ट हिन्दी भाषामें लिखी हुई हैं। इस भवनमें कभी-कभी यूनिवर्सिटीकी परीक्षा और दरबार भी हुआ करता है। कई विद्वानोंकी राय है कि, यह म्यूजियम विलायतके "साउथकेन्सिंगटन" के जोड़का है। इसका बहुमूल्य और विचित्र-विचित्र वस्तुओंका कोई कहाँतक वर्णन कर सकता है। वे तो देखनेसे ही मालूम हो सकती है। 'अवशि देखिये देखन योगू' कहावत इसके लिये रितार्थ है।

जिस समय हम लोग अजायब घर देखकर बाहर आये, उस समय पाँच बज रहे थे। यह समय इसके बन्द होनेका था। इस रमणीय बागकी बहार तो अब देखने योग्य थी। सड़कके किनारे-किनारे फूलोंके भारसे लदे हुए छोटे-छोटे पौधे और हरी-हरी पत्तियोंसे सुशोभित बड़े-बड़े वृक्ष देख-देखकर आँखें हरी होती हैं; तबीयत खुश हो जाती है। बागमें सर्वत्र फूले हुए फूलोंसे मनोमुग्धकारी मन्द-मन्द मीठी महक आ रही थी। यह काट-छाँट, बनावट, सजावट और सिखा-वटमें अवलोकनीय है। हँसते हुए छोटे-छोटे बच्चे और किलकारियाँ भरते हुए विद्यार्थी इधर-उधर खेल रहे थे। व्यायामके लिये बहुत अच्छी जगह है। फुटबाल, क्रिकेट, हाकी और टेनिस खेलनेके लिये इसमें जगह बनी हुई है। गर्मीमें यह बाग विशेष आनन्ददायक होता है। यह मरु-स्थलका नन्दन-कानन है। संध्या हो रही थी। आज हम लोग और कुछ नहीं देख सके। डेरेपर चले आये।

दूसरे दिन, दिन भरके लिये, तीन रुपयेमें एक एका कर गलता देखनेके लिये चल पड़े। रास्तेमें "श्रीमाधवबिहारी" मन्दिर पड़ता है। सुबह-सुबह पहले मुरली माधवका दर्शन कर, आगे बढ़नेका विचार कर, वहीं उतर गये। इस मन्दिर-की स्थापना संवत् १९८२ वैशाख शुक्ला दशमीको महाराज माधव सिंहके नामपर हुई थी। वर्तमान जयपुर नरेश महाराज मानसिंहके नामपर बनाया हुआ इसी मन्दिरके एक भागमें 'मानेश्वर महादेव' का मन्दिर है। स्वर्णका काम भी है'

राजपरिवार, कृष्णलीला और अन्य लीलाओंके भी बहुरंगे, बहुमूल्य चारु चित्र चतुर चित्रकारोंकी चमत्कारमयी कलमकी कारीगरीसे चित्रित किये हुए हैं। यह मन्दिर राज्यकी तरफ-से बना हुआ है। माधवविहारीके दर्शन कर बड़ी प्रसन्नता हुई। यहाँ और भी बहुतसे दर्शनीय देव-मन्दिर हैं।

जयपुरसे १॥ मील पूर्व दिशामें एक बड़ा भारी पहाड़ है। यह ३५० फीट ऊँचा है। इसकी तराईमें 'गलता तीर्थ' है यहाँ प्रतिदिन बहुतसे यात्री देखने और स्नान करनेके लिये आते हैं। प्राचीन कालमें गालव ऋषिने यहाँ आकर तपस्या की थी। उन्हींके नामपर इसका नाम गलता पड़ा। पहाड़की चढ़ाई जहाँ समाप्त होती है, वहाँसे देखनेपर जयपुरका दृश्य बड़ा ही सुहावना लगता है। यहाँ एक सूर्य-मन्दिर है। उसके चबूतरेके नीचे एक छोटा-सा कुण्ड है। इसमें सामनेके पहाड़से सदैव झरनेका पानी गिरता रहता है। यहाँ आनेवाले बहुतसे पुरुष यात्री इसमें नहाते हैं। इसके नीचे एक और खूब गहरा, इससे बहुत बड़ा कुण्ड है। इसके ऊपरवाले कुण्डका जल "गोमुख" से सदा गिरता रहता है। यह जनाना घाट है। यहाँ स्त्रियाँ स्नान करती हैं। इसकी दाहिनी ओर गालव ऋषिकी गुफा है। यहाँ उनका चित्र रखा हुआ है। यहाँ कई जल कुण्ड और देव-मन्दिर हैं। बन्दर भी बहुत है। कुछ खानेको डालनेपर पहाड़की चोटीपरसे, उछलते-कूदते हुए निकल-निकलकर आ जाते हैं। यहाँका प्राकृतिक दृश्य बड़ा सुन्दर है। यहाँ आनेके लिये सवारीके हाथी राज्यकी तरफसे किरायेपर मिलते हैं।

महकमा-खाससे आमेरके महल देखनेके लिये अज्ञापत्र लेना पड़ता है। रास्तेमें हवा-महल दीखता है। यह महल तो नहीं, पर सहस्रों छिद्रों और खिड़कियोंसे युक्त बहुत सुन्दर और देखने योग्य दीवार है।

आमेर जयपुरसे ५ मील पूर्वोत्तर पर्वतकी तलहटीमें बसा हुआ है। इसके पुराने खंडहरको देखनेसे मालूम होता है कि, किसी समय यह भी बहुत बढ़िया सुन्दर शहर रहा होगा। इस समय तो वीरान हो रहा है। फिर भी पुरानी राजधानी होनेके कारण, पुराने महलोंकी इमारतें अब भी अवलोकनीय हैं। यह सन् १७२८ ई० तक जयपुरकी राजधानी थी। मोटरों और गाड़ियोंके जानेके लिये अब एक और नया रास्ता पहाड़ काटकर बनाया गया है।

दिलारामबाग और सुखनिवासबाग बड़े ही सुन्दर बाग हैं। प्राचीन समयमें तो इनमें तरह-तरहके फलों और फूलोंके पेड़ थे। अब ये बाग विलायती ढंगपर बनाये जा रहे हैं। इसी बागीचेमेंसे महलमें जानेका रास्ता है। महल पहाड़की ऊँचाईपर बने हुए हैं। ऊपर जानेके रास्तेमें लाल पत्थर बिछाये हुए हैं। एक बड़े आँगनसे सीढ़ियोंके ऊपर चढ़ते ही वहाँ बैठे हुए राज्य-कर्मचारियोंको अज्ञापत्र दिखलाना होता है। यहाँतक बिना आज्ञापत्रके भी आकर देख सकते हैं। देशी जूते यहीं खोल देने पड़ते हैं। जो अंग्रेजी जूते पहने हुए हों, वे खुशीसे जा सकते हैं। देशी जूतोंकी देशी राज्यमें यह दशा ! खुदा खैर करे !!

मुख्य द्वारमें प्रवेश करते ही सामने सुन्दर सभा-भवन (दीवाने-आम) दिखलायी देता है। यह सभा-भवन देहली-के दीवाने आमके जैसा ही बना हुआ है। इसके भीतरी सारे खम्भे सफेद पत्थरके हैं और बाहर लाल पत्थरके लगे हुए थे। कहते हैं, देहलीके मुगल सम्राट् जहाँगीरने इसका हाल सुनकर कहा—'दीवाने आमके जैसी इमारत न बननी चाहिये। आमेरके उस दीवाने आमको नेस्तोनाबूद कर दो।' यह समाचार जब आमेर-नरेशको मिला, तब उन्होंने लाल पत्थरके खम्भोंपर चूनेका 'प्लास्टर' करा दिया। वह अबतक ज्यों-का त्यों है। एक खम्भेपरसे थोड़ा-सा हटा दिया गया है, जिससे इस ऐतिहासिक घटनाकी सत्यता प्रकट होती है। इस सभा-भवनका नाम 'मजलस-विलास' है। इसके भीतरी भागका पुराना रंग खराब हो गया था। अब नये ढँगका रंग करा दिया गया है।

महलके प्रवेश-द्वारको गणेशपोल कहते हैं। इसपर गणेशजीकी मूर्त्ति और रंगीन बेल-बूटोंका काम है। इस महलका काम लगभग १६०० ई० में महाराज मान सिंहने

शुरू किया था। महलोंमें जगह-जगह राजमिस्त्रीकी कारीगरीका बड़ा बढ़िया काम है। सुखमन्दिरमें एक पुराने जमानेका ताँगा पड़ा हुआ है। उसपर बैठकर रानियाँ महलमें घूमती थीं। इसके पहियोंपर मीनार लगी हुई हैं, जो आजकलके रबर टायरोंके जैसी हैं। इसमें एक छोटा-सा सुन्दर जनाना बाग है। उसमें बहुतसे फव्वारे लगे हुए हैं। सुहागमन्दिरमें पत्थरोंकी जालीका बहुत सुन्दर काम है। यहाँ बैठकर रानियाँ सभा-भवनकी कार्य्यवाही देखती थीं। नीचेसे देखनेपर भीतरकी कोई चीज दिखलायी नहीं देती। जयमन्दिरके जनाने कमरोंमें देशी कारीगरीकी करामात देखने लायक है। नीचेके भागमें सङ्गमर्मरका बना हुआ बादशाही ठाट-बाटका, सुन्दर स्नानागार है। एक जगह सङ्गमर्मरके खम्भोंपर फूल-पत्तियाँ खुदी हुई हैं। फूलके किनारेमें हाथ रखनेपर वह बिच्छूकी शकलमें बदल जाता है और पत्तियाँ तितलियोंके रूपमें नजर आती हैं, कारीगरकी कारीगरी दाद देने लायक है। जयमन्दिर और शीशमहलमें काँचका जड़ाऊ काम बहुत सुन्दर है। महल बागसे घिरा हुआ है। इसमें एक छाया-घड़ी है, वह बराबर समय बताती है। कभी एक सेकेण्डका भी फर्क नहीं पड़ता। लौटते वक्त इसी महलके एक भागमें बने हुए कालीमन्दिरमें कालीजीकी विशाल मूर्त्तिके दर्शनकर हम कृत्यकृत्य हो गये। इन महलोंसे ४०० फीट ऊँचा पहाड़पर जयगढ़ नामक आमेरका विशाल दुर्ग है। इस पहाड़के किनारे एक झील है।

प्राचीन खँडहरोंके ९०० वर्ष पुराने टूटे-फूटे महलोंमें राज्याभिषेक और विवाह आदि कार्य्य अब भी होते हैं। यहाँ बहुतसे देव-मन्दिर हैं; पर वे सब इस समय बहुत बुरी दशामें हैं। सुनते हैं, जिस समय मुगल सम्राट् अकबर यहाँ आये थे, नमाज पढ़नेके लिये रातभरमें एक मसजिद तैयार करायी गयी थी। वह अब भी भग्नावस्थामें पड़ी है। नवरात्रिको यहाँ बड़ा भारी मेला लगता है।

आमेरसे जब हम लोग वापस जयपुर पहुँचे तब ४ बज रहे थे। महाराजके खास बागके सदर फाटकपरसे डलैत (पथ-प्रदर्शक) को साथ लेकर, खूब अच्छी तरह घूम-फिर कर बाग देखा। बाग बहुत ही सुन्दर और देखने लायक है। चार-चार हाथके फासलेसे सड़कके बीच-बीचमें चारों तरफ फव्वारे लगे हुए हैं। इसमें आमोद-प्रमोदके तरह-तरहके साधन मौजूद हैं। इसी बागमें अन्य छोटी-छोटी इमारतोंके बीचमें सात मंजिला सुप्रसिद्ध चन्द्रमहल है। दूरसे यह इमारत बहुत ही खूबसूरत मालूम होती है। भीतरकी सुन्दरताका हाल तो देखनेवाले ही जानते होंगे। इसके ठीक सामने गोविन्ददेवजीका विशाल मन्दिर है। राजप्रासादमें बैठे हुए भी गोविन्दजीके दर्शन होते हैं। इसके पीछे रामकटोरा झीलके किनारे बादल महल है।

महाराज जयसिंहकी बनाई हुई एक ज्योतिष यन्त्रशाला है। इसमें ज्योतिष सम्बन्धी बहुतसे यन्त्र हैं। इसी तरहके छोटे-छोटे कतिपय यन्त्र यहाँके अजायब घरमें भी हैं।

राज्यकी ओरसे यहाँ एक सार्वजनिक-पुस्तकालय है। उसमें कई भाषाओंकी पुस्तकोंका वृहत् संग्रह है। पुस्तकालय बहुत बड़ा है। हम लोग गये, उस समय बन्द हो रहा था; इसलिये अच्छी तरह नहीं देख सके। इसके नीचेके भागमें इम्पीरियल बैंककी शाखा है। यहाँ एक विशाल शिल्प-विद्यालय (स्कूल आफ आर्ट्स) है। उसमें कला-कौशल-सम्बन्धी शिक्षा दी जाती है। चित्रकारी, मूर्त्तियाँ बनाना, जड़ाऊ काम, नक्काशीका काम, और कपड़ा बुनना, आदि अनेक प्रकारकी शिक्षा भी दी जाती है।

सन्ध्या हो गयी थी और हमें आज ही रातकी गाड़ीसे वापस लौटना था। डेढ़ दिनमें इससे अधिक और कुछ नहीं देख सके। यदि एक दिनका और समय होता, तो महाराजा कालेज, संस्कृत कालेज, अनाथालय और नये-पुराने घाट आदि देख लेते। यहाँ चित्रकारीका काम बहुत बढ़िया होता है। जयपुरकी आबोहवा भी अच्छी है। इस दर्शनीय नगरको देखनेके लिये बहुतसे यात्री सदा आया करते हैं।

काव्यकी आत्मा

प० किशोरीदास वाजपेयी शास्त्री

शरीरमें आत्मा ही सब कुछ है। उसके विना कुछ भी नहीं; यह शरीर दो कौड़ीका भी नहीं। इसी साहश्यको लेकर अन्यत्र भी आत्मा शब्दका प्रयोग, लक्षणाके द्वारा, होता है। जिसके विना जिसकी स्थिति—प्रवृत्ति नहीं होती, उसे उसकी आत्मा कह देते हैं।

कुछ आचार्य्योंने रसको काव्यकी आत्मा माना है। अन्य आचार्योंने 'काव्यकी आत्मा ध्वनि है'—"काव्यस्यात्मा ध्वनिः" लिखा है। जिन्होंने 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' कहकर काव्यकी आत्मा रस लिखा है, उन्होंने अव्याप्ति दोषसे बचनेके लिये योगार्थके द्वारा रस शब्दसे रस, रसाभास, भाव, भावाभास और भाव-सन्धि आदि सब प्रकारके मनोभावोंका ग्रहण कर लिया है। इस प्रकार स्पष्टतापूर्वक कहना चाहें, तो कह सकते हैं कि, इन आचार्य्योंने वाक्याभिव्यक्त मनोभावोंको ही काव्यकी आत्मा माना है; परन्तु 'रस्यते आस्वाद्यते इति रसः' इस व्युत्पत्तिके सहारे, काम चलानेके लिये, यदि रस शब्दसे सब प्रकारके मनोभावोंका ग्रहण हो भी जाय, तो भी जहाँ केवल वस्तु-ध्वनि अथवा अलङ्कार-ध्वनि है, या जहाँ केवल शब्द किंवा वाच्यार्थमें चमत्कार है, वहाँ अव्याप्ति दोष बना ही रहेगा। रसादिकी अभिव्यक्तिसे शून्य स्थलमें भी काव्य-व्यवहार होता है और अनुभव-सिद्ध है। जहाँ कोई आकर्षक वस्तु—ध्वनि या अलङ्कार-ध्वनि हो; अथवा सिर्फ शब्द या वाच्यार्थमें चमत्कार हो; किंवा इनमेंसे अनेकको एकत्र सत्ता हो; इस लिये काव्यकी आत्मा रस नहीं हो सकता।

इस दोषसे बचनेके लिये यह कहा गया है कि, रस–विरहित स्थलोंमें काव्य-व्यवहार गौण है। इसका मतलब यह कि, जहाँ रसादि मनोभावोंकी अभिव्यक्ति नहीं है; किन्तु कोई उत्तम वस्तु-ध्वनि या अलङ्कार-ध्वनि है या शब्दोंमें वैसा चमत्कार है, अथवा अर्थमें—वाच्यार्थमें—रमणीयता है, वो वस्तुतः वह काव्य नहीं है; क्योंकि काव्यात्मा रस है ही नहीं, तो भी रमणीयता या चमत्कार होनेके कारण उसे भी काव्य कह देते हैं; अर्थात् ऐसे चमत्कार–पूर्ण वाक्य काव्य तो नहीं हैं; पर काव्यके ही समान हैं। गौण प्रयोगका तो यही मतलब है। परन्तु, तटस्थ होकर विचार करनेपर यह युक्ति-वित्ति 'अरर धम' करके गिर पड़ती है। यह कहना गलत है कि, ऐसे स्थलोंमें काव्य-पदका प्रयोग गौण है। इसमें कोई युक्ति या प्रमाण नहीं है और, न, अनुभव ही साक्षी होता है। शुद्ध प्रकृति-वर्णनमें यदि चमत्कार हो, तो रस आदि न रहनेपर भी, उसे कौन हृदयशाली काव्य न कहेगा? इसी प्रकार शब्द-गत चमत्कारकी सत्तामें कोई भी विचारवान् काव्यत्व-व्यवहार रोक नहीं सकता। यही क्यों, ऐसे स्थलोंमें सदासे काव्यत्व-व्यवहार चला आया है। रसात्मवादियोंने भी येन केन प्रकारेण ऐसे आकर्षक स्थानोंमें काव्यत्व स्वीकार किया ही है—उन्हें ऐसा करना ही पड़ा है। पर, अपनी कल्पनाके पोषण करनेके लिये उन्होंने 'गौण प्रयोग' की शरण ली है। यह उनकी भूल है। गौण प्रयोग तभी होता है, जब मुख्यार्थ—वाच्यार्थ—का बाध हो। यहाँ किसी प्रकार भी मुख्यार्थ बाधित नहीं है। रस-विरहित स्थलोंमें भी अभिधा द्वारा काव्य-पद की पहुँच है, जहाँ कुछ चमत्कार हो। मतलब यह कि 'काव्य' शब्द अभिधा वृत्ति द्वारा ही रस-विरहित स्थलोंको भी बोध कराता है। रसात्मक वाक्यको ही काव्य कहते हैं, इसमें कोई अभिधान-ग्रन्थ या कवि-सम्प्रदाय साक्षी नहीं है। इसके विरुद्ध, यहाँ सब एक मत हैं कि, चमत्कार-पूर्ण वाक्यको काव्य कहते हैं, भले ही वहाँ कोई रस हो, न हो। ऐसी दशामें उक्त स्थलमें काव्य-पदका गौण, प्रयोग बतलाना केवल एक विशेष 'आर्डिनेंस' नहीं, तो और क्या है?

इससे यह सिद्ध हुआ कि, रसातिरिक्त चमत्कार-पूर्ण स्थलोंमें काव्य-सत्ता सुप्रसिद्ध है; अतएव रसको काव्यको आत्मा बतलाना उचित नहीं है। यदि रस ही काव्यकी आत्मा होता, तो उससे रहित स्थलोंमें कोई भी काव्य न होता, किसीको भी ऐसा स्वीकृत न होता। सो बात है नहीं। रस न रहनेपर भी चमत्कार-पूर्ण वाक्यमें काव्यत्व सबको स्वीकार है। ऐसी ही कवि-परम्परा और प्रसिद्धि है। गौण प्रयोग भी कहा नहीं जा सकता। इसलिये रस काव्यकी आत्मा नहीं है।

कुछ लोग इससे आगे हैं और ध्वनि मात्रको काव्यकी आत्मा कहते हैं; परन्तु इस मतमें भी अव्याप्ति दोष है। शाब्दिक चमत्कार अथवा वाच्यार्थकी रमणीयता होनेपर इस मतमें भी काव्यत्व अनुपपन्न ही है! यदि 'गौण प्रयोग'का सहारा लिया जाय, तो इसका जिक्र ऊपर किया ही जा चुका है; इसलिये ध्वनि भी काव्यकी आत्मा नहीं हो सकती। यदि ऐसा होता—ध्वनि ही काव्यकी आत्मा होती—तो तदतिरिक्त स्थलमें काव्य-व्यवहार न होता।

ध्वन्यात्मवादियोंने, ध्वनिपर बेतरह लट्टू होकर, एक और भूल की है। यदि वाच्यार्थसे अधिक चमत्कार ध्वनिमें है, तब तो इनके मतसे उत्तम श्रेणीका काव्य है; परन्तु यदि कहीं ध्वनिकी अपेक्षा वाच्यार्थमें ही विशेष रमणीयता है, तो उसे इन लोगोंने मध्यम दर्जेका काव्य बतलाया है। यदि पूछा जाय कि, यह क्यों? तो फिर इनके पास उत्तर नहीं है। आनन्दवर्द्धनके अतिरिक्त 'काव्य-प्रकाश' और 'साहित्य-दर्पण' आदिके प्रणेताओंने भी ऐसा ही लिखा है। पर, यह एक प्रकारका फतवा ही है, जिसमें बुद्धि और तर्कका प्रवेश नहीं है। हम कहते हैं, उत्तम दर्जेके काव्यका लक्षण आप कर दीजिये। फिर जो उससे संवलित हो जाय, वह उत्तम काव्य, अन्य नीचे दर्जेके। जिसमें अधिक चमत्कार हो, वही उत्तम काव्य होगा। यदि वाच्यार्थकी अपेक्षा ध्वनिमें अधिक चमत्कार है, तो वह उत्तम काव्य है ही। साथ ही, यदि कहीं ध्वनिसे भी बढ़कर चमत्कार वाच्यार्थमें है, तो फिर उसे क्यों न उत्तम दर्जेका काव्य कहा जाय? यह तो ऐसी ही 'व्यवस्था' है कि, ब्राह्मणमें यदि विद्या-वैभव है, तो वह श्रेष्ठ पुरुष है, और, यदि शूद्रमें वह बात है, तो मध्यम है! क्यों ऐसा है? इसका उत्तर नहीं है! यह सब हुआ क्यों? इसीलिये कि, जिसे जो पसन्द आया, उसने उसीको सब कुछ लिख दिया। 'भिन्नरुचिर्हि लोकः' प्रसिद्ध ही है। परन्तु लोक-रुचि और वस्तु-स्थितिमें अन्तर होता है।

हाँ, तो कहा जा रहा था कि, रसकी तरह ध्वनि भी काव्यकी आत्मा नहीं हो सकती; क्योंकि ध्वनि-रहित स्थलमें भी काव्य-व्यवहार चिरन्तन तथा अनुभव-सिद्ध है। किसी-किसीने तो 'रीति'को ही काव्यकी आत्मा बतलाया है; सो, ये तो सबसे गये-बीते हैं। रीति तो काव्यका बाह्य कलेवर संघटन मात्र है।

अब प्रश्न हो सकता है कि, तो फिर काव्यकी आत्मा हम किसे कहें? उत्तरमें निवेदन है कि, जो रसका भी सार है और ध्वनिका भी सर्वस्व, वही काव्यकी आत्मा है—चमत्कार। वस्तुतः चमत्कार ही काव्यको आत्मा है। इसके बिना काव्य-व्यवहार कहीं भी नहीं होता। यह चमत्कार कभी रसमें होता है, कभी तदतिरिक्त ध्वनिमें, कभी वाच्यार्थमें और कभी शब्दमें ही। किसी वाक्यमें ये सब चमत्कार होते हैं। ऐसे विशिष्ट चमत्कारपूर्ण वाक्यको हम सर्वोत्तम काव्य कहेंगे। यदि सब तरहके चमत्कार होंगे, तो फिर कोई न कोई चमत्कार तो सर्वोत्तम होगा ही, यह और बात है।

जब मनोभावोंके अभिव्यञ्जनमें चमत्कार होगा, तब यह प्रायः उत्तम दर्जेका ही होगा। शब्द-गत चमत्कार निम्न श्रेणीका माना गया है—बाहरी तड़क-भड़क है। यह विषय-भेदसे चमत्कारका उत्कर्षापकर्ष उचित ही है। लोकमें भी किसी शरीरमें आत्माका उत्कर्ष अधिक दिखाई देता है और किसीमें कम। चमत्कारके अपकर्षसे आत्माकी सत्तासे ही इनकार नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार चमत्कारको ही काव्यकी आत्मा मान लेनेसे

कहीं कोई भी अनुपपत्ति नहीं रह जाती; सब मामला ठीक हो जाता है।

अभी हालमें मैंने "काव्य-प्रवेशिका" नामकी छोटीसी पुस्तक लिखी है। इसमें मैंने काव्यकी आत्मा चमत्कार ही लिखा है। "गङ्गा" की ज्येष्ठकी संख्यामें इस पुस्तककी संक्षिप्त आलोचना निकली है। विद्वान् और सहृदय आलोचक महोदयने लिखा है—"एक बात मुझे कुछ अवश्य खटकी। आपने (यानी मैंने) काव्यका स्वरूप निरूपण करते समय लिखा है—"ध्वनिसे अलग जब शब्द या अर्थमें कुछ आकर्षक चमत्कार हो, तो अलङ्कार कहलाता है।" ध्वनि और आत्मामें कोई भेद नहीं है—"काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति"— आनन्दवर्द्धन। जब चमत्कार ही आत्मा—ध्वनि है, तब ध्वनि-भिन्न वस्तुओंमें फिर कैसा चमत्कार? यदि माना जाय, तो सब अलङ्कार ही काव्यकी आत्मा होने लगेंगे— "रसवद्" तो ताकपर पड़े रहेंगे! आभूष्य और आभूषणमें तो महान् भेद है।"

उत्तरमें पुनः निवेदन है कि, ध्वनि-भिन्न वस्तुओंमें भी चमत्कार होता है और ध्वनिवादियोंने भी ऐसा स्वीकार किया है। 'आभूष्य' और 'आभूषण' (अलङ्कार) आदि शब्दोंका प्रयोग काव्य-जगत्में गौण ही है; अतएव सब लोककी बातें यहाँ गृहीत नहीं हैं। अन्यथा, रस आदि मनोभावोंको 'रसवत्' आदि अलङ्कार संज्ञा न होती। आत्मा कहीं अलङ्कार होता है?

सारांश यह कि, ध्वनि और चमत्कार दो विभिन्न वस्तुएं हैं। चमत्कार ध्वनिमें भी होता है और अन्यत्र भी। चमत्कारमें उत्कर्ष-अपकर्ष भी विषय-भेदसे होता है। जब किसीसे किसीका उत्कर्ष होता है, तब उसे उसका अलङ्कार कहते हैं। रस आदि भी अलङ्कारकी संज्ञा इसी पर पाते हैं आत्मा और अलङ्कार आदि शब्दोंका काव्य-जगत्में गौण प्रयोग है, किसी प्रकार सुगमतासे बोध करानेके लिये। इसलिये इन शब्दोंके अभिधा-स्थलोंको सब बातें यहाँ न सोचनी चाहिये; नहीं तो ठीक न होगा।

बस, यही संक्षेपमें निवेदन है। आशा है, मेरे आदरणीय बन्धु आलोचक महोदय तथा अन्य विद्वान् इस विषयपर प्रकाश डालेंगे। "वादे-वादे जायते तत्त्वबोधः।" *

---

* श्रीयुत वाजपेयीजीकी "काव्य-प्रवेशिका" की आलोचना साहित्याचार्य 'मग'जीने लिखी थी। 'मग'जी "गंगा"के सम्पादकीय विभागमें काम करते हैं। वाजपेयीजीके इस लेखको भी उन्होंने देखा है। इसपर जो उनका वक्तव्य है, उसे हम, उनके कहनेसे, विद्या-विनोदके लिये इसी अङ्कमें छाप रहे हैं। —सम्पादक

ध्वनि या चमत्कार ?

साहित्याचार्य "मग"

भला रमणीयताका तिरस्कार कौन सहृदय करेगा ? पण्डितराजने तो कहा ही है—"रमणीयार्थ-प्रतिपादकः शब्दः काव्यम् ।" जिस काव्यमें रमणीयता नहीं, चमत्कार नहीं, वह काव्य कैसा ? जिस शब्द (शब्द और अर्थका नित्य सम्बन्ध है, भट्टनायकके विचारसे भी शब्द और अर्थ पृथक्-पृथक् नहीं) के द्वारा रमणीय अर्थ प्रतिपादित होता है, वही काव्य है। रमणीयताका अर्थ सहृदय-हृदय-हारिता है। चीनीका पुतला जैसे सर्वत्र मीठा होता है, वैसे ही साध काव्य साधन्त रमणीय होता है।

इस दिशामें प्राचीनोंका सिद्धान्त करीब-करीब एक-सा है। "रीतिरात्मा काव्यस्य" कहनेवाले वामन या "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" कहनेवाले विश्वनाथ लौटकर एक ही जगह आ पहुँचते हैं—केवल विनोदके लिये थोड़ा-सा शाब्दिक विवाद-भर उपस्थित कर देते हैं। मम्मट और आनन्दवर्द्धन तो एक चटसालके पढ़े-से ही दीखते हैं। मतलब यह कि, ध्वनिपर सबका ममत्व है।

कविके मानसमें जो भाव तरङ्गित होता है, वह जितनी खूबीसे सज-धजके साथ पेश किया जाता है, उसमें उतना ही सौन्दर्य आता है। एक साधारण-सी बात भी वर्णन-शैलीकी कृपासे महार्घता धारण कर लेती है। वक्रोक्ति—ध्वनिके द्वारा जो वर्ण्य विषय व्यक्त होता है, वह सचमुच बे-जोड़ होता है। नागर वनिता इसीलिये, तो महत्ता रखती है कि, वह वन-बालिकाकी तरह अल्हड़ नहीं होती, बिना नाजो-नखरेके खुल नहीं पड़ती ! इसीलिये तो चमत्कृत वर्णन-शैली-पर मुग्ध होकर प्राचीनोंने कहा है—"वक्रोक्तिः काव्य-जीवितम् ।"

बिना रसास्वादन किये कोई भी सहृदय भला कैसे चमत्कृत होगा ? कविके वर्णनका निचोड़ या सार तो वही रस है, उसीकी परिपुष्टिके लिये तो सारे इन्तजाम किये जाते हैं, जिनसे सहृदयके हृदयमें रति, शोक, क्रोध आदिका आविर्भाव हो। ऐसा रस ही यदि काव्यकी आत्मा होनेका अधिकारी नहीं, तो फिर चमत्कार कौन-सी वस्तु है ? हाँ, मैं कभी भी यह नहीं कहता कि, ध्वनिमें चमत्कार नहीं है। मैंने "काव्य-प्रवेशिका"की समालोचनामें काव्यकी आत्मा चमत्कार है, इसे अस्वीकार नहीं किया है।

चमत्कार—विच्छित्ति—वाच्य नहीं होता। जो स्व-शब्दसे कहा जाता है, वही वाच्य होता है; अतः चमत्कार-को काव्यकी आत्मा बना लेनेमें कुछ भी बाधा नहीं पड़ती; क्योंकि ध्वनि मात्र ही चमत्कारमय है। कोई शुद्ध प्रकृतिका वर्णन करे या विशुद्ध शृङ्गारका, यदि वहाँ रम-णीयता रहेगी, चमत्कार रहेगा, तो निश्चय ही रस आदि कुछ-न-कुछ रहेगा ही। गुणीभूत व्यङ्ग्यमें भी चमत्कार वाच्य-सामर्थ्यसे आक्षिप्त रहता है और प्रकारान्तरसे रसको ही परिपुष्ट करता है, जैसे—"ग्राम-तरुणके हाथमें बेतस-कुसुम निहारि। हुई मलिनमुख कामिनी छिन-छिन अति सुकुमारि ॥" यहाँ व्यङ्ग्यकी अपेक्षा वाच्य ही अधिक चमत्का-रवान् है। व्यङ्ग्य तो इतना ही न है कि, संकेत देकर भी नायिका ठीक समयपर नायकके पास नहीं पहुँच सकी; परन्तु जिस वाच्यार्थसे यह व्यङ्ग्य निकला है, वही विप्र-लम्भ शृङ्गारका पोषक है। कविका ध्येय जिस वस्तुमें रहता है, उसीमें प्रधानता रहती है। यहाँ कविका लक्ष्य वाच्यार्थसे है; अतः इसीमें प्रधानता है। यह काव्य मध्यम श्रेणीका इसलिये ठहराया गया है कि, जो झुम्मा-झुम्मा आठ रातका है, वह भी इसकी नाड़ीको टीप लेता है।

प्राचीनोंके विचारसे कवियोंके वे हो भाव सर्वश्रेष्ठ हैं; जो कुलललनाकी तरह हैं। चतुर्थ कोटिवाला व्यञ्जना-व्यापार जिसकी सत्ताको व्यक्त करनेमें क्षम हो, वही काव्य उत्तम है। कविकी उस वर्णन-शैलीमें लचरपन और असामर्थ्य रहती है। जिसमें वक्रोक्ति या ध्वनिकी अखण्ड सत्ता नहीं दीखती। गुणीभूत व्यङ्ग्यमें भी आत्मत्वेन ध्वनि ही रहती है; जैसे ऊपरके उदाहरणमें विप्रलम्भ शृङ्गार है। थोड़ेमें यों समझिये कि, तात्या भोल बड़े जीवटका है, पुलिसके नाकोंदम किये रहता है। यहाँ प्रधानता उसके जीवटमें है; क्योंकि जीवटसे ही उसकी आत्मा अवगत होती है; परन्तु आत्मत्वेन जो स्थिर है, वह है ही।

जहाँ मुख्यार्थका बाध होता है, वहीं ध्वनि स्थान पाता है—"यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ व्यङ्क्तः काव्य-विशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः।" यानी 'शब्द या अर्थ गौण होकर दूसरे जिस अर्थको व्यक्त करते हैं, वही ध्वनि है। देखिये न, "अत्त्था......"में प्रतिषेधसे स्वीकृति व्यक्त होती है और "भ्रम धम्मि......" में विधिसे निषेध व्यक्त होता है अर्थात् यहाँ सहृदय मुख्यार्थ—वाच्यार्थ—को गौण समझता है और व्यङ्ग्यार्थको प्रधान।

अब बात यह रही कि, रस-विरहित-स्थलोंमें काव्यका व्यवहार कैसे हो? निवेदन यह है कि, जैसे श्मशानमें शरीर दीखता है; पर शरीरीका पता नहीं चलता, वैसे ही इस (ध्वनि)-विरहित स्थलोंमें भी काव्यका व्यवहार होता है यानी नीरस काव्यमें जो काव्यत्व (शब्दार्थशरीरं काव्यम्) रहता है, वह केवल शब्दार्थको ही लेकर, जैसे शवमें शरीरत्व। इसीलिये तो नीरस काव्यमें अलङ्कार शोभाविहीन मालूम पड़ते हैं। 'काव्यप्रकाश'-कारने उदाहरणार्थ "स्वच्छन्दोच्छ..." श्लोकको पेशकर बताया है कि, यहाँपर यह अधम काव्य है।

यह सही है कि, लोककी भाँति काव्य-जगत् नहीं है। फिर भी जो यहाँ "शब्दार्थौ शरीरं, पद-संघटना रीतिः, आत्मा ध्वनिः" इत्यादिका प्रयोग किया गया है, वह केवल विषयोंको सर्व-सुलभ बनानेके लिये ही। इसीलिये तो काव्यकी आत्मा कहीं अलङ्कार भी हो जाया करता है; पर हाँ, जब अलङ्कारमें आत्मत्व आता है, तब उसका व्यवहार "ब्राह्मण-श्रमणवत्" किया जाता है। जो हो, काव्यकी आत्मा चमत्कार बने या ध्वनि; मेरा सानुनय आग्रह तो यह है कि, जो वस्तु व्यञ्जना-व्यापारके अधीन है, वही वास्तवमें काव्यकी आत्मा बननेकी अधिकारिणी है।

जब चमत्कार काव्यकी आत्मा होगा, तब फिर अलङ्कार कैसे चमत्कारको धारण करेगा? यही तो मेरी उस छोटी-सी समालोचनाका निष्कर्ष था। अलङ्कार तो स्वयं शरीरीका शोभावह पदार्थ है, शरीरी होनेका अधिकारी नहीं। हाँ, अलङ्कार-ध्वनि वाच्यालङ्कारसे बहुत परे है।

सहृदय वाजपेयीजीकी सूक्तियोंका केवल शुष्क युक्तियों द्वारा यद्यपि यह यथावत् उत्तर नहीं हुआ है; फिर भी प्राचीन-पन्थाका अवलम्बन कर विद्याविनोद द्वारा, मैं उनके हृदयमें अवश्य ही आनन्द उत्पन्न कर सकूँगा—ऐसी आशा है।

बिहारमें हलकर्षणकी प्रथा

प० दिगम्बरनाथ पाठक काव्यतीर्थ

कृषि-प्रधान भारतमें बिहारका सूबा, कृषिके लिये, प्रधानतर है। बिहारके अधिवासी भी बङ्गाल और आसामके निवासियोंकी तरह प्रायः व्यापार-शून्य हैं। यही कारण है कि, परिश्रमी और व्यवसायपटु मारवाड़ी यहाँ न केवल शहरोंमें बल्कि छोटे-छोटे कसबोंसे लेकर बड़े-बड़े गाँवोंतक डेरा डाले पड़े हुए हैं। प्रकृतिने जङ्गल, पर्वत, नदी, नद आदि सुन्दर दृश्योंसे जहाँ बिहारको बिहार-स्थल बनाया है, वहाँ इसकी उर्वरा शक्ति भी सौन्दर्यके अनुरूप ही है। बिहारका क्षेत्र सोनेका टुकड़ा है।

सम्प्रति इस स्वर्णमयी भूमिकी कर्षण-प्रथा इन दिनों चिन्तनीय हो रही है। यहाँके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, मिल मालिकोंकी तरह, खेती नहीं करते, बल्कि कराते हैं। खेत जोतने और बीज डालनेवाले सब-के-सब शूद्र होते हैं। गरीब-से गरीब द्विजातीय भी यहाँ अपने हाथों हल नहीं जोतता। प्यारसे, लोभसे, भयसे आप किसी तरहसे भी यहाँके ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्योंसे हल नहीं चलवा सकते।

पाठक, इस समय यह हल-प्रग्रहण-प्रथा सोचने लायक है। किसानोंकी जैसी आर्थिक स्थिति है, वह छिपी हुई नहीं है। हल न जोतना अच्छी बात है; किन्तु जिनकी गरीबी बेतरह बढ़ी हुई है, वे प्रतिष्ठाके कारण ही वस्त्रमें लपेटी हुई आगकी तरह दारिद्र्यको फैलनेकी जगह दे रहे हैं।

बिहारके ब्राह्मणोंमें बड़े-बड़े जमींदार हैं। इनके सामने क्षत्रियों और वैश्योंकी भू-सम्पत्ति नगण्य है। परन्तु अब बड़ी तेजीसे ब्राह्मणगण दरिद्र होते और जमीन खोते जाते हैं। इनकी गरीबीमें अन्यान्य कारणोंके साथ-साथ प्रधान कारण यही हल-ग्रहणकी अप्रथा है। इसके प्रतिकूल उदाहरण शूद्रोंमें मिलता है। ये धनी और मानी होते जा रहे हैं।

यहाँ यह सवाल पैदा होता है कि, जब ब्राह्मण पहले हल नहीं जोतते थे, तब क्यों सम्पन्न थे? इसका उत्तर यह है कि, आज जैसी मजदूरी और विलास-प्रियता बढ़ी है, वैसी पहले नहीं थी। कलकत्ते और आसामके रुपयोंने यहाँके मजदूरोंको घर छोड़कर कुली बनने और परदेशी होनेके लिये विवश कर दिया है।

इन दिनों बेकारीकी भरमार है, गरीबी बढ़ी हुई है। बिहारके ब्राह्मण २) रुपये माहपर कायस्थोंके यहाँ अवश्य भात बनावेंगे, भोजनके बिना अवश्य मर भले जायँगे; किन्तु अपने ही खेतमें अपने ही हाथों हल चलाकर बीज नहीं डाल सकते।

मेरे घरके पास (गया जिलेमें) एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। १२ बीघे जमीन अभीतक, इस गरीबीमें भी, इनके पास है। आप सबके सब "लिख लोढ़ा पढ़ पत्थर" हैं। भूमिहार ब्राह्मणोंकी देखादेखी विवाह और श्राद्धमें सब जगह बेचकर इस हालतमें पहुँचे हैं। इतनी जमीनपर भी काफी कर्ज हो चुका है। हल जोतनेवाला मजदूरका यहाँ बड़ा अभाव है। ब्राह्मण देवके यहाँ राम-राम कर, कर्जपर कर्ज लेकर, २००) रुपये बिना सूदी और ३ बीघे खेत जोतनेके लिये देनेपर तो एक हल जोतनेवाला कोइरी ठीक हुआ। आषाढ़से आश्विनतक उसने काम किया; परन्तु बातोंबात एक दिन उस कोइरीसे मेरे पड़ोसी भाईको अनबन हो गयी, जिसके फलस्वरूप ऐन बीज डालनेके अवसरपर उस आदमीने खेत जोतना बन्द कर

दिया। १० बोझे खेर पड़ा रह गया। खेर उजड़ गया और मेरे पड़ोसी भाई तीनों भाई गाड़ापर हाथ रखे रह गये। मैंने कहा, 'भाई साहब, आप कुदाल चलाते हो, कट्ठा माँगते हो, बैल जोतकर दिन-दिन भर दवनी (दवरी) करते हो, ईखसे बैलों द्वारा रस निकालते हो और खेतोंमें चौकीपर चढ़कर, बैलोंकी पूँछ पकड़कर घुटनों कादोमें पहरों घूमते रहते हो; फिर हल क्यों नहीं जोतते ? इसमें कौनसा पाप बैठा हुआ है ? हल उठाइये और जिन्दगी बचाइये। नहीं तो इस सस्तीमें दोनों हिस्से देनेपर भी मालिकका देना जहाँ नहीं सधता है, वहाँ आप दोनों हिस्से खोकर अपनी हालत रद्दी कर डालेंगे।' किन्तु आप चिढ़ गये ! मुझे पठित पशु, धर्म्मघातक आदि शब्दोंसे सम्मानित किया ! लोगोंमें चर्चा फैली, वे भी मुझपर बिगड़ खड़े हुए।

एक बार एक दूसरे गाँवमें हल जोतनेवालेके न मिलनेपर कुछ भूमिहार ब्राह्मणोंने अपने हाथों हल चलाया था। इसपर देहातके पड़ोसी लोग बेतरह बिगड़े और खान-पान बन्द करनेतककी धमकी दे डाली। परिस्थिति बतलानेपर भी पञ्च राजी न हुए। भीख माँगो; परन्तु हल अपने ही खेतमें न जोतो। यह पञ्चोंका फतवा जारी किया गया।

मैं यहाँ एक शब्द भूमिहारोंके विषयमें भी कहना चाहता हूँ। वह यह कि, बिहारमें धनी-मानी अधिकतर भूमिहार ही हैं, जो वस्तुतः त्यागी ब्राह्मण होते हुए भी भूमिपर आधिपत्य होनेके कारण ही शायद "भूमिरेव हारो यस्य"—इस समासके आश्रय बने हैं। यह बड़ी प्रसन्नताकी बात है। परन्तु अन्यान्य ब्राह्मणोंकी तरह ये भी अब 'हार' की जगह अनुदिन भूमि हारते ही जा रहे हैं।

"जिये बाप तब दङ्गम दङ्गा, मरे बाप तब ले चल गङ्गा।" कहावतको अत्यधिक चरितार्थ करनेवाले हमारे भूमिहार भाई भी अब बाप-दादेकी जमीन बेच-बेचकर चूड़ा-दही खानेके लिये ढाक्स बजानेको तैयार हो रहे हैं; किन्तु इस गरीबीका भी वही कारण है—हलोंको न पकड़ना। ढाई सेर खेसारी लेकर काम करनेवाले मजदूर मिलते नहीं और ये अपने हाथसे खेतमें बीज डाल सकते नहीं।

पाठक, उपर्युक्त लेखमें ध्वनि और प्रतिध्वनि लेकर कहीं यह माने न लगा बैठियेगा कि, मैं शूद्रोंको अकिञ्चन बना रखना चाहता हूँ। मैं यह नहीं कहता कि, शूद्र आर्थिक उन्नति न कर हमारे हल खींचते रहें एवं ब्राह्मण अपने नित्य, नैमित्तिक कर्म्मोंको तिलाञ्जलि देकर अब हल चलाना ही सीखें। इतना लिखनेका माने यही है कि, जो ब्राह्मण (वा द्विजाति) अपने कर्म्मानुष्ठानमें तत्पर नहीं हैं, जीवनोपाय न रहनेसे दर-दरकी ठोकरें खाते फिर रहे हैं, "पोर, बावर्ची, भिश्ती, खर" बन बैठे हैं, वे यदि व्यर्थकी ढोंग-भरी प्रतिष्ठा को न रखकर हलकर्षणसे अपनी जीविका उपार्जित करें, तो कोई दोष नहीं। हाँ, जो श्रीमन्त हैं, जिनके पास शक्ति है, उनके लिये यह बात जरूरी नहीं है।

रही बात शास्त्रकी। सो, शास्त्रोंमें जहाँ बैलोंको रखकर खेती करनेका विधान दिया गया है; वहाँ कहीं भी यह बात नहीं लिखी मिलती है कि, ब्राह्मण स्वतः लाङ्गल-चालन न करे। राजा जनकने तो स्वयं हलका संचालन किया था।

यह रूढ़ि बिहारमें ही पायी जाती है। यू० पी० में कानपुरसे पश्चिम, मारवाड़, मेवाड़, पञ्जाब आदि प्रान्तोंमें ब्राह्मण अपने हाथोंसे ही हल जोतते हैं। वे अन्यान्य काम मजदूरोंसे लेते हैं; किन्तु हलका काम स्वयं ही करते हैं। इनका कहना है कि, मजदूर लापरवाहीसे खेत जोतकर बिगाड़ देते हैं, मजदूर बैलोंको पीटते और ज्यादा तकलीफ देते हैं। इसलिये लाङ्गलका चालन तो अपने ही हाथों ठीक होता है।

भला जो ब्राह्मण कोल्हू चलाता है, श्रावण भाद्रपदकी झड़ीमें हेङ्गा, देता है, वह जब हल जोतनेसे घबराता है, तब इसको दुष्पृथा नहीं तो और क्या कहा जा सकता है?

मैंने ऐसे अनेक ब्राह्मण भाइयोंको देखा है, जो डेढ़ दो रुपये माहवारपर नौकरी करते हैं, कायस्थ और मुसलमान वकीलोंके घर चिलम चढ़ाते और हुक्का का पानी बदलते हैं,

रुपये कमाते रहते हैं; परन्तु अपनी जमीनमें हल नहीं चला सकते ! देखिये, मूर्खताका प्रचण्ड आधिपत्य ???

वर्तमान काल सुधारकोंका युग कहा जाता है । अनेक कुप्रथाएं निर्मूल हो गयीं । किन्तु इस दुष्प्रथा-रूपिणी राक्षसीकी तरफ कोई भी बढ़नेका साहस नहीं कर रहा है, यह दुःखकी बात है । इस दुष्प्रथामें देहाती वहम भी बड़ा काम करता है ।

मेरे पड़ोसी शाकद्वीपी भाईसे एक दिन एक चमारिनकी तकरार हो गयी । दैव योगसे दूसरे ही दिन उस चमारिनका बच्चा बीमार पड़ा । एक आदमी चमारिनके घरपर गया, भाईकी बात सुझायी । निशाना अचूक रहा । सारे मण्डलमें प्रचार हो गया । चमारोंकी सभा हुई और ब्राह्मणका हल जोतना बन्द हुआ । गरीबका खेत ३ सालतक बिना बोया रह गया । जबर्दस्त मूर्खता होनेपर भी इसकी समझमें बात आ गयी । 'जब मैं सब काम करता ही हूँ तब हल लेकर क्यों न खेतमें चलूँ ?' यह सोचकर इसने हल उठाया, खेतमें गया । परन्तु पचासोंने इसे घेर लिया और "महापाप महापाप" की आवाज आने लगी । अन्तको खेत बेचकर ३) रुपया माहवारमें एक वकीलके यहाँ भात बनानेपर नौकर हो गया ।

जो पानी पाण्डेय हैं, जो मुहताज हैं और हैं बावर्ची, उनके लिये भी अपने ही घरकी मजदूरी समाजने छीन रखी है । भला यह कैसी घोर अज्ञान मूलक और अनर्थ-कारिणी बात है । फलतः बिहारकी हलकर्षण प्रथा न केवल चिन्तनीय ही है; किन्तु 'विचिन्तनीय' भी है ।

त्याग और प्रेम

श्रीयुत सत्यकाम विद्यालंकार
मुख्य सम्पादक, "अर्जुन"

उमाने सूखे हुए पत्तोंको पैरके अंगूठेसे बखेरते हुए कहा, "अविनाश, यह कैसे हो सकता है ?"

जिस बातको कहनेके उद्देश्यसे अविनाश आज आया था, उसे उमाके इस प्रश्नके उत्तरमें एक बार ही कह डालनेको अविनाशके प्राण अधीर हो उठे; किन्तु उस आवेशको संयममें रखकर अविनाशने जवाब दिया, "न हो सकनेकी इसमें बात ही क्या है ? तुम चाहो, तो सब हो सकता है।"

"मेरे चाहनेसे क्या होता है ? माँ-बाप मेरी शादी राजघरानेके एक उच्च पदाधिकारी विजय सिंहके साथ कर डालना चाहते हैं। कल ही तो लगन है। उसके बाद .....।" कहते-कहते उमाने एक ठण्डी साँस ली।

उमाकी उस विवशता-भरी साँसका अर्थ अविनाश खूब समझता था। उसका सीधा अभिप्राय था कि, उमा इस संकटसे उद्धार चाहती है। प्रियतमाको अपने पौरुषका प्रमाण देनेके लिये ऐसा अलभ्य अवसर किसी भाग्यवान् प्रेमीको ही मिलता है। अविनाश इस सुअवसरका पूर्ण उपयोग करना चाहता था। उसने उमाके दोनों कन्धोंको अपने शक्तिशाली हाथोंसे थाम लिया और कहा, "उमा ! तुम मेरी हो। संसारकी कोई भी शक्ति तुम्हें मुझसे दूर नहीं कर सकती।"

किन्तु अविनाशका पवित्र संकल्प ही उमाका उद्धार नहीं कर सकता था। उमा कोई क्रियात्मिका योजना चाहती थी। उसने धीरेसे पूछा, "फिर क्या करना होगा ?"

अविनाशको अपनी स्कीम बनाने और जतानेमें देर न लगी। उस सारी स्कीमका सार था—"११ बजे रातको मकानके पिछले रास्तेसे भाग निकलना।"

अभी आठ ही बजे थे, तीन घण्टे शेष थे। उमा अपने कमरेको अन्दरसे बन्द कर बैठ गयी। उसका हृदय दोलाविरुद्ध हो गया। उसे मेजपर रखी 'अलार्मपीस'की सुइयाँ रह-रहकर पीड़ा पहुँचाने लगीं। उसकी टिक-टिकपर उसका दिल घबराने लगा।

जो तूफान उसके दिलमें उठ रहा था, उसमें एक बार अपनेको वह डाल देना चाहती थी।

विजय सिंहके साथ शादी करनेमें उसे, इसलिये आपत्ति थी कि, उसकी अवस्था प्रौढ़ थी और उसके साथ उसने कभी उस पागल प्रेमका अनुभव नहीं किया था। अविनाशके हृदयमें जो उन्माद था, वह विजय सिंहके दिलमें कहाँ हो सकता था ?

× × × ×

नियत समयपर अविनाश आ पहुँचा। उमा तैयार थी। उमाने डरती आवाजमें पूछा, "किधर ?"

अवि०—"जिधर किस्मत ले जाय !"

दोनों बाहर खड़ी मोटरपर सवार हुए। मोटर हवासे बातें करने लगी।

अविनाश आज संयुक्ताका अपहरण करनेवाले सम्राट् पृथ्वीराजसे कम महत्त्वशाली अपनेको नहीं समझ रहा था।

तीन घण्टेमें जंगलको पारकर मोटर एक टूटी-फूटी झोपड़ीके पास जा पहुँची। दोनों प्रेमी वहीं उतर पड़े।

वहाँ उतरकर दोनोंने उस झोपड़ीमें ही रात बितानेका विचार किया। प्रेमके नशेमें वह रात दोनों प्रेमियोंकी बड़ी अच्छी गुजर जाती; मगर उमाको ज्वर मालूम होने लगा, उसका शरीर टूटने लगा।

ज्वरका अनुभव होते ही उमाका हृदय काँप उठा। यह ज्वर साधारण नहीं था। उस दिन दोपहरको उमा अपनी चाचीके घर गयी थी। चाचीको शीतला निकली हुई

राय साहब बाबू अवधविहारी सिंह

आप भारतवर्षके सबसे बड़े ब्राह्मण-राज्य (बनैलीराज्य) के जेनरल मैनेजर हैं। आपपर लक्ष्मी और सरस्वतीकी समान कृपा है। आपका विशुद्ध जीवन और अथक परिश्रम-शीलता अनुकरणीय हैं। आपका विस्तृत परिचय समयानुसार छापा जायगा।

बाबू दीपनारायण सिंह बार-ऐट-ला

आप बिहारके नेता, प्रसिद्ध व्याख्याता और दानवीर हैं। भारतमें आपके समान पृथ्वी-पर्यटक दूसरा नहीं है। आपका जीवन-चरित शीघ्र ही "गङ्गा"में छपेगा।
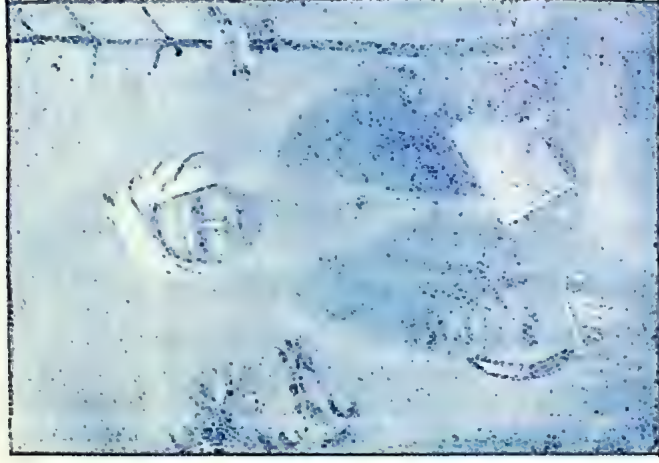
स्वर्गीय बाबू शिवनन्दन सहाय

आपका जीवन-चरित अन्यत्र प्रकाशित है।

थी। बहुत मना करनेपर भी उमाने चाचीको चूम लिया था। यह ज्वर उसी पिशाचिन शीतलाके आक्रमणका संकेत था।

अब प्रश्न यह था कि, उमा अविनाशको इस निकटस्थ विपत्तिकी सूचना दे या नहीं। पहले तो वह, यह सोचकर कि, इन्हें फिक्र लग जायगा, जरा झेंपी; मगर बादमें, पता तो लग ही जायगा, यह विचार कर उमाने चेचककी बात अविनाशको कह ही डाली।

अविनाश यह अशुभ समाचार सुननेको बिलकुल तैयार नहीं था। उमाको आशा थी कि, अविनाशका दिल इस खबरको सुनकर सहानुभूतिसे भर जायगा और वह मुझे अनेक तरहसे आश्वासन देनेका प्रयत्न करेगा; लेकिन ऐसा नहीं हुआ। इस खबरके पाते ही अविनाशका चेहरा ऐसा फीका पड़ गया, मानों बना-बनाया महल आँधीसे टूट पड़ा हो। वह आश्वासन क्या देता, स्वयं ही चिन्ता-सागरमें डूब-गया। उसे इस प्रकार धैर्य छोड़ता देखकर स्वयं उमाको उसे सान्त्वना देनी पड़ी।

सान्त्वना पानेकी अधिकारिणी तो उमा थी; किन्तु यहाँ उलटा ही किस्सा चल पड़ा। मरीज डाक्टरको ढारस बँधाने लगा। उमाको ऐसा मालूम हुआ, मानों उसने अपने रोगको प्रकट करके अविनाशके प्रति भारी अपराध किया हो।

उमाने अविनाशको सम्बोधन करके कहा। "प्यारे! तुम चिन्ता न करो। तुम्हीं चिन्ता करने लगोगे, तो मैं कहाँकी रहूँगी!"

अविनाशने कुछ रूखेसे स्वरमें जवाब दिया—"चिन्ता कोई जान-बूझ कर तो नहीं करता।"

"चिन्ताका क्या कारण है?"

"यही कि, तुम्हारी सेवा-शुश्रूषा कौन करेगा?"

"मैं सेवा-शुश्रूषा नहीं चाहती। फिर जब तुम मेरी आंखोंके सामने रहोगे, तो मुझे और सेवाकी आवश्यकता ही क्या है?" कहते हुए उमाने अपनी थकी हुई भुजाएं अविनाशके गलेमें डालनेको आगे बढ़ायीं।

"इसकी क्या जरूरत है?" कहते हुए अविनाश दो कदम पीछे हट गया!

उमा अविनाशकी इस विरक्तिका कारण ताड़ गयी। वह भी चौंककर इस तरह पीछे हट गयी, मानों किसी साँपने डँसा हो। उसके सिरमें चक्कर आ गया। कुछ देर वह बेहोश-सी पड़ी रही।

अविनाशकी मानसिक अवस्था इस समय विचित्र थी। उसे न उमाका ध्यान था, न उसकी बेहोशीका। उसे रह-रह कर अपने भाग्यपर क्रोध आ रहा था—'क्या इस अन्धेरी रातमें, सुनसान जंगलमें ही उसकी किस्मतका फूटना लिखा था!'

उमाके चेचकसे बिगड़े हुए चेहरेकी कल्पना उसके भविष्य जीवनको यातना पहुँचा रही थी।

आखिर उमाने तिलमिलाकर कहा—"अविनाश! किस चिन्तामें हो?"

"कहाँ?"

"नहीं, तुम्हारा मुँह तुम्हारे दिलकी गहरी चिन्ताको प्रकट कर रहा है।"

"मुझे अपनी तो नहीं, तुम्हारी चिन्ता है।"

"मेरी चिन्ता कैसी?"

"यही कि, तुम्हारी सेवा कौन करेगा?"

"अविनाश! मुझे सेवा-शुश्रूषाकी चिन्ता नहीं। तुम निश्चय समझो, मैं सेवाके लिये कदापि न कहूँगी।"

"मगर, तुम बिना सहायताके किस तरह निर्वाह करोगी?"

"ठीक है, तुम तो शीतलाके छूतके भयसे मेरे निकट आ न सकोगे! मगर चिन्ताकी क्या बात है। मेरे सूखे गलेमें दो बूंद पानी टपकानेवाला कोई मिल ही जायगा!"

"मगर, तुम्हें ऐसी आपत्तिमें डालनेका पाप मेरे जिम्मे लगेगा।"

"नहीं! वह भी मैं अपने जिम्मे ले लूंगी। मैं समझ

छूओ कि, तुम मुझे नहीं लाये थे, मैं स्वयं तुम्हारे साथ आयी थी।"

उमाको इतने सवाल-जवाबका मौका कभी नहीं मिला था। इतने सवाल-जवाबके बाद उसके धैर्यका बाँध टूट गया। वह फूट-फूटकर रोने लगी।

× × × ×

रात अभी एक पहर शेष थी। अविनाशने उमाको फिर मोटरपर बैठाकर घर लौट चलनेको मजबूर कर दिया।

उनकी प्रेम-कहानीका इतना संक्षिप्त अन्त वस्तुतः दुःखदायी था। मगर अविनाशपरसे प्रेमका जादू उड़ चुका था। अब वह साधारण मनुष्यकी भाँति अपने भले-बुरेकी चिन्ता करने लगा। उसने भी उमाकी अनिच्छा होते हुए भी उसे घर वापिस चलनेको तैयार कर दिया।

घर पहुँचकर उमा घरके पिछले दरवाजेसे अन्दर जाने लगी। जाते-जाते उसका कदम रुक गया। वह वहीं ठहर गयी और ठहरकर अविनाशकी ओर मुड़ी। भारी और काँपते हुए शब्दोंमें उसने कहा—"अविनाश! प्यारे! क्या यह हमारी अन्तिम विदायी है?"

अविनाश चुप खड़ा रहा!

"नहीं बोलते! अविनाश!! मैंने ऐसा कौनसा अपराध किया? तुम मुझे छू नहीं सकते, तो क्या मुझसे बोलनेमें भी तुम्हें रोग लग जायगा?"

"नहीं, मैं तो बोल रहा हूँ।"

"अच्छा है। यह तुम्हारी कृपा है। मैं इस कृपाके लिये सदैव तुम्हारी कृतज्ञ रहूँगी। अविनाश! मेरी एक बात मानोगे।"

"क्या?"

"बस,—एक बात; और, शायद यही आखिरी बात। सम्भवतः मैं इस रोगके आक्रमणसे ही इस लोकसे विदा हो जाऊँगी। बस! एक बार!! एक बार मुझे अपने बाहुपाशमें जकड़कर.........."कहते-कहते उमा अविनाशकी ओर झुकी; मगर अविनाश उसका आलिंगन करना, मौतका आलिंगन करनेके सदृश समझता था!

× × × ×

उमा एक सजे हुए कमरेमें पलंगपर पड़ी थी। जब उसकी मूर्च्छा टूटी, तो उसने देखा कि, एक राजकुलोपयोगी वेषभूषासे सुसज्जित, गम्भीर, प्रभावशाली व्यक्ति उसके पास ही कुर्सीपर बैठा है। उमाने पानी माँगा, तो उसने स्वयं उठकर पानी भरा और उमाको सहारा देकर बैठाने लगा। उमा चौंक उठी। "नहीं-नहीं; मुझे चेचक है, मुझे मत छूओ"—कहते हुए वह पीछे हट गयी!

वह व्यक्ति उमाकी इस अवस्थासे जरा भी विचलित न हुआ। सहानुभूति-भरे स्वरमें उसने उमाको आश्वासन देते हुए कहा—"तुम्हें चेचक है, तो क्या हुआ? इसमें तुम्हारा क्या कसूर। तुम किसी बातकी चिन्ता न करो। मैं तुम्हारा कोई न सही; मगर एक मनुष्यका, मनुष्य होनेके नाते ही क्या यह धर्म नहीं कि, वह रोगीकी सेवा करे?"

उमाको इस अज्ञात व्यक्तिकी देवोपम उदारतापर अचम्भा हुआ। वह उसकी इस बातपर एकदम विश्वास न कर सकी। यह युक्तिका समय नहीं था और फिर उस व्यक्तिके स्वरमें कुछ ऐसी गहरी सचाई थी कि, उमा उसके अनुशासन-का उसी तरह उल्लंघन न कर सकी, जिस तरह अबोध बालक अपने शिक्षकके आदेशका उल्लंघन नहीं कर सकता।

पानी पीनेसे उमा होशमें आ गयी।

वह अज्ञात व्यक्ति बड़ी सावधानीसे उमाकी सेवा-शुश्रूषा करता था। उमा अनेक बार उसे चेचकका भय दिखलाकर दूर रहनेको कहती; पर वह व्यक्ति उमाको उसके अछूतपनका अनुभव न होने देनेके लिये उतना ही निकट रहता था।

उमाके आश्चर्यकी सीमा न थी। वह चुपचाप लेटी रहती और कभी-कभी अविनाश तथा इस अज्ञात व्यक्तिकी तुलना किया करती। उसके दिलमें प्रायः यही विचार उठा करता था कि, आखिर इस व्यक्तिकी इतनी परिचर्याका क्या

रहस्य है ? वह यह तो जानती कि, इसकी सेवा प्रेमके ही कारण हो सकती है; मगर प्रेमका अर्थ उसके लिये अभीतक "यौवनके उन्मादके अतिरिक्त और कुछ नहीं था !"

वह समझती थी कि, प्रेम तो वही था, जो कि, अविनाश किया करता था। फिर यह व्यक्ति जो करता है, वह क्या है ? यह अवश्य प्रेमसे भी बड़ी कोई चीज है। तब यह व्यक्ति भी अविनाशसे अधिक महान् है—यह बात उमाके दिलमें अच्छी तरह बैठ गयी। एक दिन वह उस अज्ञात व्यक्तिसे पूछा बैठी—

"क्या मैं अपने उपकारकके पुण्य नामसे परिचित हो सकती हूँ ?"

"दासका नाम विजय सिंह है ।"

"विजय सिंह ! क्या कहा ? तो······तुम्हीं हो ।"

"हाँ, मैं तुम्हारी कृपाका अभिलाषी विजय सिंह हूँ। जिस रात तुम यहाँसे गयी थी, उस रात मैं यहींपर था। अविनाश जब तुम्हें मूर्च्छितावस्थामें छोड़ गया, तब मैंने—यह जानते हुए भी कि, तुम मुझसे नफरत करती हो—तुम्हारे प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन किया।"

"तो क्या तुम मुझसे प्रेम नहीं करते, जो कहते कि, केवल कर्त्तव्य-पालन किया ?"

विजय सिंहने गम्भीरतासे उत्तर दिया—"प्यारी कर्त्तव्य-हीन प्रेम, प्रेम नहीं कहलाता ! वह केवल वासनाका उन्माद होता है।"

"तो प्रेमका क्या अर्थ है ?"

"प्रेमका अर्थ है त्याग ! जो जितना त्याग कर सकता है, वह उतना ही प्रेम कर सकता है।"—कहते हुए विजयने उमाके मस्तकपर प्रेमकी अमिट छाप लगा दी !

वसन्तकी निष्ठुरता

कहा विरह-पीड़ित तरुणीने, "तड़पाते क्यों मुझे वसन्त ?
मुझ अबलापर तरस न खाते तुले हाय, करनेको अन्त !!"
बोला तब ऋतुराज विहँस, "क्या नहीं जानती सुकुमारी ?
सुरभित साँसोंसे उर-उरमें सुलगाता हूँ चिनगारी ॥
विरह-वह्निसे विकल सहम उठता जब प्रेमीका संसार ।
आह खींच, तुमसी तरुणी जब देती पिरो अश्रुका हार ॥
तब मैं होकर मुदित कुसुमकी क्यारीमें मुसकाता हूँ ।
कोकिलके रसमय कण्ठोंसे व्यंग्य-गान फिर गाता हूँ ॥"

—रामावतार गोप "शक"

स्वर्गीय
बाबू शिवनन्दनसहायजी

"चन्द्रशेखर"

जिस महानुभावने अपना सारा जीवन साहित्य-सेवा में ही उत्सर्ग कर दिया, हिन्दी-संसारको उसका परिचय देनेका प्रयास करना धृष्टता मात्र है। जिस लगनके साथ आजीवन बाबू शिवनन्दनसहायजी साहित्यकी निश्छल तथा निःस्वार्थ सेवामें लगे रहे, वह सतत अनुकरणीय है; उसके लिये साहित्य संसार सदा उनका आभारी रहेगा। जीवन-चरित्र-लेखन-कलाका जो आपने अनूठा ढंग ढूँढ निकाला था, वह अपना सानी नहीं रखता। आप बिहारके रत्न थे, हिन्दी साहित्यके गौरव थे।

आपका जन्म आरासे प्रायः एक कोस पश्चिम, कायस्थोंकी प्रसिद्ध बस्ती अख्तियारपुरमें, आश्विन शुक्ल द्वितीया स० १९१७ को हुआ था। आपके पिता मुंशी कालीसहायजी फारसी-भाषाके अच्छे विद्वान् थे। उन्हींकी देख-रेखमें आपने पाँच वर्षकी अवस्थामें उर्दू तथा फारसी पढ़ना आरम्भ किया। फारसीमें पूर्ण योग्यता प्राप्त कर लेनेपर अँग्रेजी पढ़नेके लिये आप पटने भेजे गये। तब आपकी अवस्था १३ वर्षकी थी। पटना कालेजिएट स्कूलमें आपका नाम लिखाया गया। वहींसे आप सन् १८८० ईस्वीमें एण्ट्रेंस परीक्षामें उत्तीर्ण हुए।

उस समय आपकी पारिवारिक अवस्था बड़ी शोचनीय थी। आपके पिता रोगग्रस्त होकर वर्षोंसे घरपर बैठे हुए थे। घरमें दूसरा कोई गृहस्थीका संचालन करने वाला नहीं था। निदान आपको पढ़ाई छोड़कर गृहस्थीका भार ग्रहण करना पड़ा।

२१ वर्षकी अवस्थामें आप पटनाकी अदालतमें दीवानी मुकर्रर हुए, तबसे बराबर ३९ वर्षोंतक अमलागीरीके विभिन्न दायित्वपूर्ण पदोंको विभूषित करते हुए अन्तमें अक्तूबर सन् १९१९ ई० को आपने ससम्मान पेन्शन प्राप्त की। इस बीच आपने सिरिश्तेदारी और नाजिराततक की; किन्तु विद्यानुराग तथा कर्णदोषके कारण मुख्यतः मुतरज्जिम ही रहे।

विद्या-व्यसन आपमें लड़कपनसे ही भरा था। संयोगवश आपको स्कूलकी पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी; किन्तु आपने अपना अध्ययन नहीं छोड़ा। कचहरीमें दिनभरके कठिन परिश्रमके अनन्तर आप रातको १२, १ बजेतक साहित्यके अध्ययनमें लगे रहते थे। मेहनतसे आप कभी नहीं हिचकते थे। लड़कपनसे मृत्युपर्यन्त आपको यों ही बैठे हुए किसीने कभी नहीं देखा—जब देखा, किसी काममें लगे ही हुए। आपकी सफलताका मूल मन्त्र था—परिश्रम।

स्कूलमें आपने हिन्दी कभी नहीं पढ़ी। साहित्य-सेवा में अग्रसर होनेतक आपकी हिन्दीकी जानकारी स्वल्प ही थी। किन्तु विद्यानुराग प्रबल था; अतः आरम्भमें आपने उर्दू की शायरी करनी शुरू की। आपके अँग्रेजीके लेख भी तत्कालीन दैनिक पत्रोंमें प्रकाशित होने लगे।

उन दिनों बिहारमें धार्मिक प्रतिवादोंका दौर-दौरा था। दानापुरमें आर्य्य-समाजियोंने अपनी ध्वजा फहरा दी थी—इधर प० अम्बिकादत्त व्यास प्रभृति दिग्गज सनातन धर्मी

उनका नाका रोकनेमें प्रयत्नशील थे। धार्मिक उमंग सहाय जीको भी नसोंमें लहर मारने लगी। आपने व्यासजीका हाथ बटाया। पटने या दानापुरमें ऐसी कोई भी धार्मिक सभा नहीं होती थी, जहाँ आप उपस्थित न पाये जाते हों। आप पटनेकी "धर्मसभा" के सभापति हो गये तथा कई वर्षोंतक उस आसनको विभूषित करते रहे।

फलतः व्यासजीसे आपकी बड़ी घनिष्ठता हो गयी। इधर खड्गविलासप्रेसके अध्यक्ष बाबू रामदीन सिंहजी तथा स्वनाम-धन्य पण्डित दामोदर शास्त्री भी आप लोगोंसे आ मिले। अब क्या था, पटनेमें एक प्रकारकी साहित्य-गोष्ठी ही स्थापित हो गयी। बाबूसाहबकी भी हिन्दीकी ओर रुचि हुई। आप बड़े उत्साहके साथ हिन्दीका अध्ययन करने लगे। इधर शास्त्रीजीसे आप संस्कृत भी सीखने लगे। अब आपको कड़ाघूर मेहनत करनी पड़ती थी। अमलागीरीका काम और उसके ऊपर छात्रवत् अध्ययन; किन्तु आप तनिक भी विचलित नहीं हुए।

आपकी हरिश्चन्द्र तथा तुलसीदासके ग्रन्थोंसे विशेष दिलचस्पी हुई। आप उनके काव्योंके अनन्य भक्त हो गये। भारतेन्दुके नाटकोंका अभिनय करनेके लिये आपने गाँवमें एक नाटक-मण्डली भी स्थापित की। उनके महत्काव्योंके अनुशीलनके फलस्वरूप आपकी रुचि कविताकी ओर हुई। कविताके परम रसज्ञ बाबा सुमेर सिंहजी साहबजादे उस समय हरमन्दिरके महन्त थे। सहायजीको, नानकशाही होनेके नाते, महन्तजीसे विशेष सम्बन्ध था। उन्हींसे आप कविता-कलाका अध्ययन करने लगे। थोड़े ही दिनोंके बाद आपकी समस्या-पूर्तियाँ काशी-कविमण्डल तथा कविसमाजकी मुख्य पत्रिकाओंमें प्रकाशित होने लगीं। फिर तो आपके प्रयत्न द्वारा बाबा सुमेर सिंहजीके सभापतित्वमें पटनेमें ही एक कवि-समाज स्थापित हो गया। आपके सुपुत्र हिन्दीके चिरपरिचित औपन्यासिक बाबू व्रजनन्दन सहायजीके सम्पादकत्वमें समस्या-पूर्तिकी एक पत्रिका भी पटनेसे प्रकाशित होने लगी। इसका सारा प्रबन्ध, देख-रेख, आपके माथे मढ़ा गया।

आपकी पूर्तियोंका एक संग्रह "कुसुम-कुञ्ज" नामसे खड्गविलास प्रेस द्वारा प्रकाशित भी हो चुका है। इधर आप पोप, होमर प्रभृतिकी कविताओंका बनावन पद्यानुवाद करने लगे। फलस्वरूप आपकी "विचित्र-संग्रह" तथा "कविता-कुसुम" नामकी पुस्तकें प्रकाशित हुईं।

गद्य-ग्रन्थोंमें आपकी सर्वप्रथम भेंट "बंगालका इतिहास" ही है। जनताने इसका अच्छा स्वागत किया। बंगाल टेक्स्ट बुक कमिटी द्वारा यह ग्रन्थ पाठ्य पुस्तकोंमें सम्मिलित किया गया। थोड़े ही दिनोंमें इसकी पाँच आवृत्तियाँ हो गयीं। सहायजीका हौसला बढ़ा। अब क्या था, एकके बाद दूसरी और दूसरीके बाद तीसरी पुस्तक लिखी जाने लगी। हिन्दी-संसारपर आपका सिक्का जमने लगा। आपकी "रूप कलाजी" तथा सिक्ख-गुरुओंकी जीवनियोंमें लोगोंने एक प्रतिभाशाली जीवनी-लेखकका आभास पाया। जनता आपकी रचनाएँ देखनेके लिये लालायित रहने लगी।

भारतेन्दुपर आपकी अपरिमित श्रद्धा शुरूसे ही थी। अब अपने मित्र बाबू रामदीन सिंहजीके आग्रहसे आपने उन्हींकी जीवनी लिखनेकी ठानी। कचहरीकी पिसाई तथा पारिवारिक चिन्ता आपको कुछ भी विचलित नहीं कर सकी। पाँच बजे कचहरीसे लौटकर आप सीधे प्रेसमें चले जाते थे; और, पहर रात गये वहीं भारतेन्दु-सम्बन्धी सभी कागज-पत्रोंका अध्ययन करते रहते थे। फिर घर पहुँचकर आधी-आधी राततक जीवनी लिखनेमें लगे रहते थे। आखिर महीनोंकी सख्त मेहनतके बाद "भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रकी जीवनी" खड्गविलास प्रेससे प्रकाशित हुई। इससे हिन्दी-संसारमें धूम मच गयी। जीवनी-लेखन-कलाका एक नया सर्ग देखनेमें आया। सभी सामयिक पत्र-पत्रिकाओंने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। इसे देखकर भारतेन्दुके भक्तोंने दाँतों तले उँगली दबाली "गुलाबमें काँटा" शीर्षक परिच्छेद देखकर लोग चकित हो गये, जिसके कारण आजतक "भारतेन्दु" की पूरी जीवनी नहीं लिखी जा सकी थी—शुरू करनेपर भी लोगोंको अनायास हाथ रोक लेना पड़ता था, उसीको

सहायजीने इसे खूबीके साथ लिख डाला कि, लोग देखकर बागबाग हो गये। जीवनी-लेखकोंमें आपका स्थान अद्वितीय माना जाने लगा।

इसके बाद तो सहायजीके अमूल्य ग्रन्थ साहित्य-गगनमें उज्ज्वल नक्षत्रकी भाँति, एक-एक कर, प्रकाशित होने लगे। "गोस्वामीजी" तथा 'गौराङ्ग महाप्रभु'की जीवनियाँ लिख कर आपने साहित्यके एक आवश्यक अंगकी पूर्ति की। भागलपुरवाले अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलनके समय पढ़ा गया। आपका "गत ६० वर्षोंमें बिहारमें हिन्दी-साहित्यकी दशा" शीर्षक लेख बिहारके साहित्यका एक पूरा इतिहास ही है। सर्वप्रथम यह निबन्ध साहित्य-सम्मेलनकी लेखमालामें प्रकाशित हुआ था—तत्पश्चात् आरा-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा यह पुस्तकाकार मुद्रित हुआ। तृतीय प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सभापतिके आसनसे जो आपने भाषण दिया था, वह बिहारके लिये एक अलभ्य तथा अमूल्य वस्तु है। चिरकालतक इसकी गिनती हिन्दी-भाषाके स्थायी साहित्यमें होती रहेगी। बिहारके साहित्यका इस से बढ़कर गवेषणापूर्ण इतिहास अबतक प्रकाशित नहीं हुआ है। हिन्दीके प्राचीन तथा अर्वाचीन सभी साहित्य-सेवियोंका परिचय तथा कीर्त्ति, बड़ी रोचक रीतिसे, इसमें समाविष्ट है।

सहायजीकी बनायी अन्यान्य दर्जनों छोटी-मोटी रचनाएँ छोड़ दी जाँय, तो भी आपको साहित्य-संसारमें सदा अमर रखनेके लिये उपर्युक्त पुस्तकें पर्य्याप्त हैं, जिस कारण हिन्दी-संसार आपका चिर ऋणी रहेगा। आपने साहित्यके उस अंगको ढक दिया, जो अभीतक नितान्त ही अनाच्छादित था। हिन्दीकी जो ठोस सेवा, महान् उपकार आपने किया, वह सतत सम्मानकी दृष्टिसे देखा जायगा।

साहित्य-सेवाकी आपमें लगन थी—उसपर आप अपना सब कुछ निछावर कर सकते थे। आजन्म न तो आपने अपनी नौकरीकी परवाह की और न अपने परिवारकी सुख-समृद्धिकी। मरनेके समयतक आप भगवती भारतीकी एकान्त आराधनामें निरत रहे। जो समय आपको अपने अफसरोंकी खुशामदमें लगाना था, उसे आपने साहित्यके अध्ययनमें लगाया। अपनी उन्नतिकी चिन्ता परित्याग कर आप साहित्य-चिन्तनमें लगे रहे। अपने विश्रामका समय पढ़ने-लिखनेमें लगाया। और, ये सारी सेवाएँ बिलकुल निश्छल निःस्वार्थ भावसे कीं—अपनी किसी भी पुस्तकके लिये, किसी भी प्रकाशकसे, एक पैसा भी नहीं लिया।

आँखें मन्दी पड़ जानेपर घरवालोंके मना करते रहनेपर भी आप अपनी शक्तिके अनुसार साहित्यानुशीलनसे बाज नहीं आते थे। सामयिक पत्र-पत्रिकाओंमें आपके गवेषणापूर्ण समालोचनात्मक लेख सदा ही प्रकाशित होते रहते थे तथा वे सर्वत्र आदरकी दृष्टिसे देखे जाते थे।

समस्यापूर्त्तिकी तो आपको चाट-सी लग गयी थी। आँखोंकी ज्योति धीमी पड़ जानेके बादसे आप मौखिक पूर्त्तियाँ करनेमें ही मस्त रहते थे। गत १० मईके प्रातःकालतक आपने समस्यापूर्त्ति की—यही आपकी सेवाकी अन्तिम पुष्पाञ्जलि थी। अभी पूर्त्ति समाप्त भी नहीं हुई थी कि, अकस्मात् वज्रपात-सा पक्षाघात आपपर आ हुआ। आप अचेत हो गये और अन्ततक आप बिलकुल बेहोश रहे। १९ मईके अपराह्नमें आप साहित्य-संसारको सूना कर परम धामके यात्री हुए। आपके निधनसे बिहारका एक रत्न लुट गया, साहित्य-मन्दिरका एक अनन्य पुजारी उठ गया, चरित-लेखकोंका सिरमौर जाता रहा। सहायजी चितारोहण पर्य्यन्त साहित्य-सेवामें तल्लीन रहे। समस्यापूर्त्तिकी गुनगुनाहट ही उनके कण्ठके अन्तिम शब्द थी!

आप निरहङ्कारिता, अकृत्रिमता तथा सादगीकी सजीव मूर्त्ति थे। आपकी रहन-सहनको देखकर लोगोंको आश्चर्य होता था कि, इस तुच्छ वेष-भूषामें इतनी महान् आत्मा विराज रही है। आसन-वसन, धन-वैभव, क्रीड़ा-कौतुक किसी चीजका आपको व्यसन नहीं था; व्यसन था, तो बस एक ही विद्याव्यसन। स्वयं भी सदा पढ़ने-लिखनेमें ही समय बिताते तथा दूसरोंको भी सदैव उत्साहित करते रहते थे। उन्होंने

...बातक रहे, असहाय विद्यार्थियोंको अपने यहाँ रखकर पढ़ाते रहे—अपना डेरा एक प्रकारसे पूरा छात्रावास ही बना रखा था। अपने सभी परिचित विद्यार्थियोंके डेरे-डेरेपर एक बार घूम जाना आपके नित्यका काम था। छोटे-बड़ेका तो इन्होंने कभी खयाल ही नहीं रखा—सभीसे दो बातें किये बिना इनका जी नहीं मानता था।

आपको पुस्तक-संग्रहका विशेष शौक था। एक भी पुर्जा इधरसे उधर हो जाना आप सहन नहीं कर सकते थे। अपने परिवारवालोंसे कभी कुछ हुए, तो अपनी पुस्तकोंके ही लिये। बाहरवालोंने तो इन्हें कभी क्रुद्ध होते देखा ही नहीं। आज भी इनके पुस्तकालयमें अंग्रेजी,—बंगला आदिकी सैकड़ों पुस्तकोंके अतिरिक्त—हिन्दीकी तीन सहस्रसे ऊपरकी पुस्तकें हैं।

नौकरी-पेशेवाले लोगोंका सम्बन्ध साहित्यके साथ प्रायः "छत्तीस"-सा रहता है; किन्तु उसमें रहते हुए भी जैसा विद्यानुराग आपमें था, जैसी साहित्य-सेवा आपने की, वैसी कम देखनेमें आती है। आज बिहारका साहित्य निर्धन हो गया! हिन्दीका एक अंग ही खाली पड़ गया! हिन्दीके सच्चे श्रद्धालु सहायककी मृत्युसे जो हिन्दी-संसारकी अपार हानि हुई, उसकी पूर्त्ति होना कठिन जान पड़ता है। यद्यपि बाबूसाहब हम लोगोंमें नहीं रहे; किन्तु उनकी अक्षय कीर्त्ति हम लोगोंको उनका सदा स्मरण दिलाती रहेगी।

शरणागत

चुग ले, चुग ले ओ दीवाने, हृदय सिन्धुके मोती दाने॥
पूँजी यही यही धन मेरे,
सखे, धरे हैं, सम्मुख तेरे,
अब न आज अपना हठ ठाने, चुग ले, चुग ले ओ दीवाने॥
यह अनुराग-विराग-भरा है,
नयन-सीपमें गड़ा पड़ा है,
तेरे तो होंगे पहचाने, चुग ले, चुग ले ओ दीवाने॥
हैं; अनमोल, ढुलक जायँगे,
संभव नहीं, खोज पायँगे,
मान कहा, हँसमत मन-माने, चुग ले, चुग ले ओ दीवाने॥

श्रीयुत भुवनेश्वर सिंह 'भुवन'

प्रेमकी चितापर

प्र० के० पो० झा, भूतपूर्व इन्जिनियर

वसन्तपुर एक छोटा-सा गाँव है। इसमें मैथिल-ब्राह्मणों-के साठ-सत्तर घर हैं। लालाराम झा इस गाँवके धनी-मानी व्यक्तियोंमेंसे हैं। आपका विश्वास है कि, अंग्रेजी स्कूलोंमें लड़कोंको पढ़नेके लिये भेजनेसे वे भ्रष्ट हो जाते हैं। पर इनका बेटा, विजय, ऊँचे खयालातका युवक है। बापके हजार मना करनेपर भी विजयने अंग्रेजी पढ़ना जारी ही रखा।

गर्मीके दिन हैं। विजय बाहरवाली बैठकमें डाकियेकी प्रतीक्षा कर रहा है। पिता लालारामने बैठकमें पदार्पण करते ही पूछा—"कहो, क्या सोच रहे हो? घोर कलियुग आ गया; इसीलिये तो बेटा बापकी नहीं सुनता—वर्षोंसे कहता आ रहा हूँ कि, बेटा, अब विवाह कर लो; पर तुम्हें इसकी कुछ भी परवाह नहीं। तुम्हारी उम्र भी तो अब २२ सालकी हो गयी। मेरी इच्छा है कि, सरोजिनीके विवाहके साथ ही तुम्हारा विवाह भी कर दूँ। बार-बार भोज-भात करनेके खर्चोंसे तो बचूँ।"

उत्तेजित होकर विजयने कहा—"क्या कहा? सरोजिनीका विवाह? उसके विवाहमें इतनी जल्दी क्या है? अभी तो वह निरी बच्ची है।"

"तुम्हें क्या मालूम, मैं तुम दोनोंका विवाह इस साल क्यों करना चाहता हूँ। कलकत्तेमें रहते हो। लाख बार कहा कि, अब घरमें रहो, खेती-बारी, जजमानी, महाजनी वगैरह देखो; पर तुमने एक न सुनी। इस साल अव्वल तो फसल न हुई। जजमानीसे भी कोई आमदनी नहीं। इसके सिवा फसल न होनेकी वजहसे, कर्जदार लोग ब्याज भी न चुका पायेंगे। अब तुम्हीं बताओ, साल-भर घरका खर्च चले, तो कैसे। चालीस रुपये महीना तो सिर्फ तुम्हें ही चाहिये।" लालारामने उदास होकर कहा।

"तो क्या शादी करनेसे साल भरका खर्च मिल जायगा? सरोजिनीका विवाह आप कहाँ करना चाहते हैं?"

"कुसैठा गाँवमें, कारु मिश्रजीका नाम तो तुमने सु[ना] ही होगा। उन्हींका लड़का मोहन, जो शायद तुम्हारे साथ पढ़ता था, मेरे ध्यानमें है।"

"हाँ, पढ़ता तो था। बड़ा भोंदू एवं दुराचारी। खर्चकी कमीके कारण पढ़ना छोड़ दिया। कारु मिश्र[की] स्थिति भी तो अच्छी नहीं। पर साल भी तो उनकी [illegible] बीघे जमीन नीलाम हो गयी।"

"इससे अपनेको क्या? वे तो पन्द्रह सौ ले[नेको] तैयार हैं?"

"लेकिन इतनी बड़ी रकम देंगे कहाँसे? जमीन बे[च] डालेंगे, तो फिर परिवार-निर्वाहके लिये उनके पास [illegible] ही क्या रहेगा?"

"यह तो वह जानें, लेकिन मेरे जैसे बड़े घरों[में] विवाह करना चाहते हैं, तब ऐसे-वैसे तो हो नहीं सकता। रुपये तो लगेंगे ही, चाहे जमीन बेंचें या घर।"

"पर मैं तो सरोजिनी जैसे कन्या-रत्नका विवाह मोह[न] जैसे कुपात्रके साथ करना कतई पसन्द नहीं करता।"

"भला, वह क्यों कुपात्र होने लगा! उस दिन जो [illegible] छोटूके घर वही सत्यनारायणकी कथा बाँचता था। "वाह! वाह!! क्या कहना।"—सब लोग उसकी तारीफ कर रहे थे। गाँव भरमें लड़का सबको पसन्द है और तुम [illegible] दुराचारी कहते हो!"

"वह एक चरित्र-भ्रष्ट युवक है। गाँववाले उसकी तारीफ किया करें—उसे चाहे महात्मा ही मान लें, पर मैं अपनी स्वतन्त्र रायको गाँववालोंके लिये नहीं बदल सकता।"

"तुम तो यों ही हर काममें रोड़े अटकाते हो।"

"सरोजिनीके अभी पढ़नेके दिन हैं, उसका विवाह अभी नहीं करना चाहिये।"

"पढ़कर वह कौन-सी कमाई करेगी ? आखिर लड़कियों-के पढ़नेकी जरूरत ही क्या है ? नौ सालकी हो गयी। अब मैं उसे स्कूल नहीं भेज सकता। तुम्हारे कहनेसे अपने कुलकी प्रतिष्ठाको मैं धूलिमें नहीं मिला सकता।"

आपकी यह धारणा ठीक नहीं। गर्मीकी छुट्टीके बाद मैं उसे अपने साथ कलकत्ते ले जाऊँगा। वहीं पढ़ेगी।"

"ऐसा करनेसे तो गाँववाले जातमें भी नहीं रहने देंगे।"

"कुछ परवाह नहीं। समाजकी मूर्खता एवं बर्बरतापर मैं अपनी प्यारी बहनके जीवन-सुखोंका बलिदान करनेके लिये कतई तैयार नहीं।"—यह कहता हुआ विजय बैठकसे बाहर चला गया।

[२]

विजयको वकील हुए चार वर्ष हो गये। कलकत्तेमें ही वकालत करते हैं। सरोजिनी अब "मैट्रिकुलेशन" पास करके आगेकी पढ़ने लगी है। विजयने हरिसन रोडपर किरायेके कमरे ले रखे हैं। उन्हींके कमरोंके पासवाले कमरोंमें पं० रमेशचन्द्र झा भी रहते हैं। रमेशचन्द्रको दक्षिण अफ्रीकासे लौटे लगभग तीन साल हो गये। ये कलकत्तेमें रूईका रोजगार करते हैं। इनके परिवारमें इनकी धर्म्म-पत्नी एवं एक कन्या है। कन्याका नाम है—सुभद्रा। सुभद्रा एक कन्या-रत्न है। रंग सोनेके समान, आँखें हरिणी-जैसी, अंगुलियाँ चम्पेकी कलियोंके सदृश और स्वभाव बड़ा ही लुभावना है। वह अपने पिताके अनुपम प्रेमका एक मात्र केन्द्र है। रमेशचन्द्र संसारमें उसीके लिये जीते हैं—जो कुछ करते-धरते हैं, सिर्फ सुभद्राको सुखी करनेके लिये ही; पर इतनी चेष्टा करनेपर भी वह सुभद्राको पूर्णतया सुखी न कर सके हैं। इसका कारण ?—मैथिल-ब्राह्मण-समाजकी संकीर्णता, पाँचकों-एवं रूढ़ियोंकी गुलामी ! सुभद्राका शिक्षण बड़े ही विलक्षण ढंगसे हुआ है। सीने-पिरोने, गृह-प्रबन्ध, गान इत्यादिके अतिरिक्त हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषाका भी उसे यथेष्ट ज्ञान है। अथवा यों कहा जाय कि, सुभद्रा जैसे रमणी-रत्नका इस मैथिल-समाजमें होना सर्वथा असम्भव ही है, तो जरा भी अत्युक्ति न होगी। पर बीस सालकी अवस्था होनेपर भी इस रमणी-रत्नका वास्तविक मूल्य समझनेवाला व्यक्ति इस मैथिल-समाजमें कोई नहीं मिला। क्यों ?—इसलिये कि, रमेशचन्द्र सपरिवार अफ्रीका गये थे ! वहाँ जानेसे ही उनकी जात काफूर हो गयी !!

भला, मैथिलोंकी जात कोई ऐसी बढ़िया चीज थोड़े ही है कि, मिथिला और भारतके बाहर जानेपर भी ज्यों-की-त्यों बनी रहे ! फिर भला रमेशचन्द्रकी जात सात समुद्र पारकर अफ्रीका जानेपर भी वैसे उनके साथ रह सकती थी ?

एक ही मकानमें रहनेसे विजय एवं रमेशचन्द्रमें खूब ही मेल-जोल हो गया है। विजय इधर तीन-चार दिनोंसे एक मुकदमेमें भागलपुर गये हुए थे और आज ही सन्ध्याकी गाड़ीसे कलकत्ते वापस हुए हैं। रातके आठ बज रहे हैं। दूकानसे लौट कर रमेशचन्द्रने दरवाजेपर बैठे हुए नौकरसे पूछा—"क्यों जी, बाबूजी आ गये या नहीं ?" "हाँ, सरकार बाबूजी तो पाँच ही बजे आ गये हैं।"—नौकरने शिष्टता-पूर्वक उत्तर दिया। रमेशचन्द्रने आवाज लगायी—"अभी वकील साहब, कर क्या रहे हैं ? बहुत रुपये उठा लाये हैं क्या ? क्या रुपये गिन रहे हैं ? चलते हैं, आज करिन्थियन थियेटरमें।"

विजय लपककर बाहर आये। अभिवादनके बाद दोनों बैठकमें जाकर बातें करने लगे।

रमेशचन्द्रने कहा—"क्यों वकील साहब आज तो आप बड़े उदास दीखते हैं ?"

विजयने वेदना-भरे हृदयसे उत्तर दिया—"अजी साहब, क्या कहूँ। उसी मुकदमेके विषयमें कुछ सोच रहा था। अपने समाजकी पतित अवस्थापर ही कुछ तर्क-वितर्क कर रहा था।"

"क्यों, कहिये भी तो, आखिर मुकद्दमा क्या था ?"

"आप तो थियेटरमें जानेको कह रहे थे !"

"आखिर कहिये भी तो मुकद्दमा क्या था ? फिर थियेटरकी रहेगी ।"

"मुकद्दमा क्या था मैथिल समाजके अत्याचारका एक नग्नरूप था ।"

"सो क्या ?"

'अच्छा तो सुनिये' कहकर विजयने इस प्रकार कहना आरम्भ किया—"मुकद्दमा यह था कि, रामकृष्ण झा नामक मैथिल ब्राह्मणकी भामा नामकी एक कन्या थी। रामकृष्णने ११ वर्षकी अवस्थामें भामाका विवाह प्रेमनाथ ठाकुर नामक एक 'सोती'से कर दिया। इस महाशयकी भामाके अतिरिक्त और भी पाँच पत्नियाँ थीं। विवाहके बाद प्रेमनाथ दो-तीन बार ससुराल आया था। रुपयेकी उसे सख्त जरूरत थी। इस जरूरतको रामकृष्ण पूरा न कर सके। इसलिये गरीब भामापर प्रेमनाथने खूब डंडे फटकारे। बेचारी भामा अपने 'स्वनाम धन्य' सोती पतिको रुपये कहाँसे देती ? रुपये न पाकर प्रेमनाथने भामाका परित्याग कर दिया। उसकी दूसरी ससुराल विजयपुरमें थी—वहाँ भी जाकर उसने फिर वही पचड़ा निकला—वहाँ भी अपनी पत्नीको खूब पीटा। पत्नीने क्रोधावेशमें प्रेमनाथको विष खिला दिया। इस प्रकार 'स्वनामधन्य' श्री १०८ सोती श्रीप्रेमनाथजी छः स्त्रियोंको विधवा बनाकर दुनियासे कूच कर गये! इसके एक वर्ष बाद भामाको गर्भ रह गया! "पण्डितों"की रायसे रामकृष्णने भामाको आठ दिनोंतक बिना अन्न-पानीके एक कमरेमें बन्द कर, सड़ा गलाकर, मार डाला! इसीलिये इन मनुष्य-नामधारी जीवोंपर सरकारने मुकद्दमा चलाया था। रामकृष्ण और उसके दो साथियोंको आजन्म कालेपानीकी और उसकी पत्नी और गाँवके चार आदमियोंको बारह-बारह वर्षके कठिन कारागार-वासकी सजा मिली! कहिये, समाजकी इस मूर्खताकी कोई सीमा है ?"

आह भरते हुए रमेशचन्द्रने कहा—"बकौल आप[illegible] मैथिली समाजमें एक नहीं, ऐसी सैकड़ों घटनाएं प्र[illegible] दिन हुआ करती हैं! स्वार्थी और ढोंगी ब्राह्मणोंने धर्म[illegible] पुनीत सत्यको स्वार्थपरता एवं ढकोसलोंके काले आवर[illegible] बुरी तरह ढंक दिया है! इन्हीं नारकीय अत्याचारोंसे ऊ[illegible] हमारी हजारों बहू-बेटियाँ, माँ-बहनें अपने हिन्दू-धर्म[illegible] छोड़कर 'इस्लाम' अथवा 'क्रिश्चियानिटी'में च[illegible] जाती हैं। इस पुण्य भूमिमें भी इन्हीं नारकीय अत्याचारों[illegible] कारण प्रतिदिन हजारों भ्रूण-हत्याएं होती [illegible] सैकड़ोंकी तादादमें हमारी बहनोंके बच्चे नालियों [illegible] नदियोंमें फेंक दिये जाते हैं।

"उफ! पुरुषोंका कैसा भयानक स्वार्थ है, कैसी [illegible] नीचता है और है कैसी यह पत्थरकी समझ, जिसमें सुधार[illegible] विचार घुसते ही नहीं! इसपर भी बुरी यह कि, वे धर्म[illegible] ठेकेदार हम लोग जैसे चन्द समाज-सेवकोंको ही [illegible] एवं जातिभ्रष्ट समझने लग जाते हैं। अफ्रीकासे लौटने[illegible] बाद लाख कोशिश की कि, लोग हमारे यहाँ खान-पा[illegible] करें; सुभद्राका किसी प्रकार विवाह हो जाय; पर हुआ[illegible] हुआ—मैं आजतक समाज-च्युत एवं जाति-भ्रष्ट हो सम[illegible] जाता हूँ। यदि पूछिये कि, क्यों भाई, मैं जाति-भ्रष्ट [illegible] हुआ, तो सादा और खरा उत्तर मिलेगा—हमारे शास्त्र[illegible] समुद्र-यात्रा निषिद्ध है!'

विजयने कहा—"अजी आप तो खैर अफ्रीका भी [illegible] आये। मैं तो न कहीं गया न आया, अँग्रेजी पढ़ी [illegible] बहनको डाक्टरी पढ़ा रहा हूँ। महज़ इसीलिये लोगोंने [illegible] यहाँ खाना-पीना छोड़ दिया है। घर आता हूँ, तो [illegible] नौकर-चाकर भी मिलना मुश्किल हो जाता है।"

रमेशने उत्तर दिया—"भाई, इन्हीं अत्याचारोंके का[illegible] तो हिन्दू-स्त्रियाँ दूसरे धर्मकी शरण लेनेको बाध्य हो जा[illegible] हैं, सुधार-प्रेमी हिन्दू मूर्ख समाजकी मूर्खतापर अत्याचारों[illegible] त्रस्त-व्यस्त होकर दूसरे धर्मोंमें चले जाते हैं। देखिये [illegible] मेरी ही बात ली जिये। आखिर, मैं अपनी सुभद्राको [illegible]

तो रह नहीं सकता । एकाध साल और देखता हूँ, नहीं तो फिर दूसरी जातिमें विवाह करना ही होगा ! क्या करूँगा !"

विजयने दीर्घ उच्छ्वासके साथ कहा—"मेरी भी तो वही हालत है। समझमें नहीं आता कि, सरोजिनीके लिये क्या करूँ ।"

रमेशचन्द्रने हँसते हुए कहा—"आप उसके लिये चिन्ता न करें। मैंने बहुत कुछ सोच रखा है ।"

आश्चर्य भरे नेत्रोंसे रमेशकी ओर निहारते हुए विजयने पूछा—"सो क्या ?"

"धीरे-धीरे सब ज्ञात हो जायगा । बस, मेरी प्रार्थना यही है कि, इसकी चिन्ता ही आप न करें।"

"लेकिन इस उपकारका बदला क्या देना पड़ेगा ?

"सुभद्रापर कृपा.........क्योंकि, वह आपपर प्रगाढ़ प्रेम......।" रमेशका हृदय भर आया वह आगे कुछ न बोल सके ।

[६]

"मान जाओ बेटा, मान जाओ; हठ मत करो ।"—विजयकी माँने कहा ।

"नहीं माँ, मैं प्रतिज्ञाबद्ध हो चुका हूँ । ऐसा नहीं हो सकता ।"—स्थिरतापूर्वक विजयने उत्तर दिया ।

"तो और कितने दिनोंतक इसी प्रकार हम लोग जातसे बहिष्कृत रहेंगे ? अब इस अपमानकी दारुण वेदना असह्य हो गयी है। मान जाओ, अधिक हठ मत करो, बेटा ।"

"आखिर मैंने किया ही क्या है ?"

"माना कि, तुम्हारा कुछ दोष नहीं है; पर समाज-बन्धन भी तो कोई वस्तु है ? समाज जिस रीतिसे चलावे, वैसे ही चलना ही चाहिये ।"

"मैं किस तरह इस अन्ध-विश्वासी समाजके अत्याचारोंके आगे माथा नवाऊँ ?"

"तुम्हारे पिताजीने सब प्रबन्ध कर लिये हैं। लोग इसपर खाने-पीनेको राजी हो गये हैं कि, तुम भवानीपुरमें विवाह कर लो और सरोजिनीका विवाह मनमोहनके साथ हो जाने दो । 'ब्राह्मणों'को केवल पाँच-पाँच रुपये एवं एक-एक जोड़ा धोतीका देना होगा ।"

"किन्तु इस प्रकार निरीह एवं स्वाभिमान-रहित होकर माथा नवानेकी आवश्यकता ही क्या है, माँ ?"

"आवश्यकता कैसे नहीं है, बेटा । आज सात वर्षोंसे गाँवके ब्राह्मणोंने इस घरका जलतक ग्रहण नहीं किया । नौकर-चाकर, नाई-धोबी, कुआँ-तालाब, सब बन्द है। तंग करनेकी गरज़से लोग खेतको ही फसल चरा देते हैं। इस लम्बे समयमें जो-जो दुर्गतियाँ हुई हैं, वे तुमसे तो छिपी नहीं हैं, बेटा ।"

"तो अब बाध्य होकर इन दुष्टोंके साथ मुकदमेबाजी करनी होगी ।"

"पर गवाह कहाँसे लाओगे, बेटा ? इन दुष्टोंने तो गाँवके नाई-धोबी, कुर्मी-कहारतकको हमारे विरुद्ध कर रखा है ।"

"तो ऐसे न्यायहीन गाँवमें रहना ही छोड़ दूँगा ।"

"नहीं मेरे लाल, ऐसा मत कहो । यदि तुम मेरी बात नहीं मानोगे, तो मैं जहर खा लूँगी ।"

"अच्छा, तो मैं विचार कर उत्तर दूँगा ।"—कहकर विजय अपने कमरेमें चले गये ।

रातके ग्यारह बज चुके थे। निविड़ अन्धकार एवं भयावनी नीरवताका सार्वभौम राज्य था । अपनी पलँगपरसे अश्रुपूर्ण नेत्रोंको खोलकर विजयने खिड़कीकी ओर देखना आरम्भ किया । हृदय उद्विग्नता एवं एक प्रकारकी विचित्र उन्मत्तताके झंझावातोंसे हाहाकारमय हो रहा था । उनका विचार-तरंग-समूह उनको दुःखद निराशाओंके महान् समुद्रसे उठ-उठकर उन्हें अत्यन्त विचलित कर रहा था । सारी दुनिया उन्हें उत्कट निराशाओंके काले आवरणसे आच्छादित प्रतीत हो रही थी। रात्रिकी उस भयावनी नीरवता-

को अपने दीर्घ एवं वेदनासे भरे उच्छ्वासोंसे वह भंग करने लगा। धीरे-धीरे वह चिन्ता-समुद्रमें डूब गया। सोचने लगा—ओह! तो क्या सुभद्राको भूल जाऊँ? वह जो मेरी जीवन-निधि है, वह जो मेरी प्राणेश्वरी है, जिसके जीवनकी मनोहर तन्त्रियोंसे मेरे प्राणोंकी शुष्क तन्त्रियाँ अविच्छिन्न रीतिसे जुड़ चुकी हैं, जिसके गुणोंकी, जिसकी कमनीयता एवं पवित्रताकी सुषमामय स्मृतियाँ मेरे जीवनकी समस्त वीथिकाओंको आनन्द एवं मधुरतासे भर देती हैं, जिससे मैंने उस दिन, अपने इसी मुखसे, खुले अल्फाजोंमें, यह कहा था कि, 'संसारकी कोई भी शक्ति मुझे उससे अलग नहीं कर सकती'—हाय! उसे छोड़ना पड़ेगा!! मेरी इस स्थिरता एवं दृढ़तासे मेरी प्रतिज्ञाको सुनकर उसकी दोनों आंखें प्रेममय आनन्दसे नाचने लगीं थीं। उफ! उसके नेत्रोंका वह उन्मीलन अबतक भी मेरी स्मृति-योंके प्राङ्गणमें घूम रहा है! उसे भूल जाऊं? क्या यह कभी सम्भव हो सकता है? नहीं, सर्वथा असम्भव! मैं अपने प्राणोंको भूल सकता हूँ, अपनी आत्माकी अवहेलना कर सकता हूँ; दुनियाके कोने-कोनेसे जाति-च्युत होकर—भिखारी बनकर—ठोकरें खाता फिर सकता हूँ; पर सुभद्राके कोमल हृदयको कदापि कष्ट नहीं पहुँचा सकता। मेरे भवानीपुर-में विवाह करनेका कटु संवाद ही तो उसके नन्हेंसे हृदयको टुकड़े-टुकड़े कर देनेको पर्याप्त होगा।'

इसी प्रकार चिन्ता-सागरकी महान् जलराशिमें डूबते-उतराते विजयकी आँखें बन्द हो गयीं—वह निद्रादेवीके मधुर आश्रयमें पहुँच गये।

[४]

"नहीं सुभद्रा, चलाले दुनिया मुझे कुछ भी कहे; मैं तुमसे विवाह करनेकी इच्छा नहीं त्याग सकता।"—कातरता-भरे शब्दोंमें विजयने कहा।

"परन्तु ईश्वरको अब यही स्वीकार हो......" अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे विजयकी ओर निहारती हुई सुभद्राने उत्तर दिया।

"मैं तुम्हें दुःखी नहीं देख सकता। नन्दन-काननके एक अप्राप्य एवं अमूल्य सुमनको समाज की अप्रसन्नताके अग्नि-कुण्डमें निर्दयता एवं हृदय-हीनताके साथ भस्मीभूत होनेके लिये नहीं फेंक सकता।"

"परन्तु माँ-बापकी आत्माको कष्ट पहुँचाना भी तो तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं है?"

"तो क्या ब्राह्मण-समाजके इस अन्यायके कारण अपने जीवन-सुखोंको भस्मीभूत कर दूँ?"

"जबतक समाजकी विचित्र आँखोंमें अज्ञानका उपरोध है; और, जबतक समाज अन्ध-विश्वासोंका भक्त है, तबतक तुम्हारे-जैसे हजारों युवकोंका जीवन इसी तरह दुःखमय बना रहेगा।"

"मैं स्वयं सब दुःख भोग सकता हूँ; पर तुम्हें दुःखिनी नहीं बना सकता।"

"इस समाजमें मेरा जीवन क्योंकर सुखद हो सकता है?"

"किन्तु, मैं तुम-जैसी देवीको नहीं भुला सकता।"

"चेष्टा करनेसे वैसा कर सकते हो। कर्त्तव्यकी वेदी-पर मेरे प्रेमको चढ़ा सकते हो।"

"नहीं सुभद्रा, ऐसा कहकर कष्ट न पहुँचाओ।"

"पर मेरे साथ विवाह करनेसे तुम्हें समाजसे बहिष्कृत होना पड़ेगा, अपमानका दारुण दुःख सहना पड़ेगा। तुम्हारी माँ शायद विष............।"

"तो क्या तुम मुझे भुला सकती हो? मुझे अपने जीवनसे काँटेकी तरह निकालकर फेंक सकती हो?"

"नहीं, कदापि नहीं। मेरे लिये यह असम्भव है।"

"फिर मेरे लिये तुम्हें भुला देना कैसे सम्भव हो सकता है?"

"इस लिये कि, तुम्हारे आगे एक महान् कर्त्तव्य खड़ा है—माँ-बापकी आत्माको तुम्हें कष्ट न पहुँचाना चाहिये।"

"तो क्या तुम्हारी यही इच्छा है?"—एक प्रकारकी चित्त-विभ्रमताके आवेशमें विजय बोल उठा।

"हाँ, और, यह इस लिये कि, मैं समाज द्वारा अपने प्रियतमको, अपनी जीवन-निधिको, अपमानित होना नहीं देख सकती। मेरा जीवन तो........।"

इसके आगे सुभद्रा कुछ न बोल सकी। उसकी मनोहर आँखोंसे अश्रु-बिन्दुओंकी झड़ी लग गयी। विजय उसके दोनों कोमल करोंमें अपने हाथोंको लेकर कातरता-भरे नेत्रोंसे उसकी ओर निहारने लगे।

[९]

विजयके विवाह हुए डेढ़ वर्ष हो गये। उनकी अजस्र चेष्टासे उनके पिता लालारामजीने सरोजिनीका विवाह, उसकी पढ़ाई समाप्त होनेतकके लिये, स्थगित कर दिया है। विवाहके छः महीने बादसे ही विजयका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहा करता। इधर छः-सात महीनोंसे विजयकी माँ, उनकी नव वधू और उनके पिता उनके स्वास्थ्यकी देख-रेख करनेके लिये कलकत्ते आये हैं। महीनोंसे डाक्टरों एवं वैद्यों-की चिकित्सा जारी है। दो चार दिनोंके लिये विजय अच्छे भी हो जाते, कचहरी भी जाने लगते; पर अचानक फिर बीमार हो जाते हैं—प्रबल ज्वर चढ़ जाता है। रमेश विजय-की यह अवस्था देखकर बड़े ही चिन्तित रहा करते हैं। अपने काम-धन्धोंसे फुरसत पाते ही रमेश विजयके पास आ बैठते हैं। इस बार कलकत्तेके प्रख्यात डाक्टर बोसकी दवा जारी करनेका विचार किया गया है; लेकिन नब्ज देखते ही डाक्टर बोसकी मुखाकृति बदल गयी। चिन्ताकी कितनी ही रेखाएँ उनके चौड़े कपाल-क्षेत्रमें खचित हो गयीं।

रमेशने पूछा—"क्यों डाक्टर साहब, कैसी हालत है?"

"स्थेटिसकोप'से वक्षःस्थलकी परीक्षा करके डाक्टर बोसने कहा—"अवस्था बड़ी नाजुक है। ज्ञात होता है, किसी महान् दुःखद घटनाने इनके हृदयपर गहरी चोट पहुंचायी है।"

अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे डाक्टरकी ओर निहारते हुए रमेशने कहा—"हाँ, डाक्टर साहब, बात तो वैसी ही है। किन्तु, अब आप ही इन्हें बचाइये। आपकी इस महती कृपाके लिये हम लोग आपके आजन्म ऋणी एवं कृतज्ञ रहेंगे।

"घबरानेकी आवश्यकता नहीं। मैं फिर आठ बजे आकर देखूंगा।"—कहकर एवं औषधविधि बतलाकर डाक्टर बोस चले गये। उस समय पश्चिम क्षितिज अरुण रंगसे रंजित था। सूर्यदेव अनन्त आवरण-पटके पीछे धीरे-धीरे छिप रहे थे। आकाश-क्षेत्रसे कितनी ही तारकाएं अवनीपर धीरे-धीरे झाँकने लग गयी थीं। उसी समय एक प्रकारकी विचित्र प्रमत्तताके आवेशमें विजयने अचैतन्यको अभिभूत कर आँखें खोलीं। रमेशपर दृष्टि पड़ते ही पूछा—"कहिये, इधर सुभद्रा देवीजीका कोई पत्र आया है क्या? इन दिनों वे कैसी हैं.....?" इसके आगे विजय कुछ न बोल सके।

अपने दक्षिण करको विजयके करोंमें देकर और एक दीर्घ उच्छ्वास खींच कर रमेशने कहा—"जी हाँ, चिठ्ठी आयी है। उनका स्कूल बन्द हो चुका है। किसी कामसे एकाध दिनके लिये लखनऊमें ठहर गयी है। शायद आज सन्ध्याकी गाड़ीसे आ जाय। आप घबराते क्यों हैं? अच्छे हो जायँगे।" अपनी सारी बिखरी हुई शक्तियोंको बटोरकर, मुस्कराते हुए, विजयने कहा—"नहीं, घबराता तो नहीं हूँ; किन्तु अब मेरा अन्त निकट जान पड़ता है।"

विजयकी बातें सुनकर उनकी माँ फूट-फूट कर रोने लगी। उसके मुरझाए हुए मुखको चूमकर वह बोली—"बेटा, ऐसा मत कहो जो दवा पीओ, अच्छे हो जाओगे।" माँकी प्रार्थनापर विजयने केवल मुस्करा दिया। लगभग पन्द्रह मिनटतक कमरेमें एकान्त सन्नाटा रहा। विजयने फिर आँखें खोलीं; बोले—"रमेश बाबू, श्यामसुन्दर और कितने दिनों बाद अफ्रीकासे भारत लौट आयेंगे? वह अपनी प्रतिज्ञा भूले तो न होंगे?"

रमेशने उत्तर दिया—"शायद अगले महीनेकी १९ तारीखतक यहाँ पहुँच जायेंगे।"

माँ-बापकी ओर निहारते हुए शोक-सन्तप्त कण्ठसे कम्पित स्वरमें, विजयने कहा—

"पिता जी, समाजको अंधा-धुंधीने मेरे जीवनके सपने सुखोंको, सारी लालसाओंको एवं मेरी महत्त्वाकांक्षाओंको मुझसे छीन लिया। नीरस जीवनसे मृत्यु अधिक सुखद है। मेरी अन्तिम प्रार्थना है कि, आप सरोजिनीका विवाह मोहन जैसे कुपात्रके साथ कदापि न करें। श्यामसुन्दर बाबू अगले महीनेमें अफ्रीकासे भारत लौट आवेंगे। सरोजिनीके लिये उनसे बढ़कर उपयुक्त वर इस समाजमें सर्वथा अप्राप्य है। सरोजिनी······। कहते-कहते विजय मूर्च्छित हो गये।"

डाक्टर साहबने एक 'इन्जेकशन' दिया। विजयमें एक क्षणिक स्फूर्तिका आविर्भाव हुआ। निराशाकी प्रचण्ड अग्निसे झुलसी हुई आँखोंसे निहारते हुए विजयने फिर कहा—"क्यों पिता जी, मेरी प्रार्थना स्वीकार है न? जैसा भयानक हठ मेरे विवाहमें किया था, सरोजिनीके विवाहमें वैसा नहीं कीजियेगा, वर्ना कौन जानता है—मेरी ही तरह वह भी······!"

देखते-ही-देखते विजयकी आँखें पथरा गयीं। रमेश विजयके शरीरपर हाथ रखते ही पक्ष-हीन पक्षीकी भाँति पृथ्वी-पर गिर पड़े।

सन्ध्यागमनके अन्धकारके एवं अंशुमालीकी बची-खुची आलोक-रश्मियोंके बीच एक प्रकारका भीषण युद्ध छिड़ा हुआ था। विजयका कमरा करुण-क्रन्दनोंसे गूंज रहा था।

[६]

कलकत्तेके काली-घाटके पास चिता लगायी जा रही है। विजयकी लाश श्वेत वस्त्रोंसे आच्छादित है। आकाशमें आँसू मानों सूख गये हैं। रमेशकी आँखें रोनेसे फूटनेपर तैयार हो गयी हैं। विधवा-वेषमें विजयकी पत्नीने चिताके पास जाकर आग लगा दी। घीमें डुबोई हुई लकड़ियोंमें आग लगते ही चिता धधक उठी। उसी समय एक सुकुमारी सुन्दरी विद्युत् गतिसे उस भयावह श्मशानपर उपस्थित हुई, मानों आकाश-मार्गसे स्वर्गकी कोई अप्सरा उतर आयी हो।

उसे पहचानकर रमेश बोले—"बेटी सुभद्रा, ईश्वरको यही स्वीकार था। अब क्या हो सकता है? चलो, घर लौट चलें।"

उन्मादिनीसी होकर सुभद्रा चिल्लाने लगी—"देखिये, आकाश मञ्चपर विराजमान देवगण मैथिल-ब्राह्मण-समाजके अत्याचारोंको देख-देखकर क्रुद्ध हो रहे हैं। इस समाजकी मूर्खताने मुझे अपने प्रियतमसे इस लोकमें नहीं मिलने दिया तो क्या, उस पुनीत लोकमें भी रोक सकता है?"—कहती-कहती सुभद्रा धधकती हुई चितामें अचानक कूद पड़ी!

आचार्य कौटिल्य

बाबू जगनलाल गुप्त
और
बाबू भगवानदास केला

आचार्य कौटिल्यने अपनी योग्यता, तेजस्विता, रचना-कौशल और बुद्धि-प्रखरतासे जर्मन, फ्रांसीसी आदि पाश्चात्य विद्वानोंको भी चकित कर दिया है और उनकी दृष्टिमें भारतवर्षका गौरव बढ़ानेमें अद्भुत सहायता प्रदान की है। आचार्य कौटिल्यके अर्थशास्त्रके उपलब्ध हो जानेसे इस बातका जीवित प्रमाण मिल गया है कि, अबसे सवा दो हजार वर्ष पूर्व, जब कि, अनेक आधुनिक राष्ट्रोंका जन्म भी नहीं हुआ था, भारतवर्ष अपनी सभ्यता और संस्कृतिकी तथा राजनीतिक और आर्थिक उन्नतिकी ऊंची पताका फहरा रहा था। अवश्य ही यह खेदका विषय है कि, भारतके मस्तकको ऊँचा करनेवाले ऐसे महान् आचार्यका कोई प्रामाणिक जीवन-चरित्र नहीं मिलता। हमें तो प्रामाणिक जीवन-चरित्र निर्माण करनेके लिये किसी सुसंगठित आयोजनका भी सुसंवाद सुननेका अवसर नहीं मिला।

आचार्य कौटिल्यके जीवनकी बहुत-सी घटनाएँ बहुत विवादग्रस्त हैं। प्राचीन भारतीय विद्वानोंकी भाँति स्वयं उन्होंने अपने विषयमें कुछ प्रकाश नहीं डाला। प्राचीन रचनाशैलीके अनुसार उनके द्वारा रचित "अर्थशास्त्र"में स्थान-स्थानपर केवल उनके नामका ही उल्लेख मिलता है। दो-एक स्थानोंमें प्रयुक्त वाक्योंसे इतना और मालूम हो जाता है कि, आचार्यने महाराजा चन्द्रगुप्तको राज्य दिलानेका सफल प्रयत्न किया और उन्हें राज्यकी सुख-समृद्धिकी यथेष्ट चिन्ता थी। इसी विचारसे आचार्यने यह महान् ग्रन्थ लिखा। इस चिरस्मरणीय विभूतिके जीवनके सम्बन्धमें, इससे अधिक और कोई बात, अर्थशास्त्रसे ज्ञात नहीं होती। आचार्यके चरित्र-लेखकोंको प्रायः अन्धकारमें टटोलना पड़ता है। और तो और, आचार्यके नामका विषय भी रहस्यसे खाली नहीं है।

आचार्यका नाम—अर्थशास्त्रके रचयिताने इस ग्रन्थमें अपना उल्लेख चाणक्य नामसे कहीं नहीं किया। जहाँ-जहाँ उन्हें अपना मत स्पष्ट रूपसे देना अभीष्ट था, उन्होंने "कौटल्यका यह मत है" कहा है। प्रथम अधिकरणके प्रथम अध्यायके अन्तिम श्लोकमें तथा द्वितीय अधिकरणके दसवें अध्यायके अन्तमें भी ग्रन्थ-कर्ताका उल्लेख 'कौटल्य'के नामसे ही हुआ है। हाँ, ग्रन्थकी समाप्तिपर "विष्णुगुप्त" नाम भी दिया गया है। 'नीतिसार' के रचयिता तथा "कामन्दक-नीतिसार"के लेखकने आचार्यके लिये विष्णुगुप्त नामका ही प्रयोग किया है।

'कौटिल्य' नामके विषयमें कहा जाता है कि, यह आचार्यका गोत्रज नाम है, वह कुटल-गोत्रीय थे।* इस कल्पनाका आधार कुछ हस्त-लिखित ग्रन्थोंमें 'कौटिल्य' पदका पाठ 'कौटल्य' पाया जाना है। यह बता सकना कठिन है कि, इस गोत्रवाले इस समय भारतवर्षके किस भागमें पाये जाते हैं।

धीरे-धीरे आचार्यके "विष्णुगुप्त" नामका प्रचार घट गया और 'कौटल्य' या 'कौटिल्य' ही व्यवहारमें आने लगा।× अर्थशास्त्रको छोड़कर अन्य इतिहासज्ञ, पुराणकार,

---

* सम्भव है, इसीलिये आचार्यने अपने लिये इस सामान्य नामका अधिक व्यवहार किया हो।

× इन दोनों नामोंमेंसे भी कौटिल्य ही विशेष रूपसे प्रचलित है। 'कौटल्य' शब्दके उपयोगसे कुछ पाठकोंके मनमें भ्रम उत्पन्न हो जानेकी आशंका है। इसलिये हम इस लेखमें 'कौटिल्य' नामका ही प्रयोग कर रहे हैं।

टीकाकार, भाष्यकार आदि भी, जो आचार्यसे अधिक काल पीछे नहीं हुए, इसी नामका प्रयोग करने लगे। एकाध विशेषज्ञ (उदाहरणार्थ "मुद्राराक्षस"के रचयिता कवि विशाखदत्त) के सिवा और सब लेखक आचार्यके विष्णुगुप्त नामको भूल गये।

चाणक्य—आचार्य कौटिल्यने अपने आपको, अथवा उनके निकटवर्ती लेखकोंने उनको 'चाणक्य' नहीं कहा; यद्यपि प्राचीन और अर्वाचीन साहित्यमें यह नाम भी उसी व्यक्ति (कौटिल्य) का सिद्ध करनेवाले यथेष्ट उद्धरण प्राप्त होते हैं। ऐसा अनुमान होता है कि, जब अन्य शिक्षित लोगोंको भूलसे आचार्यको 'कौडिल्य' लिखा और पढ़ा जाने लगा, तब इसी शब्दके लगभग समानार्थी नाम चाणक्यकी सृष्टि हुई। किसी-किसीने लिखा है कि, चणक ऋषिकी सन्तानका नाम चाणक्य है। ('मुद्राराक्षस'के विद्वान् लेखकने आचार्यका नाम विष्णुगुप्त और उनके पिताका नाम शिवगुप्त लिखा है)। हेमचन्द्रने तथा उनके समान अन्य कोषकारोंने विष्णुगुप्तके कई नाम लिख डाले हैं। निदान, विक्रमकी बारहवीं शताब्दीसे पूर्व कौटिल्यका वास्तविक नाम केवल कोषोंमें रह गया था तथा इस नामके और भी कई पर्याय प्रचलित हो चुके थे; परन्तु उनमें चाणक्य या चणकात्मज नाम नहीं था। यह नाम हेमचन्द्रके अपने मस्तिष्ककी उपज थी।

इस प्रकार चाणक्य नामका गोत्रज या पैत्रिक होना सिद्ध नहीं होता, वरन् विष्णुगुप्तका गोत्रज नाम 'कौटल्य' होना ही अधिक सम्भव है। कालान्तरमें 'कौटल्य' का 'कौटिल्य' हो गया। जिसका अर्थ 'कुटिलता' है। इस परिवर्तनने चाणक्य नामको जन्म दिया।

राजनीतिके प्राचीन आचार्यों और अर्थ-शास्त्र-वेत्ताओंके जो उद्धरण स्वयं कौटिल्यने दिये हैं। उनसे अनुमान होता है कि, प्रायः वे विद्वान् अपना एक उपनाम भी चुन लेते थे; अथवा कालान्तरमें उनके अनुयायी (तथा विरोधी भी) उनकी नीतिकी विशेषताके अनुसार उनका एक उपनाम रख लेते थे। कवि विशाखदत्तने विष्णुगुप्तका जो चाणक्य नाम रखा है। वह भी ऐसा ही मालूम होता है। आचार्यकी कुटचर-पद्धति और सन्धि-विग्रह आदिकी तर्क-युक्त-नीति रचनाको देखकर, जो साधारणतया सरल और सुगम नहीं है। कविके ध्यानमें 'चणक' या 'चाणक्य' शब्दका आना स्वाभाविक ही था; विशेषतया जब कि, इसी प्रकारका एक और नीतिज्ञ—दुर्योधनका मंत्री 'कणक' पहले हो चुका था। कालान्तरमें आचार्यका नाम 'चाणक्य' ही अधिक प्रसिद्ध हो गया, और, हेमचन्द्र कोषकारने इस नवीन शब्दको अण् प्रत्ययवाला मानकर आचार्यको चणकात्मज (चणकका पुत्र) लिख दिया। इससे वास्तविक इतिहास और भी अन्धकारमें पड़ गया।

वात्स्यायन और कौटिल्य—हेमचन्द्र तथा कुछ अन्य विद्वानोंने कौटिल्यको भी कामसूत्र-प्रणेता वात्स्यायनको एक ही व्यक्ति माना है; परन्तु कामसूत्रमें इस बातका उल्लेख हुआ है कि, शातवाहनवंशी कुन्तल-नरेश शातकर्णिके पुत्र शातकर्णिने अपनी महारानीको मार डाला था। यह घटना सन् ८० और ९४के बीचकी प्रमाणित होती है। इसके विपरीत कौटिल्यके अर्थशास्त्रका निर्माण सम्राट् चन्द्रगुप्तके समयमें, ईसासे लगभग ३२१ वर्ष पूर्वतक हो सकता है। ऐसी दशामें कौटिल्य कामसूत्रमें वर्णित बहुत वर्ष पीछेकी घटनाका लेखक नहीं हो सकते। निदान, यह स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र-रचयिता कौटिल्य और कामसूत्र-प्रणेता वात्स्यायन भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं, एक ही नहीं।

यूरोपके कुछ विद्वान् उक्त दोनों ग्रन्थोंमें भाषाका साम्य, अधिकरण, प्रकरण, अध्याय आदि भागोंका साम्य तथा अन्तिम अधिकरणोंके नामोंका साम्य देखकर दोनों ग्रन्थोंको एक ही विद्वान्का रचा हुआ स्वीकार करनेके लिये आग्रह करते हैं। इस सम्बन्धमें विचारणीय बात यह है कि, अर्थ-शास्त्रकी शैली और रचनाक्रम सुश्रुत, सूर्य-सिद्धान्त और सिद्धान्तशिरोमणिकी शैली और रचना-क्रमसे मिलते हैं, तो क्या इन ग्रन्थोंको अर्थशास्त्र-लेखक कौटिल्य द्वारा रचित माना

जा सकता है ? पुनः कामशास्त्र और अर्थशास्त्रमें दो अत्यन्त विचित्र बातें विशेष-रूपसे पायी जाती हैं। कामशास्त्रमें अर्थशास्त्रकी तरह भाष्य नहीं है और उसके सूत्र अर्थशास्त्रके सूत्रोंसे सरल और स्पष्ट हैं। वे प्रायः पूर्ण वाक्य हैं; जिनमें क्रियाका प्रयोग किया गया है।

कामशास्त्रके प्रसिद्ध टीकाकार यशोधरने वात्स्यायनके अन्य नामोंपर विचार किया है। उसने उसको कौटिल्य (या चाणक्य) नहीं लिखा। इसके विपरीत कितने ही प्रसंगोंपर उसने (कौटिल्य) अर्थशास्त्रके उद्धरण देते समय उसके रचयिताके स्थानपर कौटिल्य नाम ही दिया है।

ज्योतिर्विद् विष्णुगुप्त और चाणक्य—विष्णुगुप्त और चाणक्यका उल्लेख फलित ज्योतिषके ग्रन्थोंमें भी मिलता है। किसी-किसी स्थलपर तो विष्णुगुप्तका ही दूसरा नाम चाणक्य मान लिया गया है; और, कहीं-कहीं इन नामोंके दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति माने गये हैं। परन्तु चाहे विष्णुगुप्त और चाणक्य दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति हों अथवा ये दोनों नाम एक ही व्यक्तिके हों, हमारा मत यह है कि, अर्थशास्त्र-रचयिता कौटिल्य उससे (या उनसे) सर्वथा भिन्न व्यक्ति थे। इसके लिये यथेष्ट प्रमाण दिये जा सकते हैं; पर स्थानाभावसे यह नहीं किया जाता। इतना ही उल्लेख करना है कि, कौटिल्य फलित ज्योतिषमें विश्वास नहीं करते थे और उसे निरा ढोंग समझते थे।

कौटिल्यका जन्म और शिक्षा—आचार्य कौटिल्यके भिन्न-भिन्न नामों तथा दूसरे व्यक्तियोंसे उनकी एकरूपता अथवा विभिन्नताके विषयमें इतना लिख चुकनेपर हम अब उनके आविर्भावके सम्बन्धमें विचार करते हैं। आचार्यके समयके विषयमें केवल यही कहा जा सकता है कि, वह सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य और उनके पूर्वज नन्दके समकालीन थे। बौद्ध ग्रन्थों तथा कुछ अन्य ग्रन्थोंके आधारपर अनुमान किया जाता है कि, उनकी जन्म-भूमि तक्षशिला थी और उन्होंने संसार-प्रसिद्ध नालन्दके विश्वविद्यालयमें शिक्षा पायी थी। कविवर विशाखदत्तजीके लिखनेसे ज्ञात होता है कि, नगर (पाटलिपुत्र) में आनेसे पूर्व कौटिल्य-नीति, वैद्यक, ज्योतिष, रसायन आदि विविध लोकोपयोगिनी विद्याएँ पढ़ चुके थे; और, उन्होंने दृढ़ता, साहस और धैर्य आदि सद्गुणोंकी भी यथेष्ट शिक्षा पा ली थी। निस्सन्देह कौटिल्यने अपने भावी जीवनमें इस शिक्षाका खूब उपयोग किया। अर्थशास्त्र-जैसा महान् ग्रन्थ उनकी उच्च शिक्षा और विस्तृत अध्ययनका अच्छा प्रमाण दे रहा है।

मगधमें आगमन—उन दिनों मगधके महाराजा महानन्द या महापद्मनन्दका प्रताप-सूर्य मध्याह्नमें था। उनकी राजधानी पाटलिपुत्र या कुसुमपुरके वैभवकी सर्वत्र धूम थी। सम्भवतः अपनी विद्या और बुद्धि-का प्रकाश दिखाने और राजाश्रय पानेके लिये भावी आचार्य कौटिल्य यहाँ आये। महानन्दके मंत्री शकटार या "शक-टाल"से उनकी भेंट हुई। उन्होंने इनकी राजनीतिक योग्यता तथा रसायन, वैद्यक आदि व्यवहारोपयोगी ज्ञानको शीघ्र परख लिया। महानन्दसे अपमानित होनेके कारण वह उनसे बदला लेनेके इच्छुक थे; इसलिये उन्होंने प्रखर-बुद्धि कौटिल्यसे मित्रता करना ठीक समझा। कौटिल्य भी राज-मंत्री-जैसे उच्चाधिकारीके मित्र बनकर बहुत प्रसन्न हुए और उनके हितैषी सखा भी बन गये।

शकटारने शीघ्र ही यह विचार किया कि, यदि कौटिल्य-जी, दरबारतक पहुँच हो गये और इन्होंने महाराजकी कृपादृष्टि प्राप्त कर ली, तो उस दशामें मेरा महाराजासे बदला लेनेका उद्देश्य पूरा न हो सकेगा। इसलिये उन्होंने इन्हें किसी प्रसंगपर * महाराजासे कड़ी फटकार दिला दी।

---

* 'मुद्राराक्षस' नाटकके अनुवादमें स्व० भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजीने इस प्रसंगका जो वर्णन किया है, उसे पाठक अच्छी तरह जानते होंगे। अतः यहाँ देनेकी आवश्यकता नहीं। मालूम होता है कि, वह वर्णन जैसा नाटकोचित है वैसा प्रामाणिक तथा इतिहास-योग्य नहीं है।

तेजस्वी कौटिल्य वैभवोन्मत्त महानन्द द्वारा किये गये अपमानसे बहुत क्रुद्ध हुए। इसपर शकटारने उन्हें और भी भड़काया। फलतः कौटिल्यने महानन्दका नाश करनेकी प्रसिद्ध प्रतिज्ञा की।

चन्द्रगुप्तसे मेल और नन्दोंका नाश—उस समय भ्रातृ-द्वेष तथा राजनैतिक कारणोंसे चन्द्रगुप्तको मगधके पैत्रिक राज्यसे भागना पड़ा था। वह युवराज होनेके अतिरिक्त अत्यन्त साहसी, चतुर और योग्य था। उसका कौटिल्यसे मेल हो जाना स्वाभाविक था। वे दोनों तक्षशिलाकी ओर गये। उन दिनों सिकन्दर अपनी सेनाके साथ वहीं था। उससे इनकी भेंट हुई; किन्तु उसकी सेनाके भयभीत हो जानेके कारण वह इन्हें महानन्दके विरुद्ध कुछ सहायता न दे सका। अन्ततः पश्चिमोत्तर प्रान्तोंके कई पहाड़ी राजाओंसे मेल करके ये कुसुमपुरपर चढ़े। लड़ाईमें नन्द मारे गये+ और कुसुमपुरपर कौटिल्य और चन्द्रगुप्तका राज्य हो गया।

शान्ति-स्थापना—सम्भवतः राज्याधिकार प्राप्त कर लेनेके पीछे भी कौटिल्यको विजित राज्यमें शान्ति स्थापित करनेमें बड़ी कठिनाई पड़ी होगी और उन्हें महानन्दके मंत्री राक्षसको चन्द्रगुप्तका अमात्य बनानेमें कई वर्षोंके प्रयत्न करनेके पश्चात् सफलता हुई होगी। अर्थशास्त्रके प्रकरण १७६ में ऐसे उपायोंका सविस्तर वर्णन किया गया है; और, 'मुद्राराक्षस'का अन्तिम भाग पढ़नेसे मालूम होता है कि, कौटिल्यको प्रायः वे सब ही उपाय काममें लाने पड़े थे।

सिल्यूकसकी पराजय—राक्षसको चन्द्रगुप्तका अमात्य बनानेके पश्चात् कौटिल्यने भारतवर्षसे यूनानियोंको निकालनेकी ओर ध्यान दिया। सिल्यूकसने महानन्द और चन्द्रगुप्तके युद्धका समाचार सुननेपर अपना अधिकार पंजाबतक बढ़ा लिया था। अब, चन्द्रगुप्तकी विजयसे वह न केवल पंजाबसे ही हटाया गया था, वरन् अफगानिस्थान, बिलोचिस्तान और उससे भी आगेका कुछ भाग इससे छीनकर मौर्य साम्राज्यमें मिला लिया गया। सिल्यूकसने अपनी कन्या हेलनाका विवाह चन्द्रगुप्तसे किया और अपना एक दूत (जामिनकी तरह) चन्द्रगुप्तके दरबारमें भेजा।

कौटिल्यकी रहन-सहन—जान पड़ता है कि, कौटिल्यका शेष जीवन शान्त और गम्भीर मंत्री या महामंत्रीका जीवन था। यद्यपि वह बड़े विद्वान् और प्रभावशाली थे, स्वयं चन्द्रगुप्तको सम्राट् बनानेवाले थे; तथापि इनके जीवनमें राजकीय शान-शौकतका अभाव था। 'मुद्राराक्षस'से मालूम होता है कि, वह अपने आश्रममें एक सामान्य गृहस्थ या वानप्रस्थकी भाँति रहते थे। अनुमानतः इनका आश्रम पाटलिपुत्रसे बाहर, लगभग एक कोस पूर्वकी ओर, रहा होगा। सम्भव है कि, आचार्य कौटिल्यकी रहन-सहनकी अत्यन्त सादगीके कारण ही वह उन यूनानियोंकी निगाहमें ऊँचे न हों, जो सिकन्दर आदिके दरबारसे चन्द्रगुप्तके यहाँ आते थे। उन्हें सहज ही इस बातकी कल्पना न हो सकी होगी कि, भारतवर्षमें एक धनहीन कौपीनधारी व्यक्ति राजाको बनानेवाला और राज्य कार्यका संचालन करनेवाला सूत्रधार हो सकता है।

कौटिल्यकी योग्यता—अर्थशास्त्रकी रचना देखनेसे प्रत्येक पाठकको यह स्वीकार करना पड़ता है कि आचार्य कौटिल्य कितनी ही विद्याओंके ज्ञाता थे। इस महान् ग्रन्थमें उन्होंने अपनी अपूर्व राजनीतिक प्रतिभा तथा युद्ध, शासन और संगठनके सम्बन्धके ज्ञानका अद्भुत परिचय दिया है। इसके अतिरिक्त आचार्य नगर-निर्माण, राजपुत्रोंकी शिक्षा, सैन्य संचालन, खनिज शास्त्र, व्यापारकला, द्रव्यौषध-विज्ञान, विष-परीक्षा,

---

+ महानन्द और उसके पुत्रोंके मारे जानेके विषयमें कई प्रकारकी अद्भुत और आश्चर्यजनक गाथाएं प्रचलित हैं। परन्तु वास्तविक बात यही होगी कि, ये लोग युद्धमें उन उपायों द्वारा मारे गये, जिनका उल्लेख कौटिल्यने अपने अर्थशास्त्रके प्रकरण १६४ से १७५ तक किया है।

विष-चिकित्सा, कृषि, पशुपालन, कानून और वैद्यक आदि विद्याओंके भी निष्णात पण्डित थे। गुप्तचरों द्वारा राजकार्य चलाने एवं उनकी रिपोर्टको जाँच करनेके विषयमें उन्होंने जो गम्भीर और मौलिक विचार प्रकट किये हैं, उससे उन्हें संसारमें गुप्तचर-विभागका सर्वप्रथम संगठनकर्ता मानना अनुचित न होगा।

उस समयकी दृष्टिसे कौटिल्यका भौगोलिक और ऐतिहासिक ज्ञान-भाण्डार भी अपरिमित था। आचार्यने अपने अर्थशास्त्रमें भारतवर्ष तथा विदेशोंके जिन स्थानों, नगरों, नदियों, खानों, खाड़ियों, झीलों आदिका उल्लेख किया है, वह सही है; उन्होंने तत्कालीन कई यूनानी लेखकोंकी भाँति कल्पनाके आधारपर ही नहीं लिख मारा। उन्होंने हीरा, मोती, मूँगा, चन्दन, चमड़ा, रेशमी वस्त्र, नमक आदि पदार्थ उत्पन्न होने या बनाये जानेके कई स्थानोंके नाम गिनाये हैं।

आचार्य कौटिल्यने अपने ग्रन्थमें भिन्न-भिन्न, कम-से-कम तीस ऐतिहासिक, घटनाओंका उल्लेख किया है। इनमेंसे कुछ सर्वश्रुत हैं; पर कितनी ही ऐसी हैं, जिनका ज्ञान पुराणों और इतिहासोंको देखे बिना नहीं हो सकता। अच्छा हो, यदि कौटलीय अर्थशास्त्रके अनुवादक, पाठकोंकी जानकारीके लिये, इन घटनाओंपर कुछ प्रकाश डाला करें।

इन सब बातोंसे आचार्य कौटिल्यकी असीम योग्यता, विद्वत्ता और नीतिज्ञता आदिका असंदिग्ध प्रमाण मिलता है। *

गीत

अलि अब सपनेकी बात !
हो गया है वह मधुका प्रात !!

जब मुरलीका मृदु पञ्चम स्वर,
कर जाता मन पुलकित अस्थिर,
काँप-काँप उठता था थर-थर,
नव लतिका-सा गात !
जब उनकी चितवनका निर्झर,
भर देता उससे मानस-सर;
स्मितसे झरता था मधु झर-झर,
पीते दृग-जलजात !

मिलन-इन्दु बुनता जीवनपर,
विस्मृतिके तारोंसे चादर,
विपुल कल्पनाओंका मन्थर,
बहता सुरभित वात !
अब नीरव मानस-अलि गुंजन,
कुसुमित मृदु भावोंका स्पन्दन,
सजनि ! वेदना आयी है बन,
तम तुषारकी रात !!

श्रीमती महादेवी वर्मा बी० ए०

*आचार्य कौटिल्यके सम्बन्धमें यहाँ कुछ थोड़ी-सी बातोंका ही, संक्षेपमें, विवेचन हो सका है। इस विषयमें बहुत अध्ययन और अन्वेषणकी आवश्यकता है। कुछ अधिकारपूर्वक कह सकनेवाले विद्वानोंसे हम अन्य बातें जाननेके बहुत अभिलाषी हैं। वह अपना विचार एवं मत हमारे पास, भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावनके पतेसे भेजनेकी कृपा करें अथवा यदि सम्पादक "गंगा" उनके लेखोंको प्रकाशित कर सकें, तो उनके पास भेजनेका कष्ट उठायें। इससे सर्वसाधारणमें इस विषयकी चर्चा होनेकी सुविधा होगी।—लेखक

भारतीय नाट्यशास्त्र

बाबू गोपीनाथ वर्मा

सुप्रसिद्ध जर्मन पण्डित वेबरने अपने "संस्कृत लिटरेचर" ग्रन्थमें लिखा है कि, नाट्यकलाको प्रथम सृष्टि ग्रीकोंने ही की है। प्रोफेसर मैक्डानलने अपने बनाये "संस्कृत-सहित्यके इतिहास" में जो कुछ लिखा है, उसका भाव यह है कि, प्राचीन कालमें हिन्दुओंके यहाँ साधारण नाट्यशालाका अस्तित्व नहीं था। वे साधारणोपयोगी नाट्यशाला-निर्माणको कला नहीं जानते थे। उनके नाटक राजा-महाराजाओंको नृत्यशालामें खेले जाते थे; किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, ये धारणाएँ भित्तिहीन हैं। नाट्यकलाकी आदि-सृष्टि हिन्दुओंने ही की थी। भारतमें अतीव प्राचीन कालसे सर्वसाधारणके लिये उपयोगी नाट्यशालाओंका अस्तित्व था। उनमें किसी उत्सव या पर्वके अवसरपर नाटकोंका अभिनय हुआ करता था। प्रोफेसर विल्सन साहबने भी इन प्रोफेसरोंके मतोंका खण्डन किया है। उन्होंने स्पष्ट स्वीकार किया है कि, हिन्दुओंके नाटक ही आदिम हैं। नाट्यकला या नाट्यशास्त्रके बारेमें हिन्दू लोग किसीके ऋणी नहीं हैं। बंगालके सुप्रसिद्ध महामहोपाध्याय पण्डित हरप्रसाद शास्त्रीने एक ऐसा सुन्दर निबन्ध लिखकर छपाया है, जिसमें उन्होंने सारगर्भ, सुस्पष्ट तथा संगत युक्तियों और प्रमाणोंसे हिन्दुओंकी नाट्यकलाकी उत्पत्ति और प्राचीनताके प्रसंगकी आलोचना की है। शास्त्रीजीने लिखा है कि, साठ सालसे कुछ अधिक समय हुआ, कर्नल उजलेने सरगुजाके अन्तर्गत रामगढ़-पहाड़की दो गुफाओंका आविष्कार किया था। उनमें अशोकके समयकी लिपिमें जो कुछ खोदा गया है, वह नाट्यकलाके सम्बन्धमें है। कई साल हुए, डाक्टर ब्लैक इन गुफाओंको देखने गये थे। उन्होंने इन लिपियोंको पढ़कर यही सिद्धान्त स्थिर किया था। उनका अनुमान है कि, ई० पू० तीसरी शताब्दीमें हिन्दुओंकी यह गुहारूपिणी विराट् नाट्यशाला तैयार की गयी थी। शास्त्रीजीने यह भी लिखा है कि, हिन्दूनाट्यशास्त्रमें 'प्रेक्षागृह' आदि शब्दोंके मौजूद रहते मैक्डानल साहबका पूर्वोक्त सिद्धान्त कर लेना ठीक नहीं है। "नाट्यशास्त्र"के दूसरे अध्यायमें प्रेक्षागृहका आकार तीन प्रकारका लिखा है। प्रथम प्रकारके प्रेक्षागृहका नाम है 'विकृष्ट'। यह अण्डेके आकारका और लम्बाईमें १०८ हाथका होता था। यह नाट्यशाला देवमन्दिरोंके साथ होती थी। दूसरे प्रकारका गृह भी इसी प्रकारका होता था। यह ६४ हाथ लम्बा और ३२ हाथ चौड़ा होता था। यह राजाओंके लिये होता था। नाट्यशास्त्रमें ऐसा इशारा भी पाया जाता है कि, इसी श्रेणीकी नाट्यशालाएँ बहुत स्थानोंमें होती थीं। तीसरे प्रकारकी नाट्यशाला समभुज त्रिकोण आकारकी होती थी। इसका प्रत्येक भुज ३२ हाथोंका होता था। यह गार्हस्थ्य नाट्यशाला कहलाती थी। उस प्रकारकी तीनों नाट्यशालाओंके आधे भागमें दर्शक लोग बैठते थे। भिन्न-भिन्न जातियोंके बैठनेके लिये जुदा-जुदा स्थान होते थे और वे विभिन्न वर्णोंके खम्भोंसे विभक्त किये जाते थे। आसन एकके पीछे एक सोपानाकार बनते थे। प्रत्येक आसन आगेवाले आसनसे एक हाथ ऊँचा होता था। सामनेके आसनोंपर ब्राह्मण लोग बैठते थे और उनका निर्देश श्वेत वर्णके खम्भोंसे किया जाता था। क्षत्रियोंके आसन लाल रंगके खम्भोंसे चिह्नित किये जाते थे। इनके पीछे उत्तर-पश्चिममें वैश्योंके और उत्तर-पूर्वमें शूद्रोंके आसन रहते थे। वैश्योंके आसन पीले रंगके और शूद्रोंके नीले रंगके खम्भोंसे चिह्नित रहते थे। इनके सिवा अन्य रंगोंके कुछ और भी खम्भे रहते थे। उनके पास जो आसन होते थे, उनमें वर्णाश्रमके बाहरके लोग बैठते थे। इस नीचेकी आसन-श्रेणीके ऊपर एक बरामदा-सा बना रहता था। वहाँ भी पूर्वोक्त प्रकारके चिह्नित और विभक्त आसन रहते थे। नाट्यशालाका

दूसरा आधा भाग अभिनेताओंके अधिकारमें रहता था। इस भागके सबसे पिछले अंशको 'रंगशीर्ष' कहते थे। इस अंशमें छ खम्भे और समस्त स्थानका अष्टमांश स्थान रहता था। नाट्य-वेदके सृष्टिकर्ता ब्रह्मा और अन्यान्य देवोंकी पूजा यहींपर सबसे पहले की जाती थी। नैपथ्य अथवा सज्जागृहसे इस स्थानमें आनेके दो दरवाजे रहते थे। नैपथ्यसे रङ्गमञ्चमें आनेके लिये कहीं एक और कहीं दो द्वार होते थे। रङ्गमञ्च कभी-कभी दो-मंजिला होता था। दूसरे खण्डमें स्वर्गके दृश्योंका अभिनय किया जाता था। सारा रङ्गमञ्च कपड़ेपर अंकित बाग, अट्टालिका, प्रासाद, मन्दिर, नद-नदी, वन, पहाड़, समुद्र आदिके चित्रोंसे सुशोभित रहता था। इन सब चित्रोंसे पलटने और बदलने योग्य दृश्यावलीके अभावकी पूर्त्ति की जाती थी। नाट्यशालाके प्रत्येक अंशके निर्माणके समय भिन्न-भिन्न देवोंकी पूजाकी व्यवस्था मिलती है। प्रत्येक बार ब्राह्मण-भोजन करानेकी प्रथा भी थी। हीनाङ्ग, विकलाङ्ग, कुरूप व्यक्तिको नाट्यशालाके निर्माणका कोई भी काम नहीं सौंपा जा सकता था। संन्यासी और यति लोग नाट्यशाला-की हदके भीतर पैर रखने नहीं पाते थे! जर्जर या इन्द्रध्वजकी स्थापना ही नाट्यशाला-सम्बन्धी आवश्यक देवकर्मोंमें प्रधान कर्म समझी जाती थी। उत्सवके पहले दिन सन्ध्या कालमें मंत्र पढ़कर नाट्यशालामें इन्द्रध्वज गाड़ा जाता था। ध्वजारोपणके दूसरे दिन, सब देवी-देवोंकी पूजाके बाद, जर्जरकी पूजा होती थी। इसके पहले क्रमशः ब्रह्मा, शिव, कार्त्तिकेय और नागरकी स्थापना होती थी। ध्वजाके प्रथम खण्डमें श्वेत वस्त्र, दूसरेमें नील वस्त्र, तीसरेमें पीत वस्त्र, चौथेमें लाल वस्त्र और पाँचवेंमें विविध वर्णका वस्त्र लपेटा जाता था। असुर-विजयके अनन्तर इन्द्रने ध्वजारोपण किया था, जिसके बाद आदिम नाट्यका अभिनय हुआ था, ऐसा शास्त्रमें लिखा है। नाट्यशालाकी रचना पूर्ण होनेपर भरत मुनिने ब्रह्मासे पूछा कि, 'किस विषयका अभिनय किया जाय?' ब्रह्माने, 'अमृतके लिये सागर मथन' का अभिनय करनेकी आज्ञा दी। इस अभिनयसे देवोंको विशेष आनन्द मिला। उसके बाद देवोंने शिवजीको नाट्याभिनय दिखाकर प्रसन्न करना चाहा। तब हिमालयपर शिवके सामने 'त्रिपुरदहन'का अभिनय किया गया। अभिनय देखकर शिव बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अभिनयके उत्कर्षके लिये उसमें नृत्यको भी शामिल करनेकी राय दी। दक्ष-यज्ञ-विध्वंसके बाद उस दिन सन्ध्या-समय शिवजीने विचित्र प्रकारके गीत-वाद्यके साथ नृत्य किया था। उस दिन उन्होंने अनेक देवोंके रूप रखकर अनेक प्रकारसे नृत्य दिखलाया था। इसीको नाट्यशास्त्रमें 'पिण्डीबन्ध' कहा है।

नृत्यके अनेक प्रकार हैं, जिनका उल्लेख नाट्यशास्त्रमें है। नाट्याभिनयके पूर्व निम्नलिखित १० अनुष्ठान किये जाते थे—वाद्य-यंत्र आदिका आयोजन, अपने दलके बीच वादकोंका अवस्थिति-स्थान, संगीतका आरम्भ, वाद्य-परीक्षा, कण्ठ-स्वरके साथ बाजेके स्वरको मिलाना, तन्तु-यंत्र, (सारंगी) के साथ आवाज मिलाना, विविध बाजे बजाना-सब बाजोंके स्वरका समन्वय करके एक ताल बजाना, ताल-विधान और ईश्वरकी स्तुति—ये सब व्यवस्थाएँ रङ्गमञ्चके बाहर, यवनिकाकी आड़में, की जाती थीं। उसके बाद यवनिका उठाकर सूत्रधार रङ्गमञ्चमें प्रवेश करता था। वह दसो दिशाओं-में घूमकर दसो दिक्पालोंको प्रणाम करता था। फिर नान्दीपाठ किया जाता था; जर्जर-स्तोत्रके कई श्लोक पढ़े जाते थे। तदनन्तर यथार्थ अभिनय आरम्भ होता था।

यह है हमारे प्राचीन नाट्यकलाका एक संक्षिप्त दिग्दर्शन। संस्कृतके उच्च कोटिके नाटक-ग्रन्थ हमारे ही यहाँ मिलते हैं, जिनकी प्रशंसा प्रायः संसारके प्रत्येक देशवासीने मुक्तकण्ठसे की है।

भारतकी प्राचीन संगीतविद्या

प० सुरेश्वरप्रसाद मिश्र

पुराकालमें, भारतमें, संगीतविद्याकी चर्चा घर-घर होती थी। उन दिनों त्रिकालदर्शी महर्षियोंने अपने शिष्योंकी शिक्षण-पद्धतिमें संगीतका अध्ययन अनिवार्य कर रखा था। वैदिक कालके संगीतज्ञ सामवेदको ही सबसे बढ़कर आदर्श पुस्तक मानते थे। गान, वाद्य और नृत्य—ये तीन भेद संगीतमें मुख्य माने जाते थे। नादब्रह्मके अंशस्वरूप ही ये तीनों भेद हैं। बहुत लोगोंका कथन है कि, नृत्य नादब्रह्मके अन्तर्गत नहीं हो सकता। यह उनकी भारी भूल है। प्राचीनकालमें हमारे देशमें स्त्री और पुरुष, दोनों ही संगीतविद्याका अध्ययन करते थे। गान-वाद्यके सम्मेलनसे स्त्री-पुरुषमें आनन्दका प्रादुर्भाव होना अनिवार्य है। अतः गान-वाद्यके संयोगसे स्त्री-पुरुषोंमें सञ्जनित आनन्दोल्लासका ही क्रियात्मक रूपमें प्रकट होनेका नाम नृत्य है। इसलिये नृत्यको नादब्रह्मसे अतिरिक्त समझना ठीक नहीं। हाँ, आधुनिक संगीत-प्रणालीमें विद्वानोंके सम्मिलित न होनेके कारण और नृत्यके स्थानको वारवनिताओंके अख्तियार करनेकी वजहसे सभ्य समाजने नृत्यका तिरस्कार करना प्रारम्भ किया है। संगीत-शास्त्रानुसार नृत्यके भी दो भेद हैं। स्त्री-नृत्यको लास्य और पुरुष-नृत्यको ताण्डव कहते हैं। भारतमें जबसे इस विद्याका प्राचीन आदर्श विलुप्त होना आरम्भ हुआ, तभीसे धीरे-धीरे नृत्यकलामें अनेकानेक दोष आने लगे और उसका दुष्परिणाम यह हुआ कि, आज दिन समस्त भारतमें लास्य नृत्यपर वेश्याओंका अधिकार और ताण्डव नृत्यपर कथकोंका अखण्ड साम्राज्य है।

यह मानी हुई बात है कि, भारतका विज्ञान और दर्शनशास्त्र संसारमें बे-जोड़ था और अब भी है। ऋषियुगमें मुनियोंने दर्शन और विज्ञानके सहारे सोलह सहस्र राग-रागिनियोंका और सरसठ तालोंका आविष्कार किया था! इससे पता चलता है कि, शब्द-सृष्टिमें भारत कितना अग्रसर था। भगवान् शंकरके डमरूके शब्दोंसे ही पाणिनीय व्याकरणका सृजन हुआ था। आजकल संगीतकी समुन्नत दशा मान लेनेपर भी दो सौ राग-रागिनियोंका और पचीस तालोंका ही परिचय मिलता है। बड़े-बड़े धुरन्धर संगीतज्ञोंकी योग्यताकी इति-श्री इतनेमें ही है। इसके सिवा, आजकलके संगीत-ग्रन्थोंके लेखक स्वयं ही उसके गूढ़ रहस्योंको नहीं जानते और दूसरे प्राचीन शैलीका आश्रय भी नहीं लेते। इसीसे उनके ग्रन्थोंका पाठ करनेसे संगीत-शिक्षार्थियोंको कुछ भी आनन्द नहीं मिलता।

मार्गी और देशीके भेदसे गानके दो भेद माने गये हैं। पुराणोंसे मालूम होता है कि, कलियुग महाराजके आगमनका नाम सुनते ही मार्गी इस मृत्यु-लोकको छोड़कर स्वर्ग चली गयी। इसी कारण मार्गीके सहारे सामगानकी लेशमात्र भी चर्चा आजकलके संगीतमें नहीं पायी जाती। देशी गानकी प्राचीन रीति "ध्रुवपद" अर्थात् निश्चित पदावलि है। आजकल इसीको लोग "ध्रुपद" कहकर पुकारते हैं। ख्याल, टप्पा, ठुमरी, तिलाना, गजल प्रभृति तो मुसलमान बादशाहोंके शासनकालसे ही प्रचलित हुए हैं। "ध्रुवपद"की प्राचीन रीति अब विलुप्तप्राय हो रही है। संगीतशास्त्रकी इस निश्चित पदावलिको सुननेकी इच्छा भी अब किसीमें नहीं दीख पड़ती। आजकलके प्राचीन ध्रुवपद गानेवालोंमें विरले ही पूर्ण रीतिसे गाते हैं। प्राचीन समयमें ध्रुवपदका ध्रुवत्व स्वर, ताल, लय आदि

चार प्रकारोंसे सिद्ध किया जाता था; किन्तु ध्रुवपद-गानमें आजकल इन चारोंका प्रयत्नोपयोग बहुत कम होता है। "मेरुखण्ड"-प्रतिपादित तानके अनुसार इस अलौकिक ध्रुवपद-गानके पाँच हजार चालीस भेद हैं। इसको सुनकर रोमाञ्च हो जाता था; किन्तु आजकलके नकली गायकोंके प्रचारसे, नरपतियों और मनीषियोंके हृदयमें आदर-भाव न होनेसे, महाविद्यालयोंमें स्थान न पानेसे, निश्चित पद्धतिके तिरस्कार होनेसे तथा छोटे और बड़ेका विचार हट जानेसे और नीच तथा पापियोंके संसर्ग-भयसे त्रस्त होकर शायद प्राचीन संगीत-विद्या अमरधामको चली गयी !

इन दिनों यूरोपके समान भारतमें स्वर-लिपि (Notation)के द्वारा संगीत-विद्याकी परिपाटी प्रबल वेगसे प्रचलित हो रही है; किन्तु स्वरलिपिसे संगीतके समुन्नत विषयोंपर प्रकाश डालना असम्भव है। यद्यपि प्रकट स्वरकी तरह गुप्त-स्वरका भी प्रकटीकरण हो सकता है; किन्तु गुरुओंके साक्षात् उपदेशके संयोग बिना शिष्य इसको समझ ही नहीं सकते। गायक-शिरोमणि संगीताचार्य बैजूबावराका नाम अकबरकालके बाद, ध्रुवपदगानमें, प्रथम उल्लेखनीय है। वे संगीतके तमाम अङ्गोंके भी जानकार थे। आपके विरचित ध्रुवपद-गान संगीतज्ञोंके लिये ध्रुव ताराकी तरह पथप्रदर्शक माने जाते हैं।

एक समय आप अपने प्रिय शिष्य गोपालनायकको मधुमादसारङ्ग रागकी शिक्षा दे रहे थे। उस समय अपने प्रिय शिष्यसे आपने कहा था—"बेटा ! क्या करूँ, अब हृदयको गद्गद कर देनेवाला शुद्ध धैवत स्वर नहीं सुनाई पड़ता है। क्या अपने कंठको काटकर तुम्हारे कंठमें जोड़ दूँ ?" इस कथनसे संगीत शास्त्रकी कितनी अलौकिकता प्रतीत होती है। इसीलिये उच्च श्रेणीके गायक संगीतमें यूरोपसे प्रचलित स्वरलिपिकी प्रधानता नहीं मानते।

निर्गुण नादब्रह्मके सगुणरूपमें अवतरणका नाम आलाप है। गानेके समय साधारणतः शब्दोंके अर्थोंपर मन दौड़ जाता है। अतः मनको एकाग्र करनेकी बड़ी आवश्यकता होती है। शब्दार्थ-शून्य और तालसे रहित स्वरोंके निर्देश-से शास्त्रोक्त राग-रागिनियोंके उच्चारणमें, निश्चित पदके ज्ञानके लिये, आलापकी बड़ी आवश्यकता है। किन्तु आज-कलके बहुतेरे गायक महानुभाव आलाप लेते ही नहीं। जो थोड़ा बहुत आलाप लेते भी हैं, उन्हें लोग पागल-से समझते हैं। सामगानके बाद बची-बचायी संगीतविद्याकी कला पूर्णरीतिसे ध्रुवपदमें ही है। मुसलमान शासकोंके द्वारा ध्रुवपद-प्रणाली विनष्टप्राय हो चली है। आजकल कुल-परम्पराकी रीतिसे बहुत थोड़े ही गायकोंमें इसकी परिपाटी दीख पड़ती है। अतः इस विद्याके जानकारोंको कुलपरम्परा-गत संगीतज्ञोंसे आदरपूर्वक प्राप्त कर इसकी रक्षा करना चाहिये। ऐसा न करनेसे यह कला भी, मार्गीकी तरह, हम लोगोंसे विदाई ले लेगी।

"नैषधे पदलालित्यम्"

प० नोखेलाल शर्म्मा काव्यतीर्थ

महाकवि, दार्शनिक और तार्किक-शिरोमणि श्रीहर्ष बारहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्ध में, कन्नौजके राजा जयचन्दके आश्रयमें, विद्यमान था । यह साहित्यक्षेत्रमें "नैषधचरित" जैसी विशाल और निराली कृति बनाकर अमर हो गया है । इसकी दूसरी अमर कृति "खण्डनखण्डखाद्य" वेदान्तदर्शनमें उच्च स्तम्भकी भाँति अटल खड़ी है । प्रस्तुत लेखमें हम इसकी पूर्व कृतिपर ही कुछ विचार करेंगे ।

नैषधीय चरित संस्कृतके प्रसिद्ध छ महाकाव्योंके अन्तर्गत है । छहोंकी टीका मल्लिनाथने की है । अलंकार-शास्त्रमें निर्दिष्ट महाकाव्यके सभी लक्षण इसमें पाये जाते हैं । यह बाईस सर्गोंमें समाप्त हुआ है; और, इसमें नल और दमयन्तीके पारस्परिक प्रेम और विवाहका वर्णन है । इसकी कथा महाभारतसे ली गयी है और उसे कविने अपनी इच्छाके अनुसार अतिरञ्जित कर एक छोटे महाभारतका आकार दे दिया है । खेद है कि, लोग उसके इस दोषको सामने कर उसकी उपादेयताकी अवहेलना कर देते हैं । किन्तु यदि हम पुराने चश्मेको पहनकर इसका अवलोकन करेंगे, तो हमें इसमें बहुत-कुछ मिलनेकी सम्भावना होगी ।

नैषध-काव्यका पदलालित्य सबने स्वीकार किया है । वास्तवमें नैषधका पदलालित्य और भाव-सौकुमार्य बे-जोड़ है । कविका भाषापर अधिकार तो पूर्ण है ही, उसकी उद्भाविनी शक्ति भी ऐसी अक्षय्य और गम्भीर है कि, उसके तलपर पहुँचना जरा टेढ़ी खीर है । कविको कथानककी सजावट उतनी अभीष्ट नहीं, जितना कवियोंकी शैलीपर अपनी व्युत्पन्नमतिका परिचय देना । ठीक ऐसी ही अवस्था "कादम्बरी"के रचयिता बाणभट्टकी भी है । फिर भी यदि कुछ फालतू बातोंको अलग करके केवल वर्णित कथाको पृथक् कर लिया जाय, तो वह बहुत ही सुन्दर, रोचक तथा सर्वाङ्गीण प्रतीत होगी । फिर भी विस्तारके दोषसे उसे अग्राह्य कर देना उचित नहीं । क्या भूत और प्रेतोंके विश्वासके आधारपर रचित शेक्सपीयरके नाटक इस जमानेमें नहीं पढ़े जाते ? क्या मिल्टनके कपोलकल्पित स्वर्गके वर्णनसे युक्त काव्य अब भी अत्यन्त आदरके पात्र नहीं ? क्या पुरातन ढर्रेपर लिखे गये होमर-चासरके काव्य तथा गपोड़ोंके सिरताज और बनावटी बातोंके ठेकेदार ग्रीस देशके पुराने किस्से अब भी नहीं पढ़ाये जाते ? फिर भी, नैषधीय चरितकी कथा, महाभारतसे लिये जानेके कारण, सत्य है; और, कविने इसमें जो अपनी बात मिलायी है, वह कविके लिये उचित तथा अधिकांशमें सत्य है । दूसरी बात यह है कि, कथानकको सरस करनेकी प्रथा संस्कृतके कवियोंमें पुरानी है । भारवि, माघ आदि प्रायः सभी इस दिशामें अपराधी हैं; पर हाँ, श्रीहर्षसे कुछ कम । जहाँ महाभारत (जो १ लाख श्लोकोंमें पूरा हुआ कहा जाता है) का आदर्श सामने उपस्थित है, वहाँ ऐसी विस्तृतिकी बात बुरी नहीं । हाँ, इस जाँचमें कालिदास सोलहो आने खरे उतरेंगे ।

अच्छा, देखें नैषधीय चरितका सर्वोच्च गुण 'पदलालित्य' उसमें कहाँतक वर्त्तमान है तथा उसमें भाव-सौकुमार्यकी रक्षा कहाँतक की गयी है । ८ वें सर्ग (१—६) का उदाहरण लीजिये—

"देवताओंके वरसे अदृष्ट होकर नल अन्तःपुरमें प्रविष्ट हो गया है । वहाँ वह दमयन्ती और उसकी सखियोंके आगे खड़ा है । उसे देखकर कोई सखी लजा जाती है; कोई उससे

लावण्यमें हृदयसे डूब जाती है। कोई उसे कामदेव ही समझती है और दूसरी कामके वशीभूत हो जाती है। वे सखियाँ आनन्दमें इतनी बेसुध हो जाती हैं कि, उनसे कुछ कहते नहीं बनता। 'आप कौन हैं ? कहाँसे आते हैं ?' इतना भी नहीं पूछ सकतीं! आसनपरसे उठनेकी इच्छा है; फिर भी उठ नहीं सकतीं! दमयन्तीकी दृष्टि पहले जिस अङ्गपर पड़ती है, उसीमें डूब जाती है; दूसरे अङ्गपर जा ही नहीं सकती! पर बहुत समयतक देखनेके बाद निमेष, विराम देता और दूसरे अङ्गको देखनेके लिये सावधान कर देता है। इस प्रकार उसकी दृष्टि एक अङ्गको छोड़कर दूसरे अङ्गका पूरा-पूरा उपभोग कर लेती है। फिर पहले अङ्गके लाभका लोभ भी नहीं छोड़ा जाता; अतः स्वभावसे चञ्चल उसकी दृष्टि दोनों अङ्गोंपर बहुत समयतक आती-जाती रहती है। आगे चलकर और गजब हो जाता है। नलके सूक्ष्म और सघन केश-पाशमें गिरकर दमयन्तीका दृष्टिरूपी खञ्जन बिलकुल निश्चेष्ट हो जाता है। वह उसके बन्धनको छोड़कर जा नहीं सकता। बड़ी विकट समस्या है। नलके मुख, हाथ और पैर—सब कमलके समान हैं, उनसे दमयन्तीकी कमल-सदृश दृष्टि गाढ़ालिङ्गन प्राप्त कर भाई-चारेके संगको जल्द कैसे छोड़े ?" धन्य है कविकी कल्पना-प्रतिभा।

आगे चलकर दमयन्ती नलसे इस प्रकार कहती है, "हे महाभाग! आचार जाननेवाले लोग अतिथिके लिये जलके स्थानपर, शिरोमणिके किरण (अर्थात् प्रणाम) और मधुपर्कके बदले मीठी बातोंको धारा भी समर्पण करते हैं; स्वयं अपनी आत्माको शीलसे तृणवत् बनाकर अपने बैठनेकी जगह दे देते और आनन्दके आँसुओंसे भी जल देकर मधुर वचनसे कुशल आदि पूछते हैं। हे महाभाग! मैंने पहले ही अपना आसन छोड़कर उसे आपको दे चुकी हूँ, तो यदि यह आसन आपके अयोग्य भी हो अथवा आपको अन्यत्र जानेकी इच्छा भी हो, तः भी इसे क्षणभर अलंकृत क्यों नहीं कर लेते ?"

"निवेशतां हन्त समापयन्तौ शिरीषकोष-म्रदिमाभिमानम्
पदौ कियद्दूरमिमौ प्रयासे निधित्सते तुच्छदयं मनस्ते ॥"
अनायि देशः कतमस्त्वयाद्य वसन्तमुक्तस्य दशां वनस्य।
त्वदाप्तसंकेततया कृतार्था श्राव्यापि नानेन जनेन संज्ञा ॥"

(कहिये, शिरीष पुष्पकी कोमलताके गर्वको खर्व करनेवाले इन पैरोंको आपका कठोर मन कितनी परेशानीमें रखना चाहता है? अभी आपने किस देशको वसन्तसे बिछुड़े हुए उपवनकी दशामें डाल दिया है? जिसका उच्चारण करनेसे आपका संकेत होता है, उस भाग्यवान् नामको क्या मैं नहीं सुन सकती?) आगे फिर वही कहती है—

"अहो, इस पृथ्वीपर इतना महान् पुण्य किसने उपार्जित किया है, जिसे उद्दिष्ट कर आपके चरण, मार्गकी धूलिपर, कमलकी माला गूँथ रहे हैं?" (अर्थात् आपके कमल-सदृश चरणोंके चिह्न कमलकी मालाके समान हैं। कहिये, इस प्रकारकी कार्रवाई करते हुए आप कहाँ जा रहे हैं?)

इसपर नलका आरम्भिक उत्तर यों है—

'दिशाओंके पतिकी सभासे आये हुए मुझे आप अपना ही अतिथि समझें। मैं अपने प्रभुके प्राणके समान सन्देशको अत्यन्त आदरपूर्वक लेकर आया हूँ। आप ठहरें, पूजा-सत्कार हो चुका। आसनपर बैठें, उसे आपने क्यों छोड़ दिया? आप जो मेरे दौत्यको सफल कर देंगी, वही मेरा सबसे बढ़कर अतिथि-सत्कार होगा।'

नैषधके त्रयोदश-सर्ग सभामें बैठे हुए इन्द्रादि देवता और नलके वर्णनमें है। उस सर्गका माधुर्य कहीं मिलनेको नहीं। शब्दकी रचना तो मानो मोतियोंकी लड़ी है। एक शब्द हटा लेनेसे या उसे दूसरी जगह रख देनेसे बिलकुल मजा किरकिरा हो जाता है। इस प्रकार अगर कथानकमें स्वाभाविकताकी रक्षा नहीं की गयी है, तो शब्द-रचना सम्पूर्णतः वैज्ञानिक ढङ्गपर अवश्य की गयी है। कवि इस प्रकारकी रचना कर बहुत यशस्वी हो जाता है। दूसरी बात यह है कि, इस सर्गका माधुर्य चिरस्थायी है। उसे हम चाहें जितना पढ़ें, पर वह

फीका नहीं मालूम पड़ता; बल्कि और भी मनोरम मालूम होता है।

शैशवमें एक अनन्त अलौकिक स्वरकी लहरी सदा बहती है। कविका लेखनीसे शब्द इस प्रकार निकलते गये हैं, मानों कोई नदी बह रही हो। मालूम पड़ता है कि, रचना करनेमें कविको कुछ भी परिश्रम नहीं करना पड़ा है। श्लेषात्मक अर्थोंको देखकर तो और भी आश्चर्यमें डूबना पड़ता है। कर्ण-कटु अक्षर भी चन्द्रमाके कलंककी भाँति पदको शोभासे विभूषित कर देते हैं। "गुरु वटपूतिमटस्तनि" में दोनों का एक अनूठापन पैदा करते हैं। सच तो यह है कि, श्रीहर्षकी लेखनीसे निकले हुए सभी पद्य अंगूरके समान अमृतमय हैं। कोई किसीसे घटकर नहीं। धन्य हैं श्रीहर्ष और धन्य उनकी पीयूष-वर्षिणी कविता!

गङ्गा

पन्द्रह मिनटमें तीन बाघका शिकार

व्रजवासीदास

प्रो० अक्षयवट मिश्र "विप्रचन्द"

संसारमें प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि बड़े भाग्यसे मिलती है। इस भूगर्भ तथा रत्नाकरके अगाध अन्तस्तलमें अगणित ऐसे अमूल्य एवं अलभ्य रत्न पड़े हैं, जिनके अलौकिक प्रकाश-से सारा संसार वंचित है। आजकल साहित्यिक वायुमंडल तो ऐसा विपरीत हो गया है कि, कोई शिक्षित प्राचीन साहि-त्यकी ओर दृष्टि ही नहीं निक्षेप करता। आजकल शिक्षाकी प्रणाली भी ऐसी बदल गयी है कि, नवीन शिक्षितोंको प्राचीन साहित्यसे घृणा-सी हो रही है। एक तो हिन्दीसे उन्हें कुछ प्रेम ही नहीं है; और, यदि कहीं हिन्दीकी ओर झुकते भी हैं, तो खड़ी बोलीकी कविताकी ओर। खड़ी बोलीमें भी वे छायावाद और रहस्यवादकी ही कविता पसन्द करते हैं। ऐसे विद्वानोंसे मेरा सविनय अनुरोध है कि, वे पक्षपात-रहित होकर हिन्दीके प्राचीन काव्योंका अवलोकन करें। मुझे पूरा भरोसा है कि, यदि वे व्रजभाषाके पद्यग्रन्थोंका आद्यन्त अवलोकन करेंगे, तो मेरे कथनमें पूरी सत्यता दृष्टिगोचर होगी।

दोहा-चौपाईवाले ग्रन्थोंमें दो ग्रन्थोंके नाम सर्व-प्रथम लिये जा सकते हैं। गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित "रामचरित-मानस" तथा व्रजवासीदास द्वारा रचित "व्रजविलास"का। यद्यपि अनेक उपयोगी विषयोंसे परिपूर्ण रहनेके कारण "रामचरित-मानस"का नाम पहले लिया जा सकता है; तथापि भाषाकी एकता तथा शुद्धताके कारण "व्रजविलास"का नाम पहले होना चाहिये। "राम-चरित-मानस"में अनेक भाषाएँ सम्मिलित हैं; किन्तु "व्रज-विलास"में शुद्ध व्रजभाषाका समावेश है। वात्सल्य-वर्णन तथा सौन्दर्य-वर्णनमें जैसी सफलता व्रजवासी दासको मिली है, वैसी गोसाईंजीको नहीं—या यों कहना चाहिये कि, उनने किसी कारणवश वर्णन किया ही नहीं। मैं गोसाईंजीका परम भक्त हूँ; तथापि साहित्यिक दृष्टिसे सत्य कहनेमें संकोच करना निर्बलता तथा आत्मवञ्चना है। व्रजवासीदास गोसाईंजीसे दो सौ वर्षोंके बाद उत्पन्न हुए हैं; इसलिये यदि "व्रजविलास"में कहीं गोसाईंजीके काव्योंका आभास आ जाय, तो अवश्य क्षन्तव्य है।

मैंने "रामचरित-मानस"का अध्ययन तो, साङ्गोपाङ्ग, कई बार किया है; किन्तु "व्रजविलास"के अध्ययनका अव-सर अब मिला है; इसलिये यदि मैं अपना अनुभव पाठकों-को विदित कर दूँ, तो अनुचित न होगा। आशा है कि, हिन्दीके रसिक दोनों ग्रन्थोंका एक बार अवश्य पाठ कर जायँगे और मेरे सत्यासत्य कथनका निर्णय करेंगे।

जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण देवकीके पवित्र गर्भसे प्रादुर्भूत हुए हैं, उस समयके रूपका वर्णन व्रजवासीदास इस प्रकार करते हैं—

(चौपाई)

"अखिल लोकपति मंगलदायक,
आके जन्म लियो सुरनायक।
सीस मुकुट कल कुण्डल कानन,
सरद मयंक सरस सुभ आनन।
चारु चरन पंकज दृग लोचन,
चितवनि सदय ताप त्रय मोचन।
कुटिल अलक भ्रू मेचकताई,
जन मन हरन परम सुखदाई।
पीत बसन तन स्याम तमाला,
उर श्रीवत्स चारु मनिमाला।

भुजा बिसाल मनोहर चारी,
शंख चक्र गद अंबुज धारी ।
अंग-अंग सब भूषन नीके,
परम विचित्र भावते जीके ।
चरन सरोज उदित नख-जोती,
कमल दलन राखे जनु मोती ।
परम प्रताप सुभग लिछ रेखा,
अद्भुत रूप देवकी देखा ।"

(किशोरावस्थाकी शोभाका वर्णन)

(चौपाई)

"चलत नयन भृकुटी पुट नासा, करपल्लव मुरली स्वर स्वासा ।
मानहुँ निरतक भाव बतावैं, सुभगति नायक सैन सिखावैं ।
कुंचित अलक बदन छबि देईं, मनहुँ कमलरस अलिगन लेईं ।
कुंडल झलक कपोलनमाँही, मनहु सुधारस मकर अन्हाँही ।
दसन-दमक मोतिन उर ग्रीवाँ, मनहु सकल सोभाकी सीवाँ ।
तिलक विचित्र भालछबि छाजै, मनहुँ महाछबि दसन बिराजै ।
चमकत मोर चन्द्रिका चारू, मनहुँ सकल सिंगार सिँगारू ।
स्याम गात उर गजमनि-माला, सँग सोभित बनमाल बिसाला ।
मरकत-गिरि मनु सुरसरि धारा, बैठो पंगति कीर किनारा ।
कटि पट पीत तड़ितद्युति हारी, पदपंकज नूपुर रुचिकारी ।"

(दोहा)

"ग्रीवा लटकनि मुरकि पट, सोभित छबि समुदाय ।
प्रेम मगन निरखत मुदित, गोपलाल सुख पाय ।"

श्रीवृन्दावनबिहारी तमालकी छायामें खड़े हैं, उनकी अलौकिक शोभा गोपिकाएँ तल्लीन होकर देख रही हैं और मोहित होकर चित्र-सी खड़ी हैं।

(चौपाई)

"तरु तमालतर तरुण कन्हाई, ठाढ़े भये आप सुखदाई ।
थकित भईं सब ब्रजकी बाला, लखीं बिलोकन नँदको लाला ।"

(दोहा)

"रतन-जटित पग पाँवरी, नूपुर मंद रसाल ।
चरन-कमल-दल बिकट मनु, दैठे बाल मराल ।"

(सोरठा)

"उदित चरन नखचन्द, जनु मणि ब्योम प्रकाश करि ।
सुर-नर-शिव-मुनि-वृन्द, विरहताप ब्रजतिय हरन ।"

(चौपाई)

"जानु काम सत छबिन सँवारे, जुवतिन करि मन बुद्धि विचारे ।
जुगल जन्घ छवि परम पुनीता, रम्भा खम्भ मनहुँ विपरीता ।
ठाढ़े धरणि एक पद लाये, कञ्चन दण्ड एक लगाये ।
तन त्रिभंगकी लटक सुहाई, अटक रही जुवतिन मन भाई ।
ब्रज जुवती हरिपद मन लाये, निरखति मुनि दुर्लभ सुखपाये ।
कुलिशांकुश ध्वज चिह्न निकाई, इक टक रहीं चितै चित लाई ।
अरुण तरुण पङ्कज दल चारू, मानहुँ सुखमा करत विहारू ।
कटि केहरिको कटि हिल जावै, सूछम सुभग कहति नहिं आवै ।
तापर कनक मेखला सोहै, मणिन जटित सुन्दर मन मोहै ।
मनहुँ बालकन सहित मराला, बैठे सम्पति जोरि रसाल ।
किधौं मदनके सदन सुहाई, बाँधो बन्दन वारि बनाई ।
ब्रजतिय निरखि निरखि सुख लेहीं, नैनन पलक परन नहिं देहीं ।

(दोहा)

"सोभित नाभि गभीर अती, मानहुँ मदन तड़ाग ।
रोमावलि तटपर लसत, रस सिंगारको बाग ।"

(सरोठा)

"ब्रजतिय रहीं निहारि, सोभा नाभि गँभीरकी ।
मन नहीं सकति निकारि, परो जाय गहरे सलिल ।"

(चौपाई)

"उदर उदार बरनि नहिं जाई,
रोमावलि तापर छबि छाई ।
रही अटकि छबि ताछ निहारी,
परखत बनत न निरखत नारी ।
कोऊ कहति कामकी सरनी,
कोउ कहति जोग नहिं बरनी ।
कहति एक, अलि बालक पाँती,
जुरि बैठे सब एकहि भाँती ।

कोऊ कह नीरद नील छुहाई,
सूछम धूप धार छवि छाई।
एक कहति यह रविकी जाई,
मरकत गिरि उरते प्रगटाई।
उदर भूमि सोभित सोइ धारा,
जाति नाभि हृद अगम अपारा।
दुहुँ दिसि पेंग स्वाति सुतसाला,
उपजत सुखमय लहर बिसाला।
सोभा बरनि न सक ब्रजबारी,
रही बिचारि बिचारि बिचारी।
उर मुक्तनकी माल बिराजै,
ता मधि कौस्तुभ मणि छवि छाजै।
निर्मल नभ मानहु उड़ गाजो,
ससिहिं हेरि हैठी छवि साजो।
भृगुपद देखि स्याम उरमाही,
मनहुँ मेघ भीतर ससिछाँही।"

(दोहा)

"पीत हरित सित अरुण रँग,पटकोली बनमाल।
प्रफुलित ह्वै छविको यँवरि, मानहुँ चढ़ी तमाल।"

(सोरठा)

"छवि बरनी नहिं जाय, कम्बुकण्ठ मणि कण्ठकी।
ब्रजतिय रहीं लुभाय, हरि उरवर सोभा निरखि।"

(चौपाई)

"वृषभकंध भुजदंड सुहाई, किंदत अहि गज सुँड़ निकाई।
कर पल्लव मुद्रिका सोहै, बाहु विभूषन लखि मन मोहै।
मनु सिंगार विटपकी डारी, फूल रही उपजत छवि भारी।
हरि मुख निरखति गोप कुमारी,
पुनि-पुनि प्रणमि करत बलिहारी।
कहति परस्पर अति मन लोभा, देखहु सखी मदनकी सोभा।
चिबुक चारु अधरन अरुनाई, पाम रेख तापर छविछाई;
मन्द हसन दुति दसन निकाई, उपमा कापै जात बताई।
अनुपम छवि चित लेत चुराये, जगमोहनो हमारे भाये।
लोल कपोल अमोल बनोने, मानहुँ मुकुट नीलमनि कीने।
बाजत मुरली कटकी फेरन, चंचल नयन चपल गति हेरन।
मणिन जटित कुण्डलको डोलन,
प्रतिबिम्बित सब मुकुट कपोलन।
सो छवि कापै जात बखानी, लखि ब्रजतिय बिन मोल बिकानी।"

(दोहा)

"सुभग नासिका चपल दृग, कुटिल भृकुटिकी रेख।
जनु जुग खंजन बीच सुक, उड़ि न सकत धन देख।"

(सोरठा)

"छूँघुरारे कच स्याम, बारिज मुख ढिग भ्रमर जनु।
सीस मुकुट अभिराम, कोटि काम सोभा हरन।"

(चौपाई)

"रूप सुधानिधि वदन विराजै, दुहुँ कर अधर मुरलिका बाजै।
मानहुँ जुगल कमल पद माँहीं, लेत मराय सुधा ससि पाँहीं।
हरि-मुख निरखत नयन भुलाने, इक टक रहें तृपति नहिं मानै।
घोष-कुमारि लखति नँदनन्दन, स्याम सुभगतनु चित्रित चन्दन।
कनक बरन पट पीत बिराजै, देखि सखी उपमा यह राजै।
निर्मल गगन सरद घनमाला, तापर अस्थित दामिनि आला।
अंग-अंग छवि पुञ्ज सुहाये, निरखति जुवती जन मन भाये।"

इससे बड़ा नख-सिख किसी कविने वर्णन नहीं किया है। देखिये, श्रीराधाजी श्यामसुन्दरका आना जानकर कैसा शृङ्गार कर रही हैं—

(सोरठा)

"सहज रूपकी खान, अंग सुधारत लाड़िली।
को करि सकै बखान, त्रिभुवनपति हरि-वल्लभा।"

(चौपाई)

अंग सिँगार कियो हरि प्यारी, बेनी रवि निज पानि सँवारी।
मोतिन रँग जराऊ टीको। कियो बिन्दु बन्दनको नीको।
लोचन अंजन रेख बनाई। स्रवनन तटवनकी छवि छाई।
नासा नथ अतिही छवि छाजै। पान बेकि रँग अधरन राजै।
सुभग अंग सब भौसत साजै, सुरँग सुगंध बसन सुभ भ्राजै।"

अब इनके वात्सल्य-वर्णनकी ओर ध्यान दीजिये। इनके वर्णनमें कैसी मधुरता है —

(चौपाई)

"हरि रोये माताकी कनियाँ, दूध पियायो तब नँदरनियाँ।
पुनि पलना पौढ़ाय झुलावै, हलरावै दुलराय मल्हावै।
लालनके हित नींद बुलावै, मधुरे सुर जोई सोइ गावै।
रे लालनको आव निंदरिया, तोहि बुलावत स्याम सुँदरिया।"

× × × ×

"जसुदा भाग न जात बखाने,
त्रिभुवन पतिको सुतकरि माने।
हरिको गोद लिये पय प्यावै,
विविध भाँति करि लाड़ लड़ावै।
कबहूँ हरि-मुखसों मुख लावै,
कबहूँ हरषित कण्ठ लगावै।
मो निधनीको धन सुत नान्हा,
खेलत हँसत रहो नित कान्हा।
कबधौं मधुर बचन कछु कैहैं,
कब जननी कहि मोहि बुलैहैं।
कब नन्दहि कहि बाबा बोलैं,
खेलत इतउत आँगन डोलैं।
कबधौं तनक तनक कछु खैहैं,
अपने करलै मुखमें दैहैं।
कब विधि यह अभिलाख पुरावै,
मनहीं मन कुलदेव मनावै।
"मथति जहाँ दधि नंदकी रानी,
होत खरे तहँ टेकि मथानी।
मात तनिक दधि देत खवाई,
लेत प्रीतिसों सो सुखदाई।
तनिक-सो वदन तनिक-सी दँतिया,
तनिक-सो अधर तनिक-सी बतिया।
तनक वदन दधि तनक कपोलन,
तनक हँसन मन हरन अमोलन।
तनक तनक कर तनकै माखन,
तनक अँगुरिया तनकै चाखन।
तनक तनक भुज चरण सुहाये,
तनक स्वरूप मनोज लजाये।

× × × ×

"बोलन लगे स्याम कल बानी, कछुक तुतरो कछुक सयानी।
नँदहि तात, जसोदा मैया, हलसों दाऊ कहत कन्हैया।
प्रातहि उठि माँगत दोउ भैया, माखन रोटी दे री मैया।
अँचरा गहे न छाँड़त माता, अति आतुर रमके दोउ भ्राता।
सुनि सुनि मधुर बचन सुख पावै, तातें जननी गहर लगावै।

× × × ×

"भव अबसेर करत महतारी, पलक ओट रहि सकत न न्यारी।
देखत द्वार गलीमें ठाढ़ो, सुत मुख दरस लालसा बाढ़ी।
तिहिँ छन हरि खेलत तें आये, दौरि मातु लै कण्ठ लगाये।
खेलन दूरि जात किन कान्हा, मैं बलि तुम अबहीं अति नान्हा।

× × × ×

"साँझ भई घर आवहु प्यारे, बहुरि खेलियो होत सवारे।
आपुहि जाय बाँह गहि आने, सुभग स्याम तन रज लपटाने।
बोलि लिये जसुमति बलरामहिं, लै आई दोउ सुत धामहिं।
धूरि झारि तातो जल ल्याई, तेल परसि दीन्हे अन्हवाई।
सरस बसन तन पोंछि सँवारे, लै गोदी भीतर पधारे।
"मैया री मोहि माखन भावै, और कछू अति रुचि नहिँ आवै।
मधु मेवा पकवान मिठाई, सो मोको नेकहु न सुहाई।

तात्पर्य यह कि, ब्रजभाषामें यह बहुत उत्तम काव्य है और इसके बनानेवाले ब्रजवासीदास ब्रजभाषाके बड़े ऊँचे दर्जेके कवि हैं। "ब्रजविलास" अंधकारमें पड़ा है और वर्तमान शिक्षित समाज इसकी ओरसे बेसुध है। जो श्रीकृष्णके भक्त हैं और ब्रजभाषाके प्रेमी कवि हैं, उन्हें इसका अवलोकन करना बहुत ही सुखदायक है। समूचा ग्रन्थ ही प्रेमसे सराबोर है। मैं तो इसे पढ़कर बहुत ही आप्यायित होता हूँ। ग्रन्थ-रचनाका काल विक्रम संवत् १८०० माघ शुक्ल पञ्चमी है। ब्रजवासीदास श्रीमहाप्रभु वल्लभाचार्य-सम्प्रदायके वैष्णव थे और आनन्दकन्द श्रीराधाकृष्णजीके अनन्य भक्त थे—यह बात उनके समस्त ग्रन्थसे झलक रही है।

गैंड़ेका शिकार

राजा कीर्त्यानन्द सिंह बहादुर बी० ए० (बनैली-नरेश)

हिन्दुओंमें यह धारणा बँधी है कि, गैंड़ा एक पवित्र पशु है; क्योंकि शास्त्रोंमें लिखा है कि, इसका मांस पवित्र होता है; और, वार्षिक श्राद्धके अवसरपर, मृतकोंकी आत्माओंको, इसके रक्तका तर्पण दिया जाता है। कहते हैं, ऐसा करनेसे उन आत्माओंको चिर शान्ति मिलती है। अतः कुछ तो धार्मिक भावों और कुछ आखेटप्रिय होनेके कारण मेरे हृदयमें गैंड़ेका शिकार करनेकी लालसा जगी।

आसामको छोड़कर भारतवर्षमें इन दिनों गैंड़ा मिलना कठिन है। पुर्निया जिलेकी सीमापर, मोरंगके जंगलोंमें, कुछ गैंड़े मिलते हैं। इन जंगलोंमें गैंड़ोंका शिकार करनेका, नेपाल-सरकारने, मनाही कर रखी है। इस कारण मैंने, कुछ दिन हुए, नेपाल-नरेश (महाराजा चन्द्रशमशेरजंग बहादुर राणा) से, उनके राज्यमें, गैंड़ेका शिकार करनेकी आज्ञा माँगी। उन्होंने अन्ततक मेरे साथ कृपा-भाव रखा और मुझे भिखना ठोरी (नेपाल-राज्यान्तर्गत) के समीप, चितवनमें, गैंड़ोंका शिकार करनेकी आज्ञा दे दी।

मुझे शिकार करनेकी अनुमति देनेके बाद महाराजा साहबने अपने हाथियोंको चितवनमें भेज देनेकी आज्ञा दी; और, शिकारका प्रबन्ध करनेके लिये, एक आफिसरको भी तैनात कर दिया। इस प्रकार शिकारका प्रबन्ध हो जानेपर मैं, १९२० ई० के मार्च महीनेमें, भिखना ठोरी (B. & N. W. Ry.) गया और वहाँसे बघही पहुँचा। यह स्थान रेलवे स्टेशनसे १२ मील दूर है। यहीं कैम्प डाला गया। जिस दिन हम वहाँ पहुँचे, उस रातमें मूसलधार वर्षा हुई और पत्थर भी गिरे। भाग्यवश भोर होते-होते आकाश निर्मल हो गया और हमें खबर मिली कि, पासके ही जंगलमें एक गैंड़ा है।

महाराजा बहादुरके आफिसरने, उस गैंड़ेको घेर रखनेके लिये, अपने शिकारी हाथियों और शिकारियोंको भेजा; और, आदेश कर दिया कि, ऐसा होते ही वे हमें खबर दें। दस बजते-बजते खबर आयी कि, "५०० फीटकी दूरीसे गैंड़ेको घेर रखा गया है और वह एक छोटे-से गन्दे जलाशयके कीचड़में बैठा हुआ है।" गैंड़ेसे १५० फीटकी दूरीतक मुझे पहुँचाया गया। जैसे ही हम इकट्ठे हुए कि, अचानक उसे हमारी गन्ध मिल गयी। वह उठकर खड़ा हो गया। मेरे पास ४७६ नम्बरकी रायफल भरी तैयार थी। मैंने गैंड़ेपर गोली दाग दी। यह तो मैं ठीक तरहसे नहीं बतला सकता कि, गोली उसे कहाँ लगी; लेकिन गोली लगते ही वह घुटनोंके बल बैठकर फिर खड़ा हो गया। मैं दूसरी गोली चलानेवाला ही था कि, नेपाली आफिसरने अपना हाथी मेरे सामने कर दिया, जिससे मैं रुक गया। इसी बीच गैंड़ा, बड़ी तेजीके साथ, भागकर समीपके सागौन पेड़ोंके घने जंगलमें घुस गया। नेपाली आफिसरसे, मेरे उसके ऐसा करनेका कारण पूछनेपर, मालूम हुआ कि, गैंड़ेके सांघातिक आक्रमणसे मेरे हाथीको बचानेके लिये ही उसने ऐसा किया था। उसने कहा कि, वह गैंड़ोंको कई बार हाथीको गिराते और अपनी ठोस, मजबूत और नुकीली सींगसे उसका पेट, छुरी तरह, चीरते देखा है। उसके धारवाले दाँत टाँगीकी तरह तेज और लोहेकी तरह मजबूत होते हैं और इन्हीं दाँतोंसे वह हाथी-जैसे बड़े जानवरको भी चीर-फाड़ देता है। अगर दूसरी बार गोली चलानेका मौका मुझे मिल गया होता, तो मैं उसे बुरी तरह घायल कर देता और तब वह इतनी तेजीसे भागकर जंगलोंमें नहीं छिप सकता। जलाशयमें जिस जगह वह खड़ा था, वह जगह

खूनसे तर हो गयी थी—वहाँका पानी लाल हो गया था। खूनके कतरोंके सहारे हम लोगोंने उसे ढूँढ़ निकाला। वह एक मीलतक भागकर एक दूसरे जलाशयमें बैठ गया था। दूरसे ही उसपर गोली छोड़ देना मैंने ठीक नहीं समझा। मैं आगे बढ़ा। इतनेमें ही वह अचानक खड़ा हो गया और इस बार भी आँखोंसे ओझल हो गया! खूनके निशानोंके सहारे हम लोग बहुत दूरतक चले गये; लेकिन उसका कुछ भी पता न चला। हम लोग निराश होकर कैम्पमें लौट आये।

तीसरे पहर कैम्पमें हम लोगोंने सुना कि, यहाँ अब गैंड़ा नहीं मिलेगा। फलतः हम लोगोंको अपना कैम्प उठाकर हरईहा-धंवार नामक स्थानमें ले जाना पड़ा। यहाँ बहुत गैंड़े रहते थे। कलकी तरह हम लोगोंने कुछ चुनिन्दे शिकारी महावतोंको गैंड़ेकी टोहमें भेजा।

थोड़ी देरके बाद महावतने खबर भेजी। इस बार मैंने छ शिकारी हाथियोंको साथ कर लिया और उन्हें अपनेसे कुछ दूरपर ही पीछे-पीछे आनेका आदेश दिया। महावतोंको मैंने पहले ही ताकीद कर दी थी कि, मेरे गोली दागनेके बाद वे हाथियोंको यथाशीघ्र मेरे समीप ले आवें।

मुझे दूरसे ही गैंड़ा दिखला दिया गया और मेरे साथियोंने मुझे सावधानीसे उसके कुछ और समीप जानेकी राय दी।

यह गैंड़ा भी एक छोटे जलाशयके कीचड़में बैठा हुआ था, जिसके चारो ओर बड़ी-बड़ी घासोंका घना जंगल था। मैं अकेला ही अपना हाथी लेकर गैंड़ेके पास गया। गैंड़ा मुझसे ६० गजकी दूरीपर था। ज्यों ही गैंड़ा उठ खड़ा हुआ, त्यों ही मैंने अपनी ४७६ दुनली रायफलकी दोनों गोलियाँ धड़ाधड़ दाग दीं। गोलियाँ उसके पिछले हिस्सेमें लगीं यह बड़ा बुरा हुआ। यदि उसका अगला हिस्सा जख्मी हो गया होता, तो वह आसानीसे भाग नहीं सकता था। वह भाग निकला। मैं उसका पीछा करता और गोलियाँ दागता गया। मेरे पास दो रायफलें थीं, एक ४७६ नम्बरकी और दूसरी ६०० की हाथकी रायफल जब अधिक गर्म हो जाती थी, तब झटसे दूसरी रायफल उठा लेता था। भागते-भागते वह गैंड़ा एक छोटी-सी पहाड़ीपर चढ़ने लगा। मेरे हाथीने भी उसका पीछा न छोड़ा। अबतक मैं उस गैंड़ेपर पैंतीस बार गोली चला चुका था, तो भी वह बुरी तरह घायल न हो पाया था! पहाड़ीके ऊपर ६०० गजतक जाकर वह खड़ा हो गया। शायद अब उसे गोलियाँ असर कर रही थीं और वह आगे न बढ़ सकता था। मैंने गोली चलाना बन्द कर दिया और उसके अधिक समीप पहुँचना चाहा। मेरे अन्य साथी भी इस समय इधर-उधर छुटा छोटी-छोटी रायफलोंसे दनादन गोलियाँ चलाने लगे अधिक नजदीक पहुँचकर मैंने जो कुछ गोलियाँ चलायीं और गैंड़ा लुढ़ककर अनन्त निद्रामें सो गया। मरते समय उसने अपने चारो पैर ऊपर आकाशकी ओर कर दिये। यहाँ मैं यह कह देना उचित समझता हूँ कि, प्रायः गैंड़ा पहली बार चोट खानेपर घुटनेके बल बैठ जाता है, फिर तुरत उठकर, बड़ी तेजीके साथ, भाग जाता है। इसका कारण यह है कि, उसे चोट गहरी नहीं होती, गोली मर्म-स्थानतक नहीं पहुँचती। यदि पहली ही बार गोली उसके मर्म-स्थानको पार कर गयी, तब तो वह वहीं ठण्डा हो जायगा। गैंड़ेका नया शिकारी, गैंड़ेको घुटनेके बल बैठे देखकर यही समझ बैठेगा कि, गैंड़ा बुरी तरह घायल हो गया, अब गिर जायगा। इस प्रकार यदि वह नया शिकारी, दनादन गोलियाँ चलानेके बजाय, अपनी सफलतापर विश्वास कर चुपचाप बैठा रहा, तो शिकारसे उसे हाथ धो बैठना पड़ेगा; क्योंकि अवसर मिलते ही जख्मी गैंड़ा भागकर आँखोंसे ओझल हो जायगा! जब गैंड़ा अपनी टाँगे ऊपर उठाकर पड़ जाय, तभी समझना चाहिये कि वह मर गया। गैंड़ेके मरनेकी यह एक परख है। एक बात और है। गैंड़ेके चमड़ेको १२ बोरकी गोली (ball) अच्छी तरह पार नहीं करती।

गैंड़ेके गिर जानेपर हम लोगोंको राय हुई कि, फोटो

ले लिया जाय। इस गरजसे जब मैंने हौदेसे उतरना चाहा, मैंने देखा कि, मेरी हथेलियोंमें कई जगह फफोले पड़ गये हैं। इस समय मेरे बायें हाथमें इतना दर्द होने लगा कि, उसे उठा भी न सकता। लाचारीमें हौदेमें ही पड़ा रहा। पहले गोलियाँ चलानेकी धुनमें मुझे कुछ भी दर्द नहीं मालूम होता था; क्योंकि हाथकी रायफलका नल जब गोलियोंका आगसे बहुत गर्म हो जाता था, तब मैं उस रायफलको रखकर दूसरी रायफल, बड़ी आसानीसे उठाकर काममें लाता था; और इससे पहले भी ऐसा मुझे कई बार करना पड़ा था। किन्तु इस बार मेरी बायीं हथेली, बराबर गर्म नल पकड़े रहनेके कारण, जल गयी थी। अधिक शक्ति-गोलियोंका लगातार प्रयोग करनेसे मुझे कई झटके लगे थे, जिसके फल-स्वरूप मेरे कन्धेमें दर्द हो रहा था और जिस जगह रायफलका कुन्दा (निचला भाग) मैं अड़ाये हुए था, वह जगह भी सूज गयी थी।

मेरे नौकरोंने मुझे हौदेसे नीचे उतारा और फोटो लिया गया। इसके बाद मैंने, शास्त्रोंके अनुसार, तर्पण-संस्कार भी किया, जिसकी लालसा मेरे हृदयमें बहुत पहलेसे ही लगी हुई थी। हम लोगोंने उसके खूनमें चावल भिगोकर धूपमें सुखाया और धार्मिक श्राद्धके अवसरपर उसका उपयोग करनेके लिये घर लाया। हम लोगोंमेंसे बहुतोंने तो वहींपर मांस भी खाना चाहा; लेकिन रूखा और सख्त होनेसे किसीने नहीं खाया। सिर्फ कुछ सूखा हुआ मांस घरके लिये हम लोगोंने ले लिया। हाँ कुछ नेपाली शिकारियोंने जरूर मांस खाया और तारीफ भी खूब की।

दूसरे दिन कैम्पमें आराम करना मेरे लिये जरूरी हो गया; क्योंकि मैं दर्दके मारे रायफल नहीं उठा सकता था। चौथे दिन गैंड़ेकी कुछ खबर न मिलनेपर हम लोग बाघके शिकारमें निकले।

दोपहरको हम लोगोंने कैम्प छोड़ा था और घण्टा-भर भी नहीं बीतने पाया था कि, एक शिकारी महावतने, जिसे सयानेकी तरह गैंड़ेकी टोह लगानेके लिये भेज दिया था, खबर भेजी कि, उसे पासमें ही एक गैंड़ा मिला है। हम लोग उसी ओर बढ़े।

इस बार गैंड़ा जंगली घासोंसे भरी हुई एक छोटी-सी पहाड़ीकी तलहटीमें था। मेरे उस ओर बढ़नेपर एक गैंडी (fsmal rhinco) मिली। उसकी सींग बहुत छोटी और पतली थी। मैंने उसपर गोली नहीं चलायी। महावतके यह कहनेपर कि, गैंड़ा थोड़ा ही दूर आगे है, मैं आगे बढ़ा। जब मैं गैंड़ेके नजदीक पहुँचा, तब उसने अपने दांतोंसे "कड़कड़ चटचट" शब्द किया। महावत डर गया। उसने कहा कि, गैंड़ा तुरत हम लोगोंपर टूटेगा; क्यों कि, किसीपर टूटनेके पहले वह ऐसा ही शब्द करता है। उसने मुझे गोली दागनेके लिये तैयार हो जानेको कहा। मैंने उसे हाथी बढ़ानेकी आज्ञा दी। गैंड़ेसे ९० गजकी दूरीपर पहुँचते ही, गैंड़ा ठीक सामनेसे हाथीकी ओर टूटा। हाथी स्थिर रहा और मैंने ४७६ नम्बरकी रायफलसे गोली चला दी। गैंड़ा लुढ़क गया और उसने तुरत अपनी टाँगें ऊपर उठा दीं। टूटते हुए काल-रूप गैंड़ेको आज मैंने एक ही वारमें ठण्डा कर दिया। मेरे आनन्दकी सीमा न रही।

साधारणतः पहली बार वार करनेपर गैंड़ा पीछे मुड़कर भागने लगता है और शिकारीको उसके अगले हिस्सेमें गोली मारनेका मौका ही नहीं मिलता है। भागते समय गोली मार-नेपर पिछला ही हिस्सा सामने होता है और इसी कारण चोट सांघातिक नहीं होती। एक बात और भी है। गैंड़ेके पिछले हिस्सेका चमड़ा बहुत मोटा और कड़ा होता है। उसपर साधारण शीशेकी गोलीका कुछ भी असर नहीं पड़ता। केवल निकल (Nickel) की ठोस गोली ही उसके शरीरके भीतर पैठ सकती है। सामनेसे टूटकर आते हुए गैंड़ेको मार गिराना कोई कठिन काम नहीं है। बशर्ते कि, शिकारी मुस्तैद और पक्का निशानेबाज हो।

दूसरे दिन हम लोगोंने कूच कर दिया। मेरे साथ मेरे मारे हुए दो गैंड़े थे। जिनका शिकार करनेके लिये मैं पहलेसे ही लालायित था। हाँ, वहाँसे कूच करनेके पहले मुझे खबर मिली

कि, जिस गैंड़ेको मैंने, पहुँचनेपर, सबसे पहले घायल कर डाला था; वह पासके ही सुखोभार नामक एक झीलमें मरा हुआ मिला है। मैंने नेपाली आफिसरको उस गैंड़ेकी खाल और सींगको, मेरी ओरसे, महाराजा बहादुर नेपालको दे डालनेका आदेश दिया। इसी झीलके स्थानपर एक बार भारत-सम्राट्‌का शिकारी कैम्प भी डाला गया था।

लेख समाप्त करनेके पहले मैं यह कह देना चाहता हूँ कि, अधिकांश शिकारी गैंड़ेका शिकार करना पसन्द नहीं करते। नेपाली शिकारियोंका भी ऐसा ही विचार है। हाँ, उन लोगोंके लिये गैंड़ेका शिकार कौतूहल-सा हो सकता है, जिन्होंने कभी एक भी गैंड़ेका शिकार नहीं किया है। एक बार गैंड़ेका शिकार कर लेनेपर फिर इस ओरसे दिल हट-सा जाता है। ठीक यही बात पूर्निया जिलेमें जंगली भैसोंके शिकारके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। आज-तक मैंने कोई ४० भैसोंका शिकार किया है, जिनमें केवल तीन बार ही मुझे आनन्द मिला है। ये पालतू-से जान पड़ते हैं। प्रकृत शिकारीको तो संकटोंसे सामना करनेमें ही शिकारका आनन्द मिलता है। यही कारण है कि, मुझे बाघके शिकारमें जितना आनन्द मिलता है, उतना अन्य किसी भी जंगली चौपायोंके शिकारमें नहीं। अबतक मैंने पूरे एक सौ बाघोंका शिकार किया है; और, आज भी मुझमें उतनी ही अतृप्ति है, जितनी पहली बार बाघ मारनेपर हुई थी।

प्रणत-पाल

(१)

प्रणतपाल कृपानिधि श्रीपते,
फलद हैं तव श्रीपद-पद्म ही।
दुख-पयोनिधि-मग्न मनुष्यके,
हित वही परमोत्तम पोत है॥

(२)

परम संकटमें हम हैं पड़े,
पर हमें अवलम्बन हो तुम्हीं।
निविड़ है तम-आपद हो रहा,
पर प्रभो बल है तव ज्योतिका॥

(३)

विपति ज्यों अब लौं कितनी टली,
प्रभु कृपा-बल त्यों यह भी टले।
मुझ दुखी जनका करुणानिधे!
अति विनीत निवेदन है यही॥

श्रीयुत "शारद"
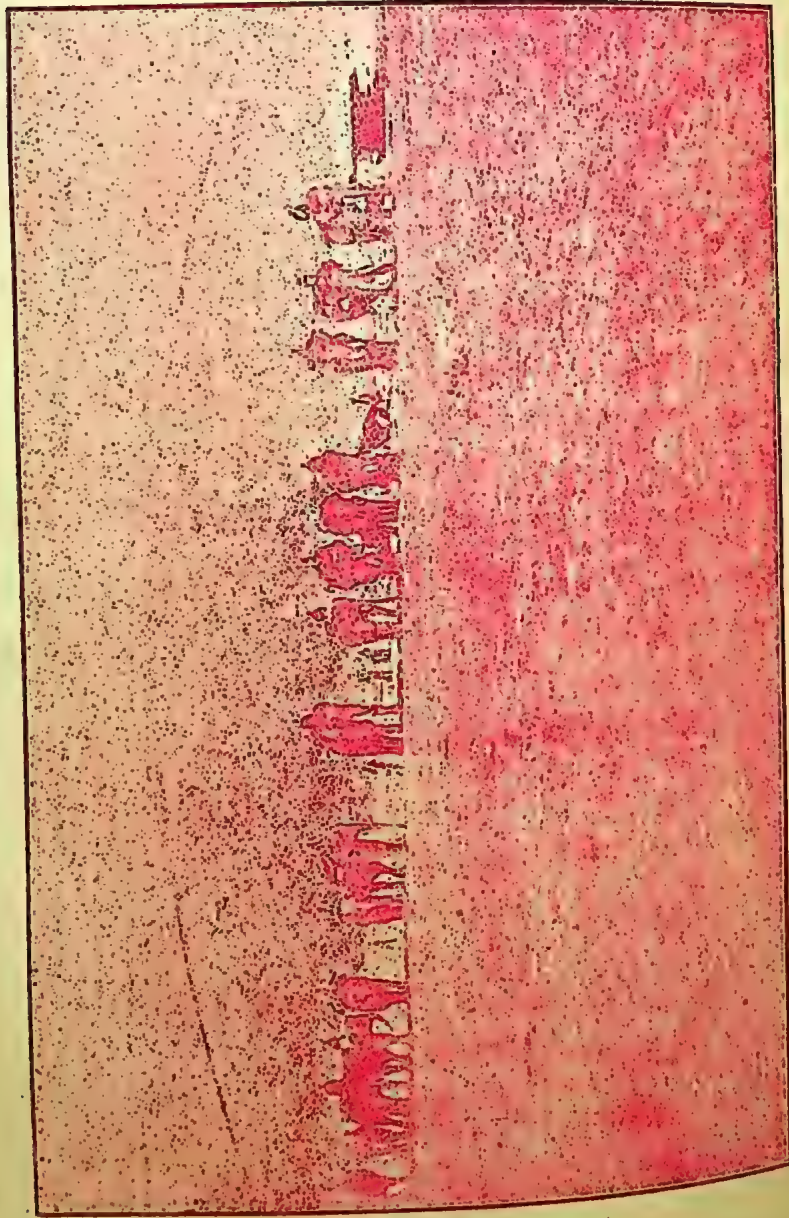
गङ्गा

शिकारी हाथियोंका यूथ

मेरे शिकारके अनुभव

राजा कीर्त्यानन्द सिंह बहादुर बी०ए०
(बनैली-नरेश)

(गताङ्कसे)

[५]

नवाबगंज घाटपर कोसी नदीको पारकर, बाबा विसू राउतके थान (स्थान)के समीप ही, घघरी नदीके पूर्वीय तटपर हम लोगोंने डेरा डाला, कनातें खड़ी कीं। कोसी और घघरीका यह सङ्गम-स्थान बड़ा ही रम्य है। यहाँ प्रकृतिने अपनी अमूल्य निधियाँ बिखेर दी हैं। पहला दिन तो शिकारका पता लगानेमें ही बीत गया।

दूसरे दिन सवेरे, जब हम लोगोंमेंसे कितने अभी सो ही रहे थे, एक आदमी दौड़ा आया और बोला कि, "पासमें ही एक भयानक जंगली भैंसा फ़सल चर रहा है।" किन्तु हम लोगोंके तैयार होकर उस स्थानपर पहुँचते-पहुँचते ही वह कटहलके घने जंगलमें लापता हो गया! जलपान कर चुकनेपर हम लोग उस ओर चल पड़े। अचानक एक स्थानपर वह मिला। अपनी ·३०३ नम्बरकी बन्दूकके बदले मैंने अपनी रायफल ले ली; किन्तु भैंसेसे अचानक भेंट हो जानेके कारण मैं कुछ घबरा-सा गया। फलतः कई गोलियाँ निष्फल गयीं और भैंसा भी आँखोंसे ओझल हो गया। तीन घंटेतक हम लोग उसकी खोज-ढूँढ़में परेशान रहे; लेकिन उसका कुछ भी पता न चला। मैं आप-ही-आप झुँझला उठा—सारी दौड़-धूप धूलमें मिल गयी। फिर कुछ लोगोंसे एक दूसरे झुण्डका पता पानेपर, हम लोग आगे बढ़े। झुण्डसे सामना हुआ। गोलियाँ चलने लगीं। कुल छ मारे गये, जिनमें तीन मेरी गोलियोंके शिकार हुए। इस बार मैंने बड़ी मुस्तैदी-से काम लिया था।

शाम हो चली थी। हम लोग कैम्पमें लौट आये; और, तय हुआ कि, उस भयावने भैंसेका पता, चाहे जैसे हो, लगाया जाय।

दूसरे दिन भोरमें हथियारोंसे लैस होकर हम लोग उस भैंसेकी टोहमें निकले। बड़ी-बड़ी दिक्कतें उठानेके बाद घघरी नदीके पास उसका पता चला। पहली बार इसी स्थानमें आकर वह लापता हुआ था। नदी पार करने-पर जान पड़ा कि, वह भी नदी पार कर पच्छिमकी ओर, जंगलमें, घुस गया है। दो घण्टेकी खोज-ढूँढ़के बाद वह मिला। हाथियोंसे घिरनेपर भी वह निकल भागने-की कोशिश कर रहा था; और, एक हथिनीपर वार भी कर चुका था कि, हम लोग दँतैल हाथियोंके साथ वहाँ पहुँच गये। ख़ासी किलाबन्दी कर दी गयी और चारों ओरसे गोलियोंकी बौछार होने लगी। भैंसा क्रोधके मारे पागल हो उठा और एक दँतैल हाथीको, जिसपर हौदा कसा हुआ था, बुरी तरह घायल कर दिया। दँतैल हाथीके घायल होते ही सभी हाथियोंमें खलबली-सी मच गयी, घेरा टूट गया और भैंसा निकल भागा! हम लोगोंने बड़ी तेजीसे उसका पीछा किया। अचानक वह लौटकर हम लोगोंपर टूट पड़ा; किन्तु शीघ्र ही गोलियाँ खाकर ढेर हो गया।

दिनभरकी परेशानी और परिश्रमका पुरस्कार मिल जानेसे रातमें गाढ़ी नींद लगी।

पहले पुर्नियाँ जिलेमें जंगली भैंसोंका अड्डा था; लेकिन अब भैंसे बहुत कम पाये जाते हैं। घने जंगलों और उनके

निवास-स्थानकी घनी झाड़ियोंको सन्थालियोंने काटकर आबाद कर डाला। हाँ, गंगा और कोसीके संगम-स्थानके आसपासके घने जंगलों तथा गंगाके किनारे काढ़ागोलाके पड़ोसके कटहलके जंगलोंमें अब भी जंगली भैंसे पाये जाते हैं। शिकारके लिये संगमके जंगलोंपर ख़ास निगरानी रखनेके कारण दरभंगा-नरेश शिकारियोंके धन्यवादके पात्र हैं; और, कम-से-कम मैं तो उनका अधिक अनुगृहीत हूँ। मुझे इस स्थानमें अच्छे-अच्छे शिकार मिले हैं। कई लोगोंके मुखसे प्रायः मैंने सुना है कि, इस जिलेके सभी बनैले भैंसे पालतू-जैसे बन गये हैं। उनका कहना है कि, अब वे चोट नहीं करते और करते हैं भी, तो बहुत छेड़-छाड़ करनेपर। मुझे आश्चर्य हो रहा है कि, कहीं ये लोग इस जिलेके बाघोंको भी पालतू न कह बैठें! दर्जनों बाघ मेरी रायफलके निशाने बने हैं, जिनमें केवल तीन-चार ही बाघोंके साथ महत्वपूर्ण मुठभेड़ हुई है। इससे यह कहना ठीक नहीं कि, उनका क्रोध—जंगलीपन—ही जाता रहा। हाँ, इतना मैं मान सकता हूँ कि, घरेलू भैंसोंको देखकर हृदयमें कुछ ऐसा भाव उत्पन्न होता है कि, उन्हें (जंगली भैंसोंको) हम सहानुभूतिकी दृष्टिसे देखने लगते हैं। इतनेसे ही उन्हें हम पालतू नहीं कह सकते। सच्चा शिकारी बनैले भैंसोंपर या उनके झुण्डके एक भैंसेपर बन्दूक नहीं उठाता। उसे तो मस्त भैंसेकी सामना करनेमें ही आनन्द आयेगा, किसे मार गिरानेमें बड़ी-बड़ी दिक़्क़तें उठानी पड़ती हैं—आपसे हाथ धो बैठनेका डर रहता है।

ऊपर हम कह आये हैं कि, किस प्रकार एक अकेला मदमत्त बना भैंसा हाथीपर टूट पड़ा था और उसे बुरी तरह घायल कर डाला था। एक अवसरपर, आँखोंके सामने ही, मेरे एक दँतैल हाथीसे एक ज़बर्दस्त भैंसा भिड़ गया। हम लोगोंने हाथियोंको आगे बढ़ाया और उसका पीछा किया। अचानक एक दूसरे हाथीसे उसकी मुठभेड़ हो गयी। उसकी मज़बूत सींगों और दँतैल हाथीके दोनों बड़े-बड़े दाँतोंमें परस्पर संघर्षकी जो आवाज़ होती थी, उसे हम लोग स्पष्ट सुनते थे; यद्यपि वह हाथीके धक्के खा-खाकर, पीछे हट-हटकर गिर जाता था!

रबी फ़सलके दिनोंमें इसी प्रकार एक दूसरे जंगली भैंसेसे मुक़ाबला हो गया। वह प्रतिदिन खेत पर आता था और फ़सलको तहस-नहस कर डालता था। रखवालोंने उसे मार भगानेकी बड़ी कोशिश की। एक रखवालेको तो उसने ऐसी सींग मारी कि, वह उसकी सींगमें गुँथ गया और मर गया! उसकी लाश उसकी सींगमें इस तरह फँस गयी थी कि, कई दिनोंतक उलझी ही रही! अन्तमें वह भैंसा मार डाला गया।

वेदाध्यायीकी आत्मकथा

प० कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

पूर्व-विहित, पुण्योंके प्रतापसे मुझे एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण-वंशमें जन्म ग्रहण करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। मेरे पिता संस्कृतके एक प्रसिद्ध विद्वान् थे; सनातन-धर्म उनके जीवन-का सर्वस्व था; वेदोंमें उनकी अपूर्व निष्ठा थी। यौवनके उषा-कालमें ही, गृहस्थीके झंझटोंमें व्यस्त हो जानेके कारण, उनकी वेद-पारंगत होनेकी हार्दिक इच्छा मनमें ही रह गयी थी। लोगोंको तो यही आश्चर्य था कि, ऐसी विकट परिस्थितियों-में संस्कृतका यह प्रकाण्ड पाण्डित्य उन्हें कैसे प्राप्त हो सका। वे मनस्वी थे। वेदके कुछ भागका नित्य पाठ करना उनकी दृष्टिमें श्वासोच्छ्वासके ही समान आवश्यक था। मैं उनकी एक मात्र सन्तान था। मेरे विषयमें उनकी एक मात्र यही अभिलाषा थी कि, मैं वेदका आदर्श विद्वान् बनूं। इस प्रकार मेरे रूपमें वे अपनी अतृप्त आकांक्षाकी पूर्ति कर सन्तुष्ट होना चाहते थे; पर विधिको यह इष्ट न था। उसने प्लेगका प्रलयंकर पाश फेंककर उनका जीवन हरण कर लिया। स्वर्गारोहणसे कुछ ही समय पूर्व उन्होंने मुझसे कहा—"पुत्र! वेदोंका पूर्ण अध्ययन कर मेरी एक मात्र कामनाकी पूर्ति करना। इसके बिना मेरी आत्मा शान्त न होगी। मेरा सच्चा श्राद्ध यही है!" पिताजीके सात्त्विक सहवास, प्रतिदिनकी प्रेरणा एवं आत्मिक भावोंसे मेरे मनमें वेदाध्ययनकी स्वाभाविक अभिरुचि तो ही गयी थी; पिताजीकी इस मृत्युकालीन आर्द्र आज्ञासे उसमें दृढ़ताका सन्निवेश हो गया। मैंने पिताजीके शवके सामने प्रतिज्ञा की—"मैं वेदाध्ययन करूँगा—अवश्य करूंगा; मेरे जीवनका यही एक व्रत होगा।"

मेरी अवस्था इस समय १२ वर्षोंकी थी। घरमें अब मेरा कोई न था। पिताजीकी और्ध्वदैहिक क्रिया समाप्त कर मैं वेदाध्ययनकी लालसासे उल्लसित हो, घरसे निकल पड़ा। निश्चिन्तताका सहारा एवं व्रतका बल, उद्बोधक मित्र-की भाँति मेरे साथ थे और पताकी एक मात्र कामना मेरे सामने!

× × ×

कई दिन अलक्षित भावसे यात्रा करते हुए मैं एक ग्राममें पहुँचा। एक वृद्धसे परिचय हो गया। उसने कहा—"व्यर्थ घूमनेमें समय क्यों खो रहे हो? पढ़ना हो, तो 'मदरसे' जाओ"! मैंने मन ही मन 'मदरसा'का अर्थ 'वेद-पाठशाला' कर लिया और वृद्धके आदेशानुसार वहाँ जा धमका। एक अध्यापक महाशय लड़कोंको बिल्लीका पाठ पढ़ा रहे थे! मैंने उनसे कहा—"मैं यहाँ वेद पढ़ना चाहता हूँ।" उन्होंने हृदयकी सारी उपेक्षाको वाणीमें भरकर कहा—"यहाँ 'वेद-फेद' नहीं पढ़ाया जाता; नागरी पढ़ना चाहो, तो नाम लिखा सकते हो।" मैंने उन्हें प्रणामकर अपनी यात्रा चालू की।

+ + +

कई दिनों बाद मैं एक बड़े नगरमें आ पहुँचा। एक विशाल भवनके मुख्य द्वारपर मोटे-मोटे अक्षरोंमें लिखा हुआ था—"दयानन्द एँग्लो वैदिक हाई स्कूल" 'वैदिक' शब्द देखकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई। मैं बेसुध-सा हो, सोचने लगा—'यही तो वह स्थान है, जिसे मैं खोजता घूम रहा हूँ।

निश्चय ही यहाँ वेदाध्ययनकी सुव्यवस्था है। यह तो वह देव-मन्दिर है, जहाँ बैठकर मैं पूज्य पिताका सच्चा श्राद्ध-यज्ञ सम्पन्न कर सकूँगा! भगवान्‌का ध्यान कर मैंने उस महाभवनमें प्रवेश किया। दाहने हाथ एक सुन्दर गृह था। उसपर लिखा हुआ था—'ड्राइङ्ग रूम!' दीवारोंपर कुछ रंगीन नक्शे सुशोभित थे। मैंने दूरसे ही उन चित्रोंको 'सर्वतोभद्र' मण्डल समझकर 'ड्राइङ्ग रूम'का अर्थ 'कर्मकाण्ड-श्रेणी' लगा लिया। समीप पहुँचा। अध्यापक एवं छात्र जूता पहने हुए थे और अध्यापक महाशय किसी अगम्य भाषामें कुछ कह रहे थे। मेरा मन सशङ्क हो उठा; पर तर्कने उसे शान्त कर दिया—'ड्राइङ्ग रूम'का अर्थ 'कर्मकाण्ड-श्रेणी' नहीं, कुछ और होगा! मैं आगे बढ़ा और घूमते-घूमते संस्कृत-श्रेणीमें जा पहुँचा। पण्डितजी छात्रोंको 'पिपीलिका' (चींटी) का पाठ पढ़ा रहे थे। मैं सोचने लगा—'भगवन्! तुम्हारे लीला-निकेतन इस भारतके पुत्रोंकी शिक्षाके लिये क्या चींटियों एवं बिल्लियोंकी कहानियाँ ही रह गयी हैं! भारतकी वास्तविक शिक्षा—वेद—का अध्यापक क्या यहाँ कोई नहीं रहा!' पण्डितजी सज्जन थे; बड़े प्रेमसे मिले। मेरी जिज्ञासाके उत्तरमें उन्होंने कहा—"तुम वैदिक शब्द देखकर भ्रममें पड़ गये हो। यहाँ वेद-शिक्षाका कुछ भी प्रबन्ध नहीं है। मेरा परामर्श है कि तुम किसी संस्कृत-विद्यालयमें चले जाओ; वहाँ तुम्हारा सब प्रबन्ध हो जायगा।" इस अमूल्य परामर्शके लिये पण्डितजीको धन्यवाद देकर मैं वहाँसे विदा हुआ।

× × × ×

कई दिनों बाद एक संस्कृत-विद्यालय मिला। नगरसे दूर स्वच्छ पवित्र वातावरणमें मेरा मन प्रसन्न हो गया। विद्यालयकी दीवारोंपर वेद-मन्त्रोंके मर्मस्पर्शी खण्ड सुन्दर सिन्दूरसे लिखे हुए थे। अध्यापकोंकी शुभ्र गद्दियाँ एवं छात्रोंके बैठनेका स्वच्छ पृथ्वीतल देखकर पिताजीकी पाठशालाका चित्र मेरी आँखोंमें आ गया। मैंने प्रधाना-ध्यापकजीके सामने अपनी प्रार्थना उपस्थित की। उन्होंने कहा—"बेटा! तुम्हारी प्रवृत्ति अत्यन्त सात्त्विक एवं ब्रह्मणोचित है; पर आजकल जीवन-संग्राम इतना जटिल हो उठा है कि, उसका क्या वर्णन करूँ! इसलिये तुम वेदाध्ययनके झंझटमें न पड़कर मध्यमाका फार्म भर दो। परीक्षा पास कर कहीं नौकरी कर लेना और फिर चाहे जो करना।" मैंने इसका प्रतिवाद किया। वे बोले—"अच्छा, यदि तुम्हारी वेदाध्ययनकी ही रुचि है, तो तुम काशी चले जाओ; क्योंकि यहाँ वेदाध्ययनका कोई प्रबन्ध नहीं है। यहाँ तो केवल परीक्षोपयोगी पाठनकी ही सुव्यवस्था है!" काशीके एक महामहोपाध्याय वेद-पाठीका नाम पूछकर मैंने काशीजीकी ओर प्रस्थान किया।

मार्गमें एक दिन, सायंकालके समय, रातभरके लिये स्थान देनेकी प्रार्थना करनेपर एक महानुभावने कहा—"तुम विद्यार्थी हो, ऋषिकुलमें चले जाओ। वहाँ तुम्हें स्थान मिल जायगा और तुम प्रसन्न भी रहोगे।" पूछता-पूछता मैं ऋषिकुल पहुँचा। ब्रह्मचारी-मण्डल उच्च स्वरसे वेद-पाठ कर रहा था। यह संस्था पतित-पावनी भगवती भागीरथीके तटपर बसी हुई थी। यहाँका प्राकृतिक सौन्दर्य आकर्षक एवं ब्रह्मचारियोंका सस्वर वेद-गान मनोमुग्धकारी था। मैं सोचने लगा—'यदि यहाँ किसी तरह वेदाध्ययनका प्रबन्ध हो सके, तो मेरा जीवन सफल हो जाय।' दूसरे दिन ब्राह्ममुहूर्तमें नित्य क्रियाओंसे निवृत्त हो, सब छात्रोंने हवन तथा वेद-पाठ किया। मध्याह्नके समय कलकत्तेके एक अभ्यागत मारवाड़ी सेठकी ओरसे सब छात्रोंके साथ मैंने भी सुस्वादु भोजन प्राप्त किया। शामको खूब वेद-गान हुआ। छात्रोंकी आजकी दिन-चर्या देखकर मुझे विश्वास हो गया कि, यहाँका वातावरण अत्यन्त पुनीत है—वेदाध्ययनका यहाँ अवश्य ही उत्कृष्ट प्रबन्ध है। मैंने यहाँ रहनेका निश्चय कर लिया। सन्तोषकी साँस लेकर मैं सो गया।

थकावटके कारण दूसरे दिन मेरी आँख जरा देरमें खुली। दूसरे छात्र भी इसी स्थितिमें थे। आज न हवनमें वह समा-रोह था और न वेद-गानमें वह जीवन! सभी बातें निर्जीव-

थी थी—सभी निष्प्राण! मैं इसका रहस्य न समझ सका! मेरी जिज्ञासा देखकर एक विद्यार्थीने कहा—"भैया! तुम अभी नवीन हो, यहाँका रस-रंग नहीं समझते। कलकी धूम-धामका कारण वह धनी अतिथि था। चारा डालकर हाथी फँसानेकी क्रियासे तुम अपरिचित प्रतीत होते हो। तुम पढ़ाकी हो; पर संस्थाओंके लिये तो यही संजीवनी है।"

मेरा निवास-काल समाप्त हुआ। मैंने अपनी यात्रा फिर प्रारम्भ की! एक दिन मार्गमें अचानक एक विद्वान्‌का समागम हो गया। ऋषिकुलकी दुर्दशाका वर्णन सुनकर उन्होंने कहा—"गरीब ऋषिकुलोंकी क्या कथा; इस विशाल-काय गुरुकुलोंमें भी वेदका नाम ही नाम है। चारों वेदोंका विद्वान् तो दूरकी बात है, अभीतक तो गुरुकुलोंने अष्टाध्यायीका भी कोई अच्छा विद्वान् उत्पन्न नहीं किया।"* इस ज्ञान-वृद्धिके लिये, मैंने उनका आभार स्वीकार किया और चलते-चलते काशी जा पहुँचा।

\+ × × ×

आज मैं महामहोपाध्याय प० वेदभूषणजीसे मिला। अपनी प्रार्थना उनके सामने उपस्थित की। उन्होंने 'समया-भाव'का 'सिगनल डाउन' किया; पर मेरी गाड़ी आगे न बढ़ी। मैंने अपनी यात्राके कष्टोंका वर्णन किया और पूज्य पिताजीके अन्तिम आदेशको दुहराया। पण्डितजीका हृदय पसीज उठा; उन्होंने जोरसे कहा—"अच्छा, पढ़ा दिया करूँगा।" मेरा मन-मयूर नाच उठा; अन्धेको आँखें मिल गयीं, पतझड़में वसन्तका शुभागमन हुआ। मैं और चाहता ही क्या था? वेदाध्ययन प्रारम्भ हुआ, पिताजीकी आत्मा स्वर्गमें आनन्दित हो उठी; पर एक आकस्मिक घटनाने रंगमें भंग कर दिया—मैंने जिस दण्डको इक्षुदण्ड समझकर हाथ बढ़ाया था, वह कोरा काठ निकला!

मुझे वेदपाठीजीके साथ एक यज्ञमें जानेका अवसर मिला। वहाँ उनका विधि-विधान—कर्मकाण्ड-प्रक्रिया—देखकर मैं दंग रह गया। एक बार उन्होंने एक मन्त्र पढ़कर कहा—"यह कुश ऐशाण्य कोणमें रख दो।" मैंने जोरसे पूछा—"इस मन्त्रका अर्थ और वास्तविक तत्त्व क्या है?" उन्होंने कहा—"बेटा, प्रत्येक मन्त्रका अर्थ एवं विधि-विवेचना जाननेकी आवश्यकता नहीं है। तुम इतना याद रक्खो कि, इस मन्त्रसे यह कार्य होता है।" इस विषयपर विवाद करते समय मुझे कटु अनुभव हुआ कि, वेदपाठीजी स्वयं अर्थ-ज्ञानसे शून्य हैं; और, उनकी गम्भीर पहुँच केवल विधि और स्वरतक ही है। मैं वेदाध्ययनके द्वारा धनोपार्जन करना नहीं चाहता था; अतएव मेरे लिये वेदपाठीजीका यह ज्ञान-वैभव व्यर्थ ही था।

मैं किसी दूसरे योग्य गुरुकी खोजमें लगा और एक दिन अचानक 'हिन्दू विश्व-विद्यालय'की ओर जा पहुँचा। संस्थाका पवित्र नाम और दरवाजोंपर बने हुए मन्दिर देखकर मुझे कुछ आशा हुई—कदाचित् यहाँ वेदाध्ययनकी सुव्यवस्था हो और मेरा यह पुनीत अभीष्ट सिद्ध हो जाय। भगवान्‌का ध्यान कर मैंने अन्दर प्रवेश किया और घूमता-घूमता 'प्राच्य-विद्या-विभाग'की पाठशालामें आ पहुँचा। छात्रोंसे मिला, खूब छान-बीन की। सबका निष्कर्ष यही था—'यहाँ भी परीक्षाके ढङ्गपर ही पठन-पाठनकी व्यवस्था है; और, यहाँकी तथा संस्कृत-विद्यालयोंकी पाठन-व्यवस्थामें, तुम्हारी दृष्टिसे, कोई विशेष अन्तर नहीं है!'

मेरी आशाका सहारा टूट चुका था। संसार मेरे लिये शून्य था और जीवन भार। चारों ओर अवसादका साम्राज्य छाया हुआ था! पूज्य पिताजीकी आत्मा स्वर्गमें करुण क्रन्दन कर रही थी। मैं भग्न-हृदय हो, निरुद्देश्य भावसे, घूमता हुआ एक उपवनमें जा पहुँचा। उसका दक्षिण भाग खूब हरा-भरा और अत्यन्त एकान्त था। वहाँ पहुँचकर मैंने देखा—एक अँग्रेज महोदय कई मोटी-मोटी पुस्तकें सामने रक्खे हुए, बड़ी तत्परतासे, कुछ लिख रहे हैं।

---

* श्रीयुधिष्ठिर विद्यालंकार-लिखित 'सच्ची पाठ-विधि', पृष्ठ ११।—लेखक

कौतूहलवश मैं उनके पास बैठ गया; बातचीत प्रारम्भ हुई। उनका नाम था के० एस्०। मैंने पूछा—"यह कौन-सी पुस्तकें है ?'

उन्होंने कहा—"वेद और उनके टीका-ग्रन्थ।"

आतुर हो मैंने पूछा—"यह आप क्या लिख रहे हैं ?"

देहका सारा दर्प एकत्रित कर उन्होंने कहा—"मैं वेदोंके सम्बन्धमें एक विवेचना-पुस्तक लिख रहा हूँ। भारतके विद्वान् भाष्यकारोंने वेदोंको व्यर्थ ही इतना महत्त्व दे रखा है। मैं सिद्ध करूँगा कि, इनमें भारतकी प्राचीन बर्बर सभ्यताके कुछ संकेतोंके अतिरिक्त कुछ नहीं !"

मैं स्तब्ध हो सोचने लगा—'हाय ! भारतीयोंको तो इतना अवकाश नहीं कि, वे अपनी संस्कृतिके मूल-आधार वेदोंपर विचार कर सकें; और, यह विदेशी, हमारे ही देशमें बैठा हुआ उनके मूलपर कुठाराघात कर रहा है !"

इस समय समस्त पृथ्वी और आकाश मुझे शून्य प्रतीत हुए और मैं, मूर्च्छित हो, हरी घासपर लुढ़क गया !

क्या कहूँ

क्या कहूँ तुझे तेरा होकर—
जाऊँ मैं कहाँ विचार करो।
मेरी दुनिया तेरी माया,
ठुकरादो अथवा प्यार करो॥

जिस तरह रहूँ तेरा ही हूँ—
मेरा अब कहाँ ठिकाना है ?
जो बिका हुआ है हाथोंमें,
फिरसे क्या उसे बिकाना है ?

प० जगदीश झा 'विमल'

वेद, हम और जर्मनी

प० राधारमण शास्त्री, काव्यतीर्थ

हम वेदभक्त हैं। वेद-भक्तिका हम ढिँढोरा पीटते चलते हैं। हमारा दावा है—"वेद अपौरुषेय है। यह ईश्वरकी रचना है। हमारा आदि साहित्य है। हमारे धर्मका स्तम्भ है, विभूता है।" पर हम कहनेके सिवा, डींग मारनेके अलावा, कार्यतः कितनी वेद-भक्ति रखते हैं? हम द्विजातियोंमेंसे प्रत्येक मनुष्यको २५ वर्षकी अवस्थातक मनोयोग-पूर्वक वेद पढ़नेका अलंघ्य आदेश प्रत्येक श्रुति-स्मृतियोंमें दिया गया है। पर आजके जमानेमें हममें कितने मनुष्य ऐसे हैं, जो वेदके क, ख, ग, भी जानते हों? आजकल एक ही वेदका साङ्ग और सम्पूर्ण अध्ययन दुष्कर हो रहा है, फिर चारों वेदोंका पूर्ण ज्ञान पाकर "चतुर्वेदी" बननेकी बातका तो क्या कहना?

जहाँका प्रत्येक द्विजाति वेदज्ञ होता था, जहाँ ब्राह्मणोंके कर्तव्योंमें वेदाध्ययन और वेदाध्यापन मुख्य कर्तव्य समझे जाते थे और जहाँ प्रत्येक घरमें चारों वेद, देवताकी भाँति, पूजित होते थे, वहाँ आज क्या हो रहा है, यह बतलाते हृदय मर्माहत हो उठता है। कितने दुःख और लज्जाकी बात है कि, आज वेदज्ञोंकी संख्या उँगलियोंपर ही गिन ली जाती है; और, आज कुछ ही ऐसे घर हैं, जहाँ चारों वेदोंकी प्रतियाँ पायी जाती हैं?

हिन्दू-साम्राज्यकी समाप्तिके साथ ही दुर्भाग्यवश, साहित्यका भी सूर्य पश्चिमावलम्बी हो गया। मुसलिम बादशाहोंमेंसे कइयोंने भारतकी प्राचीन संस्कृतियों, हिन्दू-समाजके गौरव-गरिमा-परिचायक चिह्नों और संस्कृत-साहित्यके धर्म-ग्रन्थोंके नाशके लिये जैसा अमानुषिक प्रयत्न किया था, आज इतिहास उसका साक्ष्य डंकेकी चोट दे रहा है। यह बात न भूली है, न भूलनेकी है कि, उस समय हमारे धर्म-ग्रन्थ खोज-खोजकर जलाये जाते थे! पर हमारे सौभाग्यवश, हमारे पूर्वजोंके चातुर्यके कारण उस समय भी हमारे साहित्यका एक महत्त्वपूर्ण अंश, साङ्ग और प्रामाण्य चतुर्वेदोंके साथ, बचा रह गया। तो भी नियतिके गर्भमें अभी और भी दुःख भरे पड़े थे; इसलिये मुसलिम राज्यका अन्त होनेपर जब भारतका शासन इङ्गलैण्डके लोगोंके हाथोंमें गया, तब भी हमारा दुःख घटनेके बजाय बढ़ता ही गया। हमारा साहित्य दिन-दिन क्षीण होता गया। विदेशियोंकी भाषा सीखनेकी चाहमें पड़कर हम अपनी भाषा, अपने पूर्वजोंकी भाषा, अपनी आदि भाषा संस्कृतकी उपेक्षा करना सीखने लगे! उन्होंने भी अपनी भाषा सिखानेके लिये ऐसे-ऐसे प्रलोभन देने प्रारम्भ किये कि, हम अपनी भाषाको ही भूलने लगे। कहाँका वेदाध्ययन और कहाँका वेदाध्यापन!!

किन्तु इन्हीं दिनों दो-चार अँग्रेजोंमें, वेदोंकी बातोंको जाननेके लिये, कौतूहल उत्पन्न हुआ। एक-दोने यहाँ आकर इसका परिचय पा लिया और उसके बाद कुछ अँग्रेज स्वच्छन्दतापूर्वक चुन-चुनकर यहाँके सर्वोत्तम वेदादि ग्रन्थोंको अपने घर ले गये। कुछ लोगोंने वहाँ उन्हें पढ़ा। सौभाग्यवश जर्मनीका ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। वह वेद पढ़ने लगा। उसने देखा, वेदोंमें ज्ञान-भण्डार भरा पड़ा है। वह उनके प्रचार-प्रसारके लिये बद्ध-परिकर हो गया। आज जर्मनीमें संस्कृतके लिये जो कुछ हो रहा है, उसे देखकर दाँतों उँगली दबानी पड़ती है। दुःख यही है कि, जो भारतमें होना चाहिये था, वह जर्मनीमें हो रहा है। भारतीय पण्डितोंका कर्तव्य मेक्समूलर, विल्सन और ओल्डेनबर्गने पूरा किया है।

आज जर्मनीकी प्रत्येक युनिवर्सिटीमें संस्कृत-शिक्षाका

समुचित प्रबन्ध है। "बर्लिन विश्व-विद्यालय"में संस्कृत पढ़नेके लिये लूडर्स, ग्लासनैप् और नोबल नामक तोन प्रोफेसर थे। इन लोगोंके पहले वेबर, पिशल और बाप नामक प्रोफेसर संस्कृत पढ़ाते थे। वेबरने संस्कृत-साहित्यका प्रचुर ज्ञान प्राप्त किया था। उनका लिखा "संस्कृतका इतिहास" और प्रशियाके राजकीय पुस्तकालयकी हस्तलिखित संस्कृत पुस्तकोंको परिचयात्मक सूची—जो बड़े-बड़े सात भागोंमें हैं—संस्कृत-प्रेमियोंके लिये अनमोल रत्न हैं। "गार्टिजन विश्व-विद्यालय"में संस्कृत पढ़ानेका काम ई० सिग और डा० डब्ल्यू सीजलिङ्गने किया। इन दोनोंके पूर्व सुप्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् ओल्डनबर्ग वहाँ संस्कृत पढ़ाते थे और इनके पहले कीलहार्न साहब। ये वही कीलहार्न हैं, जिनका लिखा "संस्कृत व्याकरण" भारतके कितने ही कालेजों और हाई स्कूलोंमें पाठ्य ग्रन्थ है।

धारा-प्रवाह शुद्ध और सरस संस्कृत बोलनेको इनमें खास खूबी थी। "बान विश्व-विद्यालय" में एच० जैकोबी संस्कृतके अध्यापक थे। इनके पूर्व मिस्टर आउफरेक्ट थे। इनके द्वारा सम्पादित "ऋग्वेद" बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। "कील विश्व-विद्यालय" में एच० डूसन संस्कृत-प्रोफेसर थे। इनके बाद श्रेडर और डाक्टर स्ट्रास हुए। श्रेडर साहब बहुत दिनोंतक भारतमें भी रह चुके हैं। "ग्रीफसवाल्ड विश्व-विद्यालय" में लुड्विक संस्कृतके प्रोफेसर थे। विदेशियोंको संस्कृत पढ़ानेकी आपको प्रणाली बड़ी अच्छी है। "ब्रेस्लो विश्व-विद्यालय" में हिलेब्राँट साहब संस्कृतके प्रोफेसर थे, जिन्होंने अग्नि, सोम, वायु, सूर्य, आदित्य आदि वैदिक देवताओंको तुलना अन्य देशोंके देवताओंसे की है। हिलेब्राँटके पूर्व स्टेंजलर संस्कृताध्यापक थे। "उर्जबर्ग विश्व-विद्यालय" में डा० जाली पढ़ाते थे। यजुर्वेदके सिवा आयुर्वेदके ये बड़े मर्मज्ञ थे। इसी तरह म्युनिक, हीडलबर्ग, हैम्बर्ग, फ्रैंकफर्ट, कोनिग्सबर्ग, मन्स्टर, जेना और रोस्टकके विश्व-विद्यालयोंमें संस्कृत-अध्यापनका समुचित प्रबन्ध है। इनमें कून, गार्ब, थूम्ब, फ्रूंके, नोजलिस, वालेजर, केपलर, सिमर आदि सज्जन संस्कृतका पाठन करा चुके हैं।

जर्मनीके विद्वानोंने वेदोंकी आजतक जितनी सेवाएं की हैं, वह अमूल्य हैं। जो सज्जन इनकी सेवाएँ जानना चाहें, वे "गंगा"के "वेदांक"में प्रकाशित वैदिक पुस्तकोंकी सूचीको पढ़ें। अबतक जर्मनीमें तो वेदोंके नये-नये संस्करण प्रकाशित होते रहते हैं और भारतमें कोई प्रकाशक वेदोंका एक भी अच्छा संस्करण प्रकाशित करनेका साहस नहीं करता। करे भी तो कैसे? यहाँ खरीदार ही नहीं? मुफ्तमें प्रकाशित कर केवल अपना स्टाक सजानेके लिये कौन साहस करे? बर्लिनके पुस्तकालयमें संस्कृत पुस्तकोंकी सूचीका ही मूल्य १९०) है!

जो हो, वेद हमारे हैं और वह जहाँ रहेंगे, वहाँसे पुकार-पुकार कर कहते रहेंगे—"देशमें रहेंगे या विदेशमें रहेंगे काहू वेशमें रहेंगे तऊ रावरे कहायगे।"

वेदार्थ तथा आधुनिक भाष्यकार

स्नातक तडित्कान्त वेदालंकार

वैदिक साहित्यके पूर्णरूपसे उपलब्ध न होनेसे तथा अन्य आवश्यक साधनोंके अभावसे वेदोंका अर्थ करनेमें कितनी तकलीफ उठानी पड़ती है, इस बातका वैदिक जगत् भली भाँति अनुभव कर रहा है। इसलिये वेदमंत्रोंका निश्चित अर्थ बतलाना अत्यन्त दुष्कर हो गया है। भाष्यकारों और भाष्योंकी गिनती नहीं। इसके सिवा यह बात भी नहीं है कि, एक मतावलम्बी भाष्यकारोंके भाष्य एक-से अभिप्राय-वाले होते हों। इसपर भी हर एक भाष्यकार अपने किये हुए अर्थको सर्वांशमें पूर्ण नहीं, तो बहुत हदतक पूर्ण समझता है। ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जानेसे यह हो रहा है कि, साधारण जनता या तो वेदोंके प्रति उदासीन बनती जा रही है या उसपर जिस भाष्यकारका कुछ थोड़ा-बहुत प्रभाव होता है, उसके अर्थोंको वह ठीक समझकर अन्योंके प्रति दुर्लक्ष करती है। इससे भाष्यकार तथा साधारण जनता, दोनोंकी ही हानि है; क्योंकि यह कहना बड़ा ही कठिन है कि, ऐसे भाष्यकारके भाष्यमें कुछ नवीन जानने योग्य है ही नहीं। परन्तु सन्देहमें पड़ी हुई जनताके पास इसके सिवा दूसरा कोई चारा भी तो नहीं है। इससे भी बड़ी कठिनाई जो भाष्यकार-के सामने है, वह है जनताका अविश्वास। उदाहरणके लिये एक आर्यसमाजी तथा एक सनातनीको लेते हैं। इन दोनोंको इस प्रकार शिक्षण मिला हुआ होता है कि, दोनों प्रतिकूल मतावलम्बी भाष्यकारोंके भाष्योंको अश्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं। आर्यसमाजी सदा यह समझेगा कि, सायणाचार्य तथा महीधरके भाष्योंमें कुछ भी जानने लायक है ही नहीं; और, इसके प्रतिकूल एक सनातनी यह समझेगा कि, आर्यसमाजी भाष्यकारने अवश्य ही हमारे मतके विरुद्ध लिखकर सायणा-चार्य आदिको अपने भाष्यमें फटकारा होगा; अतः उस भाष्य-को वह कभी भी मानकी दृष्टिसे देखनेकी कोशिश नहीं करेगा। अब लीजिये एक ही मतावलम्बी भाष्यकारोंकी कठिनाईको। यह ऐसी कठिनाई है, जिसको दूर करना लगभग असम्भव-सा है। वह कठिनाई है जनताका दृढ़ विश्वास। इस प्रकारके विश्वासको अन्ध श्रद्धाके शब्दसे भी किसी अंशमें कहा जा सकता है। इस प्रकारके विश्वासकी संसारमें पर्याप्त आवश्यकता है; परन्तु उन्नतिशील समाजके लिये इससे नुकसान भी बहुत अधिक होता है। इस समय आर्यसमाज-मतावलम्बी भाष्यकारोंके सामने भी यही कठिनाई उपस्थित हो रही है। एक आर्यसमाजी विद्वान्‌के भाष्यकी भी आर्यजनता कद्र करनेके लिये तैयार नहीं; अगर उसके भाष्यमें और महर्षि स्वामीदयानन्द सरस्वतीके भाष्यमें थोड़ा-बहुत मतभेद प्रतीत होता हो। इसका मुख्य कारण महर्षिकी विद्वत्तामें अटल श्रद्धा तो है; परन्तु "चूँकि महर्षिने ऐसा लिखा है; अतः इस मन्त्रका यही अर्थ है, दूसरा नहीं हो सकता"—यह कथन सत्यके शोधक समाजके लिये बड़ा भारी घातक है। इससे आर्यजनताके दिलोंकी संकुचित भावना प्रकट होती है। जबतक इस प्रकारकी भावना आर्यजनतामें जाग्रत् रहेगी, तबतक वेदके अर्थोंका शोध होना असम्भव है। और, ऐसी हालतमें अजोड़ विद्वान्‌का भी आर्यजनतामें मान होना बहुत ही कठिन है। इससे जनता और विद्वान्, दोनोंको ही नुकसान पहुँच रहा है। यह माना कि, महर्षिके अर्थोंमें कोई त्रुटि नहीं है; पर उन मंत्रोंके दूसरे अर्थ हो ही नहीं सकते—यह कहना भी तो सर्वथा अनुचित है! महर्षिके भाष्योंको

समझने-समझानेका हमने अभीतक कोई भी क्रियात्मक उपाय न सोचा है, न सोचनेका कोई प्रयत्न ही होता हुआ हमें दिखायी दे रहा है। ऐसी अवस्थामें अगर किसीका मतभेद पड़ता है, तो छोटे-मोटे सब उस बेचारेपर ऐसे टूट पड़ते हैं और उसे ऐसा नीचा दिखानेकी कोशिश करते हैं, मानों उसमें साधारण बुद्धिका भी अभाव ही है! इसका फल यह होता है कि, या तो वह विद्वान् अपनी सम्मति प्रकट करना बन्द कर देता है या वह अपनी कीर्तिसे हाथ धो बैठता है!

कठिनाइयोंके साथ-साथ निष्पक्षपाती लेखकके सामने एकपक्षीय समालोचनाकी भी बड़ी भारी कठिनाई उपस्थित है। यह बात सर्वथा सत्य है कि, समालोचनासे वस्तुका वास्तविक स्वरूप प्रकट हो जाता है। आँचमें तपाये हुए सोनेकी तरह समालोचनासे लेखक चमक उठता है; पर समालोचनाकी अपेक्षा समालोचकपर यह बात अधिक आश्रित है। निष्पक्षपाती समालोचनाका प्रायः अभाव ही रहता है; अतएव समालोचनासे होनेवाला लाभ न होकर व्यर्थका वाद-विवाद छिड़ जाता है, जिसका परिणाम कभी भी अच्छा नहीं होता। समालोचककी योग्यता लेखकसे किसी अंशमें बढ़कर अगर न भी हो, तो भी उस विषयमें उसका प्रवेश इतना होना चाहिये कि, वह जनतामें अपनी विद्वत्ताका सिक्का जमा सके और साथ-ही-साथ निष्पक्षपातकी भावनासे पूर्ण हो। पर आजकल चाहे किसीने थोड़ा-सा ही वेदाध्ययन क्यों न किया हो, अपनेको हरएककी समालोचना करनेके योग्य समझता है। वह अपने खास जाने हुए सिद्धान्तोंके विरुद्ध लिखनेवालेकी कठोर और असभ्य भाषामें समालोचना करके उसे नीचा गिराने और अपनेको उससे ऊँचा दिखलानेका प्रयत्न करता है। समालोचक अपने पक्षकी स्थापनका ज़रा भी ख़्याल नहीं करता। दूसरेका खण्डन किस प्रकार किया जाय—वह इसीकी धुनमें रहता है। लेखककी पद्धतिका अनुशीलन किये बिना ही, समालोचक उसके मतलबको भी, बिना अच्छी तरह समझे, खण्डन-मण्डनमें प्रवृत्त हो जाता है; और, इस प्रकार समालोचनाका स्वरूप न रहकर वितण्डावाद हुआ जाता है!

आर्यसमाजके प्रचारसे पूर्व हिन्दू जनताके लिये वेद एक रहस्यकी चीज़ बनी हुई थी। उसपर विचार करना पाप समझा जाता था! आर्यसमाजने हिन्दू-जनताकी इस भावनाको दूर करके वेदोंपर विचार करनेकी प्रवृत्ति लोगोंमें उत्पन्न की। वेदके अपूर्व बोधको जानने और समझनेके लिये लोगोंमें उत्सुकता भी उत्पन्न की। इससे वेद-प्रचार तो अवश्य होने लगा; पर जितना लाभ जनताको मिलना चाहिये था, उतना न मिल सका; उलटा थोड़ा-बहुत नुकसान ही हुआ। जो लोग अन्धश्रद्धालु होकर वेदोंमें दृढ़ विश्वास रखे बैठे थे, उनके सामने जब अर्थ करके वेदमन्त्र रखे जाने लगे, तब उनकी जो वेद-विषयक कल्पना थी, वैसी उन्हें उन मन्त्रार्थोंमें न दिखायी दी और वे लोग वेदोंके प्रति निराश हुए। इस निराशाका मुख्य कारण वेदोंके धुरन्धर विद्वानोंके संगठनका अभाव था। जितने अर्थ करनेवाले थे, वेद-मन्त्रोंके उतने अर्थ होने लगे और अभीतक हो रहे हैं। ऐसी हालतमें साधारण जनता क्यों न सन्देहमें पड़े? और, अगर उसकी वेदोंके प्रति श्रद्धा कम हो जाय या वह उदासीन बन जाय, तो इसमें उसका क्या दोष? कई भाइयोंका कथन है कि, हरएकको वेदार्थ करनेकी स्वतंत्रता होनेसे भिन्न-भिन्न विचार जाननेको मिलेंगे; और, इस प्रकार शायद कुछ नयी चीज़ हाथ आ जाय! पर ऐसी स्वतन्त्रता देते हुए भी उसपर अंकुश रखनेकी जरूरत है; अन्यथा क्रियात्मक वेद-प्रचारके लिये वेद-प्रचार करना बहुत ही विकट हो जायगा। इस बातका अनुभव अगर पाठक लेना चाहते हों, तो वे उपदेशकों या विद्वानोंसे पूछ सकते हैं। उन प्रचारकोंके सामने प्रायः जनता सवाल उठती रहती है कि, 'आपका अमुक विद्वान् यह अर्थ करता है, अमुक यह और स्वामीजी यह अर्थ करते हैं। अब बताइये, हम किसको सत्य समझें?' उपदेशक लोग किसीकी निन्दा तथा किसीकी प्रशंसा करके

ज्यों-त्यों जनताको समझा-बुझाकर अपना पीछा छुड़ानेकी कोशिश करते हैं, पर इसका प्रभाव साधारण जनतापर अच्छा नहीं पड़ता।

उक्त भाष्यकारोंकी कठिनाइयोंको दूर करनेके लिये तथा सर्वसाधारण भाष्यकारोंपर अंकुश रखनेके लिये यह सबसे अच्छा रास्ता है कि, अजमेरकी वेद-प्रचारिणी-सभा वैदिक धर्मावलम्बी (सनातनी तथा आर्यसमाजी) वैदिक विद्वानोंका एक मण्डल स्थापित करे। इस मण्डलको स्थापित करनेके लिये, प्रान्तीय सभाओंका सहयोग लेकर, हरएक प्रान्तके उत्तम वैदिक विद्वानोंको इस मण्डलका सभासद बनावे। यह मण्डल वेदपर प्रकाशित होनेवाले ग्रन्थोंपर देख-रेख रखे और उनकी निष्पक्षपात समालोचना प्रकाशित करे। सारे देशके लेखकोंको इस बातकी सूचना भेज दी जाय कि, जो कोई लेखक वेद-विषयक ग्रन्थ प्रकाशित करना चाहे, वह उस ग्रन्थको प्रकाशित करनेसे पूर्व, सम्मतिके लिये, एक कापी इस मण्डलके पास भेज दे। मण्डलके सभासद उसपर पूर्ण रीतिसे विचार करें; और, इसके बाद, सब मिलकर उसके पक्ष-विपक्षमें वाद-विवादपूर्वक-विचार करें। लेखक इस सभामें हाजिर रहे और वह अपने लेखपर होनेवाले आक्षेप, संशोधन आदिपर विचार करके अपनी सम्मतिको स्थिर करे और फिर विद्वद्-मण्डलकी सूचनाके अनुसार उस ग्रन्थमें आवश्यक परिवर्तन करे। इस प्रकार विद्वन्मण्डलसे प्रसारित हुआ ग्रन्थ जनताके समक्ष रखा जाय। ऐसी दशामें जहाँ उस ग्रन्थका जवाबदार लेखक रहेगा, वहाँ साथ-ही-साथ विद्वन्मण्डल भी उसका, उतने ही अंशमें, जवाबदार होगा। मैं समझता हूँ कि, इस प्रकारके संगठनसे वैदिक धर्मका अव्याहत गतिसे प्रचार हो सकेगा और जनतामें वेदोंके प्रति अगाध श्रद्धा उत्पन्न की जा सकेगी। इसके अतिरिक्त इस मण्डलके निम्नलिखित कार्य भी होना चाहिये—

(क) आजतक जितने वैदिक ग्रन्थ उपलब्ध हो चुके हैं, उनका अध्ययन करके उनके विभिन्न अर्थोंको प्रकाशित करे।

(ख) वैदिक धर्मपर हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज करके उन्हें प्रकाशित करे।

(ग) महर्षि दयानन्द द्वारा निर्मित सभी ग्रन्थोंका अनुशीलन करके होनेवाले आक्षेपोंका निराकरण करे अथवा जो मण्डलका तद्विषयक निर्णय हो, उसे प्रकाशित करे।

(घ) वेद-विषयक तमाम आक्षेपोंके निराकरणकी जवाबदारी इस मण्डलपर रहे। जिस किसी उपदेशक या विद्वान्‌को वैदिक धर्मपर शंका हो, वह इस मण्डल द्वारा हल कर ले।

इस प्रकारके अन्य भी वैदिक धर्म-विषयक कार्य करना इस मण्डलका मुख्य उद्देश्य रहेगा। अगर यह मण्डल स्थापित हो जाय, तो वैदिक धर्मावलम्बियोंमें जो मतमतान्तर फैल रहे हैं, वे सर्वथा दूर किये जा सकेंगे। मैं आशा करता हूँ कि, मेरे इन विचारोंसे सम्मत विद्वान् पाठक अवश्य ही इस विषयका आन्दोलन करके, विद्वन्मण्डल स्थापित करनेके लिये, प्रान्तीय प्रतिनिधि सभाओं तथा वेद-प्रचारिणी-सभा (अजमेर) को बाधित करेंगे और इस प्रकार वैदिक धर्मके विशेष-रूपसे यशोभागी बनेंगे।

अन्तमें इस छोटे-से लेखको समाप्त करनेसे पूर्व वेदार्थ करनेवाले लेखकोंको मैं वेदार्थ करनेकी विधिपर थोड़ा-सा अपना अनुभव बतलाना चाहता हूँ। आशा है, गुण-ग्राही पाठकोंको इससे थोड़ा-बहुत लाभ पहुँचेगा।

चूँकि इस समय वेदोंके अर्थ हमें अज्ञात हो रहे हैं और उनकी हमें नये सिरेसे खोज करनी है; अतः सबसे पूर्व हमें यह कल्पना कर लेनी चाहिये कि, हमारा वेद-विषयक कोई भी खास सिद्धान्त नहीं है। उदाहरणके लिये गो शब्द लेते हैं। वेदमें गोसे किस-किस चीजका ग्रहण हुआ है, इस बातका हमें पता लेना है। ऐसी दशामें सबसे पहले हमें चाहिये कि, चारों वेदोंमेंसे जितने भी गो-विषयक प्रकरण तथा मंत्र मिलते हैं, उनका एक स्थानपर संग्रह कर लें। तदन्तर इसी प्रकार ब्राह्मण, उपनिषद् आदि मान्य आर्ष ग्रन्थोंसे भी संग्रह कर लें। फिर निरुक्तके उद्धरणोंको संग्रह करें। इस

प्रकार गो-विषयक तमाम सामग्री, जो कि उपलब्ध हो सकती है, हमारे पास एक स्थानपर जमा हो गयी। अब बिना किसी भाष्यकी सहायताके उक्त सामग्रीमें उपलब्ध मंत्रों या वाक्योंके यथामति अर्थ कर डालें। यह कार्य समाप्त हो जानेपर उन मंत्रों या वाक्योंका समन्वय करें अर्थात् प्रत्येक मंत्र या वाक्यमें गौका जो अभिप्राय प्रकट होता हो। तदनुसार उन वाक्यों और मंत्रोंको शीर्षक दे दें। अर्थ करते हुए यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि, गो शब्दको वैसे-का-वैसा ही रहने दिया जाय, क्योंकि उसके अर्थोंका तो हमें निर्णय करना है। शीर्षक देनेका ढंग यह है कि, उस उस मंत्र या उस उस वाक्यमें गौके जो गुण वर्णित हों, उनमेंसे जो गौका खास गुण प्रकट होता हो, उस गुणवाली गौ—ऐसा उसका शीर्षक देना चाहिये। इस प्रकार जब सब मंत्रों और वाक्योंको शीर्षक दे दिये जायँ, तब समान शीर्षकवाले मंत्रों और वाक्योंको एक स्थानपर इकट्ठा कर दें। अब हमारे पास अमुक निश्चित विभाग बन जाँयगे। प्रत्येक विभागमें ऐसे मंत्र और वाक्य होंगे, जो प्रत्येक एक-दूसरेके भावको पुष्ट कर रहा होगा। अब हमारे पास गो-विषयक एक ऐसा प्रामाणिक कोष तैयार हो गया, जिसके आधारपर हम निःशंक होकर कह सकते है कि, वेदोंमें गौ शब्द इतने अर्थोंमें आया है और उन अर्थोंवाले ये-ये मंत्र हैं। इस प्रकार करनेसे गौ शब्दवाले तमाम मंत्रोंके अर्थ भी निश्चित हो गये और गो-शब्द-विषयक प्रामाणिक निर्णय भी मिल गया। अब हम अपने इस निर्णयको पूज्य विद्वानोंके सामने सम्मत्यर्थ पेश करें; ताकि कुछ नवीन जानने योग्य हो, उससे हमारे ग्रन्थमें अपूर्णता अगर रह गयी हो; तो वह दूर हो जाय। हमें चाहिये कि, हम मंत्रोंके साथ भिन्न-भिन्न आचार्योंके भाष्योंको भी उद्धृत करें; ताकि तुलनात्मक दृष्टिसे भी विद्वान् जनता हमारे ग्रन्थकी सत्यताका निर्णय कर सके और हमारे कार्यकी निष्पक्षपातताका भी अनुभव कर सके। मैं समझता हूँ, वेदार्थ-जिज्ञासुके लिये यह उक्त विधि काफी सहायक हो सकेगी। अगर इस प्रकार तमाम वेदोंके विवादास्पद विषयों तथा शब्दोंका निर्णय किया जाय तो मैं समझता हूँ कि वेद-विषयक जिज्ञासुओंका बड़ा ही उपकार होगा। मैं यह मानता हूँ कि, इस विधिके लिये समयकी अधिक आवश्यकता है; और, तदनन्तर इसे प्रकाशित करनेके लिये भी बहुत नहीं, तो काफी धनकी आवश्यकता है। पर यह सब हो सकता है। उक्त विधिका सारांश इस प्रकार है—

(क) किसी भी वैदिक शब्दको लेकर चारों वेदोंके तद्विषयक प्रकरण तथा अलग-अलग मन्त्रोंको एक स्थानपर जमा कीजिये और इस प्रकार अन्य उपलब्ध आर्ष ग्रन्थोंमेंसे तद्विषयक सामग्री एक स्थानपर उपस्थित कीजिये।

(ख) बिना किसी भाष्यकी सहायताके इन मन्त्रों या मन्त्र-खण्डोंको यथामति अर्थ कीजिये और बादमें आचार्योंके भाष्योंके अर्थ नीचे दीजिये। अर्थ करते हुए आप जिस शब्दकी खोज करना चाहते हैं, उसका अर्थ मत कीजिये, उसे वैसाका-वैसा ही रहने दीजिये।

(ग) गुण या अन्य वर्णनके अनुसार सब मन्त्रों या मन्त्र-खण्डोंको शीर्षक दीजिये।

(घ) शीर्षकोंके अनुसार मन्त्रोंका समन्वय कीजिये। एक ही शीर्षकमें भी जिस मन्त्रका अर्थ या भाव जिस मन्त्रसे अधिक मिलता हो, उन्हें पास-पास रखिये।

इतना करनेपर उस शब्दका एक निश्चित निर्णय देनेके योग्य आप हो जायँगे। आशा है, पाठक इससे लाभ उठायँगे तथा आवश्यक सूचना हो, तो उससे मुझे सूचित कर अनुगृहीत करेंगे।

अन्तमें मैं पाठकोंसे यह निवेदन करना चाहता हूँ कि इस छोटे-से लेखमें मैंने जो-जो बातें लिखी हैं, उनपर विशेष विचार करके वेद-प्रचारिणी-सभा तथा प्रतिनिधि-सभाओंको बाधित करवायँ कि, वे मान्य विद्वानोंका संगठन करें और उसके द्वारा अव्याहत गतिसे वैदिक धर्मका प्रचार करावें। और, इसके साथ ही, सब लेखकोंके लेखोंको ध्यानसे पढ़ें तथा "सारं ततो ग्राह्यमपास्य फल्गु, हंसैर्यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्" की नीतिका अवलम्बन करके अपनी उदारताका परिचय दें।

विचार-वाटिका

१—मैत्रेयी और कात्यायनी

पं० सूर्यनारायण व्यास

कात्यायनी और मैत्रेयी दोनोंमें घनिष्ठता थी।

कात्यायनी उपनिषद्-प्रसिद्ध ब्रह्मविद् याज्ञवल्क्यकी धर्मपत्नी थी। जिस समयकी घनिष्ठताका हम यहाँ वर्णन कर रहे हैं उस समय मैत्रेयी कुमारी थी। मैत्रेयीके पिता मैत्रेय बड़े विद्वान् थे। बालक-अवस्थामें मैत्रेयीको पिताकी ज्ञान-चर्चा और वेद-चर्चासे अनुराग हो गया था। इसलिये मैत्रेयीमें अनेक गुण प्रवेश कर गये थे। रातदिन विद्या-व्यसन बने रहनेसे वह बहुश्रुत हो गयी थी।

एक बार मैत्रेयी, कात्यायनीके घर पहुँची। इधर-उधरकी बातचीत होनेके बाद कात्यायनी एकदम उदासीन हो गयी। मैत्रेयी-जैसी विदुषी महिलासे यह बात छिपी न रह सकी। मैत्रेयीने पूछा—"बहन! अभी जैसी आनन्द मुद्रासे तुम बोलती रही, वह एकदम विषादमें क्यों पलट गयी? अवश्य ही कटु स्मरणका जागरण तुम्हें हो गया है। इतनी उदासीनता क्यों आ गयी? मुझसे छिपा या नहीं!"

कात्यायनीने कहा—"नहीं बहन, छिपाऊँगी नहीं; न मुझे कोई पूर्व स्मृति ही जागृत हुई है। इस उदासीनताका कारण तुम्हीं हो। तुम्हारा वय अब इतना हो गया है कि, मुझे तुम्हारा वियोग सहन करनेका अवसर आयेगा। तुम्हारे विवाहके बाद मेरा क्या होगा? पहले ही मैं अपनी बहनोंके वियोगसे दुःखित हूँ। बड़ी कठिनाईके साथ इतने दिनोंके बाद उस विरह-वेदनाको भूल रही हूँ। पर बहन! ज्योंही तुम्हारे विवाहकी कल्पना मेरे दिलमें उठती है, त्योंही मैं बेचैन हो जाती हूँ। मैत्रेयी! तुम्हारे वियोगको सहन करनेकी शक्ति अब मुझमें नहीं रही है। मेरा जीवन दुःख हो जायगा, यह सच समझो!"

मैत्रेयी—"अरे बहन! इन व्यर्थकी बातोंसे क्यों उद्विग्न हो रही हो? तुम यह विचार ही मत करो कि, मुझसे वियोग होगा? हम कभी दूर नहीं रह सकेंगी।"

मैत्रेयी आत्मज्ञानमें लीन रहा करती थी, इसलिये विवाहसे इतना अनुराग नहीं था; और, यदि विवाह हो, तो भी वह मनमें प्रण कर चुकी थी कि, आत्मज्ञानी विद्वान् याज्ञवल्क्यके साथ ही होगा। मैत्रेयीकी बात पूरी हुई भी नहीं थी कि, कात्यायनी बीचमें पूछ बैठी—"बहन! यह क्या कह रही हो? क्या सच ही तुम दूर न जाओगी? यदि तुम निकट ही रही, तो रोज-रोज मिलती रहेंगी। पर तुम्हारा विवाह निकट होगा, इसकी आशा कैसे की जाय?"

मैत्रेयी—"तो क्या तुम यह समझती हो कि, मेरा विवाह होगा ही?"

कात्यायनी—"क्या कुमारी ही रहना है? यह विचार तो तुम्हारा विचित्र ही है! तुम-जैसी विदुषीसे विवाह करनेको कई लोग उत्सुक हैं!"

मैत्रेयी—"परन्तु, मैं यह धारणा न होने दूँ, तो?"

कात्यायनी—"तब क्या तुम ब्रह्मचारिणी रहोगी? नहीं, बहन! यह मुझे पसन्द नहीं। मेरा तो मत है कि, गृह-जीवन ही स्त्रियोंके लिये सच्चा कार्य-क्षेत्र है।

"सांसारिक व्यवहार कर्त्तव्यमें कई तरहके भेद-भाव हैं; पर आत्मामें ऐसा अन्तर नहीं है, 'एक परमात्मा सभीमें हैं'—यह मैंने सुना है। इसलिये आत्मज्ञान एवं मोक्षके लिये स्त्री और पुरुष दोनोंको प्रयत्नशील रहना समान कर्त्तव्य है। बहन! तुम्हारा यह कहना कि, 'हम दूर नहीं रहेंगी', मुझे बड़ा मार्मिक मालूम हुआ है। हृदयकी एकता दूरीपर भी रहती है। चाहे शरीर भिन्न रहे, हृदय तो निकट ही रहेगा। तुम्हारे एक 'वाक्य'में कितना

गाम्भीर्य है। बहन! मैं तो बड़ी अभागी हूँ, मुझे सुविधा और अनुकूलता (क्योंकि स्वयं पति ही ज्ञानी हैं) रहते हुए भी मैं कुछ न कर-धर सकी हूँ। ऊँचे और उपयोगी गम्भीर विषयोंको जाननेके लिये स्त्रियाँ श्रम नहीं करतीं, यह बड़ी भूल है। बहन! मैं तो बड़ी लज्जित हूँ!"

मैत्रेयी—"नहीं, लज्जित क्यों होती हो? तुम तो बड़ी भाग्यवती हो, बड़े पवित्र जन्मके पुण्य प्रभावसे, तुमको ऐसे पति मिले हैं। मुझे तो यह आश्चर्य होता है कि, ऊँची श्रेणीकी स्त्रियाँ अपने जीवनके संगीकी तरह धनिक या ऐश-आरामवाले पति कैसे पसन्द करती हैं! अपने ज्ञानकी वृद्धिके लिये मददगार तुम्हारे पति जैसे विद्वान्, विचारशील और पवित्र पुरुष क्यों नहीं चाहती हैं?"

इस तरह चर्चा चलती रही थी कि, ऋषि याज्ञवल्क्यके शिष्यने अन्दर आकर कात्यायनीसे सादर निवेदन किया—"महर्षि आपको स्मरण करते हैं। किसी कार्यमें आपके सहयोगकी आवश्यकता है।"

मैत्रेयी खड़ी हो गयी और बोली—"बहन! मैं भी चलती हूँ, फिर आऊँगी!"

कात्यायनीने विदा देते हुए कहा—"अच्छा बहन! जल्दी ही आना। आजकी तुम्हारी बातोंने मेरे अन्तश्चक्षु खोल दिये हैं। अन्धकारका एक पर्दा ही उठ गया है। देखो, जल्दी ही आना!"

× × ×

दोनों विदा हुईं!

× × ×

आजकी बातोंका प्रभाव कात्यायनीके हृदयपर बहुत हुआ। गृहकार्य करते समय भी वह इसी बातको सोचने लगी। अबसे वह अपने पतिके साथ ब्रह्मज्ञान, आत्मज्ञानकी चर्चामें अधिक समय बिताने लगी। *

२—गंगा-जलका वैज्ञानिक रहस्य

पं० जगन्नाथ मिश्र गौड़ "कमल"

युग-युगसे हिन्दू यह मानते आये हैं कि, गंगाकी पवित्रता अतुलनीय है और इसी विश्वासको रखते हुए उसके प्रवाहमें अनेक शवों तथा अन्य अग्राह्य पदार्थोंको नित्य बहते हुए देखकर भी उसके जलको हम खान-पानके काममें सहर्ष लाते हैं। इस विश्वासका कारण बतलाते हुए एक अँग्रेजीके विद्वान्ने लिखा है—"The circumstances which leads to confide in the purity of the Ganges is not only the facts contained in certain religious interpretations but also the particulars from science connected with it." कहनेका तात्पर्य यह है कि, गंगाकी पवित्रताको माननेका कारण केवल धार्मिक भाव ही नहीं; पर उसका विज्ञानसे भी सम्बन्ध है।

गंगा हिमालयसे निकली है और उसकी उत्पत्ति वाष्प द्वारा आकाशमें हुई है। वाष्प तुषारका रूप धारण कर हिमालयके शिखरपर जमता है और फिर वहाँसे पिघलकर गंगोत्तरीके झरनेसे बहता है। अन्य नदियोंकी उत्पत्ति मेघके जलसे हुई है।

गंगाकी उत्पत्तिका कारण अन्य नदियोंसे विभिन्न है। यों तो सभी नदियोंमें पूर्ण प्राकृतिक सौन्दर्य विद्यमान है, जिसपर मुग्ध होकर हम कहनेको तैयार हैं कि, यदि वे ईश्वर नहीं हैं, तो मानव-हृदयपर ईश्वरकी स्मृति अंकित करनेवाली देवी अवश्य है। नदियोंके द्वारा हमारा भरण-पोषण उसी प्रकार होता है, जिस प्रकार वात्सल्य-द्वारा जननी द्वारा बालकका। जिस समय अवर्षा वृष्टिके कारण देशमें कुहराम मच जाता है, सारी फसलें मारी जाती हैं, अकालका भय होता है, उस समय अनेक प्रकारसे नदियाँ उपजमें हमारी सहायता करती हैं। शुद्ध शीतल और स्वस्थ

* बृहदारण्यक उपनिषद्की एक कथा।

रुवायी वायुके लिये नदीका किनारा निःसन्देह उचित स्थान है। नदीके किनारे पहुँचते ही प्राकृतिक मातृवात्सल्यके अनन्त प्रवाहका दर्शन होता है। ये भाव तो सामान्य नदियोंके विषयमें हैं। गंगाकी महत्ता तो इससे कहीं बढ़ी-चढ़ी है।

इतिहासोंसे पता चलता है कि, मुग़ल-सम्राट् अकबर गंगा-जल पीते थे। वे इस जलकी खूबियोंसे पूर्ण-रूपसे परिचित हो चुके थे और कद्र करनेके पक्षमें थे।

रसायन-विज्ञोंने भी परीक्षाके बाद निर्णय किया है कि, गंगा-जलकी पाचन-शक्ति अपार है। आगराके सरकारी वैज्ञानिक विभागके कर्मचारी मिस्टर हेनेकेने बनारसमें आकर गंगा-जलकी परीक्षा की थी। उस समय, जान पड़ता है, बनारसमें हैजेकी बीमारी फैल रही थी; क्योंकि जिस स्थानसे उन्होंने परीक्षार्थ जल लिया था। उस स्थानके जलमें हैजेके अनेक कीड़े, थोड़े समय पहले, शहरके पनालोंसे बहकर गंगामें आये थे। छः घण्टे परीक्षा करनेके बाद देखा गया कि, गंगा-जल उन कीड़ोंके लिये घातक हुआ; क्योंकि उतना देरमें सारे कीड़े एक-एक कर मर गये। दोबारा उन्होंने स्वयं हैजेके कीड़ोंको गंगा-जलमें छोड़कर देखा कि, वे कीड़े भी धीरे-धीरे मर गये; पर जब उन कीड़ोंको साधारण जलमें रखा गया, तब उनकी संख्या बढ़ती नज़र आयी।

अमेरिकाके स्वनाम-धन्य लेखक मार्कटामनके लेखानुसार यह बात प्रकट होती है कि, आगरामें भी कभी गंगा-जलकी परीक्षा की गयी थी, जिससे यह प्रमाणित हुआ था कि, यदि किसी गन्दे स्थानसे भी गंगा-जल लाया जाय, तो भी वह अन्य नदियोंके जलसे, वैज्ञानिक दृष्टिके अनुसार, उत्तम तथा विकार-नाशक होगा।

गंगा-जल यदि किसी शीशेमें भरकर रख दिया जाय, तो भी बहुत दिनोंतक उसके गुण नष्ट नहीं हो सकते; किन्तु अन्य नदियोंके जलके साथ ऐसी बात नहीं है। यह प्रभाव गंगा-जलका प्राकृतिक शक्तिका है। अनेक गन्दी नालें तथा हजारों प्रकारकी बीमारियोंसे भरी हुई मनुष्योंकी लाशें गंगाकी धारामें नित्य बहती हैं; पर उस जलमें किसी तरहका दूषण नहीं पैदा होता।

इसमें सन्देह नहीं कि, यह युग विज्ञानका है। इस युगमें वैज्ञानिकों द्वारा संसारके सम्मुख रखे गये आविष्कारोंको देखकर परम आश्चर्य होता है और प्रमाणित होता है कि, इन वैज्ञानिकोंकी खोज बहुत दूरतक सफल हो रही है। यह सब होते हुए भी हम यह कहनेको तैयार हैं कि, ये वैज्ञानिक अभी उतने ऊँचे अनुभवपर नहीं पहुँचे हैं, जो अनुभव हमारे पुरातनकालके ऋषि-महर्षियोंको प्राप्त था। उन ऋषि-महर्षियोंने आधुनिक वैज्ञानिकोंसे कहीं अधिक गंगोदकके गुणोंकी विवेचना की है।

आज भी कार्तिक मासकी पूर्णिमाको गंगा-स्नान करना परम पुण्य-प्रद माना जाता है। इसमें भी निगूढ़ वैज्ञानिक रहस्य अन्तर्हित है। सुश्रुत-संहिताके तन्त्र अध्यायमें लिखा है—

"शरद-कालके चन्द्रमाकी किरणोंसे प्रक्षालित सूर्य्योदयसे विष-हीन हुआ जल उस समयमें परम हितकारी है।"

कार्तिक मास शरदऋतुका मुख्य महीना है और पूर्णिमाको चन्द्रमाकी किरणें पूर्णता प्राप्त कर लेती हैं। अतएव कार्तिक-पूर्णिमाको उनका प्रभाव जलमें पूर्ण व्याप्त रहता है। इसी रहस्यको ध्यानमें रखकर हमारे पूर्वजोंने कार्तिक-पूर्णिमाके स्नानको इतनी महत्ता दी है।

गंगा-जलके विषयमें इसी प्रकार जितनी बातें कही जाती हैं, वे प्रायः सभी वैज्ञानिक दृष्टिसे यथार्थ हैं और सबोंका विज्ञानसे गहरा सम्बन्ध है।

३—बटेश्वरनाथ

पं० शम्भुप्रसाद द्विवेदी

भागलपुरके कहलगाँव नामक स्थानसे ६ मील उत्तर, गंगाके किनारे, बटेश्वरनाथ नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान है। वहाँकी स्थान-रम्यता और मूर्त्तियोंका भग्नावशेष अब भी

कहते हैं कि, बौद्धकालमें यह एक प्रधान स्थान रहा होगा। यहाँ बाबा बटेश्वरनाथकी प्रतिमा, पार्वतीकी मूर्ति, चौरासी मुनियोंका आश्रम तथा गुफा और अन्य देव-देवियोंकी मूर्तियाँ दर्शनीय हैं। चौरासी मुनियोंकी मूर्तियाँ, पहाड़ीके अर्ध भाग-पर, पत्थरमें खुदी हैं, जिन्हें हालमें वहींके कारखानेके साहबने खुदवाकर बाहर किया है। यदि ऐतिहासिक दृष्टिकोणसे देखा जाय, तो यह बौद्धकालीन मूर्तियाँ प्रतीत होती हैं। यहाँ अनेक समयोंकी मूर्तियोंके भग्नावशेष भी पाये जाते हैं। मन्दिरके पार्श्वमें एक घण्टा है, जो नेपाली है। उसमें पर्वतीय भाषामें कुछ लिखा है। सुरम्य स्थान एवं प्रकृति देवीका क्रीड़ा-स्थल होनेके कारण यहाँ घण्टों ठहरनेपर भी मन नहीं अघाता। यहाँका मनोहर दृश्य देखकर प्रतीत होता है कि, यह कभी ऋषियोंकी तपोभूमि रही होगी।

मिस्टर स्मिथके इतिहासमें जो विक्रम-शिला-विश्वविद्यालयका उल्लेख है, उसका स्थान सम्भवतः यही है। यहाँ प्रचलित किंवदन्ती भी है कि, 'यहाँ ९२ बाजार और ९३ गलियाँ थीं, जिनका सम्बन्ध साहबगंजके तेलियागढ़से था।' यहाँ अब भी दो-एक संन्यासी रहते हैं। कई तो कई वर्षोंसे हैं। यों तो मैं कई बार बटेश्वरनाथ गया हूँ; पर इस बार जो आनन्द आया, वह जीवनपर्य्यन्त स्मरण रहेगा।

यहाँ, करीब एक वर्ष हुआ, एक सन्यासी आये हैं। औरोंके साथ एक दिन मैं भी सन्ध्या-वेलामें आपका दर्शन करने पहुँचा। आप हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी और बँगलाके पूर्ण विद्वान् हैं। आपकी बोल-चालसे पता लगाना मुश्किल है कि, आप बँगाली हैं अथवा पश्चिमी; किन्तु आप अपनेको मैथिल ब्राह्मण कहते हैं। आपकी बोलीमें बँगलाकी मिठास आती है। इससे कभी-कभी आपके बिहारी होनेमें सन्देह हो जाता है।

आपको गीताका पूर्ण अभ्यास है। यों तो आप बड़े अल्पाहारी हैं और दुग्ध, फलपर निर्भर रहते हैं; पर सुना है, आप ५ मनतक भी खा सकते हैं! ५ सेरतक खाते तो मैंने देखा। आप पूर्ण योगी हैं और दिनरात भगवद्-भजन तथा योगाभ्यासमें व्यतीत करते हैं। व्यर्थकी बातें कभी नहीं करते। जब कभी कुछ कहते हैं, तब सारगर्भित पूर्ण वाक्य ही। आपका उपदेश बड़ा सरल एवं मनोहर होता है। एक साधु, जो प्रायः नावपर गंगामें भ्रमण करते हैं, उस दिन आये हुए थे। जूनका महीना था; सन्ध्याका समय। प्रस्ताव गंगाके किनारे बैठनेका हुआ। फिर क्या था, हमलोगोंने दौड़ लगायी और बूढ़े बाबाके समीपवाले एक बाबासे कम्बलसे माँगकर फौरन बिछाया। आप उस स्थानसे आगे-आगे चले और पीछे-पीछे ग्रामीणोंका झुण्ड चला। उस समय आप पहाड़ीसे नीचे उतरते हुए बड़े शोभायमान हो रहे थे। यदि मैं कवि रहता, तो सचमुच उस समय एक बहुत सुन्दर कविता कर डालता! वहाँ दो पत्थरोंका संयोग है। एक कुछ ऊँचा और दूसरा कुछ नीचा है। ऊँचेपर ऋषियोंका आसन जमा और नीचेवालेपर शिष्योंका। सूर्यदेव, दिनके परिश्रमसे क्लान्त हो, धीरे-धीरे अपने आश्रमको जा रहे थे। उनसे निकली ताम्र किरणोंने उनके मुखको इतना सुशोभित किया, मानों द्वितीय सूर्य बैठे हों! दर्शन-शास्त्रकी चर्चा चली। मुझे मालूम हुआ कि मैं विक्रम-शिला-विश्वविद्यालयमें भर्ती होकर गुरुसे शिक्षा सीख रहा हूँ! वह दिन धन्य रहा होगा जब यहाँ अनेक ऋषि-सन्तानें गंगा-तटपर ईश्वर-विषयक चर्चामें मग्न रहती होंगी। क्या फिर भी वह दिन आवेगा?

४—चिन्तन

एक भक्त

मनुष्यका मन सचमुच महासागर है, जिसमें ढेर-के-ढेर भाव-रूपी रत्न पड़े हैं। संसारमें अधिकांश मनुष्य इन रत्नोंके परिज्ञानसे अनभिज्ञ हैं। कुछ लोग तो इन्हें जानते हुए भी इनसे लाभ उठानेकी बात भी नहीं सोचते। ऐसे मनुष्य भी विरले ही हैं, जो इस रत्न-महासागरमें डुबकियाँ लगाकर ऐसे रत्नोंको बाहर निकालते और इनसे अपना तथा संसारका कल्याण करते हैं। इस महासागरमें दुर्भावना-रूपी [illegible]

भयानक और निरर्थक जीव भी रहते हैं, जिनसे सिवा हानिके कुछ लाभ नहीं होता। पर जानदार गोताखोरोंको इनके भले-बुरेकी परख होती है और वे रत्नको ही संसारके सामने ले आते हैं, चाहे इस कार्यमें उन्हें कितना ही कष्ट और कितनी ही यातनाएँ क्यों न सहनी पड़ें। इस तपस्यामें जो खरे उतरते हैं, वास्तवमें उन्हींकी ऋषि-संज्ञा है। भारतेतर देशोंमें लुकमान, टालस्टाय, सुकरात, बेकन आदि ऐसे ही ऋषि हो गये हैं, जिनके विचार आज, सहस्रमुखी जाह्नवी-धाराओंकी भाँति, संसारका कल्याण कर रहे हैं। जगत्की सभी प्रचलित और जीवित भाषाओंमें इनके ग्रन्थ-रत्नोंके अनुवाद हो गये हैं।

सौभाग्यकी बात है कि, इन पंक्तियोंके लेखकको भी उपर्युक्त रत्नोंका एक संग्रह, राष्ट्रभाषा हिन्दीमें देखनेको आया है। यद्यपि हम किसी भी पुस्तककी समालोचना नहीं लिखते, क्योंकि न तो हमें वैसी योग्यता ही है और न अभिरुचि ही; पर इस ग्रन्थकी कुछ ऐसी खूबियाँ हमारी नजरोंमें आयीं, जिनसे हिन्दी-भाषा-भाषी जनताको भी इससे कुछ परिचित करा देनेका लोभ हम संवरण नहीं कर सके।

उक्त संग्रहका नाम है "चिन्तन"! पटनाकी वर्कान कम्पनीने इसे प्रकाशित किया है। मूल्य तो पुस्तकपर छपा नहीं है; पर सुनते हैं, लागत मात्र बारह आनेमें यह पुस्तक मिल सकती है।

इसके रचयिता हैं पटना कालेजियट स्कूलके हेडमास्टर रायसाहब बेचूनारायण। इस पुस्तकके पढ़नेसे हम तो इस तथ्यपर पहुँच सके हैं कि, आप मननशील मनीषी हैं—आधुनिक युगके ऋषि हैं। इस पुस्तकके पढ़नेवाले कदाचित् सभी हमारी रायसे सहमत होंगे! हाँ, रुचि-विभिन्नताकी बात दूसरी है।

रायसाहब बेचूनारायण बड़े ही भावुक और सत्त्वगुण-विशिष्ट पुरुष हैं। हमें यद्यपि इन महाशयसे साक्षात्कार करनेका सौभाग्य अभीतक प्राप्त नहीं हुआ है; तथापि इनके 'चिन्तनों"से ही हमारी ऐसी धारणा हुई है। आपने सन् १९२९ ई०में पूरे सालभर लौकिक और पारलौकिक दोनों विषयोंपर अपने विचार प्रकट किये हैं, जो आबाल-वृद्ध-वनिता—सबके लिये समान रूपसे उपयोगी हैं। ये विचार-चिन्तन कैसे हैं, यह उक्त पुस्तकके लेखकके ही शब्दोंमें सुनिये—"मैं इन चिन्तनोंसे अति ही उपकृत हुआ हूँ। असहाय जीवनपथमें गिरते हुए, अन्धेरेमें टटोलते हुए, इन चिन्तनोंने मुझे अनेक बार सहारा पहुँचाया है, उठाया है और आलोक प्रदान किया है। ××× इन शुभ चिन्तनोंने मुझे बहुत कुछ दिया है।" अतएव ये चिन्तन एक पवित्र मानव हृदयके स्वाभाविक उद्गार, असन्दिग्ध सत्य और 'शिवं सुन्दरम्' हैं। लेखकने 'स्वान्तः सुखाय' ही ये विचार प्रकट किये हैं।

अच्छा, यहाँ हम इन रत्नोंके कुछ नमूने पेश करते हैं। चतुर जौहरी स्वयं इनको परखें।

ता० १७-९-३१ में लेखकने यह चिन्तन प्रकट किया है—"जीवन सार्थक, जीवन यथार्थ, जीवन सुन्दर, जीवन पवित्र तथा जीवन बलिष्ठ और प्रभावशाली बनानेके लिये केवल धर्मबलकी आवश्यकता है। केवल धर्मबल ही हमें एक असीम और सच्ची शक्ति देता है, जिसके प्रभावसे हमारा जीवन सांसारिक बाधा-विघ्नोंको अतिक्रम कर पवित्र होता है और मानव-समाजको पवित्रताकी राह दिखाता है।"

आशा है, लेखकके इस विचारसे प्रायः प्रत्येक धर्मानुरागी सहमत होगा और धर्मको नेस्तनाबूद कर देशोद्धारका बीड़ा उठानेवाले पुरुष-पुङ्गवोंकी आँखें खुल जायँगी।

ता० ४-४-१९२९ के विचारका मुलाहिजा कीजिये—"वही ज्ञान सत्य और यथार्थ है, जिसके द्वारा हम जान सकते हैं कि, हम क्या हैं, हम कहाँपर हैं और भगवान्‌के साथ हमारा सम्बन्ध क्या है; क्योंकि यही भाव हमें भगवान्‌को उपलब्ध करनेमें सहायता पहुँचाता है।" (पृ० ४८)

ता० ६-४-२९ का विचार—

"परमेश्वरकी प्रेम-वारिकी धारा निरन्तर बह रही है। हे मानव, इस वारिके स्रोतमें अपनेको छोड़ दो; क्योंकि इसी स्रोतमें तुम्हारी सारी मलिनता शुद्ध हो जायगी, तुम्हारा शुष्क प्राण शीतल हो जायगा और तुम्हारे अन्तरमें सत्य प्रेम विकसित हो सारे संसारको प्रेममय करेगा।"

(पृ० ४८)

हमारी रायमें ज्ञान और भक्तिकी सत्य-सहज मीमांसा इससे बढ़कर और क्या हो सकती है ?

लेखकका अध्ययन भी बहुत विस्तृत और गहरा है; इस लिये इनके विचार अनेक स्थलोंपर प्राचीन मनीषियोंके विचारसे सफलता-पूर्वक टकरा जाते हैं। कुछ उदाहरण लीजिये—

"......जिधर भगवन्मूर्ति नहीं, जहाँपर हम भगवत्-प्रेम नहीं दर्शन करते, वहाँ सभी अन्धेरा और दुःखसे भरा हुआ है।" (२४-४-२९, पृ० ६७)

यह विचार संस्कृतके इस श्लोकसे—

"हरिरेव जगच्चक्षुः हरिरेव जगत्प्रभुः।
तम आसीद् विना तेन जगद्व्याप्तो यतः प्रभुः॥"

वा—

"विपद्विस्मरणं विष्णोः।"

से मिल जाता है।

"यदि तुम स्वर्ग-राज्यका सुख अनुभव करना चाहते हो और परमात्माके निकट रहना चाहते हो, तो अनुताप करो।..........क्योंकि अनुताप तुम्हारे पापोंको दग्ध कर दूर करेगा।" (१९-४-२९, पृ० ६९)

क्या इस विचारमें मुहम्मद साहबके 'तोबः' करनेका भाव स्पष्टरूपसे नहीं पाया जाता है ?

"तुम स्वर्ग-राज्यमें वास करने योग्य तभी होगे, जब तुम सम्पूर्ण रूपसे, दीन-हीन भावसे, अपनेको परमात्माके चरणोंमें समर्पित कर दोगे.........."।

(९-७-२९, पृ० ९९)

इस वाक्यमें ईसाकी अन्तरात्मा झलक रही है।

अधिक क्या, स्थालीपुलाक-न्यायसे हम पुस्तककी महत्ता दिखलानेके लिये इतने ही उदाहरणोंको बहुत समझ सन्तोष करते हैं। उदाहरणोंके चुननेमें भी हमें बड़ी कठिनाई हुई है; क्योंकि सभी वाक्य-रत्न एक-से-एक बढ़कर हैं। पूरी पुस्तकके मननसे ही हमारे कथनकी सत्यता प्रत्यक्ष प्रकट होगी।

लेखकने इन रत्नोंका, रोजनामचेके अनुसार, तारीखवार संग्रह कर दिया है, जिससे यह प्रकट होता है कि, किस तारीखको लेखकने अपना कौन-सा उद्गार प्रकट किया है।

आशा है कि, प्रत्येक हिन्दी-भाषा-भाषी सज्जन लेखकके इस रत्न-संग्रह "चिन्तन"से काम उठानेके लिये [illegible] उपयोग करेंगे।

६—पथिक

पं० भूपेन्द्रनारायण लक्ष्मीनारायण अवस्थी

मैं सृष्टिके किनारे सीधा चला जा रहा हूँ।

मुझे कितनी दूर जाना है, कहाँ जाना है, ज्ञात नहीं। मैं कहाँसे चला हूँ, यह भी याद नहीं।

आसपास जिधर देखता हूँ, अन्धकार और घोर अन्धकार ही दिखाई देता है।

मेरे मार्गमें क्या-क्या वस्तुएँ पड़ी थीं, उनका भी ज्ञान नहीं। केवल ठोकरें खाता हुआ आगे बढ़ता चला जाता हूँ।

मार्गमें मुझे और कितने ही पथिक मिले। उनकी [illegible] थोड़ी बहुत जान-पहचान भी स्वार्थमें परिणत हो जाती।

मुझे कोई सच्चा मार्ग नहीं बताता है। मेरी आगे बढ़नेकी इच्छाको वे हँसीमें उड़ा देते हैं।

इन बाधाओंसे मैं घबराता नहीं। अन्धकारमें प्रकाशकी आशासे आगे ही बढ़ा चला जाता हूँ। मुझे अन्धकार और सन्नाटेके अतिरिक्त आगे कुछ नहीं सूझता। प्रकाशका यानी निशान ही नहीं, यह देख मेरा हृदय मुझमें ही [illegible] जाता है!

मार्गमें अजीब पथिक मिलता है। "आगे बढ़"—इन शब्दोंकी झनकार मेरे कानोंमें आती है; किन्तु मैं पथिक देख न सका। वह कौन? वह भी कहाँ बता सकता! मुँह फेरा; इतनेमें गायब! थोड़ी देर बाद वही आवाज फिर आती, मैं व्याकुलचित्त हो फिर देखता! कुछ समझ न पड़ता, अपने विचारोंमें ही भ्रमित होता। अज्ञात सूत्रोंसे मैं अपने-कोही भूलता हूँ।

"आगे बढ़"—ये दो शब्द मुझे आशा प्रदान करते हैं। मैं किसी अद्भुत प्रेरणाका अनुभव करता हूँ।

"संसार-सागरका किनारा आ गया"—मुझे कोई पीछेसे कहता है। मेरे पीछे कोई आ रहा है; वह कौन है? हा! कुछ हो गया!!

अहा! दस कदम आगे रखते ही प्रकाश दिखायी पड़ता है। सहज दिव्यताका भास होता है। मैं अन्धकारके प्रदेशको पारकर दिव्य प्रदेशमें प्रवेश करता हूँ। सब ओर ओजस्विता तथा सम्पूर्णता और दिव्य प्रभका अनुभव करता हूँ!

६—"षड्यंत्रकी खोज"

साहित्यरत्न प० त्रिवेणीदत्त त्रिपाठी

इस शीर्षकसे एक लेख प० किशोरीदासजी वाजपेयीका ११ मार्चके 'आज' में प्रकाशित हुआ है। इसके पूर्व भी प० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ तथा विद्यावाचस्पति प० शालग्राम शास्त्री साहित्याचार्यके विचार प्रकाशित हो चुके हैं। प्रत्येक लेखकका मत जुदा-जुदा है।

वेदतीर्थजीके मतसे—राजनीतिके छ गुणोंसे बना हुआ यन्त्र ही षड्यंत्र है।

शास्त्रीजीके मतसे—'खट्यन्त्र' चूहेदानीके अनुकृत शब्द 'खट्यन्त्र' का विकृत रूप है। किन्तु, वाजपेयीजीको इनमें एक भी साम्य नहीं। आप छ अन्तः शत्रुओंकी कल्पना करते हैं। किन्तु वास्तवमें 'षड्यंत्र' है क्या?

'खट्' और 'यन्त्र' के योगसे बना हुआ अनुकृत 'खट्-यंत्र' शब्दका विकृत रूप 'षड्यंत्र' है। कैसे? 'खट्' अर्थात् सङ्घात-जन्य ध्वनि 'यन्त्र' जाल या मशीन या नीरव शब्द करनेवाली फँसानेकी मशीन है। अब रही अन्तः शत्रुओंकी कल्पना। वह भ्रमपूर्ण है; क्योंकि 'षड् वर्ग' (अन्तः शत्रु) फँसानेके लिये नहीं; अपितु आवश्यकताके लिये बनाये गये हैं। इनमें फँसनेवाला मनुष्य स्वयं दोषी है, इनका बनानेवाला नहीं। रही खट्यंत्रकी बात। वह खासकर इसीलिये बनता है।

अब रही यह बात कि, इसका खट् यन्त्रके अर्थमें प्रयोग कब हुआ? यही मैं भी पूछता हूँ कि, इसका (षड्यन्त्र) अन्तः शत्रुके अर्थमें प्रयोग कब हुआ?

पुस्तक-प्राप्ति

१—प्रसूति-तन्त्र

लेखक, डा० रामदयालु कपूर, प्रो० गुरुकुल, काँगड़ी; प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला, लखनऊ; पृष्ठसंख्या, ३४२; मूल्य २॥); छपाईस साधारण ।

भारतकी जनसंख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है । अभी यहाँ सन्तान-निग्रहकी आवश्यकता है, न कि सन्तान-वृद्धिको । तथापि जन्मके अनन्तर, जो अभागे बच्चे अकालमें ही काल-कवलित हो रहे हैं, उन्हींको अक्षर कर कपूरजोने इसे परिश्रम-पुरस्सर लिखा है । जच्चा-बच्चाका कोई यहाँ साधारण ज्ञान भी नहीं रखता है । रखे भी कैसे, इस विषयकी पुस्तक ही कौन है ? इस कमीको इस पुस्तकने दूर कर दिया है । अँग्रेजी शब्दोंके स्थानपर इसमें हिन्दीके ही प्रचलित शब्द रखे गये हैं, जिससे इसकी सर्व-प्रियता और भी बढ़ गयी है । अँग्रेजोकी शैलीके शब्द केवल फुट-नोटमें ही हैं । शरीर-सम्बन्धी तथा गर्भ-सम्बन्धी सैकड़ो चित्र हैं, जिनसे समझनेमें कुछ भी दिक्कत नहीं रह जाती है । बहुत-सी औषधियाँ और टोटके भी जच्चा-बच्चाके लिये हैं । किताब लिखी गयी है, तो डाक्टरी सिद्धान्तको लेकर; पर आयुर्वेदकी भी रक्षा यथासम्भव अच्छी तरहसे की गयी है । यों तो पुस्तक पुरुषोंके योग्य भी है; पर स्त्रियोंके लिये तो निश्चय ही प्रकृत उपकारिणी है ।

२—दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि

लेखक, बाबू कामताप्रसाद जैन; प्रकाशक, प० मंगलसैन जैन, मंत्री, चम्पावती-जैनपुस्तक-माला, अम्बाला छावनी; पृष्ठसंख्या २९२; मूल्य १); दिगम्बर महात्माओं-के आठ सादे चित्र और एक तिरङ्गा ।

सैकड़ो ग्रन्थोंकी सहायतासे यह पुस्तक तैयार की गयी है । बहुत-से अनमोल हस्तलिखित ग्रन्थोंका भी संग्रह, इसे लिखते समय, विद्वान् लेखकने किया है । दिगम्बरत्व क्या है, एतद्धर्म क्या है, यह इस पुस्तकमें भली भाँति वर्णित है । किस समय किस प्रदेशमें कौनसे दिगम्बर मुनि हुए हैं, इसके ऊपर भी छानबीनकर प्रकाश डाला गया है । विषयोंकी प्रामाणिकताके लिये प्रतिपृष्ठमें विस्तृत पाद-टिप्पणियाँ दी गयी हैं । जैन-धर्मावलम्बियोंके लिये तथा इतिहास-प्रेमियोंके लिये पुस्तक पठनीय है ।

३—भारतीय नागरिक

भारतीय ग्रन्थमालाकी १६ वीं संख्या; लेखक, श्रीयुत भगवानदास केला; प्रकाशक, भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन; पृष्ठसंख्या, ११०; मूल्य ॥); छपाई-सफाई साधारण; सेठ जमनालालजी बजाजका एक सादा चित्र ।

अर्थ-शास्त्रके ऊपर केलाजीकी कलम कितनी शक्ति रखती है, यह हिन्दीके पाठक अच्छी तरह जानते हैं । यह पुस्तक उन्हींकी प्रौढ़ लेखनीकी करामात है । इसमें उन्नीस परिच्छेद हैं तथा उपसंहार-स्वरूप थोड़ेसे पारि-भाषिक शब्द भी दिये गये हैं । पहला है भारतीय नागरिक, जो बड़ी ही छानबीनके साथ लिखा गया है । सरकारी रिपोर्टों-से भी खूब मदद ली गयी है । भारतीय नागरिकोंका स्वत्व खाका इसमें खींचा गया है । बड़ोंके मत भी कहीं-कहीं उद्धृत

किये गये हैं। सरलता इसका प्रधान गुण है। पुस्तक उपादेय है और भाषा साहित्यिक।

४—आर्यों का मूलस्थान

मूल-लेखक, श्रीयुत नारायण भवनराव पावगी; अनुवादक, प० देवीदत्त शुक्ल; प्रकाशक, लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर स्टीम प्रेस, कल्याण, बम्बई; पृष्ठसंख्या ३४८; छपाई-सफाई साधारण; मूल्य नहीं लिखा है !

इतिहासविदोंको पावगीजीकी एकान्त इतिहास-सेवा अविदित नहीं है। इन्होंने ऋग्वेदिक कालसे लेकर आजतकके हिन्दूसाम्राज्यका इतिहास लिखा है। इनकी लेखनीमें एकत्री-करणकी शक्ति गजबकी है। विभिन्न स्थानोंसे यथावत् संग्रह-करनेवाला इनके समान विरला ही मिलेगा। इस पुस्तकमें सोलह अध्याय हैं। अधिकतर वैदिक मंत्रोंके द्वारा ही इसके विषय सिद्ध किये गये हैं। विदेशियोंके भी मत यत्र-तत्र सन्निहित हैं। इसमें भूगर्भ-शास्त्रसम्बन्धी युग, उत्तरी-ध्रुव-सम्बन्धी सिद्धान्त, आर्यावर्त और ईरानकी पौराणिक कथाओंमें सादृश्य, भाषाओंका शब्दभेद, दस्यु-दास—असुर-राक्षस आदिकी जाति, देवताओंकी उत्पत्ति, छ ऋतुओंका पञ्चाङ्ग इत्यादि विषय अच्छी तरहसे वर्णित हैं। अनुवादकने अच्छे ढङ्गसे अनुवाद किया है। भाषा अपेक्षाकृत अच्छी है। मौलिकताकी मुहर अनुवादकने इसपर कहीं भी नहीं लगायी है, केवल मूलका भाषान्तर मात्र कर दिया है। प्रूफकी अशुद्धियाँ तो इतनी हैं कि, कहीं-कहीं अर्थोंका अनर्थतक हो गया है ! शुरूमें तीन पेजोंका शुद्धाशुद्धि पत्र भी जोड़ा हुआ है; पर तो भी अशुद्धियोंका खात्मा नहीं हुआ है ! यही एक सोचनेकी बात है।

५—कैदो

"गंगा-पुस्तकमाला" का १२८ वाँ पुष्प; मूल-लेखक, कङ्कजेण्डर ड्यूमा; अनुवादक, श्रीयुत ऋषभचरण जैन; प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला, लखनऊ; पृष्ठसंख्या, १७६; मूल्य १); छपाई साधारण।

ड्यूमाके उपन्यासमें इतिहासका अंश अधिक रहता है; तथापि वह पठनीय होता है पाठकोंका मन ऊबता नहीं है। सामाजिक बातोंको रोचकताके साथ रखना और उपदेशपर झीनी चादर डाले रहना ही इस लेखककी श्रेष्ठता है। इस उपन्यासको पढ़ते समय पाठकोंको उत्तरोत्तर कौतूहल भी परेशान किये रहता है। अनुवादकने इसपर हिन्दीका गहरा रंग चढ़ा दिया है, जिससे पढ़नेमें और भी मजा मिलता है। उपन्यास-रसिकोंको क्षणभरके लिये यह पुस्तक अवश्य सन्तुष्ट कर देगी।

६—ब्राह्मणकी गौ

लेखक, प० देवशर्मा "अभय" विद्यालङ्कार; प्रकाशक, मल्यायिष्ठाता, गुरुकुल-विश्वविद्यालय, काँगड़ी; पृष्ठसंख्या १०८; छपाई-सफाई उत्तम; मूल्य नहीं लिखा है !

वेद-स्वाध्याय-प्रेमी सज्जनोंके लिये अभयजीने अथर्व-वेदके पञ्चम काण्डके १८ वें ब्रह्मगवी सूक्तके प्रत्येक मंत्रका विशदार्थ इसमें लिखा है। शब्दोंका अर्थ ज्यादातर व्याकरणके अनुसार लगाया गया है। पाद-टिप्पणियोंमें विवाद-ग्रस्त विषयोंपर अच्छा प्रकाश डाला गया है। आठवें मंत्रके ऊपर एक सादा चित्र भी है। संक्षेपमें ब्रह्मगवी शब्दका अर्थ यह है कि, महाबली प्रजाद्रोही राजाके मुकाबिलेमें एक बेचारे गरीब ब्राह्मणकी वाणीका महत्त्व कितना अधिक है। पुस्तक सहज-बोध-गम्य नहीं है। हाँ, वेद-प्रेमियोंके लिये एक बार पढ़नेके लायक अवश्य है।

७—घरेलू कहानियाँ

लेखिका, कुमारी गोपालदेवी हिन्दी-प्रभाकर; प्रकाशक गंगा-पुस्तकमाला, लखनऊ; रंगीन स्याहीकी सुन्दर छपाई;

सज-धज, उत्तम; पृष्ठसंख्या ९६; मूल्य ।=); कितने ही एकरंगे चित्र भी ।

बूढ़ी दादी अपने लाड़लोंको छकानेके लिये प्रायः जैसी कहानियाँ कहा करती हैं, वैसी ही कहानियोंका यह संग्रह है । लड़के इसे बड़े चावसे पढ़ते हैं, क्योंकि केवल अनहोनी घटनाओंका ही इसमें सर्वत्र जिक्र है । भाषा भी बालकोपयोगिनी है यानी अत्यन्त सरल और संयत । कितनी ही कहानियोंका प्लाट तो पुराना है; किन्तु लेखन-शैलीकी उत्तमतासे मजा मिलता रहता है । मुझे "चूहा और चुहिया" शीर्षक कहानी बड़ी अच्छी लगी । बाल-साहित्यमें यह एक उत्तम वस्तु है ।

८—श्रीमद्भागवत व्यासकृत है

लेखक तथा प्रकाशक, गोस्वामी श्रीलीलाकृष्णाचार्यात्मज श्रीगोस्वामी लक्ष्मणाचार्यजी; पृष्ठसंख्या ३९; मूल्य =); छपाई साधारण; प्राप्ति-स्थान नहीं लिखा है; प्रारम्भमें गोस्वामी लक्ष्मणाचार्यजीका एक सादा चित्र है ।

बहुतोंका विचार है कि, श्रीमद्भागवतके रचयिता बोपदेवजी हैं, व्यासजी नहीं । इसीके खण्डनमें यह छोटी-सी पुस्तिका लिखी गयी है । देवीभागवतके टीकाकार नीलकण्ठ स्वामी तथा और-और जो भी श्रीमद्भागवतकी उत्कृष्टताके विरोधी हैं, उनके मतोंको उद्धृत करके उनका खण्डन किया गया है । पौराणिक वाक्योंका भी समन्वय पौराणिक श्लोकोंसे ही किया गया है । सर्व-सुलभ बनानेके लिये श्लोकोंका अर्थ हिन्दीमें कर दिया गया है । पुस्तक भागवत-प्रेमियोंके कामकी हो सकती है ।

—साहित्याचार्य 'मग'
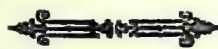
जिज्ञासा

पं० यमुनाप्रसाद चौधरी 'नीरज' बी० ए०, बी० एल०

सुनता हूँ, तुम हृदय-भवनमें सबके रहते नाथ !
वहीं बैठ दिलमें, दुखियाको देते दुःखमें साथ ।
मुझको भी तो नाथ हृदय है, है उसमें क्या वास ?
क्या न मिलेगा मुझे दयामय, तेरा कुछ आभास !
तन-मन दे मैं हृदय-भवनमें खोज रहा दिन-रात,
किन्तु नहीं क्यों मुझे दिखाई देते हो तुम तात !
क्या पापी, क्या दुष्ट, नाथ ! क्या कुटिल, क्रूरतम जान,
मुझसे मिलनेमें, अपना हो, समझ रहे अपमान !
या क्या छुआछूतके भयसे करते मेरा त्याग,
या यह हिय पा अन्धकारमय नाथ गये क्या भाग !

आत्म-निवेदन

१—"नर-वानर-संगति भङ्ग कैसे ?"

ईश्वर और सृष्टिके सम्बन्धमें जितना मतवाद है, उतना किसी भी सम्बन्धमें नहीं है। मनुष्य जानता है कि, उसकी ज्ञान-राशि परिमित है, उसके साधन अपर्याप्त हैं, उसकी शक्ति ससीम है, तो भी वह अनन्त कालसे प्रकृतिकी पड़ताल और परमात्माकी जाँच करनेका दम भरता है—उसने न मालूम कितनी कल्पना-जल्पनाएँ की हैं, कितने वर्ण और धर्मवाद बनाये हैं, कितने पन्थ और सम्प्रदाय चलाये हैं, कितनी कथाएँ और गाथाएँ गढ़ी हैं! वैज्ञानिक समझता है कि, उसकी विज्ञान-विद्या अधूरी है, उसकी गवेषणाएँ सन्दिग्ध और परिवर्तन-शालिनी हैं, तो भी वह आत्मा-परमात्माकी चोटी पकड़ने और सृष्टि-प्रकृतिके कान काटनेकी चेष्टा करता है! ऐसे ही वैज्ञानिकोंका एक दल कहता है कि, मनुष्य-सृष्टिका तात्त्विक रहस्य हमने जान लिया; मनुष्य बन्दरसे पैदा हुआ है! नीचेकी पङ्क्तियोंमें इनकी भड़कें अथवा विश्वास पढ़िये।

इन भूतत्त्ववेत्ता वैज्ञानिकोंने चार युगोंकी कल्पना की है—(१) आरकेइक (Archaic), (२) पेलियोजोइक (Paleozoic), (३) मेसोजोइक (Mesczoic) और (४) हेलियोसीन (Heleocone)। आरकेइक युगमें केवल पृथिवी थी, न किसी प्रकारका जीव था, न वृक्ष-वल्ली। पेलियोजोइक युगमेंहे नन्हे-नन्हे कीड़ों-मकोड़ोंकी उत्पत्ति हुई। मेसोजोइक युगमें पक्षियों और सरीसृपोंकी सृष्टि हुई। हेलियोसीन युगमें चतुष्पदों और विविध प्रकारके वानरोंकी उत्पत्ति हुई। होलियोसीनके पाँच विभाग हैं, जिनमें अन्तिम तीन विभागोंके नामये हैं—(१) माइओसीन (Mioc·no), (२ (प्लाइओसीन (Pliocene) और (३) प्लाइओस्टिसीन (Pleiostocene)। माइओसीन युग या कालके बननेमें ६० लाख, प्लाइओसीनके संघटनमें २० लाख ५० हजार और प्लाइओस्टिसीनके निर्माणमें २० लाख वर्ष लगे हैं! माइओसीनमें ओरां, शिपांजी, गोरिल्ला आदि नराकृति वानरों, प्लाइओसीनमें रोडेसियन, पिल्टडाउन आदि वानराकृति नरों और प्लाइओस्टिसीन कालमें मनुष्योंकी उत्पत्ति हुई।

शिपांजी, गोरिल्ला, ओरां, गिबन आदि वानरोंके आकार-प्रकार बहुत कुछ मनुष्योंके आकार-प्रकारसे मिलते हैं। वैज्ञानिक इन वानरोंको नर-वानर या एनथ्रोपाइड एपस (Anthropiod apes) अथवा प्रायः नराकार-विशिष्ट वानर कहते हैं। इनमें गिबन और ओरां बोर्नियो, जावा, सुमात्रा आदिमें और गोरिल्ला तथा शिपांजी अफ्रीकाके जंगलोंमें पाये जाते हैं। मनुष्योंके साथ शिपांजी और गोरिल्लाकी बहुत कुछ समता रहनेके कारण डारविन साहबने अनुमान लगाया है कि, मनुष्यका सृष्टि अफ्रीकामें ही हुई है। पिल्टडाउन और रोडेसियामें प्लाइओसीन कालके जो प्राणियोंके प्रस्तरीभूत अस्थि-पञ्जर मिले हैं, उनका समय ५०—६० लाख वर्षका माना जाता है। जर्मनीके नियंडर्थल प्रदेश, जिब्राल्टर, फ्रान्स, इटाली, युगोस्लोविया, दक्षिण रूस, पेलेस्टाइन और चीनमें जो ३०—४० लाख वर्षोंके, प्लाइओस्टिसीन कालके, प्रस्तरीभूत अस्थि-कङ्काल मिले हैं, उनका नाम "नियंडथल मानव" रखा गया है। तत्त्वविदोंने

इन अस्थियोंकी परीक्षा करके स्थिर किया है कि, ये सब एनथ्रोपाइड एपसकी अपेक्षा उच्च प्राणियोंकी अस्थियाँ हैं। जिनकी ये हड्डियाँ हैं, वे मनुष्यकी तरह सीधे खड़े हो सकते थे, मनुष्यकी तरह कितने ही कार्य कर सकते थे; परन्तु मनुष्यकी तरह बातें नहीं कर सकते थे। वैज्ञानिक इन्हें पिथेकनथ्रोपस (Pethecanthropus) वा वानराकृति नर कहते हैं। इन प्राणियोंका वंश लुप्त हो गया है और इन्हींके स्थानमें वर्त्तमान मनुष्योंकी उत्पत्ति हुई है। परन्तु वर्त्तमान मनुष्योंकी सृष्टि कहाँ हुई, इसका निर्णय अबतक नहीं हो पाया है !

उत्तर-पश्चिम भारतमें, दिल्लीके उत्तर, सिवालिक पर्वत-श्रेणीकी, माइओसीन कालकी, (प्रायः एक करोड़ वर्ष पहलेकी) भूमध्यस्थ मृत्तिकामें एक बृहदाकार वानरजातीय प्राणियोंके अस्थि-पञ्जर मिले हैं। वैज्ञानिक इन्हें ड्राइओपिथेकस (Dryopethecus) कहते हैं। यही; ड्राइओपिथेकस जाति ही, वर्त्तमान हनुमान्, जाम्बवान् आदि लाङ्गूलोंवाले वानरों, गिबन, गोरिल्ला, शिपांजी आदि नर-वानरों तथा पिल्टडाउन, रोडेसियन, नियण्डर्थल, पिकिं आदि वानराकृति मनुष्यों एवं वर्त्तमान मनुष्योंका पूर्व-पुरुष है। माइओसीन कालके भी पहले अर्थात् एक करोड़ पचास हजार वर्ष पहले हनुमान्, जाम्बवान् आदि वानर, गोरिल्ला, शिपांजी आदि नर-वानर इसी सिवालिक प्रदेशसे पूर्वकी ओर सुमात्रा, जावा, बोर्नियो-तक तथा पश्चिमकी ओर फारस, अरब आदि होकर स्पेन, फ्रान्स और अफ्रीकातक जाकर बस गये थे। प्राचीनतम समयमें भूमध्यसागर नहीं था; एशिया, यूरोप और अफ्रीका एकमें ही थे; इसलिये आसानीसे ये सब प्राणी इन स्थानोंमें जा बसे।

डा० ग्रावो और डा० डेविड्सनका भी मत है कि, माइओसीन युगमें भारतके उत्तरमें समुद्रगर्भसे हिमालय पर्वतके निकलनेके कारण वहाँके जल-वायु और अवस्थामें परिवर्त्तन हो गया। उस समय किसी एक श्रेणीके नर-वानरने अपनेको उस अवस्थामें मिलाकर वहीं रहनेकी चेष्टा की, जिसके फल-स्वरूप वह, कुछ दिनों बाद, जल-वायुकी प्रेरणाके कारण, मनुष्य हो गया। डी० एडिसन स्मिथने भी अपने "Search for man's ancestor" नामक ग्रन्थमें लिखा है—"भारतके सिवालिक नामक पार्वत्य प्रदेशमें, माइओसीन युगमें, जो बृहदाकार वानर रहते थे, वे तुर्किस्तानतक घूमते थे; क्योंकि उस समय उत्तर भारत और तुर्किस्तानके मध्यस्थ प्रदेशमें कोई प्राकृतिक वा जल-वायुकी विभिन्नता नहीं थी। माइओसीन युगमें, जिस समय, हिमालयने उठकर सिवालिक प्रदेशको चीनके सिंकियां प्रदेशसे अलग कर दिया, उस समय वहाँकी ड्राइओपिथेकस जाति दो भागोंमें विभक्त हो गयी। इस जातिमेंसे ओरांग और गिबन बोर्नियोतक गये और शिपांजी, गोरिल्ला पश्चिम अफ्रीका तथा यूरोपतक। इस जातिमेंसे जो हिमालयके शीतप्रधान स्थानमें रह गये, वे क्रमशः, प्राकृतिक परिवर्त्तनके कारण, मनुष्य बन गये।"

मानवशास्त्र-वेत्ताओंका यह खयाल है कि, ड्राइओपिथेकस जातिके कुछ लोग नष्ट हो गये, कुछ नाना देशोंमें घूमते रहे और कुछ अपने दलपतियोंके साथ घूमते हुए फल-मूल खाते और युद्ध करते समतल भूमिमें बस गये। प्राकृतिक कारणों और पारिपार्श्विक अवस्थामें पड़कर जैसे छोटे जीवोंसे बड़े जीव हुए, नर-वानरसे वानर-नर हुए, वैसे ही एक दल प्रकृत मानव (True man) हो गया और बातें करने लगा। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि, रामायणमें जो वानरों और राक्षसों (वन्य मनुष्यों) की मैत्री और शत्रुताका वर्णन महर्षि वाल्मीकिने किया है, उसका आधार यही वैज्ञानिक भित्ति है।

बस, यही वैज्ञानिकोंकी बातें हैं। इनमें हमारे मत-लबकी खास बात यही हो सकती है कि, मनुष्यकी सृष्टिका स्थान भारतवर्ष—किसी-किसीके मतसे हिमालयके उत्तर सिंकियां प्रदेश—में हुई है। सत्य-असत्यकी राम जानें !

२—वैज्ञानिकोंकी सभा और पत्र

विदेशोंमें वैज्ञानिकों, उनके पत्रों, उनकी सभाओं और प्रयोगशालाओंकी बहुलता है; परन्तु भारतमें इन बातोंकी कमी है। रामानुजम्, जगदीशचन्द्र, प्रफुल्लचन्द्र आदि वैज्ञानिक यद्यपि आधी शताब्दीसे मौलिक तथ्योंके आविष्कारमें लीन हैं; परन्तु एक जोरदार सभाके अभावके कारण गवेषणाका काम नाम मात्रको ही हुआ है। इससे विज्ञान-जगत्की ओर झुके हुए अध्यापकों और विद्यार्थियोंकी भी बड़ी हानि हुई है; उनकी प्रतिभा अविकसित या अर्धविकसित रह गयी है। भला जिस देशमें सर रमन, मेघनाथ साहा, ज्ञानेन्द्रचन्द्र घोष, नीलरतन धर जैसे वैज्ञानिक हों, उसमें वैज्ञानिकोंकी कोई संघटित संस्था, कोई जबर्दस्त पत्र न हो—यह कितनी दुःखद कथा है! इस अभावको दूर करनेके लिये चेष्टा हो रही थी; और, प्रसन्नताकी बात है कि, भारतके विभिन्न विश्वविद्यालयोंके प्रतिनिधियोंको लेकर संघटित किये गये इंटर यूनिवर्सिटी बोर्डने अपने गत मार्च मासके अधिवेशनमें एक "वैज्ञानिक-गवेषणा-परामर्श-सभा" स्थापित करनेका प्रस्ताव पास किया है। इस सभामें पदार्थ-विद्याके लिये सर रमन, रसायनके लिये ज्ञानेन्द्र घोष और प्राणि-विद्याके लिये सुन्दरलाल होरा सभ्य मनोनीत किये गये हैं। इस सभासे भारतको बड़ी आशाएँ हैं। इसके द्वारा भारतमें तो तरह-तरहसे वैज्ञानिक उन्नति होगी ही, विदेशोंमें भी, हमारी प्रतिभा, सभ्यता और विद्याकी यथेष्ट प्रतिष्ठा होगी।

एक सुन्दर वैज्ञानिक पत्रके अभावके कारण भी यहाँके वैज्ञानिकोंको भारी दिक्कतें उठानी पड़ती थीं। अपने किसी भी विशिष्ट लेखको छपानेके लिये उन्हें विदेशोंकी वैज्ञानिक पत्रिकाओंके दरवाजे खटखटाने पड़ते थे; तो भी, इतने समयका अपव्यय करनेपर भी, यथासमय और यथास्थान लेख नहीं छपते थे। यह बात यहाँके वैज्ञानिकोंको बहुत खटकती थी। इसलिये कुछ प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ताओंने विख्यात वैज्ञानिक साप्ताहिक पत्रिका "नेचर"के ढंगपर बँगलोरसे "करेंट सायन्स" नामक अंग्रेजी मासिक पत्रिका, शीघ्र ही, निकालना निश्चय किया है। वैज्ञानिक सन्दर्भ, अभिनव गवेषणाओंका विवरण तथा नवीन आविष्कृत तथ्योंका परिचय छापना इस पत्रिकाकी विशेषता होगी।

ऐसे ही उद्देश्योंको लेकर हिन्दीमें, प्रयागसे, "विज्ञान" नामक मासिक पत्र निकलता है; और, यह बात निःसन्दिग्ध है कि, हिन्दी-भाषियोंके लिये "विज्ञान"का "नेचर" या "करेंट सायन्स"से कम महत्त्व नहीं है। हिन्दीभाषियोंके पास विज्ञानका महामूल्य सन्देश पहुँचाने और विज्ञानकी उपयोगिता बतानेके लिये "विज्ञान"का अत्यधिक महत्त्व है। किन्तु दुःख और आश्चर्य है कि, ऐसे उपयोगी पत्रको लोग, सन्तोषजनक रीतिसे, नहीं अपना रहे हैं!

३—वर्तमान जापान

वर्तमान युगको वैज्ञानिक-युग कह सकते हैं। प्रायः सभी राष्ट्रोंकी सभ्यता, उनके उद्योग-धन्धे एवं वाणिज्य-व्यापार विज्ञानपर ही अवलम्बित हो रहे हैं। विभिन्न वैज्ञानिक प्रक्रियाओं द्वारा कृषि, कला, शिक्षा तथा व्यापारादिकी उन्नतिके सफल मार्ग ढूँढ़े जा रहे हैं। रूस, प्रजातन्त्र चीन, आयर्लैण्ड, श्याम तथा तुर्किस्तान भी इस ओर दत्तचित्त हैं। इङ्गलैण्डमें इसके लिये एक 'लीग' ही स्थापित कर दी गयी है, जिसके मेम्बर, केवल बारह महीनोंमें ही, तीन लाखके लगभग हो गये हैं। वहाँके साधारण स्थितिके मजदूरसे लेकर भारत-साम्राज्ञी तक स्वदेशी उद्योग-धन्धोंकी उत्तरोत्तर वृद्धिके लिये उत्सुक हो रही हैं; विदेशीका नामतक भी नहीं लेना चाहतीं!

हम जापानको सदासे एक आदर्श राष्ट्रके रूपमें देखते आ रहे हैं। भूमण्डलमें यह छोटा-सा पृथ्वी-खण्ड किसी भी उन्नत राष्ट्रसे टक्कर ले सकता है। प्रायः सबने उसका लोहा भी मान लिया है।

जापानकी इस बढ़ती हुई शक्तिका वास्तविक रहस्य यही है कि, वहाँके आबाल-वृद्ध—स्त्री या पुरुष, सभी

अपनेको कट्टर देश-सेवक मानते हैं। देश-सेवा ही उनका मुख्य धर्म है। देश-सेवाके सामने वहाँकी साम्प्रदायिक धर्म-भावनाओंका कुछ मूल्य ही नहीं है! इस वैयक्तिक धर्मके आगे अन्य सभी धर्म नगण्य हैं—अचिन्त्य हैं!!

इन दिनों वहाँकी राष्ट्रीय सरकार देशी उद्योग-धन्धोंकी उन्नतिमें अधिक सचेष्ट हो रही है। प्रत्येक प्राणीके लिये निःशुल्क शिक्षा—सैनिक शिक्षातक—अनिवार्य हो रही है। कपड़ेके वाणिज्य-व्यापारके क्षेत्रमें जापान पहलेसे ही अपना सानी नहीं रखता था। अब तो उसने इस ओर ऐसे नवीन वैज्ञानिक प्रयोगोंको व्यवहारमें लाना आरम्भ कर दिया है कि, लंकाशायरमें खासी खलबली मच गयी है! अभी हालमें उसने एक ऐसे चर्खेका आविष्कार किया है, जिससे—भारतकी कौन कहे—लंकाशायरकी अपेक्षा २० से २९ प्रतिशत सूत अधिक निकलता है! अभी इस चर्खेकी निर्माण क्रियाको जापान सरकार गुप्त रखना चाहती है। उसे भय है कि, इसका अभी विदेशोंमें प्रचार हो जानेपर राष्ट्रकी व्यापारिक शक्तिपर धक्का पहुँचेगा!

सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि, जापानके प्राइमरी तथा सेकेण्डरी स्कूलोंमें भी लोहार, बढ़ई, बिजली तथा चित्रकारी आदिके काम सिखाये जाते हैं। वहाँके कपड़ोंकी मिलोंमें एक लड़की अकेली बीस करघोंको चलाती है; और, इस कामसे उसे इतने पैसे मिल जाया करते हैं कि, पाँच वर्षोंतक काम करनेके बाद उसके पास इतना द्रव्य इकट्ठा हो जाता है कि, वह बिना नौकरी किये ही अपना शेष जीवन सानन्द व्यतीत कर सकती है! मजदूरोंके रहनेके लिये सभी घर ऐसे वैज्ञानिक ढङ्गसे बने होते हैं कि, उनके स्वास्थ्यमें ज़रा भी धक्का नहीं लगता। वर्तमान जापान संघटन, मितव्ययता तथा सुव्यवस्थित शासनकी दृष्टिसे एक आदर्श राष्ट्र हो रहा है।

४—कृषिभक्त हेनरी फोर्ड

अमेरिकाके हेनरी फोर्डने खेतीके प्रचारके लिये जबर्दस्त आन्दोलन उठाया है। उनकी राय है कि, प्रत्येक परिवार कुछ नहीं तो अपने ही लिये तरकारीकी खेती करे। स्वयं डियर बार्न, इप्सिलान्टी और मिचेगनमें, २० हजार एकड़की जमीनमें, तरकारीकी खेती करने जा रहे हैं। इसमें हजारों आदमी काम करेंगे।

एक पत्र-प्रतिनिधिसे इन्होंने कहा है कि, "एक पैर कारखाने और दूसरा खेतमें रहनेसे देश साम्यावस्थामें रहता है। मशीनकी ओर अभिरुचि रहनेसे नहीं, बल्कि खेतोंको भूल जानेसे ही हमारी यह दुर्दशा हो रही है। सराफेके डूब जानेसे कुछ जमीन डूब नहीं जाती।"

इनकी योजनाके विरोधी खाने-पीनेके इजारेदार हो सकते हैं, जिनके लिये कुटुम्बका स्वावलम्बी हो जाना बड़ा भयानक रहा है! लेकिन जब सबके घरमें खानेकी चीजें प्रचुर परिमाणमें रहने लगेंगी, तब बेकारोंकी समस्या अनायास ही हल हो जायगी। बैंकमें जाकर कोई खाना नहीं पा सकता। खाना तो खेतिहर ही उपजा सकते हैं।

परती पड़ी हुई जमीन मालिकोंकी ओरसे मुफ्तमें दे मिल जायगी। कुछ बेरोजगारोंको लेकर रोजगारवाले अब खेती करने लगें, तो सबके लिये काफी काम मौजूद हो जाय।

५—विदेशी क्रान्तिकारी

यूरोपमें हत्यासम्बन्धी गुप्त संस्थाओंका प्रभुत्व दिन-दिन जड़ पकड़ रहा है। इन संस्थाओंके सदस्य राजनीतिक षड्यन्त्र से भी सम्बन्ध रखते हैं। बाहरवाले तो इसे मामूली संस्था समझते हैं; परन्तु इनके आक्रमणोंसे कभी-कभी सारा महादेश ही थर्रा उठता है! १९१४ में जो यूरोपमें महायुद्ध छिड़ा था, उसका मूल कारण ब्लैक हैण्ड नामक एक संस्था थी। १९०३ में इसी गुप्त कमेटीने सर्वियाके आब्रेनोविक वंशको उच्छिन्न करके उसके स्थानपर कारगियोर्गेविक वंशको प्रतिष्ठित किया था। किङ्ग अलेक्ज़ेण्डरने इस संस्थाके प्रधान संचालक डिमिचिएविचको फाँसी दे दी थी, जिससे कुछ दिनोंतक इसकी कार्रवाई चुप-सी गयी थी; परन्तु अब यह फिर पनप उठी है!

लंदनके सेहो स्कायर नामक स्थानमें भी इटालियनोंकी एक गुप्त षड्यन्त्र संस्था है। बाहरसे वह एक सामान्य भोजनालय-सा प्रतीत होता है; परन्तु उसके भीतर प्रतिक्षण रक्त-पिपासाकी अखण्ड ज्वाला प्रज्वलित होती रहती है। विशेषतः ये लोग मुसोलिनीके खूनके प्यासे हैं। जब इनके दलका कोई हवाली भेजा जाता है, तब ये लोग अखबारोंमें सदा ढूंढते रहते हैं कि, मुसोलिनी मारा गया या नहीं।

एक बार इनके दलका एक आदमी इटालीमें पकड़ा गया। उसने आत्महत्या करनेकी चेष्टा की; पर सफल नहीं हो सका। अस्पतालमें उससे सब भेद ले लिया गया; किन्तु सोहोकी यह संस्था नहीं पकड़ी जा सकी!

अनेक षड्यन्त्रकारी इटालियन पेरिस-नगरस्थित फेबूंग सों देनी नामक स्थानमें रहते हैं, जिनका उद्देश्य लोगोंको भगाकर लंदनके स्वाधीन वायु-मण्डलमें ले आना है। ये पुलिसकी आँखोंमें धूल झोंकते रहते हैं! बहुत-सी औरतें और वेश्याएं भी इस गिरोहमें शरीक हैं। हालमें ही एक सम्भ्रान्त वेश्या इसी मामलेमें पकड़ी गयी थी।

जर्मनीमें प्रायः सर्वत्र हत्या क्लब संस्थापित हो गये हैं। बर्लिनके प्रसिद्ध होटल आदलनसे कुछ दूरपर ही ऐसे हो षड्यन्त्रकारियोंकी संस्था है; परन्तु यह गुप्त नहीं है। जो इसे अच्छी तरहसे जानते हैं, वे कहते हैं कि, यूरोपके हत्या क्लबोंमें यह अन्यतम है। आज बर्लिनमें ऐसे २५ क्लब वर्त्तमान हैं; पर मजा तो यह है कि, लोग इन्हें खेल-कूदके घर या लोक-हितैषिणी संस्थाएं ही समझे हुए हैं! इनका नाम है—"जर्मन षड्यन्त्रदल।" इनकी केन्द्रीय संस्थाका आफिस बा-कायदा होता है। एक अधिपति सबका संचालन करता है। सदस्यगण प्रति सप्ताह चन्देकी रकम दे दिया करते हैं। अगर कोई सदस्य बीमार पड़ा या मरा, तो उसके कुटुम्बियोंको काफी धन दिया जाता है!

शाङ्गके एक चण्डूखानेमें भी एक ऐसी ही गुप्त संस्था है, जिसका नाम "विष-समिति" है। इसमें अनेक मिश्रवासी, जापानी, कोरियन तथा दो-एक देश-निर्वासित फ्रेंच भी सम्मिलित हैं। इनका उद्देश्य है, बादशाह फुआदकी हत्या करना।

पेरिसमें संसार भरके राजनीतिक षड्यन्त्रकारियोंके पनाहकी काफी गुंजाइश है। यहाँके "बूलावार"के विश्राम-गृहोंके आसपास चीनी, जापानी, भारतीय और मिश्रवासी क्रान्तिकारियोंके गुप्त अड्डे हैं। रूसी क्रान्तिकारी भी यहाँ रहकर मनसूबे गाँठा करते हैं।

अनेक जापानी तथा कोरियन नवयुवक बर्लिन और पेरिसमें रहकर वर्तमान जापान सरकारको उलटनेके यत्नमें हैं। कोबेमें भी इनका एक दल है। सारांश यह कि, इस बीसवीं शताब्दीमें सर्वत्र हत्या और षड्यन्त्रका ही दौरदौरा नजर आता है!

६—इटलीकी सन्तानवृद्धि

प्रायः इन दिनों सारी दुनिया सन्तति-निरोधको उत्तम समझ रही है। अमीरोंकी विलासिनी स्त्रियाँ माताएं बननेमें हिचकती हैं; और, बेचारे गरीब इसलिये सन्तान-शून्य रहना चाहते हैं कि, उनके पास खाने-खिलानेके लिये काफी पैसे नहीं।

इटलीका भाग्य-प्रवर्तक मुसोलिनी इस मतका पोषक नहीं है। उसका मत है कि, राष्ट्रीय संगठनका सबसे बड़ा साधन जनसंख्याको सदा बढ़ाते रहना है। उसने एक बार स्त्रियोंकी सभामें कहा था—"बहनो, इटलीको छ करोड़की जनसंख्या लेकर इस शताब्दीके अपराह्न (१९५०)में प्रवेश करना होगा।"

१९२१ में इटलीकी जनसंख्या ३८७१०९७६ थी। १९३१ में वही बढ़कर ४२११८४३९ हो गयी अर्थात् कुल दस वर्षोंमें ३४०७८९९ की वृद्धि हुई। ऐसी वृद्धि यूरोपमें आजतक कहीं भी नहीं हुई थी!

केवल जनसंख्याकी वृद्धिसे ही मुसोलिनी अपना कर्त्तव्य पूरा हुआ नहीं समझता है। वह तो समस्त इटलीको हृष्ट-पुष्ट बच्चोंको ही देखना चाहता है। वह अपने बच्चोंका

तरह ही समूचे राष्ट्रके बच्चोंको समझता है। राष्ट्रकी ओरसे ही उन्हें खोरिश भी मिलती है।

एक भारतकी सन्तान-वृद्धि है और दूसरी इटलीकी। लेकिन दोनोंमें महान् अन्तर है। यहाँ क्षुधापीड़ित अस्थि-पञ्जर-मात्रावशिष्ट बच्चे हैं, तो इटलीमें गोरे, छरहरे और मांसल बच्चे ही सर्वत्र नजर आते हैं। जिसे हिम्मत है, वह क्यों नहीं अपनी संन्ततियोंको बढ़ावेगा?

—शान्ति-निकेतन

प्रकृतिकी गोदमें बसा हुआ साबरमतीका आश्रम महात्मा गान्धीकी तपोभूमि है, विशुद्ध क्रीड़ास्थली है। वहाँकी वनस्पतियोंमें लड़खड़ाती हुई वायु ईश्वरीय गान गाती है; वहाँकी मिट्टीपर रेंगनेवाले कीड़ोंतकमें ईश्वरीय सेवाकी भव्य भावना सतत जागरूक है। सचमुच साबरमती महात्माजीकी अन्तर्भावनाओंकी प्रयोगशाला है। काँगड़ीका गुरुकुल दिवंगत स्वामी श्रद्धानन्दजीकी और वृन्दावनका प्रेम-महाविद्यालय राजा महेन्द्रप्रतापकी कामनाओं एवं उद्देश्योंके साधना-मन्दिर हैं।

ठीक इसी प्रकार "शान्ति-निकेतन" (बोलपुर) कवीन्द्र रवीन्द्रका आदर्श लीला-निकेतन है। सभ्य जगत्में कोई भी ऐसा विद्वान्, कवि एवं कलाविद् न होगा, जिसने शान्ति-निकेतनका नाम न सुना हो। कवीन्द्रके विश्व-विश्रुत होनेके कारणोंमें शान्ति-निकेतन कुछ कम महत्त्व नहीं रखता। यहाँकी शिक्षण-प्रणाली, आचार्य-शिष्योंके पारस्परिक प्रेममय व्यवहार, उनके आचार तथा नित्य-नैमित्तिक कर्मोंमें हम आर्ष युगका कुछ प्रतिबिम्ब देखते हैं। पल्लवोंकी छायामें प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृतिकी शिक्षा, स्वाभाविक रूपसे, शान्ति-निकेतनके सिवा, संसारमें प्रायः कहीं भी नहीं मिलती। अपने शिष्योंके प्रति आचार्योंका ऐसा पुत्रवत् व्यवहार—ऐसा वात्सल्य प्रेम दूसरी जगह देखनेको कौन कहे, सुननेमें भी नहीं आता। यहाँके-से आचार्य और भी कहीं होंगे, इसमें पूरा सन्देह है। प्रतिदिन ब्राह्म मुहूर्त्तमें, साढ़े चार बजे, यहाँ सभी उठ जाते और प्रातःकृत्यसे निवृत्त हो लेते हैं। ठीक पौने छ बजे ईश्वर-प्रार्थना होती है। फिर, १५ मिनटोंतक, विराम करनेके बाद, छात्रोंको व्यायामकी और पश्चात् पाठ्य विषयकी शिक्षा दी जाती है। ११ बजे भोजन करनेके बाद, २ बजेतक, अपनी-अपनी इच्छाके अनुसार, छात्र काम करते हैं। कोई गाने गाता, कोई समाचार-पत्र पढ़ता और कोई ड्राइंग बनाता है। यहाँकी शिक्षा-प्रणालीमें यह विशेषता है कि, छात्रों तथा छात्राओंको साथ-ही-साथ शिक्षा दी जाती है। सच तो यह है कि, यहाँ रुचिके अनुसार ही शिक्षा दी जाती है, और; यही मुख्य कारण है कि, इस प्रकारकी शिक्षा सर्वथा सफल होती है।

शान्ति-निकेतनकी दूसरी मंजिलमें गवेषणा-सम्बन्धी अमूल्य पुस्तकोंका भाण्डार है। सैकड़ोंकी संख्यामें पाली तथा तिब्बती भाषाओंके भी अप्राप्य ग्रन्थ पड़े हैं। विश्वसाहित्यके प्रायः जितने धुरन्धर कवि एवं विद्वान् हैं, सबने अपनी कृतियोंकी भेंट की है। हालमें फारसके शाहने कवीन्द्रको जो-जो साहित्य-रत्न पुस्तकें उपहार-स्वरूप दी हैं, वे बहुमूल्य एवं संग्रहणीय हैं। इन दिनों "विश्वभारती" (शान्ति-निकेतन) में ४०००० से भी अधिक पुस्तकें हैं।

लेख-मालिका

चित्र-सूची

शैशवका आनन्द

गङ्गा

प्रवाह २, तरङ्ग ९, पूर्ण तरङ्ग २१ भाद्रपद, संवत् १९८९; सितम्बर, सन् १९३२

सुन्दरी

प० प्रबोधनारायण झा

बात बहुत पुरानी—सन् १६११ की—है। दिल्लीके तख्तपर बादशाह जहाँगीर विराजमान थे। मोग़लोंकी विजय-पताका सारे हिन्दोस्तानमें फहरा रही थी। बादशाह अकबरको मरे अभी बहुत ही थोड़े दिन हुए थे। जहाँगीरमें नया जोश चूना था, उल्लासकी मात्रा अधिक थी। वह इस समय नूरजहाँपर बेतरह लट्टू हो रहे थे। यदि नूरजहाँ कमल-कुसुम थी, तो वे भ्रमर थे। उसके पीछे वह जी-जान देनेको उतारू थे। इसी वर्ष उन्होंने नूरजहाँसे निकाह भी कर लिया था।

शामका वक्त था। अभी सूर्यास्त नहीं हुआ था; पर सूर्यकी अन्तिम लालिमा चारो ओर फैल गयी थी। चिड़ियाँ मधुर तानसे गान करती हुई अपने बसेरेको लौट रही थीं। दिन-भरके थके-माँदे किसान भी अपने पशुओंको लिये घर लौट रहे थे। प्राकृतिक छटा निराली थी। इसी सुन्दर समयमें बादशाह जहाँगीर भी अपने महलसे निकले। उन दिनों बादशाह जब चाहें, अकेले घूमने-फिरनेको निकल सकते थे। इसका कारण भी था। उन्हें पूरी आजादी थी। वह यही कि, अपनी सेनाके सिवा उन्हें अपने हाथोंपर भी पूरा भरोसा रहता था। ख़ैर।

कुछ देरमें बादशाह यमुनातट पहुँचे। इस समय यमुनाने भी अपूर्व रूप धारण किया था। उसकी लहरोंकी चञ्चलता चित्तको अस्थिर करनेवाली थी। हवाके हिलोरोंसे

यमुनाका जल छलक रहा था; मानो मन्द-मन्द वायु साँवली-सलोनी सुन्दरी यमुनाके श्यामल कपोलोंको चूम रही थी। जहाँगीरके कानोंमें इसी समय गानेकी भनक पड़ी। कोई गा रहा था—"भ्रमर, मत कर तू कमलसे वैर।" स्वर बड़ा मीठा था, लयमें लचक थी; जहाँगीरने चारों ओर आँखें दौड़ायीं। देखा, एक सुन्दरी यमुना-जलमें स्नानकर भीगे हुए कपड़ोंको निचोड़ रही है। सुन्दरीके चेहरेपर अपूर्व आभा एवं अकथनीय सुन्दरता है।

जहाँगीर, जिनके महलोंमें एक-से-एक बढ़कर सुन्दरी नारियाँ मौजूद थीं, उसे देखकर दंग रह गये सोचने लगे—'ऐसी सुन्दरता! ऐसा रूप! चाँद-सी सूरत! क्या इसके रहनेसे मेरा महल रोशन नहीं हो जायगा?' जहाँगीरको बेचैनी सताने लगी। उन्होंने अपना अभिप्राय अपने साथके मुसाहबोंसे कह सुनाया। एक मुसाहब बड़ा होशियार था। उसने हाथ जोड़कर कहा—"शाहँशाह! यह देखनेसे तो किसी राजपूत-कुलकी रमणी मालूम होती है। राजपूतिनोंको अपने धर्मका, अपने सतीत्वका, बड़ा गर्व रहता है। हुजूरके महलमें एक-से-एक बढ़कर खूबसूरत बेगमें मौजूद हैं, जिनकी मिसालकी इस दुनियामें कम औरतें मिलेंगी। मेरी राय तो यह है कि, जहाँपनाह इस औरतकी ओरसे दिल हटा लें। अब शाम भी हो रही है! हुजूरको लौट चलना ही वाजिब है।" दूसरे मुसाहबोंने भी कुछ इसी तरहकी बातें कहीं; पर जहाँगीरके दिलमें इन रूखी-सूखी बातोंसे तसल्ली नहीं हुई।

बहुत कहने-सुननेपर भी जब बादशाहने नहीं माना, तब एक मुसाहब काजिरखाँ बादशाहका प्रस्ताव लेकर उसके पास जानेको तैयार हो गया।

वह क्षत्रिय-कुलकी कुमारी घर जानेको तैयार हो रही थी। इसी समय काजिरखाँने वहाँ जाकर पूछा—"क्या आप मेहरबानी करके बतायेंगी कि, आप किसकी बेटी हैं?"

सुन्दरी—"मान सिंह राठौरकी।"

काजिर—"मैं आपको एक खुशखबरी सुनाने आया हूँ। हुक्म दीजिये, तो कहूँ।"

सुन्दरी [प्रसन्नता-पूर्वक]—"हाँ, सहर्ष कहिये।"

काजिर—"आप सामने देख रही हैं, वहींसे कुछ दूरपर हिन्दोस्तानके बादशाह जहाँगीर खड़े हैं।"

सुन्दरी—"मैंने तो नहीं देखा था। अब देख रही हूँ।"

काजिर—"खैर, तो बादशाह आपके इस गानेपर, आपकी इस बेमिसाल खूबसूरतीपर—माफ कीजियेगा—फिदा हो रहे हैं। वह आपको अपनी सबसे बड़ी बेगम बनाना चाहते हैं। और, आप इस काबिल हैं भी।"

सुन्दरी—"खाँ साहब! मेरे सामने ऐसी बातें मुँहसे भी न निकालिये! एक क्षत्रिय-कुलकी बालिका सब सह सकती है; पर ऐसी बातें नहीं।"

काजिर—"आप नाराज न हों। मैंने इसीलिये तो पहले आपसे वादा करा लिया है। आपका कहना बजा है, सही है; लेकिन आप तो अभी क्वाँरी मालूम पड़ती हैं। बादशाह आपको देखते ही यह समझ गये। नहीं तो वह किसी ब्याहीको अपनी बेगम बनाकर उसकी किस्मतपर दाग हर्गिज नहीं लगा सकते। शाहँशाहके महलोंमें कितनी ही हिन्दू राजाओं-महाराजाओंकी लड़कियाँ मौजूद हैं। लेकिन आपके जानेसे महल रौशन हो जायगा। जवाहरकी कदर गरीब क्या जान सकता है। उसकी खूबसूरती 'बादशाहके ताजपर ही रहनेसे बढ़ सकती है।"

सुन्दरी (उत्तेजित होकर)—"मैं आपकी बातोंको सुननेके लिये वादा कर चुकी हूँ, नहीं तो ऐसी बातें सुन भी नहीं सकती थी। एक राजपूतकी पुत्रीके लिये ऐसी बातें भी सुनना पाप है। आपने जो बादशाहके महलोंमें हिन्दू-कन्याओंके रहनेकी बात कही, सो ठीक है। मैं जानती हूँ, कुछ बेधरम राजपूतोंने अपनी बेटियाँ-बहनें, मुगल-बादशाहके महलोंमें, देकर अपने कुलका नाम डुबोया है। पर, खाँ साहब, याद रखिये, सच्ची राजपूत-पुत्रियाँ ऐसे ऐशो-आरामको लात मारनेके लिये तैयार रहती हैं। मैं जानती हूँ, मेरा देश

परतन्त्र है, मोगलों द्वारा पद-दलित हो रहा है; पर अब भी मैं अपने कुलकी—अपने धर्मकी—रक्षाके लिये प्राणतक दे सकती हूँ; पर उसमें धब्बा नहीं लगने दे सकती। मान-मर्यादाकी रक्षा ही मेरा मुख्य धर्म है। आप जायें और बादशाहसे कह दें कि, एक राजपूत-बालिकाके सम्बन्धमें इस तरहका विचार वे मनमें भी न लावें।"

काजिर—"क्या आप इस मान-मर्यादाके पीछे इतनी दौलत और ऐश छोड़ देंगी? यह आपकी गलतफहमी है। जिसके लिये भले-भले घरकी औरतें तरस रही हैं, उसको आप ठुकरा रही हैं! मैं समझता हूँ, आप अभी नादान हैं। आपने अभी दुनियाकी हालत नहीं देखी; इसीलिये इस तरह की नादानी कर रही हैं। ज़रा बादशाहका भी तो खयाल कीजिये। वह खुद बड़ी देरसे खड़े हैं। आप मेरे साथ चलिये। आपके माँ-बापको भी शाही फरमान भेज दिया जाता है। राव सिंहको बादशाह 'अमीर' अवश्य बना देंगे। आप बादशाहको और बादशाह आपको पाकर फूले न समायेंगे। आप बड़ी खुश-नसीब हैं, नहीं तो हम लोगोंके घरकी औरतोंको यह बात कहाँ नसीब!"

सुन्दरी (क्रोधसे)—"चल, खाँ साहब, अब चुप रहिये। मैं अब ऐसी बातोंको नहीं सुन सकती। मैं सारी दुनियाकी दौलतपर थूकनेको प्रस्तुत हूँ; पर अपने धर्म और मान-मर्यादाको नहीं छोड़ सकती।"

काजिर—"यह बादशाहकी मेहरबानी कहिये या अपनी किस्मत कहिये कि, बादशाहने ऐसा इरादा भी किया है और मंजूर करना-न-करना आपकी मर्जीपर छोड़ दिया है। नहीं तो अगर वह चाहें, तो आपको जबर्दस्ती पकड़ ले जायँ। राजपूत उनका एक बाल भी बाँका नहीं कर सकते।"

सुन्दरी—"रहने दीजिये ऐसी बातोंको। मैं प्राण रहते अपने शरीरपर किसीका हाथ भी नहीं लगने दे सकती। आप जाकर बादशाहसे अर्ज कर दीजिये कि, एक क्षत्रिय-पुत्री मोगलोंके सम्मान एवं धनको, अपनी कुल-मर्यादाकी रक्षाके लिये, ढेलेकी तरह, पैरोंसे ठुकरा देती है।"

इतना कहकर वह क्षत्रिय-कुल-ललना वहाँसे चली गयी। काजिर खाँ देखता ही रह गया। उसे कुछ छेड़नेका साहस न हो सका। वह इस सुन्दरीकी वीरता तथा गौरव-पूर्ण बातें सुनकर दंग हो रहा था। जब वह आँखोंसे ओट हो गयी, तब काजिरखाँने जाकर बादशाहसे उसकी बातें साफ-साफ कह सुनायी। जहाँगीर भी सुनकर दंग रह गया।

राजपूतोंकी मान-मर्यादा किसे कहते हैं, यह उसे आज ही ज्ञात हुआ। हमीरके सम्बन्धमें जो कहा गया है कि, "तिरिया-तेल, हमीर-हठ, चढ़ै न दूजी बार" वह सम्पूर्ण क्षत्रिय-जातिके लिये लागू हो सकता है।

यह तो लीला (उपर्युक्त सुन्दरीका नाम) के सम्बन्धकी एक छोटी, पर सच्ची कहानी है। ऐसी कितनी ही हिन्दू-ललनाएँ हो गयी हैं, जिनके गौरव-पूर्ण कृत्यों द्वारा भारत गौरवान्वित हुआ है। राजपूतानेके लोग अब भी लीलाकी कहानीको बड़े गौरवके साथ कहते हैं। यह दोहा भी कहा गया है—

"राजपूतकी बालिका राख्यो अपनो मान,
जहाँगीर बादशाहसे कियो जाति-अभिमान।"

महाकवि भवभूति

पं० रामविलास चौत्रटिया

"कवयः कालिदासाद्या भवभूतिर्महाकविः।"

संस्कृत-साहित्यके सरोवरमें विचरण करनेवाले हंसोंमें भवभूतिका स्थान बहुत ऊंचा है। यद्यपि यह ठीक है कि, बहुतसे लोग कालिदासको ही सर्वश्रेष्ठ कवि समझते हैं; परन्तु फिर भी उन प्रौढ़ और धुरन्धर विद्वानोंकी कमी नहीं, जो उत्तररामचरितके पढ़नेके बाद भवभूतिको ही सर्वश्रेष्ठ होनेका दावा उपस्थित कर सकें। ×

भवभूतिका कालनिर्णय करना भी एक जटिल समस्या है। संस्कृतके पुराने जमानेके पण्डित "अविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्"* वाली आख्यायिकाके अनुसार उन्हें कालिदासका समकालीन समझते हैं। दूसरा पक्ष उन्हें आठवीं शताब्दीको विभूति समझता है; परन्तु हमारा विचार है कि, भवभूति इससे भी पूर्व ईसाकी ६ ठी शताब्दीके शेष भागमें विद्यमान थे। ऐतिहासिक पक्ष इस बातका जबर्दस्त समर्थक है।

"राजतरङ्गिणी"में एक श्लोक आया है—

> "कविर्वाक्पति राजश्रीभवभूत्यादिसेवितः।
> जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम् ॥"

इससे यशोवर्माके समयमें इनका रहना प्रमाणित होता है। कान्यकुब्जाधिपति महाराज यशोवर्माका समय ऐतिहासिकोंने ६ ठी शताब्दीके उत्तरार्द्धमें निश्चित किया है। (२) "ध्वन्यालोकलोचन"के निर्माता वामनने ६६२ ई० के आसपास अपनी किताब लिखी है, उसमें जहां-तहां भवभूतिके श्लोक आये हैं। (३) इन्दोरमें "मालतीमाधव" की एक प्रति प्राप्त हुई है, जिसके प्रत्येक अङ्कके अन्तमें "इति कुमारिलशिष्यकृते" इत्यादि वाक्य मिलते हैं, जिससे मालूम होता है कि, भवभूति कुमारिलस्वामीके × शिष्य थे। कुमारिलके सांख्य-कारिका-भाष्यका चीनी अनुवाद ५५७—५८३ ई० के बीच हुआ था। (४) विद्वानोंने यह सिद्ध किया है कि, भवभूति शङ्कराचार्यके पूर्व हुए हैं। शङ्कराचार्यका जन्म ७८८ ई० में हुआ था। सुतरां उपर्युक्त प्रमाणोंसे यह सिद्ध है कि, भवभूति ६ ठी शताब्दीके उत्तरार्द्धके पुण्य प्रसाद हैं।

भवभूतिने अपने विषयमें बहुत ही कम लिखा है। "मालती"माधव" और "वीरचरित"में जो उन्होंने सूत्रधारके मुखसे आत्मपरिचय कराया है, वह इस प्रकार है—

अस्ति दक्षिणापथे पद्मपुरं नाम नगरम्। तत्र केचित्तैत्तिरीयाः काश्यपाश्चरणगुरवः पङ्क्तिपावनाः पञ्चाग्नयो धृतव्रताः सोमपीथिनः उदुम्बरनामानो ब्रह्मवादिनः प्रतिवसन्ति। तदामुष्यायणस्य तत्रभवतो वाजपेययाजिनो

× "उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते।"

*ऐसी आख्यायिका प्रसिद्ध है कि, जब भवभूति "उत्तरराम चरित"की रचना सम्पूर्ण कर चुके, तब उन्होंने उसे कालिदासको सुनाया। कालिदासने सुनकर प्रशंसा की और कहा कि, "अविदितगतयामा रात्रिरेवं व्यरंसीत्" ऐसा पाठ रखनेसे अधिक सुन्दर है अनुस्वारका हटा देना; इसलिये अनुस्वार निकालकर "रात्रिरेव व्यरंसीत्"का पाठ कर दो। कहते हैं तबसे यही पाठ हो गया। परन्तु इस बातका एक किंवदन्तीसे अधिक महत्त्व नहीं है। यह कालिदासके पक्षपाती किसी व्यक्तिकी कल्पना मात्र ही मालूम होती है।

× बहुतोंका विचार है कि, कुमारिलाचार्यका ही दूसरा नाम ज्ञाननिधि था। इस ज्ञाननिधि नामसे भी इन्होंने अपने गुरुका परिचय दिया है।

महाकवेः पञ्चमः सुगृहीतनाम्नो महागोपालस्य पौत्रः पवित्रकीर्तेनीलकण्ठस्यात्मसम्भवः श्रीकण्ठपदलाञ्छनः पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जतुकर्णीपुत्रः कविर्मित्रधेयमस्माकमिति।"

—महावीरचरित

सार यह है कि, विदर्भ [बरार] को अन्य-श्यामका भूमिको भवभूतिके जन्म देनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इनके पिताका नाम नीलकण्ठ और माताका नाम जतुकर्णी था। सर्वशास्त्रनिष्णात ज्ञाननिधि नामक कोई महानुभाव इनके गुरु थे। * इनका नाम श्रीकण्ठ था; परन्तु शिवकी आराधना कर उनसे वरदान पानेके कारण सर्वसाधारणमें ये भवभूति नामसे इतने प्रसिद्ध हो गये कि, आज उस वास्तविक नामका प्रायः लोप-सा हो गया है। इनकी खास जन्मभूमि पद्मपुर इस समय जंगलके भयानक रूपमें परिवर्तित हो गयी है।

भवभूतिकी अमर लेखनीने "मालतीमाधव," "महावीरचरित" और "उत्तररामचरित" नामक तीन जगद्विख्यात नाटकोंकी रचना की है। शार्ङ्गधर-पद्धति, रसिकजीवन आदि ग्रन्थोंमें कुछ श्लोक ऐसे मिलते हैं, जो पूर्वोक्त नाटकोंमें नहीं पाये जाते, इससे कुछ लोगोंकी यह धारणा है कि, इन्होंने बालचरित नामक एक और नाटककी भी रचना की थी, जो इस समय दुष्प्राप्य है। मालतीमाधवमें शृङ्गाररस, महावीरचरितमें वीररस और उत्तररामचरितमें करुणरसका प्राधान्य है। करुणरसका प्रदर्शन करनेमें भवभूतिकी प्रशंसनीय क्षमता शक्ति और ऊँची उड़ानने अपनेसे इतर अन्य सभी कवियोंका अतिक्रमण कर दिया है। संस्कृत-साहित्यमें नाट्यशास्त्रके और अलङ्कारशास्त्रके अनुसार यद्यपि शृङ्गाररसका प्राधान्य स्वीकृत है; परन्तु "एको रसः करुण एव" (उत्तर० ३।४७) इत्यादि कहकर भवभूतिने करुणरसकी ही सर्वश्रेष्ठता अङ्गीकृत की है।

भवभूतिके इन तीनों ही नाटकोंका अभिनय कालप्रियनाथकी मूर्तिके सम्मुख किया गया था। कालप्रियनाथ शिवजीका ही एक दूसरा नाम है। इसीका महाकालनाथ, महाकालवपु, महाकालनिकेतन आदि नामोंसे भी रघुवंश और मेघदूत आदि ग्रन्थोंमें वर्णन मिलता है। यह उज्जैनका अधिष्ठातृ-देवता मालूम होता है। लोग कहते हैं, इस समय भी उज्जैनमें, शिप्रा नदीके किनारे, महाकालका एक अच्छा बड़ा मन्दिर मौजूद है। अधिक सम्भव है कि, महाकविके सुन्दर नाटकोंका प्रथम अभिनय यहींपर किया गया हो।

भवभूति संस्कृत-साहित्यके प्रकाण्ड पण्डित थे। संस्कृतके भाषाशास्त्रपर उनका परिपूर्ण आधिपत्य था। इसके सिवा वे व्याकरण, न्याय, मीमांसा आदिके भी उद्भट विद्वान् थे। "पदवाक्य-प्रमाणज्ञः" लिखकर भवभूतिने कोई झूठी आत्मश्लाघा प्रख्यापित नहीं की है। जब इनके पाण्डित्यका प्रभाव चारों ओर फैल गया, तब ये उज्जैनकी राजसभाके पण्डित हो गये, ऐसी बहुत लोगोंकी धारणा है। परन्तु इनके समालोचक बड़े कड़े थे अथवा इन्हें उस आत्मसम्मान और गौरवसे भी यथेष्ट सुख और सन्तोष नहीं प्राप्त हुआ था, ऐसा मालूम होता है, जिससे ये उदासीन और दुःखी रहते होंगे। मालतीमाधवमें इन्होंने स्वयं लिखा है—

"ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञाम्,
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा,
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥"

कुछ भी हो, जीवित अवस्थामें भवभूतिने सम्मान पाया हो या नहीं; किन्तु मृत्युके बाद तो भवभूतिको ऐसा सम्मान प्राप्त हुआ कि, सदाके लिये अमर हो गये।

"नास्ति येषां यशः काये जरा मरणजं भयम्।"

'जिनके यशारूपी कायमें बुढ़ापे और मृत्युतकका भय नहीं रहता।' भवभूतिके भक्तों और पुस्तकोंका वर्णन

---

* अपने गुरुका प्रशंसात्मक परिचय इन्होंने इस प्रकार दिया है—
"श्रेष्ठः परमहंसानां महर्षीणामिवाङ्गिराः। यथार्थनामा भगवान् यस्य ज्ञाननिधिर्गुरुः।"
—वीरचरित

बालरामायण, सरस्वतीकण्ठाभरण, प्रचण्डताण्डव और साहित्य-दर्पण आदि संस्कृतके बहुतसे ग्रन्थोंमें मिलता है।

उनके पाण्डित्य और सर्वतोमुखी प्रतिभाका नमूना देखिये—

"विद्याकल्पेन मरुता मेघानां भूयसामपि।
ब्रह्मणीव विवर्तानां क्वापि विप्रलयः कृतः॥"

(उत्तर० ६ अंक)

यह मानी हुई बात है कि, शङ्कराचार्य ही विवर्तवादके आदि प्रवर्तक थे। उनके जन्मके पूर्व इस प्रकार विवर्तवादके सम्बन्धमें लिखना वस्तुतः युगपत् आश्चर्यदायक और प्रखर पाण्डित्यका द्योतक है।

ईशावास्योपनिषद्में एक मन्त्र आता है—

"असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥"

अब जरा इसीसे मिलती जुलती और इसीके आधारपर लिखी गयी भवभूतिकी पंक्तियाँ देखिये। उनके अपने खास शब्द ये हैं—

"अन्धतमिस्रा ह्यसुर्या नाम ते लोकाः तेभ्यः प्रतिविधीयन्ते ये आत्मघातिनः इत्येवं मन्यन्ते ऋषयः।

(उत्तर० ४ अंक)

भवभूतिकी भाषामें नवीनता है। पदोंमें भावुकता तथा शब्दोंमें भोलापन और मात्सर्य, दोनों ही अठखेलियाँ करते हैं। उनकी वर्णनशैली बड़ी ही अनूठी, अपूर्व और मनोमोहक होती है। कालिदासकी रचना प्रसादगुणमयी है। उनके भयङ्कर जंगलों और शान्त सरोवरों (दोनों ही तरह) के वर्णनोंमें प्रसाद गुण पाया जाता है। किन्तु भवभूतिने ऐसा नहीं किया। जिस स्थलपर जैसे वाक्यविन्यासकी या शब्दविन्यासकी जरूरत है, भवभूति उस जगहपर वैसे ही शब्दों और वाक्योंका प्रयोग करते हैं। अगर उन्हें भयानक वर्णन अभीष्ट है, तो भवभूति ऐसी रचना करेंगे, जो पढ़ने और सुनने, दोनोंमें ही पाठकों और श्रोताओंके हृदयोंपर भीति-सञ्चार कर दे। माधव जब आत्महत्या करनेके लिये श्मशानघाटपर आता है, तबका, श्मशानकी नदीका, वर्णन देखिये—

"गुञ्जत्कुञ्जकुटीरकौशिकघटाघूत्कारसंवलित-
क्रन्दत्फेरवचण्डधात्कृतिभृतप्राग्भारभीमैस्तटैः।
अन्तःशीर्णकरङ्ककर्परतरत्संरोधिकूलङ्कष-
स्रोतोनिर्गमघोरघर्घररवा पारेश्मशानं सरित्॥"

'श्मशानके दूसरे किनारेपर नदी बह रही है, जिसके तट-पर स्थित कुञ्जोंके भीतर उल्लू घूत्कार बोलीमें बोल रहे हैं। सियार ऊँचे-ऊँचे स्वरसे चिल्लाकर उस शब्दको द्विगुणित करते हुए और अधिक भयङ्करता पैदा कर रहे हैं। नदीके भीतर इधर-उधर मांस-रहित हड्डियाँ और कपाल गिरे हुए पड़े हैं।'

—मालतीमाधव ५।१९

इस सच्चे वर्णनपर ऐतिहासिक एलफिन्स्टन मुग्ध हैं और वे इसे भवभूतिके वर्णनोंमें सर्वश्रेष्ठ समझते हैं। भवभूति अपने ऐसे भयङ्कर वर्णनोंमें लम्बे-लम्बे समास तत्कृत, भूत, भैरव आदि कर्णकटु शब्दोंका ही प्रयोग प्रचुरता-के साथ करेंगे। इसके साथ ही उनकी सरस, सरल एवं सुन्दर भावपूर्ण रचनाका भी नमूना देखिये—

"अकिञ्चिदपि कुर्वाणः सौख्यैर्दुःखान्यपोहति।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः॥"

'प्रेमी मित्र कुछ भी न करे, किन्तु फिर भी अपने सुखों-द्वारा वह हमारे दुःखोंको नष्ट करता है। सचमुच जो जिसका प्रिय होता है, वह उसके लिये कोई अनिर्वचनीय वस्तु ही होता है।'

एक और—

"दलति हृदयं शोकोद्वेगाद्द्विधा तु न भिद्यते।
वहति विकलः कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम्॥
ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्।
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम्॥"

'शोकके कारण हृदय जरूर फट रहा है, किन्तु दो टूक नहीं हो जाता। शरीर व्याकुल होकर मोहको अवश्य प्राप्त हो रहा है, किन्तु चेतनाको नहीं छोड़ता है। शरीरके भीतर दाह

... रही है, किन्तु फिर भी भस्मीभूत नहीं हो रहा है; ... निर्दयतापूर्वक प्रहार कर रहा है, किन्तु जीवनको ... नहीं करता है।'

प्रकृति-पर्यवेक्षण भी भवभूतिने बहुत ही अच्छा किया है। ... और जड़, दोनों ही प्रकृतियोंका; परन्तु मानव प्रकृतिकी ... जड़ प्रकृति—जिसे हम प्राकृतिक जगत्के नामसे पुका-... है—का वर्णन अधिक और श्रेष्ठ है। ये प्राकृतिक वर्णन ...-से-एक बढ़कर हैं और वीभत्स तथा कोमल, दोनों ही ...ओंसे इनका वर्णन किया गया है। गोदावरीका तट, निर्जन ...आर, पञ्चवटी आदिके वर्णन इतने सीधे और आकर्षक ... कि, लोगोंकी यह निश्चित धारणा हो गयी है कि, भव-...तिने स्थान-स्थानपर पर्यटन करके अवश्य ही इनका ...र्यं अवलोकन किया होगा।

भवभूतिका प्रेमवर्णन सचमुच 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' है। ...में कामोत्तेजन नहीं है, कामुक प्रेमीकी भावना नहीं है, ...चित वासना नहीं है; वासनाका लेश भी नहीं। यह ...संस्कृत-साहित्यकी चीज है और भवभूतिकी अपनी विशेष-...ता। प्रेमका ऐसा पवित्र, सुन्दर तथा निर्मल वर्णन मैंने ...पूरे संस्कृत-साहित्यमें नहीं पाया, तुलसी और सूर जैसे ...क और प्रेमी कवियोंकी वाणीमें मैंने उसे नहीं देखा और ...मुझे पूर्ण विश्वास है कि, संसारकी किसी भी भाषाका कोई ...भी साहित्य उसकी बराबरी क्या, छायातकका स्पर्श नहीं ...कर सकता है। उत्तरचरित पढ़ते-पढ़ते कहींपर तो स्पष्ट ...दिखाई देता है—"प्रेमके साहित्यमें, भाषा नहीं हैं, ...प्राण हैं।"

वास्तवमें जो व्यक्ति प्रेमकी शुद्ध मन्दाकिनीमें गोते ...लगाना चाहता हो, उसे मैं कम-से-कम एक बार उत्तरराम-...चरित पढ़नेकी व्यक्तिगत रूपसे सम्मति जरूर दूँगा।

...करुणरसके वर्णनमें भवभूति अपना सानी नहीं रखते ...और उनका स्थान सुरक्षित है। एक स्थलपर राम कहते हैं—

"न किल भवतां देव्याः स्थानं गृहेऽभिमतं ततः।
...तृणमिव वनेशून्ये त्यक्ता न चाप्यनुशोचिता॥

चिरपरिचितास्ते ते भावास्तथा द्रवयन्ति माम्।
इदमशरणैरद्यास्माभिः प्रसीदत रुद्यते॥"

'नागरिको, तुम्हारी इच्छा नहीं थी कि, सीता मेरे घरमें रहे; इसलिये मैंने तृणके समान परवाह न करते हुए निर्जन वनमें उसे भेज दिया और दुःख भी प्रकट नहीं किया। किन्तु आज पुरानी बातें याद आ-आकर मुझे दुःखित कर रही हैं। मैं असहाय होकर रो रहा हूँ। तुम अब भी प्रसन्न हो जाओ अर्थात् सीताग्रहण करनेकी अनुमति दो।' (उत्तर० ३।३२)

राम रो रहे हैं, दर्शक रो रहे हैं; पर साथमें श्लोक, श्लोकका एक-एक चरण और एक-एक अक्षर रोता हुआ मालूम होता है। उस विलापको सुनकर जड़, चेतन, सभी सिसकियाँ और आहें भरने लगते हैं, तभी तो आजतक यह जन-प्रवाद प्रसिद्ध है—

"एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा।"

इनके कारुण्यवर्णनमें सहृदय हृदयोंका तो कहना ही क्या, पत्थर भी बेचैन होकर रोने लगते हैं।

भवभूतिने अपने नाटकों द्वारा नाट्यशास्त्रमें एक नये ही ढंगका निर्माण किया है और वह है—नाटकके भीतर नाटक-की अवतारणा करना। हमारे देशके साहित्यमें भवभूतिसे पूर्व किसीने ऐसी कल्पना नहीं की। यूरोपमें भी जिन लेखकोंने नाटकके भीतर नाटक दिखाया है, वे सब-के-सब भवभूतिसे बहुत बाद हुए हैं। इसलिये इस बातका भी सम्पूर्ण सम्मान और गौरव महाकवि भवभूतिके ही हिस्से पड़ता है।

भवभूतिके सामाजिक विचार उदात्त और उदार मालूम होते हैं। जहाँ लोग स्त्रियोंके पढ़ानेके विरोधी हैं, वहाँ भवभूति स्त्री-शिक्षा के पक्षपाती हैं। उनकी स्त्रियाँ (पात्र) प्रायः सभी सुशिक्षिता हैं। वे पर्दा नहीं करतीं। स्त्रियोंके विषयमें उनके नाटकोंमें अत्यधिक आदर पाया जाता है। एक स्थलपर अरुन्धतीके मिलनेपर जनक जैसे राजर्षि भी कहते हैं—

"जिनके सहवाससे गुरुओंके भी गुरु वशिष्ठ अपनेको पवित्र समझते हैं, जो जगद्वन्द्या हैं, जो त्रिलोकीका मंगल करनेवाली हैं, उन देवीको मैं प्रणाम करता हूँ।"

रामचन्द्र सीताका सदा देवि कहकर ही सम्बोधन करते हैं और जब सीता कुछ कहना चाहती हैं, तब "राम, प्रसीदतु" (प्रसन्न होइये) कहते हैं। स्त्रियोंके सम्मानकी यह पराकाष्ठा है। मैं समझता हूँ, इससे अधिक सम्मान सभ्यताका दावा करनेवाली यूरोपीय जातियाँ भी आजतक नहीं दिखा सकीं। जब मैं देखता हूँ कि, आजसे शताब्दियों पूर्व, जब कि, यूरोपीय पादरियों और जनताकी यह धारणा थी कि, स्त्रियोंके हृदय ही नहीं होता, उस समय भी संस्कृति और हिन्दू लोग स्त्री जातिका इतना सम्मान करते थे।

भवभूतिके समयमें, समाजमें नरबलि और पशुबलि, दोनों ही दी जाती थीं। मालतीमाधवमें इष्टसिद्धिके लिये अघोरघण्ट द्वारा बलिदानके लिये मालतीको देवीके मन्दिरमें ले जानेका वर्णन मिलता है। उनके नाटकोंमें तान्त्रिक और बौद्ध धर्मकी बुराइयोंका दिग्दर्शन भली प्रकार किया गया है। सूक्ष्मदृष्टिसे देखनेपर ज्ञात हो जायगा कि, मालतीमाधवमें पूर्वोक्त दोनों धर्मोंकी बुराइयाँ और वीर तथा उत्तर-चरितमें वैदिक हिन्दूधर्मकी प्रशंसा बड़ी खूबीके साथ वर्णित है। उनके जमानेमें बौद्धोंने भी वेदोंका पढ़ना प्रारम्भ कर दिया था। और, दोनों धर्मवाले आपसमें मिलकर रहने लगे थे; क्योंकि ब्राह्मण मन्त्री भूरिवसु और देवरातने बौद्धकन्या कामन्दकी और सौदामिनीके साथ एक ही स्थानपर रहकर, एक ही गुरुसे, विद्याध्ययन किया था।

भवभूति ऊँचे दर्जे के कवि थे। वे कालिदाससे श्रेष्ठ हों या न हों; किन्तु यह तो निश्चित है कि, वे कालिदासकी टक्करके अवश्य थे। कोई और कवि उनकी प्रतिद्वन्द्विताकी श्रेणीमें भी आ सकेगा या नहीं, इसमें सन्देह है। परन्तु फिर भी जहाँ हमने उनके गुणों का विवेचन किया है, वहाँ हमें उनके दोषोंसे भी सर्वथा उदासीन और निरपेक्ष नहीं हो जाना चाहिये। भवभूतिकी कुछ आदत-सी मालूम होती है कि, वे श्लोकके बाद श्लोक लिखते जाँय। यह एक बुरी आदत है। इससे नाटकका स्वारस्य, मधुरिमा तथा ओज फीका पड़ जाता है। अबसे कुछ समय पूर्व पारसी थियेटर कम्पनियोंमें यही चलन था। उनका भी ऐक्टर सभी बातोंको गीतोंके ही द्वारा करता था, जो एकके बाद एक, एक ही प्रवाहमें गाये जाते थे। अब समय और सभ्यताके प्रवाहसे यह रीति बन्द-सी हो गयी है। उसके साथ ही भवभूतिके नाटकोंमें दीर्घ समास होनेके कारण उनकी रचना जटिल हो गयी है, जिसके कारण श्रोतापर शीघ्र प्रभाव नहीं पड़ता। कम-से-कम स्टेजपर खेले जानेवाले नाटकोंके लिये ये दोनों ही बातें भारी भूलें हैं।

तीसरी बात है, उनके नाटकोंमें हास्यरसका अभाव। सम्भव है और जैसा कि, कुछ लोगोंके विचार है कि, नाटकोंके विषय गम्भीर और उदात्त होनेके कारण भवभूतिने जानबूझकर इसका समावेश नहीं किया है। कुछ भी हो, परन्तु यह तो निश्चित है कि, हास्यरसके सम्मिश्रणसे दर्शकोंके मनकी थकावट दूर हो जाती है और उनका मनोविनोद भी हो जाता है; इसलिये उसका होना आवश्यक प्रतीत होता है।

भवभूति प्रयागके उस पावन तीर्थके समान हैं, जहाँ पुण्यसलिला गङ्गा, यमुना और सरस्वतीके समान सरस्वती देवीकी तीन वाग्धाराएं अविकल रूपसे प्रवाहित होती हुई आ मिलती हैं। भवभूतिको भगवान् शिवसे समृद्धि और ऐश्वर्य प्राप्त हुआ था या नहीं, यह सन्देहास्पद है; * किन्तु यह तो निश्चित है कि, संस्कृत-साहित्य उनके कारण सदाके लिये समृद्ध, सम्पन्न और गौरवास्पद अवश्य हो गया।

* "भवात् भूतिः ऐश्वर्यादिकं यस्य" अर्थात् भगवान् शिवसे जिसे ऐश्वर्य प्राप्त हुआ हो।

तराना-इमन

साहित्याचार्य 'मग'

शाहंशाह अकबरकी महफिल आज खास तौरपर सजायी गयी थी। शाही हुक्म था। बे-मुनासिबत बाहरके सब असबाब उस खुशनुमा मजलिसमें करीनेके साथ सजा दिये गये थे। बेगमोंने भी पर्देमें तशरीफ रखा था। शमा और कन्दिलें जल रही थीं। बीचमें बैठकर तानसेन तृषित नयनोंसे दुनियाका रूप पी रहा था। उसे विश्वास था कि, यही उसके सुखमय जीवनकी अन्तिम वेला है, आखिरी तमाशा है।

बादशाहने तख्तपर पर रखा। तानसेनने उठकर सूखे चेहरे कोर्निसें कीं और बादशाहका रुख पाकर कहा—"जहाँपनाह, अगर हुक्म बहाल रहा, तो आपका यह गरीब खिदमतगार फिर दूसरे वक्तके लिये बे-काम हो जायगा।"

जवाबमें बादशाहने तपाकके साथ जरा मूछें ऐंठीं।

तानसेनकी सब आशा धूलमें मिल गयी। सब अरमानें विदाई माँगने लगीं। वह एकान्त शान्त मानससे कुछ बुदबुदाने लगा—यही तो मेरी अन्तिम घड़ी है, फिर दिलकी कसक दिलमें ही क्यों रहे? क्यों न हौंसले मिटा लूँ! देखो मदान्ध बादशाह, तानसेन कितना गुणी है, आज देख लो!

तानसेनके तम्बूरा उठाते ही सारी महफिल गूँज गयी। कोने-कोनेमें झङ्कार थिरकने लगा; पर क्या किसी तमाशबीनको सूरतने भी उसे देखा? सब तो दंग थे, सबकी चेतना विलुप्त थी। एकाएक पानीके झोंकेसे कन्दिलें गुल हो गयीं। दर्शकोंके कुतूहलोंमें उत्सुकता छा गयी। स्वरलहरी परीजाद-सी अठखेलियाँ करने लगीं। उसके हृदयमें आनन्दोल्लास उँडेलने लगे। लोगोंकी अवसन्न चेतना ताल-तालपर बे-सुध होने लगी—सिर काँपने लगी। मैं सच कहता, वैसा समा देखनेका नसीब फिर कभी भी किसीको नहीं मिला।

धीरे-धीरे पानीके झोंके सूखने लगे। गीले वस्त्र गर्माने लगे। और थोड़ी देर बाद दर्शकोंके भी अङ्ग-प्रत्यङ्ग जरा-जरा जलने लगे। परन्तु, हृदय सबके शीतल थे; इसीलिये तो कोई भी उठनेका नाम नहीं लेता था—दिलकी इजाजत ही नहीं थी।

तानसेनकी स्वरलहरी षोड़शी हो उठी। उस अँधेरी महफिलमें उसकी उत्तुङ्ग-लास्य-लीलाको जिस-जिसने देखा, वह बावला बन गया। अकबर मस्तीसे झूमने लगा। करङ्कवाहिनीने उसके ताजपर ही बट्टा रख दिया।

तानसेनने एक बार फिर आलापा। जमीन काँपने लगी। सबके शरीर झुलसने लगे। त्राहि-त्राहि मच गयी; पर तानसेनके सिर भी तो शामत सावार हो चुकी थी। उसने अन्तिम टीप ली। कन्दिलें भकसे जल उठीं। सब ही आश्चर्य-विस्फारित नेत्रोंसे दीपक-रागका महत्त्व निरखने लगे; पर उसका खातमा केवल वहीं नहीं था। तानसेन चीख रहा था, उसके जिल्द कोड़लेपर राख छीटे-से हो चुके थे। बादशाह सलामत अपने रूमालसे हवा करने लगे और महफिल वाह-वाहके नोचेसे दर्द पैदा करने लगी!

(२)

तानसेन कदली-कुञ्जमें लेटा है—दिल्लीमें नहीं, बहुत दूर। उसके दर्दभरे जिल्द बेचैन हो रहे हैं। दुनियामें दूसरा तानसेन कौन था, जो उसकी दवा करता? उसको इस आशापर तो, न मालूम कब के पाले पड़ चुके थे।

वह अभी मारा-मारा फिर रहा है। अचानक वह पागल-सा चिल्लाने लगा, जमीनपर पड़ी मछली-सा तड़पने लगा। मानों मर्मस्थलके फफोलोंमें टीस पैदा हो गयी हो।

वह प्रदेश महाराष्ट्र था। सामने तपिशकी दरिया दुबली रेखा खींच रही थी। घड़ा लिये भले घरकी दो बहनें, वहाँ बैठी थीं। आपसमें कुछ दुःख-सुखकी बतियाती होंगी।

तानसेनको ऐसे बिलबिलाते देखकर एकने गम्भीर होकर कहा—"बहन, यह दीवाना निश्चय ही दीपक रागका जला मालूम पड़ता है।"

दूसरी—"हाँ, सचमें।"

तानसेन इनकी बातें सुन रहा था। वह बेतहाशा दौड़कर उन दोनोंके चरणोंपर आ गिरा। बोला—"बहन, मुझ अभागेका उद्धार करो। गर्म रेतमें लेट रहा हूँ, ठण्डेमें लिटा दो। मुझे विश्वास है, तुमने जब पहचान लिया तब बचा लोगी।"

उनने पूछा—"आपने ऐसा किया क्यों?"

तानसेन—"बादशाहका हुक्म था। मैं तानसेन हूँ।"

"तानसेन" उन दोनोंपर जादू कर गया। वे झेंप गयीं। बोलीं—आप पहले मेरे अतिथि बनें।"

× × × ×

शुद्ध मलार गानेवाली उन दोनों बहनोंने तानसेनको चङ्गा कर दिया। वह अब पूर्ण स्वस्थ है और अपनी उपकर्त्री के सामने घुटने टेककर प्रतिज्ञा कर रहा है कि, "तुम्हारा नाम, तुम्हारी मर्जीके खिलाफ, मैं किसीको भी नहीं बताऊँगा।"

आज्ञा लेकर तानसेन चला गया। उसकी खुशीका कोई ठिकाना था? कञ्चन-सा शरीर उसे अनायास ही मिल गया। लेकिन उन दोनों बहनोंके चेहरेपर मुर्दनी छा गयी। तानसेनके गृहाभिमुख प्रस्थानने उन दोनोंके हृदयमें अज्ञात भयको सञ्चारित कर दिया।

वे दोनों हिन्दू थीं और प्रोषितपतिका।

(३)

तानसेनने पुनः दरबारमें प्रवेश किया। अकबर निहाल हो गया। उसे सुध ही न रही कि, कुछ कहूँ। वह तो अपनी नवरत्नोंकी गद्दीको आज फिर भरा-पूरा, आबाद देखकर बाग-बाग हो गया था।

अकबरके दरबारमें फिर रौशनी आ गयी। क्या मजाल, जो कोई उससे कुछ पूछे? बिना रुख पाये खुद बादशाह भी पूछनेमें हिचकते थे।

दिन इसी प्रकार ऐशो-इशरतमें ही बीतते जाते थे, बादशाहको पक्की खबर लाख कोशिश करनेपर भी नहीं लगती थी। पूछे जानेपर, तानसेन कुछ इधर-उधरकी सुनाकर मौका टाल देता था।

किसी दिन बादशाह बेगम साहबाके साथ बैठकर शतरंज खेल रहे थे। दूरपर खड़ी तातारी बाँदियाँ पहरे दे रही थीं। गर्मीका मौसम था। खुली छतपर, केवल एक छोटी-सी जड़ाऊ शमादानसे मोमबत्तीकी मद्धो रोशनी निकल रही थी। अकबरको अभी खेलना पसन्द नहीं था, यह तो बेगम दिलरुबाकी ख्वाहिश पूरी करनेको बह बैठा था। बहुत दिनोंका बिछुड़ा तानसेन चुपचाप सब माजरा देख रहा था।

थोड़ी ही देर बाद खेलना बन्द हो गया और दुस्सा-जीका बाजार गर्म होने लगा। मियाँ-बीबी एक गुस्से हो गये, बेचारा तानसेन हर पहलूसे हारने लगा, तड़पने लगा। उसी दम बेगम साहबाने चटसे, छटकते मोमबत्तीको धक्का देकर दुपट्टा झाड़ दिया। रोशनी गुल हो गयी। दोनोंने जी भरकर कहकहे लगाये।

तानसेनने खलीतेसे चकमक निकालकर कहा—"हुजूर हुक्म हो तो बत्ती जला दूँ।"

अँधेरेमें बीबी साहबाको कुछ सूझा तो है ही नहीं, मजाकमें बोल उठीं—"क्या दीपक-रागसे?"

तानसेनने शर्माकर कहा—"चाहे जिससे हुक्म हो!"

...शाहने कहा—"अच्छा भला हो ।"

...मक हारकर तानसेनने रोशनी कर दी । बाद-...को फिर तानसेनको सारी दास्तान सुननेकी याद ...गयी । अबकी बार बहुत कोशिश करनेपर भी ...सेन सत्यताको नहीं छिपा सका ।

...सेनकी बातोंको बादशाहने गौरसे सुना । उसे उन्हीं ...दोनों बहनोंके साथ भेंट करनेकी ख्वाहिश हो गयी । ...शाहने दूसरे ही दिन हुक्म दे दिया कि, मैं ...की तरफ सैर करनेको जाऊँगा । मेरी सारी ...तैयार रहे ।

...शाहका हुक्म कौन टाल सकता था । तानसेनने ...हाथ-पैर पटका; कुछ हो नहीं सका । बादशाहकी सवारी ...निकली और प्रतिज्ञा-विमुख तानसेन अगुआ ...।

(४)

...समय दुर्दमनीय होता है; फिर जो शाहंशाह है, ...की बात कौन कहे ! उसकके साथ उसी जगह बादशाहने ...डाला, जहाँ पीड़ा-विह्वल तानसेन कभी छटपटा ...।

...शाहने गाँववालोंसे कहा—"सारी रियायाको मैं ...औलादकी तरह समझता हूँ । गुणियोंकी इज्जत करना ...है । फिर जो तानसेनकी जिन्दगीको कायम ...है, उसके अहसानका बदला मैं भला किस मुँहसे— ...चीज देकर अदा कर सकता । उन दोनों बहनोंको ...के साथ मेरे सामने पेश करें । मैं उन्हें खिल्लत ...।"

...शाहका सत्कार देखकर हो तो गाँववाले थर्रा उठे थे, ...किसे हिम्मत थी, जो उनके हुक्मको तामील न ...।

...दोनों बहनें पालकीपर चढ़कर बड़ी धाम-धामसे आयीं । ...भीतर ही रखी गयीं ।

दरबारियोंने कहा—"हुजूर, आखिर आपके इस सफरका नतीजा क्या हुआ । अगर ये दोनों कुछ गायँगी ही नहीं, तो सारी तकलीफ ही बे-मजा हो जायगी ।"

अकबर तो स्वयं उनका सङ्गीत सुनना चाहता था । दरबारियोंके कहनेपर उसने भी हुक्म दे दिया ।

पर्देके भीतरसे कलकण्ठ गूँज उठा । वह कामिनीकण्ठ था, आज तानसेन भी जिसका मुकाबिला नहीं कर सकता था । सब दंग हो गये । स्वप्नमें भी ऐसी आशा किसीको नहीं थी । वाह-वाहसे महफिल परेशान हो गयी । तानसेन खुद दे... गया ।

थोड़ी देर बाद वह वीणा-विनिन्दित स्वर बन्द हो गया; केवल वीणाका मञ्जुल निर्घोष ही शेष रहा ।

अकबरने मलारकी फर्माइश की । फिर वही स्वर-लहरी, वही स्वर्गीय सुन्दर निनाद थिरकने लगा । आकाशमें विद्याधरियोंका झुण्ड दाँतों तले अँगुली दाबने लगा । काले-काले बादल उड़-उड़कर, न मालूम कहाँसे, मतवाले हाथी-से जुटने लगे । मूसलाधार वृष्टि होने लगी । वह तपिशकी दुनिया उमड़ने लगी । भादोंका समा बँध गया ।

दोनों बहनें गानेमें मग्न थीं । उन्हें अपने तनोबदनकी भी सुध नहीं थी । वे तो अपनेको अभी संगीतमें नीर-क्षीर-सा मिला देना चाहती थीं । उस समय कितनोंने देखा—वीणाधारिणी भगवती भारतीकी दो मूर्त्ति जगतीतलमें अवतीर्ण हुई हैं !

अब सबके दाँत खटखटाने लगे, नदी बे-हद बढ़ने लगी, तब अकबरने गाना बन्द करा दिया । सबने कपड़े बदले । उन दोनों बहनोंको भी बादशाहने जड़ाऊ चदरें और अरबोंकी कामकी साड़ियाँ दीं । उन्होंने ले लिये

बादशाहने दरबार किया । उसमें उन दोनोंको उसने अच्छी खिल्लतें एवं जवाहरातका एक-एक सकीता दिया । फिर बड़ी इज्जतके साथ, पालकीपर बिठाकर वे बिदा कर दी गयीं ।

पालकी थोड़ी ही दूर आगे बढ़ी थी कि, उसके भीतरसे एक चीख निकली। कहारोंने पालकी रख दी। बाहरवालोंने अनुभव किया कि, भीतरमें कोई छटपटा रहा है।

पालकीका पर्दा हटाया गया। भीतरमें सचमुच वे दोनों बहनें कराह रही थीं, छटपटा रही थीं। उनके मर्मस्थलमें तेज छुरी चुभी हुई थी। तानसेनको उन्होंने बताया कि, "हम हिन्दू नारी हैं। हमारे पति विदेशमें हैं, उनकी गैरहाजिरीमें गाना और खासकर गैर शख्सके सामने गाना, हमारे धर्मके खिलाफ है। हम दोनों अशुद्ध हो गयीं। अशुद्ध शरीर द्वारा हम अपने पूज्य पतिको कलुषित नहीं कर सकतीं; अतः मेरे लिये यही एक रास्ता बचा हुआ है।"

देखते-ही-देखते वे अनन्तको ओर चल पड़ीं। तानसेन बहुत रोया-खीजा; पर अब क्या हो सकता था। बादशाहको भी बहुत दुःख हुआ।

इसीके यादगारमें तानसेनने एक रागिणी बनायी, जिसका नाम उन्होंने उन्हींके नामपर—"तारा-इमन" रखा।

कहते हैं, बिना इस रागको सीखे कोई सफल संगीतज्ञ नहीं हो सकता!

गुप्तेश्वरनाथ महादेव

बाबू हवलदारीराम गुप्त "हलधर"

बिहार प्रान्तके शाहाबाद जिलेकी दक्षिणी सीमा पलामू जिलेकी उत्तरी सीमाको स्पर्श करती है। दोनोंकी सीमाओंको प्रसिद्ध सोनभद्र नद अलग करता है। उसीके पास, सहसरामके दक्षिण, लगभग २४ मीलपर रोहतास नामका प्रसिद्ध किला है। यह विन्ध्य पर्वतकी कैमूर श्रेणीके एक उत्तुङ्ग शिखरके बीच, जो लगभग १४ कोस क्षेत्रफलका एक विशाल मैदान है, बना हुआ, अभी भी ज्यों-का-त्यों, दण्डायमान है। किलेकी रक्षाके लिये चौदहो कोसोंमें दृढ़ मोर्चाबन्दी, बड़ी चट्टानोंकी जोड़से बनी हुई हैं।

इसी दृढ़ किलेके नीचे, सात आठ मील पश्चिम और उत्तरकी ओर, एक पहाड़की बड़ी घाटी, घनघोर जंगलोंसे परिवेष्टित, है। इसीके 'गुप्ता खोह' में गुप्तेश्वरनाथ महादेव विराजमान हैं। इस खोहमें, रोहतास फोर्टके 'खिड़की घाट'से उतरकर जाना पड़ता है। मार्ग पैदल चलनेका है। कोई सवारी नहीं चल सकती। मार्ग जंगली दर्रों और घाटोंके कारण बड़ा संकीर्ण होता चला गया है। यह मार्ग फाल्गुन-शिवरात्रिके कई दिन आगे और कई दिन पीछे छोड़कर वर्ष भर प्रायः बन्द-सा रहता है। शिवरात्रिके अवसरपर 'गुप्ता खोह'में तीन-चार दिनके लिये एक बड़ा मेला लगता है। आस पासके हजारों यात्री शिवकी पूजा और दर्शनको आया करते हैं।

'खिड़की घाट'से लगभग सात-आठ मील चलनेपर यात्री उस खोहके उस भागपर पहुँचते हैं, जो 'सीताचूआँ'के नामसे विख्यात है। उसीके पास एक सङ्कीर्ण मार्गसे खोहके विशाल दर्रेमें उतरना पड़ता है, उसका नाम "पगु-ध्यान" है। "पगुध्यान" का विकट सङ्कीर्ण मार्ग हजारों फीट नीचे, विशाल दर्रेके पार्श्व भागसे होकर, कुछ वक्र गतिसे, नीचेको उतरा है। "पगुध्यान"के ऊपरी तलसे नीचे चलते हुए यात्री ठीक कबूतरकी तरह धीरे-धीरे चलते दृष्टिगोचर होते हैं।

'जयशङ्कर'के घोर निनादके साथ एक संग दस, बीस, पचास, सौ यात्री उतरना आरम्भ करते हैं। मार्गकी भयावह सङ्कीर्णता देखकर प्रथम तो यात्रियोंका कलेजा काँप उठता है; पर अपने अनेक साथियोंको नीचे ऊपर-देखकर वे कुछ ढाढ़स बाँधते हैं। कहीं-कहीं मार्गकी संकीर्णता ऐसी बेतुकी है कि, यात्रियोंको दोनों हाथोंके बल पाँवोंको लटकाकर आधारपर पहुँचना पड़ता है। बैठकर और हाथोंके बल चलकर उतरना तो आम बात है। उस समय सभी यात्री जोर-जोरसे यह वाक्य उच्चारण करते आगे बढ़ते जाते हैं —"पगुध्यान! मुख राम-राम" अर्थात् इस मार्गमें पाँवपर ध्यान रखो और मुखसे राम-राम कहते चलो। इस समय अपने गन्तव्य पथपर अग्रसर होनेके सिवा और कोई लक्ष्य नहीं रहता। एक दूसरेसे बातें भी नहीं करता। अबतक कि, कोई सङ्कट भय या जरूरी बात न आ पड़े शायद इसीलिये कि, बातके सिलेसिलेमें कहीं पदभ्रष्ट होनेसे कोई खतरा न हो जाय। नीचेसे ऊपर आँखें उठाकर देखनेसे पगुध्यान मालूम होता है कि, एक वृक्षके ऊपर सैकड़ों बन्दर, एक दूसरेकी पूँछ पकड़कर झूल रहे हैं। लोग कहते हैं, इसपर खतरा बहुत कम होता है। कभी-कभी किसीका लोटा या गठरी पीठसे छूटकर लुढ़क पड़ी है, तो उसे लोगोंने गिरते तो अवश्य देखा, पर वह कहाँ जाकर गिरी, इसका अनुमान न हो सका। मनुष्योंके गिरनेका अवसर कम आता है; इसीलिये कि, लोग ज्यादासे अधिक सावधान रहते हैं।

यात्री नीचे उतरकर उसकी जड़के पास, वृक्षोंकी सघन छायामें, कुछ देरतक विश्राम करते हैं।

'पशुध्यान' से उतरनेपर नीचे जंगलका एक ऐसा मैदान मिलता है, जिसकी चौड़ाई तो अधिक है; पर लम्बाईका पता ही नहीं चलता। जहाँतक दृष्टि जाती है, मैदान-ही-मैदान! उसके ऊपर पहाड़ है। इसका एक छोर पास ही, कई सौ कदम चलनेपर मिल जाता है। यह स्थान क्रमशः पतला होकर एक विशाल तालाबके ऊपर आ टिकता है। उसका नाम "सीताचूआँ" है। उसके अगल-बगलमें विशाल गिरिशृङ्ग, और सामने हजारों फीट ऊँची काली दीवार हैं। यहाँ दोपहरमें भी सूर्य्यकी किरणें कठिनतासे आती हैं। जल बेतरह बर्फकी तरह ठंढा। थके-माँदे गरमाये हुए यात्री इसमें गोता लगाकर ठिठुरने लगते हैं। जनश्रुति है कि, इसमें डुबकी लगाते ही गुप्तेश्वरनाथजी यात्रियोंकी थकावटको हरण कर लेते हैं।

लगभग चौथाई मील चलनेके बाद उस स्थानमें पहुँचते हैं, जहाँ बाबा गुप्तेश्वरनाथ महादेव एक लम्बी और विचित्र सुरंगमें विराजमान हैं।

"गुहा-सुरंग"में कोई अकेले नहीं घुस सकता, प्रायः आठ-दस आदमी मिलकर इस गुफामें प्रवेश किया करते हैं। एक दूसरेका बगलगीर बनकर इसमें प्रवेश नहीं किया जा सकता। प्रवेश करनेके पहले धोती छोड़कर सभी कपड़े उतार देने पड़ते हैं। धोतीको समेटकर कछौटा कसना पड़ता है। दर्शनेच्छु एक दूसरेके पीछे खड़े होते हैं। सबसे आगे और पीछे वही रहते हैं, जो कई बार दर्शन कर चुके हैं। दस आदमियोंके साथमें कमसे-कम दो या तीन मशालोंका रहना जरूरी है—एक आगे, एक पीछे और एक बीचमें। पीछेवाला पुरुष अगले पुरुषकी धोतीके फाँड़को अपने बायें हाथसे कसकर पकड़े रहता है। दायें हाथको सब प्रकार से मुक्त रखना पड़ता है, मानों मनुष्यका सीकड़ बन जाता है।

जब यह तैयारी हो जाती है, तब "जय गुप्तेश्वरनाथ"के घोर गर्जनके साथ दल "गुहा-खोह"के द्वारकी ओर चल पड़ता है।

द्वारतक आनेमें कोई कठिनाई नहीं। गुफाके द्वारपर किसी दानवीरने एक बड़ा पक्काका चबूतरा और मेहराबदार दरवाजा बनवा दिया है। यह बाहरसे देखनेसे ठीक वैसा ही मालूम पड़ता है, जैसे एक बड़े पहाड़में रेलकी सुरंग। सुरंग के ऊपर एक पिरामिडके आकारका हराभरा पहाड़, मस्जिदके गुम्बजकी नाईं, बहुत ही सुन्दर दीख पड़ता है। एक दो सीढ़ी पार करते ही एक प्राकृतिक राखका कुण्ड-सा मिलता है। लोग कहते हैं, यह भस्मासुरका कुण्ड है। आस-पासकी जनतामें यह आख्यायिका प्रचलित है कि, शिवजी भस्मासुरके खदेड़नेपर भागते-भागते इसी पहाड़में आये। बीचवाले सुरंगमें जा छिपे; पर आततायीने यहाँ भी पिंड न छोड़ा शिवजी कातर हुए। मोहनी-रूप भगवान्ने इसी द्वारपर भस्मासुरको "ता-तक-थइया" नाच नचाकर भस्म किया तब जाकर शिवजीको शान्ति मिली।

इस पौराणिक इतिहासका इस खोहके साथ क्या और कैसा सम्बन्ध है, इसका पूरा पता पुरातत्त्ववेत्ता ही लगा सकते हैं। मैंने तो जो देखा और सुना वही लिखा है।

हाँ, तो जहाँ "गुप्तेश्वरनाथ" विराजमान हैं, वहाँ एक बहुत विशाल शामियाना-सा दीख पड़ता है। उसको घेरकर सैकड़ों मनुष्य बैठ सकते हैं। "गुप्तेश्वरनाथ"का "शिवलिङ्ग" पाँच-छ फीट ऊँचा, पाँच-छः फीट घेरेका मोटा, अगाध बेलन-सा खड़ा है। ऊपर सिरेपर कुछ खोखला, हाँड़ीके समान, गर्त्त हो गया है। दर्शक गङ्गाजलकी शीशियाँ और द्रव्य उसीमें चढ़ाया करते हैं। पार्वती आदि निवासी ही उनके पुजारी हैं, जो द्रव्य हस्तगत करनेके लिये उसी जगह खड़े रहते हैं। दर्शक पूजा करनेके पश्चात्, कुछ हटकर, ऊपरकी ओर मुख खोलकर खड़े हो जाते हैं। ऊपरसे वहाँ बरगदकी लताके समान अनेक जटा-समूह लटकते रहते हैं। पानीकी बूँदे टपकती रहती हैं। यात्रीके मुखमें चार-पाँच मिनट या किसी-किसीके दस-पन्द्रह मिनटपर दो-चार पानीकी बूँदे टपक पड़ती हैं। अब यात्री अपनी यात्राको सफल मानता है।

उस स्थानमें पचासों आदमियोंका जमघट लगा रहता है। कोई-कोई दल ढोलक-झाँझ भी लिये जाता है। बैठकर मस्त हो भजन-गान भी करता है। बीच-बीचमें शिवबूटी भंग और गाँजेका दम भी लगता जाता है।

शिवजीके एक पार्श्वमें कोई नहीं जाता। लोग कहते हैं कि, उधर सुन्दर जलका झरना है, बाग है, बड़े-बड़े तपस्वी तपस्या किया करते हैं। पर उसमें घुसनेका अबतक किसीने साहस किया है कि, नहीं, अज्ञात है।

वहाँसे पुनः यात्री भीतर ही भीतर पातालगङ्गामें स्नान करनेके लिये प्रस्थान करते हैं। भीतर ही भीतर यह एक दूसरा मार्ग है, जो अन्य दिशाको जाता है, यह मार्ग चौड़ा है। तीन-चार व्यक्ति एक साथ चल सकते हैं। लगभग तीन-चार सौ गजके फासलेपर चाँदनी चौकके नामका एक स्थान मिलता है। आश्चर्य है कि, पहाड़के अन्दर एक सुन्दर शामियानेकी तरह भूमि कैसे बनी। लोग कहते हैं, यहाँ शिवजी ताण्डव नृत्य किया करते हैं। फिर आगे, एक सौ गजके फासलेपर, 'घुड़दौड़' नामका स्थान मिलता है। यह अच्छा लम्बा-चौड़ा है। लोग कहते हैं, यह शिवजीका घुड़दौड़का मैदान है। पास ही एक "तुलसी चबूतरा" नामका स्थान मिलता है। इसकी मिट्टी बिलकुल दूध-सी उजली है। यात्री इसमेंसे थोड़ी-बहुत मिट्टी इच्छानुसार ले आते हैं और उसे चन्दन लगानेके काममें लाते हैं।

वहाँसे कुछ दूर और आगे बढ़नेपर "चन्दनतालाब" और पातालगङ्गा मिलती हैं। "चन्दनतालाब" न जाने कितनी दूरतक फैला हुआ है। उसमें घुसनेके दो दरवाजे हैं। एक वह, जो केवल एक मनुष्य भर नीचे गिरनेका एक पोला भँवर है। दो जन दर्शक मिलकर स्नानेच्छुकको सीधे खड़े पाँव, दोनों हाथ थामकर, नीचे डाल देते हैं। वह धमसे पानीमें आ पड़ता है। उस जगह करीब एक-डेढ़ फुट पानी रहता है। स्नानकर्ता भीतर हो, जितने जलमें चाहे, स्नान कर सकता है। उस गर्त्तमें भी मशाल देनेकी जरूरत पड़ती है। दो-चार मशाल भुक-भुककर जलते ही रहते हैं। उस गह्वरमें वह तालाब कहाँतक गया है, किसीको पता नहीं। हम लोगोंने बीसों गज आगे बढ़कर, भर-छाती पानीतक जाकर देखा है। आगे बढ़नेका साहस नहीं पड़ा। उसमें एक साथ बीसियों मनुष्य स्नान करते देखे जाते हैं। लोग कहते हैं कि, यहाँ गङ्गाका स्रोत आकर मिलता है। शिवजी यहीं स्नान किया करते हैं। इसीको लोग पातालगङ्गाके नामसे भी पुकारते हैं। निकलनेका एक दूसरा मार्ग पास हीमें है। वह भी एक भँवर है।

इसके अतिरिक्त भीतरमें और भी कितनी ही सुरंगें हैं; पर उनमें जानेका बहुत कम लोग साहस करते हैं। उनको देखनेका आग्रह करनेपर कहा जाता है कि, कई बार धोखा हो चुका है। मार्ग भूल जानेसे शीघ्र निकलना कठिन हो जाता है। सुना गया है, कोई-कोई भटका हुआ व्यक्ति चार-चार, पाँच-पाँच दिनों बाद ज्यों-का-त्यों निकल पड़ा है। शिवरात्रिके कई दिन आगे और कई दिन पीछे हो, लगभग एक सप्ताहतक, उसमें मनुष्य प्रवेश कर पाते हैं, अन्यथा नहीं। मेलेके दिनोंमें आजतक किसी हिंसक पशु तथा साँप आदिके द्वारा किसीको क्षतिग्रस्त होते या मरते नहीं सुना गया है। हाँ, कभी-कभी गिर पड़नेसे कुछ जखम होते देखा जाता है। गुफाके अन्दर सब मिलकर लगभग एक मीलका चक्कर लगाना पड़ता है। घूम-घामकर लौटनेमें डेढ़-दो घण्टे अवश्य लग जाते हैं। बाहर निकलनेपर आनन्दकी सीमा नहीं रहती।

पहली बार प्रवेश करनेपर बड़ा भय मालूम होता है। मैं तो चिल्ला उठा था "मुझको बाहर निकालो, मैं न जाऊँगा, मरनेकी नौबत है, ऐसे दर्शनसे बाज आया।" पर साथियोंने नहीं छोड़ा। साहस देते हुए ले चले। भीतर जानेसे आनन्द और कौतुकसे मन नाच उठा था। सबसे अधिक आनन्द तो तब हुआ, जब कुशलपूर्वक बाहर लौट आया। यही नहीं, अब बार-बार प्रवेश करनेका जी चाहता है।

कहा जाता है, यहाँका बड़ा भारी माहात्म्य है। लोगोंकी मानसिक लालसाएँ पूरी हो जाती हैं। ऐसे लोग यहाँ प्रायः प्रति वर्ष आया करते हैं।

दूरके यात्रियोंको डेहरी आन सोन ईस्ट इंडियन रेलवेके स्टेशनपर आना चाहिये। वहाँसे एक छोटी लाइन, डेहरी रोहतास रेलवेके नामकी, रोहतास फोर्टके पासतक जाती है। रोहतास फोर्ट भी एक भारतीय शिल्प-कला और प्राचीन दुर्ग-निर्माण-विद्याका अच्छा नमूना है। यह प्राचीन सौताल, हिन्दू तथा मुसलमान राजाओंका क्रीड़ा-क्षेत्र रह चुका है। दर्शकोंको दोनों स्थानोंके अवलोकनका अच्छा अवसर मिलेगा। इसी रोहतासके 'खिड़की घाटसे' 'गुप्तेश्वरनाथ' तक आना होता है। यहाँतक आनेके लिये एक मार्ग सस-रामसे भी है।

"गुप्ता-खोह"के विषयमें आसपासकी जनतामें अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है, इस खोहमें अभी भी बड़े-बड़े ऋषि-मुनि तपस्या कर रहे हैं। भीतर, फाटके अन्दर, अनेक तपस्याके उपयुक्त स्थान हैं। कोटमें गंगाकी धारा आकर मिलती है। जब कोई राह भूल जाता है, तब शिवजी उसको ज्यों-का-त्यों बाहर कर देते हैं। उसके भीतर चाहे कितने दिन रहे; पर उसके स्वास्थ्यमें क्षति नहीं पहुँचती।

यहाँ पुलिसके कुछ सिपाही आते हैं सही, पर कोई उत्तम प्रबन्ध नहीं। सेवा-समितियोंकी पहुँच भी यहाँतक नहीं है। मशालकी जगह प्रचलित लाइटका प्रबन्ध यदि गुफामें हो जाय, तो बड़ा सुभीता हो। लाइट होनेसे भीतरकी सभी वस्तुएँ साफ-साफ देखी जा सकेंगी।

यात्रियोंके रहनेके लिये वृक्षों और खुले आकाशके सिवा कोई दूसरा आश्रय नहीं है। जब कभी वर्षाकी झड़ी आ जाती है, तब बेचारोंको बड़ी ही मुसीबतका सामना करना पड़ता है। कुएँमें भी काफी पानी नहीं रहता। झरना भी दूर है। प्रतिवर्ष कई हजार यात्री, लगभग एक सप्ताह, इस अरण्यमें जीवन-यापन किया करते हैं। पर अबतक इन असुविधाओंका अन्त नहीं हो सका है। यह बेचारे यात्रियों-का अभाग्य है। इस गुप्त स्थानका पता हमारे दानवीर मारवाड़ियों और बड़े-बड़े उदार धनियोंतक नहीं पहुँच सका है। देखा जाता है, इन लक्ष्मीपात्र मारवाड़ी सज्जनोंने अनेक ऐसी जगहोंमें धर्मशालाएँ और कुएँ आदि बनवा दिये हैं। ऐसी दशामें यदि उनसे उक्त स्थानके निरीक्षणके लिये अनुरोध करूँ, तो बेजा न होगा।

इस स्थानके इतिवृत्तकी जाँच पुरातत्त्ववेत्ताओंके द्वारा हो, तो बहुत-सी नयी बातें ज्ञात होनेकी सम्भावना है।

चाक्षुषी विद्या

प० यदुनाथ तत्त्वनिधि

मेसमेरिज्म (Mesmerism) या हिपनाटिज्म (Hypnotism) में तीन तरहके कौशलोंकी प्रधानता है। उनमें प्रखर-दृष्टि-कौशल ही अन्यतम है। ऐसी दृष्टिका नाम मैगनेटिक गेज़ (Magnetic gazo) या डिनामिक आई (Dynamic eye) है।

इन दिनों जैसे मेसमेरिज्म जाननेवाले दूसरेके नेत्रोंमें अपनी दृष्टिका संयोग करके, उसे सम्मोहित करते हैं और नानाविध आश्चर्य-जनक कार्य कर डालते हैं, वैसी ही प्रक्रिया द्वारा स्तम्भन-वशीकरणादिका क्रिया आजा महाभारत (शा० पर्व, अध्याय ३२०) में भी मिलता है। इस विद्याका नाम महाभारतमें चाक्षुषी विद्या है। इसके प्रवर्तक या प्रचारक मनु, चन्द्र, विश्वावसु इत्यादि ऋषि कहे जाते हैं।

महाभारतमें एक जगह लिखा है कि, सुलभा नामकी परिव्राजिकाने राजा जनककी ज्यों-ज्यों बड़ी तारीफ सुनी; त्यों त्यों उसे जनककी विदेहता तथा जीवन्मुक्तताके विषयमें सन्देह होने लगा। उसने अपने मनमें कहा कि, जो राज्य-सुखका अनुभव कर रहा है, विषय-वासनामें लिप्त है, वह भला क्योंकर योग कर सकता है! लेकिन जनक विदेह कहलाते हैं, महा योगी कहलाते हैं, बड़े ही आश्चर्यका विषय है! यही सब सोच-विचार कर उसने मनमें ठान लिया कि, चलूँ उनकी परीक्षा ले आऊँ।

वह मिथिला गयी। ब्रह्मवादिनी होनेके कारण उसका राजसभामें भी प्रवेश हो गया। वहाँ उसने पहले जनकपर इसी विद्याका प्रयोग किया।

महाभारतमें लिखा है—

"सुलभा तु स्वधर्मेषु मुक्तो नेति ससंशया।
सत्त्वं सत्त्वेन योगज्ञा प्रविवेश महीपतेः॥
नेत्राभ्यां नेत्रयोरस्य रश्मीन् संयम्य रश्मिभिः।
सा च सञ्चोदयिष्यन्ती योगबन्धैर्बबन्ध तम्॥"

यानी 'जनककी जीवन्मुक्तताके विषयमें सन्देहग्रस्त होकर सुलभाने, अपने बुद्धियोगसे, जनकके शरीरमें प्रवेश किया। उनकी नेत्र-ज्योतिको अपनी नेत्र-ज्योतिसे संयत करके उसने जनककी आत्माको योग-बन्धनमें आबद्ध कर दिया।'

मिथिलाधिपति वास्तवमें राजर्षि थे, महायोगी थे। वे सुलभाकी हरकतको ताड़ गये। बोले—"देवि, आप कौन हैं, मेरे शरीरमें आप जबर्दस्ती क्यों प्रवेश कर रही हैं। यदि संन्यासिनी हैं, तो यह कार्य आपके योग्य नहीं है। यदि नहीं, कुल-कामिनी हैं, तो भी आपने अनुचित किया। आप कोमलाङ्गी हैं, मृदुल लतिका-सी सलोनी हैं, मत्त यौवना हैं सही; पर आप सधवा हैं या विधवा ज्ञात नहीं होता। यदि सधवा हैं, तो मुझसे संयोग प्राप्त कर आपने पातिव्रत्यको नष्ट कर दिया। यदि विधवा हैं, तो आपने ब्रह्मचर्य भ्रष्ट किया। यह भी नहीं, कुमारी या ब्राह्मणी हैं, तो आपके वर्णाश्रम धर्ममें व्यभिचार उपस्थित हुआ। कहिये आपके इस आचरणका क्या अभिप्राय है?"

राजाके ऐसे धार्मिक और कटु वचन सुनकर सुलभा अत्यन्त संक्षुब्ध हो गयी। स्त्री-सुलभ लज्जाके कारण वह जरा संकुचित और खिन्न होकर बोली—"राजन्, आप महायोगी हैं, इसलिये आपने अपने चित्तमें मेरा प्रवेश समझ लिया; लेकिन आपके ये सभासद् तो नहीं समझ सके होंगे, तब आपने इस बातको क्यों प्रकट कर दिया। यह तो मेरा अपमान हुआ। अस्तु।

"आपका यह कहना भी बेजा है कि, मैं धर्मभ्रष्टा हो गयी । आत्मा या सूक्ष्म शरीरका कोई लिङ्ग नहीं होता । मेरे सूक्ष्म शरीरका ही आपसे संयोग हुआ है । स्थूल शरीर तो मेरा ज्यों-का-त्यों सुरक्षित है; तब कैसे मैं धर्मभ्रष्टा हुई । आप अध्यात्म-वेत्ता होकर भी क्यों इस प्रकारका वचन उच्चारण करते हैं ?"

जनक सुलभाका उत्तर सुनकर अत्यन्त सन्तुष्ट और आनन्दित हुए ।

जिस प्रकार सुलभाने जनकके नेत्रमें अपनी दृष्टि स्थापित की थी, उसी प्रकार इन दिनों भी मेसमेरिज्ममें किया जाता है । इसे (Paramd) कहते हैं । जो पात्रक (Subjeot or meduim) होता है वही इस क्रियाको करता है ।

किसी पुराने समयमें विपुल नामक एक ऋषि थे । वे भी इस चाक्षुषी विद्यामें परम प्रवीण थे । उनके गुरुकी पत्नी अत्यन्त लावण्यवती और अनुपम सुन्दरी थी । उसका नाम रुचि था ।

विपुलके गुरुदेव सदा चिन्तित रहते थे कि, कहीं कोई दुष्ट इसे अपनी ओर आकृष्ट न कर ले । दुर्जनों द्वारा जब तारा तथा अहिल्याकी भी चित्त-वृत्ति बिगाड़ डाली गयी, तब इसकी कौन कथा—यह तो एक सामान्य नारी है । स्त्रियोंकी मनोवृत्ति ही रूपवान् युवाके सामने सहज ही डिग जाती है । यही सब सोच विचार कर वे सदा अपने शिष्य विपुलको उसकी रक्षाके लिये उपदेश दिया करते थे ।

कुछ दिन बाद उन्हें कठिन तपस्याके लिये, अदूर गहन कान्तारमें जाना पड़ा । तब वे बहुत चिन्तित हुए, किन्तु अपनी भार्या रुचिको शिष्यके हाथों सौंपकर वे कुछ निश्चिन्त भी हुए ।

देवराज इन्द्र ऋषिपत्नी रुचिके सौन्दर्यपर पहलेसे ही मुग्ध थे; किन्तु उन्हें साहस नहीं होता था कि, योगिराज मुनिकी उपस्थितिमें ही कुछ उत्पात मचावें । मुनिको बाहर गया हुआ समझकर वे मणिमय आभूषणोंसे मण्डित होकर और रत्नखचित वस्त्रोंको पहनकर बाँके पूरे रसिया बनकर रुचिके निकट जानेकी तैयारी करने लगे । इधर मुनिशिष्य विपुलने ध्यानयोगसे इन्द्रके सब कालेकारनामे जान लिये। उसने रुचिको एक आसनपर बैठाया और इसी चाक्षुषी विद्याके द्वारा उसे स्तम्भ कर दिया । चञ्चललोचना रुचि चित्रपटकी भाँति निश्चल हो गयी ।

देवराज यथासमय छैले बनकर आये, किन्तु यहाँ तो मामला ही बिगड़ा हुआ था । रुचि केवल निर्निमेष नयनोंसे देख रही थी—न उनका इस्तकबाल कर सकती थी, न उनसे मिष्ट सम्भाषण करनेके लिये ही जिह्वा हिला सकती थी। उसका भीतर दिल तो इन्द्रकी खूबसूरतीपर लट्टू हो रहा था; पर बेचारी लाचार थी । मन मसोसकर रह गयी। इन्द्रके भी करते-धरते कुछ नहीं हो सका । वे विपुलके अलौकिक प्रभावके आगे नतमस्तक हो गये । उनके दिलकी मुराद दिलमें ही रह गयी । वे डरकर बे-रंग वापस हो गये। विपुलने अपनी इसी चाक्षुषी विद्यासे गुरुपत्नीके धर्मको बचा लिया । यह कथा तन्त्रमें लिखी हुई है ।

तन्त्र-शास्त्रमें एक अध्याय त्राटकका है । इस त्राटकके अभ्याससे दृष्टि-शक्ति बढ़ती है, नेत्र-व्याधि नष्ट होती है और बुद्धिका विकास होता है । इस विद्यामें यदि सिद्धि लाभ कर ले, तो अतीन्द्रिय पदार्थ भी दीखने लगें, गन्धर्व अप्सरा आदिका साक्षात्कार होने लगे । शत-सहस्र योजन दूरवर्ती पदार्थ भी उसे निकटस्थकी तरह दिखे । यह त्राटक इसी चाक्षुषी विद्याका दूसरा नाम है ।

कुछ काल पहले इसी विद्याके द्वारा व्यभिचारी तान्त्रिक गण तथा कामरूप (आसाम)-वासिनी युवतियाँ अपने मनोरथोंको पूर्ण किया करती थीं । संन्यासी, बाबा तथा कबीरपन्थी आदिमें भी इस विद्याका प्रचार था । वे भी इसी प्रकार किसीको फँसाकर मनमानी मुराद हासिल किया करते थे ।

नयनोंमें सब शक्ति है और खासकर पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंकी दृष्टि-शक्ति तो बहुत ही प्रखर और ज्योतिर्मयी होती है । रतिपति मदनके जो मोहन, सम्मोहन आदि पञ्च

...ता हैं, वे विशेषकर स्त्रियोंके ही नयनोंमें रहते हैं। वे बाण जितने कोमल हैं, उतने ही निशित—पैने—भी। कामाख्या-निवासिनी स्त्रियाँ इसी विद्या द्वारा उन बाणोंपर प्रायः धार देती थीं और निरीह पुरुषोंपर वार किया करती थीं। बेचारे पुरुष भेड़-बकरोंकी तरह उनके वशमें हो जाया करते थे। ऐसे कथा बहुतेरे ग्रन्थोंमें है।

स्त्रियोंको स्वभावतः आकर्षणी शक्ति प्राप्त रहती है। सामान्यतया इसे विस्तारित करनेकी जरूरत उन्हें नहीं होती। कुमारी अवस्थासे ही उनकी नेत्रज्योति शनैः-शनैः तीक्ष्ण और प्रबल होने लगती है। दूसरेपर अपना प्रभाव डाल देना इनके लिये आसान काम है। नेत्रोंकी तरङ्ग...त कर ये सङ्गिमा उत्पन्न कर सकती हैं। नेत्रोंको ...से नचाकर न मालूम ये कौन-कौन-सी न भाव-भङ्गिमा ...दा कर सकती हैं! स्त्रियाँ यदि इस दिशामें प्रयत्न करेंगी, तो ...त ही शीघ्र अभ्यास कर लेंगी। हाँ, पुरुषोंको कुछ कठिन अभ्यास करना पड़ेगा, तब वे कहीं किसीको मोहित कर सकेंगे।

मनुष्योंकी अपेक्षा पशु-पक्षियोंमें दृष्टि-शक्ति अधिक ...तेज रहती है। अजगरकी इच्छा-शक्तिके विकासमें यही ...एक चातुर शक्ति प्रधान हेतु है। व्याघ्रकी दृष्टि शक्तिमें यह चमत्कार है कि, वह सम्मुखस्थ प्राणीको विमुग्ध और स्तब्ध कर डाले। इसी प्रकार बिल्ली और चूहेकी बात है।

मनुष्यको छोड़कर जितने जीव-जन्तु हैं, सबकी दृष्टि-शक्ति एक ही प्रकारकी होती है। इसका कारण यह है कि, उन सबकी आँखें एक ही प्रकारकी होती हैं; परन्तु मनुष्यकी आँखें एक प्रकारकी नहीं होतीं—किसीकी आँखें बड़ी हैं, तो किसीकी छोटी। नर-नेत्रोंमें चक्षुर्विकास-कौशल भी एक प्रकारका नहीं रहता है। किसीकी दृष्टिसे भक्ति, तो किसीकी दृष्टिसे घृणा और किसीकी दृष्टिसे विरक्ति द्योतित होती है।

इस विद्याके अभ्यासका अधिकारी वही पुरुष हो सकता है, जो कम-से-कम तीस मिनटोंतक निर्निमेषनयन होकर रह सकता है।

इस विषयपर तो बहुतसे ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं। बहुत तरहकी खोजें हो रही हैं। प्रायः सब उन्नत राष्ट्र इसके प्रेमी भी हैं; फिर भी मैंने जो इतना लिखनेका प्रयास किया है, उसका मतलब यह है कि, यह विद्या हिन्दुओंके लिये नयी नहीं है। हिन्दू-संस्कृति इससे बहुत लाभ, बहुत पहले ही उठा चुकी है।

मैं

शब्द सुनते ही सुधि भूल जाती, सुनता हूँ,
रहता नहीं है रञ्च निज तनका भी ज्ञान।

छेड़ते हो अब तुम शतदल-वन-बीच,
मोहन! मोहनवेश मञ्जु, मुरलीकी तान।

सम्भव है कि, होता हो; किन्तु वश मेरे आगे—
लेश न चलेगा, यहाँ मोमका नहीं है प्राण।

आओ, आजमालो यदि हो न यातमद तुझे,
मैं भी हूँ सुभट सिद्ध माया-मन्त्रका लो आन।

पं० गोविन्दप्रसाद शुक्ल

माधुरी

बाबू रघुनाथप्रसाद सिंह बी० ए०

"राजेश्वर !" बाहरसे किसीने आवाज दी ।

"कौन है ?"

"अरे भाई, खोलो भी तो, क्या आठ बजेतक सोये ही रहोगे । गजबका तमाशा करते हो ।"

"कौन भाई, मोहन ! आया, आया ।"

राजेश्वरने किवाड़ खोल दिया । दोनों मित्र खुलकर मिले । थोड़ी बातचीत कर लेने बाद राजेश्वरने पूछा—"कहो माधुरी कैसे है ?"

मोहन—हाँ, उसे अब ज्वर तो नहीं है, जरा-जरा कमजोरी है । आज उसने तुम्हें बुलाया है ।

राजेश्वर—भाईजान, मुझसे ही मजाक ! खैर, जब उसने बुलाया है, तब जाऊँगा ही ।

मोहन—सो तुम जानो । मैं तो भाई केवल संवाद-वाहक था ।

राजेश्वर—उसके भाई माधव आये ।

मोहन—ना; पर माधुरी माधवके लिये बेताब हो रही है ।

राजेश्वर—भाई-बहनकी प्रीति है तब क्यों नहीं ?

मोहन—लेकिन इस प्रीतिका भी अब खातमा होनेवाला है ।

राजेश्वर—क्यों, क्या उसकी शादी होने जा रही है ?

मोहन—हाँ, उसकी माँ मुझसे ही कहती थी कि, इसी फागुनमें शादी होगी । ओह, वह कैसा भाग्यवान् होगा, जो उसका करपीडन करेगा ।

राजेश्वर—तो क्या वह पढ़ना छोड़ देगी । अभी तो उसने मिडल भी नहीं पास किया है । माधवकी क्या राय है ?

मोहन—माधव तो बहुत ऊँचे खयालका है । उसकी तो ख्वाहिश है कि, बिना मैट्रिकुलेशन पास किये शादी न हो, परन्तु उसकी माँको यह सब पसन्द नहीं है । माधुरीका पर हाट-बाट, खुले आम सड़कोंपर इंगालिनकी तरह घूमना और अंग्रेजी स्कूलमें जाकर अँग्रेजी पढ़ना उसकी माँको नागवार मालूम पड़ता है । यह तो, माधवको ही धन्यवाद देना चाहिये, जो माधुरी इस साँचेमें ढल रही है ।

राजेश्वर—अच्छा, भाई मोहन, अब मुझे छुट्टी दो, ताकि मैं भी नित्यकर्मसे निपट लूँ । फिर कालेज भी तो जाना है ।

× × × ×

"मदन-सिनेमा-हाउस" आज ठसाठस भरा जा रहा है । आदमी-पर-आदमी गिर रहे हैं । बड़ी भीड़ है । सभी उत्सुक हृदयसे खेलके प्रारम्भ होनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं । इतनेमें ही रेशमीका कुर्ता पहने, ओक्सफोर्ड फैशनके बाल झाड़े, पेटेन्ट शू पहने, मुँहमें सिगार दबाये, साइकिलकी घंटी बजाते राजेश्वर भी आ पहुँचा । बान और अलबत्ताओंमें उसकी साइकिल, फाटकपर, एक फिटिनसे टकरा गयी ।

राजेश्वर कोचवानपर बहुत बिगड़ा । कोचवान भी उसे भला-बुरा कहने लगा । इतनेमें फिटिनके अन्दरसे एक कामिनी कण्ठने कहा—"कौन राजू ?"

राजेश्वर—वाह बड़े मौकेपर मिल गया । हाँ, मैं ही हूँ, माधुरी ।

राजेश्वरने साइकिलको पानवालेकी दूकानपर रखा और चार बीड़े पान लेकर माधुरीके पास आया । माधुरीको पान खिलाकर वह टिकट खरीदने चला गया । उसने उसी भीड़में पैठकर सेकेंड क्लासके दो टिकट खरीदे । फिर माधु-

...के फिटिनके पास आकर हकलाता हुआ वह बोला—"...तो मैं ले आया, परन्तु अभी खेलमें आधे घंटेका ...विलम्ब है। चलो, तबतक पार्कसे टहल आवें।"

"कोई हर्ज नहीं," कहकर माधुरी फिटिनपरसे इठलाती ...हुई उतर पड़ी। उसकी चाकलेट रंगकी साड़ी, मखमलके ...पर जूते और फूल-सने आलुलायित कुन्तल बरबस ...लोगोंकी आँखोंको अपनी ओर खींचने लगे। वह बल खाती ...हुई राजेश्वरके साथ चल पड़ी।

"...पार्क" बहुत ही खूबसूरत पार्क है। लहलहाती ...क्यारियों और सघन कुञ्जोंकी यहाँ भरमार है। प्रेमी-प्रेमि-...काओंके एकान्त विचरणका इतना सुन्दर और सस्ता ...स्थान किसीको कहीं विरला ही मिलता है। यह जोड़ी भी ...एक सुन्दर झाड़ीमें घुस पड़ी।

...देर बाद।

...खेल आरम्भ हो चुका। तालियोंकी गड़गड़ाहट सुनाई ...देने लगी। इस जोड़ीने अब कदम उठाये।

मोहन वहाँ पहलेसे ही बैठा था; पर तमाशा देखनेमें ...इतना मग्न था कि, वह इन दोनोंको नहीं देख सका। ...लेकिन जब रोशनी हुई और बिजली-सा; पर ठण्डा प्रकाश ...बत्तियोंकी ज्वालाओंसे निखरने लगा, तब मोहन एकबारगी ही ...चकित होकर उसे पहचाननेकी कोशिश करने लगा। पर ...क्या आज माधुरी वही माधुरी थी, आज तो वह बिना ...पंखों की परी थी। आखिर पहचानी आँखें मिल गयीं। उसके ...मुँहसे अनायास निकल पड़ा कौन—"माधुरी!"

उसी समय मोहनकी दृष्टि राजेश्वरपर भी जा पड़ी। ...उसने जरा तानेमें कहा "ओ हो तुम हो! यही तो मैं ...सोच रहा था कि, बिना राजेश्वरके अकेली माधुरी ...आयी कैसे!"

माधुरीने जरा आँख मटकाकर कहा—"प्रेममें एक ...आकर्षण शक्ति रहती है। देखो न, हम तीनों यहाँ कैसे ...इकट्ठे हो गये!"

खेल फिर शुरू हो गया। सबका ध्यान पुनः उसी तरफ चला गया। करीब १०॥ बजे खेल खतम हुआ। तीनों भीड़ चीरते हुए फिटिनके पास आ पहुँचे। माधुरी गाड़ीमें बैठ गयी। दोनों प्रेमी साइकिलपर सवार हुए।

माधुरीके मानस-पटलपर बहुत-सी बातें एक-एक कर आने लगीं। वह चिन्ताकी गहरी दरियामें उतराने लगी। हाँ, ...छोटी पार्ककी बातें सोचकर कभी-कभी वह जरा सिहर उठती थी।

× × × ×

प्रेम और वासनामें कितना अन्तर है। प्रेमीके हृदयमें स्वार्थ स्थिर नहीं रह सकता है, जैसे समुद्रके अतलस्पर्शी जलमें एक छोटी-सी कंकड़ी स्थायी विवर नहीं बना सकती। हाँ, वासना-कलुषित हृदय स्वार्थका पुतला होता है। मोहन और राजेश्वरमें यही अन्तर है।

माधुरीकी मधुरताके दोनों ही पिपासु थे; पर दोनोंके प्याले दो तरहके थे। मोहनका प्याला न मोहका था, न शृङ्गारका; बल्कि वह वासना-विरहित शुद्ध सात्त्विक प्रेम द्वारा विरचित हुआ था; लेकिन राजेश्वरके ओठमें ही कोई ऐसा विषाक्त भाव भरा था कि, वह अपने प्यालेको सहजमें ही खराब कर देता था।

मोहन एकान्त निश्चल नयनसे माधुरीके माधुर्यको निरखकर ही सन्तुष्ट हो जाता है। हाँ, बिना देखे उसे कल नहीं पड़ती है। उसका सीधा-सादा वेश और निश्छल प्रेम सबको लुभा लेता है। माधुरीके लिये मोहन जानतक दे सकता है।

राजेश्वर भी माधुरीका प्रेम-प्रसाद पानेको उतावला रहता है। वह उससे विवाह करना चाहता है, उसे पत्नीके रूपमें देखना चाहता है और उसके लिये अपना जीवनतक समर्पित कर सकता है।

लेकिन, मोहनकी सादगी और भव्यताको सब पसन्द करते थे। वह प्रतिदिन माधुरीकी कुंजी अवश्य खटखटा आता था, उसके बिना उसे चैन ही नहीं पड़ती थी। माधुरीको मां

यद्यपि पुराने ख़यालकी थी; पर वह भी मोहनकी सर-लतापर मुग्ध थी। मोहन उसीकी जातिका सम्भ्रान्त युवक था।

माधुरी भी मोहनको बड़े दिलमें रखती थी। वह उसे देखकर ही कुर्बान हो जाती थी। हां, मोहनकी आँखोंमें भी ग़ज़बका जादू था, जिसकी एक झलक ही माधुरीकी नस-नसमें बिजली छिटका देती थी।

राजेश्वर भी दो-चार दिनों बाद माधुरीकी खिदमतमें पहुँच जाया करता था; लेकिन उसे अपना घमण्ड था। वह खाली हाथ दरबारमें आना मुनासिब नहीं समझता था। किसी दिन तेल, किसी दिन इत्र या मेसक्रिन, पोमेड ही ही कुछ-न-कुछ लेकर वह माधुरीको प्रसन्न रखनेका प्रयत्न किया करता था। माधुरी इन वस्तुओंको लेनेमें हिचकती थी, शर्माती थी; लेकिन सभ्यताका पिशाच उसे उन वस्तुओंको लेनेके लिये विवश कर दिया करता था। वह चुपचाप ले लेती थी और नख़रेके साथ थैंक्स देकर कहा करती थी—"राजू, इन चीज़ोंकी क्या ज़रूरत थी।" चलती बेर राजेश्वर शेकहैंडके लिये हाथ बढ़ा देता था; परन्तु माधुरी इसमें शर्माती थी; लेकिन यहाँ भी नयी सभ्यता उसे हाथ बढ़ानेको विवश कर देती थी। कुछ तो उसे उपहार की वस्तुओंका भी ख़याल रखना पड़ता था।

माधुरीकी माँ राजेश्वरकी नस-नसको पहचानती थी। वह अपनी बेटीको राजेश्वरसे तख़लियेमें मिलनेका मौक़ा ही न देती थी। जब राजेश्वर आता था, तो वह ख़ुद उससे कुछ बतियाकर उठ जाती थी। बेचारा अपना-सा मुँह लिये लौट जाता था। हाँ, माधुरी ही कभी-कभी चुपा-चक्र, छिप लुक कर उससे मिल लेती थी।

× × × ×

मोहन बी० ए० की परीक्षामें सफलता-पूर्वक उत्तीर्ण हो गया। राजेश्वर अकुआ ही बना रहा। आज उसे अचानक ख़बर लगी कि, माधुरीकी शादी इसी पूनोमें मोहनके साथ होगी। उसके कलेजेपर साँप लोट गया। नस-नसमें बिच्छू पैनो डंक मारने लगा। उसने बिना सोचे-समझे ही माधुरी-के पिताके पास एक चिट्ठी लिख भेजी कि, "मोहन दरि-द्रका लड़का है, कुरूप है, अच्छे ख़ानदानका भी नहीं है। इसके हाथमें माधुरीको सौंपनेकी अपेक्षा अच्छा होता कि, उसे काटकर कुएँमें डाल देते!" पर, उसकी बातोंको किसीने भी नहीं सुना।

ठीक समयपर मोहन और माधुरीकी शादी हो गयी। वर वधूके साथ आनन्दसे अपने घरकी ओर गये। सबको यह जोड़ी ख़ूब पसन्द आयी। परन्तु इस विवाहसे केवल जीवनभर कुढ़ता रहा—राजेश्वर!

संस्कृत-प्रतिबिम्ब

प्रो॰ अक्षयवट मिश्र "विप्रचन्द्र"

किसी भाषाका दूसरी भाषामें अनुवाद करना कठिन कार्य है। एक भाषाकी सुन्दरता दूसरी भाषामें नहीं रहती। अनुवादमें केवल मूल पद्यका भाव मात्र प्रकट होता है। संस्कृतके पद्योंका हिन्दीमें अनुवाद करना भी उसी प्रकार कठिन है। संस्कृतमें प्रत्ययों तथा समासोंके कारण छोटे शब्दोंमें बहुतसे अर्थ आ जाते हैं। हिन्दी-भाषामें यह बात नहीं हो सकती; इसलिये संस्कृतके छोटे शब्दोंके अर्थ हिन्दीमें बहुत बड़े हो जाते हैं। उदाहरणके लिये 'पीताम्बर' और 'दाशरथि' को समझ लीजिये। यहाँ 'पीताम्बर' की व्युत्पत्ति इस प्रकार होगी 'पीतम् अम्बरं यस्य स पीताम्बरः' (बहुव्रीहि-समासः)। हिन्दीमें कहेंगे 'पीला है कपड़ा जिसका।' संस्कृतमें चार अक्षरोंसे जो अर्थ प्रकट होता है, वह हिन्दीमें नौ अक्षरोंमें प्रकट होता है। इसी प्रकार 'दाशरथि दशरथस्य अपत्यं पुमान् दाशरथिः, (दशरथ पुत्र)। इसका हिन्दीमें 'दशरथका पुत्र' इतना बड़ा शब्द हो गया।

संस्कृत-गद्योंका हिन्दी-गद्योंमें अनुवाद या परिवर्तन उतना कठिन कार्य नहीं है, जितना संस्कृत-पद्योंका हिन्दी-पद्योंमें अनुवाद या परिवर्तन करना। संस्कृतमें यमक तथा अनुप्रासयुक्त कविताका हिन्दीमें अनुवाद करनेसे यमकों, अनुप्रासोंका सौन्दर्य सर्वथा नष्ट हो जाता है। इसी कारण संस्कृत-कविताओंकी सुन्दरता हिन्दी-कविताओंमें स्थिर नहीं रह सकती। हाँ, अनुवाद करनेसे कविके हृदयका भाव पाठक समझ लेते हैं। नीचे जो अनुवाद लिखे हैं, उनमें भी ये बातें हैं। अब पाठकोंके अवलोकनार्थ मूल तथा उसका हिन्दी अनुवाद लिख देता हूँ। दोहोंका दोहोंमें ही अनुवाद किया गया है। इसमें मुझे कुछ सफलता मिली है या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता।

(दोहा)

श्रीराधाधवमाधव, श्रीसीताधव धीर ।
त्वां नमामि शिरसा सदा, धृतमत्स्यादिशरीर ॥१॥

माधव राधा हीयहर, सीता-वल्लभ धीर ।
मत्स्य आदि अवतारधर, नवौं हरन-भवपीर ॥२॥

श्रीरेवत्यावल्लभं, बलभद्रं बलिनञ्च ।
वन्देऽसितवसनं विभुं, मुसलिनं हलिनञ्च ॥२॥

रेवतिप्रिय मुसली हली, बली प्रबल बलराम ।
बन्दौं जगव्यापक सकल, कृष्णाग्रज सुखधाम ॥२॥

श्रीराधाराधवौ, भवबाधाशमनौ च ।
सन्ततुतान्मम मङ्गलं, निखिलदुःखदमनौ च ॥३॥

भवबाधागाधा-हरन, राधा राधापीय ।
दुख दारिद हरि विस्तरहु, मंजुल मंगल हीय ॥३॥

यमलौ समलौ चार्जुनौ, मुनिशापाद्धतौ च ।
हरिमुलूखले बद्धमपि, स्पृष्ट्वा दिवं गतौ च ॥४॥

यदपि समल जमलारजुन, रह्यो मुनीको शाप ।
ऊखलहि बाँध्यो हरि परसि, स्वर्गहिं गये सवाप ॥४॥

विकच कमल सदृशं मुखं, तव राधे प्रतिभाति ।
तत्परागलुब्धभ्रमर-सदृशो, हरिरवभाति ॥५॥

राधे प्रफुलित कंजसम, तव आनन रसऐन ।
तिहि परागलोभी भवँर, हरि गुंजत दिन-रैन ॥५॥

भाति राधिका मुखविधु—मृदुलहासकिरणेन ।
सखि चकोर इव राजते, कृष्णः स्थिरनयनेन ॥६॥

सोहत राधा चंदमुख, किरन हँसी मृदु कोर ।
ताकत जनु घनश्यामके, सखि, थिर नयन चकोर ॥६॥

राधामुखमति शोभते, मृगमदसुमतिलकेन ।
मध्यस्थितेन निर्मलं, विधुरिव तारागणेन ॥७॥

कस्तूरी बेंदी लिपत नीकी राधा भाल ।
जनु राजत ससिमधि सुभग, निरमय सूरज बाल ॥७॥

तस्या वदनं राजते, नासामौक्तिकेन ।
विधुमण्डलमिव निर्मलं, मध्यगतेन बुधेन ॥ ८ ॥

लटकत रुचिर बुलाकसों, वदनप्रभा सरसाय ।
मनहुँ मंजु निर्मल लसत, बुध विधु-मण्डल जाय ॥८॥

प्रसरितनीलकचव्रजे, वदनं सुषमामेति ।
यथा विदार्य तमश्चयं, पूर्णविधुः समुदेति ॥ ९ ॥

लसत वदन सुखसदन, करि—हूत उत कारे बार ।
तम विदारि मानहुँ उग्यो, सरद ससी सुखकार ॥ ९॥

अधरोऽसौ नासातले, परमकान्तिमायाति ।
यथा हेमनलिका पतित—माणिक्यं प्रतिभाति ॥ १० ॥

नासातर रसधर अधर, आभाधर सरसात ।
गिरो कनककी नालतें, मनु मानिक दरसात ॥ १० ॥

नयने खञ्जनगञ्जने, विजितनीलकमले च ।
कोर्केते तव राधिके, प्रपितकुरङ्गकुले च ॥ ११ ॥

कञ्जन खञ्जन मिरग कुल, मद गञ्जन छवि दैन ।
लसत मैन मद ऐनसे, राधे तेरे नैन ॥ ११ ॥

गुरुनितम्बलम्बी कचः, श्यामतरः प्रतिभाति ।
पातुं मुखचन्द्रामृत पन्नगगणः प्रयाति ॥१२॥

कारे बार नितम्बको, लहरि छटा सरसात ।
ससि मुख अधरामृत पियन, जनु पन्नगगन जात ॥१२॥

दृष्टा तस्याः करपुटे वेणी भाति तथैव ।
समुत्पतन्ती पङ्कजान्— मधुपावली यथैव ॥१३॥

तिय करसों बेनी गुहति, गहि हूत उत कच चीर ।
मनु पंकजसो उड़ि चली, भ्रमरावलिकी भीर ॥१३॥

बालान् स्नेह विवर्द्धितान् दृढमबला बध्नाति ।
कठिनचेतसामिति मर्षति, हा हृदि निर्दयाऽसि १४

बार बढ़ाय सनेहसों, बाँधति तिहि दृढ़ तोय ।
कठिन निरदयी तनिक तब, नाहि पसीजत जीय ॥१४॥

राजति कचपाशोऽसितो, मालत्या मुकुलेन ।
सजलनीलजलदो यथा, विमलबकस्य कुलेन ॥ १५ ॥

गुहे मालती सुमनसों सोहत कारे बार ।
मनहुँ सजल घन स्याममें, सेत बकनको धार ॥१५॥

चल राधे वृन्दावनं, कृत्वा द्रुतगमनानि ।
वादयते मुरलिं हरिः, श्रुत्वाऽनुभवसुखानि ॥१६॥

वृन्दावन चलु राधिके, वेग वेग धरि पाय ।
गावत मुरलीधर सुखद, मुरली मधुर बजाय ॥१६॥

रम्ये श्रीवृन्दावने, तरुवल्लीनिकरेण ।
हरिर्मुदा व्यहरच्चिरं, विविध विहङ्गमरेण ॥१७॥

वृक्षवल्लरी कुञ्जमें, विविध विहंगन संग ।
विहरत वृन्दा विपिन हरि, उमगत उरहि उमंग ॥१७॥

यमुनाकूलकदम्बतरु— तले स्थितः प्रमदेन ।
हरिरहरद् गोपीमनो, मुरलीमृदुनिनदेन ॥१८॥

जमुना तीर कदंब तर, ठाढ़ो प्रेमप्रमत्त ।
हरि बजाय मुरली मधुर, हरत गोपिकन चित्त ॥१८॥

चुम्बिताऽपि वदने मुरलि, गाढं परपुरुषेण ।
वंशजाऽहमिति किं नदसि, समदं गुरुदर्पेण ॥१९॥

चुंबन करि परपुरुषमुख, मुरलि तऊ मदान ।
अपनेको वंशज कहति, महामोद मनमान ॥१९॥

यद्यपि दिशि-दिशि विटपिनः, कुसुमयुता विलसन्ति ।
तदपि रसाल एव हृदि, कोकिलस्य निवसन्ति ॥२०॥

सोहत यद्यपि बहुत ही, चहुँ दिसि पादपमाल ।
तदपि सरस कोयल हृदय, भावत एक रसाल ॥ २० ॥

किं करीर विटपिनि वससि, सम्वदामि कीरेण ।
शुष्क वस चूते कम्पिते, त्रिविधेनसमीरेण ॥ २१ ॥

क्यों करील विटपन बसत, कीट छाड़ि निज पीर ।
विरमहु जाय रसाल कहँ, विहरत त्रिविध समीर ॥२१॥

यद्यपि हंसस्येव बक, सित रूपं धरसीह ।
पयसः पय आवर्जितुं, नांह शक्तिम्भरसीह ॥ २२ ॥

जदपि लह्यो बक हंसको, स्वेत रूप तनमाँहि ।
नीर छीर न्यारो करन, हेतू समरथ नाँहि ॥ २२ ॥

महात्मा चाणक्य और साम्राज्य-निर्माण

पं० श्रीरङ्ग शर्मा "विशारद"

आज संसार ब्राह्मणोंको जो समझे; पर इनका ऋण सबके सिर एक-सा है। कलाओं और विद्याओंके निर्माणमें, तो इनसे कोई लोहा ले ही नहीं सकता। हाँ, शासन-कार्यमें भी ये परम पटु थे। चाणक्यने एक छोटेसे जिलेको साम्राज्यमें परिवर्तित कर दिया था। चन्द्रगुप्तके राज्यको फारससे आसाम प्रदेशतक विस्तृत कर दिया था। सिकन्दर जैसे महान् विश्वविजयी सेनापतिको धता बताया था। भारतीय स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिये अनगिनत ब्राह्मणोंको तलवारके घाट उतरनेके लिये भेज दिया था।

जब कि, शिशुनागके हाथसे भारतकी बागडोर विदेशी यवनोंके हाथों चली गयी, मित्रतन्त्रोंका संघटन टूट गया, पोरस भी सिकन्दरका छत्रप बनकर डींग हाँकने लगा; तब तक्षशिलाके आसपासके बाशिन्दे ब्राह्मणोंने भारतमें पुनः देशी राज्य स्थापित करनेके लिये, बगावतका झण्डा बुलन्द किया। उस विद्रोही दलका अगुआ बना आचार्य चाणक्य। इसी ब्राह्मण चाणक्यने चन्द्रगुप्तको गद्दीपर बिठाया था और सिकन्दरको मार भगाया था।

चाणक्य ब्राह्मण था। इसका जन्म ईसासे सोल सौ वर्ष पूर्व हुआ था। इसकी शिक्षा-दीक्षा तक्षशिलामें हुई थी। इसने अभ्यासपूर्वक तीनों वेदोंको पढ़ा था; सम्पूर्ण शास्त्रोंका मनन किया था; युद्ध-नीति-कूटविद्या, मन्त्रविद्या और देवविद्याका भी परिशीलन किया था। यह देखनेमें अत्यन्त कुरूप था और काला। इसके बचपनकी एक कथा है कि—माँको एक दिन रोते देखकर इसने रोनेका कारण पूछा। माँने बताया कि, "तुम्हारे मुँहमें एक दाँत है, जिसका फल राज्य-लाभ करना होता है। जब तुम राजा हो जाओगे, तब मुझे क्यों पूछने लगोगे।" चाणक्यने अविलम्ब उस दाँतको उखाड़ फेंका और माँकी ओछी शंकाको भी उन्मूलित कर दिया। तभीसे इसका एक नाम "खण्डदन्ता" भी लोकमें प्रसिद्ध है।

विद्याध्ययन समाप्त करनेके उपरान्त, नौकरीकी खोजमें, चाणक्य पाटलिपुत्र आया। उस समय अन्तिम धननन्द जी खोलकर दान दिया करता था। धननन्दकी भुक्तिशालामें याचक ब्राह्मणोंकी भीड़ सदा बनी ही रहती थी। चाणक्यने सोचा यदि नौकरी नहीं, तो कुछ धन तो यहाँ अवश्य ही मिल जायगा।

पाटलिपुत्रमें धननन्दके दुश्मनोंने जब देखा कि, यह ब्राह्मण बड़ा ही कट्टर है और साथ ही अगाध विद्वान् भी; परन्तु कुरूप है, तब उन लोगोंने उसके द्वारा अपना कार्य साधना चाहा। अधिकारियोंने किसी प्रकार भुक्तिशालाके प्रधान आसनपर उसे ला बिठाया। धननन्द आया और उसकी कुरूपतासे चिढ़कर उसे नौकरों द्वारा बाहर निकाल दिया। वह गर्वीला ब्राह्मण अपने इस अपमानसे तलमला उठा। उसी दम शिखा खोलकर उसने प्रतिज्ञा की कि, जबतक मैं नन्दकुलको विनष्ट न कर दूँगा, तबतक अपनी इस खुली

शिखाको नहीं बाँधूँगा । क्रोधावेशमें वह दरबारसे यह बोलता हुआ बाहर निकला—

"जो मेरे परम शत्रु राजा नन्दका राज्य लेना चाहता हो, वह मेरे पीछे आवे ।" और तो कोई नहीं; पर चन्द्रगुप्त नामक एक क्षत्रियकुमार उसके साथ, यह सोचकर हो गया कि, चलो साथ चलनेमें क्या क्षति है । चाणक्य चन्द्रगुप्तको लेकर नन्दके परम शत्रु पर्वतकसे जा मिला ।

इतिहासके पन्ने उलटनेसे यह पता हो नहीं चलता कि, चाणक्यके सामने चन्द्रगुप्तका भी कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व था । चन्द्रगुप्तको यशोध्वजाको चाणक्यने ही फहराया था यानी उसे सारी विभूतियाँ चाणक्यके ही द्वारा प्राप्त हुई थीं ।

हाँ, तो चाणक्य अपमानित होकर प्रतिहिंसाकी आगमें जलने लगा, बदला लेनेको उतावला होने लगा । उसने बहुत लोगोंको अपनी तरफ मिला लिया । बहुतेरे राजा भी उसके सहायक हो गये । उनमें पिप्पलि वनियाँ, मौरिया, क्षत्रिया तथा राजकुमार चन्द्रगुप्त ही मुख्य थे । चाणक्य बहुत दिनोंतक वन-विहारोंमें मगधसे गान्धारतक घूम-घूमकर सेना तथा सहायकोंको जुटाता रहा । इसी भाँति उसने थोड़े ही दिनोंमें एक अच्छी सेना भी तैयार कर ली । मगधपर आक्रमण भी हुआ; पर पुरवासियोंने उसके हमलेको रोक दिया और उसकी सेनाको तितर-बितर कर दिया । फिर भी चाणक्य हताश नहीं हुआ ।

चाणक्यने किसी स्त्रीको एक दिन कहते देखा, वह अपने लड़केको झिड़क रही थी—"बीचसे रोटी मत खा ।" वह इस साधारण-सी ही बातसे अपनी भारी भूलको समझ गया । अबके वह सीमाप्रान्तकी तरफ बढ़ा । मगध-साम्राज्यमें हिस्सा पानेके लालची लाखों लोग उसे मदद देने लगे । जिनमें यवन, किरात, पारसीक तथा काम्बोज आदि जातियाँ मुख्य थीं । पर्वतक तो सर्वाग्र था ही ।

सर्वप्रथम चाणक्यने यवनोंको भारतसे मार भगाया, जिससे इसके अधीन सीमाप्रान्त तथा पञ्जाब हो गये । यवनोंके अत्याचारोंसे उद्वेलित जनता भी इसके पक्षमें आ जाती । इसी विचारके पोषक मि० जस्टिन साहब भी हैं ।

मगधपर आक्रमण करनेके पूर्व मित्र-सेनाओंने साम्राज्यके कई अङ्गोंपर अधिकार जमा लिया था । इस बार चाणक्यकी युद्धनीति और कूट-नीतिकी कुशलताके कारण धननन्द हार गया । साथ ही वहीं मृत्युकी गोदमें भी सोया । धीरे-धीरे चाणक्यने उनके वंशका भी मूलोच्छेद कर डाला । उसकी प्रतिज्ञा पूरी हो गयी, शिखा बँध गयी; परन्तु वह सन्तुष्ट नहीं हुआ । उसे तो धुन थी कि, किसी भी प्रकारसे चन्द्रगुप्त मगधको गद्दीपर बैठे और ये सहयोगी राजा लोग बे-रंग लौटा दिये जायँ । उसने किया भी ऐसा ही, भेदनीतिकी सहायतासे सब राजाओंको आपसमें लड़ा दिया । पर्वतक आदि राजा मार डाले गये । नन्दोंकी सेना चन्द्रगुप्तके हाथ लग गयी । मगर चाणक्यने ये कार्य राष्ट्रीयताके ही लगाव से किये थे ।

मगधका साम्राज्य मिल जानेके बाद भी चाणक्यने बहुत राष्ट्रोंको अपने वशमें कर लिया यानी एक विराट् साम्राज्यकी स्थापना उसने की । वृष्णि, काम्बोज आदि धीरे-धीरे दुर्बल होकर मिट गये । उत्तर भारतके कुलूतपति, चित्रवर्मा, मलयजनपदाधिपति सिंहनाद, कश्मीरके पुष्कराक्ष और मेघाक्ष आदि उसकी कूटनीति शिकार होकर अमात्य राक्षसके हाथों मारे गये । इन सबके राज्य मगधमें मिला लिये गये ।

चाणक्यने अपने अर्थशास्त्रमें लिखा है कि, "किसी संघको प्राप्त करना, राज्य जीतने या सैनिक सहायता प्राप्त करनेसे कहीं उत्तम है । संघोंके साथ साम और दामकी नीतिसे व्यवहार करना चाहिये, क्योंकि ये अजेय हैं । ये संघ दो प्रकारके होते हैं, वार्ताशस्त्रोपजीवी तथा राजशब्दोपजीवी ।"

हेमचन्द्रने "अभिधान-चिन्तामणि" में आचार्य चाणक्यके इतने नामोंका उल्लेख किया है—वात्स्यायन, मल्लनाग, कुटिल, चाणक्य, पक्षिलस्वामी, विष्णुगुप्त और अंगुल । इन नामोंका कोई इतिहास प्राप्त नहीं है ।

... ग्रन्थके आधारपर लोग इन्हें द्रविड़ कहनेका साहस करते हैं। इन्हीं नामोंमेंसे एक कुटिलने अर्थशास्त्र बनाया है। जिसका सम्पादन और प्रकाशन डाक्टर शाम शास्त्रीने किया है। इस ग्रन्थमें लेखकने स्वयं लिखा है—

"येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः ।
अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम् ॥"

विष्णुपुराणने कुटिल और चन्द्रगुप्तको एक साथ रखा है। पञ्चतन्त्रके लेखकने भी चाणक्यको ही अर्थशास्त्रका निर्माता बताया है। नन्दीसूत्रमें भी यही लिखा है। इसकी प्राचीनतामें सन्देह करना भी व्यर्थ है; क्योंकि मेगास्थनीजने भारतकी जैसी सामाजिक तथा राजनीतिक अवस्था बतायी है, वैसा ही वर्णन चाणक्यने भी किया है। कौटिल्य अर्थशास्त्र याज्ञवल्क्य-स्मृतिसे भी प्राचीन है। इसमें कोई सिद्धान्त नहीं अनुभूत बातें ही लिखी गयी हैं।

डा० जौलीने इस ग्रन्थको ईस्वी सन्‌के बादका और चाणक्यको एक साधारण सिद्धान्त-वादी ब्राह्मण माना है। इनके मतसे चाणक्य चन्द्रगुप्तके मंत्री नहीं थे; परन्तु प्रो० सत्यकेतु विद्यालङ्कार "मौर्य-साम्राज्य"में तथा जायसवालजीने "हिन्दू-राजतन्त्र" में इसका प्रतिवाद किया है। इन लोगोंके मतसे इस ग्रन्थके रचयिता चन्द्रगुप्तके मन्त्री चाणक्य ही हैं।

अर्थशास्त्रके अनुसार सम्राट्‌का अधिकार अत्यन्त संकुचित है। हर एक विभागके लिये अलग-अलग अध्यक्ष हैं। सरकार दो भागोंमें विभक्त है—केन्द्रीय तथा स्थानीय। सम्राट्‌के समय राजा पौर जनपदसभाओंसे सहायता लेता है। आवश्यकता उपस्थित होनेपर यह सभा धनसे भी सहायता करती है। केन्द्रित सरकारका संघटन अठारह महामात्योंके द्वारा होता है। ये सम्भवतः मन्त्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, पृद्रष्टा, नायक आदि हैं। न्यायालयके लिये कण्टक-शोधन (Crimanal) कानून हैं। नियोंत पौरस अधिक ध्यान दिया जाता है। विभागोंके लिये ... हो जाती है। गुप्तचरोंका एकत्रीकरण है।

चन्द्रगुप्तकी मृत्युके बाद चाणक्य चन्द्रगुप्त-पुत्र बिन्दुसारका महामात्य बना। यह जैन-ग्रन्थोंसे पता चलता है।

चाणक्य वृद्ध हो चला था। बुढ़ापेके कारण वह अकेला सब काम नहीं सम्हाल सकता था; इसलिये सम्राट्‌से आज्ञा लेकर उसने सुबन्धुको अपना सहायक अमात्य बनाया। इन मन्त्रियोंकी सहायतासे बिन्दुसारने कतिपय देशोंको जीतकर अपने राज्यका विस्तार बङ्गालकी खाड़ीसे लेकर अरबके समुद्रतक कर दिया।

पर सुबन्धुकी जब थोड़े दिनोंमें चढ़ी जम गयी, तब वह चाणक्यसे ही दुश्मनी करने लगा। उसने बिन्दुसारसे चाणक्यके विषयमें बहुत कुछ उलटा-सीधा कहा; किन्तु बिन्दुसारने इसकी पूरी खोज की और चाणक्यको निर्दोष पाया। इस घटनासे चाणक्य विरक्त होकर जंगलमें चला गया और वहीं संन्यासी हो गया। कहते हैं, उस समय वह जैनी हो गया था।

एक झोपड़ीमें जन्म लेकर चाणक्यने महा साम्राज्यकी स्थापना कर डाली; पर उसका मन धनकी ओर नहीं झुका। इतना भारी त्याग करना ब्राह्मण चाणक्यका ही काम था। वह विलासितासे बहुत परे रहता था। अपने अधिकारका दुरुपयोग कभी भी नहीं करता था। उसमें सच्चा ब्राह्मणत्व था।

चाणक्यका जीवन आपत्ति, घृणा, ताड़ना, उत्साह, महत्त्वाकांक्षा और विरागका सच्चा उदाहरण है। वह अपनी भूलको तुरत समझ जाता था और उसका उचित प्रतिकार भी अविलम्ब कर देता था। वह अपनी धुनका पक्का था। औरोंके लिये इसने क्या नहीं किया, किन्तु ब्राह्मणोंके लिये तो सब कुछ किया। जब कभी ब्राह्मणोंका सितारा एकदम गिर पड़ा था, वे सर्वत्र तिरस्कृत हो रहे थे; तब इस चाणक्यने ही इन्हें एक बार प्रोत्साहित किया तथा राजदरबारमें इज्जत दिलायी।

स्मिथ साहबने लिखा है—"दो हजार साल से भी अधिक हुए, जब कि, भारत-सम्राट् चन्द्रगुप्त वैज्ञानिक रहस्यको अच्छी तरहसे समझ गये थे। वे जितनी बातें जानते थे, उतनी जाननेको ब्रिटिश उत्तराधिकारी भी व्यर्थ आहें भरते हैं। मोगल सम्राटोंने भी उतनी पूर्णता नहीं प्राप्त की थी।"

यद्यपि चाणक्यका सम्पूर्ण जीवन क्रमबद्ध उपलब्ध नहीं हो रहा है; तथापि जितना प्राप्त है, उतना ही उनकी विमल विभूतिको सदा अक्षुण्ण बनाये रखेगा। चाणक्यकी तरहके कूटनीतिज्ञ आज कितने हैं। हाँ इसकी जोड़का कोई व्यक्ति भारतमें ही उद्भूत हुआ था—श्रीकृष्ण !

काकली
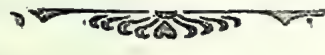
"क्या, इस जीर्ण कुटियामें, अब क्षणभर चरण न रखोगे नाथ ! मेरे शिथिल अञ्चलको क्या न भरोगे ! इन नन्ही-सी उत्सुक कलियोंको निराश ही कर दोगे !"

"हाँ, ऐसा ही कुछ।"

"तो क्या मेरे निरीह प्रेमको भी कुचल दोगे ?"

"हाँ, मैं आवारोंका दीवाना हूँ।"

"कैसे ?"

"मैं ठहरा देवदूत।"

"अच्छा, तो—देवनिकेतन !"

"नन्दन निकुञ्जका मन्दार।"

"तो क्या देवाधिवासी, ऐरे गैरेपर भी प्रेमकी छाप डाला करते ?"

"हाँ, रंगरलियोंमें फँसकर।"

"परन्तु, इस पातकका—प्रेम-विच्छेदका—किसे प्रायश्चित करना होगा ?"

× × ×

सौरभने मालीको भी बहुत बार सताया था। अबके उसके कण्ठ-स्वर आर्द्र हो गये, अनायास ही उसके सम्पुटित मुँहसे एक अव्यक्त स्वर निकल पड़ा—हाँ यही सच है !

"देवदूतको वसन्तका अनुचर होना होगा।"

पागल पहला पैर रख रहा था, फिर भी वह मतवाला जानेको उतावला हो रहा था।

"ठहरो परदेशी, तनिक और ठहरो। मेरी इस उजड़ती हुई कुटियाकी दो-चार कलिकाओंमें अपना अस्तित्व स्थापित करते जाओ, जिन्हें कभी तेरे चरणों पर चढा सकूँ।"

—अतरसनी

उन्माद

बाबू नर्मदाप्रसाद खरे

अभीतक मैंने सुना भर था कि, कोई प्रेमका पागल भी हुआ करता है। उसके पागलपनमें एक सुख रहता है—जिसका अनुभव वही करता है, जो प्रेमका पागल है। वह इस संसारमें रहता हुआ भी एक अनोखे संसारमें विचरण करता है। अभीतक मेरे लिये ये सब बातें एक स्वप्नके समान थीं; परन्तु अब मन-ही-मन सोचा करता हूँ, क्या मैं भी प्रेमका पागल हो गया; दीवाना हो गया !

मैं देखता हूँ कि, मेरा पागलपन बढ़ता ही जाता है। मैं किसीके ध्यानमें मग्न रहता हूँ। कभी कोई प्रेम-कहानी पढ़ा, कभी बैठा-बैठा कुछ लिखा करता या उसे स्वयं ही कई बार पढ़ा करता हूँ।

मैं पागल हूँ अवश्य; परन्तु लोगोंकी दृष्टिमें नहीं; क्योंकि काम-धाम करता हूँ, मिलता हूँ, जुलता हूँ; पर सदा ही किसीको अपने साथ लिये भी फिरता हूँ। मेरे मन-मन्दिरमें वह प्रतिमा एकान्त निश्छल भावसे सदा विराजती रहती है।

मैं इसे चाहने लगा हूँ, प्यारकी दृष्टिसे देखने लगा हूँ और उसके लिये जी हथेलीपर लिये फिरता हूँ। नहीं मालूम क्यों; पर मेरा हृदय उसका उपासक है, नेत्र उसके प्यासे हैं और कान उसकी कोमल ध्वनि सुननेको व्यग्र हैं।

मुझे अभीतक इसका बिलकुल अनुभव न था कि, मनुष्यके जीवन-प्रभातमें और विशेषकर युवावस्थामें एक आकर्षण होता है, जिसका स्त्री-पुरुष दोनोंमें समभाव है।

उस दिन प्रातःकाल मैं मित्रोंके अनेक अनुरोध करनेपर उनके यहाँ पहुँचा। दो मंजिला घर था। सादगी झलक रही थी। कुण्डी खटखटानेपर एक बालक आया। वह बड़ा भोला और प्यारा था: उसने नम्रतासे पूछा—“कहिये ! क्या है ?”

मैंने कहा—“राजेश्वरीजी हैं ?”

“जी हाँ।”

“उनसे कहना, जिन्हें आपने कल बुलाया था, वे आये हैं।”

“अच्छा।”

वह अन्दर चला गया। कुछ देर बाद ही एक हँसती हुई प्रतिमाने खादीकी साड़ी पहनकर प्रवेश किया। उसके पैरोंमें चप्पल और हाथोंमें दो-दो चूड़ियाँ थीं। आते ही उसने दोनों हाथोंसे नमस्ते किया और कमरेमें बिछी हुई दरीपर बैठनेको कहा। वह भी वहीं मुझसे कुछ हटकर बैठ गयी। यद्यपि वह नयी सभ्यताकी उपासिका थी; तथापि लज्जा अभीतक उसकी सहचरी थी।

नीचे दृष्टि किये हुए उसने कहा—“मुझे अबतक पता न था कि, आप हमारे ही मुहल्लेमें रहते हैं। उस दिन यह सुभद्रा बहनने बताया। बाद मैंने नौकरको दो-तीन बार आपके पास भेजा भी; पर आप घरमें नहीं मिले।”

“हाँ, प्रयागसे मेरे एक मित्र आये थे, उन्हींको घुमाने-फिरानेमें लगा था। और तो कहीं नहीं गया था।”

“जी हाँ, आपने कवि-हृदय पाया है—आजकल कविता लिखते हैं।”

“मैं कविता-सविता क्या जानूँ। हाँ, कुछ उट-पटाँग, जब जो, मनमें आ जाता है, लिख डालता हूँ।”

“नहीं, ऐसा क्यों कहते हैं।”

“अच्छा, जो कहें।”

मैंने भी कुछ कविताएँ या तुकबन्दियाँ की हैं, उन्हींको दिखानेके लिये आपको कष्ट दिया है। क्या देखेंगे ?”

“लाइये-लाइये, बड़ी खुशीसे।”

वह उठी, अन्दर गयी और लिपटे हुए दो-तीन कागजात ले आयी।

मैंने देखा, कविताएं अच्छी थीं। जहाँ-तहाँ थोड़ा बहुत परिवर्त्तन करनेपर कहीं भी छप सकती थीं। मैंने कहा "अच्छी तो हैं। कहिये तो थोड़ी मरम्मत कर छपनेको भेज दूँ।"

"जैसा आप समझें।"

"आप बराबर लिखें। अच्छा लिख सकेंगी।"

"प्रयत्न तो करती हूँ, जब जैसा मनमें आ जाता है, लिख भी डालती हूँ।"

"अच्छा अब इजाजत मिले।"

"जायँगे?"

"हाँ।"

"मैंने आपको इतना कष्ट दिया क्षमा ...।"

"इसमें कष्टकी बात ही कौन-सी है? आपसे मिलनेपर मुझे तो प्रसन्नता हुई। मैं इन्हें ठीककर छपने भेज दूँगा।"

"अच्छा, नमस्ते।"

मैंने घरका रास्ता नापा। वह अन्दर चली गयी। आज मुझमें कोई परिवर्त्तन न हुआ था। हाँ, उससे फिर कभी मिलनेकी इच्छा उत्पन्न हो रही थी।

× × × ×

राजेश्वरी अपने माता-पिताकी सबसे छोटी सन्तान है। उसके पिता बचपनमें ही इसे छोड़ इस संसारसे चल बसे हैं। माताने रोती हुई बालिकाके बड़े-बड़े आँसू पोंछे हैं और स्वयं आँसू पी जीवन व्यतीत करने लगी है। उसने राजेश्वरी-को हिन्दी पढ़ायी है। तथा सीना-पिरोना भी सिखाया है।

विपत्तिमें कोई किसीका साथ नहीं देता। राजेश्वरीके भाई बैरिस्टर हैं; पर माँ और बहनके प्रति तनिक भी उनकी सहानुभूति नहीं। बातचीतसे तो वे बड़े सज्जन मालूम पड़ते हैं; पर पेटमें दाँत है। बेचारी वृद्धा माँ अपनी बची-खुची जायदादसे अपना और राजेश्वरीका पेट चलाती है। कभी-कभी उसका मंझला लड़का कुछ सहायता कर देता है।

राजेश्वरी अपनी माकी तन-मनसे सेवा करती। उसीके कहनेके अनुसार चलती और अपने जानते उसे किसी प्रकारका कष्ट नहीं होने देती।

राजेश्वरी बड़ी हठीली है। उसकी बातोंसे फूल झरते हैं। उसे साहित्यके साथ-साथ देशसे भी अनुराग है। वह देश-सेवामें भी हाथ बटा चुकी है; पर जब समाज अंगुलियाँ उठाने लगा और उसके भाई भी उसे झिड़कने लगे, तब वह विवश हो सार्वजनीन जगत्से विमुख हो गयी।

× × ×

मैं अपनेको साहित्य-क्षेत्रमें कुछ नहीं समझता, पर अन्य लोगोंने मेरी प्रशंसाके पुल बाँध-बाँध मुझे सातवें आसमानपे चढ़ा दिया है। कह नहीं सकता, क्या बात है? अब मैं राजेश्वरीके यहाँ जाता, उसके साथ बैठा घण्टों बातें करता था। उसकी माँ को भी मेरे जानेसे बड़ी प्रसन्नता होती, पर मैं देखता कई लोगोंको मेरा उसके यहाँ आना-जाना फूटी आँखों भी न सुहाता था। कभी-कभी मेरे मनमें आता था—क्यों जाऊँ? मुझे तो वहाँ जानेसे कुछ मिल नहीं जाता और न ऐसा कोई विशेष लाभ ही है; फिर क्यों व्यर्थ लोगोंकी आँखोंमें गड़ूँ; परन्तु न जाने क्यों मैं अपने निश्चयसे गिर जाता और ज्यों ही वह बुलाती, मैं उसके यहाँ दाखिल हो जाता था।

हम लोगोंमें बराबर प्रेम-भाव बढ़ता गया और कुछ समयके बाद इतनी घनिष्ठता हो गयी कि, तू-तूका व्यवहार होने लगा।

गर्मीके दिन थे। दिनको घरसे बाहर निकलना मानों विपत्तिको निमन्त्रण देना था। आज मैं संध्या समय अपना बैठा-बैठा हवा खा रहा था कि, उसके यहाँसे 'किस्नू' आया और कहने लगा—

"आपको भोजन करने बुलाया है।"

"किसने—रानीने?"

"हाँ।"

"यह क्यों?"

"मुझे तो और कुछ नहीं मालूम; पर आपको बुलाया गया है।"

"तो क्या अभी चलूं?"

"जी हाँ, वे आपके लिये ही बैठी हैं।"

"अच्छा, बैठो, चलता हूँ।"

मैंने मांसे कह दिया कि, "मैं राजेश्वरीके यहाँ भोजन करने जाता हूं—तुम मेरे लिये मत ठहरना।" रातके लगभग आठ बजे मैं उसके यहाँ पहुँचा। पहुँचनेपर मालूम हुआ कि, आज राजेश्वरीने मेरे लिये विशेष भोजन तैयार किया है। समझा, उसने एक-आध नयी चीज बनायी होगी; पर यहाँ तो कुछ और ही देखनेमें आया। थालीमें न मालूम क्या-क्या परोसा गया था। मैं देखकर घबरा गया और कहने लगा—

"क्यों इतना कष्ट किया? यदि खिलाना ही था, तो जो प्रतिदिन बनता है, वही खिला देती। यह सब बनानेकी कौन-सी आवश्यकता थी?"

"रोजका ही खाना तो है। इसमें कष्टकी बात ही क्या है?"

"मेरी समझमें तुमने बड़ा कष्ट किया, जो इतनी गर्मीमें, इतने प्रकार बनाये।"

"मैं इसे कोई कष्ट नहीं समझती।" ऐसा कह उसने जरा मुस्किरा दिया।

भोजन करनेके बाद यहाँ-वहाँकी बातचीत होने लगी।

"कोई नयी कविता तुमने लिखी है।"

"हाँ।"

"सुनाओ तो।"

"कविता क्या मेरे वर्तमान जीवनका चित्र है। सिवा रोनेके कुछ भी नहीं है।"

"सुनाओ भी सही, इसी रोनेमें तो आनन्द है।"

"तो सुनोगे ही?"

"हाँ।"

मैंने अन्तमें सुना—

"मेरे जीवनके तममें, हैं तुमसे चपल आये।
मेरा चातक-चित बैठा—है तुझको आस लगाये।"

× × ×

उस दिनका मेरा उसने निमन्त्रण क्या किया? वेदना साथ बाँध दी, जो ऐसी है कि, मैं उसमें एक सुखका अनुभव करता हूँ। अब मुझपर उन्माद छाया और मैं उसके बिना अपनेमें एक बड़े अभावका अनुभव करने लगा।

उस दिन रातको राजेश्वरीके मझले भाईने उसे कविता सुनाते देखा। जलकर खाक हो गये—घूर-घूरकर मेरी ओर देखने लगे। पर कुछ बोले नहीं। वे उसी घरमें रहते हैं, जहाँ राजेश्वरी रहती है; पर उससे उनका कुछ सम्बन्ध नहीं। उस दिनसे और उलटी-सीधी काना-फूसी होने लगी। कुछ भी हो, इतना अवश्य सच है कि, हम एक दूसरेसे प्रेम करने लगे—एक दूसरेकी ओर आकृष्ट होने लगे।

× × ×

मैं तो बराबर चाहता था कि, उनके यहाँ जाऊँ, बैठूं, बातें करूँ; पर किन्हीं कारणोंसे अब वहाँ न जा पाता। इसका अर्थ यह नहीं कि, किसीने मुझे आने-जानेके लिये मना किया हो; परन्तु बीचमें कुछ ऐसी बातें सुननेमें आयीं, जिनसे मेरी तो उतनी हानि होनेकी सम्भावना न थी, जितनी राजेश्वरीकी। इसके साथ ही मुझे वहाँ जानेके लिये एक ऐसे व्यक्तिने मना किया, जिसका कहा मैंने कभी नहीं टाला है।

× × ×

अब हम लोग पत्र-द्वारा एक दूसरेके समाचार ज्ञात करते थे। ऐसा होना तो न चाहिये था; पर क्या करें विवश थे। बहुत दिनोंसे न मिले थे। बराबर उसीका ध्यान आता था। मेरे कई मित्र अब ताने दे-दे कर जलेपर नमक छिड़कने लगे। मैं सब चुपचाप सुन लेता, मनमसोसे रह जाता। उसका एक पत्र मिला। इस पत्र और इसके पहलेके पत्रोंमें बड़ा अन्तर था। मैं एक बार, दो बार, तीन बार पढ़ गया; पर फिर भी उसे पढ़नेसे मन न भरता था। मैंने भी उसे एक पत्र लिखा—

"तुम्हारा नाम कितनी प्रतीक्षाके बाद पत्र मिला। मैं जानता हूँ कि, तुमपर कैसी बीत रही होगी; पर इतना अधीर न होना चाहिये। भावुकतामें आकर कलाका आदर्श खो बैठना ठीक नहीं। अच्छा है जो, हम लोग दूर-दूर रहते हैं, नहीं तो सम्भव था कि, कभी किसी आपत्तिमें पड़ जाना होता।

क्या तुम समझती हो मेरा हृदय इतना कठोर है। इसमें तुम्हारी छाप लग चुकी है और यह तुम्हारा उपासक हो गया है। तुम्हारे पास हो रहना चाहता है। कह नहीं सकता कहाँतक सम्भव है!

तुमने मेरी कोई कविता रंगायी है। उससे तुम्हारा मनोरंजन न होकर और दुःख होगा। क्योंकि मेरी कविता में रहता है—

रंगाये हैं जो पत्र-प्रसून, नहीं हैं परिमल और सुवास।
अश्रु-जलसे तो हैं वे सिक्त, बताते हैं मेरा इतिहास॥

और फिर कभी।

तुम्हारा अभिन्न—
सुशील"

× × ×

मैंने उसे पत्र लिख तो दिया; पर होना तो कुछ और ही था। दूसरे दिन बैरिस्टर साहबने मुझे अपने बँगलेपर बुलाया। मनमें अनेक भावनाएं जागृत हो रहीं थीं। मैंने वहाँ जाकर देखा, उनके मुखपर क्रोधकी झलक थी। उन्होंने आदरके साथ बराबर बिठाया और कुछ देर बाद वह पत्र निकाल कर मेरे सामने रख दिया। मेरे होश उड़ गये। काटो तो खून नहीं। दाँतो तले अंगुली दबा ली। मन-ही-मन सोचने लगा—भगवन् यह क्या हुआ? नीचे सिर किये पत्रका रहस्य समझनेका प्रयत्न करने लगा। लाख सिर पटकनेपर भी दिमागने काम नहीं किया। आखिर है क्या बात! मुझे काठ मार गया। वे भी अधिक देरतक चुप न रह सके और बोले—

"क्यों? आप जैसे विद्वानोंका यही काम होना चाहिये। आपको एक ऊँचे घरानेकी लड़कीके साथ ऐसा ही व्यवहार करना चाहिये? मैं न समझता था कि, आपको इस दूध-सी सफेद खादीसे ढके हुए हृदयमें इतनी कालिमा होगी। क्या आपने पाप नहीं किया? सोचिये कितनी भारी गलती की, यदि धोखेसे यह पत्र मेरे मित्रके पास न पहुँचा होता, तो न मालूम आप लोग क्या न कर बैठते……।

वे इस प्रकार न मालूम क्या-क्या कह गये। मुझे कुछ ग्लानि और अपने इस दुष्कार्यपर पश्चात्ताप हुआ। मैंने कहा—

"मैंने यह पत्र भावुकतामें आकर लिख डाला। हमारे विचार बड़े पवित्र थे? क्षमा कीजिये। यह पत्र आपके पास कैसे पहुँचा?"

"मिश्रजीके लिफाफेमें आपने धोखेसे इसे रख दिया। कल उसने हँसते हुए मुझे दिखाया।"

"कौन? रामकुमारजीके?"

"हाँ।"

"मैं पछताता हूँ। अब जीवनमें फिर कभी—"

"जाइये अब आप फिर कभी ऐसे पत्र न लिखियेगा। आप हमारे मित्रके समान ही हैं…… …।"

मैं लजाता और दुःखी होता घर लौटा। हृदयपर कुठाराघात-सा हुआ। क्यों?

अब राजेश्वरी मेरे लिये आकाशका चाँद और स्वर्गीय संगीतके समान दूर हो गयी। अब भी कितना समय बीत गया; पर उसकी स्मृति नहीं भूलती। हृदय अब भी कहता है—मैं अपराधी नहीं। मैं उसके पुराने पत्रोंको बार-बार पढ़ा करता और मन-ही-मन सोचा करता हूँ कि, मैंने उन्मादमें आकर अपने हाथों उसका गला घोंट डाला। कितनी भारी भूल की। न जाने क्यों मेरा मन अबतक यह स्वीकार नहीं करता कि, वह मुझे भूली होगी।

———

तारेकी चिट्ठी

बाबू मदनलाल खेमका

बहुत वर्षोंसे बाल-विवाहके विरुद्ध आन्दोलन किया जा रहा है, परन्तु दुःखका विषय है कि, पूर्ण सफलता अभी तक नहीं मिली है।

विगत वर्ष श्रीयुक्त हरिविलासजी सारदाने इस बाल-विवाह-निषेधक बिलको असेम्बलीमें रखा था। कितने विरोधियोंके रहते हुए भी, देशके सौभाग्यसे, जो बिलकुल ही अधिक वोटोंसे, यहाँ अन्तमें, पास हो गया। सन् १९३० से पहली अप्रैलसे जिसका जारी होना भी निश्चित हुआ।

यद्यपि बिल बहुमतसे पास हो गया है; तथापि अब भी कितने ही व्यक्ति ऐसे हैं, जो बाल-विवाहको उत्तम समझते हैं। कितने ऐसे भी हैं, जो कानूनसे इस प्रथाका सम्बन्ध ही नहीं रखना चाहते; परन्तु बाल-विवाहका जोरदार विरोध भी करते हैं।

बाल-विवाहकी प्रथा प्राचीन नहीं है। ज्ञात पड़ता है, भारतवर्षमें इस प्रथाका प्रारम्भ यवन-साम्राज्यके समयमें हुआ। मनुने बाल-विवाहका समर्थन नहीं किया है। यवन-साम्राज्यके पहले भारतवर्षमें बाल-विवाहकी प्रथा नहीं थी, जैसा कि, धार्मिक तथा ऐतिहासिक पुस्तकोंके अवलोकन करनेसे पाया जाता है। प्राचीन समयमें अधिकांश विवाह स्वयंवर द्वारा ही होते थे; और यह तभी सम्भव था, जब कन्या युवती हो।

जब भारतवर्षपर यवनोंका अधिकार छाया, तब वे हिन्दू जातिपर असह्य अत्याचार करने लगे। कन्याओंका धर्म नष्ट करने लगे। यहाँतक कि, बादशाह और उनके दरबारी ऐसे लड़कियोंके माँ-बापको बे-मतलब सताने लगे। उस समय मोगलोंके अत्याचारोंसे पीड़ित होकर, हिन्दू-बालिकाओंकी धर्मरक्षाके लिये, तत्कालीन हिन्दू-धर्माचार्योंको अपने सामाजिक नियमोंमें परिवर्तन करनेकी आवश्यकता जान पड़ी; इसलिये कि, मोगल विवाहित बालिकाओंपर जुल्म नहीं करते थे। अतः बालिकाएँ युवावस्था प्राप्त होने के पहले ही ब्याही जाने लगीं, जिससे किसी विधर्मीको यह कहनेका अवसर ही न मिले कि, अमुक कन्या हमें दे दो।

परन्तु अब इस समय हमें यह सोचना चाहिये कि, यह कानून उस काल विशेषके लिये बनाया गया था या सदैवके लिये? जो औषध रोग-निवारणके लिये दी जाती है, उसका यह अर्थ नहीं कि, रोग निवृत्त होनेपर भी वह बराबर दी जाय। ऐसा करनेसे लाभके बदले हानि ही उठानी पड़ती है। ठीक इसी प्रकार हिन्दू-जातिने इस काल-विशेषके लिये प्रचारित प्रथाको; उस कालके समाप्त होनेके पश्चात् भी प्रयोगमें लाकर हानियाँ उठाईं और आज भी उठा रही है।

बाल-विवाहको वेद और शास्त्रोंने अनुकूल कदापि नहीं कहा है, तो भी "आपत्तिकाले मर्यादा नास्ति" वाली कहावतके अनुसार, यह प्रथा यवन-साम्राज्यतकके लिये ठीक थी; परन्तु आज हजारों पण्डित इस प्रथाको शास्त्रानुकूल बताकर जनताको बहका रहे हैं और समाजमें विधवाओंकी संख्या बढ़ाकर हानि पहुँचानेकी चेष्टा कर रहे हैं। ऐसे विवाहोंसे अपरिपक्व सन्तानोंकी ही भरमार हो रही है।

इस समय इंगलैंडमें प्रतिशत बच्चोंकी मृत्यु-संख्या, जन्मसे लेकर एक वर्षतक १० के लगभग है; परन्तु हमारे भारतमें प्रतिशत मृत्यु-संख्या ४० है। इंगलैंडमें प्रतिशत ७ विधवाएँ होती हैं, परन्तु हमारे यहाँ प्रतिशत विधवाओंकी संख्या २८ से कम नहीं। इस अधिकता और न्यूनताका कारण क्या एक मात्र बाल-विवाह नहीं है? ऐसा कोई देश नहीं है, जहाँ युवावस्था प्राप्त होनेके पहले विवाह हो जाता हो।

सन् १८९८ ई० में इंगलैंडमें बाल-मृत्यु प्रतिसहस्र १५५ हुई थी। इसके कारण वहाँ बड़ा भारी आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था; परन्तु हमारे यहाँ इतने अधिक बालकोंकी मृत्यु होनेपर भी कोई ध्यान नहीं देता !

सन् १९२१ ई० की गणनाके अनुसार हमारे भारतमें १ वर्षसे लेकर १९ वर्षतककी ३३५०१५ विधवाएँ थीं। सोचें, क्या स्पष्ट ही इसका कारण बाल-विवाह नहीं है ? इस समय भारतमें उन वेश्याओंकी संख्या, जिन्होंने जबर्दस्ती इस घृणित व्यवसायको स्वीकार किया है, ४७२ ९९६ है। अबकी मर्दुमशुमारीमें इनकी संख्या शायद और भी बढ़ गयी होगी। इनमें अधिकांश तो बाल-विवाह दोषके कारण ही वेश्याएँ हुई हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि, विषय-वासनाको मर्यादित रखनेके लिये विवाह एक धार्मिक व्यवस्था है; परन्तु उसका यह अर्थ नहीं कि, स्वास्थ्य-सम्बन्धी बातोंपर विचार न कर बचपनमें ही छोटे-छोटे बच्चोंके विवाह कर दिये जाँय।

सुश्रुत आदि वैद्यक ग्रन्थोंको देखनेसे, यही पता चलेगा कि, जबतक कन्या और वर, पूर्ण युवावस्थाको प्राप्त न कर लें, तबतक उनका संगम अर्थात् विवाह नहीं होना चाहिये।

कितने धर्मध्वजी इधर-उधरसे प्रमाण देकर रजोदर्शनके पूर्व ही विवाह करनेकी अनुमति दे डालते हैं; और पूछनेपर यह कह देते हैं कि, "ऐसा न करनेसे पिताको दोष लगेगा।" परन्तु उन्हें विचारना चाहिये कि, दोष किस बातका ? कन्या तो अपने पिताके घर ही रहती है, वह कोई कुसंगमें तो जाती नहीं।

यदि कोई यह कहे कि, 'सन्तानोत्पत्ति होनेका समय है, इसलिये माता-पिताको दोष लगेगा।' इसपर उन्हें यह विचारना चाहिये कि, रजोधर्म प्रकट होनेके बाद कम-से-कम तीन वर्षका समय तो कन्याको शारीरिक विकासके लिये अवश्य ही मिलना चाहिये। हमारी इन्द्रियाँ भी तो जन्म लेते ही कोई काम नहीं करतीं। नवजात शिशु चल-फिर नहीं सकता, यद्यपि उसे हाथ-पैर होते हैं; वह बोल नहीं सकता, यद्यपि उसे जिह्वा है। प्रकृतिके नियमानुसार कोई चीज जन्म लेते ही अपने कामके लिये तैयार नहीं हो जाती, उसके विकासके लिये कुछ समयकी आवश्यकता रहती है। यह तो हमारे विज्ञान-सम्बन्धी विचार हैं; और, इन्हीं विचारोंसे मिलती-जुलती आज्ञा हमारे मनु महाराजने भी दी है—

"काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
नचैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥"

(९ अ०, ८९ श्लो०)

अर्थात् 'चाहे रजस्वला होकर भी कन्या मरणपर्यन्त पिताके ही घरमें रहे; परन्तु गुण-हीन वरके साथ कदापि उसका ब्याह नहीं करना चाहिये।'

"त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥"

(९ अ०, ९० श्लो०)

अर्थात् 'ऋतुधर्मा होनेके उपरान्त तीन वर्षतक कन्या पिता इत्यादिकी प्रतीक्षा करे कि, पिता इत्यादि योग्य पतिसे ब्याह करते हैं या नहीं। बाद इसके ऋतुमती कुमारी योग्य पतिको वर ले।'

योग-शास्त्रानुसार भी जो पुरुष जिस आयुमें प्रथम बार वीर्य्यपात करता है, ठीक उसकी चार गुनी आयुमें ही, उसकी मृत्यु होती है। इन सब बातोंके देखनेसे भी पता लगता है कि, विवाह युवावस्था प्राप्त होनेपर ही होना चाहिये।

अब विचारने और निश्चय करनेका विषय यह है कि, जब धर्म-शास्त्र हमें छोटी उम्रमें विवाह करनेकी आज्ञा नहीं देता, स्वास्थ्य-सम्बन्धी पुस्तकें भी आज्ञा नहीं देतीं, विज्ञान भी बाल-विवाहको स्वीकार नहीं करता, तब फिर किस भित्तिपर, किस आधारपर और किस लाभके लिये बाल विवाहका समर्थन किया जाय ? जहाँतक हो सके और जितनी जल्दी हो सके इस प्रथाका अन्त हो हो जाना चाहिये। नहीं तो, खतरेकी घंटी बज चुकी है और शारदा-बिल असेम्बलीमें पास हो चुका है, जिसकी शरण भी बालकोंको हार मानकर अवश्यमेव लेनी ही पड़ेगी।

तीर्थोंके पण्डे

डाक्टर रामकृष्ण शर्म्मा जी० पी० सी०

बीसवीं सदीके अंग्रेजीदाँ सज्जनोंकी आँखोंमें हमारे तीर्थस्थानोंका कुछ मूल्य नहीं रह गया है। इसका प्रधान कारण है स्कूलकी पाठ्य पुस्तकोंमें धार्मिक ग्रन्थोंका अभाव। इस समय कुछ ऐसी परिपाटी-सी चल पड़ी है कि, लड़के स्कूल तथा कालेजके दरवाजे खटखटाते ही अपने धार्मिक रीति-रस्मोंके विरुद्ध तर्क-वितर्क करनेमें खूब दिलचस्पी लेने लगते हैं। वे धार्मिक रीति-नीतिके विपरीत चलनेमें अपनी शान-शौकत समझते हैं। धार्मिक रीति-रवाजोंपर चलनेवाले बुद्धू माने जाते हैं। लड़के प्रायः उनका मजाक उड़ाया करते हैं।

मैं भी कालेजकी हवा खा चुका था। मुझे भी तीर्थों के नाम सुननेमें एतराज था। मैं तीर्थोंके पण्डोंको बहुत बुरी निगाहसे देखता था। किन्तु अपने एक धार्मिक मित्रके आग्रहके कारण गत सूर्य-ग्रहणके अवसरपर मुझे उनके साथ कुरुक्षेत्रकी यात्रा करनी पड़ी। रास्तेमें कई तीर्थोंके दर्शन करते चलें, यह भी निश्चय हुआ।

सर्व-प्रथम हम लोगोंने श्रीशिवपुरी जानेका विचार किया। मोगलसराय पहुँचते ही बनारसी पण्डे यात्रियोंके स्वागतार्थ प्लेटफार्मोंपर नजर आने लगे। काशी पहुँचनेपर तो इनकी संख्यामें और भी वृद्धि हुई। यात्रियोंके प्लेटफार्मपर उतरते ही पूछ-ताछ होने लगी। उस दृश्यको देखकर मेरे मनमें यह भावना उत्पन्न हुई कि, परदेशमें एक अनजान मनुष्यको, इस तरह स्वागतकर, अपने घर ले जानेवाला दूसरा कौन होगा? हमारे मित्र भी उनमेंसे एक पण्डेके साथ हो लिये। ये पण्डाजी उतने अमीर नहीं थे, इसलिये उन्होंने किरायेका घर हम लोगोंके लिये खाली कर दिया। अपने आरामकी सभी चीजें हम लोगोंके सुपुर्द कीं। हम लोग तीन दिनोंतक बनारसमें ठहरे। इनकी सेवा-शुश्रूषाने तो मुझे मोह लिया।

मित्र महोदयने पूछा कि, महाशय, आप पण्डोंकी बड़ी शिकायत किया करते थे, क्या अब भी आपका विचार पूर्ववत् है? भाई, अगर इस पुरीमें पण्डे नहीं होते, तो भोले-भाले यात्रियोंको यहाँके गुण्डों एवं ठगोंसे बचने मुश्किल हो जाते। मैं तो कबका कायल हो चुका था। मैंने सोचा, विषयका पूर्ण ज्ञान हुए बिना ही किसीके पक्ष या विपक्षमें मत निश्चित कर लेना सर्वथा अनुचित है।

आप यूरोपकी ओर गौर करके देखें, वहाँ भी ये पण्डे दूसरे रूपमें नजर आवेंगे। लंदन तथा पेरिसके यात्रियोंको जिस प्रकार टामस कुक एण्ड सन्स, अमेरिकन एक्सप्रेस कम्पनी तथा लिंडले कम्पनी प्रभृति कम्पनियाँ जो आराम देती हैं, क्या उनसे ये पण्डे कम आराम देते हैं? मैं तो इन्हें इन कम्पनियोंसे खास दर्जे अच्छा समझता हूँ। उन कम्पनियोंके यहाँ पारिश्रमिक (Charge) नियत है और उससे कमपर आप उनकी सहायता नहीं प्राप्त कर सकते। पर इन पण्डोंके यहाँ न कोई निर्धारित पारिश्रमिक है और न जोर-जबर्दस्ती ही, बल्कि यहाँ केवल आग्रह है। अपनी श्रद्धासे जो कुछ दीजिये, काम आपका उतना ही होगा जितना दूसरेका। पहले कोई ठीक-ठाक नहीं, चलते समय जो मनमें आया, दे दिया। यदि आवश्यकता हो, तो कुछ इन्हींसे ले भी लीजिये। जब मन आये, भेज दीजिये। इस जमानेमें भी यहाँ इसकी कोई रजिस्ट्री नहीं। वाह! हमारे पूर्वजोंने क्या ही अच्छी प्रणाली बना रखी है!

यह तो हुई पण्डोंकी बात। अब कुछ विश्वनाथ जीकी भी सुन लीजिये। हम लोग पतित-पावनी गंगाजीमें गोता लगाकर श्रीविश्वनाथजीका दर्शन करने चले। सड़कमें सड़ककी दोनों ओर भिक्षार्थी बैठे हुए लंगड़ों-लूलोंके साथ हट्टे-कट्टे मनुष्योंकी पंक्तियाँ भी दर्शनीय थीं। मेरे मित्रने उनमेंसे एक लंगड़ेके पास एक पैसा फेंक दिया। पैसा फेंकना था कि, दोनों ओरसे जोरोंसे यह आवाज आने लगी "बाबू, हमें एक धेला देते जाओ।" मित्रने दो-एक को और दिया। बस, फिर क्या था, बातकी बातमें भिखारियोंकी एक बड़ी भीड़ने हम लोगोंको चारों तरफसे घेर लिया। किसीने पैर पकड़ा, किसीने हाथ और किसीने साड़ीको खींचना प्रारम्भ किया। कितने ही तो कमर भी टटोलने लगे! इसी समय पण्डोंका एक दल आ पहुँचा। हम लोगोंकी यह दशा देखकर उन्होंने भिखारियोंको डाँट-डपटकर अलग किया, तब कहीं हम लोगोंके प्राण बचे। अनन्तर हम लोग श्रीविश्वनाथजीके मन्दिरमें पहुँचे। मन्दिरमें श्रीविश्वनाथजीकी पूजा करते समय जो आनन्द प्राप्त हुआ, वह अनिर्वचनीय है। क्षण-भरके लिये संसार विस्मृत-सा हो गया था।

काशीसे हम लोग प्रयाग पहुँचे। यहाँ भी दो-एक स्टेशन आगेसे ही पण्डे अगवानी करनेको तैयार थे। अब तो इनके प्रति श्रद्धाने मेरे हृदयमें घर कर लिया था और इन्हें मैं तीर्थयात्राका एक आवश्यक अङ्ग समझने लग गया था। त्रिवेणीमें स्नान कर अक्षयवट तथा भारद्वाज मुनिके दर्शन किये गये।

पाठक, प्रयागको देखकर मेरे मनमें जो भावनाएँ उत्पन्न हुईं, उन्हें मैं अविकल आपके समक्ष रखता हूँ। प्रयागको प्रयाग न कहकर इलाहाबाद कहना ही युक्ति-युक्त होगा। भारद्वाज मुनिका प्रयाग अब न रहा। यह अँग्रेज सरकारका इलाहाबाद ही ठीक है। उस समय प्रयागका वायुमण्डल हवनोंके सुगन्धित धूमसे परिपूर्ण रहता था, आज इलाहाबादका वायुमण्डल कल-कारखानोंके धूमसे आच्छादित है। उस समय ग्रामवासी गृह-कार्योंसे तंग हो, इनसे छुटकारा पानेका उपाय ढूँढ़नेके लिये, मुनियोंके पास प्रयाग जाया करते थे; आज ग्रामवासी अपने गृह-कार्योंमें अधिक-से-अधिक फँसनेका यत्न पूछने इलाहाबादके बड़े-बड़े वकीलों एवं बैरिस्टरोंके पास जाते हैं। उस समय प्रयाग-निवासी प्रयाग छोड़नेमें अपनी मृत्यु समझते थे, आज इलाहाबादके बाशिन्दे यहाँकी आबो-हवासे तंग हो, पहाड़ों एवं देहातोंकी ओर दौड़ते हैं। फिर क्योंकर इसे प्रयाग कहा जाय?

श्रीअक्षयवटजीका दर्शन कर और भी खेद हुआ। इस लिये कि, लोगोंके अखाड़ेमें आज तक श्रीअक्षयवटजी कैदीके रूपमें जीवन बिता रहे हैं। धर्मके कार्योंमें निष्पक्ष रहनेवाली यह सरकार भी इन्हें अपनी कैदसे रिहा नहीं करती। इस परिस्थितिका दोष समयके सिवा दूसरे किसके मत्थे मढ़ा जाय?

सूर्य-ग्रहणका समय समीप आ गया था, इसलिये प्रयागसे हम लोग सीधे कुरुक्षेत्र पहुँचे। कुरुक्षेत्र पहुँचते ही महाभारतमें वर्णित सभी घटनाएँ क्रमशः ध्यानमें आने लगीं। यहाँ एक बड़ा विस्तृत मैदान है, जिसमें बबूलके पेड़ोंके सिवा और कोई वृक्ष नजर नहीं आता। इस मैदानमें दो तालाब हैं। इनमें सूर्यकुण्ड नामक कुण्ड किसी समय बड़ा है। इसका क्षेत्रफल चार मीलसे कम न होगा। मैं समझता हूँ कि, भारतमें इससे बड़ा तलाब शायद ही दूसरा कोई हो। इसी तालाबमें सूर्य-ग्रहणके अवसरपर यात्री स्नान कर पुण्यके भागी बनते हैं। प्रायः भारतके प्रत्येक भागसे यात्री यहाँ आते हैं, परन्तु इसे देख, बरबस यह विश्वास हो जाता है कि, सचमुच सनातन धर्म अब भारतसे लुप्त हो रहा है, नहीं तो ऐसे प्राचीन धर्म-स्थानका यह हाल क्यों होता! यह अब नाम मात्रकी पुष्करिणी है। इसके सिर्फ एक कोनेमें थोड़ा-सा जल है, जो ग्रीष्मऋतुमें अवश्य सूख जाता होगा। शेष अंशोंमें बबूलके बड़े-बड़े पेड़ उग आये हैं।

...रे सनातनी भाइयों, इसके जीर्णोद्धारकी अत्यन्त आवश्यकता है। यदि अभी ध्यान नहीं दिया जायगा, तो कुछ समयके बाद यह तीर्थ ही लुप्त हो जायगा; और, यह प्राचीन पुष्करिणी स्थलका रूप धारण कर लेगी।

कुरुक्षेत्रमें पण्डे नहीं रहते। इनके बिना हमको अनेक ... झेलने पड़े। मुझे तभी यह अनुभव हुआ कि, तीर्थोंके लिये पण्डे कितने लाभदायक हैं। ये मुफ्तके पैसे नहीं लेते, ... अपनी मेहनतकी मजदूरी पाते हैं। फिर भी इन पण्डोंमें सुधारकी आवश्यकता है। इन दिनों इन लोगोंमें अविद्याके प्रसारके साथ-साथ नशेका शौक बढ़ता चला आ रहा है। यदि ये नहीं चेते, तो समय इन्हें दण्ड दिये बिना नहीं छोड़ सकता। इसलिये इनको अपने अज्ञानान्धकारको दूर करके तथा अपने आचारोंको शुद्ध बना करके दूसरोंके लिये आदर्श-रूप बनना चाहिये, क्योंकि इनका पद गुरुके समान है।

पाठक, अन्तमें मेरा आप सज्जनोंसे यही निवेदन है कि, आप भक्त शिरोमणि तुलसीदासजीके इस वचनामृतको कभी न भूलें कि—

"संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने।"

तु म से

मेरे पतझड़मय उपवनमें—
अब वसन्त क्यों लाते हो?
जलते जीवनपर शीतल जल
नाहक क्यों बरसाते हो?
शुष्क मरुस्थलमें स्नेहकी
धार बहाते क्यों हो?
नीरव जीवनमें मादकता-
अब सरसाते क्यों हो?
पैरोंमें जब लिपट रहा था,
तब तो झटक दिया निष्ठुर!
अब क्यों? मेरी इस समाधिपर-
निर्मम! शीश झुकाते हो!

बाबू कपिलदेवनारायणसिंह 'सुहृद'

सिंगरगढ़का शिकार

बाबू मुकुन्दलाल विश्वास

बनैली-राज्याधिपति श्रीमान् राजा बहादुरने यद्यपि सैकड़ों बाघोंको हाथीपरसे मारा होगा; तथापि मचानपर बैठकर शिकार करनेका मौका उन्हें नहीं मिला था। २९-११-१९३१ ई०को श्रीमान् राजाबहादुर, दोनाके रायसाहब बाबू श्याम-बिहारी लालके आग्रहसे सर्वप्रथम मोटरसे सिंगरगढ़ गये थे सिंगरगढ़के जंगलमें मचानपरसे शिकार करनेका तरीका देख वापिस आये।

कुछ महीनोंके बाद उक्त रायसाहबका पत्र और उनके सुपुत्र कल्लू बाबूका तार चम्पानगर आया। तार पढ़ते ही सिंगरगढ़के लिये प्रस्थानकी तैय्यारी होने लगी। खीमा वगैरह मालगाड़ीसे पहले ही भेज दिया गया। अपने शिकारी अनुचरोंके साथ ९-३-१९३२ को खूब सबेरे ही श्रीमान् राजा बहादुरने सिंगरगढ़की ओर मोटरसे प्रस्थान किया।

सिंगरगढ़ गया जिलेमें है। नवादा रेलवे स्टेशनसे मोटर द्वारा रजौली ग्राम होते हुए सिंगरगढ़ जाना पड़ता है। हम लोगोंको भागलपुरसे प्रस्थान कर मोटर द्वारा सिंगर-गढ़ पहुँचना था। भागलपुरसे सुलतानगंज, बरियारपुर, नवादा, रजौली होते हुए जाना पड़ता है।

गर्मी जोरोंकी पड़ रही थी। ऊँचो-नीची पहाड़ी राहको किसी तरह पारकर हम लोग रजौली डाक बंगलेमें पहुँचे। वहाँसे सिंगरगढ़ पाँच मील पड़ता है। रजौलीसे घने जंगलकी राहसे जाना पड़ता है। कँटीली झाड़ी और छोटे-छोटे मोड़को पार करती हुई हम लोगोंकी गाड़ी सिंगरपुर पहुँची। हार्नकी आवाज सुनते ही रायसाहब और उनके लड़के स्वागतार्थ पहुँच गये। आगत-स्वागतके बाद शिकारकी बात-चीत शुरू हुई। उसी दिन-रातमें मचानपर बैठनेका तय हुआ। ५ बजे शामको हम लोग अपनी-अपनी बन्दूक लेकर, मोटरसे उतरकर, यानी पैदल चलकर मचानपर गये। जहाँ बाघ गड्ढेमें गिराया जाता है, वहींपर हम लोगोंका मचान बना था। इस प्रसङ्गमें बाघको गड्ढेमें गिरानेकी तर्कीब बताना कुछ मनोरञ्जक होगा—

बाघको गड्ढेमें गिरानेके लिये १० या ६० फीट गहरी ७ और २० फीट चौड़ी एक खाई खोदी जाती है। खाईकी एक तरफ पाड़ा बाँधा जाता है और दो तरफ जंगल-झाड़ और कँटीली लताएँ इस तरह सघन करके लगा दी जाती हैं कि, जिससे बाघ पाड़ाके नजदीक न आ सके। सीर्फ एक ही रास्ता पाड़ाके नजदीक पहुँचनेके लिये छोड़ दिया जाता है। वही रास्ता खाई है। खाई कपड़ेसे ढँक दी जाती है। कपड़ा ठीक मोट्टीके रंगका होता है और उसपर कहीं-कहीं घास-पात इस तरह सजा दिया जाता है, जिससे मालूम न हो सके कि, यह खाई है। कँटीली राहसे न आकर बाघ पाड़ेकी ओर कृत्रिम राहसे (खाईसे) होकर झपटता है और खाईमें गिर जाता है। गड्ढेमें गिरते ही बाघ भयंकर गर्जन करता है।

हम लोग मोटरसे उतरकर मचानके नजदीक आये। सूर्यास्त होते ही जंगलमें सन्नाटा छा गया। श्रीमान् राजा बहादुर अपनी राइफल ४०६ में टोंटा देकर और मैं ४०४ राइफलके मेगजिनमें पाँचो टोंटे देकर मचानके पलेटार झरमुटमें बैठकर बाघकी प्रतीक्षा करने लगा। मचानके आगे कैसा अँधेरा था। जंगली पक्षी कहीं-कहीं बोल रहे थे।

हम लोगोंको मचानपरसे शिकार खेलनेका यह पहला ही मौका मिला था। राजा बहादुरने तो हाथीपरसे अनगिनत बाघ मारे थे; परन्तु मचानपरसे नहीं। इस अँधेरेमें हम लोग वहाँ बैठे रहे, परन्तु बाघ नहीं आया। हम सब

हे-सब थके-माँदे थे। विचार हुआ कि, खीमामें जाकर अब आराम किया जाय।

दूसरे रोज दस मार्चको, हम सब लोग ११ बजे राततक मचानपर बैठकर लौट आये। बाघ आज भी नहीं आया। तीसरे रोज हम लोगोंने मचानको दूसरी जगह गड़वाया और भैंसेको जगह घोड़ा बंधवा दिया। सन्ध्या समय हम सब मचानपर आ डटे। आज कुछ-कुछ बाघ मिलनेकी आशा हम लोगोंके मनमें होने लगी; क्योंकि घोड़ा बीच-बीचमें हिनहिनाकर भड़क उठता था। परन्तु बाघ आज भी नहीं आया। सवेरे हम लोगोंने देखा कि, बाघका पंजा, घोड़ेसे कुछ दूरपर उखड़ा हुआ है।

हम लोगोंने कई जगह जंगलोंमें भैंसे बंधवा दिये थे। पूछनेपर मालूम हुआ कि, आज भी बाघने किसी भैंसेको नहीं मारा है। इस तरह प्रत्यक्ष हम लोगोंको निराश होते देख, आज धन्नू सिंह शिकारीने सलाह दी कि, Spot light से या मोटरकी रोशनीसे रातमें घूम-घूमकर साम्हरका शिकार किया जाय। राजा बहादुरने आज्ञा दे दी। हम लोग करीब साढ़े बारह बजे रातको खीमासे रवाना हुए। साम्हर दो बजे रातको पहाड़परसे नीचे उतरकर खेतमें आते हैं।

हम लोगोंने इस तरहकी रोशनी लेकर रातमें कभी भी शिकार नहीं किया था, इससे आज हम लोगोंको कुछ कौतूहल और आनन्द हुआ। मोटर शिकारकी खोजमें चली। हम लोग कुल आठ आदमी थे, जिनमें दो बैटरी ढोनेवाले कुली थे।

गन्तव्य स्थानपर मोटर पहुंची ही थी कि, बाँईं ओर करीब पचास गजके फासलेपर एक हुड़ार (Hyna) दीख पड़ा। मेरे एक साथीने निशाना ताककर गोली दाग दी। वह जान-वर पहाड़ी जंगलमें छिप गया। मैंने राइफल और टार्च लेकर उसका पीछा किया। पहाड़ी टीलेपर चढ़कर मैंने देखा—एक जगह पत्ता खड़खड़ा रहा है और दो आँखें चमक रही हैं। मैं अकेला ही था; इससे बन्दूकको नाल और टार्चको बाँये हाथसे पकड़कर आँखोंकी चमकपर गोली छोड़ दी। आवाजके साथ ही मेरी रोशनी भी गुल हो गयी; टार्चका बल्ब उड़ गया। मैं तो बड़े संकटमें फंस गया। अंधेरेमें आगेका कार्य विभक्त हो नहीं कर सका। तबतकमें मेरे और साथी आ पहुंचे। Spot light के प्रकाशमें हम लोगोंने देखा कि, हुड़ार मरा पड़ा है। मेरी गोली उसके जबड़े को तोड़ती हुई निकल गयी थी। पहलेवालेकी गोली उसकी टाँगमें लगी थी। उस हुड़ारको हम लोगोंने एक जगह, रख दिया और आगे बढ़े। गाड़ीको भी वहीं छोड़ दिया। थोड़ी दूर आगे बढ़नेपर कुछ साम्हर पहाड़परसे उतरते दीख पड़े। हम लोग और नजदीक पहुंच ही रहे थे कि, वे सब पहाड़-पर चढ़ गये और इकट्ठे होकर रोशनीको खूब गौरसे देखने लगे। हम लोगोंने Spot light को उन्हींकी ओर कर दिया और एक साथ ही गोलियाँ चला दीं। फिर भी वे सब वहीं उसी रूपमें खड़े थे; आखिर मैंने अपनी ४०४ राइफलसे एक गोली छोड़ी, जो किसी साम्हरकी टाँगमें लगी। फिर तो विचित्र प्रकारका शब्द करके वे सब इधर-उधर भाग गये। हम लोग भी पीछेसे रोशनी लेकर वहाँ पहुंचे; किन्तु कुछ हाथ नहीं लगा। हाँ, लहूकी धार, जिधर वे भागे थे, गिरती गयी थी। वहींपर बैटरीका तार भी टूट गया। खाई-खन्दकसे भरे ऊबड़-खाबड़ जंगलमें बिना रोशनीके भटकते फिरना हम लोगोंने अच्छा नहीं समझा। उसी हुड़ारको लेकर लौट आये।

सुबह उस साम्हरको लोगोंने लंगड़ाते हुए देखा, पर वह किसीके हाथ नहीं लगा—सघन वनमें छिप गया। एवं कई दिन दौड़-धूपमें बीत गये; पर कामयाबी हासिल नहीं हुई।

१४-३-३२ को जिधर हम लोगोंने पाड़ा बाँधा था, उधर ही बाघके पंजेके निशान भी दीख पड़े। कुछ-कुछ आशा बंधी। इतनेमें धन्नू सिंहने आकर कहा—आज रातमें बाघने पाड़ेको मार डाला है।" इस खबरसे हम सब बहुत प्रसन्न हुए।

शिकारियोंके चित्तमें दूना उत्साह भर गया। किसी तरह सन्ध्या हुई। जलपान आदि करके, बन्दूक, टार्च और सर्च लाइटके साथ, हम तीन आदमी राजा बहादुरके संग पैदल ही मचानतक चले गये। मरीके निकट ही बाघ इधर-उधर घूम रहा था; इसलिये हम लोगोंने राहमें ही राइफलें भर लीं।

मचानपर बैठनेके ठीक आधे घंटेके बाद, मचानसे दक्खिन तरफ कुछ खड़खड़ाहट मालूम पड़ने लगी। फिर वही पट-पटकी आवाज पश्चिम तरफसे होकर धीरे-धीरे बढ़ने लगी। हम लोग मचानपर साँस रोककर बैठ गये। इतनेमें ठीक मचानके नीचे बाघ मस्तानी चालसे आ गया। मचानका मुँह उधरसे बन्द था। उसके झुरमुटसे झाँककर देखा, बाघ बहुत बड़ा था। वह मरे हुए पाड़ेकी तरफ देखता हुआ, सूखी घासको पार कर रहा था। मनमें आया कि, मचानके नीचे राइफलकी नाल रखकर गोली दाग दूँ; लेकिन इससे घायल होनेका भय था और बाघके चौकन्ना होनेका।

बाघ घने जंगलमें चला गया। अभीतक सूर्यास्त नहीं हुआ था। उसके लौटनेकी उम्मीदसे हम लोग बैठे रहे। करीब आठ बजे रातको वह पानी पीकर लौटा। चाँदनी रात थी, वह धीरे-धीरे गाये हुए भैंसेकी तरफ बढ़ने लगा। मेरी राइफल उसकी सीधमें ही लगी हुई थी, निशाना साधकर मैं रुक गया। श्रीमान् राजा बहादुरने बाघकी ओर अपनी राइफल की; पर बाघ उनकी सीधमें एकदम नहीं पड़ता था। बाघ खड़ा था और सतर्क होकर पीछेकी ओर देख रहा था। इसी बीच सूखे पत्तेमें राइफलकी नाल लग जानेसे कुछ खड़खड़ाहट पैदा हो गयी। बस, बाघ लपककर जंगलमें घुस गया। फिर रातभर नहीं आया।

इस यात्रामें हम लोगोंको बाघ तो नहीं मिला, पर बहुत-सी बातें मालूम हो गयीं। मचानपरके शिकारका तो पूरा अनुभव हो गया।

सीख

शुभ शैशव तटिनीके तटपर,
भोले-भाले मेरे नटवर।
निराधार तुम झूलो,
कुसुम-कली हाँ छूलो।

सुधा-सिन्धुकी बाढ़ बढ़ेगी,
कुसुम-कली जा बीच कढ़ेगी।
फूल-लोभ मत फूलो,
कलित-कली हाँ, छू लो।

पं० गिरिधर मिश्र शास्त्री

बाबू केशवमोहन ठाकुर

आप सुप्रसिद्ध बरारी इस्टेटके अन्यतम अधिपति, हिन्दी-प्रेमी, मिलनसार और उन्नतमना युवक हैं।

प० रामचन्द्र चौधरी

आप मुँगेरके सेशन और डिस्ट्रिक्ट जज हैं। आप धर्म-प्राण, हिन्दी-हितैषी और "गङ्गा"के उन्नायक हैं।

प० रामसेवक त्रिपाठी

आप "माधुरी"के सम्पादक, हिन्दीके कवि, उदारहृदय और सज्जनताकी मूर्त्ति हैं।
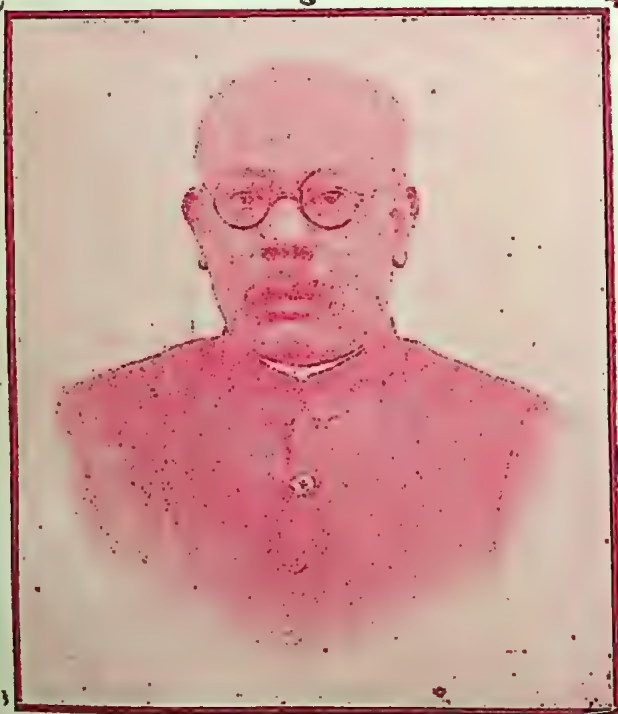
बा० गुलाबराय एम० ए०

आप हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक, कई ग्रन्थोंके प्रणेता और और महाराजा छत्तरपुरके प्राइवेट सेक्रेटरी हैं

प० अनूपलाल शर्मा बी० ए० "अनूप"

आप हिन्दीके नामी लेखक और कवि तथा साहसी युवक हैं।

आत्मा और पुनर्जन्म

बाबू गोवर्द्धनलाल गुप्त

जुलाई १९३१ ई०की "गंगा"में "आत्मा और पुनर्जन्म" शीर्षकसे पण्डित शान्तिदेव शास्त्री द्वारा लिखित एक लेख प्रकाशित हुआ था, जिसमें लेखक महोदयने आत्म-सम्बन्धी बातोंका सूक्ष्म रीतिसे विश्लेषण कर यह प्रमाणित करनेका प्रयत्न किया है कि, "आत्मा शरीरका गुण-विशेष है और कोर द्रव्य है । आत्मा स्वतन्त्र द्रव्य नहीं है और शरीरके विनाशके साथ आत्माका भी विनाश होता है । इसलिए उसका पुनर्जन्म नहीं होता । यदि स्मृतिके आधारपर आत्माका पुनर्जन्म होता, तो आत्मावाला प्रत्येक मनुष्य अपने पूर्व जन्मकी बातें बता देता; किन्तु ऐसा नहीं है ।"

मैं इसी विषयको लेकर, इस लेखके द्वारा यह प्रमाणित करनेका दुस्साहस करूँगा कि, आत्मा शरीरका गुण-विशेष नहीं; आत्माकी एक स्वतन्त्र सत्ता है; शरीरके विनाशके साथ उसका विनाश नहीं होता; अतः आत्माका पुनर्जन्म होता है ।

हिन्दू-साहित्यमें आत्म-सम्बन्धी जो अनेक बातें मिलती हैं और जो अबतक विज्ञानसे सिद्ध नहीं हुई थीं, वे सभी श्रद्धा और विश्वास चाहती थीं । जबतक अविश्वासी पाश्चात्य सभ्यताका हमारी भारतीयतासे संघर्ष नहीं हुआ था, तब-तक श्रद्धा और विश्वास अधिक थे । पच्छाहीं शिक्षाके अधिक प्रचार और स्वदेशी शीलके मूल-च्छेदनसे पढ़े-लिखोंमें आज श्रद्धा-विश्वास अत्यन्त कम हैं । आज रामायण, महाभारत, पुराण, श्रुति, स्मृतिको कोई नहीं पढ़ता । और, यदि किसीमें पढ़नेकी श्रद्धा भी हुई, तो अँग्रेजीके अनुवादको ही पढ़ता है । हिन्दी-साहित्यकी प्रायः वे ही बातें उनके निकट ग्राह्य होती हैं, जो पाश्चात्य विद्वानोंकी कसौटीपर कसी जाकर ठीक उतरती हैं । लेखक महोदयने भी स्व० महामहोपाध्याय प० रामावतार शर्मा एम० ए० एवं अन्यान्य पदार्थ-विद्याके पश्चिमी विद्वानोंके बलपर यह लेख लिखा है, जिसमें मुख्यतः हेकल और हक्सले हैं । हेकलका मत है कि, शरीर और जीव, दोनोंका प्राकृतिक आधार कललरस Protoplasm है । यह एक चिपचिपा और कुछ दानेदार पदार्थ है । यह इन चार मूल-द्रव्योंका मिश्रण है—(१) नाइट्रोजन, (२) आक्सिजन, (३) हाइड्रोजन (४) और कार्बन । इनके सिवा जल और लवणका भी इसमें मेल बतलाया है ।*

इसी सिद्धान्तके आधारपर पाश्चात्य देशके भौतिक विज्ञानके सुप्रसिद्ध आचार्य मि० मार्ले मार्टिनने विलायतके सुप्रसिद्ध पत्र "डेली हेरल्ड" द्वारा यह घोषित किया है कि, यदि हम लोग कललरसका समुचित प्रयोग करें, तो प्रयोगशालामें जीवोंको उत्पन्न कर सकते हैं । † इसी मतका समर्थन आचार्य सर आलिवर लाजने भी किया है । अस्तु ।

मैं अब पाठकोंके सम्मुख यह विचार रखता हूँ कि, आत्मा नित्य है या नहीं, आत्माका पुनर्जन्म होता है कि, नहीं और आत्माकी स्वतन्त्र सत्ता है कि, नहीं ?

(१) जब बाह्य और अन्तःकरण, सभी समाधिके द्वारा बेकार कर दिये जाते हैं, तब भी प्राणियोंके शरीर जीवित प्राणियोंके सदृश बने रहते हैं । बेकार नहीं होते । इसलिये किसी ऐसी सत्ताका शरीरमें मौजूद रहना विवश होकर मानना पड़ता है, जो इन्द्रियोंसे भिन्न हो और जिसकी उपस्थितिका यह फल होता हो कि, इन्द्रियोंके बेकार होनेपर

* "Riddle of universe" by E. Haeckle.

† देखिये "Advance" पत्र, जुलाई १९३१

भी शरीर गलने-सड़नेसे सुरक्षित रहे । समाधिस्थ पुरुषोंके अनेक उदाहरण अब भी मिलते हैं । महाराजा रंजीत सिंहका किया हुआ परीक्षण प्रसिद्ध ही है, जिसमें एक योगी ४० दिनोंतक समाधिस्थ रहे । वह परीक्षा अनेक अंग्रेजोंकी उपस्थितिमें हुई थी, जिसमें एक सिविल सर्जन भी था । उसने ४० दिनोंके पीछे सन्दूक खोलनेके बाद डाक्टरी जाँच की थी । उसने योगीको मुर्दा बतलाया था; परन्तु थोड़ी देरमें योगीने आँखें खोल दीं और सबको देखकर बातें करने लगे ।

(२) जब मनुष्य जाग्रत् और स्वप्न की अवस्थामें न रहकर सुषुप्तावस्थामें रहता है, तब जागनेपर अनुभव करता है कि, वह आरामसे सोया । यह अनुभव करनेवाला आत्मा है ।

(३) शरीर-विज्ञान-वेत्ता बतलाते हैं कि, मनुष्यका समस्त शरीर सात या बारह वर्षोंके बाद बिलकुल बदल जाता है । लेखक महोदयने भी इसको स्वीकार किया है; किन्तु उनका कथन है कि, परिवर्त्तन नहीं होता प्रत्युत परिवर्द्धित होता है । कुछ भी पुराने अणु बाकी नहीं रहते । परन्तु मनुष्यको बुढ़ापेमें लड़कपनकी बातें भली भाँति याद रहती हैं । यह याद रखनेवाला आत्मा ही है; क्योंकि शारीरिक अवयव तो उस समय बाकी नहीं रहता ।

(४) दूरबीन या खुर्दबीनके द्वारा देखनेसे दूरकी या पासकी छोटी वस्तु बड़ी दिखायी पड़ती है । इन्द्रियोंकी ज्ञान-सीमा तो उतनी ही है, जितना ज्ञान उन्हें उनके द्वारा प्राप्त होता है; परन्तु मनुष्य समझता है कि, वास्तवमें दिखायी देनेवाली वस्तु न तो उतनी ही पास न और न उतनी बड़ी ही है, जितनी दिखायी देती है । यह परिज्ञान करानेवाला कौन है ? आत्मा ।

(५) एक ही परिस्थितिमें शिक्षा पानेवाले दो लड़कोंमें एक योग्य बन जाता है, दूसरा अयोग्य रह जाता है । इसका कारण पूर्वजन्मका संस्कार समझा जाता है; परन्तु पिछले संस्कार किस प्रकार नये शरीरमें आते हैं ? यदि कोई सत्ता है ही नहीं, तो उसे आश्रय देनेवाला कौन है ? इसी आश्रयदात्री सत्ताका नाम जीवात्मा है ।

(६) शरीर नश्वर होनेके हेतु मृत्युके भयसे मनुष्य भयत्रस्त रहता है; परन्तु आत्मिक बल प्राप्त होनेसे मनुष्य इस भयसे रहित होकर निर्भीक बन जाता है । आत्मिक बल प्राप्त होनेसे वह क्यों निर्भीक बन जाता है, इसका कारण अमर आत्माका शरीरमें होना ही है । आत्मा अमर होनेसे मृत्युके भयसे वह स्वतन्त्र बन जाता है । आत्मिक बल प्राप्त होनेका भाव है आत्माके ऊपरसे प्रकृतिके आवरणका दूर हो जाना । आवरण हटनेसे भय भी छूट जाता है ।

(७) मनुष्य जब कोई पाप कर्म करता है तब उसके भीतरसे उस पाप कर्मको रोकनेवाली प्रेरणा उत्पन्न होती है जिसको अन्तःकरण-वृत्ति Conscience कहते हैं; यह वृत्ति भी आत्म-सत्ताका बोध कराती है ।

(८) मनुष्य अपने मस्तिष्क और इन्द्रियोंको कार्यमें लगाता है । मस्तिष्क और इन्द्रियोंके थक जाने और विश्राम चाहनेपर भी कार्योंको करनेकी इच्छा बनी रहती है । यह भीतरी इच्छा उसी आत्माकी सत्ताका साक्षी है, जो आत्मोन्नतिके लिये इन्द्रियोंको विश्राम नहीं लेने देता ।

(९) यह स्पष्ट है कि, एकान्त-वाससे मानसिक उन्नति होती है । क्यों ? इसका कारण यह है कि, एकान्तवासमें इन्द्रियोंको दौड़-धूप करनेका अवसर नहीं मिलता । जो भीतरी शक्ति इन्द्रियोंके काममें लगे रहनेसे बिखरी हुई उनके साथ लगी रहती थी, वह भी अब सब भीतर एकत्र हो जाती है । इसीका नाम मानसिकोन्नति या बल है । यह बल आश्रित नहीं रह सकता । इसका आश्रय-दाता आत्मा है, जिसके स्वाभाविक गुण ज्ञान और प्रयत्न हैं ।

(१०) शरीर जिन प्राकृतिक अणुओंसे बना है, विज्ञानवेत्ताओंने प्रमाणित कर दिया है कि, वे नष्ट नहीं होते, केवल उनकी अवस्था परिवर्तित होती रहती है । जब स्थूल प्रकृति अविनश्वर है, तब आत्माके अमर होनेमें क्या

सन्देह हो सकता है ? इसलिये उपनिषदों और गीता आदिमें आत्माको अमर कहा गया है ।

(११) नित्य होनेसे जीव अनेक बार जन्म लेता है । इसपर पुनर्जन्मके विरोधी आक्षेप करते हैं कि, पिछले जन्मकी बात क्यों नहीं याद रहती है । परन्तु यौगिक अभ्यास करनेसे वह याद रह सकती है । मनुष्य जिस समय एक शरीरको छोड़ता है, उस समय उसके सब संस्कारादि और पिछले कार्यों की स्मृति चित्तमें, मूलाधारके आश्रित होकर आत्माके साथ, दूसरे शरीरमें चली आती है । कुण्डलिनीके जागृत करनेसे पिछले जन्मकी बात प्रकट हो सकती और हो जाती है ।

(१२) बौद्ध धर्मके प्रवर्त्तक गौतम बुद्धने भी जीवात्माकी सत्ता और उसका अमरत्व स्वीकार किया था ।

(१३) कपिल मुनिने अपने रचे सांख्यदर्शन द्वारा जीवकी स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करते हुए उसका परम कर्त्तव्य आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति ठहराया है । यह अत्यन्त निवृत्ति ही मुक्ति है ।

(१४) न्यायदर्शनके रचयिता गौतम मुनिने आत्माकी स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार की है ।

(१५) वेदमें वर्णित है कि, जीवात्मा शरीरके मध्य गुहाशय (हृदयाशय) में रहता है और परिच्छिन्न (एकदेशी) होते हुए भी समस्त शरीरपर अधिकार रखता है । मृत्यु होनेपर सूक्ष्म और कारण शरीर जीवके साथ स्थूल शरीरसे निकल जाते हैं और जीवात्माके साथ बराबर उस समयतक बने रहते हैं, जबतक वह मोक्षको नहीं प्राप्त होता ।

(१६) आर्यों की प्रथाके अनुसार आगमनका सिद्धान्त प्राचीन मिश्र और यूनानमें प्रचलित था । ×

(१७) यूनानका उच्च कोटिका दार्शनिक पाईथागोरस आत्माकी स्वतन्त्र सत्ता एवं आवागमनको मानता था । सुकरात भी पुनर्जन्मका पोषक एवं आत्माकी स्वतन्त्र सत्ताका माननेवाला था । प्लेटो (Plato) आत्माके अमरत्वका उत्कृष्ट प्रचारक था ।

इसी प्रकारसे संसारके भिन्न भिन्न स्थानोंके दार्शनिक आत्माके अमरत्व एवं स्वतन्त्र सत्ताके पोषक थे ।

× Tylor's Primitive Culture, vol. 11

सिंहभूमि

पं० राजेंद्रलाल चौधरी बी० ए०, विशारद
और
पं० रासविहारी राय शर्म्मा एम० ए०

प्राथमिक

बिहार प्रान्तके इस जिलेका वर्तमान नाम सम्भवतः समृाट् अकबरके राजत्वकालमें पड़ा है। यह बराबरका जंगली है। यहाँ अस्त्र-शस्त्रका प्रचार सदासे है और यहाँ की जंगली जातियाँ यद्यपि अभी अंग्रेजी सरकारके अधीन हैं; तथापि एकता-बद्ध हैं और अपनेको अर्द्ध स्वतन्त्र ही समझती हैं। बिना युद्धके इन्होंने कभी भी अधीनता स्वीकार न की। अकबरने बिहारके अन्य सभी स्थानोंपर अधिकार जमाया; परन्तु वह सिंहभूमि, वीरभूमि एवं मानभूमिपर कब्जा न कर सका था। अनेक सेनापति पृतदर्थ भेजे गये; पर जंगली वीरोंने तीर-धनुषकी मारसे ही उनके छक्के छुड़ा दिये! लाचार होकर समृाट्को मानसिंहको बुलाना पड़ा। सिंहजीने अपरिमित परिश्रम, अदम्य उत्साह और अद्वितीय युद्ध-निपुणताके द्वारा इन स्थानोंको हस्तगत किया। इन तीनों स्थानों के नाम (वीरभूमि, मानभूमि और सिंहभूमि) उन्हीं वीर मानसिंहके नामपर पड़े।

यहाँ पहले जंगली आदि निवासियोंका स्वतन्त्र राज्य था। मुसलमानोंकी अमलदारीमें भी इन लोगोंने एकान्त स्वाधीनताका उपभोग किया था। इन्हें वशमें लानेके लिये छोटानागपुरके योनझर, मयूरभंज, पोराहाट राज्योंने भरपूर चेष्टा की थी; मेजर रोगलिसेजने भी उठा न रखा था; पर इनकी स्वच्छन्दता ज्यों-की-त्यों बनी रही। सिपाही-विद्रोहके बाद पोराहाटके राजा अर्जुन सिंह देव थे। ये समस्त सिंहभूमिके महाराज थे। परन्तु आदिनिवासियोंको पूर्णरूपेण ये भी न जीत सके थे। पहले ये अंग्रेजी सरकारके विश्वस्त मित्र थे; पर कालचक्रमें पड़कर या यों कहिये कि, प्रजावृन्द की शुभाकाङ्क्षाओंसे प्रेरित होकर इन्हें गोरे महाप्रभुओंसे शत्रुता मोल लेनी पड़ी। अन्तको इन्हें राज्य-निर्वासित कर इनके बनारस भेजे जानेपर राज्यके कई टुकड़े किये गये। सरईकेला, खरसवाँ, केरा, आनन्दपुर, इन्हींके कुलके साकारी खैरख्वाहोंको संरक्षतामें, सौंप दिये गये। पोराहाट नामका अत्यल्प खण्ड महाराजके पुत्र राजा नरपति सिंह देवको दिया गया। राजा नरपति सिंह देवकी राजधानी चक्रधरपुर है। धलभूमिका इलाका अलग रहा और कोल्हानको गवर्मेंटने खास महाल बनाया। यह छोटानागपुर कमिश्नरीके अन्तर्गत है और इसके उत्तरमें राँची और मानभूमि जिले, पश्चिममें राँची जिला और गंगपुर देशी राज्य, दक्षिणमें मयूरभंज, केयोनझर और बोनई देशी राज्य तथा पूर्वमें मेदिनीपुर जिला है।

विस्तार, जनसंख्या, जलवायु और वर्षा

इस जिलेका क्षेत्रफल ३८७७ वर्ग मील है। यहाँकी जन संख्या ७९९४३८ है, जिसमें ४००००२ हिन्दू, ३३२०१० एनीमिस्ट, ११३०९ क्रिस्तान तथा शेष दूसरे-दूसरे लोग हैं। धलभूमिके अतिरिक्त समस्त जिलेका जलवायु शुष्क एवं स्वास्थ्यकर है। शीतकाल सुखप्रद और सुन्दर होता है। ग्रीष्मकालमें तापकी प्रचण्डता रहती है एवं वर्षाकाल भी ऋतुओंसे पीछे नहीं रहता। यहाँकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि, ऋतुपरिवर्तन स्पष्टतया मालूम ही नहीं पड़ता। एक ऋतुके अनन्तर दूसरी ऋतु सहसा 'चार्ज' ले लेती है और तब कहीं लोगोंको परिवर्तनका बोध होता है।

नदी, पहाड़, खनिज, उद्भिद्, जीवजन्तु और व्यापार

यहाँकी सर्वप्रधान नदी सुवर्णरेखा है, जिसमें जमोरा, रोरो और संजेयोके साथ खड़कै गिरती है। इनके सिवा वैतरणी, कोयल, कारो और देवनदी भी इस जिलेको सिंचित करती हैं। ये सभी क्षुद्र और पर्वतीय नदियाँ हैं। इनमें प्रायः सूखी होकर दरिद्रता तथा विधवापनका परिचय देती हैं, परन्तु वर्षा ऋतुका आगमन होते ही घनठन कर नवयौवना-सी पदार्पण करती हैं और "क्षुद्र नदी भरि चलि तोराई" उक्तिको अक्षरशः चरितार्थ करती हैं। इनसे सिंचन, यात्रा या व्यापारके काम नहीं लिये जा सकते।

यहाँ कोई प्रसिद्ध पहाड़ नहीं। हाँ, "अन्धोंमें काना राजा" के तौरपर लोन्दाबुरु, छोटापहाड़ टोनो आदि हैं।

खनिज पदार्थोंकी भी यहाँ अधिकता है। सरईकेलामें सोनेका सोता, ताँबा, सज्जी मिट्टी, सुरमा और स्वर्णधूलि मिलती है। कोड़ा पहाड़में मैंगनीज Manganese मिलता है। मनोहरपुर-पोटकामें असी सोनेका पता लगा है और वहाँ बाबू गोविन्द सिंहका कब्जा है। बड़ा जामदा, नयामुण्डी, बॉंसापोसी और गोवामें मैंगनीज और लोहा पत्थर मिलते हैं। वहाँ टाटा तथा वर्ड कम्पनियोंका अधिकार है। सीमपानीमें चूनेकी खदान है। चावर गाँवमें सफेद मिट्टी मिलती है। लिप्सी पहाड़के ताँबेका ठेका एक साहबने ३९ वर्षोंके लिये लिया है। संजेयी नदीकी चट्टानोंमें टाकी पत्थर होता है।

यहाँकी सबसे प्रधान उपज धान है, सो भी ज्यादातर जाड़ा या गोड़ा। शेष आय कम होती है। जहाँ समतल भूमि नहीं, वहाँ बाजरा; तेलहन, मकई, ईखकी खेती होती है। पहाड़ी जमीनमें कोई उपज नहीं। जंगलके आधिक्यसे यत्र-तत्र सरकारी और देशी राजाओंके वन-विभाग खुले हुए हैं। यहाँ तरकारी खूब पैदा होती है, जिसमें टमैटो खास है। यह कलकत्तेके बाजारमें भी वणिकोंके चित्त आकृष्ट करता है। कागजी घासके लिये यह जिला नामी है।

मवेशी पालनेका प्रचलन कम है। हाँ, पालित पशुओंमें गाय, बैल, भैंस, भैंसा ही अधिक संख्यामें होते हैं। इसलिये धान आदि पैदावारसे व्यापार होता है। जंगलोंके बहुतायतसे लकड़ीका व्यापार खूब होता है। लाह, तसर और केन्द वृक्ष पाये जानेसे अनेक लाह और बीड़ीके कारखाने हैं। तसर-वस्त्रका व्यवसाय होता है। यहाँसे पत्ते, बीड़ीके लिये, अन्यत्र भेजे जाते हैं। हाँ, लाख मन सावे घास (कागजी घास) की खपत बंगाल पेपर मिलसमें होती है। साबुन और लोहेके भी कई कारखाने हैं। हुँड़ीका व्यापार खास होता है। आधे लोगोंका काम व्यापार, उद्योग और नौकरीसे चलता है।

विभाग, थाना, प्रधान स्थान और यात्रापथ

इस जिलेमें सदर और धलभूमि, दो सबडिवीजन हैं। चाईबासा, चक्रधरपुर, घाटशिला, जमशेदपुर और मनोहरपुर, पाँच थाने हैं। उपर्युक्तोंमें जमशेदपुर प्रधान स्थान है। चाईबासा जिलेका सदर मुकाम रोरो नदीके किनारे है। यहाँ जिला स्कूल है और जिलेके शासक डिपुटी कमिश्नर साहब यहीं रहते हैं। चक्रधरपुर, संजेयी नदीके तटपर, बी० एन० रेलवेका डिस्ट्रिक्ट और नामी स्टेशन है। यहाँ रेलवे हाई स्कूल है। बीड़ी, लाह, साबुन और लोहेके कारखाने हैं। घाटशिला एक छोटा शहर है, जहाँ बंगालियोंकी आबादी अधिक है। जमशेदपुरमें विश्वविख्यात टाटा फैक्टरी है। मनोहरपुरमें साबुकी फुलवारी देखने योग्य है।

जिलेमें सर्वत्र बी० एन० रेलवे दौड़ती है। कालीमाटीसे इसकी एक शाखा निकलती है और दूसरी शाखा आमदासे गोआतक जाती है। आसनसोल-में ग्रैंड ईस्ट इण्डियन रेलवेसे आ मिलती है। दो पक्की प्रसिद्ध सड़कें हैं—चक्रधरपुर-चाईबासा रोड और चक्रधरपुर-राँची रोड।

बोली, भाषा, धर्म और रीति-रिवाज

इस जिलेमें हिन्दी, बंगला, उड़िया, तीन भाषाएँ हैं और इन तीनोंके अतिरिक्त हो, संथाली, मुण्डारी, उराँव

आदि बोलियाँ हैं । इन बोलीवालोंने हिन्दीको अपनाया है। जिलेमें प्रायः ६० प्रतिशत इनकी आबादी है। २० प्रतिशतसे कम उड़ियोंकी और करीब २० प्रतिशतमें औरोंकी आबादी है । इस प्रकार इस जिलेकी प्रधान भाषा हिन्दी है। हिन्दीको आम तौरसे इस जिलेकी सभी भाषावाले समझते हैं ।

यहाँ हिन्दू, मुसलमान और क्रिश्चियन, तीन धर्मी हैं । आदिनिवासियोंने जनसंख्या-गणनामें अपनेको सबने हिन्दू लिखवाया है; अन्यों (Others) में वे नहीं रहना चाहते ।

आदिनिवासियोंमें कतिपय विचित्र रीति-रिवाज हैं, जो पाठकोंके मनोरञ्जनार्थ लिखे जाते हैं—

१ यहाँ गायोंसे हल जोता जाता है । अधिकतर गायें दूध दूहनेके लिये नहीं, हल चलानेके लिये रखी जाती हैं ।

२ यहाँ धान-उपजे खेतोंमें हल चलाये जाते हैं । कृषि-कर्ममें यहाँवालोंकी अबोधता प्रकट होती है । इनके हल, हलवाहक, हेंगे आदिको देखकर हँसी नहीं रुक सकती ।

३ विवाहकी प्रथा अजीब है । सालमें इनके यहाँ कई बार जुटान जुटता है । उसमें वर और कन्याके पक्षोंके लोग सम्मिलित होते हैं । वर-कन्या और उभय पक्षके अभिभावकोंकी सम्मति होनेसे पाणिग्रहण होता है । वरपक्ष कन्या-पक्षको ही भरपूर रकम देता है । इस दान या कन्या-क्रयका नाम "पन" है । वर-कन्याकी स्वीकृति होनेपर, कन्यापक्षके अस्वीकार करनेपर, दोनों ओरसे कन्याके लिये खींचा-खींची (Tug off war) होने लगती है और मजबूत दल कन्याको खींच ले जाता है । इस प्रकारसे भी "पन"से छुटकारा नहीं । कभी-कभी तो आम सड़कोंपर ही दलोंकी यह लुभावना दृश्य देखनेको मिल जाता है । कन्याकी अस्वीकृति या "पन" की रकम कम होनेसे मुकदमा भी चलता है । इस हानिकर "पन" या कन्या-विक्रयकी प्रथाके कारण अनेक योग्य युवक यावज्जीवन क्वांरे ही रह जाते हैं !

४ इनमें हँड़िया (भातकी बनी शराब) पीने और नाच-गान करनेकी खूब चाल है । मुश्किल भी मद्यपान एवं नृत्य-गानमें बाधा नहीं दे सकती । असलमें जिस समय वे इल-के-दल नाचने-गाने लगते हैं, उस समय देखनेवालेको भी थिरकनेवाले बन जाते हैं और प्रतीत होता है—"जहाँ है अज्ञान जो, बुद्धि मुर्खता जाहि" (Where ignorance is bliss it is folly to be wise) ।

५ इनके यहाँ चुड़ी गाड़ा जाता है, जो भी घरके पास ही । स्थापित शिला-खण्डपर ऊबड़-खाबड़ कतिपय पंक्तियाँ लिख दी जाती हैं ।

६ सुना जाता है कि, विवाह हो तक वे परिवारके साथ रहते हैं ।

७ इनके विशेष पर्व हैं—फूलभाँगनी, माघपर्व, चैतपर्व और रथपर्व प्रधान हैं । इन सभी अवसरोंपर मद्यपान, नृत्य-गानका समुचित ध्यान रखता है । शायद इनका सांसारिक ध्येय "खाओ, पीओ, मौज करो" ही है ।

राजा, जमींदार और रईस

इस जिलेमें पोरहाट राज्य है, जिसके शासक राजा नरपति सिंह देव हैं । इनके पिता महाराज अर्जुनसिंह देव समस्त सिंहभूमिके शक्तिशाली शासक थे । आप अंग्रेजी, उड़िया, बंगला आदिके ज्ञाता एवं हिन्दीके विद्वान् हैं । सुना जाता है, इन्होंने अलङ्कार-विषयक एक ग्रन्थ भी लिखा है । चित्रकारीमें ये प्रवीण हैं ।

सरायकेला सबसे बड़ा राज्य है । यह फ्यूडेटरी स्टेट राजा उदितनारायण सिंह देव बहादुरके अधीन है ।

खरसवाँ-राज्य राजा रामचन्द्र सिंह देवके अधीन है। आनन्दपुर जमींदारीके मालिक ठाकुर अमरेन्द्रप्रताप सिंह देव हैं । केरा जमींदारीके मालिक ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह देव हैं । काशीपुरके रईस बाबू उदितप्रताप सिंह हैं । धालभूमिकी एक अलग जमींदारी है ।

कोल्हान सरकारी जमींदारी है । यह कोल्हान सुपरि-टेंडेंटके अधीन है । कई गाँवोंके मालिक 'मानकी'

कहलाते हैं और एक-एक गाँवके मालिक "मुण्डा" कहलाते हैं। ये सब-के-सब आदिवासी हैं। मानकीको दारोगाका और मुण्डाको जमादारका अधिकार प्राप्त है।

चक्रधरपुरके जमीन्दार श्रीनरपतिनाथ महापात्र हैं। इनके अतिरिक्त इंचा, कुलना और बाँधगाँवकी जमीन्दारियाँ अच्छी हैं। रईसोंमें राय साहब नेपाल बाबू सम्पत्तिशाली व्यक्ति हैं। मांगीलाल रौंगटा एक कारबारी मारवाड़ी हैं। आपके कई प्रकारका व्यापार है। राय साहब कुछ सालको कौंसिलके सदस्य रह चुके हैं। अब्दू और नारायण सामको भी अच्छे रईसोंमें हैं।

पत्र-पत्रिकाएँ और प्रेस

सिंहभूमिसे कोई अच्छा पत्र नहीं निकलता। हाँ, "चाँदनी" नामकी एक हिन्दी-पत्रिका बाबू देवेन्द्रनाथ सामन्त एम० ए०, बी० एल०, एम० एल० सी० के सम्पादकत्वमें चाईबासासे निकलती है। इसका अन्तिम लक्ष्य आदिवासियोंका सुधार एवं संगठन है। चाईबासामें सेवक और सावित्री नामके दो प्रेस हैं। चाईबासामें चित्तरंजन नामका प्रेस भी था, जो "देशकी पुकार" पुस्तकके प्रकाशनसे गवर्नमेण्टकी आँखोंका काँटा हो गया और न्यायकी जंजीरोंमें जकड़ा जाकर अस्तित्व खो बैठा। चक्रधरपुरका सम्मिलनी प्रेस, जो अंग्रेजी, हिन्दी, उड़िया आदिका मुद्रण करता था, अब न रहा।

दर्शनीय स्थान

प्राकृतिक दृश्योंके लिये नदी, पहाड़, जंगल आदिका रहना नितान्त आवश्यक है। प्रकृतिकी कला एवं रचना-चातुर्यका बोध इन्हींसे होता है। नदीके बाधा-रहित जल-प्रवाहमें, हिमाच्छादित शृङ्खलाबद्ध पर्वतोंमें, कोकिलकी काकलीमें, मयूरके नयनाभिराम नृत्यमें, जनपदसे दूर भूमि-खण्डमें ही तो प्रकृतिकी प्रकृत प्रवीणताकी प्रतीति होती है। इसलिये इस जिलेमें अनेक दर्शनीय स्थान हैं, जिनमें कुछका परिचय यहाँ दिया जाता है।

१ लुपुंगुटू—चाईबासासे चार मीलकी दूरीपर यह एक झरना है। चारों ओर अर्जुनके वृक्ष हैं। वहीं इमलीकी जड़से झरनेका पानी निकलता है। जल कई स्थानोंसे निकलकर धारा-रूपमें बहता है। दृश्य मनोरम है। मकर-संक्रान्तिके अवसरपर यहाँ मेला-सा लग जाता है। चाईबासाके स्कूलोंके विद्यार्थी प्रायः वनभोजके लिये यहीं पहुँचते हैं।

२ टोंटो—यह दूसरा झरना है, जो चाईबासा जिला-स्कूलसे एक मीलकी दूरीपर, रोरो नदीके तटपर है। लुपुंगुटूकी नाईं कई स्थानोंसे यहाँ जल नहीं निकलता। स्रोतका उद्गम एक ही है। परन्तु "अवसि देखिये देखन योगू।"

३ खड़कैका जार्जा—इंचाके पास, चाईबासासे ६ मीलकी दूरीपर, अवस्थित है। दो पहाड़ोंके बीचसे बहती खड़कै नदीकी धारा मनको मोह लेती है। पहाड़ों और जंगलोंका दृश्य सोनेमें सुगन्धका काम करता है। "दृष्टि जहाँ-जहँ जाय रहत तितहीं ठहराई"की उक्ति यहीं चरितार्थ होती है।

४ टेबो—यह एक पहाड़ है, जिससे होकर चक्रधरपुर-राँची रोड जाता है। पहाड़ ऊँचा है। रास्ता पहाड़ काटकर बनाया गया है। थोड़ी-थोड़ी दूरपर घुमाव है। रास्ता साँप-सा मालूम पड़ता है, और, ऊपरके रास्तेसे नीचेका रास्ता बहुत नीचे होनेपर भी समीप ही दीख पड़ता है। "बहुत समीपी घुमाव" सड़कपर लिखा मिलता है। पहाड़ और जंगलकी शोभा अपना सानी नहीं रखती। इंजिनियरकी विद्या, बुद्धि और चतुरतापर विस्मय होता है।

५ होयोहातू—यह एक गुफा है। विशेषता यह है कि, इसमेंसे सदा जोरोंसे हवा निकलती रहती है। यह नीचेकी ओर चला गया है। पास खड़ा होनेपर थरथरी हो जाती है। कहते हैं, यहाँ कभी आग्नेय पर्वत रहा होगा और विस्फोटन हुआ होगा।

६ पानपोस—यह तीर्थ-स्थान है। यहाँ सालमें माघकी शिवरात्रिके अवसरपर छोटा मेला लगता है। वेदव्यासका

जन्म यहीं बताया जाता है। यह स्थान कांस और कोयलके संगमपर स्थित है। पर्वत, जंगल, नदी और मन्दिरकी शोभा न्यारी है। मीठे पानीवाला एक झरना भी है।

७ जमशेदपुर—जनसंख्याके हिसाबसे बिहार-उड़ीसामें इसका स्थान दूसरा है। विश्वविख्यात टाटा फैक्टरीने, औद्योगिक क्षेत्रमें, संसारमें दूसरा स्थान प्राप्त किया है।

८ केरा—यह एक तीर्थस्थान है। मेष-संक्रान्तिके दिन यहाँ मेला लगता है। स्थानीय देवी बहुत प्रसिद्ध हैं। आदि-निवासियोंका नृत्य-गान यहाँ देखनेको मिल जाता है।

९ अक्षरलेखा पहाड़—यह संज्ञा ही लेख-विशेषका परिचय देती है। यह वह पहाड़ है, जिसके भीतर, एक चौरस मैदानमें, सिंहभूम (पोड़ाहाट)के महाराज अर्जुन सिंह देव, अंग्रेजोंसे [illegible] किये जानेपर अपनी बची-खुची मुट्ठीभर फौजके साथ बहुत दिनोंतक, छिपे थे। शिला-खण्डों-पर महाराजकी अंकित पंक्तियाँ आत्मकथाका काम देती हैं।

१० गोयलकेरा-मन्दिर—महादेवकी मूर्त्ति लाल लैम्प-सी दीख पड़ती है। मूर्त्तिका अंग-भंग है। यह बी० एन० रेलवेकी कृपा है। कहा जाता है कि, इस मूर्त्तिने कई बार गाड़ी रोक दी। बी० एन० आर० ने इसे तोड़ देना चाहा। मूर्त्तिको अंग-विकृति होते ही कुछको साँपने काट खाया। गोयलकेरा के पुजारीको यथावधि रेलवेसे दस रुपये मासिक मिलते हैं।

शिक्षाकी गति

सिंहभूम जंगली विभागका महाजंगली जिला है, अतः निरक्षरताके अन्धकार-गर्तमें पड़ता है। यहाँकी शिक्षा "आटेमें लवणवत्" है। तथापि कुछ पाठशालाएँ एवं संस्थाएँ वर्तमान हैं; जिनसे गर्तमें भी क्षीण प्रकाशका आभास होता है।

चक्रधरपुरमें हाई स्कूल है, जहाँ अंग्रेजीके सिवा हिन्दी, उर्दू, उड़िया, बंगला, संस्कृतकी पढ़ाई होती है। इसके प्राइमरी विभागमें तेलगूकी पढ़ाई भी होती है। बालिकाओं-की पाठशाला भी इस विभाग अन्दर है।

चाईबासा जिला स्कूलमें आदिनिवासी विद्यार्थियोंकी ही तादाद अधिक है।

भारागोड़ा हाई स्कूलमें उड़ियाकी पूछ अधिक है। सरायकेला राजहाई स्कूल भी है।

जमशेदपुरमें टाटा कम्पनीका हाई स्कूल है। इनके अतिरिक्त मिडिल इंगलिश स्कूल १०, मिडिल वर्नाक्युलर स्कूल ७, अपर प्राइमरी ५४, लोअर प्राइमरी ४०० हैं। लड़कियोंके लिये ८ अपर प्राइमरी स्कूल हैं। मकतब १३, संस्कृत टोल २, चक्रधरपुर यूरोपियन स्कूल १ और एक जमशेदपुरमें टेकनिकल इन्स्टीट्यूट भी हैं।

संस्थाओंमें जिला कांग्रेस कमेटी (चक्रधरपुर) है। इसका भवन इन दिनों सरकारी कब्जेमें है।

आर्य-समाज, चक्रधरपुर, दूसरी संस्था है। इसके सभापति सेठ शिवबक्स राय और उपसभापति श्रीरामरसीलाप्रसाद सिन्हा बी० ए० शिक्षा-मर्मज्ञ हैं।

बी० एन० रेलवे इंस्टियन इन्स्टीट्यूट तीसरी संस्था है।

हिन्दी-पुस्तकालय चक्रधरपुरमें, जिलेके सभी पुस्तकालयोंसे, हिन्दीकी किताबें अधिक हैं।

चक्रधरपुर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके प्रथमा-मध्यमाका केन्द्र है। शोक है, छोटानागपुरका एक मात्र परीक्षा-केन्द्र होनेपर भी विद्यार्थि-गण लाभ नहीं उठाते।

इनके अलावा "चाईबासा हो लाइब्रेरी", "चाईबासा बिहारीक्लब" "टाटा मिलनी एसोसिएशन" और नाटककी बहुतेरी कम्पनियाँ हैं।

साहित्य-सेवी

इस जिलेमें कोई प्रख्यात विद्वान् नहीं हुआ है। "चाँदनी"-सम्पादक श्रीदेवेन्द्रनाथ सामन्त विद्वान् पुरुष हैं। आप चाईबासाके वकील, डिस्ट्रिक्ट बोर्डके वाइसचेयरमैन और एम० एल० सी० हैं। चक्रधरपुरके राजा नरपतिसिंह देव हिन्दीके अच्छे विद्वान् हैं। बलियाके स्वर्गीय प० रामदास सिंह "बछन" यहाँ नामी विद्वान्, लेखक और कवि थे।

साहित्य-सम्मेलनमें "पैसा फण्ड"के प्रस्तावक शायद ये ही थे। इन्होंने दर्जनों पुस्तकें लिखी हैं जिनमें हिन्दी जेबी-कोष और हिन्दी मुहावरे-कोष उत्तम हैं। आपने बहुत दिनोंतक चक्रधरपुर रेलवे स्कूलमें हेड पण्डितका काम किया था।

चक्रधरपुरके बाबू गौरीशंकर गनेड़ीवाले विद्वान् पुरुष हैं। इन्होंने "शिवभक्त-माल"की दो प्रतियाँ गोरखपुरसे प्रकाशित करायी हैं।

बा० कालीप्रसन्न कवि (उड़िया), विजयप्रताप देव (उड़िया) और लक्ष्मीनारायण महापात्र (उड़िया) के नाम भी उल्लेख-नीय हैं।

हालकी मनुष्य-गणनाके अनुसार एनोमिस्टोंकी संख्या बहुत कम हो गयी है। कुछ क्रिस्तान हो गये हैं और बहुत हिन्दू बन गये हैं।

पावस

बाबू सूर्यबली सिंह परिहार

रजको बहाया और शीतल बनाया थल,
हरी-हरी घासका बिछौना-सा बिछाया है।
फूलोंको खिलाया और भौंरोंसे गवाया गान,
घनसे मृदङ्ग भली भाँति बजवाया है ॥
सुस्वर सुनाया है सितार-वाद्य भी गुरोंका,
नृत्य बाँका नर्तक मयूरका दिखाया है।
ऐसी मनोहारिणी सजानेवाला रंगभुमी,
पावस प्रतापी जग-जीवन ले आया है ॥

देवरजीकी दानवता

पाण्डेय जगन्नाथप्रसाद सिंह

(१)

"काशी, २९-४-२८

प्रिय सखि,

पत्र मिला। समाचार मालूम हुए। इसी प्रकार बराबर पत्र लिखा करो।

तुमने मेरे देवरके बारेमें पूछा है न! वे देखनेमें बड़े ही सुन्दर और शरीरसे हृष्ट-पुष्ट हैं। उम्र करीब उन्नीसके होगी। इसी वर्ष उन्होंने बी० ए० की परीक्षा दी है। कहते हैं, पास कर जानेकी उम्मीद है। इसके बाद वकालतकी परीक्षा देनेका विचार है। कमलाके लिये ये बड़े ही उपयुक्त वर हैं। मैं इस विषयमें कोई बात छिपा नहीं सकती; क्यों कि, कमला मेरी भी सखी है और तुम्हारी भी। मैं वही काम करूँगी जो कमलाके लिये हितकर होगा। हाँ, एक और भी है। मेरे देवरजी जरा रसिक हैं। विवाहका प्रसंग छिड़नेपर एक दिन हँसते हुए उन्होंने कहा था कि, वे मेमसे शादी करेंगे; क्योंकि देशी औरतोंमें वह चुलबुलाहट नहीं होती, जो मेमोंमें पायी जाती है। परन्तु यह सब केवल मजाक-ही-मजाक था। यदि तुम पसन्द करो, तो इस सम्बन्धमें मैं बातचीत करूँ। कमला अनाथिनी है तो क्या हुआ, विदुषी तो है। उसके साथ देवरजीका जीवन बड़े आनन्दसे कटेगा।

और सब कुशल है। अपना कुशल मंगल लिखना।

तुम्हारी सखी—ललिता"

(२)

"काशी, १५-५-२८

प्रिय सखि,

तुम्हारे लिखनेके अनुसार मैंने विवाहके सम्बन्धमें बातें की हैं। देवरजीको कमलासे विवाह करनेमें कोई उज्र नहीं है। मेरे श्वशुरका केवल यही एतराज था कि, कमला अनाथिनी है। परन्तु जब उन्हें यह मालूम हुआ कि, उनका पुत्र इस लड़कीसे शादी करनेको तैयार है, तो वे भी राजी हो गये। अब विवाह-सम्बन्ध पक्का हो गया ही समझो। इस शुभ कार्यके लिये एक शुभ मुहूर्त ठीक हो जाना चाहिये। मेरे पतिदेव इस कामके लिये परसों तुम्हारे यहाँ जायँगे। कमला तुम्हारे श्वशुरकी आश्रिता है। इसलिये मैं समझता हूँ, कन्यादान वही करेंगे। जहाँतक हो सके, इस शुभ कार्यको शीघ्र पूरा करना चाहिये।

तुम्हारी सखी—ललिता"

(३)

"काशी, २०-५-२८

प्रिय सखि,

कल मेरे पतिदेव तुम्हारे यहाँसे शादीका दिन ठीक करके लौटे और कल ही देवरजीका परीक्षा-फल निकल गया। हिन्दीमें ये ऑनर्सके साथ बी० ए० पास कर गये। अगामी बुध बारको विवाह है। हम लोग इसीमें व्यस्त हैं। और सब कुशल है।

तुम्हारी सखी—ललिता"

(४)

"काशी, १०-६-२८

प्रिय सखि,

मेरे देवरकी शादी कमलासे हो गयी सही; परन्तु काम दर असल देवरजीको लुभा न सकी। उसकी लज्जा इस काममें बाधक हुई। इसी बीच देवरजीको लुभा लिया एक वेश्याने। देवरजी भी रीझे हुए हैं उसकी कृत्रिम चुलबुलाहटपर। कमला अभी बालिका है। इन बातोंको समझती ही नहीं। नहीं तो देवर जीको बहकने नहीं देती। खैर, अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। देवरजीको ठीक रास्तेपर लानेकी चेष्टा कर रही हूँ। कमलाको भी लिखा-पढ़ा दिया है। उम्मीद है कि, वह उन्हें ठीक रास्तेपर लानेमें समर्थ हो सकेगी। इसके लिये तुम चिन्तित न होना; क्योंकि—होता वही है, जो मंजूरे खुदा होता है। पत्रोत्तर शीघ्र देना।

तुम्हारी सखी—ललिता"

(५)

"काशी, १५-२-२९

प्रिय सखि,

आज बहुत दिनोंपर तुम्हें पत्र लिख रही हूँ। तुम्हारे कई पत्र आये; पर एकका भी उत्तर न भेज सकी। बात यह यह है कि, देवरजी सुधरनेके बजाय पतनकी ओर सरपट दौड़े जा रहे हैं। हम लोगोंकी चेष्टाएँ कारगर नहीं हुईं। कमला भी उन्हें ठीक रास्तेपर लानेमें असमर्थ हो रही। हम लोग बहुत चिन्तित रहा करते हैं। देवरजीका वेश्यागमन अब खुले-आम होता है। लेहाज और शरमको उठाकर ताकपर रख दिया है। ऐसी दशामें कमलाका तुम्हारे यहाँ जाना ठीक नहीं जान पड़ता। कुछ दिनोंतक उसे यहीं छोड़ दो। वह बेचारी भी अपने पतिके आचरणोंसे खिन्न रहा करती हैं। अब वह एकदम बालिका तो है नहीं। युवावस्थामें जिसका पति इस प्रकार रूठ जाय और वेश्यागामी हो जाय, उस स्त्रीके दुःखका क्या ठिकाना। क्या देवरजीके सुधारनेका कोई उपाय तुम बता सकती हो? पत्रोत्तर शीघ्र देना।

तुम्हारी—ललिता"

(६)

"काशी, २५-७-३०

प्रिय सखि,

तुम तो जानती ही हो कि, मेरे देवर अभीतक सुधर नहीं सके। वे पक्के वेश्यागामी बन गये। इस दुःखको कमला अधिक बरदाश्त नहीं कर सकी और मालूम होता है, गङ्गामें डूब मरी। कल सुबहसे ही पता नहीं है। उसके बिछौनेपर एक पत्र पाया गया है, जिसमें उसने लिखा है—"ललिता दीदी, खेद है, मैं अधिक दिनोंतक आप लोगोंकी सेवा नहीं कर सकी और न आपकी संगतिका सुख उठा सकी। अब यह दुःख बर्दाश्त नहीं हो रहा है। इसलिये जाती हूँ—गंगा मैयाकी शरणमें। इस जन्ममें तो उन्हें न पा सकी, शायद दूसरे जन्ममें पा सकूँ।"

इस पत्रसे तो स्पष्ट मालूम होता है कि, वह गंगामें डूब मरी। बहुत कुछ खोज की गयी, पर पता न चला। पुलिसको भी इस बातकी सूचना दे दी गयी है। वह जाँच कर रही है। गंगामें जाल डलवाया गया था; पर लाश न मिली। कहीं बह गयी होगी। विशेष क्या लिखूँ। इस समय मन चञ्चल हो रहा है।

तुम्हारी सखी—ललिता"

(७)

"काशी, २८-७-३०

प्रिय सखि,

विपत्ति सदा अकेली नहीं आती। कमलाके डूब मरनेका दुःख अभी हलका नहीं हुआ था कि, मेरे देवरजी लज्जावश कलकत्ते भाग गये। हम लोग सब कोई कलकत्ते जानेवाले हैं। विशेष क्या लिखूँ।

तुम्हारी सखी—ललिता"

(८)

"कलकत्ता, ११-१-३१

प्रिय सखि,

तुम इस बातके लिये बहुत लालायित थी कि, कमला मरी तो मरी, मेरे देवरजी तो सुधर जायँ। मैं समझती हूँ, तुम्हारी अभिलाषा अब पूरी हो जायगी। देवरजीके साथ हम लोग कलकत्तेमें ही रहते हैं। वे अन्यमनस्कसे रहते हैं और वेश्यागमन छोड़ दिया है। खैर, यही सही, स्त्रीको मारकर भी तो भला सुधर जायँ। अभी हम सब कुछ महीने यहीं रहेंगे, क्योंकि काशी जानेपर देवरजीके फिर बहक जानेका डर बना रहेगा। यहींके पतेपर पत्र देना।

तुम्हारी सखी—ललिता"

(९)

"कलकत्ता, ७-७-३१

प्रिय सखि,

आज एक बड़ा ही दुःखद समाचार लिख रही हूँ। तुम तो जानती ही हो कि, देवरजीने यद्यपि वेश्यागमन छोड़ दिया था, तथापि उनका मन नहीं लगता था। वे अन्यमनस्क रहा करते थे। एक दिन उनके किसी मित्रने हँसीमें कह दिया, "जहूरन नामकी एक नयी वेश्या कलकत्तेमें आयी हुई है, क्यों, देखने चलोगे?" मित्रके चले जानेपर देवरजीने सोचा, चलो दिल बहला आवें। फिर चले गये उस वेश्याके यहाँ। यह सब कुछ हुआ, पर हम लोग कुछ भी जान न सके। देवरजी जब लौटकर आये, तो उनका मुँह उतरा हुआ था। परन्तु कारण नहीं मालूम हुआ। दूसरे दिन सुबहमें वे बहुत देरतक नहीं उठे। मैंने जाकर उठाया, परन्तु यह क्या! उनका निर्जीव शरीर खाटपर पड़ा हुआ था और उनकी बगलमें एक पुर्जा पड़ा था। उस पुर्जेसे यह मालूम हुआ कि, वे रातमें जहूरनके यहाँ गये थे और यह जहूरन कमलाका ही परिवर्तित रूप है। हम लोग यह जानकर अवाक् रह गये कि, कमला डूबकर मरी नहीं, बल्कि वेश्या हो गयी। उसी समय सड़कपर अखबारवाला चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा था, "आजका ताजा खबर, जहूरन वेश्याने आत्महत्या कर ली... ।"

सखि! इस बातको जबसे जान पायी हूँ कि कमला वेश्या हो गयी थी, तबसे ही कलेजेमें एक प्रकारकी चिलक उठती है। यदि हम लोगोंने उन दोनोंको शादीके पहले ही एक दूसरेको जाननेका मौका दिया होता, तब तो यह भयंकर काण्ड होनेसे बच जाता। खैर, अब तो जो होनी थी, हो कर ही रही। मनुष्य सोचता कुछ है, और होता कुछ है।

तुम्हारी सखी—ललिता"

वैदिक धर्ममें स्त्रियोंकी स्थिति

प्रो० प्रियव्रत वेदवाचस्पति,
सम्पादक, "आर्य"

यदि हमें किसी धर्ममें स्त्रियोंकी क्या स्थिति है, इसे स्पष्ट समझना हो, तो तीन बातोंका ध्यान रखना चाहिये। एक तो यह कि, किसी धर्ममें भविष्य जीवनके लिये बच्चोंके सम्बन्धमें जो कुछ कहा गया है, उसमें कन्याओंका क्या स्थान रखा गया है। दूसरे शब्दोंमें कहना हो तो किसी धर्ममें बालकोंकी शिक्षा पर जितना बल दिया गया है, उतना ही बालिकाओं की शिक्षापर भी बल दिया गया है कि, नहीं, यह हमें सबसे प्रथम देखना चाहिये। देखनेकी दूसरी बात यह है कि, जब स्त्री-पुरुष मिलकर—विवाहित होकर—अपना जीवन व्यतीत करना आरम्भ करते हैं, तब पुरुषके सामने स्त्रीकी क्या स्थिति किसी धर्ममें रखी गयी है। तीसरी बात जो देखनी चाहिये, वह यह है कि, किसी धर्ममें कुटुम्ब (Family) से बाहरका जो स्त्रीका जीवन है—उसकी घरसे बाहर समाजमें जो स्थिति है—वह कैसी है। किसी भी धर्ममें नारीका क्या स्थान है, यह समझना हो, तो हमारे लिये इन तीन बातोंका देखना अत्यन्त आवश्यक है। मैं क्रमशः एक एक बातको लेकर, वेद इस सम्बन्धमें स्त्री जीवनका क्या आदर्श रखता है, यह पाठकोंकी सेवामें रखनेका यत्न करूँगा।

पहले बालिकाओंकी शिक्षाको लीजिये। वेदमें विद्यार्थि-जीवनको ब्रह्मचर्य-काल कहा जाता है। एक विद्यार्थीके जीवनका आदर्श क्या होना चाहिये, यह ब्रह्मचर्य शब्दकी रचनाको देखनेसे ही साफ हो जाता है। पर इस समय मैं इसकी, व्याकरणकी, बारीकियोंमें नहीं जाना चाहता। मैं अधिक स्पष्टतासे इस सम्बन्धमें वेदके अभिप्रायको आपके सामने रखना चाहता हूँ। अथर्ववेदका ब्रह्मचर्य सूक्त (अथ० ११।५), विद्यार्थीका शिक्षा-काल किन परिस्थितियोंमें बीतना चाहिये, शिष्यको कैसे गुरुओंसे शिक्षा मिलनी चाहिये, शिष्य और गुरुका पारस्परिक सम्बन्ध किस तरहका रहना चाहिये तथा विद्यार्थीको अपने शिक्षाकालमें क्या-क्या पढ़ना चाहिये, इन सब बातोंको बहुत ही सुन्दर ढंगसे बताता है। इन सब बातोंका यहाँ बता सकना संभव नहीं है। यहाँपर विद्यार्थीको पढ़ना क्या क्या चाहिये, इस सम्बन्धमें जो कुछ कहा गया है, सिर्फ उसे ही थोड़ेमें बताकर मैं सन्तोष करूँगा। उस सूक्तके चौथे मन्त्रमें कहा गया है कि, एक विद्यार्थीको चाहिये कि, वह अपने अन्दर ज्ञानकी आगको सदा प्रज्वलित रखे। उसे प्रज्वलित करनेके लिये वह उसमें पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौ, इन तीन लोकोंको समिधा बनाकर डालता रहे अर्थात् इन तीनों लोकोंमें—विश्व भरमें—पाये जानेवाले पदार्थों के सम्बन्धमें सब विद्या-विज्ञानों को वह सीखता रहे। इस विद्याप्राप्तिके साथ-साथ उसे चाहिये कि, तीन बातोंका ध्यान और रखे

एक तो यह कि, वह हर वक्त आलस्यसे रहित होकर मुस्तैद, चौकन्ना, जागरूक, कटिबद्ध (मेखलाधारी) रहे। दूसरे उसे प्रतिदिन शारीरिक व्यायाम (श्रम) करते रहना चाहिये। तीसरे उसे अपना जीवन तपस्वीका अर्थात्—सादा और कष्टसहिष्णु बनना चाहिये। उसी सूक्तमें यह भी आदेश कर दिया गया है कि, विद्यार्थीको भौतिक विद्या-विज्ञानोंके साथ साथ आत्मा—परमात्माके ज्ञान या ब्रह्मविद्याको भी पूरी तरह सीखना चाहिये और इस प्रकार अपनेको भविष्य जीवनके लिये सब तरहसे तय्यार और योग्य बना लेना चाहिये। उसी सूक्तमें आगे चल कर (अथ० ११।५।१८) कहा गया है कि, कन्याको भी ब्रह्मचर्यका जीवन बिता कर ही विवाहित जीवनमें प्रवेश करना चाहिये—'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।" कन्याके ब्रह्मचर्यसे जीवन बितानेका अभिप्राय है कि, वह ब्रह्मचारीके कर्तव्य कर्मको पूरा करे अर्थात् जो कुछ ब्रह्मचारीके लिये जानना और करना आवश्यक है, उसे जाने और करे। इस प्रकार हम देखते हैं कि, इस सूक्तमें बालिकाओंको शिक्षापर भी उतना ही बल दिया गया है, जितना कि, बालकोंकी शिक्षापर दिया गया है। अथर्ववेदके चौदहवें काण्डमें तो इस विषयको सर्वथा ही स्पष्ट कर दिया गया है। उस काण्डमें स्त्री और पुरुषके विवाहित जीवन (Married life) के कर्तव्य कर्मोंका वर्णन किया गया है। वहाँ यह भी बताया गया है कि, किस योग्यताकी स्त्री और पुरुषको विवाहित जीवनमें प्रवेश करना चाहिये। उसी काण्डके प्रथम सूक्तका छठा मन्त्र "चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनं द्यौर्भूमिः कोश आसीद् यदयात् सूर्या पतिम्" है। इस मन्त्रमें कन्याके माता-पिताके सम्बोधन करके कहा गया है कि, उन्हें चाहिये कि, जब उनकी कन्या विवाहित होकर पतिके घरमें जाने लगे, तब उसे दहेज दें। पर वह दहेज कैसा? चित्ति अर्थात् दिमागी शक्ति (Intellectuality), उसमें गद्दे-तकिये आदिकी जगह हो। चक्षु अर्थात् चीजोंकी गहराईमें जाकर ध्यानसे देखनेकी शक्ति (Power of Observation) उसमें अंजन आदि शृंगारकी चीजोंके स्थानमें हों। द्यौ और पृथ्वीके बीचमें आनेवाले जगत्का ज्ञान उसमें कोश अर्थात् रुपये-पैसे की जगह हो। यह मन्त्र तो यहाँतक कहता है कि, माता-पिताको चाहिये कि वे अपनी कन्याको दहेज भी दें, तो वह ज्ञानका दहेज हो। यही दहेज वस्तुतः आवश्यक दहेज है। दूसरे दुनियादारीके दहेज कोई दे सकें, तो दें दें, न दे सकें, तो न दें। इसकी कोई विशेष चिन्ता नहीं। पर ज्ञानका दहेज तो मिलना ही चाहिये। (ऋ १०। ८५।७) में भी ऐसा ही उपदेश है। यह मन्त्र सुन लेनेके पीछे वेदमें स्त्रियोंकी शिक्षाके सम्बन्धमें क्या आदेश है, इसे दिखानेके लिये किसी और प्रमाणकी आवश्यकता नहीं रह जाती, पर इस सम्बन्धमें कुछ और प्रमाण भी दे देना अनुपयुक्त न होगा।

वेदके भिन्न भिन्न स्थलोंमें स्त्रीसे इस प्रकारकी बातें कही गयीं और प्रार्थनाएं की गयी हैं कि, हे पत्नी, तू हमें ज्ञानका उपदेश कर (अथ० १४।१।२०); "पतिको धन कमानेके ढंग बता" (अथ० ७।४६।३); "तू सब प्रकारके कर्मोंका ज्ञान रखती है" (अथ० ७। ४७।१); "तू सब कुछ जाननेवाली हमें धनधान्यकी पुष्टि दे"(अथ० ७।४७ २); "तू हमें अपनी बुद्धि-योंसे धन दे" (अथ० ७।४८।२); "तू हमारे घरकी

प्रत्येक दिशामें ब्रह्म अर्थात् वैदिक ज्ञानका प्रयोग कर" (अथ० १४ । १ । ६४)। इन सब शब्दोंसे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि, वेदकी सम्मतिमें प्रत्येक स्त्रीको विवाहसे पहले, जहाँतक हो सके, सब प्रकारके ज्ञान प्राप्त कर लेने चाहिये, ताकि वह अपने गृहस्थ-जीवनमें उनसे यथायोग्य उपयोग ले सके।

इस प्रकार हमने देखा है कि, वेदका धर्म बालकों की तरह ही बालिकाओंकी शिक्षापर भी पूरा बल देता है और कहता है कि, उन्हें भी बालकोंकी तरह संसारका प्रत्येक विज्ञान और प्रत्येक विद्या सिखानी चाहिये।

अब मैं वैदिक धर्मके अनुसार विवाहित जीवनमें स्त्रीकी क्या स्थिति है, इसे आपकी सेवामें उप-स्थित करूँगा। इस सम्बन्धमें हमें पहले यह देख लेना चाहिये कि, विवाहित जीवनमें प्रवेश करनेके समय वर और वधूकी आयु क्या होनी चाहिये। गृहस्थाश्रममें प्रवेश करते हुए वर और वधूका एक वार्तालाप ऋग्वेदके १० वें मण्डलके १८३ सूक्तमें दिया गया है। वहाँ दोनों ओरसे एक दूसरेको युवा, युवती, पुत्रकाम और पुत्र-कामा, इन शब्दोंसे सम्बोधित किया गया है, जिससे स्पष्ट प्रकट होता है कि, वेदकी सम्मतिमें उन्हीं स्त्री-पुरुषोंको विवाहित जीवनमें प्रवेश करना चाहिये, जो कि, युवा अर्थात् जवान हो चुके हों—जिनको सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा उत्पन्न होने लग गयी हो। इस प्रकार वेद बाल-विवाहकी जड़पर ही कुल्हाड़ी चला देता है। इसी प्रकार गृहस्थमें प्रवेश करते हुए वर-वधूके पारस्परिक वार्तालापमें या दूसरोंसे उनके सम्बोधनमें, वेदके भिन्न-भिन्न स्थलोंमें आनेवाले पतिकामा, जनिकामः (अथ० २।३०।५) आदि विशेषण भी इसी बातका उपदेश देते हैं कि, स्त्री और पुरुषका विवाह उस समय होना चाहिये, जब कि, उनके अन्दर एक दूसरेके लिये चाह पैदा होनी आरम्भ हो जाय। यह चाह यौवनमें ही स्त्री-पुरुषमें उत्पन्न होती है। अतः दोनोंका विवाह युवावस्थामें होना ही स्वाभाविक है। इस सम्बन्धमें एक बात और देखने योग्य है। अथर्ववेदका १४ वाँ कांड, जो कि, स्त्री और पुरुषके विवाहित जीवनके कर्तव्य कर्मों और धर्मोंका प्रतिपादन करता है, कन्याको कन्या या इसके पर्यायवाची शब्दोंसे स्मरण नहीं करता। वह उसके लिये 'सूर्या' शब्दका प्रयोग करता है। इसी प्रकार वहाँ आरम्भमें ही वीरोंके लिये 'आदित्य' शब्दका प्रयोग किया गया है। अब यदि हम, ऋषि दयानन्दने जो पुराने शास्त्रोंके आधारपर वैदिक विद्यार्थि-जीवनके—ब्रह्मचर्यके—जो तीन भेद किये हैं, उनके आधारपर 'आदित्य' और 'सूर्या' शब्दका अभिप्राय समझना चाहें, तो 'आदित्य' वह पुरुष कहलाता है, जिसने ४८ वर्षकी आयुतक कभी स्वप्नमें भी कोई गन्दा विचार अपने मनमें उत्पन्न नहीं होने दिया और जो अपनी जीवन-शक्तिका एक कतरा भी अपने शरीरसे बाहर नहीं होने देकर अपने दिमागको विद्याओंसे भरता रहा तथा योगाभ्याससे अपनी आत्मा उच्च और पवित्र बनाता रहा हो। ऐसा पुरुष आदित्य इस लिये कहलाता है कि, वह किसीसे दबता नहीं और संसारके अज्ञान और मिथ्या विश्वासोंके अन्धकारको छिन्न-भिन्न करता रहता है, जिस प्रकार कि, यह भौतिक आदित्य किसीसे दबता नहीं और संसारके अन्धकारको छिन्न-भिन्न करता रहता

है। इसी प्रकार जो बालिका २४-२५ सालकी आयु तक कभी स्वप्नमें भी अपनेको अपवित्र न करती हुई अपने शरीर, दिमाग और आत्माको उन्नत करती है, उसे आदित्या ब्रह्मचारिणी कहा जाता है। सूर्या आदित्याका ही दूसरा पर्याय है। इस प्रकार वरको 'आदित्य' और बधूको 'सूर्या' अर्थात् आदित्या कहनेका अभिप्राय यह है कि, वेदकी सम्मतिमें आदर्श विवाह वह है, जो कि, आदित्य ब्रह्मचारी बालक और आदित्या ब्रह्मचारिणी कन्यामें सम्पन्न होता है। जो लोग इस ऊँचे आदर्शतक नहीं पहुँच सकते, उनके लिये वसु और रुद्रके निचले दो विकल्प हैं। कम से-कम वसु ब्रह्मचर्य तो प्रत्येक बालक और बालिकाको पूरा करना चाहिये अर्थात् कम-से-कम २४-२५ वर्षके ब्रह्मचारी पुरुष और १६-१७ वर्षकी ब्रह्मचारिणी कन्यासे कम आयुके बालक और बालिकाओंका विवाह नहीं होना चाहिये। इससे कम आयुमें विवाह करना पाप गिना गया है। लोग कहेंगे, तुम्हारी आदित्य-ब्रह्मचर्यकी कल्पना एक निरा Utopia है एक न हो सकनेवाली बात है। कभी इतनी ऊँची आयुतक बालक और बालिकाएँ अपनेको इतना पवित्र रख सकते हैं? हम इतना ही कहना चाहते हैं कि, कमजोर निश्चयवाले लोगोंको प्रत्येक नयी बात प्रायः अशक्य लगा करती है। संसारकी प्रायः सभी बड़ी-बड़ी लहरें Movements प्रारम्भमें अधिकांश लोगोंको असम्भव लगती रही हैं। पर दृढ़-निश्चयवाले लोग उनके अनुसार बहुत कुछ कर दिखाते रहे हैं। प्रारम्भमें कौन समझता था कि, कभी Socialism और Bolshvism भी सफल हो सकेंगे। पर आज संसारका एक बड़ा भाग उनके आगे सिर झुका रहा है। वैदिक धर्मका आदित्य-ब्रह्मचर्यका आदर्श भी पूरा होता है, यदि हममें उसके लिये प्रेम और निश्चयकी दृढ़ता हो। लोग कहते हैं कि, वैदिक धर्मकी आवश्यकता नहीं रही. मैं तो कहता हूं, जबतक वेदका आदित्य-ब्रह्मचर्यका आदर्श पूरा नहीं हो जाता, जबतक हम अपने बालकों और बालिकाओंके लिये ऐसी परिस्थिति पैदा नहीं कर सकते, जिसमें कि, उन्हें आदित्य ब्रह्मचर्यकी अवधि तक स्वप्नमें भी पवित्र रहते हुए अपने शरीर, मन और आत्माको सब प्रकारसे योग्य बनानेका अवसर मिल सके, तबतक यदि और बातोंको छोड़ भी दें, तो भी, वैदिक धर्मकी संसारको आवश्यकता है। वैदिक धर्मियोंको अपने इस भारी कर्तव्यको समझना चाहिये।

वेदमें वर-बधूके विवाहकी आयुकी अवधि दिखानेके पश्चात् हम यह दिखाना चाहते हैं कि, वैदिक धर्ममें उन्हीं स्त्री-पुरुषोंका विवाह-सम्बन्ध हो सकता है, जिन्होंने एक दूसरेको भले प्रकार जान लिया और देख लिया है। ऋग्वेदके १० वें मण्डलके १८३ वें सूक्तमें विवाह करनेकी इच्छा वाली बधू अपने भावी पतिको सम्बोधन करके कहती है—"हे वर! मैंने मनसे अच्छी प्रकार तुम्हें जान लिया है, तुम बहुत अच्छे ज्ञानी हो और गुरुकुलमें तपका—सादगी और संयमका—जीवन व्यतीत करके आये हो। तुम्हें सन्तानकी कामना है। आओ, हम दोनों मिलकर प्रजोत्पत्ति करें।" इसी प्रकार वर बधूसे कहता है—"हे बधू, मैंने तुम्हें अपने मनसे जान लिया है, तुम उच्च गुणोंवाली युवती हो और मुझे

चाह रही हो, तुम्हें सन्तानकी कामना भी है, आओ, हम मिलकर प्रजोत्पत्ति करें।" इसी प्रकार अथ० २। ३०। १ में वर-वधू "एक दूसरेको चाहने वाला" शब्दोंसे याद करते हैं। अथ० २।३६।५ वधूसे कहा गया है कि, "हे वधू, तुम ऐश्वर्यकी नौकापर चढ़कर और अपने पतिको, जो कि, तुमने स्वयं पसन्द किया है, संसार सागरके परले पार पहुँचा दो।" "अथ० १४।१।६ में कहा है कि,—"वर-वधूका चाहनेवाला हो और वधू पतिको पसन्द कर रही हो।" इन उद्धरणोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि, वेदकी सम्मतिमें वर-वधूका विवाह एक दूसरेको अच्छी प्रकार जान-लेनेके पीछे परस्परकी सहमतिसे होना चाहिये। परस्परकी सहमतिके बिना वर-वधूका विवाह नहीं होना चाहिये। एक बात और है। यद्यपि विवाहमें वर-वधूकी पारस्परिक सहमतिका रहना अत्यावश्यक है; पर स्त्री-पुरुषको अपना जीवन भरका साथी चुननेमें अपने माता-पितादि गुरुजनों की सलाहका भी पूरा ध्यान रखना चाहिये, ताकि नवयुवक और नवयुवती अपना साथी चुननेमें कोई गलती न कर बैठें। इसी भावको बतानेके लिये अथ० १४।१।६ में कहा है कि,—"मनसा सवितादात्" अर्थात् कन्याको उत्पन्न करनेवाला पिता अपने मनसे—सारी बातें सोच-समझकर—कन्याको पतिके हाथमें देता है। उसी मन्त्रमें कहा है—"अश्विनास्तामुभा वरा" अर्थात् वर या कन्याके माता-पिता कन्या या वरको पसन्द करनेवाले बनते हैं। इस प्रकार हमने देखा कि, माता-पिता आदि गुरुजनोंकी सलाह लेते हुए वर-वधू एक दूसरेको अच्छी प्रकार जान और देखभालकर परस्परकी अभिरुचि और सहमतिसे विवाह करें। ऐसा वेदका आदेश है।

जब विवाह होकर वधू पतिके घरमें आ जाती है, तब वहाँ उसकी स्थिति किसी भी प्रकारसे हीन और अपमान-जनक नहीं होती। प्रत्युत उसे पतिके घरमें बहुत ही सम्मान-जनक स्थान मिलता है और पतिके घरवाले उसके अपने यहाँ आ जानेसे अपना भारी गौरव अनुभव करते हैं। इसे दिखानेके लिये हम यहाँ कुछ उद्धरण देते हैं—"हे वर, यह वधू तुम्हारे कुलकी रक्षा करने वाली है" (अथ० १।१४।।२); "यह पतिके घरमें जाकर रानी बने और वहाँ प्रकाशित हो" (अथ० २।३६।४); "ऐश्वर्यकी नौकापर चढ़कर पतिको पार पहुँचावे।" (अथ० २।३६।५); "यह स्त्री हमारे खिले हुए घरमें एक खिली हुई कली है"—"कोशे कोशः समुब्जितः" (अथ० ६।३।२०); ये स्त्रियाँ शुद्ध, पवित्र और यज्ञिय हैं, ये प्रजा, पशु और अन्न देती हैं" (अथ० ११।१।१७); "हे मातृभूमि, जो कन्याओंमें तेज होता है, वह हमें दीजिये" (अथ० १२।१।२५); "ये स्त्रियाँ कभी दुःखसे रोयें नहीं, इन्हें नीरोग रखा जाये और रत्नादि पहननेको दिये जायँ" (अथ० १२।२।३१); "तू पतिके घरमें जाकर गृहपत्नी और सबको वशमें रखने वाली बन" (अथ० १४। १। २०); "तू श्वशुर, सास, देवर और ननदकी सम्राज्ञी या उनमें चमकनेवाली बन" (अथ० १४।१।४४); 'हे पत्नि, अपने सौभाग्यके लिये मैं तेरा हाथ पकड़ता हूँ" [अथ० १४।१।५०]; "मैं सदा तेरा भरण-पोषण करूँगा" (अथ० १४।१।५२); "मैंने अपनी पत्नीको देख-भाल करके लिया है, मैं अपने

मित्रोंके सहित उसके कहनेमें चलूँगा" (अथ० १४।५६१); "हे वधू, तू हमारे घर चलनेके लिये तय्यार हो, वहाँ तुझे अमृतका लोक प्राप्त होगा" (अथ० १४।२।६१); "तू कल्याण करनेवाली है और घरोंको उद्देश्यतक पहुँचानेवाली है" अथ० (१४।२।२६); "तुम दोनों यहाँ हँसते-खेलते हर्षमें रहो, सुन्दर घरोंमें सुन्दर सन्तानोंवाले बनो" (अथ० १४।२।४३); "हम इसके सब अंगोंमें रोग न आने देकर इसे सर्वथा नीरोग रखते हैं" (अथ० १४।२।६९), "मैं ज्ञानवान् हूँ, तू भी ज्ञानवती है। मैं सामवेद हूँ, तू ऋग्वेद है" (अथ० १४।२।६४); "यह विराट्—अर्थात् चमकनेवाली है, इसने सबको जीत लिया है" (अथ० १४।२।७४)। ये उद्धरण हमने अथर्ववेदसे दिये हैं। इनमें जो भाव प्रकट किये गये हैं, वैसे ही भाव ऋग्वेदके १० वें मण्डलके ८५ वें सूक्तमें भी प्रकट किये गये है। स्थानाभावसे उन्हें हम यहाँ नहीं दे रहे हैं। पतिके घरमें आनेपर वधूकी वहाँ कितनी सम्मान-जनक और गौरवमयी स्थिति वैदिक धर्ममें कही गयी है, इसकी कुछ झलक ऊपरके उद्धरणोंसे हमें मिलती है।

वैदिक धर्ममें एक पुरुषकी एक ही स्त्री हो सकती है तथा एक स्त्रीका एक ही पति हो सकता है। यह नियम जीवनभरके लिये लागू है अर्थात् पतिके मर जानेपर स्त्रीको तथा स्त्रीके मर जानेपर पतिको दूसरा विवाह करनेका अधिकार नहीं है। साथ ही वैदिक धर्ममें तलाककी भी जगह नहीं है। वर-वधूको विवाहसे पूर्व अच्छी प्रकार देख-भाल और पड़ताल करके अपना साथी चुननेका आदेश दिया गया है—'खूब अच्छी तरह परखकर अपना साथी चुनो।' पर जब एक बार विवाह हो गया, तो फिर विवाह टूट नहीं सकता—तलाक नहीं हो सकता। फिर तो एक दूसरेकी कमी और दोषोंको दूर करते हुए प्रेम और सहिष्णुतासे गृहस्थमें रहो। "यथासो मम केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन" (अथ० ७।३७।१)—'हे पति, तुम मेरे ही रहो, औरोंका चिंतन मत करो।' "मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः" (अथ० २।३०।१)—"हे पत्नी, तू मुझे ही चाहनेवाली हो, मुझसे अलग न हो।' "इहैव स्तं मा वियौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्—(अथ० १४।१।२२; ऋ० १०।८५।४२)—'तुम दोनों पति और पत्नी, इसी घरमें इकट्ठे रहो, कभी एक दूसरेको मत छोड़ो।' "समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ'—(ऋग्वेद १०।८५।४७)—'सब देवोंने हम दोनोंके हृदयोंको मिला दिया है।' "मया पत्या जरदष्टिर्यथासः' (अथ० १४।१।५०)—'मुझ पतिके साथ हे पत्नी, बुढ़ापेतक रह।' "मया पत्या प्रजावति सञ्जीव शरदः शतम्" (अथ० १४।१।५२)—'मुझ पतिके साथ हे पत्नी, तू सौ वर्षतक जी।' इन और ऐसे ही और प्रमाणोंमें वेद स्पष्ट प्रतिपादन कर रहे हैं कि, आदर्श स्थिति यह है कि, एक स्त्रीका एक पति और एक पतिकी एक ही स्त्री जीवन भर रहे तथा उनमें कभी तलाक नहीं होना चाहिये। इस प्रकार तलाक और विधवा-विवाह तथा विधुर-विवाहका स्थान वैदिक धर्ममें नहीं है। विशेष अवस्थाओंमें विधवा तथा विधुरको नियोग द्वारा सन्तान पैदा करनेका विधान है। साथ ही अक्षत-वीर्य पुरुष और अक्षत-योनि स्त्रीको तथा द्विजेतर अर्थात् शूद्रोंको पुनर्विवाहकी आज्ञा भी वैदिक धर्म देता है। पर उच्च वर्णोंमें पुनर्विवाह

विहित नहीं है। "को वां शयुत्रा विधवेव देवरम्" (ऋ० १०।४०।२), "उदीर्ष्व नार्यभिजीवलोकं गतासुमेतमुपशेष एहि हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि संबभूथ" (ऋ०१०।१८।८); "अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्" (ऋ०१०।१०) इत्यादि मंत्रोंसे नियोग तथा "इयं नारी पतिलोकं वृणाना निपद्यत उपत्वा मर्त्य प्रेतं धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेहि" [अथ०१८।३।१] इत्यादि मंत्रोंसे द्विजेतरोंमें पुनर्विवाहका आदेश आचार्योंने निकाला है। स्त्री और पुरुषका पुनर्विवाह वैदिक धर्ममें उत्सर्ग नहीं, अपवाद है।

विवाहके पीछे स्त्री और पुरुषके हृदय मिलकर एक हो जाते हैं। वह जो कुछ खाते-पीते और भोगते हैं, मिलकर खाते, पीते और भोगते हैं। इसी अभिप्रायसे अथ० १२-३-३६में कहा गया है कि, 'हे पति और पत्नी, जो तुम एक-एक दूसरेसे छिपाकर खाते हो, उसे मिला दो, तुम दोनों मिलकर इस लोकको बनाओ'—"यद्यज्जाया पचति त्वत् परः परः पतिर्वा जाये त्वत्तिरः सं तत् सृजेथां सह वां तदस्तु संपादयन्तौ सह लोकम् ।" पुरुषकी सारी संपत्तिपर स्त्रीका पूरा अधिकार हो जाता है। विवाहके समय पत्नीको सम्बोधन करके पति प्रतिज्ञा करता है—"न स्तेयमद्मि" अर्थात् हे पत्नि, मैं तुझसे स्तेय करके कुछ नहीं खाऊँगा। स्तेयका अर्थ होता है, किसीके अधिकारोंको मार कर अपना स्वार्थ पूरा करना।" पति कहता है, "हे पत्नि, मैं तेरे अधिकारोंको परवाह न करके सम्पत्तिका भोग नहीं करूंगा प्रत्युत मुझे सम्पत्तिका भोग करते हुए तेरे अधिकारोंका पूरा ध्यान होगा। मैं अपनी सम्पत्तिका इस प्रकार खर्च करूंगा कि, मेरे जाते तुझे किसी प्रकार कष्ट न हो। और मरते समय मैं उसका ऐसा प्रबन्ध करता जाऊंगा कि, मेरे पीछे कोई तेरे अधिकारोंको छीन न सके। अर्थात् मेरे घरमें आनेके बाद तेरे अधिकारोंकी पूरी रक्षा होगी—उन्हें कोई मार न सकेगा।" इससे यह स्पष्ट निर्देश मिलता है कि, पतिको चाहिये कि, वह अपनी पत्नीके लिये अपनी सम्पत्तिका कोई विशेष भाग निश्चित कर दे, जिससे पतिके जीवनकालमें या उसके मर जानेके बाद कुटुम्बके किसी व्यक्तिके हाथों उसकी पत्नीको अपने अधिकारोंसे वञ्चित न होना पड़े तथा किसी प्रकारके क्लेश उसे न सहने पड़ें। आपने देखा कि, वैदिक धर्ममें स्त्रीकी इतनी परवाह की जाती है कि, पति उसके हृदयके साथ अपना हृदय मिलाकर एक कर लेनेकी प्रतिज्ञा कर चुकनेपर भी उसके अधिकारोंकी रक्षाके लिये उद्यत रहता है और अपनी सम्पत्तिमेंसे एक निश्चित भाग उसके लिये अलग कर देता है। यह सम्पत्तिका भाग किस प्रकार और कितना निश्चित होगा, यह वेदने नहीं बताया, क्योंकि यह चीज देश, काल और अवस्थाके अनुसार बदलनेवाली है। किन्तु इतना वेदने ध्रुव रीतिसे कह दिया है कि, स्त्रीके अधिकारोंकी पूरी रक्षा पतिको करनी होगी।

इस प्रकार हमने देखा कि, वैदिक धर्ममें स्त्रीके विवाहित जीवनकी स्थिति पुरुषसे किसी भी प्रकार हीन और अपमान-जनक नहीं है। प्रत्युत वह बड़ी उन्नत और गौरवमय है।

अब हम देखना चाहते हैं कि, वैदिक धर्ममें स्त्रीकी कुटुम्बसे बाहरकी—सामाजिक—स्थिति किस प्रकारकी रखी गयी है। यहाँ प्रारम्भमें ही

यह स्मरण रख लेना चाहिये कि, वैदिक धर्ममें परदेकी जगह नहीं है। विवाहके बाद जब वधू पहले-पहल पतिके घरमें आती है तब पतिके ग्रामके लोगोंसे पतिके घरवाले कहते हैं, सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत"—"यह कल्याण-मङ्गल बढ़ानेवाली वधू हमारे घरमें आयी है; आओ, इसे देखो।" परदेका न होना स्त्रीके सामाजिक जीवनको एक भारी रुकावटको हटा देता है। इसके न रहनेसे उसका समाजमें स्वच्छन्दतासे मिलना और विचरना (Free movement and free mixing society) बहुत कुछ आसान हो जाता है। किन्तु वेद यहींतक नहीं ठहरा है। अगर हम ऋषि दयानन्द-कृत ऋग्वेद और यजुर्वेदके भाष्योंको उठाकर देखें, तो हमें वहाँ स्त्रीकी सामाजिक स्थितिके सम्बन्धमें जो कुछ मिलता है, वह अद्भुत है। वहाँ हम देखते हैं कि, एक स्त्री चाहे तो सेना या पुलिसका सिपाही बन सकती है, प्राड्विवाक अर्थात वकील बन सकती है, उपदेशक, अध्यापक और व्याख्याता बन सकती है, यहाँतक कि, वह एक देशका राष्ट्रपति या राजा भी चुनी जा सकती है। जिन्होंने गम्भीरतासे वेदोंका स्वाध्याय किया है, उन्हें पता है कि, वेदके राजनैतिक प्रकरणोंमें राष्ट्रका प्रबन्ध ठीक ढंगसे चलानेके लिये प्रत्येक राज्यमें 'सभा' और 'समिति' नामकी दो नियामक सभाओं (Legislatve Chambers) के स्थापित करनेकी आज्ञा है। इनमें समिति नामक सभा ऊँची और अधिक शक्तिशालीनी होती है। अथ० ७। ३८। ४ और १२। ३। ५२ में क्रमशः सभा और समितिमें जाकर स्त्रियोंके भाग लेने और बोलनेका वर्णन आया है। जब कोई स्त्री सभा और समितिमें जानेके लिये चुनी जा सकती है, तब वह राष्ट्रके किसी भी ऊँचे-से-ऊँचे पदको सुशोभित करनेके लिये भी चुनी जा सकती है, यह स्पष्ट ही है। यहाँ ऋग्वेदके १०वें मण्डलके १५९ वें सूक्तका सारांश दिया जाता है। वैदिक धर्ममें स्त्रियोंकी सामाजिक स्थितिको समझनेमें उससे अच्छी सहायता मिलेगी। एक गृहपत्नी प्रातः काल उठते ही अपने उद्गार प्रकट करती है—यह सूर्य उदय हुआ है, इसके साथ ही मेरा सौभाग्य भी ऊँचा चढ़ निकला है। मैं अपने घर और समाजकी ध्वजा हूँ। उसका मस्तक हूँ। मैं भारी व्याख्यात्री हूँ। मेरे पुत्र शत्रुविजयी हैं। मेरी पुत्री संसारमें चमकती है। मैं स्वयं दुश्मनोंको जीतनेवाली हूँ। मेरे पतिका असीम यश है। मैंने वह त्याग किया है, जिससे इन्द्र विजय पाता है। मुझे भी विजय मिली है। मैंने अपने शत्रु निःशेष कर दिये हैं।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि, वैदिक धर्ममें स्त्रीकी सामाजिक स्थितिपर किसी भी प्रकारकी रुकावट नहीं है, वह जो कुछ भी चाहे बन और कर सकती है। उसे अपनी शक्तिको विकसित करके संसारमें कुछ भी बनने और करनेका अधिकार है। उसके सब क्षेत्रोंमें पुरुषके समान अधिकार है। जो कुछ पुरुष कर सकता है, वह स्त्री भी प्राप्त कर सकती है। जहाँ पुरुष पहुँच सकता है, वहाँ स्त्री भी पहुँच सकती है। दोनोंके अधिकार या (Rights) समान हैं।

जहाँतक स्त्रीके अधिकारोंका प्रश्न है, वहाँतक उन्हें कोई नहीं हड़प सकता। एक स्त्री अपनी इच्छा और शक्तिके अनुसार, जो कुछ बनना चाहे,

बन सकती है। उसे रोका नहीं जा सकता। प्रत्युत समाजको उसकी सहायता करनी होगी।

परन्तु यदि हम स्त्री-पुरुष-सम्बन्धी वेदके सारे प्रकरणोंको मिलाकर पढ़ें और उनकी भिन्न-भिन्न शिक्षाओंका समन्वय करें, तो हमें उनसे एक विशेष निर्देश निकलता प्रतीत होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि, मानो वेद स्त्रियोंकी सेवामें एक डेपुटेशन ले जाते हों और उनसे कहते हों कि, देवियो, अधिकार और हक़की दृष्टिसे तुम सर्वथा पुरुषोंके समान हो, तुम्हारे हक छीने या रोके नहीं जा सकते। तुम जो चाहो, बन सकती और कर सकती हो। इसमें तुम्हारी सहायता की जायगी। परन्तु हम तुम्हें आफ़िसकी कुर्सियों, न्यायाधीशोंके मञ्चों और राष्ट्रपतियोंके सिंहासनोंकी ओर जानेसे जान बूझ कर मना करना चाहते हैं। हम इन सब कामोंसे ऊँचा एक काम तुम्हारे सिपुर्द करना चाहते हैं। उसे तुम्हीं कर सकती हो। पुरुष उसे नहीं कर सकते। वह काम है, मनुष्य-समाजको सच्चे और वास्तविक मनुष्य पैदा करके देना।"

आज हमें घोड़ोंकी नस्लकी उन्नति करनेके लिये Horse-breeders की आवश्यकता है, हम उन्हें तय्यार करते हैं। गौओंकी नस्ल और कुत्ते-बिल्लियोंकी नस्लको उन्नत करनेके लिये Cow-breeders, Dog-breeders और Cat-breeders की आवश्यकता है और हम उन्हें तय्यार करते हैं। किन्तु आज हम मनुष्योंकी नस्लको उन्नत करनेके लिये Man-breeders की आवश्यकताका अनुभव नहीं करते हैं। वेद कहता है—"देवियो, तुम Man-breeders का काम करो। मनुष्यसमाजको सच्चे मनुष्य तय्यार करके देना मनुष्य-समाजकी सबसे भारी सेवा और सबसे पवित्र कार्य है।"

आप वेदोंको पढ़ जाइये। वहाँ विवाहका एकमात्र उद्देश्य लम्पटतासे बचकर प्रजा उत्पन्न करना बताया गया है। स्थान-स्थानपर स्त्रीके लिये प्रजावती, पुत्रवती, प्रजाकामा, वीरसू आदि विशेषणोंका प्रयोग हुआ है। पचासों जगह उससे उत्तम सन्तान देनेकी प्रार्थनाएँ की गयी हैं। वेद विवाहका प्रयोजन सन्तानोत्पत्ति बताते हुए स्त्रियोंसे इस प्रयोजनको विशेषरूपसे पूरी करनेका आग्रह क्यों करते हैं. यदि यह जानना हो, तो हमें ऋग्वेदके १० वें मण्डलका ४७ वाँ सूक्त उठाकर देखना चाहिये। उस सूक्तमें सन्तानके अभिलाषी परमात्मासे प्रार्थना करते हैं कि, "हे प्रभो, हमें अमुक-अमुक गुणोंवाली सन्तान दीजिये।' पाठकोंके विनोदके लिये उस सूक्तका सारांश यहाँ दिया जाता है—"हे परमात्मन्, हम आपसे एक धन माँगते हैं। वह धन है सर्वगुणसम्पन्न सन्तान। आप तो सभी धन देनेवाले हैं। हमने आपका दाहना हाथ पकड़ लिया है। आप हमें गोपति, आयुधधारी, रक्षा देनेवाले, सन्मार्गपर ले चलनेवाले, क्रियाशील, भारी भारी आपत्तियोंसे बचानेवाले, देवज्ञ, देवोंके गुणवाले, लम्बे-चौड़े सुडौल शरीरवाले, गम्भीर, ऋषियोंकी आज्ञा सुननेवाले, उग्र दुश्मनोंका पराभव करनेवाले, बल और अन्नके रक्षक, वीर, पार लगानेवाले धनदाता, सुदक्ष, दस्युहन्ता, शत्रुओंके विघातक शत्रुओंके नगरोंका भेदन करनेवाले. सत्यशील, घोड़ोंवाले, वीरोंवाले, सैकड़ों और हजारों शक्तियोंवाले, बलिष्ठ, सदाचारी लोगोंसे घिरे

रहनेवाले, सुखमें रहनेवाले और सुख देनेवाले, पूर्णशक्तिसे युक्त सारी इन्द्रियोंवाले, व्रतको धारण करनेवाले, सुमेधा, बृहस्पति अर्थात् बड़ों-बड़ोंके रक्षक या ज्ञानी, औरोंको बुद्धि देनेवाले, लोगोंको सबसे बढ़कर आश्रय सहायता दे सकनेवाले पुत्र-रूप धन हमें दीजिये। हम आपकी हृदयसे प्रार्थना करते हैं।" सूक्त द्वारा प्रार्थना करनेवाला मानों गुणावली गिनाते-गिनाते थक जाता है; पर उसका सन्तोष नहीं हुआ है। आखिर वह एक विशेषण प्रयुक्त करता है—"चित्रं वृषणम्" अद्भुत और वर्षा करनेवाला। इस चित्र या अद्भुतमें वे सारे गुण आ जाते हैं, जो कि, यहाँ गिनाये नहीं जा सके, और वृषण या वर्षा करनेवाला विशेषण सन्तानमें अभिलषित सारी परोपकार-भावनाओंकी सूचना दे देता है। सूक्तके शब्दोंमें जो रस, सुन्दरता और भाव हैं, उन्हें हम अपने शब्दोंमें नहीं ला सके हैं। जब इतनी ऊँची सन्तान प्राप्त करना हमारा ध्येय हो, तब उसके लिये हमें विशेष यत्नशील होना पड़ेगा। मनुष्य समाजको मनुष्योंका समाज रखनेके लिये हमें उत्कृष्ट सन्तानकी कितनी आवश्यकता है, यह आसानीसे समझा जा सकता है। उत्कृष्ट सन्तानें मनुष्य-समाजको देवियाँ ही दे सकती हैं, यह कार्य पुरुषोंसे साध्य नहीं है। इसीलिये वेदमें स्त्रियोंके उत्कृष्ट सन्तान पैदा करनेके कर्तव्यपर सबसे अधिक बल दिया गया है।

यहाँ यह न समझ लेना चाहिये कि, स्त्रियोंसे उत्तम मनुष्य गढ़-गढ़कर समाजको देनेकी प्रार्थना विशेष रूपसे करनेसे वेद उन्हें सब प्रकारकी शिक्षाएँ और विद्या-विज्ञान जाननेसे वञ्चित करना चाहता है। शिक्षाके क्षेत्रमें वेद स्त्रियोंको जो स्थिति रखता है, वह हमने ऊपर, संक्षेपसे अच्छी तरह दिखा दी है। यहाँतक वेद स्त्रियोंको शिक्षापर बल देता है कि, विवाहके अवसरपर वेद कन्याके माता-पितासे दहेजमें भी ऊँचे प्रकारकी शिक्षा ही देनेको कहता है। वस्तुतः देखा जाय तो प्रजोत्पत्तिके मार्गपर चलनेवाली देवीको उच्च शिक्षाकी भारी आवश्यकता है। एक घड़ा बनानेवाले कुम्हारको घड़ा बनानेसे पहले घड़े और मिट्टीके सम्बन्धमें कितना ज्ञान अपेक्षित होता है, यह हर एक जानता है। जो देवी मनुष्य बनानेका काम अपने ऊपर लेना चाहती है, उसे मनुष्य-स्वभाव ('Human Nature) के विस्तृत ज्ञानकी जो आवश्यकता है, उसे आँखोंसे ओझल नहीं किया जा सकता। किस समय मनुष्य-समाजको कैसे मनुष्योंकी आवश्यकता है, यह समझ सकना और उसके अनुसार उपयुक्त मनुष्य पैदा करके समाजको देना, पूर्ण शिक्षित माताओंसे ही बन सकता है। पूर्ण शिक्षित माताएँ यह जान सकेंगी कि समयकी आवश्यकताओंके अनुसार विशेष प्रकारके मनुष्य पैदा करनेके लिये सन्तानोंको किन परिस्थितियोंमें रखना चाहिये—उनपर कैसे संस्कार किस तरह डालने चाहिये। इसीलिये वेद स्त्रियोंकी शिक्षापर पूरा बल देता है और उनसे अपनी शक्तियों और योग्यताको मनुष्य-समाजके कल्याण और संसारकी उन्नतिके लिये उत्कृष्ट सन्तानें पैदा करनेमें लगानेकी भारी प्रार्थना करता है। स्त्रियाँ अपनी सारी योग्यता उत्तम सन्तानें तय्यार करनेमें लगा दें; क्योंकि यह कार्य वे ही कर सकती हैं। पुरुषसे यह कार्य बन नहीं सकता। हाँ, पुरुष सब प्रकारकी सांसारिक चिन्ताओंसे स्त्रियोंको मुक्त करनेका

भार अपने ऊपर ले लें। किन्तु यह कभी न भूलना चाहिये कि, जो देवियाँ प्रजोत्पत्तिके झगड़ेमें न पड़ना चाहें—विवाहित-जीवनमें प्रवेश न करना चाहें, उन्हें पूरा अधिकार है कि, वे पुरुषोंकी तरह जो कुछ बनना चाहें, बनें—जिस तरह समाजकी सेवा करना चाहें, करें। विवाहित स्त्री भी यदि सन्तानके प्रति अपने कर्तव्यमें किसी तरहकी कमी न आने देते हुए समाज-सेवाका कार्य करना चाहें, तो खुशीसे कर सकती हैं।

पाठको आपकी सेवामें वैदिक धर्ममें स्त्रियोंकी जो स्थिति है, उसे दिखानेके लिये कुछ पंक्तियाँ उपस्थित की गयी हैं। इस सम्बन्धमें अभी बहुत कुछ कहा जा सकता है, पर समय और स्थान इसकी आज्ञा नहीं देते। जो कुछ आपने देखा है, मैं समझता हूँ, उससे आप भली भाँति जान गये होंगे कि, वैदिक धर्ममें स्त्रियोंकी स्थिति कितनी स्वतन्त्र, कितनी सम्मान-जनक और कितनी गौरवमयी है।

अनुनय

पं. जनार्दन मिश्र "परमेश"

कोमलताके किस कोनेमें अहो, छिपा था रूखापन,
कलिके दिया उन्हें क्या तूने अपना भोलाभाला मन!
सुखद परस थे मेरे; मैं थी उनकी प्यारा प्रात-पवन;
जाने क्यों, सुकुमार भावका हुआ अचानक परिवर्तन
उस रसालकी पिकी बनी मैं गाती थी प्राणोंके राग
हो सकता मधुके प्यालोंसे ऋतुनायकको कभी विराग?
तेरी सूखी चितवनसे कुम्हलायी कोमल पँखड़ियाँ!
बिरही जीवनकी साँसोंमें तप्त हुईं दुखकी घड़ियाँ।
अन्तस्तलके हीरोंको ले आँखें गूँथ रही लड़ियाँ!
तदपि सुमनसे मेरे कढ़तीं सौरभकी हो फुलझड़ियाँ
सजनी, पूछो उस प्रियतमसे किस रागसे उलझा ध्यान
अरुण मुकुल नलिनीको कब दिखलावेगा मृदु-मुसुकान।

ज्ञान और नीतिका भाण्डार ऋग्वेद

पं० नारायण भवनराव पावगी

समस्त सृष्टिमें ऋग्वेद प्राचीनतम ग्रन्थ माना जाता है। इसकी प्राचीनताको, प्राच्य और पाश्चात्य देशके धुरन्धर विद्वान् असन्दिग्ध भावसे, स्वीकार करते हैं। मानव-जातिके इतिहासका यह सत्य और प्रामाणिक ग्रन्थ है। यह ज्ञानका मूल भाण्डार और स्रोत है; उच्च भावनाओंकी जननी तथा अविनाशी सत्य और नैसर्गिक विवेक-युक्त प्रवचनोंका सङ्कलित आगार है।

सम्भव है कि, कितने ही सज्जन मेरे इस कथनपर विश्वास न करें और मेरी कही हुई ऊपरकी बातोंमें उन्हें संशय मालूम हो। इसलिये इस सम्बन्धमें जो सर्वोत्कृष्ट और सर्वमान्य प्रमाण है, यहाँ मैं उसीका उल्लेख करता हूँ।

प्रसिद्ध वेदज्ञ मोक्षमूलर साहब कहते हैं, "(आजतक) विद्याका ऐसा कोई भी विभाग नहीं है, जिसपर भारतवर्षके प्राचीन साहित्यका प्रकाश और प्रभाव न पड़ा हो। हम लोग तो यहाँ, यूरोपमें रहनेवाले, ग्रीस और रोम-देशीय विचारसे और "जिउ"-जातिके वातावरणमें पले हैं।"

केवल हमें ही नहीं, सारे संसारको यह बात मालूम है कि, भारतवर्ष पृथ्वीतलके सब देशोंके लोगोंके हेतु सब विषयोंमें अग्रणी है। इनमें ये देश हैं—निनेवे, बेबीलन, खाल्डिया, ईजिप्ट, असीरिया, सीरिया, फारस, मेसिडोनिया, ग्रीस, इटाली, दोनों अमेरिका (उत्तर और दक्षिण) स्याम, कम्बोडिया और चीन। इस सम्बन्धके जितने भी प्रमाण प्राप्त हैं, हम पाठकोंके सम्मुख उपस्थित करेंगे।

एक मात्र ऋग्वेद ही ज्ञानकी प्राप्तिका मूल साधन है। हम लोगोंका प्रमाण कई अंशोंमें दूसरोंके प्रमाणोंसे इतना अधिक प्राचीन है कि, इस समय भी संसारकी सब जातियाँ नवीन पाठ सीख सकती हैं, जिस प्रकार पूर्व कालमें वे सीख चुकी हैं, जो अन्यत्र वे नहीं सीख सकती थीं। इसका प्रधान कारण यह है कि, हमारे ऋग्वेद-कालीन पूर्वजोंका अस्तित्व और पाण्डित्य प्राचीन कालसे भी प्राचीनतर है; और, जो प्राचीनतम काल कहा जा सकता है।

यह प्रत्यक्ष है कि, हम लोगोंके प्रतिष्ठित पूर्वजोंको इस बातका ज्ञान था कि, उन लोगोंने न केवल अपने सम्बन्धियोंको, बल्कि उन सबको जो इस स्थानमें (सप्त-सिन्धुकी भूमिमें) रहते थे, वेदका पाठ पढ़ाया और कर्त्तव्य-ज्ञान सिखाया। इतना ही नहीं इस आर्यभूमिसे बहुत दूर पूर्व और पश्चिम, उत्तर और दक्षिणमें रहनेवालोंको भी इन विषयोंका ज्ञान सिखाया, जब वे (आर्य्य) दिग्विजय करनेके लिये समय-समयपर दूसरे देशोंमें जाते थे।

अब आगे मैं पाठकोंके सन्तोषार्थ इस कथनकी पुष्टिके लिये क्रमानुसार प्रमाण पेश करता हूँ। सर्वप्रथम श्रुतिसे, जिसका अर्थ वेद या आप्तवाक्य है; द्वितीयतः स्मृतिसे अर्थात् मनुस्मृतिसे, जो धर्म्म और नीतिके सम्बन्धमें सबसे अधिक प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। भारतवर्षमें ये दोनों ग्रन्थ (वेद और स्मृति) सर्व-मान्य हैं। तृतीयतः प्राच्य और पाश्चात्य देशके संस्कृत और दूसरी भाषाओंके प्रकाण्ड विद्वानोंकी सम्मतियोंसे जिनका आदर सब करते हैं।

प्रथम वेदसे प्रारम्भ करता हूँ। मैं नीचे ऋग्वेदके कति-पय मंत्रोंका अर्थ उद्धृत करता हूँ—

"हे बृहस्पति, जब भिन्न-भिन्न पदार्थोंके नाम-करणके लिये मनुष्य पहले-पहल यत्न करने लगा अथवा शब्दोंका उच्चारण करने लगा, उस समयमें सब पदार्थ निर्दोष, निष्पाप और महान् देख पड़ते थे; प्रेमकी सहायतासे उसका विकास हुआ और यह सुरक्षित बन सका।" (ऋ० १०।७१।१)

यह प्रत्यक्ष है कि, इसी प्रकार शब्द बने और भाषाका निर्माण हुआ। इनपर (शब्द और भाषापर) प्रेमका चिह्न वर्तमान है।

"ऋषियोंने यज्ञके साथ ही उच्चारणके सूत्रका अनु-सन्धान किया (अर्थके साथ-साथ, जिसका अर्थ ज्ञान है), जो उन्होंने स्वयं अपनी आत्मामें पाया। इस हेतु उन्होंने उस ही वाणी और अर्थको सर्वोपर और सब दिशाओंमें प्रकट किया।"

(ऋ० १०।७१।३)

इस प्रकार श्रुति घोषणा करती है कि, हमारे पूर्वजोंने वाणी और ज्ञानको सर्वप्रथम प्राप्त किया था और संसारके लोगोंको सब विषयोंकी शिक्षा दी थी (ऋग्वेद १०।७१।१।३)। स्मृति भी इस कथनकी पुष्टि करती है। स्मृति बतलाती है कि, संसार हमारे उन वेदज्ञ पूर्वजोंका ऋणी है, जिन्होंने सब विषयोंका ज्ञान इस जगतीमें फैलाया है। मनुस्मृतिके दूसरे अध्यायमें स्पष्ट लिखा हुआ है कि—

"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥२०॥"

इस श्लोकसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि, इस देशके ब्राह्मणोंसे सब देशके मनुष्य अपने-अपने कर्तव्य-ज्ञानकी शिक्षा प्राप्त करेंगे।

इस प्रकार, यह निश्चय है कि, ब्राह्मण पूर्वकालसे ही सर्वसाधारणको शिक्षित बनाते आ रहे हैं और उन्हें अपने कर्तव्य-ज्ञानका उपदेश देते आ रहे हैं।

जो शिक्षा आज हमें मिल रही है, उसके विषयमें विलि-यम डिगबी नामक एक सज्जन क्या कहते हैं, उसे भी सुन लीजिये—

"शिक्षाके विषयमें बड़ी प्रशंसा की जाती है। भारत-वर्षकी सरकार शिक्षाके लिये प्रतिवर्ष कितना खर्च करती है? एक 'पेनी'से कुछ कम अर्थात् (अङ्गरेजी) ११ पाई प्रति मनुष्यके हिसाबसे। इसके साथ उस अतुल धनके व्ययको जाँच करें, जो पानीकी तरह सैनिकोंके लिये बहाया जा रहा है। खर्च चाहे शिक्षाके लिये किया जाय अथवा सैनिकोंके लिये, रुपया तो व्यय होता है भारतीयोंका ही! हम लोगोंका ध्यान रेलवेकी ओर दिलाया जाता है और इङ्गलैण्डसे होनेवाले लाभ बतलाये जाते हैं, जिन्हें इङ्गलैण्डकी अधीनताका प्रसाद कहा जाता है। शिक्षाके लिये, स्वास्थ्य-रक्षाके लिये, जलकी सिँचाईके लिये या ऐसे-ऐसे कार्योंके लिये ही रुपयेका अभाव रहता है; परन्तु रेलवेके लिये हमारी सरकारको इसकी कमी नहीं रहती। इसका कारण यह है कि, भारतवर्षमें रेलवे रहनेसे अङ्गरेजोंकी श्रीवृद्धि होती है। यह ठीक है कि, रेलवेसे भारतीय भी कुछ लाभ अवश्य उठाते हैं; परन्तु इससे इनकी बहुत बड़ी क्षति होती है। सण्डर लैण्ड महोदय इस कथनका अनुमोदन करते हैं। "लिस्टर इण्डिया"से कुछ अंश मैं उद्धृत करता हूं—

"ब्रुटिश-शासनकी स्थापना हुए सौ वर्षसे भी अधिक हो गये; तो भी यहाँके शिक्षित लोगोंकी संख्यामें कुछ वृद्धि नहीं दीख पड़ती। ८'२ प्रति सैकड़ा शिक्षित हैं। इसके अन्तर्गत ऐसे लोग भी हैं, जो अक्षर लिख सकते हैं और देशी-भाषामें पत्रोत्तर लिख सकते हैं। हिन्दुओंमें तो १३ में केवल १ लिख-पढ़ सकते हैं। ८ पुरुषोंमें केवल १ शिक्षित है और स्त्रियोंमें ६३ में १। मुसलमानोंमें ११ मर्दोंके बीच १ शिक्षित और स्त्रियोंके बीच ११६ में १ पढ़ी-लिखी है।

इसी प्रकार अन्यान्य देशोंके व्ययका हिसाब देखनेसे बात स्पष्ट जान पड़ेगी—

देश		रुपया
वृटिश इण्डिया	(१९२२-२३)	(०.७७)
युनाइटेड किंगडम	(१९१८-१९)	(१७.३)
युनाइटेड स्टेट्स	(१९१९-२०)	(३७.०)

इतना होनेपर भी अनेक अङ्गरेजोंने यह कहनेका दुस्साहस किया है कि, वेद व्यर्थ है। ब्राह्मणोंने दूसरोंको शिक्षा-लाभ नहीं दिया तथा उन्हें शिक्षित होनेसे वञ्चित रखा। इस प्रकारके कथनका कोई मूल्य ही नहीं; क्योंकि मनुस्मृतिमें, महाभारतमें तथा पुराणोंमें भी (जिन्हें पाश्चात्य देशके लोग लोकोपकारी ग्रन्थ मानते हैं) ऐसी बात नहीं। प्रत्युत मनुस्मृतिमें लिखा है कि, द्विज यदि वेद-विहीन हो, तो वह अपने वंशधरके साथ शीघ्र शूद्रत्व प्राप्त करता है (२-१६८)। मोक्षमूलर साहब, जो संस्कृत-विद्याके एक अच्छे ज्ञाता समझे जाते हैं, जिन्हें वेद-विषयक ज्ञान भी प्राप्त है, लिखते हैं—

"दूसरे वर्णोंको अशिक्षित रखनेकी बात तो दूर रहे, ब्राह्मणोंकी सर्वदा यही चेष्टा रही है कि, दूसरे वर्ण भी शिक्षित रहें, उन्होंने इसके लिये सफल परिश्रम भी किया; द्विजातिमात्र अनिवार्य-रूपसे वेदकी शिक्षा पावें। इसके लिये, नहीं पढ़नेवालोंपर दण्ड-विधान भी किया गया।"

हमारे पूर्वजोंको सब विषयोंका ज्ञान था। उन्होंने अपनी योग्यताके बलसे संसारके सब लोगोंको सर्वप्रथम ज्ञान और नीतिकी शिक्षा दी थी, जिसे प्राच्य और पाश्चात्य देशके प्रखर विद्वान् मुक्तकण्ठसे स्वीकार करते हैं। (देखिये, ऋग्वेद १-१०९-१२; १०-८९-१)। *

ऋग्वेदमें कतिपय ऐसे सुन्दर मंत्र आये हैं, जिनमें सत्यकी प्रशंसा भूरि-भूरि की गयी है। यहाँ उनमेंसे दो-एकका उद्धृत करना अप्रासङ्गिक न होगा।

सत्य आर्य्योंके जीवनका मूल तत्त्व है। इसका बीज, सामाजिक सङ्गठनके साथ-साथ ही, प्राचीनतम कालमें, वैदिक कालसे भी पूर्व, वपन हुआ था। उदाहरणार्थ ऋग्वेदमें लिखा है कि, सत्य सर्व-व्यापी है; इसके ऊपर ही सूर्य और चन्द्रमा स्थित हैं। सत्य ही हमारा सर्वस्व है, सत्यसे ही हम निर्भीक होकर अपना कर्त्तव्य पालन करते हैं। (ऋग्वेद, १०।८५।१)।

इस प्रकार हम लोगोंने सत्य और धर्मकी प्रतिष्ठा अति प्राचीनकालसे की है। इसीकी बदौलत हम जो कुछ भी आज हैं, देख पड़ते हैं अर्थात् संसारकी जातियोंमें हमारे सर्वश्रेष्ठ होनेका यही कारण है कि, हम सत्य और धर्मकी प्रतिष्ठा करनेवाले आजसे नहीं, बहुत प्राचीन कालसे ही हैं। यही कारण है कि, कितने ही प्रसिद्ध लेखकोंने हिन्दूके विषयमें निष्पक्ष होकर अपनी सम्मति प्रकट की है। इसी हेतु सत्यके प्रेमियोंने आर्य्योंकी नैतिक अभ्युन्नतिके विषयपर जोर देकर लिखा है—

'मेगास्थनीज, सेल्युकस निकेटरका राज-दूत, जो मौर्य राजा चन्द्रगुप्तके दरबारमें (ई० पू० ४ थी शताब्दीमें) था, लिखता है कि, "सम्राट् चन्द्रगुप्तके राज्यमें चोरीका नामो-निशानतक नहीं था, हिन्दू सत्य और धर्मपर आरूढ़ थे।"

१३ वीं शताब्दीमें मारको पोलो, वेनिस देशका एक यात्री, हिन्दूकी सत्य-प्रियताके सम्बन्धमें लिखता है—

"ये ब्राह्मण-व्यापारी संसार-प्रसिद्ध हैं; ये अत्यधिक सत्य-निष्ठ हैं, ये किसी भी सांसारिक पदार्थके लिये झूठ नहीं बोल सकते।"

अबुलफजल (१६ वीं शताब्दीमें) सम्राट् अकबरका मन्त्री, "आइनये अकबरी" में लिखता है—

* प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता लार्ड एलफिन्स्टन लिखते हैं कि, ब्राह्मण प्रत्येक शास्त्र [विद्या] के विशेषज्ञ होते थे, उनका ज्ञान सर्वतोमुख और परिपक्व था। ईश्वरके अस्तित्व और उनके स्वरूपका ज्ञान उस समयमें भी यथेष्ट था, जब एथेन्स देशवासियोंको इस सम्बन्धमें तद्विषयक आभासमात्र प्राप्त हो रहा था।

"हिन्दू धार्मिक, नम्र, शिष्ट, न्यायी, कार्य-दक्ष, सत्यके प्रशंसक, सुन्दर, विश्वास-पात्र और शान्ति-प्रिय होते हैं; उनके सैनिक लड़ाईमें पीठ दिखाना नहीं जानते।"

वारेन हेस्टिङ्गस लिखता है—"हिन्दू नम्र, कृतज्ञ और उदार होते हैं; किये गये अपकारका बदला लेनेकी बुद्धि, संसारके अन्यान्य लोगोंकी अपेक्षा, सबसे कम, हिन्दुकी होती है; ये कृतज्ञ, स्नेही और न्यायको माननेवाले होते हैं।"

लार्ड एलफिन्स्टन लिखते हैं—"हिन्दुओंकी स्वामि-भक्ति प्रसिद्ध है, जिसका मूल कारण कृतज्ञता-प्रकाश करनेकी सदिच्छा है; इस लोगोंके सिपाहियोंकी स्वामि-भक्ति (विदेशी स्वामियोंके प्रति) जो दिखलायी जाती है, उस लोगोंसे तुलना नहीं की जा सकती। इस लोगोंकी जातीय फौज अथवा दूसरे देशोंकी सेनाएं उन लोगोंके समान स्वामिभक्त नहीं हैं।"

टाड लिखता है—

"हिन्दू-जातिका सदाचार उत्कृष्ट श्रेणीका है।"

वह एक पादरीके कथनको नीचे लिखे शब्दोंमें उद्धृत करता है—

"क्रिस्तानोंके लिये यह अत्यन्त दुःखकी बात है कि, हिन्दुओंकी अपेक्षा इनका सदाचार निकृष्ट श्रेणीका होता है।"

लार्ड एलफिन्स्टनने लिखा है कि—

"व्यभिचारके सम्बन्धमें हिन्दुका आदर्श बहुत ऊंचा है। व्यभिचारसे वे बहुत दूर रहते हैं। मद्य-पान और पाप-प्रवृत्तिके विषयमें हम उनसे अच्छे होनेका दावा नहीं कर सकते। हिन्दुओंका आदर्श और आचरण बहुत ऊंचे हैं।"

प्रो० मोली कहते हैं—

"हम लोग हिन्दुओंसे अधिक बुद्धिमान् नहीं हैं। हम लोगोंका मस्तिष्क उनके मस्तिष्कसे न तो अधिक बड़ा और न विशेष परिष्कृत है। हम उन्हें उसी प्रकार आश्चर्यमें नहीं डाल सकते, जिस प्रकार किसी असभ्य मनुष्यको। उनके सम्मुख हम ऐसा विषय नहीं रख सकते, जिसके विषयमें उन्हें ज्ञान न हो। उनकी कविताओंमें उच्चतम विचार प्रकट किये गये हैं। हमारा विज्ञान (Science) भी शायद कोई अनोखी चीज उनके सम्मुख उपस्थित नहीं करता है।"

अब इस स्थलपर यह लिखना अप्रासङ्गिक न होगा कि, ईसाके जन्मसे पूर्व, प्रथम शताब्दीसे भी पहले भारतीय पण्डितों की यात्रा सुदूर पूर्व चीन देशमें हुई थी, जहाँ उन्होंने बौद्ध-धर्मका प्रचार किया, जो पश्चात् सार्वभौम धर्म हो गया।

बौद्ध-धर्मका जन्म भारतवर्षमें हुआ। प्रारम्भ कालमें भारतवर्षकी सीमामें ही यह आबद्ध रहा। पश्चात् सम्राट् अशोकके सिंहासनारूढ़ होनेपर इस धर्मका प्रसार आर्य्यावर्त्तके बाहर भी हुआ। अशोकके शिला-लेखोंसे यह प्रमाणित होता है कि, सम्राट्के द्वारा भेजे हुए भिक्षु—

(१) संरक्षित देश और जातियोंके बीच [सीमा-प्रान्तमें],

[२] असभ्य जातियोंके बीच [जो साम्राज्यकी सीमाके अन्तर्गत थीं],

[३] दक्षिण-भारतके स्वतन्त्र प्रदेशोंमें,

[४] लङ्कामें और

[५] सीरिया, ईजिप्ट, यूनान, मेसिडोनिया तथा एपिरसमें गये हुए थे। यथार्थतः अशोककी सहायतासे बौद्ध-धर्म तीन महादेशोंमें एशिया, यूरोप तथा अफ्रीकामें, फैल गया था।

उपर्युक्त उदाहरणसे यह स्पष्ट ज्ञात होगा कि, भारतवर्षमें ज्ञान और भक्तिकी शिक्षा सर्वप्रथम दी गयी है, जिसका उल्लेख संसारकी प्राचीनतम पुस्तक ऋग्वेदमें भी मिलता है। समस्त संसारके लोग इस विषयमें भारतवर्षके ऋणी हैं।

संस्कृत-प्रचारकी आवश्यकता

पं० कालीचरण झा चतुर्वेदोपाध्याय

वैज्ञानिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक, जिस किसी दृष्टिसे विचार किया जाय, वस्तुतः वैदिक साहित्य सर्वथा सर्वाधिक माननीय और मननीय है।

प्राचीन भारतमें आर्योंने जो इतनी उन्नति की थी, संसारको सभ्यताका पाठ पढ़ाया था, उसका एक मात्र कारण वैदिक साहित्यका परिशीलन ही है। उसीसे आर्योंने इतने अद्भुत-अद्भुत वैज्ञानिक आविष्कार भी किये थे। कुछ ही दिन पहले, हम लोगोंके समयमें ही, बहुतसे अल्पज्ञ पुराण-इतिहासोंमें वर्णित "विमान" हवाई जहाज या Aeroplane को पौराणिक गप्प और पण्डितोंका ढकोसला कहकर हँस देते थे; किन्तु हर्षका विषय है कि, क्रमशः वैज्ञानिक आविष्कार होनेपर हमारे पुराण-इतिहासोंपर लोगोंको दिनानुदिन विश्वास बढ़ता और वेदोंपर झुकाव होता जाता है।

वैदिक शिक्षाको अक्षुण्ण रखनेके लिये ही एक वेदको चार भागोंमें विभक्त कर, एक-एक समाजमें एक-एक वेदकी नियमबद्ध पठन-व्यवस्था की गयी थी; किन्तु अत्यधिक परितापका विषय है कि, जिस वैदिक शिक्षाके लिये हमारे पूर्वजोंने इतना घोर परिश्रम और प्रयत्न किया, उसी वेदको आज हम ठुकरा रहे हैं। क्या जिस वैदिक शिक्षाके लिये ही "उपनयन" विधि बनायी गयी, उस वैदिक शिक्षाके उद्देश्यसे शून्य "उपनयन" होना पूरा नाटक नहीं?

सबसे दुःखका विषय तो यह है कि, मूर्खोंकी क्या कथा, शिक्षित-समाज, संस्कृतज्ञ-समाजमें भी वेदका समुचित समादर नहीं है। "रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम्" कहकर जिस व्याकरणको बनाया गया, उसके पढ़नेकी उद्देश्य-पूर्ति कहाँतक की जाती है, इसे पाठक ही विचार सकते हैं। संस्कृतज्ञ समाजकी वैदिक साहित्यपर कितनी आस्था है, इसपर दृष्टिपात करनेसे अश्रुपात होने लगता है।

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि, गवेषणा, समालोचना आदिसे वेदकी जितनी सेवा पाश्चात्य पण्डित-समाज कर रहा है, संस्कृतज्ञ-समाजमें उसका शतांश सेवा-भाव भी नहीं पाया जाता! और तो क्या, वैदिक साहित्यको छोड़कर केवल संस्कृत-साहित्यको ही लीजिये। संस्कृत-साहित्यको उपादेय बनानेका जितना प्रयत्न बुद्धिमान् पाश्चात्य, संस्कृतज्ञ-समाज कर रहा है, उतना क्या हमारा संस्कृतज्ञ-समाज कर रहा है? नहीं। वैसे करे; उसे तो शब्दाडम्बर-विन्यास और वाग्जालसे लोगोंको परास्त करनेमें व्यस्त रहना पड़ता है। यही तो एक मात्र उद्देश्य रहा! हमारे ये शब्द निन्दात्मक या भर्त्सनात्मक नहीं; किन्तु अपने संस्कृतज्ञ पण्डित-समाजकी दुर्दशा देखकर करुण-पूर्ण आह-भरे शब्द हैं! आखिर हम भी तो संस्कृतके ही एक तुच्छ सेवक हैं!

हमने एक समय एक पत्रमें उपर्युक्त भावके ही कुछ शब्द लिखे थे, जिनका आशय न समझकर एक पण्डितजीने अपना क्रोध और विरोध हमारे आगे प्रकाशित किया और कहा—'आपका, शास्त्रार्थ-प्रणालीपर आक्षेप करना अनुचित है।' उन्हीं पण्डितजीकी तरह अगर अन्यान्य व्यक्ति भी समझें, तो हम अपने शब्दोंको वापस ले लेते हैं। अन्यथा

हमारा यह निवेदन है कि, हम शास्त्रार्थोंके विरोधी नहीं, हार्दिक समर्थक हैं, किन्तु उसीको प्रधान कर्त्तव्य न समझा जाय और अन्यान्य उपादेय विषयोंकी भी उन्नति की जाय।

क्या संस्कृतज्ञ-समाजको यह नहीं मालूम कि, संस्कृत-शिक्षाको सर्वथा नष्ट करनेके लिये उसीके भाई, कई अभिनव जयचन्द, दिन-रात माथा-पच्ची कर नये-नये प्रस्ताव पेश करते और उन प्रस्तावोंको "पास" करानेके लिये प्राणपणसे चेष्टा करते रहते हैं? लोग भली भाँति जानते हैं कि, किसी विद्याकी ओर लोगोंकी प्रवृत्ति, आर्थिक लाभ देखकर ही विशेषतः होती है। फलतः शिक्षा-विभागके अतिरिक्त संस्कृत विद्वानोंके लिये कोई स्थान ही नहीं रहनेके कारण हाई स्कूलोंमें संस्कृतका स्थान ही एक मात्र कारण है, जिसमें एक तरहसे संस्कृत-शिक्षा अनिवार्य-रूपसे देनेकी व्यवस्था है। इससे शिक्षितोंमें संस्कृतका प्रचार और संस्कृतज्ञोंके लिये कुछ जीविकाके उपाय-स्वरूप स्थान भी हैं। कालेज आदिमें तो शुद्ध पण्डितोंका समावेश ही नहीं। शुद्ध संस्कृत पाठशालाओंकी आर्थिक स्थिति गड़बड़ ही रहती है! इसलिये हाई स्कूल ही कुछ आर्थिक लाभका स्थान अबतक पण्डितोंके लिये है। इसके पहले टीचर्स ट्रेनिङ्ग स्कूलोंमें भी संस्कृतकी पढ़ाई होती थी, अतएव एक संस्कृत शिक्षक [हेड पण्डित] उसमें भी रहते थे। इससे यह फल निकलता था कि, स्कूलसे निकले हुए शिक्षित (Trained) शिक्षक हिन्दीके मूलभूत एवं हिन्दू-संस्कृतिके आदर्श संस्कृतकी भी थोड़ी-बहुत शिक्षा प्राप्त कर हिन्दीकी शब्दोत्पत्ति, शब्द-परिचय आदि आवश्यक ज्ञान प्राप्त करते थे और उन्हें मूल संस्कृत शिक्षाके अभावका कलङ्क नहीं लगा रहता था। साथ-साथ संस्कृतका भी प्रचार होता था। किन्तु वह संस्कृत-शिक्षा-प्रणाली एक हिन्दू ही मेम्बरके पवित्र प्रस्तावपर तोड़ दी गयी! कलकत्ता यूनिवर्सिटीमें एक हिन्दू बङ्गाली महाशयके सुविचार-पूर्ण प्रस्ताव-प्रयासपर मैट्रिक परीक्षामें अनिवार्य (Compulsory) संस्कृत उठा दिया जानेवाला है। इसका अर्थ संस्कृत-शिक्षाको उठा देना ही है; क्योंकि जब अनिवार्यता हट जायगी, तब उसे कौन पढ़ेगा? धीरे-धीरे उठ ही जायगी।

जिस बङ्गभाषाको संस्कृतसे इतना सामञ्जस्य है कि, वह संस्कृतकी प्रधान पुत्री कहलाती है, जिस बङ्गभाषामें इतने संस्कृत शब्द भरे पड़े हैं कि, बङ्गालके बङ्गभाषा बोलनेवाले मुसलमान भी बङ्गालमें ही नहीं—बिहार आदि प्रान्तोंके स्कूलोंमें Compulsory classics में संस्कृत ही लेते हैं, जिस भाषामें इतने संस्कृत शब्द भरे पड़े हैं कि, बिना संस्कृत-ज्ञानके उसका [बङ्ग-साहित्यका] समुचित ज्ञान ही नहीं हो सकता, ऐसी संस्कृतको हटाना अपने पैरपर कुल्हाड़ी चलाना नहीं, तो क्या है? क्या सोचकर, कौन-सा उपकार देखकर, यह प्रस्ताव रखा गया, समझमें नहीं आता। जो बङ्गाल संस्कृतका प्रधान स्थान कहा जाता है, जिस बङ्गालमें सब विषयोंके अनेक उद्भट विद्वान् हैं, जो बङ्गाल सब विद्याओंका केन्द्र है, जो बङ्गाल इतना गुणग्राही है कि, अपने विश्वविद्यालयमें संस्कृत-भाषाकी कौन कथा, साहित्यपूर्ण प्रान्तीय भाषाओंको भी स्थान दिया है, उसी बङ्गालसे, भारतकी ही नहीं, संसारकी आदि भाषा तथा हिन्दू-संस्कृति, धर्म आदिके मूल संस्कृतको देशसे निकाल देना, बङ्गालके लिये सचमुच आश्चर्य और लज्जाकी बात है! यदि बङ्गाल संस्कृतको हटाकर संसारकी सभी भाषाओंकी भी शिक्षा अपने विश्वविद्यालयमें दिलावे, तो भी उसका विश्वविद्यालय अयोग्य—शिरोहीन शिक्षा-शरीर ही कहलावेगा।

बिहारमें भी एक हिन्दू हेड मास्टरने प्रस्ताव रखा है कि, हाईस्कूलोंकी आठवीं और नवीं श्रेणियोंमें संस्कृत हटाकर साइन्स कर दिया जाय! क्या ही विचार-पूर्ण प्रस्ताव है! भला, साइन्स-जैसे गूढ़ विषयको, कोमल-बुद्धि, आठवीं-नवीं श्रेणीके अल्पज्ञ छोटे-छोटे बालक क्या समझ सकेंगे? किन्तु वास्तविक विषय तो यह है कि, इतने विषयोंमेंसे किसीको भी न हटाकर, जो संस्कृतके ऊपर नजर पड़ती है, उसका उद्देश्य संस्कृतको अंग्रेजी स्कूल-कालेजके विषयोंसे अलग

उठा देना ही है, नहीं तो, ऐसे-ऐसे विचित्र प्रस्ताव क्यों रखे जाते ? किन्तु हर्षका विषय है कि, उक्त प्रस्तावका विरोध एक बड़े अङ्गरेज आफिसरने ही किया है । यह कैसे आश्चर्यका विषय है कि, उधर तो अङ्गरेज संस्कृतका प्रचार चाहें; जहाँ, जब, जिस युनिवर्सिटीमें उनलोगोंकी प्रधानता रहे, वहाँ संस्कृतका पूरा समर्थन-समादर हो; पञ्जाब युनिवर्सिटीमें संस्कृत कालेज, संस्कृतके विद्वानोंको अङ्गरेजीमें पूरी सुविधा, तथा काशी, कलकत्ता, आदि प्रान्तोंमें संस्कृत कालेज हों तथ अङ्गरेजी हाईस्कूलोंमें भी संस्कृत-शिक्षा अनिवार्य बनायी जाय; और, इधर हिन्दूओंकी प्रधानता होनेपर भी संस्कृतका बहिष्कार हो—"किमाश्चर्यमतः परम्" ?

उपर्युक्त विषयके ऊपर समालोचना चलनेपर एक समय एक मुसलमान विद्वान्ने कहा कि, "दुनियाकी और कौमके लोग अपने कल्चर [संस्कृति], धर्म, विद्या, भाषा आदिकी तरक्कीको अपनी तरक्की समझते हैं; लेकिन आपके हिन्दू इन बातोंको हटानेमें ही तरक्की समझते हैं !" इस बातको हमें लज्जाके साथ स्वीकार करना ही पड़ा । जो हो, यहाँ हम इन बातोंकी समालोचना करनेके लिये नहीं बैठे हैं । हमें केवल यही कहना है कि, भारतके किसी प्रान्तकी कोई भाषा क्यों न हो, सब भाषाएं संस्कृतसे ही निकली हैं; इसलिये बिना इसकी शिक्षाके किसी भाषा-साहित्यकी समुचित शिक्षा नहीं मिल सकती । भारतकी राष्ट्रभाषा बराबर संस्कृत ही रही है, इसीमें हमारे धर्म, कर्म, रीति, नीति आदि विषय हैं । इसी कारण आज भी भारतके कोने-कोनेमें, आर्थिक लाभ न रहते हुए भी, संस्कृतकी पढ़ाई अबाधित-रूपसे हो रही है । चना-सत्तू खाकर भूखों रहकर लाखों संस्कृत पढ़ते हैं । हजारों संस्कृत-पाठशालाएं, किसी-न-किसी तरह, चल रही हैं । इस कारण सरकारको भी स्वतन्त्र-रूपसे, सब प्रान्तोंमें संस्कृत-शिक्षा-परीक्षा-विभाग स्थापित करने पड़े । ऐसी दशापर भी अगर संस्कृतको Dead language (मृतभाषा) कहकर ठुकराया जाय, तो इससे बढ़कर मूर्खता और पागलपन क्या हो सकता है ?

कहनेका सारांश यह है कि, संस्कृतके प्रचारके लिये पूर्ण उद्योग हो; सरकारसे प्रार्थना की जाय, जिसमें संस्कृतके साथ-साथ मुख्यतः वैदिक साहित्यका पूर्ण प्रचार तथा उन्नति हो सके । इसके लिये हमारी क्षुद्र बुद्धिके अनुसार निम्न लिखित उपाय किये जा सकते हैं—

(१) एक अखिल भारतीय वेद-प्रचारक-समिति बनायी जाय ।

(२) प्रत्येक प्रान्तके सरकारी संस्कृत-परीक्षा-विभागसे प्रत्येक परीक्षामें कुछ-कुछ सार्थ वैदिक मन्त्र-भागोंके समावेशके लिये अनुरोध किया जाय ।

(३) वेदकी परीक्षाओंमें प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण होनेवाले विद्यार्थियोंको पारितोषिक दिया जाय ।

(४) छोटे-बड़े सभी संस्कृत-विद्यालयोंमें वैदिक विभाग खोला जाय; जिसमें सार्थ वेदकी पढ़ाई हो ।

(५) एक वैदिक-विज्ञान-परिषद् स्थापित की जाय, जिसमें वैदिक विषयोंकी गवेषणा की जाय और अच्छी-अच्छी वैज्ञानिक पुस्तकें लिखायी जायँ एवं अच्छे-अच्छे लेखकोंको सम्मानित पारितोषिक दिया जाय ।

(६) राजा-महाराजा आदि धनी-धनी व्यक्तियोंसे वेद-प्रचारक संस्थाओंमें यथायोग्य आर्थिक सहायता देनेकी प्रार्थना की जाय ।

(७) वैदिक विषयोंको हिन्दीमें लिखकर सर्व-साधारणको वैदिक महत्त्व समझानेकी चेष्टा की जाय ।

(८) यथासमय आवश्यकतानुसार अन्यान्य उपायों द्वारा भी वैदिक उन्नतिके उपाय सोचे जायँ ।

आशा है कि, हिन्दू-समाज, विशेषकर शिक्षित-समाज, इस विषयपर ध्यान देकर वेद-प्रचार करनेके लिये कटिबद्ध होगा ।

संकलन

१—वे दोनों

बा० नवलकिशोरप्रसाद सिंह

कितनी विचित्रता थी ? एक हृदय सरल था, दूसरा अभिमानी। किन्तु थे दोनों प्रेमिक और थे एक। एक था ज्योतिर्मय दीपक, दूसरा था जल मरनेवाला पतंग। एक मचलता था, दूसरा मनाता था। दूसरा जब चिढ़ाता था, पहला स्वाभाविक मंद, मधुर मुस्कानसे मुस्करा देता था। कितना विचित्र मिलन—कितना सुन्दर संयोग था ? प्रेम-अभिमान, सुख-दुःख, धूप-छाँह, विरह-संयोग तथा अंधकार-प्रकाश का-सा मिलन था।

चाहते दोनों ही दोनोंको थे; किन्तु चाहने-चाहनेमें अन्तर था। एक सरल था, भावुक था, उसका प्रेम पर्वतके झरनेके समान, अप्रतिहत-गतिसे दूसरेकी ओर हरहर कर प्रवाहित होता था। उसमें चंचलता और चतुरताका अनुपम सम्मिश्रण था। दूसरा भी चाहता था; किन्तु था अभिमानी। गंभीर कल-कल-निनादिनी पुण्यतोया भगवती भागीरथीकी शुभ्र धवल धारा जिस प्रकार पार्वत्य प्रदेशसे निकलकर समतल भूमिपर आती हुई स्थिर-सी प्रतीत होने लगती है, उसी प्रकार उसका प्रेम प्रवाहित रहनेपर भी स्थिर प्रतीत होता था।

दोनों थे छात्र और थे मित्र : एक था किशोरावस्थाको पार करता हुआ युवक और दूसरा था शुद्ध-हृदय षोडश-वर्षीय कुमार।

× × × ×

सायं काल जब भगवान् भास्कर अपनी रश्मियोंको धीरेसे समेट, अस्ताचलपर जा, अपनी प्रेयसी पश्चिम-दिशाकी ओर प्रेम-भरी चितवनसे निहारने लगते, धरा सुनहली साड़ी ओढ़, मुग्ध-भावसे वह प्रेम-भरी चितवन निरखनेमें मग्न हो जाती, पक्षी चहक उठते, संसार गूँज उठता, तब युवक अपना सितार लेकर गानेको बैठता और सुनने बैठता वही उसका सुख-दुःखका साथी कुमार।

जब रात होती, सारा संसार अंधकारके कृष्णपटसे आच्छादित हो जाता, निशा-सुन्दरी नक्षत्रोंका हार पहनकर संसारमें आ, सुखकी वर्षा करने लगती, सान्ध्य समीर बहता रहता, चन्द्रदेव अपनी सत्ताईस ज्योतियोंके मध्य आ क्रीड़ासक्त हो जाते, तब युवक किस्से कहता, और तरुण हुँकारी भरता। एक गाता; दूसरा सुनता। तरुण युवकको देखता रहता और युवक तरुणको। इसमें किसी प्रकारकी बाधा कभी नहीं पड़ी और न पड़नेकी संभावना ही थी; क्योंकि दोनों ही इस सुख-दुःख मत्सर-पूर्ण संसारमें रहकर भी इससे अलग थे : उनका दूसरा ही संसार था और उसके दूसरे ही नियम थे। उसमें सुख था, दुःख नहीं; मिलन था, विरह नहीं; और, न उसकी पीड़ा। उनके पीछे आततायताका, बन्धु-बान्धवोंका झगड़ा न था; लोकमें कहनेको थे एक कायस्थ, दूसरे अग्रवाल। लोगोंमें इसकी जबर्दस्त चर्चा थी; पर इन दोनोंके बीच नाम मात्रका भी इसका झगड़ा न था। यदि कुछ था, तो हृदयका झगड़ा था; किन्तु उसमें दुःख न था। यदि कुछ वास्तवमें था, तो वह था अपने पूर्वजोंकी भाँति स्वतन्त्र देशमें कांधा मिला विचरण करनेकी मधुर एवं दृढ़ आकांक्षा।

युवक तरुणको लाला कहता और तरुण कहता युवकको भैया।

× × ×

एक ओर प्रकृति, सुन्दरी युवतीके वेशमें खड़ी हो अपने पति वसन्तसे इठला रही थी। आम्र-मंजरियोंपर भौंरे गुनगुन कर रहे थे। वृक्षोंमें नई-नई कोपलें आ रही थीं, स्निग्ध चन्द्र-ज्योत्स्ना सारे संसारपर क्षीरसागरके फेनकी तरह विस्तृत थी। स्वरकी प्रतिस्पर्द्धाके कारण कोकिल और पपीहाके 'कुहू-कुहू' और 'पी कहाँ, पी कहाँ'के मिश्रित स्वरसे सारा उपवन झंकृत हो रहा था। परन्तु दूसरी ओर वहाँकी मानव-जाति दलितावस्था एवं पतितावस्थाका पूर्ण-रूपसे सुख उपभोग कर रहे थे। उनके कर्ण-कटु करुण-क्रन्दनसे आकाश गुंजायमान हो रहा था। ऐसे समयमें वे दोनों भी निस्तब्ध हो बैठे थे। युवकने मौनावस्थाको भंग कर मधुर एवं कारुणिक स्वरसे कहा—"लाला!"

"नवल!"

"किस समस्याको सुलझानेमें अस्त-व्यस्त हो लाला! बोलो तो सही, तुम्हारे हृदयमें कौन-सी उमंग है!"

"मैं भी यही सोच रहा था नवल! मैं नहीं, तुम ही अपना गाओ।"

फिर, चन्द्रकी ओर देखकर लालाने कहा—"हाँ नवल, ऊपर देखो, चन्द्र हँस रहा है; परन्तु न जाने किसपर और किस लिये! तुम गाओ, मैं हँसूँगा। मेरा हँसना भी सामयिक होगा।"

युवकका सितार बज उठा। ज्ञात हुआ, सारा उपवन शान्त हो गया है। कोकिल, पपीहा चुप हो गये। पल्लव स्थिर-से हो गये। वे परपद-दलित मानवकी आहें भी निस्तब्ध थीं। शायद उससे भी कुछ सान्त्वना मिल रही थी, आशाकी अलक झलक-सी रही थी। शान्त्य-समीरण उसी प्रकार बहुत ही धीरे-धीरे बह रहा था। नवल आँखें मूँदे हुए गा रहा था—

"सागर-सा उमड़ पड़ूँ मैं, लहरें असंख्य फैलाकर।
विचरूँ झंझासे रथपर, मैं ध्वंसक-रूप बनाकर॥
शिव-सा ताण्डव दिखलाऊँ, मैं करूँ प्रलय-सा गर्जन।
बिजली बनकर तड़कूँ मैं, डोले नभ अवनी निर्जन॥
बरसाऊँ लूकों-सरीखा विकराल अनवरत उपाला।
मैं लहर उगल दूँ जगमें पीकर यौवनका प्याला॥
मैं बनकर वीर पथिककी छेदूँ अन्याय हृदयको।
कर शंख-निनाद सुनाऊँ भीषण रणाङ्ग विजयको॥
मैं मातृभूमि-मन्दिरमें, प्राणोंका दीप जलाऊँ।
शोणित-समुद्रमें तैरूँ, प्रलयंकर रुद्र कहाऊँ॥
आजा हे अन्तक स्वामी, हे ईश देव अब आजा।
मेरी जीवन-लहरोंमें बस यही उमंग उठा जा!!"

सामने बैठा हुआ तरुण ध्यानमग्न हो अर्द्धोन्मीलित नयनोंसे उसकी ओर निहार रहा था। गान समाप्त हो गया, सितार शान्त हो गया, कोकिल 'कुहू-कुहू' कर उठी। पपीहा 'पी कहाँ? पी कहाँ?' कर चीख पड़ा। मानव, हाँ, हाँ, पीड़ित समुदाय भी 'हा मेरे भ्राता, हा मेरे भ्राता'के नारे लगाने लगे। लालाको ज्ञात हुआ कि, वह किसी दूसरे ही संसारमें है। उसने विह्वल हो कहा—"नवल!"

"लाला!"

मंद प्रवाह भी चंचल हो उठा। दोनोंके हृदय समान गतिसे एक दूसरेकी ओर दौड़ पड़े। युवकके हाथसे सितार छूट पड़ा। उन्मत्त प्रेमिकने अपनी-अपनी उमंगोंके सह विवाके कारण लालसाके स्वरमें कहा—"नवल! लाला!!"

२—गंगा और म्युनिसिपलिटी

बाबू अम्बिकाप्रसाद मुख्तार

सृष्टिमें जितने पदार्थ हैं, वे सब-के-सब मनुष्योंके लिये कुछ-न-कुछ उपकारक अवश्य हैं। इसलिये गंगासे भी मनुष्यों को कुछ लाभ जरूर है। इतना तो प्रत्यक्ष दीखता है कि, गंगाके दोनों किनारोंकी भूमि सदा शस्य-श्यामला रहती और दूसरी भूमिकी अपेक्षा विशेष उर्वरा भी। इसके अलावे जितनी पाचन-शक्ति है, वह दूसरे जलोंमें नहीं। गंगाजल कभी भी दूषित नहीं होता, यह केवल धार्मिक ख्यालसे ही नहीं, वैज्ञानिक दृष्टिसे भी। जहाँ किसी जलको, किसी

सगर-पुत्रोंका उद्धार

श्रीमान् युवराज रघुवीरसिंहजी बी० ए०, एल्-एल्० बी० सीतामऊ (मध्य भारत)

गंगोत्तरीके तपोनिधि महात्मा कृष्णाश्रम स्वामीजी महाराज, जिनके पवित्र कर-कमलोंसे काशोके हिन्दू-विश्वविद्यालयमें, अभी हालमें, एक विशाल विश्वनाथ-मन्दिरकी नींव पड़ी है। श्रीमान् स्वामीजीके साथ पूजनीय मालवीयजी भी विराजमान हैं।

पात्रमें, कुछ दिनोंतक रखनेसे, खराब हो जाता है, कीड़ेदार हो जाता है, वहाँ गंगाजल हमेशा ताजा ही बना रहता है। जिस जलमें जितनी शीघ्रतासे कीड़े पड़ते हैं, वह उतना ही अस्वास्थ्यकर हो जाता है। इस हिसाबसे गंगाजलमें कभी कीड़े पड़ते ही नहीं। भले ही वर्षा ऋतुमें इसके नीचे पंक जम जाय; पर कृमि उत्पन्न नहीं होंगे। इस साधारण जाँचसे यह प्रत्यक्ष सिद्ध है कि, गंगाजलसे उत्तम जल संसारमें कोई दूसरा नहीं। इसीलिये तो सिकन्दर अपने गुरुके लिये गंगाजल लेता गया था।

वैद्य, हकीम और डाक्टर इस विषयमें ऐक्य-मत्य हैं कि, गंगा-वायुका सेवन, गंगाजलका पान तथा गंगाकी मृत्तिका-का अनुलेपन असाध्य कुष्ठ-जैसे रोगके लिये भी महौषध है। इन्हीं गुणोंके कारण तो गंगा 'देवापगा' कहलाती है।

शुद्ध वायुके गुण गिनाये नहीं जा सकते। फिर जो वायु गंगाके विस्तृत पाटपर बिना रुकावटके दौड़ती और उसके निरामय स्रोतःसंगममें खलखलाती रहती है, वह कितने गुण लिये होगी, कितनी निर्मल होगी! इस वायुका एकान्त उपभोग कभी हमारे ऋषि-मुनि, पावनत्वकी दृष्टिसे, निश्चल-भावसे, किया करते थे; और, आज भी कितने ही मानव किया करते हैं—शीतत्व या पावनत्वकी भावनासे।

गंगा-स्नानसे भी अनगिनत लाभ होते हैं। खुजली आदि चर्म रोगोंका विनाश तो क्षणभर बाद हो ही जाता है, साथ ही हिमालयकी वनस्पतियों और रजत सैकतोंके निष्यन्दनसे जो एकीभूत गुणजात गंगाकी अविच्छिन्न धारामें वर्तमान रहते हैं, वे भी सहज ही प्राप्त हो जाते हैं। यदि कोई डुबकी मारकर पानीके भीतर कुछ देर रह जाता है, तो उसे अमृतोपम लाभ होता है; और नहीं, कुछ कुम्भक प्राणायामका फल, तो उसे जबर्दस्ती मिल ही जाता है। रासायनिक दृष्टिसे जाँच करनेपर, यह भी विदित होता है कि, गंगा-सेवियोंके अन्तःकरणमें शनैः-शनैः सत्त्वगुण विकसित होता जाता है; जिससे ही एक मात्र ब्रह्मज्ञान लाभ हो सकता है। यानी प्राणियोंके स्वास्थ्यको गंगा आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक, तीनों ही प्रकारसे, सुसम्पन्न करती है। गंगाकी इन्हीं गुणावलियोंपर रीझकर महाकवि तुलसीदासजी-ने कहा है—"दरस परस मज्जन अरु पाना, हरे पाप कह वेद-पुराना।"

इतनी बातें तो गंगाभक्तोंकी हुईं, अब कुछ गंगा-द्रोहियोंकी भी सुनें। गंगाजलके निःसीम गुणोंको ठुकराते हुए, इन दिनों कुछ पाश्चात्य शिक्षाके हिमायती नलका पानी Water-pipe पीना ही उचित समझते हैं। नलके पानीको और गंगाजलको अलग-अलग रखकर जाँच करें; आप देखेंगे कि, तीसरे ही दिन नलके पानीमें कीड़े पड़ गये हैं, भले ही वह नलका पानी क्यों न गंगाका ही है; किन्तु Water works की सहायतासे दूषित तो हो चुका है।

ऐसी राय तो उन लोगोंकी होनी चाहिये, जो हमें सदा अस्वस्थ देखना चाहते हैं। म्युनिसिपल्टिी हमारी स्वास्थ्य-रक्षाके लिये जितने कार्य करती है, उनसे कहीं अधिक गुण गंगा-सेवनमें है। मनुष्यकी कृतियोंमें हजारों दुर्गुण प्रकृति दिखा सकती है; पर मनुष्य प्रकृतिकी सजीवी नहीं दिखा सकता!

पहले तो लोगोंने कानपुरमें ही चमड़े धो-धोकर गंगा-जलके अनुपम गुणोंको विनष्ट करना चाहा, पीछे शहरोंके गन्दे पनालोंको गिरा-गिराकर। फिर भी गंगाजल दूषित नहीं हुआ, उसके वे लाभदायक गुण अक्षुण्ण ही बने रहे। लेकिन म्युनिसिपल्टिी तो उसपर अब सद्यः कुठाराघात कर रही है। लोगोंके पैसोंके साथ-ही-साथ उनके स्वास्थ्यकी भी हत्या कर रही है। अतः गंगातट-वासियोंसे मेरी सवि-नय प्रार्थना है कि, वे म्युनिसिपल्टिीके ढकोसलोंको—फिल्टेड वाटरको—छोड़कर अमृतमय गंगाजलका ही पान किया करें। म्युनिसिपल्टियोंको भी यही उचित है कि, वह जनताकी सच्ची सेवा करनेकी नीयतसे, घर-घरमें विशुद्ध, निर्मल गंगाजलको पहुँचा दे।

३—धरोहर !

श्रीमद्भागवतप्रसाद वर्मा

× ×

अभिलाषाकी आँधीमें—
मिलनेकी साध छिपाये !
आया था, अब जाता हूँ—
आशाओंको बिखराये !!
जो धक्-धक्कर जलती थीं—
ज्वाला बनकर अरमानें !
आँखोंने बहुत बिखेरे,
उनपर आँसूके दाने !!

\+ + +

लाया था दो प्यालोंमें—
लबरेज़, आँखका पानी !
पानीमें पढ़वानेको—
अन्तरकी छिपी कहानी !!
उसमें डूबा था प्यारा—
बेसुध मेरा सूनापन !
वह खोज रहा था उसमें—
अपना खोया अपनापन !!

\+ + ×

हाँ, झलक रहा था उसमें,
पीड़ाका रूप मनोहर !
तूने महँगे प्यालोंका—
क्यों रक्खा नहीं धरोहर ?

\+ + +

समझाये मेरा दुर्दिन,
तेरे बेगानेपनको !
तू सुखी रहे, मैं चलता—
उस उजड़े हुए वतनको !!

४—जीत किसकी ?

बाबू केदारनाथ खन्ना

शरद् पूर्णिमाकी रात थी। सरोवरके निर्मल जलमें चाँदका प्रतिबिम्ब पड़ रहा था। मैं शान्ताको साथ ले वृक्षोंकी छायामें खड़ा हुआ इस दृश्यको देख रहा था। प्रफुल्लित होकर मैंने कहा—

"चाँदसे सरोवर कैसा खिल रहा है! क्यों? ठीक है न?"

"नहीं"—शान्ताने मेरी ओर भेद-भरी दृष्टिसे देखते हुए कहा।

"क्यों?"—मैंने विस्मित होकर पूछा। इसपर मुस्कुराकर वह कहने लगी—"इसलिये कि, चाँदसे सरोवर नहीं; परन्तु सरोवरसे चाँद खिल रहा है!"

यह बात मुझे न जँची। उसकी हँसी उड़ाते हुए मैंने कहा—"यह भी कभी हो सकता है? तुम पगली हो, पगली हो।"

"इतने विश्वासके साथ बात मत कहो।"—उसने व्यंग्यसे कहा—"यदि हिम्मत है, तो आकाशके चाँदकी सरोवरके चाँदसे तुलना करो और बताओ कौन सुन्दर है।"

मैंने दोनों चाँदोंको बारी-बारीसे देखा; खूब ध्यानपूर्वक देखा। बाद शान्ताके शान्त तथा उज्ज्वल मुखड़ेकी ओर दृष्टि की। अबकी बार मेरा निश्चय बिलकुल डोल गया। भोली शान्ताके चाँदसे भी उज्ज्वल चमकते हुए नेत्र, उसके लाल-लाल सुकुमार अधर और गोरे कपोलोंको देखते ही मुझे वे दोनों—सरोवर और आकाशवाले चाँद—नीरस जँचने लगे। मेरा मन उछलने लगा। पूर्वोक्त बातको याद कर हृदयमें ग्लानि होने लगी।

मुझे चुप देखकर वह तेज हो गयी। बोली—"बताओ कौन सुन्दर है?"

इधर मैंने पृथ्वीसे एक पत्थर उठाकर जलमें फेंका और उधर एक छोटे बादलके टुकड़ेने आकाशके चाँदको ढँक लिया।

मैंने आनन्दित होकर बड़े हर्षसे उत्तर दिया—

"शान्ताका !"

५—दुर्बलताका कारण

श्रीयुत बालकृष्ण बलदुवा बी० ए०

१

मुझसे पूछ रहे हो मेरी दुर्बलताका कारण !
क्या न जानते नित्य जल रहा मैं अपना भी मारण ?
क्यों विनाशपर स्वर्गके सुखा ? क्या कहकर समझाऊँ ?
मारणमंत्र स्वयं अपनेपर क्यों ? कैसे बतलाऊँ ?

२

जीवन-सागरका मैं मंथन करता रहता नित्य,
पानेको सौन्दर्य-सुधा-पूरित चिर-नूतन सत्य;
और मुझे मिलती भी मेरी इच्छित वस्तु महान्,
किन्तु साथमें गरल, फूँक देता जो तन-मन-प्राण ।

३

दीप्ति, कल्पना, सुधा, लुनाई सुन्दरताका सार—
मीठी हँसी, करुण आहोंमें उनका करूँ प्रसार,
जगती केवल देख रही वह हँसी और वह आह;
दोनोंमें सौन्दर्य, इसीसे उनको उसकी चाह ।

४

किन्तु गरल जिसके बिन सम्भव नहीं सुधाकी प्राप्ति,
एकाकी मैं ही तो पीकर उसकी करूँ समाप्ति ।
जो जगको दिखला भर दूँ, तो ऐसा भागेगा —
फिर भूले-भटके न पास भी मेरे वह आयेगा !

५

सुधा—सुधा-घटको तो मैं कुछ बूँदें ही पीता हूँ,
शेष—अशेष राशि जगती सम्मुख उड़ेल देता हूँ !
किन्तु गरलकी एक बूँद भी मुझसे कभी न बचती,
तब भी कहो क्यों न दुर्बलता हिस्से मेरे पड़ती ?

६—क्या ब्रह्म भी मायी है ?

साहित्यचन्द्रिका श्रीमती विमला देवी "रमा"

वेदान्तका यह सिद्धान्त है कि, ब्रह्म भी मायी है अर्थात् माया ब्रह्मकी एक 'तन्निष्ठ' शक्ति है। उससे भिन्नकी भावना भ्रममात्र है। यही कारण है कि, ब्रह्मवादी "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः"—इस सत्य सिद्धान्तके पक्के पोषक होते हैं। ऐसी अवस्थामें हृदयमें इस सन्देहका उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि, क्या ब्रह्मसे भिन्न माया कोई पदार्थ नहीं ? वेदान्तका अन्तिम विचार-विमर्श यही उत्तर देगा, "नहीं।" तब आप कहेंगे कि, ब्रह्मसे सृष्टि कैसे हुई ? निराकार ब्रह्म साकार सृष्टिका कारण कैसे हुआ ? इसका उत्तर ब्रह्मवादी बड़ी बुद्धिमत्तासे देता है। जैसे एक मकड़ेके उदरसे अनेक सूतके जाल बन जाते हैं, वैसे ही एक ब्रह्मसे अनेक ब्रह्माण्ड उत्पन्न हो जाते हैं। जिसका स्वभाव ही है विश्वकी रचना करना, क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् है। बिना किसीकी सहायताके वह सृष्टि-प्रलय किया करता रहता है। विश्वकी सुन्दरताका वह प्रेमी अवश्य है, किन्तु वह अलिप्त है, अन्य-मनस्क है। परिवर्तनका उसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ब्रह्मवादी कहता है कि, जैसे एक वट-बीजसे लाखों वट-वृक्ष हुए, पुनः बीज हुए, इसी प्रकार ब्रह्मसे अनेक जीव-जगत् हुए, पुनः उसीमें तल्लीन हो गये। यही सृष्टि-रचनाका क्रम है। यदि ब्रह्म किसीकी सहायतासे विश्व-प्रणयन करने लगे, तो उसकी शक्तिमें बाधा पहुँचेगी।

अतः ब्रह्मवादियोंको कहना पड़ा—"सर्वं ब्रह्ममयं जगत्" अर्थात् ब्रह्म-भिन्न कुछ नहीं। इसी विचारको शास्त्र-कारने यों व्यक्त किया है—"मायां तु प्रकृतिं विद्धि मायिनं तु महेश्वरम् ।" सांख्य मतकी प्रकृति वेदान्तकी माया है और ब्रह्मको मायी समझो। सांख्यके पुरुष और वेदान्तके ब्रह्ममें बहुत अन्तर है। यहाँ इस विषयकी विवेचना करना विषयान्तर होगा। अब प्रश्न यह है कि, निराकार ब्रह्मसे साकार सृष्टि कैसे हुई ? इसका उत्तर एक शब्दमें वेदान्त यों

देता है कि, "सर्वशक्तिमान्‌के लिये कोई बड़ी बात नहीं। जब ब्रह्म सर्वशक्तिमान् है, तब क्या निराकार होते हुए साकार विश्वका आविर्भाव करना उसके लिये कठिन है? कुछ नहीं।

पाठक, माया वस्तुतः क्या है, इसका उत्तर वेदान्तियोंने यों दिया है—"अविद्याका नाम माया है। जैसे रस्सीमें सर्पका आभास होना। वस्तुतः रस्सीमें सर्प नहीं है, किन्तु भ्रमात्मक जो प्रतीति होती है, उसीको माया कहते हैं। अन्य मतवाले कहते हैं कि, द्रव्य वस्तुका नाश हो गया और वेदान्त कहता है कि, नाश नहीं हुआ; किन्तु रूप-परिवर्तन हुआ। यदि किसी द्रव्य वस्तुका ये विनाश मानने लगें, तो ब्रह्मकी नित्यतामें बाधा पहुँचेगी; क्योंकि इनका ध्येय है—"सर्वं ब्रह्ममयं जगत्" अर्थात् ब्रह्मके सिवा कुछ नहीं। अतः इनको विवश होकर मानना पड़ता है कि, माया ब्रह्मकी एक उपाधि मात्र है। उपाधिका अर्थ तद्गत धर्म है अर्थात् ब्रह्ममें रहनेवाला धर्म है। उससे पृथक् प्रतीति अविद्या है। अब आप कहेंगे कि, मायाका स्वरूप क्या है? इसका उत्तर वेदान्त यों देता है—मायाका शुद्ध स्वरूप है तमोरूपा। भाष्यकारोंके वचनोंसे विदित होता है कि, ब्रह्मको जाननेवाले पुरुषोंको मायाकी प्रतीति नहीं होती। जो जगत्‌को ब्रह्ममय देखता है, उसे भिन्न कहीं कोई भी वस्तु कैसे दीख पड़ेगी?

अब आप कहेंगे कि, ब्रह्ममें माया भी है, तो वह मायी हो गया। हाँ, इसमें माया है, इसलिये वह मायी हुआ और जीव मायामें है, अतः अज्ञ हुआ। जीव-ब्रह्मका यही भेद वेदान्तियोंको अभीष्ट है। भेद तो तभीतक रहता है, जबतक जीव अविद्यामें पड़ा रहता है। अविद्यासे अलग होनेपर ब्रह्मके सिवा कुछ भी नहीं दिखाई देता। अद्वैतवादियोंका जीव-ब्रह्ममें भेद तभीतक रहता है, जबतक जीव मायाके बन्धनमें ग्रस्त, मोहमें जकड़ा हुआ, रहता है। बन्धनका विनाश होते ही जीव-ब्रह्ममें अनैक्यका विनाश हो जाता है। अब आप कहेंगे कि, तब तो विश्वका कारण एक ब्रह्म हुआ। हाँ, निमित्त कारण ब्रह्म ही हुआ; इससे भिन्न कारण अविद्या-जन्य है। आप कहेंगे कि, तब क्या जरूरत हुई ब्रह्मको विश्वको रचनेकी? इसका उत्तर वेदान्त यों देता है—कोई जरूरत नहीं हुई। उसका स्वभावगत यह धर्म ही है। जैसे गुलाबका प्रस्फुटित होना और गिरना स्वाभाविक धर्म है, इसी तरह विश्व-विकास और विश्व-विनाश ब्रह्म-निष्ठ धर्म है। कोई उसे इच्छा या आवश्यकता नहीं। सांख्यवालोंकी तरह प्रकृति-नटीका नृत्य वेदान्तियोंका ब्रह्म नहीं देखता। वह तो स्वभावतः रचता और विनाश करता रहता है। इसी भावको लेकर आचार्य शंकरने इस श्लोककी रचना की थी—

"यस्माज्जातं जगत्सर्वं यस्मिन्नेव विलीयते।
येनेदं धार्यते चैव तस्मै ब्रह्मात्मने नमः॥"

७—प्रणतपाल

श्रीयुत "शारदा"

हम भक्त के अबलौं यह सेविका,
कर सकी अपराध कभी नहीं।
पर शरीरिणि ही सब भाँति मैं
निरपराधिनि हो सकती नहीं।
इसलिये मुझसे अनजानमें,
यदि हुआ कुछ भी अपराध हो।
वह सभी इस आपत कालमें,
जगपते, सब ही विधि क्षम्य हैं।
प्रथम तो सब काल अबोधकी,
सकल चूक उपेक्षित है हुई।
फिर सदाशयता प्रभु सामने,
परम तुच्छ सभी अपराध हैं॥

८—उसकी तैयारी

:पाण्डेय जगन्नाथप्रसाद सिंह

वह मेरे कमरेके बगलवाले कमरेमें रहता था। फर्स्ट इयरमें पढ़ता था। गरमीकी छुट्टी होनेमें अभी

लगभग तीन सप्ताहका विलम्ब था। परन्तु अभीसे वह नित्य सन्ध्या समय बाजार जाता और कुछ-न-कुछ जरूर खरीद कर लाता था। वह उन चीजोंको किसीको दिखाता नहीं था—मुझको भी नहीं। यद्यपि अबतक उसकी कोई भी बात मेरे लिये गोपनीय नहीं थी, उसका उन चीजोंका छिपा छिपाकर खरीदना और छिपा-छिपाकर अपने बाक्समें बन्द करके रखना कम-से-कम मुझको अखरने लगा। फिर भी मैंने उससे कभी भी इस बातका जिक्र-तक नहीं किया; परन्तु यह बात मेरे या उसके साथियोंसे भी छिपी न रही। छिपकर बाजारसे कुछ सामान लाना और उसे छिपाकर ही रखना भला होस्टलमें कहाँतक सम्भव था! कानो कानों बात सबोंको मालूम हो गयी। उसे देख-देखकर सभी छेड़खानियाँ करने लगे। परन्तु वह कुछ बोलता न था। ऊपरसे यद्यपि वह गम्भीर रहनेकी चेष्टा करता था, तथापि उसकी प्रत्येक चेष्टासे उसका उतावलापन और उसके हृदयकी उत्सुकता टपकी पड़ती थी। फिर भी फबतियाँ कसनेसे बाज न आते थे।

"नयी शादी हुई है।"

"नहीं जी, लड़का होनेवाला है—उसीके लिये समान खरीदे जा रहे हैं।"

"तुम क्या जानोगे! किसीसे आँखे लग गयी है।"

"नहीं, नहीं, यह सब श्रीमतीजीकी आज्ञाओंका पालन हो रहा है!"

इसी प्रकार जिसके मनमें जो आता था, कहता था। परन्तु मैं बराबर चुप था। साथियोंके बीचमें जब वह उसपर मीठे तानोंकी फुलझड़ियाँ बरसा करती थीं, तब वह मुझे देखकर कुछ झेंप-सा जाता था। वह मेरा बड़ा आदर करता था। यह सब होते हुए भी उसका नित्यका काम जारी था। छिपकर नयी-नयी चीजें खरीदना और उन्हें छिपाकर रखना उस समय उसके रूटीनका एक अङ्ग हो गया था। इस प्रकार दिन बीतते जाते थे।

कालेज बन्द होनेमें केवल तीन दिनोंकी देर थी। साथियोंसे अब न रहा गया। उसे पकड़कर वे सब उसके कमरेमें ले गये और ट्रंक खोलनेको कहा। वह बेचारा बड़े असमंजसमें पड़ा। परन्तु इतने लोगोंके दबावमें पड़कर उसे बाक्स खोलना ही पड़ा। उसमें तरह-तरहके खिलौने, कपड़े, चूड़ियाँ सेंट, इत्र, तेल आदिकी शीशियाँ सजाकर रखी हुई थी। साथियोंने जिद्द की कि, उसे एक-एक करके उन चीजोंको दिखाना ही पड़ेगा और किसके लिये क्या चीजें हैं, सो बताना ही होगा। उसी समय संयोगवश मैं भी वहाँ पहुँच गया। मुझे देखकर वह कुछ झेंपा—कुछ मुस्कुराया और फिर बैठनेका इशारा किया। मैं भी एक ओर बैठ गया। होस्टल-के उस छोटे-से कमरेमें पचीसों दोस्त उत्सुकतासे बाक्सकी ओर देख रहे थे। उसकी शादी हुए बरस रोज हो चुका था। उसे इसी महीनेमें लड़का होने-वाला था। उसी भावी सन्तानके लिये यह तैयारियाँ थीं।

साथियोंके दबावमें पड़कर उसकी लज्जा दब गयी। वह एक-एककर दिखाने लगा। यह बाजा है—मुँहसे बजानेवाला। एक रुपयेको लिया है। बच्चा जब पाँच-सात महीनेका होगा, तब बजावेगा। यह उसके लिये ऊनी गंजी ली है। यह देखो—केवल एक साड़ीका दाम पचास रुपये—बच्चेकी माँको

उपहारमें देनेके लिये । साथमें ब्लाउज़-पीस भी है। गीताकी पाँच कापियाँ भी ली हैं—बाबू भगवानदास और एनीबेसेंटवाली—मित्रोंको उपहार देनेके लिये। ये सेंट और तेलोंकी शीशियाँ हैं। गरमीमें ठण्डे तेलोंकी ज़रूरत पड़ेगी न। अहा हा! यह देखो, कितना सुन्दर यह कुत्ता है! मानो अभी बोल उठेगा। मेरा बच्चा इसे देखकर नाचने लगेगा और उसे जीते-जागते कुत्तेका भ्रम होगा। यह रामायण है—बाबूसाहब (रायसाहब श्यामसुन्दर दास, बी० ए०) द्वारा सम्पादित। इसे पिताजीको दूँगा। माँके लिये भी, यह देखो, एक स्फटिककी माला खरीदी है। कहाँतक बताऊँ; देखो न सब चीजें घरवालोंके लिये ली हैं। यह अपना फोटो लिया है—स्त्रीको उपहारमें देनेके लिये………।

दरवाजेपर तारघरका चपरासी हाथमें तार लिये उसका नाम लेकर पुकारने लगा। उसने लपककर तार ले लिया। खोलकर पढ़ा और उसके हाथसे तार छूटकर गिर गया। साथ ही वह भी मेरी गोदमें आ लुढ़का। तार उठाकर एक लड़केने पढ़ा—"मरा हुआ लड़का हुआ; तुम्हारी स्त्रीकी अवस्था शोचनीय है; शीघ्र आओ।" मित्रगण सान्त्वना देने लगे; पर कौन सुनता है। कमरेमें सब चीजें बिखरी पड़ी थीं। मेरी गोदमें वह बेहोश पड़ा था। मेरी आँखोंसे मोतियोंकी वर्षा हो रही थी।

९—यंत्रणासे

श्रीयुत कुमार बद्रीनारायण सिंह 'कुमुद'

सँभल विश्व-यंत्रणे! नहीं यों—
मचा हृदयमें हाहाकार,
थी सन्ध्याकी चाह तुम्हें—वह
देख, आज आती साकार।
काली कजरारी अन्धकारसे—
ढँकती आती विश्व मलीन,
अमर-शासन कर रही एकको
और एकको तममें लीन।
सहज-शील [illegible],
पापोंकी ज्वालायें हन्त!
सन्तापित हैं निठुर वधिकसे
धूमिल [illegible]-घटी-सी अन्त!!
× × ×
ऐ मेरा जीवन [illegible] था!
आज दूर पतितोंसे हो;
बलि जावे यह बिन्दु आत्म
अर्पणसे सब सपना मन हो!!

१०—वेदका महत्त्व

व्याकरणाचार्य पं० गोपीकृष्ण शास्त्री

हिन्दूधर्मावलम्बी प्रत्येक मनुष्यका वेदपर अटल विश्वास है। जो बात वेदसे प्रमाणित होती है, उसे प्रत्येक हिन्दू गौरव-पूर्वक स्वीकार करता है। वेदोंके विषयमें हिन्दूधर्मावलम्बी बड़े-बड़े विद्वान् यही कहते चले आ रहे हैं कि वेद अपौरुषेय है अर्थात् वह किसी पुरुषका बनाया हुआ नहीं है; ईश्वर-प्रोक्त है। अतएव वेदको वे स्वतः प्रमाण मानकर उसके प्रति अपनी निःसीम श्रद्धा प्रकट करते हैं। किसी विषयको नितान्त निःसन्दिग्ध सिद्ध करनेके लिये [illegible] वेदकी ही दोहाई दी जाती है।

"वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।" "वेदाः प्रमाणम्।" "प्रमाणं परमं श्रुतिः।"

इत्यादि प्राचीन आस्तिक आचार्योंके वेद-प्रशंसा-युक्त वचन वैदिक महत्त्वको स्पष्टतया प्रमाणित करते हैं।

इसमें मीन-मेख करने, किन्तु-परन्तु लगानेवाले नास्तिक समझे जाते हैं ।

"योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः ।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेद-निन्दकः ॥"

आस्तिकोंके मतमें वेद ईश्वरकी वाणी है और ईश्वर सर्वज्ञ है; अतः उसके कथनमें किसी भी प्रकारका सन्देह हो ही नहीं सकता ।

"अस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्" इत्यादि वाक्य वेदको ईश्वर-प्रणीत सिद्ध करते हैं । मनु, याज्ञवल्क्य, पराशर, नारद, गौतम, वसिष्ठ आदि स्मृतिकारोंने तथा मीमांसक आदि दार्शनिकोंने वेदको अपौरुषेय सिद्ध करनेके लिये अगाध-प्रयत्न किया है । आचार्योंने वेदका और सृष्टिका काल एक ही माना है । उनका कथन है कि, सृष्टिके स्थावर तथा जंगम पदार्थोंका नाम-कर्म-विधान वैदिक व्यवस्थाके अनुसार ही ईश्वरने किया है—

"सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे ॥"

कल्कि पुराणमें भी लिखा है—"वेदो हरेर्वाक्"—वेद ईश्वरकी वाणी है । कुल्लूकभट्ट आदि स्मृति-व्याख्याताओंने भी इसी बातका समर्थन किया है । वस्तुतः यदि वेदको पौरुषेय भी मान लिया जाय, तो उससे वेदके महत्त्वमें किंचित् न्यूनता नहीं आ सकती । वेदाध्ययनसे यही बात सिद्ध होती है कि, वेद वैदिक महर्षियोंके मस्तिष्ककी उपज है । वेद पौरुषेय होनेपर भी अत्यन्त महत्त्वकी वस्तु है और हम लोगोंके लिये परमादरणीय है । हमारे पूर्वजोंकी स्मृतिका दिव्य चिह्न है । आर्योंका अमूल्य-रत्न-कोष है । विशेष ज्ञानके प्रतिबिम्बका आदर्श है । इसके ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, नामक चार भाग हैं । प्रत्येक वेदके मन्त्र और ब्राह्मण नामक दो भाग हैं । शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष् नामक ६ अंग हैं । इन अंगोंसे युक्त वेद साङ्ग वेद कहलाता है । वेदका मन्त्र-भाग छन्दोमय है और ब्राह्मण भाग प्रायः गद्यमय है । उसमें कहीं मन्त्रों-की व्याख्या की गयी है, कहीं आवश्यक इतिहासका वर्णन किया गया है ।

"ऋग्वेदस्य च शाखाः स्युरेकविंशति संख्यकाः ।
नवाधिकशतं शाखा यजुषो मरुतात्मज ॥
सहस्रं संख्यया जाताः शाखाः साम्नः परन्तप ।
अथर्वणस्य शाखाः स्युः पंचाशद्भेदतो हरे ॥
एकैकस्यास्तु शाखाया एकैकोपनिषन्मता ।"

ऋग्वेदकी २१, यजुर्वेदकी १०९, सामवेदकी १००० और अथर्ववेदकी ५० शाखाएँ हैं और प्रत्येक वेदकी उपनिषदें भी उतनी ही हैं; यद्यपि हमारे दुर्भाग्यसे वेदोंकी बहुत-सी शाखाएँ तथा उनके उपनिषद्-ग्रन्थ आज लुप्त हो गये हैं, इस लिये हमें हमारे पूर्वज महर्षियोंकी विद्वत्ताके लाभसे अवश्य वञ्चित रहना पड़ता है । तथापि आज भी जितने ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उनके अवलोकनसे ही वेदका तथा उसके निर्माताओंका पाण्डित्य एवं गवेषणा-चातुर्य स्पष्ट विदित होता है । वेदमें वनस्पतिशास्त्र, पशुशास्त्र, गणितशास्त्र, भूगोल-खगोलशास्त्र, शिल्पशास्त्र, साहित्यशास्त्र एवं संगीत आदि कलाओंका मार्मिक वर्णन नितान्त सुन्दरतासे किया गया है । वेदोंका अध्ययन, समालोचनाकी दृष्टिसे, ध्यानपूर्वक करनेसे अनेक अद्भुत तत्त्वोंका पता लग सकता है । आज यूरोप इतना बढ़ा-चढ़ा है, यह वेदोंमें लिखे गये शिल्पशास्त्रका ही प्रभाव है । वेदके अध्ययनसे वञ्चित रहनेवाले तथा पाश्चात्य सभ्यताके परम भक्त भारतीयोंके लिये इससे बढ़कर कौन-सी लज्जाजनक बात हो सकती है । प्रत्येक वैदिक धर्मावलम्बी पुरुषको वेदाध्ययन अवश्य करना चाहिये । वेद ही आर्योंका सच्चा धन है ।

१३—'क'की करामात

बाबू गोपालचन्द्र भगत

कविने कमनीया कामिनीके कुन्तल कलापपर क्या कमालकी कही है! कर्ण कुहरके कठिन कपाट-को काटकर कवि-किशोरीका कथोपकथन कर्णगोचर

कीजिये । कवि कहता है, "कुरङ्गशावक-नयनी, कमल-पत्राक्षी, कान्तिमती, करभोरु! क्या कला-निधिका कलङ्क कदापि कराल कालकी काया धारण करता है?" कुमारी किल-किलाकर कहती है, "कवि-केसरी क्यों कुहक रहे हैं?" कवि कहता है, "कुमद्वती क्या कुहू कर रहे हैं? क्या कोकिलके कुमार हैं? कुमुदबन्धुकी कलापूर्ण कौमुदीमें कुहू कैसे?" कामिनी कहती है, "करुणा-निधानके कौतूहलका कारण क्या है?" कोविद कहता है, "कोमलाङ्गी! कौतुक नहीं, कोप नहीं करता। केकीकी केका कर्ण-गोचर कर कृतान्तको कुतूहल क्यों? कम्पित-काय क्रूर क्यों कोप करता है? क्या कहा, कज्जलके कारण कुरंग कुहराम करते हैं, क्या कुसुम-शरके कमानके कोपके कारण कोक काँप रहे हैं?" कोक-नदवदनी कहती है, "कवि कुल-चूड़ामणि! केश हैं क्या केश! केश पाश!! कलाधरको कलङ्कित करना, क्या कबरीके कार्य्यकारका कर्त्तव्य है?"

१२—माता कहकर

पं० नरसिंह मोहन मिश्र

आशुबाबूको एक ब्राह्मणने पाला और पढ़ाया था। इन दिनों आप रेलवे-गार्ड हैं। समय आनन्दसे कटता है।

शामको कोर्स लौटे हैं। जोरोंसे वृष्टि हो रही है। बरामदेमें इजी चेयर लगा है। नाश्ता करके चेयरपर आकर लेट गये। सिगरेट सुलगाने लगे। इसी समय एक भींगती हुई बुढ़िया बरामदेमें आ धमकी। थर्थराती हुई वह एक ओर खड़ी होकर बोली—"रात-भर यहीं रहूँगी, बेटा।" बूढ़ी शायद भिखारिणी थी। कोई भी थी, आशुबाबूको दया आ गयी। नौकरको बुलाया। सूखा कपड़ा और कम्बल मंगवा दिया। पूछा, "कुछ गरम दूध पीयोगी?" उसने कहा—"आज एकादशी है। ज्वर भी है। उपवास करूँगी।" इसके सिवा वह कुछ न बोल सकी।

आधी रातका समय था। बुढ़िया कराह रही थी। आशुबाबूका निद्रा-भंग हुआ। नौकरको भी उठना पड़ा। बुढ़ियाका ज्वर १०४ हो रहा था। प्रलाप कर रही थी—"अहह बच्चा! कैसा सुन्दर है—मेरी ओर ताक रहा है—हाँडीमें रक्खूँगी—घाट किनारे छोड़ आऊँगी!—गीदड़-कुत्ते खा डालेंगे!" बुढ़िया छट-पट करने लगी। बोल उठी, "पानी।" आशुबाबूने अपने हाथों पानी दिया। कुछ देर शान्त रही। फिर प्रलापमें आप-बीती बकने लगी। आशु बाबू दत्तचित्त होकर उसकी शुश्रूषा करते हुए एक-एक बातको ध्यानसे सुनने लगे।

दूसरे दिन प्रायः १० बजे आशुबाबू श्मशान घाटसे लौटे। आखोंमें आँसू थे। श्राद्धके दिन पुरोहितने पूछा, "क्या कहकर पिण्ड-दान करोगे?" आशुबाबने कुछ सोचा, फिर कम्पित स्वरसे कहा, "माता कहकर!"

५३—वेदना

श्रीयुत उमेश्वरप्रसाद

हे सखि, आते हैं; पर गातका स्पर्श-सुख भी नहीं अनुभव करने पाती,—उनसे भली भाँति अपनी वेदना—अपनी हूक—अपनी पीड़ा—कहने भी नहीं पाती कि, वे खिला खिलाकर हँसते और दूर जा खड़े होते हैं। हाथ बढ़ाती, उन्हें नहीं देखती। दौड़ कर पगली-सी खोजने लगती; पर वे अदृश्य हो जाते! विवश हो आँसू बहाती, तो आकर पुनः पहले ही सा......! आह! वह सुख, वह आनन्द, वह उल्लास! किन्तु थोड़ी ही देरतक।

सखि! अनाथा हो, भग्न हृदय ले, टूटी-फूटी आवाजमें, विनय करती हूँ; पर मानते नहीं। धीरे-धीरे उठ, भराये हुए कण्ठको ले, बड़ी-बड़ी आशायें बाँध, उनके पैर छूने जाती हूँ; पर वे पैर—मञ्जुल पाद-पद्म-.... आह! कितने सुन्दर, मृदुल और

कोमल हैं!!! कहाँ हैं ? देखो न ! आहिस्ते-आहिस्ते आगतेमें भी कितना श्रम आ गया है ! ओह ! चरण में लगे हुए रंग, पसीना आनेके कारण धुलकर बहने लगे। हाय ! यह अकारण क्लान्ति कैसे दूर हो ? हे सखि ! तुम्हीं उन्हें समझाओ। मैं तो थक गयी। अब तो कण्ठ रुद्ध हो गया—हृदय बैठ गया।

मेरे प्राणोंके भी प्राण, हृदय-मन्दिरकी पवित्र प्रतिमा ! प्रेमके ईश्वर ! मंजुल देव !—सखि ! देखो, वे किस निठुराईसे मुझे आशाहीन अन्धकूपमें निस्सहाय छोड़, आप उस तारालोकमें, चन्द्रलोकमें अथवा, कल्पनाके अनन्त प्रकाशमें विलीन हुए जा रहे हैं। दौड़ो ! एक बार कोशिश कर उन्हें प्रसन्न करो—उन्हें मनाओ। ठहरनेके लिये विनय करो। पर देखना, सखि ! जोरसे उन्हें पकड़ नहीं लेना, नहीं तो शायद कहीं चोट आ जाय।

क्या कहा ? चले गये ! हाय ! अब आँसूकी गर्म धारामें डूबनेके सिवा कोई उपाय नहीं !!

१४—गाँवोंमें सफाईकी आवश्यकता

श्रीयुत 'अशोक'

भारतवर्ष कृषिप्रधान देश है। उसकी ८९-८ प्रतिशत आबादी, लगभग २१ करोड़ मनुष्य, ६,८९,६२२ छोटे-छोटे गाँवोंमें रहते हैं। ५ हजार या उससे अधिक आबादीके कस्बोंकी संख्या तो लगभग १६०० की है। शहरों और बड़े कस्बोंकी सफाईके लिये कारपोरेशन, म्युनिसिपल बोर्ड, नोटिफाइड एरिया आदि संस्थाएँ कायम हैं। परन्तु गाँवोंकी सफाई और स्वास्थ्य-रक्षाके लिये कोई व्यवस्था नहीं है। आज कल बरसातके दिनोंमें किसी भी गाँवमें जाइये, जगह-जगह गाय-भैंसके गोबरके ढेर, कूड़ेके घूरे और गन्दगीका साम्राज्य नजर आयगा। रास्तेमें कीचड़के कारण चलना प्रायः असम्भव हो जाता है। अगर आप घोड़ेपर सवार हों, तो इस गन्दगीके कारण असंख्य मक्खियाँ आपकी सवारीका चलना भी कठिन कर देंगी।

यही कारण है कि, बरसात खतम होते ही आश्विनमें हमारे देहातोंमें मलेरिया और अन्य बीमारियोंका प्रकोप बढ़ जाता है। जगह-जगह पोखरोंमें मच्छड़, खीरे और भुट्टे आदिके सड़नेसे जहरीली गैसें उत्पन्न होकर नाना प्रकारके रोग फैलाते हैं। सफाई और स्वच्छताका सारा भार गाँव वालोंके ऊपर ही है। कुछ समझदार किसान अपने मकानोंको साफ रखते भी हैं; पर आस-पासकी सफाई न होनेसे उन्हें भी सबके साथ तकलीफ उठानी पड़ती है।

यदि किसान चाहें, तो ये सब बुराइयाँ आसानीसे दूर हो सकती हैं। जिस प्रकार जातिगत पंचायतें जातिके नियम भंग होनेपर या मर्यादाका उलंघन करनेपर अभियुक्तको दण्ड देकर अपनी-अपनी जातिका शासन करती हैं, उसी प्रकार ग्राम-पंचायतें गाँवकी सफाई और स्वास्थ्य-रक्षाका प्रबन्ध भी कर सकती हैं। संगठनमें महान् शक्ति है।

फ्रान्समें यह कानून है कि, अगर कोई राहगीर सड़कपर कागज फाड़कर भी फेंक दे, तो उसे दण्ड दिया जाता है। अमेरिकामें पुलिस इस बातकी भी देख-रेख करती है कि, कोई व्यक्ति सड़कपर, नालीमें या अपने मकानके सामने भी, कोई कूड़ा तो नहीं फेंकता। वहाँ यह भी नियम है कि, घरवालोंको अपने मकानके सामनेकी सड़क साफ करनी होगी। अगर कोई इन नियमोंको भङ्ग करता है, तो उसे सजा दी जाती है।

अमेरिका और यूरोपसे जो लोग भारत-भ्रमण करने आते हैं, वे हमारे गाँवोंकी गंदगी देखकर उनमें प्रवेश करनेका साहस नहीं करते। एक बार एक अमेरिकन यात्रीने कहा, "मुझे आश्चर्य है कि, इतनी गंदगीके होते हुए, ये लोग जिन्दा कैसे हैं।" इसका उत्तर देते हुए एक भारतीय सज्जनने कहा, "अगर हमारे देशमें सूर्य भगवान्‌की कृपा न होती तो, सचमुच हमारी आबादी बहुत कम हो गयी होती।" वास्तवमें सूर्यकी उष्ण किरणोंके कारण असंख्य रोगोंके कीटाणु मर जाते हैं। भारतवर्षके लिये सूर्य सबसे बड़ा (Disinfectant), रोगोंके कीटाणुको नाश करनेवाली औषध है।

परन्तु इस कारण अकर्मण्य होकर बैठना मूर्खता है। शहर और कस्बोंके म्युनिसिपल बोर्डोंके समान गाँवोंमें 'सफ़ाई बोर्ड' स्थापित होने चाहिये। इसके लिये यह जरूरी नहीं कि, गाँववालोंसे टैक्स वसूलकर एक दफ्तर कायम किया जाय। गाँववाले एक जगह जमा होकर निश्चय करें कि, हरेक घरके आस-पास और सामनेके रास्तेकी सफाई उस घरके रहनेवालोंको करनी होगी। आस-पासके गड्ढे, पास-पड़ोसके लोग मिलकर भर देंगे और जो पोखर गाँवके समीप हों और जिनके कारण मच्छर गाँवमें मलेरिया फैलाते हों, उन्हें गाँववाले मिलकर बन्दकर देंगे। गाय-भैंसका गोबर गाँवसे कुछ दूर एक ही जगह जमा किया जाय। इसमें एक कठिनाई हो सकती है—प्रत्येक किसान खादके लिये अलग-अलग ढेर लगाना चाहेगा। यह कठिनाई दो तरहसे दूर हो सकती है। एक तो यह कि, किसान गोबर अपने ही खेतमें, जो बस्तीसे दूर हो, जमा करें अथवा किसी एक स्थानपर ही थोड़ी-थोड़ी जगह बाँट ली जाय। यह सब पारस्परिक सहयोग और सद्भावनासे हो सकता है। घरका कूड़ा-कचरा भी एक ही जगह फेंका जाय।

देखनेमें कुछ बातें बड़ी साधारण और तुच्छ जान पड़ती हैं, पर हमारे जीवनपर उनका महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। घरोंमें बच्चे आम, केले या ऐसे ही अन्य पदार्थ खाकर उनके छिलके गुठली यों ही इधर उधर फेंक देते हैं, उनसे भी बीमारी फैलनेका डर रहता है। घरमें यह नियम होना चाहिये कि, जूठन आदि एक ही निश्चित स्थानपर जमा किये जायँ जहाँसे आसानीसे वह बाहर फेंकी जा सके। इसी प्रकार आम रास्तोंमें भी गन्दगी न की जाय। गली-सड़ी चीज और मरे जीव-जन्तु तो कदापि सार्वजनिक स्थानपर न फेंके जायँ।

अगर ग्रामवासी इस प्रकारके उपयोगी नियमोंका पालन कर सफाईका आदर्श उपस्थित करें, तो शहरोंमें भी सफाईकी व्यवस्था अधिक अच्छी हो जाय, क्योंकि पाश्चात्य देशोंकी तुलनामें हमारे नगर भी गन्दे हैं। गाँववाले अपनी सफाई आप करेंगे; इसीलिये वे अधिक सफल होंगे, क्योंकि शहरोंमें यह काम वेतन-भोगी कर्मचारियोंके जिम्मे होता है, जो अक्सर असावधानी करते हैं और बेगार टालते हैं।

"प्रताप"से

१५—आह

श्रीयुत बाबू रामकृष्णसहाय 'कुमुद'

हृदयके विपुल-विप्लवका गान,
था सौ-सौ भावोंके सार।
कम्पित-उरमें करुण-रागिनीके,
था कँप उठते हैं तार॥

विकल होता है प्राण ।

भूल जाती अपना ध्यान ॥ १ ॥

वसन्तके खिले हुए प्रसून,
ग्रीष्ममें क्या भरते उल्लास ।
दुपहरीमें परिवर्तित हुए,
उषामें जो थे हास-विलास ॥

नहीं है तनिक उछाह ।

है छाँहमें छिन-छिन दाह ॥ २ ॥

व्यथित-हृदयकी मूक-वेदना,
भाथीके झोंके-सी फूक ।
पल-पल तप्त-लोह-सा-जीवन,
को देखो देती है लूक ॥

पाती हूँ कष्ट अनेक ।

खोजाती बुद्धि-विवेक ॥ ३ ॥

सागरमें जब सूर्य्यकी रश्मि,
बिछाती अपना तेज-प्रखर ।
होते शीतल सिन्धु तब तप्त,
उड़ जाते जल वाष्प बनकर ॥

हा ! होगा सब निःशेष ।

जो भी जीवन था शेष ॥ ४ ॥

नव अतीतकी मृदु स्मृतियाँ,
रह-रह दृष्टि-गोचर होतीं ।
पागल-प्रेम-विभोर-कुरंगी-सी,
मैं तन-मन सब खोती ॥

लेती फिर भरी उसास ।

हा ! नहीं पुनः कुछ आश ॥ ५ ॥

नीरव दाघ-निदाघ-कालमें,
कोयल सदा मौन रहती ।
निशि-दिन ध्यान-निमग्न यों ही,
दुस्सह-विरह-व्यथा सहती ॥

होता है प्रणय कठोर ।

छिन-छिन भींजत दृग-कोर ॥ ६ ॥

झाँक-झाँक रजनीके तारे,
मेरी हँसी उड़ाते यों ।
चाँद उझककर पुनः दुराते,
मन भर खूब सताते यों ॥

मैं बैठी रहती मौन ।

यह आह सुनेगा कौन ॥ ७ ॥

१६—स्वर्गीय अवधकिशोरसहाय वर्मा 'वाण'

प० रासविहारीराय शर्मा एम० ए०

"वाण"का जन्म सन् १९०० ई० के जनवरी मासमें जिला पलामूके हैदरपुर नामक ग्राममें हुआ था। इनका बाल्यकाल विशेषतः ननिहालमें ही व्यतीत हुआ था। इनके पिताने इन्हें ग्राम्य पाठशालामें बैठाया था; किन्तु ननिहालके अत्यन्त लाड़-प्यारने इन्हें अध्ययनसे विमुख-सा कर दिया था, अतः पाठशालामें इनका मन नहीं लगा। इनका नाम डाल्टेनगंज जिला स्कूलमें लिखा दिया गया। यहाँके शासन और विद्या-चर्चाके वायु-मण्डलने "वाण"की प्रखर बुद्धिको विकसित कर दिया। मैट्रिकतक ये प्रत्येक श्रेणीमें उच्च स्थान पाते रहे। मैट्रिक परीक्षामें इन्हें स्कालरशिप भी मिली। आइ० ए०, बी० ए० और एम० ए० की परीक्षाएं इन्होंने हिन्दू-विश्वविद्यालयसे बड़ी प्रशंसाके साथ पास कीं। बी० ए० की परीक्षामें ये द्वितीय हुए थे। एम० ए० की परीक्षामें इन्होंने दर्शन लिया था, जिसमें इनकी बड़ी प्रशंसा थी।

एम० ए० पास करनेके बाद मुरादाबाद कालेजमें ये दर्शनके अध्यापक नियुक्त हुए। यहाँ इनके गम्भीर

विचारोंकी बड़ी प्रतिष्ठा रही। इसके बाद पटना ट्रेनिङ्ग कालेजसे बी० एड० पासकर गया जिला स्कूलमें नियुक्त हुए। वहाँसे आरा जिला स्कूलमें, फिर गया जिला स्कूलमें और गया जिलेके रफीगंज सर्किलमें स्कूलोंके सब-इन्सपेक्टर थे। इन जगहोंमें आपने बड़ी सचाई और परिश्रमसे काम किया था। आपकी सहृदयता, पाण्डित्य और सुजनतापर मुग्ध होकर राँची ट्रेनिङ्ग स्कूलके प्रधानाध्यापक, हिन्दीप्रेमी, रायसाहब सूर्य्यभूषणलालजीने इन्हें अपने स्कूलमें नियुक्त किया। आप जीवनके अन्तिम कालतक वहीं रहे। बीच-बीचमें पटना कालेज तथा राँची कालेजमें स्थानापन्न दर्शनशास्त्रके अध्यापकके स्थानपर दो बार गये थे। जहाँके प्रधानाध्यापक लोग आपकी कार्य्य-दक्षतासे अत्यन्त सन्तुष्ट थे। इनका स्वर्गवास, सन् १९३० ई० के जुलाई मासमें, अचानक राँची अस्पतालमें हो गया। वास्तवमें इनकी मृत्युसे हिन्दीका एक लाल, सदाके लिये, खो गया!

इनका स्वभाव बड़ा निर्मल और प्रियकर था। इनके चेहरेसे गम्भीरता टपकती रहती थी। ये सादगीके अवतार और सरलताकी मूर्त्ति थे। आपको बाह्य आडम्बर और बनावटी वेश-भूषासे बड़ी घृणा थी। आप निर्लोभी, सत्यवादी, अल्पभाषी, निरभिमान और क्रोधरहित थे।

आपने जीते जी हिन्दीकी खूब सेवा की। आप १९२१ से मरण-पर्य्यन्त लेख और कविताएँ माधुरी, सुधा, बालक, नवयुवक आदि पत्रोंमें भेजते रहे। लेख और कविताओंमें आपका नाम "बाण", रहता था। दर्शन-विषयक मनोविज्ञान-सम्बन्धी लेख आपके बड़े गम्भीर और मनन करने योग्य होते थे। "चित्तौरोद्धार" नामका एक सुन्दर काव्य आपने लिखा है। देशभक्तिकी अटूट धारा लेखकने जगह-जगह बहायी है। आदर्श क्षत्राणी और आदर्श क्षत्री-की सच्ची तस्वीर जगह-जगह खड़ी कर दी है। इस ग्रन्थमें लगभग १२०० पद्य हैं। इनमें ४५ छन्दोंका प्रयोग किया गया है! भाषा इसकी प्राञ्जल, टकसाली और सुस्निग्ध है। इनकी स्फुट कविताओंके कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं—

चित्तौरोद्धार

(घनाक्षरी)

(१)

राजा प्रताप जहाँ, आँखिनमें दाप जहाँ,
हाथनमें चाप जहाँ, वैरिनको काल है।
आननमें ओप जहाँ, नैननमें कोप जहाँ,
करें पदरोप जहाँ, बातनसों लाल है।
हाथों करवाल जहाँ, ले के सब लाल जहाँ,
भाँजत बेहाल जहाँ, मोदनसो बाल है।
गनते हैं नेक नहीं, शत्रुनकी टेक नहीं,
करते के एक नहीं, वैरिन बेहाल है॥

(चित्तौरका गौरव)

(२)

शीलधारी, रूपधारी पानिप अनूपधारी,
वीरता-सरूपधारी ठाढ़ीं बिखरात हैं।
आननमें ओपधारी, आँखिनमें चोपधारी,
बातनमें कोपधारी, शान जतरात हैं।
द्रौपदी-सी शानधारी, जानकी-सी आनधारी,
क्षत्रियोंकी बानधारी काल थहरात हैं।
आँखिनमें ज्योतिधारी, आनन द्योतिधारी,
ध्यानन उद्योतधारी, खेतधारी भाव हैं।

(पद्माका रूपवर्णन)

(द्रुतविलम्बित)

(३)

अहह काल बड़े तुम दुष्ट हो,
हृदयमें न दया तव धाम है।
मृदुलसी लतिका दुख पावती,
पर नहीं इससे कुछ काम है ॥
अजय सिंह सगे निज भ्रात थे,
सदय थे, पर वे कुछ भी नहीं।
हड़पके यह राज हमीरके,
सजल थे बनते न कभी कहीं ॥

(अवतार छन्द)

(४)

ऐसी जगह रमणीयमें, हम्मीर बिठाया।
प्यारे सिखा लालको रणधीर बनाया ॥
लेकर धनुष हाथमें वह तान चलाती।
हमीरको इस भाँतिसे धनुवेद सिखाती ॥

(५)

घोड़ों पै चढ़ा साथमें बनबीच फिराती।
भारी-सी नदी बाढ़में झट पार कराती ॥
धूलि ले लगा हाथसे तन खूब गठाती।
बर्छीका चलाना बता, सब पाठ पढ़ाती ॥

(६)

सिंहोंसे भरी भूमिमें चुपचाप त्यागके।
वनमें लुकी-छिपी रहे बस आप भागके ॥
इस भाँतिसे गम्भीरको निर्भीक बनाया।
प्याने पढ़ा पाठको सब ठीक बनाया ॥

१७—एक आवश्यक निवेदन

बाबू रघुनन्दप्रसाद वर्मा

प्रथम प्रवाहकी तृतीय तरंगमें जो मुंगेर जिलेका इतिवृत्त निकला था, उसमें अनेक साहित्य-सेविगण तथा जमीन्दारोंकी नामावली छूट गयी है, जिन्हें यदि पाठकगण सम्मिलित कर पढ़ें, तो ठीक होगा।

साहित्य-सेविगणतथा कवि—प्रोफेसर राम-चरित्र सिंह एम० एस० सी० (पटना कालेज), बाबू झारखण्डीप्रसाद "विशारद", बाबू सियाशरण प्रसाद "सिया" बी० ए०, बी० एल०, बाबू दिनेश प्रासद वर्मा बी० ए०, बी० एल, बाबू रामधारी सिंह "दिनकर" बी० ए० (आनर्स), प० युगलकिशोर सिंह शास्त्री (स्थानापन्न सम्पादक "प्रताप"), बाबू नथुनी सिंह विद्यालंकार "विशारद", बाबू कुलदीप सहाय "दीप", बाबू कपिलदेवनारायण सिंह "सुहृद", बाबू रामनरेशप्रसाद, बाबू विश्वेश्वर महतो और बाबू जगदीशप्रसाद वर्मा आदि।

जमीन्दार—राजा चन्द्रचूड़देवजी (उलाव), राय साहब राजधारी सिंह (छितरौर), राय बहादुर अयोध्याप्रसाद सिंह (मावकोठी), बाबू रामेश्वरप्रसाद सिंह (शकपुर) बाबू मेदनीप्रसाद जी वकील (बेगूसराय), श्रीमहन्त भागवतदास जी (सलौना), महन्त महावीरदासजी (विष्णुपुर), महन्त प्रभुचरण भारती (तुलारपुर) तथा चौधरी साहब (बख्तियारपुर) आदि।

पुस्तक-प्राप्ति

१—पद्मसिंह—अङ्क

"प्रवासी"-कार्यालय, कलकत्तेसे प० बनारसीदास चतुर्वेदीजीके सम्पादकत्वमें, पाँच वर्षोंसे, "विशाल भारत" नामका मासिक पत्र निकल रहा है। इसका वार्षिक मूल्य ६) है और एक अङ्कका ॥-)। हिन्दीके सुनाम-धन्य लेखक, विद्वान् और समालोचक स्वर्गीय प० पद्मसिंहजी शर्माकी स्मृतिके उपलक्षमें इसका एक विशेषाङ्क, "पद्मसिंह-अङ्क"के नामसे, निकला है। पृष्ठसंख्या और मूल्य आदि साधारण अङ्ककी तरह ही हैं।

विदेशियोंकी यह शैली है कि, किसी लब्धप्रतिष्ठ लेखककी स्मृतिमें वे विशेषाङ्क निकालते हैं। यह तरीका है भी अच्छा। स्वर्गीय शर्माजी हिन्दीके वृद्ध साहित्यसेवी तथा तेजस्वी समालोचक थे। उर्दू-फारसीपर भी आपका पूरा अधिकार था। बात-बातपर शेर या कविता कहनेकी आपमें अद्भुत क्षमता थी। आपके नामपर विशेषाङ्क निकालकर चतुर्वेदीजीने बड़ा ही उत्तम काम किया है। पण्डित सत्यनारायण कविरत्नजीकी जीवनीके सफल लेखक चतुर्वेदीजीके सम्पादकत्वमें इस अङ्कको जैसा निकलना चाहिये था, वैसा ही निकला है। प० नाथूराम शंकर शर्मा, प० भीमसेन शर्मा, महाकवि अकबर और प० पद्मसिंह शर्माके कई सुन्दर चित्र भी हैं।

शर्माजी साहित्यके बड़े भक्त थे। पढ़नेका उन्हें व्यसन था। कभी किसीने उनसे कह दिया था कि, चाय पीनेसे जल्दी नींद नहीं आती। बस, आप चाय पीने लगे और रात-रात भर जागरण कर अध्ययन करने लगे। आपकी जीवनीमें साहित्यिकोंके लिये उच्च आदर्श और शिक्षा कूट-कूट कर भरी है। इस "पद्मसिंह-अङ्क" में प० चन्द्रशेखर शास्त्री, प० मोहनलाल महता, प० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी तथा स्व० शर्माजीके दोनों सुयोग्य पुत्रोंके लेख बड़े ही महत्त्वके हैं। बहुतेरे लेख साधारण भी हैं। संस्कृत-श्लोकोंमें प्रूफकी अनेक अशुद्धियाँ रह गयी हैं। प्रथम पृष्ठपर जो आचार्य द्विवेदीजीका संस्कृतमय पद्य है, उसका अन्तिम चरण अशुद्ध ही छपा है।

जो हो, हिन्दीमें इस प्रकारके विशेषाङ्कोंकी बड़ी जरूरत है। ऐसे समयमें चतुर्वेदीजीने इस दिशामें बढ़कर अच्छा काम किया है।

हमारी रायमें हिन्दीमें उसी विषयपर विशेषाङ्क निकालना चाहिये, जिस विषयपर हिन्दीमें कुछ भी नहीं है या है तो नगण्य। विशेषाङ्क ऐसा हो, जिससे अभिनवताकी अभिरामताका आनन्द आवे। उस विषयका विशेषाङ्क निकालनेकी कोई आवश्यकता नहीं, जिससे केवल क्षणिक मनोरञ्जन हो। हिन्दीमें जिन दिलबहलाव करनेवाली अलगूल कहानियोंकी सृष्टि हो रही है, उनको लेकर "विशाल भारत"के सञ्चालकका "कहानी-अङ्क" निकालना कुछ स्तुत्य कार्य नहीं। यदि उन्हें इतिहास, भूगोल, विज्ञान, अर्थशास्त्र, दर्शनशास्त्र आदिपर विशेषाङ्क निकालना न रुचे, तो वे "पद्मसिंह अंक" की तरह सुन्दर विशेषाङ्क निकालकर ही धन्यवाद-भाजन बन सकते हैं।

२—भुवन-कोषाङ्क

"भूगोल" हिन्दीमें, अपने विषयका एक मात्र मासिक पत्र है। इसके सम्पादक प० रामनारायण मिश्र बी० ए० परिश्रमशील, कार्य्यकुशल तथा अनुभवी विद्वान् हैं। ये अपनी उद्योगशीलतासे, साहित्यके एक आवश्यक अङ्गको, इस पत्रके द्वारा निश्चय ही पूर्ण कर रहे हैं। "भूगोल" प्रयागसे, पिछले नौ वर्षों-से, गम्भीर तथा सुपाठ्य सामग्रियोंसे परिपूर्ण होकर निकल रहा है। इसका वार्षिक मूल्य ३) है। इस साल इसके मई, जून और जुलाईके सम्मिलित अङ्क "भुवन-कोषाङ्क"के नामसे निकले हैं। इस विशेषाङ्कका मूल्य १) है। इसके आरम्भमें प्राचीन भारतवर्षका एक मानचित्र भी है।

भूगोल और विज्ञान ये दोनों विषय बड़े ही महत्त्वके हैं; परन्तु हिन्दीका भाग्य हत है कि, इन दोनों ही आवश्यक विषयोंपर, केवल एक-एक ही पत्र हैं। "भूगोल"का सम्पादन कितने परिश्रमसे और कहाँतक छानबीनकर किया जा रहा है, यह इसके अङ्कोंको देखनेसे साफ प्रकट हो जाता है। इस तरहका पत्र यदि दूसरी भाषा, अंग्रेजी या फ्रेंच आदिमें होता, तो उसके अनगिनत ग्राहक थोड़े ही दिनोंमें हो गये होते; किन्तु यह नौ वर्षोंसे निरन्तर निकल रहा है; और, इसकी ग्राहक-संख्या अभीतक एक प्रकारसे नगण्य-सी है। यह हिन्दीपाठकोंके लिये एकान्त लज्जाका विषय है।

"भुवन-कोषाङ्क" प्राचीन भारतकी गौरव-रक्षाके लिये निकाला गया है। इसे हाथमें लेते ही समूचा भारतवर्ष, आरसीकी तरह, आँखोंके आगे नाचने लगता है। आरम्भमें भुवन-कोष शीर्षक जो ३६ पेजोंका सम्पादकीय है, वह वास्तवमें अद्भुत वस्तु है। इसके अकारादि क्रमसे, देश, नदी, पर्वतादिके प्राचीन नामोंके साथ नवीन नामोंका सामञ्जस्य वस्तुतः एक विशेषता रखता है। नामोंके परिचयमें विशेष ऐतिहासिक या पौराणिक घटनाओंका भी उल्लेख है। श्रीयुत क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्यायका "वैदिक भूगोल" बड़े महत्त्वका है। इसमें वैदिक कालकी नदियों और देशोंका अन्वेषण, बड़ी सफलताके साथ किया गया है। "महाभारत-कालीन भूगोल" भी पठनीय है। इसके बाद "ह्वान-चांगकी भारतीय यात्रा" धारावार दी गयी है। अन्तमें "भुवन-कोष" नामक एक भारतवर्षका मानचित्र है, जिसमें नये तथा पुराने नाम एक साथ ही दिये गये हैं, विशेषाङ्कका महत्त्व जिससे और भी बढ़ गया है।

विशेषाङ्क इसीका नाम है। जिस वस्तुका अपने यहाँ अभाव हो, उसीके ऊपर विशेष प्रकाश डालना, विशेषाङ्कका अर्थ है। टटपुँजिये विषयको लेकर, भर्तीके लेखोंसे सज-धजकर सैकड़ों विशेषाङ्क निकालनेकी अपेक्षा, ऐसा सर्वाङ्गपूर्ण एक ही विशेषाङ्क निकालना उत्तम है।

३—भारतवर्षका भूगोल

लेखक, प० रामनारायण मिश्र बी० ए०, "भूगोल"-सम्पादक; प्रकाशक, "भूगोल"-कार्यालय, प्रयाग; पृष्ठसंख्या ४०३; मूल्य २); छपाई-सफाई अच्छी; सैकड़ों मानचित्रोंसे सुसज्जित।

प्रस्तुत पुस्तक हाई स्कूल और प्रथमा परीक्षाके विद्यार्थियोंके लिये लिखी गयी है। हिन्दीमें इस तरहकी सर्वाङ्गसुन्दर भूगोल-सम्बन्धी एक भी पुस्तक नहीं थी। विद्वान् लेखकने इस बड़ी छान-

बीन करके लिखा है। स्वयं भारतवर्षको यात्रा करके अनुभवी तथा परिश्रमशील लेखकने कई नये विषय जुटाये हैं। उसी यात्रामें लेखकने प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्थानोंके, अपने हाथोंसे, चित्र भी लिये थे; जो इसमें छपे हैं। पुस्तक हाथमें लेते ही समूचा भारतवर्ष हस्तामलककी तरह दीखने लगता है। चित्र सब भी नये ढङ्गके हैं। जैसे, किस प्रदेशमें किस वस्तुका व्यापार होता है, देखना है, तो मान-चित्रमें सब वस्तुओंके नक्शे बने हैं और नीचे नाम लिखा है। इसी तरह पौधों, पशुओं और मशहूर इमारतोंके भी नक्शे हैं। भारतवर्षके दो तिरंगे चित्र भी हैं।

इसमें चार प्रकरण हैं। प्रथममें भारतकी भू-रचना, जलवायु आदिका विवरण सामूहिक दृष्टिसे किया गया है। दूसरेमें प्रदेशके अनुसार राजनीतिक प्रान्तोंका विवरण है—अपरिचित प्रान्तोंका विवरण कुछ विशेष है। इसमें चित्र भी प्रचुर हैं। तीसरेमें व्यापार-सम्बन्धी बातें हैं; परन्तु राजनीतिक वायु-मण्डलका खयाल करके बहुत संक्षेपमें है। परिशिष्ट-में भूगोल-सम्बन्धी उपयोगी तालिकाएँ हैं, जो विद्यार्थियोंके लिये बड़े कामकी हैं।

४—भू-तत्त्व

लेखक, प० रामनारायण मिश्र बी० ए०, "भूगोल"- सम्पादक; प्रकाशक, "भूगोल"-कार्यालय, प्रयाग; पृष्ठसंख्या २८६; मूल्य १।); छपाई-सफाई अच्छी; भूगोल-सम्बन्धी अनगिनत अद्भुत चित्रोंसे सुसज्जित।

यह पुस्तक भी हाईस्कूल और प्रथमा परीक्षाके विद्यार्थियोंके लिये लिखी गयी है। मिश्रजी स्वयं अनुभवी शिक्षक हैं; अतः विद्यार्थियोंकी कठिनताका अनुभव करके इन्होंने विषयोंका स्पष्टीकरण किया है। इसमें वैसी ओछी बातें नहीं हैं, जो इन दिनों पाठ्य-पुस्तकोंमें भरी रहती हैं। बल्कि, इतनी अद्भुत-अद्भुत बातें हैं कि, सामान्य विद्यार्थी इसे पढ़कर एकबारगी ही चकित हो जायगा।

इसमें पाँच भाग हैं। प्रथम एक प्रकारसे खगोल-सम्बन्धी है, दूसरा स्थल-मण्डल, तीसरा जल-मण्डल चौथा वायु-मण्डल और पाँचवाँ जीवधारिमण्डल है। प्रथममें ग्रहोपग्रह आदि वर्णित हैं और उनके सञ्चरणसे किसका कैसा विकास होता है; ऋतु-परिवर्तन, दिन-रात आदि चित्रोंके द्वारा सरलतासे समझाये गये हैं। द्वितीय भाग तो बड़ा ही सुन्दर है। भू-पञ्जर पढ़ने लायक है, इसमें अनूठे-अनूठे चित्र हैं। भिन्न-भिन्न युगोंमें पृथ्वीपर प्राणियोंका कैसे विकास हुआ; एतद्विषयक चित्र बड़ा ही विचित्र है। पृथ्वी किस प्रकार क्रमशः ठंडी हुई यह तस्वीर भी अनूठी है। तृतीय जल-मण्डलमें समुद्री बातें और निमग्न तथा अवतीर्ण या वर्तमान द्वीपोंकी सामूहिक चर्चा है। वायुमण्डलमें अर्वाचीन संज्ञाख्य वायुओंके कार्यकलाप और नामावलि बहुविध चित्रों द्वारा स्पष्ट की गयी है। अन्तिम जीवधारिमण्डलमें सैकड़ों तरहके जीवोंकी बातें हैं। पुस्तक हर पहलूसे संग्राह्य है।

५—संस्कृत-कवि-चर्चा

लेखक, प्रो बलदेव उपाध्याय एम० ए० साहित्याचार्य; प्रकाशक, मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स, संस्कृत बुकडिपो, कचौड़ी गली, बनारस; पृष्ठसंख्या २९७; मूल्य २); छपाई-सफाई तथा कागज सुन्दर।

यद्यपि संस्कृत-भाषा सर्वाङ्गसे पूर्ण है; तथापि उसके प्रकृत पुजारियोंका जीवन-चरित कहीं भी एकत्र नहीं दीख पड़ता। हाँ, भोजने कभी इस दिशामें लोगोंकी उदासीनताको भंग करनेका प्रयत्न किया था, परन्तु एक मात्र प्राचीन प्रणालीका ही अवलम्बन करके वे उसमें कुछ अधिक अनूठेपनके साथ सच्चाई नहीं ला सके। तबसे विद्वानोंने फिर जमकर इस ओर कलम नहीं उठायी—छिटफुट इधर-उधर कुछ लिखते रहे। हाँ, प० चन्द्रशेखर शास्त्रीजीका संग्रह सुन्दर है।

प्रकृत पुस्तक एक प्रकारसे सुमनोंकी माला है, जो सुमन कभी भागवती भारतीके चरणयुगलपर चढ़कर शोभा बिखेर चुके हैं। इसमें पाणिनि आदि-से लेकर श्रीहर्षतक २१ कवियोंके यशोगान, जीवन-वृत्तान्त, कृतियाँ आदि विषय बड़ी ही रोचक शैलीमें लिखे गये हैं। सबसे विशेष विचित्रता तो उनके ग्रन्थोंसे, उदाहरण स्वरूप, सुन्दर श्लोकोंको चुनने-में दिखायी गयी है। किंवदन्तियोंका भी अच्छा सङ्कलन किया गया है। जीवनियों और समय-निरू-पणमें जितने मतद्वैध हैं वे सब भी यथासम्भव विनिविष्ट हैं। भाषा मंजी-मजायी है। श्लोकोंके अर्थ लिखनेका भी ढंग बड़ा निराला है, मुझे तो यह खूब रुचा। अन्तमें श्लोकोंकी तालिका भी दे दी गयी है। हिन्दीवालोंका तो इससे उपकार होगा ही, लेकिन विशेष उपकार होगा संस्कृतवालोंका। पुस्तक संग्रह करने योग्य है।

६—जीवन-समस्याएँ

नवज्योति-पुस्तकमालाकी यह पहली पुस्तक है। श्रीयुत कृष्णमूर्तिजीके "Life's Problems"का यह हिन्दी अनुवाद बाबू कृष्णजस राय बी० ए०, एफ० टी० एस० के द्वारा हुआ है। इसका प्राप्ति-स्थान, दिल्ली पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली है। पृष्ठसंख्या १०४ और मूल्य ।≈)। है आरम्भमें कृष्णमूर्तिजीका एक सादा चित्र भी है।

संक्षेपमें कृष्णमूर्तिजीका यह जीवन-चरित्र है। मद्रास प्रेसिडेंसीके मदनपली गाँवमें, २५ मई सन् १८९५ ई० को, कृष्णमूर्तिजीका जन्म, ब्राह्मण-कुलमें, हुआ था। ये अपनी माताकी आठवीं सन्तान थे; इसी कारण इनका नाम कृष्ण रखा गया था। थियासोफिकल सोसाइटी द्वारा इन्होंने विदेशोंमें शिक्षा पायी थी। इनकी शुद्ध आत्मामें इतना तेज भरा था कि, लोग इन्हें अवतार मानने लगे थे; पर इन्हें यह सब बखेड़ा अच्छा नहीं लगता था। आखिर ये अकेले ही घूम-घूमकर सब जगह सबको धर्मोपदेश देने लगे। इनके उपदेशोंको अमेरिकन तथा यूरोपीय बड़े चावसे सुनते हैं। इनके विचार आध्यात्मिक हैं। प्रश्नोत्तरके ढंगपर वे ही विचार इस पुस्तकमें हैं। पुस्तक पठनीय है।

७—सूचीपत्र

श्रीहनुमान् पुस्तकालय, कलकत्ताको उदार हिन्दी प्रेमी श्रीमान् सेठ बाबू सूरजमल जी नागरमलजीने संवत १९७६ में स्थापित किया था। तबसे आज-तक लगभग ६६०० विविध विषयोंकी पुस्तकें संगृ-हीत हुई हैं। इनके अतिरिक्त १५० अंग्रेजीकी पुस्तकें हैं और ५६ मासिक पत्र, १२ साप्ताहिक, तथा ६ दैनिक पत्र-पत्रिकाओंकी फाइलें हैं। अप्राप्य पुस्तकों-का भी अच्छा संग्रह है। इन्हीं पुस्तकोंकी यह क्रमबद्ध सूची है। नम्बर, पुस्तकोंका नाम और

लेखक तथा अनुवादकका नाम सिलसिलेवार लिखा है। जिस पुस्तकको चाहें, इसके सहारे एक मिनटमें निकाल ले सकते हैं। मूल्य ॥) है।

८—संसारके संवत्

लेखक तथा प्रकाशक, बाबू जगनलाल गुप्त, मुख्तार, पुस्तकाध्यक्ष, आर्यसमाज, बुलन्दशहर, पृष्ठसंख्या ८४, मूल्य ॥-); छपाई साधारण।

संसारमें जितने संवत्सर प्रचलित हैं, सब-के-सब इसमें संगृहीत हैं। संवतोंकी संख्या लगभग पचास है। ऐसी कोई भी उन्नत जाति नहीं है, जिसे निजका संवत्सर न हो, किसी भी जातिको अपने ही संवत्सरपर फख्र होता है। हर्षका विषय है कि, हिन्दीवालोंका भी ध्यान इधर अब जाने लगा है; किन्तु पत्र-पत्रिकाओं या चिट्ठियोंके सिरेपर देशी संवत् भर लिख देनेसे ही इसका कार्य पूरा नहीं हो जाता; बल्कि देशी संवतोंको अपनानेका अर्थ सो है, इतिहास लिखते समय इसकी कद्र करना। हिन्दीमें ऐसी कोई पुस्तक नहीं थी, जिसके आधारपर किसी भी संवत्सरको विक्रमीय संवत्में परिणत कर लिया जाय और इधर भारतीयोंको ऐसी पुस्तककी बड़ी आवश्यकता थी, जिसमें प्रत्येक संवत्को विक्रमीय बनानेके लिये गणितके नियम और आवश्यक सारिणी हों। इसी अभावको मुख्तार साहबने दूर करनेका प्रयत्न किया है। पञ्चाङ्ग तथा चक्र आदि बनानेमें इन्हें बहुत-कुछ सफलता मिली है। भाषा अपेक्षाकृत सरल है। सब संवतोंका, क्यों और कैसे प्रचार हुआ, इसका इतिहास भी है।

९—परिवर्तन

लेखक, श्रीयुत कृष्णजसराय बी० ए०, एम० टी० एस०; प्रकाशक, दिल्ली पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली; पृष्ठसंख्या ३१; मुल्य ‌‌=), छपाई-सफाई साधारण।

यह भी श्रीयुत कृष्णमूर्तिजीका संक्षिप्त जीवन-चरित्र है। इसमें इनके सिद्धान्त पत्र-रूपमें व्यक्त हैं। पत्रोंकी संख्या दस है। आरम्भमें कृष्णमूर्तिका एक सादा चित्र भी है। पुस्तकको भाषा साहित्यिक है और भाव आध्यात्मिक।

१०—हिन्दी-सरल-शिक्षा

लेखक, प० वेदव्रतजी विशारद; सम्पादक, श्रीयुत कृष्णजसराय बी० ए०, एम० टी० एस०, प्रकाशक, दिल्ली पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृष्ठसंख्या ४८; मूल्य =)॥; रंगीन स्याहीमें सचित्र सुन्दर छपाई।

छोटे-छोटे बच्चोंको सर्वप्रथम अक्षरज्ञान तथा शब्दज्ञान करानेके लिये यह पुस्तक लिखी गयी है। बच्चोंके लिये यह अच्छी हो सकती है; इस लिये कि, सरलताका ध्यान सर्वत्र रखा गया है और छपाई तथा चित्रोंका चुनाव आकर्षक है। हाँ, एक बात यही खटकने लायक है कि, पुस्तककी भाषामें प्रान्तीयता भरी है—"बादल गरज रहा है, भादवां, असोज, कातक, मंगसिर" इत्यादि।

११—प्रतिमनु

"Everyman"का यह पद्यमय अनुवाद है; अनुवादक हैं, सीमोन वरला यीसू संघी, पृष्ठसंख्या २८, मूल्य नहीं लिखा है। छपाई-सफाई अनुपम

यह चार अंकोंवाली छोटी-सी नाटिका है। क्रिश्चियन धर्मको लक्ष्य कर लिखी गयी है।

प्रतिमनुको ईश्वरके यहाँसे बुलाहट आयी, यमराजने सन्देशा कह सुनाया। वह घबराकर सबके पास सहायतार्थ गया; पर किसीने भी मदद नहीं की। केवल एक सुकार्य उसका साथी बना रहा। पुस्तककी कथाका सार इतना ही है। भाषा निर्जीव है और कविता कवित्व-गुणसे शून्य! अशुद्धियोंका तो ठिकाना नहीं, परन्तु पुस्तकके आभ्यन्तरिक भाव बड़े उत्तम हैं।

—साहित्याचार्य "मग"

एक पत्र

कैसी हूँ? कैसे बतलाऊँ? क्योंकर व्यथा व्यक्त कर दूँ?
प्राणहीन इस कागज़पर कैसे मैं प्रादक स्वर भर दूँ?
कैसे सरस्र करूँ इन नीरव पत्रोंको, हे प्राणाधार!
किस प्रकार इनपर रख दूँ अन्तस्तलके टुकड़े दो-चार?
क्या कह आवेगा यह तेरे कानोंमें मेरा सन्देश?
जानेगा कैसे, इसने क्या देखा है प्रियतमका देश?
मेरी करुणापूर्ण कहानी तुझतक क्या जा पावेगी?
ये मेरी मूक अभिलाषाएँ क्या कुछ ले आवेंगी?
अरी निगोड़ी कलम तुम्हारी ये कोशिशें हैं बेकार?
केवल इन स्याही बूँदोंसे रँग दोगी पन्ने दो-चार?
किन्तु हृदय-धन! विदित तुम्हें हैं मेरे अन्तरात्मके भाव?
तेरी ही कल्पना सखी कह देगी उनके सब प्रस्ताव!!
ज्योंही तेरे हाथों अंकित पत्रोत्तर मैं पाऊँगी!
तनमन हृदय-सदनमें हँस खुशियोंके दीप जलाऊँगी!!

—कौशल्या

सम्पादकीय विवेचन

१—महाकवि शङ्करजीका देहावसान

हिन्दीके लिये इस सालके दिन बुरे दीखते हैं। रत्नाकरजी, गोस्वामीजी, प० पद्मसिंह शर्मा, बा० शिवनन्दन सहाय, कविकिङ्करजी आदि एकसे एक प्रौढ़ लेखकों और कवियोंका, कुछ ही दिनोंमें, महाप्रस्थान हो गया! यह बड़े ही दुःख और परितापका विषय है !! अभी उस दिन (रविवार, २१ अगस्त) को "कविता-कामिनी-कान्त" प० नाथूरामशंकर शर्मा "शङ्करजी" का भी शरीर-पात हो गया! यह और भी मर्मान्तक बात है !!

स्व० शंकरजी, प० अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध", बा० जयशङ्कर "प्रसाद" और बा० मैथिलीशरण गुप्त खड़ी बोलीके सर्व-श्रेष्ठ कवियोंमें गिने जाते हैं। अधिक युवक कवियों और लेखकोंके मतसे "प्रसाद"जी सर्व-श्रेष्ठ कवि हैं। कितने ही "हरिऔध"जी अथवा गुप्तजीको ही सर्व-श्रेष्ठ कवि मानते हैं—"भिन्नरुचिर्हिलोकः"के अनुसार। स्व० शङ्करजीको भी सर्व-श्रेष्ठ कवि माननेवालोंकी संख्या भी कम नहीं। हिन्दीपर आपका आश्चर्यजनक आधिपत्य था। आपका "अनुरागरत्न" अत्यन्त उच्च कोटिका काव्यग्रन्थ है। आप मिनटोंमें ही उदात्त कविताकी सृष्टि कर डालनेमें सिद्ध-हस्त थे। ऐसी अद्भुत प्रतिभाके कारण ही आपको "कविता-कामिनी-कान्त"की पदवी मिली थी। आपके ही पुत्र हैं, "आर्यमित्र"-सम्पादक और हिन्दीके सुयोग्य लेखक पण्डित हरिशङ्कर शर्मा। आपके, प० बनारसीदास चतुर्वेदीके और प० श्रीराम शर्माके उद्योगसे ही "विशाल भारत"का सुन्दर विशेषाङ्क —"पद्मसिंह अङ्क"—निकला है। बहुत ही उत्तम होता, यदि आप लोग "विशाल भारत" या "आर्यमित्र"का "शङ्कर-अङ्क" भी निकाल डालते। "पद्मसिंह-अङ्क"की ही तरह "शङ्कर-अङ्क" भी महत्त्व-पूर्ण होगा।

हम दिवंगत महाकवि शङ्करजीकी आत्माकी चिर शान्तिके लिये मङ्गलात्मासे प्रार्थना करते और प० हरिशङ्कर शर्माके साथ हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

२—मृत्युञ्जय

मनुष्यने तिनकेसे लेकर हिमालयतक और घटाकाशसे लेकर महाकाशतककी खाक छान डाली, परन्तु मृत्युने—सकल-कलनकराल कालने—उसका पीछा नहीं छोड़ा! उसने प्रकृतिके जर्रे-जर्रेका, आकाशके नन्हे-नन्हे उल्कापिण्डोंका, तारोंकी पता लगा डाला—मंगल ग्रहकी सैर करनेकी हिमाकत बाँध डाली; किन्तु सर्व-भक्षी मृत्युसे थर-थर काँपता है! उसने अगम्य कन्दराओं ... स्पर्श-ख्यात महार्णवोंको पुलिनों और तारोंसे पार किया; तथापि मृत्युकी चपेटिकाने— ... डोंने—उसे गूँगा और अन्धा बना रखा है! मृत्युके आगे उसके सारे मनसबे काफूर हैं, निश्चित

कल्पना-जल्पनाएँ हवा हैं, समूचे ज्ञान-विज्ञान अन्यथासिद्ध हैं!

आपने अमित परिश्रम कर अतुल सम्पत्ति अर्जित कर ली, ठीक है; आप सारा विद्या-समुद्र घोलकर पी गये, अवश्य; आप अक्षय भोग-राशिमें सोते हैं, निस्सन्देह; आपने समस्त तीर्थों, व्रतों और यज्ञोंकी परिसमाप्ति कर डाली, निश्चय; परन्तु मृत्युकी अजेय विभीषिकासे गला भी छुड़ा लिया? क्या मृत्युकी घड़ीकी हृदय-द्राविणी यन्त्रणाओं-की चिन्ताओंको आपने धता बता दिया? क्या आपने मृत्युको रौंद डालनेवाली प्रतिभा प्राप्त कर ली? क्या मृत्युकी विकराल भावनाओंपर आपने विजय प्राप्त कर ली? "नहीं"।

मृत्यु-भयसे कोई कैसे बचे? मृत्युने किसीको छोड़ा भी हो? "न गोरे सिकन्दर न है कब्रे दारा, मिटे नामि ोंके निशाँ कैसे कैसे।" अपने प्रचण्ड कोदण्ड-प्रतापसे धरित्रीको विकम्पित कर देनेवाले अर्जुन कहाँ हैं? अपनी त्रिलोक-विध्वंसिनी गदासे पृथिवीकी छाती फाड़ डालनेवाले विजयी सेनापति भीम कहाँ हैं? अपनी दुर्दम्य-दर्प-दृप्त अनीकिनीसे शत्रुदलमें हड़कम्प मचा देनेवाले नेपोलियनका कहाँ पता है! धौंसेकी धुधुकारपर रणाङ्गणमें ताण्डव नृत्य करनेवाले महाराणा प्रताप कहाँ हैं? खर करवालोंकी तीखी धारपर नाचनेवाले गुरुगोविन्द सिंह और हिन्दुत्वकी शानपर अपनी खाल खिंचवा डालनेवाले वीर-व्याघ्र बन्दा वैरागी कहाँ हैं? उन ईसा और महम्मद, कनफुसी और लावट्सी, बुद्ध और जरथुस्त्रका भी कहाँ पता है, जिनके नामपर आज सारी पृथ्वी रण-नदी खोदने या बाँधनेको तैयार है?

मृत्युने मनुष्यकी सारी आशाओंपर पानी फेर रखा है। मनुष्य सबके सामने विजेता है, परन्तु मृत्युके सामने विजित! यह भी पता नहीं कि, यह मनुष्यको—अथवा उसकी आत्मा-को—जीतकर कहाँ ले जाती है! क्या उसे जेल देती है, या फाँसीपर लटका देती है? कयामतके दिन उसका विचार करती है या उसका अत्यन्ता-भाव कर डालती है? मालूम नहीं, क्या करती है! कदाचित् आजतक किसी भी मनुष्य या आत्माने "जेल", "फाँसी", "विचार" या "अत्यन्ताभाव"की बात नहीं सुनायी। सुनावे भी कैसे—कोई लौटकर आवे या आने भी पावे? बहुतोंको आशा थी कि, कमसे कम नारदजीकी आत्मा तो अवश्य ही कुछ आ सुनावेगी! परन्तु उसका भी कुछ पता नहीं चला! बहुतोंको म० म० स्व० प० रामावतार शर्मासे भी ऐसी ही आशा थी; परन्तु वे भी सदाके लिये लापता हो गये! इसीलिये बेचारा अबोध मानव घोर अन्धकारमें है—मृत्युके खौफनाक तूफानमें उड़ रहा है!

लगभग वस्तु-स्थिति यही है; तोभी—लाख तर्कों और युक्तियों, मार्गों और दिशाओंसे पछाड़ खाकर भी—मनुष्य "मृत्युभयाद्‌ विमोचन" के लिये एकबारगी निराश नहीं हुआ है, कभी हुआ भी नहीं था, होगा भी नहीं। मृत्यु-भयपर विजय प्राप्त करनेकी लोल लालसासे ही "मृत्युञ्जय" शब्दकी सृष्टि की गयी है। यही शब्द दर्शनशास्त्रका जन्म-दाता है। इसलिये जो लोग मृत्युभयसे छूटनेकी इच्छा रखते हों, उन्हें दर्शनशास्त्रका अवश्य अध्य-यन करना चाहिये। और हाँ, "छायावादियों"कासा दर्शन-शास्त्राध्ययन नहीं, कमसे कम शङ्कराचार्य और

रामानुजाचार्यके प्राप्त वेदान्तसूत्रों, दसों उपनिषदों और भागवत गीताके भाष्योंका तो विस्तृत अध्ययन और परिशीलन करना आवश्यक ही है।

३—रमण-रश्मि

सर सी० वेङ्कट रमणका स्थान वैज्ञानिकोंमें श्रेष्ठ है। इन्होंने सूर्यकिरणकी एक अभिनव रश्मिका आविष्कार किया है, जिसे वैज्ञानिक रमण-रश्मि (Raman Rays) कहते हैं।

आजसे १२ वर्ष पूर्व, जब कि, रमण महोदय कलकत्ता-विश्वविद्यालयमें अध्यापक थे, बहुत परिश्रम करके सूर्य-रश्मिकी परिक्षा की थी। इसके पूर्व Lord Raylaigh ने भी कुछ परीक्षा की थी। यह तो सभी जानते हैं कि, आकाशका रंग नीला है; किन्तु इसके रहस्यका पता किसीको भी नहीं। ११ बरसोंतक रमण उसकी छान-बीन करते रहे। इन्होंने अपने विज्ञानागारमें, छात्रोंकी सहायतासे, सूर्य-आलोकका एक प्रतिरूप प्रस्तुत किया और बोतलके भीतर नानाविध रासायनिक तरल पदार्थ भरकर उसमें आलोकके प्रयोगके द्वारा विभिन्न वर्णोंका उद्भावन करने लगे। इन्होंने देखा कि, इसमें केवल रंगोंका ही खेल नहीं है; बल्कि इसके भीतर कुछ निगूढ़ तत्त्व भी है। किसी दिन बोतलमें शुद्ध जल भरकर इन्होंने उसमें आलोककी एक रश्मिको प्रविष्ट कराया। जब वह रश्मि भीतरसे बाहर आने लगी, तब उसके साथ एक और, भिन्न प्रकारकी, रश्मि निकली। जितनी बार इन्होंने उसका प्रयोग किया, उतनी बार उन्हें विभिन्न प्रकारकी रश्मियाँ मिलीं। इन्होंने उसका आलोक-चित्र भी ले लिया।

यह नवाविष्कृत रश्मि इतनी क्षीण थी कि, किसी गवेषणकारीका ध्यान इधर गया ही नहीं था, और, न कोई इसका चित्र लेनेमें ही समर्थ हुआ था।

वैज्ञानिकोंमें इस आविष्कारने हलचल मचा दी। बहुतोंको तो इसपर विश्वास ही नहीं हुआ। विशेषकर अमेरिकाके प्रोफेसर वुडको इसपर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने कहा—"इतनी सूक्ष्म रश्मिका आलोक-चित्र लेना कठिन कार्य है।" आखिर उन्होंने भी अमेरिकाके विश्वविद्यालयमें, विपुल धन-राशि लगाकर, अपने हाथसे ही, रमणकी कार्य-प्रणालीके अनुसार परीक्षा शुरू कर दी। एक विराट् कृत्रिम सूर्य प्रस्तुत किया गया। पाँच फीट लम्बी बोतलमें तरल पदार्थ भरकर—उसमें सूर्य रश्मिका प्रवेश कराया गया। ठीक उसी प्रकारका आलोक-चित्र, किरणके निकलते समय, उन्हें भी प्राप्त हुआ, जैसा कि, रमणको प्राप्त हुआ था। वे बड़े प्रसन्न हुए और सर रमणका लोहा मान लिया। अब तो इसकी सत्यतामें किसीको भी सन्देह नहीं रहा। वैज्ञानिकोंने मुक्त कण्ठसे रमणकी प्रशंसा की; और, इन्हें अबकी नोबेल पुरस्कार भी दिया गया है। रवीन्द्रनाथको छोड़कर आजतक किसी भी भारतवासीको यह पुरस्कार नहीं मिला था।

४—परमाणुवाद

यूरोप और अमेरिकाके प्रसिद्ध वैज्ञानिकोंका मत है कि, जब इस दृश्य संसारका नामोनिशान नहीं था, केवल घना अन्धकार था, तब एक समय विद्युत् कणों और ९२ प्रकारके परमाणुओंका प्रादुर्भाव हुआ था। इन परमाणुओंके अभ्यन्तरमें न मालूम कितने विद्युत्कण एकीभूत होकर वर्तमान हैं। इन विद्युत्कणों

के दो भेद हैं, प्रोटन—पुरुषजातीय(Positive) और इलेक्ट्रन—स्त्रीजातीय (Negative)। इस इलेक्ट्रन विद्युत्का कार्य है, प्रोटनको वेष्टित कर उसके चारों ओर घूमना। प्रत्येक परमाणुमें दोनों जातिके विद्युत्कण समान संख्यामें रहते हैं यानी दो पुरुषजातिके विद्युत्कण हैं, तो स्त्री-जातिके विद्युत्कण भी दो ही होंगे। यह भी देखा जाता है कि, उन दोनोंकी प्रतिक्रियाका उभय-विशिष्ट धर्म कुछ परिमाणोंमें, अदृश्य भावसे, साम्यावस्थाको प्राप्त करता है। यदि किसी वस्तुमें इनकी संख्या कम या बेशी हुई, तो उसमें चञ्चलता दीखने लगती है और साथ-साथ प्रकाश भी। रेडियम नामक वस्तुके परमाणुओंमें यही बात है; इसीसे रेडियमके परमाणु सदा चमकते रहते हैं।

प्रोटन तड़ित्को जो इलेक्ट्रन तड़ित सदा वेष्टित कर घूमा करती है, वह अनिश्चित रूपसे नहीं, बल्कि स्थिररूपसे; क्योंकि प्रकृतिका कार्य कभी भी अनिश्चित या विशृङ्खल नहीं होता। जिस तरह यह नियमित है कि, आकाशस्थ सूर्यके चतुर्दिक् पृथ्वी, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदि घूमते ही रहते हैं, वैसे ही प्रोटनके चारों तरफ इलेक्ट्रन विद्युत् घूमा करती है—इसका यह कार्य अविशृङ्खल और निश्चित है।

यद्यपि प्रोटन और इलेक्ट्रनके मिलनेसे ही परमाणुओंकी सृष्टि हुई है, तथापि यह बात नहीं है कि, असंख्य प्रोटन और इलेक्ट्रन मण्डली बाँध-बाँधकर परमाणुओंकी सृष्टि करते चलते हैं। एक परमाणुमें जितने प्रोटन और इलेक्ट्रन रहते हैं, उनके अन्तरालमें काफी आकाश अवस्थित रहता है। परमाणु इतने क्षुद्र या छोटे होते हैं कि, अनुवीक्षण यन्त्रके द्वारा भी नहीं देखे जा सकते, केवल कल्पनाकी सहायतासे ही उनकी स्थिति अवधारित की जा सकती है। परमाणु यदि नौशेरवाँके महलकी तरह बड़ा है, तो इलेक्ट्रन बुढ़ियाकी झोपड़ी-सा छोटा है।

परमाणुके मध्यवर्ती प्रोटनको, जिसके चतुर्दिक् इलेक्ट्रन घूमा करता है, परमाणुका सार (Nucleus) कहते हैं। परमाणुमें जो प्रोटन और इलेक्ट्रनके मध्यमें शून्याकाश रहता है, उस अन्तरालका आवरणीय यद्यपि कुछ भी नहीं है; तथापि इलेक्ट्रन प्रोटनको छोड़कर कहीं नहीं जा सकता—यह सनातन नियम है; जैसे, सौर जगत्में सूर्यको वेष्टित करके ग्रहगण सदा घूमते रहते हैं, पर कहीं छूटकर नहीं जा सकते।

एक जातिका परमाणु जब दूसरी जातिके एक या ततोधिक परमाणुओंसे मिलता है, तब अणु (Molecule) की सृष्टि होती है। यही अणु बड़ी कठिनतासे हम लोगोंके इन्द्रिय-गोचर होता है।

५—हमारी निर्धनता

संसारमें प्रायः जितने उन्नत राष्ट्र हैं, सबका समाज संगठित और समाजका प्रत्येक व्यक्ति सुधार-प्रिय है। अपनी राष्ट्रीय शक्तिमें जान डालने या ठोसगी लानेके पहले अपने समाजमें जान डालना या ठोसगी लाना जरूरी है। समाजको पात्र और राष्ट्रीय शक्तिको अमृत कह सकते हैं।

हमारे देशको दरिद्रताका प्रधान कारण, हमारा हीनांग समाज और समाजकी बुराइयाँ हैं। हममें मितव्ययताके सुन्दर भाव जागृत न होनेका कारण हमारे समाजकी कतिपय दूषित प्रथाएँ हैं।

सदियोंसे ऐसी प्रथाओंका दास बनते आनेसे हमारी दुर्बलताने हृदयके भीतर घर कर लिया है। पैसे पैदा करने और उन्हें उचित रूपसे खर्च करनेका तरीका तो हमें नहीं मालूम, लेकिन पानीकी तरह पैसा बहाना हम खूब जानते हैं फिजूलखर्चीसे ही हमारा समाज आज इतना गिर गया है कि, उन्नत राष्ट्रके साधारण व्यक्तिके सामने भी हम झेँप जाते हैं।

मोटरों, रेलों, विलासिता आदिमें धनका ही अपव्यय यहाँ नहीं होता, ताश, शतरंज आदिमें समयका भी दुरुपयोग होता है।

संयुक्त-राज्य अमेरिकामें पूर्ति दिनकी, प्रत्येक मनुष्यकी, औसत आमदनी ३), आस्ट्रेलियावालोंकी २।), अँग्रेजोंकी २-)४ और कनाडावालोंकी १॥-॥ है; किन्तु हमारे भारतवर्षमें हर एक आदमीकी रोजाना आमदनी -)७ पाई है!

हम अपनी आमदनी और अपनी फिजूलखर्चीपर विचार करें, तो हमें अपने समाज या राष्ट्रकी शक्तिकी थाह मिल जाय और हमारी आँखें भी खुल जायं।

फैशनके पीछे, त्योहार या ऐसे ही अवसरपर रुपये फेँकते समय, यदि हम, अपनी औसत आमदनीका खयाल किया करें, तो हमारी बुरी लत हमारा साथ छोड़ दे और हम भी—हमारा समाज और राष्ट्र भी—एक दिन पैसेवाले कहे जायँ, हमारी प्रतिष्ठा, हमारे समाज और राष्ट्रका महत्त्व बढ़ जाय।

६—साम्प्रदायिक निर्णय

किस प्रान्तको क्या मिलेगा?

दूसरी गोलमेज कानफरेन्सके समय की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार ब्रिटिश प्रधान मंत्री मि० मेकडानल्डने, गत २७ अगस्तको, भारतकी साम्प्रदायिक समस्याके सम्बन्धमें अपने निर्णयकी घोषणा कर दी, जिसके द्वारा मुसलमानों, सिक्खों, भारतीय ईसाइयों, एँगलो—इण्डियनों और यूरोपियनोंको पृथक् निर्वाचनका अधिकार दिया गया है। दलित जातिवाले सार्वजनिक निर्वाचन-क्षेत्रोंमें भी वोट देंगे, परन्तु कुछ स्थानोंमें उनके लिये विशेष निर्वाचन-क्षेत्र भी बनाये जायँगे, जहाँ केवल वे ही वोट दे सकेंगे। ये निर्वाचन-क्षेत्र २० वर्षतक रहेंगे, यदि दलितोंकी सम्मतिसे पहले ही न उठा दिये गये। स्त्रियाँ भी विशेष पृथक् निर्वाचन-क्षेत्रोंसे साम्प्रदायिक निर्वाचनकी पद्धतिके आधारपर निर्वाचित होंगी यानी मुसलमान महिलाएँ मुसलमानोंके वोटसे, हिन्दू महिलाएँ हिन्दुओंके वोटसे एवं अन्य जातिकी अपनी जातिवालोंके वोटसे चुनी जायँगी। अवश्य ही मजूरोंके निर्वाचन-क्षेत्रोंमें साम्प्रदायिकताकी बात नहीं घुसने पायगी। जिन प्रान्तोंमें मुसलमानोंकी संख्या हिन्दुओंसे कम है, वहाँ उनको वर्तमान हिसाबसे ही संख्याकी औसतसे अधिक प्रतिनिधि कौंसिलोंमें भेजनेका अधिकार रहेगा। पंजाब कौंसिलमें हिन्दुओंको २७ प्रतिशत, सिखोंको १८॥ प्रतिशत और मुसलमानोंको (जमींदारोंकी तीन सीटें मिलाकर) ५१ प्रतिशत स्थान मिलेंगे। बंगाल कौंसिलमें मुसलमानोंको ४८॥ प्रतिशत, हिन्दुओंको ३६ प्रतिशत और यूरोपियनोंको १० प्रतिशत स्थान दिये गये हैं। केन्द्रीय-व्यवस्था-परिषद्में विभिन्न जातियोंके प्रतिनिधियोंकी संख्या अभी नहीं निर्धारित की गयी है। सिन्धको अलग प्रान्त बनानेकी बात सिद्धान्ततः स्वीकार कर ली गयी है, पर उड़ीसाके सम्बन्धमें अभी कोई निर्णय नहीं हुआ है।

इस निर्णयके अनुसार विभिन्न प्रान्तोंकी नयी कौंसलोंमें विभिन्न जातियोंके प्रतिनिधियोंकी संख्या इस प्रकार होनेकी व्यवस्था की गयी है—

बंगालमें—जनरल [हिन्दू वगैरह] ८०, मुसलमान ११९, भारतीय ईसाई २, एंगलो-इण्डियन ४, यूरोपियन ११, व्यापारी आदि १९, जमींदार ५, मजूर ८, यूनिवर्सिटी २, दलित १०। कुल २५० सदस्य होंगे।

बिहार-उड़ीसामें जनरल सीटें—९९, अछूत ७, जंगली जातियाँ ८, मुसलमान ४२, काले ईसाई २, वगैरे १, यूरोपियन २, व्यापारी २, जमींदार ६, यूनिवर्सिटी १, मजूर ३। कुल १७५ सदस्य रहेंगे।

युक्तप्रान्त—जनरल १३८ (जिसमें हिन्दू जाति और स्त्रियोंकी ४ सीटें भी शामिल हैं), अछूत १२, मुसलमान ६६, भारतीय ईसाई २ एँङ्गलो-इण्डियन १, यूरोपियन २, व्यापारी ३, जमींदार ६, यूनिवर्सिटी १, मजूर ३। कुल २२८ सदस्य।

पंजाबमें—जनरल हिन्दुओंके ४३ (एक महिला भी शामिल है), सिख ३२, मुसलमान ८६, भारतीय ईसाई २, एँङ्गलो इण्डियन १, यूरोपियन १, व्यापारी १, जमींदार ५, यूनिवर्सिटी १, मजूर ३। कुल १७५ सदस्य होंगे।

सिन्धमें—जनरल (हिन्दू वगैरह) १९, मुसलमान ३४, यूरोपियन २, व्यापारी ३, जमीन्दार २ मजूर २। कुल ६० सदस्य होंगे।

आसाम कौंसिलके १०८ सदस्योंमें हिन्दू आदि ४४, अछूत ४, जंगली ९, मुसलमान ३४, ईसाई १, यूरोपियन १, व्यापारी ११, मजूर ४ होंगे।

मध्यप्रान्तमें हिन्दू आदि (जनरल) ७७ (जिनमें ३ स्त्रियोंकी सीटें भी हैं), अछूत १०, पिछड़ी हुई जातियाँ १, मुसलमान १४, एँङ्गलो इण्डियन १, यूरोपियन १, व्यापारी २, यूनिवर्सिटी १, मजूर ५। कुल ११५ सीटें।

सीमाप्रान्तमें हिन्दुओंको ९, सिखोंको ३, मुसलमानोंको ३६ और जमींदारोंको २ स्थान मिलेंगे। कुल ५० सदस्योंकी कौंसिल होगी।

मद्रासमें हिन्दू वगैरह १३४ (जिनमें ६ सीटें महिलाओंकी होंगी), दलितवर्ग १८, पिछड़ी जातियाँ १, मुसलमान २१, ईसाई ९, एँगलो इण्डियन २, यूरोपियन ३, उद्योग-व्यापार-खान-बगीचे ६, जमींदार ६, यूनवर्सिटी १, मजूर ६। कुल २१४ स्थान होंगे।

घोषणामें स्पष्ट कर दिया गया है कि, इस निर्णयको बदलने या उसमें ऐसे संशोधन करनेके सम्बन्धमें कोई बातचीत नहीं हो सकती, जिस संशोधनके पक्षमें सब दल न हों।

आवश्यक सूचना

"गङ्गा" और वेदकी सुन्दर छपाईके लिये बम्बई आदिसे—अभी बढ़ियासे बढ़िया टाइप मंगाये गये हैं। अक्टूबरसे देखने ही लायक छपाई होगी।

लेख-मालिका

चित्र-सूची

"गंगा"की नियमावली

लेखकोंके लिये—

(१) जो लेखक विना माँगे अपनी रचना (गद्य या पद्य) भेजें, वे रचनाकी एक कापी अपने पास अवश्य रख लें; क्योंकि रचना लौटानेका नियम हमारे यहाँ नहीं है।

(२) विना माँगे रचना भेजनेवाले लेखक उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट अवश्य भेजें; क्योंकि जवाबी कार्ड या टिकट पाये विना हम उत्तर देनेमें असमर्थ होंगे।

(३) जवाबी कार्ड या टिकट भेजनेपर भी रचनाकी अस्वीकृति अथवा स्वीकृतिकी सूचना तुरत पानेकी आशा लेखकोंको नहीं करनी चाहिये। कभी-कभी तो चार-छ या आठ-दस महीनों बाद लेख देखे जाते और स्वीकृत या अस्वीकृत किये जाते हैं। परन्तु जिन लेखकोंका जवाबी कार्ड या टिकट आवेगा, उनको यथासाध्य शीघ्र उत्तर दिया जायगा।

(४) एकसे अधिक रचना कोई सज्जन भेजनेकी दया न दिखावें।

अर्जुन और उत्तर

मिथिलाप्रेस, सुलतानगञ्ज

गङ्गा

प्रवाह २, तरङ्ग १०, पूर्ण तरङ्ग २२ आश्विन, संवत् १९८९; अक्टूबर, सन् १९३२

जागो !

मेरे अन्धकारमें जागो, हे भविष्यके सूर्योदय !
मेरी आशाकी किरणोंमें जागो, [illegible] आभामय !
मेरी भ्रान्त भावनाओंमें जागो, परिवर्तन निर्भय !
मेरे दुर्बल अन्तरतममें जागो, हे चिरन्तन विजय !
जीवनकी इस शीतलतामें जागो, जागो ज्वालामय !
मेरे रोम-रोममें जागो, प्रलय !—भयंकर महाप्रलय !

—"प्रभात"

मुरझाया फूल

था जब खिला हुआ उपवनमें,
अति-कोमल-सुकुमार सखे ।
मुझे बनाती थी "[illegible]" अपने—
मजनूका हार सखे ॥१॥

लोलुप मधुप दौड़ आते थे,
मञ्जुल बदन निहार सखे ।
विहँस-विहँस नित गले लिपटकर,
करते थे अति प्यार सखे ॥२॥

विहग-बालिका स्वागतमें मम,
करती थी नव गान सखे ।
तरुवरसे नित हाय ! सुनाती—
थी मृदु सरल तान सखे ॥३॥

पुलक-पुलक राकेश मूक नित—
करते थे आह्वान सखे ।
अश्रु-कणोंको टपका टपका,
भरते थे नव प्राण सखे ॥४॥

पर, मुरझाया मुझे समझ अब,
चले गये सब छोड़ सखे ।
स्वयं बिखरनेवाली मेरी,
पँखड़ियोंको मोड़ सखे ॥५॥

इस असार निर्मम जगतीकी—
हाय ! यही है चाल सखे ।
सुखमें सब साथी होते, दुख—
में करते नहीं ध्यान सखे ॥६॥

श्रीमती कमलेश्वरी देवी

कोलम्बोसे यूरोप

त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन

५ जुलाईको मैं यूरोपके लिये रवाना हो जाऊँगा, इसका खयाल मुझे एक वर्ष पहले क्या, एक मास पहले भी नहीं था। भदन्त आनन्दने बौद्ध धर्मके प्रचारके लिये लन्दन जाना स्वीकार कर अपनी यात्राकी यात्रा स्थगित कर दी। उनके साथ किसी औरके जानेकी जरूरत थी। पहले किसी दूसरेको ही भेजनेका विचार था। कोई अनुकूल आदमी मिल गया होता, तो मुझे इतनी जल्दी इस यात्राको न करना पड़ता। चलनेकी सलाह ठीक हो जानेपर, पासपोर्टका मिलना सहज न था। एक बार इनकार भी हो गया। यही कारण था, जो मैं अपनी यात्राके विचारसे अपने मित्रोंको भी न सूचित कर सका आचार्य नरेन्द्रदेवजी ने तो किसीसे सुनकर इसे अफवाह समझा।

२१ जूनको यात्रा की बात पक्की हो गयी। फ्रेंच जहाज़से जाना पहले ही निश्चय कर लिया था। लोग ३० जूनको ही भेज देना चाहते थे; किन्तु मुझे अपने चीनी मित्र श्री वाङ्-मो-लम्‌के साथ थोड़ा लिखनेका काम पूरा करना था। इस लिये ५ जुलाईको मेसाजेरी-मारीतीम् कम्पनीके जहाज दा-तेंञ्-नाँ (D' Artagnan) से जाना निश्चय हुआ। इतनी बड़ी यात्रा न मैंने ही कभी की थी, न मेरे मित्र

दा-तेंञ्-नाँ

भदन्त आनन्दने ही। सीलोनमें इंगलैंडके यात्रियोंकी कमी नहीं है। धार्मिक कठिनाई तो यहाँ छू तक नहीं गयी है, जिससे कि, खारे पानीके स्पर्शसे धर्म, नमकको पुतलोको तरह, गल जाता हो; ऊपरसे
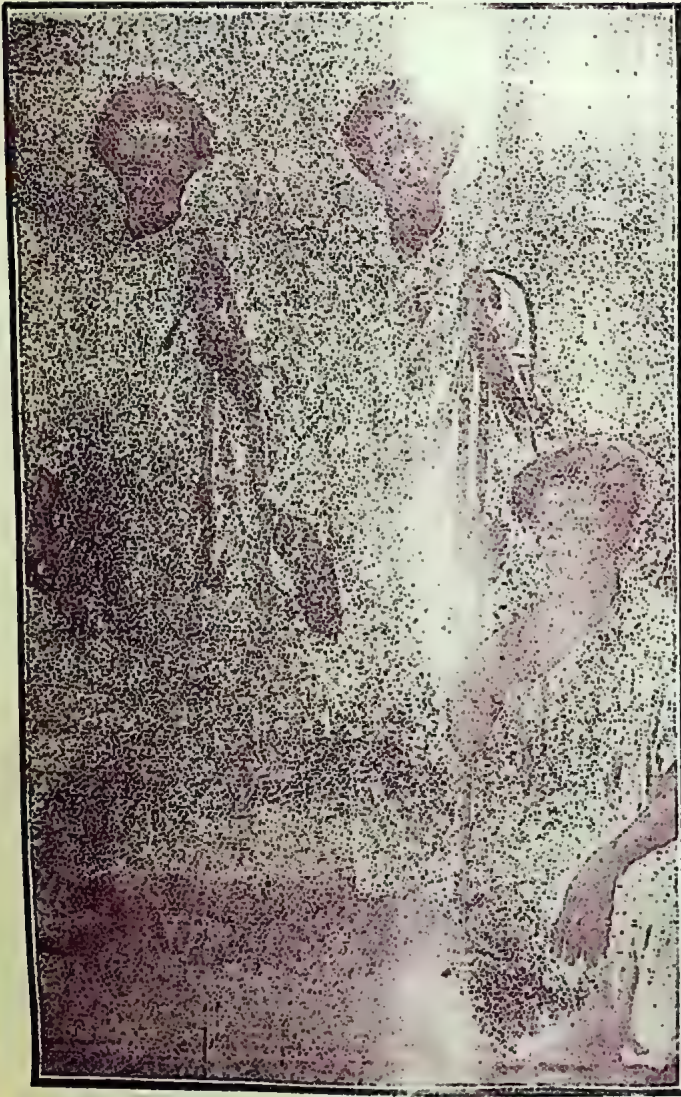
सुमाली लोग

प्रवासी अँग्रेजोंकी भाँति सीलोनके शिक्षित इंगलैंड को "घर" (Home) कहते हैं। उन लोगोंसे यात्रा के सामान आदिके बारेमें कुछ पूछ-ताछ की; किन्तु हमारी समस्याएँ बिलकुल ही अलग थीं। एक तो हम पचीस सौ वर्ष पुराने भारतीय भिक्षुओंके वेष में यूरोपकी यात्रा करने जा रहे थे, जिसमें कुर्ता-धोती भी नहीं पहने जा सकते, कोट, पतलून, हैटकी तो बात ही अलग! दूसरे हमारे साथी भिक्षु आनन्द 'घासाहारी' हैं; मांस-मछलीकी तो बात ही क्या, अण्डे (जो कि दूधका छोटा भाई है और जिसपर गीताके "आहाराः सात्त्विकाः प्रियाः" वाले सातो लक्षण घट सकते हैं) का भी नाम नहीं सुनना चाहते! अस्तु। हमने पुस्तक-पत्रेके साथ कुछ जाड़ेके लिये गर्म चीवर (भिक्षुका लम्बा-चौड़ा चद्दरसा कपड़ा) तैयार कराया। आनन्द समुद्र-यात्रा में बड़े बहादुर हैं, यह मैंने तभी जाना था, जब कि, भारत और लंकाकी दो घंटेकी समुद्र-यात्रामें भी वह कै किये बिना नहीं रहे! यहाँ तो भारतीय महासागर था, जिसपर मानसूनका समय; इसलिये मैंने कई मित्रोंको नीबू और नमककी फरमाइश दे रखी थी; यद्यपि मेरे मित्र आनन्द इसे प्रतिष्ठामें बट्टा लगाना समझते थे! मेरी चली होती, तो कुछ केला, सेव आदि भी रख लिये होता।

राम-राम करके पाँच जुलाईका दिन भी आ पहुँचा। पाँच बजे हम लोग मोटर द्वारा विद्यालंकार-विहारसे कोलम्बो बन्दरगाह लाये गये। महाबोधि-सभाके ट्रस्टी, हमारे उपाध्याय परम मान्य श्री धर्मानन्द नायक महास्थविर, बीससे ऊपर भिक्षु तथा बहुतसे गृहस्थ, विदा करनेके लिये, आये।

बम्बई और कराचीकी भाँति कोलम्बोमें जहाज

किनारेतक नहीं जा सकता; इस लिये हमें छोटी मोटर-नौकासे जहाजपर जाना था। हम दोनोंने अभिवादन-पूर्वक अपने उपाध्यायसे विदा ली। कुछ भिक्षु, ट्रस्टी और कितने ही गृहस्थ हमारे साथ जहाजपर आये। यों तो एकाध वार पहले भी जहाजके भीतर जाकर देखा था; किन्तु अब तो १८, १६ दिन उसीमें निवास करना था। वड़ा तअज्जुब-सा मालूम हुआ। विशेषकर तव, जव कि,

सुमाली स्त्रियोंका शृङ्गार

दा-तेभू-नाँके सैकड़ो यूरोपीय यात्रियोंने हमारी पीले कपड़ोंवाली सिर-घुटी भिक्षु-मण्डलीको घूरकर देखना शुरू किया! जब हम सीढ़ीपरसे उतरकर अपने केबिनकी ओर जाने-आने लगे, तब आँगनमें वैठे फ्रांसीसी नौसैनिकोंनें ताली बजाकर और ठहाका मारकर स्वागत किया! हम तीसरी श्रेणीके यात्री थे। जापानी जहाजोंमें तीसरे दर्जेमें ए, वी, दो श्रेणियाँ होती हैं; किन्तु फ्रेंच जहाजोंमें एक ही। साधारण जहाजमें कोलम्बोसे मार्सेलका किराया २२ या २३ पौंड है; किन्तु दा-तेभू-नाँ प्रथम श्रेणीका, १५ हजार टनसे ऊपर का, जहाज है; इसलिये किराया २७ पौंड या ३६०) रुपये देना पड़ा। हम लोग धर्मप्रचारक थे; इसलिये कम्पनीने २०)सैकड़ा रियायत की। इस प्रकार ७२) रुपयेकी वचत हुई।

हम लोगोंका केबिन पहले डेकपर था। वीचमें होनेसे रोशनी हवाके आनेका कोई रास्ता न था। दीवारसे लगी नीचे-ऊपर दो वर्थें (सोनेकी चारपाई-सी) थीं। ऊपरकी वर्थके पैरकी तरफ एक विजलीका पंखा था; दरवाजेके पास एक विजली वत्ती। नीचे दीवारसे लगकर मीठे पानीकी कल तथा अचल चीनीका पात्र था, जिसकी वगलमें भित्ति वद्ध मुँदरियोंमें दो शीशेके गिलास तथा एक शीशेकी सुराही थी। पंखा देखकर जानमें जान आयी; नहीं तो इस अग्नि-कुण्डमें खौलना आसान काम न था। पीछे हमें मालूम हुआ कि, हम लोगोंकी वर्थें वी और सी नम्बरकी हैं। ए नम्बर-वाली वर्थें सवसे अच्छी होती हैं; क्योंकि उनमें समुद्रकी तरफ बड़े-बड़े गोल छिद्र होते हैं, जिनसे हवा और रोशनी, दोनों आती रहती हैं। टिकट लेते वक्त कोशिश की गयी होती, तो मिल जाना भी बहुत सम्भव था।

जहाज ग्यारह बजे छूटनेवाला था; इसलिये एक घंटे वाद लोग चले गये। नौ-दस बजे और कुछ लोग आये। सबसे पीछे हमारे गुजराती मित्र माणिकलाल पाटील, उनके भाई तथा कुछ और गुजराती सज्जन आये। माणिकलालजी जौहरी हैं। उनकी एक दूकान परी (Paris) में भी है। उनके भाई तो निरामिष भोजनोंकी एक तालिका ही

बनाकर आनन्दजीके लिये लाये थे। हमने पाखाना, पेशावखाना और स्नानागार देख लिया। स्टीवर्ड और नौकरको दस और पाँच शिलिंग इनाम दिया गया। वे लोग चले गये और हम लेटकर गप्प मारने लगे। ग्यारह बजे; जहाजने सीटी दी। जहाज चलने लगा। हम लोग सो गये।

सबेरे नींद टूटी, तो देखा, जहाज ऊँचे-नीचे हो रहा है, जिसके साथ हमारा दिल भी, सावनके ऊँचे झूलेपर बैठे नौसिखियेके मनकी तरह; उत्तुङ्ग शिखरसे अतल खातकी ओर गिर रहा था। जब जहाज ऊँची लहरोंपर उठता है, तब सिरमें थोड़ासा चक्कर आता है; किन्तु जिस समय लहर नीचेसे निकल जाती है, उस समय जहाजके पतनके साथ दिल एक दम गिर ही नहीं पड़ता; बल्कि मालूम होता है, एक ठंढी हवाका झोंका कलेजेके एक-एक छिद्रमें, जल्दीसे, घुस गया। थोड़ी देर तो बिस्तरेपर पड़े रहे। उतरकर डाँवाडोल जहाजमें लड़खड़ाते बाहर आकर देखा, तो मालूम हुआ, सबेरा हो गया। पाखाने गये। वहाँ पानीकी जगह कागजका व्यवहार था। यह भी सीखना ही था! दाँतकी लेईसे दाँतुन कर जब कुल्ला करने लगे, तब एक बार कैसी मालूम हुई। लेकिन अठारह घण्टे बाद पेटमें रखा ही क्या था? आनन्दजीकी हालत तो कुछ न पूछिये। सिरमें चक्कर आ रहा था; जी मिचला रहा था; किसी तरह मनपर जोर देकर उन्होंने हाथ-मुँह धोये। खूब कै आने लगी। लेकिन पेटमें कुछ न था। शामको ही हमने स्टीवर्डसे कह दिया था कि, हमारा खाना केबिनमें आना चाहिये। तदनुसार हमारे मुँह धोनेसे पूर्व डीरोटियोंके आठ-दस टुकड़े, दो प्याला काफी और मक्खन पहुँच गये। दोनोंने बैठकर किसी तरह उन्हें खतम किया। हम तो जाकर अपने बिस्तरेपर पड़ रहे और आनन्दजीको उठते-उठते कै आ गयी; सब खाया निकल गया! मानसूनका दिन था। समुद्र बड़ा ही चञ्चल था! हमारे सहयात्रियोंमें एक अँग्रेज लेफ्टिनेंट थे। उनका तो फतवा था कि, ३५ वर्षमें ऐसा चञ्चल समुद्र कभी नहीं पाया। यह तो साफ था कि, लड़कों और नाविकोंको छोड़कर यात्रियोंमें सभी बुरी अवस्थामें थे। मैंने बिस्तरेपर जाकर देखा कि, यदि जहाजके ऊपर उठनेके साथ साँससे पेटको भरा जाय और उतरनेके साथ धीरे-धीरे खाली किया जाय, तो कुछ आराम मिलता है। मैंने अपना यह आविष्कार आनन्दजीको भी बताया। साथ ही साथमें आये नीबुओं और अदरखके टुकड़ोंका व्यवहार शुरू कर दिया। आनन्दजीको तो नीबू चाटना भी अवर मालूम पड़ता था!

सुमाली औरत

समुद्रकी यही हालत एक सप्ताहतक रही। मुझे न कै हुई, न खानेमें कोई अरुचि। लोग कहते थे, आपको समुद्रयात्राका बहुत अभ्यास है। मैंने कहा "नहीं, यह पहली ही यात्रा है।" लोग आश्चर्य करते थे! दर असल मेरे लिये तिब्बतकी सर्दी, हिमालयकी चढ़ाई और इस उत्तरङ्गित समुद्रकी यात्रा एक-सी ही मालूम हुई। हाँ, पहले दिन अपरिचित होनेके कारण कुछ अजीब-सा मालूम हुआ था। दोपहरका खाना फिर हमारे कैबिनमें ही आया। आनन्दजीको भूख ही न थी, कहनेपर आमके दो चार टुकड़े खाये। मैंने तो गोश्त, अण्डा, मछली, रोटी, मक्खन, जो कुछ आया था, डेस्कके पेट भर खाया। पश्चात् थोड़ी देर बिस्तरेपर पड़ रहा। इसके बाद चीनी प्रोफेसर ल्युके पास गया। बेचारे सबेरेसे ही बिस्तरेपर पड़े थे। वह सज्जन लड़कपनमें ही विद्याभ्यासके लिये अमेरिका भेज दिये गये थे। इधर कई वर्षोंतक मुकदन (मंचूरिया) के चीनी विश्वविद्यालयमें इतिहास और संस्कृतके अध्यापक थे। एक साल पूर्व, जापानने मंचूरियापर पूर्ण-रूपेण कब्जा जमा लिया, तब यह विश्वविद्यालय भी बन्द हो गया। प्रोफेसर ल्यु इधर अन्ताराष्ट्रीय संघ द्वारा नियुक्त मंचूरिया कमीशनके चीनी सदस्यके विशेषज्ञ परामर्शदाता रहे। अब यूरोप और अमेरिकाकी यात्रापर निकले हैं। शामको मैंने बड़े आग्रहपूर्वक ताजी नारंगीका रस पीनेको दिया; साथ ही चूसनेके लिये अदरख और नीबू भी।

तीसरे दिनसे मैंने अपने जहाज दा-र्तञ-नाँकी खबर लेनी शुरू की। यह फ्रांसीसी जहाजी कम्पनी मेसाजिरी-मारी-तीमके ए श्रेणीके बड़े जहाजोंमें है। इसकी लम्बाई ५४१ फीट, चौड़ाई ६५ फीट, वजन १५, १०५ टन और इंजिन दस हजार घोड़ोंकी ताकतका है। यात्रियोंके रहनेके बी, सी, डी, ई, चार तल हैं, जिनमें बी तल सिर्फ तीसरे दर्जेके यात्रियोंके लिये हैं और डी, ई सिर्फ पहले दर्जेके लिये। सी तलपर पहले और दूसरे, दोनों दर्जेके यात्री रहते हैं। प्रथम दर्जेके केबिन बड़े हैं। सबमें बाहरकी ओर छिद्र हैं! इस लिये रोशनी और हवा आती है। दूसरे दर्जेवालोंकी दशा तीसरे दर्जेवालोंसे बहुत अच्छी नहीं है, जहाँतक हवा और दिनकी रोशनीका सम्बन्ध है। हाँ, तीसरे दर्जेवालोंके लिये एक ही हाल है, जिसमें खाना, सिगरेट पीना, बात चीत करना, सब होता है। दूसरे दर्जेवालोंको इनके लिये तीन अलग-अलग कमरे हैं।

हमूदी मस्जिद

खानेके चार समय हैं। ६ बजे चाय, रोटी और मक्खन, ११ बजे मध्याह्न-भोजन, जिसमें दो

तीन तरहका मांस, मछली, एक फल, एकाध तरकारी और रोटी है। काफी-चाय और पीनेवालोंको आधी बोतल लाल शराब भी मिलती है। चार बजे फिर सवेरे जैसा। ६ बजे शामके भोजन में दोपहरसे कुछ विशेषता रहती है। हम लोग दोपहरके बाद खाना तो खा नहीं सकते थे; हाँ, कभी-कभी बिना दूधकी चाय पीने जरूर चले जाते थे। जहाजमें पानी खूब ठंढा मिलता था, यह सबसे आनन्दकी बात थी।
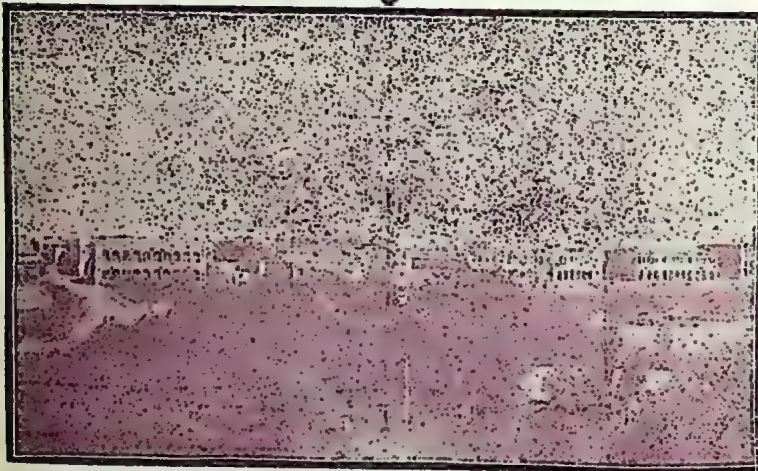
यूरोपियन मुहल्ला

१२ जुलाईको हमने अफ्रीकाका किनारा देखा। छोटे-छोटे नंगे पहाड़, नीचे किनारेपर मछुओंकी छोटी नावें। मालूम हुआ, यह सुमाली-तट है, जो इटलीके अधीन है। अब जहाज उतना हिलता-डोलता न था। लोग अब अपनी हालतमें आ रहे थे। आनन्दजी तो इन दिनों बराबर ऊपरी छतपर, जावाके चौथे दर्जेके एक मुसलमान यात्रीके पास, जाकर पड़े रहते थे। ऊपर हवा तेज़ चलती थी; इसलिये केबिनसे वह अच्छा था। जावी बेचारा अपनी भाषा और अरबी छोडकर दूसरी भाषा नहीं जानता था। एक दिन मैं भी गया। उसने पूछा—"अन्ता अरबो।" मैंने कहा—"अना हिन्दी।" मुझे भी तो अरबी छोड़े १४ वर्ष हो गये थे; इसलिये किसी तरह काम भर चला लेता था। बातचीतसे मालूम हुआ कि, ये हमारे दोस्त, अहमद, जावाके बतावू (Batevia) शहरके रहनेवाले हैं। इनकी मातृभाषा मलायू (मैले) है। अदनसे आगे अरबके किसी छोटे शहरमें इनकी एक छोटीसी दूकान भी है।

अब हमारा जहाज अफ्रीका-तटके पाससे चल रहा था। गर्मी कुछ बढ़ गयी थी; किन्तु वह अवस्था न थी, जो आगे चलकर, लाल सागर में, होनेवाली था। हम लोग ऊपरकी खुली छतपर जा बैठते थे, कभी प्रोफेसर ह्युके साथ बौद्ध-धर्म, एशियाकी संस्कृति आदिपर बात-चीत होती थी, कभी प्रोफेसर इंग्लिशसे बुद्ध-धर्म और दर्शनपर। यह महाशय अमेरिकन हैं। छ वर्ष फिलीपीनमें अध्यापनका कार्य करके अब स्वदेश लौट रहे हैं। अन्य अमेरिकनोंकी भाँति खुले दिलके हैं। गांधीजीके बडे भक्त हैं। बुद्धके अनात्मवाद, अनीश्वरवाद, पुनर्जन्मवाद आदिको सुनकर इन्हें आश्चर्य होता था। दर-असल इन्होंने बुद्ध-धर्मके सम्बन्धमें अभीतक इतना ही सुना था कि, इसके अनुयायी मिट्टी-पत्थरकी मूर्तियोंको ईश्वर मानकर उनसे मुराद माँगा करते हैं।

गल्तीसे हमने सफरी कुर्सी नहीं ली थी। सुन तो चुकेथे कि, ज़हाजी यात्रामें इसकी बड़ी आवश्यकता

होती है। यहाँ आकर उसकी बड़ी जरूरत हुई। यदि कुर्सी रहती, तो रातको ऊपर खुली छत पर सोनेका स्वर्गीय आनन्द मिलता।

१४ जुलाईको सबेरे पाँच बजेसे पहले ही हम जिबूती पहुँच गये। यह अदनके सामने अफ्रीकाके तटपर फ्रांसीसी बस्ती है। यहाँसे अबी-सीनियाको फ्राँसीसी रेलवे लाइन गयी है। मेडा-गास्कर, पूर्वी अफ्रीका जानेवाले जहाज यहाँ होकर जाते हैं। चीन, जापान जानेवाले सभी फ्रांसी-सी जहाज यहाँ ठहर कर जाते हैं। जिबूती बस्ती वनस्पति-शून्य अफरीकाके तटपर बसी हुई है; किन्तु जहाज और रेलके केन्द्रपर होनेसे दिनपर दिन तरक्की कर रही है। यहाँ छ-सात सौ यूरोपियन (अधिकांश फ्रेंच) रहते हैं। बाकी तेरह हजारकी बस्तीमें कुछ भारतीय-गुजराती और पारसी सौदागर भी हैं। फूल बेंचनेके लिये जहाजमें आये सुमालियोंसे मालूम हुआ कि, यहाँ हिन्दी भी कुछ समझी जाती है। भारतीय रुपया खूब चलता है। दूसरा सिक्का फ्रांसीसी फ्रांक है। एक वर्ष पूर्व एक रुपयेका दस फ्रांक मिलता था अर्थात् एक पौंडका १३३ फ्रांक जिस दिन, (५ जुलाई) कोलम्बो छोड़ा, उस दिन मालूम हुआ कि, कागजी पौंड (स्टर्लिङ) ९६ फ्रांकोंका है। १४ जुलाईको उसकी दर ९०·५५ फ्रांक ही रह गयी। कागजी पौंडके साथ हमारा रुपया भी रसा-तलको जा रहा है। करीब एक-तिहाई मूल्य तो अभी उसका निकल गया।

जाकर जिबूती देखनेका विचार था; किन्तु जहाज यहाँ तीन ही घण्टे ठहरनेवाला था। जब तक साथी खोजा, तबतक नाव ही नहीं रही! जिबूतीमें आपको हब्शी, अरब, हिन्दुस्तानी, फ्रांसीसी, सभी तरहके आदमी मिलेंगे। जहाजपर से ही यूरोपियन मुहल्लेके सुन्दर प्रासाद दिखाई देते हैं। कहीं-कहीं बड़े परिश्रमसे छोटे-छोटे बागीचे भी तैयार किये गये हैं। बिजलीकी रोशनी और पानीके नलके सिवा यहाँ बर्फके कारखाने भी हैं, जिनसे इस दहकती भूमिकी तकलीफ बहुत कुछ कम हो गयी है। यहाँसे अदन और जेला जानेके लिये भारतीय कावसजी जहाँगीर कम्पनीके स्टीमर हैं।

आठ बजे हमारा जहाज रवाना होकर लाल-सागरमें घुसा। शामको देखा, तो समुद्र इतना शान्त था, मानों जहाज किसी झीलमें जा रहा है। सबेरे जब नहानेके नलको खोला, तब लाल रंगका पानी गिरने लगा। हमने लालबुझक्कड़की दौड़ लगा यी और कहा, "हाँ, इसीलिये तो इसे लालसागर कहा जाता है।" पीछे मालूम हुआ कि, यह लोहेकी टंकीका तल-छँट पानी था। लालसागरकी गर्मीका कुछ न पूछिये, सभीके मुँहसे "त्रेशो" (बहुत गर्मी) सुनाई पड़ता है!

इस प्रकारकी विचित्रताओंसे भरी हमारी हिंडोलेकी दुनिया (जहाज), अपने विलक्षण पथसे, कोलम्बोसे यूरोप (मार्सेल) पहुँच गयी।

जल-योगिन

बाबू रौशनलाल "अम्बालवी"

सन् १९१४ की लड़ाई छिड़ी हुई थी। मौतकी दर्दनाक तस्वीर सबके सामने मुँह फैलाये खड़ी थी। माँको बच्चोंकी, औरतोंको सुहागकी और बच्चोंको अपने बापकी फ़िक्र हो गयी थी। यूरोपमें लड़ाई हो रही थी; मगर असर इस गरीब मुल्कपर तबाही ला रहा था। गाँव-के-गाँव खाली हो रहे थे। स्कूल वीरान हो रहे थे। सारा मुल्क सूनसान हो रहा था। ढूँढ़नेसे भी कोई जवान दिखायी न देता था।

गनपत और कामता—दोनों हिन्दुस्तानी रिसालेमें अफ़सर थे। दोनोंका दिल दूध और पानीकी तरह मिला हुआ था; दोनों बचपनके साथी थे। दोनोंको लड़ाईमें जानेका शौक चर्राया। एक साथ ही दोनों घरसे निकले और रिसालेमें फौज़के सिपाही हो गये।

कुछ दिनोंके बाद दोनोंको अफसरी मिल गयी। दोनों साथ-ही-साथ रहने लगे।

\+ + +

चाँदमारी करनेके लिये फौजें राजपूतानेके एक पहाड़ी मैदानमें पड़ी हुई थीं। रिसालोंकी भी कई टुकड़ियाँ थीं, जिनके नायक गनपत और कामता थे। फौजें फ्राँस भेजी जानेवाली थीं।

जाड़ेका मौसम था। बरसातके बाद राजपूतानेके पहाड़ी जंगलोंमें हरियाली ऊँघ रही थी। बेतवा नदीका जल शीशेकी तरह साफ था। घने जंगलमें कहीं-कहीं आबादी भी थी।

फौजके पड़ावसे कोई तीन मीलके फासलेपर एक छोटा-सा गाँव था—हमीरा। गाँवके पिछले रुखपर एक मन्दिर था और मन्दिरके सामने था एक कुँआ। शामको पानी भरनेवालियोंका यहाँ खासा जमघट हो जाया करता था।

उस दिन मेग्जिनके पहरेकी तनाती गनपतके जिम्मे थी और कामता छुट्टीमें था। उसके जीमें आया कि, आज गाँव देख आऊँ। न जाने किस दिन कूचका डंका बज जाय। उसने झट अपना घोड़ा सँम्हाला और गाँवकी तरफ हवा हो गया।

शाम होते-होते वह गाँवमें जा धमका। कुँएपर एक चीनकी पुतली—खूबसूरत लड़की—पानी भर रही थी। कामताकी नजर जो उसपर पड़ी, तो वह हक्का-बक्का हो गया। घोड़ा रोककर उसकी ओर देखने लगा।

सुन्दरीने भी देखा, मुस्करायी और कलशी माथेपर रखकर घरकी ओर मुड़ गयी।

\+ + +

तबसे दो-तीन बार कामता उस कुँएपर गया—सुबहको भी, शामको भी; लेकिन उसे कलेजा थामकर लौट आना पड़ा। वह न मिली—न मिली!!

एक दिन वह बेतवा नदीकी ओर गया। नदीके निर्मल जलने उसे स्नान करनेको मजबूर कर दिया। उसने घोड़ेको एक पेड़की जड़में बाँधा, वर्दी उतारी और नदीमें कूद पड़ा। उसे बड़ा मज़ा मिल रहा था। वह बहते हुए पानीके साथ

खेलने लगा। लहरें उसके गलेसे टकराती थीं, वह उनसे लिपटा जाता था।

नदीसे निकलते-निकलते उसकी नज़र किनारेकी तरफ पड़ी। देखा—वही पेड़की एक झुकी हुई टहनी पकड़े नदीके जलमें, कुछ देख रही है।

किनारे आकर उसने पूछा—'तुम कौन हो?'

वह बोली—'जल-योगिन!'

गनपतने मुस्कराकर कहा—'अच्छा, तुम जल-योगिन हो। मैं भी जलमेंसे ही आ रहा हूँ—देखा होगा तुमने!'

'हाँ, देखा है।'

'अकेली क्या कर रही हो?'

'बहते हुए पानीको देख रही हूँ।'

'इसे क्या देखोगी; क्या कभी यह एक जगह रहता है?'

'यही तो सोच रही हूँ!'

'बूँदें गिरकर धार बन जाती हैं, जो नदीमें आकर दरियाकी सूरत पाती हैं; और फिर, समुद्रमें चली जाती हैं।'

'वहाँ तो इसे चैन मिलती ही होगी?'

'चैन कहाँ! वहाँ बड़ी-बड़ी लहरें उठा करती हैं और सागरको मथकर उसमेंसे रत्न पैदा करती हैं—'

'—और, उसी संसार-सागरके एक रत्न तो आप भी हैं, जिन्हें लहरोंने पैदाकर यहाँ चमकनेको भेजा है!'

'हाँ, ठीक कहती हो, जल-योगिन! बहते पानी और रमती फौजका कोई ठिकाना नहीं—कहीं-के-कहीं निकलते हैं।'

'बैठ क्यों नहीं जाते?'

'जबतक चाँद नहीं निकलता, ज्वार-भाटा नहीं आता। जब चाँद निकल आता है, लहरें उठती हैं—पानी बढ़ता है। आज मेरी भी यही हालत है। चाँद देखते ही दिलमें लहरें उठने लगीं।'

'यहाँसे पल्टन कहाँ जायगी?'

'लड़ाईपर—शायद फ्रांस।'

'कहीं लड़ाई हो रही है?'

'क्या तुम्हें अभीतक पता नहीं!'

'नहीं, मुझे कुछ भी पता नहीं। मुझे तो उस महाभारतकी खबर है, जो हर वक्त, हमारे अन्दर हुआ करता है।'

'कहाँ रहती हो, तुम?'

'मन्दिरमें, जो उस कुँएके सामने है। भगवान्की सेवामें तन, मन, धन, अर्पण कर रखा है। आजसे नहीं—चौदह बरस पहलेसे, जब मैं चार बरसकी ही थी।'

गनपत गहरी सोचमें डूब गया।

वह बोली—'क्या सोच रहे हो?'

गनपतने उसकी तरफ देखकर कहा—

'कुछ नहीं। और, सोच ही क्या सकता हूँ! जो हो चुका, उसे फिर बदल देना मेरी ताकतसे बाहर है।'

\+ \+ \+

गनपत छावनीकी ओर लौट रहा था। उसके दिमागमें तूफान उठ रहा था और दिलमें उठ रही थीं लहरें।

उसने मन-ही-मन कहा—'कितनी गम्भीर है यह! कातिक-पूनोमें—आगरेके ताजमहलमें भी जाकर मैंने कभी एक चाँद आसमानमें उड़ता हुआ देखा था.........कहाँ यह और कहाँ वह!'

\+ \+ \+

(३)

चाँदनी फैल रही थी। चारो ओर सन्नाटा छाया हुआ था। हवा कुछ-कुछ ठण्डी चल रही थी।

गनपत और कामता खीमेसे बाहर टहल रहे थे। कामता बोला—'भैया, कुछ दिनोंसे खामोश बहुत रहा करते हो; क्या बात है!'

गनपत बोला—'इस सोचमें हूँ कि, तुमसे कहूँ या न कहूँ।"

'कामता, अगर कुछ हर्ज न हो, तो कह डालो।'

साथ ही; सर्द आहें भरकर गनपतने कहा, 'जल-योगिनने एक रोज़ वेतवा नदीके किनारे धीवर-कन्याके समान शन्तनुको घेर लिया!'

'तो वचन क्यों नहीं दे देते?'

'किस आसपर!'

'आसकी कौन-सी बात है?'

'इधर फौजें कूच करनेवाली हैं—मैदाने जंगकी खौफ़नाक तस्वीर आँखोंके सामने है, उधर तुम मुझे वचन दे देनेको कहते हो!'

'तो चुप रह जाओ। कौन कहता है कि, इस मुसीवतमें पड़ो ही।'

'ठीक है; जो कुछ तुमने कहा, ठीक है। लेकिन तुमने अभीतक किसी सुन्दरीकी आँसू-भरी आँखें नहीं देखी हैं। जिस दिन देख लोगे, उस दिन तुमसे पूछूँगा!'

'आखिर ऐसा कौन-सा जादू उसकी आँखोंमें है, जिसने तुम्हें मजबूर बना रखा है?'

'कामता—कामता! उसकी आँखोंमें वह जादू है, जो मुझे वेतवाके किनारे वरवस खींच ले जाता है, जिसकी ताक़तमें मैं बँध चुका हूँ। मैं कुँएपर जाता हूँ, मन्दिरकी चहारदीवारीका चक्कर लगाता हूँ, घण्टों इन्तजार करता हूँ; लेकिन वह नहीं आती। मैं मजबूरसे जाता हूँ, मगर फिर भी उसका इन्तजार करता हूँ। और······और जिस दिन वह आ जाती है, उस दिन जादूका असर तेज़ हो जाता। उसके चले जानेपर उस कोशिशकी ताक़त बढ़ी हुई मालूम होती है। मैं उसकी बीनपर मस्त होकर खेल करता हूँ और वह मुझे इशारोंपर नचाती है!'

'आखिर वह चाहती क्या है?'

'भेंट!'

'किस चीजकी भेंट चाहती है?'

'यह नहीं बताती!'

कामताको वह पहेली-सी जान पड़ी। उसने फिर पूछा—'कहाँ रहती है वह?'

'मन्दिरमें, वेतवा नदीके किनारे, जंगलमें हरे-भरे पेड़ोंके सायेके नीचे और मेरे आसपासकी हवामें।

'तुम्हारा भ्रम है।'

'·············!'

'कहीं माया तो नहीं है?'

'मैं क्या जानूँ!'

कामता सोचने लगा—'लेकिन इसने अपने दिलकी बात ज़ाहिर नहीं होने दी।'

पक्षी अपने-अपने घोसलोंको लौट चुके थे। रातके चौकीदारोंने आसमानपर आकर अपनी-अपनी चोरबत्तियां जला दी थीं।

कुँएकी राह होता हुआ कामता एक मकानके सामने गुजरा, जिसके पिछवारेमें एक वाग था। वाग और मकानके बीच एक निर्मल जलसे भरा हुआ हौज था। चारो ओर बेलेके फूल खिल रहे थे। अचानक कामताके कानोंमें किसीके गलेकी मीठी आवाज पड़ी। कोई गा रहा था—

"कौन गत भई मोसे पिया न करत वात!"

ऐसी आवाज—ऐसी सुरीली तान उसके कानोंमें आजतक नहीं आयी थी।

देखते-ही-देखते गाना बन्द हो गया! दरवाजा खुला और भीतरसे एक खूबसूरत पुतली वाहर आकर आसमानकी तरफ देखने लगी; मानों, चकोरी चाँदको ढूँढ़ रही हो।

आसमानी नीले पर्देके भीतरसे तारे चमक रहे थे। रात अँधेरी थी। "ऐसेमें चाँद कहाँ!"—कहकर वह भौंरेकी तरह

फिर गुनगुनाने लगी—'कौन गत भई मोसे पिया न करत बात!'

लगातार कई दिन उस कस्बेकी खाक छाननेपर एक दिन कामताका अरमान पूरा हुआ।

सुन्दरी हाथोंमें पूजाकी थाली लिये मन्दिरकी ओर जा रही थी। कामताने भी धीरे-धीरे पीछा किया। सुन्दरी भीतर चली गयी! कामता हाथ जोड़कर दरवाजेपर ही खड़ा हो गया।

थोड़ी देरके बाद नैवेद्य चढ़ाकर वह निकली और सामने बैठे हुए पुजारीके पास जाकर दण्डवत् किया। उन्होंने उसे चरणामृत दिया और बोले—'सुनैना! तुम भगवान्‌की बड़ी सेवा करती हो। चौदह बरस तुम्हें आज इसी तरह सेवा करते हो गये। ईश्वर इसका फल देंगे: बेटी, तुम्हारा सोहाग अखण्ड होगा।'

वह परिक्रमा करने चली गयी और कामता बाहर जाकर मालिनसे फूल-बताशे लेकर भीतर चला गया। वहाँ उसने पुजारी-जीके सामने जाकर पूजाकी सामग्री रख दी। उन्होंने पूजा की, उसके माथे तिलक लगाया और प्रसाद देकर फूल और हार भगवान्‌पर चढ़ा दिये।

वह बोले—'कहाँसे आना हुआ बेटा?'

फौजमें सिपाही हूँ। ठिकाना क्या! कुछ दिनोंमें कूच ही करना है।

अच्छा बेटा खुश रहो! इस मुल्कके नौजवान हमेशासे ही लड़ाइयोंपर जाया करते हैं; देखना, आनमें फर्क न आने पावे।

'नहीं स्वामीजी, ऐसा न होगा।'

'मौत ही सिपाहीकी इज्जत है, सायेकी तरह साथ रहती है।'

'जी हाँ, ऐसा ही है।'

'जिस तरह सिपाही अपनी तलवार म्यानसे अलग नहीं कर सकता, उसी तरह वह अपने बलिदानका विचार भी दिलसे नहीं हटा सकता।'

'जी हाँ, आपकी कृपासे ऐसा ही होगा।'

'—और सुनो, नौजवान सिपाहीकी दुलहिन तलवार है। वह उसीका सेहरा माथेपर बाँधकर खूनकी बिन्दी लगाता है। वह उसे बराबर अपने पहलूमें रखता है। उसकी जिन्दगी दूसरेके काम आती है। उसका त्याग इतने ऊँचे दरजेका होता है कि, उसकी कीमत सात बादशाहतकी दौलतसे भी अदा नहीं की जा सकती।'

कामता उन्हें प्रणामकर बाहर आया और कुँएपर न जाने क्यों आकर खड़ा हो गया। इतनेमें सुनैना भी निकली। उसके गलेमें वही हार था, जिसे कामताने भग-वान्‌पर चढ़ा दिया था। कामताने समझा, परिक्रमा करनेके बाद पुजारीजीने आशीर्वादके फूलोंके साथ यह हार भग-वान्‌का प्रसाद कहकर दिया होगा। कामताने उसके माथेपर सिन्दूरकी छोटी-सी बिन्दी भी देखी। बिन्दीसे चेहरेमें वह रौनक—वह आव आ गयी थी कि, चेहरा नूरका टुकड़ा हो रहा था।

(४)

कामताने गनपतसे कहा—'यह गाँव सचमुच अजीब जान पड़ता है।'

'यह कैसे?'

'इसका तो जवाब नहीं दे सकता कि, यहाँ क्यों अजीब बातें हुआ करती हैं।'

दोनों चुप हो रहे।

× × ×

गनपत बेतवा नदीके किनारे चहलकदमी कर रहा था। अचानक उसकी नजर जल-योगिनपर जा पड़ी। उसके गलेमें फूलोंका एक मुर्झाया हुआ हार था। माथेपर सिन्दूरकी एक हल्की बिन्दी थी। उसकी आँखें बन्द थीं। वह पूरी आवाजमें गा रही थी—

'कौन गत भई मोसे पिया न करत बात!'

गाना बन्द हुआ, उसकी आँखे खुलीं। वह ऐसी दीख रही थी, मानों सोकर उठी हो।

'...।'

'जल-योगिन, अब कुछ ही दिनोंमें हम लोग चले जायँगे।'

'रात-भर चकोरी चाँदको देखती है। चाँद छिप जाता है, तो भी वह उम्मीदमें जिन्दा रहती है।

आँखोंमें जादू भरकर सुन्दरीने गनपतकी ओर देखा।

'आजतक तुम्हें मैं समझ न सका। मेरे लिये तुम एक पहेली हो। अच्छा, सच बताओ, क्या तुम मेरी हो सकती हो?

'कोशिश करो।'

'मैं कह चुका हूँ, वक्त कम है।'

'फिर······फिर इस कम वक्तका ज्यादा-से-ज्यादा फायदा क्यों नहीं उठाते।'

गनपत उसके पास चला गया और उसका हाथ अपने हाथमें लेकर बोला—'योगिन—जल-योगिन! तुम्हारे एक ही इशारेमें मेरे जीने और मरनेका सवाल उलझा हुआ है!!

सुन्दरीने झटककर हाथ छुड़ा लिया। बोली—'सिपाही, तुम्हारी जिन्दगीपर दुनियामें हर एक आदमीका बराबर हक है। तुम मुल्ककी बेशकीमत चीज़ हो, तुम्हारी जिन्दगी मुल्कके लिये है। जमाना तुम्हारी एक-एक बूँदका तलबगार है। मैं तुम्हें क्योंकर अपनाकर···एकका···रख सकती हूँ! क्या जवाब दूँगी लोगोंको, जब वे पूछेंगे कि, 'सिपाही क्या हुआ—कहाँ गया?' अभी तुम्हें कई मंजीलें तै करनी हैं। हिम्मत न हारो। भला, दूसरेकी चीज़ मैं क्योंकर ले सकती हूँ!'

वह चली गयी उसने मुस्कराकर पीछेकी ओर देखा और आँखोंसे ओझल हो गयी। जंगल फिर गूँज उठा—'कौन गत भई मोसे पिया न करत बात!'

हरे-भरे जंगलसे छनकर आती हुई सुरीली आवाज़की लहरने गनपतको पागल बना दिया। वह एक पेड़के सहारे खड़ा हो गया, जैसे नसेमें डूब रहा हो! उसने अपने दोनों कानोंमें उँगलियाँ डाल दीं। उस गानेको—उस आवाज़को, जैसे वह नहीं सुनना चाहता हो।

रात अधिक हो चुकी थी। गनपत छावनीमें आ रहा था कि, मैग्जिनकी तरफसे किसीके गानेकी आवाज़ आयी—"कौन गत भई मोसे पिया न करत बात!

उसका माथा घूम गया—वही आवाज़—वही खयाल! उसने कान बन्द कर लिये। आगे बढ़कर उसने देखा—कामता पहरेपर था। आवाज़ उसकी ही थी, वही गा रहा था। इस बार उसने कान नहीं बन्द किये। वह गाना सुनने लगा। उसकी आँखोंमें खून उतर आया। कामताके पास जाकर भर्रायी हुई आवाज़में उसने कहा—

'अच्छा गा रहे हो!'

'बड़ा सुन्दर गाना है। क्या तुमने कभी इसे सुना है!—उसे गाते हुए?'

'नहीं, मैं नहीं सुन सका।'

गनपत उलटे पाँव अपने कैम्पमें चला आया, वर्दी उतारी और माथा थामकर बैठ गया। उसकी आँखोंमें आँसू छलछला रहे थे। वह गहरी सोचमें डूब गया। उसके मुँहसे निकला—'अच्छा, यह बात! कामता······कामताने······जभी तो वह नाम छिपाती थी और हज़ार पूछनेपर भी यही कहा करती थी कि, मेरा नाम जल-योगिन है!······योगिन बननेका होश है! ईश्वर अखण्ड योग देगा!'

उसकी आँखोंसे आँसूकी वह धार बह निकली, जो रोके नहीं रुक सकती है। वह ना-उम्मीद होकर लौट आया था। उसके दिलमें बड़ी-बड़ी उम्मीदें थीं, उमंगें थीं; लेकिन वे मटियामेट हो गयी थीं।

भोरतक जगकर वह कामताकी बाट जोहता रहा।

रातभर नौकरी देनेके बाद जब कामता भोरको लौटा, तब उसके आश्चर्यका ठिकाना न था। उसने देखा कि, गनपत वर्दी पहने बैठा हुआ है; समझा कि, शायद इसे भी मालूम

हो गया है कि, हमारी फौज आज ही रातको बम्बई जानेवाली है और वहाँसे पहले जहाजपर फ्रांसको जायगी।

यह खबर कामताको रातमें ही लग गयी थी। जहाज देखनेके हौसलेसे वह मन-ही-मन खुश था। समुद्रकी सैर उसने कभी न की थी। यूरोपकी ज़मीनपर पैर रखनेकी उमंगें उसके दिलमें लहरें ले रही थीं। वह हँसता हुआ, यह खुशखबरी सुनाने आया था। उसने बढ़कर पूछा—

'गनपत! यार तुम्हें भी तो पता मिल ही गया!'

'हाँ, मिल गया; सारा भेद खुल गया कामता!'—भर्रायी हुई आवाज़में गनपतने कहा।

'अब दिलकी मुराद पूरी होगी—'

'तुम्हारी!'

'क्या तुमको अपनी ताकतपर यकीन नहीं?'

'मेरी ताक़त दूसरेके क़ब्जेमें है।'

'भैया—कामताने कहा, 'नमक क्यों छिड़कते हो! मेरी जिन्दगी तुम्हारे हाथोंमें है। उसके बिना मेरा जीना बेकार है!'

गनपतकी बातोंको कामता नहीं समझ सका। उसने पास जाकर पूछा—'क्या जल-योगिनसे अनबन हो गयी है?'

'अनबन······कामता! कामता!! तुम······तुम······'

इतना कहते-कहते गनपत बिलकुल चुप हो गया।

'भैया बोलो। कहो, रुक क्यों गये?'

'कोई उसके पास आता है, उसके गाये हुए गानेको रातके सूनेपनमें, अपनेको अकेला पाकर, गाता है—अपना दिल बहलाता है।'

कामताने कमरसे कटार निकालकर रख दिया और बोला—

'लो, इसका फैसला कर डालो।'

'हाथ काँप जायँगे।'

'इतनी कमजोरी?'

'दोनोंको पाला है; एकको बचपनसे, दूसरेको आँखोंमें।'

'तो मुझे कहो, मैं·········'

गनपतकी आँखें लाल हो रही थीं। उसके होठ काँप रहे थे। बाहर जोरोंकी हवा चल रही थी, जो उसकी ना-उम्मीदीको बादलोंकी तरह उड़ा रही थी। वह कभी बालोंमें उँगलियाँ डालता था; कभी सर, हाथोंके सहारे, रख लेता था। उसके खूनमें बेचैनी दौड़ रही थी। उसकी साँसमें बदला लेनेकी आवाज़ थी।

वह बोला—'कामता······ कामता! अच्छा सुनो, तुम कहाँ थे—किसके घर रहे?'

'तुम्हारे। आजसे नहीं; बचपनसे। माँके मरनेके बाद तुम्हारी माँने मुझे बेटेकी तरह पाला। मेरा अंग-अंग उस अहसानीके बोझसे दबा हुआ है। जान देकर भी मैं उसका बदला नहीं चुका सकता।'

'एक काम करोगे......इस एहसानीके बदले!'

इतना सुनते ही कामताकी देहमें आग लग गयी। वह काँपने लगा। लड़खड़ाती हुई आवाजमें बोला—"एहसानीका बदला क्या कभी चुकाया जा सकता है? तुम्हारे इतने एहसान मुझपर हो चुके हैं कि, मैं अपनी जान भी दे दूँ, तो भी पूरे न हो सकेंगे। बोझको उतार न सकूँगा।'

'मेरा बदला मेरे दुश्मनसे लोगे?'

'दिल और जानसे।'

'जिसने मेरा दिल तोड़ा है, तुम उसका दिल तोड़ दोगे?'

'हाँ।'

खंजर उठाकर कामताने म्यानमें कर लिया।

कुछ देरके बाद गनपतने कहा—

'क्या तुमने जल-योगिनको देखा है?'

'पता बता दो, ढूँढ़ लूँगा।'

'वह उस बागवाले मकानमें भी रहती है, मन्दिरमें भी आया करती है, कुएँपर बैठकर आरती भी सजाती है। हाँ,

आजकल एक मुर्झाया हुआ फूलोंका हार पहने रहती है और सुनो, अगर इन वातोंसे भी पता न लग सके, तो उसकी रागिनीसे ही पहचान लेना। वह कभी-कभी मग्न होकर गाया करती है—'कौन गत भई मोसे पिया न करत बात।'

कामता चौंक पड़ा। वह आँखें फाड़कर गनपतका मुँह ताकने लगा।

गनपतने कहा—'चौंकते क्यों हो!'

'इस लिये कि, अब उसे ढूँढ़ लूगा। यह सच्ची पहचान है।'

"और सुनो, वह भी सच्ची ही है। मेरे दुश्मनका पूरा हाल वह तुम्हें बता देगी और तुम पहचान जाओगे। खाली हाथ न आना। तुम्हारे हाथोंमें खूनकी मेंहदी लगानी चाहिये; मुँहपर आँसुओंका सेहरा होना चाहिये। कामता··· कामता! यह सिपाहीकी वारात है, जिसके चढ़नेकी तैयारी आज शामको हो चुकी है। सुन लिया, आज लड़ाईके नगाड़ेपर वह चोट पड़ेगी कि, आवाज आसमानको हिलाती हुई जमीनकी सातो तहोंको दहला देगी। खयाल रखो कि, बुजदिल इस आवाजपर डर जायँगे और बहादुर इसी आवाज पर खूनके रंगमें होली खेलेंगे।

गनपत चुप हो गया और कामता गहरी सोचमें डूबा हुआ तेजीसे एक ओर निकल गया।

(५)

वेतवा नदीके तटपर, जंगली फूलोंकी गोदमें, सुनैना गा रही थी—

'कौन गत भई मोसे पिया न करत बात!'

कामताने समझा, यही जल-योगिन होगी।

पूनोंका चाँद वेतवा नदीके निर्मल जलमें झलक रहा था। एक किरण सुन्दरीके गालोंपर खेल रही थी।

कामताने पूछा—"सुनैना, क्या यहाँ कोई गा रहा था?

'हाँ, गा रहा था।'

'कौन?'

'जल-योगिन!'

'वह कहाँ गयी? सुनैना, मुझे बता दो, वह कहाँ गयी। मैं उसीकी खोजमें भटक रहा हूँ!'

'क्या करोगे ढूँढ़कर?'

'कुछ पूछूँगा।'

'क्या?'

यह योगिनने मेरे दिली दोस्त गनपतपर जादू डाल दिया है। फिर, वह कुछ और चाहती है!

सुनैना खिलखिलाकर हँस पड़ी। वह बोली—'कोग भ्रम है। क्या माया भगवान्से, अलग हो सकती है! जहाँ भगवान्, वहीं माया। भेद समझका है। नासमझ तरह-तरहके नाम रखते हैं; लेकिन समझदार, चाहे जिस रंगमें देखें, एक ही रूप सामने आता है।

'तो मैं उसे कहाँ देखूँ?'

'अपने पास······'

'सुनैना, मेरी रानी! गाना न गाओगी?'

कौन-सा?

'वह, जिसकी मीठी रागिनी बादशाहके हाथमें तलवार पकड़वा देती है—कातिलके हाथमें खंजर और वैरागीके हाथमें कमण्डल।'

'और सिपाहीके दिलमें?'

फ़ना होनेवाली ताकत!

कामताने सुनैनाके मुँहकी ओर देखा। उसकी नीलम-सी आँखोंमें आँसू छलछला रहे थे। कामताको गनपतकी बात याद आ गयी। जिन्दगीमें पहली बार वह आँसू-भरी आँखें देख रहा था! वह आँसू न थे, किसीके सच्चे प्रेमकी मालाके मोती थे, जो बिखरनेवाले थे—बिखर रहे थे।

सुनैनाने गाया—"कौन गत भई मोसे पिया न करत बात!'

वह झूम रही थी। कामता झूम रहा था, जैसे वह ऊँघ रहा हो। दोनों अपनेको—दुनियाको—भूल रहे थे।

कुछ देरके बाद कामताका ध्यान टूटा। वह बोला—"अब कहाँ जाओगी ?"

'भगवान्के पास!'

'वह कहाँ रहता है ?'

सुनैनाने अपनी उँगलीसे बेतवाके निर्मल और शान्त जलकी ओर इशारा कर दिया।

पानीमें छप-से आवाज़ हुई। जहाँ चाँद झिलमिला रहा था, वहाँ पानीके हिलनेसे हज़ारों चाँद और लाखों तारे हिलने लगे। बेतवा नदी फिर शान्त होकर बहने लगी। उसकी लहरोंमें कोई आवाज़ न थी।

× × ×

उसी जगह चार बजे भोरको गनपतकी फ़ौज किश्तियों-पर बेतवाको पार कर रही थी। वह अगले घोड़ेपर सवार था। उसकी नज़र दरियामें तैरती हुई दो लाशोंपर पड़ी, जो एक किश्तीके रस्सेमें फँसी हुई थी। उसने मार्चका हुक्म दिया। एक साथ ही सैकड़ो बिगुल बज उठे।

गनपत लाशोंकी तरफ़ नहीं देख सका। उसने अपनी आँखें मूँद लीं।

उस ओर

श्रीयुत योगेन्द्र झा

अपनी जीर्ण-तरीपर चढ़कर, जाना है मुझको उस पार;
इस कल्लोलित-कर्मसिन्धुका, नहीं जहाँपर हा-हा-कार।
जहाँ मनोज्ञ गठित तरणी भी, झंझाका झोंका खाकर,
प्रबल वेगसे सदा डूबती-उतराती रहती थर-थर।
चूम-चूमकर क्षितिज तरंगे, हाय लौटकर आती है,
पर, मेरी नौका जाती है; बस, जाती है जाती है।
आशा और निराशा मिलकर जब हो जावे एकाकार,
रङ्गमञ्चपर तब आ जाना निराधारके हे आधार॥
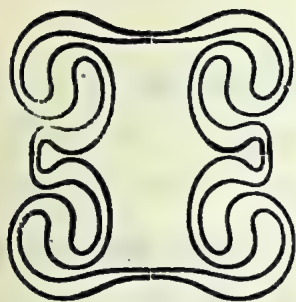
भारतके निवासी

बाबू श्रीमद्भागवतप्रसाद वर्मा
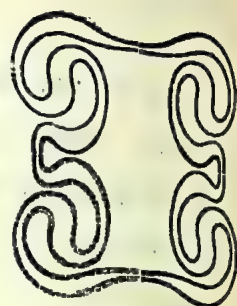
इस देशके मनुष्योंके मूल-पुरुषोंके विषयमें कुछ जाननेके पूर्व हमें यह ध्यानमें रखना पड़ेगा कि, भारतवर्ष एक साधारण देश नहीं, महाद्वीप है। भारतीयोंके शारीरिक गठन और उनकी रहन-सहनसे हमें यह मालूम हो सकता है कि, अमुक मनुष्य गोरखा है या पठान, सिक्ख है या राजपूत, ब्राह्मण है या नागा, तामील है या काश्मीरी। भारतवर्षके आदिनिवासी द्राविड़ उत्तर एशियाके निवासियोंसे भिन्न दीख पड़ते हैं; किन्तु मलाया, सुमात्रा और मडागास्करके निवासियोंसे अधिक मिलते-जुलते हैं। द्राविड़ोंका सूल वंश चाहे जो हो—जहाँ हुआ हो; किन्तु यह निश्चय है कि, वे इस देशमें हजारों वर्ष पूर्वसे बसे हुए हैं और सृष्टिके विकास-क्रमानुसार उनके शारीरिक गठनमें बहुत-कुछ परिवर्तन हो गया है। उनकी आकृति-पर भारतीय जलवायु एवं प्राकृतिक क्रान्तियोंका बहुत-कुछ प्रभाव पड़ चुका है।

द्राविड़जाति उत्तर-पश्चिमसे विदेशी आक्रमणकारियों—आर्यों, सीथियनों, पठानों और मुगलों—द्वारा तथा उत्तर-पूर्वसे ब्रह्म-निवासी विभिन्न मङ्गोल-जातियों द्वारा यहाँसे मार भगायी गयी। विदेशी अंशों और द्राविड़ोंके बीच यहीं वह सम्मिश्रण-रेखा झलकती है, जहाँसे भारतवर्षके वर्तमान सन्निकृष्ट वंशों (contiguors races) की उत्पत्तिका श्रीगणेश होता है।

शारीरिक गठनके अनुसार सर हेनरी रिज्लीने भारतवासियोंको, मुख्य सात विभिन्न श्रेणियोंमें, विभक्त किया है।* अन्दमननिवासियोंको भी यदि इनमें सम्मिलित कर लिया जाय, तो आठ श्रेणियाँ हो सकती हैं; किन्तु उनको यहाँ शामिल करनेकी जरूरत नहीं है। वे सात श्रेणियाँ ये हैं—(१) तुर्की-इरानी, (२) भारतीय-आर्य, (३) सीथियन-द्राविड़, (४) आर्य-द्राविड़ या हिन्दुस्तानी, (५) मङ्गोल-द्राविड़, (६) मङ्गोल और (७) द्राविड़।

(१) तुर्की-इरानी—इस श्रेणीमें बलूच, ब्राहुई (Brahui) और अफ़गानिस्तानी तथा पश्चिमोत्तर प्रदेशके अफ़गानी आते हैं। सम्भवतः इस जातिकी उत्पत्ति तुर्कियों और पारसियोंके सम्मिश्रणसे हुई है, जिसमें अधिक अंश तुर्कोंका है। इस श्रेणीके मनुष्योंकी लम्बाई साधारणतया अधिक, रंग साफ़, आँखें अधिकतर काली—कहीं-कहीं भूरी, मुँहपर बाल, ललाट चौड़ा, नाकें ऊँची, लम्बी तथा कुछ छोटी छिद्रवाली होती हैं। सबसे स्पष्ट विभेदात्मक चिह्न इनकी नाकोंकी लम्बाई है; और, सम्भवतः इसी कारण कुछ लोगोंकी धारणा है कि, यहूदियोंके मूल-वंशसे

* Caste, Tribe and Race, Indan Census Report, 1901; the Gazotteer of India, Ethnology and Caste, Volume 1, Chapter 6.

श्रक गानोंकी उत्पत्ति हुई है।

(२) भारतीय आर्य—इस श्रेणीके मनुष्य पञ्जाब, राजपुताना और काश्मीरमें पाये जाते हैं। राजपूत, खत्री तथा जाट आदि जातियाँ इसी श्रेणीके मनुष्योंकी हैं। भारतवर्षके परम्परागत या पौराणिक आर्य अथवा औपनिवेशिक आर्य ये ही हैं। इसी श्रेणीके मनुष्य, तुर्की-इरानियोंसे सहजमें ही विश्लिष्ट किये जा सकते हैं। यह अधिकांश तगड़े होते हैं। रंग साफ़, आँखें काली तथा मूँछों, दाढ़ी और सरके वाल घने होते हैं। इनका माथा लम्बा, नाकोंके छेद छोटे, नाकें ऊँची—किन्तु विशेष बड़ी नहीं—होती हैं।

(३) सीथियन-द्राविड़—इस श्रेणीके नुष्योंमें महाराष्ट्री ब्राह्मण, कुम्बी (या कुन्बी = kunbis) और कुर्ग तथा पश्चिम-भारतके निवासी हैं। जान पड़ता है कि, सीथियन और द्राविड़जातिके सम्मिश्रण-से ही इस श्रेणीके मनुष्योंकी उत्पत्ति हुई है। तुर्की-इरानियोंसे ये कुछ छोटे क़दके होते हैं। उनकी अपेक्षा इनका माथा कुछ अधिक लम्बा, नाकोंके छिद्र कुछ अधिक बड़े और नाकें छोटी होती हैं। इस प्रकारके विभेदात्मक चिह्नोंका कारण द्राविड़-अंशकी अधिकता एवं विभिन्नता है। इस श्रेणीकी ऊँची जातिके मनुष्योंमें तो ऐसे विभेदात्मक चिह्न बहुत कम; किन्तु निम्न कुलोंमें अधिक, स्पष्ट, पाये जाते हैं। यह बात प्रत्येक श्रेणीके मनुष्योंमें पायी जाती है।

(४) आर्य-द्राविड़ या हिन्दुस्तानी—इस श्रेणी-के मनुष्य युक्तप्रान्त, राजपूतानेके कुछ भागों और बिहारमें पाये जाते हैं। ऊँची श्रेणीमें ब्राह्मण और निम्न श्रेणीमें चमार हैं। इस विभेदका कारण भारतीय-आर्य और द्राविड़जातिके सम्भवतः न्यूना-धिक अंशोंका परस्पर सम्मिश्रण है। इस शाखाके मनुष्योंका माथा कुछ लम्बा और अधिकांश माध्यम श्रेणीका—अधिक बड़ा, न अधिक छोटा—होता है। रंग साधारणतया साफ़ (Lightish brown) और कालेके बीचमें होता है; अर्थात् कोई साधा-रणतया गोरा, कोई उससे भी कम, कोई साँवला और कोई काला भी होता है। नाकें भारतीय-आर्यों-की अपेक्षा, माध्यमसे कुछ अधिक, चौड़ी मिलती हैं। उनकी अपेक्षा इनका क़द कुछ छोटा और साधारण नापसे छोटा होता है। यद्यपि इस श्रेणीके उच्च कुल-के मनुष्य भारतीय-आर्योंसे तथा निम्न कुलके मनुष्य द्राविड़ोंसे अधिकांशतः मिलते-जुलते हैं; तो भी उच्च कुलके हिन्दुस्तानी मनुष्यों—ब्राह्मणों—को हम भार-तीय-आर्य तथा निम्न कुलके मनुष्यों—चमारों—को मूल द्राविड़का रूप नहीं दे सकते। इस श्रेणीके मनुष्यों-की विभिन्न आकृति अथवा गठन-सम्बन्धी विभेदा-त्मक चिह्न—जिससे हम इनके मूल-वंशका पता लगा सकें—इनकी नाकोंका आकृति-विशेष है।

(५) मङ्गोल-द्राविड़—इस श्रेणीके मनुष्यों-में निम्न बङ्गाल और उड़ीसाके बङ्गाली हैं; विशेषतः बङ्गाली ब्राह्मण और कायस्थ, पूर्वीय बङ्गालके मुसल-मान तथा इन्हींकी आकृति एवं गठनके अन्य भार-तीय हैं। इस श्रेणीके मनुष्योंकी उत्पत्ति द्राविड़ों और मङ्गोलोंके सम्मिश्रणसे हुई है। हाँ, इस श्रेणीके उच्च कुलके मनुष्योंमें भारतीय आर्योंके बीज-का अत्यन्त आकर्षण अवश्य है। ऐसे मनुष्योंका माथा चौड़ा, रंग साँवला या काला, सामान्य रूपसे केशोंकी अधिकता, क़द मँझला (बीचका) और नाकें माध्यम श्रेणीकी—कहीं-कहीं—नाम मात्रकी

चौड़ी होती हैं। इनकी विशेषता यह है कि, इनमें क़िरानीगिरी करनेकी प्रवृत्ति अधिक होती है ! सारे भारतवर्षमें यह फैले हुए हैं। इनकी निवास-भूमिकी सीमा उत्तरमें हिमालय पर्वत, दक्षिणमें उड़ीसाका कुछ भाग, पूर्वमें आसाम तथा पश्चिममें पश्चिमीय बङ्गाल है। छोटानागपुरकी उपत्यकाओंमें भी ऐसे मनुष्य मिलते हैं।

(६) मङ्गोल-श्रेणीके मनुष्य हिमालय, नेपाल, आसाम और ब्रह्म देशोंमें पाये जाते हैं, जिन्हें हम लहुट और कुलुमे, मनेत या मनेट, दार्जिलिङ्ग और सिक्कममें लेप्चा, नेपालमें लिम्बु-मुर्मी और गुरुङ्ग, आसाममें बोदो और ब्रह्म देशमें बर्मी कहते हैं। इनका ललाट चौड़ा, रंग कुछ पीलापन लिये हुए साँवला या काला, केश छोटे-छोटे और कम, क़द ठिँगना या अपेक्षाकृत छोटा, नाकें पतली और कुछ चिपटी, मुँह विशेषतया चौड़ा तथा चितवनमें बाँका-पन होता है।

(७) द्राविड़-श्रेणी—इस श्रेणीके मनुष्य गङ्गा-की दरी, मद्रास, हैदराबाद, मध्यप्रदेश, छोटानागपुर और मध्यभारत (C. I.) के अधिकांश भागोंमें बसते हैं। मालाबारके पनियन (paniyans) और छोटानागपुरके सन्ताली इसी श्रेणीके मनुष्य हैं। सम्भवतः भारतवर्षके आदिनिवासी द्राविड़ ये ही हैं। आर्यों, सीथियनों और मङ्गोलोंके साथ इनका सम्मिश्रण हो जानेके कारण, इनकी मूल आकृति एवं गठनमें, अब कुछ अन्तर आ गया है। साधारण नापसे इनका क़द छोटा होता है। यह अधिक काले और घने तथा कुञ्चित केशोंवाले होते हैं। इनकी आँखें काली, माथा लम्बा, नाकें चौड़ी और कहीं-कहीं अधिक चपटी होती हैं। ऐसी चपटी और भद्दी नाकें होनेपर भी इनका मुँह चिपटा नहीं होता। चूँकि इस देशकी सबसे प्राचीन जातिके ये ही हैं; इसलिये ये इस देशके प्राचीन भौगोलिक स्थानों—विन्ध्यगिरिसे केप कमोरिनतककी पर्वत-श्रेणियोंकी उपत्यकाओं तथा सघन जङ्गलों—में ही अधिकांश मिलते हैं। सम्भव है, यही इनकी प्राचीन निवास-भूमि रही हो। द्वीपकल्पस्थ क्षेत्र (Peninsular area)के पूर्व और पश्चिममें तो, द्राविड़-प्रदेश, पूर्वीय और पश्चिमीय घाटोंसे सीमित है; किन्तु उत्तरीय सीमा एक ओर अरावली और दूसरी ओर राजमहलकी पहाड़ियोंको छूती है। जहाँ भारतीय आर्यों या मङ्गोलोंसे सम्पर्क होनेपर भी इनकी वास्तविक आकृति एवं गठनमें कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ है, वहाँ सहजमें ही इनकी भिन्न जाति पहचानी जा सकती है। परिश्रम करना इनका जन्म-सिद्ध अधिकार है—चाहे ये आसाम, दुआर या लङ्काके चाय बागानोंमें काम कर रहे हों, पूर्वीय बङ्गालकी कच्छ-भूमिमें धान काट रहे हों अथवा रङ्गून, सिंगापुर और कलकत्तेकी सड़कोंमें रोड़े बिछा रहे हों। हम इन्हें, इनकी आब-नूसी सूरत, इनके बैठनेके ढङ्ग और इनकी नीग्रो-जैसी नाकोंको देखकर, सहजमें ही, पहचान सकते हैं। सबसे विशेषता तो यह है कि, इनके रहन-सहन तथा वस्त्रादि बिलकुल एक ही ढङ्गके होते हैं।

वैसे तो अब भी कई स्थानोंमें, कुछ विभेदात्मक रूपमें, प्राचीन मूल द्राविड़जाति है सही; किन्तु सच तो यह है कि, इन दिनों यह जाति (मूल-द्राविड़) बहुत कम देखनेमें आती है; और, जान पड़ता है, कुछ ही वर्षोंमें इस जातिका लोप हो जायगा अथवा इसमें इतना परिवर्तन हो जायगा कि, इसका रूप ही दूसरा हो जायगा और यह पहचानी भी नहीं जा सकेगी !

ग्रीक साहित्य

श्रीयुत उमेश्वरप्रसाद

संसारके इतिहासमें ग्रीक साहित्यको अत्युच्च स्थान प्राप्त है। यह उन्नत स्थान ग्रीक सभ्यताके ही अनुरूप है।

इसका वास्तविक प्रारम्भ 'होमर'के महाकाव्यसे होता है। उन्होंने महाकाव्य-ग्रन्थकी रचना करके वस्तुतः साहित्य-संसारकी एक बड़ी सेवा की; किन्तु अबतक भी हम लोग उनके साधारण जीवनकी बहुत ही कम बातोंसे परिचित हैं। "इलियड" और "ओडेसी" इन्हींकी कृतियाँ कही जाती हैं; परन्तु इस विषयमें अनेकोंको सन्देह है।

ईसाके लगभग ८०० वर्ष पूर्व 'हेसियड' (Hesiod) नामक एक श्रेष्ठ महाकाव्य-लेखकका प्रादुर्भाव हुआ था, जिन्होंने जीवनकी जटिल ग्रन्थियोंका, अत्यन्त सरलतापूर्वक, सुलझन, "कर्म और दिन" (Works and days) नामक ग्रन्थमें, किया है। थियोगनी (Theogony) में उन्होंने सृष्टिकी रचना एवं देवताओंके जन्मकी कथा, बड़ी ही ललित, रोचक एवं आकर्षक भाषामें, कही है। ईसाके ७०० वर्ष पूर्वके पश्चात् ग्रीसमें जितने कवि हुए, उन सबकी प्रवृत्ति विशेषतः कल्पना और आत्म-भावके प्रकाशनकी ओर मुड़ी हुई थी। काल्पनिक जगत्‌में भ्रमण करनेवाले उन कवियोंमें टॉरटियस (Tyrtaeus), सैफो (Sappho) तथा एनाक्रोन (Anacreon) को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। गीति-काव्यका सत्यतः वह स्वर्णयुग था, जिसकी गौरव-वस्तु, आभा एवं मणि थे "सैफो"।

ग्रीक साहित्यके दुःखान्त नाटकमें एसकिलस (Aeschylus; 525—456, B. C.), सोफोक्लीस (Sophocles; 495—407, B. C.) एवं योरीपीडस (Euripides; 480—406, B. C.) के नाम विशेषरूपसे उल्लेखनीय हैं। सच पूछिये तो इस विषयमें, संसारमें, ग्रीक साहित्य अपना सानी नहीं रखता।

एसकिलसकी सर्वोत्तम रचना "प्रोमिथियस" (Prometheus) एक महान् लेखककी अद्भुत प्रतिभा एवं लेखन-शक्तिका जबर्दस्त उदाहरण है।

सोफोक्लिस आदि नाट्य-शास्त्रके एक महान् पण्डित एवं सफल अभिनेता थे। उनकी कवितामें वह ओज, प्रसाद गुण और माधुर्यका सुन्दर समन्वय हुआ है, जो अन्य कवियोंके लिये अप्राप्य-सा है। उनकी कृतियोंमें ओडिपस (Oedipus) और एंटीगन (Antigone) का, विद्वन्मण्डलीमें, काफी प्रचार एवं

सम्मान है और ये ही उनकी।अमर कीर्त्तिके सुदृढ़ स्तम्भ भी हैं। मानवीय दुर्बलताओं तथा करुणरसका जो सजीव चित्रण योरीपीडसने अपनी मौलिक, मधुर एवं ललित शैलीमें, किया है, वह वस्तुतः अपूर्व है, अतुलनीय है। इस दिशामें वह उपर्युक्त दो महान् लेखकोंसे भी, कई अंशोंमें, आगे बढ़ गये हैं। एलकेसटिस् (Alcestis), मिडिया (Medea) और इफिगेनिया (Iphigenia) उनकी सर्वोत्तम रचनाओंमेंसे हैं, जिनकी उचित प्रशंसा आज भी की जा रही है। इन महानुभावोंने आश्चर्यमयी कवितामें विकसित प्रतिभाका पूर्ण परिचय देकर तथा ग्रीक साहित्यके क्षीण अङ्गोंकी पुष्टि कर विश्व-साहित्यके इतिहासमें गौरवमय स्थान प्राप्त किया है।

सुखान्त साहित्यके क्षेत्रमें एरिस्टोफेंन्स (Aristophans) और मिनैंडर (Menander) के ही नाम विशेष प्रख्यात हैं। एरिस्टोफेंसने अपने नाटकोंमें अधिकतया राजनीतिक अथवा ग्रीक समाजकी विकट समस्याओंको हल किया है। बल्कि कहीं-कहीं छन्दोबद्ध गीतिके कारण उनकी रचनामें एक नूतन रस, नवीन ओज एवं अद्भुत लालित्यका आभास हो उठता है। उनके अवतकके प्राप्य ग्रन्थोंमें 'Clouds', 'Wasps', 'Birds', 'Frogs' आदि प्रमुख हैं। मिनैंडर भी एक अत्यन्त सुदूरदर्शी कलाविद् और नाट्य-शास्त्रके पण्डित थे; किन्तु साहित्यके दुर्भाग्यसे उनकी बहुत ही कम पुस्तकें आज उपलब्ध हैं।

ईसाके पूर्व छठी शताब्दीमें, इतिहासके जन्मदाता हेरोडोटस (Herodotus) के साथ ही, गद्य-साहित्यका भी प्रारम्भ हुआ। उन्होंने प्रायः नौ ग्रन्थोंमें ग्रीक और एशियावालोंके बीच युद्धका वर्णन, बड़ी ही रोचक शैलीमें, किया है; किन्तु युद्धके ऐतिहासिक तत्त्वपर काफी प्रकाश न डालकर और पौराणिक कथानकोंकी शरण लेकर सचमुच ही उन्होंने अपने ग्रन्थोंको निर्दोष न होने दिया। वास्तविक इतिहासके संस्थापक होनेका श्रेय, कम-से-कम मेकालेकी रायमें, ग्रीसके थीसीडीडेस (Thycydides) को ही प्राप्त है। उनकी भाषा ललित, प्राञ्जल एवं सरल है; किन्तु है ओजःपूर्ण तथा प्रसाद-गुण-मण्डित। इन्होंने 'An account of the Peloponnesian war' अर्थात् पेलोपोनिसियन युद्ध-कथामें, अपनी प्रतिभा और ज्ञान-गाम्भीर्यका पूर्ण परिचय दिया है।

एनाबेसिस (Anabasis) के रचयिता एक्सोफनका नाम भी विशेष उल्लेखनीय है, जिन्होंने अपनी पुस्तकमें आत्मानुभूत, औत्सुक्यमय तथा उत्साहपूर्ण कार्योंके वर्णनका एक ताँता ही बाँध दिया है।

सुप्रसिद्ध कहानी लेखक एसोप (Aeshop) का आगमन इसी साहित्य-कालमें हुआ था। इनकी कहानियाँ, अत्यन्त सदुपदेश-पूर्ण, सरस और रुचिकर होनेके कारण, आज भी बड़े चावसे पढ़ी जाती हैं। अध्यवसाय, उत्साह एवं कठिनतम परिश्रमका उपर्युक्त दृष्टान्त डेमॉस्थनिज (Domosthenes) से बढ़कर भला और क्या होगा? वक्तृत्व-कलामें उन्होंने किस प्रकार निपुणता प्राप्त की तथा ग्रीक समाजपर कैसे अपना प्रभाव डाला, वस्तुतः यह बड़ा ही अद्भुत है। उनके भाषण तो उस समय राष्ट्रके प्राण ही हो रहे थे।

ग्रीक साहित्यकी महान् उन्नति दर्शन-शास्त्रमें ही हुई। सुकरात (४६८-३९९ B. C.), प्लेटो (४२९-३४७ B. C.) एवं ऑरिस्टाट्ल (३८४-३२२ B.C.) ग्रीक-दर्शन-व्योमके तीन अत्यन्त उदीयमान एवं

उज्ज्वल सितारे थे। सर्वश्रेष्ठ होनेपर भी सुकरातने कुछ लिखा नहीं; किन्तु उनके प्रिय शिष्य प्लेटोके द्वारा हमें उनके विषयकी बहुत कुछ बातें ज्ञात हो जाती हैं। प्लेटो और ऑरिस्टाटलमें अनेक भाव-विभिन्नताएँ हैं; किन्तु दोनों ही दर्शनशास्त्रके उद्भट विद्वान् और प्रकाण्ड पण्डित समझे जाते हैं। दोनों ही मध्यकालीन यूरोपके नैतिक विकासके लिये उत्तरदायी हैं। आज भी ये दर्शन-संसारके तीन देदीप्यमान, शुभ्रतम माणिक्य हैं—तीन गौरवमयी विभूतियाँ हैं। सुप्रसिद्ध दार्शनिक एपिक्यूरस (Epicurus) और जीनो (Zeno) के नाम भी इस क्षेत्रमें लिये जाते हैं। एपिक्यूरस कष्टकी अनुपस्थिति एवं मानसिक शक्तिपर विशेष दवाव डालते हैं। उनकी नीतिमें धर्म ही सुखकी मूलभित्ति और सर्वश्रेष्ठ साधन है। परन्तु समयके प्रभावसे लोगोंने उनकी नीतिको एकदम परिवर्त्तित रूप दे उसे वासना, भोग और विलासकी ओर बढ़ाया। विवेकका आज्ञापालन और नियमित जीवन व्यतीत करनेके लिये जीनोने अधिक जोर दिया; क्योंकि उनकी रायमें पूर्णत्व (ब्रह्म) की प्राप्तिके हेतु ये ही हैं।

ईसाके पूर्व ४९४ से ३२२ ई० तक ग्रीक जातिने साहित्य और विज्ञानके भिन्न-भिन्न क्षेत्रोंमें आश्चर्यजनक उन्नति की और यही उनके इतिहासमें "स्वर्ण-युग" के नामसे प्रसिद्ध भी है।

ऑरिस्टाटलकी मृत्युके अनन्तर सिकन्दरिया (Alexandria) ही ज्ञान और व्यापारका सर्वश्रेष्ठ केन्द्र था। यहीं थियोक्रिटस (Theocritus) नामक एक महान् प्रतिभाशाली कविका प्रदुर्भाव हुआ, जिन्होंने "Idylls" नाम्नी अपनी पुस्तकमें ग्राम्य-वासियोंका बड़ा ही सजीव चरित्र-चित्रण किया है। परजिल, मिल्टन, शेली एवं ऑरनल्डकी कविताओंमें इनकी प्रतिभाका स्पष्ट प्रतिविम्ब दीख पड़ता है।

प्लुटार्क तथा औरेक्लियस (Plutarch और Aureclius) नामक दो लेखकोंको विद्वत्समाजमें काफी सम्मान प्राप्त है। विशेषतः प्लुटार्कको तो विद्वन्मण्डली कवि-श्रेष्ठ शेक्सपियरके कारण खूब ही जानती है।

५६५—१४५३ ईस्वी सन्का काल ग्रीक साहित्यके इतिहासमें एकदम नीरस, सूखा और प्रतिभाहीन है। इसके पश्चात् साहित्य-क्षेत्रमें एक नवीन ओज आया, एक नवीन जागृति हुई, जिसका प्रभाव आस-पासके सभी देशोंपर पड़ा; और, वह भी भली भाँति। इसीको हम अँग्रेजीमें 'Revival of Learning' कहते हैं।

वस्तुतः ग्रीक साहित्य अमर है। यही नहीं, बल्कि संसारके साहित्यका पथप्रदर्शक भी है। उन्नत साहित्य-कलाके निर्माण-कर्त्ता ग्रीसके सभ्य-निवासी थे, जिनकी स्मृति आते ही संसारका मस्तक श्रद्धा और प्रेमसे झुक जाता है।*

---

* एक अँग्रेजी लेखके आधारपर। लेखक

अरब और फारस

पाण्डेय रामावतार शर्मा एम० ए०, बी० एल

अरब और फारस आर्य्योंके प्रसिद्ध उपनिवेश हैं। वहाँ वे कितने कालतक रहे, यह कहना असम्भव है; पर वहाँ वे अतुल वैभवके भोक्ता बने, इसके यथेष्ट प्रमाण हैं। फारससे भी बढ़कर ख्याति अरब देशकी हुई वह जिस प्रकार यूरोप और पूर्वी एशियाके वाणिज्यका मध्य स्थल था, उसी प्रकार मिश्र और भारतके बीचके व्यापारका भी। इतिहाससे पता चलता है कि, मूसाके समय भारत और अरबके बीच बड़ा वाणिज्य था। डियोडोरसने ईमेन प्रदेशको संसारका वाणिज्य-भाण्डार बताया है। स्ट्रैबोने अरबियोंके सुवर्ण-भूषण और सुवर्णजटित अस्त्रोंकी प्रशंसा की है। भारतसे रोम जानेवाली वस्तुओंका केन्द्र अदन था। सोना, चाँदी, पीतल, शीशा, हाथीदाँत, मलमल, मखमल, कम्बल इत्यादि भारतसे अरबको जाते थे और अरबसे यूरोपीय देशोंको। अरबके निवासी अतिथि-प्रेमी, कार्य्य-निपुण और अच्छे घुड़सवार थे। उधर फारसके मग अपनी वीरतामें अद्वितीय थे। उनकी विद्वत्ता भी प्रकाण्ड थी। फारससे वे अस्ट्रिया, पोलैण्ड, इटली, मिश्र आदि देशोंमें भी पहुचे और अपना आतङ्क जमाया।

इस सम्बन्धमें ऐसा प्रश्न उठ सकता है कि, भारतके आर्य्यों को अरब तथा फारसमें ऐसी ख्याति और स्तुति पानेके क्या प्रमाण है? मैं तो इन प्रदेशोंके नगरों तथा निवासियोंके नामकी जाँच ही इसका पक्का प्रमाण समझता हूँ। सहस्रों वर्ष व्यतीत हो जानेपर भी अरब और फारसके ऐतिहासिक अपनेको भारतका ऋणी भी स्वीकार करनेमें तनिक भी संकोच नहीं करते। उनके नगरों तथा प्रान्तोंके नाम भी संस्कृत-शब्दोंके विकृत रूपोंके सिवा कुछ नहीं है। निष्पक्ष विचारसे यह मानना ही पड़ता है कि, किसी समयमें अरबके आसपास संस्कृत-भाषियोंका साम्राज्य था और आर्य-सभ्यताका आलोक उस भागको प्रकाशित कर रहा था। काल-चक्रने भारतके ही गौरवके समान उस आलोकको भी नष्ट ही कर छोड़ा।

अरब शब्दकी व्युत्पत्तिका सन्तोषजनक उत्तर भारतीय पौराणिक कथाओंसे ही मिलता है, क्रिस्तानी या इस्लामी प्राचीन ग्रन्थोंसे नहीं। अरबी 'अरब' नामको यारबसे उत्पन्न बतलाते हैं। यारब जोक्तन-तनय कहा जाता है। कुछ ईसाई इसे स्वीकार न कर कहते हैं कि, इस नामका जोक्तनके कोई पुत्र नहीं था। ईसाई इतिहास-लेखक अरब शब्दको हिब्रू-शब्द 'अरबा-अरोबा' से बना मानते हैं। इस शब्दका अर्थ है चौरस मैदान या भूमि। जेनेसिस (Genesis) के अनुसार भी अरबका अर्थ 'भूमि' है; और, इसका नाम है—Tho land of shinar. पौराणिक घटनाओंसे मालूम होता है कि अरबका प्राचीन नाम 'नाभि, सुमेरु या भूमि' था। पारसी मतके अनुकूल भी यही नाम ठीक जँचता है। बाद उसका नाम अरब पड़ा। यह और्व नामसे निकला हुआ जान पड़ता है। और्व एक मुनिका नाम था, जिनके वंशमें वीरशिरोमणि परशुरामका जन्म हुआ था।

ऐसी धारणाके और भी अनेक प्रमाण हैं। अरबियोंके प्राचीन धर्म, अरबकी प्राचीन जातियों और अरबके प्रान्तोंके

बाबू मदनमोहन ठाकुर

एक निम्न स्थानसे आपने अपने पौरुषके प्रतापसे अतुल यश और अमित सम्पत्ति अर्जित की। भागलपुरके सुप्रसिद्ध बरारी इस्टेटके आप ही संस्थापक हैं।

बाबू प्राणमोहन ठाकुर

आपने बरारी इस्टेटकी बड़ी उन्नति की। आप धर्म-प्राण, जाति-भक्त और मातृभाषाके बड़े प्रेमी थे। आपके दो पुत्र-रत्न और बरारी इस्टेटके वर्त्तमान अधिपति बाबू नरेशमोहन ठाकुर और बाबू सूर्यमोहन ठाकुर हैं।

इस पर विचार करनेसे यह धारणा दृढ़ हो जाती है कि, अत्यन्त प्राचीन कालमें आर्य्य लोग भारतसे वहाँ जाकर वसे। आजकी हमारी अनेक पौराणिक धारणाएँ तवके अरवके धर्म्म, जाति और प्रान्तोंसे एकदम मिलती पायी जाती हैं। प्रमाणके लिये हमें अरवका इतिहास देखना चाहिये। क्रिक्टन महोदयने लिखा है कि, अरवका प्राचीन धर्म्म सवइज्म (sabaism, sabean_ism) अर्थात् शैव था। अरव-निवासी तव मूर्तिपूजामें लीन थे, ग्रहोंकी उपासना करते थे और उनके ७ मुख्य मन्दिर थे। मक्केमें जोहल या शनि (Saturn) का, सनामें शुक्र (Venus) का, अदनमें हम्फरी-वंशियोंका सूर्यका मन्दिर था। इसी प्रकार कोई वृहस्पति (Jupiter) की, कोई मंगल (Mars) की और कोई मूर्तियोंकी पूजा करता था। कुरान शरीफकी तीन प्रधान देवियोंके तीन मन्दिर थे— अल-लताहका मन्दिर फैतके पास नक्लहमें, अलउजा (शुक्राचार्य) का कुरशि-देशमें और मनाह (एक फीट मोटा पाषाण, ४ फीट ऊँची, २ फीट चौड़ी) की एक काली पत्थरकी मूर्ति। इनके अलावा और छः मूर्तियोंका वर्णन कुरान शरीफमें मिलता है। इनमें पैगम्बर हजरत मुहम्मद साहब मनाहके वड़े भक्त थे और उन्होंने ईस्माइल, अव्राहम और होवलकी मूर्तियोंके स्थानमें मक्केमें मनाहकी ही स्थापना की। अब वह मनाह 'संग-असवद'के नामसे विख्यात है। वह रंगमें काली और आकारमें शिवाकार (semi-circular) है। वर्णन है कि, २५ रामदान (रमज़ान-रामदिन) को पैगम्बर साहबको जिव्राइलका दर्शन हेरा पर्वतपर हुआ, जिव्राइल थे गरुड़ारूढ़ और मुकुट-धारी। हजरत महम्मद साहब केदार-वंशज बताये जाते हैं, जिस वंशमें एक शेवा (sheba शैव) हुई और शेवाके भाईका नाम रमा था। इन वातोंसे विदित होता है कि, अरवमें हजरत मुहम्मद साहबके समयतक शैव मतका प्रावल्य था। लोग शिवकी मूर्तियोंकी पूजा करते थे, शिवसे सम्बन्ध रखनेवाले शब्दोंके नामपर नगरों और पुरुषोंके नाम भी रखे गये थे। कुरान शरीफ़की प्राचीन वातें भी पौराणिक आख्यायिकाओंसे मिलती हैं और नाम भी वैसे ही हैं। कालान्तरसे उनका परिवर्तित रूप अवश्य हो गया है। अरवकी जातियों और प्रान्तोंके नाम भी विचारने ही योग्य हैं। चौधरी धनराज सिंहजीने अपने कुछ लेखोंमें इसका मनोरञ्जक चित्रण-किया है। वे लेख निश्चय ही शब्द-साम्यका प्रश्न उठाकर वालकी खाल छुड़ानेवालोंको सुन्दर उत्तर हैं; साथ ही उनसे अनेक वातें भी विदित होती हैं।

अब फारसके प्रश्नपर थोड़ा विचार कीजिये। मनुस्मृतिके पारद फारसमें ही वसे थे। पारदोंके ही वंशज इंडो-पर्थियनके नामसे भारतमें आये। यूची भी दूसरे नहीं थे। यहींके आदिम निवासी थे; फिर यहीं आकर यहाँकी जातियोंमें मिल गये। पल्लव भी फारसमें ही बसे थे और वहाँ वे अपनी वीरताके लिये वहुत विख्यात हुए। इसके प्रमाणमें फारसकी दो मुख्य भाषाएँ मीडी और पहलवीपर ध्यान देना चाहिये। पहलवी पल्लवोंकी भाषा थी और उनकी वीरताके कारण पहलवानों (The valiant) की भाषा कही गयी। मीडी मगोंकी भाषा थी, जिसमें फारसियोंका प्रसिद्ध धर्म-ग्रन्थ जेन्द है।

'मग' नामपर हमें आश्चर्य नहीं करना चाहिये। मगध नामसे भी मगका सम्बन्ध है और हम जानते हैं कि, मग जातिके लोग भारतमें भी थे। फ़ारसमें मगोंने भारी कीर्ति पैदा की। वहाँके इतिहासमें वे अपनी श्रेष्ठता, विद्वत्ता और वीरताके लिये प्रसिद्ध हुए। शिक्षा और विद्याका भार उन्हींपर था और वे वज़ीर तथा नायकका काम करते थे। धार्म्मिक सम्बन्ध उनका अवश्य ही भारतके ब्राह्मणोंसे था। वे फारसके वाहर मिश्र तथा यूरोपमें भी गये और कई देशोंपर अधिकार किया। आस्ट्रिया और पोलैण्डके Magnats मगवंशज ही मालूम होते हैं और यह शब्द

'मग-नाती'सा मालूम होता है। कैल्डियाके मैगोस (Magos), इटलीके मैग्नस (Magnus) और वेनिसके मैग्निफिसियो (Magnificio) भी मग ही थे। पाणिनिके समयतक इनके वंशजोंकी वीरता प्रसिद्ध थी, जिसका प्रमाण इस सूत्रमें मिलता है—"पर्शवादियौधेयादिभ्योऽपाणौ ।" (५-३-१७)।

इन मगोंका सम्बन्ध अरबके भारतीयोंसे भी था और विशेष था; क्योंकि मगोंके इन पाँच गोत्रोंमें—और्व्व, च्यवन, आप्नुवान्, यमदग्नि, और भृगु—और्व्व नाम भी है। इनमें च्यवन गोत्रवाले यूची थे, जिनका एक दल अरबमें केदारमें बसता था। अबतक इनमें कोई विरोधका भाव नहीं मिलता। बल्कि भारतीयोंकी ही नाईं देव और असुर इन्हें प्रिय नाम थे। पर यहाँ शतपथके इन उद्धरणोंपर थोड़ा ध्यान देना चाहिये—"ऊर्गिति देवा मायेत्यसुराः।" "प्राणो वा असुस्तस्यैषा माया।" इनमें 'माया' शब्दका प्रयोग हुआ है, जिसका सम्बन्ध मगसे बने 'Magica', Magician' शब्दोंसे विदित होता है। इन दोनों शब्दोंका आधुनिक अर्थ माया और मायावी ही है। आज हम उपद्रवी असुरों और राक्षसोंको मायावी मानते हैं; पर वास्तवमें ऐसा भाव पीछेका है।

इस तरह अरब और फारससे भारतका अति प्राचीन सम्बन्ध सिद्ध होता है। पर बात इतनी ही नहीं है। और-और नामोंसे भी भारतीय उस ओर बसे थे, बल्कि उधरकी भूमि ही मध्यदेश कहकर विख्यात थी। आज भी हम अरबके पश्चिममें सीरिया, पैलेस्टाइन, मिश्र आदि देश देखते हैं। इनके साथ भी अरब और फारसके निवासियोंका कुछ-न-कुछ सम्बन्ध अवश्य रहा होगा, जब इनके बीच आवागमनमें कोई बाधा न थी। इसके प्रमाणके लिये मूरों और सरसेनियोंका इतिहास पढ़ना चाहिये।

यहाँ हमें आपके सामने सरसेनियोंके सम्बन्धमें कुछ कहनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है; क्योंकि उनके इतिहासपर दृष्टि डाले बिना विषयका ऐतिहासिक महत्त्व प्रकट नहीं हो सकता।

अरबके इतिहासकी बातोंके अनुकूल हमें स्वीकार करना चाहिये कि, शूरसेन-वंशजोंका प्रभुत्व आर्यावर्त्तके बाहर प्रकट हुआ। कंश-पितामह शूरसेनकी नौ पीढ़ियोंके पहले भी एक शूरसेन हो चुके थे।

अरबके इतिहासज्ञ अरबमें सरासिन्स (Saracens) के आतङ्कपर चकित होते हुए इस शब्दकी व्युत्पत्तिमें परेशान हो चुके हैं; पर ठीक पता न पाकर उन्हें यह मानना पड़ा है कि, अरबीके शर्क शब्दसे इसका सम्बन्ध है।* हम भी इसी शब्दको लें। शर्कके मानी हैं—'पूरब', जिससे पूर्वी देश लिया जा सकता है। शर्कसे आनेवाली जाति शर्की कही जा सकती है; पर हम एशियाका आधुनिक मानचित्र ही देखें। अरबके पूरबमें कौन देश है? एकमात्र भारत या आर्यावर्त्त। अतः शूरसेनोंका यहींसे अरबमें जाना बेधड़क माना जा सकता है। यहाँ पुराण भी समर्थन करता है कि, शूरसेन-वंशजोंका एक दल था। यही दल या इसीका भाग अरबमें जा बसा और प्राचीन अरबियोंने इस नामसे आठ वर्षोंमें ही इतना बड़ा साम्राज्य स्थापित कर लिया, जितने बड़े राज्यकी स्थापनामें रोमनोंको लगभग ८०० वर्ष लगे थे।

वे सरसेनी ईसाइयोंके शत्रु थे और ईसाईयोंकी कुजेडकी लड़ाइयोंमें इनका भारी संहार हुआ। ३६३ ई० में इनके द्वारा रोमन भारी हार खा चुके थे, जिसका बदला उनने ५८८ ई० में सरसेनी-सरदार आदरमनको परास्त कर लिया। ६२१ ई० में हेराके मनधीर नामक नायकने सीरियाके ईसाइयोंको केवल परास्त किया। इन घटनाओंके बहुत पहले कार्नवाल और डेवनशायरमें सरसेनी जा बसे थे।

किन्तु सरसेनियोंका आतङ्क बहुत कालतक नहीं ठहर

* History fo Arabia by A. Crichton. P. 305.

था। इसका कारण पारस्परिक वैमनस्य था। इसके बीच एक विरोधी दल खड़ा हो गया, जो अपने परम्परागत आचार-विचारको पसन्द नहीं करता था। सम्भव है कि, उस दलने अरब तथा फारसके प्राचीन धर्मका विरोध करना प्रारम्भ किया हो। उस दलके लोग अरबके शेबाके ऊपर बहरैनमें बसते थे। वे बली और पराक्रमी थे; पर अपने कुलके धार्मिक सिद्धान्तोंके विरोधक थे, जिसपर रुष्ट होकर अरब तथा फारसके लोग उनका अपमान करने लगे। यह वैमनस्य बढ़ता ही गया और अन्तमें बहरैन—पौराणिक ब्रह्मदेश—के निवासी, प्रतिकूल आचरण रखते हुए भी, अपनेको असुर कहने लगे, जिसका प्रयोग अच्छे अर्थमें देशके साथ-साथ होता आया था। ऐसी दशामें उनके विरोधियोंने अपनेको असुर कहना ही छोड़ दिया और केवल देव कहलाने लगे। इतना ही नहीं, इन दोनों शब्दोंके अर्थमें भी अन्तर उपस्थित होता प्रतीत होता है। असुरोंने देवका और देवोंने असुरका निन्दात्मक अर्थ करना आरम्भ किया। इस विरोधकी लहर भारतमें भी पहुँची, जिसका अभिन्न सम्बन्ध अरब और फारससे था। इस सम्बन्धमें यह कहना है कि, राजा बलीकी कथासे उसका भारतमें ही कहीं होना मालूम होता है, जो पीछे यहाँसे निकाल दिया गया। वह सम्भवतः यहाँसे असुर-राज्यमें ही जा बसा और राज्य स्थापित कर शासन करने लगा।

असुरोंका बल भी बढ़ता ही गया और उनके अधीनस्थ लोग उनके ही भक्त और उपासक होने लगे। ऐसा करनेकी चेष्टा भी अवश्य ही असुरों द्वारा की गयी होगी। इनमें मुरु नामक एक प्रतापी राजाका होना प्रकट होता है, जिसके वंशज मूर (Moors) नामसे विख्यात हुए। इन मुरुवंशी मूरोंने सीरियाके अलावा मिश्र, स्पेन, सिसिली और फ्रांसमें भी अपना राज्य स्थापित किया। मुरशिद, मुरुगाव, मुरतजा, मुरुक्कावट आदि शब्द मुरु नामसे ही बने विदित होते हैं। इसका समर्थन भागवतकी इस कथासे भी होता है कि, कृष्णने मुरु देशके एक मुरु असुरको पराजित किया और इसीसे वह मुरारि कहलाये। पौराणिक कथाओंमें यह भी मिलता है कि, देवासुर-संग्राममें देवोंकी रक्षामें भारतीय राजा भी भाग लेते थे। वहाँके संग्रामकी खबर पाकर भारतसे राजाओंका अरबके मैदानमें पहुँचना उचित और सम्भव भी है।

जो कुछ हो, असुरोंका बल बढ़ने लगा। वे इटलीमें जा पहुँचे। स्कैंडिनेवियामें वाणासुरके पुत्र स्कन्धके समयमें असुर-कुलका आधिपत्य जमा और उसका ऐसा नाम पड़ा। अरबके ओमन (संस्कृत-यमन) प्रान्तमें मथुराके असुरपति-कंसकी विख्यात राजधानी हुई। इसके अत्याचारसे लोग क्षुब्ध थे। इधर द्वारकामें कृष्ण और बलराम भी बली हो रहे थे। वे सनातन-वैदिक धर्मानुयायी और देवोंके सहायक थे। यह खबर पाकर कंस बेचैन हो उठा और उनके नाशका यत्न करने लगा। उसने अघासुर, बकासुर, पूतना आदि अनेक असुरोंको गुप्त रूपसे कृष्ण-वध कर डालनेको भेजा; पर कृतकार्य्य न हो सका। अन्तमें छलसे उन्हें अपने यहाँ बुला भेजा। वहाँ जानेपर कृष्ण-बलरामको उसका छल विदित हो गया और वह उन्हींके हाथों मारा गया।

इस कार्य्यसे असुर-कुलमें कृष्ण-बलरामकी धाक जम गयी। देवोंका तो कहना ही क्या था? वे तो उन्हें ईश्वरवत् पूजने लगे। फारस तथा यूरोपीय देशोंमें बलरामकी पूजाका प्रमाण हरक्युलिस देवकी पूजा-प्रथा है। Hercules शब्दका संस्कृत-रूप हरि-कुल-ईश जान पड़ता है। यह शब्द बलरामके लिये व्यवहृत कहा जाता है। यूनानी इतिहासज्ञोंने अरब और फारसमें हरक्युलिसकी पूजाका वृत्तान्त लिखा है। मेगास्थनीजके लेखमें भी इसकी चर्चा है।

इस सम्बन्धमें कंसनगरीके अरबमें होनेके प्रमाणकी माँग हो सकती है, जिसके सम्बन्धमें मुझे संकेत-स्वरूप ही कुछ बातें कहनी हैं। श्रीमद्भागवतमें असुरोंकी चर्चा है; पर आधुनिक मथुराके आसपास या आर्यावर्तमें असुरोंके किसी

वासस्थानका कहीं पता नहीं चलता। पर अरबमें असुरोंके होनेके पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। ग्रीक ऐतिहासिक सरसेनियोंके दो प्रमुख नगर बताते हैं—मथुरा और सुरपुर। परन्तु भारतीय मथुराके पासमें कोई सुरपुर नामक नगर नहीं मिलता, न मथुरापुरीमें कोई अबतक ऐसी वस्तु पायी गयी है, जिससे वहाँ किसी बड़ी राजधानीके होनेकी कल्पना की जा सके। मथुराके पासमें कहीं बलरामकी ख्यातिका कोई प्रमाण भी नहीं मिलता है। अरब और फारसमें बलरामके पराक्रमके स्मारक अबतक लभ्य हैं। अरबके मानचित्रको ध्यानपूर्वक देखनेसे ओमन प्रान्तमें मत्राह (मथुरा) नगरके पास ही सुर है, यही सुरपुर जान पड़ता है। इन दोनोंके नीचे कंस नामका नगर है। मत्राहके निकटमें मामा नगर भी है। इससे कंस-कृष्ण-संग्रामका वहीं होना विदित होता है।

कंसका संहार सारे असुरोंका ही संहार कहा जा सकता है। इसके बाद भी उसका कुछ बल बढ़ा, जो पीछे ईसाइयों द्वारा नष्ट किया गया। अन्ततोगत्वा सहस्रों वर्ष पहलेके बल-वैभवके ज्ञानकी कमीसे उनके वंशज मुसलमानी मतके अनुयायी हो गये। यहाँ यह भी स्मरण रखने योग्य है कि, कृष्ण—कंस-संग्रामके पहले भी समय-समयपर असुरों और देवोंमें कई संग्राम हुए। त्रिपुरासुर-युद्धका विवरण पुराणोंमें है, जिस ओर प्रकाश डालनेका यह अवसर नहीं है। इसी सम्बन्धमें परशुरामके युद्धकी ओर संकेत चौधरी धनराज सिंहजीने अपने लेखोंमें किया है; किन्तु उनके असुरोंसे युद्ध करनेका कोई पक्का प्रमाण नहीं दिया गया है। यह जानने योग्य है कि, परशुरामने किसी कारणवश अरबके क्षत्रियोंका कई बार नाश किया और उनके स्थानमें देवोंको राजा बनाया। इससे कतिपय शासकोंको परास्त कर दूसरोंको राजा बनानेका पता तो चलता है; परन्तु देव और असुरके संग्रामका नहीं। अनेक ऐतिहासिकोंका मत है कि, परशुरामके नामसे ही परसिया अथवा फारस नाम पड़े हैं।

माँसे

❃ ❃ ❃ ❃ ❃ ❃

सुखसे अपनी सुखद गोदमें निर्भय सोने दे।
परियोंके सँग स्वप्न-देशमें, हँसने रोने दे॥
छोटा-सा प्यारा-सा बालक, मुझको रहने दे।
अपने स्नेह-भरे अञ्चलमें, माँ माँ कहने दे॥
अखिल विश्वमें नहीं मिलेगा, जो सुख है बचपनमें।
अतुलित आनँद वह जीवनका, कहाँ और जीवनमें॥

❃ ❃ ❃ ❃ ❃ ❃

—बाबू धर्मचन्द्र खेमका "चन्द्र"

बिहारके चार कवि

श्रीयुत कामेश्वर शर्मा "कमल"

करुणाके जलसे सीँची हुई खड़ी बोलीकी कविता-लता अब कलियाँ लेने लगी है। इस परिवर्तित कविता-शैलीकी पूँछ पकड़कर न जाने कितने लोग कविताके संसारमें अपनी किसमत आजमानेको आ रहे हैं। इस प्रकार इन दिनों कवियोंकी संख्या बेतरह बढ़ गयी है। यहाँतक कि, सारा कविता-क्षेत्र अब अन्धकारमय हो चला है—इतना अन्धकारमय कि, यहाँ अपना-पराया देखना भी कठिन हो रहा है। इनमेंसे कुछ नकली हनुमान् भी हैं, जो महाकवित्वका चोंगा पहनकर दिन-रात कविता रचते हुए पंजाबमेलकी तरह दौड़े चले जा रहे हैं! ऐसे लोगोंसे मेरी कलमका कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं तो उन सत्कवियोंको प्रकाशमें देखनेको इच्छुक हूँ, जो इस समय नक्कालोंके धक्के खाकर पीछे पड़े हुए हैं। मेरे इस लेखमें पाठकोंको हिन्दी-संसार भरकी तो नहीं, बिहारके भी कुछ कवियोंकी ही चर्चा मिलेगी, जिनमेंसे कुछ ऐसे भी हैं, जिन्हें सारा हिन्दी-समाज गौरवसे याद करता है। पर, दो-एक कवि-नवयुवकोंको, सारा हिन्दी-संसार तो क्या, समूचा बिहार भी नहीं जानता। हमारे समालोचकोंको इतनी फुरसत कहाँ कि, अन्धकारमें पड़े इन रत्नोंको वे ढूँढ़े। उन्हें तो अभी दलबन्दीके दल-दलमें ही दंगल दिखलाना है। वे तो उसीको कवि या महाकविके स्थानपर बार-बार बैठायँगे, जो उनके गुटके एक सदस्य होंगे! यहाँ तो गुटबन्दीके बिना काम ही नहीं चलता। जिसकी पीठपर दस-बीस वाह-वाह कहनेवाले हैं, वे तो बड़े मजेमें अपनी-अपनी खिचड़ी पकाये चले जा रहे हैं; किन्तु जिनकी पीठपर कोई नहीं, उनका तो वीणा-विनिन्दक स्वर भी अरण्य-रुदन ही बन रहा है।

जो लोग परिणामके पुजारी हैं, उन्हें मेरे इस लेखको पढ़कर निराशा होगी। सम्भव है, मेरी रुचिसे कुछ घृणा भी हो; क्योंकि मैंने तीस-तीस, चालीस-चालीस पुस्तकोंके रचयिताओं को भी अपनी इन चार विभूतियोंमें सम्मिलित नहीं किया है; और, इन चारोंमें अधिक लोग, यदि मैं भ्रममें नहीं हूँ, तो केवल कुछ ही कविताओंके लेखक हैं।

कविताओंकी गम्भीरताका पता संख्या गिनकर नहीं, प्रत्युत तौलकर लगाया जाता है। विशेषतः समालोचनाका आदर्श ही Valuation of force है। तुकबन्दियोंसे पोथा तैयार करनेवाले लोग सदैव तुक्कड़ ही रहेंगे। किन्तु, दो-एक सत्कविताएँ लिखकर ही कितने लोग महाकवि कहला गये हैं। सिर्फ अठारह कविताओंको लिखकर जयदेव अमर हो गये और न जाने कितने ही लोग अपरिमित कागज-स्याही बरबाद करके भी विस्मृतिकी सेज पर, सदाके लिये, सो

गये। अतएव यदि मैं बिहार भरमें केवल चार नव-युवकोंको ही कविके कुसुमासनपर बैठाता हूँ, तो कोई आश्चर्य नहीं।

मेरी चार विभूतियोंमेंसे पहले बिहारी साहित्यके शृङ्गार प० मोहनलाल महतो "वियोगी" हैं। मैं नहीं कह सकता कि, छायावाद और "वियोगी" जीमें क्या सम्बन्ध है; पर, इतना जरूर है कि, वियोगीजी हिन्दीके नवीन कवियोंमें बृहत्त्रयके अतिरिक्त और सभोंसे ऊपर हैं। उनकी कविताओंमें Philosophy और Passion का वह समन्वय मिलता है, जो बहुधा रवीन्द्र और पन्तकी कविताओंमें पाया जाता है। इनकी रचनाओंमें कल्पनाकी अस्वाभाविकताका सम्भवतः स्थान ही नहीं है। कारण शायद यह है कि, इनकी कला कल्पनाको अपेक्षा जीवनसे अधिक सम्बद्ध है। इनकी कृतियोंमें हमें एक ऐसे हृदयका आभास मिलता है, जो जीवनकी जटिल समस्याओंके हल करनेका मार्ग खोज रहा है। आपकी "कङ्काल" और "कठोर कर्त्तव्य" आदि कविताएँ इसके प्रमाण हैं। सम्भवतः तीसरे वर्ष आपकी यह कविता "सुधा" या "माधुरी"में छपी थी—

"चला जब जीवन ज्योति जगाने।"

यह छोटासा गीत मुझे अत्यन्त मार्मिक जँचा। जीवनके पग-पगपर जो कठिनाइयाँ आती हैं, उनकी उलझनका यह चित्र अच्छा उतरा है। प्रेमके मोह एवं संघर्षका खाका देखने ही योग्य है।

वियोगीजी विशुद्ध कवि हैं। वह कोई लक्ष्य रखकर कविता नहीं लिखते। जिसकी अधिकांश रचनाएँ जीवनसे इतनी सम्बद्ध हों, उस कविके लिये यह और भी गौरवकी बात है कि, वह "कलाके लिये कलाका निर्माण करे।" "निर्माल्य"की भूमिकामें आप लिखते हैं—

"मैं क्या लिखता हूँ इसका है
मुझे नहीं किञ्चित् भी ज्ञान।
अनमिल अक्षर मिलकर
बन जाते हैं स्वयं पद्य या ज्ञान॥"

"एकतारा"में संगृहीत "चित्रपटसे" नामक कविताकी उत्तमताके विषयमें क्या कहा जाय और क्या नहीं! इस घपलेमें पड़कर तो लेखनी ठिठक जाती है। किन पङ्क्तियोंका उद्धरण दिया जाय और किन्हें छोड़ा जाय, यह निर्णय करना अत्यन्त कठिन मालूम होता है! "गिरा अनयन नयन बिनु बानी" कहकर ही संतोष करता हूँ। सारी पुस्तकमें मुझे यह कविता, कल्पना और प्रवाहकी दृष्टिसे, बड़ी ही हृदयग्राहिणी जँचती है। इसका पाठ करते समय वियोगीजीकी प्रतिभा हमारे सामने एक विशाल समुद्रसी लगती है, जिसमें कल्पनाकी रंग-बिरंगी लहरें अठखेलियाँ करती हुई कूलसे टकरा रही हैं।

निराशावादी कवियोंमें प० जनार्दनप्रसाद झा "द्विज" एम० ए०का स्थान अत्यन्त ऊँचा है। आप हिन्दी-संसारके सामने विख्यात हो चुके हैं। छायावादकी चर्चामें ऐसे लेख शायद ही निकले हों, जिनमें आपकी कविताओंका उद्धरण न आया हो। इधर कई वर्षोंसे आप कहानीके फेरमें पड़कर कवितासे वैराग्यसा निभा रहे हैं। फिर भी आप एक सत्कवि हैं और आपने जो कुछ लिखा, सुन्दर और आकर्षक लिखा है। आपकी निम्न लिखित कविता बहुत प्रसिद्ध है—

"अयि अमर शान्तिकी जननि जलन!
अक्षय तेरा शृङ्गार रहे।
जीवन-धन-स्मृति-सा अमिट निरन्तर
मेरा-तेरा प्यार रहे॥"

मेरा अनुमान है कि, आत्मसमर्पणके नामपर "अन्तरतमकी ज्वाला" में "अरी धधक तू खूब धधक" कहनेका रोग हिन्दीमें आपके द्वारा ही फैला है। लेकिन, अनुकरणमें सजीवता कहाँ! 'द्विज' के क्रन्दन और निराशा-वर्णनमें जो माधुर्य्य है, लोच है, वह हिन्दीमें अन्यत्र कहाँ? देखिये "विस्मृति-भिक्षा" शीर्षक कवितामें आप लिखते हैं—

"जा भूल मुझे अब तू उदार।
मैं कर न सकूँगा पार, उदधि
मेरे दुखका यह है अपार।
❀ ❀ ❀
जीवनका यह व्याकुल प्रवाह
बहने दे तू इसको न रोक!
था हर्ष कभी, है आज एक
मुझ निर्धनका सर्वस्व शोक!
बढ़ जाय जहाँतक बढ़े भार
जा भूल मुझे अब तू उदार॥
आरम्भ और अवसान एक
होकर चलते हैं साथ-साथ।
जगमें वह ऐसी वस्तु कौन
जिसमें परिवर्तनका न हाथ।
हँसता सब दिन किसका सिँगार?
जा भूल मुझे अब तू उदार!!"

जब जीवनसे वसन्त सर्वदाको बिदा हो जाता है, तब हमें पतझड़में ही आनन्द खोजना पड़ता है। निराशामें भी एक प्रकारका आनन्द है, जिसकी अनुरति केवल भावुक लोगोंको ही होती है—"There is a pleasure in being mad which none but mad man knows." "प्रभात"जीकी एक पंक्ति है—

"मत पूछो हे देव कौन सुख मिलता है रोनेमें।"

"द्विज"की यह कविता उसी घड़ीका मधुर चित्र है। तभी तो वह कहते हैं—

"यह जागृति है, वह थी सुषुप्ति;
वह था सपना, यह सत्य रूप।
गति रोक, खोल दृग, पग सम्हाल;
मगमें हैं अगणित अन्ध-कूप।
आ इधर नहीं, रह उसी पार!
जा भूल मुझे अब तू उदार!!"

"खोज" नामक एक दूसरी रचनामें आपने लिखा है—

"कम्पित घड़ियोंके कितने युग बीते अलख जगाते।
भूल गया अपना घर तेरे घरमें आते-जाते॥"

× × × ×
× × × ×

"सुख-सुहागका सेज सजाना सहज न है जीवनमें।
दाह, चाह बनकर चुपकेसे जब आ बसती मनमें॥"

इसी प्रकार "द्विज"जीकी कविताओंमें, पंक्ति-पंक्तिमें, विषादका झरना अविरल गतिसे झर-झर कर रहा है। आपकी उल्लास-प्रधान रचनामें भी गम्भीर विषादकी ध्वनि सुनाई पड़ती है। प्रमाण सामने है—

"जीवनकी शिथिल उमंगें
सोती हैं, उन्हें जगा दे!
मिटकर ऊपर उठ जाऊँ
ठोकर वह एक लगा दे॥"

इस कवितामें कविने ऊपर उठनेकी कामना की है; किन्तु उस उन्नतिकी नीव सर्वनाशपर है। वह अपने प्रियतमसे मिलनेको ऊपर उठना चाहता है; किन्तु अपना अस्तित्व मिटा कर!

वास्तवमें प्रथम प्रणय भूलने-भुलानेकी चीज नहीं है। कोई चाहे जो कुछ करे; परन्तु उसे अपने

हृदयसे वह कदापि नहीं निकाल सकता। एक बारका प्रणय आजीवन मस्तिष्कमें हिलोरें लेता रहता है। इसी बातको आपने यों कहा है—

" किन्तु यह क्या ? भूले भी तो न,
भूल पाता भी मीठी याद !
याद जिसमें तुम हो साकार !
लिये अधरोंपर मधुर विषाद !! "

हमारी तीसरी विभूतिका किस्सा कुछ अधिक मजेदार है। हमारे साहित्यमें कुछ ऐसे अभागे कवि हैं, जो कुछ तो अपनी "स्वान्तःसुखाय प्रवृत्ति" के कारण और कुछ पारखियोंके अभावके कारण समुचित आदर नहीं पा सके हैं। ऐसे ही कवियोंमें पण्डित केदारनाथ मिश्र बी० ए० "प्रभात" हैं। हिन्दी-संसारमें "प्रभात"के रूपमे Shellay की आत्मा उतरी है। "प्रभात"की कविताओंमें विषाद, वेदना, जलन, उदासी, निराशा और बेकली जिस प्रकार उमड़ती हुई मिलती है, वह हिन्दी-साहित्यमें अनुपम है। निराशाकी यह मात्रा हिन्दीके बहुत कम कवियोंमें प्राप्य है। इसका कारण भी है। सच्ची कविताओंमें व्यक्तित्वकी छाप रहती है।

जो लोग "प्रभात" जीको अत्यन्त समीपसे जानते हैं, उन्हें मालूम है कि, उनका जीवन कैसी उच्चाभिलाषाओंके चिता-भस्मसे धूसरित है। उनके जीवनमें निराशाकी सूखी आँधी चल रही है, उसके संसर्गमें रहते हुए रोना छोड़कर कोई और कुछ कर ही नहीं सकता। यह बात नहीं कि, "प्रभात" जी ने जान-बूझकर अपने जीवनका कार्य्य-क्रम रोना ही रोना बना लिया है ! यह तो परिस्थितियोंके सङ्घर्षका परिणाम है। जब "प्रभात"के जीवनमें उल्लास गूँजता था, तब उनकी लेखनीसे भी—

"सागरसा उमड़ पड़ूँ मैं बाहें असंख्य फैलाकर।
बिचरूँ झंझाके रथपर मैं ध्वंसक रूप बनाकर॥
❋ ❋ ❋
बरसा दूँ सूर्य-सरीखा विकराल अनवरत ज्वाला।
मैं गरल उगल दूँ जलमें यौवनका पीकर प्याला॥"

और यों भी—

"तुम चन्द्र-चन्द्रिका छवि हो मेरे आनन्द-गगनकी।
तुम राशि-राशि मधु ऋतु हो मेरे उजाड़ उपवनकी॥
तुम पतली दीप-शिखा हो तुम उषा नवेली बाला।
उन्मत्त बना हूँ पीकर तव रूप-सुधाका प्याला॥"

—जैसी पंक्तियाँ बहा करती थीं। लेकिन आज तो उन्हें उस सुखमय अतीतकी स्मृति भी असह्य है। "मेरा अतीत" शीर्षक कवितामें आप लिखते हैं,

"वह कौन झाँकता नभसे बनकर निशीथका तारा !
मैं खड़ा हाथ मलता हूँ बरसाकर आँसू-धारा॥
वह बनकर स्वप्न थिरकता इन पलकोंमें मतवाला।
मैं इधर देखता अपने खाली जीवनका प्याला॥
मैं राह देखता उसकी स्वातीकी अभिलाषामें।
वह दिल दहला देता है पत्थरकी उस भाषामें॥"

इन पंक्तियोंमें निराशाकी आँधीसे दलित "प्रभात" की भावुकता तड़प रही है। कहीं-कहीं ऐसा मालूम होता है कि, "प्रभात" जी अपनी उषामें ही सन्ध्याका दर्शन करना चाहते हैं। शायद उन्हें अपने जीवनसे कुछ घृणा-सी हो गयी है—

"एक क्षुद्र टुकड़ा हूँ मैं पतझड़के स्वर्णमेघका नाथ।
मुझे उड़ाकर ले जाओ तुम अपने करुणानिलके साथ॥
निर्जन वनका शुष्क पत्र हूँ पड़ा हुआ हूँ लघु भूपर।
मुझे भस्म कर दो अपनी ज्वालामें दावानल बनकर॥"

सरल हृदयसे किसी विषयपर कुछ कह देना, जो बातें जीवनमें घटें, उन्हें सर्व-साधारणके

सामने रख देना ही काव्यका मुख्य तत्त्व है; क्योंकि हृदय दिखलाया नहीं जा सकता; किन्तु भावों द्वारा —बातों द्वारा उसका आभास मिल सकता है—
"Alas! The heart connot be shawn,
it has to be demonstrated in words".

"प्रभात" की रचनामें ये बातें स्पष्टतया दिखाई पड़ती हैं। व्यथित कवि अपने हृदयकी मर्म-व्यथाको निश्चल भावसे प्रकट करता है। वह तर्कना नहीं करता। उदाहरणार्थ निम्न पङ्क्तियाँ पढ़िये—

"आठ-आठ आँसू इन रोयी आखोंको रोने दो।
मेरे उरके पतझड़को मत ऋतु वसन्त होने दो॥
अरे छेड़ मत गीत रिक्त जीवनके सूनेपनमें।
अनल-सेजपर प्राण मौन हो सोये हैं, सोने दो॥
अन्तर्जगकी गलियोंमें उड़ने दे गीली धूल।
अभी खिला मत जीवनकी आशा—लतिकामें फूल।"

आह इतनी बेसुधः अवस्था है। फिर भी कवि कसकको दूर करना नहीं चाहता। यही तो उसकी विशेषता है। हो भी क्यों न, जब कि, प्रियतमके अभावमें वही उसका स्नेहाश्रय है! किन्तु जहाँ "प्रभात"जीका क्रन्दन इतना सुन्दर है, वहाँ उनमें एक दोष भी आ रहा है। उनके रोनेमें अब इधर स्वाभाविकताकी मात्रा कुछ कम हो रही है। ऐसा मालूम पड़ता है, जैसे रोते—रोते उनका गला बैठ गया हो और स्वर विकृत हो चला हो; जैसे उनके कण्ठमें तरलता नहीं हो सकता है कि, यह क्रन्दनातिरेकका फल हो। इसके सिवा इनकी रचनाओंमें असम्बद्धता भी आने लगी है। "कलेजेके टुकड़े" की कई कविताएँ इसके प्रमाण हैं। उदाहरण-स्वरूप आप नीचे लिखी पङ्क्तियोंकी परीक्षा कर देखें—

"इन फीकी रेखाओंमें क्या है जो आँक रहे हो?
मेरी ओर विषमतासे क्यों निर्दय झाँक रहे हो?
कुचल दिया इन अरमानोंको क्रूर बने तुम कैसे?
करुणासे अपनी निर्ममता अब क्यों ढाँक रहे हो?"

इस पद्यकी उपर्युक्त दो लाइनोंमें विषमतासे झाँकनेवाला अवश्य ही निष्ठुर-सा लगता है; किन्तु चौथी लाइनमें कविके सामने वह विषमता करुणाके रूपमें बदल जाती है। और, इसी तरहसे बदलनेमें भाव-वैषम्य आ जाता है। इसे ही कहते हैं, "लिखत सुधाकर लिखगा राहू।" ऐसी ही अनमिल भावनाओंकी स्थितिको देखकर हमारे पुराने अभिभावकोंको हमारी, उद्गारोंकी, सचाईपर सन्देह होता है। ऐसे आरोपणोंका अवसर न आने देना ही उत्कृष्ट कविका काम है। "प्रभात"जीको इधर ध्यान देना चाहिये।*

चौथे स्थानपर, अनायास, बाबू रामधारी सिंह जी बी० ए० (आनर्स) "दिनकर"का नाम याद आ जाता है। उनकी प्रतिभाकी रश्मियाँ अत्यन्त प्रखर हैं। "दिनकर"जीके उदयाचलकी रम्य तलहटीमें श्री, स्वर्ण, सौरभ, सब कुछ है। यह तो उषाकी

* "अकाण्ड एव विच्छित्तिः, अकाण्डे च प्रकाशनम्" जब किया जाता है, तब ऐसा दोष लगता है। यहाँ स्पष्ट करुणरस है। "विषमता" तो विभावादिके द्वैध होनेसे होता है। ऊपरवाली तीनों लाइनें करुणाको ही उद्दीप्त करती हैं। निर्दयों द्वारा जहाँ उत्पीड़न होता है, वहीं यह रस होता है अतः "प्रभात"जीकी यह कविता, मेरे विचारसे, सर्वथा निर्दोष है। —'भग' (सहकारी सम्पादक, "गङ्गा")

लाली है, मध्याह्नका तेज और भी प्रखर होगा। यदि जीवनने "दिनकर"जीकी प्रतिभाका साथ दिया, तो बिहार-वसुन्धरा निहाल होगी, ऐसी आशा है। मेरे विचारमें कल्पनाकी प्रौढ़ता एवं अन्तर्दृष्टिकी गम्भीरताके विचारसे "दिनकर"जी नवयुवकोंमें प्रथम श्रेणीमें रखे जा सकते हैं। उनकी कल्पना न तो "पन्त"जी जैसी पतली और हल्की होती है और न "निराला"जीकी तरह गम्भीर। प्रत्युत उसमें अपार्थिव और पार्थिवका वह स्वर्ण-संयोग रहता है, जिसका पूर्ण आभास श्रीयुत भगवतीचरण वर्माकी कविताओंमें मिलता है। मेरा अनुमान है कि, "दिनकर" जीने, जाने या अनजाने, वर्माजीकी शैलीका अनुसरण कर लिया है। दोनों कवियोंमें अन्तर यह है कि, जहाँ वर्माजीकी कविता-कामिनी भावुकताकी अनिल लहरोंपर उड़ती हुई, भौतिक जगत्से कुछ ऊपर, स्वप्न-लोकमें विचरण करती है, वहाँ "दिनकर"की कविताएँ बहुधा पार्थिव सुन्दरताओंकी वाटिकामें, अपने ही सौरभके भारसे, अपने वाहन पवनको मन्द-मन्द चलाती हुई, चारों ओर सुगन्ध बिखेरती हैं। सारांश यह कि, वर्माजीकी कृतियों-पर तारक-लोकसी झिल-मिल अस्पष्टताकी झालर-सी पड़ी रहती है तथा "दिनकर"जीकी कृतियाँ, सुबोध, स्पष्ट और प्रसाद-पूर्ण होती हैं। उन्हें समझनेके लिये दिमागको कोई व्यायाम नहीं करना पड़ता।

"दिनकर"जीकी लेखनी शायद, प्रेम-विषयक कविताओंकी ओर नहीं बढ़ती; किन्तु उनकी प्रकृति-सम्बन्धिनी कविताओंमें प्रेम और उमङ्ग, दोनों ही विद्यमान हैं। मेरा यह भी अनुमान है कि, "दिनकर"जीपर वर्ड्सवर्थके सिद्धान्तोंकी भी छाया कुछ अवश्य पड़ी है—यद्यपि उनकी रचनाओंमें हमें अबतक भी वह प्रकृति-तन्मयताका दर्शन नहीं हुआ है। नीचे लिखी पङ्क्तियाँ इसका ध्यान दिलाती हैं—

"फूलोंकी क्या बात बाँसकी हरियालीपर मरता हूँ।
अरी दूब, तेरे चलते जगतीका आदर करता हूँ॥
\+ + +
इच्छा है सौ-सौ जीवन ले इस भूतलपर आऊँ मैं।
घनी पत्तियोंकी हरियालीसे निज नयन जुड़ाऊँ मैं॥
तरुके नीचे बैठ सुमनकी सरस प्रशंसा गाऊँ मैं।
नक्षत्रोंमें हँसू, ओसमें रोऊँ और रुलाऊँ मैं॥
मेरे काव्य-कुसुमसे जगका हरा-भरा उद्यान बने।"
मेरी मृदु कविता भावुक परियोंका कोमल गान बने॥

"इन्द्रधनुष" पर लिखी हुई आपकी उत्प्रेक्षाएँ भी देखने ही योग्य हैं—

"नव उमंगसे भरी तितलियाँ,
अपने चित्रित पंख पसार।
इन्द्रपुरीके स्वर्ग-विपिनसे,
उतर रहीं कुछ वृत्ताकार॥
मदमाती अप्सर-कुमारियाँ,
आन जलद-सुषमामें भूल।
स्वर्ग-द्वारपर खड़ी फकतीं,
नगपर रंग-रंगके फूल॥
कालिदासकी मृदुल कल्पना,
पहन विविध-रंजित परिधान।
मन्द-मन्द 'मन्दाक्रान्ता' सी,
घूम रही नभपर अनजान॥"

मुझे तो ऐसा लगता है कि, उपर्युक्त कविता, कविता नहीं, प्रत्युत साक्षात् इन्द्रधनुष—आकाश-पर उग आया है। जरा पहली दो लाइनोंपर ध्यान

दो दीजिये । यौवनकी उमंगमें भरी हुई तितलियोंकी टोलियाँ, उनका रंग-बिरंगी पंखोंका एक साथ फैलाना, उसपर भी सुरपतिकी सुनहली वाटिकासे आकाश-मार्ग होकर, कुछ वृत्त-सा बनाते हुए उतरना, आह ! गद्यमें आते-आते कविताकी सारी सुन्दरता बिखर जाती है—भिन्न-भिन्न हो जाती है! कितनी मनोमुग्धकारिणी उपमा है—

"नव उमंगसे भरी तितलियाँ ।
अपने चित्रित पंख पसार ॥
इन्द्रपुरीके स्वर्ण-विपिनसे ।
उतर रहीं कुछ वृत्ताकार ॥"

शब्द-चित्रमें तो "दिनकर" जीको कमाल हासिल है ही। जिस प्रकार आप इन्द्रधनुषकी material bea ty देख चुके हैं, उसी प्रकार जीवनके अन्तर्निहित abstract beauty की भी अजन्ता-चित्र-कला-सी तस्वीर उतार सकते हैं। "विधवा"पर पाठकोंने अनेक उक्तियाँ देखी होंगी; पर, जरा निम्न लिखित लाइनोंपर तो विचार करें—

"जीवनके इस शून्य सदनमें—
जलता है यौवन-प्रदीप हँसती तारा एकान्त गगनमें ॥
जीवनके इस शून्य सदनमें ॥
उजड़े, घर, निर्जन खँडहरमें ।
कञ्चन-थाल लिये निज करमें ।
रूप आरती सजा खड़ी ।
रव सुन्दरके स्वागत चिन्तनमें ॥
जीवनके इस०—॥
❀ ❀ ❀
नव यौवनकी चिता बनाकर ।
आशा-कलियोंको स्वाहा कर;
भग्न मनोरथकी समाधिपर, तपस्विनी ! बैठी निर्जनमें ॥
जीवनके इस शून्य सदनमें ॥"

उपर्युक्त पङ्क्तियोंमें शारीरिक या वाह्य सौन्दर्य्यका वर्णन नहीं है । उसमें तो विधवाके उस स्वरूपका चित्रण है, जो उसके हृदय या मनमें प्रच्छन्न है। यह यौवन-सम्पन्न उस शरीरका अङ्कन नहीं है, बल्कि उसके जीवनमें छिपी हुई पीड़ा और वेदनाका फोटो है। इन पंक्तियोंमें विधवा Concrete नहीं, प्रत्युत Abstract है। यदि कोई सफल चित्रकार अजन्ता-कलासे युवती विधवाका कोई चित्र खींचे, तो ये पङ्क्तियाँ चित्र-परिचयके रूपमें ठीक बैठेंगी।

जहाँ जीवनकी व्याख्या दर्शनके शब्दोंमें होती है, वहाँ भी "दिनकर"जीकी लेखनी चूमे जानेका दावा करती है। "समाधिके प्रदीपसे", "जीवन", "परदेशी" आदि कविताएँ पढ़नेके समय ऐसा प्रतीत होता है, मानों कविने सर्वनाशकी प्रत्यक्ष मूर्त्ति देखी है। अभी हालमें आपकी "परदेशी" शीर्षक रचना "विशाल भारत"में छपी है । उसमें आप लिखते हैं—

"महाप्रलयकी ओर सभीको इस मरुमें चलते देखा।
किससे लिपट जुड़ाता सबको ज्वालामें जलते देखा॥
अन्तिम बार चिता-दीपकमें जीवनको बलते देखा।
चलते समय सिकन्दरसे विजयीको कर मलते देखा॥
सबने दे-दे प्राण मौतकी कीमत जानी परदेशी।
मायाके मोहक वनकी क्या कहूँ कहानी परदेशी॥"

रोग, शोक, भय, क्रोध, जन्म, मरण आदि सांसारिक यंत्रणाओंपर विचार करते हुए मनुष्यकी आत्मा घबरा उठती है। उस समय उसे ईश्वरके सिवा कहीं कुछ भी चिरस्थायी, शाश्वत, सुख-सम्पन्न और शान्ति-दायक नहीं दीखता। संसारमें तो उसे चारो ही ओर ज्वाला धधकती-सी दीखती है। वह जाय

तो किधर? उसपर जब उसे इस निर्णयपर पहुँचना पड़ता है कि, शाम-सुबह उसे भी उसी आगमें शरण ढूँढ़नी पड़ेगी, तब तो उसकी बुद्धि ही ठिकाने नहीं रहती। किन्तु "The is no armour against fate". "सुर-नर-मुनि सब भोगी हैं; देहधरेको दण्ड।" इसीलिये कवि निराशा, बेकली और बेबसीमें आकर कहता है—

'मायाके मोहक वनकी क्या कहूँ कहानी परदेशी।'

जीवनकी क्षणभङ्गुरताको लक्ष्य कर "दिनकर" जीने एक दूसरी कवितामें कहा है—

"प्रलय-वृन्तपर डोल रहा है यह जीवन दीवाना।
अरे मौतका निःश्वासोंसे होगा मोल चुकाना॥
× × ×
सुन्दरतापर गर्व न करना ओ सुरूपकी रानी!
समय-रेतपर उतर गया कितने मोतीका पानी॥
रंथी-रथसे उतर चिताका देखोगी संसार।
उन लपटोंमें जरा खोजना इस यौवनका सार॥"

इस प्रकारके अनेक अवतरण आपकी कविताओंसे दिये जा सकते हैं। किन्तु अभी इतनेपर ही सन्तोष करता हूँ। किसी अन्य लेखमें आपकी और विशेषताओंका जिक्र करूँगा।

यहाँ संक्षेपमें उनकी शैलीकी कुछ त्रुटियोंका उद्घाटन कर देना ठीक होगा; क्योंकि मेरा समालोचक चित्रपटके दोनों ओर देखता है। प्रेमकी कविताओंकी कमीके अतिरिक्त इनमें एक और अभाव है। वह यह कि, आप कल्पनाको जान-बूझकर अत्यन्त प्रौढ़ बनानेकी कोशिश करते हैं, जिसमें उसकी स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है। यों भी मुग्धाकी चितवनमें जो माधुर्य्य है, वह प्रौढ़ाके स्पर्शमें नहीं। "दिनकर" जी अभी मस्ती-भरी जवानीमें ही कल्पनाको लगामसे कसनेका प्रयास करें, यह अवाञ्छनीय है। मैं कल्पनामें प्रौढ़तासे अधिक lightness को पसन्द करता हूँ। हल्की कल्पनासे कवितामें एक प्रकारकी सरलता एवं तरलता आ जाती है, जिससे वह चिकनी-सी लगती है। इसके अतिरिक्त "दिनकर" जी की भाषामें शब्दोंका चुनाव यथेष्ट रूपसे काव्यात्मक नहीं होता। यह एक बहुत बड़ा दोष है। इससे बचनेकी चेष्टा करना उत्तम है।

इन कवियोंके सिवा आशाकी कई अन्य किरणें, विद्याके साहित्य-क्षितिजसे, फूट-फूटकर झाँक रही हैं। उनके कञ्चनसे हमारा आकाश शीघ्र उज्ज्वल होनेवाला है। अभी तो उनकी बारीकियोंको चतुर और तीक्ष्ण दृष्टिवाला ही देख सकता है। श्रीकेशरीकी "निर्वासित विहंग" ("सरस्वती") Standard कही जा सकता है। श्रीसुजनजी कोमल भावोंके गुम्फनके लिये काफी विख्यात हो चुके हैं। इधर कोई गोपाल सिंह नेपाली महोदय, अपनी पूरी मस्तीके साथ, साहित्य-क्षेत्रमें उतर पड़े हैं। आपकी "प्रतीक्षा," "मधु ऋतु" आदि रचनाएँ सुन्दर हुई हैं। और भी कई होनहार कवि हैं जिनकी चर्चा छूटी जा रही है। क्या किया जाय! एक व्यक्ति एक ही रुचिसे काम ले सकता है। मैंने अपनी रुचिके अनुसार यह माला बनायी है। मेरा जो दृष्टि-कोण रहा है, उसके अनुसार "मुक्त" तथा "विमलजी" जैसे सुप्रसिद्ध कवि भी छूटे जा रहे हैं। वे दोनों सज्जन मुझे क्षमा करें। मैं अपने समालोचकके पाछे-पीछे चला हूँ। अपने जानते किसी परिचितके साथ पक्षपात एवं अन्यके साथ विद्वेष नहीं हुआ है। मैंने जो कुछ लिखा है, शुद्ध समालोचनाके आदर्शको सामने रखकर। सत्य, इसके साक्षी तुम हो!

बिहारीसतसई-सम्बन्धी साहित्य

श्रीयुत भुवनेश्वर सिंह "भुवन"

"नागरीप्रचारिणी पत्रिका"के नवें भागकी प्रथम संख्यासे ही स्वर्गीय बाबू जगन्नाथदासजी "रत्नाकर"का बिहारीसतसई-सम्बन्धी साहित्यपर एक महत्त्वपूर्ण लेख, धारावाहिक रूपमें, प्रकाशित होता था। "रत्नाकरजी"ने छोटी-से-छोटी टीकाका भी उल्लेख किया है; फिर भी एक रह ही गयी है।

"बिहारीसतसई"की एक ("रमेश्वरचन्द्रिका" नामकी) टीका, १९१० ई० में, राजप्रेस, दरभङ्गेसे छपी है। इसके टीकाकार हिन्दीके एकान्त प्रेमी श्रीयुत प० विश्वनाथ (बालाजी) थे।

विश्वनाथजीकी लिखी दो पुस्तकें, "भक्तानन्द-प्रवाह" तथा "रसिक-मनोरञ्जनी", मेरे पास मौजूद हैं। "काशी-कवि-समाज"की समस्या-पूर्तियोंका जो संग्रह, बाबू रामकृष्ण वर्मा द्वारा, भारत जीवन प्रेससे, छपकर प्रकाशित हुआ है, उसमें विश्वनाथकी "कारे लाल बादलमें तारे झलकत हैं" समस्यापर रची यह पूर्ति छपी मिलती है—

"रावन महान रन जोरि जोर, मान मन
दान बदलान बद नैन बलकत है।
बानर अमान ऋच्छगण समुहान वाले,
मारु राग गान दुहूँ दीसि ललकत है॥
भनै विश्वनाथ दसमाथ विसराथ हनि,
गाय देवगाथ उपमान कलकत है।
राम-श्यामतन रुधिराली स्वेद कन मानों,
कारे लाल बादलमें तारे झलकत है॥"

इससे यह ज्ञात होता है कि, विश्वनाथ उस समयकी सभा-सोसाइटियोंसे दिलचस्पी लिया करते थे। फिर भी इनका नामोल्लेख किसीने नहीं किया है। मुझे यह देखकर दुःख होता है। कवि-परिचयात्मक अन्य ग्रन्थोंमें न सही; परन्तु "मिश्रबन्धु"के प्रामाणिक इतिहासमें भी मिथिलाके शतसहस्र कवियोंमें किसीका भी नामोल्लेख नहीं है। क्या मिथिलाकी भूमि कविप्रसविनी नहीं है?

"रमेश्वरचन्द्रिका" की भूमिकासे ज्ञात होता है कि, महाराजा रमेश्वर सिंह बहादुर के० सी० आई० ई० के वृद्ध प्रपितामह महाराजा माधव सिंह बहादुरके नवटोल-ग्राम-निवासी बाबू जानकीनाथ झा दौहित्र थे। इन्हींके पौत्र प० विश्वनाथ झाजी थे, जिन्होंने "रमेश्वर-चन्द्रिका" का निर्माण किया था।

"रमेश्वर-चन्द्रिका" में ११ पृष्ठोंकी भूमिका और सूचीपत्र है। मूलग्रन्थ २६३ पेजोंमें है। "नागरीप्रचारिणी पत्रिका"की तरह इसका साइज है। कागज अच्छा है, मूल दोहा बड़े टाइपोंमें है और कुण्डलिया छोटे टाइपोंमें है। कठिन शब्दोंका अर्थ पाद-टिप्पनियोंमें है। दोहोंका स्पष्टीकरण गद्य द्वारा किया गया है; किन्तु गद्यकी भाषा परिमार्जित नहीं

है। ७२५ दोहे हैं। दोहोंका क्रम किस सतसईके आधारपर रखा गया है, यह समझमें नहीं आता। कृष्ण कविने ७०४ दोहोंपर अपने कवित्त लगाये हैं; "दीन"जीने "विहारी-बोधिनी"में ७२५ दोहे दिये हैं, जिनमें १५ दोहोंपर टीका-टिप्पनियाँ नहीं हैं। रत्नाकरजीने ७१३ दोहोंको ही विहारीकृत माना है। स्व० प० पद्मसिंह शर्माकी टीका ही असमाप्त है; अतः इनकी सम्मति अप्रकट-सी है। "रमेश्वर-चन्द्रिका" के दोहोंकी संख्या केवल "दीन"जीकी विहारी-बोधिनीसे मिलती है। बोधिनी और चन्द्रिकाके दोहोंमें कहीं विभिन्नता है या नहीं, मैंने मिलाकर नहीं देखा है। कुण्डलिया इस प्रकार है—

"मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तनकी झाँई परे, श्याम हरित दुति होय॥१॥
श्याम हरित दुति होय लखावत मूरत प्यारी,
करामात दिखरात जाहिपर भावहि सारी।
विश्वनाथ जगदीन मगन दुखद्वन्द्व अगाधा,
जगतारिणि हरि लेहु सोइ मेरी भवबाधा॥१॥

चमचमात चञ्चल नयन बिच घूघट पट झीन,
मानहु सुरसरिता विमल जल उछरत युग मीन॥४६८॥
जल उछरत युग मीन किधौ ऐसौ प्रतिभासत।
मीनकेतु निजकेतु सवैं प्रत्यच्छ लखावत॥
विश्वनाथ कै खञ्जरीट मदतैं अति तमतम।
रजत पीँजरे माँहिं काँमके कै रहु चमचम॥४६८॥

वन बाटनि पिक बटपरो, तकि विरहिनि मत मैन।
कुहो-कुहो कहि-कहि उठे, करि-करि राते बैन॥३६२॥
करि-करि राते बैन मैनके प्रबल कसाई।
पीव-पीव करि पतित पपीहा करत सहाई॥
विश्वनाथ री दई घेरि अलिगन कह हँन-हँन।
उर विदारिबो चहत झपटि कुसुमित किसुकवन॥३६२॥

बतरस लालच लालके, मुरली धरी लुकाय।
सौँहं करै भौँहनि हँसै, देन कहै नठि जाय॥२२१॥
देन कहै नठि जाय ललातैं हहा करावति।
अँगुठो देति दिखाय कवौं भौँहैं मटकावति॥
विश्वनाथ नहिं रहत पलौ जोगिन हूँके वस।
धन्य-धन्य ब्रजनारि करति तिहि संग कल वतरस॥२२१॥

बेंदी भाल तँबोल मुख, मीस सिलसिलेवार।
दृग आँजे राजे खड़ी, एही सहज सिँगार॥२२२॥
एही सहज सिँगार हार उर मौलसरीको।
भूषन साजौ कोऊ पौहकिन वसन जरीको॥
विश्वनाथ जू कहा करैगो तुह कह गुन निधि॥
पायन हूँ परि चुक्यौ और करि हैं अबका विधि॥२२२॥"

विहारीके दोहोंपर कुण्डलिया लिख लेना कुछ साधारण कार्य नहीं है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रने यही जानकर इस दिशामें प्रयत्न नहीं किया था। फिर भी कवि विश्वनाथने जो इसके लिये परिश्रम किया था, वह सराहनीय है। कुण्डलिया साधारणतः अच्छी बनी है। छन्दके नियमोंका भी पालन, यथाशक्य, अच्छा ही हुआ है। इसी लिये इनकी कविताकी गति कहीं-कहीं मन्थर पड़ गयी है।

विश्वनाथने अपनी "चन्द्रिका" में ब्रजभाषाके प्रचलित नियमोंका पालन नहीं करके शब्दोंको शुद्ध रूप देनेकी चेष्टा की है। संयुक्ताक्षरोंकी भरमार है; किन्तु "स" और "श" के यथायोग्य विनिवेशपर ध्यान नहीं दिया गया है।

विहारीके प्रथम दोहेमें जो श्याम शब्द आया है, वह ब्रजभाषाके नियमानुसार "स्याम" रूपमें लिखा जाना चाहिये। "रत्नाकर" जीकी टीका और विहारी-बोधनीमें इसके क्रमशः "स्यामु" तथा "स्याम" रूप मिलते हैं; किन्तु कृष्ण कविकी जो प्राचीन टीका है, उसमें "श्याम" रूप ही मिलता है। मालूम नहीं, ऐसा लेखकने ही किया है या सम्पादक द्वारा संशोधित हुआ है।

"चन्द्रिका"में विहारीके कतिपय दोहे नहीं मिलते। जैसे "मंगल विंदु सुरंग," "मार सुमार करी डरी" इत्यादि; और, कुछ दोहे "रत्नाकरी" या "बोधिनी" से अधिक भी हैं—

"अबला क्यों करि सहि सकै, पावस कठिन जु पीर।
रुक-नील-सम अवतरयो, तेऊ धरन न धीर।" ॥३६६॥
"भुकि रसाल सौरभ सने, मधुर माधुरी-गन्ध।
ठौर-ठौर भूमत भपत, भौंर भौंर मधु-अन्ध।" ॥२६२॥

"विहारी-रत्नाकर" के उपस्करणमें सतसईकी विभिन्न प्रतियोंसे कुछ दोहे रखे गये हैं, जिन्हें रत्नाकरजी विहारी-कृत नहीं मानते। उक्त दोनों दोहे रत्नाकरजीके संग्रहमें भी नहीं हैं।

"चन्द्रिका" अधिकांशमें "विहारीबोधिनी"से मिलती है और थोड़ा-बहुत रत्नाकरी संस्करणसे।

विहारीके भावोंकी यथावत् रक्षा विश्वनाथने नहीं की है। "बेंदी भाल तम्बोल मुख" दोहेमें जो विहारीकी उत्कण्ठिता नायिका है, उसे विश्वनाथने मानिनीका रूप दे दिया है। "बतरस लालच लालके" दोहेपर जो कुण्डलिया है, उसमें विनोदका निर्वाह, आदिसे अन्त-तक, नहीं हुआ है; इसी प्रकार "जा तनकी झाँईं परै"के सौष्ठवको भी "लखावत मूरति प्यारी" लिखकर नष्ट कर दिया गया है। सारांश यह कि, विश्वनाथके अध्यवसायकी प्रशंसा की जा सकती है; परन्तु कुण्ड-लियाकी नहीं।

विहारीके दोहोंपर कुण्डलियाकी रचना करना कुछ हँसी-खेल नहीं है। प्रकृत-प्रतिभावान् कवि ही, किसी पूर्व पुण्यके प्रभावसे, इसमें सफलता प्राप्त कर सकते हैं, इत्यादि जानता हुआ भी मैं इस कार्यमें प्रवृत्त हुआ हूँ। आशा है, साहित्य-महारथियोंका प्रोत्साहन, इस कठिन कार्यकी सामासितक, मेरा सम्बल होगा।

पाठकोंके मनोरञ्जनार्थ यहाँ अपनी तीन कुण्डलियाँ देकर इस लेखका उपसंहार करता हूँ।

"मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तनकी झाँईं परै, स्याम हरित-दुति होइ॥१॥"
स्याम हरित-दुति होइ, परै जा तनकी छाया,
चम्पक सुमनु लजात, निरखि जस कंचन काया।
श्रीवृषभानु कुमारि—नवल नागरि सौ राधा,
नेकु कृपा उर-धारि हरैं मेरी भव-बाधा॥१॥

अधर धरत हरिकैं परत, ओठ-डीठि-पट जोति,
हरित बाँसकी बाँसुरी, इंद्रधनुष-रँग होति॥४२०॥"
ओठ, दीठ, पट, जोति परैं अधरन हरि धारैं,
अरुन, श्वेत, औ पीत रंग झलकैं चित हारैं।
इन्द्रधनुष्सी ललित रूप बंसी है धारति,
सरस-सुधा बरिसाय प्रेममयि जरता टारति॥४२०॥

चमचमात चंचल नयन बिच घूँघट-पट झीन।
मानहु सुरसरिता-विमल जल उछरत जुग मीन॥२१६॥'
जल उछरत जुग मीन विमल सुरसरिता सोहैं।
बरबसु रसिकन हिये हेरि मुनिजन मन मोहैं॥
चमचमातु हीं चपल नयन चंचल मुद दायक।
छिपि घूँघटकौ ओट मनोज चलावत शायक॥२१६॥"

मुजफ्फरपुर धर्म्म-समाज-संस्कृत कालेजके अध्यापक प० बदरीनाथझाजी काव्य-व्याकरण-तीर्थकी कृपासे मुझे विश्वनाथकी "चन्द्रिका"के अवलोकनका सौभाग्य प्राप्त हुआ; अतः अन्तमें उनके प्रति हृदयसे कृतज्ञता जताना मैं अपना कर्त्तव्य मानता हूँ।

हिन्दुओंका मध्यकालीन समाज

ठाकुर अच्युतानन्द सिंह 'अतरसनी'

ईसाकी नवीं और दसवीं शताब्दियोंकी सामाजिक व्यवस्थाका वर्णन करना कठिन कार्य है; क्योंकि उक्त शताब्दियोंमें जितने ग्रन्थकार पैदा हुए, उन सबकी कृतियाँ अल्प संख्यामें प्राप्त हैं। हाँ, अरबी प्रवासियोंके प्रवास-वर्णनोंके सहारे बहुत-कुछ लिखा जा सकता है। स्मृति-ग्रन्थोंसे भी सहायता ली जा सकती है; पर स्मृति-ग्रन्थोंका काल निश्चित न होनेके कारण विदेशियोंके प्रवास-वर्णनोंका ही अधिक आश्रयी बनना पड़ता है। हाँ, एक कठिनता है, इन अरबी लेखकोंके ग्रन्थोंका अनुवाद प्रायः फ्रेंच भाषामें ही हुआ है। अँग्रेज लेखकोंने विशेषतः फ्रेंच ग्रन्थोंसे ही कुछ उद्धरण, अपने ग्रन्थोंमें, दिये हैं। वे उद्धरण ही हम लागांके आधार हैं।

आज हम लोगोंकी आँखोंमें जो वस्तु सुन्दर जँचती है, सम्भव है, कालान्तरमें वही वस्तु हमारे वंशजोंकी आँखोंमें कुरूपताका रूप धारण कर ले! कहनेका तात्पर्य यह है कि, उक्त शताब्दियोंका सामाजिक वायुमण्डल इतना दूषित न था, जितना आधुनिक कालका है। न तो आजकलकी तरह, उस समय, प्रान्तीयताकी इतनी जोरदार लहर थी और न जाति-भेदका इतना दृढ़ प्राचीर। उस समयके शिलालेखोंसे जान पड़ता है कि, उन दिनोंके सभी प्रान्तोंके ब्राह्मणोंमें तनिक भी भेद-भाव नहीं था। सभी प्रान्तोंके ब्राह्मणोंमें परस्पर रोटी-बेटीका सम्बन्ध हुआ करता था। सभी ब्राह्मण, जनताकी दृष्टिमें, समानाधिकारके भागी थे। हाँ, इन लोगोंके गोत्र और शाखाएँ अलग-अलग अवश्य हुआ करती थीं। आजकलकी तरह तिरहुतिया और कनौजिया शब्दोंका प्रयोग उस समय नहीं होता था। ब्राह्मणोंकी ही तरह क्षत्रियों और वैश्योंमें भी यही बात थी। इन तीनों जातियोंमें स्पर्शास्पर्शका कोई भेद नहीं था—सभी एक साथ बैठकर भोजन कर लिया करते थे।

विदेशियोंके प्रवास-वर्णनोंसे जान पड़ता है कि, मुख्यतः उस समय सात जातियाँ थीं। खुर्दादबाने अपनी जो पुस्तक ईसाकी नवीं शताब्दीमें लिखी था, उसमें इस तरह सात जातियोंका उल्लेख किया है—"(१) सबकत्रिय—यह नृपतियोंकी जाति है। सभी जातियोंमें यह जाति उच्च श्रेणीकी है। सभी इसे श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं। (२) ब्राह्मण—इस जातिमें शराब आदि नशीले पदार्थोंका उपयोग करना बिलकुल निषिद्ध है। (३) क्षत्रिय—इस जातिमें शराब आदि नशीले पदार्थोंका उपयोग न करनेका कोई बन्धन नहीं है; पर तीन प्याले

से अधिक कोई क्षत्रिय नहीं पीता है। इस जातिकी कन्याओंका ब्राह्मणोंसे विवाह-सम्बन्ध होता है; पर ब्राह्मणोंकी कन्याओंका विवाह इस जातिमें नहीं होता। (४) सुदरीय—यह जाति कृषि-कार्यसे ही जीवन निर्वाह करती है। (५) बैसुर—इस जातिके लोग कारीगरी और कृषि-कार्य करते हैं। (६) सन्दलिय—यह जाति अत्यन्त निम्न श्रेणीका काम करती है। (७) लाहुर—इस जातिके लोग मनो-विनोद और कौतूहलसे पूर्ण तमाशे दिखाया करते हैं। इस जातिकी स्त्रियोंको अलङ्कार अधिक प्रिय होता है।

सुर्दादबाके वर्णनानुसार सर्वप्रथम नम्बर "सवकत्रिय" जातिका आता है। सम्भवतः राजपूतों-ने अपनी असाधारण वीरता दिखालाकर इस पद-को प्राप्त किया था; अत एव इस जातिकी भी राज-पूतोंमें ही गणना की जाती थी। दूसरा नम्बर ब्राह्मणोंका आता है। स्पष्टतः यह ब्राह्मणोंकी जाति है। तीसरा नम्बर "क्षत्रियों"का आता है। इसमे सर्वसाधारण राजपूतोंकी गणना होती थी। चौथा नम्बर "सुदरीय"का है। यह शूद्रोंकी जाति जान पड़ती है। पाँचवाँ नम्बर "बैसुर" जातिका है। यह वैश्योंकी जाति है। छठाँ नम्बर "सन्द-लिय" जातिका है। सम्भवतः आजकलके चण्डाल ही उस समयके "सन्दलिय" थे। सातवाँ नम्बर "लाहुर"जातिका है। आजकलके नटुओं और जादू-गरोंको ही उस समय "लाहुर" कहते थे।

सुर्दादबाके वर्णनसे पाठकोंको मालूम हो गया होगा कि, उस समयकी जातियाँ आजकलकी जातियोंकी तरह अनन्त नहीं थीं। अब देखना है कि, असवर्ण विवाहकी प्रथा उस समय कहाँतक प्रचलित थी।

उक्त दो शताब्दियोंके बहुत पहलेसे भी हिन्दुओंमें असवर्ण विवाहकी प्रथा प्रचलित थी। मनुस्मृति-काल-में ब्राह्मण चारों वर्णों (ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा) से विवाह करते थे। इसके लिये उनमें कोई सामाजिक या धार्मिक बन्धन नहीं था; पर इन दो शताब्दियोंके बीच शूद्रासे विवाह करना निन्दनीय ठहरा दिया गया। मनुस्मृतिमें अनुलोम विवाहके सम्बन्धमें लिखा है—"पुरुषकी जातिसे स्त्री-जातिमें निकटस्थता हो, तो इससे उत्पन हुई सन्तान पुरुष-जातिकी ही मानी जानी चाहिये। यह नियम प्राचीन कालसे प्रचलित है। ब्राह्मण पति और वैश्य पत्नीसे उत्पन्न हुई सन्तानको अम्बष्ठ और शूद्रासे उत्पन्न हुई सन्तानको निषाद या पारशव समझना चाहिये।" इन दो शताब्दियोंमें भी असवर्ण विवाह हुआ करते थे। तत्कालीन (दसवीं सदीमें) राजशेखर कविकी शादी चौहान-कन्यासे हुई थी। स्वयं राजशेखरने लिखा है कि, उनकी पत्नी चौहान-कुलकी थी। इससे सिद्ध होता है कि, दसवीं सदीतक अनुलोम विवाह होते थे; परन्तु उक्त शताब्दियोंके अनन्तर अनुलोम विवाहसे उत्पन्न सन्तान माताकी जातिकी और मिश्रित जातिकी मानी जाने लगी। शूद्रोंसे विवाह करनेकी प्रथा बिलकुल बन्द-सी तो नहीं हो गयी थी; पर पहलेकी अपेक्षा कुछ शिथिल अवश्य पड़ गयी थी।

अनुमान किया जा सकता है कि, इसी समयसे समाजका अवयव ढीला पड़ने लगा। इसी समयसे प्रान्तीयता और जातीयताकी द्वेषाग्निका बीजारोपण

हुआ। इसका फल यह हुआ कि, जिस समाजके अङ्ग-प्रत्यङ्गका गठन पहले ठोस था, वह शनैः-शनैः फोंक होने लगा। शायद उसीका फल है कि, आज भारतमें २००० से भी अधिक जातियोंका अस्तित्व दीख पड़ता है। समाजके नामपर खूनकी नदियाँ बहायी जा रही हैं। स्वामी दयानन्द और स्वामी श्रद्धानन्द जैसे समाज-सुधारक नेताओंको भी सनातनी पण्डितोंसे प्रतिदिन हजारों गालियाँ सुननी पड़ती थीं।

आधुनिककालकी तरह उस समयकी निम्न श्रेणी की जातियोंको उच्च श्रेणीकी जातियोंका कर्म करनेका अधिकार नहीं था। उच्च श्रेणीकी जाति निम्न श्रेणीके कर्म तो कर सकती थी; पर निम्न श्रेणी की जाति उच्च श्रेणीका कार्य नहीं कर पाती थी। उस समयके ब्राह्मणोंने, प्रचुर संख्यामें, क्षत्रिय-धर्मको अङ्गीकार कर लिया था। राज्यके उच्च पदोंपर भी ब्राह्मण नियुक्त किये जाते थे। विदेशियोंके प्रवास-वर्णनोंसे पता चलता है कि, उस समयके ब्राह्मणोंने कलाकार जैसे उच्च पदको ग्रहण कर लिया था। अनेक कला-कौशलके सिद्धहस्त गुरु थे। उस समयके ब्राह्मण, आजकलकी तरह, शास्त्रके ही पारगामी विद्वान् नहीं हुआ करते थे; बल्कि शस्त्र-विद्यामें भी निपुण होते थे।

उस समयके राजपूत भी अपने जन्मसिद्ध अधिकार शस्त्र-विद्यामें ही केवल निपुण नहीं थे; बल्कि शास्त्रविद्याका भी उन्हें उत्तम ज्ञान था। वेदाध्ययनका अधिकार राजपूतोंको प्राप्त था। उस समयके राजपूत-राज-वंशोंमें परमार-कुलके मुञ्ज और भोजराज, दोनों विद्याओंके पारगामी विद्वान् हो गये हैं। इससे सिद्ध होता है कि, उस समयके राजपूत केवल आँखें मूँदकर तलवार झनझनाना ही नहीं जानते थे, बल्कि हर एक शास्त्रके विचक्षण विद्वान् भी हुआ करते थे।

पराशर-स्मृतिसे पता चलता है कि, उस समय ब्राह्मणों और राजपूतोंने भी कृषिकार्य करना स्वीकार कर लिया था। शायद बौद्ध धर्मका पहले-पहल वैश्योंमें अधिक प्रचार होनेके कारण, जीव-हिंसाके डरसे, वैश्योंने कृषि-कार्य करना छोड़ दिया था। मुख्यतः उस समय शूद्र ही कृषि-कार्य किया करते थे।

उस समयके ब्राह्मणोंमें वाणिज्य करनेकी भी कुछ चाल थी। कुसमय आ जानेपर, आपद्धर्म समझ कर, वे वाणिज्य भी किया करते थे; पर आम तौरपर नहीं। किन्तु कुछ वस्तुओंको बेंचनेका अधिकार ब्राह्मणोंको बिलकुल न था; जैसे शराब, मांस, नमक, तिल, शहद और दूध। इन वस्तुओंको छोड़कर ब्राह्मण सभी चीजोंका व्यवसाय कर सकते थे।

हिन्दुओंके खान-पानके विषयमें अलमसूदीने लिखा है—"हिन्दुओंका ऐसा विश्वास है कि, मदिरा-पान करनेसे बुद्धि नीच हो जाती है; इसलिये अगर राजातकका भी मदिरा-पान करना साबित हो जाय, तो वह राज्याधिकारसे च्युत कर दिया जाय। हिन्दू लोग मदिराका स्पर्शतक नहीं करते।" इससे ज्ञात होता है कि, उस समय नशीले पदार्थोंका—खासकर मदिराका—पूरा प्रचार न था।

आजकलके हिन्दुओंमें शराब पीना उतना घोर पाप नहीं समझा जाता, जितना शराब तैयार कर उसका व्यापार करना। उस समयके हिन्दुओंका विचार कुछ और ही था। उस समय हिन्दू-जातिकी मनोभावना कितनी उन्नत थी, इसका परिचय

एक विदेशी यात्रीके वर्णनसे मिलता है। इब्न खुर्दादवाने अपने वर्णनमें लिखा है—"सर्व साधारण हिन्दू और हिन्दू-राजवंश शराव तैयार करना पाप नहीं समझते, बल्कि शराव पीना पाप समझते हैं।"

इसके पहले ब्राह्मणोंमें मांस खानेकी प्रथा तो थी; पर बहुत कम। प्राचीन स्मृति-ग्रन्थोंमें मांस खानेका निषेध नहीं हैं। हाँ, अर्वाचीन स्मृति-ग्रन्थोंमें मांस खानेका निषेध अवश्य है। किन्तु व्यास-स्मृतिमें लिखा है—"श्राद्धमें भोजनके लिये बुलाया हुआ ब्राह्मण यदि मांस नहीं खाय, तो पतित होता है*।" इससे सिद्ध होता है कि, उस समय भी विशेष अवसरोंपर ब्राह्मणों, राजपूतों, वैश्यों और शूद्रोंके यहाँ माँस पकाया जाता था। आज भी कितने ही ब्राह्मण मांस खाते हैं; पर ऐसोंकी संख्या बहुत थोड़ी है।

इसी तरह अरबी यात्रियोंके यात्रा-वर्णनोंसे इसका भी पता चलता है कि, उस समय भारतमें कौन-कौनसे अलङ्कार लोगोंके अधिक प्रिय थे। अबूजैदने लिखा है—"भारतीय राजाओंमें रत्न-जटित स्वर्ण-कुण्डल पहननेकी चाल बहुत प्राचीन कालसे आ रही है।" उसी वर्णनमें, दूसरी जगह, लिखा है—"माणिक्य और पन्नेके कण्ठे तथा मोतियोंकी मालाएँ पहननेकी ओर हिन्दुस्तानके राजपुरुषोंकी विशेष अभिरुचि होती है।" इससे जाना जा सकता है कि, उस समय कर्ण-कुण्डलों, गलेके कण्ठों और मालाओंकी ही गणना सभ्य जेवरोंमें होती थी।

पर्दा-प्रथाके सम्बन्धमें भी विदेशी यात्रियोंके लेखोंसे प्रकाश डाला जा सकता है; क्योंकि अबूजैदने अपने प्रवास-वर्णनमें लिखा है कि, "भारतीय राज-दरबारोंमें राज-स्त्रियाँ अपने और पराये मनुष्योंके सामने स्वतन्त्रता-पूर्वक विचरण करती हैं।" इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि, उक्त शताब्दियोंमें पर्दा-प्रथाकी जड़ आजकलकी तरह दृढ़ नहीं हो सकी थी—इतना कड़ा बन्धन नहीं था। हाँ, उत्तर-भारतकी राज-सभाओंपर अबूजैदका यह वर्णन लागू नहीं हो सकता; क्योंकि वहाँ पर्देकी प्रथा बहुत प्राचीन कालसे प्रचलित थी।

आधुनिक कालमें बाल-विवाहकी प्रथाका बाजार बड़ा गर्म है। बाल-विवाहसे कितनी हानियाँ होती हैं, यह आँका नहीं जा सकता। अब देखना है कि, उस समय यह प्रथा प्रचलित थी या नहीं। इस विषयमें विदेशियोंके प्रवास-वर्णनोंसे तो कुछ पता नहीं चलता; किन्तु स्मृति-ग्रन्थोंसे इस विषयपर यथेष्ट प्रकाश डाला जा सकता है। पराशरस्मृति और व्यासस्मृतिमें (जो लगभग इसी कालमें बनी हैं) बाल-विवाहका समर्थन किया गया है; अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि, मुसलमानी राजत्व-कालके पूर्वसे ही यह प्रथा प्रचलित है। कतिपय मनुष्योंका विश्वास है कि, जब भारतमें मुसलमानी अमलदारीका खूब दौर-दौरा था, तभीसे यह प्रथा यहाँ प्रचलित हुई; पर बात ऐसी नहीं जान पड़ती; क्योंकि उक्त स्मृति-ग्रन्थोंसे यह बात सिद्ध होती है कि, मुसलमानोंके आधिपत्य-कालके पहलेसे ही यह प्रथा भारतमें थी। इससे अनुमानतः यह कहा जा सकता है कि, जब भारतमें बौद्ध धर्मके विरुद्ध आन्दोलन शुरू हुआ—जब

* "नाश्नीयाद् ब्राह्मणो मांसमनियुक्तः कथञ्चन। क्रतौ श्राद्धे नियुक्तो वा नाश्नन्पतति वै द्विजः॥"

बौद्ध धर्म पूर्ण-उत्त्थानके पथपर अग्रसर हो रहा था, तभी इस प्रथाकी नीँव पड़ी होगी; क्योंकि अविवाहित युवती स्त्रियोंको, बौद्ध धर्मके अनुसार, तपस्विनी होनेमें कोई रुकावट नहीं डाली जा सकती थी। एक बड़ी संख्यामें लोगोंने बौद्ध धर्म स्वीकार करना शुरू कर दिया था। बहुत अविवाहित युवतियाँ भी तपस्या-धर्म स्वीकार करने लगी थीँ। सम्भवतः इसी कालसे हमारे समाज-सुधारक पूर्वजोंने यह प्रथा चलायी हो। अनुमानकी कसौटी-पर कसनेसे तो यह अनुमान सत्य माना जा सकता है। तत्कालीन समाजमें बाल-विवाहकी प्रथा चल पड़नेपर विधवाओंकी संख्या बहुत अधिक हो गयी थी। साथ ही उस समयके सर्वमान्य शास्त्रकारोंने ऐसी अनुमति भी दे दी थी कि, "पुष्प-दर्शनके पूर्व ही जिन कन्याओंको वैधव्य-जीवन व्यतीत करना पड़े, उनकी फिरसे शादी हो सकती है।" इस तरह आजकलकी विधवाओंकी अपेक्षा उस समयकी विधवाओंकी अवस्था कहीं अच्छी थी।

पिता-पुत्रका सम्बन्ध

श्रीयुत महाराजकुमार रणविजयवहादुर सिंह

वैज्ञानिकोंने इस जगत्को दो भागोंमें विभक्त किया है—बाह्यजगत् और अन्तर्जगत्। उत्पादकोत्पन्नका जैसा सम्बन्ध बाह्यजगत्से है, वैसा ही अन्तर्जगत्से भी है।

मनुष्योंके लिये जो प्राकृतिक नियम है, वही अन्य प्राणियोंके लिये भी है। पदार्थकी उन्नतिका एक साधारण समाव वंशोत्पत्ति है।

वस्तुओंके मुख्यतया जीव और शरीर नामक दो भाग हैं। जीवको बीज और शरीरको आवरण कहते हैं। नाक, कान, मुंह, चर्म, अस्थि आदि जिनकी गणना देहमें है, वे सब बीजको ढकनेवाले हैं। यह आवरणभाग भी बीजसे ही उत्पन्न होता है, यानी बीज स्वयं दो भागोंमें बँटकर बीज और शरीर बन जाता है। जैसा बीज होगा, वैसा ही उसका आवरण भी होगा। वृक्षके बीजसे वृक्षकी देह और मनुष्यके बीजसे मनुष्यकी देह बन सकती है। बीज नाजकी तरह है और आवरण छिलकेकी तरह।

जब जीवन अपनी पूर्ण अवस्थाको पहुँच जाता है, तब बीज जीवनका प्रधान कार्य करने लगता है अर्थात् वह अपना विभाग करता है, अपनेमेंसे एक भागको निकाल देता है। वह निःसृत अंश स्वतन्त्र जीव बनकर नया आवरण धारण करता है। इसी व्यापारका नाम सन्तानोत्पादन है।

प्रकृतिका शरीरसे सदा कलह होता रहता है। जबतक वह प्रकृतिको दबाये रहता है, युवा रहता है। पीछे जब प्रकृति उसपर विजय पाने लगती है, तब वह जीर्ण यानी वृद्ध होने लगता है। उस समय बीज अपने पुराने आवरणको छोड़ देना चाहता है। उससे बाहर निकल आता है। नहीं तो अपने कुछ अंशोंको ही बाहर निकाल देता है। सारांश यह कि, पिताकी मृत्यु नहीं होती है, वह केवल पुत्रके रूपसे जन्म ग्रहण करता है।

जैसे वृक्षके विकसित होनेपर डाल, पत्ते, फूल और बीज बनते हैं; वैसी ही बात सन्तानोंकी बढ़तीके सम्बन्धमें भी है। अच्छे भोजनसे अच्छा रुधिर उत्पन्न होता है। अच्छा रुधिर ही आरोग्यताका मूल हेतु है। माँके रुधिरसे ही बच्चे गर्भाशयमें पलते हैं। पीछे दूध भी माँका ही पीते हैं फलतः जनक-जनयित्रीके भोजनका प्रभाव सन्तानपर विशेष रूपसे पड़ता है।

शरीरमें रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र आदि सात धातुएँ हैं। एक धातु दूसरे धातुकी सहायतासे बनता है। सबका आदि कारण भोजन है। उत्तम आहारका होना सन्तानके लिये परमावश्यक है। जो जैसा खायगा, उसकी सन्तान वैसी ही होगी—"दीपो भक्षयते ध्वान्तं कज्जलं च प्रसूयते।" यानी दीपक अन्धकारका भक्षण करता है, तो उसकी सन्तान भी कालिख ही होती है। सप्त धातुओंपर जैसे आहारका प्रभाव पड़ता है, वैसे ही विहारका प्रभाव भी पड़ता है।

उपदंश-कुष्ठादिके द्वारा दूषित पैतृक रक्त सन्तानोंको रोगाक्रान्त कर देता है। प्रकृतिने मनुष्योंको अन्य प्राणियोंकी अपेक्षा अधिक विवेचन-शक्ति दी है; किन्तु मनुष्य यदि इसका दुरुपयोग करे, तो प्रकृति क्या कर सकती है। पशु-पक्षी प्राकृतिक नियमके पावन्द रहते हैं। वे कभी भी अकाल आहार-विहार नहीं करते। उनके सम्भोगमें स्त्रियोंकी इच्छा और आवश्यकता प्रधान रहती है; परन्तु निर्घृण पुरुष गर्भवतीके साथ भी पैशाचिक व्यवहार करते हैं। इनके इस बुरे आचरणसे सन्तान निर्बल, अल्पायु और रोगी होती है। जैसे सात्त्विक भोजनसे शान्त प्रकृतिकी सन्तान होती है और तामसिक भोजनसे उद्दण्ड प्रकृतिकी; वैसे ही अनियमित विहारसे भी दुष्ट प्रकृतिकी सन्तान उत्पन्न होती है।

काम-शास्त्रका सिद्धान्त है कि, गर्भवती सुन्दर चित्रोंको देखे, सुन्दर वस्तुओंका सेवन करे, जिससे उस सौन्दर्यका प्रभाव बच्चोंपर पड़े। गोरोंके बच्चे गोरे और हब्शियोंके बच्चे काले ही होते हैं। वीर्य और रजका प्रभाव भी बच्चोंपर पड़ता है। गर्भिणीकी दृष्टि द्वारा आकृष्ट प्रतिबिम्बका भी प्रभाव गर्भस्थ बच्चोंपर पड़ता है। किसीने एक रंगकी सौ गर्भवती भेड़ियोंको एक ही जगह रखा था। वह उन्हें चार टुकड़ियोंमें विभक्त करके चार तरहका रंगीन पानी रोज पिलाया करता था। फलस्वरूप बच्चे चार रंगके हुए!

पिता-माताके गुण-दोष अनायास ही सन्तानोंमें चले जाते हैं। पिताके गुणको पुत्र थोड़े ही परिश्रमसे सीख लेता है। शुक्रार्तवके द्वारा, जो माता-पिताका, अंश सन्तानमें जाता है, वह साफ-साफ दीखता है—हाथों, दाँतों, नखों, रोमों आदि-आदिमें पैतृक चिह्न अवश्य वर्तमान रहते हैं। शुक्रस्थ या आर्तवस्थ जितने दोष हैं, वे भी किसी-न-किसी रूपमें अवश्य ही सन्तानोंमें विद्यमान रहते हैं। एक ही कुलके यदि माता-पिता होंगे, तो उनमें वंशगत जो कुष्ठ आदि रोग हैं, वे सन्तानमें विशेष रूपसे होंगे। यदि दूसरे कुलकी माता और पिता होंगे, तो वह रोग अवश्य ही आधा होगा।

असवर्ण विवाह भी अनुपयुक्त है। वह हमारे धर्मशास्त्रोंमें निषिद्ध है। अन्यान्य वासनायुक्त रजोवीर्यके होनेसे रासायनिक कतिपय दोष उनमें उतपन्न हो जाते हैं; क्योंकि प्रकृतिने बहुतसी प्राणशक्तिको इस थोड़ेसे ही रजोवीर्यमें एकत्र कर दिया है। हाँ, प्रकृति पशु-पक्षियोंसे मनुष्योंमें कुछ अन्तर अवश्य दे देती है। पशुओंके बच्चे जनमते ही उछलने लगते हैं; पर मनुष्य-सन्तान अनुकरणशील है, वह शनैः शनैः ज्ञानार्जन करती है। यही कारण है कि, शैशवावस्थामें मनुष्य-जैसा असमर्थ और कोई जीव देखनेमें नहीं आता है। माता-पिताका जो सन्तानसे प्रेम होता है, वह किसी स्वार्थ-साधनके लिये नहीं, बल्कि नैसर्गिक रूपसे। थोड़ी देरके लिये आप मनुष्यको अपवाद कह सकते हैं; परन्तु पशु-पक्षी जो अपनी सन्तानके लिये अनुपम वात्सल्य दिखाते हैं, वह किस स्वार्थ-साधनके लिये! माता-पिता अपनी सन्तानके लिये जितना कष्ट झेलते हैं, उसे देखकर यह कहना पड़ता है कि, सन्तान माता-पिताके ऋणसे कभी भी उद्धार नहीं पा सकती।

पशुओंके बच्चे जनमते ही उछलने लगते हैं; और सामयिक आहारके लिये माताके स्तनको पीने लगते हैं। माता भी वात्सल्य-प्रेमसे गद्गद होकर हुंकार करने लगती है; दूधका स्रोत बहने लगता है। भालू-बन्दर अपने बच्चेको सब पीठपर ढोते फिरते हैं। बिल्लियाँ अपने पैने दाँतोंके बीच बच्चोंको दबाकर ले भागती हैं; पर क्या मजाल कि, बच्चा जख्मी हो जाय। चिड़ियाँ अण्डे सेती हैं; पर कछुई जमीनपर अण्डे देकर जलमें चली जाती हैं और मनको सदा अण्डेपर ही लगाये रहती है; नहीं तो उसका अण्डा ही गन्दा हो जाय। इसीपर संस्कृतमें "कच्छपाण्डसेवन-न्याय"की सृष्टि हुई। पक्षियोंमें भी वात्सल्य कम नहीं है। वे अण्डे तो सेते ही हैं

बल्कि बच्चोंके लिये अपनी भूख-प्यासकी भी कभी परवाह नहीं करते हैं ।

परम वैज्ञानिक सर जगदीशचन्द्रवसु महोदयने हय सिद्ध कर दिया है कि, वनस्पतियोंमें भी अन्य प्राणियोंकी तरह सारी क्रियाएँ होती हैं । स्वेदजोंकी भी यही दशा है ।

मानव-समाजमें पुत्र उत्तम श्रेणीकी और कन्या मध्यम श्रेणीकी सन्तान समझी जाती है । इसका कारण यह है कि, पुत्रके वंशज चाहे कितनी भी पीढ़ियाँ वीत जायँ; पर वे अपने उन्हीं मूल पुरुषके गोत्र वा कुलके कहे जायँगे; किन्तु कन्या विवाहके वाद दूसरे कुलकी समझी जाने लगती है । पुत्रमें पुरुष-भाग—वीर्यका अंश और कन्यामें स्त्रीभाग—रजका अंश अधिक रहनेके कारण पिताका सम्बन्ध पुत्रीकी अपेक्षा पुत्रमें अधिक रहता है ।

प्रकृतिने प्राणिमात्रको अपनी-अपनी सन्तानोंपर अखण्ड वात्सल्य-प्रेम इसलिये दिया है कि, वह अपनी जातिकी रक्षा करे। संसारमें सारा नियम प्रकृतिका ही है ।

अव मैं सूक्ष्म वा अन्तर्जगत्का कुछ दिग्दर्शन करना चाहता हूँ । यह वात अर्वाचीन वैज्ञानिकोंके द्वारा सिद्ध हो चुकी है कि, जब शरीर छिन्न-भिन्न होने लगता है और पञ्चत्वकी ओर जाने लगता है, तब शरीरका प्रत्येक परमाणु प्राणकी पुष्कल मात्राको ले लेता है और परस्पर मिल-जुलकर नूतन जीव (कृमि, कीट आदि) की सृष्टि करता है । हमारे ऋषियोंने सूक्ष्म जगत्के वारेमें कहा है—

"यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् । तं तमेवैति कौन्तेय, सदा तद्भावभावितः" यानी 'हे कौन्तेय, जिसके चित्तपर जिस वस्तुका दृढ़ संस्कार रहता है, उसे मरण-समय उसी वस्तुकी याद आती है और वह उसी वस्तुसे जा मिलता है ।'

वस्तुतः मनुष्यकी वासना ही पुनर्जन्मका कारण है । गीतामें भी भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि । तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही" अर्थात् जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रका त्याग कर नया वस्त्र ग्रहण करता है, वैसे ही आत्मा भी पुरानी देहको छोड़कर दूसरी देह धारण करती है । "नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः" एवं "जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्यच" इत्यादि सिद्धान्तोंके आधारपर यह कल्पना की गयी है कि, एक ही जीव अनन्त योनियोंमें विकसित होता है ।

दीपककी शिखा दीपकके साथ ही चलेगी, उसे छोड़कर दूर नहीं जायगी । तद्वत् आत्म-ज्योति भी शरीरके साथ ही चलती है । अर्वाचीन वैज्ञानिकोंकी दृष्टिमें शुक्र तथा आर्तव जीवाणुमय होता है । सूक्ष्म शरीर, जो वीर्यस्थ जीवाणु है, पितासे पुत्रमें जाते हैं । इसे ही सूक्ष्म शरीरके साथ आत्माका निकलना समझिये । यही कारण है कि, माता-पिता पूर्व-जन्म हैं और पुत्र पर-जन्म । इस विचारसे पुनर्जन्म-वाद अर्वाचीनों तथा प्राचीनों—दोनोंके विचारसे सिद्ध हो जाता है ।

सन्तान पिता-माताके अपचारोंसे गर्भावस्थासे ही अनेक दुःख भोगने लग जाती है । ज्यौतिष शास्त्रके मतानुसार सन्तानोंका माता-पिताके ग्रह-नक्षत्रोंके साथ सम्बन्ध रहता है । पिताकी कुण्डलीसे पुत्रका ग्रह-नक्षत्र ज्ञात हो सकता है और पुत्रकी कुण्डलीसे पिताका ।

अन्तमें एक बात और कहकर मैं अपने लेखको समाप्त कर देता हूँ । जिस प्रकार माता-पिता आदि पूर्वजोंका भोगावशिष्ट कर्मांश, जिस सम्बन्धसे सन्तानमें प्रविष्ट होता है, उसी प्रकार, उसी सम्बन्धसे, माता-पिता आदिके लिये सन्तानके द्वारा निष्पादित पिण्ड, तर्पण आदिका फल भी पिता-माताको प्राप्त होना सम्भव है ।

महाराजा चन्द्रमौलीश्वरप्रसाद सिंह बहादुर

इस संसारमें कितने आये और गये, उन्हें कौन जानता है? आना उन्हींका सार्थक होता है, जो इस संसारमें कुछ कीर्ति अर्जित कर जाते हैं। कीर्तिमान् लोग मरकर भी जीते रहते हैं—"कीर्तिर्यस्य स जीवति।" महाराजा मान्धाता, युधिष्ठिर, हरिश्चन्द्र, हनुमान्, भीष्म, अर्जुन, बलि, दधीचि, शिवि, कर्ण, मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी, श्रीकृष्ण भगवान् आदि कितने ही धर्मवीर, सत्यवीर, दानवीर, युद्ध-वीर और मान्य-महोदय हो गये हैं, जो अब भी प्रातः स्मरणीय हैं, जिनके नाम अब भी बड़ी श्रद्धा और भक्ति-से लिये जाते हैं। कलिकालमें भी बड़े-बड़े वीर, धीर और प्रतापी हो गये हैं। बुद्धदेव, चन्द्रगुप्त, अशोक, विक्रम, भोज, महाराणा प्रताप सिंह, शिवाजी और शिव सिंह आदि महानुभावोंकी कीर्ति-गाथा अब भी घर-घर गायी जा रही है।

गिद्धौर-राज्यके वर्तमान अधीश्वर महाराजा चन्द्र-मौलीश्वरप्रसाद सिंह बहादुरके पूर्वज चन्द्रकुल-कैरव-कलानिधि स्वनामधन्य राजा विक्रम सिंहजी भी इसी श्रेणीके आदर्श पुरुषोंमें परिगणित हैं। इनके पूर्व पुरुष शूरादंन सिंह महोबा*के महाराजा चन्द्रसेन सिंहके छोटे भाई थे। वे महोबाको छोड़कर बरदी गये और वहीं अपनी सलतनत जमाकर रहने लगे। महोबाधीशकी ओरसे उनको ६४ कोसका राज्य मिला था। बरदीके राजा शूरादंन सिंहकी कई पीढ़ियोंके अनन्तर राजा प्रभु-प्रकाश सिंह बड़े प्रतापी हुए। उनके दो पुत्रोंमें ज्येष्ठ भोज और छोटे विक्रम थे। राजा भोज सिंहने अपने छोटे भाई कुमार विक्रम सिंहको ६० गाँव दिये। ये ऐसे धार्म्मिक और उदार थे कि, इन्हें जो कुछ सालाना आय होती थी, उसे धर्मकार्यमें व्यय कर देते थे। जो कोई इनसे याचना करने आता था, विफल नहीं जाता था। याचकोंके अभीष्टको यथासाध्य पूरा करना इनका दृढ़ व्रत था। इन्होंने कितने ही यज्ञ किये, कितने ही तालाब कूएँ खुदवाये, कितने ही दान ब्राह्मणोंको दिये, कितने ही दीन शरणागतोंका दुःख दूर किया, इसकी गणना नहीं हो सकती। इनका अधिक समय पूजा-पाठ और जप-तपमें ही व्यतीत होता था। इनकी दान-वीरता देखकर कुछ ईर्ष्यालु राजाओंने दिल्लीके बादशाहके समीप इनकी वदान्यताका वर्णन इस ढंगसे किया, जिससे बादशाहके मनमें असन्तोष उत्पन्न हो। हुआ भी ऐसा ही। बादशाहने अपने कवि इन्द्रसेनसे कहा कि, "तुम बरदी जाकर विक्रम सिंहसे उसकी सारी

---

* महोबाके प्रसिद्ध महाराजा परमाल, जो क्षत्रियोंके शिरोभूषण थे, जिन्होंने मुसलमानोंके आक्रमणको कई बार रोका था, जिनके वीर सेनापति आल्हा (आह्लाद सिंह) और ऊदल (रुद्र सिंह) ने युद्धमें बड़ी बहादुरी दिखलायी थी, वे परमालदेव इन्हीं चन्द्रसेन सिंहके पूर्वज थे।—"मदनमाधवीय"।

महाराजकुमार चन्द्रचूड़ सिंह बहादुर (गिद्धौर)

महाराजा चन्द्रमौलीश्वरप्रसाद सिंह बहादुर (गिद्धौर)
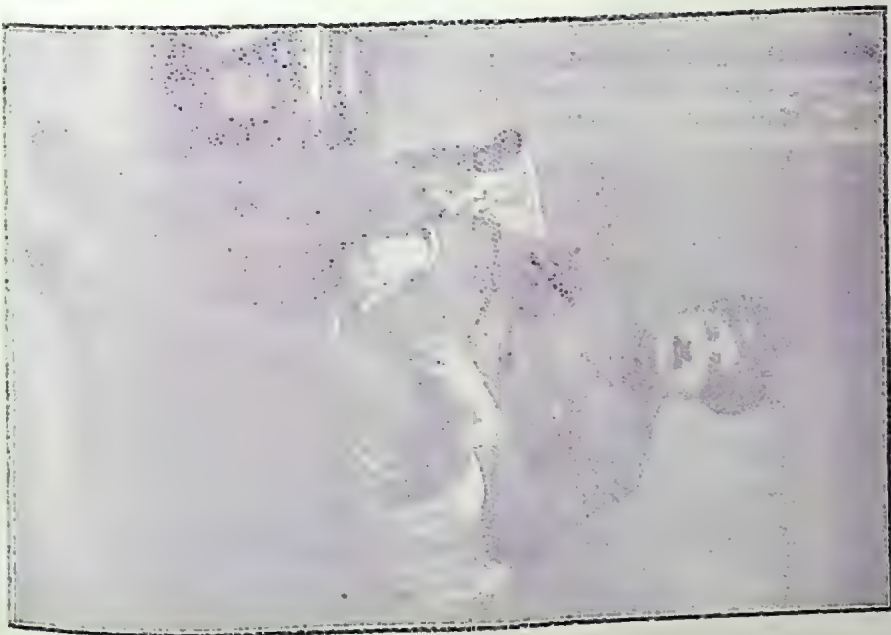
सम्पत्ति माँगो। देखें वह कैसा दानी है।" बादशाहकी आज्ञासे इन्द्रसेन कवि बड़े ठाटबाटके साथ बरदी गये और राजसभामें प्रवेश करके कुमार विक्रम सिंहको अपनी कविता सुनाकर प्रसन्न कर दिया। उन्होंने कविसे पूछा—"आप क्या चाहते हैं ?" कविने कहा, "यदि आप मेरी कवितासे प्रसन्न हैं, तो अपनी सारी सम्पत्ति मुझको दे दीजिये।" उन्होंने उसी क्षण दानपत्र लिखकर कविको अपना सर्वस्व दे डाला और आप अपने एक अन्तरङ्ग पण्डित, गिरीश्वर शुक्ल, को साथ लेकर वहाँसे विजयगढ़को चले, जहाँ उनके जाति-वर्गके लोग थे। वहाँके बन्धुवर्गने आपका पूर्ण सम्मान किया। रातमें भोजन करके जब सोये, तब पिछले पहरमें स्वप्न देखा कि, एक दिव्यरूपधारी संन्यासी, ललाटमें भस्मका त्रिपुण्ड लगाकर, कहता है कि, "हम तुम्हें चम्पकारण्यका राज्य देते हैं।" इतनेमें उनकी नींद टूट गयी और वे उठ बैठे। प्रभात होनेपर गिरीश्वर शुक्लसे स्वप्नकी बात कही। गिरीश्वर उनके ललाटमें विभूतिका चिह्न विद्यमान देखकर आश्चर्यान्वित हुए। कुछ देर तक सोचकर उन्होंने कहा, "श्रीशिवजीने स्वयं संन्यासीके वेषमें स्वप्नमें दर्शन देकर अपने हाथसे आपके ललाटमें विभूतिकी टीका लगाकर चम्पकारण्यका राज्य दिया है। आप इसे सत्य मानिये। अभी प्रस्थान कीजिये। अपने हाथसे जाह्नवीका जल ले जाकर श्रीवैद्यनाथजीकी पूजा कीजिये और ऐसी प्रार्थना कीजिये, जिससे वह आशुतोष शीघ्र द्रवित होकर आपका मनोरथ पूरा करें। विक्रम सिंह उसी क्षण उनको साथ ले गङ्गा-तटको गये और अपने हाथसे गङ्गाजल भरकर देवघरकी ओर अग्रसर हुए। वहाँ पहुँचकर बड़ी भक्तिसे भवानीपतिकी आराधना की। उनके त्रिरात्रोपवाससे श्रीवैद्यनाथजीने दयार्द्र होकर उनको वरदान दिया कि, "तुम गृद्धकूट पर्वत और चम्पकारण्यके शासक निगोरियाको युद्धमें पराजित करके वहाँका शासन करो। मैं वहाँका राज्य तुम्हें देता हूँ।" इसके अनन्तर स्वप्नमें श्रीदक्षिणकालीने प्रसन्नता-पूर्वक उन्हें काली-कवच देकर कहा कि, "इसका पाठ करनेसे सर्वत्र विजयी होगे।" इस प्रकार स्वप्नमें वरदान पाकर वे वहाँसे प्रस्थान करके गृद्धकूटके समीपवर्ती ढेकगाँव पहुँचे और ज्योतिषी रमानाथ(जुझौतिया ब्राह्मण)के यहाँ ठहरे।

उनके परामर्शसे उन दोनोंने गृद्धकूटकी गुफामें, जहाँ बगलामुखी भगवती रहती थीं, जाकर भक्तिपूर्वक पूजा की। उनसे अभयदान प्राप्त करके वे निगोरियासे युद्ध करनेके लिये तैयार हो गये। शिवजीके अलक्षित रूपसे दिये हुए विशाल रथ और अक्षय अस्त्र-शस्त्रादिके बलसे तथा उन्हीं शङ्करकी प्रेरणासे भेजे हुए उस प्रान्तके कुछ वीर क्षत्रियोंकी सहायतासे, उन्होंने बहेलियावंशज दुसाधजातीय निगोरियाको युद्धमें पराजित किया। उसका कोई उत्तराधिकारीतक न बचा; सब-के-सब युद्धमें काम आये। कुमार विक्रम सिंहने शत्रुका शिरश्छेदन करके बगलामुखीके चरणोंमें बलि देकर प्रसन्न किया। श्रीवैद्यनाथ महादेवकी कृपासे युद्धमें विजय प्राप्त करके कुमार विक्रम सिंह गृद्धकूटके * राजसिंहासनपर विराजमान हुए। सारी प्रजाने इनकी अधीनता स्वीकार की। इसके अनन्तर इन्होंने गिरीश्वर शुक्लको विजयगढ़ भेजकर वहाँसे अपने परिवार-वर्गको यहीं बुला लिया और शुक्लजी भी अपने परिवारको यहीं ले आये।

---

* गृद्धकूट पहाड़पर एक वटवृक्ष, गृद्धवट नामसे, प्रसिद्ध है। उसे वहाँके ग्रामीण लोग गीधबड़ कहते हैं। हो सकता है, गीधबड़से गिधौर या गिद्धौर शब्द बना हो। संस्कृतके कितने ही शब्द यों ही अपभ्रष्ट होकर हिन्दी-भाषामें मिल गये हैं।

गृद्धकूटके राज्यासनपर बैठनेके कुछ दिन बाद वे गिरिश्वर शुक्र और कुछ सामन्त-सेना आदिको साथ लेकर दिल्ली गये और बादशाहसे भेंट करके उन्हें अनेक प्रकारके रत्नादि उपहार दिये। बादशाहने कई प्रकारसे उनके बलकी परीक्षा ली। वे शिवजीकी कृपासे सबमें उत्तीर्ण हुए। इससे खुश होकर बादशाहने उन्हें राज्यकी सनद लिख दी और "शाह" की खिल्लतके साथ बहुत कुछ पुरस्कार दिया। तबसे वे राजा विक्रमशाह कहलाने लगे। यह लगभग १२३२ ई० की बात है, जिसको बीते सात सौ वर्ष हुए। सम्भव है, उस समय दिल्लीके तख्तपर अलतमश × रहा हो। तबसे यह राज्य इनके वंशमें चला आता है। इस राज्यका विस्तार बहुत दूरतक फैला हुआ था; परन्तु राजा गोपाल सिंहकी नाबालिगीमें राजकाज चलानेवाला कोई होशियार आदमी न था; इस कारण इसका बहुत कुछ अंश दूसरे राज्यमें सम्मिलित हो गया।

राजा विक्रम शाहसे लेकर वर्तमान महाराजातक २४ पीढ़ियाँ हुई हैं, जिनमें कितने ही अपने कीर्तिकलापके कारण बड़े प्रसिद्ध हो गये हैं। राजा विक्रमशाहके ज्येष्ठ पुत्र शुकदेव सिंह बड़े वीर और प्रतापी थे। उन्होंने अपने बाहुबलसे अपने राज्यको निष्कण्टक किया और बढ़ाया। प्रजाके कष्टको दूर करके उन्हें सब प्रकारसे सुखी किया। एक समय वीरभूमिके राजा सेना संगठित करके इनसे लड़ने आये। इन्होंने बड़ी वीरताके साथ लड़कर उनको हराया और विजय-पताका फहराते हुए ये अपनी राजधानीको लौट आये।

इन्हींके वंशज राजा रघुनाथ सिंह बड़े बलिष्ठ और बाण चलानेमें सिद्धहस्त थे। वे एक बार बादशाहसे मिलनेके लिये दिल्ली गये। उस समय एक बहुत बड़ा दँतैल हाथी पागल हो गया था। बादशाहने दरबारमें अपना यह आशय प्रकट किया कि, जो इस पागल हाथीको एक ही बाणमें मार गिरावेगा, उसे हम पुरस्कार देंगे। सब सिर नीचे करके चुप हो रहे। गिद्धौर-नरेश रघुनाथ सिंह भी वहीं बैठे थे। इन्होंने झट बादशाहको सलाम करके धनुष्-बाण अपने हाथमें लिये और एक ही बाणमें हाथीको धराशायी कर दिया। इससे प्रसन्न होकर बादशाह (लोदी वंशके सिकन्दरशाह)ने इन्हें पूर्ण रूपसे सम्मानित किया। राजमल्लकी खिल्लत दी और अनेक रत्न-आभूषणोंके साथ अपने हाथकी रत्नजटित एक कीमती तलवार भी दी।

इन्हींके पोते महाप्रतापी पूरणमल्ल सिंह हुए, जो अपनी कीर्तिको संसारमें, सदाके लिये, स्थापित कर गये हैं। जब शुकदेव सिंहने श्रीवैद्यनाथजीका मन्दिर बनवानेकी इच्छा प्रकट की, तब उन्हें स्वप्नमें शिवजीका आदेश हुआ कि, "मेरा अनन्य भक्त विक्रमसिंह इसी वंशमें पुनः जन्म ग्रहण करके मेरा मन्दिर बनवावे।" गृद्धकूटके पास घने जङ्गलमें काकभुशुण्डीका स्थापित किया हुआ शिवलिङ्ग काकेश्वर नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ मन्दिर बनवाकर उसके आसपास और भी १०८ मन्दिर बनवाने और सबमें शिवलिङ्गकी स्थापना करनेका भी आदेश हुआ।" शिवजीकी यह भी आज्ञा हुई कि, "वहाँ मैं सदा वास करूँगा। काके

× अलतमश या इलतुतमश गुलामवंशी कुतबुद्दीनका दामाद था। १२१० ई० में कुतबुद्दीन घोड़ेसे गिरकर मर गया, तब उसका बेटा आरामशाह गद्दीपर बैठा; परन्तु उसे अलतमशने गद्दीसे उतारकर स्वयं बादशाह बन बैठा। यह बड़ा प्रभावशाली था। १२११ ई० से १२३६ ई० तक इसने बड़ी बहादुरीके साथ राज्य किया।—"भारतका इतिहास।"

श्वरकी पूजा करोगे, उसीसे मैं प्रसन्न होऊँगा।" शिवजीका यह आदेश पाकर उन्होंने काकेश्वरका मन्दिर और उसके आसपास छोटे-छोटे और भी १०८ मन्दिर बनवाकर सबमें शिवलिङ्गका विधिपूर्वक स्थापन किया; किन्तु श्रीवैद्यनाथजीका मन्दिर पूरणमल्ल सिंहने १२१७ शकाब्द (१२९५ ई०) में बनवाया। मन्दिरके द्वारपर उन्हींका बनवाया श्लोक अवतक अङ्कित है—

"अचलशशिसायकोल्लसितभूमिशाकाब्दके।
वलति रघुनाथके बहलपूजके श्रद्धया॥
विमलगुणचेतसा नृपतिपूरणेनाचिरम्।
त्रिपुरहरमन्दिरं व्यरचि सर्वकामप्रदम्॥"

लोग कहते हैं कि, कैलासवासी विक्रम सिंहने शिवजीकी आज्ञासे नवीं पीढ़ीमें पूरण सिंह होकर जन्म ग्रहण किया और श्रीवैद्यनाथजीका मन्दिर बनवाकर वेदविधिसे उसका उत्सर्ग किया। मन्दिरके समीप पोखर खुदवाया, फुलवाड़ी लगवायी और शिवजीकी पूजाके निमित्त तीन हजार रुपये सालाना आयके कुछ गाँव रघुनाथ पण्डाको दिये तथा सदाके लिये उनकी पूजन-वृत्ति स्थिर कर दी। और भी स्वर्ण-रचित छत्र, चामर, सोनेका थाल, चाँदीका कलश और सोने-चाँदीकी पलंग आदि उपकरण शिवजीके परिचयार्थ उनको दिये।

श्रीवैद्यनाथजीके ये ऐसे भक्त थे कि, नित्य घोड़ेपर सवार होकर गिद्धौरसे देवघर जाते थे और वहाँ शिवजीकी नित्य-नियमानुसार पूजा करके लौट आते थे; तब कहीं भोजन करते थे। उनका ऐसा कठिन परिश्रम देखकर श्रीवैद्यनाथजीने उन्हें स्वप्नमें यह सूचित किया कि, "तुम्हारी राजधानीके समीप सिमरिया गाँवमें कुम्हारके आवेमें एक शिवलिङ्गका आविर्भाव होगा। वहाँ मन्दिर बनवाकर उस शिवलिङ्गकी पूजा करोगे, तो उसीसे मेरे पूजनका फल तुम्हें प्राप्त होगा। मेरी सेवाके लिये कुछ भूमि देकर कुम्हारको नियुक्त करना। वह मेरी भक्तिपूर्वक सेवा करेगा।" महाराजा पूरण सिंहने सिमरिया जाकर कुम्हारके आवेमेंसे मिट्टीके बर्तनोंको हटवा कर देखा, तो ठीक वहाँ एक शिवलिङ्ग देखनेमें आया। उन्होंने उसी क्षण मन्दिर बनवानेका संकल्प किया। १५२७ शकाब्द (१६०५ ई०) में मन्दिर बनकर तैयार हो गया। तबसे आप वहीं शिवकी नित्य आराधना करने लगे।

इनके दान-पुण्यका सुयश क्रमशः सर्वत्र फैल गया। एक दिन दिल्लीके प्रधान कवि रुद्ररायने बादशाहके निकट महाराजा पूरणमल्लका यश बखानकर उनसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की। बादशाहने कहा, "मेरे देनेसे जब तुम्हें सन्तोष न हुआ, तब कहीं जानेसे तुम्हें सन्तोष न होगा। अच्छा, जाओ, वह तुमको पारस दे देगा।" कविने कहा, "पारस! पारस देना भी उनके लिये कोई भारी बात नहीं है।" यह कहकर वहाँसे वे चल दिये। श्रीवैद्यनाथजीका दर्शन करते हुए महाराजा पूरणमल्लके पास पहुँचे और अपनी कविता सुनाकर उनसे पारस माँगा। पारस उनके पास न था। पर याचकका मनोरथ पूरा करना उनका एक दृढ़ व्रत था। स्नानका समय हो जानेपर भी स्नान न करके वे बागमें घूमनेको चले गये और एकान्तमें बैठकर बाणकी नोकसे मिट्टी खोदने लगे। सोचने लगे कि, पारस तो मेरे पास है नहीं, कविको क्या दूँगा। मिट्टी खोदते-खोदते बाणका अग्रभाग एक पत्थरके टुकड़ेमें जा लगा। महाराजाने कुतूहलवश उस टुकड़ेको, जो चमकीला और त्रिकोण था, बाणकी नोकसे खोदकर निकाला। देखते हैं कि, उसके स्पर्शसे बाणमें जहाँतक लोहेका अंश था, बिलकुल सोना हो गया है। उनके आश्चर्यकी सीमा न रही। उनके नेत्रोंसे आनन्दाश्रु बहने लगे! उन्होंने बार-बार श्रीवैद्यनाथज

को धन्यवाद दिया और हाथ जोड़कर कहा, "प्रभो, आज आपने अपने भक्तकी लज्जा रख ली।" उसी समय उन्होंने अपने मन्त्री जगजीवन शुक्लको बुलाकर अनायास पारस मिल जानेका वृत्तान्त कहा। शुक्लजीने उसकी जाँचके लिये ज्यों ही उससे अपनी किरिच छुलायी, वह सोनेकी हो गयी। अब तो उसके पारस होनेमें कोई सन्देह ही न रहा। महाराजा पूरण सिंहने कहा, "यह शिवजीकी कृपा है। नहीं तो ऐसे अलभ्य मणिका मिलना क्या सहज है? अच्छा, अब यह पारस कविजीको दे देना चाहिये।" शुक्लजीको इसमें पूर्ण रूपसे सहमत न पानेपर भी वदान्य पूरण सिंहने कविको बुलाकर पारस दे दिया; तब उन्होंने नित्य-कृत्य करके भोजन किया।

कवि पारस पाकर महाराजा पूरण सिंहकी जय मनाते हुए दिल्ली पहुँचे। बादशाहको मालूम हुआ। उन्होंने रुद्ररायको बुलाकर पारस दिखलानेको कहा। कविने कहा, पारस मेरे घरपर है, जहाँपनाह यमुना किनारे चलें, तो वहीं मैं पारस दिखलाऊँ। बादशाह ने तुरत यमुनातट जाने और जल-विहार करनेकी इच्छा प्रकट की। इधर कविजी भी पारस लानेके लिये घरको चले। कविजी कुछ देरमें पारस लिये हुए यमुनाके किनारे बादशाहके पास हाजिर हुए और पारस दिखलाया। बादशाहकी आज्ञासे ज्यों ही उससे तलवार छुलायी गयी, वह सोनेकी हो गया। बादशाह यह देखकर दाँतों अँगुली काटने लगे। कविको धन सम्पत्तिका पूर्ण प्रलोभन देकर उनसे पारस लेना चाहा। कविने यह कहकर कि, पारसका रखना अनिष्टकारक है, उसी क्षण यमुनाके अगाध जलमें उसे फेंक दिया।

बादशाह अपने लोभको न रोक सका। उसने दूसरे पारसके लिये फिर उनके पास दूत भेजा, लेकिन पारस रहे तब तो दिया जाय? दूत खाली हाथ लौट कर दिल्ली गया। बादशाहको विश्वास न हुआ। उसकी आज्ञासे मानसिंहके सेनापतित्वमें पारस जबर्दस्ती ले आनेके लिये सेना भेजी गयी। बादशाहकी ओरसे गृद्ध्रकूट पहाड़की तराईमें एक किला भी बनवाया जाने लगा। कुछ दिनोंमें शाही सेना पहुँच गयी। दोनों ओरसे युद्ध छिड़ गया। कई दिनोंतक युद्ध होता रहा। दोनों दलोंके कितने ही वीर काम आये। पश्चात् महादेवकी प्रेरणासे मानसिंहके मनमें यह भावना उत्पन्न हुई, 'जब महाराजा पूरण सिंहके पास दूसरा पारस नहीं है, तब उसके लिये युद्ध करना व्यर्थ है।' यह सोच कर उन्होंने युद्ध बन्द कर दिया। परस्पर सुलह होनेपर महाराजा पूरणमल्ल सिंहने अपनी कन्याका विवाह राजा मानसिंहके बेटेके साथ कर दिया। मानसिंहने बड़ी खुशीके साथ दिल्ली लौटकर बादशाह को सब बातें समझाकर राजी कर लिया। सम्भवतः यह घटना जहाँगीर बादशाहके समयकी है।

"आइने-अकबरी"में लिखा है कि, गिद्धौरके राजासे २५६ घोड़े और १०००० पैदल हथियारबन्द सिपाही, दरकार होनेपर, बादशाह अपनी सहायताके लिये ले सकता था। सन् १०६८ हिजरी (लगभग १६५८ ई०) में गिद्धौरके राजा दलन सिंहने शाहजहाँ बादशाहका भेजा हुआ एक फरमान पाया था, जिसमें शाहजादा दाराका पक्ष लेने और उसके भाई शुजाके विरुद्ध जो शाही सेना भेजी गयी थी, उसकी सहायता करनेकी बात लिखी थी। राजा दलन सिंहने उस आज्ञाके अनुसार दाराकी सेनाको सहायता दी और स्वयं उसका साथ दिया। इससे प्रसन्न होकर बादशाहने फिर उनके पास कृतज्ञता-सूचक पत्र भेजा था।

बादशाहके दिये अनेक अनुकूल फरमानों और खिल्लतोंसे गिद्धौरके राजवंशका महत्व व्यक्त होता है। इस वंशकी चिरकालिक प्रतिष्ठाके प्रमाण स्वरूप वे सब

शाही फरमान और खिल्लतें हैं।

अँग्रेजोंकी अमलदारी हो जानेपर गवर्नमेंटकी ओर से एक सूचना दी गयी थी, जिसके अनुसार विहार प्रदेशके सब जमींदारोंने अपनी-अपनी रियासतकी दख्ल-लियत साबित करके गवर्नमेंटसे बन्दोवस्तकी सनद ली थी। उस समय राजा गोपालसिंहकी अवस्था बहुत छोटी थी; इसलिये वे स्वयं राज्यका काम देखनेमें असमर्थ थे। उनके राज-कर्मचारियोंने भी राज्य-संरक्षणकी ओर पूरा ध्यान नहीं दिया; इसलिये कई अन्य जमींदारोंने इस राज्य-की सीमावर्ती भूमिको दबा-दबाकर अपने नामसे बन्दो-वस्त ले लिया। जो अवशिष्ट रह गया थी, उसे राजा गोपालसिंहने वालिग होनेपर कलकत्ते जाकर १७६८ ई० (लार्ड वेलेस्ली—गवर्नर जेनरलके समय) में गवर्नमेंटसे बन्दोवस्त लिया।

गिद्धौर-राज्यका विस्तार लगभग ४५० वर्ग मील और जनसंख्या ३०००००० लाखके करीब होगी। इस रियासतका प्राकृतिक दृश्य मनोहर है। पहाड़ और जंगल प्रकृतिकी शोभाको बढ़ा रहे हैं।

वमुई, जो इस समय मुँगेरका एक सबडिवीजन है, राजा गोपाल सिंहका बसाया हुआ है। वहाँ उन्होंने एक मन्दिर बनवाकर उसमें श्रीकालिकाकी मूर्त्ति स्थापित की थी। मन्दिरको भग्न अवस्थामें देखकर स्वर्गीय महाराजा रावणेश्वरप्रसाद सिंह बहादुरने उसका जीर्णोद्धार किया था। अब वह अच्छी दशामें है।

राजा गोपाल सिंहके दो पुत्र हुए। ज्येष्ठ यशवन्त सिंह और कनिष्ठ नवाब सिंह। राजा यशवन्त सिंहके कोई पुत्र न हुआ; इसलिये उन्होंने अपने भतीजे जयमङ्गल सिंहको राज्य दिया। उनका कैलासवास होनेपर जयमङ्गल सिंह गद्दीपर बैठे। उस समय ये नाबालिग थे; इसलिये राज्यका काम इनके पिता राजा नवाब सिंहके द्वारा सम्पादित होता था। उनकी मृत्युके अनन्तर ये स्वयं राजकाज देखने लगे। ये श्रीवैद्यनाथजीके परम भक्त, नीति-कुशल और प्रभावशाली पुरुष थे तथा गवर्नमेंटके भी हितैषी थे।

१७५४ ई० में सन्थालोंने स्वतन्त्र होकर उपद्रव मचाना शुरू कर दिया था। उस समय लार्ड डलहौसी भारतके गवर्नर जेनरल थे। उन्होंने महाराजा जयमङ्गल सिंह बहादुरको लिखा कि, वे सन्थालोंको दबावें। महाराजा बहादुरने कुछ वीर सैनिक साथ लेकर, बड़ी बहादुरीके साथ, उन उपद्रवी सन्थालोंको दबाकर उनके धनुष्-बाण आदि कुल हथियार जब्त करके उन्हें गवर्नर-जेनरलके पास भेज दिया।

१८५७ ई० में, लार्ड कैनिंग गवर्नर जेरनलके समय भयङ्कर सिपाही-विद्रोह खड़ा हुआ था। भारतमें सर्वत्र अराजकताके लक्षण दिखाई देने लगे थे। उस समय महा-राजा जयमङ्गल सिंह बहादुरने अनेक प्रकारसे गवर्नमेंटको सहायता पहुँचायी थी, इससे प्रसन्न होकर उसने, इन्हें गयाके समीप पुरस्कार-स्वरूप, बहुत बड़ी जागीर दी और के० सी० एस० आई० की उपाधिसे विभूषित किया। सन् १८७४ ई० में जो घोर दुर्भिक्ष पड़ा था, उसमें इन्होंने अन्नदान करके असंख्य दीन-दुःखियोंके प्राण बचाये थे। इनकी इस उदारतासे गवर्नमेंटने प्रसन्न होकर इन्हें धन्यवाद दिया था।

सन् १८७५-७६ ई० में प्रिंस आफ वेल्स, जो पीछे सप्तम एडवर्डके नामसे गद्दीपर बैठे, भारतमें आये थे। महाराजा जयमङ्गल सिंह बहादुरने उनका स्वागत करने लिये, कलकत्ते जाकर, अपनी राजभक्तिका परिचय दिया था। सन् १८७७ ई० में, लार्ड लिटन वायसरायने दिल्लीमें एक बृहत् दरबार किया था, जिसमें महारानी विक्टोरियाने भारत-राजराजेश्वरीकी पदवी ग्रहण की थी। उसमें आप भ

गवर्नमेंटसे निमन्त्रित होकर गये थे। उस दरबारमें गवर्नमेंटने प्रसन्नता-पूर्वक आपको वंशक्रमानुगत सदाके लिये "महाराजा बहादुर" का टाइटिल दिया।

महाराजा जयमङ्गल सिंह बहादुर, बुढ़ापा आ जानेके कारण, सन् १८६७ ई० में अपने ज्येष्ठ पुत्र महाराज-कुमार शिवप्रसाद सिंहको गद्दी देकर आप राज-काजसे विरत हुए। लार्ड मेयो वायसरायने इनके पुत्रके गद्दी-नशीन होनेकी खुशीमें गिद्धौर आकर इनके "महाराजा बहादुर" होनेकी सहर्ष घोषणा की। सन् १८८१ ई० में महाराजा जयमङ्गल सिंह बहादुरका देहान्त हो गया। पिताका परोक्ष हो जानेपर महाराजा शिवप्रसाद सिंह बहादुर, जो संस्कृत और फारसीके अच्छे विद्वान् थे और अँग्रेजीके भी ज्ञाता थे, बड़ी योग्यताके साथ राज्यका कार्य करने लगे; पर दुर्दैववश वे अधिक दिन राज्य नहीं कर सके। सन् १८८५ ई० में इस संसारसे चल बसे! इतने ही थोड़े समयमें ये जनताके इतने प्रिय हो गये थे कि, इनकी मृत्युसे शोकाकुल होकर उस दिन सब लोगोंने इनके लिये आँसू बहाये थे।

महाराजा शिवप्रसाद सिंह बहादुरके ज्येष्ठ पुत्र महाराजा रावणेश्वरप्रसाद सिंहका जन्म सन् १८६० ई० में हुआ था। ये अपने पितामह महाराजा सर जयमङ्गलप्रसाद सिंह बहादुरकी सतर्क दृष्टिके अन्दर रहकर लालित-पालित हुए। इनके पढ़ाने-लिखानेकी ओर महाराजाका ध्यान सदा बना रहता था। उन्होंने संस्कृत, अँग्रेजी और फारसीकी शिक्षा इन्हें अच्छी तरह दिलायी।

१८ सितम्बर सन् १८८५ ई०को आप अपने पिताकी गद्दीपर बैठे। २८ अगस्त सन् १८८६ ई० में आपकी खानदानी महाराजा बहादुरकी खिल्लतकी घोषणा, भागलपुरमें, बंगालके गवर्नर सर टामसन महोदयके द्वारा की गयी। १८८७ ई० में आप इम्पीरियल इंस्टीट्यूटकी सेंट्रल कमिटीके मेम्बर हुए। थोड़े ही दिनोंमें आप अपनी योग्यतासे भारत-सरकारके विशेष प्रिय पात्र बन गये। अनेक प्रकारके अधिकार हाथमें रहते हुए भी आपने कभी किसीका जी दुखानेवाला काम न किया। आप अपने उदार चरित्रसे सदा सबके प्रिय बने रहे। उसी साल (१८८७ ई० में) आपका विवाह युक्तप्रान्तकी दियरा रियासतकी राजकुमारीके साथ हुआ। इसके अनन्तर आपने जनताके उपकारके बहुतसे काम किये। आपका मुख्य ध्येय था *"यतो धर्मस्ततो जयः।"* विद्या और धर्मका प्रचार करनेमें वे सदा दत्त-चित्त रहते थे। उन्होंने अपनी राजधानीमें एक संस्कृत-विद्यालय खोला था, जिसमें ब्राह्मण-बालकोंको निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी। इस प्रान्तके बहुतसे क्षत्रियोंने यज्ञोपवीत संस्कारको उठा दिया था। वे वेदविधिसे यज्ञोपवीत न करके गलेमें जनेऊ डाल लेते थे। महाराजा बहादुरको उन लोगोंकी यह धर्म-विरुद्ध क्रिया पसन्द न आयी। उन्होंने सबको बुलाकर वर्णधर्मकी मर्यादा सुझायी और, उन्हें प्रोत्साहित करके विधिपूर्वक यज्ञोपवीत लेनेकी व्यवस्था जारी कर दी। जो खर्चके डरसे, या दरिद्रताके कारण, यज्ञोपवीत लेनेमें असमर्थ थे, उनको अपने पाससे द्रव्य देकर यज्ञोपवीत करवा दिया। अब भी जो क्षत्रिय यज्ञोपवीतके लिये सहायता चाहता है, उसे राज्यकी ओरसे दी जाती है।

महाराजा रावणेश्वरप्रसाद सिंह बहादुरके समयमें गिद्धौरकी शोभा बहुत बढ़ गयी थी। ठाकुर-बाड़ी, देवालय, पाठशाला, फ्री-औषधालय, अतिथिशाला आदि बहुतेरी इमारतें बनीं। श्रीगौरी-शङ्करका मन्दिर बनवाकर उसमें अपनी माताके हाथसे उनकी मूर्तिका विधिपूर्वक स्थापन करवाया। गढ़के भीतर श्रीविलास और श्रीनिवास नामके दो सुन्दर राजभवन बनवाये। नित्य सदावर्त बाँटनेकी व्यवस्था कर दी, जो अबतक कायम है।

१८६३ ई० में गवर्नमेंटकी ओरसे वे बंगाल लेजिस्लेटिव कौन्सिलमें सादर प्रतिष्ठित हुए। चार बार उन्हें यह प्रतिष्ठा-पद प्राप्त हुआ था। भारतेश्वरी महारानी विक्टोरियाने उनके लोकोपकारी कार्योंसे प्रसन्न होकर उन्हें के० सी० आई० ई० की पदवी प्रदान की थी।

१९०० ई० में बंगालके लाट सर जोन उडवर्नने गिद्धौरमें पदार्पण करके महाराजा बहादुरके बनवाये हुए अस्पतालका उद्घाटन किया, जो भारतेश्वरी विक्टोरियाको डायमंड जुबलीके शुभावसरपर, स्मारक रूपमें, बनवाया गया था। १९०२ ई० में, लखनऊमें, जो राजपूत-महासभा हुई थी, उसके सभापति आप ही चुने गये थे।

१९०७ ई० में आपसे मिलनेके लिये वायसराय लार्ड मिंटो अपनी सहधर्मिणी लेडी इलियटके साथ गिद्धौर आये थे। महाराजा बहादुरसे मिलकर वे बड़े प्रसन्न हुए। इन्होंने उनके शुभागमनका स्मारक-स्वरूप एक बहुत बड़ा क्लॉक टावर, सिंह दरवाजेके, सामने, राज-पथपर बनवाकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की।

श्रीवैद्यनाथजीमें आपकी अटल भक्ति थी। ये प्रायः हर साल सूर्यगढ़ (सुलतानगंज)से पैदल गङ्गाजल ले जाकर श्रीवैद्यनाथकी पूजा करते थे। उनकी परिचर्याके लिये सोना-चाँदीके अनेक उपकरण इन्होंने अर्पित किये। अपनी राजधानीमें पत्थरका मन्दिर बनवाकर उसमें श्रीत्रिपुरसुन्दरी देवीकी प्रतिमाका, वेद विधिसे, स्थापन किया और उसीके पार्श्ववर्ती दूसरे मन्दिरमें "श्रीरावणेश्वरनाथ" शिवको स्थापित करके अपनी भक्ति-निष्ठा दिखलायी। उस मन्दिरके सामने, दक्षिण दिशामें, एक सुन्दर पोखर खुदवा कर पक्का घाट बँधवा दिया और उस पोखरपर विधान-पूर्वक यज्ञ किया। पोखरके पूरब तरफ पुष्पवाटिकामें एक रमणीय विश्राम-भवन खासकर अपने रहनेके लिये बनवाया। तीर्थ-दर्शनके उद्देशसे जब आप मथुरा, वृन्दावन गये थे, तब वहाँ आपने सोना-चाँदीका तुला-दान करके ब्राह्मणोंको दिया था। आपके अनेक धर्म-कृत्योंमें विशेष प्रशंसनीय यह है कि, आपके राज्यभरमें गोवध नहीं होता। आपके ऐसे-ऐसे अनेक धर्मकार्य देखकर भारतधर्म-महामण्डल (काशी) ने आपको "धर्मसुधाकर" की पदवी प्रदान की थी।

महाराजा रावणेश्वरप्रसाद सिंह बहादुर स्वभावके अत्यन्त सरल और उदार थे। दयालु ऐसे थे कि, किसी का दुःख देखकर उनका हृदय तुरत द्रवित हो जाता था। वे उसकी यथासाध्य सहायता करते थे।

आप काव्यालापके अत्यन्त रसिक थे। हिन्दी-साहित्यके आप केवल प्रेमी ही नहीं थे, उसके पूरे ज्ञाता भी थे। संस्कृत और हिन्दी-भाषामें अच्छी कविता करते थे। कभी-कभी दोनों भाषाओं (संस्कृत और हिन्दी) में समस्या-पूर्ति भी करते थे।

अयोध्या-राजधानीके प्रसिद्ध कवीश्वर लछिरामजी आपके नामपर व्रजभाषामें "श्रीरावणेश्वर-कल्पतरु" नामक अलङ्कार-ग्रन्थ बनाकर आपको समर्पित करनेके लिये यहाँ आये थे। आपने प्रतिष्ठित कविके सम्मानार्थ उक्त ग्रन्थको ले लिया और उन्हें यथेष्ट पुरस्कार देकर विदा किया।

स्वर्गीय महाराजा रावणेश्वरप्रसाद सिंह बहादुरके सुपुत्र, गिद्धौरके वर्तमान महाराजा और चन्देलकुल-भूषण महाराजा चन्द्रमौलीश्वरप्रसाद सिंह बहादुरका जन्म संवत् १९४७ (१८९० ई०)में आग्रहायण शुक्ल पञ्चमी शुक्रवारको हुआ। बाल्यावस्थासे ही इनकी प्रतिभाका परिचय कुछ-कुछ लोगोंको होने लगा था। किसी कविने ठीक कहा है—

"होनहार बिरवानके होत चीकने पात।"

पाँचवें वर्षमें आपका अक्षरारम्भ हुआ। तबसे आपका पठनक्रम, वयःक्रमके अनुसार, क्रम-क्रमसे बढ़ने लगा। संस्कृत, अँग्रेजी और फारसीकी शिक्षा घरपर ही दी जाने

लगी। तीनों विषय पढ़ानेके लिये तीन अध्यापक नियुक्त थे। पाठ्य-विषय पढ़ानेका समय निर्दिष्ट कर दिया गया था। आप समयोचित नियमके अनुसार मन लगाकर तीनों विषयोंका अध्येयन करने लगे। पढ़नेके साथ-साथ व्यायाम भी नित्य नियमपूर्वक करते थे, जो अब भी करते हैं।

आपका यज्ञोपवीत-संस्कार १६०४ ई० में हुआ। १६ वर्षकी अवस्था प्राप्त होते-होते आपने संस्कृत और अँग्रेजीकी अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। कुछ दिन आपने स्कूलमें भी पढ़ा था; पर वह नहींके वरावर ही समझना चाहिये। जो कुछ पढ़ा, घरपर ही रहकर। अँग्रेजीमें आपकी योग्यता कितने ही बी० ए० उपाधि-धारियोंसे कम नहीं है। संस्कृतका व्याकरण तो आपने पढ़ा ही था, पीछे आपने काव्य भी पढ़ लिया। आप संस्कृत शुद्ध-शुद्ध बोलते और लिखनेपर विशेष ध्यान रखते हैं। कभी-कभी संस्कृतमें पद्य-रचना भी करते हैं। जो विद्वान् आपके दरबारमें आते हैं, उनकी विद्वत्ता जाननेके लिये आपको दूसरेका सहारा लेना नहीं पड़ता। गुणी लोग आपके ससम्मान दान और गुण-ज्ञतासे प्रसन्न होकर जाते हैं। जो सज्जन आपसे मिलने आते हैं, आप उनका यथायोग्य स्वागत करते हैं।

जब इन्होंने युवास्थामें पदार्पण किया, तब स्वर्गीय महा-राजा इनको सब प्रकार योग्य देखकर अपने जीवित समयमें ही इन्हें बड़े उत्साह और उत्सवके साथ राजतिलक दे, आप राज-काजसे विरत होकर, ईश्वरके भजनमें लगे।

संवत् १६८० में इनके पूज्य पिताका देहान्त हुआ। आपने संवत् १६८८ के वैशाख महीनेमें अपनी माताके हाथसे विधिपूर्वक श्रीलक्ष्मीनारायणकी प्रतिमाका प्रतिष्ठा-पन करवाया और उसी संवत्के ज्येष्ठमें अपने हाथसे सप्ता-श्ववाहन श्रीसूर्यकी मूर्तिका स्थापन किया। आप प्रतिवर्ष माघकी श्रीपञ्चमी तिथिमें सरस्वतीकी मृण्मयी मूर्ति बनवाकर पद्धति-क्रमसे स्वयं बड़े समारोहके साथ पूजा करते हैं।

आप दो वार विहार और उड़ीसाकी काउन्सिलके मेम्बर हो चुके हैं। उसमें अनेक मेम्बरोंके रहते हुए भी आपने टेनेंसी बिलका घोर विरोध किया था और सफलता भी प्राप्त की थी।

सन् १६२५ ई० में सर हेनरी ह्वीलर (विहार-उड़ीसा के गवर्नर) ने गिद्धौर आकर आपको खानदानी "महाराजा बहादुर" की खिल्लत प्रदान कर जनतामें सहर्ष घोषणा करके महाराजा बहादुरको क्षत्रियोंकी मर्यादा-सूचक तलवार दी।

आपको शिकार खेलनेका शौक है; पर उसका व्यसन नहीं है। जब जंगलकी निगरानी करनेवाले नौकर जंगलमें बाघ आदि हिंस्र जन्तुओंके आनेकी आहट पाकर खबर देते हैं, तब आप बड़े उत्साहसे वहाँ जाकर उन दुष्ट जीवोंपर अपने हाथकी सफाई दिखलाते हैं। गोली चलानेमें आप सिद्धहस्त हैं। तीन वर्षके भीतर आपने कई बाघ मारे हैं। इस वर्ष (१६३२ ई०) फरवरीमें आपने एक सफेद बाघ भी मारा है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक जंगली हिंस्र पशु आपकी बन्दूकके लक्ष्य हो चुके हैं। क्षत्रियोचित वीरता आपके रोम-रोममें भरी है, जिसका उपयोग आप समय पाकर मित्रों, साधुओं, ब्राह्मणों, शरणा गतों, गौओं और प्रजाओंकी रक्षाके लिये करते हैं। आप संगीतके प्रेमी तथा संगीतज्ञाता भी हैं।

सन् १३३७ फसली (१६३०) में एक बहुत बड़ा पागल हाथी इस प्रान्तमें आकर उत्पात मचाने लगा। उसके डरसे जनताको घरसे बाहर निकलना कठिन हो गया। कितने ही शिकारी साहब उसको मार गिरानेका बीड़ा उठाकर उसकी टोह लेने गये; किन्तु कुछ दूरसे ही उसका दर्शन करके लौट आये; उसपर गोली चलानेकी हिम्मत किसीकी न हुई! तब मुँगेरके कलक्टरने आपको लिखा कि, "उस हाथीको मारकर आप प्रजाकी रक्षा कीजिये।" महाराजा अपने शिकारी हाथीपर सवार हो, उस हाथीको

मारने चले। इनके साथ दो-तीन आत्मीय वर्ग भी, दूसरे हाथीपर सवार होकर, गये थे। वह पागल हाथी, इनको आते देखकर, बड़े वेगसे इनकी ओर दौड़ा। जब वह इनके नजदीक आ पहुँचा, तब इन्होंने अपने हाथीको खड़ा करके उसपर गोली चलायी। गोलीकी चोट खाकर वह पीछेकी ओर मुड़ा और भागा। महाराजाने पाँच छः कोसतक उसे खदेड़ा। आखिर उसे मारकर ही लौटे। इस प्रकारकी बहादुरीका काम करनेमें आप कभी पश्चात्पद नहीं होते हैं।

आपका पहला विवाह पलामू जिलेकी रंका रियासतके राजा गोविन्दप्रसाद सिंहकी कन्याके साथ हुआ था। लेकिन कुछ ही दिनों बाद उन देवीका देहान्त होनेसे आपको दूसरा व्याह करना पड़ा। महाराज जयपुरके समीपी दायाद कामा-नरेश कछवाहा राजावतकी राजकन्याके साथ आपकी दूसरी शादी हुई। बहुत समय बीत जानेपर भी जब इस महलसे आपके कोई सन्तान न हुई, तब स्वर्गीय महाराजाके मनमें बड़ी चिन्ता हुई। उन्हें पौत्रका सुख देखनेकी बड़ी लालसा थी। एक दिन उनके मनमें यह बात आयी कि, बेटेका एक और व्याह कर दिया जाय, तो अवश्य पौत्र उत्पन्न होगा। उनके मनमें इस इच्छाका प्रकट होना और मल्लापुरके राजा रैकवाड़ राठौरकी ओरसे कन्यादानका पैगाम लेकर पुरोहित ब्राह्मणका आना एक साथ हुआ। मल्लापुर-महीपको न मालूम यह खबर कैसे मिली कि, श्रीमान् गिद्धौर-नरेश अपने पुत्रका फिर विवाह करना चाहते हैं। हो सकता है, दैवी प्रेरणासे उन्होंने यह प्रस्ताव गिद्धौर-नरेशके पास भेजा हो। स्वर्गीय महाराजाने मल्लापुर-महीपका कुल-शील अच्छा जानकर उस प्रस्तावको सादर स्वीकार कर लिया। शुभ मुहूर्तमें इनका व्याह मल्लापुरकी राजकुमारीके साथ कर दिया गया। ईश्वरकी कृपासे स्वर्गीय महाराजाका मनोरथ पूर्ण हुआ। उनकी इस पुत्र-वधूसे एक पुत्र-रत्न और तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं। कुमार साहबका नाम चन्द्रचूड़ सिंह है। इनका जन्म १९१८ ई० (सन् १३२५ फसली) पूस महीनेमें हुआ है। ये इस समय विद्याध्ययन करते हैं। इनका शील-स्वभाव बहुत उत्तम है। अभिमान तो इनको छूतक नहीं गया है। बड़े हँसमुख और मिलनसार हैं। होनहार प्रतीत होते हैं। आशा है, ये भी अपने पिताके समान सब गुणोंसे अलङ्कृत होकर प्रजाका पालन करेंगे। इनको अँग्रेजी पढ़ानेके लिये एक सुयोग्य एम० ए०, कान्यकुब्ज ब्राह्मण, ट्यूटर नियुक्त हैं। यहाँके संस्कृत-विद्यालयके अध्यापक इन्हें वेद और व्याकरण पढ़ाते हैं। फारसी पढ़ानेके लिये एक मौलवी भी रख लिये गये हैं। महाराजा बहादुर स्वयं भी कभी-कभी इन्हें शिक्षा देते और इनकी परीक्षा लेते हैं।

महाराजा बहादुर नित्य पाँच बजे सवेरे उठ जाते हैं। प्रातः कृत्य करके कमसे कम एक घंटा व्यायाम करते हैं। आठ बजते-बजते आप पूजा-पाठ करके निश्चिन्त हो जाते हैं। आठसे ग्यारह बजेतक आप सिरिश्तेका काम देखते और आगत व्यक्तियोंसे मिलते हैं। तदनन्तर भोजन करके विश्राम करते हैं। यदि नीँद न आयी, तो कोई पुस्तक पढ़ते वा शतरंज खेलते हैं। दो बजनेके बाद आप कचहरीमें बैठकर पाँच बजेतक राज्यका काम करते हैं। इसके अनन्तर बागमें घूमने या बाहर हवा खाने चले जाते हैं। शामको श्रीत्रिपुरसुन्दरी देवी और महादेवके दर्शन करते और वहाँ कुछ देर बैठ, सायं-कृत्यसे निश्चिन्त हो, सात बजे अपने श्रीनिवासभवनमें बैठते और साहित्यकी चर्चासे मनोरञ्जन करते हैं। नौ या दस बजे दरबार बरखास्त करके भोजन करते; तदनन्तर शयनागारमें जाते हैं। यही आपकी साधारण दिनचर्या है।

—एक साहित्यसेवी

'आस्तिक-वाद'

प० वाराणसीप्रसाद त्रिवेदी एम०ए०, एलएल० बी०, काव्य-साङ्ख्य-तीर्थ

सामयिकताके विचारसे इस पुस्तक* की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। भारतीय युवक अँग्रेजियतकी प्रतिकूल शिक्षामें आस्तिकताका भाव एकबारगी खो बैठते हैं। उनके हृदयमें Christianity की जड़ तो जमने नहीं पाती; किन्तु भाषा-भावका कुछ ऐसा अटूट सम्बन्ध है कि, क्रिस्तानी भावनाकी छाया कुछ-न-कुछ अवश्य पड़ जाती है। अपने गुरुके गुरुओंकी ओर किसकी श्रद्धा न होगी? परिणाम यह होता है कि, स्कूल और कालेजके अध्यापक भी, जो कभी वैसे ही युवक थे, अँग्रेजीकी ही पुस्तकोंको वेद समझते हैं, उनमें अपार श्रद्धा रखते और उन्हींको स्वतः प्रमाण मानते हैं! यदि उन अँग्रेजी वाक्योंका अनुधावन संस्कृतकी पुस्तकें या उक्तियाँ (एक आध) करती हों, तो शायद वह उन्हें भी परतः प्रमाण मान लें! इस पुस्तकके लेखक चाहे जिसका स्वतः-प्रामाण्य मानते हों, उनका हृदय जाने; किन्तु प्रस्तुत पुस्तकका इस सम्बन्धमें तो यही निष्कर्ष है कि, उपनिषद् आदिका परतः प्रामाण्य ही है। क्यों न हो? यदि इस भावसे पुस्तक न लिखी जाती, तो फिर इसे पढ़ता ही कौन?

आस्तिकता विश्वासकी बात है। इसका मङ्गलमय भाव यदि किसीके हृदयमें नहीं है, तो शुष्क तर्कसे कदापि आ नहीं सकता। इसकी तो रफ्तार ही दूसरी तरफ है। कहते भी हैं—"An argument can never change a conviction"—केवल तर्क आजतक किसीके विश्वासको पारवर्त्तित नहीं कर सका। शुष्क तर्कसे हमारा अभिप्राय प्रतिकूल तर्कसे है। अनुकूल तर्कके बिना तो किसी भी तत्त्वका पता ही नहीं चलता। दार्शनिक बुद्धिकी यही मध्यम कोटि है—

भाषा—विषयके उपयुक्त सीधी-सादी है; न बहुत बढ़िया न बहुत घटिया—औसत दर्जेकी। व्याकरणकी, खास कर स्पेलिंगकी, गल्तियाँ बहुत हैं; किन्तु विषय इतना ऊँचा है कि, इनपर ध्यान नहीं जाना चाहिये। अँग्रेजीके उद्धरणोंमें कहीं-कहीं ऐसी अशुद्धियाँ हैं कि, मतलब खब्त हो जाता है। फिर भी ऐसे संस्कृतके उद्धरणोंकी भी काफी मट्टी पलीद है। फिर भी ऐसे

*"आस्तिकवाद"—लेखक, प० गङ्गाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०(प्रणेता, विधवा-विवाह-मीमांसा, आर्यसमाज ट्रैक्टमाला इत्यादि); प्रकाशक, कला-कार्यालय, प्रयाग; मूल्य, २॥)।

आकार—करीब ३० फर्मेकी किताब है। छपाई मध्यम श्रेणीकी है। मिस्प्रिंट बहुत ज्यादा हैं। प्रारम्भमें दो फोटो, एक लेखकका, दूसरा श्रीनारायण स्वामीका, हैं।

"श्रोतव्यं श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यं चोपपत्तिभिः।
मत्वा च सततं ध्येयमेते दर्शनहेतवः॥"

(पहले आप्त वचनोंका अध्ययन करना चाहिये, फिर तर्कों और युक्तियोंसे उनका मनन; तदुपरि सिद्धान्तको अपने मनमें बैठाते हैं; तब कहीं कोई तथ्य समझमें आता है।) किन्तु यदि तर्क हवामें किया जाय, उसका कोई आधार वा भित्ति न हो, तो उसका अन्त ही नहीं। आप ईश्वरको सिद्ध करेंगे, दूसरा कोई आपसे अच्छा बुद्धिमान् तार्किक उसे असिद्ध कर देगा। इसीसे कहा है—'तर्कोऽप्रतिष्ठः।' तर्ककी सीमा नहीं। शुष्क तर्कका उत्तर शुष्क तर्कसे भले ही दे लीजिये; किन्तु किसी सिद्धान्तपर नहीं पहुँच सकते। प्रस्तुत पुस्तकमें एक प्रकारके शुष्क तर्कसे ही ईश्वरकी सिद्धि की गयी है; तथापि हमारे माननीय लेखकको मानना पड़ा है कि—

विचारोंकी यह जगह नहीं है। आशा है, दूसरे संस्करणमें ये साधारण त्रुटियाँ अवश्य दूर कर दी जायँगी।

विषय—(१) स्थूल—विषयका पता पुस्तकके नामसे ही चलता है कि, ईश्वरकी सिद्धि ग्रन्थका प्रधान उद्देश्य है। आधार हैं अँग्रेजीकी, पाश्चात्त्य विद्वानोंकी, पुस्तकें, जैसे—Flint's Theism, Wallace's World of life, Mill's Three Essays in Religion इत्यादि। स्वा० दयानन्दका "सत्यार्थप्रकाश" तथा आर्यसमाजकी इतर पुस्तकें और व्याख्यान भी बहुत कुछ आधार हैं। बातें प्रायः सभी मँगनीकी हैं। मौलिकता भी है—सजानेमें, जहाँ-तहाँसे उदाहरण देनेमें। पुस्तकका एक तिहाईसे कुछ कम भाग अँग्रेजी पुस्तकोंके (विशेषतः Flint की पुस्तकके) उद्धरणों तथा उनके हिन्दी-अनुवादसे भरा है। छठे हिस्सेसे कुछ अधिक वैसी ही पुस्तकोंकी बातें हैं—केवल सारांश दिया है, पुस्तकोंके नाम-धामका पता नहीं बताया है। शेष रही आधी पुस्तक। उसमेंसे तीन-चौथाई सत्यार्थप्रकाश आदि आर्यसमाजी ग्रन्थोंके उद्धरण या उनके भाव हैं। शेष अर्थात् पुस्तकका आठवाँ भाग सम्भवतः लेखककी अपनी बातें हैं। इतना ही बहुत है; क्योंकि राजशेखरके शब्दोंमें "पुराणकविक्षुण्णे वर्त्मनि दुरापमस्पृष्टं वस्तु तदेव तदेव संस्कर्तुं प्रयतेत।" (पुराने पण्डितोंने सभी रास्ते रौंद डाले हैं। ऐसी बातें कहाँ मिलती हैं, जिनकी उन्होंने चर्चा न की हो? अत एव उन्हींकी उक्तियोंको सँवारनेका यत्न करना चाहिये।) सो, सँवारने—सजावटमें लेखकने कमाल किया है। वास्तवमें मौलिकता-सी आ ही गयी है।

(२) सूक्ष्म—जिस अँग्रेजी ग्रन्थके प्रधान आधारपर पुस्तक लिखी गयी है, उसके लेखक क्रिश्चियन धर्मके अनुयायी हैं। अत एव उनकी युक्तियाँ भी उसी धर्मकी पोषिकाएँ हैं। यद्यपि प्रस्तुत पुस्तकमें ऐसी युक्तियाँ पूर्णतया नहीं मानी गयी हैं; तोभी अन्तर केवल नाम मात्रका है। बस, इतना ही समझिये कि, 'बोरिया-बधना'को, बदल कर 'टाट-कमण्डलु' कर दिया गया है। हाँ, सिद्धान्त समस्त ज्यों-के-त्यों, आर्यसमाजके, हैं। समग्र पुस्तकको ध्यानपूर्वक पढ़नेपर भी यह पता नहीं चलता कि, हमारे ज्ञानी लेखक ईश्वर और जीवके अतिरिक्त केवल एक प्रकृतिको नित्य मानते हैं या दिक्, काल एवं परमाणुओंको। कहीं यह सिद्धान्त है, कहीं वह। न्याय, वैशेषिक तथा साङ्ख्यकी विभिन्न दार्शनिक कोटियोंको एक साथ गड़बड़ीमें डाल दिया गया है। यदि प्रकृतिको नित्य मानते हैं, तो समस्त जड़-सृष्टि उसीका परिणाम मात्र है। परमाणु नित्य नहीं हो सकते और दिक्, काल काल्पनिक हो जाते हैं। जब परमाणुओंको नित्य मानते हैं, तब प्रकृति कोई तत्त्व नहीं रह जाती। हमारे लेखक महोदय करते क्या? अभीतक आर्यसमाजका कोई दार्शनिक सिद्धान्त पक्का नहीं हुआ है। स्व० दयानन्दने अपने सत्यार्थप्रकाशमें जो गोलमाल मचाया था, वह आजतक चला ही जा रहा है।

"विना शब्द-प्रमाणके आजतक न किसीका काम चला और न चलेगा।" —(पृष्ठ ३६१)

किन्तु आजकी हवा ही कुछ और है; और, "जैसी बहै बयारि पीठि तब तैसी दीजै"के सिद्धान्तको समझने वाले हमारे लोक-चतुर लेखकको इस पुस्तकके [illegible]यनके निमित्त जितना साधुवाद प्रदान किया जाय, अपर्याप्त है। आपकी मेहनतको भी देखकर तबीयत दंग रह जाती है। किस अध्यवसाय, मनन, मनोयोग और कौशलसे भिन्न-भिन्न पुस्तकोंके अमूल्य अवतरण, छाँट-छाँट कर, सुन्दर सजीव क्रमसे, सजाये गये हैं, यह देखकर किसके हृदयमें उस पुरुषकी याद नहीं आ जाती, जिसने इस विचित्र संसारको सजा रखा है? सचमुच उद्धरणोंके चुनाव और सजावटके परिश्रम तथा वैचक्षण्यको देखकर कौन सहृदय एक बार आश्चर्यसे चकित एवं श्रद्धासे परिप्लुत नहीं हो जाता? इस पुस्तकमें कई अनमोल हीरे हैं। उनमेंसे गिने-चुने दो अनूठे सन्दर्भ नीचे दिये जाते हैं—

"यदि हम दुःखकी मीमांसापर विचार (?) करें, तो ज्ञात होगा कि, दुःख दो प्रकारका है, एक उन्नति करनेकी प्रेरणा करता है, दूसरा पापसे बचाता है। पहले प्रकारका दुःख वस्तुतः दुःख नहीं है। कभी-कभी मनुष्य आवश्यकताओंका नाम दुःख रख लेता है—जैसे भूख लगती है, प्यास सताती है, वस्त्रोंकी आवश्यकता होती है। यदि इनकी पूर्त्तिकी सामग्री अनायास ही उपस्थित रहती है, तो मनुष्य कहता है कि, मैं सुखी हूँ। यदि उसे इसके सम्पादनमें हाथ-पैर मारना पड़ता है, तो वह समझता है कि, मैं दुःखी हूँ। आवश्यकताओंकी पूर्तिकी सामग्रीकी अनुपस्थितिको दुःख समझना भूल ही तो है; क्योंकि यदि इनके सम्पादनके लिये हाथ-पैर-मारना न पड़े, तो मनुष्य कार्य क्यों करे? और, यदि काम न करे, तो उसकी शक्तियोंका विकास कैसे हो?"—(पृष्ठ २२९)

"बतहुसे लोग आक्षेप किया करते हैं कि, यदि पुनर्जन्म है, तो पिछले जन्मकी याद क्यों नहीं रहती? मैं कहता हूँ कि, यदि याद रहा करे, तो जीवके परिशोधनमें कोई सहायता न मिले। मानवी दण्डालयोंपर विचार करो। एक व्यभिचारी किसी सतीका सतीत्व भङ्ग करता है। उसे जेलमें ठूँस देते हैं। राजोंके लिये यही सम्भव है। परन्तु उसके पुराने संस्कार उसके मनमें अपना काम करते रहते हैं। इसलिये जेलमें भी वह अपनी पुरानी परिस्थितिको सोचा करता है और कभी-कभी जेलसे निकलते ही फिर अपने पुराने पापमय व्यापारमें लग जाता है। यदि राजोंके लिये यह सम्भव होता कि, वह अपराधियोंकी स्मृति बदल सकते, तो कितना अच्छा होता और उनका सुधार कितनी शीघ्रतासे हो सकता?"

—(पृष्ठ २५३)

ऐसी नायाब किताबकी यहाँ समालोचना करनी है। समीक्षाका कार्य है तो सरलसे सरल। प्रत्येक व्यक्तिको अधिकार है कि, किसी पुस्तकके पढ़नेपर जो कुछ प्रभाव उसके हृदयपर पड़े, उसे प्रकाशित करे। "A man should like what he does like; and his likings are facts in criticism for him". (वस्तुतः मनुष्य को वही पसन्द करना चाहिये, जो कुछ उसे पसन्द आता हो। और, उसकी पसन्दगी ही उसके लिये समीक्षाके तत्व हैं)। साथ ही समालोचना कठिन-से-कठिन कर्म भी है। (१) पहले तो किसी पुस्तकको ठीक-ठीक समझनेके लिये आलोचकको नितान्त निष्पक्ष होना चाहिये; अन्यथा लेखकके अभिप्रायको समझ नहीं सकते। किन्तु यह कहाँ सम्भव है! मनुष्य है ही "a bundle of prejudices" (वासनाओं, पक्षपातोंका एक गट्ठर)। पूर्ण विराग कहाँ मिलता है? (२) फिर आलोचककी उचित और पर्याप्त शिक्षा तथा योग्यताकी भी आवश्यकता है। लेखकके

समीक्षककी विद्या-बुद्धि कदापि न्यून न होनी चाहिये, अधिक नहीं, तो बराबरकी होना तो अनिवार्य है। यह भी क्या दुर्लभ नहीं है? किन्तु इतनेसे भी यहाँ काम नहीं चलता। (२) पुस्तकके भावोंको ठीक-ठीक समझकर, उन्हें तन्मयतासे हृदयङ्गम करके, उपयुक्त भाषामें, सर्व-साधारणके लिये, उन्हें प्रकट करना पड़ता है। यह सब बातें कहाँ, किस समालोचकमें, मिलेंगी? "न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेंगी!" न किसी समीक्षकमें इतनी सामग्री मिलेगी, न समालोचना-देवीके दर्शन होंगे!! किन्तु नहीं, वहाँ कुछ नहीं, वहाँ कुछ होना अच्छा है। उपवाससे सत्तू भले! यदि विराग नहीं, तो अभ्यास ही सही। "Practice makes perfect." (अभ्याससे पूर्णता आती है।) फलतः आलोचना होती है, जहाँतक सम्भव है, शुद्ध हृदयसे, सचाईसे, अपनी पूर्व वासनाओंको छोड़कर। तन्मयतासे पुस्तकावलोकन करनेके पश्चात् जो कुछ हृदय पर प्रभाव पड़ता है, उसे यथाशक्ति, ज्यों-का-त्यों, प्रकट किया जाता है।

"आस्तिकवाद" दर्शन-विषयकी पुस्तक है। लेखकको दार्शनिक बनना पड़ता है और ग्रन्थमें दार्शनिक ज्ञान अपेक्षित है। किन्तु यहाँ तो इसकी बड़ी कमी है। ऐसा हो भी क्यों नहीं? पुस्तकके देखनेसे पता चलता है कि, दर्शन-शास्त्रका अध्ययन हमारे मनस्वी लेखकने बहुत कम किया है। "आस्तिकवाद"की सामग्री जुटानेके लिये चाहे आपने दर्शन-शास्त्रके जो-जो ग्रन्थ उलटे हों; किन्तु उनका भी मनन आपने तनिक भी नहीं किया है। बस फ्लिंटके 'आस्तिकवाद' (Flint's Theism) और स्वा० दयानन्दके सत्यार्थप्रकाशको सामने रखकर, कुछ इधर-उधरसे भी मिलाकर, एक पुस्तक रच दी। इस गिरी दशामें भी हमारा भारतवर्ष दर्शनशास्त्रके विचारोंमें संसार भरसे आगे बढ़ा हुआ है। किन्तु एक भारतीयकी लेखनी से लिखे हुए प्रस्तुत ग्रन्थको देखकर बड़ा दुःख और ग्लानि होती है। जो हो, प्रकृत विषयपर आइये।

सबसे पहली बात, जो दर्शन-शास्त्रमें जाननेकी होती है, Absolute truth (पारमार्थिक सत्य) तथा Relative truth (व्यावहारिक तथ्य)का ज्ञान है। जो जगत् हम अपनी आँखोंसे देखते हैं, वह केवल Appearance (दृश्य-नाम-रूप-मिथ्या-माया) है; और, इसकी तहमें Reality (सत्य) छिपा हुआ है। जो व्यवहारमें सत्य है, वह परमार्थके विचारसे मिथ्या ठहरता है। किन्तु खेदके साथ कहना पड़ता है कि, परमार्थके विचारसे हमारे मान्य लेखक बिलकुल कोरे हैं। क्यों न हो? आपने अपनी भूमिकामें लिखा है—"शाङ्कर ग्रन्थोंके पढ़नेवाले कम हैं।" शायद आप सोचते होंगे कि, जब हमने नहीं पढ़ा, तब कोई न पढ़ता होगा! किन्तु बिना शाङ्कर ग्रन्थोंका मनन किये, चाहे पाश्चात्य विद्वान् हो या पौरस्त्य, कोई भी, आज दिन, अणुमात्र भी, दार्शनिक कहलानेका दावा नहीं कर सकता। अपने यहाँ इस पारमार्थिक तथ्यकी मीमांसा केवल शाङ्कर ग्रन्थोंमें ही है। यदि हमारे प्रेमी लेखकको शाङ्कर ग्रन्थोंसे घृणा हो, तो आप आजकलके स्वतः-प्रामाण्य वाले ही ग्रन्थ पढ़ लेते। पाश्चात्य दर्शनोंमें भी परमार्थ-तत्त्वकी खोजकी अब बड़ी धूमधाम है। यदि Bradley के Reality and Appearance या Kant के Critique of Pure Reason आदि ग्रन्थोंका पढ़ना आयास-साध्य हो, तो कम-से-कम आप मनोयोगसे Spencer के First Principles के ही कुछ अध्याय पढ़ लेते। यहाँ आपको Analytically (सुन्दर संश्लेषण रीतिसे) परमार्थ-तत्त्वका कुछ आभास मिलेगा। और, तब शायद आपकी रुचि शाङ्कर ग्रन्थोंकी ओर भी हो जाये। अथवा, जाने दीजिये; आपने जिन पुस्तकोंका अवतरण दिया है, यदि उन्हींका मनन किया होता, तो आपको

पता चला होता कि, *नामरूप* क्या हैं, इन्हें क्यों परमार्थमें मिथ्या कहा जाता है, मूलतत्त्व क्या है और वही एक सत्य; और, बस, वही क्यों है ?

इसी मूलकी भूलसे समस्त पुस्तकमें गलतियाँ भरी पड़ी हैं। जब पता ही नहीं कि, वास्तवमें Reality (सत्य) क्या है, तब दार्शनिक विचार कहाँसे आवेंगे ? जो कुछ होगा, वह लड़क-खिलवाड़। सिद्धान्तोंके विषयमें ऐसा ही हुआ भी है। 'मूलं नास्ति कुतः शाखा—जड़ ही गायब है, फिर, शाखाएँ आयँगी कहाँसे ? यही कारण है कि, आपकी समझमें अद्वैत, ईश्वरतत्त्व, विवर्त्तवाद आदि नहीं आये हैं; और, अनेक ऊटपटाँग—नहीं-नहीं परस्पर-विरुद्ध बातें और वह भी अपने सिद्धान्तोंके ही विषयमें लिख डाली हैं ! पुस्तकके कुछ परस्पर-विरुद्ध सिद्धान्त, नमूनेके तौरपर नीचे दिये जाते हैं—

(१) तीसरे अध्यायमें संसारको (सृष्टिको) सादि, सान्त और अनित्य बतलाया है; और, इसी भित्तिपर आपने ईश्वरको सृष्टिका निमित्त कारण सिद्ध किया है ! किन्तु ठीक इसके प्रतिकूल, आठवें अध्यायमें, उसी संसारको अनादि, अनन्त तथा नित्य बताना पड़ा है।

यहाँपर हमारे चतुर लेखकको इस विरोधका आभास हुआ है; किन्तु उसे यहाँ यह कहकर टाल दिया है कि, संसार तो सादि है; किन्तु संसार-चक्र अनादि है: सृष्टि अनित्य ही है; किन्तु सृष्टि-प्रवाह नित्य है। परन्तु विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं—संसार या सृष्टिके सत्य स्वरूपको ही हृदयङ्गम करानेके लिये रूपकालङ्कारसे उन्हें 'चक्र' तथा 'प्रवाह' कहा जाता है। कोई भी, साधारण बुद्धिका मनुष्य भी, मुख और मुखचन्द्रमें भिन्नता नहीं समझ सकता। परन्तु इतना ही नहीं; चक्र और प्रवाहसे निकलकर शुद्ध सृष्टिको भी हमारे निपुण लेखकको अपने ही मुँहसे नित्य कहना पड़ा है—

"सृष्टि नाम है प्रकृतिका।"—(३३२)

"हम·········जीव और प्रकृति (सृष्टि) को भी नित्य मानते हैं।"—(३१७)

(कोष्ठोंको सङ्ख्या 'आस्तिकवाद'के पृष्ठोंकी है।)

(२) १८१ वें पृष्ठमें कहना पड़ा है—

"······ईश्वरकी सर्वव्यापकता स्वतः ही सिद्ध हो जाती है; क्योंकि सृष्टि केवल पहाड़ बनाने या नदी बहाने या सूर्यको उदय या अस्त करनेका ही नाम नहीं है। दो परमाणुओंके परस्पर मिलने······का कार्य भी सृष्टिके ही अन्तर्गत है। इनमेंसे बहुत-सी तो अत्यन्त सूक्ष्म और बहुत-सी अत्यन्त स्थूल क्रियाएँ हैं······। इसलिये इन क्रियाओंके आरम्भ, स्थिति तथा अन्तके लिये ऐसी सत्ताकी आवश्यकता है, जो सूक्ष्म-से-सूक्ष्म और सर्वव्यापक है।"

अर्थात् जो स्थूलसे स्थूल है, वही सत्ता सर्वव्यापक है। परन्तु फिर उसी लेखनीसे १८३ वें पृष्ठमें लिखा है—

"साकार वस्तु अवश्य स्थूल होगी। सृष्टिमें जितनी स्थूल वस्तुएँ हैं, वे सूक्ष्म वस्तुओंमें व्यापक नहीं हैं (!)। इसलिये ईश्वरको सर्वव्यापक (स्थूल-से-स्थूल) न माना जाय या उसे साकार (स्थूल) न माना जाय।"

अर्थात् जो स्थूल है, वह व्यापक नहीं।

(३) १८४ वें पेजमें कहते हैं—

"यदि ईश्वर साकार होता, तो अवश्य दीखता।"

अर्थात् न ईश्वर साकार है और न वह दीखता है। किन्तु फिर ३६४ वें पेजमें आप-से-आप कहना पड़ता है—

"············इसमें सन्देह नहीं कि, शुद्ध आत्माओंको ईश्वरका उसी प्रकार प्रत्यक्ष होता है, जैसे हम अपने पास खड़े हुए माता-पिताका प्रत्यक्ष करते हैं।"

कोई इनसे पूछे कि, खड़े हुए माता-पिताका प्रत्यक्ष विना उनके आकार देखे होता है ?

(४) चौथे अध्यायमें केवल घड़ी बनानेवालेको घड़ीका

तथा कुम्हारको घड़ेका निमित्त कारण मानकर ईश्वरको सृष्टिका निमित्त कारण सिद्ध किया है; किन्तु फिर पेज पृ० १८०-१८१ में मानना पड़ा है कि, "जब हम संसारमें मनुष्यकी बनायी हुई चीजोंपर दृष्टि डालते हैं, तब उन वस्तुओंमें केवल मनुष्य ही निमित्त कारण नहीं होता; किन्तु अदृष्ट शक्ति भी निमित्त कारण होती है।"

ऐसी स्थितिमें तो जैसे, आप नास्तिकको कहते हैं कि, उसे दृष्टान्त नहीं मिलता, वही दशा आपकी भी है। आपको भी अपने लिये कोई दृष्टान्त नहीं मिल सकता। भी अदृष्ट शक्ति तो साध्य है। और, इसके विना कोई भी निमित्त कारण आपको मिलता नहीं।

(२) इसी भाँतिकी और भी कितनी ही मुख्य सिद्धान्तकी बातें परस्पर—विरोधकी हैं, जो स्थानाभावके कारण नहीं दिखायी जा सकतीं; जैसे—

अ—कहीं स्मृतियोंके अनुसार चारो वर्णों और आश्रमोंको मानते हैं, तो कहीं नहीं! कहीं चौथे आश्रम का अभाव p'ead करते हैं, तो फिर स्वा० दयानन्दकी यादसे उसे किसी कदर मान भी लेते हैं!

इ—पुनर्जन्मका संस्कार मानते हैं, तो कहीं उसको एक दम भुला करके सन्तोंकी निन्दा करनी चाहते हैं!

उ—कहीं ईश्वर और जीवके अतिरिक्त केवल एक प्रकृतिको नित्य मानते हैं और कहते हैं कि, परमाणु प्रकृति-के हैं अर्थात् परमाणु प्रकृतिसे निकले हैं; अतएव वे अनित्य हुए; किन्तु फिर कहीं परमाणुओंको ही नित्य—अनादि मान लेते हैं और प्रकृतिको कर देते हैं हवा!

ए—कहीं जीवको अनादि और स्वतन्त्र लिखा है, तो कहीं कहा है कि, परमात्माने हमें (जीवोंको) बनाया।

क—कहीं अदृष्ट शक्तिके नियमका पालन करनेके लिये एकको अनुचर लिखा है, तो कहीं उसी नियमका पालन करनेवालेको प्रभु!

ख—कहीं कहते हैं कि, ईश्वरको (राजाओंकी तरह) दण्ड नहीं देना पड़ता, तो कहीं कहते हैं कि, ईश्वर जीवों को दण्ड देता है!

ग—कहीं प्राणियोंसे भिन्न निमित्त कारण केवल एक ज्ञेय (ईश्वर) है, तो कहीं अज्ञेय (अदृष्ट शक्ति)!

यह तो हुई "आस्तिकवाद" के दार्शनिक ज्ञानकी साधारण चर्चा। अब तनिक भक्तिकी बात भी सुन लीजिये। विना भक्तिके किसीके हृदयमें कदापि आस्तिकता नहीं आ सकती; और, भक्ति है हृदयकी बात, मस्तिष्ककी नहीं। हाँ, इसका भी दार्शनिक रीतिसे विचार Æsthetics या कला शास्त्र या भक्तिदर्शनमें है। प्रस्तुत पुस्तकमें कलाशास्त्रका नाम तो एक बार अवश्य आया है और पुस्तक प्रकाशित भी हुई है कला-कार्यालयसे; किन्तु हमारे कर्मठ लेखक तथा हमारी तर्क-भरी पुस्तक ('आस्तिकवाद') इस शास्त्रसे नितान्त विमुख प्रतीत होते हैं। इसी हेतु ग्रन्थका अन्तिम अध्याय "ईश्वरप्राप्तिके साधन" एकदम फीका और दरिद्र उतरा है। भक्ति और ज्ञानके विषयमें हमारे सुधारक, लीडरीभूत, लेखकसे, जिन्हें अपनेको छोड़कर सर्वत्र सुधारकी ही जरूरत नज़र आती है, इससे अधिककी सम्भावना भी नहीं करनी चाहिये। Plato (प्लेटो) तो कलाओंकी सर्वश्रेष्ठ कला, कविता,से ही घृणा करता था और कहता था कि, कविता व्यक्तिको धोखेमें डालनेवाली और राष्ट्रपर विपत्तिका पहाड़ ढानेवाली है! फिर हमारे लोकसंग्रही लेखक अफ़लातूनसे कम थोड़े हैं! उसे तो सौन्दर्यका ज्ञान और अनुभव था; किन्तु हमारे उदीयमान उपाध्यायजी तो Plato के गुरुका भी कान काटते हैं! आख़िर, प्रस्तुत पुस्तकके ४०वें पृष्ठमें, कह ही दिया कि, चित्रकारी या मूर्ति है क्या! नक़ल ही न! Socrates (सुकरात) और Aristotle (अरस्तू)ने भी कहा था कि, "Art is the imitation of nature" (कला प्रकृतिकी नक़ल-भर है)। किन्तु बात

कुछ और है। कलाशास्त्र और भक्तिशास्त्र, दोनों एक वस्तु हैं--ज्ञान, विराग एवं ईश्वर-साक्षात्कार द्वारा मुक्तिको देनेवाली; क्योंकि "God is as full as perfect, in a hair as heart." (परमेश्वर जितना भरा-पूरा एक बालमें है, उतना ही हृदयमें)। देखनेवाला चाहिये—"To see the Divine equally in every thing." (ताकि उस परमात्माको प्रत्येक वस्तुमें ज्यों-का-त्यों देखे)। किन्तु शायद हमारे विज्ञानी लेखक यदि यह सुन लें कि, महर्षि याज्ञवल्क्यने अपनी स्मृतिमें यह भी लिखा है कि, ठीक-ठीक वीणा भी बजाकर चतुर्थाश्रमी यति मुक्ति पा सकता है, तो आपेसे बाहर हो जायँगे और महर्षिको दो-चार सुनाये विना भी न रहेंगे! किन्तु बात है सही। इस सङ्कुचित स्थानमें इस विषयपर अधिक न-लिखकर हम केवल कुछ वही 'स्वतःप्रमाण' नीचे दे देते हैं। Schopenhauer ने तो केवल इतना ही लिखा था कि, "Art is a momentary liberation" (कला क्षणिक मुक्ति है); किन्तु Mr. James H. Co sins अपनी सुन्दर पुस्तिका "The Philosophy of Beauty" में लिखते हैं—

× × Nature is the body of God." × ×

× × ×

"Indian art is an interpretative and therefore a symbol cal ana ysis of the externalised phases of the Cosmic Being—which Being yet remains unmanifest Para-Brahma." ××

× + ×

"A symbol is an effort or emanation from Brahma and as each it forms a fit object on which the contemp'ation of the Supreme may be hung."

"For instance the small stone is regarded as Supreme—as Vishnu, as Shiva and so on; but not vice versa, i. e. the Supreme is not to be regarded as imprisoned in and imited by the stone."

(अर्थात् (अनन्त) प्रकृति परमात्माका शरीर है। ×× ×× भारतीय कला परमात्माके बाह्यिक रूपोंका ज्ञापक; अतएव साङ्केतिक विवरण है—जो परमात्मा फिर भी रहस्यमय परब्रह्म ही रहता है।××× ×××। प्रतिमा है उस ब्रह्मकी एक विभूति तथा उद्भूति। अतएव परमेश्वरके ध्यानके लिये वह एक उपयुक्त साधन है। ××+ जैसे छोटी-सी (शालग्राम)-शिलाको शिव, विष्णु आदि परमात्मा माना जाता है; किन्तु उसीको उलटकर नहीं, अर्थात् परमात्माको उस शिलामें बद्ध वा सीमित कोई नहीं समझता)।

यह तो कथन है पाश्चात्त्य विद्वानोंका; किन्तु हमारे लेखक विज्ञानी भारतीय ठीक इसके प्रतिकूल कहते हैं! × ×× ऐसा क्यों न हो? दार्शनिक ज्ञान वा अनुभव तथा मस्तिष्क वा हृदय, "आस्तिकवाद" में, सबका अभाव है। इसी हेतु आरम्भसे ही ज्ञान और भक्तिकी जड़ें कटी हुई हैं। हमारे प्रकृत पण्डितजीकी समझमें या अनुभवमें प्रतिमापूजन और भक्तिका नित्य तत्त्व एकबारगी नहीं आया है और आपने स्थान-स्थानपर इन परम तथ्योंकी घोरसे घोर निन्दा की है। इन्हें संसारका जघन्यसे जघन्य कृत्य बतलाया है!

ज्ञान और भक्तिकी चाशनी ले चुके। अब शेष रह गया कर्म। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, कर्मकी स्थूल दर्शनामें "आस्तिकवाद"को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। कर्म-तत्त्व बहुत दूरतक, बड़े हृदयग्राही शब्दोंमें, ठीक-ठीक बतलाया गया है; परन्तु जबतक, 'जिधर देखूँ उधर तू ही' का आभास नहीं, जबतक "यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे" का ज्ञान नहीं, जबतक "सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि"

का अनुभव नहीं, तबतक कर्म-तत्त्वको पूर्ण और सर्वाङ्गीण, एकान्त स्फीत, रीतिसे बताना नितान्त दुस्तर है। तथापि इस विषयमें हम अपने विद्वान् लेखकको कोटि-कोटि साधुवाद देकर भी नहीं अघा पाते !

यह हुई ग्रन्थकी साधारण बातें। अब आइये पुस्तकको सरसरी तौरपर, आदिसे अन्ततक, देखा जाय। किन्तु नहीं, एक बात और मूल सिद्धान्तकी—नहीं उसके भी मूलकी रह जाती है। इसे अवलोकन करनेके अनन्तर पुस्तकको आदिसे प्रारम्भ कीजिये।

जो तीन साधन, समीक्षणके लिये, ऊपर आवश्यक बताये गये हैं, वे सब-के-सब ग्रन्थ-प्रणयनके लिये भी अनिवार्य हैं। जो सम्बन्ध समालोचकका समालोच्य पुस्तकसे है, ठीक वही सम्बन्ध पुस्तक-प्रणेताका पुस्तकके विषयसे है। पुस्तक-प्रणेताको उस विषयकी समस्त पुस्तकोंका अध्ययन करना चाहिये; क्योंकि उसको सच्चेसे सच्चा और उत्तमसे उत्तम सिद्धान्त, अपने विषयका, बताना है। और, जब तक उस विषयकी समग्र पुस्तकोंको वह नहीं पढ़ता, तबतक उसको उत्तमसे उत्तमका ज्ञान कैसे होगा? "How are you to know the best till you know the rest?" फिर पुस्तकोंका ठीक अध्ययन तभी हो सकता है, जब अपनी समस्त पूर्व वासनाओं—पक्षपात और साम्प्रदायिकता—को छोड़कर किया जाय। लेखकके लिये यह सर्वप्रथम आवश्यकीय बात है। अन्तमें, पुस्तकके विषयको तन्मयतासे हृदयारूढ करके, उसे उचित शब्दोंमें व्यक्त करना चाहिये। तभी पुस्तक पुस्तक होगी।

प्रणेताके अध्ययन और भावोंको व्यक्त करनेकी प्रणालीकी साधारण समीक्षा हो चुकी है; किन्तु जो बात मूलके भी मूलमें है, वह अभी शेष है।

यदि किसी विषयका विचार, पक्षपात लेकर, साम्प्रदायिकतासे, किया जाता है, तो वहाँ सत्यकी मात्रा कम हो जाती है। विशेष कर दर्शनशास्त्रमें तो इसकी छुआछूत भी नहीं चाहिये। स्वयं हमारे विद्वान् लेखक इस बातको उद्घोषित करते हैं—"दार्शनिक लोगोंका कर्तव्य तत्त्व अर्थात् सत्यकी खोज करना है, न कि किसी सम्प्रदायसे प्रेम और तदितरसे घृणा।" (आ० पृ० ३३०)। परन्तु बड़े खेदसे कहना पड़ता है कि, प्रस्तुत पुस्तकमें इस नियमके जितने अपवाद मिलते हैं, उतनी अनुगामिता नहीं। एक बार ही नहीं, प्रत्येक बार सम्प्रदायके पीछे *"सत्यका गला घोंटा गया है"*; और, यह बात स्वयं पुस्तक ही चिल्ला-चिल्ला कर कह देती है, जिसका कुछ दिग्दर्शन ऊपर, पुस्तकगत पारस्परिक विरुद्ध सिद्धान्तोंको बतानेमें, हो चुका है। किन्तु इतना ही नहीं। सबसे अधिक खटकनेकी बात, जो इस पुस्तकमें है, वह यह है कि, यद्यपि यह ग्रन्थ कोरे आर्यसमाजके सिद्धान्तोंको—चाहे वे जैसे हैं, बुरे या भले, सत्य या मिथ्या, इसका यहाँ प्रश्न नहीं है—लेकर लिखा गया है और इस प्रकार "आस्तिकवाद" वस्तुतः, अक्षरशः, साम्प्रदायिक बातोंसे भरा है; किन्तु इस बातको प्रकट बतलाया नहीं गया है—न जाने क्यों! प्रत्युत यह दिखलानेकी चेष्टा की गयी है कि, यह किताब साम्प्रदायिकतासे बिलकुल बरी है। क्या यह उचित है? यह कलिकी महिमा है। सर्वत्र Policy से काम लिया जाता। धर्मकी बातोंमें भी चाल चली जाती है! सीधे कहकर आना मूर्खता समझी जाती है! तथापि वीर सत्यवादी आर्यको यह शोभा नहीं देता। यदि यह पुस्तक आर्यसमाजके साम्प्रदायिक ग्रन्थोंकी भाँति लिखी गयी होती, तो इसमें कुछ भी दोष न था—पुस्तक सर्वथा निर्दोष, निष्कपट, जँचती। 'सत्यार्थप्रकाश'के ईश्वर-तत्त्वके मननमें इस पुस्तकसे असीम साहाय्य मिलता है। परन्तु पुस्तकके प्रस्तुत आवरणसे घोर प्रतारणा और प्रबल प्रवञ्चनाकी झलक आती

है।* किन्तु इसमें हमारे परिपक्व लेखकका तनिक भी दोष नहीं है, यह करामात है, उसी साम्प्रदायिकता देवीके आवेशकी। जब इनका रंग खूब चढ़ जाता है, तब सत्यासत्यके विचारका, जो नितान्त नीराग (achromatic) है, कहीं पता ही नहीं रहता और आवेश्यके मस्तिष्कमें केवल यह देवी एक परमार्थ तथ्य रह जाती हैं !

यदि ऐसी पुस्तकमें श्राद्ध, पुराण, प्रतिमा-पूजन, अवतार, ईश्वरकी साकारता, शाङ्कर मत, विवर्त्तवाद और भक्ति आदिका खुल्लमखुल्ला खण्डन हो, तो कोई हर्जकी बात नहीं है, वरना हर्षका विषय है। किन्तु आस्तिकता सिखानेकी ओटमें कोमलमति बालकोंके हृदयमें इन अस्पृत तत्त्वोंके प्रति अश्रद्धा पैदा कर देनेकी चाल पुस्तक-प्रणेताके अतीव सङ्कुचित विचारोंका पता देती है। शाङ्कर सिद्धान्तोंके निराकरणका जो कहीं-कहीं वृथा प्रयास किया गया है, वह पठन-पाठनकी कमी एवं प्रतिकूल वासनासे उत्पन्न अहंकृति एवं अज्ञानकी ही करामात है—यह अन्यत्र दिखाया गया है। उपाध्यायजीने जो किया है, बहुत ही अच्छा किया है। उनकी अपनी जो चीजें पुस्तकमें हैं, सभी अति उत्तम हैं। हाँ, जो अन्यत्रसे ली गयी हैं, उनके जिम्मेदार और ही लोग हैं !

अच्छा अब आइये, पुस्तककी जाँच, प्रारम्भसे, की जाय। पहले सात पृष्ठोंमें श्रीनारायण स्वामीका 'प्राक्कथन' है—नूतनता और योग्यतासे भरपूर। सायंस और धर्मका सामञ्जस्य दिखाया गया है। किन्तु सादि सच्चिदानन्दकी बात खटकनेकी है और आदर्शके निमित्त मनुष्यको आस्तिक बनना चाहिये, इस उक्तिसे किञ्चिन्मात्र स्वार्थपरता एवं साथ ही साथ सत्यताकी उपेक्षाकी झलक आती है। अन्तमें आपने लिखा है—'एक प्रभाव जो पुस्तकके आद्योपान्त पढ़ जानेसे मुझपर पड़ा है, वह यह है कि, पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है और आस्तिकवादके सम्बन्धमें कुछ जाननेकी इच्छा रखनेवालोंके लिये बड़े कामकी चीज है।" फिर लेखककी नन्ही-सी 'भूमिका' है। आप कहते हैं, "सच्ची शान्तिका स्थापन आस्तिकताके यथार्थ भावों द्वारा ही हो सकता है।" शायद इन्हीं यथार्थ भावोंको बनानेकी चेष्टा इस

---

* प्रतारणा—प्रतारणाका एक जीता-जागता उदाहरण और है। पण्डितोंको—चाहे जिन्हें पण्डित कहते हों, आपने खूब कोसा है; किन्तु साथ ही अपने नामके आगे, ब्राह्मण न होनेपर, भी पण्डित शब्द लिखनेमें अपना गौरव समझते हैं! फिर उपाध्याय भी, जैसा सभी लोग जानते हैं, उन्हीं पण्डितोंका एक प्रसिद्ध विभाग है। किन्तु आप अपनेको उपाध्याय भी लिखते हैं। यह क्या है ? बात तो यह है कि, आप जानते हैं कि, पण्डित और उपाध्यायकी इज्जत और मर्तबा आपकी एम० ए० की डिगरीसे अधिक है और इसी लिये अपने नामके आगे-पीछे इन्हें भी जोड़ लेते हैं। परन्तु साथ ही, जो वास्तवमें संसारमें पण्डित और उपाध्याय हैं, उनके सिर झूठे, सच्चे कलङ्क मढ़कर उन्हें जनताकी दृष्टिमें गिराना चाहते हैं! इन "महाशय"की यही महाशयता है। हाँ, त्रिकालमें भी हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि, आप अपनेको पण्डित या उपाध्याय न लिखें—अवश्य लिखें। लिखें, तो बराबर लिखें और दया करके झूठे कलङ्क किसीके सिर न मढ़ें। आपका इतना ही लिख देना क्या पर्याप्त नहीं था कि "हाँ, कभी-कभी ऐसा होता है कि, अपनेको आस्तिक कहने वाले बहुतसी नीचता करते पाये जाते हैं, परन्तु इसका मुख्य कारण आस्तिकता नहीं; किन्तु पाखण्ड है। संसारमें बहुरूपिये बहुत हैं। वह अनेक रूप धारण करके संसारको ठगना चाहते हैं। कहीं प्रतिष्ठित पुरुषोंका रूप रखते हैं और कहीं आस्तिकों और ईश्वर-उपासकोंका।" यह सबपर लागू हो सकता है, चाहे हम हों या आप। पुस्तकके देखनेसे लेखकका संस्कृत-भाषाका ज्ञान नितान्त परिमित प्रतीत होता है। संस्कृतके प्रायः सभी उद्धरणोंके अर्थका अनर्थ किया है। उद्धरणोंकी ठीक-ठीक नकल करनेमें भी गलतियाँ

पुस्तकों की गयी है !

इसके अनन्तर विषय-सूचीके पश्चात् पुस्तक प्रारम्भ होती है। कुल १२ अध्याय हैं। पहले अध्यायका नाम है विषयकी व्यापकता। किन्तु काम है विषयके संकोचका ! इस में सन्देह नहीं कि, धर्म एक व्यापक विषय है; किन्तु 'धर्म' शब्दका प्रयोग यहाँ अत्यन्त सङ्कुचित अर्थमें किया गया है—धर्मसे अभिप्राय है आपका केवल मनुष्यका अपने किसी उच्च अवृष्ट शक्तिपर विश्वास और उस विश्वाससे प्रभावित व्यापार। थोड़ेमें यों समझिये कि, लेखकका धर्म, मुसलमानोंका मज़हब और क्रिस्तानोंका रिलिजन, तीनों एक ही चीज़ हैं ! पुस्तक समाप्त करनेपर भी निष्कर्ष यही रहता है। कहनेके लिये अन्तर केवल दो बातोंका है—(१) "आस्तिकवाद" पुनर्जन्मको मानता है, जिसे न माननेमें मुसलमानी और क्रिस्तानी धर्म शायद किसी कदर गलती करते हैं। (२) बाइबिल और कुरान ईश्वरके अतिरिक्त और कुछ भी नित्य नहीं मानते। उनका कहना है कि, ईश्वरने ही जीव और परमाणु आदिको बनाया है। किन्तु हमारे लेखक महोदय इन्हें भी ईश्वरके ही समान नित्य मानते हैं। इस विषयमें बाइबिल और कुरान की दार्शनिकतासे आप एक प्रकारसे निम्न कोटिमें नहीं, तो उच्च कोटिमें भी नहीं हैं। और, फिर भूल-चूक, लेनी-देनी तीनोंका दर्जा बराबरीका ही है। इस अध्यायमें यह दिखानेकी कोशिश की गयी है कि, इसी धर्मका भाव या आस्तिकताका भाव सभी मनुष्योंमें बीजरूपसे विद्यमान है।

दूसरा अध्याय—"मनुष्य अल्प है"—बहुत ही अच्छा उतरा है। यह इस पुस्तकका सर्वश्रेष्ठ अध्याय है। विषय दार्शनिकताका नहीं है—केवल साधारण कोटिका है; परन्तु बड़ी खोज और योग्यतासे लिखा गया है। पृष्ठ २७ में लेखकने "*अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्*"का अर्थ ठीक नहीं समझा है। है यह चीज़ समझनेकी। इसका अर्थ "बुद्धिमानोंके लिये अज्ञात और मूर्खोंके लिये ज्ञात" कदापि नहीं है। ऐसे अर्थसे तो बात ही बिलकुल उलट जाती है। इसके सही मानी तो यह हैं कि, जबतक मनुष्य इसकी वास्तविक सत्ताको नहीं जानता रहता, तभीतक समझता रहता है कि, हम जान रहे हैं; किन्तु जब वह परब्रह्मका पारमार्थिक तत्त्व समझने लगता है, तब यही देखता है कि, हम इसे जानते नहीं।

तीसरा अध्याय है—"सृष्टिरचना।" यहाँ दिखाया गया है कि, सृष्टि एक कार्य है और इसमें नियम, एकता, प्रयोजन तथा विशालता पायी जाती है।

पृष्ठ ४४ में 'सृ' धातुका अर्थ 'निकलना' लिखा है। यह बिलकुल गलत है। इसका अर्थ है 'गति' या चाल।

पृष्ठ ५१—६० में J. S. Mill के "Three Esays in Religion" से एक अवतरण देकर उसका अनुवाद किया गया है। इस उद्धरणसे मूल तत्त्व ब्रह्मकी अद्वैतता तथा नाम-रूप जगत्के मिथ्यात्वकी व्याख्या हो जाती है; किन्तु हमारे लेखकने इसे ठीक समझा ही नहीं।

पृष्ठ ६२ में आप विवर्त्तका लक्षण लिखते हैं—"*अतात्त्विको अन्यथाभावः विवर्त्त इति उदीरितः।*"

यह संस्कृत-वाक्य इस प्रकार सन्धि, तोड़कर, लिखा गया है कि, मालूम हो कि, सचमुच आप इसका अर्थ समझते हैं। किन्तु बात कुछ और हो जाती है। इससे आपके संस्कृत-भाषाके ज्ञानकी अत्यन्त कमी दीखती है। सन्धि तोड़ना बच्चोंका काम है। वह भी नहीं आया—लिखा-'अतात्त्विको अन्यथा।' 'अतात्त्विकः' क्यों नहीं लिख दिया ? सन्धिमें तो पास हो जाते ! आप इसका अर्थ करते हैं, "जो वस्तु न हो और मालूम पड़े।" किस अक्षरसे यह अर्थ निकलता है, आप ही जानते होंगे !

चौथा अध्याय है—"सृष्टिकर्त्ता"। यही इस ग्रन्थका प्रधान अङ्ग है। यहाँ अनुमान प्रमाणके द्वारा नैयायिकों

और फ्लिन्ट (Flint) की युक्तियोंसे यह सिद्ध किया गया है कि, सृष्टिका निमित्त कारण बुद्धि और इच्छा वाली वह शक्ति है, जिसको आस्तिक लोग ईश्वर कहते हैं।

पाँचवाँ अध्याय है—"सायंस और आस्तिकवाद।" पूराका पूरा अध्याय Flint आदिके अँग्रेजी ग्रन्थोंके अवतरण और उनके अनुवादसे भरा है। यही दिखाया गया है कि, वास्तवमें सायंस और आस्तिकवादमें विरोध नहीं है; प्रत्युत सायंससे भी आस्तिकताका ही मण्डन होता है।

इस अध्यायके दूसरे ही पेजमें, एवं ग्रन्थमें यत्र तत्र, भक्तिमार्गको ही अन्धविश्वास बताया गया है। जो लोग स्वयं हृदय-नेत्रसे हीन और भक्तिके प्रति अन्धे हैं, वे ह ऐसा कह सकते हैं। फिर यूरोपमें चाहे जो हो, भारतवर्षमें भक्तोंने या भक्तनामधारियोंने भी कभी कोई अत्याचार नहीं किया। किन्तु आप सबको एक ही हँडेमें हाँकते हैं! क्या यह आपकी चाल, कच्चे पाठकोंके हृदयमें, भक्तिके प्रति, अश्रद्धा पैदा करनेकी नहीं है? किन्तु इससे होता क्या है? सत्यता थोड़े छिपती है?

छठें, सातवें और आठवें अध्यायोंका नाम है—"ईश्वरके गुण।"

छठा अध्याय पुस्तकका निकृष्टतम अध्याय है। ग्रन्थकारने यहाँ केवल अपने और आर्यसमाजके तर्क और युक्तियाँ भिड़ायी हैं। यही एक अध्याय है, जिसमें लेखकने एक प्रकारसे तनिक भी सहायता, अँग्रेजीके ग्रन्थोंसे, नहीं ली है।

(१) पहले ईश्वरके चमत्कारोंका खण्डन है। चमत्कारसे लेखकको खास चिढ़ है। रहा करे। चमत्कार बहसकी बात नहीं है; अपनी भावना, अपने अनुभवकी बात है। इसका सम्बन्ध केवल हृदयसे है। यह चीज विश्वासकी है। जिसके हृदय है, उसे ईश्वरके चमत्कारोंमें ही परम आनन्द मिलता है। समस्त मानवी हृदयके लौकिक भाव मनोविज्ञान (Psychology) से सम्बन्ध रखते हैं। किन्तु वे ही सब परिणत होकर कलाविज्ञान (Æsthetics) में अलौकिक हो जाते हैं। किन्तु चमत्कारका भाव केवल अलौकिक ही है। इसीलिये धर्मदत्तने कहा है—

> "रसे सारश्चमत्कारः स सर्वत्रानुभूयते ।
> तच्चमत्कारसारत्वात्सर्वत्राप्यद्भुतो रसः ॥"

अर्थात् रसमें सार चमत्कार है और इसका सर्वत्र अनुभव होता है; अतएव, चमत्कारके सार होनेके कारण, सर्वत्र ही अद्भुत रस होता है। रसका अर्थ है वही Æsthetic pleasure (अलौकिक दिव्य आनन्द)। वह है क्या? उसी 'रसो वै सः' का एक कण, एक बिन्दु, एक स्फुलिङ्ग। ईश्वरकी यह सृष्टि चमत्कारसे—रहस्यसे—परिपूर्ण है। ईश्वर-विषयमें भी यदि कोई बात अल्प मनुष्यके ज्ञान, नहीं, अनुभवकी है, तो वही एक चमत्कार! जिस ईश्वरमें चमत्कार नहीं, वह ईश्वर ईश्वर नहीं हो सकता। इसके निमित्त तर्कों और युक्तियोंकी ज़रा भी जरूरत नहीं। इनका तो वहाँ गुज़र ही नहीं है। किसी सहृदयका हृदय इसका साक्षी है। किन्तु जो सहृदय नहीं, उसके लिये चमत्कार क्या चीज है? और वह भी चमत्कारके लिये क्या "काष्ठकुड्याश्मसन्निभाः"—बस लकड़ी, दीवार और पत्थरके समान! यदि नास्तिकोंके तर्कोंका उत्तर न आता हो, तो चुप रहना अथवा नास्तिक ही हो जाना अच्छा है। सत्यका अपलाप नहीं करना चाहिये।

(२) बड़ा विकट आक्षेप शाङ्कर मतपर है कि, यदि जगत्को आप मिथ्या कहते हैं, तो ईश्वर-सिद्धिके लिये आप प्रमाणके दृष्टान्त कहाँसे लावेंगे? मिथ्याको प्रमाण-कोटिमें कैसे रखेंगे? यह बात है बिलकुल बच्चोंकी-सी। वि

किसी सिद्धान्तको भली भाँति समझे उसपर आक्षेप भी नहीं लाना चाहिये। यह पहले ही बताया गया है कि, आपको सत्य और मिथ्याका ज्ञान नहीं है। परमार्थमें(When considered absolutely) आपके प्रमाण, प्रमेय आदि सत्य, विद्या, अविनाशी (Truth, Reality, Immutable) नहीं ठहरते, वे अविद्या, दृश्य (Appearance), मिथ्या, विनाशी (Mutable) हैं। उस दशामें तो केवल एक सत्ता रह जाती है, वहाँ दोकी गुंजायश कहाँ? प्रमाण, प्रमेय आदि तो व्यवहारकी बातें हैं, 'दृश्य' हैं। और, जिस तरह व्यवहारमें प्रमाणादिकी सत्ता(या सत्यता कहिये) है, ठीक वैसी ही इस जगत्की भी है। व्यवहार-दशामें जगत्को आपसे कब किसने मिथ्या कहा? आप बहुत खफा होंगे, यदि आपसे यह कहा जाय कि, आपका ईश्वर भी (जिस ईश्वरकी आप सिद्धि करते हैं) व्यवहार-दशाका ही तत्त्व है! मायोपाधिक ब्रह्मको ही ईश्वर कहते हैं। इसीका नाम हिरण्यगर्भ है। इसीका काम संसारका जन्म, स्थिति और प्रलय करना है। यह भी परमार्थकी सत्ता नहीं है। किन्तु आपको व्यवहारसे ही मतलब है। इसलिये छोड़िये परमार्थकी बातें। उनके समीप जानेकी अभी कोई आवश्यकता नहीं। किन्तु यदि जायँगे, तो पकड़ लिये जायँगे! अविद्याकी बात शङ्करने अपने मनसे नहीं गढ़ी है; इसमें वास्तविकता है। उपनिषदें इसे चिल्लाकर कहती हैं—*"अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते"* इत्यादि। अविद्यासे, व्यवहारके ज्ञानसे, मृत्युको, सुख-दुःख या पुण्यादि द्वन्द्वमय संसारको, पार करके अमृत या परब्रह्म मिलता है।

आप शाङ्कर भाष्यसे एक उद्धरण देकर बिना समझे-बूझे उसका तात्पर्य यह निकालते हैं कि, शङ्कराचार्य मनुष्यको अज्ञानी सिद्ध करते हैं। यह बात बिलकुल गलत है। भाष्यकी पङ्क्तियोंसे तो यह अर्थ नहीं निकलता। यदि स्वयं संस्कृत नहीं जानते हों, तो किसीसे पूछ देखिये। जो आप अर्थ करते हैं, ठीक उसके प्रतिकूल शङ्करकी पङ्क्तियोंका अर्थ है। पङ्क्तियोंका केवल यह अभिप्राय है कि, जहाँतक मनुष्य व्यवहार-ही-व्यवहारमें रहता है—बस, तात्कालिक प्रमाण और प्रमेयके अनुसार चलता रहता है—परमार्थका विचार नहीं करता—वहाँतक दोनों बराबर हैं; किन्तु मनुष्य विवेकी और व्युत्पत्तिमान् है; इसलिये उसे परमार्थकी भी मीमांसा करनी चाहिये, जो व्यवहारसे, तात्कालिक प्रमाण-प्रमेय-व्यवहारसे, परे है। पङ्क्तियाँ ये हैं—

"पश्वादीनां च प्रसिद्धोऽविवेकपुरःसरः प्रत्यक्षादिव्यवहारः तत्सामान्यदर्शनाद् व्युत्पत्तिमतामपि पुरुषाणां प्रत्यक्षादिव्यवहारस्तात्कालिकः समान इति निश्चीयते।"

यहाँ 'व्युत्पत्तिमताम्' और 'तात्कालिकः' इन दोनों विशेषणोंकी जो कोई सार्थकता समझेगा, वह हमारे लेखकजीको क्या कहेगा? इसी ज्ञान और बुद्धिपर आप शङ्करकी हँसी उड़ाना चाहते हैं। उनको नास्तिक—नहीं, नहीं, "संशयात्मा विनश्यति" तक कह डालते हैं! "मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी"—ईश्वरने मुँह दिया है, जो चाहें, सो कह जायँ। पृष्ठ १७६ में आप कहते हैं कि, वेदान्तियोंने ईश्वरके निमित्तकारण होनेसे इनकार कर दिया! वेदान्तके ग्रन्थ तो आपने देखे नहीं, यदि अपने सत्यार्थप्रकाशको भी पढ़ते, तो मालूम होता कि, ऐसी बात नहीं है—वेदान्तमें ईश्वरको अभिन्न-निमित्तोपादानकारण कहा जाता है। आपने कहीं सुना होगा कि, वेदान्ती ईश्वरको उपादान कारण मानते हैं। बस, तुरत नतीजा निकाल लिया कि, निमित्त कारणका वेदान्ती निषेध करते हैं! ऐसी बेसिर-पैरकी बात नहीं की जाती। (क्रमशः)

१ शान्तिनिकेतनमें जि-जित्सु

प० शम्भुनाथ झा

आजकल जि-जित्सु–व्यायामने जगत्में एक उथल-पुथल-सी मचा रखी है। जि-जित्सु कहनेसे ही जापानका नाम स्मरण हो आता है: क्योंकि आधुनिक तरीकेसे जि-जित्सुको सृजन करनेका श्रेय जापानको ही प्राप्त, है। यद्यपि जि-जित्सुके ढाँचेपर भा'तमें एक तरहकी कला आजसे कई सौ वर्ष पहले प्रचलित बतायी जाती है; तथापि यह सत्य है कि, इन दिना यह कला जिस उन्नतिके पथपर है, वह उस समय न थी और न आज कलकी तरह आवश्यक ही थी।

वर्तमान कालमें भारतमें इसी प्रकारकी एक और प्रथा है, जिसको The Bak-Kusti कहते हैं। इसे हाथमें लोहेका दस्ताना पहनकर लोग अभ्यास करते हैं। परन्तु जापानी लोगोंमें विशेषता यह है कि, वे विना कुछ लिये जि-जित्सुका अभ्यास करते हैं। जापानमें भी, पिछले वर्षों से, इस कलामें खूब उन्नति हुई है। अब जि-जित्सुको जापानी लोग Jiudo कहते हैं। साधारणत: Juido या जुदोके दो भाग हैं—(१) काटा (Kata) अर्थात् प्रतिपादन और (२) रनडोरी (Randori) अर्थात् वास्तविक प्रयोग (Real practice)। काटा प्राथमिक शिक्षा है। जि-जित्सु सीखनेके लिये जितनी फुर्ती और सतर्कताकी जरूरत होती है, उतनी काटा द्वारा प्राप्त की जाती है। काटा सीखकर जो रनडोरी आरम्भ करते हैं, उनके लिये जि-जित्सु बहुत ही सहज सिद्ध होता है। इस रनडोरीमें निम्नलिखित विषय रहते हैं —(१) Throwing अर्थात् फेंकना, (२) Choking अर्थात् गला दबाना, (३) Catching अर्थात् पकड़ना, (४) Joint-breaking अर्थात् ग्रन्थि-भञ्जन, (५) Heating अर्थात् धक्का देना, (६) Kicking अर्थात् पैरसे ठोकर देना और (७) Boxing अर्थात् मुक्काबाजी।

शान्तिनिकेतनमें कवि-सम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुरने संसारकी आधुनिक सभी कलाओंको प्राप्त करनेकी सुविधा, अपने विद्यार्थियोंको, प्रदान करनेकी चेष्टा की

है। उन कलाओंमेंसे एक जि-जित्सु भी है । पाठ-भवन (School Department) के विद्यार्थियोंके लिये यह शिक्षा अनिवार्य है; परन्तु शिक्षाभवन (College Department), विद्या-भवन (Research Department) और कला-भवन (Arts Department) के विद्यार्थिओंके लिये ऐच्छिक है। कला उपयोगी होनेके अतिरिक्त इतनी मनोरञ्जक है कि, प्रायः ऊँची श्रेणीके अनेक छात्र भी इसमें बड़ी दिलचस्पीसे भाग लेते हैं।

पहले पहल इस कलाको सिखानेके लिये कवीन्द्रने प्रो० टी० टाकागाकीको १००००) रु० के ठीकेपर शान्तिनिकेतनमें बुलाया और टाकागाकी महोदय दो वर्षतक (१९२९ से १९३१ तक) यहाँ रहे भी। अब उनके जि-जित्सु-कलामें प्रवीण छात्र श्रीयुत मनमोहनदेव यहाँके जि-जित्सु-शिक्षक हैं । आधुनिक ढङ्गके जुदोको जापानके बाहर प्रचार करनेमें जापानी लोग प्रायः कंजर्वेटिव (अनुदार) रहे हैं। इसलिये आधुनिक ढङ्गके जुदो बहुत जगह नहीं पाये जाते हैं। हमें सन्देह है कि, शान्तिनिकेतनके सिवा आधुनिक जुदो सिखानेकी सुविधा भारतमें कहीं और है या नहीं।

जो विद्यार्थी जि-जित्सु सीखते हैं, उनके लिये यहाँकी संस्था अपनी तरफसे अलग-अलग सूट देती है, जिसमें एक पायजामा, एक कोट और एक बेल्ट रहते हैं। इसका कोट एक अत्यन्त मजबूत कपड़ेका बना होता है, जिससे खींचा-तानीमें फटनेकी सम्भावना नहीं रहती । इसलिये साधारण वस्त्र, जि-जित्सु खेलते समय, व्यवहार नहीं किये जाते। इस कलाका ध्येय सदासे आत्म-रक्षा ही रहा है । यद्यपि यह द्वन्द्व-युद्धमें बहुधा काममें लायी जाती है; तथापि इस कलाका लक्ष्य आक्रमण कभी नहीं रहा है। इसके प्रत्येक दाव-पेंचमें पहले यह बात बतायी जाती है कि, आक्रमण-कारी या शत्रु कितने प्रकारसे आक्रमण कर सकते हैं। अनन्तर प्रत्येक आक्रमणसे बचाव और आक्रमण-कारीको वशमें लानेकी विधियाँ बतलायी जाती हैं। साधारण कलाके दाव-पेंचसे यह एकदम भिन्न है। लाठी, छुरा और तलवार इत्यादि खेलोंमें जो दाव सिखलाये जाते हैं, उनसे साधारणतया यही सीखा जा सकता है कि, हाथमें अस्त्र रहते हुए आक्रमण-कारियोंसे कैसे रक्षा की जाय; परन्तु जि-जित्सुमें यह बात है कि, बिना अस्त्रके, कम-से-कम शक्ति रहते हुए भी, बलवान् और सशस्त्र (बन्दूक इत्यादिको छोड़कर) आक्रमण-कारियोंको परास्त किया जा सके। देशकी वर्त्तमान परिस्थितिमें हमारी गृह-देवियोंको इस कलाके सीखनेकी बड़ी आवश्यकता है। हर्षकी है बात है कि, शान्तिनिकेतनमें जि-जित्सु सिखानेका प्रबन्ध लड़कियोंके लिये भी ठीक उसी प्रकारका है, जिस प्रकारका लड़कोंके लिये। इसके साथ ही लड़कियोंकी आक्रमण-कारियोंसे आत्म-रक्षा करनेके लिये छुरा, तलवार और लाठी आदिके सिखानेका भी समुचित प्रबन्ध है। आश्रमकी लड़कियाँ बड़े उत्साहके साथ इसमें योग देती हैं।

देशके वर्त्तमान जागरण-कालमें स्त्रियाँ पुरुषोंके साथ प्रत्येक कार्यमें योग देनेके लिये बाहर हुई हैं। इन्हें सामाजिक, राजनीतिक आदि सुधारोंमें अगुआ होनेका अवसर मिला है। इस क्रान्ति-युगमें यह आवश्यक हो गया है कि, वे आत्म-रक्षाके उत्तम और सरल उपायोंसे भली भाँति परिचित हों। शान्तिनिकेतनके प्रतिष्ठाताने इसी लिये उचित समयपर इस विद्याको, इस देशमें, परिचित कराया है। आशा है, देश इससे उचित लाभ उठानेमें देर नहीं करेगा।

२ मलेरिया

बाबू ब्रह्मानन्द सिंह

संसारका शायद ही कोई ऐसा हिस्सा हो, जो इस रोगसे परिचित न हो। हर जगह मानव-समाज इसके द्वारा सताया जा रहा है। आजकल भारतमें इसके विरुद्ध Anti-Malarian societies जगह-जगह स्थापित हो गयी हैं। इन सोसाइटियोंके मेंबरोंका कार्य, इस रोगके विषयमें, नयी-नयी बातोंका पता लगाना अथवा मानव-समाजको इससे बचानेके लिये नये-नये उपायोंका आविष्कार करना है। आशा है, ये अपने लक्ष्यकी प्राप्तिमें सफलीभूत होंगे और इस तरह संसारकी भलाई होगी।

"मलेरिया" शब्द इटालियन भाषासे निकला है। उस भाषाके अनुसार "माल" (Mal) का अर्थ गन्दी (bad) और "एरिआ" (area) का अर्थ "हवा" (air) है। यह रोग प्रायः दलदल भूमियों (marshes) में उत्पन्न हुआ करता था; अत एव प्राचीन लोगोंका विचार था कि, इसका कारण गन्दी हवा है।

इस रोगका वर्णन प्राचीन ग्रीक तथा लैटिन भाषाओंके विद्वानोंने भी किया है। उस समय भी दलदल भूमि तथा इस रोगके सम्बन्धसे लोग परिचित थे। अत एव मध्यकालीन युगमें दलदल भूमियों के पास रहनेवाले लोगोंसे एक प्रकारकी (mosquito C rtain) मसहरी रखनेके लिये कहा जाता था। इसके उपरान्त सिनकोना (chi cona) का आविष्कार हुआ। इसके द्वारा अठारहवीं शताब्दीके डाक्टर बहुत प्रकारके ज्वरोंको हटानेमें सफलीभूत हुए। परन्तु इस रोगके कारणका सच्चा पता सन् १८८१ में फ्रांसीसी डाक्टर लै-वर्नने ही लगाया। उसने बतलाया कि, एक प्रकारके अत्यन्त सूक्ष्म जीव होते हैं, जो केवल खुर्दबीन (microscope) द्वारा ही देखे जाते हैं और शरीरके रक्तके अणुओंके समान होते हैं। उनका नाम उसने "प्लासमोडियम" (Plasmodium) रखा। उसने यह भी दिखलाया कि, "प्लासमोडियम" तीन प्रकारके होते हैं, जो भिन्न-भिन्न प्रकारके ज्वर लाते हैं। ये जीव मनुष्योंके रक्तके परमाणुओंपर टूट पड़ते हैं और उन्हें ही अपना भोजन बनाते हैं।

१८९८ ईस्वीतक इस रोगके सम्बन्धमें दो ही कारणोंका पता लगा था। परन्तु १८९८ में "रोनल्ड रास" (Roneld Ross) ने प्रमाणित किया कि, यह रोग मच्छड़ द्वारा फैलाया जाता है। उसी समय इस रोगके विषयकी हर एक बातका पता लगा। रक्तमें दो प्रकारके जीवाणु रहते हैं, लाल धब्बा और उजला धब्बा। लाल धब्बेपर इस रोगके जीवाणु (plasmodium) टूटते हैं। उजले धब्बेका कार्य्य आक्रमणकारी जीवाणुओंसे युद्ध करना है। मलेरियाका जीवाणु जबतक लाल धब्बेके अन्दर रहता है, उजला धब्बा उसे हानि नहीं पहुँचा सकता। यह जीवाणु लाल धब्बेके अन्दर उसे खाता हुआ बढ़ता जाता है और जब उस धब्बेको यह पूर्णतया खा लेता है, तब फूट जाता है। उसके फूटनेपर एक जीवाणुसे अनेक छोटे-छोटे जीवाणु, अपने जन्मदाताके बराबर, उत्पन्न हो जाते हैं। इस समय ये जीवाणु लाल धब्बा के बाहर हो जाते हैं और हर एक फिरसे एक लाल धब्बेपर टूटनेकी चेष्टा करते हैं। परन्तु इसी समय रक्तका उजला धब्बा उससे युद्ध कर उसे नष्ट करनेकी चेष्टा करता है। इसी समय रोगीको ज्वर हो
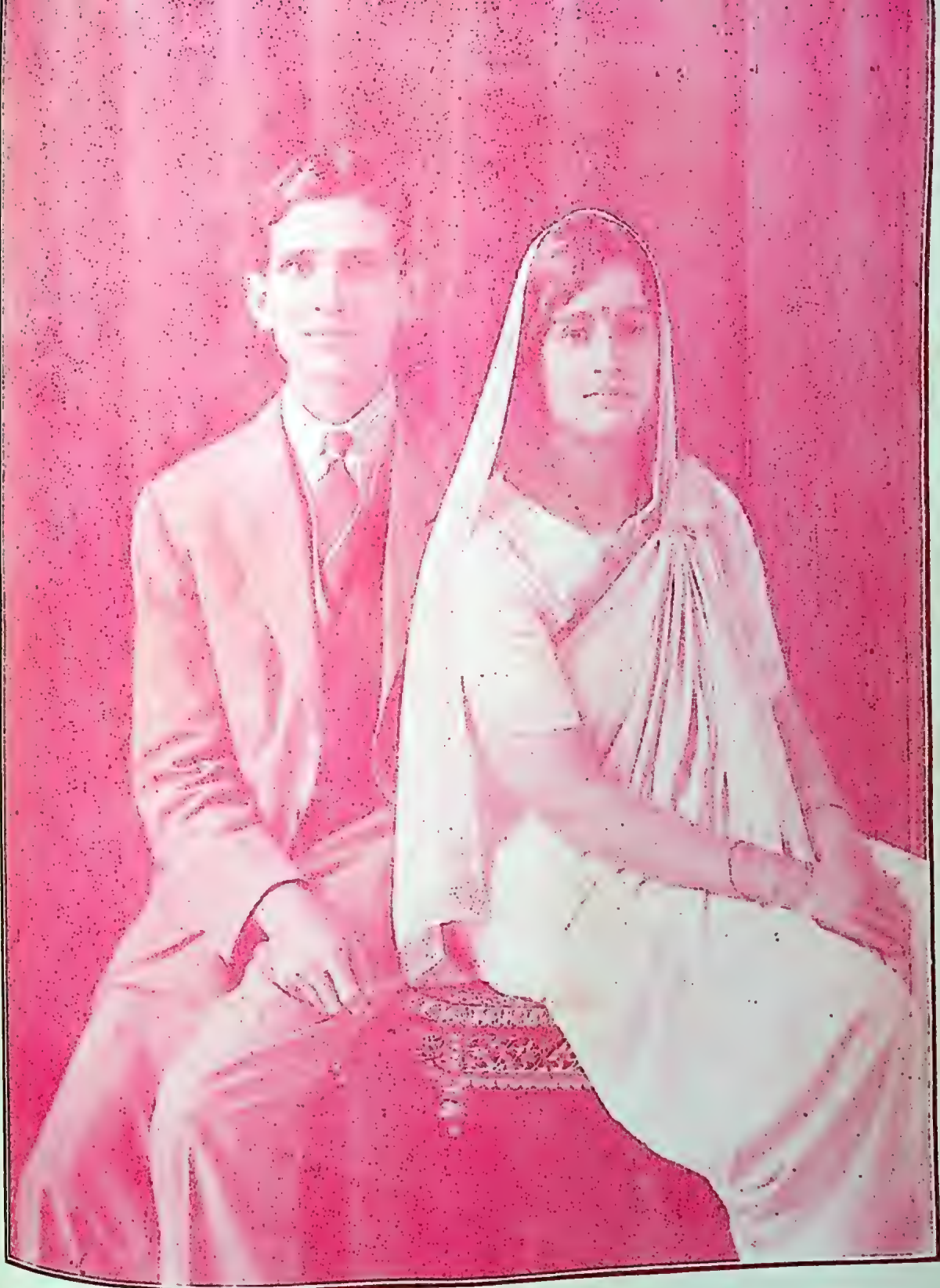
श्रीयुत रामजगमोहन आई० सी० एस० और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती अञ्जना देवी

भारतकी प्रसिद्ध योद्धा जाति [डोगरा-जाति] में आपका जन्म हुआ है। आप मीरपुर, जम्मू, काश्मीरके निवासी हैं। जम्मू, काश्मीरके आप सर्व-प्रथम सिविलियन हैं। आप कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी [इंगलैंड] के एम० ए० और "कैम्ब्रिज टेनिस क्लू" के प्रथम भारतीय विजेता भी हैं। पञ्जाब [स्यालकोट] के सुप्रसिद्ध बैरिस्टर दीवान सन्तरामजी आपके पूज्य पिता हैं। इन दिनों आप झंगरके मजिस्ट्रेट ... प्रजा-प्रिय तथा सज्जनता और सरलताकी मूर्त्ति हैं।

आता है। लाल धब्बेके अन्दर हर एक कीटाणुको बढ़कर फूटनेमें ७२ घंटे या ४८ घंटे लगते हैं। इसीलिये रोगीको पारीसे तीन या दो दिनपर ज्वर आता है। यह समयका अन्तर दो प्रकारके रोगके कीटाणुओंके कारण होता है। शरीरके अन्दर इस रोगके कीटाणुओंकी वृद्धि इसी प्रकार होती है। परन्तु कुछ समयके अनन्तर इस प्रकारसे बढ़नेकी शक्ति उनमें कम हो जाती है। उस समय यदि इनमेंसे कुछ मच्छड़के पेटमें संयोगवश पहुँचते हैं और वहाँ स्त्री-जाति तथा पुरुष-जातिके जीवाणुओंमें संयोग होता है, तो उनमें इस शक्तिका पुनः आविर्भाव हो जाता है।

लाल धब्बेको खाकर बढ़े हुए कुछ कीटाणु फूटते नहीं हैं। ये स्त्री-जाति तथा पुरुष-जाति, दो प्रकारके होते हैं। इनपर कुनैनका असर नहीं पड़ता है और ये रोगीको कोई हानि भी नहीं पहुँचा सकते हैं; क्योंकि ये फिर लाल धब्बोंपर नहीं टूटते हैं। ये मच्छड़ द्वारा रक्तके साथ चूसे जानेकी बाट जोहते हैं। संयोगसे यदि कोई मच्छड़ उस रोगीका रक्त पीता है, तो ये रक्तके साथ उसके पेटमें चले जाते हैं। मच्छड़के पेटमें ये १२ दिनोंतक रहते हैं। इस बीच एक स्त्री-जातिका जीवाणु और एक पुरुष-जातिका जीवाणु मिलकर एक हो जाते हैं। उन्हें जाइगोट (zygote) कहते हैं। हर एक जाइगोटके अन्दर बहुतसे जीवाणु होते हैं। अन्तमें जाइगोट फूट जाता है और ये मच्छड़के शरीरके अन्दर फैल जाते हैं। जब वह मच्छड़ किसी मनुष्यका रक्त पीता है, तब ये जीवाणु उसके लारके साथ उस मनुष्यके शरीरमें प्रवेश कर जाते हैं।

मच्छड़ोंकी अनेक जातियाँ हैं। उनमें मुख्य दो जातियाँ हैं—एनोफिलीनी और कलीशिनी। एनोफिल मच्छड़के द्वारा मलेरिया फैलता है। कलीशिनी दो प्रकारके होते हैं। कलेक्स (culex=घराऊ), जो फाइलेरिया और डेंग (dengue) बुखारको फैलाता है। दूसरा stegomyia है, जो पीले बुखार (yellow fever) को फैलाता है। जो एनोफिल मच्छड़ मनुष्यका रक्त पीता है, वह स्त्री-जातिका होता है। उसे अण्डों (पेटमें) के पोषणार्थ रक्तकी आवश्यकता होती है।

विशेषतः मच्छड़ोंका वास घरके कोनों, आसपासके जंगलों तथा कूड़ा-कर्कटोंपर होता है। मादा पानीकी सतहोंपर अण्डा देती है। अण्डेसे जो बच्चा निकलता है, उसे लारवा (larva) कहते हैं। ये बड़े तेज होते हैं। इन्हें पंख नहीं होते। पानीके अन्दर रहते हैं। इनके शरीरमें एक प्रकारकी साँस लेनेकी नली रहती है। जब इन्हें वायुकी आवश्यकता होती है, तब इसी नली द्वारा सतहसे साँस लिया करते हैं। लारवा बदलकर प्यूपा हो जाते हैं। इसके पश्चात्, उपयुक्त समयपर, प्यूपा अपनेको फोड़कर मच्छड़ बन जाता है; तब वह उड़ जाता है।

इस प्रकार इस रोगके साथ इसके कीटाणु, एनोफिल तथा मनुष्य सम्बद्ध हैं। अत एव मानव-समाजको इस रोगसे बचानेके लिये उसे इसके कीटाणुओं तथा मच्छड़ोंसे बचाना आवश्यक है।

इससे बचनेके लिये जिस स्थानपर अथवा जिस गाँवमें मलेरिया हो, वहाँसे अपना वासस्थान हटा लेना उचित है; क्योंकि यदि निकटमें कोई मलेरियाका रोगी न हो, तो मच्छड़ उस रोगके कीटाणुको नहीं ला सकते। यदि किसी प्रकार इस रोगके कीटाणु शरीरमें प्रवेश कर जायँ, तो उसके लिये कुनैन दवाका प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग नियमित रूपसे करनेसे बहुत रोगी पूर्णतया इससे छुटकारा पा सकते हैं। इसमें डाक्टरोंको इटाली

देशमें अच्छी सफलता मिली है। कुनैन उस समय देना उचित है, जिस समय बुखार न हो।

इस रोगसे बचनेके लिये मच्छड़ोंका नाश भी एक रास्ता है। यदि एनोफिल न हो, तो इस रोगका एक रोगीसे दूसरे रोगीके पास जाना असम्भव हो जायगा। कई जीव मच्छड़ोंके प्राकृतिक शत्रु होते हैं। कई प्रकारकी चिड़ियाँ, चूँटियाँ, छिपकलियाँ तथा चमगादड़ इनको पकड़कर खा जाते हैं। इनके बच्चों तथा अण्डोंके कई प्रकारके शत्रु पानीमें रहते हैं। कई प्रकारकी मछलियाँ इनके अण्डों तथा बच्चोंको खा लेती हैं। परन्तु इनके नाशके लिये हम भी कई उपाय कर सकते हैं। आसपासके कूड़ा—कर्कटकी सफाईके द्वारा मच्छड़ोंका वास नहीं होता है। हम उनके बच्चोंको, जो आसपासके गड्ढोंमें रहते हैं, बड़ी सुविधासे नष्ट कर सकते हैं। कई दवाएँ ऐसी हैं, जिनकी गन्ध मच्छड़ोंके बच्चोंके लिये विषैली होती है। उनमें, मिट्टीका तेल, रेंड़ीका तेल, तूतिया इत्यादि हैं। ये सब पानीकी सतहके ऊपर पर्त(layer) की तरह पड़ जाते हैं! इनकी गन्धके कारण मच्छड़ोंके बच्चे सतहपर साँस लेनेके लिये नहीं आ सकते और कुछ समयमें मर जाते हैं। छोटे गढ्ढे इत्यादिको मिट्टी द्वारा भरवा देनेसे भी इनका नाश हो जाता है।

मच्छड़ोंसे बचनेके लिये रातको सोनेके समय मसहरी लगाकर सोना उचित है। इसके सिवा सोनेकी कोठरीमें धूप इत्यादि जलानेसे भी मच्छड़ भाग जाते हैं।

यदि हम इस रोगसे बचना चाहें, तो इन उपायोंका अनुसरण करना आवश्यक है। आज यह रोग इस तरह फैल गया है कि, हर एक मनुष्यको इन उपायोंसे परिचित रहना आवश्यक है। आशा है कि, "एंटी-मलेरियन सोसाइटियाँ" अपने कार्यमें सफलीभूत होंगी।

३ संसारके सात आश्चर्य

प० सुरेश्वरप्रसाद मिश्र

(१) मास्कोका घंटा-घर—कहते हैं कि, रूसकी राजधानी मास्कोमें यह घंटा-घर, सन् १६५३ ई० में, बना था। सन् १७३७ ई० में, मास्कोमें, भयानक आग लगी और उसीमें यह विशाल घंटा-घर चटख गया। सैकड़ों वर्षों तक यह उसी जगह पड़ा रहा। १८३७ ई० में लोगोंने इसके नीचेकी जमीन खोदकर एक नवीन गिरिजाघरका निर्माण किया और यह घंटा उसीका गुम्बज बना। मास्कोमें १२५ टन वजनका एक घंटा, १२१७ ई० में, बना था, जिसको नवीन घंटा कहते हैं। संसारके घंटोंमें यही बड़ा है।

(२) आगरेका ताजमहल—यह महल प्राचीन भारतकी कारीगरीका जीता-जागता नमूना है और मुगल बादशाहोंकी औरत-परस्तीकी बेनजीर यादगार। बेगम मुमताजने मरते समय शाहजहाँसे दो बातें कही थीं—(१) दूसरी शादी न करना (२), मेरी कब्रपर ऐसी इमारत बनवाना, जो दुनियामें बेजोड़ निकले। शाहजहाँने अपनी प्यारी बेगमकी बातें मानकर यमुनाके दाहने तटपर एक कब्र बनवायी, जिसको आजकल ताजमहल कहते हैं। इस इमारतकी तमाम दीवारें बहुमूल्य संगमर्मरके पत्थरोंसे बनी हैं, जिनपर भारतीय कुशल कारीगरोंकी विचित्र चित्रकारीको देखकर तबीयत खुश हो जाती है। कहते हैं, इस इमारतके निर्माणमें सवा तीन करोड़ रुपये लगे थे और बीस हजार कारीगर बाईस वर्षों तक काम करते

रहे ! इसके बने तीन सौ वर्ष होनेपर भी यह अभीका बना दीख पड़ता है। इसकी दीवारोंमें बेशकीमती जवाहरात जड़े थे, जिनको हमारी कृपालु सरकारने निकलवा लिया है ! संसारमें इसके समान दूसरी इमारत नहीं है।

(३) दुनियाकी सबसे ऊँची मीनार—फ्रान्सकी राजधानी पेरिस नगरमें, १५० गज लम्बे-चौड़े चबूतरेपर, इस १००० फीट ऊँची मीनारको गस्टेव ईफल नामक चतुर कारीगरने बनाया था। इसीसे इसको 'ईफल मीनार' भी कहते हैं। यह मीनार १८८७ ई० से १८८९ तक अर्थात् पूरे दो वर्षोंमें बनी थी। इसकी बनावट खालिस लोहेकी है। इसकी चोटीपर ५० मीलतक, अन्धकारको दूर भगानेवाली, एक बिजली की रोशनी है। इसमें तीन मंजिलें हैं, जिनमें सैकड़ों मनुष्योंके टहलने और बैठनेके कमरे हैं। नाटक खेलने तथा भोजन करनेके लिये भी कमरे हैं।

(४) बाबुल मण्डपका लटकता हुआ बाग — यह बागीचा जमीनसे थोड़ी ऊँचाईपर लटकता दीख पड़ता है। सुनते हैं, इस बागीचेको चार बड़े-बड़े खम्भे ऊपरको खींचे रहते हैं, जिन्हें लोग चुम्बक कहते हैं। बागको देखनेवालोंकी तबीयत बाग-बाग हो जाती है।

(५) चीनकी लम्बी दीवार—दो हजार वर्ष हुए चीनियोंने तातारियोंके आक्रमणोंसे रक्षा पानेके लिये अपने देशके उत्तर-पश्चिमकी सीमापर १३ सौ मीलोंमें यह दीवार खड़ी की थी। पेकिंगमें इस दीवारकी उँचाई ४० फीट और चौड़ाई भी शायद उतनी ही है। एक ही समयमें, एक ही साथ, तीन गाड़ियाँ, इस विस्तृत दीवारपर, चलायी जा सकती हैं !

(६) ईजिप्टका पिरामिड—संसारकी यहः भी एक अनोखी चीज है। लोग इसके निर्माणकालको कई सौ वर्ष पूर्व बताते हैं। इसकी शुमार संसारके सातवें आश्चर्यमें हैं। इसके चारो ओर बालूके मैदान हैं। इसकी लम्बाई कई सौ फीट है।

(७) साइप्रसकी पीतलकी मूर्त्ति—अमेरिकाके न्यूयार्कके पास बेदलो नामक एक टापू है। उसी टापूमें यह १५१ फीट ऊँची और १०० टनकी विराट् मूर्त्ति एक चबूतरेपर खड़ी है। मूर्त्तिकी कीमत साढ़े सात लाख रुपये और चबूतरेका मूल्य साढ़े दस लाख रुपये लोग बताते हैं। इसका बनानेवाला फ्रान्सका प्रसिद्ध शिल्पकार ऑगिस्ट बर्थौल्डी था। यह मूर्त्ति संसारमें अपना सानी नहीं रखती। मूर्त्तिके हाथका मसाल मीलोंसे दिखायी देता है।

४ महाजलप्लावन

बा० श्रीमद्भागवतप्रसाद वर्मा

ग्रीस देशमें एक प्राचीन संवत् प्रचलित है— Mundane Era (पृथ्वी-संवत्)। वह संवत् ई० स० ५५९८ वर्ष पूर्वसे आरम्भ हुआ है। आजका ईस्वी सन् १९३२ उसका ७४४० वाँ वर्ष है ! तुर्किस्तानमें भी एक ऐसा ही संवत् आजतक चला आता है, ई० सन् १९३२ जिसका ७४३८ वाँ वर्ष है। यह संवत् ईस्वी सन्‌से पूर्व ५५०८ वर्षसे चला आता है।

साधारणतः कोई भी संवत् किसी घटना-विशेषके समयसे, किसी राजाके शासनके प्रारम्भिक या शेष कालसे, किसी युगप्रवर्त्तक, लोकप्रिय व्यक्ति या महात्माकी मृत्यु-कालसे प्रारम्भ होता है। प्रथम आर्य— ब्रह्मा या आदम— ई० स० ६७७७ वर्ष पूर्वके कुछ ही पहले हुए थे, जब उनके स्वायम्भुव मनु राजा

थे। जान पड़ता है कि, महाजलप्लावन, जो नोह (Noah) के समयमें हुआ था, वह ब्रह्मा या आदमकी कई पीढ़ियों बादकी बात है।

बाइबिल बतलाता है कि, नोह आदमकी १० वीं पीढ़ीमें थे और हिन्दुओंके वेदों और पुराणोंसे प्रमाणित होता है कि, सावर्णि मनु (नोह) ब्रह्मा (आदम)की २९ वीं पीढ़ीमें हुए थे। बाइबिलके अनुसार आदमकी आयु ९४० वर्ष और नोहकी ६५० वर्ष है। यह सन्देहात्मक है; क्योंकि यदि ई० स० ६७७७ पूर्वमेंसे ई० स० ५५९८ पूर्व घटा दें, तो शेष ११७९ वर्षों का अन्तर पड़ जाता है। अब यदि प्रति ३ राजाओंके लिये १०० वर्ष रखते जायँ, तो कुल ९३४ वर्ष ही होते हैं—११७९ वर्षों की अवधिमें २४५ वर्ष कम।

वायुपुराण (९९।२९५) और मत्स्य-पुराण (२७३।७८) में लिखा है कि, पुराणोंमें प्राचीन वंशोंके अनेक ऐसे राजाओंके नाम छोड़ दिये गये हैं, जो साधारण या अप्रसिद्ध थे। पुराणोंके इस मतसे भी आदम और नोहके उतने दीर्घजीवी होनेकी बातपर अधिक प्रकाश पड़ता है और इसीलिये दो सौ वर्षों (२४५) की कमी चिन्त्य नहीं है। नोहकी मृत्यु, बाइबिलके अनुसार, ई० स० से ५५०८ वर्ष पूर्व हुई थी। इससे स्पष्ट हो जाता है कि, महाजलप्लावनके समयसे ग्रीस देशीय Mundane Era और नोहकी मृत्युके समयसे तुर्किस्तानका प्राचीन संवत् आरम्भ हुआ था।

उपर्युक्त बातोंपर विचार करनेसे यह साफ मालूम होता है कि, बाइबिलके नोह, कुरानके नूह, मिश्र देशके मेनस (Manes) और हमारे वेद-पुराणोंके मनु (सावर्णि) एक ही पुरुष थे और यही नोह, मेनस या मनु (सावर्णि) आजसे ७५३० वर्ष (ई० स० से ५५९८ वर्ष) पूर्व मिश्र देशके सिंहासनपर विराजमान थे।❀

५ दरिद्र लन्दन

(कृष्णगढ़के खजांची बा० भुवनाथ सिंहके नाम त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायनने लंदनसे एक पत्र भेजा है, जिसे पढ़कर विदित होता है कि, भारतमें ही नहीं, लन्दनमें भी दरिद्रता-देवीका अखण्ड ताण्डव हो रहा है। पाठकोंकी जानकारीके लिये उस पत्रको हम ज्यों-का-त्यों प्रकाशित करते हैं। —'गंगा'-सम्पादक।)

"प्रिय ध्रुवनाथजी,

"यहाँ आकर मैं पत्र भेज चुका हूँ। स्वास्थ्य अच्छा है। हल्कीसी सर्दी है।

"कल यहाँके गरीब मुहल्ले East end (पूर्व छोर) को देखने गया था। वहाँ एक लड़कोंका घर देखा। उस घरमें तीनसे छः वर्षके लड़के आते हैं। प्रायः चालीस लड़कोंका प्रबन्ध है। वैसे तो लड़के अपने माँ-बापके साथ रहते हैं; किन्तु, खानेके घंटोंमें, और कुछ खेलनेके घंटोंमें, वह यहाँ आते हैं। कुछ सोनेके लिये भी यहाँ आते हैं। उनके लिये दूध, रोटी और दूसरी चीजें तैयार रहती हैं। लड़के अक्षर नहीं जानते; इस लिये उनकी छोटी कुर्सियों-पर अक्षर और नंबरकी जगह कुत्ता, बिल्ली आदि जानवरोंकी तस्वीर लगी हुई है। एक घरमें कई गर्म पानीके नल तथा छोटे-छोटे तौलिये लटक रहे हैं।

❀"*Antique Review*" से।

यहाँ लड़के साबुनसे मुँह-हाथ धोते हैं । वहीं एक टब भी है, जिसमें नहा भी सकते हैं । इंगलैंडके गरीबोंके लिये नहाना आसान काम नहीं है; इसीलिये वह बहुत कम नहाया करते हैं। उक्त संस्था चन्देसे चलायी जाती है । उससे थोड़ी दूरपर एक छोटा बगीचा देखा । उसमें लड़कोंके खेलनेके लिये झूला, कठघोड़ा और फिसलनेका तखता लगा है । ऐसा कोई इन्तिजाम न हो, तो लड़के कहाँ खेलें ! सड़कपर तो इस पारसे उस पार जानेमें लंदनमें रोज एक दर्जनसे ऊपरकी बलि चढ़ जाती है ! और बाहर जानेमें, पैदल जानेपर, सारा दिन लग जायगा !

"गरीबी अपने यहाँ जैसी यहाँ भी हैं; बल्कि कुछ हालतोंमें दुस्सह्य है । अपने यहाँ भूखा मरने-वाला भीख माँगनेपर कुछ पा ही जाता है । यहाँ तो भीख माँगनेपर जेल भेज दिया जायगा ! आज कल तीस लाखसे ऊपर आदमी बेरोजगार पड़े हुए हैं। यह जरूर है कि, बहुतोंको बेरोजगारीमें भी हर सप्ताह कुछ पैसे मिल जाते हैं । लेकिन बाल बच्चेवालोंके लिये उसपर गुजारा होना मुश्किल है । बहुतोंको तो बेरोजगारी पेंशन भी नहीं मिलती । लन्दनमें ऐसे हजारों हैं । इनका घर नहीं । शरीरपर जो कपड़ा पहने हुए हैं, उससे अधिक कपड़ा नहीं । दिनमें बेचारे लन्दनके सार्वजनिक उद्यानोंमें इधर-से-उधर भटकते रहते हैं ! ८, ९ बजे शामको जब बाग बन्द हो जाते हैं, तब इन्हें सड़कोंपर इधर-से-उधर घूमते रहना पड़ता है ! इनके लिये रातकी सोना हराम है । दिनमें ऐसे बहुतसे आदमी तुम्हें बागोंमें घासपर सोये मिलेंगे । उस असह्य वेदनासे तंग आकर आये दिन कितने ही आदमी आत्महत्या करते रहते हैं ! पर लोग सीधे भीख नहीं माँग सकते, इसलिये कोई कोई दियासलाई लेकर खड़े हो जाते हैं । कुछ अनाथ स्त्रियाँ फूल बेंचनेके बहाने याचना करती हैं । कुछ पगडंडीपर खड़ियासे तस्वीर खींचते रहते हैं । लोग समझ जाते हैं कि, यह भिखमंगे हैं और कोई-कोई कुछ दे देते हैं । एक गरीब आदमीने मुझे यह सारी कथा बतलायी । कोई-कोई पुलिसकी आँखें बचाकर साधारण गृहस्थके द्वारको खटखटाते हैं और घर वालेके द्वार खोलनेपर कहते हैं—"क्या कृपा कर आप मुझे एक टुकड़ा रोटी और एक प्याला चाय दे सकते हैं ?" साधारण-वित्तके आदमियोंमें दया अधिक है, वे कुछ-न-कुछ दे ही देते हैं । ये अभागे धनियोंके मुहल्लोंमें नहीं जाते । वहाँ अमीर लोग कानूनके बड़े पाबन्द हैं ! झट पुलिसको फोन कर देते हैं ! कैसी नृशंसता है !! यह काम चोरीका नहीं है । काम ही नहीं मिलता है । इन लाखों आदमियोंके पास न एक बित्ताभर खेत है, न एक टूटा झोपड़ा । आज कल तो अभी गर्मीका मौसम है । जाड़ा आनेपर, जब कि, घरके भीतर भी, अँगीठी जलाकर रखनी पड़ती है, तब इनकी क्या दशा होती होगी !!!

"अस्तु । इंगलैंडमें भी जहाँ अनेक धनकुबेर हैं, वहाँ ऐसी भीषण दरिद्रता भी अपना नग्न ताण्डव कर रही है ।

"सबको मेरा आशीर्वाद कहो ।

तुम्हारा—
राहुल सांकृत्यायन
३०–८–३२"

६ गद्य या पद्य ?

श्रीयुत राजदयाल चौधरी बी० ए०, विशारद

कहा जाता है कि, गद्यका लिखना कठिन है;

पद्यका लिखना सहज है। इस प्रश्नका निर्णय दो ही प्रकारके मनुष्य कर सकते हैं। प्रथम श्रेणीमें वे हैं, जो अभी दोनों विभूतियोंका रसास्वादन करना सीख रहे हैं। इनकी अवस्था प्रारम्भिक है। अतः कठिनता अथवा सरलताके विषयमें इनके निर्णय विचाराधीन होनेके अधिकारी हैं। दूसरी श्रेणीमें वे सज्जन हैं, जो दोनों विषयोंके मर्मज्ञ हैं। कविशिरोमणि, कविकुलचूड़ामणि किंवा कविसम्राट् निर्णायक न हो सकेंगे और न हो सकेंगे निर्णायक गद्यमार्तण्ड, शब्दनौका, गल्प-उपन्यास आदिके सफल नाविक।

कविसम्राट् अयोध्यासिंह उपाध्याय और आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी इस विषयके विचारक हो सकते हैं; कारण, उन्होंने गद्य-पद्य, दोनोंमें कुशलता प्राप्त की है। फिर गद्य-पद्य दोनोंके नौसिखिये लोग भी विचारक-मण्डलीमें सम्मिलित किये जा सकते हैं। मेरा निजी अनुभव यह है कि, गद्य लिखनेसे पद्यका लिखना कठिन है। गद्य-लेखन यदि हरे घासकी चादर है, तो पद्य-लेखन पहाड़ी स्थानकी कँकरीली सड़कें है, जिससे पग-पग पर पंगु बन जानेका डर लगा रहता है। पद्यवाला कवि नहीं, तो तुकबन्द बन जाता है। ठीक इसी प्रकार गद्यवाला ग्रन्थकार नहीं, तो लेखक मजेमें हो जाता है। कहनेके लिये कह दिया जाय; पर पद्यका लिखना नितान्त कष्टकर है। बहुत बचाकर चलना पड़ता है; जरा भी असावधान हुए, जरा भी हटे कि, त्राहि-त्राहिकी नौबत आ जाती है, विपत्तिका पहाड़ टूट पड़ता है; चारों ओरसे धुत, फिश, हुश, छिः शब्दोंकी व्यंग्य वर्षा होनी शुरू हो जाती है ! कहीं भावापहरण करनेका दोष मढ़ा जाता है, तो कहीं पुनरुक्तिके लिये मूलसे भी चुकती करनी पड़ती है। कहीं यतिभंग खटकता है, तो कहीं मात्रा और वर्णभङ्ग जान लिये लेते हैं। कोई-न-कोई दोष आ ही जाता है, और, नियमके बन्धनमें पड़कर झूठमूठ झंझट उठाना पड़ता है। किसी भी शैलीके अपनानेमें कुशल नहीं है। कोई न कोई छिद्र निकल ही आता है। हमारे कविताके आचार्य भी स्वतन्त्रता-पूर्वक साँस नहीं ले सकते। अनेक सूर्य, उनकी कविताओंमें भी, निकल ही आती हैं।

गद्यमें ये सब अड़चनें नहीं; यति-वर्ण-मात्रा-भंगकी रुकावटें नहीं, मायावाद-छायावादका झगड़ा नहीं, नियमका बन्धन नहीं। पद्यके अठपाये, छपाये और चौपाये वहाँ नहीं। जहाँ तक मन आया, हाथ फैलाया। अवतरण न पसन्द पड़ा, तो दो ही पङ्क्तियोंका; पसन्द पड़ा, तो हजार पङ्क्तियोंका हुआ। कोई कुछ कहनेवाला नहीं— "सोऽहमस्मि इति वृत्ति अखण्डा"। साधारण बुद्धि, विद्या, अनुशीलनसे भी बखूबी काम चल जाता है। पर पद्यमें ये सुविधाएँ प्राप्त नहीं। कविमें जन्मजात शक्ति होती है। कवि बनकर आता है; बनाया नहीं जाता। उसमें प्रकृति-पर्यवेक्षणकी शक्ति, रहस्योद्घाटनकी सच्ची अनुरक्ति, अपार अनुभव, अपरिमेय प्रसादगुण और सर्वोपरि सतत विद्यार्थीपनका होना आवश्यक है। रस, अलंकार एवं काव्य-नियमोंका पर्याप्त अध्ययन अपेक्षित है। उसे मानव-हृदयकी ग्रन्थियों, वृत्तियों और पारस्परिक विचारविनिमयोंके वास्तविक तथ्यका ज्ञान रहना चाहिये। सामाजिक, देशिक या धार्म्मिक दायरेसे निकलकर महान् भ्रातृत्वका पथ अनुसरण करना कविका लक्ष्य होना चाहिये। द्वेष-झंझावात-प्रताड़ित हो विरोधी दलको निर्मूल करनेके लिये उसे कलम कुठार उठाना योग्य नहीं। सच्चा कवि दलबन्दीकी कीचड़में नहीं पड़ता। उसकी लेखनी शुचिता, मानवता, निष्पक्षता, कल्याणकारिता आदि भावोंसे प्रेरित हो सदा-सर्वदा हृदयके आदेशका पालन करती है। उसकी रचनामें ओज, माधुर्य, रस और श्लेषका रहना अनिवार्य है।

उपर्युक्त पङ्क्तियोंपर निष्पक्ष भावसे विचार करनेपर स्पष्ट ज्ञात होगा कि, "गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति" सार-हीन है।

७ भारतीय न्यायोंका संक्षिप्त परिचय

साहित्याचार्य प० चन्द्रशेखर शास्त्री, M. O. Ph.

भारतीय दर्शनोंमें न्यायदर्शनका स्थान महत्त्वपूर्ण है; किन्तु न्यायका विशुद्ध दृष्टिसे विचार किया जाय, तो विदित होगा कि, न्यायदर्शन न्यायके विशुद्ध अर्थमें 'न्याय' कम है और दर्शन अधिक है।

दर्शनशास्त्रके विषयमें प्राचीन कालसे ही बहुतसे विचार (Schools) चले आते हैं। प्रत्येक विचार-वाला यही समझता रहा है कि, मेरा विचार बिल्कुल ठीक है और दूसरेका नहीं। जब कभी दो परस्पर विरुद्ध विचारवाले मिलते थे, तब उनमें विवाद भी छिड़ जाता था; किन्तु आरम्भमें विवादोंके नियमोंके स्थिर न होनेके कारण वह विवाद अत्यधिक विश्रृङ्खलित होता था। मेधातिथि गौतमने वादविवादकी इस त्रुटिपर ध्यान दिया। उनके एक विशेष प्रकारके विचार थे। उन्होंने अपने विचारोंके साथ-साथ उनके सम्बन्धमें युक्तियोंके नियम भी बना डाले। किसी बातको सिद्ध करनेके वास्ते सबूत या 'प्रमाण'की आवश्यकता होती है। मेधातिथिने वादविवादके मूल भूत इस सिद्धान्तका नामकरण प्रमाण ही किया। यद्यपि प्रमाणके साथ-साथ उसके साधक और बाधक बहुतसे शब्दोंकी सृष्टि की गयी; किन्तु मुख्य रूपसे इस विद्याका नाम "प्रमाण-विद्या" या "न्याय-विद्या" रखा गया। प्रमाणके द्वारा निश्चय किये जानेवाले विषयका "प्रमेय" नाम रखा गया। इस प्रकार दर्शनशास्त्रके सभी सिद्धान्त "प्रमेय" हैं और उनको तोलनेवाली तराजूका नाम "प्रमाण" है। मेधातिथिके इन सिद्धान्तोंको अक्षपादने सूत्रक्रमसे लिखकर इस ग्रन्थको न्यायदर्शन नाम दिया। इस प्रकार न्यायदर्शन प्रमाण और प्रमेय, दोनों ही विषयोंका प्रतिपादन करनेसे केवल न्याय मात्र न होकर न्यायदर्शन है।

न्यायदर्शनकी रचनासे दार्शनिक इतिहासमें एक क्रान्ति-सी मच गयी। उस समय ब्राह्मणोंकी अच्छी बन आयी और वह शास्त्रार्थमें अपने प्रतिवादी जैन, बौद्ध आदिकोंके दाँत अच्छी तरह खट्टे करने लगे; किन्तु दोनों ही विवश थे।

होते-होते प्रसिद्ध बौद्ध आचार्योंको न्यायदर्शनका यह महत्त्व बहुत खटका। उन्होंने ब्राह्मण नैयायिकोंके आक्रमणसे बौद्ध धर्मको बचानेके लिये बौद्ध सिद्धान्तोंका मण्डन करनेवाले बौद्ध न्यायकी नींव डाली, यह न्याय केवल "प्रमाण"रूप था, इसमें "प्रमेय" के सम्मिलित न किये जानेसे इसको विशुद्ध रूपमें न्याय कह सकते हैं। प्राचीन न्यायदर्शनकी त्रुटियोंको लक्ष्यमें रखकर इस न्यायकी रचना की गयी थी। इस कारणसे तथा केवल प्रमाण रूपमें होनेसे यह न्याय प्राचीन न्यायदर्शनकी अपेक्षा अधिक विकसित था। बौद्ध न्यायकी रचनासे जहाँ एक ओर बौद्ध धर्मके प्रचारमें बड़ी सहायता मिली, वहाँ ब्राह्मण तथा जैन धर्मके प्रचारको भारी धक्का भी लगा।

कालान्तरमें प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य दिङ्नागके समयमें बौद्ध न्यायकी बहुत उन्नति हुई। उनके ग्रन्थ "न्याय-प्रवेश" का बड़ा आदर हुआ। समग्र भारतमें इसका प्रचार हो गया। बौद्ध न्यायके ऊपर सहस्रों

ग्रन्थ लिखे गये और बौद्ध न्यायका भारतीय दर्शनोंमें एक विशेष स्थान हो गया।

बौद्ध न्यायके इतिहासमें ईस्वो सातवीं सदीके प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य धर्मकीर्तिका नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। इनके समयमें बौद्ध न्याय अपनी उन्नतिकी चरम सीमापर था। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'न्यायबिन्दु' की ऐसी धाक जमी कि, आज भी काशीके पण्डित न्यायबिन्दुके नामसे घबराते हैं। इसको पढ़ना एक टेढ़ी खीर समझा जाता है।

बौद्ध न्यायके सहस्रों ग्रन्थोंमेंसे इस समय केवल न्यायबिन्दु ही बचा है। मीमांसा न्यायबिन्दुसे यह ग्रन्थ पृथक् है। इसका वर्तमान संस्करण "विद्या-विलास प्रेस" काशीसे निकला है, जिसमें आचार्य धर्मोत्तरकी संस्कृत टीका तथा इन पङ्क्तियोंके लेखक-के संस्कृत नोट और उसकी भाषा-टीका भी सम्मिलित है। इन पङ्क्तियोंके लेखकने इस ग्रन्थके आदिमें एक विस्तृत भूमिका लिखी है, जिसमें न्यायबिन्दुकी रचनातकके बौद्ध न्यायका इतिहास तथा तुलनात्मक भारतीय न्यायोंका गवेषणा-पूर्ण विवेचन किया गया है।

यह ऊपर दिखलाया जा चुका है कि, बौद्ध न्याय-की रचनाके आरम्भिक दिनोंमें हो जैन-धर्मको हानि पहुँचने लगी थी। जैन-विद्वानोंने इस हानिको बड़ी सतर्कताके साथ देखा और वह इसके निराकरणके उपायमें लग गये; क्योंकि अब तो ब्राह्मण और बौद्ध, दोनों ही धर्मों की चोट उनपर होने लगी थी। ईसाकी चौथी शताब्दीमें महाराजा विक्रमादित्यकी सभाके नौ रत्नोंमेंसे एक रत्न क्षपणक या सिद्धसेन दिवाकरने "द्वात्रिंशिका" नामसे बत्तोस श्लोक बनाकर उसमें जैनन्यायकी नींव डाली। क्षपणकका यह न्याय अनेक ब्राह्मण और बौद्ध आचार्यों की कृतियाँ और शास्त्रार्थ देखकर बनाया गया था। अतः यह उन दोनोंसे ही अधिक युक्तिपूर्ण था। इस ग्रन्थकी रचना से जैन-सिद्धान्तोंको सहारा मिला।

ईस्वी सातवीं और आठवीं शताब्दियोंका नाम जैनन्यायके इतिहासमें अमर रहेगा। इस समय प्रसिद्ध आचार्य श्रीयुत अकलंकदेवने न केवल अपने ग्रन्थोंसे ही जैनन्यायको नवीन जीवन दिया, वरन् अपने भारी-भारी शास्त्रार्थों से भी अनेक राजाओंको जैन-धर्मकी शिक्षासे दीक्षित किया।

अकलंकदेवने जैनन्यायको सुसंघटित प्रकारसे नवीन रूप दिया। उनके "न्यायविनिश्चय" आदि ग्रन्थोंका महत्त्व अनन्तवीर्यके निम्नलिखित श्लोक-से भली प्रकार प्रकट होता है—

"अकलंकवचोऽम्भोधेरुद्दध्रे येन धीमता।
न्यायविद्यामृतं तस्मै नमो माणिक्यनन्दिने॥"

अर्थात् जिस विद्वान्ने अकलंकदेवके वचन-रूपी समुद्र-मेंसे न्यायविद्या-रूपी अमृतको निकाला है, उस आचार्य माणिक्यनन्दीको नमस्कार है।

इस श्लोकसे इतनी बातें सिद्ध होती हैं—

(१) अकलंकदेवका स्थान जैनन्यायमें सर्वोच्च है एवम् उनको जैनन्यायका प्रणेता अथवा उद्धारक समझना चाहिये।

(२) अकलंकदेवके ग्रन्थ ही जैनन्यायके विषयमें आदि प्रमाण हैं।

(३) जैनन्यायका मूल प्रामाणिक सूत्रग्रन्थ "परीक्षामुखसूत्र" (जिसके कर्ता माणिक्यनन्दी हैं) अकलंकदेवके वचनका सारांश है।

(४) जैनन्यायके विषयमें अकलंकदेवके पश्चा

आचार्य माणिक्यनन्दीका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है।

इस समय भारतवर्षके जैनन्यायके विद्वान् जैन-न्यायको दो मूल सूत्रग्रन्थोंसे पढ़ सकते हैं—आचार्य माणिक्यनन्दीका "परीक्षामुखसूत्र", दूसरा एक श्वेताम्बर जैन-आचार्यका "प्रमाणनयत्त्वालोकालङ्कार।" प्रथम ग्रन्थ आठवीं और दूसरा बारहवीं या तेरहवीं शताब्दीका है; अत एव जैनन्यायमें प्रथम ग्रन्थ ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है।

"परीक्षामुखसूत्र"के ऊपर प्रभाचन्द्राचार्यने "प्रमेय-कमलमार्तण्ड" नामकी एक बड़ी भारी टीका बनायी है। इस टीकामें भारतके सभी दर्शनों और न्यायोंका खण्डन करके जैनन्यायका विशेष रूपसे मण्डन किया गया है।

इन ग्रन्थोंके साथ-साथ, तथा बादमें भी, जैनन्याय-के ऊपर अनेकानेक ग्रन्थ बनते रहे। आज यदि जैन-न्यायके ग्रन्थोंको एकत्र किया जाय, तो केवल उन्हींका एक बड़ा विशाल पुस्तकालय बन जाय।

बौद्ध और जैन न्यायोंकी इन रचनाओंसे प्राचीन वैदिक धर्मको—जो अब अधिक मात्रामें केवल ब्राह्मण-धर्म रह गया था—बड़ा भारी धक्का लगा।

इन न्यायोंका खण्डन करनेके लिये प्राचीन न्यायके दार्शनिक सिद्धान्तोंके आधारपर मिथिलाके पण्डितोंने "नव्य-न्याय"की नींव डाली। इसमें प्राचीन न्यायकी तुलनामें दो विशेषताएँ थीं। प्रथम तो यह कि, यह प्राचीन न्यायके समान प्रमाण और प्रमेयवाला न होकर केवल प्रमाणात्मक ही है। दूसरा यह कि, इसमें शब्द इस प्रकारके आडम्बरपूर्ण होते हैं कि, जो व्यक्ति न्याय नहीं जानता या कम जानता है, वह नव्य न्यायवालेके शास्त्रार्थको समझ भी नहीं सकता; उसका उत्तर देना तो दूरकी बात है।

नव्य न्यायके शब्दाडम्बरका एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

नव्य न्यायमें "घट" को "घट" न कहकर "घट-त्वावच्छेदकावच्छिन्न" कहेंगे अर्थात् घटत्वके अवच्छे-दक अर्थात् नियामक (घटत्व) से अवच्छिन्न अर्थात् युक्त।

दार्शनिक विद्वान् इस न्यायमें तत्त्वकी अपेक्षा शब्दाडम्बर ही अधिक मानते हैं।

इस प्रकार भारतीय दर्शनोंमें प्राचीन न्याय, बौद्ध न्याय, जैन न्याय और नव्य न्याय—ये चार न्याय हैं।

न्यायशास्त्रकी शिक्षा देनेवाले भारतीय विश्वविद्यालयोंका कर्तव्य है कि, वे अपने छात्रोंको इन चारों ही न्यायोंका उच्च कोटिका तुलनात्मक अध्ययन करावें।

इस समय इन चारोंके ऊपर यह लेख भूमिका-रूपमें लिखा गया है। यदि पाठकोंको यह पसन्द आया, तो इन चारों ही न्यायोंका सैद्धान्तिक वर्णन पृथक्-पृथक् लेखोंमें किया जायगा।

राधा

मधुर गान अभी करते रहे, विटपपै हरि कोकिल-वेशमें।
चुप हुए फिर क्यों ललिते! कहो, समझके मुझको, हतभागिनी!!

पं० गौरीशङ्कर मिश्र

वैज्ञानिक चमत्कार

आत्मा

साहित्याचार्य 'मग'

सभी धर्मवालोंने आत्माके विषयमें खूब अटकलें लगायी हैं। ईसाई आत्माको अमर और अभौतिक वस्तु मानते हैं। उनका विश्वास है कि, जीवित शरीरमें जो आत्मा रहती है, वही मृत्युके बाद, कब्रमें भी, लाशके साथ, रहती है और तबतक वह वहीं रहती है, जबतक कि, उसके अन्तिम विचारका दिन नहीं आता है। मुसलमान भी कुछ ऐसा ही मानते हैं; पर विशेष वे यह बताते हैं कि, क्यामतके दिन रूह एक नयी जिस्म अख्तियार कर खोदाके पास जाती है और खोदा उसकी करतूतके मोताबिक उसे दोजखमें डालकर सड़ाता या बिहिश्तमें हूरगिल्मेसे उसकी खातिर कराता है। हिन्दुओंके विचार जरा इनसे उन्नत हैं। वे कहते हैं कि, आत्मा अजर, अमर और वायुकी तरह सूक्ष्म है। मृत्युके बाद वह शून्य आकाशमें भ्रमण करती है, पाप-पुण्यके अनुसार स्वर्ग-नरक पाती है और पुनः देह धारण करती है यानी जन्म ग्रहण करती है।

धर्मशास्त्रोंके अनुसार आत्मा वायुकी तरह सूक्ष्म भौतिक पदार्थ, अथवा मनकी तरह अभौतिक पदार्थ, है, जिसे न कोई छू सकता है, न देख सकता है। आत्मा सुख-दुःखका उपभोग उसी प्रकार करती है, जिस प्रकार मन और इन्द्रियादि-विशिष्ट मनुष्य सुख-दुःखका उपभोग करता है।

अब वैज्ञानिकोंके कुछ प्रत्यक्ष अनुभवोंको भी देखें। उपर्युक्त बातोंको वे एक बारगी ही नहीं मानते। वे जड़ पदार्थको ही सचेतन मानते हैं। उनके विचारसे प्रत्येक अणु आत्मवान् है। प्राणकी उत्पत्ति वे रासायनिक क्रियासे मानते हैं, जो विभिन्न जड़ पदार्थोंके सम्मिश्रणसे होती है। जड़ पदार्थोंके अतिरिक्त आत्मा, परमात्मा, जीवात्मा आदि, उनके विचारसे, नहीं हैं।

उनके सिद्धान्तोंको जाननेके लिये इन प्राथमिक बातोंकी जानकारी रखना बहुत जरूरी है—

(१) जगत्की एक मात्र शक्ति (*Energy*) और उसका आधार पदार्थ (*Substance* या *Matter*) सदासे विद्यमान है। शक्ति और पदार्थ इस प्रकार संश्लिष्ट हैं कि, उनका पृथक्भाव नहीं हो सकता। शक्तिका आधार किसीके मतसे परमाणु (*Atom*) है, किसीके विचारसे

ईथर (*Ether*) है और किसी-किसीके मतसे ईथरकी अपेक्षा भी कोई सूक्ष्मतर वस्तु है।

(२) जगत्‌में पदार्थोंका अवलम्बन करके शक्ति सब जगह टिकी रहती है। ऐसी कोई भी जगह नहीं है, जहाँ वह न हो।

(३) अनादि कालसे ही शक्ति जो क्रिया करती आ रही है, वह कितने ही निर्दिष्ट और अपरिवर्तनीय नियमोंके अधीन होकर ही। शक्तिका ऐसा ही स्वभाव या धर्म है। संसारमें जितने दृश्य (*Phenomena*) हैं, वे शक्तिकी क्रियाके द्वारा उत्पन्न हैं।

(४) संसारमें जितने भी प्रकारके, भिन्न-भिन्न शक्तियोंके, विकास हुए हैं, उनमें कोई समष्टि नहीं हुई है; बल्कि संसारस्थ सम्पूर्ण पदार्थोंमें चिर कालसे ही समष्टि है।

वैज्ञानिक-समुदाय अचेतन पदार्थसे ही चेतनकी यानी आत्मा, जीवकी उत्पत्ति मानता है। जड़ द्रव्य है और चेतन गुण। द्रव्य धर्मी और आधार है तथा चेतन धर्म और आधेय है। द्रव्यसे अलग चेतनका अस्तित्व नहीं है। विज्ञानविद् लुडक (*Ludock*) और लोयव (*Loeb*) ने निर्जीव पदार्थोंपर रासायनिक प्रयोग करके उनमें सजीव पदार्थोंकेसे लक्षण देखे हैं।

प्राणकी उत्पत्तिके बारेमें पदार्थ-विद्या-विज्ञ विद्वानोंका ऐसा विचार है। अङ्गारक (*Carbon*), जलजान (*Hydrogen*), अम्लजान (*Oxygen*), यवक्षारजान (*Nitrogen*) आदि पदार्थ अचेतन हैं और जीवन-विहीन। इनके बीच अङ्गारक और अम्लजानके, किसी विशेष अवस्था या मात्रामें, मिलित होनेसे, अङ्गारीय अम्ल (*Carbonic acid*), जलजान और अम्लजानसे जल, यवक्षारजान और कई एक अन्यान्य पदार्थोंके सहयोगसे यवक्षारलवण (*Nitrogenous*) उत्पन्न होता है।

आधि भौतिक पदार्थोंके मिश्रणसे ये जितने नूतन पदार्थ उत्पन्न होते हैं, वे सब-के-सब निर्जीव होते हैं; परन्तु किसी अवस्था-विशेषमें जब वे मिश्रित होते हैं, तब उनमेंसे एक प्रकारका जटिल पदार्थ उत्पन्न हो जाता है, जिसे कललरस (*Protoplasm*) कहते हैं। वही जीवनरूप दृश्य (*Phenomena*) प्रदर्शित करता है।

जितने और जो मौलिक उपादान निर्जीव पदार्थोंके हैं, उतने ही सजीव पदार्थोंके भी हैं। सजीव पदार्थोंके मौलिक उपादानोंका यदि विशेष प्रकारसे सम्मिश्रण होता है, तो *Albuminoid* श्रेणीका कललरस नामक मिश्र पदार्थ उत्पन्न होता है एवं उसीसे सजीव पदार्थोंके प्राणोंकी क्रिया प्रकाशित होती है।

Albuminoid नामक पदार्थके परमाणुओंके परस्पर विनिमयसे रासायनिक तथा प्राकृतिक क्रिया प्रकाशित होती है; वही सजीव पदार्थोंका प्राण है। अम्लजान, जलजान, यवक्षारजान और गन्धकके साथ जब अङ्गारक (*Carbon*) का मिश्रण होता है, तब *Albuminoid* पदार्थ बनता है। अङ्गारकके सहयोगसे जो कललरस नामक मिश्र पदार्थ उत्पन्न होता है, उसकी जटिलता तथा चञ्चलताको देखनेसे यह स्पष्ट प्रतीत होने लगता है कि, वह अङ्गारक-विहीन अन्यान्य मिश्र पदार्थोंसे पृथक् स्वतन्त्र वस्तु है।

जीवतत्त्ववित् (*Biologist*) पण्डितोंने कहा है कि, उच्च श्रेणियोंके जीवोंकी देह एवं मानव-शरीर एक क्षुद्र जीवकोष (*Cell*) से उत्पन्न हुआ है। प्रत्येक पुरुषके अण्डकोषमें शुक्र (*Sperm*) नामका एक तरल पदार्थ रहता है, जिसके मध्यमें असंख्य शुक्रकीट (*Spermatozoa*) सतत तैरते रहते हैं। स्त्रियोंके भी जरायुमध्यमें डिम्बकोष (*Ovum*) रहता है। शुक्रकीट और डिम्बकोष, दोनों ही एक-एक स्वतन्त्र जीव हैं। ये विना अनुवी-

यथा यन्त्रकी सहायतासे नहीं देखे जा सकते। शुक्रकीट जब जरायुमध्यमें प्रवेश करते हैं, तब वे सब मिलकर डिम्बकोषकी चारों ओर, उसके भीतर प्रवेश पानेके लिये, अहमहमिकतया घुँघरूकी तरह लटक जाते हैं; परन्तु उनमें वही एक प्रवेश पाता है, जो अत्यन्त भाग्यशाली होता है। बाकी सब शुक्रकीट मर जाते हैं।

शुक्रकीट और डिम्बकोषकी देहमें जो लारकी तरह कललरस रहता है, उसीका अवलम्बन करके प्राणशक्ति रहती है एवं उन दोनोंके मिलनसे नूतन जीवकोष (*Cell*) की सृष्टि होती है। इस जीवकोषमें माता-पिताके स्वभाव विद्यमान रहते हैं।

हेकल आदि वैज्ञानिकोंकी रायमें उत्पत्तिके बाद जो आत्मा है, उसे देखिये। जीवात्मा नामकी कोई पृथक् अभौतिक वस्तु नहीं है; बल्कि अणु-परमाणुकी तरह वास्तव पदार्थ है। नरदेहमें, मस्तिष्क और स्नायुमण्डलमें जितनी क्रियाएँ हैं, उनकी समष्टि ही आत्मा है। आत्मा देहके अतिरिक्त भी रहती है, यह एक कोरी कल्पना है।

मनुष्योंकी जो गति, अनुभूति, आत्मज्ञान और बुद्धि-विवेचना आदि मानसिक क्रियाएँ प्रकाशित होती हैं, वे मस्तिष्कमें रहनेवाले जीवकोषोंके स्पन्दनसे ही। इन जीव-कोषोंका स्पन्दन तब होता है, जब कि, इन्द्रियस्थ स्नायु-मण्डलीका बाह्य वस्तुसे संस्पर्श होता है। इन्द्रियगण एवं मस्तिष्ककी क्रियासे उत्पन्न सब प्रकारकी जैविक क्रियाओंकी समष्टि मानव-जीवात्मा है। मनुष्य-देहमें, जिस परिमाण और आकारमें, मस्तिष्क-क्रिया विकसित होती है, उसी परिमाणमें जीवात्मा भी पूर्णता प्राप्त करती है। इस तरह विकसित होते-होते वृद्धावस्थामें उसका ह्रास होने लगता है और उसकी स्वाभाविक मृत्यु हो जाती है।

मनुष्य जबतक जरायुमध्यमें, अति क्षुद्र जीवकोष के रूपमें रहता है, तबतक उसकी स्नायुमण्डली और मस्तिक गठित नहीं हुआ रहता; इसलिये उसमें जीवा-त्माका अस्तित्व नहीं ज्ञात होता है। सारांश यह कि, जीवात्माकी उत्पत्ति और उसका क्रमविकास मनुष्योंके देह-गठनके साथ ही होता है; अतः शरीरको छोड़कर आत्मा दूसरी जगह नहीं रह सकती। स्वर्ग-नरककी बात कल्पना मात्र है। मृत्युके उपरान्त देहका उपादान जीवकोष प्राण-हीन हो जाता है और अपने मौलिक उपादानोंमें, यानी अम्लजान, जलजान, यवक्षारजान, अङ्गारक प्रभृतिके रूपमें, परिणत हो जाता है।

शरीरका सर्वेसर्वा मस्तिष्क है; क्योंकि ज्ञान और मनकी क्रियाका उद्भव मस्तिष्कके द्वारा ही होता है। किसी भी कारणसे यदि मस्तिष्कका कोई भी अंश क्षत हो जाता है, तो प्राणियोंकी क्रियामें भी वैषम्य दीखने लगता है। कोई भी अच्छी तरहसे समझ सकता है कि, मेरे मस्तिष्कके किस स्थानमें आघात पहुँचा है। मस्ति-ष्कके जिस स्थानसे वाक्शक्ति स्फुरित होती है, उस स्थानमें चोट लगनेसे लोगोंमें बोलनेकी क्षमता नहीं रहती।

जगत्की एक मात्र आत्मा (*Energy*) अति सूक्ष्म पदार्थ मात्र (*Substance*) का अवलम्बन करके अनन्त आकाशमें विद्यमान रहती है। आकाशमें ऐसा कोई भी स्थान नहीं, जहाँ आत्मा और उसका अवलम्बन-पदार्थ विद्यमान न हो। यही आत्मा (*Energy*) कतिपय नैसर्गिक नियमोंके वशवर्त्ती होकर अनन्त कालसे पदार्थ (*Matter*) के ऊपर क्रिया कर रही है। विश्वकी नीहारि-कामयी अवस्थासे आजतक जितने रवि-शशि, नद-नदी, लता-गुल्म, नर-वानर, पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग आदि उत्पन्न हुए हैं, वह इसीके फल हैं।

जगत्के प्रत्येक परमाणुमें, अविच्छिन्न-भावसे, जो शक्ति विद्यमान है, वही उसकी आत्मा है। यही शक्ति

तब मानव आदिके शरीरमें, प्राण, मन, जाति आदिके रूपमें, प्रकाशित होती है, तब उसका नाम जीवात्मा पड़ता है; एवं, संसारकी समुदाय-शक्ति-समष्टिका नाम परमात्मा है। वही परमात्मा पदार्थरूप आधारको अवलम्बित करके जगत् रूपमें अभिव्यक्त हुआ। यह शक्ति अनादि कालसे है; किन्तु किस प्रकारकी है, यह कोई भी वैज्ञानिक नहीं बता सकता।

हेकलका मत है कि, जड़-शक्ति (*Energy of free*) और उसका आधार (*Matter of substance*) ही जीव-जगत्के एक मात्र कारण हैं एवं ताप, आलोक, तांड़त्-शक्ति, चुम्बक-शक्ति आदि जड़शक्तिके ही विभिन्न विकास जीवधारियोंके प्राण तथा मन हैं। सर आलिवर लॉज भी इन बातोंको मानते हैं। वे कहते हैं कि, ताप, आलोक, तड़िच्छक्ति आदि जड़शक्तिके ही यद्यपि विभिन्न विकास हैं; तथापि ईथर नामकी एक दूसरी शक्ति भी है, जिसे हम प्राणशक्ति कह सकते हैं। ईथरकी सत्ता अनादि कालसे है।

सबका सरांश यह है कि, वैज्ञानिक आत्माको जड़शक्तिका ही विकास समझते हैं। मृत्यु मस्तिष्कके जीवकोषोंकी कमीको बताते हैं।

तुलसीदास

सेवक सदा थे आप सज्जनोंके, साधुओंके;
मंगल-स्वरूप, भक्ति-भाव सुनवैयाके।
सीमाहीन पारावार पार करनेको सदा,
आप ही बने थे कर्णधार नाम-नैयाके॥
होते विभोर, कृष्णासार बन जाते आप,
सुनके सुनाम राम, मुखसे गवैयाके।
भक्त गुरु-गैयाके, सुप्राण हिन्दी मैयाके,
रचैया सतसैयाके, गुलाम राम रैयाके॥

प० रामेश्वर झा 'द्विजेन्द्र' एम० ए०

क्षण यन्त्रकी सहायतासे नहीं देखे जा सकते। शुक्रकीट जब जरायुमध्यमें प्रवेश करते हैं, तब वे सब मिलकर डिम्बकोषकी चारों ओर, उसके भीतर प्रवेश पानेके लिये, अहमहमिकतया घुँघरूकी तरह लटक जाते हैं; परन्तु उनमें वही एक प्रवेश पाता है, जो अत्यन्त भाग्यशाली होता है। बाकी सब शुक्रकीट मर जाते हैं।

शुक्रकीट और डिम्बकोषकी देहमें जो लारकी तरह कललरस रहता है, उसीका अवलम्बन करके प्राणशक्ति रहती है एवं उन दोनोंके मिलनसे नूतन जीवकोष (*Cell*) की सृष्टि होती है। इस जीवकोषमें माता-पिताके स्वभाव विद्यमान रहते हैं।

हेकल आदि वैज्ञानिकोंकी रायमें उत्पत्तिके बाद जो आत्मा है, उसे देखिये। जीवात्मा नामकी कोई पृथक् अभौतिक वस्तु नहीं है; बल्कि अणु-परमाणुकी तरह वास्तव पदार्थ है। नरदेहमें, मस्तिष्क और स्नायुमण्डलमें जितनी क्रियाएँ हैं, उनकी समष्टि ही आत्मा है। आत्मा देहके अतिरिक्त भी रहती है, यह एक कोरी कल्पना है।

मनुष्योंकी जो गति, अनुभूति, आत्मज्ञान और बुद्धि-विवेचना आदि मानसिक क्रियाएँ प्रकाशित होती हैं, वे मस्तिष्कमें रहनेवाले जीवकोषोंके स्पन्दनसे ही। इन जीव-कोषोंका स्पन्दन तब होता है, जब कि, इन्द्रियस्थ स्नायु-मण्डलीका बाह्य वस्तुसे संस्पर्श होता है। इन्द्रियगण एवं मस्तिष्ककी क्रियासे उत्पन्न सब प्रकारकी जैविक क्रियाओंकी समष्टि मानव-जीवात्मा है। मनुष्य-देहमें, जिस परिमाण और आकारमें, मस्तिष्क-क्रिया विकसित होती है, उसी परिमाणमें जीवात्मा भी पूर्णता प्राप्त करती है। इस तरह विकसित होते-होते वृद्धावस्थामें उसका ह्रास होने लगता है और उसकी स्वाभाविक मृत्यु हो जाती है।

मनुष्य जबतक जरायुमध्यमें, अति क्षुद्र जीवकोष के रूपमें रहता है, तबतक उसकी स्नायुमण्डली और मस्तिक गठित नहीं हुआ रहता; इसलिये उसमें जीवात्माका अस्तित्व नहीं ज्ञात होता है। सारांश यह कि, जीवात्माकी उत्पत्ति और उसका क्रमविकास मनुष्योंके देह-गठनके साथ ही होता है; अतः शरीरको छोड़कर आत्मा दूसरी जगह नहीं रह सकती। स्वर्ग-नरककी बात कल्पना मात्र है। मृत्युके उपरान्त देहका उपादान जीवकोष प्राण-हीन हो जाता है और अपने मौलिक उपादानोंमें, यानी अम्लजान, जलजान, यवक्षारजान, अङ्गारक प्रभृतिके रूपमें, परिणत हो जाता है।

शरीरका सर्वेसर्वा मस्तिष्क है; क्योंकि ज्ञान और मनकी क्रियाका उद्भव मस्तिष्कके द्वारा ही होता है। किसी भी कारणसे यदि मस्तिष्कका कोई भी अंश नष्ट हो जाता है, तो प्राणियोंकी क्रियामें भी वैषम्य दीखने लगता है। कोई भी अच्छी तरहसे समझ सकता है कि, मेरे मस्तिष्कके किस स्थानमें आघात पहुँचा है। मस्तिष्कके जिस स्थानसे वाक्शक्ति स्फुरित होती है, उस स्थानमें चोट लगनेसे लोगोंमें बोलनेकी क्षमता नहीं रहती।

जगत्‌की एक मात्र आत्मा (*Energy*) अति सूक्ष्म पदार्थ मात्र (*Substance*) का अवलम्बन करके अनन्त आकाशमें विद्यमान रहती है। आकाशमें ऐसा कोई भी स्थान नहीं, जहाँ आत्मा और उसका अवलम्बन-पदार्थ विद्यमान न हो। यही आत्मा (*Energy*) कतिपय नैसर्गिक नियमोंके वशवर्त्ती होकर अनन्त कालसे पदार्थ (*Matter*) के ऊपर क्रिया कर रही है। विश्वकी नीहारिकामयी अवस्थासे आजतक जितने रवि-शशि, नद-नदी, लता-गुल्म, नर-वानर, पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग आदि उत्पन्न हुए हैं, वह इसीके फल हैं।

जगत्‌के प्रत्येक परमाणुमें, अविच्छिन्न-भावसे, जो शक्ति विद्यमान है, वही उसकी आत्मा है। यही शक्ति

जब मानव आदिके शरीरमें, प्राण, मन, जाति आदिके रूपमें, प्रकाशित होती है, तब उसका नाम जीवात्मा पड़ता है; एवं, संसारकी समुदाय-शक्ति-समष्टिका नाम परमात्मा है। यही परमात्मा पदार्थरूप आधारको अवलम्बित करके जगत् रूपमें अभिव्यक्त हुआ। यह शक्ति अनादि कालसे है; किन्तु किस प्रकारकी है, यह कोई भी वैज्ञानिक नहीं बता सकता।

हेकलका मत है कि, जड़-शक्ति (*Energy of frce*) और उसका आधार (*Matter of substance*) ही जीव-जगत्के एक मात्र कारण हैं एवं ताप, आलोक, तांड़त्-शक्ति, चुम्वक-शक्ति आदि जड़शक्तिके ही विभिन्न विकास जीवधारियोंके प्राण तथा मन हैं। सर आलिवर लॉज भी इन वातोंको मानते हैं। वे कहते हैं कि, ताप, आलोक, तड़िच्छक्ति आदि जड़शक्तिके ही यद्यपि विभिन्न विकास हैं; तथापि ईथर नामकी एक दूसरी शक्ति भी है, जिसे हम प्राणशक्ति कह सकते हैं। ईथरकी सत्ता अनादि कालसे है।

सबका सरांश यह है कि, वैज्ञानिक आत्माको जड़शक्तिका ही विकास समझते हैं। मृत्यु मस्तिष्कके जीवकोषोंकी कमीको बताते हैं।

तुलसीदास

सेवक सदा थे आप सज्जनोंके, साधुओंके;
मंगल-स्वरूप, भक्ति-भाव सुनवैयाके।
सीमाहीन पारावार पार करनेको सदा,
आप ही बने थे कर्णधार नाम-नैयाके ॥
होते विभोर, कृष्णसार बन जाते आप,
सुनके सुनाम राम, मुखसे गवैयाके।
भक्त गुरु-गैयाके, सुप्राण हिन्दी मैयाके,
रचैया सतसैयाके, गुलाम राम रैयाके ॥

प० रामेश्वर झा 'द्विजेन्द्र' एम० ए०

विनोद-बिन्दु

ससुरालकी सैर

बा० हरद्वारप्रसाद जालान

"इस बीसवीं सदीमें जिसने '*Yes*' के बदले '*No*' और '*No*' के बदले '*Yes*' नहीं कहा, वह जरूर गावदी, बोदा, नाकाबिल, निकम्मा, जंगली, हबशी और जानवर है।" यह बात मैं ड्रेसिंग टेबुलपर बैठा हुआ सोच रहा था कि, मेरा हिलता हुआ पैर "*Waste paper basket*" में जा फँसा! जेंटलमैनीका भूत इस तरह सरपर सवार था कि, टोकरीका खयाल कतई जाता रहा! मैंने समझा कि, पाँव जूतेमें फँसे हैं। बस, फौरन मैंने झटका मारा! परन्तु यह क्या......हाय! कमबख्त बासकेट उछलकर सामनेकी, शीशेकी, दोशाख को ले बैठा! फर्श झनझना उठा—फर्श ही नहीं, बाहरका बरामदा भी घहरा उठा! सामनेसे मेरी बीवी दिखाई दीं। उफ! आवाज़ वहाँतक जा पहुँची! खैर। झट मैंने पैंतरा बदला और ड्रेसिंग टेबुलसे आँखें भिड़ा कर बोला—"*Oh! Run down! run down!*" साथ-ही-साथ घबराहट-में बिना देखे-भाले एक डिब्बी उठाकर खोल डाली और ताबड़तोड़ दोनों हाथोंसे उस मुलायम रौगनको चमड़ेपर मालिश करता हुआ बोल उठा—"*Oh! Run down! run down!*" उधर तिरछी नज़रसे, आइनेमें, अपनी बीवीकी हरकत निहार रहा था। बीवी आयीं और कमरेकी हालत देखकर, सीनेपर हाथ मारती हुई, बोली—"अम्मा! यह गज़ब! हाय, हाय! मेरी सबसे बढ़िया शाख टूट गयी! दइया रे, बिल्लोंसे शाख भी नहीं बचने पाती!"

'बिल्ले' का नाम सुनते ही, मेरा चेहरा तो 'गेट अप' हो गया। मैंने बीवी साहबाकी ओर घूमकर कहा—"जी, जी! यह फसाद बिल्ले साहबका ही है। मैंने अपनी आखोंसे आईनेमें देखा, बिल्ला दोशाखपर जा चढ़ा!"

"जी! और आप हज़रत खड़े-खड़े मुँह ताकते रहे!"

"हैं-हैं-हैं—अरे-रे-रे-रे यह क्या!"

मैं दौड़कर बीवीके पास जा पहुँचा। यह क्यों! बीवी साहबा झिझकती तथा झटकती पीछे क्यों हटने लगीं! मैं ढकेलता हुआ आगे बढ़ा; फिर भी वे पीछे ही हटती गयीं। इस बार हो गयी मुठभेड़! 'पिछाड़ा' दीवार से जा लगा और 'अगाड़ा' मुझसे! फिर कैसे हटतीं!

बीवी बार-बार मुझे इशारतन छोड़नेके लिये समझाने लगीं; पर बन्दा कब मानने लगा। होलीका ज़माना—और मैं पूरे फैशनमें! इस वक्त क्यों छोड़ता! मगर या क्या! ज्यों ही 'लबे-आरिज़' होना चाहता था कि, एकाएक बीवी चिल्ला उठीं—"हाय! हाय! यह कैसी पॉलिश! दइया रे, मेरा रुख बिगड़ा!"

उनका रुख क्यों बिगड़ता, मेरा ही रुख बिगड़ गया! सामनेसे उनका उगालदान जो उलटा, तो इलाज

मेरे चेहरेसे उतरकर नेकटाई, कॉलर, कमीज़के ऊपरसे होता हुआ पैंटके तहमें जाकर जमा होने लगा। हाथ लगाकर जो देखा, तो सब चप-चप !

"लाहौल विला कूवत !" आज किस बुरी साइतमें उठा था : कि, मेरी इस बदतर हालतपर भी बीवी हँस-हँसकर पलंगपर पछाड़ खा रही थीं ! उनका दम फूल रहा था !

उनकी इस हरकतपर, भई, निहायत गुस्सा चढ़ आया। मैं भी बिगड़ कर अँग्रेज़ीकी सभी गालियाँ देने लगा, '*You stoopid ! Bloody ! Nonsense ! Damn !*' लेकिन बीवी गालियाँ सुनकर और भी खिलखिलाकर हँसने लगीं। अभीतक तो चित्त पड़कर हँस रही थी, इस बार सीनेके नीचे तकिया लगा, पट पड़कर हँसने लगीं। भगवान् जाने, सच कहता हूँ, न जाने वे किस जोशमें तकिया बकोटने लगीं !

मैं और भी गुस्सेमें आगबबूला हो उठा। गमकी हालतमें पैंटकी जेबोंमें हाथ पड़े हुए थे; मैंने जोरोंसे पैर पटककर कहा—"*Unsivilized*" छोकरी ! तेरी यह हिमाकत ! इतने ही में, पैंट पटकनेके साथ ही, मेरा पैंट खिसक पड़ा और मैं निहङ्ग-लाड़ला हो गया ! पहलेका जमा लुआब क़तरे-क़तरे टपकने लगा !

अब जाकर मुझे खयाल आया कि, 'गेलिस' न लगाकर मैंने कैसी बेवक़ूफी की। यह खयाल जाता रहा कि, पाँवमें पैंट फँसा है। मैं झल्लाकर आगे बढ़ा; पर अभी क़दम उठाया भी नहीं था कि, गिर पड़ा। सारा फर्श लहू-लोहान हो गया ! तो भी हरामज़ादीने दाँत निपोरना बन्द नहीं किया ! "बेशक हिन्दुस्तानी औरतें गावदी और बोदी होती हैं। अगर कोई एजुकेटेड लेडी होती, तो मेरी ऐसी हालत क्यों होती ! सारा फ़साद इसी मेरे ससुरकी छोकरीका है। कमबख्त उठी नहीं कि, मुँहमें पान दबा लिया। मिसें पान क्यों नहीं खातीं; इसीलिये न कि, पान खानेसे सिवाय नुक़सानके कोई फ़ायदा नहीं होता। इसी कमबख्त पानने तो मेरी सारी जेंटलमैनीपर पुचारा फेर दिया। बस, क़सम खाता हूँ कि, आजसे घरमें कोई पान लायगा, तो उसकी खबर हंटरसे लूँगा। देखूँगा, अब बीवी कैसे मुँहमें पान रखती हैं !"

मेरी बातें सुनकर उठती, सम्हलती और अपनेको किसी तरह ज़ब्त करती हुई बीवी बोलीं—"भले जेंटलमैन, पहले चेहरा तो धो लो ! तब मुझसे बातें करना।"

मेरा पारा जो नीचे-ऊपर हिल रहा था, अब खड़ा हो गया ! मैंने गरजकर कहा—"बे-हया ! तेरी ही वजहसे तो मुझे यह परेशानी हुई; यह जलालत उठानी पड़ी; और, मुझे ही चेहरा धोनेका उपदेश देती है। ठहर, तुझे मजा चखाये देता हूँ !" कहकर मैंने उसे दबोचकर उसके आँचलमें मुहँ पोंछ डाला। वह तुरत चिल्ला उठी—"हाय दइया, मरी ! हाये, हाय ! मेरी २०) रुपयोंकी साड़ी खराब कर डाली !" यहींतक नहीं, निहायत बदशऊरकी तरह दाँतोंसे मुझे बकोटनेपर तैय्यार हो गयी। उसकी यह हालत देख, घबराकर मैंने उसे ज्यों ही छोड़ा, त्यों ही वह बोल उठी—"आग लगे तुम्हारे इस इंगलिश फैशनमें ! चूल्हेमें जाय तुम्हारा एडीकेट ! पहले आइनेमें देखो, तो कि, चेहरेपर हैज़लिन स्नो लगाया है या जूतेकी कोबरा पालिश !!!"

हैं-हैं-हैं, यह क्या ! बीबीका आँचल बजाय लाल होनेके काला क्यों हो गया ! क्या सचमुच मैंने हैजलिन स्नोके जगह चेहरेपर जूतेकी पालिश मल डाली है !"

उसकी बात सुनकर जलते हुए तवेपर पानीका छींटा पड़ गया। उछलकर आईनेपर जा खड़ा हुआ। हाय, हाये ! तौबा, तौबा ! यह क्या ! चेहरेपर एक तरफ हैजलिन स्नो और दूसरी ओर काली कोबरा पॉलिश ! थू-थू करता हुआ

मैं कमीज़के दामनसे चेहरा पोंछने लगा; परन्तु इस बार दूसरे गालपर भी पॉलिश लग गयी ! अपनी इस बुरी हालतपर निगाह नीचे हुई, तो अरेरेरे, नङ्गधड़ङ्ग खड़ा हूँ ! चेहरेको छोड़ मैं धोतीपर लपका और चट उसे लुङ्गी-सी लपेट ली। बीवीका हँसना अभी बन्द नहीं हुआ था।

मैं झल्लाकर, किवाड़का दरवाजा खोलते हुए, बोला—"अच्छी बात हैं, मैं अभी आकर तेरी हँसी निकालता हूँ; कमबख्त मुझे उल्लू बनाती है !"

दरवाजा खोलकर मैं बाहर निकल रहा था कि, सामने मेरे दोस्त प्राणशङ्कर दिखाई दिये। मैं 'कनखिया' कर भाग निकलना ही चाहता था कि, वे पुकार उठे, "मिस्टर सिनहा !" पर इस वक्त मिस्टर सिनहा सामने होकर क्यों जाते ! आगे बढ़ा, तो सामनेसे चाचा साहब आ पहुँचे। अब कैसे लाज बचाऊँ ! आखिर मैंने एक ढंग सोचा। चट बगलके पाखानेमें जा बैठा।

मत पूछिये, मेरी मुसीबतका हाल ! बैठे-बैठे आधा घंटा गुजर गया। उधर कमबख्त प्राणशङ्कर दरवाजेकी बगलमें खड़ा-खड़ा न मालूम क्या फुसफुसा रहा था। बदबूके मारे एक तो यों ही नाकों दम आ रहा था; इसके अलावा पालिशकी महँक दिमागमें अलग ही चढ़ रही थी। छींकँते-छींकते बेहाल हो चला ! आखिर थककर कमोडपर बैठ गया, इसके सिवाय और चारा ही क्या था ! आधा घंटा और बीतनेपर दम मारकर उठा और दरवाजा खोलनेको बढ़ा। पर हाय ! कमबख्तने बाहरसे जंजीर चढ़ा दी थी ! 'हाय करम' कहकर मैं दोनों हाथोंसे सर धूनने लगा।

इधर बदबूके मारे मेरा दम घुटा जा रहा था और उधर पुकारता हूँ, तो सब लोग मेरी शक्ल देखकर, जिन्दगी-भरके लिये, मेरा फोटो उतार लेंगे। लाचार होकर मैंने चुपचाप बैठना ही अच्छा समझा। ठीक इसी वक्त जनाना पाखानेकी तरफवाली खड़कीसे बीवीने सिसकारी मारकर कहा, "भले आदमी, इस तरह पाखानेमें क्यों बैठे हो। बेहतर है कि, अपने दोस्तोंसे आरजू मिन्नत करके दरवाजा खुलवा लो। समझे !"

मैंने झल्लाकर कहा, "यह तो हर्गिज़ नहीं हो सकता। पाखानेमें मर जाऊँ, यह क़बूल है; लेकिन यह चेहरा हर्गिज किसीको नहीं दिखा सकता।"

"तो फिर बैठे रहो।"

"अच्छा, एक काम करो। मुझे एक लोटा पानी ला दो। मैं मुँह धोकर बाहर निकलूँ। यह लोग समझेंगे, आबदस्त कर बाहर निकले हैं !!"

मेरा आबदस्तका कहना था कि, बीवी खिलखिलाकर हँस पड़ी। भगवान् उठा ले ऐसी फूहड़ बीवीको। कमबख्त को मेरी इस मासूम हालतपर भी ज़रा तरस नहीं आयी! उल्टे दाँत निपोर बैठी।

खैर, बीवी बाहर गयी और झट एक लोटेमें पानी लेकर आ पहुँची। खिड़की ऊँची थी। लोटा लेनेके लिये मैंने हाथ ऊपर उठाया; पर यहाँ भी कमबख्ती सरपर सवार थी। लोटा हाथमें अच्छी तरह पकड़नेके पहले ही पानी गुम दर गिर गया। ज्यों ही मैं झिझका कि, लोटा कमोडमें घप्पसे × × !

और भी बुरा हाल हो गया ! सारी धोती खराब हो गयी। छींटोंके मारे कमीजका दामन ही नहीं, आस्तीन भी बिगड़ गयी ! अब तो न हाथ ही उठाने लायक रहा, न गिराने ही लायक ! मैं रोने लगा। आँखें अपनी हालत देखकर खुद डबडबा गयीं। खैर भई, फिर लोटा मँगाया और किसी तरह काम निकालकर दरवाजा खुलवाया !

कमबख्त प्राणशङ्कर और दो दोस्त और सामने नज़र पड़े। मुझे देखते ही ठहाका लगाकर हँस पड़े। मैं तो झल्लाया हुआ था; भला, उनकी क्यों सुनता। सरपट बढ़ता हुआ कमरे नीचे जा बैठा। बड़ी देरतक साबुनसे मलमल कर नहानेपर

किसी तरह चेहरेपरसे काले कोलतरेका कोयला-सा रङ्ग साफ हुआ; पर मलते-मलते आँखें सूज गयीं, गाल घिस गया, नाक छिल गयी। खैर, किसी तरह इतनी जिल्लत उठाकर दोस्तोंके बीच बैठने लायक तो हुआ। बैठकमें आया और कंघा-कंघी करने लगा। इधर तीनों दोस्त एक खत पढ़कर हँस रहे थे—"प्यारे जीजा साहब !"

मुझे दालमें कुछ काला मालूम हुआ। समझ गया कि, फिर कोई बात हुई है, जिसमें मुझे ये बेवकूफ बना रहे हैं। हो-न-हो यह ख़त मेरी साली साहबाका है। ज़रूर यही बात है, अन्दाज कर मैंने पूछा—"क्यों भाई, आजकी डाक पोस्टमैन दे गया ?"

प्राणशङ्कर बोल उठा—"जी हाँ, आपका ही यह ख़त है—इसमें × × है—लिखा है—"प्यारे जीजा साहब !'

मैं झल्लाकार उनके नज़दीक जा कूदा; पर अफसोस, झपाटेमें मेरी टाँगें नाकाबिल हो गयीं और मैं औंधा मुँह होकर चारो खाने चित्त हो रहा !

खयाल करनेकी बात है कि, मेरी तो ठुड्ढी छिल गयी और दोस्तोंको हँसी ही नजर आ रही थी। तालियाँ बजाकर फट पड़े। ठहाकेसे कमरा टूटने लगा। आख़िर, भला किसी रईसको यह बात कब मंजूर हो सकती थी ! मैंने बिगड़कर कहा—"तुम सब अनसिविलाइज्ड छोकड़े हो। किसीका खत खोलना क्या शराफत है ?"

प्राणशङ्कर मुस्कुराकर बोल उठा—"यार, इस लिफाफेसे सेंटकी खुशबू निकलती देखकर मैंने समझा कि, तुमने किसी मिससे शराफत जोड़ी है। इसीलिये खत खोला गया। पर अफसोस, माशूका नहीं निकली, माशूकाकी बहन निकली ! हाँ, तो क्या ससुराल जाइयेगा ? आपके साले साहबकी शादी है।" हैं, यह बात ! ज़रा ख़त तो देखूँ !

प्राणशङ्करने ख़त दे दिया। मैं मुस्कुरा-मुस्कुराकर पढ़ने लगा। पढ़कर बोला—"आप हज़रत लोगोंने आज जैसी गुस्ताखी मुझसे की है, वह शरीफाना तौरके खिलाफ है। लिहाज़ा मैं चाहता हूँ कि, आप लोगोंसे मैं दोस्ती मौकूफ रखूँ ?"

"क्यों यार, क्या बात हुई ! क्या गुस्ताखी हुई ?"

"कुछ नहीं, मैं आप लोगोंसे बोलना अपनी शानके खिलाफ समझता हूँ। लिहाज़ा आप लोग तशरीफ़ ले जायँ।"

प्राणशङ्कर, हरिनाथ और रमेशने कहा—"पहले तो हम लोगोंने कोई गुस्ताखी ही नहीं की। होलीके वक्त अगर आपको ज़रा पाखानेमें बन्द कर दिया, तो क्या हुआ ? इन दिनों तो दोस्त लोग क्या-क्या न किया करते हैं ! खैर, अगर आपको इस बातका मलाल है, तो हम लोग माफी माँगते हैं।"

मैंने तमककर कहा—"तुम सब रैसकेल हो ! तुम लोगोंको साथ रखनेसे मेरी शराफतमें बट्टा लगेगा। अब मैं किसी तरह तुम लोगोंसे दोस्ती नहीं रख सकता। आदाब !"

हरिनाथ तमककर उठते हुए बोला—"अच्छी बात है। तुम्हारे जैसे भोंदूके साथ हम भी दोस्ती करना नहीं चाहते ! उठो रमेश !"

रमेश और प्राणशंकरने भी हामी भरी और उठकर चलते बने।

[आज मेरी तबीयत तो निहायत बेचैन था। मैं चहल-] कदमी करने लगा। इसी वक्त हँसती हुई बीबी कमरेमें आ पहुँचीं। मुँहमें कपड़ा ठूँसे हुए अलग खड़ी-खड़ी मेरी ओर गौरसे देखने लगीं। इधर मैं गुस्सेमें लाल-चूर हो रहा था। आखिर न रहा गया; झट बोल उठा,—"निकम्मी,

तेरी ही वज़हसे मुझे इतनी परेशानी उठानी पड़ी; और, फिर भी तेरी हँसी नहीं रुकती !"

"मेरी वज़हसे ?" कहकर बीबी चौंक पड़ीं।

मैंने और गुस्सेमें आकर कहा—"हाँ, हाँ, तेरी ही वज़हसे ! अगर तू कमरेमें न आती, तो इतनी आफ़त क्यों उठानी पड़ती !"

"लो, भला शीशेके टूटनेकी आवाज सुनकर मैं कैसे न आती ? क्या जाने बिल्ला और दो चार शाखें तोड़ देता ?"

"तो तुम्हे इस बातका तो खयाल होना चाहिये था कि, कमरेमें मेरे जैसे बड़े बिल्लेके रहते छोटे बिल्लेकी क्या हिमाकत है, जो शाखें तोड़ दे !"

"तोड़ ही दिया कि, तोड़ देता !"

"भला बिल्लेकी क्या मज़ाल, जो मेरे रहते कमरेमें पैर रखे। जी, वह शाख तो आपके इस बड़े बिल्लेने तोड़ी है !"

"आँय ! तुमने तोड़ी है !"

"जी हाँ !"

"वज़ह ?"

यह मेरी बेवक़ूफ़ीकी निशानी थी, और क्या कहूँ !"

"शायद यह भी इङ्गलिश एडीकेट होगा ! मालूम होता है, उस वक्त तुम्हारे सरपर इङ्गलिश फैशनका भूत सवार था ?"

"देख, मैं तो तुझसे इस कदर डरता हूँ और तू मुझे इस तरह बनाती है ! क्या यही इंसाफ़ है ? तेरी ही झिड़कियोंके डरसे तो मैंने हेजलिन स्नोके बदले कोबरा पालिश मल डाली थी ?"

"कसम ?"

"प्यारी जानकी" बड़ी आजिजीसे आँखें घुमाकर कहा।

"तुम मुझे इतना प्यार करते हो ?" बीबीने मटक कर पूछा।

बन्दा भी चालबाज ठहरा। फर्शी सलाम कर, झुकते हुए कहा—"*Yes my Lord*!"

अब क्या था, बीबी गलेसे लिपटकर बोल उठी—"प्यारे !"

मैं भी आगा-पीछा भूल गया। चट–चट दो बार !!

बीबी गाल सुहलाते हुए बोल उठीं—"यह भी शायद इङ्गलिश एडीकेट है ?"

मैं—"जी हाँ, एक खुशखबरी सुनानेके पहले मैंने ये दो पैगाम दिये हैं।"

बीबी हँसकर आँखें मिलाती हुई बोलीं—"स्व, क्या खुशखबरी है, ज़रा सुनूँ ?"

"पहले मिठाई खिलानेका वादा करें, तो सुनाऊँ !

शर्माती हुई बीबीने कहा,—"अभी तो चखी है। हविस पूरी नहीं हुई।"

फिरसे तड़ाक करके मैंने कहा—"जी, आपके भाई साहबकी शादी है !"

"ऐ ! ललनकी शादी होगी ! कब ?"

"चौथी चैतको !"

"इतनी जल्दी ! खत आया है। मुझे बुलाया है !"

"जी हाँ, आपके साथ ही इस *Humble servant* को भी !"

"देखूँ खत !"

"देखिये !" कहकर मैंने बीबीको खत दे दिया। आँखें फाड़कर, तेजीसे खत पढ़नेके बाद, गलेसे लगती हुई बोलीं—"प्यारे !"

बन्देने लबपर झुकते हुए कहा, "*My sweet heart! My darling* !!"

पाठक सोचते होंगे कि, मेरा गुस्सा इतनी जल्दी काफ़ूर क्यों हो गया ! भाई, बीबी चीज़ ही ऐसी होती है और, फिर, काले साहब गोरी मेमकी यों कदर न करें, तो

कोचवानों और साईसोंकी बन आवे। समझे? यही वजह है कि, मैं कभी भी बीवीकी मर्जीके खिलाफ चूं नहीं करता था। हाँ, तो उसके बाद बीवी और मैं आमने-सामने बैठ गया। मैं बैठा कुर्सीपर और बीवी बैठीं ड्रेसिङ्ग टेबुलके कोनेपर।

बीवीने मुस्कुराकर कहा "Dear !"

मैंने कुड़ककर कहा—'*Laughing Moon !*'

"मुझे जैकेट चाहिये !"

"जी ! और एक लॉकेट भी !"

"लॉकेट क्या ?"

"लॉकेट मेम लोग पहना करती हैं। उसमें वे अपने प्रियकी तस्वीर लगाती हैं।"

"अच्छा और क्या लाओगे !"

"हेयर पिन !"

"और"

"हेयर क्लिप !"

"और"

"पेन हेंट्स"

"तब तो मुझे पूरी मेम बनाकर ले चलोगे।"

"जी, आपके लिये मैं अभी लिडले कम्पनीको पेटेंट तरीके एड़ीदार जूतेका आर्डर देता हूँ !"

"आँय आँय ! मुझे एड़ीदार: जूता पहना कर ले चलोगे !"

"और नहीं तो क्या। जेंटलमैनकी शरीफ औरतें रोज़र चढ़ाजी चलती हैं। जानती है, तू "मिसेज सिनहा" है।"

"यह नहीं हो सकता। मैं एड़ीदार जूता पहनकर हर्गिज तुम्हारे साथ मायके नहीं जाऊँगी। वहाँ लोग देखेंगे, तो क्या कहेंगे कि, केतकी पूरी मेम बन गयी। नहीं, यह मुझसे न होगा। एक कदम भी मैं एड़ीदार जूता पहनकर नहीं चल सकती। नहीं, नहीं, यह मुझसे नहीं होगा। ऐसे फैशनसे मैं बाज आयी। मेरा देशी लँहगा ही भला है।"

यह बात सुनते ही मैं बिगड़कर बोला—"*You* काली *Native* औरत; तुम सबमें तमीज आ ही नहीं सकती। तुझे ठीक पारसी ड्रेसमें चलना होगा। पर्दा सिस्टमका रिवाज तोड़ना होगा !"

बीवीने मुँह बनाकर कहा—"तो "बेसवा"की तरह मैं तुम्हारे साथ घूँघट उठाकर हाथ-में-हाथ देकर मायके चलूँ; हाँ, न ? यह मुझसे नहीं होगा। आग लगे इस फैशनमें !"

अब तो मैं और तनक गया ! जोशमें आकर बोला—"तो मैं तुझे इस *Native* फैशनमें अपने साथ न ले चलूँगा ! जानती हो, जो यह सुनेगा कि, मेरी औरत एड़ीदार जूता नहीं पहनती, वही मुझे हँसेगा !"

"हँसेगा क्या ? क्या सभीकी माँ-बहनें एड़ीदार जूता पहनती हैं ?"

"नहीं, पर मेरी तो पहनेगी। मैंने तो सभी दोस्तोंसे यह बात कह रखी है कि, मेरी बीवी *up-to-date* फैशनवाली है !"

"तुम्हारा मुँह है। तुम जो कह दो; पर मैं यह बात नहीं कबूल करती। मैं अपनी देशी पोशाक ही पहनकर चलूँगी।"

मैं बीवीकी यह जिद नहीं सह सका। गुस्सेमें आकर बोला,—"तो मायके जानेसे हाथ धो ले। मैं कसम खाकर कहता हूँ कि, अगर तुझे मायके ले चलूँगा, तो इसी इंगलिश न्यू स्टाइलमें। वर्ना आजसे मेरा-तेरा तअल्लुक तलाक !" (क्रमशः)

कविता-कल्लोलिनी

१ भीषण भूकम्प

पापियोंके पातकसे अशेष शेष विचलेंगे,
होगी विकम्पित भूमि भारी इड़कम्पसे ।
दुर्जनोंके दुर्गमें मचेगा घोर हाहाकार !
लगेगी प्रचण्ड अग्नि घरके ही लम्पसे ॥
"गांगेय" तड़-तड़ तड़केंगे पहाड़ टूट,
जलेंगे समुद्र तप, बिजलीके पम्पसे ।
भयंकर दरारोंमें धसेंगे साम्राज्य सब,
पलटेगा विश्व-रूप भीषण भूकम्पसे ॥

प० गांगेय नरोत्तम शास्त्री

२ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

आयी उषा, कमलदल विकसे, करने लगे मधुप गुंजार,
माता-सरस्वती-ग्रीवामें पड़ा पुनः हिन्दीका हार ।
जागी सोई हिन्दी-जनता, हुआ सितारोंका निर्वाण,
लता-वल्लियोंकी झुरमुटमें पुनः सुन पड़ा कल-कल गान ।
वाल्मीकि, होमर, मिल्टनकी जबतक बजती रहती वीणा,
हरिश्चन्द्रकी चारु चन्द्रिका, तबतक होगी कभी न क्षीण ।

बाबू माहेश्वरी सिंह "महेश"

३ गान

इठलाती नभकी पलकों पर—
उतरी फेनिल लघु-लहरोंपर ।
फैलाकर शुभ-सुन्दर अम्बर,
जग-जगमें कोमल गूँज उठा, विहँगोंका मृदु कलरव गान—
लख प्रथम रश्मिका मुसकाना,
झरनोंमें फैला मृदुल हास ।
भरती जीवनमें मोद, लास,
करती तरु, वृन्तोंपर विलास ।
चमकी नव आशा-सी नभपर, हो गया जगत् यह दीवाना—
लख प्रथम रश्मिका मुसकाना ॥

श्रीयुत हरेन्द्र

४ भ्रमर

अर भ्रमर पी मधुर पुष्परस, पेट खूब निज भरता है,
हो उससे ही पुष्ट, उसे तू क्यों निर्जीवित करता है ।
अरे नीच, निर्लज्ज, निर्दयी, तुझको दया न आती है,
हाय ! दुर्दशा उसकी तुझसे, कैसे देखी जाती है ॥

'गंगा' कवि, डुमराँव

संस्कृत-साहित्य-सौन्दर्य

पुराणमित्येव न साधु सर्वम्,
न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते,
मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥

न तो सभी पुरानी बातें ही ठीक हैं और न नयी ही; मूर्ख लोग अन्धविश्वासी होते और विद्वान् पुरुष परीक्षा करके ठीक-ठीक निर्णय करते हैं।

धनेन किं यो न ददाति याचके
बलेन किं यश्च रिपुं न बाधते।
श्रुतेन किं यो न च धर्ममाचरेत्
किमात्मना यो न जितेन्द्रियो भवेत् ॥

उस धनका रहना व्यर्थ ही है, जो याचकको नहीं दिया जाता, उस बलसे क्या फायदा, जिससे शत्रुकी नकेल न पकड़ी जा सके, पढ़नेमें क्या रखा है, जब कि, धर्मका आचरण नहीं किया जाता और उस आत्मबलसे क्या फायदा, जो जितेन्द्रिय नहीं बनाता ?

असत्यता निष्ठुरताऽकृतज्ञता
भयं प्रमादाऽलसता विषादिता।
वृथाभिमानो ह्यतिदीर्घसूत्रता
तथाङ्गरौक्ष्यादि विनाशनं श्रियः ॥

झूठापन, निर्दयता, कृतज्ञता-शून्यता, डर, लापरवाही, आलस्य, ग्लानि, व्यर्थका अहङ्कार, विलम्बकारित्व और रूखी-सूखी देह—ये सब धनके घातक हैं।

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते,
निघर्षणाच्छेदनतापताडनैः।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते,
श्रुतेन शीलेन कुलेन कर्मणा ॥

जैसे घिसने, काटने, तपाने और पीटने आदि चार तरहसे सोनेकी परीक्षा ली जाती है, वैसे ही विद्या, शील, कुल और कर्म आदि चार प्रकारसे पुरुषकी भी परीक्षा की जाती है।

गुणी गुणं वेत्ति न वेत्ति निर्गुणो
बली बलं वेत्ति न वेत्ति निर्बलः।
पिको वसन्तस्य गुणं न वायसः
करी च सिंहस्य बलं न मूषकः ॥

गुणीका गुण गुणी ही जानता है, निर्गुणी नहीं और बलीका बल बली ही जानता है, निर्बल नहीं; क्योंकि, वसन्त ऋतुका गुण कोयल ही जानती है, कौवा नहीं और सिंहका बल हाथी ही जानता है, चूहा नहीं।

यशस्करे कर्मणि मित्रसंग्रहे
प्रियासु नारीष्वधनेषु बन्धुषु।

क्रतौ विवाहे व्यसने रिपुक्षये

धनव्ययस्तेषु न गण्यते बुधैः॥

कीर्त्ति बढ़नेवाले काम, मित्र-वृद्धि, प्रिया स्त्री, दरिद्र, बन्धु, यज्ञ, विवाह, शास्त्र-व्यसन, शत्रुनाश आदिके लिये किये गये खर्चको खर्च नहीं जानना चाहिये।

विवादशीलां स्वयमर्थचोरिणीं

परानुकूलां बहुपाकपाकिनीम्।

सक्रोधिनीं चान्यगृहेषु वासिनीं

त्यजन्ति भार्यां दशपुत्रमातरम्॥

झगड़ालु, घरका धन चुरानेवाली, दूसरेकी अनुगामिनी, आवश्यकतासे अधिक पाक करनेवाली, क्रोधिनी और दूसरेके घरमें रहनेवाली स्त्रीको फौरन छोड़ देना चाहिये—चाहे वह दस पुत्रोंकी माता ही क्यों न हो!

सहसा विदधीत न क्रिया—

मविवेकः परमापदां पदम्।

वृणते हि विमृश्यकारिणं

गुणलुब्धाः स्वयमेव संपदः॥

चूँकि अविचार विपदाओंकी खान है; इसलिये विना विचारे, हठात् कोई कार्य नहीं करना चाहिये। नीतिविदोंका सिद्धान्त है कि, विचारवान्‌के पास, उसके गुणपर मुग्ध होकर, लक्ष्मी स्वयं जाती है।

वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतं

वरं क्लैब्यं पुंसां न च परकलत्राभिगमनम्।

वरं प्राणत्यागो न च पिशुनवाक्येष्वभिरुचि-

र्वरं भिक्षाशित्वं न च परधनास्वादनसुखम्॥

वरं शून्या शाला न च खलु वरो दुष्टवृषभो

वरं वेश्या पत्नी न पुनरविनीता कुलवधूः।

वरं वासोऽरण्ये न पुनरविवेकाधिपपुरे

वरं प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगमः॥

चुप रहना ठीक है; परन्तु झूठ बोलना नहीं, हिजड़ा बन कर रहना ठीक; किन्तु परस्त्रीगमन नहीं; प्राण छोड़ना अच्छा है; पर डाही आदमीकी बातोंमें रुचि नहीं; भिक्षा माँगकर जीना अच्छा है; लेकिन दूसरेका धन भोग करना नहीं; गोशाला सूनी भली है; परन्तु दुष्ट बैल नहीं; वेश्याको स्त्री बनाना ठीक है किन्तु उद्दण्ड पत्नी नहीं; जंगलमें रहना अच्छा; परन्तु अन्यायी राजाके राज्यमें नहीं; प्राण त्याग देना उचित है; परन्तु नीचोंके पास रहना ठीक नहीं है।

साहित्य-सरिता

१ धर्मविज्ञान

लेखक, स्वामी दयानन्दजी बी० ए० । मूल्य ४) रु०
प्रका—योगाश्रम, सनातनधर्म कॉलेज, कानपुर । पृष्ठसंख्या ६१५ ।

स्वामी दयानन्दजी बी० ए० जैसे सनातनधर्मके उच्च कोटिके वक्ता हैं, वैसे ही लेखक भी हैं। आपकी वाणीमें उथल-पुथल मचा देनेवाली शक्ति है। आपका व्याख्यान सुनकर बड़े-बड़े तार्किक भी मन्त्र-मुग्ध हो जाते हैं। सनातनधर्मकी बातोंको ऐसी वैज्ञानिक शैलीसे आप समझाते हैं कि, सुनकर परम नास्तिक भी सिर नीचा कर लेता है। पचीस-पचीस हजार श्रोताओंके सामने आप, घंटों, शेरे-बब्बरकी तरह दहाड़ते रहते हैं। जिस स्थानमें आपका व्याख्यान होनेको रहता है- वहाँ नयी तरंग और उमंग उमड़ आती है। उच्च कोटिके कितने ही शिक्षित तो आपके सामने किसी सनातनी उपदेशकका व्याख्यान ही नहीं सुनना चाहते। आप बाल-ब्रह्मचारी, देशभक्त, गम्भीर-स्वभाव, योगी, कितनी ही सभाओं, स्कूलों और कालेजोंके संस्थापक, परम उदार और संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला, हिन्दी आदिके उदात्त विद्वान् तथा व्याख्याता हैं। हम लिख चुके हैं कि, स्वामीजी महाराज जिस श्रेणीके वक्ता हैं, उसी श्रेणीके लेखक भी हैं। हिन्दीका सौभाग्य है कि, आपने एक दर्जनसे भी ऊपर उत्तमोत्तम ग्रन्थ हिन्दीमें लिखे हैं। यद्यपि आपने अँग्रेजी, संस्कृत और बँगलामें भी कितने ही ग्रन्थ लिखे हैं; परन्तु सर्वाधिक ग्रन्थ हिन्दीमें ही लिखे हैं। आपने, आठ खण्डोंमें, "धर्मकल्पद्रुम" नामका हिन्दीमें एक प्रकाण्ड ग्रन्थ लिखा है, जो सनातनधर्मका विश्वकोष कहा जा सकता है। इस ग्रन्थको पढ़कर कितने ही सज्जन विद्वान् और उप-देशक-महोपदेशक बन गये। और, इस "धर्मविज्ञान" में, श्रीस्वामीजीके शब्दोंमें, "धर्मकल्पद्रुमके समस्त विषयोंका सार-संग्रह तो है ही, इसके अतिरिक्त पश्चिमी सायंसके अनुसार इसमें समग्र विषयोंका विचार किया गया है, जिससे पश्चिमी शिक्षा प्राप्त जिज्ञासुओंके लिये यह ग्रन्थ बहुत ही उपकार साधन करेगा, इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं है। इस (धर्मविज्ञान) से स्थान-स्थानपर पश्चिमी विद्वानोंके विचार उद्धृत करके समस्त विषयोंकी पुष्टि की गया है और प्राच्य-प्रतीच्य तुलनात्मक विचार द्वारा धार्मिक, सामाजिक, आध्यात्मिक—सभी प्रकारके विषय-विवेचनको सर्वाङ्ग-सुन्दर बना दिया गया है।" मतलब यह कि, देश, काल, पात्रके अनुसार इस ग्रन्थ-रत्नको पूर्ण उपयोगी बना दिया गया है। इस ग्रन्थको देखनेसे स्वामीजीके व्यापक अध्ययन, उत्कट अध्यवसाय और अद्वितीय विद्वत्ताका पता चलता है। इसमें (१) आधुनिक विज्ञान और सनातनधर्म, (२) देशसेवा और सनातनधर्म, (३) स्वराज्य और सनातनधर्म, (४) आचारमें वैज्ञानिक चमत्कार, (५) नित्यकर्म, (६) श्राद्ध-तर्पण, (७) षोडश संस्कार, (८) शक्तिसञ्चय और आश्रमधर्म, (९) सतीधर्म-रहस्य, (१०) विवाह-

काल-निर्णय, (११) वर्णविज्ञान और स्पृश्यास्पृश्य-विचार, (१२) उपासना-तत्त्व और मन्त्रशास्त्र, (१३) भक्ति और योग, (१४) अवतार-मीमांसा, (१५ श्रीकृष्णचरितरहस्य, (१६) ब्रह्म-ईश्वर-जीव-माया-तत्त्व, (१७) सृष्टि-स्थिति-प्रलय-तत्त्व, (१८) परलोक-जन्मान्तर-तत्त्व, (१९) वेदवेदाङ्ग और दर्शनशास्त्र, (२०) पौराणिक शङ्कासमाधान, (२१) गोमहिमा, (२२) विज्ञानजगत्में नवीन चमत्कार, (२३) शिक्षाविषयोंपर तुलनात्मक विचार और (२४) व्याख्यान-कला-कुशलता आदि चौबीस खण्ड हैं। इनके अन्तर्गत कितने ही विषयों-पर विस्तृत विवेचन किया गया है ।

एक वाक्यमें यह समझिये कि, यह ग्रन्थ सनातनधर्मके समस्त विषयोंका खजाना है, पुस्तकालय है, रत्नराजि है। सनातनधर्मका रहस्य समझने और विधर्मियोंके आक्षेपोंका उत्तर देनेके लिये यह ग्रन्थ अजेय अस्त्र है। प्रत्येक सनातनधर्मीका, इस ग्रन्थको अपने पास रखना, पवित्र कर्त्तव्य है। इसकी छपाई-सफाई भी बढ़िया है । ६१५ पृष्ठोंकी पुस्तकका ४) रु० मूल्य भी अल्प ही है। इसमें सन्देह नहीं कि, भारतवर्ष हिन्दू जाति और हिन्दी-भाषाको श्रीस्वामीजी महाराजसे बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं।

२ "कल्याण"का "ईश्वराङ्क"

सम्पादक, बाबू हनुमानप्रसाद पोद्दार, स० सम्पादक प० गौरीशङ्कर द्विवेदी (साहित्यरत्न), प्राप्तिस्थान, "कल्याण"-कार्यालय, गोरखपुर । इस विशेषाङ्कका मूल्य (परिशिष्टाङ्क-सहित) ३)। पृष्ठसङ्ख्या ६१८। चित्रसंख्या ६३ (सादे और रंगीन)। डेढ़ सौसे अधिक गद्य-पद्य-लेखोंसे सुसज्जित। वार्षिक मूल्य ४≋)। यह विशेषाङ्क "कल्याण"के सप्तम वर्षका प्रथमाङ्क है।

"कल्याण" के सम्पादक बाबू हनुमानप्रसादजीने, इस जड़वाद-प्रधान युगमें, अनेकानेक पुस्तकोंके प्रणयन और "कल्याण"के सम्पादनके द्वारा जो अध्यात्मविद्या, भक्ति और शान्तिकी निर्मल ज्योत्स्ना विकीर्ण की है, वह सर्वथा स्तवनीय और अभिनन्दनीय है। आध्यात्मिक पत्रके सम्पादकमें जो निरहङ्कारिता, निर्ममता, निःस्पृहता, स्थिर-चित्तता, ऐकान्तिकता, आस्तिकता और सदाचारिताकी आवश्यकता है, वह आपमें सर्वांशतः सन्निहित है। ऐसे निर्मल-हृदय और धर्म-प्राण सम्पादक हिन्दीमें तो क्या अन्य भाषाओंमें भी बहुत ही कम हैं। आपके ही समान आपका पत्र, "कल्याण" भी, बाहर-भीतर—सब ओर पवित्र और प्राञ्जल है। आजकलके अधिकांश पत्रोंमें जो व्यापार-चातुरी, स्वार्थोद्देशता, प्रवञ्चना और अहमहमिका आदि वृत्तियाँ हैं, उनसे "कल्याण" एकबारगी ही मुक्त है । "कल्याण" केवल "जगद्धिताय" प्रकाशित होता है। "कल्याण"के लेख निर्बलको सबल, निस्तेजको सतेज और अशान्तको शान्त बनाते हैं। संसारके थपेड़ोंसे परास्त, दैन्य-दग्ध और जीवनसे निराश मनुष्यके लिये "कल्याण" के लेख सञ्जीवनी बूटी हैं। ये ही सब कारण हैं कि, हिन्दीके मासिक पत्रोंमें "कल्याण"के जितने—लगभग १७०००—ग्राहक हैं, उनके आधे भी किसी पत्रके नहीं।

इसी "कल्याण"का यह "ईश्वराङ्क" है। इसमें देश-विदेशके अनेक दिग्गज विद्वानोंके निबन्ध-प्रबन्ध हैं। इन्हें पढ़कर पाठक आनन्दमयी भक्ति-सुधा-धारामें बह जाता है। जिनके हृदयमें तर्क और वितण्डाके करमलने अपना घर नहीं बनाया है, जिनका अन्तःकरण विमल और विशुद्ध है, उनके ऊपर "ईश्वराङ्क"के लेख जादूकासा प्रभाव डालेंगे। हमारे कहनेका यह मतलब नहीं कि, इस विशेषाङ्कमें किसीने तर्कका आश्रय ही नहीं लिया है। नहीं, अनेक विद्वानोंने कोरे तर्कसे भी ईश्वरकी सत्ता सिद्ध करनेकी चेष्टा की है; परन्तु, हम, निःसन्देह, कह सकते हैं कि, ऐसे विद्वान्

अपने लक्ष्यमें सफल नहीं हो सके हैं; क्योंकि ईश्वरमें "तर्कोऽप्रतिष्ठः" है। स्व० लो० तिलक जैसे उद्भट विद्वान्ने जिन शङ्कराचार्यको संसारका सर्व-श्रेष्ठ तत्त्वज्ञानी माना है, उन्होंने भी वेदान्त-दर्शनके "तर्काप्रतिष्ठानाद् ××" सूत्रमें इस बातको स्वीकृत किया है। जो अशरीरी है, जो प्राकृतिक नियमोंसे परे है, जिसके लिये श्रुतियाँ "नेति नेति" कहती हैं और "यस्माद् वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह", उस अनिर्वचनीय ब्रह्म या ईश्वरको अपूर्ण तर्कोंके दायरेमें लाना, मनुष्य-बुद्धि-गम्य युक्तियोंसे सिद्ध करना, वृथा प्रयास है। लोग कहते हैं कि, सायंससे ईश्वर सिद्ध नहीं होता, स्पेन्सर, हेकल और हक्सलेने ईश्वरकी सत्ताको मंजूर नहीं किया है। अच्छा, न करें। सायंस भी तो अभी अधूरा ही है—नयी-नयी खोजोंसे उसके सिद्धान्त परिवर्त्तित हो रहे हैं। और, वह भी एक ऐसा नियम मानता है, जिससे चराचर क्रियाशील हैं। क्या आश्चर्य कि, कुछ दिनोंमें वह नियमके साथ अथवा नियमको ही नियामक मानने लगे। हर्बर्ट स्पेन्सर और अर्नेस्ट हेकल आदि भी ईश्वरको अज्ञेय मानते हैं। यह बात अनुचित नहीं। जब कि, ईश्वर ईथर, एलेक्ट्रन प्रोटाइल, ऐटम अथवा प्रोटोप्लाज्म भी नहीं है, तब वह अवश्य ही अज्ञेय है। अपूर्ण मनुष्य-बुद्धिके लिये वह कभी ज्ञेय हो नहीं सकता। यही तो हिन्दूशास्त्र भी कहते हैं; और, हम महात्मा गान्धी, क्राइस्ट और मुहम्मदकी तरह बार-बार कहते हैं—

"भक्त्या त्वनन्यया लभ्यो हरिरन्यद् विडम्बनम्।"

३ "श्रीकृष्ण"

(हिन्दी दैनिक पत्र)

सम्पादक, प० नीलाम्बर दत्त जोशी; वार्षिक मूल्य १२) रु०, छमाही ६॥), एक प्रति)॥। पता—एक्सप्रेस प्रेस, बाकरगंज, पटना।

बिहार हिन्दी-भाषी प्रान्त है। यहाँसे, यू० पी० की ही तरह, कई मासिक, साप्ताहिक और दैनिक पत्र निकलने चाहिये। परन्तु, न मालूम क्यों, इस दिशामें बिहार मरुभूमि है। पहले तो यहाँसे उल्लेखनीय पत्र-पत्रिकाएँ ही नहीं निकलतीं और निकलती भी हैं, तो अल्पायु होती हैं। यह बिहारके लिये लज्जाकी बात है। इन लाइनोंके लेखक के सामने, इस बातके लिये, बिहारके कई "बड़े आदमियों" ने दुःख और परिताप प्रकट किया है—बस, इतना ही! वह काम कुछ नहीं करना चाहते! कम-से-कम रोजकी खबरें पढ़नेके लिये, एक दैनिक पत्रको अपनाना तो प्रत्येक बिहारीका कर्त्तव्य है। प्रसन्नता है कि, "श्रीकृष्ण" दैनिक रूपमें निकला है। यह सनातनधर्मी पत्र है, यह और भी प्रसन्नता का विषय है। देखना है कि, कितने सज्जन इसे अपनाकर बिहारकी लज्जा धोते हैं। हम तो चाहते हैं कि, प्रत्येक बिहारीके घर इसकी एक प्रति पहुँचे और यह हिन्दीका श्रेष्ठ पत्र बन जाय।

४ "जागरण"

सम्पादक, बाबू प्रेमचन्दजी, सहकारी सम्पादक, बाबू प्रवासीलाल वर्मा; वार्षिक मूल्य ३॥), छमाही २), एक अङ्क एक आना। प्राप्ति-स्थान—सरस्वती प्रेस, बनारस।

हिन्दीके सुप्रसिद्ध लेखक और शिल्पी बाबू शिवपूजन सहायके सम्पादकत्वमें पहले "जागरण" पाक्षिक निकलता था। तब यह विशुद्ध साहित्यिक था, सुपाठ्य सामग्रीसे सुसज्जित रहता था, अपने ढंगका अनूठा था और इससे लोगोंको बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। परन्तु अधिकांश हिन्दी-पाठकोंमें साहित्यिक सुरुचिके अभावके कारण यह बन्द कर दिया गया; और, अब, यह, साप्ताहिक रूपमें, प्रेमचन्दजीके सम्पादकत्वमें, निकल रहा है। अब यह साहित्यिक ही नहीं; विविध-विषय-विभूषित पत्र है। इसमें सुन्दर और

सामयिक लेखोंका चयन रहता है, सरस समालोचनाएँ रहती हैं, दिल बहलानेवाली दिल्लगियाँ रहती हैं, बढ़िया साज-सज्जा रहती है। काशीपुरीसे एक सुन्दर साप्ताहिकका अभाव, मुद्दतोंसे, खटकता था, जिसकी पूर्ति "जागरण"ने की है। अबतकके अङ्कोंसे मालूम होता है कि, "जागरण" काशी और हिन्दी-भाषियोंमें ज्ञान और जागरण उत्पन्न करेगा। इसकी सजावटकी छटा-घटा भी देखने ही लायक होती है; क्योंकि इसके सहकारी सम्पादक वर्माजी इस कलामें निपुण और निष्णात हैं। ईश्वर करे, "जागरण" ईर्ष्या, द्वेष और पक्षपातसे दूर रहकर देश और जातिकी सेवा करे।

५ "प्रेमा"का "शृङ्गाररसाङ्क"

सम्पादक, श्रीयुत रामानुज श्रीवास्तव। इस विशेषाङ्कके सम्पादक, सहित्याचार्य प० लोकनाथ सिलाकारी। वार्षिक मूल्य ४॥), इस अंकका ॥।); पृष्ठसंख्या २१६; पता—इंडियन प्रेस लिमिटेड, जबलपुर।

लगभग बिहारकी ही तरह मध्य प्रदेश भी, हिन्दी पत्रिकाओंके लिये, मरुभूमि है। "हितकारिणी" और "शारदा" जैसी सुन्दर पत्रिकाएँ भी, वहाँ कालकवलित हो गयीं। इन दिनों वहाँसे "प्रेमा" नामकी पत्रिका निकल रही है, जो बहुत बढ़िया है। मध्य प्रदेशकी यही एक मात्र पत्रिका है। इसके सञ्चालकोंने प्रत्येक रसपर एक-एक विशेषाङ्क निकालना निश्चित किया है। हास्य और करुण रसोंपर दो विशेषाङ्क निकल भी चुके हैं। यह तीसरा शृङ्गाररसपर है। इस विशेषाङ्कमें शृङ्गाररसपर हिन्दीके एक-से-एक धुरन्धर लेखकोंने ऐसे लेख लिखे हैं, जिन्हें पढ़कर हृदयमें आनन्दोल्लास हो जाता है। कविताएँ भी बड़ी ही मार्मिक और अभिराम हैं। सम्पादकीय वक्तव्यमें शृङ्गार रसपर जो विस्तृत विचार किया गया है, वह पठनीय और मननीय है। मध्यप्रदेशके प्रत्येक हिन्दी-भाषीको अपनी एक मात्र पत्रिका "प्रेमा" का, ग्राहक बनना चाहिये।

६ "वानर"

सम्पादक, प० रामनरेश त्रिपाठी और श्रीयुत आनन्दकुमार। वार्षिक मूल्य ३), एक अङ्क ।=)। पता—हिन्दी-मन्दिर प्रेस, प्रयाग।

हिन्दी-संसारके प्रसिद्ध लेखक प० रामनरेश त्रिपाठी सुन्दर और सुरुचि-पूर्ण साहित्य प्रकाशित करनेमें प्रसिद्ध हैं। आपने बढ़िया-से-बढ़िया पुस्तकें प्रकाशित की हैं। आपके उसी प्रकाशनमें "वानर" भी है। यह एक वर्ष चार महीनोंसे निकल रहा है और इसी बीच इसने कोमल-मति बालकोंके समक्ष एक-से-एक बढ़कर मनोरञ्जनकी सामग्री उपस्थित की है। "वानर"की "गुपचुप कहानियाँ", "कथा-कहानी", "डाक", "पहेलियाँ", "चित्रशाला" आदि पढ़ते ही देखते बनती हैं। यों तो बालकोंके लिये हिन्दीमें अनेक मासिक पत्र निकलते हैं; परन्तु "वानर"में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, जिनके कारण बालक-बालिकाओंका अत्यधिक मनोरञ्जन और ज्ञान-वर्द्धन होता है। "वानर"के शीर्षकोंकी सजावट भी अनूठी होती है।

७ "हिन्दी गल्पमाला"

सम्पादक, 'इन्दु'के भूतपूर्व सम्पादक बाबू अम्बिकाप्रसाद गुप्त। वार्षिक मूल्य २॥), एक प्रति, ।)। पता—हिन्दीग्रन्थ-भाण्डार, काशी।

हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक बा० अम्बिकाप्रसाद गुप्तके सम्पादकत्वमें आज १२ वर्षोंसे यह पत्रिका निकल रही है। यह सुन्दर, उपदेशप्रद और सामाजिक कहानियोंसे संयुक्त पत्रिका है। "माया", "जासूस" आदिकी भाँति इसकी भी काफी प्रशंसा हो चुकी है। इसकी भाषा सरल और

मुहाविरेदार होती है। सम्पादन बढ़िया होता है। इससे मनोरञ्जन और ज्ञान-वर्द्धन साथ-साथ होते हैं।

८ "जीवनसन्देश"

यह "दि को-आपरेटिव हेल्थ एसोशियेशन, मुजफ्फरपुर"की "पत्र-प्रकाशन-समिति"के निरीक्षणमें प्रकाशित मासिक पत्र है। कार्य-सम्पादक श्रीयुत रामाचरणजी हैं। वार्षिक मूल्य १), प्रति अंक -)॥। पता—"जीवनसन्देश," मुजफ्फरपुर।

यह "सुन्दर स्वास्थ्य, जागृत बुद्धि और तेजोमय जीवनका आशापूर्ण सन्देश-वाहक मासिक पत्र" विगत चैत्र १९८९ से प्रकाशित हो रहा है। यह पत्र उच्च और उपयोगी विषयोंके ही लेख छापता है। स्वास्थ्य-सम्बन्धी और नैतिक लेख छापनेमें यह पत्र अद्वितीय है। "सादा जीवन और उच्च विचार" पसन्द करनेवाले सज्जनोंको इस विहारी पत्रको अवश्य अपनाना चाहिये।

९ सुहाग

लेखक, बाबू माहेश्वरी सिंह 'महेश'। प्रकाशक, साहित्यरत्न बाबू अनूपलाल मण्डल, युगान्तर-साहित्य-मन्दिर, अयोध्यागंज बाजार, पुर्निया। मूल्य।)

उक्त पुस्तकके प्रकाशक बा० अनूपलालजी खुद भी सुन्दर लेखक हैं; इसलिये गद्य-पद्यकी चुनी हुई पुस्तकें ही प्रकाशित करते हैं। आपकी कई पुस्तकोंका परिचय इन्हीं कालमोंमें दिया जा चुका है। आज हम "सुहाग"का परिचय देते हुए भी प्रसन्नता प्राप्त करते हैं। यह पुस्तक आर्ट पेपरपर छपी है। इसमें महेशजीकी २५ उत्कृष्ट कविताओंका संकलन है। कविताओंमें कोमलता है, कमनीयता है, सुकुमारता है, अलबेलापन है। महेशजी विहारके उदीयमान कवि हैं। आपसे हिन्दीको बड़ी आशाएँ हैं। पुस्तकारम्भमें सुधांशुजीका "अन्तर्दर्शन" भी पठनीय है।

१० "उद्योग-धन्धा"

सम्पादक, बा० भोलानाथ वर्मन। पता—१, सरकार लेन, कलकत्ता। वार्षिक मूल्य २॥), एक अंक।)।

कलकत्तेके बा० भोलानाथ वर्मन प्रसिद्ध राष्ट्रिय कार्य-कर्ता, देशी वाणिज्य-व्यवसायके उन्नायक, सादगी-पसन्द और हिन्दी-सेवक हैं। आपके ही उद्योगसे कलकत्तेमें एक "हिन्दू-शिल्प-विद्यालय" स्थापित है। इसके मुखपत्रके रूपमें उक्त पत्र निकलता है, जो हिन्दीमें अपने विषयका अद्वितीय है। इसमें विभिन्न चीजोंके बनानेके रासायनिक नुस्खे और तरकीबें, देशी वस्तुएँ प्राप्त करनेके पते, बुनन-कला, दर्जीगीरी, खेती, प्रसिद्ध औद्योगिक पुरुषोंकी जीवनियाँ, विविध वस्तुओंके व्यवसाय आदि सर्वसाधारणके हितकर विषयोंका सन्निवेश रहता है। हम इस पत्रका अभिनन्दन करते और इसका घर-घर प्रचार चाहते हैं।

११ अर्थशास्त्र-शब्दावली

सम्पादक, प्रो० दयाशङ्कर दुबे एम० ए०, बाबू गदाधर-प्रसाद अम्बष्ठ और श्रीयुत भगवानदास केला। प्रकाशक, भारतीय-ग्रन्थमाला, वृन्दावन। छपाई साधारण। पृष्ठ-संख्या १५०। मूल्य ॥।)।

भारत सब प्रकारसे पिछड़ा हुआ है। भाषाके विषयमें यह कहाँतक अवनत है, कौन नहीं जानता? यहाँकी माध्यम अँग्रेजी भाषा है। कोई भी ग्रन्थ लिखे, बिना अंग्रेजी शब्दोंके प्रयुक्त हुए वह पूरा होनेको नहीं। इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, विज्ञान आदिके लेखक अँग्रेजीमें ही शिक्षा पाते हैं और इन विषयोंको, कृपापूर्वक हिन्दीमें लिखते समय, पारिभाषिक शब्दोंको अंग्रेजीमें ही लिखते हैं। लाचारी है। कोई प्रामाणिक कोष मिलता नहीं, जिससे सहायता ली जाय। "नागरी-प्रचारिणी-सभा" ने,

१९०६ ई० में, एक हिन्दी-वैज्ञानिक कोष तैयार भी कराया है; पर उससे अब काम चलनेको नहीं; क्योंकि अंग्रेजी नित्य प्रति नये शब्दोंको जन्म देती रहती है। प्रस्तुत पुस्तक इसी सालमें छपी है और अधिक अंशोंमें नये तथा चलते शब्दोंके साथ छपी है, अंग्रेजीके वर्णानुक्रमसे शब्द रखे गये हैं और अर्थ सरल संस्कृत या हिन्दीमें है। पुस्तक अर्थशास्त्रके लेखकोंके लिये परम उपयोगी है।

१२ भारतीय विद्यार्थी-विनोद

लेखक, श्रीयुत भगवानदास केला। प्रकाशक, भारतीय-ग्रन्थ माला, वृन्दावन। पृष्ठसंख्या, १३६। मूल्य ॥≈)।

पुस्तक देश-प्रेमसे ओत-प्रोत है। भाषा, गणित, भूगोल, इतिहास आदि दस विषयोंपर, प्रथम खण्डमें, छोटे-छोटे निबन्ध हैं। सबकी उपयोगिता बताकर लेखकने संक्षेपमें सबका विषय वर्णन किया है। अर्थशास्त्र और आलेख्य वाले प्रकरण अच्छे उतरे हैं। तर्क-शास्त्रवाला निबन्ध कुछ अस्पष्ट-सा है। द्वितीय खण्डके सबके-सब निबन्ध अच्छे उतरे हैं। देश-प्रेम तथा सदाशयताका उपदेश सबमें विद्यमान है। भाषा अत्यन्त सरल है। यह और इसकी बात है कि, लेखकने केवल सब विषयोंपर अपने विचारपूर्ण मत ही दर्शाये हैं; पाठकोंसे किसी विशेष मतको माननेका आग्रह नहीं किया है।

१३ नागरिक-शिक्षा

लेखक, श्रीयुत भगवानदास केला। प्रकाशक, भारतीय-ग्रन्थमाला, वृन्दावन। पृष्ठसंख्या, १४६। मूल्य ॥≈)। छपाई साधारण। आरम्भमें लेखकके चाचाका एक सादा चित्र।

अर्थशास्त्रके विद्यार्थियोंके लिये इक्कीस विषयोंपर इसमें छोटे-छोटे निबन्ध हैं। बातें बहुत संक्षेपमें लिखी गयी हैं। लेखकने जहाँ-तहाँ जो अपनी राय दी है, वह भी मामूली दर्जेकी ही है। फिर भी पुस्तकके कितने ही पृष्ठ महत्त्वपूर्ण हैं। स्कूली लड़के, जो देश-दुनियाकी सभी हालतसे नितान्त कोरे हैं, उनके पढ़ने योग्य इसमें काफी बातें हैं। पुस्तकके अन्तमें, आठ पृष्ठोंमें, पारिभाषिक शब्द भी दिये हुए हैं। इसका क्रम हिन्दीसे अँग्रेजीका है।

—भट्टनायक

भीम !

भारत हीं एँड़नकैं, ऐंड़ न अरीकौं नैंकु,
आएतें अँगोट विधिकैं हूँ रहि जावैगो।
चूर ह्वै हैं "दुःखित" गरूर आततायिनकौं,
धरहरि धीरनकौं धूरि मिल जावैगो।

छायगोई चटपटी चुहूँटी चहूँधा नैंकु,
छिनमों छितींकौ छापि ढेरि लगि जावैंगो।
शत्रुनकौं झुण्डमों गिरैंगों खण्ड-खण्ड मुण्ड,
भीमकैं रुठेतें यमराज रुठि जावैंगो।

—श्रीमद्भागवतप्रसाद वर्मा

सामयिक साहित्य

१ यूरोपमें बौद्ध भिक्षुओंका दूसरा दल

"यूरोपमें बौद्ध धर्मके प्रचारार्थ सर्वप्रथम बौद्ध भिक्षुओंका एक दल लङ्कासे गया था। इस बार भी उनका दूसरा दल लङ्कासे ही, गत २७ जुलाईको, लन्दन पहुँचा है। इस दलमें त्रिपिटकाचार्य प० राहुल सांकृत्यायन और रेवरेंड आनन्द कौशल्यायनके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। सांकृत्यायनजी बिहार प्रान्तमें पहले वर्तमान असहयोग-आन्दोलनके एक प्रमुख कार्य-कर्ता थे। बौद्ध धर्म स्वीकार करनेके बाद इन्होंने धर्मार्थ जो-जो महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं, उनमें बुद्धगयाके महाबोधि मन्दिरके पुनरुद्धारमें विशेष परिश्रम किया है। पाली-भाषाके प्रकाण्ड पण्डित तो ये हैं ही, संस्कृत, चीनी तथा तिब्बती भाषाका भी इन्हें अच्छा ज्ञान है। बौद्ध भिक्षुके रूपमें लाशा (तिब्बत) में जाकर बौद्ध-धर्म-ग्रन्थोंका अध्ययन और संग्रह करनेका सुअवसर भी इन्हें मिल चुका है। बौद्ध धर्म-के दोनों रूपोंका जितना अच्छा इनका अध्ययन है, उतना शायद ही किसी भारतीय भिक्षुका होगा। ज्योतिष् और गणितके कितने ही महत्त्वपूर्ण आविष्कार भी इन्होंने किये हैं। रेवरेंड आनन्द भिक्षुने लखनऊ-विश्वविद्यालयसे बी० ए० पास कर चुकनेपर बुद्ध-धर्मकी दीक्षा ली थी। लंकाके विद्यालङ्कार कालेजके प्रिंसिपल वेन० एल० धम्मानन्दसे इन दोनों बौद्ध पण्डितोंने "त्रिपिटक"का अध्ययन किया है।

"सारे यूरोपमें भ्रमण कर बुद्ध-धर्मका प्रचार करना ही इस दलका ध्येय है।"

—"महाबोधि"

२ लिखाईका पुरस्कार

"भारतमें किसी लेखकको सौ, दो सौ या चार सौ रुपया, उसकी किसी पुस्तकके पुरस्कार-स्वरूप, मिल जाता है, तो वह अपनेको बड़ा भाग्यवान् समझने लगता है। भारतवर्षकी अपेक्षा दूसरे देशोंमें इस प्रकारका पुरस्कार कई गुना अधिक दिया जाता है। सबसे बड़ा पुरस्कार "नोबुल प्राइज़" लगभग १ लाख रुपयेका है। पुराने ज़मानेके यदि इस प्रकारके पुरस्कारकी खोज निकाला जाय, तो हमें उसके जो उदाहरण मिलेंगे, उन्हें देखकर दंग हो जाना पड़ेगा। पोर्तगालके कवि और इतिहास-लेखक जुआव डी बारसको (सन् १४६६ से १५७०) "क्रोनिका डी एम्परेडार क्लेरेमण्डो" (*cronica de Emoerador claramundo*) लिखकर बादशाह तृतीय जुआवको समर्पित की थी। पुरस्कार-स्वरूप बादशाहने उसे ब्रेजिल (दक्षिण अमेरिका)के अन्तर्गत मैरनहाओ नामक समूचा प्रान्त दे दिया था। इस प्रान्तका वर्गक्षेत्र १७००० वर्ग मील था। कहा जाता है, इतना भारी पुरस्कार आजतक किसीको नहीं मिला।"

× × × ×

३ संसारके सर्वश्रेष्ठ मालदार लेखक

"वे कौनसे लेखक हैं, जो सबसे अधिक कमाते हैं? एडगर वैलेसने अपने जीवनमें १० लाख पौंड कमाये; अतः वही सबसे धनाढ्य लेखक माने गये थे; परन्तु अब

ज्ञात हुआ है कि, सभी स्थानोंके लेखकोंकी अपेक्षा ब्रिटिश लेखक अधिक धनवान् हैं। वह हैं 'नोयल कवर्ड', जिनकी आयु केवल ३२ वर्ष है और आय ५० हजार पौंड वार्षिक है। उक्त ब्रिटिश लेखकका यह दावा है कि, मेरी आगामी १० वर्ष पर्यन्तकी आय ५० हज़ार पौंड वार्षिकसे कदापि कम न होगी।

"४ वर्ष पूर्व सबसे अधिक आमदनी मि० बर्नार्ड शाकी थी, उनसे कम किपलिंगकी और उनसे कम सर जेम्सबेरीकी—मगर, अब तो यह क्रम बिल्कुल ही बदल गया और इस प्रकार है—नोयल कवर्ड ५० हज़ार पौंड, बर्नार्डशा ३५ हज़ार पौंड, ए० ए० मिलनी ३०हज़ार पौंड, रुडयार्ड किपलिंग २५ हज़ार पौंड, सर जेम्स बेरी २५ हज़ार पौंड। ए० ए० मिलनीकी पुस्तकें, जो साधारणतः बच्चोंको पढ़ाया जाती हैं, अमेरिकामें खूब खप रही हैं।

"उक्त लेखकोंके अतिरिक्त ६ अन्य विख्यात लेखक विद्यमान हैं, जिनकी वार्षिक आय केबिनेटके मिनिस्टरोंसे किसी प्रकार भी कम नहीं है। वे भी १५-२० हज़ार पौंड सालाना कमाते हैं। उनके नाम हैं—सोमरसेट मौघम, पी० जी० वुडहाउस, ए० एस० एम० हिचन्सन, वार्विक डीपिंग, फिलिप्स ओपनहीम, जौन गाल्स वर्दी, गिलबर्ट, फ्रेक्को, बेन ट्रावर्ष, सर फिलिप गिब्स। इन लोगोंकी भी १०००० पौंड वार्षिकसे कम आय नहीं है। आर० सी० शेरिफ़को *Journey's End* नामक पुस्तक लिखनेके बदले ५० हजार पौंड मिले हैं।

"नोयल कवर्डको *Bitter Sweet* (खट्टा-मीठा) नामक पुस्तक लिखनेका इनाम पहली बार ३० हज़ार पौंड मिला; परन्तु जब अमेरिकाने इस पुस्तकको अपना लिया, तब उन्हें १ लाख पौंड मिला। 'बेन्हूर' नामकी पुस्तक लिखनेकी कीमतमें ल्यु वैलेसको ८० हजार पौंड मिले हैं। चित्र-पटके लिये *All quiet on the western Front* नामक पुस्तक लिखनेका मूल्य रिमार्कको १ हज़ार पौंड मिल सकते हैं। स्त्री-लेखकोंकी आय कुछ बहुत ज्यादा नहीं है। उनके पाठक बहमी होते हैं। इंगलैंडमें आज दिन सबसे बढ़ी-चढ़ी लेखिकाओंके नाम रोज मैकोले शीलिया केस्मिथ, एमी एस० स्वान, ईथल मैनिंग और क्लिमन्स डेन हैं। इन लेखिकाओंमेंसे किसीकी भी आय अमेरिकाकी फेनो हर्स्टके बराबर नहीं है।"

× × × ×

४ चीनके पुस्तकालय

"चीनियोंको पढ़नेका बड़ा शौक है। वहाँ प्रत्येक नगरमें अनेक वाचनालय और पुस्तकालय हैं। अधिकतर वाचनालय चौराहोंपर स्थित हैं। वहाँके पुस्तकालय अधिकतर गश्ती होते हैं। वे २ फीट ऊँचे, २ फीट लम्बे और एक फीट चौड़े होते हैं। जब कभी पुस्तकाध्यक्ष एक मुहल्लेसे दूसरेको जाना चाहता है, वह अपना सामान समेटकर गश्ती दूकानदारोंकी भाँति चल देता है और पुस्तकालय दूसरी जगह पहुँच जाता है। ऐसे पुस्तकालयोंकी पुस्तकें पढ़नेके लिये वहाँकी जनताको कुछ देना नहीं पड़ता है। इससे पाठकोंको बड़ी सुविधा होती है। लोग स्वप्नमें भी पुस्तकें खरीदनेकी बात नहीं सोचते। पुस्तकें भी इतनी छोटी होती हैं कि, वे उन्हें वहीं खड़े-खड़े ही समाप्त कर देते हैं। घर ले जानेकी बहुत कम आवश्यकता होती है। जब एक मुहल्लेके निवासी अपने यहाँके पुस्तकालयकी पुस्तकें समाप्त कर लेते हैं, पुस्तकाध्यक्ष उस पुस्तकालयको दूसरी जगह ले जाता है और दूसरा पुस्तकाध्यक्ष अपनी पुस्तकें लेकर आ जाता है। पढ़नेके शौकीनोंको बराबर नया पुस्तकें मिलती रहती हैं।"

—"प्रताप"

५ अरबकी सभ्यतापर भूगोलका प्रभाव

"अरब-जातिमें राष्ट्रीयता तथा एकता नहीं बढ़ी है। पुराने समयमें प्राकृतिक तथा भौगोलिक स्थिति राष्ट्रीयताके मार्गमें बाधक थी; परन्तु नवीन आविष्कारोंने समस्त रुकावटोंक पथमेंसे हटा दिया है।

"अरब देशकी भौगोलिक स्थितिने सदियोंतक यहाँपर भेद-भाव क़ायम रखा; परन्तु साथ-ही-साथ यह सदा इनमें साहसका प्रादुर्भाव करती रही है। नक़शेमें हम अरब देशकी स्थिति पूर्ण-रूपसे देख सकते हैं। अरबी लोग एक बहुत बड़े विस्तारमें दूर-दूर बसे हुए हैं—दक्षिणी अरबसे कुर्दिस्तानकी पहाड़ी और आर्मीनियातक और दजलासे भूमध्य सागर और लाल सागरतक साइनाई प्रायद्वीपके अतिरिक्त सभी जगहें (जहाँ अरब बसे हुए हैं) पहाड़ी हैं—सिरिया, पेलेस्टाइन, हजाज़, असीर, यमन, अदन, हदरामात, ओमन, हासा, कोवेत और इराक़ सभी पहाड़ी हैं। सभीमें एक दूसरेसे राजनीतिक तथा सामाजिक विषयोंपर मतभेद है! इसका मूल कारण यह है कि, सभी रेगिस्तानके निकट हैं। यह बाधाएँ राजनीतिक एकताको रोकती रही हैं। इन्हीं बाधाओंकी वजहसे जातीयताका भाव स्थगित रहा है।

"प्रतिवर्ष, हर पीढ़ीमें, अरबके रेगिस्तानी लोग यहाँसे छट-छटके उन सुदूर देशोंको जाते रहे हैं, जहाँ कि, उन्होंने दृढ़ताके साथ अरबकी सभ्यताका प्रचार किया है। ये जातियाँ घुमक्कड़ बद्दू लोगोंसे दबावके कारण अपने मुल्कमें नहीं ठहर सकीं। अनेक आक्रमणोंके होनेपर भी सिरिया, पेलेस्टाइन और इराक़में अरबी सभ्यता बनी रही; क्योंकि नीचे देशवाले सदा इन देशोंमें उमड़ते रहे हैं। बाहरकी जातियाँ यहाँकी जातियोंमें मिल गयी हैं। पर इससे यह प्रतीत होता है कि, अरबी जातिमें अपने देशको सम्हाल रखनेकी शक्ति है।

"यद्यपि इस देशके अरबी लोग यहाँकी सभ्यताको बनाये हुए हैं; परन्तु यही लोग राजनीतिक एकताके मार्गमें बाधक हैं। भौगोलिक स्थितिके कारण इन लोगोंमें छोटी-छोटी जातियाँ बन गयी हैं। वे एक दूसरेको सहायता देनेमें असमर्थ हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि, बाहरकी बड़ी जातियाँ इनको जीत लेती हैं।

"१९१४ के प्रथम राष्ट्रीय संग्राममें केवल यमन-जाति ही सिरिया और मेसोपोटामियामें तुर्कोंके खिलाफ़ रही। बाल्कनयुद्ध तथा तुर्कोंके संग्रामने उनको मुक्तिके पथपर अग्रसर कर दिया। बलवा फैलानेके लिये सोसाइटियाँ स्थापित हुईं। सिरियाके नेताओंने तुर्कोंके खिलाफ़ फ्रांससे सहायता माँगी। मेसोपोटामियाके अरब तुर्कों तथा यूरोपियनों, दोनोंसे ही डरते थे। पश्चिम देशमें जल्द ही इस क्रान्तिका नाम "सिरियाका राष्ट्रीय संग्राम" पड़ गया। इस संग्राममें सिरिया और पेलेस्टाइन दोनों ही शामिल थे। ईसाई तथा मुसलमान दोनोंने ही सहायता दी। यह क्रान्ति केवल एक ही गिरोहकी थी। मुसलमानोंने सहायता इस कारण दी कि, यह लोग सहायताके लिये यूरोपपर आसरा रखते थे, न कि अरबपर, जो कि केवल धार्मिकतामें लिप्त था। बड़ी लड़ाई शुरू होनेपर शरीफी आन्दोलनकी उत्पत्ति हुई, जिनके नेता फ़ेसल और टी० ई० लॉरेन्स थे। मेसोपोटामिया और सिरियाने बहुत सहायता दी। इन सबके होनेपर भी यह रेगिस्तानी आन्दोलन कहलाता था। इसके कारण सिरियावालोंमें आपसमें मतभेद हो गया और यहाँकी क्रान्तिको कुछ समयके लिये धक्का पहुँचा। क्रिस्तान शरीफी आन्दोलनसे डरते

और नरम दलवाले मुसलमान मक्काकी हुकूमत पसन्द नहीं करते थे और कट्टर मुसलमानी राज्य चाहते थे।

"नेता लोग सिरियाके आन्दोलनका पुनरुद्धार चाहते थे; परन्तु रेगिस्तानवाले साम्प्रदायिक आन्दोलनको नहीं चाहते हैं। बदूदू लोगोंकी जीत इतनी ज्यादह अच्छी नहीं हुई, जैसी कि पहले समयोंमें। लड़ाईके बाद वह बातें जाती रहीं, जो नगरोंमें एकताके मार्गमें बाधक थीं। हवाई जहाज़ों और मोटरोंने सफ़रमें सुगमता कर दी है। यात्रामें कम समय खर्च होता है। मोटरोंने पेलेस्टाइन, सिरिया और मेसोपोटामियाको मिला दिया है। यहाँकी स्थितिपर रेगिस्तानका असर जाता रहा है। हवाई जहाज रेगिस्तानवालोंके आक्रमण रोक सकते हैं।

"अरब देशकी परिस्थिति बदल गयी है। भौगोलिक रुकावटें जीत ली गयी हैं और राष्ट्रीयताका खूब प्रचार हो रहा है। इसलिये यहूदी लोग यदि पेलेस्टाइनमें रहना चाहते हैं, तो उनके लिये इस बातकी आवश्यकता है कि, वह अरबोंसे समझौता कर लें। यदि वे ऐसा नहीं करते हैं, तो यह उनके लिये अत्यन्त ही हानिकारक होगा। नेताओंको चाहिये कि, वे अपने विरोधीसे अधिकसे अधिक जल्दी समझौता कर लें।" —"भूगोल"

६ अरब

"एशिया महादेशके दक्षिण-पश्चिम और हिन्दुस्तानके सीधे पश्चिममें जो प्रायद्वीप है, उसे 'अरब' कहते हैं। उत्तरमें 'शाम', दक्षिणमें अरब समुद्र, पूरबकी ओर अम्मान समुद्र तथा फारसकी खाड़ी और पश्चिममें लाल सागर है।

"इस देशकी लम्बाई १५०० मील तथा चौड़ाई लम्बाई-से आधी है। कहते हैं कि, इस देशमें ४२ शहर हैं तथा इसकी जन-संख्या एक करोड़के लगभग है। इस देशमें अधिकतर मरु-भूमि और पहाड़ियाँ हैं, जिनमें नाम मात्रकी भी हरियाली नहीं है। यही कारण है कि, इसको अरब × कहते हैं। "अरबा" इब्रानी भाषामें समथल भूमिको कहते हैं। यहाँ भयानक गर्मी पड़ती है। कारण कि, एक तो यह विषुवत्-रेखाके निकट ग्रीष्म कटिबन्धमें स्थित है, दूसरे मरुभूमि है। यहाँके पर्वतोंपर कभी सब्ज़ी नहीं जमती और जमे भी कैसे, भूमिमें नर्मी नामकी नहीं। ठंढी वायुके बदले सदा लू चलती है। पेड़-पौधोंमें बबूल और खजूर ही प्रधान हैं, जो कहीं-कहीं पहाड़ोंकी चट्टानोंमें दीख पड़ते हैं, जिनका पालन ओस वा कभी-कभी होनेवाली कछारकी वर्षापर निर्भर है। इस देशमें जलकी बड़ी कमी है। मरुभूमिमें कहीं-कहीं बारह मंजिल * तक पानी नहीं मिलता। यहाँ बहुधा आँधी आया करती है और वह प्रायः इस वेगसे आती है कि, मरुभूमिमें समुद्रकी लहरोंकी भाँति बालुकाओंकी लहरें उठती हैं। इससे अधिकतर यात्रियोंको कष्ट भोगना पड़ता है। कभी-कभी झुंड-के-झुंड यात्री इसमें नष्ट हो जाते हैं। यह मरुभूमिका तूफ़ान समुद्रके तूफ़ानसे अधिक भयानक समझा जाता है। वहाँ डूबतेको तिनकेका सहारा भी मिल सकता वा मिलनेकी आशा की जाती है; पर इस बालुका-समुद्रमें डूबनेवालेको वह भी सहारा नहीं—चारों ओर निराशा-ही-निराशा रहती है।

"परन्तु इस देशका वह भाग, जो हिन्द महासागरके उपकूलपर पड़ता है, बहुत ही हरा-भरा है और यहाँकी जल-वायु नाति-शीतोष्ण सुखद तथा स्वास्थ्यप्रद है। यहाँ सब प्रकारके सुगन्धित मसाले पैदा होते हैं, जिनको लोग सु-दूरके देशोंमें भेजते हैं। सारांश यह कि, सारे अरबको तीन भागोंमें विभक्त कर सकते हैं—१ अरबकी मरुभूमि, २ अरबके पार्वतीय भू-भाग और ३ अरबकी हरी भूमि। परन्तु आधुनिक भूगोलके जानकारके निकट अरब पाँच भागोंमें विभक्त है,

× 'अरब' नामका एक और कारण यह है कि, हजरत जहूदके वंशमें यारब नामक एक व्यक्ति थे, जिन्होंने अरबको बसाया था। * ३॥ कोसका मंजिल।

जिनमें 'यमन' और 'हिजाज' सबसे विख्यात हैं। यद्यपि सांसारिक शानशौकतके विचारसे यमन प्रसिद्ध है; पर तीर्थस्थान और पवित्रताके लिहाजसे हिजाजकी प्रसिद्धिको यमन नहीं पा सकता। यहाँके घोड़े बहुत प्रसिद्ध हैं। मुसलमानोंके दोनों पवित्र स्थान, मक्का और मदीना, इसी भूभागमें पड़ते हैं। इन दोनों पवित्र स्थानोंके बीच २७० मीलका अन्तर है। मदीनेका प्राचीन नाम 'यसरब' है। जब हज़रत मुहम्मद वहाँ रहने लगे, तब वह 'मदीन-तुन्नवी' नामसे विख्यात हुआ।

मक्केको 'बतहा' भी कहते हैं। 'बतहा'का अर्थ भूमिका केन्द्र है। इसको सारे भूभागका केन्द्र मानते हैं। यहाँकी भूमि पथरीली और पानी खारा है। यहाँ हरी दूब और पौधे नहीं जमते। पशुओंके चरनेके लिये चारागाह शहरसे दूरपर है। 'जिद्दा' और 'ताअफ' (प्रसिद्ध नगरों) से मेवे इत्यादि बिकनेको आया करते हैं। यहाँके निवासियोंको जब इस भूमिकी दशाको देख अपना भोजन आदि प्राप्त करनेकी कुछ भी आशा न रह गयी, तब विवश हो उन्होंने युद्ध और व्यापारको अपना मुख्य कर्त्तव्य ठहराया। व्यापारसे उनको बहुत लाभ हुआ। अदन और अम्मामके बन्दरगाहोंसे और यमनके बाजारोंसे बहुमूल्य और सुगन्धित मसाले ले जाकर शाम और बसरेमें बेचते थे और वहाँसे सब प्रकारके गल्ले और व्यापारकी वस्तु खरीद लाते थे। अरबके लोग उस समय खूब व्यापार करते थे तथा जहाज भी चलाते थे। लाल सागरसे फारसकी खाड़ीतक जहाजपर आते थे। अनुकूल वायुकी साहायता पाकर वे भारततक भी दौड़ आते थे। सारांश यह कि, इसी व्यापारसे वे अपना जीवन भली भाँति निर्वाह करते थे।

"अरब-निवासी वंश और खानदानके विचारसे कई भागोंमें बँटे थे, जो 'कबीले' कहलाते थे। मक्के और उसके निकटवर्ती ग्रामोंमें भी कई कबीले थे। उनमें एक कबीला कुरशैके नामसे प्रसिद्ध था। इस कबीलेके लोग बहादुरी और उदारता तथा व्यापारमें और जातियोंसे बढ़े-चढ़े थे। इन्हीं लोगोंके हाथमें मक्केका शासन था।" —"बालक"

दीनबन्धु

श्रीमती कलावती देवी श्रीवास्तवा

नहीं दीख पड़ते हो अब तुम,
नहीं सुनाते कोई राग।
किस आलोक-लोकमें बैठे,
आज पसारे हो अनुराग !!

आज दशा भारतकी कैसी,
टुक अवलोको तो हे नाथ !
प्राणोंसे प्यारी ये गौएँ,
पड़ी हुई हैं किसके हाथ !!

होते अत्याचार अनेकों,
बिना तुम्हारे हे भगवान् !
देखो पूजा भी करनेमें,
नित होते हैं हम बलिदान ॥

हाय कहाँ हम ढूँढ़ें तुमको,
बिलख रहे हैं हम जी छोड़ !
किस निर्जन वनमें बैठे हो,
दीनबन्धु ! दीनोंको छोड़ !!
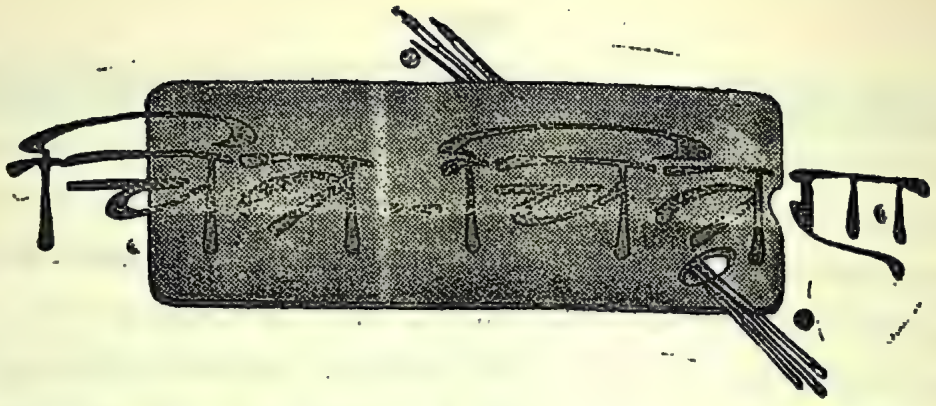
अर्जुन और उत्तर

जुएमें जब कौरवोंसे पाण्डव हार गये थे, तब एक शर्तपर उन्हें छुट्टी मिली थी—वे बारह बरसोंका लम्बा वनवास और एक बरसका अज्ञातवास निर्विघ्न समाप्त कर दें। ऐसा करने पर उनका आधा राज्य सही-सलामत लौटा दिया जायगा।

पाण्डवोंने कठिन परिस्थितियोंका सामना करके वनवास-की कड़ी अवधि बिता डाली। सुतरां अज्ञातवासका जब समय आया, तब उन्हें बड़ी सोच हुई; क्योंकि अपनी सुविधाके अनुकूल गुप्त स्थान उन्हें मिल ही नहीं रहा था, जहाँ पाँचो भाई इकट्ठे होकर रहते। वे छिट-फुट रहना कुबूल नहीं करते थे।

आखिर उन्होंने विराट्की राजधानीको अपने कामका चुना। वहाँ कौरवोंकी पहुँच नहीं थी। उन्होंने अपने-अपने वेश बदलकर विराट्की नगरीमें प्रवेश किया। उस दरबारमें सबको काम मिल गया; क्योंकि सब-के-सब गुणी थे।

हाँ, अर्जुनको अपना रूप बदलते समय बड़े कष्टका सामना करना पड़ा था। वे यदि धनुर्धारी होकर जाते, तो तुरंत पहचान लिये जाते; क्योंकि उनका शौर्य सदा अपरिच्छन्न रहता था। दूसरा और कोई छद्म-वेश वे धारण कर ही नहीं सकते थे; क्योंकि कंधोंपर प्रत्यञ्चाकी रगड़से अनगिनत दाग पड़ चुके थे। यही सब सोच-विचार कर उन्होंने अपना वेश स्त्रीका, बृहन्नलाका, बनाया। वे अन्तःपुरमें विराट्की बेटी उत्तराको गन्धर्व-विद्याकी शिक्षा देने लगे।

इस तरह अज्ञातवासका समय सकुशल बीत गया। ठीक इसी बीच कौरवोंने अपनी सेना सजाकर विराट्के ऊपर धावा बोल दिया। विराट् भी रणभूमिमें उतरकर अपनी बहादुरी दिखाने लगे। उनकी सब सेना उनके साथ थी। इसी समय मौका पाकर कौरवोंकी दूसरी टुकड़ीने उनकी गौओंको आत्मसात् कर लिया।

विराट्के नगरमें हाहाकार मच गया। कोई भी वीर नहीं रहा; जो गौओंको छुड़ा लावे। उस क्षण 'उत्तर' शीश महलमें बैठकर हेकड़ी भर रहा था। आवेशमें आकर वह अकेला ही गौओंको छुड़ाने चल पड़ा; परन्तु उसे कोई सारथि नहीं मिल रहा था। बृहन्नलाने उसकी इस कठिनाईको दूर करना चाहा। पहले तो उत्तर स्त्रीको सारथि बनानेमें झेंपा; परन्तु पीछे बृहन्नलाको साथ ले जाना उसने कुबूल कर लिया।

उत्तर गया तो बड़ी खुशी-खुशीसे लड़ने; पर कौरवोंकी विशाल सेनाको देखते ही उसके छक्के छूट गये; घिग्घी बँध गयी। वह उलटे पैर वापस होने लगा। पर बृहन्नला उसे ऐसा करने देना नहीं चाहती थी। बहुत आरजू-मिन्नत करनेपर भी उत्तर बृहन्नलाको राजी नहीं कर सका। अन्तमें वह रोने लगा। तब बृहन्नलाने अपना असली रूप प्रकट कर दिया और कहा कि, "मैं अर्जुन हूँ। तुम निर्भय हो जाओ। चलो, मैं अपने अस्त्र ले आऊँ, उस श्मशानवाले बरगदके पेड़में बँधे हैं। तुम्हारे ये अस्त्र मेरे योग्य नहीं।"

चित्रमें ये ही भाव व्यक्त हैं। उत्तरने अस्त्रोंको पेड़से उतारा है। अर्जुन उसे आनन्दविस्फारित नेत्रोंसे देख रहे हैं।

—साहित्याचार्य "[illegible]"

सम्पादकीय मन्तव्य

१ नेपालके महाराजका कैलास-वास

भारतमें अनेक स्वतन्त्र हिन्दूराज्य हैं; सनातन धर्मके लिये कितने ही राज्य वहुत कुछ त्याग करनेवाले भी हैं; परन्तु जो स्वतन्त्रता और सनातनधर्म-प्रेम नेपालराज्यमें है, वह कहीं नहीं। नेपालके महाराजा स्वातन्त्र्य और सनातनधर्मके लिये सर्वस्व त्याग करनेको तैयार रहते हैं । नेपालमें सनातनधर्मकी छोटी-सी-छोटी बातकी भी वड़ी तत्परतासे रक्षा की जाती है। यहां दूसरे धर्मका प्रचार नहीं किया जा सकता। गोवध करने वालेको प्राण-दण्ड दिया जाता है ।

नेपालके सभी महाराजा (प्रधान मंत्री) और अधिराज धर्म-प्राण होते हैं। उन्हींमें स्व० श्रीमदातिप्रचण्डभुजदण्डेत्यादि श्री ३ प्रोज्ज्वल नेपाल-ताराधीश महाराज भीम शमशेर जंग वहादुर राणा थे। आप बड़े ही स्वाधीनचेता, धर्मपरायण, वीर-व्याघ्र और उन्नति-प्रिय थे। अपने भाई महाराज चन्द्र शमशेर जंग बहादुर राणाकी मृत्युके अनन्तर महाराज भीम शमशेर जंग वहादुर १९२९ के नवम्बरमें, मार्शल सुप्रीम कमांडर-इन-चीफ और प्रधान सचिवकी हैसियतसे, अपने बड़े भाईके स्थानपर प्रतिष्ठित हुए थे। आप पहले २८ वर्षोंतक नेपालके चीफ कमांडर और अपने बड़े भाईके सहायक थे। जर्मन महायुद्धमें जो दो लाख गोरखोंने विश्व-विश्रुत वीरता दिखायी थी, उसका अधिकांश श्रेय आपको ही है। आपने नेपालसे दास-प्रथा उठा दी थी । प्रजाकी उन्नतिके आपने कितने ही कार्य किये और आपने तिब्बतसे घनिष्ठ मित्रता स्थापित की थी। आप गत दिसम्बरमें कलकत्ते आये थे । आपको जी० सी० एम० जी० की उपाधि प्रदान कर ब्रिटिश सरकारने आपका सम्मान किया था। इसके पहले आपको के० सी० एस० आई० और के० सी० वी० आर० की उपाधियाँ मिल चुकी थीं । चीनी और तिब्बती सरकारोंसे भी आपको उच्च कोटिकी उपाधियाँ मिली थीं। तीन वर्षके अपने शासन-कालमें ही आपने नेपाल-राज्यकी बड़ी प्रतिष्ठा बढ़ायी थी । कण्ठरोग होनेसे पहली सितम्बरकी रातको डेढ़ बजे आपका शरीर-पात हो गया। आपके उत्तराधिकारी महाराज युद्ध शमशेर जंग वहादुर राणा के० सी० आई० ई० आदि हुए हैं । हम आपके शोकाकुल और वीर कुटुम्बसे समवेदना प्रकट करते और आपकी आत्माकी मुक्तिके लिये भगवान् शंकरसे प्रार्थना करते हैं

२ वैदिक हरियूपीया और हरप्पा

आर्योंके निवासस्थानके सम्बन्धमें बड़ा मतभेद है। स्काडेनेविया, पोलैंड, उत्तर मेरु, मध्य एशिया, तिब्बत, भारतवर्ष आदि कितने ही देश आर्योंके आदि स्थान माने जाते हैं और ऐसे विचार-वैभिन्य रखनेवाले अनेक भारतवासी भी हैं। परन्तु अधिकांश सनातनी विद्वानोंके मतसे आर्योंकी आदि भूमि भारत ही है—वे कहीं बाहरसे नहीं आये थे—वे विदेशी नहीं थे। इस विचारके प्रधान प्रचारक पूनेके श्रीयुत नारायण भवनराव पावगी और

कलकत्तेके स्व० प० दुर्गादास लाहिड़ी हैं। इनके विचारोंका अनुधावन करनेवाले असंख्य सनातनी हैं। कितने ही तो वेदोंमें किसी भी विदेशी जाति, देश, नद-नदी आदिके नाम आना भी नहीं मानते। कुभा (काबुल नदी) को भी लोग भारतमें ही मानते हैं—उनके मतसे कुभा "काबुल" नामकी नदी नहीं है। ऋग्वेदके हरियूपीया शब्दके सम्बन्धमें भी खूब झगड़ा है। कितने ही हरियूपीयाको मध्य एशिया और फारसकी नदी मानते हैं और कितने ही स्थान-विशेष। मैक्डानल और कीथने "वैदिक इंडेक्स" में इस शब्दपर अच्छा विचार किया है। लाहिड़ी महाशयने भी "पृथिवीर इतिहास"में इसपर बहुत लिखा है। आज हम, इस शब्दपर, प्रसिद्ध ऐतिहासिक श्रीयुत विनोदविहारी राय वेदरत्नका विचार सुनाना चाहते हैं। आपने अपने त्रैमासिक पत्र "*Antique Review*" (अप्रेल १९३१) में लिखा है—

"वैदिक कालमें हरियूपीया नामक एक नगरी थी, जहाँ चयमनके पुत्र राजा अभ्यवर्ती और वरषिकके पुत्रोंमें घनघोर युद्ध हुआ था तथा जिसमें इन्द्रने अभ्यवर्त्तीका पक्ष लेकर वरषिक-पुत्रोंको मार डाला था, जो हरियूपीयाके पूर्व और पश्चिममें रखे गये थे (ऋ० ६।२७।५)।

"दूसरी लड़ाई छिड़ी थी परुष्णी (रावी)नदीके तटपर, चयमनके पुत्र कवि और महान् आर्य-आक्रमणकारी सुदासके बीच (ऋ० ७ १८।८)। इस युद्धमें भी इन्द्रने, सुदासका पक्ष लेकर, कविको मारा था।

"इन दो वैदिक उल्लेखोंसे यह निष्कर्ष निकलता है कि, चयमनके दोनों पुत्र—अभ्यवर्त्ती और कवि—हरियूपीयाके राजा थे और उन्होंने इन दोनों आक्रमणकारियोंका सामना किया था। हरियूपीया नगरी सम्भवतः परुष्णी नदीके ही तटपर थी। यह हरियूपीया रावी नदीके तटपर मिला हुआ वर्तमान हरप्पा (जि० मान्टगोमरी, पंजाब) ही हो सकती है। सम्भव है, कविके साथ युद्ध करते समय इन्द्रने हरियूपीया नगरी (या वर्त्तमान हरप्पा) का ध्वंस कर डाला हो और सुदासके लिये किसी दूसरे स्थानमें एक नये नगरका निर्माण किया हो (७।२०।२)।

"सुदास राजा पुरुकुत्सके पुत्र राजा त्रसदस्युका समकालीन था (७।१९।३)। यदु और तुर्वसु भी इसीके समयके थे (७।१९।६; ४।२०।१७)। राजा त्रसदस्युका शासनकाल ई०स०से ५३५८ वर्ष पूर्वके लगभग माना गया है। उसके समयमें, प्रयागके पूर्वमें, एक समुद्र था (मनुसंहिता २।२१—२२)। वह समुद्र अब डायमण्ड हारबरके दक्षिणमें है। मालूम होता है कि, राजा अभ्यवर्त्ती और उसके भाई कवि, दोनों ही, हरियूपीया या हरप्पामें उन्हीं दिनों राज्य करते थे। अभ्यवर्त्ती सम्राट् था (६।२७।८)। भारद्वाज ऋषिने, दानमें, उससे कई बार गायें पायी थीं। इससे साफ प्रकट होता है कि, भारद्वाज ऋषि उसके पुजारी थे और वह पृथु-वंशीय आर्य (६।२७।८) अथवा पर्थियाका निवासी था। इसलिये कहा जा सकता है कि, ई०स०से पाँचवें हजार वर्ष पूर्वमें हरियूपीया या हरप्पा एक आर्य-सम्राट्की राजधानी थी; वहाँ सुदास और आर्योंके बीच घमासान युद्ध हुआ था (७।८३।१)।

"अब इसमें कुछ भी सन्देह नहीं रहा कि, वेदकालीन हरियूपीया या हरप्पा आजसे ६९३२ वर्ष पूर्व अनार्य सभ्यताका नहीं, बल्कि आर्य-सभ्यताका केन्द्र था। यह भी सम्भव है कि, हरप्पा नाम हरियूपीयाका अपभ्रंश हो; जैसा कि, भट्टपल्लीका भाटपारा, मुम्बी या मुम्बईका बम्बई, गुर्जरका गुजरात, पाटलिपुत्रका पटना, साकेतका सहेट आदि हुआ है। फलतः हमारे विचारसे हरप्पा ही हरियूपीया है।"

३ अशोकके नये अभिलेख

ऐतिहासिक कालके भारतके सबसे बड़े सम्राट् अशोकके कितने उत्कीर्ण लेख हैं, इसका ठीक-ठीक पता नहीं। अशोकके ३० लेख तो ऐसे हैं, जिनपर यूरोप, अमेरिका और भारतवर्षमें अत्यधिक चर्चा हो चुकी है। परन्तु इनके सिवा भी अशोकके कितने ही ऐसे अभिलेख मिलते जा रहे हैं, जिनका पता बहुत कम लोगोंको है। ऐसे ही दो नये लेखोंकी चर्चा सितम्बरके "महाबोधि"में की गयी है। लिखा है—

"निजाम-राज्यके प्रमुख जागीरदार नवाब सालार जङ्ग बहादुरकी जागीरमें—कोफल नगरके आसपास—अशोकके दो आज्ञा-पत्र अभी हालमें मिले हैं। इनप्पा नामके एक कुम्बीको यह दोनों ब्राह्मी शिलालेख मिले थे; एक गवीमाथ-शिलाखण्डमें, दूसरा पालकीगुण्डु नामक पहाड़ीपर। पढ़सके प० नारायण राव शास्त्रीको दोनों शिलालेख उन्होंने दिखलाये; किन्तु उनके न पढ़ सकनेपर निजाम सरकारके पुरातत्त्व-विभागमें उन्होंने लेखोंको दे दिया।

"वहाँसे यह शिला-लेख लन्दन-विश्वविद्यालयमें प्रोफेसर आर० एल० टर्नरके पास भेजे गये थे। उन्होंने बतलाया कि, दोनों शिलालेख मूलतः एक-से ही हैं; और, रूपनाथ, सहसराम, बैरत, ब्रह्मगिरि, सिद्धपुर, जतिङ्गरामेश्वर और मस्कीमें अशोकके छोटे-छोटे जो शिलालेख मिले हैं, उनके ही वे कुछ भिन्न पाठान्तर हैं।

"गवीमाथका शिलालेख तो अभी बिलकुल स्पष्ट है। प्रोफेसर साहबने अशोकके अन्य शिलालेखोंकी दृष्टिसे इसके शब्दोंका विशेष अध्ययन किया है। पालकीगुण्डु पहाड़ी (जो गवीमाथसे दो मीलपर है) के शिलालेखों के कुछ ही अक्षर सुपाठ्य हैं, जिनसे पता चला है कि, दोनों शिलालेख मूलमें एक-से ही थे। दोनों शिलालेख उत्तरीय और सिद्धपुर-पाठान्तरोंसे मिलते-जुलते हैं। बैरत (*Bairat*) शिलालेखके अक्षर तो बहुत अस्पष्ट हैं; किन्तु जो कुछ भी शब्द पढ़े जा सकते हैं, उनसे पता चलता है कि, वह गवीमाथके शिलालेखसे, स्वर तथा व्याकरण-सम्बन्धी विभिन्नता रहते हुए भी, शब्दशः मिलता-जुलता है।"

४ क्या अछूतोद्धार धर्म-सिद्ध है ?

अछूतोद्धार एक विकट समस्या हो रहा है। राष्ट्रके नेता अछूतोद्धारको स्वराज्यका साधक समझ रहे हैं और सनातनधर्मके विद्वान् इसे धर्म-बाधक मान रहे हैं। अछूतोंके साथ रोटी-बेटीका सम्बन्ध भी, कितने ही लोगोंके मतसे, स्वराज्यके लिये आवश्यक और अनिवार्य है तथा अनेक सनातनधर्मियोंके मतसे यह सम्बन्ध अनावश्यक और धर्म-नाशक है। यह ध्यान देनेकी बात है कि, महात्मा गान्धी भी अछूतोंके साथ रोटी-बेटीका सम्बन्ध करनेके पक्षपाती नहीं हैं। अभी, १८ अक्टूबरको, डा० अम्बेडकरने भी सहभोज और मन्दिर-प्रवेशकी जगह अछूतोंकी बौद्धिक, आर्थिक और शिक्षा-विषयक उन्नति करनेकी ही हिन्दुओंसे अपील की है। इस तरह यह विषय एक ऐसी समस्या है, जिसपर भली भाँति वाद-विवाद करके हित-मार्ग ढूँढ़ निकालना प्रत्येक हिन्दूका कर्त्तव्य है। महात्मा गान्धीके हालके उपवासके कारण यह और भी अनिवार्य हो गया है। आज हम इस विषयपर एक ऐसा पत्र छाप रहे हैं, जो एक बहुत बड़े विद्वान्, देशभक्त, सनातनधर्मी सुधारक और सदाचारी धर्मभक्तका है। इस पत्रपर पाठकोंको विचार करना चाहिये। पत्रके आवश्यक अंश ये हैं—

"भारतकी प्रकृति सर्वांशतः पूर्ण है; इसीलिये यहाँ पूर्ण मानव उत्पन्न हो सकते हैं और यहाँके लोगोंकी पूर्ण (तादात्म्यब्रह्मात्मैक्य) मुक्ति हो सकती है। यहाँकी प्रकृतिकी स्थूल पूर्णताका निदर्शन है छः ऋतुएँ। भारतमें

बारहो महीने छः ऋतुएँ रहती हैं। सूक्ष्म पूर्णताका चिन्ह है अवतार। कारण पूर्णताका सूचक ब्रह्मज्ञान है। स्थूलको आधिभौतिक, सूक्ष्मको आधिदैविक और कारणको आध्यात्मिक भी कहा जाता है। ये तीनों पूर्णताएँ किसी भी देशमें नहीं हैं; इसीलिये विदेशी लोगोंकी ऐकान्तिक मुक्ति नहीं होती।

"ऋषियोंने मुक्तिका साधन प्रधानतया वर्णधर्मको माना है। यह प्राकृतिक है। देवतासे लेकर मृत्तिकातकमें चारो वर्ण हैं। जैसे यहाँ मनुष्योंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नामके चार वर्ण हैं, वैसे ही सबमें। अग्नि देवोंमें ब्राह्मण, इन्द्र क्षत्रिय, विश्वेदेव वैश्य और भूत-प्रेत शूद्र हैं। पक्षियोंमें शुक ब्राह्मण, बाज क्षत्रिय, मोर वैश्य और काक शूद्र हैं। वृक्षोंमें अश्वत्थ ब्राह्मण, सागवान क्षत्रिय, आम वैश्य और बाँस शूद्र हैं। मृत्तिकामें श्वेत वर्णकी मिट्टी ब्राह्मण, लाल वर्णकी क्षत्रिय, पीत वर्णकी वैश्य और कृष्ण वर्णकी शूद्र है। इस तरह जड़, चेतन—सबमें वर्णधर्म ओत-प्रोत है। ये चारो वर्ण व्यष्टि और समष्टिकी शक्तियाँ हैं। किसी भी व्यक्तिकी मुख, बाहु, उदर और चरणसे ही पूर्ण स्थिति है। इसी तरह कोई भी समाज उपदेशक, शासक, व्यापारी और सेवकसे ही सुव्यवस्थित रह सकता है। इस तत्त्वको ऋषियोंने समझा था; इसीलिये हजारों वर्ष अनुभव करके उन्होंने चारों वर्णोंकी व्यवस्था की थी, उनके अधिकारानुसार कर्मोंको नियत किया था। हिन्दू-धर्मकी यही विशेषता है—"सब धान बाईस पसेरी" वाली बात हिन्दू-धर्ममें नहीं है। इस वर्णधर्मका, ऋषियोंके बताये पथ, का अनुधावन न करनेसे हमारा समाज, हमारी जाति चिरस्थायिनी नहीं हो सकती। यह बात मनुष्य-समाजमें ही नहीं, पशु-पक्षीमें भी है। घोड़ा और गदहेका वंश चिरस्थायी होता है; परन्तु दोनोंके संसर्गसे बनी खच्चरजातिका अस्तित्व स्थायी नहीं होता। इसी तरह संसारकी जितनी जातियाँ वर्णसंकर हैं, जो वर्ण-धर्मसे विहीन हैं, उनका क्षणिक उदय भले ही हो; परन्तु स्थायी नहीं हो सकता। वर्णव्यवस्थाके कारण ही सिकन्दरसे लेकर आजतक कितनी ही जातियोंके भीषण आक्रमणको सहकर भी हिन्दू-जाति अमर बनी हुई है, जब कि, संसारकी बेबीलोनियन, ग्रीक, ईजिप्सियन आदि कितनी ही प्राचीन जातियाँ नष्ट हो गयीं।

"प्रसिद्ध विद्वान् सिडनी लॉका मत है कि, वर्ण-व्यवस्थाके कारण ही हजारों वर्षोंसे हिन्दू-जाति टिकी हुई है। सर हेनरी काटनकी राय है कि, 'वर्ण-धर्मके ही कारण हिन्दुओंकी इतनी सुन्दर समाज-व्यवस्था है।' विन्सेंट स्मिथका कथन है कि, 'वर्णधर्म भारतीयोंके बिलकुल अनुकूल है।' बके और कोम्टेकी भी ऐसी ही राय है।

'दो वर्णोंमें विवाह होनेपर रक्त अशुद्ध हो जाता है, जिससे नाना प्रकारके रोग होते हैं—शिकागो यूनिवर्सिटीके प्रो॰ अर्नेस्ट अलबर्टने अपने नवाविष्कृत यन्त्र (आसीलो-स्कोप) से इस बातको, परीक्षा करनेके अनन्तर, सिद्ध किया है। मिस हेलेनके मतसे बुरे कीटाणु संक्रमण करते हैं।

"नीच जातिके पतिसे उच्च जातिकी स्त्रीमें जो सन्तान उत्पन्न होती है, उसका नाम, मनुजीने, प्रतिलोम रखा है, जो वर्णधर्मके विरुद्ध है। शूद्र और ब्राह्मणीके संयोगसे चाण्डाल उत्पन्न होता है। क्षत्रिय और ब्राह्मणीके संसर्गसे वैदेह और ब्राह्मण तथा शूद्राके संसर्गसे निषाद या पारशव पैदा होता है। निषाद पति और वैदेह स्त्रीसे चमार उत्पन्न होता है। चाण्डालोंके एक वर्गमें कुत्तेका मांस खानेकी रीति है; इसलिये वे श्वपच भी कहाते हैं। चमारोंमें मरी गायका मांस खानेकी चाल है। इस तरहके जितने भ्रष्टाचार और वर्ण-संकर समाज हैं, उनके शरीरकी बिजली (*Magnatism*) बराबर खराब रहती है। ऐसे

लोगोंके संसर्ग, दर्शन आदिसे रोग होते और पाप लगते हैं—यह बात विज्ञान-सिद्ध है। इसीलिये पराशर-स्मृतिमें लिखा है कि, इन अस्पृश्यों या अछूतोंको देखकर, उनके *Magnatism* का असर मिटानेके लिये, सूर्यको देखना चाहिये। इन्हें छूकर सवस्त्र स्नानकी विधि याज्ञवल्क्य (आशौचप्रकरण, ३०) च्यवन, व्याघ्रपाद और गौतम आदिने बतायी हैं। इनके संसर्गसे पाप लगनेकी बात देवल, छागलेय आदिने लिखी है। मनुजीने लिखा है कि, अछूतोंको गाँवके बाहर रखना चाहिये; धर्मकार्यके समय उन्हें सामने नहीं आने देना चाहिये। (मनु० १०।५१ और ५३)। इनके स्पर्शसे रोग उत्पन्न होनेकी बात सुश्रुत (निदानस्थान, ५ अध्याय)में भी है।

"तो क्या अछूतोंके साथ रोटी-बेटीका सम्बन्ध स्थापित करने, उन्हें मन्दिरोंमें जाने देने और उनको छूनेवाले देशके नेता मनु, याज्ञवल्क्यको नहीं मानते? क्या मनु, याज्ञवल्क्य स्वार्थी या मूर्ख थे? आखिर उनकी बात क्यों नहीं मानते? यदि नहीं मानते, तो उनके बताये शिखा-सूत्र भी क्यों नहीं उतार डालते? क्या नौ सौ वर्षों तक विदेशियोंसे लड़कर जनेऊ और चुंटियाके पीछे जान गँवा देनेवाले हमारे पूर्वज बेवकूफ थे? उन्होंने भी क्यों नहीं मुसलमानी धर्म स्वीकार कर स्वराज्य प्राप्त कर लिया? उन्होंने परतन्त्रताकी बेड़ी पहन ली; परन्तु शिखा-सूत्र नहीं छोड़े, इसमें कोई रहस्य नहीं? क्या नियमोंसे रहित, स्वच्छन्द बनकर, रहना ही देश-भक्तका लक्षण है? तब तो पशु भी देशभक्त है; क्योंकि वह भी नियम-शून्य है। शास्त्र-नियमानुसार ब्राह्मण राजसूययज्ञ और क्षत्रिय बाहस्पत्य नहीं कर सकते, तो क्या इससे इन दोनों जातियोंका अपमान होता है? क्या खान-पानसे ही राष्ट्रीय एकता स्थापित हो सकती है? फिर सहभोज करनेवाले कौरवों-पाण्डवोंमें क्यों महाभारत हुआ? एक थालमें खानेवाले जर्मन और इंगलिश क्यों लड़े? गुरुकुल पार्टी और महाविद्यालय पार्टी क्यों लड़ती है? क्या विवाहका भी सम्बन्ध स्थापित करनेवाली उक्त जातियाँ आपसमें सिर-फुटौवल नहीं करतीं? इसलिये रोटी-बेटीका सम्बन्ध स्थापित करनेवाली बात केवल भ्रष्टाचारियोंकी दलील है। हमारे मतसे केवल आर्यसमाजियों तथा ईसाइयोंने—और अब कुछ काँग्रेस वालोंने—वर्णधर्मी और अछूत हिन्दुओंमें झगड़ा उठाया है; और, इसीलिये इन्हें अछूतोंको एककी जगह चौगुना अधिकार देना पड़ रहा है। जिन दिनों हिन्दूजातिमें ये सज्जन नहीं थे, उन दिनों अछूतों और छूतोंका कोई भी झगड़ा नहीं था। अछूत लोगोंको छूनेमें खुद ही अपनेको पापी समझते थे। और, हमारे यहाँ तो सदासे अछूतोंका सम्मान रहा है। हम चमार रैदास, कसाई सदन और भील शबरीके नामपर सदासे प्रेमाश्रु बहाते हैं; उनके जीवन-चरितकी पुस्तकोंपर पुष्प, अक्षत, गन्ध चढ़ाते हैं। हमने सूतसे अठारहो पुराणोंको सुना है। और, फिर, यदि, उन्हें छूकर हम स्नान करते हैं, हम अलग रसोई बनाते हैं, तो हमें ही कष्ट होता है, उन्हें तो नहीं? इसमें उनकी हानि या अपमान क्या है? चमार भंगियोंको छूकर नहाते हैं तथा डोम धोबीको और चमार डोमको नहीं छूते, तो इसमें अपमानकी कौन-सी बात है? जनन-मरण-अशौचमें तो कुछ दिनोंके लिये हम भी अछूत हो जाते हैं, तो क्या इसमें अपमानका अनुभव करते हैं? या, अपने कर्त्तव्यका?

"फलतः बहुत सोच-विचारके अनन्तर इस, आज कलकी, क्षणिक आँधीमें हमें उड़ना नहीं चाहिये। जिस स्वराज्यमें हिन्दूधर्म मिट जाय, वर्णधर्म न रहे, मनु और याज्ञवल्क्य बेवकूफ करार दिये जायँ, हिन्दू-सभ्यता और संस्कृति नष्ट हो जाय और हम दूसरी जाति बन जायँ, उस स्वराज्यको दूरसे ही नमस्कार!"

तुम !

पति-वियोगिनी अबलाकी,
मिलनेकी मधु आशामें ।
निर्मोही तुम छलते हो,
साँरगकी प्रत्याशामें ॥१॥

मीठे तुम दीख रहे हो,
शक्करकी एक डलीमें ।
दिखलायी देते हो तुम—
चम्पाकी खिली कलीमें ॥२॥

मोहा करते हो हँस कर,
बालाके मधु यौवनमें ।
कुछ रंग लिये रहते हो,
उसके प्रिय पाटल तनमें ॥३॥

रसमय हो तुम छिप जाते,
लहराती गरल-सुधामें ।
रजनीमें हँससे रहते—
तुम घुले-मिले वसुधामें ॥४॥

बा० प्यारेलाल श्रीवास्तव ''सन्तोषी''

पुरातत्त्वाङ्क

"गङ्गा"के "पुरातत्त्वाङ्क"की समस्त तैयारियाँ हो चुकीं। सैकड़ों अप्राप्य चित्रोंके ब्लाक बन गये और बीसियों अनुसाधन-विषयक मौलिक लेख आ चुके। आगामी अङ्कोंमें विस्तृत विवरण पढ़िये।

आवश्यक सूचना

"गङ्गा"के लिये एक ऐसे सहकारी सम्पादककी आवश्यकता है, जो अँग्रेजी, हिन्दी और संस्कृतके विद्वान् हों और किसी पत्र या पत्रिकामें कम-से-कम दस वर्ष काम क[illegible] चुके हों। प्रेसके मैनेजरका काम भी करना होगा। प्रमाण[illegible] पत्रोंके साथ आवेदन-पत्र भेजना चाहिये। यहाँ किसी[illegible] आनेकी ज़रूरत नहीं है। वेतन योग्यतानुसार दिया जायगा। जो सज्जन प्रेसके कामके अनुभवी न हों, वे आवेदन-पत्र भेजनेका कष्ट न करें।

सम्पादक, "गङ्गा", कृष्णगढ़, सुलतानगंज,
ई० आई० आर०

इतिहासवादियोंको पिछली १८, १९ शताब्दियोंमें कोई वैसा दृढ़ वकील नहीं मिला।

"भारतीय आर्योंके बौद्धिक विकास और संस्कृतिकी आधारशिला वेद ही हैं। इनमें हमारे पूर्वजोंकी कितनी ही पीढ़ियोंकी कितनी ही ऋतुओं, वर्षों, शीत, उष्ण देशोंमें जय,पराजय, शौर्य, शिकार, शिक्षा, धर्म, नृत्य, ज्ञान, जीवन, मरण आदि नाना अवस्थाओंके अनुभव संगृहीत हैं। वेद और अपने पूर्वजोंके साथ इससे बढ़कर क्या कृतघ्नता होगी कि, हम उन तपस्वियोंकी इन सभी तपस्याओं और उनके परिश्रमसे पीछेकी जनताको; हुए लाभोंको भूल जानेपर उतारू हो जायँ।

"सनातनधर्मकी यही विशेषता रही है कि, समयके फेरसे उसने अपने शत्रुओंकी कुछ बातोंको मानते हुए भी मूल ऐतिहासिक पक्षको अभी नहीं छोड़ा। १९ वीं शताब्दीमें स्वामी दयानन्दने इतिहास-वादपर, जैमिनिकी भाँति दूसरा भयंकर आघात किया तो सही; किन्तु अब जैमिनिका समय नहीं रह गया था। वैज्ञानिक तुलनात्मक अध्ययन; और, शिक्षित जनसमुदयके अलौकिकताकी अपेक्षा स्वाभाविकताके अनुरागने ऐतिहासिक पक्षके, शरीरतक उस आघातको पहुँचने भी नहीं दिया। इतनी कठिनाइयोंसे यदि यह आजतक चला आया, तो अब तो उसकी दृढ़ता और चिरस्थितिके लिये कहना ही क्या है!

"लेकिन इन सहस्राब्दियोंके प्रहारका एक बुरा फल यह हुआ कि, उन्होंने बहुतसे स्थानोंके अर्थोंको सन्दिग्ध कर दिया, अनेक स्थलोंको धुँधला बना दिया; जिसका दूर करना सरल नहीं है। इस प्रकारके प्रत्येक प्रयत्नको हमें साधुवाद देना चाहिये। इस विषयमें पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी और पण्डित गौरीनाथ झाका प्रयत्न बड़ा ही स्तुत्य है, जो कि उन्होंने ऋग्वेदके हिन्दी-अनुवाद द्वारा किया है। अनुवाद बहुत सरल है, बीच-बीचमें विशेष द्रष्टव्य विषयों और वस्तुओंकी ओर भी संकेत किया गया है। अनुवादके साथ मूल मंत्रोंका देना तो और भी उपयोगी है। दानस्तुति तथा दूसरे मंत्रोंपर परम्परागत चले आये आख्यानोंका भी दे देना यद्यपि बहुत उपयोगी होगा, तो भी ग्रन्थके विस्तारका खयाल रखना जरूरी है। लेकिन हम आशा रख सकते हैं कि, विद्वान् अनुवादकद्वय अपने ऋग्वेदके भाष्यके परिशिष्ट-स्वरूप, तत्सम्बन्धी आख्यानोंको (ब्राह्मणोंसे पुराणोंतकसे लेकर) अलग छाप देंगे।" पुस्तकका प्रथम खण्ड ही बहुत सुन्दर है; अगले खण्डोंमें तो हमें और भी कितनी ही विशेषताओंकी आशा है।"

२—मान्यवर गुरुराज हेमराज पण्डितजू
सी० आई० ई० (नेपाल)—

"आपने ऋग्वेदका हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित करनेका जो कार्य आरम्भ किया है, वह परमोत्तम है। आपका भेजा हुआ उसका प्रकाशित प्रथम अष्टक हमारे पास आ गया है। आगे भी जो अङ्क निकलते जायँ, हमको स्थायी ग्राहक समझकर एक प्रति भेज दिया करें। कालके हेरफेरसे इन दिनों संस्कृत-भाषामें लिखनेकी लोगोंकी रुचि कम हो रही है; इसलिये वैदिक साहित्यको हिन्दी-भाषामें लिखकर सर्वसाधारणको बोध करानेका प्रयत्न उठाना बहुत ही उचित जान पड़ता है। वैदिक भाषा बहुत पूर्व कालकी है। उसका साहित्य भी अति प्राचीन अवस्थाका है। उसमें अपनी-अपनी योग्यता और प्रतिभा-शक्तिके अनुसार प्राचीन-अर्वाचीन भारतीय विद्वानोंने, आधुनिक पाश्चात्य विद्वानोंने भी, बहुत तरहकी व्याख्याएँ की हैं। आपकी हिन्दी व्याख्या अतीव उपयोगिनी, सरल और साधारण जनके लिये सुलभ है।"

३—पण्डित श्रीधर शास्त्री—

"जनसाधारणमें इधर वेदोंका ज्ञान लुप्तप्राय हो रहा था। हिन्दू-संस्कृतिका मूल वेदोंमें ही है; अत एव इस लुप्तप्राय ज्ञानकी पुनर्जागृति तथा प्रचारकी ओर प्रयत्न सर्वथा स्तुत्य है।

"मैं अनुरोध करता हूँ कि, प्रत्येक सनातनधर्मावलम्बी ऐसी महत्त्वपूर्ण पत्रिकाका ग्राहक बनकर पुरातन संस्कृतिका अवश्य लाभ उठावें!"

लेख-मालिका

चित्र—सूची

तृष्णार्त्त

गङ्गा

प्रवाह २, तरंग ११, पूर्ण तरंग २३ कार्तिक, संवत् १९८९; नवम्बर, सन् १९३२

कोलम्बो से यूरोप

(२)

त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन

हाँ, तो लाल सागर वगैरहकी कुछ और बातें सुन लीजिये। १७ जुलाईको हमारा जहाज लाल सागरमें जा रहा था। समुद्र इतना शान्त था कि, देखनेमें सरोवर-सा जान पड़ता था। बाईं तरफ छोटे-छोटे पर्वतोंकी श्रेणियाँ थीं। कहीं वृक्ष या वस्तीका नाम न था। कुछ स्टीमर आते-जाते दिखाई पड़ते थे। आज रविवार था। प्रति रविवारको जहाजमें यात्रियोंको डूबनेसे बचनेकी शिक्षा दी जाती है। अपनी-अपनी कोठरीमें हर एक यात्रीके लिये प्राणरक्षक पेटिका टँगी रहती है। कवायदके दिन, घंटा बजते ही, पेटी ले (उसके साथ लगे) नोटिसके बताये मार्ग द्वारा नर-नारी निश्चित स्थानपर पहुँच जाते हैं। सब लोग अपनी-अपनी पेटी लगा लेते हैं। यदि पेटी लगानेमें कोई गलती रहती है, तो जहाजी आफिसर बता देते हैं। इसके अतिरिक्त हर एक यात्रीको यह जान लेना होता है कि, उसका स्थान कहाँ है और कहाँ उसकी नाव मिलेगी, जिसमें अचानक सङ्कट उपस्थित हो जानेपर अव्यवस्था न हो। हाजिरी हो जानेपर फिर छुट्टी हो जाती है।

लाल सागरकी गर्मी मशहूर है। गर्मी बहुत थी। शामको श्रील्युके साथ मैं ऊपर, डेकपर, बैठा था। अँधेरा हो जानेपर खा-पीकर अन्य स्त्री-पुरुष भी आ गये। एक फौजी आफिसरने

ग्रामोफोनपर रेकार्ड चढ़ा दिया। कुछ गीतोंके हो जानेके बाद रेकार्डमें नाचका बैंड बजने लगा और स्त्री-पुरुषोंकी दो-तीन जोड़ियाँ नाचके मैदानमें उतर पड़ीं। घंटे भर नाच होता रहा।

१८ तारीखको रातके तीन बजे ही हमारा जहाज स्वेज पहुँच गया। उतरकर नगर देखनेका विचार था; किन्तु आठ ही बजे जहाज चल देनेवाला था; इसलिये किनारेपर जहाज न जा सका। यहाँसे काहिराकी सैरका प्रबन्ध है। जहाजसे कुछ आदमी गये भी। वह लोग रातको दस बजे पोर्ट सईदमें लौटकर आ भी गये। स्वेजसे काहिरा रेल या मोटरसे जाना होता है। शहर, जादूघर और पिरामिड दिखा दिये जाते हैं; फिर रेल या मोटरसे पोर्ट सईद। खर्च छः-सात पौंड पड़ता है। जल्दीके कारण हमने जाना पसन्द नहीं किया।

स्वेज अफ्रीकाकी ऊजड़ भूमिमें बसा है। नहरके कारण बस्ती बहुत बढ़ गयी है। यूरोपियन मुहल्ला बन्दरके पास है। मकान साफ-सुथरे हैं। तो भी वृक्ष-वनस्पतिकी दरिद्रता है। यहाँ कितने ही फल बेचनेवाले जहाजपर आ गये थे। एक सिन्धी सज्जन भी मिश्रके कसीदेके कपड़े बेंच रहे थे। मालूम हुआ, स्वेजमें तीन, इस्माइलियामें दो, पोर्ट सईदमें चार और काहिरामें सिन्धी हिन्दुओंकी सात दूकानें हैं। सिकन्दरिया तथा कुछ और जगहोंमें भी कुछ सिन्धी व्यापारी रहते हैं। आठ बजे हमारा जहाज चल पड़ा। थोड़ी ही देरमें हम लोग नहरमें घुस पड़े। नहर इतनी चौड़ी है कि, दो जहाज आ-जा सकें, तो भी बड़े जहाजोंके लिये दिक्कत होती है; इसलिये सामनेसे दूसरे जहाजके आनेपर एक जहाजको स्टेशनपर एक ओर खड़ा कर दिया जाता है। नहरकी बाईं ओरसे मोटर और रेलकी सड़क जाती है। किनारेपर कुछ वृक्ष भी लगाये गये हैं; लेकिन तो भी उससे अफ्रीका की भूमि छिप नहीं सकी है। दाहिनी ओर बालुका-मिश्रित नंगी भूमि है। लड़ाईके वक्त इस नहरपर भी धावा हुआ था—येह कितनी ही जगह पड़े खाइयोंके निशान बतला रहे थे।

आठ बजे, सूर्यास्त होनेके बाद, हम पोर्ट सईद पहुँचे। नगर देखना हमने पहलेसे ही निश्चय कर लिया था। २१ फ्रांक (प्रायः अढ़ाई रुपये) दे, किनारे जानेके लिये, दो टिकट लिये और छोटी मोटर-नौका-से, जगह-जगह जगमगाते बिजलीके दीपकोंको देखते, किनारे पहुँच गये। नावमें एक मिश्री आफिसरने हम लोगोंका विचित्र वेष देखकर जन्मभूमि आदि पूछी। जब मैंने "नहनू राहिबून" (हम साधु हैं) कहा, तो उनकी मुद्रा और गम्भीर हो गयी। उन्होंने महात्मा 'कंदी'के इधरसे जानेकी बात भी कही।

किनारेपर आते ही बनारसके पंडोंकी भाँति पथ-प्रदर्शकने आ घेरा। हमने कितना ही इनकार किया, तो भी तब-तक पीछा न छूटा, जबतक कि, प्रधान सड़कपर जाते हुए सेठ बालूरामजी, हमें देख, आग्रहपूर्वक दूकानके भीतर नहीं ले गये। सिन्धी लोग ऐसे भी बड़े भावुक होते हैं, फिर विदेशमें तो देशका कुत्ता भी प्रिय होता है। इनकार करते-करते भी एक-एक प्याला काफी और एक-एक गिलास नील गंगाका जल सामने रख दिया गया। नील गंगाके जलको पाकर तो दरअसल बड़ी प्रसन्नता हुई। सेठ बालूरामजीसे कुछ देर बातचीत होती रही। उनसे मालूम हुआ कि, पोर्ट सईदमें एशिया, यूरोप, अफ्रीका—तीनों ही महाद्वीपोंके आदमी निवास करते हैं। दूकानदार अरबी, अँग्रेजी, फ्रेंच, ग्रीक, इटालियन भाषाओंको फरफर बोलते हैं। राज-कर्मचारियोंमें फ्रेंचकी चाल ज्यादा है। यहाँ ५० से अधिक पंजाबी मुसलमान ज्योतिषी भी रहते हैं। यूरोपियन तो ज्योतिषियोंके पीछे और भी मरते हैं। हम लोग यहाँसे कुछ दूर टहलने निकले। सड़क साफ थी। तिमहले-चौमहले मकान बिजलीकी रोशनीमें जगमगा रहे थे। कहीं-कहीं सोडा-वाटरकी दूकानोंके सामने लोग कुर्सियोंपर बैठे पान कर रहे थे। इस तरह

को भी हमारा विचित्र वेष लोगोंको आकर्षित किये बिना न रहा। थोड़ी देर घूम-घाम कर हम फिर सेठ जीकी दूकानपर लौट आये। रास्तेके लिये खबूजा, खबूजा और कुछ फल मँगवाये। कुछ पौंडोंका फ्रांसीसी सिक्का भुनाया। मालूम हुआ, आज कागजी पौंड (स्टर्लिङ्) का मूल्य साढ़े नव्वे फ्रांक है। कोलम्बोसे यहाँतकमें सिर्फ ढाई फ्रांककी कमी हुई है। साल डेढ़ साल पूर्व, जब पौंड सोनेका था, तब उसका दाम १२० फ्रांकके करीब था। पौंडके पतनके साथ हमारा रुपया भी गिर रहा है। यहाँ डेढ़ वर्ष पूर्व रुपया प्रायः १० फ्रांकका था, वहाँ अब सात फ्रांकके ही बराबर रह गया है। ग्यारह बजे हम लोग जहाजपर लौट आये।

रातको बारह बजे हमारा जहाज चल पड़ा। अब हम भूमध्य सागरमें थे। पोर्ट सईदमें कुछ नये यात्री भी आ चढ़े थे। उनमें फिलस्तीनके एक यहूदी सज्जन तथा साइप्रेसके एक ग्रीक तरुण भी थे। मालूम हुआ, साइप्रेसमें ग्रीक और तुर्क लोगोंकी आबादी है। द्वीप अँग्रेजोंके हाथमें है। दोनों जातियाँ मेल-जोलसे रहती हैं। फिलस्तीनमें अरब और यहूदी अँग्रेजी छत्रच्छायामें रहते हैं; किन्तु वहाँ दोनों जातियोंका बहुत वैमनस्य है। यहूदी लोग चाहते हैं कि, फिलस्तीन यहूदी जातिका मुल्क बन जाय। उन्होंने इसके लिये अरबों रुपये खर्च किये हैं और यूरोप तथा अमेरिकाकी जगह-जगहसे हजारों यहूदी परिवार आकर बस भी गये हैं। तो भी, यहूदियोंकी संख्या सिर्फ दो ही लाख हो पायी है, जब कि, अरबों (ईसाई-मुसलमान, दोनों) की संख्या सात लाख है।

२० जुलाईको ग्यारह बजे हमारी बाईं ओर क्रेत (*Crete*) द्वीप आ गया। सामने ऊँची लम्बी पहाड़ी दीवार-सी खड़ी थी। हरियालीका नाम नहीं। मिश्रकी भाँति क्रेतकी सभ्यता भी बहुत पुरानी है। यहाँ खोदाईमें छः–सात हजार वर्षकी पुरानी चीजें मिली हैं। जिस प्रकार आर्योंके प्रथमागमनके समय सिन्धु-उपत्यकाकी सभ्यता थी, वैसे ही यवन (ग्रीक) लोगोंके पूर्व क्रेतकी सभ्यता थी।

२१ जुलाईको, सायंकाल पाँच बजे, दाहिनी तरफ क्षितिजपर बादलकी स्याही-सी दिखाई पड़ी। धीरे-धीरे वह छोटे-छोटे पहाड़ोंकी श्रेणीमें बदल गयी। थोड़ी ही देरमें उनमें पैरसे चोटीतक जहाँ-तहाँ, लाल खपड़ोंके घरोंवाले गाँव, और हरे-भरे उद्यान, दिखाई पड़ने लगे। लंकाके बाद आज ही पेटभर देखनेको हरियाली मिली। यह कवियोंका देश इटली है। एक घंटा और चलनेपर मसीना नगर दिखाई पड़ा। नगरके राज-पथ और वीथियाँ सरल रेखामें चली गयी हैं। बीच-बीचमें गिरिजाघरोंके शिखर निकले हुए थे। ९ बजेके समय बाईं ओर सिसली द्वीपमें एटनाकी ज्वालामुखी चोटी बादलोंसे झाँकती दिखाई पड़ी। कुछ ही वर्ष पूर्व एटनाने सोनेसे करवट बदली थी। उस समय एटनाके क्रोधने, थोड़े समयके लिये, महाप्रलयका नजारा सामने ला रखा था। सारे प्रदेशपर धुआँ छा गया। काली राख धरती और आकाशमें दूर दूरतक फैल गयी। भूकम्पसे कितने ही घर बरबाद हो गये। मसीना नगरकी तो बुरी दशा हुई। सिसली द्वीप इटलीके ही अधीन है। पर्वत, गाँव, उद्यान, एक-से ही हैं। एक जगह देश और द्वीप बहुत नजदीक आ जाते हैं। यहींसे जहाजको आगे निकलना होता है।

२२ को सायं चार बजे सार्दीनिया द्वीप (इटलीमें) दिखाई पड़ा। मालूम हुआ, अब कार्सीका आनेवाला है। मैं बड़ी चाव-भरी दृष्टिसे कार्सीकाके वृक्षरहित खँडहरोंको देखने लगा। मेरे साथी यवन तरुणने नेपोलियनकी जन्म-भूमिको मुझे इतनी गम्भीरतासे अवलोकन करते देखकर कहा—"नेपोलियनको मैं नहीं पसन्द करता, वह लड़ाईवाला आदमी था।" ध्यान दूसरी ओर लगा रहनेसे मैं यह नहीं पूछ सका—'क्या आप अपने अलिकसुन्दर (सिकन्दर) को भी नहीं पसन्द करते; वह भी तो

लड़ाईवाला आदमी था ?' आज उन यहूदी सज्जनसे विशेष बातें हुईं। उनका जन्म रूसका है। अब कई वर्षोंसे फिलस्तीनमें बस गये हैं; और, फिलस्तीन-वासी रूसी यहूदियोंकी सभाके कोई कार्यकर्त्ता हैं। जर्मन, रूसी, इब्रानी और अरबी भाषाएँ जानते हैं। अँग्रेजी बहुत थोड़ी। यूरोपके लोग देखते ही यहूदीको पहचान लेते हैं। यह पहचान है अपेक्षाकृत अधिक ऊँची, लम्बी तथा तोतेके ठोर-सी मुड़ी नाक। यूरोपमें यहूदी दो देशोंसे होकर गये हैं—एक रूससे, दूसरे स्पेनसे। पहलेवालोंके बाल अधिक भूरे होते हैं और दूसरोंके काले। यह लोग सूअरके मांससे वैसे ही परहेज करते हैं, जैसे मुसलमान। यहूदी माँका बच्चा ही यहूदी हो सकता है; इस नियमके कारण भी इस जातिके लोग अपनी कितनी ही आनुवंशिक विशेषताओंको अपने शरीरमें कायम रखे हुए हैं।

कल दोपहरको मार्सैल् पहुँचना है; इस लिये स्टीवर्ड ने सबका पासपोर्ट माँग लिया। हमने अपने चार बक्स लन्दन भेजना तै कर लिया था; इस लिये आज वह भी हमारे केबिनसे चले गये। मार्सैल्में ऐसा करनेसे, फ्रांसके भीतर, चुंगीकी दिक्कतसे बच जाना होता है।

२३ के ग्यारह बजे मार्सैल् नगर दिखाई देने लगा। नगर समुद्रतटसे पहाड़के शिखरतक बसा हुआ है। बीच-बीचमें वृक्षोंकी हरियाली साबित कर रही थी कि, हम अफ्रीकाके तटपर नहीं हैं। थोड़ी देरमें हमारा जहाज किनारे जा पहुँचा। हजारों आदमी, अपने मित्रोंसे मिलनेके लिये, आकर खड़े थे। किनारे लगते ही थामस् कुक्का आदमी आ पहुँचा। हमने अपने सामान उसके जिम्मे किये और अपने आफिसरसे पासपोर्ट लाने चले गये। आफिसरने देखकर और हस्ताक्षर करके पासपोर्ट लौटा दिये। हमारे सहयात्री अमेरिकनकी जानमें जान आयी। किसीने उन्हें कह दिया था कि, बिना काफी रुपये दिखाये फ्रांसमें उतरने नहीं दिया जाता। बेचारेके पास, आगेके खर्चके लिये, रुपया फ्रांसमें ही आनेवाला था।

टैक्सी कर हम लोग थामस् कुक्के आफिसमें पहुँचे। हमें साढ़े ग्यारह सौ फ्रांक बैंकसे लेने थे। आज शनिवार था और अब एक बज चुका था। आज पैसा न मिलता, तो सोमवारतक यहीं ठहरना पड़ता। थामस् कुक्के बैंक विभागसे पूछा। उन्होंने २६ फ्रांक कमीशन ले हमें पैसा दे दिया। ल्यु महाशयने पेरिसका टिकट ले लिया। हम अगले दिन जानेको थे। थामस कुक्की शहर दिखानेवाली लारी तैयार थी। बीस-बीस फ्रांक दे हम भी नगर देखने जा बैठे। हमारा पीला वस्त्र लोगोंके लिये तमाशा हो रहा था।

पुरातन भव्य कथद्रल (गिरजा), किले और स्मारक-स्थानको देखते हम उस पहाड़के नीचे गये, जिसके शिखरपर "नोत्र-दाम्" का प्रसिद्ध गिरजाघर है। हम बिजलीके खटोलेमें जा खड़े हुए। वह ऊपर उठने लगा। धीरे-धीरे हमारा दृष्टि-क्षेत्र बढ़ने लगा और हम नगरके अधिक भागको देखने लगे। ऊपर पहुँचते-पहुँचते पहाड़ी ज़मीनपर ऊँचे-नीचे बसा सारा शहर दिखाई देने लगा। छः-छः, सात-सात तलोंके मकान अब छोटे-छोटे घरौंदे मालूम होते थे! हमारे पथ-प्रदर्शक एक ऐंग्लो-इंडियन सज्जन थे। लड़ाईके दिनोंमें इधर आये। फिर शादी कर यहीं बस गये। हिन्दी भी बोल लेते थे। उनके साथ बातें करते हम "नोत्र-दाम्"के गिरजेकी ओर बढ़े। रास्तेमें दो-तीन भिखमंगे मिले। हाँ, वे बेचनेकी एकाध चीज लेकर बैठे थे। गिरजेके अँधेरे हालमें कितनी ही कुर्सियाँ पड़ी थीं। सामने, छोरपर, ईसाकी माता मरियम् (नोत्र-दाम् —हमारी महिला) की मूर्ति थी। गिरजेके ऊपर भी शिशु ईसाको लिये मरियम्की पीतलकी मूर्ति है। मन्दिरके भीतर कहीं उन लँगड़ों-अपाहिजोंके सैकड़ों डंडे टँगे हुए हैं, जो "हमारी देवी"की कृपासे चंगे हो गये थे। कहीं-

कहीं उन जहाजोंकी तस्वीरें या नाम अंकित हैं, जिन्हें कृपामयी "हमारी देवी"ने बचाया था। कहीं कितने ही कृतज्ञ जनोंके नाम अंकित हैं, जिनमें स्वर्गीय महारानी अलेक्जेंड्राका नाम भी है। "हमारी देवी"की इस जीती-जागती महिमाको देखकर कौन प्रभावित हुए विना रहेगा! किन्तु हमारे एक भारतीय साथीने कहा—"सभी जगह ठगीका बाजार एक-सा ही गर्म है!"

मार्सेल्में आठ लाख आदमी बसते हैं और फ्रांसमें यह, पेरिसके बाद, दूसरे नम्बरका शहर है। समुद्रके किनारे होनेसे व्यापारका प्रधान केन्द्र है। "नोत्र-दाम्"से उतरकर हम घुड़दौड़, जादूघर, उद्यान आदि होते कुक्के कार्यालयमें पहुँचे। देखना खतम हो चुका था; इस लिये साथियोंके संग आज ही हम लोगोंकी भी चलनेकी सलाह हो गयी। ७१० फ्रांक दे लन्दनके (तीसरे दरजेके) दो टिकट लिये गये। थोड़ी ही देरमें हम लोग स्टेशनपर जा पहुँचे। हम दोनोंके विचित्र पीले कपड़ोंको देखनेकेलिये भीड़ लग गयी! गाड़ीमें देर थी। प्रोफेसर स्युने होटल (रेस्तोराँ) में लेमोनेड पीनेके लिये चलनेको कहा। वहाँ बैठे सैकड़ो आदमी भी हमारी ओर घूर-घूरकर देखने लगे। स्यु महाशय पेशाबखानेमें गये। लौटते वक्त उन्हें तीन फ्रांक (प्रायः छः आने) की पुर्जी थमा दी गयी। बड़ा कहकहा मचा, जब उन्होंने आकर कहा—"फनी, यह तो पेशाबका भी तीन फ्रांक चार्ज करते हैं!"

आठ बजे हमारी पेरिसकी गाड़ी रवाना हुई। अपने चार अदद सामानके लिये ६० फ्रांक तो हमें कुक् कम्पनीको देने पड़े और २० फ्रांक आदमीको टिप् या बखशीश। तीसरा दरजा अपने यहाँके ड्योढ़ेसे अच्छा था। सिर्फ पाखाना गन्दा और दूरके छोरपर था। हर एक बेंचपर ४ आदमियों की दो-दो जोड़ी करके बैठनेकी जगहें थीं। हमारे कम्पार्टमेंटमें तीन भारतीय, एक इंडो-चीनी और दो दम्पतीक फ्रांसीसी थे। आज रात बैठे-ही-बैठे काटनी थी। नौ बजेतक, जबतक कि, अँधेरा नहीं हुआ, हम लोग फ्रांसके कितने ही गाँवोंको देखते रहे। लाल खपरैलसे ढँके छोटे-छोटे, दूर-दूर बसे, मकान, अपने छोटे-छोटे बागीचों, सुन्दर जुते और हरे-भरे खेतोंके साथ, बहुत सुन्दर मालूम पड़ते थे। गाड़ी बहुत कम जगह ठहरती थी। ठहरनेके स्टेशनोंपर भी खाने-पीनेकी चीजें न मिलती थीं। हमारे साथी फ्रेंच दम्पतीने तो बोतलमें पानी भरकर रख छोड़ा था!

रात जैसे-तैसे गुजर गयी। चार बजे ही उजाला हो चला। पाँच बजेसे पहले सूर्योदय हो गया। हमारी अगल-बगलमें ऊँची-नीची—किन्तु फ्रांसकी शस्यश्यामला कपिला मही शोभा दे रही थी। सभी जगह सुव्यवस्था थी। गावोंके मकान ही कतारसे न थे; बल्कि खेतोंमें जमा किये घासके ढेर भी उसी तरह एक कतारमें सुन्दर ढंगसे रखे हुए थे। हर एक गाँवमें छोटा-मोटा एक गिरजा जरूर था। खेती ज्यादातर गेहूँ, आलू, चुकन्दरकी थी। यद्यपि भूमि सभी छोटे-छोटे टीलोंवाली पहाड़ियोंकी है, तो भी नंगा पाषाण मुश्किलसे कहीं दिखाई पड़ता है।

६ बजे हम पेरिस (परी) के गार-द-लियों स्टेशनपर पहुँचे। यही सोच रहे थे कि, स्टेशनसे श्रीअम्बालाल पाटीलके यहाँ कैसे पहुँचेंगे। इच्छा रहते भी मार्सेल्से तार न दे सके थे। तो भी अम्बालालजी प्लेटफार्मपर पहुँचे हुए थे। उन्हें कोलम्बोसे जहाजका नाम मालूम हो गया था; फिर तो जहाजके मार्सेल् पहुँचने आदिका पता लगाना मुश्किल न था। टैक्सी कर होटल फ्रांकलिन् पहुँचे। चौथे तल्लेपर हम लोगोंका कमरा था। प्रति कमरा १२ फ्रांक (प्रायः दो रुपये) प्रति दिनका भाड़ा था। कमरा साफ-सुथरा था। उसीमें गर्म-ठंडे पानीके नल, दो बिजलीकी बत्तियाँ, दो बड़े-बड़े आईने, मेज, कुर्सी, आलमारी—सभी कुछ था। ओढ़ने-बिछानेका प्रबन्ध यहाँ होटल ही करता है; इस लिये यात्री लोग अपना बिस्तरा साथ नहीं ले जाते।

होटलमें सिर्फ रहनेका प्रबन्ध होता है। खानेका प्रबन्ध अलगसे ये करना पड़ता है। हम रातको जगे हुए थे; इस लिये नाश्ता कर सो गये।

चार बजे श्रीअम्बालालजीके साथ नगर देखने निकले। यद्यपि हम टैक्सीपर थे, तो भी हमारे पीले कपड़े लोगोंकी दृष्टिको आकर्षित किये विना नहीं रहते थे! सौन्दर्यमयी परी नगरी ही हमारे लिये कौतूहलोत्पादक न थी; बल्कि हम भी उसके निवासियोंके लिये विचित्र वस्तु थे! फ्रांस-वाले खुले दिलके होते हैं, यह पता लग गया, जब कि, हमारी खड़ी टैक्सीके पास आकर एक सज्जनने हमारे बारेमें प्रश्न पूछे। परी नगर सेन् नदीके दोनों किनारोंपर बसा हुआ है। दूसरे किनारेवाला भाग पुरातन है और उसे अक्सर लैटिन मुहल्ला कहा जाता है। विश्वविद्यालय (सोर्‌बोन् महाविद्यालय), प्रजातन्त्रभवन (शाँब्र-दु-देपुती), नेपोलियनकी समाधि, पुरातन राजप्रासाद आदि पुराने मुहल्लेमें हैं। उधर ही एइ-फेल्‌का विशाल लोह मीनार है। यह दुनियाका सबसे ऊँचा मीनार ९८४ फीट ऊँचा है। इंजीनियर एइ-फेल्‌ने जनवरी १८८७ में इसे बनावा शुरू किया और मार्च १८८९ ई० में खतम किया। ९८९० टन लोहा एवं ढाई लाख पौंड इसकी बनवाईमें लगे। १८७, ३७७ और ९०२ फीटकी ऊँचाइयोंपर क्रमशः तीन तल हैं। सीढ़ियोंके अतिरिक्त ऊपर चढ़नेको बिजलीका खटोला लगा है। पहले तलतक खटोला तिरछा जाता है, फिर सीधे ऊपर चढ़ने लगता है। पहले ही तलसे वृक्ष, घर और मनुष्य छोटे-छोटे मालूम होने लगते हैं। दूसरे तलपर और छोटे। तीसरे तलसे तो नीचेके दरख्त झाड़से और चलते-फिरते मनुष्य चींटीसे दिखाई पड़ते हैं। नगर दियासलाईके डब्बोंसे बने गृहोंकी पंक्तियोंका समूह मालूम होता है। ऊपरी तलोंपर शरबत और फोटोकी दूकानें हैं।

मीनारसे उतरकर हम उस चौरास्तेपर पहुँचे, जहाँ नेपोलियनकी लायी, पुरातन चित्रलिपिसे अंकित, मिस्री लाट खड़ी है। इसी अहातेमें फ्रांसकी आठ नगरियोंकी आठ सुन्दर स्त्रियोंकी पाषाण-मूर्तियाँ हैं। सामनेके बागीचेमें और भी कितनी ही पाषाण-मूर्तियाँ हैं। पेरिस कलाका स्वर्ग है। ऐसी दिव्य सुन्दर पाषाण-मूर्तियाँ, इतनी संख्यामें, पेरिससे बाहर नहीं मिल सकतीं। लन्दनमें भी जगह-जगह स्थापित कितनी ही पाषण-मूर्तियाँ हैं; किन्तु उनमें वह सौन्दर्य और भाव-पूर्णता कहाँ?

फ्रांसमें भारतके दर्शन, धर्म, भाषा, इतिहास आदिके विश्वविख्यात लेवी, फिनियो, पेलियो, पेरलुस्की आदि जैसे अगाढ़ पण्डित रहते हैं। मेरी इच्छा थी, कुछके दर्शन करनेकी; किन्तु गर्मीकी छुट्टियोंमें सभी बाहर गये हुए थे; सिर्फ डाक्टर पेलियो घरपर थे। २५ को साढ़े तीन बजे हम उनसे, मिलने गये। एक बड़े कमरेमें, नीचेसे ऊपरतक चीनी, संस्कृत आदिकी हजारों पुस्तकोंके ढेरमें, एक मेवाए चीनी-भारतीय-भाषाओंके महापण्डित बैठे हुए थे। बड़े प्रेमसे मिले। मैंने अपने "अभिधर्मकोश"की एक प्रति दी। उन्होंने बड़े चावसे "विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि"के मेरे द्वारा चीनीसे संस्कृतमें पुनरनुवादित अंशोंको देखा और सहर्ष सम्मति और सहायता प्रदान करनेका वचन दिया। मध्य एशियाकी मरुभूमिसे बहुतसे चीनी एवं संस्कृत हस्त-लिखित ग्रन्थ, स्टाइनकी भाँति, आपने भी प्राप्त किये थे और कुछका तो आपने सम्पादन भी किया है। आपने आचार्य लेवीके घरपर भी फोन किया; किन्तु वह बाहर गये हुए थे। वहाँसे उतरकर जरा देर गृहरक्षिणी वृद्धाके पास बैठे। मैंने अपनी टूटी-फूटी फ्रेंचमें बात छेड़ दी। लड़के-बच्चोंके बारेमें पूछा। उत्तर मिला—'ज़ सुइ तू-सेल', 'तू-सेल' (नितान्त अकेली = चिरकुमारी)! समझना मुश्किल हो गया; क्योंकि हमने तो भाषा पुस्तकसे पढ़ी थी; जहाँ लिखावटमें भेद होता है, बोलनेमें तो नमस्कार भी यही उच्चारण है। वहाँसे हम फ्रांसका नालन्दा सोरबोन् देखने गये। अनेक नोबल-पुरस्कारप्राप्त वैज्ञा-

निक यहाँ अध्यापन करते हैं। दुनियाके सभी देशोंके विद्यार्थी यहाँ पढ़नेके लिये आते हैं। इमारतें पापायकी, सुदृढ़ तथा सुरुचिपूर्ण बनी हैं। जगह-जगह फ्रांसके महापुरुषोंकी कितनी ही मूर्तियाँ रखी हुई हैं। रंगशाला बहुत ही सुन्दर है। दीवारोंपर फ्रांसके महान् दार्शनिकों, कवियों और विचारकोंके चित्र और मूर्तियाँ हैं। इस विद्यापीठ और विशेषकर रंगशाला (*Ampi theatre*) में प्रवेश करते ही दर्शकके सामने फ्रांसीसी जातिके शताब्दियोंका अद्भुत गौरवपूर्ण इतिहास आ खड़ा होता है, जिसके लिये उसका मस्तक झुके बिना नहीं रह सकता। फ्रांस और पेरिस रमणियोंके रँगे लाल अधरों, कुटिल कटे सुनहले केशों, नित्य नव वेष-भूषाओं, और प्रतिदिनके नृत्य-महोत्सवोंमें नहीं हैं। असल पेरिस और फ्रांस जिसे देखने हो, वह सोरबोनूका दर्शन करे। १२५२ ई० में अथवा नालन्दा और विक्रमशिलाके विश्वविद्यालयोंके ध्वस्त किये जानेके ५४ वर्ष बाद रोमक साधु रोबर सोरबोंने इस विद्यालयको, एक धर्मशास्त्रके विद्यालयके रूपमें, स्थापित किया था। सोरबोनूका वर्णन एक पृथक् लेखमें ही किया जा सकता है।

सोरबोनूके आसपास अनेक पुस्तक-विक्रेताओंकी दूकानें हैं। फ्रांसीसी भाषामें नाना प्रकारके साहित्योंका कितना विकास है, यह आपको तब मालूम हो जायगा, जब आप हेरमान् कम्पनीकी दूकानमें जाकर किसी साहित्यकी पुस्तकको माँगेंगे। आपको उत्तर मिलेगा—"अफसोस, हमारे यहाँ सिर्फ विज्ञानकी पुस्तकें रहती हैं।" यहाँ आपको वनस्पति-शास्त्र, प्राणिशास्त्र, भौतिकी, रसायन, ज्योतिष् आदिकी विज्ञान-सम्बन्धी विक्रेय पुस्तकोंके अलग अलग, काफी बड़े-बड़े, सूचीपत्र मिलेंगे। दस कदम आगे लारूकी दूकानपर जाकर यदि आप विज्ञानकी पुस्तक माँगें, तो उत्तर मिलेगा—"कृपया हेरमानूके यहाँ जाइये; आपको वहाँ साहित्यकी पुस्तकें ही मिल सकती हैं।" जिस वक्त हम लारूके यहाँ कुछ पुस्तकें ले रहे थे, उसी समय एक और प्रौढ़ सज्जन, बड़ी उत्सुकतासे, हमारी ओर देख रहे थे। हमारा काम खतम होते ही, उन्होंने अपनी ओरसे ही पूछ-ताछ शुरू की। थोड़ी बातचीतके बाद वह अपनी दूकान (*Hermann and Cie*) में ले गये। तीन घंटे अतृप्त हो, हम लोग बातें करते रहे। फूमान् दम्पती भारतकी यात्रा कर चुके हैं। वर्षोंसे ऊपर वह वहाँ रहे हैं। मेक्सिकोके निवासी होनेसे भारतके नरनारी, फल-फूल, जलवायु, सबमें उन्हें अपनी मातृभूमिकी मधुर प्रतिमा दिखाई पड़ती है। इतना प्रेम पहलेसे लेकर जो भारत जाय, उसके लिये भारतीयोंका हृदय क्यों न खुल जाय! पहले वह साबरमती गये। फिर, और जगहोंपर। बनारसमें वह महीनों रहे। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, जब ५, ६ वर्ष बाद भी मैंने उन्हें दर्जनों भारतीयोंके नाम लेते सुना। वह और उनकी धर्मपत्नी मादाम् फूमान्, जो कि, एक फ्रांसीसी महिला हैं, दोनों ही भारतके प्रति अगाध प्रेम रखते हैं। अच्छा हुआ, जो उनको किसी चौकाधारीका सामना नहीं करना पड़ा। मैं डाक्टर चन्द्रदत्त पांडेसे मिलना चाहता था। उन्होंने उनका पता खोज निकाला; किन्तु मालूम हुआ, वह चले गये। उन्होंने डाक्टर बद्रीनाथ प्रसादका एक गणितपत्र देते हुए कहा, "डाक्टर प्रसादको कुछ ही समय पूर्व यहाँ गणित-विषयपर डाक्टरकी उपाधि मिली है। यहाँके चोटीके गणितज्ञोंको उनसे बहुत आशा है।" जिस वक्त थोड़ी-थोड़ी जनसंख्यावाले जर्मनी, फ्रांस, इङ्गलैंड जैसे देशोंको हम गणित, विज्ञान, कला आदिके क्षेत्रोंमें इतने अधिक पण्डित पैदा करते देखते हैं, उस वक्त हम भारतीयोंको आत्मग्लानि हुए बिना नहीं रहती। अफसोस तो यह है कि, ऊपरसे हम अपने पूर्वजोंके गौरव-गीत गाकर उसे उड़ा देना चाहते हैं! स्मरण रहे, हमारे मस्तकको मुर्दे ऊँचा न कर सकेंगे; इसके लिये हमें अपनी संख्याके अनुसार पर्याप्त

रवीन्द्र और रामन पैदा करने पड़ेंगे। फ्रूमान् महाशयने यह भी इच्छा प्रकट की कि, 'भारतीय गणित और ज्योतिषका तुलनात्मक एक ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा जा, तो मैं उसे छापनेके लिये तैयार हूँ।' मैंने कहा—"शायद इस कामको डाक्टर प्रसाद अच्छी तरह कर सकते हैं।" इतिहासमें देश-भक्तिका खामखाह दखल अवाञ्छनीय है। उन्होंने यह भी शिकायत की कि, अंग्रेज विद्वान् इस मर्जके सबसे बड़े मरीज हैं। आप उनके किसी विज्ञानके इतिहास-ग्रंथको ले लीजिये। उसमें आप देखेंगे कि, न्युटनसे पूर्व विज्ञान अन्तराराष्ट्रीय चीज था; किन्तु न्युटनके बाद सभी मार्केके वैज्ञानिक सिर्फ इंगलैण्डमें हुए! मैंने भी इन्हींके द्वारा फ्रांसभाषामें प्रकाशित पुस्तक "*Les Plantes: ce qu' elles sont, Ce qu' elles Font*" [वनस्पति : क्या वह हैं और क्या वह करते हैं], जो कि कैम्ब्रिजके अध्यापक सेवार्डकी पुस्तकका अनुवाद है—को देखा, तो उसमें कितने ही वनस्पतिशास्त्रियोंका नाम पाया; किन्तु जगदीशचन्द्र वसुका मत, खण्डन करनेके लिये भी, कहीं उद्धृत नहीं पाया! फ्रूमान्का मत है कि, फ्रेंच या जर्मन विद्वान् ऐसी गलती कभी नहीं करते।

२६ को जानेका निश्चय था; किन्तु अम्बालालजीने ऐसा तिकड़म लगाया कि, जाना नहीं हो सका। आज मेत्रो (सुरंग) की रेलसे यात्रा करनेका निश्चय हुआ। इस भूगर्भ-चारी रेलका सारे शहरमें ताँता लगा हुआ है। ऊपर बड़े-बड़े महल खड़े हैं और उनके पचासो फीट नीचे गाड़ियाँ दौड़ रही हैं। सड़ककी पगडंडीपर, जहाँ-तहाँ, साइनबोर्ड-सहित, नीचे उतरनेके रास्ते हैं। भीतर बिजलीसे रातका दिन हो रहा है। टिकट लीजिये। प्लेटफार्मपर पहुँचिये। चन्द मिनटोंमें विद्युत्-वाहिनी गाड़ी आ खड़ी होगी। गाड़ी खड़ी होते ही दरवाजा स्वयं खुल जायगा! शीघ्र चढ़ जाइये। यह लीजिये, क्षणभरमें ही द्वार स्वयं बन्द हो गया और गाड़ी चल पड़ी! अपने स्टेशनपर उतर जाइये। सीढ़ीसे ऊपर, सड़ककी पटरीपर, चले आइये और वहाँसे अपने गन्तव्य स्थानपर। १०-१५ फ्रांक देकर पेरिसमें जहाँ चाहिये, वहाँ चले जाइये।

आज भी घूमते-घामते हम सोरबोन् और म्यूजे फ्रूमान्के पास पहुँचे। हमारे रहते ही एक ११, १२ वर्षका तरुण आया। कोट, पटलून, बाल, टोपी सभीसे वेश-भूषा झलक रही थी। लम्बी नुकीली नाक उस तरुणकी यहूदी जातिको बतला रही थी, जिसने आइन्स्टाइन और बर्गसों जैसी प्रतिभाकी मूर्तियोंको प्रदान किया है। फ्रूमान् महाशयने बतलाया—"कुछ ही वर्षोंमें यह भी विज्ञानका नोबुल-पुरस्कार लेगा।"

२७ को एक मिश्री होटलमें मध्याह्न भोजन करनेका निश्चय हुआ। मालिक मिश्री सज्जनने उत्साहपूर्वक बतलाया, "मैंने महात्मा गांधीको, सामने बकरी दूहकर, यहीं दूध पिलाया था।" भोजन यहाँ भारतीय ढंगका भी था। मेरा भोजन सामिष था, जिसपर २७ फ्रांक खर्च हुए और भदन्त आनन्दका निरामिष, जिसपर भी २५ फ्रांक या चार रुपयेसे थोड़ा कम! सोचिये, चार रुपयेका भोजन, सिर्फ एक वक्त! और यह कोई बहुत उत्तम भोजन नहीं। भारतमें शायद बारह-चौदह आनेसे अधिक इसपर नहीं लगते। भोजनके बाद अम्बालालजी अपनी कोठीमें ले गये। वहाँ उनके साझीदार यहूदी सज्जनसे भेंट हुई। वे हीरा-मोतीके व्यापारी हैं। यहूदी-जाति तो सौजन्यकी मूर्ति है। आखिर सहस्राब्दियोंसे देश-विदेशमें मुसलमान, ईसाई शासकों द्वारा उत्पीड़ित होती हुई भी, बुद्धि और विनयके भरोसेपर ही तो, इतनी लक्ष्मी और सरस्वतीकी कृपापात्र बन सकी है। यहूदी महाशयने दूसरी बार आनेपर नगरसे बाहर अपने घर ले चलनेका आग्रह किया। वहाँसे वह अपनी ही मोटरपर हमें परी-नोर् (उत्तरी पेरिस) स्टेशनपर ले आये। बोलोंन् (Bologne) की गाड़ी तैयार थी। ३ बजकर १० मिनटके बाद हमारी गाड़ी रवाना हुई, अम्बालाल और उनके साथी

हाथ हिलाते "ऊ–रिवा" किया। पेरिसकी मधुर स्मृति ले हम विदा हुए। पेरिसमें रहते खर्च सत्तर–अस्सी रुपयेसे कम न हुआ होगा; लेकिन आग्रह करनेपर भी अम्बालाल-जीने उसे हमें न देने दिया।

जब दिल मधुरतासे सिक्त हो, तब बाहरी मधुरता और भी कई गुना बढ़ जाती है। दिनमें फ्रांसकी ऊँची-नीची शस्यश्यामला भूमिमें जगह-जगह फलोंके बागीचे, सुन्दर दोमहले-तिमहले घरोंवाले साफ-सुथरे गाँव, लाल, कपिल, पृथुल चरती गायें, खेत जोतते, गेहूँ काटते विशालकाय अश्व, श्वेत-कृष्ण भेड़ियाँ चराती सुवर्णकेशों से सुपरिच्छन्ना बालिकाएँ, सभी नेत्रोंके सम्मुख एक मनोहर चित्र उपस्थित कर रहे थे। समय देखनेके लिये हमारे पास घड़ी न थी; लेकिन उधर आनन्दजी भड़ाधड़ मिनटके साथ समय बतला रहे थे। देखा, हर एक गाँवके गिरजेमें घड़ी लगी हुई है। सात बजे बोलोंज पहुँचे। यह गाड़ी यहींतक थी। अभी बन्दर कुछ दूर था। सामान नीचे रखा गया। सभी यात्रियोंकी दृष्टि हमारे पीले कपड़ोंपर थी। तुरत ही दूसरी गाड़ी आयी, कुलीने सामान रख दिया। २ फ्रांक (बारह आने) मजदूरीको दिये। बन्दरपर उतरकर अब हमें इंगलैंडकी सीमामें जाना था। कुली अपना नम्बर देकर सामान आगे ले गया। हम लोग अपना-अपना पासपोर्ट हाथमें लिये, एकके पीछे एक, चलने लगे। ऑफिसर पासपोर्ट देखता जाता था

जहाज छोटा था। हमारा सामान सामने ही प्रथम श्रेणीकी जगहमें था; लेकिन पहले हमें मालूम न हुआ, जिसके लिये १२ शिलिङ्ग देना पड़ा। अब मालूम हुआ, तब जहाज चल ही नहीं रहा था, बल्कि उसपर महामाया-की सवारी हो रही थी। एक तो छोटा जहाज, दूसरे प्रबल हवाके कारण उठी भयंकर लहरें। अब भला किसको हिम्मत थी, तीसरा दर्जा खोलनेकी। बैठ गये। मैं इष्टदेवता मनाने लगा—कहीं आनन्दजी पहले जैसी अपनी सामुद्रिक वीरता न दिखाने लगें। मुश्किल यह थी कि, वहाँ वमन करनेका कोई पात्र भी न था। मैंने जहाजी कमोंरेको कुछ कम करके कहना शुरू किया; कुछ उन्होंने भी अखबार ले हिम्मत बाँधनी शुरू की और कुछ यात्रा-समयकी अल्पता सहायक हुई। इस प्रकार पत-पानीसे हम लोग डेढ़ घंटेमें इस पार फाक्-स्टोन् पहुँच गये। जहाजमें मैं फ्रांसीसी सिक्कोंका अंग्रेजी सिक्का भुनाने लगा। जहाज हिल रहा था, गिननेमें देर हो रही थी। तरुणने कहा, 'मैं जल्दी गिने देता हूँ।' पीछे मालूम हुआ, गिनाई में ३०, ४० फ्रांक निकल गये! सन्तोष किया —'गरीब आदमी था, ५, ६, रुपये ले ही गया, तो क्या हुआ।'

पोर्टर [कुली] यहाँ भी अपना नम्बर दे, चमड़ेके फीतेमें सूटकेस लटका, कन्धेपर रख, चलता बना। हम-लोग आगे–पीछे हो, चलने लगे। यहाँ भी पासपोर्ट देखा गया। आगे एक जगह सबके सामानका बाजार लगा हुआ है। लोग-अपना अपना सामान खोले हुए हैं। चुंगी-वाले अधिकारी देख-देखकर खड़ियाका निशान बनाते जा रहे थे। हमारे पास चुंगी लायक कोई चीज न थी। ६ बजेके करीब हम अपनी गाड़ीमें जा बैठे। हमारे खानेमें एक आयरिश, एक फ्रांसीसी और एक लन्दनवासी सज्जन बैठे हुए थे। सुनते आ रहे थे, अंग्रेज लोग बड़े चुप्पे होते हैं; लेकिन वहाँ तो अंग्रेज सज्जनने ही पहले की मालूम होता है, ऊपरकी धनिक-श्रेणियोंके साथ पहले दर्जेमें सवारी करते जो अनुभव होता है, उसीपर साधारण नियम बना लिया गया है अथवा हो सकता है, हमारे पीले कपड़ेने भी उनकी मौनमुद्रा तोड़नेमें सहायता की हो। तबसे जबतक १०-२० बजे हम लन्दनके विक्टोरिया स्टेशनपर नहीं पहुँच गये, उनका सहृदयतापूर्वक आलाप चलता ही रहा। अंग्रेज सज्जन बाइलिन्के गुणी थे। पीछे भी इन पौने दो महीनोंमें जो अनुभव हुआ है, उसके भरोसेपर कहा जा सकता है कि, अँग्रेज-जातिमें भी सज्जनता किसीसे कम नहीं है। अपवाद कहाँ नहीं होता?

स्टेशनपर महाबोधि-सभाके कई सज्जन, हमारे स्वागतके लिये, तैयार थे। हमारे उपमन्त्री दया हेवावितारणने हमें अपनी मोटरपर बैठाया और थोड़ी ही देरमें, २७ जुलाईके समाप्त होनेके पूर्व ही, हम अपने स्थानपर, ब्रिटिश महाबोधि सोसाइटी, ४१ लौसेस्टर, लन्दन, पहुँच गये।

"आस्तिकवाद"

(२)

प० वाराणसीप्रसाद त्रिवेदी एम० ए०, एलएल० बी०, काव्य-सांख्य-तीर्थ

(३) यह सिद्ध करनेकी कोशिश की गयी है कि, निमित्त कारण कार्यमें व्यापक रहता है अर्थात् घड़ी बनानेवाला घड़ीमें व्यापक रहता है। कैसी धृष्टता है? इस ऊटपटाँग बातका कोई ठिकाना है? फिर आगे चलकर स्वयं स्वीकार भी किया है कि, घड़ीसाज़ घड़ीसे अलग रहता है। इस अध्यायमें ऐसी ही *Confused* (गड़-बड़-सड़बड़) बातें हैं कि, थोड़ी भी बुद्धि रखनेवालेको पढ़कर हँसी आये बिना नहीं रहेगी।

इसके पश्चात् ईश्वरको निराकार सिद्ध किया गया है—या यों कहिये कि, ईश्वर साकार नहीं है, यह बात प्रमाणित करनेकी कोशिश की गयी है।

किन्तु जिन युक्तियोंसे और जिस अनुमान प्रमाणसे आप ईश्वर सिद्ध करते हैं, उनसे जो सिद्ध होता है, वह साथ ही सर्वत्र साकार भी सिद्ध हो जाता है, इस बातका आपने तनिक भी विचार नहीं किया है! यदि अपनी पुस्तकमें लिखी हुई बातोंपर आप जरा भी, स्वतन्त्रतासे, (साम्प्रदायिकताको छोड़कर) विचार करते, तो यह बिलकुल साफ और सत्य प्रतीत होता कि, ईश्वरकी सिद्धिके साथ-साथ उसकी साकारता भी सिद्ध हो जाती है। आप संसार भरकी क्रियाओंके दो विभाग करते हैं—एक प्राणि-कृत; जैसे घड़ा, घड़ी, घोँसला आदिका बनाना और दूसरा अप्राणिकृत; जैसे सूर्यका निकलना, पेड़का उगना, नदीका बहना आदि। पहले प्रकारकी क्रियाओंको आप सिद्ध कोटिमें रखते हैं और दूसरेको साध्य कोटिमें। फिर आप नास्तिकोंको चैलेंज देते हैं कि, वह कोई भी सिद्ध कोटिकी क्रिया बतावें, जो बिना चेतन कर्त्ताके हुई हो; और, कहते हैं कि, चूँकि, एक भी दृष्टान्त सिद्ध कोटिसे ऐसा नहीं मिलता; इसलिये अनुमान प्रमाणसे यह सिद्ध हुआ कि, साध्य कोटिकी क्रियाओंका भी एक चेतन कर्त्ता है। उसीका नाम है ईश्वर। कोई भी अक्षर-अक्षर इसी युक्तिको ले और देखे कि, इससे ईश्वर साकार भी सिद्ध होता है कि, नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि, सिद्ध कोटिके सभी चेतनकर्त्ताओं—यानी कुम्हार, घड़ी बनानेवाले, पक्षी आदि—को आप साकार भी मानते हैं। यदि आप कहें कि, नहीं, कुम्हार आदि साकार नहीं हैं, तब तो जरूर, ईश्वर भी साकार नहीं सिद्ध होता! किन्तु 'शायद' इसकी आशा आपसे नहीं की जा सकती। जब सभी सिद्ध कोटिके चेतनकर्त्ता साकार हैं और 'चेतन-कर्त्ता' और 'साकारता'का अविनाभाव-सम्बन्ध सिद्ध है, तब उसी अनुमान प्रमाणसे यह भी सिद्ध हो जाता है कि, साध्य कोटिकी क्रियाओंका भी चेतनकर्त्ता (जिसको आप 'ईश्वर' कहते हैं) 'साकार' है। इस समय आप नास्तिकोंके स्थानपर हैं। चैलेंज दिया जाता है कि, आप एक भी ऐसा चेतनकर्त्ता सिद्ध कोटिसे बताइये, जो आकार न हो। यदि आप ऐसा दृष्टान्त नहीं दे सकते (जो कि आप ईश्वर मानते हैं), तो उसे साकार भी कहिये, अन्यथा सत्यका गला घोँटिये।

ईश्वरकी साकारताके विषयमें जो आपके आक्षेप हैं, सब-के-सब जिद्दी बच्चोंके जैसे हैं। आप कहते हैं कि, आप

और आकाश निराकार हैं! आपकी बुद्धिकी बलिहारी!! कहते हैं, साकारको हम देख सकते हैं। क्या आप और आकाशको नहीं देख सकते? कहते हैं साकार 'एकदेशी' होता है, उसके किनारे होते हैं। कैसी थोथी उक्ति है! क्या साकार अनन्त, सर्वदेशीय, विना किनारोंका, नहीं हो सकता; और, क्या नहीं है? क्या आकाश अनन्त है; इसी लिये इसको आप निराकार कहते हैं? फिर आप कहते हैं, स्थूल व्यापक नहीं हो सकता। क्यों? स्थूल व्यापक होगा, कि, सूक्ष्म? व्यापक बड़ा होता है, अधिक होता है, कम नहीं होता। यदि सूक्ष्म स्थूलमें अँट जाता है, तो व्यापक कौन हुआ? आप अपने ही मुँह एक वार स्थूलको व्यापक भी कहते हैं और फिर कहते हैं कि, स्थूल व्यापक नहीं हो सकता! सचमुच, साम्प्रदायिकताके पक्षपातमें बुद्धि हवा खाने चली जाती है!

(४) इसके पश्चात् आप सर्वशक्तिमान् शब्दका अर्थ करते हैं। कई पन्ने व्यर्थके वाग्जालसे भरे हैं। बच्चोंको भुलवानेकी अच्छी युक्ति है। दयानन्द बावा तथा एक क्रिस्तानकी दुहाई देकर वहुत-सा, व्यर्थका, बकवाद किया गया है, जिसमें तत्त्व कुछ नहीं है। है केवल *Contradiction in terms* (विरुद्ध शब्दोंका साथ-साथ प्रयोग), जिसका कोई अर्थ नहीं निकलता। इससे लेखककी शब्द-शास्त्रकी अनभिज्ञता प्रकट होती है। यदि शब्द-शक्ति, स्फोट आदिका तनिक भी ज्ञान आपको रहता, तो यह सब बातें कदापि न लिखते। ईश्वरकी सर्वशक्तिमत्ताको लक्ष्य करके ऐसे-ऐसे प्रश्नोंकी आकृतियाँ रखी हैं, जो वाक्य ही नहीं हैं और न वास्तवमें कोई प्रश्न—जिनमें न योग्यता है, न आकाङ्क्षा। जैसे—क्या ईश्वर ऐसा त्रिभुज बना सकता है, जिसमें तीन भुजाएँ न हों? ऐसे समस्त प्रश्नों की एकवाक्यता इस वाक्यमें हो जाती है—क्या ईश्वर वह 'क' बना सकता है, जो "क" न हो? कोई भी मनुष्य यही कहेगा कि, यह वाक्य ही नहीं हुआ और न इसका कोई अर्थ है। यह प्रश्न ही नहीं है, और, अत एव, इसका उत्तर भी नहीं।

(५) फिर आप कहते हैं, "ऐसी सत्ताकी तो सम्भावना ही नहीं हो सकती, जो न नियमोंके अधीन हो, न अनियमताके अधीन हो"—(१६१)। अनियमता क्या है, नियमोंका अभाव ही न? फिर अभावके 'अधीन'का क्या मतलब है? यही न कि, किसीके अधीन नहीं। किन्तु जो ईश्वर किसीके अधीन नहीं, उसे भी जबर्दस्ती आप किसीके अधीन ही करके छोड़ेंगे! अच्छे घर ईश्वर भी पहुँचे!

ऐसी ही ऊटपटाँग बातोंसे यह अध्याय भरा हुआ है।

सातवें अध्यायमें पाप और दुःखकी विकट समस्याका विचार, आस्तिकताके सम्बन्धमें, अँग्रेजी पुस्तकोंके आधार-पर, किया गया है। जैसे हमारी सरकारका भारतपर शासन करनेका कोई अपना प्रयोजन नहीं है; बस, केवल प्रजाके कल्याणके लिये शासन करती है, वही हाल यहाँ ईश्वरका बताया गया है। विस्तारके भयसे इसपर अधिक नहीं लिखा जा सकता।

पृ० ११७ में "आप्तोपदेशः शब्दः"को बिना अर्थ समझे, बेमौके, सिर्फ अपनी संस्कृतज्ञता दिखानेके लिये, लिखा है, जिसका नतीजा होता है बिल्कुल उलटा!

आठवें अध्यायमें ईश्वरकी अनन्तता दिखायी गयी है। स्थान-स्थानपर अद्वैतवादियों तथा पुराणोंके क्षीर-सागर और कुरानके सातवें आसमानकी हँसी उड़ायी गयी है। किन्तु हँसी उड़ाना आसान है। पृष्ठसंख्या २८० पर लिखते हैं कि, "इन धर्मके अनुयायियों" ने स्वयं इन स्थानोंको स्थान-विशेष न मानकर अलङ्कार सिद्ध करना "आरम्भ कर दिया है।" यदि आप इन ग्रन्थोंको पढ़ते, तो आपको पता लगता कि, इनमें स्वयं इनकी व्याख्या है या आज आपके तर्क करनेपर कोई नया बात सिद्ध की जाती है। क्षीरसागर और शेष-शय्याकी

तात्त्विकताको समझनेके लिये हृदय चाहिये। आपकी समझमें कला है नकल और काव्य–अलङ्कार हैं झूठ। आपको पता नहीं कि, अनन्त परमेश्वरकी तात्त्विकता बतानेके लिये मनुष्यके पास कला और काव्यको छोड़कर और कुछ है ही नहीं। काव्य झूठी बातको नहीं कहता—काव्यमें ही *Truth of Nature* (संसारका सत्य) भरा रहता है। वेद क्या काव्य नहीं है? यदि नहीं है, तो कुछ नहीं है। स्वयं परमात्मा 'कविर्मनीषी' है। और, उसीका यहाँ जो कुछ है, काव्य है।

नवाँ अध्याय है—"कर्म और फल"। यहाँ पुनर्जन्म तथा मनुष्योंके कर्म-स्वातन्त्र्य तथा फल-पारतन्त्र्यका अच्छा वर्णन है। आनन्दमय कोषको कारण-शरीर बताकर कहा गया है कि, इसपर सूक्ष्मतम संस्कार पड़ते हैं। यह बात गलत है। आनन्दमय कोष, जिसका अनुभव सुषुप्तिमें होता है, मनुष्यके अन्दर वही अपना—परमात्माका तात्त्विक रूप है, उसपर संस्कार नहीं पड़ते। संस्कार पड़ते हैं आपके सूक्ष्म शरीरपर और सूक्ष्म शरीरको भी कारण शरीर कहा जाता है।

दसवाँ अध्याय है—"शङ्का-समाधान"। किन्तु इसका यथार्थ नाम होना चाहिये केवल शङ्का। यहाँ अपनी ही ओरसे शङ्काएँ की गयी हैं। दूसरेकी कोई वास्तविक शङ्का नहीं की गयी है। किसी शङ्काका समाधान तो शायद ही है। यहाँ कुल नौ शङ्काएँ हैं। पाँचवीं शङ्का है—ईश्वर-सिद्धि और प्रमाणके विषयमें। यहाँ सत्यार्थप्रकाश तथा उदयनाचार्यकी "न्यायकुसुमाञ्जलि"की युक्तियोंसे ईश्वरको सिद्ध किया गया है। सत्यार्थप्रकाशका यह अंश न्याय-सूत्रोंकी सहायतापर लिखा गया है। आगे चलकर सचमुच यहाँ एक बड़ा तमाशा हुआ है।

सत्यार्थप्रकाशके सातवें समुल्लासके पृ० १७१ से आपने एक अवतरण लिया है। उसका तात्पर्य यह है कि, प्रत्यक्ष गुणीका नहीं होता, बल्कि उसके गुणोंका होता है। जैसे दूधका क्या प्रत्यक्ष होता है? उसके गुणोंका कि, वह सफेद है, तरल है, मीठा है। और, इन्हीं गुणोंके प्रत्यक्षसे हम गुणीका भी प्रत्यक्ष करते हैं। इसी प्रकार ईश्वरके सृष्टि-रचना आदि गुण हमको प्रत्यक्ष हैं; इसलिये उस गुणवाले परमेश्वरका भी हमको प्रत्यक्ष प्रमाणसे ज्ञान होता है।

अवतरण देनेको तो हमारे लेखकजी दे गये; किन्तु "*भइ गति साँप छुछुन्दर केरी।*" इस अवतरणको न उन्हें मानते ही बनता, न इसका खण्डन ही करते बनता। लेखकका असमञ्जस पड़ते ही बनता है।

पहले तो आप कहते हैं कि, यह युक्ति स्पष्ट नहीं प्रतीत होती। फिर कहते हैं, सृष्टि-रचना-विशेषके प्रत्यक्षसे परमेश्वरका प्रत्यक्ष हो, तो घड़ीके प्रत्यक्षसे घड़ीसाज़का भी प्रत्यक्ष होना चाहिये अर्थात् पहले तो अपनी प्रतीतिकी स्पष्टता प्रकट करते हैं, फिर कह देते हैं कि, नहीं, यह गलत है। आगे देखिये। फिर कहते हैं कि, शुद्ध आचार्योंको ईश्वरका प्रत्यक्ष होता है, उसी प्रकार, जैसे हम अपने पास खड़े हुए माता-पिताका प्रत्यक्ष करते हैं। यानी अब स्वा० दयानन्दकी बातको सही मान लिया। किन्तु फिर उचकते हैं और कहते हैं कि, जिस समय मेरा पिता या मेरी माता मुझे प्रत्यक्ष हो रही है, उस समय मुझे उनके कार्यों द्वारा उनकी सिद्धि करना अनावश्यक है। यहाँ आपके कहनेका यह अभिप्राय है कि, गुणसे गुणीका प्रत्यक्ष कैसा, यानी ईश्वरका प्रत्यक्ष तो आपने मान लिया; किन्तु स्वामी दयानन्दकी युक्तिको ठीक नहीं मानते। फिर कहते हैं नहीं, गुणोंसे गुणीका प्रत्यक्ष होता है, यह बात ठीक है। किन्तु फिर शङ्का करते हैं कि, ईश्वरके सभी गुणोंका प्रत्यक्ष तो नहीं होता अर्थात् कुछका होता है। फिर कहते हैं नहीं, ईश्वरके किसी गुणका प्रत्यक्ष नहीं होता, हम केवल अनुमान करते हैं—उनके गुणोंका,

उनके कर्मको देखकर। सृष्टि-रचना तो कर्म है, गुण थोड़े है! किन्तु फिर अन्तमें अपने स्वामीजीकी ही शरण आते हैं और कहते हैं कि, शुद्ध होनेपर शायद जीवात्माको ईश्वरका प्रत्यक्ष होता है। अन्तमें शायद लगा ही देते हैं!

असल बात तो यह है कि, परमेश्वर वह तत्त्व है, जो "रोम-रोममें रमि रहा।" प्रत्यक्ष करने वाले अभ्यास और युक्तिसे शालग्राम-शिलामें भी उसका प्रत्यक्ष करते ही हैं। वह अद्वैत है, साकार भी है। उसका प्रत्यक्ष जिधर उस आँखसे देखो, उधर होता ही है। और, यही तत्त्व स्वा० दयानन्दसे एक तरहसे लिख गया है। उसको उद्धृत तो हमारे लेखकने कर दिया; किन्तु लगे पेटमें चूहे कूदने। अन्तमें 'शायद-वायद' कहकर किसी तरह पिण्ड छुड़ाया! और करते ही क्या?

नमूनेके तौरपर हम यहाँ केवल छठी शङ्काके सम्बन्धमें कुछ लिखते हैं—

यहाँ, पृ० ३६७ पर, पाँच शङ्काएँ लिखी गयी हैं। किन्तु लेखकने या तो उन शङ्काओंको समझा ही नहीं है या जान-बूझकर टाल दिया है। कहनेको तो कह दिया है कि, यह सब शङ्काएँ निर्मूल हैं; किन्तु एकका भी वास्तवमें समाधान नहीं हुआ है। हाँ, कुछ बातें अवश्य बना दी गयी हैं। पहली शङ्का है—

"(१) समस्त सृष्टिको रची हुई सिद्ध करना दुस्तर है। सम्भव है कि, सृष्टिके भिन्न-भिन्न अवयव बने हुए हों; परन्तु जो बातें अवयवोंमें पायी जाती हैं, उनका अवयवीमें भी होना आवश्यक नहीं। जैसे वायुकी चक्कीके अवयव घूमते हैं; किन्तु चक्की स्वयं नहीं घूमती।"

पहले तो यह शङ्का ठीक रूपमें नहीं दी गयी है। और, यही सही। समाधानमें आप कहते हैं कि,—

"यह शङ्का निर्मूल ही नहीं किन्तु हास्यजनक है। जिस अवयवीके एक अवयवमें परिवर्त्तन होता है वह समस्त अवयवी परिवर्त्तनशील माना जाता है जैसे शरीरके एक अंगमें रोग होनेसे समस्त शरीरको रोगी कहते हैं। वायु चक्कीका दृष्टान्त विषम है। सृष्टिके प्रत्येक अवयवको हम बनता और बिगड़ता देखते हैं।............। अतः यह कहना अयथार्थ है कि, सृष्टि समष्टि रूपसे नहीं बनती, केवल उसके अवयव ही बनते हैं।" (३६८)

देखा, कैसा बढ़िया जवाब है। दृष्टान्त विषम है—क्या मानी? फिर, आप मानें कुछ; किन्तु बात है क्या? उसको भी तनिक सोचते हैं? आपकी पुस्तककी जिल्द फट गयी, तो सब किताब फट गया? वाह! वाह!! क्या खूब!!! कहते तो आप जरूर हैं कि, किताब फट गयी; किन्तु क्या यह ठीक है? इतना ही नहीं—आप सृष्टिके प्रत्येक अवयवका बनना-बिगड़ना देखते हैं। सुना था, "गृद्धहिँ दृष्टि अपार"। आपकी दृष्टि तो उससे भी बढ़ गयी। आप अपनी दूसरे अध्यायकी बात भूल गये कि, मनुष्य अल्प है?

दूसरी शङ्का है—

"(२) हमारा ज्ञान परिमित है। परिमित ज्ञानसे यह नहीं सिद्ध हो सकता कि, संसारमें कोई वस्तु ऐसी नहीं, जो बिना बनी न हो"—(३६७)

पहले तो यह शङ्का पहली ही शङ्कामें गतार्थ है, उसीका एक बच्चा है। किन्तु इसका समाधान जरा सुनिये—

इस शङ्काको बस आप 'मूर्खता' कह देते हैं और प्रकट करते हैं किसकी, यह पाठक ही देखें। आप अपने ज्ञानको परिमित तो मान लेते हैं; किन्तु साथ ही अपरिमित सृष्टिका ज्ञान भी आपको हो जाता है। बुद्धि बिगड़े तो ऐसे! उल्टे कहते हैं कि, तुम्हीं प्रमाण दो। किसी बातकी सत्ता सिद्ध करनी है आपको और प्रमाण दे वह, जो कहता है कि, ऐसी सत्ता नहीं है; क्योंकि तुम उसे न देखते हो, न जानते हो। कहीं *Negative* (न होनेका भी) प्रमाण माँगा जाता है? हम कहते हैं कि, देवदत्त यहाँ नहीं है; आप कहते हैं कि, है। देवदत्तको कौन दिखावेगा? कौन प्रमाण देगा? हम या आप? इसका

ही नहीं। कहते हैं, "क्या तुम मानते हो कि, कोई प्राणी कानसे भी खाना खाता है?" आपका मतलब क्या है, यह सब बड़बड़ानेसे? मानते-मनानेकी वात कैसी? लड़कोंकी क्लास नहीं है कि, डाँट दिया, बस, लड़के मान गये। आपको पता नहीं कि, बहुतसे ऐसे प्राणी हैं, जिन्हें कई इन्द्रियाँ नहीं रहतीं; और, उनका काम दूसरी इन्द्रियोंसे लेते हैं। इतना तो आप जरूर जानते होंगे कि, साँपको "चक्षुःश्रवा" कहते हैं। किन्तु, क्यों? यह भी खबर है? क्योंकि, वह आँखसे ही सुनता है, उसके कान नहीं होते। बलिहारी है आपकी बुद्धिको!

तीसरी शङ्का है—

"[३] नैयायिक लोग स्वयं परमाणु, देश, काल तथा आत्माको नित्य मानते हैं। फिर ईश्वर सबका बनानेवाला कैसे होगा? यदि कहो कि, इन चीजोंको छोड़कर अन्योंको ईश्वर बनाता है, तो ईश्वर सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् नहीं रह सकता"—[३६७]।

प्रथमतः तो यह शङ्का ठीक स्वरूपमें नहीं है। इसके सर्वव्यापक शब्दको छिपा लिया है। फिर इसके समाधानमें कहते हैं कि, "नहीं, फिर भी ईश्वर सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ ही रहेगा।" किन्तु नहीं। जो नित्य पदार्थ हैं, उनके अपने कुछ नित्य गुण भी हैं। ईश्वरको उन गुणोंके अनुसार ही सृष्टि करनी पड़ेगी। यदि कुम्हार पानीका काम मिट्टीसे ले और मिट्टीका काम पानीसे यानी अपने मनके मुताबिक करे, तो वह घड़ा नहीं बना सकता। इसी प्रकार ईश्वरको भी परमाणुओंके गुणोंका अनुगमन करना पड़ेगा; तभी सृष्टि कर सकते हैं, अन्यथा नहीं। अत एव सर्वशक्तिमत्ता जाती रही। फिर सर्वव्यापकता तो हो ही नहीं सकती। परमाणु आदि नित्य अलग हैं, ईश्वर है अलग। फिर उनमें व्यापकता कैसी? फिर जीव अपने कर्मके अनुसार ही शरीर छोड़ता और ग्रहण करता है। कर्म करनेमें जीव स्वतन्त्र है, यह आपके सिद्धान्तकी बात है। फिर जीवके कर्मोंके अनुसार ही ईश्वरको भी शरीर छुड़ाना पड़ता है—आप यह भी मानते हैं कि, "उससे रत्ती-रत्ती भर इधर-उधर ईश्वर नहीं कर सकता"—(४४२)। इस प्रकारसे तो जीव किसी कदर स्वतन्त्र हुआ और आपका ईश्वर ही परतन्त्र।

इसी तरहकी, नहीं, इससे भी मज़ेदार चौथी और पाँचवीं शङ्काएँ आपने लिखी हैं और उनको समझकर टाल दिया है या सम्भव है समझा ही न हो। यदि वैसी कोई आवश्यकता होगी, तो फिर उनका विचार किया जायगा। यहाँ अवकाश नहीं है।

अन्तको ग्रन्थकारने स्वयं अपनी शङ्काएँ पेश की हैं। उनका कहना है कि, ईश्वरको उपादान कारण नहीं मान सकते। इस विषयमें आपकी तीन आपत्तियाँ हैं। क्यों हैं? सुनिये—

लेखकने न तो शाङ्कर सिद्धान्तका पर्याप्त अध्ययन किया है और न उसे समझा है; और, इसीलिये मनमानी शङ्काएँ, अपने काल्पनिक शाङ्कर सिद्धान्तपर, की हैं। पहले आपको दर्शनके परमार्थ सत्य तथा व्यवहार सत्य, उपनिषदोंकी विद्या तथा अविद्या, परिणाम एवं विवर्त्त, परब्रह्म एवं मायोपाधिक ब्रह्म वा ईश्वर—इन तत्त्वोंको समझ लेना चाहिये। यदि पूरी तौरसे आप इन सिद्धान्तोंको जानते नहीं, तो शङ्का क्या करेंगे?

पर ब्रह्ममें विवर्त्त होता है। वह है अनिर्वचनीय, माया की उपाधि। तब मायोपाधिक ब्रह्ममें जिसे ईश्वर कहते हैं, विचित्र परिणाम होता है। परमार्थमें केवल परब्रह्म है, जो है बस, सच्चिदानन्द-स्वरूप, एकरस, अखण्ड। व्यवहार दशामें विवर्त्त, त्रिगुणात्मिका माया, मायोपाधिक ब्रह्म (हिरण्यगर्भ) वा ईश्वर तथा उसके विचित्र परिणाम होते हैं। माया है वही प्रधान, प्रकृति, सत्त्व (=ज्ञान, स्थिति), रजः (=क्रिया, जन्म) तथा तमः (=बल, प्रलय), तीनों गुणोंवाली। इसीसे मायोपाधिक ब्रह्म, ब्रह्मा, विष्णु और महेशके रूपमें, संसारका जन्म, स्थिति तथा प्रलय करते हैं।

यदि वास्तवमें तनिक भी उस सत्-असत्, सत्यं-अमर, अन्धकार-प्रकाश आदि द्वैत द्वयके परे स्थित परब्रह्मका आभास हमारे लेखकको होता, तो आपके हृदयमें तीन क्या एक भी आपत्ति न उठती।

पृष्ठ ३७२ से ३७८ तक वेदान्तसूत्रके शाङ्करभाष्य से कुछ अवतरण और उनके अनुवाद दिये गये हैं। लेखकका कहना है कि, इन अवतरणोंसे ही ईश्वर सृष्टिका उपादान कारण नहीं ठहरता। किन्तु वास्तवमें एक भी ऐसा अवतरण नहीं। किसीमें यह बात नहीं कही गयी है कि, ईश्वर सृष्टिका उपादान कारण नहीं है। कहीं तो परमार्थ (*Absolute Truth*) की बात है, जिसके अनुसार ब्रह्म अविकृत कहा गया है या "जीवो ब्रह्मैवनापरः"का सिद्धान्त बताया गया है और कहीं व्यवहार-दशाकी बातें हैं, जहाँ जड़ और चेतनका पृथक्-पृथक् विचार किया गया है। आपके दिमागमें यह भी बात घुसी हुई है कि, ब्रह्मको निमित्त कारण वेदान्ती नहीं मानते। इस कारणसे और परमार्थ और व्यवहारको न समझनेकी वजहसे आपको विरोध मालूम पड़ता है। वास्तवमें कोई विरोध नहीं है।

पृष्ठ ३७४ से ३७७ तकके नोटमें आप शाङ्कर भाष्यका एक अवतरण और उसका अनुवाद देकर उसमें परस्पर विरोध देखते हैं। किन्तु विरोध भाष्यमें नहीं है—वह आपके हृदयमें ही है। आपका कहना है कि, शङ्कराचार्य ब्रह्मको अविकृत भी मानते हैं और परिणामी भी कह दिया। किन्तु इसका उत्तर कई बार दिया जा चुका है। फिर कहते हैं कि, श्रुतिका भी विरोध शङ्कर करते हैं। यह बात भी गलत है; भाष्यके तात्पर्यको न समझनेका कारण है। आपके आक्षेपकी खास पङ्क्तियोंको उद्धृत कर देना ठीक होगा—

"+ + + श्रुतिश्च भवति—

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च। इति।

तस्मादेकस्यापि ब्रह्मणो विचित्रशक्तियोगात् क्षीरादिवद् विचित्रः परिणाम उपपद्यते।"

यहाँ विचित्र-शक्तियोगात् और विचित्र शब्दोंकी सार्थकता हमारे लेखककी ज़रा भी समझमें नहीं आयी है। इसका तात्पर्य यही है कि, यद्यपि ब्रह्म अपरिणामी है—उसका कार्य नहीं है, तथापि विचित्र (यानी सदसद-निर्वचनीय) ज्ञानबलक्रिया [अर्थात् सत्त्व-तम-रजोगुण-रूपिणी] उसकी स्वाभाविकी [अध्यस्ता] विविधा शक्ति [प्रकृति, प्रधान] के योगसे, दूध आदिकी तरह, विचित्र [अर्थात् विवर्त्तके बाद व्यवहार-दशामें] परिणाम होता है। जो अर्थ है श्रुतिका, ठीक वही अर्थ है भाष्यकी पङ्क्तिका। कोई अर्थ न समझे, तो उसके दिमागमें तो विरोध पैदा ही होगा!

ग्यारहवाँ अध्याय है "आस्तिकताकी उपयोगिता।" साधारणतया अच्छा ही है। संस्कृतके उद्धरणोंका अर्थका अनर्थ किया है और देवतातत्त्व न समझकर उसकी भी निन्दा की है।

अन्तिम बारहवाँ अध्याय है—'ईश्वरप्राप्तिके उपाय' बिल्कुल निकम्मा, निःसार, फीका और दरिद्र। हो भी तो क्यों नहीं? जब ईश्वरका स्वरूप ही ठीक मालूम नहीं, तो उपाय भी तो वैसे ही मनमाने होंगे? साधनोंका नाम तो ठीक-ठीक गिना दिया है—कर्म, उपासना और ज्ञान। और यह भी बहुत दुरुस्त कहा है कि, यह तीनों मिलकर ईश्वर की प्राप्ति कराते हैं, अकेले नहीं। किन्तु इनका स्वरूप कुछ भी नहीं बताया गया है। हाँ, मुसलमानी और क्रिस्तानी भाव यानी *Absence of Asceticism* (यतिधर्मका अभाव) देखनेमें खूब आता है। भक्तिकी तो निन्दा शुरूसे है ही, शौच भी घृण्य ही बताया गया है। पञ्च महायज्ञ आदिको पाखण्ड तक कह दिया है और प्राणायामको कहा ...

है कि, इससे फेफड़ोंके रोग पैदा होते हैं !

पुस्तक-प्रारम्भ तो जरूर बड़ी योग्यतासे हुई है; किन्तु जैसे-जैसे आगे बढ़ी है, बात बिगड़ती गया है। और, इस पुस्तकका अन्त तो नितान्त भ्रष्ट ही है ।

अन्तमें हम यह कहकर इस आलोचनाको समाप्त करते हैं कि, यह पुस्तक प्रत्येक आर्यसमाजी भाईको एक बार अवश्य पढ़नी चाहिये। किन्तु साथ ही जो नवयुवक परमार्थ तत्त्वकी तलाशमें है, उसे इस पुस्तकसे कुछ मदद न मिलेगी और सनातनधर्मियोंको तो स्वा० दयानन्दकी ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिकाके शब्दोंमें—

—"यथा परीक्षका विषयुक्तमम्मृततुल्यमप्यन्नं परीक्ष त्यजन्ति तद्वदयमप्रमाणो ग्रन्थस्त्याज्य एव।"

अर्थात् जैसे होशियार आदमी अमृतके समान अन्नको भी विष मिला हुआ देखकर छोड़ देते हैं, उसी तरह इस अप्रामाणिक ग्रन्थको भी छूना नहीं चाहिये।

पता नहीं कि, ऐसी पुस्तकपर "मङ्गलाप्रसाद-पारितोषिक" क्यों दिया गया ? क्या हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें भी आर्यसामाजिकता या गुटबन्दी घुस गयी है ? या इसमें कुछ रहस्य है ?

पथिकसे

पथिक, तू पथको भूल गया !
जीवन भरके सञ्चित धनसे
तूने था जो महल सजाया।
सन्तति–दारा–निज–परिजनसे
सुख-साधनका कोष बनाया ॥
छूट गया वह नगर तुमसे—
जगत्‌का आया द्वार नया !!
पथिक, तू पथको भूल गया !!

प० जगदीश झा 'विमल'

गङ्गा
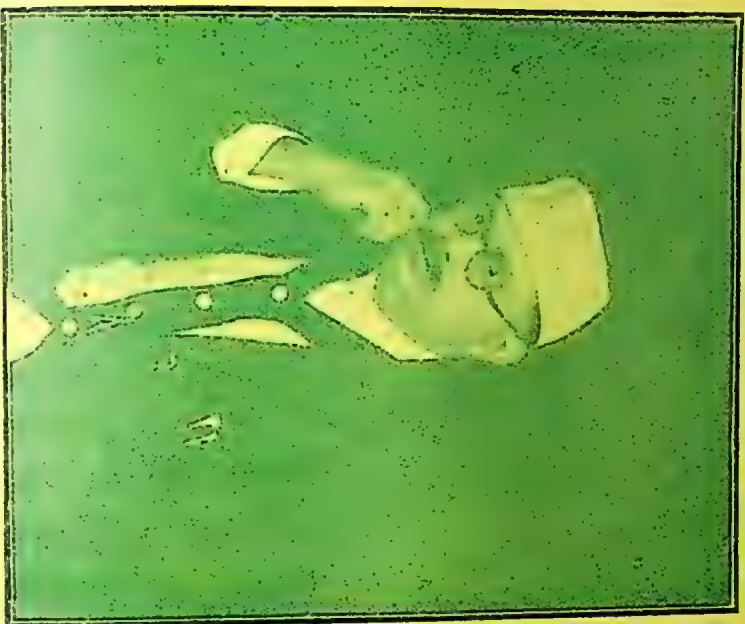
प० मोहनलाल महतो "वियोगी"

आप विहारके सर्वश्रेष्ठ कवियोंमें हैं। आपकी कहानियाँ भी गजबकी होती हैं। आपकी लिखी कई पुस्तकें हिन्दीमें स्थायी स्थान रखती हैं। आपसे हिन्दीको बड़ी ही आशाएँ हैं।

प० जगदीश झा "विमल"

आप विहार-प्रान्तीय कवि-सम्मेलनके सभापति हो चुके हैं। आप कविता, कहानी, नाटक आदि आदिपर दर्जनों उत्तमोत्तम पुस्तकें लिख चुके हैं।

धनुष

उपाध्याय महेन्द्रकुमार वेदशिरोमणि

गत जूनकी "गंगा"के "धनुर्वेद या शस्त्रास्त्रकला" शीर्षक लेखमें धनुष शब्दकी व्यापकतापर मैंने प्रकाश डाला था। वहाँ उसका आशय समस्त प्रक्षेप्ता यन्त्रोंसे था। परन्तु निम्नलिखित पङ्क्तियोंमें धनुषसे तात्पर्य चापसे ही है।

यह निर्विवाद है कि, प्रक्षेप्ता यन्त्रोंके आविष्कारोंके मूलमें धनुषका महत्त्वपूर्ण स्थान है। यदि इन यन्त्रोंके आविष्कारोंके इतिहासका थोड़ा भी अध्ययन किया जाय, तो धनुष हठात् हमारे सामने आ उपस्थित होगा। किसी भी देशके इतिहासको उठाकर देखिये, उसके प्रातःकालमें धनुषको अवश्य पायेंगे। पहले-पहल धनुष-बाण काममें आते थे। कालान्तरमें इनके स्थानपर कड़ावीन (*Hand gun*) आयी। इसका स्थान टोपीदार बन्दूकने लिया। इसकी जगह कारतूसी बन्दूकने ली और आजकल इसके भी अनेक संस्करण हो गये हैं। अन्तको धनुषका ही विशाल स्वरूप तोपमें भी परिवर्तित हुआ है।

पूर्व कालमें धनुष बनानेके लिये लोहा, सींग और काष्ठ काममें आया करते थे।

"विश्वामित्र ! शृणुष्वाथ धनुर्द्रव्यं त्रयं क्रमात् ।
लोहं शृंगं च काष्ठं च गदितं शम्भुना पुरा ॥"

(वासिष्ठ-धनुर्वेद)

अर्थात् 'धनुषके निर्माणके लिये लोहा, सींग और काष्ठ काममें आते थे।' काष्ठसे आशय चन्दन, बेंत, धन्वा, सेमर, साकू, बाँस और अंजन इत्यादि वृक्षोंके काष्ठसे है। (वा० ध० अ० १—४६)। सींगसे निर्मित धनुषको शार्ङ्ग और बाँससे बनेको वांश कहते हैं। शार्ङ्ग धनुष बनानेके लिये अधिकतर भैंस, शरभ और रोहित नामक मृगकी सींगोंका उपयोग किया जाता था (वा० ध० ४६)। लोहेसे तात्पर्य सोने, चाँदी, ताँबे और सीसेका है (वा० ध० ४६)। कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें ताड़ तथा हड्डीके धनुषका भी विधान मिलता है। "मौर्यसाम्राज्यके इतिहास"में कौटिल्यके अर्थशास्त्रका उद्धरण देकर प्रो० सत्यकेतुजीने लिखा है, "तालकी लकड़ीका बना (धनुष) कार्मुक कहलाता है। हड्डी या सींगके बने धनुषको धनु कहते हैं।" (पृष्ठ ३४७)। इसी प्रकार अग्निपुराणमें भी उपर्युक्त तीनों द्रव्योंको धनुषके निर्माणके लिये उपयोगी बतलाया है। साथ ही स्वर्ण, चाँदी, ताँबे और सीसेको भी उपयोगी लिखा है। पाश्चात्य देशोंमें भी उक्त पदार्थ काम आते थे। नरकुलका भी प्रयोग किया जाता था। "*Biblical bow was of reed, wood or horn*" (*E.P. Vol 11. page 363*) अर्थात् 'बाइबिलमें वर्णित धनुष नरकुल, काष्ठ और सींगके बने हुए होते थे।'

धनुर्दण्डके लिये सबसे अधिक उपादेय बाँस ही है। प्रस्तुत पुस्तकोंमें, काष्ठ-विभागमें, इसीका विवेचन विस्तारसे हुआ है। वासिष्ठ-संहिताने धनुर्दण्डके अयोग्य बाँसमें कच्चे, पुराने, घिसे, गले, घुने छिद्रयुक्तका समावेश किया है। वह ऐसा लचकदार भी न हो कि, खींचते समय हाथ बाहर चला जाय या धनुर्दण्डका कोना निकल आवे। वक्र कंपटीका बाँस

भी अग्राह्य होता है। गाँठके समीप छिद्र होनेसे धनुषके असमयमें अचानक ही भग्न होनेकी सम्भावना रहती है। इसी बातकी पुष्टि अग्निपुराणने भी की है—

"कुटिलं स्फुटितं चापं सच्छिद्रं न च शस्यते।"

अर्थात् टेढ़े-मेढ़े, तड़के और छिद्रयुक्त धनुषसे सफलताकी आशा त्याग देनी चाहिये। कोदण्ड-मण्डनके अध्याय ५ में, उत्तम भूमिमें उत्पन्न, चिकना और दृढ़ बाँस धनुषके लिये योग्य कहा है। साथ ही मध्य भागमें ऊँचा-नीचा न होकर एक-सा ही हो। बीचमें लचकनेवाला मध्यम और बिलकुल नवीन बाँसका निकृष्ट धनुष होता है। धनुर्दण्डके योग्य बाँस ग्रहण करनेका समय शरद् ऋतु ही सर्वसम्मत है।

धनुषकी लम्बाई-चौड़ाई आदिके विषयमें लगभग ऐकमत्य होते हुए भी उसकी नाप-तोलके भिन्न-भिन्न प्रकार हैं। बाँसके धनुषमें लम्बाईका परिमाण देकर ही सन्तोष नहीं किया गया है, अपि तु उसकी पोरियोंका भी यथायोग्य परिगणन किया है। आगे चलकर विविध धनुषोंकी पृथक् पृथक् तोल भी वर्णित है, जिससे इसका वैज्ञानिक संस्करण हो जाता है। इन नियमोंको देखकर उत्तम धनुषके निर्माणकी कठिनताका सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

अग्निपुराणने श्रेष्ठ धनुषकी लम्बाई चार हाथ मानी है; मध्यमकी ३॥ और कनिष्ठकी तीन हाथ (अ० अ० ३४३)। वासिष्ठ धनुर्वेदने भी नापका माध्यम हाथ ही माना है। साथ ही बालिस्तसे परिगणन करनेवालोंका मत भी दे दिया है। हाथकी लम्बाई २४ अंगुलकी मानी गयी है। साधारण मनुष्योंका धनुष २४×४=९६ अंगुल अर्थात् चार हाथ और बलशालियोंके लिये ५॥ हाथका विहित है (वा० ध० ३३, ३५ श्लोक)।

इस पुस्तकमें विषम गाँठोंका ग्राह्य और सम गाँठोंका त्याज्य कहा है अर्थात् ३, ५, ७ और ९ का ग्राह्य तथा ४, ६, ८ का त्याज्य होता है (वा० ध० श्लो० ३५, ३६, ३७)। सम पोरियोंका अविधान इसलिये है कि, धनुषके मध्य भागमें, जहाँपर मुट्ठी धनुषको धारण करती है, कोई गाँठ न आने पावे। इस व्यवस्थासे दो लाभ हैं। पहले स्थानपर, जो कि, धनुषके बीचमें होता है, किसी गाँठके न आनेसे चिकना भाग आवेगा, जिससे हथेलीको किसी प्रकारका कष्ट न; होगा, दूसरा यह कि, गाँठसे धनुषके टूटने या तड़कने का भय भी जाता रहेगा। सबसे अधिक तड़कने या टूटनेका भय धनुषके मध्यमें ही रहता है; कारण, सबसे अधिक बल वहीं पर पड़ता है। "नीति-प्रकाशिका" नामक धनुर्विद्याकी पुस्तकमें भी धनुषकी लम्बाई ४ हाथकी मानी गयी है (अध्याय २)। कोदण्डमण्डनके मतानुसार धनुषकी लम्बाई ४ हाथ १२ अंगुल होनी चाहिये।

उपरि लिखित पंक्तियोंमें धनुषकी लम्बाईका ही विवेचन किया गया है । चौड़ाईके विषयमें "कोदण्डमण्डन" के अतिरिक्त किसी विद्यमान पुस्तकमें कुछ भी नहीं मिलता है। इसकी सम्मतिमें धनुषकी चौड़ाई ३ अंगुल होनी चाहिये (अ० ५)। यह साधारण धनुषोंका ही परिमाण विहित होता है; कारण, लखनऊके विचित्रालय (*Museum*) में इससे द्विगुणित परिमाणके धनुष रखे हैं।

शार्ङ्ग धनुषका परिमाण, वासिष्ठ-संहिताके अनुसार, ७ बालिस्तका होता है। यह बली पुरुषोंसे ही सह्य होता है। साधारण मनुष्योंके लिये ६ बालिस्त, ६ अंगुलका होना चाहिये। दोनों धनुषोंकी उपयोगिताके विषयमें लिखा है—

"प्रायो योज्यं धनुः शार्ङ्गं गजारोहाश्वसादिनाम्।
रथीनां च पदातीनां वांशं चापं प्रकीर्तितम्॥"

अर्थात् शार्ङ्ग धनुषका उपयोग गजारोही और अश्वारोही करें तथा बाँसका बना धनुष रथियों और पदातियोंके लिये उपयुक्त होता है (वा० ध० श्लो० ४७)।

वासिष्ठ धनुर्वेदने धनुषोंको दो भागोंमें विभक्त किया हैं—(१) यौगिक चाप, (२) युद्ध-चाप। पहला अभ्यासके लिये और दूसरा युद्धके लिये। परन्तु त्र्यम्बकने समस्त धनुषोंको १० विभागोंमें बाँट दिया है। जिस प्रकार समीपके निशानेके

लिये अन्य और दूरके लक्ष्यके लिये दूसरी बन्दूकका प्रयोग किया जाता है, इसी प्रकार भिन्न-भिन्न धनुषोंके भी भिन्न-भिन्न प्रयोजन होते थे—

१ यौगिक चाप, २ क्रिया चाप, ३ शलाका चाप, ४ ज्याभञ्जनार्थ चाप, ५ श्रमार्थ चाप, ६ युद्ध चाप, ७ बाणोंको दूर फेंकनेके लिये चाप, ८ दृढ़ लक्ष्य भेदनके लिये चाप, ९ विकर्षके लिये चाप, १० विविध बाणफलोंके प्रयोगके लिये चाप।

इस प्रकार धनुषके १० विभाग करके विषयको सुस्पष्ट और सरल बना दिया है।

धनुषमें प्रत्यञ्चा अटकानेके स्थानको धनुष-कोटि कहते हैं। धनुष-कोटिके निर्माणके विषयमें लिखा है—

"उभे जिह्वासने कुर्यादंगुलत्रयमुन्नते।" (त्र्य० अ० १३)

धनुषकी दोनों कोटियां, धनुषकी दोनों तरफ तीन-तीन अंगुलका स्थान छोड़कर, बनानी चाहिये। कहनेका आशय यह है कि, दोनों ओर नोरकसे तीन-तीन अंगुल स्थान छोड़कर प्रत्यञ्चा अटकानेके लिये गड्ढे कर लिये जायँ।

अपने बलकी अपेक्षा कुछ न्यून ही धनुष धारण करना चाहिये—

"निजबाहुबलोन्मानात् किञ्चिदूनं शुभं धनुः।
धनुषा पीड्यमानस्तु धन्वी लक्ष्यं न पश्यति।
अतो निजबलोन्मानं चापं स्याच्छुभकारकम्॥"

[वा० ध० ३०, ३१, ३२]

अर्थात् धनुर्धारीको अपने बलकी अपेक्षा कुछ न्यून ही धनुष धारण करना चाहिये; कारण, भारी धनुषसे पीड़ित धन्वी अपने लक्ष्यको सुचारु रूपसे न देख सकनेसे लक्ष्यभ्रष्ट हो जाता है। इसलिये अपने बलकी अपेक्षा न्यून धनुष ही श्रेयस्कर होता है।

विविध धनुषोंका यथायोग्य तौल न करनेसे एक दिशामें अपूर्णता ही रह जाती है। कौन व्यक्ति किस अवसरपर कैसे धनुषको धारण करे इत्यादि व्यवस्थाएँ बिना अपेक्षित तौलके दुष्कर हैं। भिन्न-भिन्न कार्योंके लिये, कार्यके अनुरूप ही, रायफलें धारण की जाती हैं। इसी प्रकार *Hockey* इत्यादि खेलोंमें खेलाड़ी अनुरूप साधन ही ग्रहण करते हैं। इसके विपरीत, सामर्थ्यसे प्रतिकूल ग्रहण करनेकी भारी क्षतिको प्रत्येक खेलाड़ी जाना करता है। हॉकीके खेलमें, यदि अग्र-गन्ता (*Forward*) को २८ या ३० औंसकी स्टिक दे दी जाय, तो उसे कितनी अधिक असुविधा होगी ! और, यदि पृष्ठरक्षक (*Back*) को २१ औंसकी ही दी जाय, तो वह कैसा खेलेगा, इसका अनुमान प्रत्येक खेलाड़ी सहज ही कर सकता है।

धनुषोंकी तौलके उपक्रम-उपसंहार इस प्रकार हैं—

४ सरसों १ जौ, ४ जौ=१ कणिडका, १२ कणिडका=१ माष, १२ माष=१ तोला, ५ तोला=१ पल।

साधारण धनुष १०० पलका बनाना चाहिये। भारके बिना धनुष उत्तम नहीं होता; अतः शक्तिके अनुसार भार अवश्य देना चाहिये ("त्र्यम्बक-धनुर्लक्षण," श्लो० १७, १८, १९)। शेष अन्य चापोंका मान इस प्रकार है—

यौगिक धनुष	२००	पलका
क्रिया ध०	३००	"
शलाका ध०	४००	"
वामहस्त ध०	५००	"
दक्षिणहस्त ध०	७००	"
युद्ध ध०	९००	"
दृढ़ भेदनके लिये ध०	१०००	"

विकर्षके लिये ध० १२०० पलका

विविध बाणफलोंके प्रयोगके लिये २००० ,,

—"त्र्यम्बक" श्लो० २०—२३

अनुर्वोके तौलकी मात्राओंको देखकर पाठकोंको आश्चर्यान्वित न होना चाहिये। लखनऊके अजायबघरमें विशालकाय धनुष देखनेको मिल सकते हैं। प्राचीन समयमें धनुषोंका नाना प्रकारसे प्रयोग किया जाया करता था। कुछ धनुष रथमें बाँधकर दोनों हाथोंसे खींचे जाते थे।

धनुषोंके नामकरणके विषयमें "मौर्य-साम्राज्यके इतिहास" में प्रो० सत्यकेतुजीने लिखा है कि, कौटिल्यके समय अनेक प्रकारके धनुष बनते थे। तालकी लकड़ीके बने धनुषको "कार्मुक", चाप (एक विशेष बाँस)के बनेको "कोदण्ड," दारु (विशेष लकड़ी)के बनेको "द्रूण" और हड्डी या सींगके बनेको "धनु" कहते थे (पृष्ठ ३४७)।

"नीति-प्रकाशिका" नामक धनुर्वेदकी पुस्तकमें धनुषका विचित्र वर्णन है। धनुषके कर्म तथा स्वरूपको जाननेके लिये इसमें अच्छा स्पष्टीकरण किया गया है। इसे पढ़नेपर धनुष-सम्बन्धी अनेक गूढ़ तत्त्व प्रकाशमें आ जाते हैं। इसका धनुःस्वरूप-वर्णन चाप-निर्माताको भारी सहायता पहुँचा सकता है। इसी प्रकार उसकी प्रयोग-विधिपर भी प्रकाश डाला गया है, जो कि, विषयान्तर होनेसे हमें लिखना अभीष्ट नहीं है। वर्णन इस तरह है—धनुषकी मोटी ग्रीवा (१), पतला सिर (२), मध्य भाग लघु (३), उत्तम पृष्ठ (४), परिमाण चार हाथ (५), झुका हुआ (६), लम्बी जिह्वा (प्रत्यञ्चा) (७), दाढ़ोंके कारण भीषणाकृति (८), रक्त वर्ण (९), घर-घर शब्द करनेवाला (१०), अँतड़ियाँ (ताँतों) की माला पहने हुए (११), होठोंको चाटता हुआ (१२) धनुष होता है (अ० २)।

प्रत्यञ्चा अनेक वस्तुओंकी बनायी जाती थी। वासिष्ठ-संहितामें ९ प्रकारकी प्रत्यञ्चाओंका विधान मिलता है—

१ रेशमके सूतकी, यह तिहरे डोरोंको बाँटकर चिकनी बनायी जाय, २ हिरनके ताँतकी, ३ भैंसके ताँतकी, ४ बकरेके ताँतकी, ५ परिपक्व बाँसके छालकी, ६ भाद्रपदमें गृहीत अकौवेकी त्वचाकी, ७ क्ष्म.सके सूतकी, ८ मूँजकी डोरीकी, ९ भाँगके पौधोंकी।

बाँस तथा अकौवेकी प्रत्यञ्चाको सूतसे परिवेष्टित कर लेना चाहिये। इस प्रकार अधिक कार्य देनेके अतिरिक्त सुन्दर भी होगी। विविध भेद कदाचित् देशकालके अनुसार उपयोगी होनेके लिये ही निर्दिष्ट किये गये हैं। जहाँ जो वस्तु सुविधानुसार उपलब्ध हो सके, वही आवश्यकतानुसार प्रयोगमें लायी जाय। प्रत्यञ्चामें गाँठें न होनी चाहिये। "त्र्यम्बक-संहिता" में मृगकी ताँत उत्तम, भैंसकी मध्यम और गौकी निकृष्ट कही गयी है। "धनुर्वेद-संहिता" के अनुसार आककी छालको प्रत्यञ्चाका रूप देनेके लिये १८ गुना बट लेना चाहिये। इसने गोकर्ण नामक पशुके ताँतका भी विधान किया है। कौटिल्यके अर्थशास्त्रको देखनेसे विदित होता है कि, उस समय सन और बाँसके रेशोंकी भी प्रत्यञ्चा बना करती थी। "मौर्य-साम्राज्यके इतिहास"में लिखा है कि, उस समय धनुषकी ज्या बनानेके लिये मूर्वा, अर्क, सन, गवेधु, बाँसके रेशोंसे बनी रस्सी और ताँतका प्रयोग किया जाता था। उक्त विवेचनके अनुसार १२ प्रकारकी वस्तुएँ, प्रत्यञ्चाके लिये, काममें आया करती थीं।

धनुषके मध्य भाग अर्थात् पकड़नेके स्थानसे प्रत्यञ्चाकी कितनी दूरी होनी चाहिये, इस विषयका वर्णन पाश्चात्य साहित्यमें भी मिलता है।

"The string, at its centre, is 6 inches from the belly of the man's bow, 5 inches in the lady's bow."

(*E. P. Vol II, page 364*)

प्रत्यञ्चा और मध्य धनुर्दण्डका अन्तर पुरुषके धनुषमें ६ इञ्च और औरतके धनुषमें ५ इञ्च होना चाहिये। प्रत्यञ्चाके विषयमें पाश्चात्य साहित्यका वर्णन, विषयके स्पष्टीकरणके लिये दे देना कदाचित् अनुपयुक्त न होगा।

"The string is made of three strands of hemp, dressed with a preparation of glue, and should be perfectly round, smooth and not frayed.........................
......For a few inches above and below the nocking point the string is lapped with carpet-thread to save it from fraying by contact with the arm; nocking point being made by another lapping of filoselle silk, so that the string may exactly fit the nock of the arrow. When a bow is properly strung the string should be longitudinally along the middle of the belly". (*E. P. Vol. 11, page 365*)

अर्थात् प्रत्यञ्चा पटुवेके तीन सूतोंसे बँटकर बनायी जाती है। यह सरेससे निर्मित पदार्थसे माँजी जाती है। यह पूर्णतया गोल, चिकनी हो और इससे तन्तु आदि न निकल रहे हों। प्रत्यञ्चाको, वाण लगानेकी जगहसे, कुछ इञ्च ऊपर और इसी प्रकार कुछ इञ्च नीचेतक सूतसे परिवेष्टित कर दे, जिससे ज्या-घातसे बाहुकी रक्षा हो। वाण लगानेकी जगहको भी एक विशेष प्रकारके रेशमके धागेसे परिवेष्टित कर देना चाहिये, जिससे वाण प्रत्यञ्चामें यथास्थान बैठ सके। जब धनुषमें प्रत्यञ्चा यथाविधि लगे, तब उसकी और धनुषके झुकावकी लम्ब-रूपी दूरी मध्य भागमें समान होनी चाहिये।

मधुरता

मधुर निर्जन वनका तृण-कुसुम,
मधुर पतझड़का मर्मर पांत।
मधुर बुझते दीपककी ज्योति,
मधुर है आँखोंकी बरसात।
मधुर जनहीन शून्य मरु-देश,
जहाँ रोते निशीथमें पवन।
मधुर उरका नीरव चीत्कार,
मधुर विरहीके निष्प्रभ नयन।
मधुर सन्ध्याका तारा प्रथम,
मधुर रजनीका अन्तिम गान।

मधुर, अति मधुर निराशा बीच,
व्यथामय जीवनका अवसान।
मधुर इस उरकी पहली ठेस,
मधुर सुन्दरताका अपमान।
मधुर मकरन्दोंसे भी अधिक,
प्रेमियोंके घायल अरमान।
मधुर कविता आँसूसे भरी,
विपंचीकी रोती झंकार।
मधुर है अन्तस्तलकी जलन,
मधुर है कवि-जीवन सुकुमार॥

श्रीयुत 'दिनकर' बी० ए० (आनर्स)

कहानी

डकैत

साहित्याचार्य 'मग'

टेँटमें नकद दो सौकी रकम, सिरपर चिथड़ोंकी गठरी और हृदयमें दैवी सहायताका भरोसा रखकर मँहगू अपनी स्त्रीके साथ देश लौट रहा था। उसकी स्त्रीकी गोदमें एक सलोना-सा छोटा बच्चा था, करीब एक सालका।

पथिकोंके पाँवपर पाँव रखना मँहगूसे नहीं बनता था; इसलिये कि, उसकी स्त्रीने, चलनेके दो दिन कवल ही पथ्य लिया था। बेचारी ठहरी चमारकी जात, ज्यादा नाज कहाँसे करती। मँहगूकी डपटपर आखिर उसे पाँव घसीटना ही पड़ता था।

इस तरह चार दिन बीत गये। प्राणने बेखटके कण्ठतककी राह नाप ली। गर्मीकी दुपहरी और रेगिस्तानकी मुसाफिरीमें भी मँहगू स्त्री और बच्चेको लेकर, बिना दम लिये राहगीरोंका साथ दे रहा था। उसे खौफ था कि, संग छूटते ही मौत हमें जबड़के नीचे धर लेगी। बलासे, चिलचिलाती धूपमें बच्चा सीझा करे और औरत तपी बालूपर पाँवोंमें चिथड़ा लपेटा करे! काल्पनिक विपत्तिके आगे मँहगू इन कष्टोंको फीका समझता था।

शोहरत थी, इसी जगह अक्सर डाके पड़ा करते हैं। सबको अपनी जानके लाले पड़ रहे थे। बस्तीका तो नामोनिशान था ही नहीं, कुँआ भी चार घड़ी चलनेके बाद मिलता था। जबान सूखकर काँटा हो रही थी। पसीनेका एक-एक कतरा आबेहयातसे बढ़कर वजनी मालूम पड़ता था। किसे किसकी पड़ी थी, जो खैरियत पूछता! सब अपनी राह चलनेकी धुनमें थे।

इसी दरमियान, दूरमें, कुछ धुआँ-सा मालूम पड़ा। रही-सही हिम्मत भी काफूर हो गयी। डकैतोंकी कल्पना सबके कलेजेमें बिच्छू बनकर पैठ गयी। घड़ों पसीने निकलने लगे। भय-त्रस्त पैरोंने गर्म रेतोंपर दौड़ लगायी। उस वक्त किसका पाँव होशमें था; वहाँ तो अनगिनत छाले छलक पड़े थे, छिल रहे थे और छिन-छिन छनक रहे थे!

मँहगूने भी अपनी औरतसे यही उम्मीद की; पर उसकी कलकी बीमार औरत तीसरे ही डगपर चारो खाने चित्त हो रही।

मँहगूके लिये कौन रुकता, किसे इतनी गर्ज थी। उसकी आशापर एकबारगी ही पानी फिर गया। जिनके साथ इतनी दूरतक उसने पाँव जलाये थे, वे सब-के-सब उसकी नजरसे ओझल हो गये। अब उस प्रचण्ड आतपमें केवल वे ही तीन प्राणी बच रहे थे।

गठरीकी छोटी छायामें मँहगूने अपने बच्चेको लिटा दिया और बोतलसे पानी निकालकर उसने अपनी स्त्रीके मुँहपर कई छींटे मारे।

घड़ी भर बाद मूर्छिताने आँखें खोलीं। मँहगू दाँत किटकिटाकर लाल-पीला होने लगा। बेचारी लाचार थी, क्या करती! मँहगूकी बातें शायद ही उसके कानोंतक पहुँची हों! धुएँका बवंडर और

समीप आ गया यानी विपत्की काली शकल और नजदीक हो आयी। मँहगू बेताब होने लगा; पर उसकी औरत टस-से-मस्तक न हुई। एक तो वह यों ही बीमार थी, दूसरे राहमें मुसीबतोंका सदमा उठा चुकी थी।

थोड़ी ही देर बाद आँधी भयङ्कर रूप धारण कर आ पहुँची। गर्म वालुओंका बौछार मुँहपर आगकी चिनागरी-सा मालूम पड़ने लगा। डरकर उन दोनोंने बच्चेको गठरीमें बाँध दिया।

आधी घड़ी बाद आँधी चली गयी और रास्तेके सब निशानोंको भी मिटाती गयी। उस समय मँहगूके लिये सब दिशाएँ पूरब-सी ही थीं! बेचारा हक्का-बक्का होकर चारो तरफ देखने लगा! अब भट्ठीकी आगमें वह ज्यादा देर बैठ भी नहीं सका। आख़िर आफतका मारा दम्पती इधर-उधर भटकने लगा।

राहका कुछ ज्ञान था ही नहीं, दोनों अन्दाजपर चलने लगे। पर जाते कहाँ? शामतक चलनेपर भी मंजिले-मकसूद नहीं नजर आया।

थककर दोनों वालूके अनन्त बिछौनेपर पड़ गये। न वहाँ खानेका इन्तजाम था, न पीनेको पानी था और न एक आध सायेदार दरख्त ही खड़ा था, जहाँ कुछ ठंडक तो मिलती? हाँ, वालूके छोटे-बड़े बे-शुमार टील्हे वहाँ जरूर थे।

रात हो गयी। चाँदनी छिटक आयी। निशीथिनीपतिकी शीतल किरणोंने क्षणभरके लिये उन प्रतप्त प्राणियोंको अभय शीतलता दी। लूके लपेटोंसे बचकर हवा भी कुछ-कुछ स्वस्थ होने लगी। बियावानमें उस समय शान्तिका तनिक झाँकी-दर्शन होने लगा।

मँहगू सिरपर हाथ रखकर सोच रहा था और उसकी स्त्री पीड़ासे व्यथित होकर छटपटा रही थी। उसका कराहना और बच्चेका बिलखना मँहगूके कलेजेमें रह-रहकर टीस पैदा कर रहे थे। बहुत कुछ सोचनेपर भी उसे बचनेकी कोई सूरत, जल्दीमें, नजर नहीं आ रही थी।

उसी क्षण मँहगूने देखा कि, एक दूधसा उजला घोड़ा बड़ी तेजीसे, सवारको पीठपर लिये, वालूके एक टील्हेपर चढ़ रहा है। मँहगूकी नस-नसमें बिजली दौड़ गयी। उसके मनमें नयी आशाका सञ्चार हुआ। बड़ी फुर्तीसे उसने पुकारा—

"ओ उजले घोड़ेके सवार, जरा इधर आइये।"

मँहगूके मनमें अपनी वेदनाका गर्व था! उसकी आवाज सुनसान रेगिस्तानमें गूँज उठी!

घुड़सवारने घोड़ेकी बाग रोक ली और घोड़ेको कुदाकर फौरन मँहगूके पास खड़ा कर लिया।

मँहगू लड़खड़ाती टाँगपर खड़ा हो गया और दर्दभरी आवाजमें बोला—"सरकार, मैं आफतका मारा हूँ। राह भूल गया हूँ। कहीं शरण नहीं है। प्याससे बोलती बन्द हो रही है। स्त्रीको भी ज्वर चढ़ आया है। देखिये न, अनाप-सनाप बक रही है। कहीं ठौर नहीं है। आपको देखकर कही जान-में-जान आयी है। हुजूर, कहीं शरण दें!"

घुड़सवारने कहा—"अच्छा, मेरे साथ आओ।"

मँहगूने सिरपर गठरी रखी, बगलमें बच्चेको दबाया और स्त्रीको दूसरे हाथका सहारा देकर चलने लगा।

घुड़सवारने मँहगूको 'लटपटाते' देखकर कहा—"बच्चेको दो, मैं लिये चलूँ"

मँहगूने कातर स्वरमें कहा—"सरकार, यह चमारका बच्चा है!"

घुड़सवारको उसकी कातरतापर दया आ गयी। वह बोला—"इसकी फिक्र मत करो। लाओ, मुझे दो।'

मँहगूने बच्चेको घुड़सवारकी गोदमें दे दिया।'

टील्हा लाँघकर वे सब-के-सब, थोड़ी देरमें, एक कुटियामें उपस्थित हुए। वहाँ पहलेसे एक वृद्धा और एक युवती मौजूद थी। आश्रय-प्राप्तिके आनन्दसे मँहगू विह्वल हो गया।

मँहगूकी स्त्री कुटियाका द्वार लाँघते ही बेहोश होकर गिर पड़ी। इधर उसे इस तरह गिरते देखकर वृद्धा कुटियाके द्वारपर आ गयी और घुड़सवारको लक्ष्य कर कड़ककर बोली—"यह आज तू कौन-सी नयी खुराफात लाया है?"

घुड़सवार—"नहीं माँ, मैंने तो केवल क्षात्र धर्मका पालन किया है।"

वृद्धा—"कैसा क्षात्र धर्म?"

घुड़सवार—"शरणागतोंकी रक्षा।"

घुड़सवारने चाँदनीकी हँसीमें देखा, माताकी रोबीली आँखोंमें क्षणभरके लिये आनन्द नाच गया है। वह घोड़ेपरसे उतर पड़ा और बच्चेको अपनी माँकी ओर बढ़ाकर बोला—"लो माँ, यह चमारका बच्चा है। छूनेमें आनाकानी न करना।"

वृद्धाने बच्चेको पुत्रकी गोदसे ले लिया और रुग्णा आश्रिताकी सेवा-शुश्रूषामें लग गयी।

चार दिनोंतक मँहगूकी स्त्री बीमार रही; फिर धीरे-धीरे अच्छी होने लगी। दो-चार दिन और रह कर जब उसने यात्राके योग्य शक्ति-संचय कर लिया, तब बूढ़ी माँसे बिदाई लेकर एक दिन वह चल पड़ी। जाती बेर मँहगूको अपने उपकारी घुड़सवारके दर्शन नहीं हो सके। दो दिनोंसे वह कुटियामें नहीं आया था।

मँहगूने फिर नये राहगीरोंका साथ पकड़ा। उसके दिलमें बड़ी तसल्ली थी। आधेसे अधिक रास्ता तय हो चुका था। बीचके विश्रामसे कुछ शक्ति भी प्राप्त हो चुकी थी।

और दो दिनोंमें उसने खौफनाक राहें तय कर डालीं। आज आनन्दसे सब यात्रियोंने एक बागीचेमें डेरा डाला। वहाँ एक देव-मन्दिर था। सबने अपना असबाब उसीमें सुरक्षित रूपसे रख दिया। हँसी-खुशी खा-पीकर सब बाहरके चबूतरेपर सो रहे।

मँहगू छोटी कौमका था, वह ऊपर कैसे चढ़ सकता था। उसका खजाना भी मन्दिरमें दाखिल नहीं हो सका! आखिर, उसने अपने रुपयोंकी पोटलीको कमरमें कसकर बाँधा और चबूतरेके नीचे स्त्री-पुत्रके साथ सो रहा।

रातके तीसरे पहरमें, जब चन्द्रमा डूब रहे थे, सब सुखकी गहरी नींदमें सोये थे। बागीचेकी एक ओरसे घोड़ोंका टाप सुन पड़ा।

सब तो बेखबर सोये थे; पर मँहगूकी स्त्री कुछ जाग रही थी। उसने भविष्य-भयकी आशङ्कासे अपने पतिको उठा दिया। मँहगूने यात्रियोंको सजग कर दिया। वे चुपकेसे उठकर मन्दिरमें बन्द हो गये; परन्तु प्रकृत उपकारी मँहगूकी किसीने खबरतक नहीं ली।

मँहगूने बड़ी बिनती की, नकघिसनी की; पर किसी भी भले मानसके कानपर वहाँ जूँ तक नहीं रेंगी। अर्थ-सङ्कट तथा प्राण-सङ्कटमें पड़कर मँहगू 'किंकर्तव्यविमूढ़' हो गया। वह चबूतरेके ही इर्द-गिर्द मन्दिरमें प्रवेश पानेकी नीयतसे घूमने लगा; परन्तु उसकी कातरता और असमर्थतापर किसे क्षोभ था!

घोड़ोंकी पदध्वनि शनैः-शनैः बढ़ती ही गयी। कुछ ही देरमें घुड़सवारोंसे बागीचा भर गया। उनका मुँह नकाबके भीतर ढका था। मँहगूने भागनेकी कोशिश की; पर निष्फल हुआ। एकने आगे बढ़कर उसे पकड़ लिया और पूछा कि, "तेरे संगी कहाँ छिपे हैं?"

मँहगू मारे डरके सकपका गया। वह दोनों हाथोंसे रुपयोंकी गठरी छिपाता हुआ गिड़गिड़ाकर बोला—"सरकार, मेरा संगी कोई भी नहीं है।"

घुड़सवारको मँहगूकी झूठी बातपर क्रोध चढ़ आया। उसने डपटकर कहा—"सच बता, नहीं तो, बोटी-बोटी काट डालूँगा।"

मँहगू—"सरकार, वे सब मेरे कोई भी नहीं हैं। मेरे साथ तो मेरी स्त्री और मेरा बच्चा है। आपकी ही बगलमें तो पड़े हैं।"

घुड़सवार—"चुप, बच्चावाला! जल्दी पता बता, नहीं तो यह तलवार तेरे ही सिरपर नाचेगी।"

सचमुच मँहगूके सिरपर तलवार चमक उठी और उसी क्षण उसके हाथ रुपयोंकी गठरीपरसे सिरपर दौड़ गये! उसने डरते-डरते कहा—"हुजूर, वे सब मन्दिरमें छिपे हैं।"

घुड़सवार—"ऐं, इतने नजदीक; मन्दिरमें!"

मँहगू—"हाँ।"

घुड़सवार—"अच्छा।"

डकैतोंका जत्था मन्दिरके द्वारपर जा धमका। बहुतोंने देव-मन्दिर तोड़नेकी सलाह नहीं दी। कुछने बल भी लगाया; पर वह विशाल-काय, पुराना फाटक लोहेकी 'सालठी'से भी मजबूत था, जिसे डकैतोंके आसुरी बलकी भी तनिक चिन्ता नहीं थी।

उधरसे निराश होकर सब मँहगूपर ही टूट पड़े। वह बेचारा चमार अभीतक मारे भयके कदली-पत्रकी तरह थरथर काँप रहा था। अब फिरसे उन्हींको आते देखकर उसका दिल एकदम बैठ गया। जीनेकी बची-खुची आशा भी निकल गयी!

डकैतोंके हाथ आज कोई शिकार नहीं लगा था। जिनके पीछे वे सुबहसे ही पड़े थे; वे कन्नी कटाकर उनके चंगुलसे निकल भागे थे। अभी भी अगर कुछ उम्मीद बँधी, तो अँगूठा ही देखना पड़ा। अन्तमें खिसियाई बिल्लीकी तरह वे मँहगूको ही नोचने-खसोटनेके लिये जुट गये। एकने उसकी रुपयेवाली गठरीकी तरफ हाथ बढ़ाया।

इतनेमें ही दूरसे एक कर्कश आवाज आयी—"खबरदार! इसे मत छूना! यह चमार है!"

दलपतिकी आज्ञासे डाकू थम तो गये; पर गिरोहमें खूब जोरका कहकहा लगा। जब लूटना ही है, तो चमार-धोबीका क्या भय!!

फिर वही आवाज—"इसके रुपये मेरे गिने हैं। यह मेरी शरण आया था। हम सब-के-सब क्षत्रिय-सन्तान हैं; हमारा धर्म है—शरणागतोंकी रक्षा!"

"चलो, चलें!"
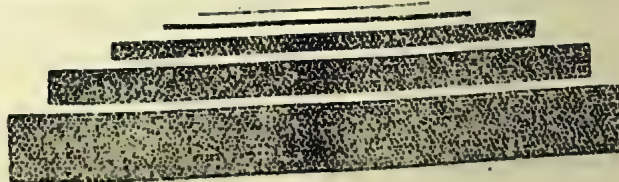
पुराण-परिचय

"गंगा"के प्रधान सम्पादक द्वारा

पुराणका लक्षण

पुराण शब्दसे महापुराण, पुराणसंहिता, पुराणविद्या, महदनुशासन, महदाश्रय आदिका ही अधिक बोध होता है; परन्तु इसका शब्दगत (यौगिक) अर्थ प्राचीन, पुरातन, सदातन या सनातन है। इस शब्दसे हम जिस शास्त्रका ग्रहण करते हैं, उसका ऐतरेय-ब्राह्मणके उपक्रम-प्रसङ्गमें, सायणाचार्यने, इस प्रकार लक्षण किया है, "जगतः प्रागवस्थामुपक्रम्य सर्गप्रतिपादकं वाक्यजातं पुराणम्" अर्थात् जगत्की प्रथमावस्थासे लेकर सृष्टि-प्रक्रियाका विवरण उपस्थित करनेवाले शास्त्रका नाम पुराण है। इससे यह जाना जाता है कि, देव, दानव, मनुष्य, पशु, वृक्ष, लता आदि समस्त जड़ और चेतनकी उत्पत्तिका रहस्य बताना पुराणोंका प्रधान प्रतिपाद्य विषय है। महाभारत (१।२।२) में लिखा है—"पुराणमें बुद्धिमान् व्यक्तियोंकी आदिवंशावली और मनोहारिणी कथाएँ हैं।" इस श्लोकमें जिन "बुद्धिमान् व्यक्तियों" की ओर इशारा है, उन सबकी महाभारत (आदिपर्व १।२३२से २४२ तक)में नाम-गणना भी कर दी गयी है। पुराणके लक्षणके विषयमें निम्न लिखित श्लोक, कई पुराणग्रन्थोंमें कुछ उलट-फेर करके, अत्यन्त प्रचलित है—

> "सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
> वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥"

मतलब यह कि, सर्ग या सृष्टि, प्रतिसर्ग या पुनः सृष्टि और लय, वंश या देवताओं और पितरोंकी वंशावली, मन्वन्तर या सब मनुओंका आधिपत्य-काल तथा वंशानुचरित या सूर्य-चन्द्रवंशीय राजाओंका संक्षिप्त वंश-विवरण बताना पुराणका लक्षण है। सायणाचार्य और महाभारतके उक्त लक्षणोंसे यह "पञ्चलक्षणी" अधिक स्पष्ट और बोध-गम्य है। इसमें प्रचलित अष्टादश पुराणोंके सब प्रतिपाद्य विषय आ गये हैं। पुराण-पुस्तकोंमें जो आख्यान, उपाख्यान, गाथा, कल्पशुद्धि आदि-का[illegible] वर्णन पाया जाता है, वह सब इस पंचलक्षणी अन्तर्गत है।

पुराणके कर्त्ता

छान्दोग्योपनिषद् (७।१।१) में लिखा है, "पुराण पाँचवाँ वेद है।" शतपथ-ब्राह्मण (१४।६।१०।६) कहता है, "सब वेद और पुराण परमात्माके श्वास हैं।" अथर्व वेद (११।७।२४) की उक्ति है, "तीनों वेद, छन्द और पुराण एक साथ उत्पन्न हुए।" इन वचनोंके आधार पर अनेक विद्वान् कहते हैं कि, "वेदोंकी तरह पुराण भी नित्य हैं; और, जैसे व्यासजीने वेदोंका विभाग किया है, उसी तरह पुराणोंका भी।"

उधर विष्णुपुराण (३।६।१६ से २१) में लिखा है—"व्यासजीने अपने शिष्य रोमहर्षणको पुराण-संहिता अर्पण की, जिसे रोमहर्षणने अपने शिष्योंको पढ़ाया। रोमहर्षणके छः शिष्योंमेंसे तीनने तीन संहिताएँ बनायीं। परन्तु पुराणज्ञ पुरुष अठारह पुराणोंका ही निर्देश करते हैं।" मत्स्यपुराण (५३।४ से ७) से भी पता चलता है

कि, पहले एक ही पुराण-संहिता थी। शिवपुराणके रेवा-माहात्म्य (१।२३ से ३०) से मालूम होता है कि, "कल्पके अन्तमें एक ही पुराण था, जिसे (वेदोंकी तरह) स्मरण करके ब्रह्माने मुनियोंको बताया। कुछ समय बाद व्यासजीने देखा कि, इतना बड़ा ग्रन्थ पढ़ना जन-साधारणके लिये कठिन है; इसलिये उन्होंने चार लाख श्लोकों और १८ भागोंमें उसे विभक्त किया; और, इसी प्रकार प्रत्येक द्वापरयुगमें व्यासजी इस पुराण-संहिताको १८ खण्डोंमें विभाजित करते हैं।" इसीके रेवाखण्डमें, आगे चलकर, स्पष्ट कहा गया है—"अष्टादश-पुराणानां वक्ता सत्यवतीसुतः।" अर्थात् "अठारह पुराणोंके वक्ता सत्यवतीके पुत्र व्यासजी हैं।" ब्रह्माण्डपुराण (१।२६) में तो इतनी दूरतक लिखा है कि, "सबसे पहले ब्रह्माने पुराणका स्मरण किया और उसके बाद वेदोंका।" इसी पुराणके ६१वें अध्यायमें यह भी लिखा है कि, "वेद-व्यासने केवल एक ही पुराण-संहिता बनायी।" देवी-भागवत (१।३।१७) में लिखा है—"सत्यवती-नन्दन कृष्णद्वैपायनने पहले अठारहो पुराण बनाये और उनका परिशिष्ट-रूप महाभारत बनाया।" वाराहपुराण (११२।६१) में लिखा है—"कृष्णद्वैपायन अठारहो पुराण जानते हैं।" श्रीमद्भागवत (१।३) में सूतजीका वचन है—"व्यासजीने भागवत बनाकर शुकदेवजीको पढ़ाया।" इसी पुराण (१।४) में नारदजीने वेदव्याससे कहा है—"आपने महाभारत बनाया; अब वासुदेव-चरित (भागवत) की रचना कर डालिये।" पद्मपुराण (पातालखण्ड, ७०।६२) में है—"व्यास आदिने जो पुराण कहा है; वही पढ़ा जाय।" इसी पुराण (स्वर्गखण्ड, ४३।३१) में उल्लेख है—"मैंने (सूतजीने) इस पुराणको अपने गुरुजीसे सुना है।" इस तरह पुराण-कर्त्ताके सम्बन्धमें नाना सन्दिग्ध मत-मतान्तर प्रचलित हैं। कहीं सूतजी पुराण-वर्णन कर रहे हैं और कहीं शुकदेवजी। कहीं पराशरजी अपनेको पुराण-रचयिता बताते हैं और कहीं व्यासजी। कहीं-कहीं एक ही पुराणके अनेक कर्त्ता भी माने गये हैं। भागवतकी ही बात लीजिये। उसे सर्वप्रथम व्यासजीने सूतजीको सुनाया और सूतजीने ऋषियोंको। पश्चात् ऋषियोंने शुकदेवजीको और शुकदेवजीने राजा परीक्षितको। आगे चलकर शुकदेवजीने यह भी कहा है कि, "भागवतको देवर्षि नारदने व्यासजीको दिया था।" इन सब वर्णनोंसे यही निष्कर्ष निकलता है कि, पहले-पहल ब्रह्माने, वेदोंकी ही तरह, पुराण-विद्याका स्मरण किया और पीछे व्यासजीको सुनाया। व्यासजी प्रत्येक द्वापरयुगमें उसका संस्कृत-सङ्कलन करते हैं। मानव लोकमें व्यासजीने ही पुराण-संहिताका प्रवर्त्तन किया और उनके शिष्य सूतजीने उसका, ऋषियोंमें, प्रचार किया। ऋषियोंने इस संहिताके पहले चार और पीछे १८ भाग किये। सर्वान्तमें पण्डितोंने इन्हें लिपि-बद्ध किया। इसी तरह बार-बार उलट-फेर होनेसे पुराणसंहिताके रूपमें यथेष्ट परिवर्द्धन-परिवर्त्तन भी हुए। विभिन्न पुराणोंमें, एक ही कथामें, न्यूनत्वाधिक्य, मतवैभिन्न्य, वंशवैमत्य, कर्त्तृत्वानेकत्व,-सम्प्रदाय-पक्षपात, अतिशयोक्ति, प्रक्षेप, श्लोकगणनाद्वैविध्य आदि जो दोष आ गये हैं, उनका कारण यही उलट-फेर, यही विविध-व्यक्ति-प्रसार, है। वेदोंका भी विभिन्न ऋषियोंने प्रसार-प्रचार किया है; परन्तु वेदोंके मंत्रोंके पद, क्रम, घन, जटा, माला, प्रातिशाख्य, चरण-व्यूह, निरुक्त, शिक्षा, कल्प आदिमें बद्ध होनेके कारण उनमें उलट-फेर और परिवर्त्तन-परिवर्द्धन नहीं होने पाये और न आगे ही कभी होनेकी सम्भावना है। यदि किसी मंत्रमें परिवर्त्तन या किसी संहितामें परिवर्द्धन करना होगा, तो, पद, क्रम, घन आदि सबमें करना पड़ेगा, जो असम्भव है। इसलिये असम्भव है कि, किसी ऋषिको मंत्र याद था, तो किसीको घन या माला। इस दशामें जबतक सारे ऋषि इकट्ठे होकर वेदोंमें क्रान्ति न कर देते, तबतक परिवर्तन-परिवर्द्धन करना असम्भव था। इस क्रान्तिके वे कायल नहीं थे; क्योंकि वेदोंको

वे भगवद्वाक्य और नित्य समझते थे। भगवद्वाक्यमें मनुष्यवाक्य घुसेड़ना और नित्यमें अनित्य मिलाना वे पाप समझते थे। उधर पुराणोंके वैसे नियामक ग्रन्थ नहीं थे और वेदवाक्योंका परिवर्द्धित वर्णन करना ही पुराणोंका लक्ष्य था; इसलिये जो कोई पुराण-वक्ता होता था, वह अनायास ही विस्तार-संक्षेप कर डालता था। जिस विचारका जो पुराण-लिपि-कर्ता हुआ; उसने अपने विचारानुसार पुराणोंमें न्यूनताधिकता कर डाली। इन्हीं लोगोंके कारण पुराणोंपर आज इतने आक्षेप हो रहे हैं और पुराणोंका सामञ्जस्य स्थापित करना दुरूह हो चला है। जो हो; परन्तु इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं रह जाता कि, पुराणकी रचना और प्रवर्त्तनमें व्यासजी (कृष्णद्वैपायन) का स्पष्ट प्राधान्य है। हाँ, यह बात अवश्य है कि, कहीं वे रचयिता, कहीं वक्ता, कहीं श्रोता, कहीं उपदेष्टा और कहीं शिक्षादाता माने गये हैं। चूँकि व्यासजीने ही सर्व-प्रथम पुराण-संहिताका प्रवर्त्तन, निर्माण, प्रसार या प्रचार किया है; इसलिये उन्हें अष्टादश पुराणोंका मूल-कर्त्ता कहनेमें कोई भी आपत्ति नहीं होनी चाहिये। व्यासजीके सम्बन्धमें यह बात उसी तरह लागू है, जिस तरह वेदोंकी बात ब्रह्माके सम्बन्धमें। यद्यपि ऋग्वेदके द्वितीय मण्डलके गृत्समद, तृतीयके विश्वामित्र, चतुर्थके वामदेव, पञ्चमके अत्रि, षष्ठके भारद्वाज, सप्तमके वशिष्ठ, अष्टमके कण्व, नवमके अङ्गिरा तथा प्रथम और दशमके अनेक ऋषि सङ्कलयिता, प्रसारक और प्रसिद्धि-कर्त्ता हैं; परन्तु पहले-पहल प्रजापति ब्रह्माके ही, वेदोंका स्मरण और अनुज्ञान प्राप्त करनेके कारण, लोकव्यवहारमें, ब्रह्मा ही वेद-कर्त्ता माने जाते हैं। व्यासजीके सम्बन्धमें भी यही बात समझनी चाहिये।

पुराण और वेद

ब्रह्माण्डपुराण (१।२८) में लिखा है, "सब शास्त्रोंके पहले ब्रह्माने पुराण-विद्याका स्मरण किया और पीछे चारों वेदोंका।" इस श्लोकसे पता चलता है कि, आर्यसाहित्यमें प्रायः वेदोंका-सा ही सम्मान पुराणोंका भी है। इस पुराणके प्रक्रियापाद (१ अध्याय) में तो यहाँतक लिखा गया है कि, "साङ्गोपाङ्ग वेदाध्ययन करनेपर भी जो पुराणके ज्ञानसे शून्य है, वह तत्त्वज्ञ नहीं है; क्योंकि पुराणमें ही वेदका वास्तविक रूप विवृत है। यह शास्त्र अति प्राचीन और निरुक्त-स्वरूप होनेके कारण ही "पुराण" कहा जाता है।" इस उद्धरणसे मालूम होता है कि, वेदों और पुराणोंमें वही सम्बन्ध है, जो शब्दों और अर्थोंमें। इससे यह भी मालूम होता है कि, पुराण-ज्ञानके बिना वेद-रहस्य समझना असम्भव है। तटस्थ होकर विचार करनेपर विदित हो सकता है कि, जो-जो विषय वेदोंमें विवृत हैं, सो सब पुराणोंमें भी हैं। हाँ, यह अवश्य है कि, वेदोंमें जो बात संक्षिप्त रूपमें है, वह पुराणोंमें विशद और व्याख्यारूपमें। यह भी मानना अनिवार्य है कि, इस विशदत्व और व्याख्यानमें पुराणकारने जहाँ-तहाँ स्वतन्त्रता ग्रहण कर ली है, जिससे पुराणोंमें कुछ ऐसी बातें भी आ गयी हैं, जिनकी चर्चा वेदोंमें नहीं है। परन्तु निष्पक्ष दृष्टिसे विचार करनेपर वेदों और पुराणोंका अद्भुत साम्य दिखाई देता है।

१—पहले दोनोंकी पद्य-संख्याकी ही बात लीजिये। पातञ्जल महाभाष्यमें लिखा है कि, सामवेदकी १०००, यजुर्वेदकी १०१, ऋग्वेदकी २१ और अथर्ववेदकी ९ शाखाएँ हैं; परन्तु ११३१ शाखाओंमेंसे ग्यारह ही प्राप्य और प्रचलित हैं। उधर शिवपुराण (रेवामाहात्म्य) में लिखा है कि, १ अरब श्लोकोंमें पुराण परिपूर्ण है; परन्तु आज कल कुछ ही लाख श्लोक प्राप्य और प्रचलित हैं। ऋग्वेद (१०।११४।८)के मतसे ऋग्वेदकी शाकल-संहिताकी पद्यसंख्या १५००० है; परन्तु इस संहितामें बहुत कम (१०४६७) पद्य-संख्या पायी जाती है। श्रीमद्भागवतमें विष्णु-पुराणकी पद्य-संख्या २३००० और प्रो॰ विलसनके मतमें

७००० है; परन्तु टीकाकार श्रीधर स्वामीके कथनानुसार १००० ही उपलब्ध हैं।

२—पुराणोंमें जिन इन्द्र, वरुण, अग्नि, सूर्य, वायु, प्रजापति, ब्रह्मा, कृष्ण, विष्णु, राम, वामन, वाराह आदिकी उपासना और कथा लिखी है, उन सबकी कथा वेदोंमें भी है। इन देवताओंके सिवा वेदोंमें ईश्वर, परमेश्वर, परमात्मा आदिका स्पष्ट नामतक नहीं है; परन्तु पुराणोंमें एकेश्वर-वाद और निराकारवादकी भी बहुत कुछ चर्चा है। उपनिषदोंमें जो आत्मा, पुरुष, 'यह,' 'वह' आदिका तत्व-परिज्ञान लिखा है, उसका प्राञ्जल और प्रस्फुटित रूप पुराणोंमें देखनेको मिलता है।

३—ऋग्वेद (१०।६३।१४) में रामावतारका उल्लेख है। वैदिक संहिताओंमें श्रीकृष्णावतारकी बात भी लिखी हुई है। छान्दोग्योपनिषद् (३।१७) और तैत्तिरीय आरण्यक (१०।१।६) में भी श्रीकृष्ण-कथन है। सायणाचार्यने अपने वेद-भाष्य (ऋग्वेद, ६।४७।१८) में लिखा है कि, "अत्यन्त प्राचीन वेद-व्याख्याता भी यहाँ (इस मंत्रमें) अवतार प्रसङ्ग मानते हैं।" ऋग्वेद (१।२२।१७–१८) में सायणाचार्यने वामनावतारकी कथा मानी है। जो कोई निष्पक्ष पुरुष इस मन्त्रको पढ़ेगा, उसे स्पष्ट ही यह बात विदित हो जायगी। शतपथब्राह्मण (१।२।५।१ से ७) में वामनावतारकी कथा और भी स्पष्टरूपसे वर्णित है। इसी तरह शतपथब्राह्मण (१।८।१।२ से १०) में मत्स्यावतार, तैत्तिरीय आरण्यक (१।२३।१) और शतपथ-ब्राह्मण (७।४।३।५) में कूर्मावतार, तैत्तिरीय ब्राह्मण (१।१।३।५) और शतपथ-ब्राह्मण (१४।१।२–११) में वाराहावतार, ऋग्वेद (५।१।११—३।८।६) और वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड (१५।१६ और २०।२१) में रामावतार और भगवद्गीता (४।६) में ईश्वरावतारकी यथेष्ट चर्चा है। ऋग्वेदके अनेक स्थानों (८।८६।१२,४।१८।११,४।३।७,२।१।३, ३।६।४) में पुराणोक्त विष्णु भगवान्‌की पूजा-अर्चनाका प्रसङ्ग है।

ऋग्वेदमें शिवजीका रुद्र नाम अत्यन्त प्रचलित है। यजुर्वेदकी रुद्राष्टाध्यायीका तो बहुत प्रचार है ही। शतपथब्राह्मण (६।१।३।७––१६) और शाङ्खायन-ब्राह्मण (६।१।१-६) में महादेवकी विकसित गाथा है। अथर्ववेद (६।७।७) में महादेव और (६।२।५) पशुपतिका उपाख्यान है। वाजसनेयसंहिता (३।२७) में अम्बिका और (१६।१) शिवाका स्पष्ट उल्लेख है। उधर पुराणोंमें तो अवतार-वादका प्राधान्य है ही।

४—पुराणोल्लिखित इतिहासोंका भी वेदोंमें बहुत प्रसङ्ग है। ऋग्वेद (४।४,४।३ और ४।१८) में क्रमशः युद्धागमन, ऐरावत हस्ती और उच्चैःश्रवा अश्वकी कथा तथा इन्द्र और कुत्स राजाओंका वर्णन उल्लिखित है। ऋग्वेद (१।२४) में शुनःशेपकी गाथा और इसी वेद (१।८४।१३) में इन्द्र द्वारा दधीचिकी हड्डियोंसे वृत्र-वधकी आख्यायिका लिखी है। सत्यव्रत सामश्रमी और शाकटायन भी इस अन्तिम मन्त्रमें यही अर्थ मानते हैं। इसी प्रकार ऋग्वेद (१।१२५,१।५१।२०, १।३, १।१८, १।१०४,७।११६, ७।१७४, ७।१८, ८।२५।२२, ८।२१।१७, ३।५१।७, ४।१८ और २८) के नाना स्थलोंपर स्वनय, दिवोदास, ऋजिश्वा, सुश्रवा, बृहद्रथ, यदु, भुज्यु, तुग्र, दुर्योधि, कृष्णदस्यु, अयु, कुयव, कुत्स, सुदास, शर्याति, शार्यात, अत्रि, अग्निवेश, चित्र, वस आदि-आदि महाराजाओंका इतिहास पाया जाता है। यम-यमी (ऋ० १०।१०) और उर्वशी-पुरुरवा (ऋ० १०।९५।२) की कथाएँ भी हैं। यह लिखनेकी आवश्यकता नहीं कि, पुराणोंमें उक्त इतिहास और आख्यानोपाख्यान आलङ्कारिक भाषामें विकसित हैं।

हाँ, वेदोंके देव-रहस्य, अवतार-वाद और इतिहासके सम्बन्धके जितने मन्त्र हैं, उनके अर्थोंमें पर्याप्त विवाद भी है। कुछ वेदप्रेमी वेदोंमें उपलब्ध देव-नामोंको ईश्वरके ही नामान्तर्गत करते हैं—यद्यपि ऐसा करते उन्हें क्लिष्ट-कल्पनाका अवश्य सामना करना पड़ता है। अवतार-वाद और

इतिहासवाले मन्त्रोंसे भी वे अपना अभीष्ट मतलब निकालते हैं—उनमें अवतारकी सिद्धि और इतिहासकी चर्चा वे नहीं पाते। वेदोंके अतिरिक्त अन्यान्य हिन्दूशास्त्रोंके सूत्र-श्लोकोंका भी वे अर्थ पलट डालते हैं। हाँ, यह बात भी है कि, जिस स्थलका ये सज्जन अर्थ नहीं पलट सकते, उसे प्रक्षिप्त भी मान बैठते हैं! जब ये देखते हैं कि, गीताका विश्व-रूपदर्शनवाला एकादश अध्याय माननेसे श्रीकृष्णको ईश्वरावतार मानना पड़ेगा, तब उसे प्रक्षिप्त कह डालते हैं! परन्तु अर्थसम्बन्धी मत-द्वैध अत्यन्त प्राचीन है। मीमांसा और सांख्य-दर्शनोंमें ईश्वर-खण्डनमें अनेक सूत्र हैं और उनके अनेक प्राचीनतम भाष्य भी इसी पक्षके हैं; तो भी अपनी धुनके पक्के कितने ही सज्जन उन सूत्रों का अर्थ बदलकर सेश्वर साङ्ख्य और सेश्वर मीमांसाकी कल्पना कर ही डालते हैं! कुछ सज्जन तो अभिवादन या प्रणामको भी ठीक ही समझते हैं; परन्तु "नमस्ते" के ही मण्डनमें और उसका अबाध व्यवहार करनेमें समय और शक्तिका अवश्य "सद्व्यय" करते हैं!

सर्वसाधारणके लिये इस मर्जकी कोई दवा नहीं है। उन्हें चाहे जैसे अर्थके भुलावेमें डालिये, अल्पबुद्धिता या निर्बुद्धिताके कारण, संस्कृतसे अनभिज्ञ होनेके कारण, उन्हें वही मानना पड़ेगा। वेद-मन्त्रोंसे उन्हें चाहे रेल, तार, डाक, मोटर, छापाखाना, फुटबाल, क्रिकेटका रहस्य समझा दीजिये, चाहे गोमांस-भक्षण और नरबलिका तत्त्व बता दीजिये अथवा उनके सामने वेदोंको "बेगर्स बास्केट" (*Beggar's basket*) या "गड़रियेका गीत" कह दीजिये, वे मानेंगे ही। तथापि अर्थके पचड़ेमें आप जितना ही जन-साधारणको डालेंगे, उतना ही उनका संशय-वाद प्रबल होता जायगा। इससे हिन्दूधर्मकी हानि है। जब कि, लोकमान्य तिलक जैसे दिग्गज विद्वानको भी गीताकी साम्प्रदायिक भाष्य-टीकाओंके जालमें जकड़ जाना पड़ा था, तब जनसाधारणकी कौन कथा? अन्तको, लोकमान्यने, सब टीकाओंको एक तरफ रखकर, गीताका बार-बार पारायण किया, जिससे उन्हें तात्त्विक "गीता-रहस्य" का बोध हुआ। हमारे विचारसे यही उपाय उन लोगोंके लिये भी लागू है, जो सब्राह्मण मन्त्र-भागका तात्पर्य समझनेके अधिकारी हैं। हमारा विश्वास है कि, यदि परस्पर-विरुद्ध वेदोंकी भाष्य-टीकाओंको अलग करके मूल वेदोंका पारायण किया जाय, तो उनमें देव-तत्त्व, अवतारवाद और इतिहासकी पर्याप्त सामग्री मिलेगी। दूसरी बात यह है कि, वेदोंके जितने प्राचीन भाष्यकार हैं, वे सब वेदोंमें देव-पूजा, अवतार-कथा और इतिहास मानते हैं। वेदोंके जर्मन और अंग्रेज टीकाकार तथा समालोचक भी वेदोंमें देवपूजा आदि तीनों विषय मानते हैं। जब वेदोंके व्याख्या-रूप धर्मशास्त्र, पुराण, तन्त्र आदिमें ये तीनों विषय भरे पड़े हैं, तब वेदोंमें इन विषयोंका मूल माननेमें क्या आपत्ति है! जब कि, वेद "त्रिकालदर्शी", ज्ञानभाण्डार हैं, तब उनमें इतिहास होनेसे उनका महत्त्व बढ़ेगा, न कि, घटेगा! क्या सर्वतः परिपूर्ण ईश्वरीय ज्ञान (वेद) से इतिहास पृथक् है? क्या ईश्वरके लिये भविष्य कथा अविदित है? फलतः अवतार, इतिहास, देवोपासना आदि विषयोंमें वेदों और पुराणोंका अपूर्व साम्य है और यह साम्य या एकत्व हिन्दू-धर्मका सजीव हृदय है। हमारी तो यह भी धारणा है कि, इसी समताके कारण पुराणोंने वेदोंका संसारमें जितना गौरव और महत्त्व बढ़ाया है, उतना किसी भी शास्त्र, सम्प्रदाय या पन्थने नहीं। इसलिये पुराणों और वेदोंमें यहाँ विभेद करना अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारना है।

पुराणपर शंकाएँ

१—एक दल कहता है—"किसी पुराणमें शिवको कर्ता-धर्ता माना गया है, किसीमें ब्रह्माको और किसीमें विष्णुको। उधर ब्रह्मपुराणमें सूर्यसे ही सब देवोंकी उत्पत्ति कही गयी है। देवीभागवतमें देवी ही सबकी अधिष्ठात्री हैं। इस तरह परस्पर-विरुद्ध सम्प्रदाय-वाद रचाकर पुराण-

कारने हिन्दूधर्मको खण्ड-विखण्ड कर डाला है। इसलिये पुराणोंको अमान्य कर उनका प्रचार रोकना चाहिये।"

हमारे विचारसे, मनुष्योंके रुचि-वैचित्र्यके कारण, उनके लिये विविध-देवोपासना स्वाभाविक और अनिवार्य है। क्या घोर तमोगुणी और पूर्ण सात्विकके लिये एक ही तरहकी उपासना-पद्धति कभी उपयुक्त हो सकती है? जिसका मनोबल और बुद्धि-वैभव जिस श्रेणीका है, उसके लिये उसी श्रेणीकी उपासना उपयुक्त होगी। अपने प्रबल प्रताप और अखण्ड तेजसे जगत्में उथल-पुथल मचानेवाली बुद्धि रुण्ड-मुण्डधारिणी चण्डिकाकी शक्तिमयी उपासना छोड़कर कभी मृदुल-मञ्जुल कमल-नयन श्यामघन विष्णुकी उपासना कर सकेगी? भङ्ग-धतूर छाननेवाले अडबङ्गी बम-भोलानाथका अलहड़ भक्त कठिन-यम-नियम-नियत सूर्योपासना कर सकेगा? जब कि, प्रकृति ही त्रिगुणमयी है, तब उपासना और पन्थ एकसे कैसे होंगे? क्या बिशपों और पीर-पैगम्बरोंके लाख प्रयत्न करनेपर भी ईसाइयोंमें प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक तथा मुसलमानोंमें शिया, सुन्नी, वहाबी, कादियानी सम्प्रदाय नहीं हो गये हैं? परन्तु हिन्दू-धर्ममें तो अधिकारि-भेदानुसार विविध देवोंकी विभिन्न उपासनाओंकी विधियाँ हैं। संसारमें जितने धर्म हैं, वे तो, सबके सब, बल्कि "सब धान बाईस पसेरी"के अनुगामी हैं—उनके यहाँ बच्चे-बूढ़े, ज्ञानी-अज्ञानी, तार्किक-अन्धभक्त, सबके लिये एक ही उपासना और एक ही उपास्य है। परन्तु हिन्दूधर्ममें प्रेतपूजकसे लेकर निर्गुण ब्रह्मोपासकतकके लिये, शक्ति और अधिकारके अनुसार, अलग-अलग, हल्का-भारी बोझ है, अलग-अलग प्रशस्त-अप्रशस्त पथ है; और, यह विशेषता भी हिन्दू-धर्मको सर्वांशतः पूर्ण धर्म बनाये हुए है।

क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर आदि पाँच तत्वोंसे यह संसार और मनुज-शरीर बना हुआ है। इनमेंसे कहीं किसीकी प्रधानता है और कहीं किसीकी। किसी शरीरमें आकाशतत्त्वकी प्रधानता है और किसीमें पृथ्वी-तत्वकी। आकाश-तत्त्वके अधिपति विष्णु, वायु शिव, अग्निकी देवी, पृथ्वीके सूर्य और जलके गणेश हैं। इसलिये जिस व्यक्तिमें जिस तत्त्वकी प्रधानता होगी, वह उस तत्त्वके अधिपतिकी अवश्यमेव उपासना करेगा; क्योंकि उसके लिये वही स्वाभाविक है। हिन्दू-शास्त्रोंमें कर्मका रहस्य बतानेवाले महाभारत और वेदका ब्राह्मणभाग है, उपासनाका रहस्य बतानेवाले पुराण और वेदका मंत्रभाग है तथा ज्ञानका रहस्य बतानेवाले रामायण और वेदका उपनिषद्भाग है। चूँकि प्रधानतया उपासना-तत्त्वको समझाना पुराणका मुख्य कार्य है; इस लिये उसमें पञ्च-देवोपासनाका विस्तृत विवरण पाया जाता है। ऐसा करते हुए प्रसङ्ग-वश देव-विशेषकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन कर जाना स्वाभाविक बात है और पुराणकारने संसारकी भलाईके लिये ही ऐसा किया है।

२—एक पक्षकी यह दलील है—"पुराणोंमें बौद्ध, जैन आदिकी कथा तथा भविष्य-राजवंश-वर्णन है; इसलिये पुराण प्राचीन नहीं, आधुनिक ग्रन्थ हैं।"

महर्षि पतञ्जलिने अपने योग-दर्शनमें लिखा है—"परिणाम-त्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम्" अर्थात् धर्मपरिणाम, लक्षण-परिणाम और अवस्था-परिणामके संयमसे भूत, भविष्यत् कालोंका ज्ञान हो जाता है। कृष्णद्वैपायन व्यासकी जीवनी पढ़नेपर विदित होता है कि, वे पूरे योगी थे और उन्होंने भली भाँति परिणाम-त्रयका संयम कर लिया था; इसलिये भविष्यका इतिहास, अपने पुराण-ग्रन्थमें, समावेश कर लेना उनके लिये कुछ असम्भव नहीं था। फिर भी, जब कि, ज्योतिःशास्त्रके साधारण ज्ञानसे ही लोग वर्षोंमें आनेवाले सूर्य, चन्द्र आदिके ग्रहणोंको जान जाते हैं, तब व्यास जैसे योगीके लिये भविष्य-ज्ञान असम्भव कैसे कहा जाय? इसके सिवा पुराणोंमें कल्कि-अवतार, कलियुगान्त-विवरण आदि ऐसे भी विषय आये हैं, जिनके होनेमें हजारो वर्षोंकी देर है। इस ऐतिहासिक

विचारसे तो अभीतक पुराणोंका रचना-काल ही नहीं आया ! यदि भविष्य या इतिहासके वर्णनके कारण पुराणोंको आधुनिक मान लिया जाय, तो वेद भी आधुनिक ही कहे जायँगे; क्योंकि उनमें भी ऐतिहासिक आदि विषय हैं।

३—तीसरी शङ्का यह की जाती है कि, "वास्तवमें पृथ्वीका व्यास ८००० मील है; परन्तु पुराणोंमें पृथ्वीका आकार ५० करोड़ योजन माना गया है।"

बात यह है कि, आधुनिक पुरुषोंने पृथ्वीका व्यास ८ हजार मील या एक हजार योजनका माना है और पुराणोंमें घन-फलसे पृथ्वीका ५० करोड़ माप बताया गया है। यह नियम है कि, किसी गोल पदार्थका घन-फल निकालनेके लिये व्यासको तीन बार गुणा कर यानी घनकर उसका आधा हिस्सा किया जाता है। सो १ हजारका, इस रीतिसे, घन करनेपर एक अरब हुआ, जिसका आधा ५० करोड़ योजन हुआ; जैसा कि, पुराणोंमें पृथ्वीका माप लिखा है।

४—कुछ लोग कहते हैं कि,—"वेदादि शास्त्रोंसे विपरीत ३३ करोड़ देवताओंकी गप्प पुराणमें हाँकी गयी है।"

वेदादिमें ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, इन्द्र और प्रजापतिका प्रधानतः उल्लेख है। परन्तु दैवी शक्तियाँ अनन्त हैं। पुराणकारने उक्त ३३ देवों और देवशक्तियोंकी अनन्तताको ध्यानमें रखकर "३३ करोड़" कह डाला है। यहाँ व्याकरणके "प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति" का अनुधावन किया गया है।

५—एक सम्प्रदाय यह कहकर पुराणोंकी हँसी उड़ाता है कि, "उनमें विज्ञान-विरुद्ध सात समुद्रोंका उल्लेख है।"

संसारमें मुख्यतः सात रस अत्यधिक प्रचलित हैं—जल, दूध, दही, घृत, सुरा, ईख और लवण। इन सातोंकी अनन्तता या अनन्त व्यापकताका विचार कर पुराणकारने इनको समुद्र मान लिया है। इस मन्तव्यसे केवल इन रसोंकी विराट् सत्ता दिखाना ही अभीष्ट है।

६—बहुत लोग कहते हैं—"पुराण द्रौपदीसी सतीको पञ्चपतियोंवाली कहते हैं; इसलिये वे ढकोसले हैं।"

इसका उत्तर कुमारिल भट्टने यों लिखा है—"मार्कण्डेय पुराणमें कथा है कि, ब्रह्महत्या लगनेपर इन्द्रके पाँच अंश हो गये, जो १ धर्म, २ पवन, ३—४ अश्विनीकुमारद्वय और ५ इन्द्रमें गये। उधर द्रौपदीको एक ही इन्द्रसे पाँच पति मिलनेका वर था। इसलिये एक ही इन्द्र, एक ही पुरुष, द्रौपदीके पति-रूपसे, पाँच रूपोंमें, अवतीर्ण हुए। द्रौपदी अग्निकुण्डसे प्रकट हुई थी, लक्ष्मीका अवतार थी; इसलिये उसे मानुषी स्त्रीका नियम दूषित भी नहीं कर सकता।"

इस तरह पुराणोंके ऊपर जो छोटी-छोटी नाना शङ्कायें उठा करती हैं, उनका, बड़ी सावधानीसे, कुमारिल भट्ट, काशीके स्वामी दयानन्दजी बी०ए० और राय बहादुर पूर्णेन्दुनारायण सिंह आदिने समाधान किया है। जिज्ञासु पुरुषोंको इन महोदयोंके ग्रन्थ देखने चाहिये। इसके सिवा पुराणोंकी शंकाओंका निराकरण पुराणोंमें भी निहित है। यदि किसीके चित्तमें पुराणोंके लिये शंकाएँ भरी पड़ी हैं, तो उसे निरपेक्ष होकर विविध पुराण देखने चाहिये। इसके लिये समय और शक्ति अपेक्षित है; पर-मुखावलोकन नहीं। हाँ, शङ्काएँ करनेमें बहादुरी भी नहीं है, समाधान करनेमें है।

पुराणोंमें तीन तरहकी भाषाओंका प्रयोग है, जिनके नाम ये हैं—१ समाधि-भाषा, २ परकीय-भाषा और ३ लौकिक भाषा। समाधि-भाषाका एक नाम स्वभावोक्ति भी है। विष्णुपुराणमें सांख्यकी सृष्टिका वर्णन इसी भाषामें है। परकीय भाषाका व्यवहार दृष्टान्त-रूपसे होता है। सात्यकीय महिमा स्थापित करनेके लिये हरिश्चन्द्रका पुराणोंमें बार-बार दृष्टान्त देना इसी भाषाका लक्षण है। जन साधारणको समझानेके लिये समाधि-भाषाको कथान

रूप दे देना लौकिक-भाषाका कार्य है। इस भाषामें रूपकोक्ति और अतिशयोक्तिका आना भी, यत्र-तत्र, अनिवार्य है। महाभारतमें संसारकी अनित्यता और क्षण-भंगुरताका उपदेश देते हुए विदुरने धृतराष्ट्रसे इसी भाषाका प्रयोग किया है। उसमें संसारको कान्तार, रोगोंको हिंसू पशु, देहको कूप, कालको कूपका सर्प, आशाको कूपलता, हाथीको वर्ष, उसके छः मुखोंको छः ऋतु, बारह पैरोंको बारह मास, काले और सफेद चूहोंको रात और दिन, कामको भ्रमर और मधुको विषय-रूपसे वर्णन करके विदुरने संसारसे मुक्त होनेका उपाय बताया है। यदि इन तीनों भाषाओंको ध्यानमें रखकर पुराणोंका अध्ययन किया जाय, तो बड़ी आसानीसे शंकाओंका निवारण हो सकता है। इस भाषा-त्रयका विचार न करनेके कारण ही पुराणों-पर बहुतेरे वाहियात सन्देह उठा करते हैं।

एक बात और। पुराण-ज्ञाता कहते हैं—

"क्वचित्क्वचित्पुराणेषु विरोधो यदि दृश्यते।
कल्पभेदादिभिस्तत्र व्यवस्था सद्भिरिष्यते॥"

इसका तात्पर्य यह है कि, कहीं-कहीं पुराणोंमें विरोध प्रतीत हो, कहीं-कहीं पुराणोंकी कथाओंमें भेद मालूम पड़े या एक पुराण दो तरहका मालूम पड़े, तो यह समझना चाहिये कि, प्रत्येक द्वापर-युगमें व्यास द्वारा बार-बार पुराणोंका संग्रह-संकलन होनेके कारण ऐसे भेद आ गये हैं। परन्तु ऐसे भेद भी नाम मात्रके ही हैं। गवेषणा-परायणा और प्रतिभाशालिनी बुद्धि ऐसे सन्देहोंका अनायास निर्णय कर सकती है। संस्कृतका व्यवस्थित पठन-पाठन उठ जाने और विदेशियों-विधर्मियोंकी शिक्षा-दीक्षा ग्रहण करनेके कारण हिन्दू-शास्त्रोंपरसे हम लोगोंकी सात्त्विक श्रद्धा उठ गयी है; इसलिये हम अपने पूर्वजोंके शास्त्र-पुराणोंपर मन-माने सन्देह-जाल बिछाने लगते हैं। यह बहुत ही चिन्ता और परितापका विषय है। यह प्रवृत्ति जितनी जल्दी दूर हो, उतना ही शीघ्र हमारा मङ्गल होगा।

पुराणका रचना-काल

यह बात लिखी जा चुकी है कि, बहुत लोग पुराणको आधुनिक—बौद्ध-जैन-सम्प्रदायोंके पश्चात् विरचित—मानते हैं। परन्तु यह बात निर्मूल है, यह भी दिखानेकी चेष्टा की गयी है। हम यह भी लिख आये हैं कि, वेदादि शास्त्रोंमें पुराणोंका उल्लेख है; इसलिये पुराण उतने ही प्राचीन हैं; जितने वेदादि शास्त्र। बहुतसे तार्किक यह कहते हैं कि, "अष्टादश पुराण अर्वाचीन हैं; क्योंकि अत्यन्त प्राचीन कालके ग्रन्थोंमें इन १८ का नामोल्लेख नहीं है। फलतः प्रचलित १८ पुराण ४ या ५ सौ वर्षसे प्राचीन नहीं हैं।" आगेकी पङ्क्तियोंमें इसी तर्ककी समीक्षा की जाती है।

ब्रह्माण्डपुराण (अनुषङ्गपाद, ५४।१५१ से १६६) में लिखा है—"अठासी हजार ऋषि (शौनकादि) सूर्य या अर्यमाकी दक्षिण दिशामें आश्रित हैं। वे प्रजाकामी थे। परन्तु जिन अठासी हजार ऋषियोंने विराग धारण कर लिया, वे सूर्यकी उत्तर दिशामें अमरता प्राप्त किये हुए हैं।" ये श्लोक विष्णुपुराण (३।८) और मत्स्यपुराण (१२४।१०२ से ११०) में भी हैं। ये ही वचन पद्म-पुराण (सृष्टिखण्ड, ३।१२०) और फिर ब्रह्माण्डपुराण (६२।१०३ से १०४) में भी आये हैं।

इन श्लोकोंमेंसे दो श्लोक आपस्तम्ब-धर्म-सूत्र (२।२३।३ से ५) में ज्यों-के-त्यों आये हैं और धर्म-सूत्र-कारने स्पष्ट लिख दिया है कि, "ये दोनों श्लोक पुराणोंसे लिये गये हैं।" इस उद्धरणसे मालूम पड़ता है कि, इस धर्म-सूत्रके बहुत पहले ब्रह्माण्डपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण और मत्स्यपुराण घर-घर प्रचलित थे और उनका इतना महत्त्व था कि, धर्मसूत्रकारको, अपने कथनकी पुष्टिमें, उनके ही प्रमाण देने पड़े। पाठकोंको यह बात भी ध्यानमें रखनी चाहिये कि, हमारे १८ पुराणोंमेंसे अन्तिम पुराण ब्रह्माण्डपुराण है। आगे चलकर सूत्रकारने (आपस्तम्ब—

धर्मसूत्र, २।२४।१—६) भविष्यपुराण (अनुषङ्ग, ८।२२ से २३) का श्लोक उद्धृत किया है, जिसका तात्पर्य यह है कि, "प्रलय-पर्यन्त पितर लोग स्वर्गमें रहते हैं और सृष्टि होनेपर प्रजा-कामना करते हैं ।" इस वचनसे यह भी विदित होता है कि, इस धर्मसूत्र-युगमें भविष्य-पुराणका अत्यन्त गौरव स्थापित हो चुका था। जिन पद्म, मत्स्य, विष्णुपुराणोंका उद्धरण उक्त धर्मसूत्रमें है, उन सबमें अठारहों पुराणोंकी नाम-गणना है और मत्स्यपुराणमें तो सब पुराणोंकी श्लोक-संख्या भी लिखी हुई है। इसलिये सूत्रकारके समयमें अष्टादशपुराणका प्रचार और महत्त्व अनायास ही विदित होता है ।

भगवान् शङ्कराचार्यने छान्दोग्योपनिषद् (३।६) में पुराणका वचन उद्धृत किया है। शङ्कराचार्य्यने मार्कण्डेय-पुराणका भी श्लोक उद्धृत किया है। बाणभट्टने "श्रीहर्ष-चरित" में मार्कण्डेयपुराणके देवी-माहात्म्यसे विषय संग्रह किया है और एक पवनोक्त पुराणका भी उल्लेख किया है। मयूरभट्टने सौरपुराणसे "सूर्यशतक"का विवरण-संग्रह किया है। ब्रह्मगुप्तने विष्णु-धर्मोत्तर-पुराणके आधारपर "ब्रह्म-सिद्धान्त" लिखा है। अलबरूनीने आदित्य, वायु, मत्स्य, विष्णुपुराणोंसे प्रमाण उद्धृत किये हैं। राजा वल्लाल-सेनने ब्रह्म, अग्नि, वराह, कूर्म आदि पुराणोंके सिवा आद्य, शाम्ब, कालिका, नारसिंह, नन्दी आदि उपपुराणोंके वचनोंका भी उल्लेख किया है। अनेक पुराण-वचनों और शास्त्रीय आख्यानोंको उद्धृत कर श्रीयुत नगेन्द्रनाथ वसुने विष्णुपुराणको युधिष्ठिरके समय, गरुडपुराणको जनमेज-यके समय और मत्स्य तथा ब्रह्माण्डपुराणोंको अधिसीम-कृष्णके समय सङ्कलित (रचित नहीं) माना है।

इन उदाहरणोंपर विचार करनेसे मालूम होता है कि, जो लोग पुराणोंको आधुनिक ग्रन्थ (१५ वीं या १६ वीं सदीके) कहते हैं, वे भूल करते हैं। ऐतिहासिकोंने सिद्ध किया है कि, १२ वीं शताब्दीमें वल्लालसेन, ११ वींमें अलबरूनी एवं ब्रह्म-गुप्त, ७ वीं शताब्दीमें बाणभट्ट और मयूरभट्ट हुए थे। जब कि, उन्होंने एकाधिक पुराणों-उपपुराणोंका नामोल्लेख और उद्धरण दिये हैं, तब यह कैसे माना जा सकता है कि, पुराणोपपुराणोंकी रचना १५ वीं या १६ वीं शताब्दीमें हुई है? लोकमान्य तिलकके मतसे "संसारमें आजतक आचार्य शंकर-सा कोई ज्ञानी पुरुष पैदा ही नहीं हुआ" (गी० र० १६ पृष्ठ)। जब कि, विश्वके ऐसे सर्व-श्रेष्ठ ज्ञानीने नाना प्रमाणोंसे शारी-रक-भाष्य (१।३।३३) में पुराणोंकी महनीयता और प्रामाणिकताको मुक्त कण्ठसे स्वीकार किया है तथा मार्कण्डेयपुराण आदिका, अपने वचनोंकी पुष्टिमें, प्रमाण दिया है, तब क्योंकर पुराणोंको अर्वाचीन ग्रन्थ कहा जा सकता है?

६३६ सन्से भारतपर यवनोंका आक्रमण होने लगा था; परन्तु शङ्कराचार्यने कहीं भी इनका उल्लेख नहीं किया है! पारसियोंकी धर्म-पुस्तकोंमें लिखा है कि, "जब सिक-न्दर भारतवर्षमें गया, तब शङ्कराचार्य नामके एक साधु धर्मोपदेशमें कटिबद्ध थे।" सिकन्दर विक्रमीय संवत्से २७० वर्ष पूर्व भारतपर चढ़ाई करने आया था। शङ्करा-चार्यके शिष्य कहते हैं कि, "यवनोंके आनेसे १०० वर्ष पहले शङ्कराचार्यने बौद्धोंको परास्त किया था।" सेल्ड साहबके मतानुसार स्वामी शंकराचार्य बुद्धकी मृत्युके ६० वर्ष बाद पैदा हुए थे। इन्हींके मतानुसार ईसासे ४०० वर्ष पहले बुद्ध भगवान् हुए हैं। यदि इनका मत मान लिया जाय, तो प्रायः साढ़े तेईस सौ वर्ष हुए, जब कि, शङ्कराचार्यने पुराणोंका वचन उद्धृत किया था। यदि इस कालमें कुछ घटी-बढ़ी की जाय, तो भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि, शङ्कराचार्यके बहुत पहले हमारे १८ पुराण हिन्दू-जातिमें धर्म-पताका फहरा रहे थे। वर्णाश्रमधर्मकी प्रतिष्ठाके लिये भगवान् शङ्कर और बौद्धोंके बीच जो भयङ्कर संघर्ष चला था, वह सबको मालूम है। यदि

उस संघर्षके पश्चात् पुराणोंकी रचना हुई होती, तो अवश्य ही किसी न किसी पुराणमें उसका विवरण रहता। जिन शङ्कराचार्यने हिन्दू-जाति और हिन्दूधर्मकी सत्ता स्थिर की है और जिन्हें सनातनधर्मी अवतारतक मानते हैं, उनका किसी भी पुराण, उपपुराण, अतिपुराण और औपपुराणमें नामतक न आना क्या इस सिद्धान्तको स्थिर नहीं करता कि, "शंकराचार्यके बहुत पहले पुराणोपपुराणादिकी रचना हुई थी ?"

ईसामसीहके तीन सौ सत्तर वर्ष पहले नन्दने राज्य पाया था और उसके पीछेके राजाओंका शासन-काल सौ वर्षोंमें ही समाप्त हो गया है। इस विचारको ध्यानमें रखकर और पुराणोंकी भविष्य-राजवंशावलीकी जाँच-पड़ताल करके प्रो० विलसनने लिखा है—"साधारणतः ईसाके तीन सौ वर्ष पहले पुराणोंकी रचना हुई है; परन्तु कुछ ऐसे प्रमाण हैं, जिनसे तो यह भी मालूम पड़ता है कि, पृथ्वीकी किसी भी जातिकी कल्पनामें जो दिन नहीं आ सकता, उतने दिनकी उनकी रचना स्थिर की जा सकती है।"

अनाम और कम्बोडिया टापुओंमें कुछ ऐसी शिला-लिपियाँ पायी गयी हैं, जिनसे पता चलता है कि, ईसाके १००० हजार वर्ष पहले इन द्वीपोंमें पुराण-कथित शिव-विष्णु-सूर्य आदिकी उपासना, पूर्ण रीतिसे, प्रचलित थी। प्रायः इसी समय बौद्धोंका "ललितविस्तर" ग्रन्थ रचा गया था। उससे भी यह बात पुष्ट होती है। बुद्धदेवकी जीवनीमें भी इन उपासनाओंका उल्लेख है। ईसाके ७७७ वर्ष पहले जैन-धर्म-प्रवर्त्तक स्वामी पार्श्वनाथ हुए थे। उनकी जीवनीसे भी पता चलता है कि, उस समय पौराणिक उपासनाओंकी यथेष्ट प्रतिष्ठा थी। ऊपर जिस आपस्तम्ब-सूत्रका उल्लेख हुआ है, उसके सम्बन्धमें, उसके अनुवादक बुहलर साहबने, काल-निर्धारण करते हुए, लिखा है कि, "पाणिनिके पहले आपस्तम्ब-सूत्रकी रचना मानी जा सकती है।" अनेक पौरस्त्य और पाश्चात्य विद्वानोंकी राय है कि, ईसाके छः सौ वर्ष पहले पाणिनि हुए थे। यदि यह सिद्धान्त मान लिया जाय, तो कमसे कम ढाई हजार वर्षके पहले १८ पुराणोंकी रचना मानी जा सकती है। परन्तु आपस्तम्ब-धर्मसूत्रमें जैन, बौद्ध धर्मोंका जरा भी आभास नहीं पाया जाता; इसलिये इस धर्मसूत्रको ईसाके ७ या ८ सौ वर्ष पहले भी प्रचलित-विरचित माना जा सकता है और इस सूत्र-ग्रन्थसे शताब्दियों पहले अष्टादश पुराणोंकी रचनाका समय मान लेनेमें कोई अड़चन नहीं है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि, आपस्तम्ब-धर्म-सूत्रमें पद्मपुराणके वचन उद्धृत हैं और पद्मपुराणके रेवा-माहात्म्यमें स्पष्ट उल्लिखित है कि, "सत्यवतीके पुत्र कृष्णद्वैपायन व्यास अठारहों पुराणोंके वक्ता हैं।" इस सूत्रके सिवा वेदादिमें पुराणोल्लेखकी बात लिखी ही गयी है। इस विवेचनसे मालूम होता है कि, द्वापर-युगमें ही व्यासजीने अष्टादश पुराणोंका पुनः निर्माण या प्रचार किया था और इस कालके बहुत पहले पुराण या पुराण-संहिता चार भागोंमें विभक्त थी. उस समयसे भी अनेक शताब्दियों या युगोंके पहले व्यास-देवने ब्रह्माजीसे पुराणसंहिता पायी थी तथा उस अगम्य समयसे भी बहुत पहले प्रथम-प्रथम प्रजापति ब्रह्माने, वेदोंके साथ, समाधि-गम्य स्मृति द्वारा, पुराण-विद्याको प्राप्त किया था।

कदाचित् निष्पक्ष अनुमान और विचार द्वारा यह मथितार्थ निकलता है कि, पुराणसंहिता रचना-पद्धतिसे उसी तरह बाहर है, जिस तरह चारो वेद। कमसे कम सनातन-धर्मियोंकी तो यही धारणा है। (क्रमशः)

"राधापरिणयपर" एक दृष्टि

साहित्याचार्य प० सुरेन्द्र झा "सुमन," साहित्यालङ्कार

हम भारतीयोंको केवल इस बातका ही गर्व नहीं है कि, हमारे देशकी प्राकृतिक सम्पत्ति दुनियाके और देशोंसे बढ़कर है अथवा गौरी-शङ्करकी सबसे ऊँची चोटी, गङ्गा, ब्रह्मपुत्र जैसी दूधकी धारा बहानेवाली नदियाँ, उत्तरका उपजाऊ समतल मैदान, काश्मीरकी सौन्दर्य्यमयी भूमि और हीरेकी खानें यहाँ मौजूद हैं; बल्कि, गौरवसे, हम अपना सिर इसलिये उठाते हैं कि, हमारे दर्शनका हिमालय बहुत ऊँचा, साहित्यका समुद्र बहुत गहरा, विज्ञानका समतल मैदान बहुत लम्बा-चौड़ा और उपजाऊ है। अब भी संस्कृतभाषा की खानमें, अवमान-धूलिसे ढके ही सही, बहुमूल्य हीरे भरे पड़े हैं।

एक कविका कहना है—

''यस्याश्चौरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरो
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः
केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय ॥''

संस्कृत-सरस्वतीका जन्म गौरवपूर्ण है। उसे श्रुति-माताके पवित्र गर्भसे उत्पन्न होनेका सौभाग्य प्राप्त है। आदिकविके समय यह निरी बालिका थी, फिर भी इसकी तोतली बोली मिठास-घुली थी। धीरे-धीरे भगवान् वेदव्यासके आसनके पास बैठकर गौरवमयी प्राचीन कहानी सुनती हुई, कुरुक्षेत्रके संग्रामका गान गाती हुई, शान्ति और अनुशासनके पाठ पढ़ाती हुई, इसने बड़े-बड़े दार्शनिकोंकी कुटीमें रहकर बचपन बिताया है।

लेकिन अब संस्कृत-बालिका युवती हो चली। "कितै न अवगुन जग करत नै वै चढ़ती बार" वाली बात सोलहो आने ठीक बैठी। विलासकी शय्या बिछ गयी, रति-रागमें, विरह-विलापमें, ही समय बीतने लगा। शृङ्गारका वसन्त था, कालिदास रसाल-रस बरसा रहे थे। भवभूतिकी फुलवाड़ी फूलोंसे लदी थी। जयदेवकी कूक हृदयमें हूक पैठा रही थी। बाणके पञ्चबाण मनको विह्वल बना रहे थे। "हर्ष" की सीमा न थी ! हाँ, बीचमें "शङ्कर," "वाचस्पति," "उदयन" जैसे बड़े-बूढ़े परलोककी भी याद दिला जाते थे; पर रसकी वृष्टि रुकी नहीं। जगन्नाथतक यह हाल बना ही रहा।

पर समय एकसा नहीं रहता। अक्षय-यौवना सुर-भारती यद्यपि कभी बूढ़ी होनेकी नहीं; पर उसके परिचारक नहीं रहे, कोई कविताका प्याला भरने वाला नहीं रहा और न 'दर्शन' देनेवाला ही !! इसीसे उसी अमर भाषाको "मृत" पदकी भर्त्सना सुननी पड़ी ! हाय !!!

तो भी, इस गये-गुजरे युगमें भी, संस्कृतकी उजड़ी हुई फुलवाड़ीमें कभी-कभी कोई फूल खिल ही पड़ता है। म० म० प० गङ्गाधर शास्त्री सी० आई० ई०

का "अलिविलास-संलाप", म० म० प० रामावतार शर्मा एम० ए० का "परमार्थदर्शन" और म० म० प० बच्चा झा का "सुलोचना-माधव" हालके ही लिखे हैं।

मैं जिसके विषयमें आज कुछ कहना चाहता हूँ, वह "राधा-परिणय" नामकी काव्यमाला अभी-अभी पिरोई गयी है। इसके मालाकार हैं मैथिल-श्रोत्रिय प० बदरीनाथ झाजी। इसमें किस प्रकारके पुष्पोंका ग्रथन हुआ है, उसे तो मालाको हाथमें लेकर ही जाना जा सकता है। आज मैं कुछ बानगियाँ आगे रखनेकी चेष्टा करता हूँ। आशा है, भावुक मिलिन्द उनका रसास्वाद करेंगे।

इस काव्यके निर्माणके विषयमें कवि कहते हैं—

"दीव्यत्सु दिव्यकाव्येषु मयाप्येतद्वितन्यते।
पारावारेषु पूर्णेषु पल्वलं किं न खन्यते॥"

अर्थात् सैकड़ो सुन्दर काव्य जगमगा रहे हैं, फिर भी मैं यह लिख ही रहा हूँ। भरे-पूरे महासागर लहरें ले रहे हैं; इसलिये क्या कोई बावली नहीं खुदाता? कैसी युक्ति रही!

लेखक कबूल करते हैं कि, उनकी रचनामें भूलें होंगी; फिर भी उनकी सिफारिश सुनने लायक है—

"प्रबन्धोऽयं सदोषोऽपि प्रगुणोऽर्चेत्तु पश्यतः।
प्रीणातीक्षुः कठोरोऽपि मधुरो न किमश्नतः॥"

इस प्रबन्धमें त्रुटियाँ हैं ही, फिर भी देखने वालोंको—काव्यकी बारीकी परखनेवालोंको—इसमें गुण दीख पड़ें। क्या (चबानेमें) कड़ी भी ईख खानेवालोंको स्वादमें मीठी नहीं मालूम होती? क्या ही खूबसूरत दृष्टान्त है!

गोकुल-वर्णनके—

"अकृष्णां विलसत्कृष्णां सदुद्भवमनुद्भवम्।
विशालं भूरिगोशालं सदानवमदानवम्॥"

इस पद्यमें विरोधाभासके चमत्कारको देखते आगे चलिये—

"शिखासु केवलं बन्धस्तमिस्रासु परन्तमः।
कुल्यासु जीवनध्वंसः प्रमदासु च विभ्रमः॥"

केवल चोटी ही बाँधी जाती है। (कोई दण्डमें नहीं बाँधा जाता; क्योंकि अपराधियोंका वहाँ बिल्कुल अभाव है)। रातमें ही घना अँधेरा (तम) छाया रहता है। (तम (अज्ञान) का तो वहाँ पता ही नहीं)। नालेमें ही जीवनका ध्वंस होता है—यानी पानी गिरता है (जीवनका नाश नहीं होता, लोग खूब लम्बी जिन्दगी बिताते हैं)। स्त्रियोंमें ही विभ्रम-विलास है, (न कि लोगोंमें विशेष प्रकारका भ्रम है)। यहाँ मजेकी परिसङ्ख्या निबाही गयी है।

"यशोमती-शुक्तिमें कृष्णचन्द्र-मौक्तिकका अवतार हो गया। नन्दके सौभाग्यको देखकर ईर्ष्यासे रात मलिन और दुबली हो गयी है। (वस्तुतः भोर होने वाला है)। अपनी प्यारीको नष्ट होते देखकर निशापतिका चेहरा फीका पड़ गया है और उन्हें इस प्रकार उदास देखकर पतिव्रता ताराओंकी जानें तो पहले ही सूख गयीं।"

इस प्रकार वर्णन करते हुए कवि कहते हैं—

"कृष्णचन्द्रपरामर्शाद्दिग्भिस्त्यक्तं तमो महत्।
कृष्णा करुणया त्रातुमिवाम्बुच्छद्मनाऽवहत्॥"

कृष्णचद्रकी सलाहसे दिशाओंने विशाल अन्धकारको निकाल बाहर किया। इधर कृष्णा-कालिन्दीका हृदय दयासे उमड़ आया; उसने काले पानीके बहाने उसे अपने यहाँ ला टिकाया। चन्द्रमासे अन्धकार स्वतः भागता ही, तिसपर भी कृष्ण (काला(

विशेषण लगा था। "वैद्यो वैद्यं नटो नटं"के अनुसार अपने समान (काले) वर्णके अन्धकारको निकालनेकी उनकी राय बिलकुल स्वाभाविक थी। स्त्रीका हृदय बड़ा कोमल होता है। उसने दया कर उसे आश्रय दिया; यह भी स्वाभाविक हुआ।

प्रातः काल दिशाएँ साफ हो गयीं। सामने यमुनाकी नीली धारा बहती थी। ऐसी जगह यह उत्प्रेक्षा कैसी सुन्दर बनी, पाठक ही महसूस करें।

एक और कल्पना यहींपर देखिये—

"अनूरुरजको व्योम क्षौमा(ऽ)स्तं व्यधादलम्।

उषःप्रभाभरक्षारं समासज्य तमो मलम् ॥"

आकाशके कपड़ेपर अन्धकारका मैलापन बैठ गया है। धुलानेकी जरूरत है। मौकेसे अरुण धोबी भी आ पहुँचा है। फिर क्या, भोरके प्रकाशके सोरे लगा-लगाकर "झकाझक" कर दिया है। वाह ! कितनी खूबी है !!

प्रभात-वर्णनके कुछ और पद्य पढ़िये—

भोरका समय है। चन्द्रमा पश्चिम दिशामें लुढ़क चले हैं। इसपर कल्पनाकी दौड़ कितनी दूरतक है। देखिये—

"निहितो विधिनाम्बरासने जगदानन्दयितेति चन्द्रमाः।

विरहि-व्रज-तापनं चरन् न चिरात्किं पुनरेष पातितः ॥"

राजा विधाताने सोचा, चन्द्रमा अपनी किरणोंसे गर्मी मिटाकर संसारको आनन्द देनेवाले हैं; इसलिये जगत्-राष्ट्रकी देखभालके लिये यही भर्त्ती किये जायँ। फिर क्या था, आकाशकी कुर्सी इन्हें मिल गयी। पर यह निकले बड़े मक्कार ! स्वामीकी आशापर पानी फेरकर लगे दलके दल वियोगियोंको ताप पहुँचाने ! विधातासे शिकायत देरतक सुनी नहीं गयी; झट इन्हें निकाल बाहर किया !

कैसी सुन्दर उत्प्रेक्षा हुई है ! इन्साफी राजाका कैसा सुन्दर चित्रण है !! आगे चलकर—

"अपरांकमुपेत्य वल्लभं,

विलसन्तं शशिनं निरीक्ष्य सा।

प्रथमा दिगपास्ततारका,

सहसा शोणमुखी बभूव किम् ॥"

पश्चिमा-सुन्दरीकी गोदमें चन्द्रमाको किलोल करते देखकर उनकी पहली रमणी पूर्व दिशाकी त्योरी चढ़ गयी है। तारोंके छिपानेके बहाने उनकी कनीनिका ऊपर जा चढ़ी है, पलकोंमें जा छिपी है; और, उसका चेहरा भी उषःकालको लालीके बहाने तमतमा गया है ! आग-बबूला हो गया है !!

भोरमें चन्द्रमा पश्चिमकी-ओर जाते ही हैं। तारकाएँ छिप ही जाती हैं और पूर्व दिशा लाल रंगमें रँग ही जाती है। इसपर कैसा 'रिमार्क' है! वाह !

सूर्योदयके समय कुमुद बन्द हो जाता है, क्यों!

"कुमुदानि विपक्षसम्पदं हतशोभान्यनलं निरीक्षितुम्।

विकलानि शुचान्यमीलयन्नयनानीव दलानि सत्वरम् ॥"

(शत्रु सूर्य्यका उदय हो रहा है; पड़ोसी कमल सम्पत्तिपर अकड़ रहे हैं।) कुमुदोंसे अपने वैरियोंकी बढ़ती नहीं देखी गयी। शोकसे बेचारोंने नयन-दलको मूँद लिया। देखेंगे नहीं, तो जरा दिल तो हलका रहेगा। परोक्ष उतना दुःखद नहीं होता है न!

मुनीन्द्रसम्मत वात्सल्य रसका स्वाद लेना चाहते हैं, तो जरा इधर नजर दौड़ाइये—

"मुखं क्व नासे क्व दृशौ क्व कर्णौ,

क्व तात ! दन्ताश्च तवेति पृष्टः।

प्रदर्श्य तथ्यं वितथं तथा तद्

व्रजौकसां मोदमवर्धयत्सः ॥"

भगवान् अभी बच्चे हैं, झुण्डके झुण्ड व्रजवासी उनका दुलार करनेके लिये आते और पूछते हैं—'बच्चा ! तुम्हारा मुख कहाँ है ? नाक कौन है ? आँखें किधर हैं ? कान तो दिखलाओ; दाँत कहाँ हैं, यह तो बतलाओ ?' इधर बालकृष्ण कभी ठीक भी बतलाते हैं और कभी दाँतको आँख और नाकको मुँह बतलाते हैं। बड़े-बूढ़े सुनकर खिल-खिला उठते हैं, आनन्दमें पागल बन जाते हैं !

बच्चोंकी आँखोंमें काजल लगा ही रहता है, इसपर कविकी भावगर्भ व्याख्या देखिये—

"विलिप्य दृक्खञ्जनयोरजस्रं श्रियै प्रसूरञ्जनमच्युतस्य।
प्रसिद्धमायामरमेतदीयं निरञ्जनत्वं तिरयाञ्चकार ॥"

यशोदा मैयाने (जिस तरह अपनी भक्तिके कारण अपना पुत्र बनाकर भगवान्‌के अज नामको निरर्थक बना दिया था, उसी तरह) खञ्जनके समान, लम्बी-लम्बी, कानतक खिंची हुई, अच्युतकी आँखोंमें अञ्जन लगाकर उनका—हलवाहे-चरवाहेतकको निरञ्जन (अञ्जन-शून्य वस्तुतः निर्विकार) जो नाम मालूम था, उसे बेकार—बेमतलब बना डाला ! क्या खूब निरञ्जन शब्दका रहस्य बताया है !

दैत्योंकी बदमाशीसे परेशान होकर नन्द आदि व्रजवासियोंने जिस वृन्दावन-विपिनमें अपना निवास बनाया है, वहाँ उनके मनोरञ्जनके लिये कितनी नाचनेवालियाँ हैं ! कविकी "पुष्पिताग्रा" वृत्तिमें उन पुष्पिताग्राओं—विकसित वदनाओंसे परिचय कीजिये—

"इह विटपभुजालिनादगीता
स्तबकगुरुस्तनभङ्गुरा सलास्या ।
किसलयमृदुलाधरा रतिं नो
व्रतति-ततिर्वितनोति पुष्पिताग्रा ॥"

शाखाएँ तो बाहें थीं, भ्रमरका गूँजना ही उनका गान था, पुष्पस्तबकके स्तन-भारसे झुकी हुई वायुके झोंकोंमें झूमना ही उनका नृत्य था, पल्लवके ओठ बड़े पतले और कोमल थे। उनका अग्र (मुखमण्डल) भी विकसित था। फिर वे लता-सुन्दरियाँ क्यों न व्रजेश्वरोंका मनोरञ्जन किया करतीं !

कवि-महीरुहोंके विकाशकारी ऋतुपति वसन्तके स्वागतमें—

"सामन्तमुद्धतमिव स्म सद्वितीयो
विद्राव्य मुक्तशिबिरं शिशिरं तरस्वी
उच्छ्राययन् विकचकिंशुककेतु—
मुच्चैराशिश्रियद्व्रजमखण्डमथर्तुराजः ॥"

ऋतुराज वसन्तके शिशिर नामके सुबेदारने बलवा कर दिया है (कमलका गलाना, सूर्यका दबाना उसके इस तरहके अनेक कसूर साबित हैं) । उसे दबानेके लिये बहादुर कामदेवके साथ ऋतुपतिका युद्धके लिये प्रस्थान हुआ । बेचारा शिशिर डरके मारे खीमा छोड़कर भाग निकला । बस क्या था, फूले हुए पलाशके फूलोंका झंडा फहराकर वसन्तने समस्त व्रजपर अपना अधिकार जमा लिया। फिर—

"राज्येऽभिषिक्तमवलोक्य मधुं मनोज्ञं
क्षोणीरुहाः प्रमुदिताः प्रसवानजस्रम् ।
आभूषिताः किसलयैरुपदानुरूपा—
नामोदिनः सह लताभिरिहोपजह्रुः ॥"

"दिग्जैत्रयात्रकुसुमाकरभूमिभर्तु-
र्विश्रान्तये पथि कियन्ति दिनानि नूनम् ।
आचूलफुल्लतरुमण्डलकैतवेन
सैन्यैस्तताः शुशुभिरे वनसीम्नि दूष्याः ॥"

"प्राप्याभिषेकमधिकाननराज्यमीशः
पुष्पाकरः प्रमुदितो नितरामुदारः।
आच्छादयद्विकचसूनभरस्वरूपै–
भृत्यानमूल्यवसनैरिव मंचु वृक्षान्॥"

राजगद्दीपर वसन्तकुमारको आरूढ़ देखकर, खूब प्रसन्न हो, लता-कान्ताओंके साथ, नये बौरोंकी पोशाकोंसे अपनेको सजकर वृक्षगण फूल और मञ्जरियाँ ले-ले कर भेंट देने आये।

वसन्त-भूपालकी विजय-यात्रा शुरू हुई। रास्तेमें जगह-जगहपर विश्राम लेनेकी जरूरत है। कहनेकी जरूरत न रही—सेनाओंने टहनियोंतक खिले हुए वृक्षमण्डलके बहाने खीमे डाल दिये।

वनके राज्यपर अभिषेक हो गया है, अत्यन्त उदार ऋतुराजने खुशी-खुशी अपने नौकर वृक्षोंको खिले-खिले फूलोंके कीमती कपड़े प्रदान किये हैं।

किस सिलसिलेसे वसन्त राज्यसिंहासनपर बिठाया गया है, इसका विचार सहृदय वाचक स्वयं करें।

वसन्तऋतुमें किरात (चिरायता) पुष्पका विकाश होता है। किरात (कोल, भिल्ल आदि अनार्य्य-जाति) के नाम-साम्यके कारण सुन्दर आश्लेष देखिये—

"कृष्णाच्छदो विपिनजः सुमनो विभूषः
पुन्नागजिद्बहुशिलीमुखभृज्जटालः।
अह्नाय सेवनपरस्य हितं विधाता
लेभे स्थितं क्वचिदसङ्कुचितां किरातः॥"

वसन्तके साम्राज्यमें किरातोंने—भिल्लोंने और चिरायतेने—रहनेके लिये खूब लम्बी चौड़ी जगह पायी। उन दोनोंकी वेष-भूषा एक-सी थी। एकके कृष्ण—काले, छद—पत्ते थे। दूसरेका कपड़ा बड़ा गन्दा था। दोनों बनैले थे। दोनोंका आभूषण फूलोंका ही बना था; क्योंकि एक तो पौधे ही ठहरे और दूसरे जंगली थे—धातुके गहने बनानेकी चाल उनमें बिल्कुल न थी। एक पुन्नाग-पुष्पको शोभासे जीतनेवाले थे। दूसरे बड़े-बड़े हाथियोंपर अचूक निशाना लगानेवाले थे। एकके पास भौंरेका झुण्ड मँडराता था, दूसरेने तीरोंका ढेर ही लगा लिया था। ये भी स्वभावतः जटावाले थे और भिल्लके भी केश, रुक्ष होनेके कारण, जटाएँ बन गये थे। चिरायता भी सेवन करनेवालेको फायदा पहुँचाता है; खून साफ करता, पित्त शमन करता और वे भी भोलेभाले होते हैं। सेवा करनेवालोंपर तुरत रीझ जाते हैं।

कैसा सुन्दर ! कितना उम्दा !! और किस ढंगसे मिलता–जुलता साम्य है !!!

जमाना रंग बदलता है। अब वसन्तका भी समय गत हो चुका था, ग्रीष्म चढ़ाई करनेवाला था। फिर क्या हुआ, सुनाता हूँ—

"कुसुमायुधमन्त्र्यधीनसिद्धि
तरलं नित्यविलासवृद्धतृष्णम्।
अबलाबलमञ्जसा वसन्तं
जितवानेष नवोज्ज्वलप्रतापः॥"

बादशाह वसन्त विलासी हो गये। रोज-ब-रोज ऐशो-आरामकी प्यास बढ़ती गयी। फूल जैसे हलके तीरको चलानेवाले औव्वल नम्बरके ऐय्याश कामदेव ही तो उनके खास दीवान थे। स्त्रियोंका ही राज्यकार्य्यमें प्रधान हाथ रहा। फिर क्या था, प्रतापी ग्रीष्मको इनके राज्यपर दखल जमानेमें कुछ भी परेशानी नहीं उठानी पड़ी।

प्रियतमा विहारीके मुखचन्द्रकी चकोरी राधिका पूर्वानुरागके विरहमें जल रही है ! कृष्णाम्बुदकी खोजमें लालता उन्हें पाकर कैसा विरह निवेदन कर रही है—

गङ्गा

राय बहादुर हरिमोहन ठाकुर

आपने बरारी इस्टेट (भागलपुर) की बड़ी उन्नति की थी। आप बड़े ही धार्मिक, साहसी और उदारमना पुरुष थे।
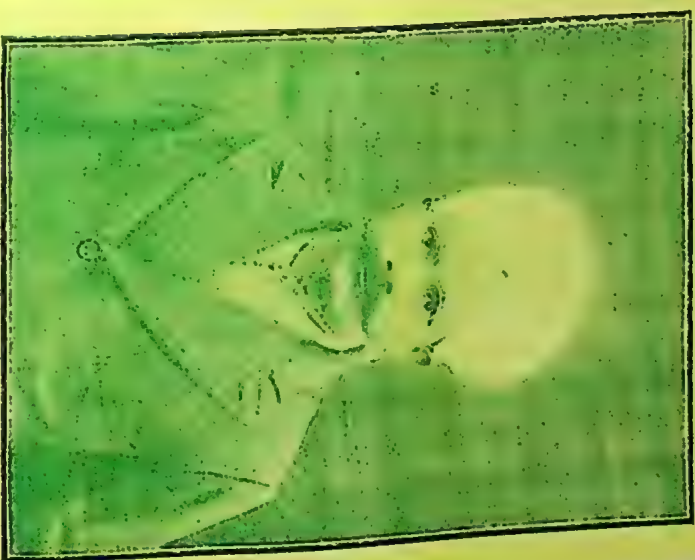
ठाकुर रामजस सिंह

आप गहमर (गाजीपुर) के सुप्रसिद्ध नेता हैं। आपके ही अनुज कप्तान रामरूप सिंह और पुत्र ठाकुर कन्हैया सिंह बी० ए० (इनकम टैक्स आफिसर, बनारस) हैं। आपने हिन्दीमें कई पुस्तकें लिखी हैं। आप बड़े ही गुणग्राही, विद्याप्रेमी और आस्तिक हैं।

"कुत्रापि दृष्टिविष-कृष्णभुजङ्गदृष्टा
सद्यः पपात रत जीवितसंशये या।
अभ्येत्य कारुणिकमौलिमणे ! नरेन्द्र !
प्राणप्रयाणमवरुन्धि रसेन तस्याः॥"

नरेन्द्र, हे जनेश्वर, हे विषचिकित्सक; मेरी सखीका जीवन सङ्कटमें है; क्योंकि दृष्टिविषवाले (एक प्रकारका सर्प होता है, जो आँखें मिलाते ही मनुष्यको बेहोश बना देता है) कृष्ण भुजङ्गने— तथा आँखोंमें जादू लिये भुजङ्ग (विट्)—मन चले कन्हैयाने देख लिया, बुरी तरहसे उसे डस लिया। इसलिये हे दयालुशिरोमणि (तब तो एककी जीवन-रक्षामें आपको जाना ही चाहिये !)रससे, रसायनसे तथा शृङ्गाररससे उसके प्राण जो शरीरको छोड़ रहे हैं, उन्हें रोक लीजिये, जाने न दीजिये !

कैसी विदग्ध वाणी है ? ले जानेका कितना उम्दा तरीका और कैसी मजबूरीकी दलील है !!

राधिका आगे क्या करना चाहती है, इसपर ललितके शब्द ये हैं—

"मीनध्वजेन विबुधेन पुरोहितेन
सम्बोधितेन विधिना विधिना नियुक्ता।
आनन्द-मेदुर-भवत्पदमीहमाना
देहं जुहूषति वियोगहुताशने सा॥"

तपस्विनी राधिका आपके आनन्दमय 'पद' (स्थान और चरण) को पानेके लिये एक यज्ञकी तैयारीमें लगी है (क्योंकि विना तप, होमके आपका पद पाना असम्भव ही है)। इधर वियोगकी आग लपटें ले रही है, उधर विद्वान् कामदेव पुरोहितका आसन जुटा है। 'हे विधाता ! कहाँ हो, मुझपर दया करो' आदि प्रलापसे बुलाये जानेपर विधाताने भी अच्छी तरह आज्ञा दे डाली है। फिर क्या है, उसने देहकी हवि बना कर हवन करना शुरू कर दिया है !

पाठक, देखेंगे, कितनी खूबियाँ हैं इस छोटेसे छन्दके टुकड़ेमें ! विरहका निवेदन, आप ही कहिये, इससे बढ़कर किस ढंगसे किया जा सकता है ? अग्नि, पुरोहित और हवि भी 'पद'के अनुकूल है ! मिसाल लाजवाब है !!

'सरसैः पञ्चशरो हि दुर्जयः'के अनुसार भगवान् तो प्रणय-विह्वल थे ही। राधिका भी आँखे बिछाये थी। फिर क्या था, ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार उसका नीतिपूर्वक परिणय हो गया। अब जरा उन नवपरिणीत दम्पतीकी अर्चनाके लिये आये पावसकी बहार लूटिये—

"किमाज्ञया मन्मथ-भूमिभर्तुर्वर्षर्तुरुद्भासि तडित्प्रदीपम्।
घनाम्बुभृद्वृन्दवपुर्व्यतानीन्नभोऽगने नीलबृहद्वितानम्॥"

(शायद भगवान्के विहारकी सभा सजानेके लिये) क्या कन्दर्पराजका हुक्म पाकर चपरासी वर्षा ऋतुने आकाशके प्राङ्गणमें घने मेघसमूहका नीला-नीला बड़ा शामियाना तान कर उसमें खूब रोशनी देनेवाली बिजलीकी लाइट जलायी ?

अब सभामें आइये—

"नभोऽगनेऽम्भोदवितानमाजि
स्फारस्फुरद्गर्जितवाद्यनादे।
पटीयसी चेतनचित्तचौर्ये
नटीव नृत्यं चपला चकार॥"

आकाशके आँगनमें—बादलके चन्दोवेके नीचे— मन्द्र और मधुर स्वरमें मेघोंके बाजे बज रहे थे और बड़ी चमकसे नाचती हुई चपला-नटी लोगोंके दिलको चुरा रही थी !

वाचकवर्ग, जरा सभासे विदा होकर वहाँ चलिये,

जहाँ शरत्सुन्दरी व्रजसुन्दरकी परिचर्य्याके लिये आ पहुँची है—

"अथ विशद-सुधाकरास्यबिम्बा
शरदमितः परिपाण्डुगण्डपालिः।
विमलतरपयोधरा मुरारिं
परिचरितुं रुचिराम्बरा बभासे ॥"

परिचर्याके लिये शरत्कामिनी आ पहुँची है। परम कान्तिमान् सुधाकर ही उसके मुख थे, काश-कुसुम ही गोरे-गोरे कपोल थे, स्वच्छ पयोधर (मेघ) ही पयोधर (स्तन) थे और उसके वदनपर आकाश (अम्बर)की साड़ी (अम्बर) बड़ी भली मालूम होती थी। शरत्-समयमें चन्द्रमाकी शोभा अनोखी हो जाती है, काश फूलने लगते, मेघ निर्मल और आकाश स्वच्छ हो जाता है। इसपर रूपकने गहरा रंग जमाया है!

इस तरहकी सूक्तियाँ "राधापरिणय"के भाण्डारमें ढेरों पड़ी हैं। कितनी नमूनेके लिये रखूँ? यहाँ 'तण्डुलकणन्याय" ही पकड़ना पड़ेगा। अब मैं कुछ ऐसे पद्य रखूँगा, जिनमें शब्दोंका चयन और शब्दालङ्कारका चमत्कार देखनेमें आता है।

"सहृदया हृदयात्तरुषा विधुच्छविमुखी विमुखी रमणात्पुरा
किमधुना मधुना न पराजितं यदतनोदतनोर्विकृतिं पुनः।
उपवने पवनेरितभृल्लता किसलयैः सलयैर्नु युताशयैः
सललिता ललितालिविनोद नैर्व्यथयतेऽथ यतेरपि चेतनाम्॥"

प्रत्येक चरणमें यमककी कैसी बहार है! यहाँ पाठक चमत्कृत होकर सहसा किसी ओर बढ़नेमें ठिठक जाते हैं!

लेख लम्बोदर हो चला है; फिर भी कहना बहुत कुछ शेष रह गया। बरबस विश्राम लेता हूँ। हाँ, फिर इतना अवश्य कहता हूँ कि, मैंने समालोचना नहीं की है। कुछ "सैम्पुल" रख देने भरकी चेष्टा की है। आशा है, कविता-कुसुमके प्रणयी भावुक भ्रमर इसका आस्वाद अवश्य ग्रहण करेंगे। किन्तु भरपेट मजा तो तब ही आवेगा, जब वाचक स्वयं ही फुलवाड़ीमें प्रवेश करेंगे और स्वयं चुन-चुनकर सौरभका आघ्राण करेंगे।

हमारे देशके दुर्भाग्यसे संस्कृतकी दशा देशमें गिरती गयी; उसके अनुरागी, उसके भाण्डारके रत्नोंके जौहरी, बहुत कम रहे। इसलिये आज संस्कृतके कितने ही अमूल्य रत्न यों ही, अज्ञात धूलिमें, ढके पड़े हैं और तबतक पड़े रहेंगे, जबतक संस्कृत-भाषा-प्रेमियोंकी आँखें नहीं खुलेंगी!

वनमाली

प० यमुनाप्रसाद चौधरी "नीरज" बी० ए०, बी० एल०

देख रहा हूँ मैं सुन्दर पत्तोंको झड़ते जाते,
धूलिधूसरित हो क्षणभरमें अतिविवर्ण हो जाते।
देख रहा हूँ मैं पुष्पोंको असमय ही कुम्हलाते।
सूखी जाती है दिन-दिन सुन्दर वनकी हरियाली।
देख रहा छविमयी लताएँ सिर्फ एक झोंकेमें—
प्रेम-सुधा-वर्षण कर अब भी रक्षा कर वनमाली।

हीरा

डा० आत्मानन्द सिंह

प्रकृतिके इस विशाल कोषमें असंख्य बहुमूल्य रत्न तथा मणि विखरे पड़े हैं; परन्तु हीरेमें जो द्युति है, जो सौन्दर्य्य है, जो प्रभा और जो दृढ़ता है, वह और रत्नोंमें कहाँ ? यही कारण है, जिससे परम पुरातन युगसे हीरा संसारके सभी लक्ष्मी-पतियों, धनकुवेरों और चक्रवर्त्ती नरेशोंके मुकुटोंमें सर्वोच्च स्थानका अधिकारी होता आया है। हीरेके नामसे प्रायः सभी परिचित होंगे। कोहेनूरको तो भारतका वच्चा-वच्चा जानता है। संसारका यही सबसे प्राचीन हीरा है। इसकी उत्पत्ति गोलकुण्डा (दक्षिण हैदरावाद) की खानोंसे हुई थी।

जिस समय संसारके अन्य देशोंके लोगोंने हीरेका नाम भी नहीं सुना था, उसी समयसे भारतमें इसकी उत्पत्ति होती आयी है। एक विद्वान्ने कहा है—"हीरा पूर्वसे पश्चिमको आया है।" फिर भी किसी आधुनिक भारतीयने इसके तत्त्वोंको जाननेका प्रयत्न नहीं किया। इसका श्रेय पाश्चात्य वैज्ञानिकोंको ही है।

पाश्चात्य देशोंमें इसके तत्त्वोंकी खोज शताब्दियोंतक होती रही। अनेक वैज्ञानिकोंने इसीमें अपना जीवनतक उत्सर्ग कर दिया; तव कहीं जाकर उन्हें सफलता प्राप्त हुई।

सन् १७७७ ई० तक लोगोंका यह अटल विश्वास था कि, यह सिलिका (एक प्रकारका स्वच्छ पत्थरसा पदार्थ, जो वालुओंके साथ पाया जाता है) के ही समान कोई स्वच्छ मणिमय पत्थर (*Rock Crystal*) है; पर वैज्ञानिकोंके सूक्ष्मदर्शी नेत्रोंसे सच्ची वात कवतक छिपी रहती। भेद धीरे-धीरे खुल ही गया।

डा० वर्गमेनने यह पता लगाया कि, इसमें सिलिकाका कोई अंश नहीं है; वरन यह एक अन्य प्रकारका पदार्थ है। इसे उन लोगोंने टेरा नाबिनिस कहा था। पर शीघ्र ही यह पता चला कि, यह जलता भी है। सन् १६७५ ई० में न्यूटनने इसके इस गुण तथा निर्मलताको देखकर यह सिद्धान्त निकाला कि, यह कोई तैलसा पदार्थ है, प्रकृतिके हेर-फेरसे रूपान्तरित हो गया है। उसके वाद ही तस्केनीके ड्यूकके कहनेपर वैज्ञानिक आवेवेरिनी और टारगोयनीने १६९४ ई० में हीरेको एक वड़े काँचके लेन्सकी नाभिपर रखकर जलाया। हीरा जल कर अदृश्य हो गया। इससे न्यूटनके सिद्धान्तकी पुष्टि हुई। सन् १७५१ ई० में फ्रांसिस प्रथमने अनेक हीरे तथा कई अन्य रत्नोंको एक साथ रख कर जलाया; पर हीरा जलकर अदृश्य हो गया और अन्य रत्न पड़े रह गये।

अन्तमें जगद्विख्यात वैज्ञानिक लेवोयजरने मेकर, केडेट ब्रिस्सन तथा वोमीकी सहायतासे, यह खोज निकाला कि, हीरेके जलनेसे कारवन डॉयक्साइड (*Carbon dioxide*) गैसकी उत्पत्ति होती है। सन् १७९६ ई० में, स्मिथसन टेनेण्टने यह सिद्ध किया कि, यदि हीरा तथा कोयला वरावर परिमाणमें जलाये जायँ, तो दोनोंसे निकला हुआ कारवन डायक्साइड गैसका परिमाण वरावर होगा। फिर १८१४ ई०

में डेवीने यह प्रमाणित किया कि हीरा कोयला (*Carbon*)का ही एक विशुद्ध रूप है। वैज्ञानिकोंकी भी अजब सूझ होती है। इसके पहले क्या कोई भी मनुष्य अपने घरमें जलते दीपकके कालिखकी हीरेके तत्त्वोंसे तुलना कर सकता था?

इसके अनन्तर हीरेको कृत्रिम उपायोंसे तैयार करनेके अनेक प्रयत्न किये गये। डा० मोस्सेन इसमें सफल भी हुए। कृत्रिम साधनोंसे हीरा बनानेकी विधि यों कही गयी है—कुछ लोहा ३००० के लगभग ताप देकर गलाया जाता है। अब चूँकि कारवन (कोयला) गले हुए लोहेमें विलिप्त है, ठण्ढेमें नहीं, इससे कारवन उसमें डालनेसे अच्छी तरह मिल जाता है। अनन्तर, उस गले लोहेको अचानक ठण्ढा कर देनेसे, कारवन बाहरके ठण्ढे भागसे हटकर भीतरके गले भागमें एकत्र होने लगता है। अन्तमें वह सबके मध्यमें आ जाता है। यहाँ उसपर बहुत दवाव पड़ता है, जिससे उसका हीरेमें रूपान्तर हो जाता है। उस लोहेको हायड्रो क्लोरिक एसिडमें गलानेपर उसके मध्यमें हीरेकी छोटी-छोटी कणिकाएँ पायी जाती हैं। यह इतना छोटा रहता है कि, इसका मूल्य बहुत ही थोड़ा होता है; फिर भी इसमें व्यय अधिक हो जाता है।

हीरा प्रधानतः खानोंमें ही पाया जाता है। कभी-कभी उल्काओंके टुकड़ोंमें भी हीरा पाया जाता है। यह पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि, "हीरा" पहले पहल गोलकुण्डाकी खानोंमें पाया जाता था;" परन्तु अब उन खानोंमें हीरा नहीं रहा। सन् १७२७ ई० से दक्षिणी अमेरिकाके ब्राजिल देशमें मिनास गेरीसकी खानोंमें खूब हीरा निकलता रहा। वहाँ हर साल २००० कीलोग्राम हीरा निकलता था। परन्तु आजकल दक्षिण अफ्रीकामें केपकी खानें ही सर्वोत्तम हैं। यह सारे संसारके हीरेकी माँगको पूरी कर रही हैं। १६०८ ई० में यहाँसे ५४,२७,३७० पाउंडका हीरा विदेश भेजा गया था। इसके अतिरिक्त, बोर्नियो, यूराल, न्यू साउथ वेल्स, वेहिया, केलिफोर्निया, जार्जिया तथा अन्य कई स्थानोंमें भी हीरेकी छोटी-छोटी खानें हैं।

हीरा अनेक रंगका पाया गया है। सबमें लाल, हरा, पीला, नीला तथा उजला ही सर्वोत्तम माना जाता है। एक प्रकारका हीरा भूरे रंगका भी होता है। वह कारबोनेडोके नामसे प्रसिद्ध है और शिला-छेदन तथा अन्य कई यन्त्रोंमें काम आता है।

संसारका सबसे सुन्दर हीरा पिट वा रीजेन्ट है। उसका तौल १३६-२५ केरेट है तथा मूल्य १,२५,००० पाउंड। होप नामक एक हीरेका तौल ४४॥ केरेट है। उसका मूल्य २५००० पाउंड है। लगभग एक शताब्दीकी बात है, हैदराबादके भूतपूर्व निजामने हीरेका एक बड़ा टुकड़ा पाया था। सिपाही-विद्रोहके समय उसका कुछ भाग टूट भी गया था। अब वह ब्रिटिश म्युजियम, लंदन, में है। उसका तौल २७७ केरेट है। रूसके राजदण्डमें एक बड़ा पीला हीरा जड़ा था। उसका तौल १६४। केरेट है।

आस्ट्रियाके भूतपूर्व सम्राट्के पास तस्कन (*Tuscan*) नामका एक हीरा था। उसका तौल १३६। केरेट है। ब्राजिलका सबसे बड़ा हीरा "दक्षिणी तारा" (*Star of South*) का तौल २५४॥ केरेट था। पर अब केवल १२७ केरेट रह गया है। केपके एक हीरेका तौल ६७१ केरेट था। सन् १६०५ ई० में एक घोषणा हुई थी कि, "जोहानेसवर्गकी प्रीमियर खानमें एक हीरा पाया गया है, जिसका तौल ३०३२ केरेट है।" उसका नाम "कुल्लियन" (*Cullian*) था। वह इंगलैंडके भूतपूर्व सम्राट् एडवर्ड सप्तम को भेंटमें दिया गया था। अब उसके तीन टुकड़े कर दिये गये हैं, जिनमें सबसे बड़ेका तौल ५७६॥ केरेट है। फारसके बादशाहके पास "ग्रेट मुगल" नामका एक हीरा है। टेवेनियरने कहा है कि, उसका तौल ६०० केरेट था। पर अब वह कुछ २७६-६ केरेट रहा है। फारसके बादशाहके पास और भी अनेक हीरे पड़े हैं। वे सभी नादिरशाहकी दिल्लीकी लूटके बचके हैं। उन्हींमें एक "कोहेनूर" भी था। कोहेनूर आजकल भारत सम्राट् पञ्चम जार्जके पास है। उसका तौल १८६ केरेट था। पर अब उसके दो टुकड़े कर दिये गये हैं। बड़ा १०६ केरेटका सम्राट्के मस्तककी तथा छोटा महारानी मेरीके मस्तककी शोभा बढ़ा रहा है। "कोहेनूर" युगोंतक दिल्लीके सिंहासनारूढ़ बादशाहोंके पास था। दिल्लीमें ही, जब सिंहासनपर मुहम्मद शाह आरूढ़ थे, यह नादिरशाहके हाथ लगा। फिर यह रणजीत सिंहके अधिकारमें कुछ दिनोंतक रहा। परन्तु ज्यों ही भारतकी स्वतन्त्रता नष्ट हुई और यहाँके निवासियोंने गुलामीका सेहरा पहना, त्यों ही इस स्वतन्त्रता-प्रिय "कोहेनूर" ने भारतसे अन्तिम विदा माँग ली।

स्वामी दयानन्द और वेद

आचार्य प० विश्वबन्धु शास्त्री एम० ए०, एम० ओ० एल०

वेद आर्यजातिका मस्तक-मणि है। आर्य-सभ्यता तथा आर्य-संस्कृतिका मूलाधार है। आर्य-धर्म-कर्मका परम प्रमाण है। आर्य-ज्ञान-विज्ञानका उज्ज्वल धाम और आर्य-वाङ्मय-का मुखमण्डन है। तीव्र भक्ति-रसकी गंगोत्तरी, उच्च, गंभीर विचारोंकी उच्च भूमि और उत्तम आचार-व्यवहारकी प्रकृष्ट प्रतिष्ठा है। जिन महामना तपस्वियोंने वेदका प्राथमिक साक्षात्कार किया, जिन योग्य व्यक्तियोंने उनके पदानुगामी बनकर वेदका मनन और अभ्यास किया, निसर्ग-सिद्ध कृतज्ञतासे भरी हुई आर्य-जातिने उन्हें ऋषित्वके महार्घ शृंगारसे सुभूषित कर सदाके लिये अपनी स्मृतिका पात्र बनाया। इस प्रकार, शुद्धाचारी ब्राह्मणोंके असंख्य परिवार हुए; विप्र, स्तोता और कवि हुए; द्रष्टा, वक्ता और व्याख्याता हुए। सबका उद्देश्य वेदविद्याका विस्तार था; सबका ध्येय श्रुति-भगवतीका रक्षण था; सबकी भावना ब्रह्मगवीके गानकी थी; सबकी सफलता आम्नायके विनियोगमें थी।

अति प्राचीन समयमें भी साम्प्रदायिक भेदकी सत्ताका उल्लेख मिलता है। मानव-स्वभावमें ही ऐसा होना दाखिल है। प्रत्येक व्यक्तिके मस्तकका सांस्थानिक परिणाम भिन्न होनेसे मत-भेद नैसर्गिक है। इसी प्रकार प्राकृतिक रजस् और तमस्‌का मेल मोह तथा ममताको लिये हुए स्पर्द्धता और प्रति-द्वन्द्विताको पैदा किये विना नहीं रह सकता। परन्तु प्राचीन सम्प्रदायोंके नीचे आजकलकी परिभाषाका मजहबी आधार न था। वे सब लोग एक थे। वैज्ञानिक स्पर्द्धा और राजनीतिक संग्रामके होते हुए भी वे एक थे। सभी वैदिक और वेदके पोषक थे। सभीकी पूजाका प्रकार और सामान्य आचार-व्यवहार एकाकार था। साम्प्रदायिक भेद थे, तो कहीं-कहीं विस्तारमें थे। जनक सरीखे योग्य, विद्यारसिक, प्रभु याज्ञवल्क्य जैसे विद्वानोंकी परिषदोंमें आधियाज्ञिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तत्त्वोंकी "मीमांसा" कराते और पूज्य अतिथियोंकी सहस्रों "दक्षिणाओं" से प्रतिष्ठा करते थे। सर्वप्राचीन संहिताओंमें भी इस मीमांसा-परिपाटीके संकेत मिलते हैं। सभी विद्वान् सरलतासे वादी, प्रति-वादी या जिज्ञासु-समाधाता बनते और जब बात समझमें न आती, तब योग्यतर व्यक्तिकी सेवामें, समित्पाणि होकर, पहुँचते थे। अभी आस्तिक-नास्तिक उपाधियोंका अवसर न आया था। अभी जल्प, छल और वितण्डाकी बाढ़की वैदिक विज्ञानको अपेक्षा न थी।

समय पाकर वैदिक विज्ञान-धारा शनैः-शनैः दो मुख्य मार्गोंमें बहती चली गयी। कर्म-धारा विचार-धारासे पृथक् जँचने लगी। एकका बल कर्मकलापके सम्पादनमें और दूसरेका तत्त्वदर्शनमें लगने लगा। तत्त्वप्रिय विचारक, कर्मकाण्डमें धारणा रखते हुए भी, मानव-विकासके क्रमको उससे और उसके द्वारा प्राप्य स्वर्गादिसे परे ले जाते थे। विचार, विमर्श और साक्षात्कार इनके उद्यानके नूतन और सुगन्धमय पुष्प थे। कर्मी लोगोंकी दृष्टि कर्मके नित्य नये विस्तारमें लगती थी। उनका तर्क वैदिक वाक्य-मीमांसाका पर्याय था। उनके व्याख्यान और अर्थवाद औपचारिक थे। वेदी उनकी पृथिवी थी और यज्ञकी संस्थाएँ और उनके उपकरण उनका संसार था। स्पर्द्धाका सूत्र-पात हुआ। समानतासे दृष्टि हटकर भेदके दर्शनार्थ उत्सुक रहने

लगी। दोनों धाराओंमें अपने-अपने क्रमसे बाढ़ आने लगी। किनारे तोड़कर आपसमें टक्कर खानेसे वे रुक न सकीं। कई प्रकारके कर्मी और कई प्रकारके विचारक प्रकट होने लगे। शान्त विचारक जनतामें मतिभेद करनेके विरुद्ध, समझौता-नीतिका अवलम्बन करते हुए, अपनी विचार-स्वतन्त्रताको स्थिर रखनेके पक्षमें थे। मुकाबिलेमें घोर विचारक हुए, जिनके लिये कर्मकाण्डके जटिल जालसे घिरे हुए, और उसके फलस्वरूप, नाना प्रकारके सामाजिक अन्याय और वैषम्यसे दूषित, वायुमण्डलमें श्वास लेना भी दुःसह होने लगा। हलचल मच गयी। तप्त दूधमें दही डाल दिया गया। पनीरके वेजोड़ खण्डोंके समान सम्प्रदाय बिखरने लगे और भयभीत जनताका शान्त रहनेवाला भाग व्याकुलतामें नीले-पीले पानी (वाजिन) का अनुकरण करने लगा। यह कालचक्रकी स्वाभाविक और अपवाद-रहित गति है। यह किसीसे रुकनेकी नहीं। परिणामतः बाहरके जीवनके आकारमें, साधारण दिनचर्या आदिमें भी, भेद होता गया। जहाँ पहले सब एक, अभिन्न और सम्बद्ध प्रतीत होते थे, वहाँ अब सर्वत्र भेद अखरता था। रुधिर पानीसे भी पतला होने लगा। सम्बन्धोंका विच्छेद होकर पोषक खण्डकोंमें और आस्तिक नास्तिकोंमें गिने जाने लगे। अवैदिक और विधर्मी शब्दोंका प्रयोग वास्तविक मज़हबी भेदका सूत्रपात था। यह पहला उपद्रव था, जो वेदमार्गकी शान्तिको भंग करनेवाला था। इसका आरम्भ महात्मा बुद्धसे पहली सहस्राब्दीमें हुआ और इसका चक्र उनसे सहस्र वर्ष पीछेतक चलता रहा। यह आर्यावर्तीय आन्तरिक, स्वजातीय, उपद्रव था।

बड़ी कठिनतासे सौके पीछे एक पुरुष विचार और विमर्शके लिये योग्य होता है। शेष लोग पूर्वी रेखाका अनुसरण करते हुए ही निर्वाह करते हैं। उनमें भी उस भागके लिये, जिसका कार्य उसी पुरानी रेखाका प्रदर्शनमात्र हो जाता है और जो स्वयं कोई अन्य उपजाऊ कमाई न कर दूसरोंका पुरोहित अथवा नायक हो, उसीकी कमाईपर अपनी लगान लगाता है—किसी भी प्रकारका परिवर्त्तन असह्य हो जाता है। जब क्रान्ति अपनी घोर नीतिसे प्रेरित होकर उनपर आघात करती है, तब वे चौंक पड़ते हैं। धर्म-कर्मके डूबनेका भय दिखाकर और अन्य कितनी ही चित्तरञ्जक बातें गढ़कर वे अपने यजमानोंको उभारते हैं। इस प्रकार परिणामस्वरूप मतिभेद और गड़बड़ मचानेमें वे अधिक अपराधी होते हैं। जो उनके अनुकूल है, वह आस्तिक और जो उनके प्रतिकूल है, वह नास्तिक हो जाता है। जहाँतक विचारका सम्बन्ध है, सांख्य और वैशेषिकके प्रवर्तक घोर क्रान्तिकारियोंके भाई थे; पर स्वार्थप्रियता और आलस्यका विचित्र चमत्कार है कि, घोर विचारक लोग समझौता-नीतिसे अनभिज्ञ होनेसे वेदबाह्य और "नास्तिक" बना दिये गये और कपिलादि महानुभाव स्वतन्त्रके स्वतन्त्र भी बने रहे तथा 'आस्तिक' के ऋषि भी बने। अतः "वेदानुकूल" और "वेद-प्रतिकूल' तो शब्द थे वेदप्रिय जनताको उभाड़कर मित्र या शत्रु बनाने के लिये। वास्तवमें इनका अर्थ यह था कि, "जो हमारे कर्मकलाप और व्यवहारके अनुसार है, वह "आस्तिक" है और जो उसका खण्डक है, वह नास्तिक है।" हम अविच्छिन्न परम्परासे वेदको समझनेवाले जानते हैं कि, धर्म और न्याय क्या होते हैं। "ये क्रान्तिकारी केवल बेसमझी और ढिठाईसे ऊधम मचाते हैं; अतः इनका बहिष्कार करो"—इस मतिको साधारण जनतामें पैदा किया गया। मानवजातिके इतिहासने इसी घटनाको यहाँ और अन्यत्र कई बार दोहराया है और अभी दोहराता ही प्रतीत होता है। यह हमारे मन्द-भाग्यकी बात है कि, हमारे दैनिक व्यवहारमें हमारी रीति-नीति साधारण कोटिके राग-द्वेषसे व्याकुल लोगोंके हाथमें रहती है और सांख्यके कथनानुसार, उत्तम कोटिके जीवन्मुक्तोंके उपदेशके न होनेसे अथवा, स्वार्थी लोगोंके द्वारा उसके खटेमें पड़ जानेसे, अन्धपरम्पराका साम्राज्य बना रहता है।

कुछ हो, इस प्रथम आन्दोलनका प्राचीनताके पक्षपातियोंने पूरा सामना किया। यद्यपि आरम्भमें क्रान्तिवादियोंके सरल, न्यायान्वित आचार, विचारके प्रभावमें समस्त देश उधर ही झुकता हुआ प्रतीत होता था, तो भी जब समय-पक्ष

उनमें भी घोर आदर्शवादी कम होने लगे और प्रथम उबाल ठण्ढा पड़ने लगा, तब प्राचीन शान्त विचारकोंके अनुपम मेलसे दृढ़ होकर "वैदिक" लोग फिर प्रबल हो उठे। समझौतेकी नीतिने यहाँ भी चमत्कार दिखाया। मीमांसकोंने वेदके चारो ओर अपौरुषेयता, नित्यता, धर्मैकमानता आदिकी दार्शनिक समस्याएँ खड़ी कर दीं। नैयायिकों और अद्वैतियोंने मैदानमें बौद्ध विचारकोंको घेर लिया। क्षणभंगवादका भंग करने और वैदिक धर्मकी रक्षाके लिये प्राचीन शान्त विचारकोंके सब सम्प्रदाय एक जान होकर लड़े। उधर कर्मी लोगोंने, व्यावहारिक चतुराईसे काम लेते हुए, नये विचारोंमें पले हुए, लोगोंको पसन्द आनेवाले पूजा आदिके कितने ही प्रकारोंको वैदिक कर्मके साथ जोड़ दिया। त्रेता-वेदीके साथ देवालय बन गये। वैदिक रुद्र और विष्णुके साथ नये आभूषणोंसे युक्त शिव और विष्णु प्रादुर्भूत हुए। नाना प्रकारकी कथाओं और कहानियोंका निर्माण हुआ। इस प्रयत्नका फल यह निकला कि, यवनों द्वारा किये जानेवाले दूसरे उपद्रवसे पहले-पहल सारा देश पुनः एक बार "वैदिक" हो चुका था; पुनः रुधिर-जलसे मोटा हो गया था और जो बिछुड़कर अलग-अलग हो गये थे, वे सब एक हो चुके थे। एक प्रकार "वेद"ने विस्तृत होकर सबको अपना लिया था।

यवनोंका उपद्रव सांस्कृतिक या विचारमूलक संघर्ष न था। वह तो राजनीतिक और सामाजिक संग्राम था। इसलिये यहाँके सब लोग एकचित्त होकर उनके विरुद्ध खड़े हुए। हम लोगोंकी राजनीति अच्छी न होनेसे यवनोंका यहाँ अधिकार अवश्य हो गया; पर विद्या, धर्म और संस्कृतिकी दृष्टिसे हमारा मस्तक सदा ऊँचा रहा। यवन-सम्राट् "वैदिक" विद्वानोंका आदर करते थे और यवन विद्वान् उनके शिष्य बनते थे। सायण, उव्वट, महीधर, दुर्ग तथा अन्य कितने ही 'वैदिक' विद्याके आचार्योंका यवन-युगमें प्रादुर्भाव इस बातका सूचक है कि, वैदिक-विद्या इस राजनीतिक उथल-पुथलके मध्यमें भी लुप्त नहीं हुई थी। इसमें मुख्य कारण यही प्रतीत होता है कि, वैदिक समाजने यवन-व्यवहारको अपने आदर्शसे नीचे पाया और उसमें कोई बात ऐसी न देखी, जिसकी अपने यहाँ कमी हो।

१८ वीं सदीका और विशेषतः १९ वीं शताब्दीके आरम्भका पश्चिमी सम्पर्क वैदिक संस्कृतिपर तीसरे आक्रमणका सूचक था। इस प्रहारके दोनों पहलू थे। पाश्चात्योंकी सांसारिक विभूति और ऐश्वर्यका चतुर नीतिसे दिनों दिन बढ़ते जाना एक प्रकारसे दबाव डालता था, तो वाक्कुशल पादरियोंका वेदादिकी निन्दा करना और इंजिल आदिकी सराहना करना दूसरे प्रकारसे मोहनमन्त्रका काम कर रहा था। अपने देवताओं और पूज्य पूर्वजोंकी खिल्ली उड़ती हुई देखते थे; पर वैदिक नवयुवक कुछ कर न पाते थे। वैदिक सम्बन्ध पारिभाषिक था और पश्चिमी संसर्ग और शिक्षण साक्षात् था। "नौ नक़द न तेरह उधार" वाली बात होने लगी। हृदयसे स्वदेशी गौरवका भाव मिटने लगा।

यवनोंके अत्याचारके नीचे दबता हुआ भी भारतीय व्यक्ति अपने धर्म और विज्ञानको सर्वश्रेष्ठ मानता और उसे छोड़ता तो कहाँ, उसकी आनकी रक्षाके लिये मर-मिटना श्रेयस्कर समझता था। यही आत्म-प्रतिष्ठा थी, जिसने यवन-ध्वजाको पादाक्रान्त कर आर्य (हिन्दू) पदपादशाहीको स्थापित कराया था। परन्तु पश्चिमी लोगोंने उस हाथमें आये हुए ऐश्वर्यको छीननेमें बहुत देर न लगायी थी। इससे अपने यहाँ उसके सामने कुछ भी आदरास्पद प्रतीत न होता था। आत्माभिमान-रहित लोग दासताकी जंजीरोंको शीघ्र ही चूमने और चाटने लग जाते हैं। अभिभूत अभिभावक अंधाधुंध अनुकरणको ही अपना मोक्षमार्ग समझते हैं। गत शताब्दीके मध्यमें यहाँकी शिक्षित-मण्डलीकी ऐसी ही वृत्ति हो रही थी।

जहाँ बीमारी होती है, वहाँ वैद्य भी पैदा हो जाते हैं! बंगाल और दक्षिणमें पश्चिमी शिक्षाका प्रचार प्रथम फैला था। अतः वहीं ऊपर कही वृत्तिका भी सर्वाधिक प्रादुर्भाव होकर अनर्थ हो रहा था। ब्रह्मसमाज आदि कई संस्थाओंका जन्म हुआ; ताकि इस विदेशीयताकी बाढ़को रोका जाय। परन्तु इन

संचालक स्वयं बाह्य गौरवसे प्रभावित थे और वैदिक स्रोतसे सर्वथा अस्पृष्ट थे। उन्होंने कुछ समझौतेकी नीतिका अवलम्बन किया तो; पर बात बनी नहीं। पूर्व समयमें मीमांसकों और कर्मकाण्डियोंने भी ऐसा करके वैदिक भावको मिटनेसे बचाया था; पर वे ऐसा सेतुबन्ध करना जानते थे, जिससे कि, हर एक बातका वेदसे सीधा सम्बन्ध बना हुआ प्रतीत होता था। आधुनिक संशोधकोंके कार्य, तथा विचारमें स्थान-स्थान पर परम्परा-विच्छेद होता हुआ जँचता था और विदेशी प्रभावकी गन्ध आती थी। पुरातन स्वजातीय पुकारसे हल्ला करके इस बाढ़को रोकनेका यश विधाताने स्वामी दयानन्द सरस्वतीके भाग्यमें वदा था।

स्वामी दयानन्दने अपने समयमें पूर्वोक्त प्रकारसे वैदिक संस्कृतिको उपद्रवाभिभूत पाया। उन उपद्रवोंका निराकरण तथा प्राचीन कीर्त्ति-कौमुदीको पुनः प्रकाशमयी करनेमें कितने ही भाव और विचार थे, जो उनके प्रयत्नके निमित्त अथवा परिणाम बने। उनके समुच्चयको दयानन्द-दर्शन भी कह सकते हैं। उनका समझ लेना स्वामी दयानन्दको समझना होगा। अतः उनका ही पहले संकेत किये देते हैं—

(१) विरक्ति उपरामका फल होता है। उपराम तृप्तिका सूचक है। अतः वर्त्तमान भारतीय जनताका प्रथम अधिकार अपने वैदिक पूर्वजोंकी नाईं समृद्धिशाली होनेमें ही है। अन्यथा, मध्यकालीन मिथ्या वैराग्यसे उपजे हुए भयङ्कर अनर्थोंको पुनः निमन्त्रित करना होगा।

(२) लौकिक ऐश्वर्य्यके उपार्जनार्थ परस्पर प्रेम, भ्रातृभाव तथा सहानुभूतिकी भित्तिपर आन्तरिक संगठनको करना होगा।

(३) ऊँच-नीचका मिथ्या अभिमान वह पुराना विषैला कीड़ा है, जिसने प्राचीन शक्तिको वर्त्तमान हीन दशातक पहुँचाया है; अतः इसे कुचलकर प्रत्येक मनुष्यको बराबरका मनुष्य समझो और उसके साथ योग्य व्यवहार करो। सामाजिक विवेकका आधार जन्म न हो, बल्कि व्यक्तिकी योग्यता हो। स्त्री और पुरुषमें कोई न्यूनाधिकता न हो।

(४) कोई व्यक्ति दीन न रहे। वैयक्तिक दीनता सामाजिक ह्रासका कारण होती है।

(५) प्रत्येक समाजका इसीमें कल्याण है कि, उसके व्यक्ति शारीरिक, वैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक (*Physical, Intellectual, Ethicalcum Spiritual fitnees*) योग्यताके धनी हों।

(६) इसके लिये यह आवश्यक है कि, जहाँ सारी जनताके अन्दर सामान्य भावसे परस्पर उपकारका भाव पैदा हो, वहाँ ऐसे विशिष्ट लोग भी पैदा होते रहें, जो सामाजिक सेवा तथा उपकारमय जीवनके तपको सिद्ध करनेमें रुचि रखें।

(७) उन्हें चाहिये कि, समस्त प्रजामें ब्रह्मचर्य, विद्या तथा कल्याणकारी धार्मिक संस्कारोंका बीज बोते रहें। कोई व्यक्ति इन भूषणोंसे शून्य न रह सके। माता, पिता और गुरुके कर्त्तव्यपालनमें राजनियम सहायक हों।

(८) प्रत्येक व्यक्तिका यह अधिकार है कि, वह प्रत्येक बातको तर्ककी कसौटीपर कसकर, सत्य जानकर, ही उसका ग्रहण करे। जिस बातको कोई असत्य समझता है, उसे किसी दबाव, स्वार्थ या अन्य किसी कारणसे यदि वह ऊपर-ऊपरसे स्वीकार कर लेता है, तो वह स्वयं दम्भी होकर मर जाता है और जिस समुदायमें होता है, उसे अपने संसर्गसे दूषित कर देता है। केवल "सत्यवचनियापन" और "बाबावाक्यं प्रमाणं"की नीति वैयक्तिक और सामाजिक दरिद्रताका द्वार है।

(९) एक, शुद्ध, चेतन, निर्विकार, निराकार, सर्वव्यापक परमेश्वरकी पूजा करना सबके लिये कल्याणकारी है। उसके स्थानपर या उसके साथ मिथ्या भयादिसे प्रेरित होकर, कपोल-कल्पित असंख्य देवी-देवताओं तथा जड़-पदार्थों एवं भूत-प्रेतादिको मानना या पूजना घोर अन्धकारमें गोते खा-खा कर मरना है।

(१०) प्राचीन आर्य लोग समृद्ध साम्राज्यशाली हो चुके हैं। उनमें ऋषि, मुनि, परम विद्वान् तथा ईश्वरभक्त हो चुके

हैं। वेदादि सच्छास्त्रोंको, जो कि, ज्ञान-विज्ञान तथा यथार्थ बातोंके कोष हैं, पढ़ना-पढ़ाना चाहिये और आधुनिक तथा मध्यकालीन वृथा आडम्बरमय मिथ्या बातोंसे भरपूर पुराणादि-ग्रन्थोंका त्याग करना चाहिये। परन्तु जो-जो अच्छी बातें और विद्या आजकलके ग्रन्थों तथा भाषाओंसे भी मिले, उनका आदर करना चाहिये।

(११) जिस प्रकार एक पादरीके लिये बाइबिलका प्रचार, अंग्रेज जातिके हितसे, सर्वथा स्वतन्त्र ध्येय हो सकता है, वैसे ही स्वामीजीके लिये भी मनुष्य मात्रके हितकी दृष्टिसे वेदका प्रचार बन चुका था। पर व्यावहारिक दृष्टिसे आर्य (हिन्दू)-जातिका हित ही सर्व-प्रथम उनके सामने था। उसकी सिद्धिको ही वह साधक बनाना चाहते थे।

(१२) उनको स्पष्ट दिखाई देता था कि, स्वजातीय अभ्युत्थान आत्मगौरवसे पैदा होनेवाले आत्मविश्वासकी दृढ़ भित्तिपर ही खड़ा होकर चिरस्थायी होता है। उन्हें यह दुःख था कि, पश्चिमी संसर्ग उसी भित्तिकी जड़ खोद रहा था। उनका ऋषिपन इस बातमें था कि, उन्होंने अपने घरके छिद्रको पहले देखा और फिर उसकी पूर्तिका उपाय ढूँढ निकाला। उनका महत्त्व इस बातमें है कि, उनका उपाय सर्वथा स्वदेशीय वेष-भूषासे सुभूषित था। उन्होंने समस्त विकारोंका मूल प्राचीन संस्कृतिके वैदिक आधारमें पाया और बताया। बौद्धकालिक मीमांसकोंसे उन्हें कहीं अधिक बड़ा कार्य करना था। उनके आरम्भ किये हुए वादको उन्होंने अपने समयानुसार परिपुष्ट तथा विकसित किया। वैदिक नित्यत्व, अपौरुषेयत्व, स्वतः प्रमाणत्व, धर्मैकबोधकत्वके वाद तदवस्थ रखे गये। अब उन्हें इससे आगे चलकर न केवल धर्मका या ब्रह्मका, वरन् समस्त लौकिक, पारलौकिक विद्याओंका "शास्त्रयोनित्व" दिखाना था। इसमें उनके समयकी अपेक्षा पायी जाती थी। करोड़ों आदमी इंजिल और कुरानको ईश्वरीय मानते और मनवाते थे। उनकी शिक्षाओंको सर्वोत्तम बताते थे। हिन्दू-नवयुवकोंपर उनके खुले आह्वानोंसे, जिनका शास्त्रीय उत्तर बिल्कुल न दिया जाता था, उलटा प्रभाव पड़ रहा था। प्राचीन संस्कृतिकी भित्ति दुर्बल पड़ रही थी। स्वामीजीको यह असह्य प्रतीत होता था। उस आपत्तिके प्रतिकारार्थ उन्होंने प्राचीन मीमांसकोंका सहारा लिया और अपनी आवश्यकताके अनुसार उसे ढाला और विशाल किया।

(१३) कुरान और इंजिलको पढ़ना सबके लिये संभव था। जो कुछ उनमें था, उसके मुकाबिलेमें वेदमें कैसा उपदेश है, यह सब कोई न जान सकते थे। केवल ऊपरके तीन वर्णोंके पुरुषोंको वेद पढ़ने या सुननेका अधिकार था। सो वे भी न सुनते थे। वेदका स्थान अन्य कथाओंने ले लिया था। विधर्मी वेदको फर्जी बताते और उन कथाओंमें वर्णित नाना प्रकारकी बातोंपर आक्षेप करते तथा खिल्ली उड़ाते थे। पशुवध आदिपर फबतियाँ उड़ाते थे। स्वामीजीने वेदको सबके लिये समान रूपसे खोल दिया। चार मूल वेदोंको शेष समस्त ग्रन्थोंसे पृथक् करके उन्हें अपनी यौगिक प्रक्रियाके आधारपर कुरान आदिके मुकाबिलेमें सर्वोच्च सिद्ध कर दिया। न केवल धर्म-कर्म और आत्मा-परमात्माके विषयमें, वरन् वैज्ञानिक बातोंमें भी उन्होंने वेदका सिर ऊँचा किया। वैज्ञानिक शिक्षाकी उत्तरोत्तर वृद्धि लोगोंकी धार्मिक ग्रन्थोंसे, जो कि, कई अंशोंमें उसके विरुद्ध पाये जाते थे, श्रद्धाको हटा रही थी। स्वामीजीको मुकाबिलेमें वेदको वैज्ञानिक सिद्ध करना था। यौगिक प्रक्रियाका सुदर्शनचक्र उनके हाथमें था। प्राचीन आचार्योंने अपौरुषेयत्व-वादकी सिद्धिके अर्थ तथा अनवगत निगमोंकी व्याख्याके अर्थ इस प्रक्रियाको वर्ता था। स्वामीजीका काम अपनी अपेक्षाकी पूर्तिके अर्थ इस कामधेनुको दुहना और इसे अपने स्वाभाविक अवसानतक ले चलना था। इंजिल आदिमें पृथिवीको गति-रहित पाकर वैज्ञानिक अश्रद्धा हुई थी। इधर वेदमें उसके वाचक "गौः" पदको गति-क्रियासे युक्त दिखाकर उसे विज्ञानानुकूल सिद्ध कर देना आसान कर दिया गया। इसी प्रकार प्राचीन यौगिक अर्थोंका विस्तार कर दिया गया। प्राचीनों द्वारा किये 'अन्नपरक' आदि अर्थको स्वीकार करते हुए, उन्हें "उप-

लक्षणमात्रं चान्येषां पदार्थानां" कहकर व्यापक अर्थका वाचक बना दिया गया। मन्त्रोंके प्रकरण-विरचनमें भी स्वतन्त्रता कर ली गयी। यह नहीं कि, प्राचीन शतपथादिके व्याख्यानोंकी विस्मृति हो रही हो। उन्हें सामने दे-देकर अपना नया व्याख्यान किया गया है (उदाहरणके लिये देखिये, य० ५।१३०, ७।२४-२६।, ८।५४)। इसी प्रकार शब्दार्थका सर्वथा परिवर्त्तन भी कर लिया गया (जैसे 'उपयाम'=यम-नियम-समूह यद्यपि काठक० सं० २७।२ में स्पष्ट पात्रपरक अर्थ मौजूद है)। इस प्रक्रियाके विस्तृत प्रयोगसे उन्होंने नये युगके लिये रुचिकर और उपयोगी ऐसे-ऐसे प्रकरण बाँधे, जिनका प्राचीन आचार्योंको स्वप्न भी कभी न आया था।

(१४) इस प्रकार स्वामीजीको अपने साध्यकी सिद्धिमें सफलता प्राप्त हुई। उस समय विधर्मिताकी बाढ़ थम गयी। उपप्रविशियोंको अपनी रक्षाकी पड़ गयी। उन्होंने अपने दर्शनानुसार वैदिक विद्याके दुर्गको पुनः दृढ़ बनाया। वे केवल आलोचक या अनुवादक न थे। वे असम्बद्ध वैज्ञानिक भी न थे। वे विद्या, विज्ञानका आदर करते थे; पर उन्हें लोक-परलोकके हितका साधन मात्र रखना चाहते थे। सत्यके वह परम भक्त थे। पर अनेक सत्यों (अर्थात् सत्यके अंशों) में वह समयानुसार उपयोगी अंशोंको छाँट लेना अपना अधिकार समझते थे। वह ठीक अर्थोंमें वर्त्तमान समयके हमारे आचार्य थे। उनके सामने वेदका उजड़ता हुआ उद्यान था। उनके आगे प्राचीन संगठनका बिखरता हुआ दृश्य था। उनका हृदय स्वभावसे भक्तिप्रवण और आस्तिक था। ऋषियों और वैदिक संस्कृतिकी ओर विशेष झुकाव उन्हें गुरुजीसे प्रसाद मिला था। तर्क उन्हें निसर्गसिद्ध था। समय विशेषरूपसे क्रान्तिकी अपेक्षा करता था। इन हालातमें स्वामीजीने जो प्रक्रिया बाँधी, वही स्वाभाविक और सर्वोत्तम थी। उनके कार्यको केवल खण्डनपरक समझना भूल है। वह तो प्राचीन गौरव तथा संस्कृतिके सबसे बड़े पोषक थे।

(१५) सच पूछो तो शास्त्रीय दृष्टिसे केवल दो बातोंमें उनका मीमांसकोंसे वास्तविक मार्ग-भेद है, अर्थात् ब्राह्मण-ग्रन्थोंको मुख्य वृत्तिसे वेदत्वसे वञ्चित करना तथा वेद पढ़नेका अधिकार सबको देना। परन्तु ये दो बात भी सर्वथा नये नहीं कहे जा सकते। जब अथर्ववेदके १६ वें काण्डके अन्तमें वेदकी समाप्तिका संकेत है, तब अवश्य वहाँपर गोपथब्राह्मणकी ओर उसका विस्तार नहीं हो सकता। ब्राह्मणोंको संहिताओंका मुख्य वृत्तिसे तुल्यकक्ष मानना तर्कविरुद्ध है। हाँ, जैसे व्याकरण-के सूत्रों और उनपर किये गये भाष्यकी समान-विषयताके आधारपर व्याकरण संज्ञा सिद्ध है, उसी प्रकार ब्राह्मणोंको औपचारिक रूपसे वेदोंके अन्तर्गत करनेके वह विरुद्ध न थे। इसी प्रकार वैदिक युगके व्रात्यसंस्कारोंकी प्रथा कई अयोनिज पुरुषों तथा अनेक अबलाओंके प्रख्यात ऋषित्वका उल्लेख उन्हें अपने समयोचित संशोधनके प्रचारमें उत्साहित करता होगा। कुछ हो, उन्होंने अपने काल-प्राप्त आचार्यत्वके अधिकार-को जिस प्रकारसे वर्ता, उससे उस समय और उत्तम प्रकार नहीं हो सकता था। यदि ऐसा होते हुए भी लोगोंने उन्हें नास्तिक और सनातनधर्मसे विमुख कहा, तो इसका कारण लोगोंकी भ्रान्ति है। यदि स्वामीजीका कार्य जातीय निर्माणके क्षेत्रमें न गया होता, यदि उनका संसर्ग उथल-पुथल करनेवाला न होता, यदि उनका कथन लोगोंके बँधे हुए जीवनको हिलानेवाला न होता; और, सबसे बढ़कर, यदि उनके कार्यका प्रभाव लोगोंकी आजीविकाको धक्का लगाता हुआ प्रतीत न होता, तो निःसन्देह उन्हें "परम आस्तिक" कहा जाता और न जाने और क्या क्या मान दिया जाता! पर क्या वह स्वामी दयानन्द असली स्वामी दयानन्द होता, जिसने साहित्यिक क्षेत्रतक सङ्कुचित न रह कर जातिके भवन-निर्माणको पुनः सुप्रतिष्ठित किया है? सम्भव है, स्वामीजीके साहित्यिक कार्यपर साहित्यवेदी लोगोंकी धारणा ढीली होती जाय; पर यह निश्चित बात प्रतीत होती है कि, उनके भावों और तात्पर्योंसे कोई जातीय शुभेच्छु कभी भी उदासीन न होगा।

यह स्पष्ट है कि, यदि वेदका युग-युगान्तर और देश-देशान्तरमें अबाधित प्रचार करना तथा अक्षरशः मानना अनिवार्य है, तो वैयक्तिक स्वतन्त्र वैचित्र्यके सदुपयोगार्थ यह वाद निःसन्देह अनुपम साधन है।

कविता-कल्लोलिनी

श्रुति-सार

"प्रज्ञानं आनन्दं ब्रह्म" कहलाता है ऋग्वेद
"अहं ब्रह्म अस्मीति" बखानै यजुर्वेद, तज भेद।
सामवेदका ज्ञान "तत्त्वमसि" सुन्दर सत्य-स्वरूप।
'ब्रह्म अयं आत्मा' अथर्वका है उपदेश अनूप॥

—प० लोचनप्रसाद पाण्डेय

विकास और ह्रास

प्रकृति रँगीली विकसित करती,
नित नवीनतम फूलोंको।
खिल-खिल कर वे सज्जित करते,
वन-उपवनके फूलोंको॥
गन्ध-मदिर जब फूट निकलती,
भौंरे होते मतवाले।
कहते फूल मुस्कुरा कर,
ले लो यह भेंट प्रकृतिवाले॥
नभमें रवि करते पयान,
क्षितितलपर गोरज छा जाती।
वसुन्धराके अंचलमें सारी—
सुगन्ध-निधि झर जाती॥

प० जगन्नाथ मिश्र गौड़ "कमल"

यश

अस्ताचलकी ओर चिता यह—
किसकी धधक रही है?
नील गगन हो गया एक—
रक्ताभा चमक रही है॥ १॥

धूम-रहित यह चिता अनोखी,
चट-चट नहीं सुनाता।
ज्वाला उठी गगन-चुम्बित हो—
निरुपम दृश्य दिखाता॥ २॥

किंवा किसी किशोरीकी यह—
आँखोंकी मादकता?
रस-आकर्षक जिसकी काया—
कान्ति ज्योतिसे झरता॥ ३॥

समझ नहीं आता है यह, यह—
छायी किसकी माया?
अरे हृदय! क्या कह सकता तू—
यह किसका 'यश' छाया?॥ ४॥

बाबू मदनलाल खेमका

प्राचीन भारतकी शिल्पकला

बा० श्रीमद्भागवतप्रसाद वर्मा

भारतकी शिल्प-कला अधिकांशतः स्वतन्त्र और संसारके अन्य राष्ट्रोंके वस्तुनिर्माणकौशलमें विशेष स्थान रखती है। इसके प्राचीन मठ, स्तूप और मन्दिर अपूर्व और अनुपम हैं। इसके सिवा एक अन्य विशेषता भी है—यहाँके प्राचीन शिल्पमें, अन्य देशोंके शिल्पकी अपेक्षा, धार्मिकताका विशेष आभास पाया जाता है।

प्राचीन भारतकी वस्तुनिर्माणविद्या एक ऐसा विलक्षण विषय है कि, उसका सर्वांशतः अध्ययन आजतक कोई भी न कर सका और न भविष्यमें किसीको इसमें पूरी सफलता मिलनेकी आशा है। बात यह है कि, भारतके प्राचीन संस्मरणोंकी खोज पाश्चात्त्य विद्वानोंके हाथोंमें हैं; और, वे, भारतीय प्राचीन संस्कृति एवं कलाओंके आन्तरिक रहस्यसे स्वाभाविकतया अपरिचित होनेके कारण, उन प्राचीन ध्वंसावशेषोंका वास्तविक निरूपण नहीं कर सकते। दूसरा कारण यह है कि, भारतमें कोई भी ऐसा पुरातत्त्वविशारद नहीं हुआ, जिसने, स्वतन्त्र-रूपसे, कहीं भी खोदाईका काम किया हो और उस सम्बन्धमें अपना निजी विचार प्रकट किया हो। स्व० राखालदास बनर्जी और पुरातत्त्व-विभागके वर्त्तमान डाइरेक्टर जनरल राय बहादुर प० दयाराम साहनी एम० ए० आदिकी खोदाइयाँ परतन्त्र हैं। ऐसी दशामें, लाचार होकर, हमें पाश्चात्य विद्वानोंके मतोंको ही, सशंकित हृदयसे स्वीकार करना पड़ता है।

फ़र्गुसन साहब भारतीय पुरातत्त्व एवं प्राचीन इतिहासके अधिकारी विद्वान् समझे जाते हैं। उन्होंने भारतीय जातियों और धर्मके विषयमें अपना जैसा मत स्थिर किया है, उसे, सबने, सर झुकाकर, स्वीकार कर लिया है। उनका मत है कि, भारतवर्षकी प्राचीन शिल्पकलाका जन्म ईसासे केवल २५०० वर्ष पूर्व हो सकता है। किन्तु, जॉन मार्शलने—जिनके अधिनायकत्वमें मोहन्जो-दारोकी खोदाई हुई थी—यह समय ईसासे ३००० वर्ष पूर्व माना है।*

फ़र्गुसन साहबने प्राचीन भारतके शिल्पको मुख्यतः तीन भागोंमें बाँटा है, जिनमें पहला स्थान बौद्ध शिल्पका है। बौद्ध-शिल्पकलाका सबसे अच्छा नमूना साँचीमें है, जिसका उत्तरीय सिंहद्वार अनुपमेय और बहुत सुन्दर कहा जाता है। इसके अतिरिक्त अन्यान्य चैत्य भवन अर्थात् कार्ली, अजन्ता, नासिक, एलोरा और कन्हेरीकी गुफाएँ हैं।

---

* *Mohanjo-daro and Indus Valley Civilisation.*—Indian Historical quarterly, March 1932.

यह बात विचारनेकी है कि, हमारे प्राचीन कलाकारोंने किस कला-कौशल और अध्यवसायके साथ—कितना कष्ट-सहिष्णु बनकर—पर्वतोंके भीतर ऐसे सुन्दर विशाल भवनोंको बनाया था !

दूसरा नमूना है गान्धार-शिल्पका । पाश्चात्त्य विद्वानोंका मत है कि, गान्धार-शिल्पमें पाश्चात्त्य—विशेषतः रोमन तथा बाइजंटाइन—शिल्पका आभास है। उनका कहना है कि, इसमें ग्रीक शिल्पकलाकी भी काफ़ी छाप पड़ी हुई है । इस प्रकार लोगोंकी यह धारणा, बलवती होती जा रही है कि, भारतीय कला पाश्चात्य कलासे ही प्रभान्वित हुई है। किन्तु कई विद्वान् इसके विपक्षमें भी अभी झगड़ रहे हैं।

जैन-शिल्पकलाके सबसे सुन्दर परिचायक हैं आबू पर्वतके शिखरपर-स्थित दिलवाराका मन्दिर और चित्तौड़-स्थित विजयस्तम्भ ।

मद्रास प्रेसिडेंसी और दक्षिण भारतकी प्राचीन वस्तु-निर्माणकलाके नमूनोंको द्रविड़-शिल्पके अन्तर्गत माना गया है। अधिकांश विद्वानोंके मतसे एलोरा-स्थित कैलास (*Klyas*)की गुफाको द्रविड़-शिल्प-शैलीका नमूना मानते हैं। तंजोरका पैगोडा तथा श्रीरंग, चिदम्बर, बेलोर, विजयनगर आदिके मन्दिर, मदुरा तथा तंजोरकी राजधानियाँ इसी शैलीकी हैं। फ़र्गुसन साहबने दक्षिण-मध्य-भारतकी पुरानी इमारतोंको चालुक्य-शिल्पके तथा उत्तर-भारतके पृथ्वीके भीतर पड़े हुए विशाल भवनोंको भारतीय आर्य-शिल्पकलाका नमूना बतलाया है । इन दोनों शैलियोंमें परस्पर इतना सादृश्य है कि, कोई महत्त्व-पूर्ण विभिन्नता ढूँढ निकालना बड़ा ही कष्ट-साध्य जान पड़ता है। इसी कारण इन दोनों शैलियोंको, कई विद्वानोंने, "हिन्दू-शिल्पकला"का रूप दे दिया है । कई अन्यान्य प्राचीन हिन्दु-मन्दिरोंमें, जिनमें शिल्प-कलाकी विलक्षणता दीख पड़ती है और जो पुरातत्त्वकी दृष्टिसे भी विशेष महत्त्वपूर्ण हैं, वे हैं उड़ीसामें, मुक्तेश्वर तथा भुवनेश्वर, खजुराहो, वृन्दावन, उदयपुर, बनारस और ग्वालियरके मन्दिर। ग्वालियरमें राजा मानसिंहका राजप्रासाद भारतवर्षमें अपनी शैलीकी एक ही चीज़ है। आमेर, दतिया, ओड़छा, डिग और उदयपुरके राजप्रासाद भी, इस दृष्टिसे, कम महत्त्व नहीं रखते।

भारतवर्षमें मुसलमानोंके आगमनके बाद यहाकी प्राचीन वस्तु-निर्माण-कलामें भारी परिवर्तन हुआ—शैली ही कुछ दूसरी हो गयी। प्राचीन शिल्पकला और यवन-शिल्पकलाने मिलकर एक नयी शैलीकी शिल्पकलाका रूप धारण किया। इस शैलीका नाम भारतीय सरसेनी (*Indo-saracenic*) पड़ा। गुम्बज़-दार भवन अधिक पसन्द किये जाने लगे, जो अब-तक, एक प्रकारसे, भारतीय शिल्पकारोंको नहीं मालूम थे। मेहराबोंकी चाल इसी समयसे चली और खूब चली। मसजिदकी इमारतें, भारतीय शिल्पकारोंके लिये, एक नयी चीज़ हो गयीं। उन्होंने इमारतोंमें नक़्क़ाशकारीके नये-नये नमूने ढूँढ़ निकाले। ग्वालियर-के राजप्रासादमें इस नयी शैलीकी भी छाप है।

भारतीय प्राचीन शिल्पकलापर विदेशी शिल्प-कलाके प्रभावके विषयमें अभी काफ़ी मतभेद चला आता है। एक दलका कहना है कि, बहुत प्राचीन कालसे भारतीय शिल्पकला अन्य प्राचीन राष्ट्रोंकी ऋणी है। वे गान्धार-शिल्पकलामें ग्रीक शिल्पकलाकी काफ़ी झलक देखते हैं। वे कहते हैं कि, भारतीय मुसलमानी ढंगकी इमारतें उत्तरी अफ्रीका और यूरोपकी तत्कालीन इमारतोंसे बहुत मिलती-जुलती हैं

इसकी पुष्टिमें वे कहते हैं कि, मुग़लोंके शासनकालमें यहाँ अँग्रेज व्यापार करने लगे थे; उनकी नयी तर्जकी कोठियाँ और कारखाने बनने लगे थे। दूसरा दल इसका घोर विरोध करता है। वह कहता है कि, अँग्रेज स्वभावतः आत्मश्लाघी होते हैं; वे नहीं चाहते कि, उनसे किसी भी अंशमें कोई ऊँचा बने या कहलाये। संसारकी सभी उन्नत कलाओंको वे यूरोपसे ही निकली बताने और प्रमाणित करनेकी चेष्टा करते हैं! एशिया—आर्यों के आदिनिवास यूफ्रेटस् नदीकी दरी—की सभ्यता विश्वके सभी राष्ट्रोंकी प्राचीन या अर्वाचीन सभ्यताकी जननी है; फिर भी, वे इस प्रकृत सत्यको माननेमें हिचकते हैं! उस दलका यह भी दलील है कि, गान्धार-शिल्पकला तो भारतवर्षकी अन्य सभी प्राचीन वस्तुनिर्माणकलाकी शैलियोंसे गयी-गुजरी है—बौद्ध एवं जैन-शिल्पकलाओंके आगे उसका कुछ महत्त्व ही नहीं; और, यदि उसपर ग्रीक-शिल्पकलाके असर पड़नेका धोका अँग्रेजोंको होता है, तो उनकी वैसी कला हम स्तुत्य नहीं समझते। इनका दावा है कि, जावा-स्थित बोरोबुदरमें जो बौद्ध-मठ है, उस शानकी इमारत प्राचीन ग्रीस और बैक्ट्रियाकी शिल्पकलाके नमूनोंमें भी ढूँढ़नेसे नहीं मिल सकती! अतः इतनी मतविभिन्नताके होते हुए इस विषयपर कोई भी निर्णय स्थिर नहीं किया जा सकता।

नयी शिल्पकलाके हिमायतियोंकी आँखोंमें, भारतीय-मुसलमानी (*Indo-Mahometan*) और शुद्ध भारतीय इमारतोंकी शैलीके पारस्परिक सादृश्यकी अधिकताके कारण भारतीय और पश्चिमी मुसलमानी इमारतोंके बीचकी साधारण विभिन्नता नहीं खटकती। वे इस बातको क़बूल तो ज़रूर करते हैं; लेकिन उनका कहना है कि, भारतकी प्राचीन शिल्पकलामें, भारतवर्षमें इस्लाम धर्मके अधिकाधिक प्रचार होनेके कारण, कुछ नवीनता अवश्य आ गयी थी; किन्तु उसमें सदैव उसका प्रकृत सौन्दर्य—भारतीयता ही—विद्यमान रही। मीनार, गुम्बज और मेहराबका प्रचलन मुस्लिम शिल्पकलाका ही नमूना है सही; लेकिन इसमें भी ख़ालिस मुसलमानपनके बदले भारतीयताकी ही छाप लगी हुई है। कलाकारीके ढंग—संगतराशीके तरीके—भारतके ही हैं। इन दो दलोंमें प्रथम दलके नेता फ़र्गुसन साहब और दूसरे दलके समर्थक हैं मि० ई० बी० हैवेल।

आगरा और दिल्ली भारतीय-सरसेनी शिल्पकला-शैलीके केन्द्र माने जाते हैं। आगरेके क्षेत्रमें आगरेका ताजमहल, फ़तेहपुर सिकरीमें सम्राट् अकबरका बनवाया हुआ शाही महल, सिकन्दरा-स्थित उसका समाधि-मन्दिर, आगरेकी मोती मसजिद और कालिन्दीके निर्मल जलसे टकराता हुआ लाल पत्थरका किला—उसके भीतरकी इमारतें हैं। दिल्लीके हुमायूँ और सफ़दरजंगके मक़बरे और कुतुबमीनार, इस दृष्टिसे, विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। कुछ-कुछ इसी शैलीके नमूनेके दो और केन्द्र हैं; पहला है गुजरातमें अहमदाबाद और दूसरा है दक्षिण भारत (*Deccan*) में बीजापुर। अहमदाबादकी इमारतोंमें प्राचीन हिन्दू-शैलीका ही कुछ परिवर्तित रूप दीख पड़ता है। मेहराबों और गुम्बजोंकी अपेक्षा, यहाँकी इमारतोंमें, शिल्पकारोंने चौखटों (*Lintels*) और दीवारगीरों (*Brackets*) की नक़ाशीपर अधिक ध्यान दिया है। पत्थरकी पट्टियोंमें जैसी आले दरजेकी नक़ाशी यहाँ है, वैसी दूसरी जगहोंमें बहुत कम देखनेको मिलती है। यहाँकी सीदी सैयद मसजिदमें लगी

हुई ताड़वृक्षकी खिड़कियाँ बड़ी सुन्दर हैं।

बीजापुरकी इमारतोंकी शैली भी बड़ी आकर्षक है। अहमदाबादकी इमारतोंकी अपेक्षा, यहाँकी इमारतोंमें, मुसलमानपन अधिक है; गुम्बजकी बनावटपर बहुत ध्यान दिया है। महमूदके मक़बरेवाले गोल गुम्बजको संसार-भरके गुम्बजोंमें पहला स्थान प्राप्त है। एक गुम्बजवाली ऐसी इमारत, जिसके भीतर इतनी अधिक जगह हो, दुनियाके किसी कोनेमें भी नहीं है !! उत्तर भारतकी इमारतों जैसी अच्छी संगतराशी और नक्काशीके काम यहाँकी इमारतोंमें नहीं हैं सही; लेकिन इनका-सा डील-डौल भारतमें दूसरी जगहकी इमारतोंका नहीं है। सबसे अधिक विशेषता तो यह है कि, इन इमारतोंमें, इसी ओर मिलनेवाले स्याह पत्थर (*Deccan basalt*) लगाये गये हैं, जो भारतमें दूसरी जगह दुर्लभ हैं। इसी तरह अहमदाबादकी बढ़िया नक्काशीका कारण गुजराती पत्थर ही हैं, जिनमें अपेक्षाकृत अधिक सुभीतेके साथ नक्काशीका काम हो सकता है।

ऐसा हो !

हे विभीषिकामय, आओ,
आओ, हे भीषण भैरव वात !
बूँद-बूँदमें बिजली भरकर,
कड़क-कड़क घन, कर लो बात !
धीमी धमनी धधके धक-धक,
ज्वालामुखी फटे दिन-रात !

नरपिशाचके खप्परमेंसे,
धाँय-धाँय हो उल्कापात !
अभा-राज्यका यौवन निखरे,
यम खेले शोणितका फाग !
अनल-सेजपर सुखसे सोवें,
भारतीय तरुणोंके भाग !

—साहित्याचार्य "मग"

नीली छतरी

बा० रौशनलाल "अम्बालवी" बी० ए०

नौकरीके सिलसिलेमें मैं दिल्ली आया और नहरके महकमेमें मुलाज़िम हो रहा। रेलके पुलसे लेकर ओखलेतक मेरा इलाक़ा था। ओखलेसे नहर निकाली गयी है; और, मैं, आम तौरपर, दरियाके पानीका हिसाब रखता था। चढ़ावके वक्त, ओखलेके दफ़्तरमें, इत्तला कर दिया करता था कि, वे लोग, पानीके आनेके पहले ही, होशियार हो जायँ और ज़रूरी इन्तज़ाम कर लें। सरकारकी तरफ़से एक किश्ती, दो मल्लाह और एक ख़लासी मुझे मिले हुए थे। अपनी इस छोटी-सी किश्तीपर दरियामें सैर किया करता था।

दरअसल दरियामें सैर करनेका मुझे शौक़ भी था। लेकिन बरसातके मौसममें, बीच धारामें, जानेसे ख़तरा जाया करता था।

एक दिन मल्लाहोंने मुझे एक छोटी-सी इमारत दिखायी, जिसकी छतपर एक गुम्बज था और रंग लाल था। इमारतके भीतर एक चौकोर कमरा था और चारो तरफ़, बरामदेकी क़िस्मका, एक चबूतरा था। भीतर शिवजीकी एक मूर्त्ति थी।

इस छोटी-सी इमारतको दिल्लीवाले 'नीली छतरी' कहा करते थे।

मुलाज़िमोंने मुझे बताया कि, जिस दिन बरसातमें, इस नीली छतरीके चबूतरेपर पानी चढ़कर भीतर शिवलिङ्ग-को छिपा लेगा, उस दिन ओखलेके बाँधके टुकड़े-टुकड़े हो जायँगे! ओखले रेलके पुलसे सात मील नीचे था और नीली छतरी, दरियाके किनारे, पुलके क़रीब थी। सचमुच बादशाह जहाँगीरके वक्तकी एक और नहर भी थी, जो ओखलेके क़रीब खोदी गयी थी। मालूम होता है कि, वह नहर लाल क़िलेसे निकालकर सात मीलके फ़ासलेपर, फिर दरियामें, मिला दी गयी थी। इस छोटी-सी नहरको बादशाहने किस मतलबसे खुदवाया था, यह आजतक किसीको भी न मालूम हो सका।

मेरे मल्लाहोंका तो कहना था कि, नीली छतरी उससे पहलेकी बनी हुई है। उसी जगहसे दरियाकी चाल और चढ़ावके मुताबिक़, शाही क़िलेमें, नहरका पानी कम और ज्यादा हो जाया करता था। शाही नहरका कुल हिसाब इसी नीली छतरीपर दारमदार रखता था।

× × ×

सन् १९१४ ई० की बात है। इस साल बारिस ज्यादा होगी, सभी लोगोंके मुँहसे यही बात निकलती थी। महक-मेसे हर रोज़ सख्त ताकीदके पैग़ाम आते थे। मैं भी चौकस था। दिन भर दरियाका हाल देखकर शामको दफ्तरमें रिपोर्ट भेज देता था।

पूर्णमासीका दिन था। आसमानमें बादलका एक छोटा-सा टुकड़ा भी न था। जीमें आया, किश्ती निकालकर दरियाकी सैर करूँ। दोनों मल्लाहोंको साथ लिया और रेलके पुलके क़रीब आ गया।

रात हो चुकी थी। चढ़ावके ख़्यालसे पंडे लोग भी शाम होते ही घाटोंसे चले गये थे। मैंने अपनी किश्ती ऐन नीली छतरीके नीचे रोकी। चाँदकी रोशनीमें उस छोटी-सी चौकोर इमारतका नीला रंग कैसा अच्छा मालूम होता

था! मैं किश्ती छोड़कर ऊपर गया—नीली छतरीके क़रीब। रोशनी नज़र आयी। देखा, भीतर एक चिराग़ टिमटिमा रहा है और एक खूबसूरत नौजवान औरत शिवजीकी पूजा कर रही है—अकेली, ऐसी सुनसान जगह! मैं हैरान हो गया। चबूतरेपर आकर दरवाजेपर खड़ा रहा। उस सुन्दरीने मेरी तरफ़ नीची नज़रोंसे कई बार देखा। मैंने उससे पूछा—"ऐसे वक्त तुम अकेली क्या कर रही हो जी?"

"पूजा।"

"दरिया चढ़ावपर है; पानी बढ़ता ही जा रहा है। तुम्हें यहाँ न रहना चाहिये।"

"फिर कहाँ जाऊँ?"

"अपने घर!"

"मेरा घर यहीं है!"

"तुम पुजारिन हो?"

"हाँ, अपने देवताकी"—उसने शिवजीकी मूर्त्तिकी ओर इशारा किया।

"अच्छा, तो तुम शिवकी पूजा करती हो?"

"हाँ, जिनमें मारनेकी शक्ति है—समझे? नाश करनेकी!"

"ऐसी शक्तिकी उपासना करना बड़ी मुश्किल है।"

"मुश्किलको ही आसान करनेके लिये उपासना करनी पड़ती है!"

अँधेरा हो गया। मैंने सर ऊँचा करके देखा, चारो तरफ बादल घिर रहे हैं; और, इन्हीं बादलोंके छोटे-से टुकड़ेमें पूर्णमासीका चाँद छिपा जा रहा है!

मैंने कहा—"काले-काले बादल झूम-झूमकर घिर रहे हैं; आज जरूर पानी बरसेगा।"

"बादल—अहा! इन्हें ही देखकर कालिदासने "मेघदूत"-जैसी अमर रचना कर डाली थी!"

यह वक्त कालिदासकी चर्चा नहीं; जान लेकर निकल भागनेका है।"

"मैं तो कह चुकी हूँ कि, मैं कहाँ जाऊँ; मेरा घर यहीं है!"

"हमेशासे यहीं रहती हो?"

"नहीं।"

"तुम्हारा कोई है?"

"नहीं।"

"कोई था भी?"

"हाँ, जो कभी इसी यमुनामें समा गया है।"

"वह कौन था?"

"अच्छा, आप कौन हैं?"

"मेरा नाम चन्द्रमोहन है। महकमे-नहरमें काम करता हूँ। मुझे सरकारी हुक्म है कि, लोगोंको, आनेवाले दरियाके चढ़ावसे, वक्तपर होशियार कर दूँ। मैंने तुम्हें ख़बर दे दी है; मगर तुम कहीं जानेके लिये तैयार नहीं होती हो, तो तुम्हें ज़बर्दस्ती उठाकर किश्तीमें डाल दूँगा और ओखले ले जाकर पुलिसके हवाले कर दूँगा! जब यहाँसे पानीका ख़तरा जाता रहेगा, तब तुम्हें यहाँ पहुँचा दिया जायगा.........।"

"मैं न जाऊँगी!"

"मैं ले जाऊँगा"—इतना कहकर मैंने भीतर पैर रखा और उसे अपने हाथोंमें उठा लिया। वह फूल-सी हल्की थी! उसके बदनसे हाथ लगाते ही मेरे बदनमें बिजलीकी तरह झटका लगा! तमाम जिस्म थर्रा गया। एँड़ीसे चोटीतक किसी खास क़िस्मका असर हुआ, जिसे मैं पहचान न सका—जिसे मैं बर्दाश्त न कर सका। मेरे खयालसे इतनी ढिठाई कोई और मामूली आदमी कभी न करता, जितनी मैंने की। मगर मैं अभी नौजवान था और हालमें ही रुड़की कालेजसे बी० ए० पास कर निकला था। फिर भी तालीम हासिल करनेका जोश अभी बाकी था।

जब मैं उसे लेकर किश्तीके पास पहुँचा, तब मल्लाहों ने चिल्लाकर कहा—"बाबूजी, यह क्या !"

"एक औरत है।"

"अरे हुजूर, पुलिसको मालूम हो जाय, तो......"

"अगर पानीके बहावमें बह जाती, तो !"

"तब क्या करोगे ?"

"साहबके पास पेश करूँगा, और क्या करूँगा ? चलो, रस्से खोल दो। किश्तीको बहावपर छोड़ दो।"

अब पानी और भी ज्यादा हो गया था। हमारी छोटी-सी नाव डगमगा रही थी। वह बराबर मेरे सामने बैठी रही। मैं उसकी तरफ़ देखता रहा। हालाँ कि, अँधेरेमें मुझे उसकी शक्ल साफ़ नज़र न आती थी; फिर भी मैं कह सकता था कि, मैंने इतनी खूबसूरत और नाज़ुक औरत आजतक नहीं देखी थी !

२

ओखले हेडक्वार्टरसे लौटकर मैं सीधा उसे लेकर इंजिनियर साहबकी कोठीपर गया। वे एक कुलीन ब्राह्मण थे। मैंने उनसे कुल कैफ़ियत कह सुनायी। उन्होंने उस औरतसे पूछा —

"लड़की, तुम्हारा नाम ?"

"सूरजमुखी।"

मेरे दिलने कहा—कैसा प्यारा नाम है—सूरजमुखी ! जिसका खिला हुआ चेहरा सूरजको देखकर उससे खूबसूरती लेता है; उसकी तरफ हर वक्त टकटकी लगाये रहता है। सूरजकी पूजामें दिनभर लगाकर शाम होते ही शर्मसे गर्दन नीची झुका लेता है......!

साहब बोले—"जबतक दरियामें चढ़ाव रहनेका डर है, तबतक क्या तुम यहाँ रहनेके लिये तैयार हो ?"

"कहाँ !"

"वह सामने; नहरवालोंने मुसीबतज़दा लोगोंके लिये कैम्प तैयार कर दिया है। वहीं खाने-पीनेका भी बन्दोबस्त है। इसके बाद तुम्हें तुम्हारे ठिकाने पहुँचा दिया जायगा।"

"मुझे मंजूर है।"

"किसी किस्मकी तकलीफ़ अगर पेश आवे, तो मेरे पास आ सकती हो।"

"बहुत अच्छा।"

"चन्द्रमोहन, इनका बन्दोबस्त कैम्पमें कर दो। किसी क़िस्मकी तकलीफ न होने पावे"—साहब मेरी तरफ मुख़ातिब होकर बोले।

मैं उस खूबसूरत चाँदके टुकड़ेको लेकर कैम्पमें चला गया और अलग एक अच्छी-सी जगह देखकर इन्तजाम कर दिया।

अपने कैम्पमें चले आनेपर न मालूम क्यों मेरा दिल उसकी तरफ खिँचा जा रहा था।

दूसरे दिन जान-बूझकर मैं कैम्पकी तरफ गया। सूरजमुखी सूरजको देख रही थी। उसे चाँद की परवा भी क्या थी !

मुझे देखते ही उसने मुँह फेर लिया। उसकी आँखें सुर्ख थीं। इस हालतको देखकर मैं उदास हो गया। सोचा, वह मुझसे नफ़रत करती है।

मैं अपनी राह हो लिया।

मल्लाहोंको साथ लेकर मैंने किश्ती खोल ली और दरियामें चल पड़ा। दिनभर इधर-उधर लोगोंको खबर देता रहा। जो मिल सके, उन्हें कैम्पमें भेजता रहा।

दरियाका पानी बराबर बढ़ रहा था ! मेरी किश्ती नीली छतरीतक पहुँची। मैंने देखा, चबूतरेसे सिर्फ तीन फीट पानी नीचे रह गया है ! सोचा, अगर तीन फीट पानी और आ जायगा, तो लोगोंके ख़यालके मुताबिक ओखलेका बाँध टूट जायगा। उफ़ ! क़यामतकी कैसी डरावनी तस्वीर

मेरी आँखोंमें घूम गयी !! अगर ओखलेका बाँध टूट गया, तो हज़ारों जानें तबाह और बरबाद हो जायँगी ! खेती-बारीके अलावा, जो लोग मददके ख़यालसे कैम्पमें आ चुके हैं, उनमेंसे भी एक न बचेगा !

मैं इसी खयालमें वापस आ गया और धड़कता हुआ दिल लेकर बाँधकी तरफ़ दौड़ा। देखा, दरिया ज़ोरसे लहरें मार रही है; पानी सिर्फ़ दो फ़ीट नीचे है। सचमुच नीली छतरीके चबूतरेके डूबते ही बाँधका नामोनिशान मिट जायगा। मैं घबराकर उठ खड़ा हुआ और किश्तीमें सवार होने जा ही रहा था कि, किसीकी आवाज़ मेरे कानोंमें आयी—"ठहरो !"

मैंने देखा, सूरजमुखी दौड़ती आ रही है ! उसकी साँस चढ़ी हुई थी; लेकिन वह कह रही थी—"ठहरो !"

"क्यों ?"—मैंने कहा।

"अब दरियामें न जाओ।"

"मगर क्यों ?"

"पानी चढ़ावपर है, बाँध टूट जायगा।"

"टूट जायगा !"

"हाँ—हाँ, ज़रूर टूट जायगा। आज—अभी—मुमकिन है—दो घंटोंमें ही।"

"कैसे ?"

"बस, मैं जो कह चुकी। नीली छतरीमें पानी आनेवाला है !"

मैं हैरान था कि, सूरजमुखी क्या कह रही है ! वह नीली छतरीसे आठ मीलके फ़ासलेपर है। उसको यह बात कैसे मालूम हो रही है !

सूरजमुखीने किश्तीमें आकर मेरा हाथ पकड़ लिया !

"छोड़ दो, सूरजमुखी। मैं अपना फ़र्ज़ अदा कर रहा हूँ। इन्सानकी खिदमत करना मेरा फ़र्ज़ है। जिस सूरतसे आदमी बच सकेंगे, मैं बचाकर इस किश्तीसे पार लगा दूँगा। तुम अब यहाँ आ गयी हो। इसलिये बाँधके टूटनेसे तो तुम्हारा नुकसान न होगा; मगर कैम्प तबाह हो जायगा। मुझे जाने दो—ईश्वरके लिये। वहाँ औरतें हैं—बच्चे हैं—बूढ़े हैं; बीमार और अपाहिज भी हैं। "मुखे," मुझे न रोको।"—मैंने अपना हाथ छुड़ाते-छुड़ाते उससे कहा।

वह चौंकी। मैंने भी समझा कि, "मुखे" नामपर चौंकी होगी। उसके होंठोंपर हल्की-सी मुस्कुराहट दौड़ने लगी !

३

जिन लोगोंने कभी दरियाका यह हाल देखा है, वह तो बता देंगे। मगर उस वक्त, सन् १९१७ ई० में, सभी छोटे नाले दरिया हो रहे थे, नदियाँ नद हो रही थीं और दरियाको देखकर दिल दहला जा रहा था !

मैंने सूरजमुखीकी बातकी परवा न की और कहा—"तुम्हें ग़रज़—वास्ता ? तुम मुझसे नफ़रत करती हो। तुम्हारी बलासे, मैं डूब जाऊँ या पार निकल जाऊँ !"

वह चुप हो रही। उसकी आँखें ज़मीनमें गड़ी थीं। मल्लाहोंने धीरे-धीरे किश्तीका रस्सा खोल दिया। वह बहावमें पड़ गयी।

ओखलेके बाँधमें आठ दरवाजे थे। मैंने सब दरवाजे खुलवा दिये; ताकि पानीका ज़ोर कम हो जाय। मगर वहाँ कुछ न बना। आख़िर मैं अपनी किश्ती लेकर बड़े फाटक-पर आ गया। बाकी किश्तियाँ खोलकर मैंने मल्लाहोंको दे दीं। बड़ी-बड़ी दिक़तें उठाकर हम लोग आदमियोंको कैम्पसे निकाल-निकालकर पार ले जाने लगे।

सूरजमुखी मेरी आँखोंसे दूर हो चुकी थी। मुझे उसका खयाल ज़रूर था; लेकिन कामकी भीड़में उसकी याद कम हो गयी थी।

बड़े ज़ोरकी आवाज़ आयी और हमारी किश्तीपर पानीका एक ज़बर्दस्त थपेड़ा आ लगा। मल्लाह विस्मि

उठे। सब रोने लगे ! किश्तीमें पानी भरना शुरू हो गया। दो-चार झकोरोंके बाद मुझे कुछ पता न चला कि, मैं कहाँ हूँ—किश्ती कहाँ है ! हाँ, इतना ज़रूर याद है कि, किश्ती उलट चुकी थी और मैं, पानीमें, गोते खा रहा था !

न मालूम मैं कहाँ था—कितनी देरतक—किस हालतमें !!

४

जब मैंने अच्छी तरह देखा, तब मालूम हुआ, मैं किसी आलीशान मकानकी छतपर हूँ ! चारों तरफ़ नज़र दौड़ायी। बहुत देरके बाद मुझे एक निहायत बूढ़ा आदमी नज़र आया, जिसकी सफ़ेद दाढ़ी और सफ़ेद कपड़ोंसे जान पड़ता था कि, वह कोई वैरागी है। मेरी आँखें—मेरा सर आप-ही-आप झुक गया।

उन्होंने निहायत मीठी आवाज़में पूछा—"कहो, अब कैसे हो !"

"क्या मुझे कुछ हो गया था ?"

"तुम डूब चुके हो और दुनियाकी नज़रोंमें अब तुम मुर्दा हो !"

"फिर मैं हूँ कहाँ ?"

"नीली छतरीमें—!'

"नीली छतरीमें !"

"हाँ-हाँ; देखो, मैं तुम्हें दिखाता हूँ।"

मैं इशारा पाकर खड़ा हो गया और वैरागी बाबाके पीछे-पीछे चल पड़ा। दो-चार सीढ़ियाँ चढ़नेके बाद हम ऊपर आये। देखा तो सामने एक आलीशान गुम्बज है—नीला रंग, बड़ा ही भला मालूम हो रहा है—गुम्बज-पर चारों तरफ रोशनी हो रही है। गुम्बज मामूली नहीं, इसका कलस आसमानसे बातें कर रहा है ! आगे जाकर देखा, मालूम हुआ कि, हम लोग हवेलीकी तीसरी मंज़िलपर हैं और नीचे मस्तानी यमुना मौजें मार रही है ! उसके साफ़ पानीके ख़ामोश सतहपर एक ख़ूबसूरत किश्ती अठखेलियाँ कर रही है—उसमें जलती हुई छोटी-छोटी मोमबत्तियाँ यमुनाके जलमें अपना रूप निहार रही हैं ! किश्तीको औरतें खे रही हैं; उनके बीचमें—शायदुम तकियेके सहारे—बैठी और फूलोंसे लदी हुई एक निहायत ख़ूबसूरत औरत दरियाकी बहारका लुत्फ़ उठा रही है ! सभी चुप हैं।

बूढ़े बाबाने धीरेसे कहा—"क्यों, कुछ देखा ?"

"जी हाँ।"

"यही नीली छतरी है। इनकी किश्तीका रंग भी नीला ही है।"

"अच्छा !"

"हाँ।"

"वह कौन है; क्या मैं कुछ और ज्यादा जान सकता हूँ ?"

मैंने जाननेकी कोशिश की और वैरागी बाबाने एक ठण्ढी साँस लेकर कहा—"जाननेकी क्या ज़रूरत है ?"

"मैं ज़रूर सुनूँगा"।

"अच्छा, सुन लो। जब शाहनशाह शाहजहाँने दिल्लीको आबाद कर दिया, लाल क़िला तैयार हो गया; तख़्ते-ताऊस बन गया, तब मैंने अर्ज़ की—'जहाँपनाह बर-सात आनेवाली है; इसलिये, इससे पहले ही, बनारसके "बूढ़ा मंगल"का नज़ारा हो जाय। यमुना भी क्या याद करेगी और हम लोग भी जानोमालको दुआ देंगे। हुज़ूरने फ़रमाया—"नहीं, दरियाकी सैर बरसातमें ही होगी और हम भी शरीक होंगे। इसके साथ-ही-साथ मुझे हुक्म हुआ कि, मैं दरियाकी पबलाव बाँधनेका ज़रिया मालूम कर लूँ; इसीलिये मैंने यह "नीली छतरी" बनवायी, इसका चबूतरा बनवाया और हिसाबसे इसको ऐसा रखा कि, पानीका अन्दाज़ होने लगा। इसके बाद एक नहर काटकर ओखलेमें मिला दी, ताकि बहावके वक्त पानी उस नहरसे

होकर दूसरी तरफ निकल जाय;" जो महल दरियाके किनारे हैं, उनको नुक़सान न आने पावे। इस नीली छतरी और नहरका यही फ़ायदा था।

"बरसात शुरू हुई; पानी पूरी ताकतसे आ गया। शाही महलोंमें एक सरदारकी खूबसूरत लड़की थी। मैं उस पर मरता था। बादशाहका वादा था कि, पनसाल बन जानेपर मेरी मुराद बर आयगी।

"मैं उस वादेपर खुश था; मगर उस खूबसूरत फ़िरिश्ते-का बाप—सरदार किसी औरसे वादा कर चुका था!

"पनसाल बन गयी। जशन शुरू हुआ। लाल किले-से किश्तियाँ छोड़ी गयीं। धीरे-धीरे जाने लगीं। वह हुस्नकी मल्का भी एक किश्तीपर, सहेलियोंके साथ, सवार थी। उसका दिल मुझे और मेरा दिल उसे देखनेको तड़प रहा था। मैंने अपनी किश्ती तैयार की। उम्मीदकी तस्वीर सामने थी।

"जिसके साथ सरदार पहले ही वादा कर चुका था, उसने चालाकी की। बादशाहसे हुक्म दिलवा दिया कि, मैं पनसालपर रहूँ! पानी ज्यादा आ जाय, तो नहरमें निकाल दूँ और जल्दी-से-जल्दी अगली किश्तियोंको ख़बरदार कर दूँ, ताकि वह किनारेपर आ जायँ; क्योंकि दरियाकी तेज़ीमें किश्तियोंका रुकना नामुमकिन था। इस हुक्मसे मेरे बदनमें आग लग गयी—मेरी उम्मीदोंपर पानी फिर गया। इधर मैं देख रहा था और वह उधर ठण्ढी साँस भर रही थी!

"ख़ुदाका हुक्म सर-आँखोंपर। उससे बदला लेनेका ख़याल दिलमें दौड़ने लगा। मैं मालिकसे दुआ करने लगा कि, दरियामें पानी आवे, तब मेरा कलेज़ा ठंडा हो। आख़िर, मेरी आवाज़ उनके कानोंतक पहुँच गयी। पहाड़ोंपर ज़ोरकी बारिस हुई—दरियामें पानी आ गया। जब नीली छतरीके चबूतरेसे एक गज़ पानी रह गया, तब मैं अपनी किश्ती खोलकर चल पड़ा और एक घंटेमें ओखले पहुँच गया। उस वक्त बादशाह—सलामत तो क़िलेकी तरफ़ वापस हो गये थे; मगर अमीर-उमरा जशनमें ही डूबे हुए थे। मैं अपनी देवीकी तरफ़ गया और उससे कहा—'चलो।'

" 'कहाँ!'—वह बोली।

" 'बीच दरियामें।'

" 'क्यों?'

" 'बस, अब ज़िन्दगी सिर्फ़ एक घंटेकी है! चबूतरेसे पानी सिर्फ़ एक गज़ कम है। अगर ख़ुदाने चाहा, तो चबूतरा डूब जायगा!'

" 'फिर क्या होगा?'

" 'जो किसीने आजतक न देखा होगा!'

"मैं किश्ती खींचकर बीच दरियामें ले गया। पानी बढ़कर उछल रहा था। किश्तीमें सँभालनेकी ताक़त बाक़ी रही। दूसरी किश्तियोंका भी येही हाल था। भँवर पड़ने लगा। किश्तीमें पानी भर गया। उफ़!......क्या कहूँ, क्या हुआ! मगर किसीकी जवानी ख़राब करना गुनाह है। मैं किश्तीसे उछलकर दरियामें गिर पड़ा और तबसे आजतक इसी नीली छतरीमें रहता हूँ। हर साल बर-सातमें अपनी पनसाल देखा करता हूँ! सैकड़ों बरस इसी तरह गुज़र गये। तबसे हर छत्तीसवें बरस मेरी पन-साल बराबर डूब जाती है और यही खूबसूरत किश्ती—बरसाती रातकी अँधियारीमें—नज़र आया करती है! इसे देखकर दिलमें ठंडक पड़ जाती है—हर छत्तीस बरसके बाद एक घंटेको!! बस! फिर, कुछ नहीं......!!"

मेरे देखते-देखते वह किश्तीमें छिप गयी। मैंने देखा, बूढ़े बाबा नीची गर्दन किये खड़े हैं। वह बोले—"यह छत्तीसवाँ साल हो रहा है; इसलिये इसमें हज़ारों जानोंका नुक़सान हुआ। मैं पनसालमें मौजूद था; मगर बदला लेनेका ख़याल मेरे कलेजेमें बराबर आग लगा रहा

था। खैर, जाने दो···! वह देखो, दरियाका किनारा है। बस, तुम्हें छोड़कर मैं अपनी डूबी हुई किश्तीका सहारा लेता हूँ !!"

इतना कहकर वह गायब हो गये।

❀ ❀ ❀ ❀

मेरी आँखें खुली। देखा, मेरा सर सूरजमुखीके घुटने-पर है! वह बोल उठी—"देखा न, हजार मना करनेपर भी आप न माने—आखिर किश्ती उलट ही गयी! अगर मैं पीछे-पीछे न आती, तो जिन्दा निकलना भी दुश्वार था।"

सूरजमुखीने दरियाका चढ़ाव देखकर एक और किश्ती पकड़ी और साहबकी इजाजतसे दरियामें चल पड़ी। वह ऐन उस वक्त पहुँची, जब मैं गोते खा रहा था। आखिर उसने अपनी हिम्मत और मल्लाहोंकी मददसे मुझे तो बचा लिया, मगर बाकी लोग डूब गये।

कुछ दिनों बाद, जब दरियाका तूफान जाता रहा, मैंने उससे कहा—"मुखे, चलो, तुम्हें छोड़ आऊँ। हम वहीं रहेंगे—नीली छतरीमें। वहाँ एक बूढ़े बाबा रहते हैं।"

"मुखे" ने मुस्कुराकर मेरी तरफ तिरछी निगाहसे देखा। कहा—"दिल ही 'नीली छतरी' है, जहाँ पलसाल बराबर चढ़ाव और उतारका पता देती है।"

"··············"

हँसती हरियाली

प० गांगेय नरोत्तम शास्त्री

पहर हवा-मिस "लहरदार" धोती हरियाली।
गगन-जौहरीसे लेती मोतीको डाली ॥
वसुधाकी "नव सुता" सुघड़! आली हरियाली!
जय जनताके सुख-गृहकी ताली! हरियाली!! १॥
चढ़ती जब तू शैल-शिखरपर सखि! हरियाली।
"मणिमय" मेघ तुझे अरचें तब बन, वनमाली॥
जब तू जलनिधि-तीर पहुँचती ताल-मालसी।
तब वह तुझको करे विमल लहरोंसे हुलसी॥ २॥
दूर·······क्षितिजके प्रिय उरमें धँसती हरियाली।
करती मुझको मोहित तू हँसती हरियाली॥
आँखोंको तू लगे बरफसी प्रिय हरियाली।
लेती सत्वर खींच हृदयस-क्रिय हरियाली॥ ३॥
ललित "हरेवा"-पंख-बनीसी "जाजम" प्यारी।
हरित मखमली गद्दी या पन्नोंकी क्यारी॥
मस्तकमें यह "सुधा-सिन्धु" फँसती हरियाली।
पलकोंपर यह बसे सदा हँसती हरियाली॥ ४॥

विचित्र-कल्प

१ भाषा

मुनिराज विद्याविजयजी

मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जो अपने मुख द्वारा आन्तर भाव प्रकट करते हैं, उसको भाषा कहते हैं। हम यहाँ मनुष्यभाषाके विषयमें ही विचार करेंगे। भिन्न-भिन्न देशोंके मनुष्य भिन्न-भिन्न प्रकारकी भाषाएँ बोलते और अपना व्यवहार चलाते हैं। मनुष्यके मुखसे निकलनेवाली भाषाके भाव किस प्रकारके होते हैं, यही यहाँ देखना है। मतलब यह कि, भाषामें 'सत्यता', 'असत्यता' का अंश कितना है, यही विचारणीय है।

हमारे प्राचीन ऋषि-महर्षि प्रायः जंगलोंमें रहा करते थे। जंगलोंमें रहनेका हेतु यह भी था कि, मनुष्योंके संसर्गमें रहकर इच्छानुसार 'मौन' रहना बड़ा कठिन कार्य है। मनुष्य जितना ही कम बोलता है, उतनी ही उसकी आन्तरिक शक्ति बढ़ती है। इसके अतिरिक्त 'असत्य'का दोष भी नहीं लगता। भाषाका संयम और भाषाका गोपन मनुष्य मात्रके लिये आवश्यक है। जैन-शास्त्रोंमें भाषासमिति और भाषागुप्तिपर बहुत जोर दिया गया है अर्थात् जहाँतक हो सके बहुत कम बोलना चाहिये और जो बोला जाये, वह भी बहुत विचारपूर्वक। जैनशास्त्रोंमें कहा है कि, बोली जानेवाली भाषामें इतने गुण होने चाहिये—

"महुरं निउणं थोवं कज्जावडियं अगव्वियमतुच्छं ।
पुव्वं मइसंकलियं भणंति जं धम्मसंजुत्तं ॥"

अर्थात् मधुर, निपुण, स्तोक, कार्यापतित, अगर्वित, गंभीरार्थ, प्रथम बुद्धिपूर्वक विचारित और धर्मयुक्त—इतने गुणोंसे युक्त जो वचन निकलता है, वह भाषासमितिसे युक्त गिना जाता है।

जैसे देवप्रिय, महानुभाव, भाई, मित्र इत्यादि कोमल और मिष्ट वचनोंसे बोलना 'मधुर' वचन है। 'मधुर' भी ऐसा नहीं कि, भाट-चारणोंकी तरह अतिशयोक्तिसे युक्त हो। जिसके लिये, जैसा योग्य हो, वैसा ही कहना चाहिये। इसलिये 'निपुण' विशेषण दिया गया है। 'निपुण' वचन भी वाचलतासे युक्त न हो, परिमित हो। वह भी खास कारण उपस्थित हो, तभी बोलना चाहिये, अन्यथा नहीं। ऐसा वचन भी गर्ववाला न हो; नम्रताका द्योतक हो। फिर गम्भीरार्थ हो—थोड़े शब्दोंमें बहुत अर्थ निकलता हो। वह भी तुच्छ न हो, जिससे दूसरेको नुकसान पहुँचता हो। ऐसा वचन तभी ही निकल सकता है, जब पहले विचार करके बोला जाय; बुद्धिकी कसौटीपर कस करके। विचारा हुआ वाक्य भी धर्मयुक्त होना चाहिये, जिससे लाभ हो।

इतना सिर्फ भाषाशुद्धिके लिये कहा गया है। मनुष्यके मुखसे निकलनेवाली भाषा कितने प्रकारकी है, यह एक विचारणीय विषय है। हम लोग व्यवहारमें सिर्फ इतना ही समझते हैं कि, मनुष्य "सत्य" बोलता है, कि वा "असत्य" बोलता है। परन्तु शास्त्रोंमें इसके कई भेद प्रभेद दिखलाये गये हैं। कई बार ऐसा होता है कि, कोई वचन "सत्य" होनेपर भी हमें "असत्य' प्रतिभासित

बाबू उग्रमोहन ठाकुर

आप बरारी इस्टेट (भागलपुर) के अधिपतियोंमें बड़े ही उन्नतमना और साहसी थे। आपका बनाया "आनन्दगढ़" भागलपुरमें अनुपम इमारत है। आप बड़े ही उदारमना रईस थे।

होता है और कोई वचन "असत्य" होनेपर भी "सत्य"-सा दीखता है; इसलिये हम यहाँ 'भाषा' के भेद-प्रभेदका थोड़ा विवेचन करते हैं।

जैन-शास्त्रोंमें "भाषा"के मुख्य चार भेद बतलाये गये हैं—

"पथमा भासा सचा वीयाउ मुसा तयज्जिया तासिं ।
सच्चामुसा असच्चामुसा पुणो तह चउत्थित्ति ॥"

प्रथमा सत्या भाषा, दूसरी मृषा भाषा, तीसरी सत्यामृषा और चौथी असत्या अमृषा। इस प्रकार भाषाके मूल चार भेद हैं। अब इसके प्रभेद देखें—

प्रथम सत्या भाषाके दस भेद हैं—

१ जनपदसत्य—एक ही वस्तुके भिन्न-भिन्न देशोंमें भिन्न-भिन्न नाम होते हैं । जैसे गुजरातमें पानीको पानी कहते हैं और बंगालमें 'जॉल' कहते हैं । गुजराती मनुष्य बंगालमें जाकर यदि 'पानी' कहे, तो वह 'असत्य' नहीं; 'जनपदसत्य' है ।

२ संमत—अर्थात् समस्त लोगोंसे सम्मत वचन निकालना ।

३ ठवणा—स्थापनासत्य अर्थात् संख्या, तौल, नाप वगैरहकी जो कल्पना भिन्न-भिन्न देशोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी की जाती है, वह भी सत्य है । इसी प्रकार गुरु आदि की अविद्यमानतामें किसी चीजमें "गुरु"का आरोप करके माना जाता है । यह स्थापनासत्य है ।

४ नामसत्य—गुण न होनेपर भी रूढ़िसे जो नाम स्थापित किया जाता है । जैसे भीम, कुलवधन इत्यादि ।

५ रूपसत्य—कपटयुक्त साधुका वेष लिया हो; परन्तु उसको कहा जाय कि, 'यह साधु जाता है ।' इसी प्रकार नाटकोंमें राजा, मंत्री, रानी, दासी आदिको तत्तत् नामोंसे पुकारा जाय, यह रूपसत्य है ।

६ पाडुच—जैसी प्रतीति हो, वैसे बोलना । जैसे एक कक्षामें पाँच विद्यार्थी हों और एक-एककी अपेक्षासे पहला—अन्तिम जो कहा जाता है ।

७ व्यवहारसत्य—पर्वतपर जलती हुई घासको कहा जाय—'देखो, यह पहाड़ जल रहा है ।' यह व्यवहारसत्य है ।

८ भावसत्य—अनेक मिश्रण-वस्तुओंमें किसी एक चीजकी अधिकताको लक्ष्यमें लेकर उस समूहको वही चीज कहना । जैसे बहुत चोरोंमें एक-दो अच्छे साहुकार भी हों ; परन्तु कहा जाय, 'देखो, ये चोर इकट्ठे हुए हैं ।'

९ भोगसत्य—वस्तुके संयोगसे पहचाना जाय । जैसे दंड रखनेवालेको दंडी, छत्री लेकर जानेवालेको छत्री वगैरह ।

१० उपमासत्य—जैसे सुन्दर आकृतिको देखकर कहा जाय, 'इसका मुख तो चन्द्र-जैसा है ।' यह उपमासत्य है ।

इस प्रकार सत्या भाषाके दस भेद हुए। असत्या भाषाके भी दस भेद हैं—

१ क्रोधनिःसृत—क्रोधके आवेशमें किसीको कुछ-का-कुछ कह डालना ।

२ माननिःसृत—अभिमानमें आकर कुछ कह देना । जैसे 'निर्धन' होनेपर भी 'धनवान्' कहना ।

३ मायानिःसृत—दूसरेको ठगनेके लिये प्रपंच-कपट-युक्त बोलना ।

४ लोभनिःसृत—लोभमें अन्धे बनकर क्रय-विक्रय करनेमें मृषा बोलना ।

५ प्रेमनिःसृत—प्रेममें बद्ध होकर 'तू तो मेरा भाई है', 'मैं तेरा दास हूँ' इत्यादि ।

६ द्वेषनिःसृत—द्वेष-दावानलमें जलकर गुणवान्‌को भी निर्गुणी कहना ।

७ हास्यनिःसृत—हँसी-मजाकमें देखी हुई चीजके लिये भी कहना कि, 'मैंने नहीं देखी' इत्यादि ।

८ भयनिःसृत—भयके मारे उलटा-पुलटा बोल देना; जैसे चोर पुलिसके आगे और विद्यार्थी शिक्षकों तथा माता-पिताके आगे असम्बद्ध बोलते हैं।

९ आख्यायिकानिःसृत—व्याख्यान, कथा आदिमें रसपोषण आदिके लिये कल्पित वचन बोले जाते हैं।

१० उपघातनिःसृत—चोरको चोर न कहना, अपराधीको अपराधी न कहना; क्योंकि ऐसा कहनेसे उसका उपघात होता है।

सत्यामृषा अर्थात् मिश्रभाषाके दस भेद देखिये—

१ उत्पन्नमिश्र—किसी चीजकी उत्पत्ति कितनी भी हुई हो; परन्तु अनुमानसे कहा जाय कि, इतनी उत्पत्ति हुई

२ विगतमिश्र—मृत्युकी संख्या कितनी भी हो; पर अनुमानसे कहा जाय, "इतने मरे।"

३ मिश्रमिश्र—जन्म और मृत्यु, दोनोंका परिणाम न्यूनताधिकतासे कहना।

४ जीवमिश्र—छोटे-छोटे जीवोंके समूहमें बहुत जीते हों और कुछ मरे हों, उनको देखकर कहना—'देखो, यह कितनी बड़ी जीवराशि है।'

५ अजीवमिश्र—जिन जीवोंके समूहमें बहुत मरे हों और थोड़े जीते हों, उनको देखकर कहना—'देखो, यह अजीवराशि है।'

६ जीवाजीवमिश्र—जीव-अजीवके समूहमें जीव-अजीवकी निश्चित संख्या नहीं मालूम होनेपर भी कहा जाय कि, इसमें इतने मृत हैं और इतने जीवित हैं।

७ अनन्तमिश्र—अनन्तकायका समूह पड़ा है और वह उसके पत्रादिकके साथ मिश्र होनेपर भी कहा जाय कि, 'देखो, यह अनन्तकायका समूह है।'

८ प्रत्येक मिश्र—प्रत्येक वनस्पति बहुत है और उसमें कुछ अनन्तकाय मिला है; तथापि कहा जाय कि, 'देखो,' यह प्रत्येक वनस्पतिकायका समूह है।'

अद्धद्धमिश्र—अर्थात् दिन और रात्रिका एक देश। जैसे प्रथम प्रहर वर्तमान होनेपर भी कहा जाय—'मध्याह्न काल हो गया।'

११ अद्धमिश्र—दिन होनेपर भी रात्रि कहना और रात्रि होनेपर भी दिन कहना, यह अद्धमिश्र है।

चौथी भाषा असत्यामृषा है। इसके बारह भेद ये हैं—

१ आमंत्रणी भाषा—किसीको पुकारना, सम्बोधन करना।

२ आज्ञापनिका—किसीको आज्ञा करना।

३ याचनिका—किसीके पास याचना करना।

४ पृच्छणी—किसीसे कुछ पूछना।

५ प्रज्ञापनी—जैसे, उपदेश देते हुए किसीको कहना—'जो मनुष्य पापसे दूर रहता है, वह भवान्तरमें सुख पाता है।'

६ प्रत्याख्यानी—निषिद्ध वचन बोलना।

७ अनुलोम—'तू करे, सो मुझे मान्य है; इसलिये अपनी इच्छाके अनुसार कर'—इस प्रकारकी इच्छा दिखलाना।

८ अनभिगृहीत—किसी भी कार्यके करने-करानेमें आग्रह नहीं रखते हुए कहना कि, 'इच्छा हो, सो कीजिये।'

९ अभिग्रही—निश्चित वचन बोला जाय और उसी प्रकार किया जाय।

१० संशयकरणी—ऐसा शब्द या वाक्य कहा जाय, जिससे दूसरेको संशय उत्पन्न हो।

११ व्याकृत—जिस वचनके बोलनेसे वर्ण और उसका अर्थ प्रकट हो।

१२ अव्याकृत—जिस वचनके बोलनेसे वर्ण और उसका अर्थ अप्रकटतासे मालूम हो।

इस प्रकार भाषाके मूल चार भेद और उसके उत्तर ४२ होते हैं। प्रत्येक मनुष्यको चाहिये कि, वह भाषाके भेदोंको बराबर समझे और जो भाषा बोले, वह कितने अंशोंमें सत्य है, इसका खयाल रखे। तथा करके भाषाके जो आठ गुण प्रारम्भमें दिखलाये हैं, उन गुणोंसे युक्त भाषा बोले, जिससे न किसीको दुःख हो और न मृषा भाषाका ही दोष लगनेकी संभावना रहे।

२ मृत्यु

पाण्डेय जगन्नाथप्रसाद सिंह

जीवनके कुश-कंटक-परिपूर्ण पथपर चलते-चलते थक गया। यहाँका हाल देखा, अब वहाँका तमाशा देखनेकी ख्वाहिश है। अत एव परमाराध्य देवि, मृत्यु, मुझे अपना अनुगामी बना। तू ही इस लोक और उस लोकको जोड़ती है, दोनोंके बीचकी सीमा है। तेरी गोदमें बैठा-बैठा मैं दोनों लोकोंके सुख-दुःख, अथ-इतिका अनुमान कर सकूँगा। दया कर गोदीमें बिठा ले।

तुझसे लोग डरते हैं, तू सबके लिये भयावनी है; क्योंकि तू असीम संज्ञावाली है, लाख लुकने-छिपने और कोशिश करनेपर भी तू सबको अपना अनुचर बना लेती है। पर मैं तेरी आराधना करता हूँ, विनय करता हूँ, हँसते-हँसते तेरी सेवा करनेको राजी हूँ। फिर भी नहीं आती, क्यों? भयभीतको डराने और निर्भयसे दूर रहनेमें ही तेरी क्षमता है!

तू मधुर है—किसीके लिये सुधा-समान, किसीके लिये सुरा-समान; पर अधिकांशके लिये कटु है और इसीलिये तेरे प्रशंसक थोड़े और निन्दक अधिक हैं। किन्तु क्या कहूँ, मैं अपने प्रशंसकके पीछे पड़ा रहता और तू निन्दकके; नहीं तो मुझ दासको अपने पास स्थान क्यों नहीं देती?

मैं अबतक क्या था, कैसा था—और रहता तो कैसा होता—इसका लेखा साफ करनेवाली तू ही है। ज्यों ही तूने मेरी बाँह गही कि, सुख-दुःख, आशा-अभिलाषा, साफल्य-वैफल्य, सबका 'तू-तू' 'मैं-मैं' वाला पचड़ा यों ही हल हो जायगा। इसीलिये देवि! नम्रतापूर्वक कहता हूँ—अब ऊब गया—शरण दे!

तू सन्धिवेला है। दिन-रातकी संयोजिका एवं वियोजिका, दोनों तू ही है। दिनमें प्रखर सूर्यकी किरण और प्रफुल्ल कमलवनका दृश्य दिखाया; अब रातके चमकते सितारोंके संरक्षणमें शान्ति-साम्राज्यकी एक दीन प्रजा बना जा।

आ जा, आ जा...बिलम्ब मत कर!

३ मांसाहार

श्रीयुत उमेश्वरप्रसाद

स्वामी विवेकानन्दने अपनी मातृभूमि—भारत—की उत्कृष्ट सेवा जिस अतुल आत्मत्याग, तत्परता एवं धैर्यसे की है, वह किसीसे छिपी नहीं। वे एक कर्मनिष्ठ युवक, एकान्त निष्काम देशभक्त तथा सच्चे योगी थे। शिकागो (अमेरिका) की धार्मिक महासभाके अधिवेशनके अवसरमें उन्होंने अपनी आश्चर्यमयी प्रतिभा एवं दैवी शक्तिका परिचय देकर भारतका मस्तक जिस प्रकार ऊँचा किया और संसारको वेदान्त-विषयक ज्ञान सिखाया, वह स्तुत्य है। उसी समयसे सम्पूर्ण मानव-जाति उन्हें एक आदर्श शिक्षकके रूपमें देखने लगी। उनके एक-एक शब्द बहुमूल्य रत्न हो गये एवं उनकी प्रभावशालिनी वक्तृता, प्रौढ़ रचना और गम्भीर कविताका तो पूछना ही क्या है! यहाँ मैं उनके गूढ़ भावोंका उल्लेख न कर—उनकी नीतिकी आलोचना न कर—एक दूसरी बातपर उनकी अपनी सम्मति प्रकट करूँगा। आप देखें, उन्होंने मांसाहार पर किस प्रकार विशेष दबाव डालकर अपने युवकोचित उत्साह, कर्म और शक्तिका परिचय दिया है। मांसाहारके विषयमें भिन्न-भिन्न मत हैं। चैतन्य, महात्मा गान्धी आदि तो इसके कट्टर विरोधी हैं। यहाँतक कि, डाक्टरोंमें भी इस मतविभिन्नताका दोष छूटने न पाया। किन्तु हमारे स्वामीजी मांसाहारमें तनिक भी आपत्ति करनेको तैयार नहीं हैं। देखिये, अपने एक पत्रमें वे स्वयम् क्या कहते हैं:—

"निरामिष भोजनके अतिरिक्त मुझे केवल इतना ही कहना है कि, पहले मेरे गुरुदेव (रामकृष्ण परमहंस) मांस

नहीं खाते थे; किन्तु यदि उन्हें माँ कालीका प्रसाद—मांस—दिया जाता था, तो वे स्वीकार कर लेते थे। जीवहत्या करना अवश्य ही पाप है; किन्तु जबतक रसायनमें उन्नति करके मानव-शरीरके लिये उपयुक्त निरामिष भोजन प्रस्तुत नहीं किया जा सकता, तबतक मांसाहारके अतिरिक्त और कोई दूसरा उपाय नहीं। जबतक मनुष्यको वर्त्तमान दशामें कर्ममय जीव नयापन करना होगा, तबतक मांस खानेके सिवा दूसरी गति नहीं है। सच है कि, सम्राट् अशोकने तलवारके जोरसे लाखों प्राणियोंके प्राण बचाये; परन्तु क्या हजार वर्षकी गुलामी उससे कहीं अधिक भयानक नहीं है? कुछ जीवोंकी हत्या करना एवं अपनी पत्नी और पुत्रियोंकी, अत्याचारियोंके हाथसे, रक्षा करनेमें अपनेको असमर्थ समझना—इन दोनोंमेंसे कौन अधिक पापपूर्ण है? जिन लोगोंको स्वयं शारीरिक काम कर जीविकार्जन नहीं करना पड़ता, वे मांस भले ही न खायँ; किन्तु श्रमजीवियोंको जबर्दस्ती निरामिष बनाना राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य खोनेका एक प्रधान कारण है। उत्कृष्ट एवं पौष्टिक पदार्थ खानेसे क्या प्रभाव पड़ता है, इसका एक उदाहरण जापान है।" ※

४ मशायरा

बा० केदारनाथ खन्ना

उर्दूका मशायरा हिन्दीके कवि-सम्मेलनके समान ही होता है। मशायरेमें बड़ा लुत्फ़ आता है। तरह-तरहके बाँके-तिरछे शायर जमा होते हैं। सब-के-सब अपनी-अपनी पिनकमें मस्त रहते हैं। सबके पहननेके ढंग, नाजो-अदा, काट-छाँट खास-खास तरीकेके होते हैं। मशायरेका समय दर-असल रात ही है; लेकिन आजकल कहीं-कहीं दिनमें भी मशायरा हुआ करता है। परन्तु सच्चा आनन्द रातके ही मशायरेमें आता है। जब सब शायर जमा हो जाते हैं और दर्शक काफी तादादमें आ जाते हैं, तब यह कवि-सम्मेलन यानी मशायरा शुरू होता है। एक मीर मजलिस यानी सभापति चुन लिया जाता है। मशायरेमें जो-जो सज्जन अपनी गजल पढ़ना चाहते हैं, उनकी एक सूची पहले से ही तैयार कर ली जाती है और मीर मजलिसके सामने रख दी जाती है। आजकल तो बिजलीकी रोशनी, फानूसों और लालटेनोंका जमाना है; पर पहले मोमबत्तियाँ ही मशायरेकी मजलिसकी आँखें थीं। अब मशायरेमें कुछ अँग्रेजी ढंग आ गया है। शायर लोग मीरं मजलिसके पास, ऊँचे तख्तपर खड़े होकर, अपनी गजलें पढ़ते हैं; परन्तु पहले शायरोंको अपनी जगहसे उठना नहीं पड़ता था। एक शख्स शमा लेकर शायरके सामने जा पहुँचता था। उसीके उजालेमें शायर चहकने लगते थे। लुत्फ उस समय आता है, जब शायर अपनी गजल शुरू करते हैं। शमाके पहुँचते ही वे उठ खड़े हो जाते हैं। बाँये हाथमें कागजका टुकड़ा होता है, जिसमें वे गजल लिख कर लाते हैं। शुरू करनेके पहले कहते हैं—"मतला अर्ज़ है"—मजलिसमेंसे आवाज आती हैं—"इरशाद"। अगर वहाँ शायरका कोई खास प्रेमी मौजूद हुआ, तो वह उसका नाम लेकर कहता है, "......साहब, मुलाहज़ा फ़रमाइये।" इसपर वे आकर्षित होते हैं। अक्सर वे भी "इरशाद हो" कहते हैं। इतनी पेशबन्दीके बाद शायरने एक शेर पढ़ा। अगर वह अच्छा शेर हुआ—और अगर उसने सुननेवालोंके कलेजे कतर दिये—तो लोग एकाएक चीख़ उठते हैं—"वाह वा, वाह वा, क्या खूब कहा है, ला-जवाब शेर है, कलेजा निकालकर रख दिया है, मुकर्रर इरशाद, मुकर्रर इरशाद, सुबहान अल्लाह, क्या अच्छी तबीयत पाया है, जरा फिर चाहिये" आदि प्रशंसा-सूचक

※ 'Swami Vivekananda's Speeches and Writings', P. XXI, published by G. A. Natesan & Co; Madras.

शायरोंकी झड़ी लग जाती है। इधर तो सुननेवाले तारीफ़ों-के पुल बाँधते हैं और उधर शायरका यह हाल होता है कि, वह ज़रा झुक-झुककर जिधर-जिधरसे तारीफ़की आवाज़ें आती हैं, उधर-उधर घूम-घूम कर, दाहने हाथकी हथेली-को बार-बार माथेतक ले जाकर, सलाम करता रहता है! जब इस कसरतसे छुट्टी मिलती है, तब शायर दूसरा शेर पढ़ता है। फिर वही तारीफ़के वाक्य उड़ने लगते हैं! तालियाँ भी पीटी जाती हैं। क़हक़हे और चहचहेसे घर गूँज उठता है। जोशमें आकर लोग खड़े भी होते हैं और शायरकी तरफ़ हाथ उठाकर कहते हैं—"आपने तो ग़ज़ब कर दिया; आपका यह शेर लाख रुपयेका है; क़लम चूम लेनेको जी चाहता है!" "खूब-खूब"की आवाज़ तो खूब ही आती है। उधर शायरको बार-बार सिर झुका-झुकाकर हथेलीको मुँहके पास ले जा-ले जाकर अपनी नम्रता दिखानी पड़ती है। शायर हाथसे सलाम ही नहीं करता; बल्कि मुँहसे भी "आदाबर्ज़ है, आदाबर्ज़ है" भी कहता जाता है। जिसके शेर लोग दो-तीन बार सुनते हैं, वह अपना बड़ा अहोभाग्य समझता है। बड़े-बड़े शायर लोग अपने शागिर्दोंको भी साथ ले जाते हैं। वे शागिर्द तो अपने उस्तादके शेरोंपर आसमान सरपर उठा लेते हैं! कभी-कभी जब दो प्रतिद्वन्द्वी शायर मशायरेमें आ जाते हैं, तब तो और भी मज़ा आता है। तरफ़दार लोग वह नारे लगाते हैं कि, मजलिसके बाहरके लोगोंको एक हंगामा-सा मालूम होता है! पहलेके शायर तो तलवार और कटार भी बाँध कर मशायरेमें जाया करते थे! कोई-कोई तो तमंचे भरकर बैठा करते थे। कभी-कभी तलवारें म्यानसे बाहर निकल भी पड़ती थीं! पर अब तो न वह ज़माना ही रहा और न वह मज़ा ही। अब तो पुलिसके ख़ौफ़से सारा मज़ा ही जाता रहा। ग़ज़लके आख़िरमें शायरको फिर कहना पड़ता है—"मक़ता अर्ज़ है"। श्रोताओंमेंसे कोई कहता है—"इर शाद"। ऐसा ही तमाशा प्रत्येक शायरके उठनेपर होता है। मशायरेमें सचमुच बड़ी चहल-पहल होती है। थोड़ी देरके लिये आदमी अपने सांसारिक कष्टोंको भूल जाता है। कभी-कभी तो ऐसा भी हुआ है कि, शेर सुनकर लोग करुणा या हर्षके मारे मूर्च्छित भी हो गये हैं!

कभी-कभी जब कोई शायर बहुत अच्छी, दिलको फड़कानेवाली, कोई ग़ज़ल पढ़ते हैं, तब बाकी शायर अपनी ग़ज़लें फाड़कर फेंक देते हैं और कहते हैं कि, 'अब इसके आगे कुछ पढ़ना फ़िज़ूल है!' यह कहकर कुछ हँस भी देते हैं। पढ़नेवाला शायर इसे अपना बहुत बड़ा सम्मान समझता है।

वह जीवनभर इस घटनाको याद रखता है तथा अपने मित्रों और शागिर्दोंके सामने इसकी चर्चा किया करता है।

मशायरेमें किसी-किसी उर्दू-शायरका ग़ज़ल पढ़नेका ढंग बहुत ही आकर्षक होता है और श्रोताओंपर उसका असर भी खूब पड़ता है।

उर्दू-संसारमें मुहम्मद तक़ी "मीर" अपना नाम अमर कर गये हैं। अपनी कविताके लिये इतने प्रसिद्ध हो गये थे कि, इनकी ग़ज़लोंको लोग भेंटकी तौरपर एक शहरसे दूसरे शहरको ले जाते थे! धनाभावसे इन्होंने दिल्ली छोड़ी और लखनऊ पहुँचे। वहाँ एक सरायमें उतरे। उस दिन शहरमें कहीं मशायरा था। आपने उसी वक्त ग़ज़ल लिखी और कपड़े पहनकर मशायरेमें जा बैठे। पुराना रंग-ढंग, खिड़कीदार पगड़ी, पचास गजके घेरेका जामा, एक पूरा थान कमरसे बँधा, पट्टीदार तह किया हुआ एक रूमाल, मशरूका पाजामा, नागफनीकी अनीदार जूती, जिसकी नोक डेढ़ बीत्ते ऊँची थी, कमरमें एक ओर सीधी तलवार, दूसरी ओर कटार और हाथमें छड़ी। इस रूपमें इनको देखकर लखनऊके बाँके-तिरछे नयी काट-छाँटके मन-चले नौजवान हँसे बिना न रह सके। मीर साहब हाथके तंग, ज़मानेके सताये हुए इस हँसीसे और भी मर्माहत हुए

और एक ओरको बैठ गये। सब गजलें पढ़ चुके। इनके सामने जब शमा आयी तो सबकी दृष्टि इनपर आ पड़ी। किसी-किसीने पूछा—"आपका वतन कहा है?"

मीर साहबने समस्या-पूर्तिवाली ग़ज़लमें नीचे लिखे मिसरे मिलाकर पढ़े—

"क्या बूदोबाश पूछो हो पूरबके साकिनो।
हमको ग़रीब जानके हँस-हँस पुकारके॥
दिल्ली जो एक शहर था आलममें इन्तख़ाम।
रहते थे मुन्तख़िब ही जहाँ रोज़गारके॥
उसको फ़लकने लूटके बीरान कर दिया,
हम रहनेवारो हैं उसी उजड़े दयारके!!"

"सोज़"के शेर पढ़नेका ढंग निराला था। पढ़ते वक्त ये शेरमें वर्णित भावोंको प्रत्यक्ष दिखानेका भी प्रयत्न करते थे। स्वर बड़ा ही करुणाजनक था। शेर बड़ी ही कोमलतासे पढ़ते थे। जब कभी शमाका मज़मून बाँधते थे, तब शेर पढ़ते समय एक हाथमें शमा उठा लेते थे और दूसरे हाथसे आड़ करके फ़ानूसका भाव दिखाते थे। यदि क्रोधका कोई विषय होता था, तो स्वयं त्योरी चढ़ा लेते थे और क्रोधकी मूर्ति दिखलायी पड़ते थे। एक समय ये नीचे लिखा शेर पढ़ रहे थे—

"गये घरसे जो हम अपने सवेरे।
सलामुल्लाह खाँ साहबके डेरे।
वहाँ देखे कई तिफ़्ले परीरू।
अरेरेरे! अरेरेरे!! अरेरे!!!"

चौथा मिसरा पढ़ते-पढ़ते जमीनपर ऐसे गिर पड़े, मानो परीजादोंको देखते ही चेतनता चली गया और "अरेरे" कहते-कहते बेहोश हो गये!

मशायरेमें एक बार बड़ी ही विचित्र घटना हो गया थी। ये यह शेर पढ़ रहे थे—

"ओ यारे सियाह ज़ुल्फ़ सच कह,
बतला दे दिल जहाँ छपा हो!
कुण्डली तले देखियो न रोवे,
फाटा न हर्फ़ी तेरा बुरा हो!!"

पहले मिसरेपर डरते-डरते बचकर झुके, मानों कुण्डली तले देखनेको झुके हैं और जिस समय कहा कि, "काय न हर्फ़ी"—बस, तत्काल ही हाथसे छाती मसोसकर ऐसे अचेत लेट गये कि, मशायरेके लोग उठ खड़े हुए और कुछ लोग इन्हें सँभालनेके लिये आगे बढ़ आये!

५ संसारकी जानने योग्य बातें

बाबू कालीकुमार दास

सामुद्रिक गहराई

समुद्रका नाम—	(फीटमें)
प्रशान्त महासागर	३२०८९
अटलांटिक "	३१३६६
हिन्द "	२२९६८
आर्कटिक "	१३२००
मलाया सागर	२१३४२
सेन्ट्रल अमेरिकन "	२०५६८
मेडीटरेनियन "	१२२७६
बेरिङ्ग "	१३४२२
आकहोत्स्क "	१०५५४
पूर्वी चीन "	१०५००
हडसनकी खाड़ी	१५००
जापानकी "	१०२००
अण्डमनकी "	११०००
उत्तरी समुद्र	१९९८
लाल सागर	७२५४
बाल्टिक समुद्र	१२०००

संसारके पहाड़ोंकी ऊँचाई

चोटीका नाम—	पर्वतमालाका नाम—	ऊँचाई (फीटमें)
एवरेस्ट	हिमालय	२९००२
गॉडविन ऑस्टिन	"	२८८६१
कंचनजङ्घा	"	२८१५६
धवलागिरि	"	२६८२६

तागमी	पामीर	२५१६०
टेंगरी खाँ	थियान शान	२४०००
चुमलहरी	हिमालय	२३६४४
अकॉङ्कागुआ	ऐंडिस्	२२८६८
शहामा	बोलीविया	२२३४६
इलम्पा (सोराटा)	ऐंडिस्	२१४९०
इलिमानी	”	२१०३१
सिम्बासो	”	२०४९८
लुलियालुको	”	२०२४३
रुवेञ्जोरी	उगांडा	२००००
कोटोपैक्सी	ऐंडिस्	१९६१२
किलिमाजारो	जर्मन ईस्ट अफ्रीका	१९६००
माउण्ट लोगन	रॉकी	१९५३९
लिकैनकौर	ऐंडिस्	१९५२१
माउण्ट एलियस्	रॉकी	१९५००
एलबुर्ज	कॉकेशस्	१८५२६
टोलिमा	उत्तरीय ऐंडिस्	१८३००
एलिपेटू	ऐंडिस्	१८०४५
चार्लस लुई	न्यू गायना	१८०००
पोपोकैटे पेट्ल	मेक्सिको	१७५४०
मह्रपो	ऐंडिस्	१७४२१
सिटलैल्टि पेट्ल	मेक्सिको	१७३६०
सङ्गाई	इक्वाडोर	१७१२४
कोस्तान ताऊ	कॉकेशस्	१७०९६
अरराट	आरमेनिया	१६९१६
कॉजवेक्	कॉकेशस्	१६५४६
माउण्ट ब्लैङ्क	आल्पस्	१५७८१

संसारकी सबसे बड़ी नदियाँ

नाम	कहाँ गिरती है	लम्बाई (मीलमें)
अमेजन	एटलांटिक महासागर	४०००
नील	मेडीटरेनियन समुद्र	३६००
यांगटसीक्यांग	प्रशान्त महासागर	३५००
यांचे	उत्तर प्रशान्त महासागर	३४००
येनिसी	आर्कटिक	३३००
मिसिसिपी	मेक्सिकोका मुहाना	३१६०
मिसौरी	नदी मिसिसिपी	३०००
काङ्गो	एटलांटिक महासागर	३०००
लेना	आर्कटिक ”	३०००
नाइजर	गाइनाका मुहाना	३०००
ओबी	आर्कटिक	२७००
हांगहो	उत्तर प्रशान्त महासागर	२६००
अमूर	” ”	२५००
वोल्गा	कैस्पियन सागर	२४००
मैकेञ्जी	ब्युफोर्ट समुद्र	२३००
ला-प्लाटा	दक्षिण एटलांटिक	२३००
युकोन	बेरिङ्ग समुद्र	२०००
सेंट लारेंस	लारेंसका मुहाना	१८००
राव डि नार्टे	मेक्सिकोका मुहाना	१८००
साव फ्रांसिस्को	एटलांटिक	१८००
डेन्यूब	काला सागर	१७२५
फुरात	फारसकी खाड़ी	१७००
सिन्धु	अरब समुद्र	१७००
ब्रह्मपुत्र	बंगालकी खाड़ी	१६८०
गङ्गा	”	१५१४
मेकोङ्ग	चीन समुद्र	१३००
आमूदरिया	अरल सागर	१३००
ओहियो	मिसिसिपी	१२८०
नीपर	काला सागर	१२००
ओरिनोको	उत्तर एटलांटिक	१२००
टेनिसी	ओहियो नदी	१२००

सीर दरिया	अरल सागर	११५०
इरावदी	बंगालकी खाड़ी	११००
दजला	परसियाका मुहाना	११००
ओटावा	सैंण्ट लारेन्स	१०००
नेलसन	हडसनकी खाड़ी	१०००

संसारके सबसे बड़े पुल

नाम	देश	लम्बाई मील—गज	
टे	स्काटलैण्ड	२	७३
ओहियो	युनाइटेड् स्टेट्स	२	०
सोन	भारतवर्ष	१	३१५०
विक्टोरिया	कनाडा	१	१३२०
फोर्थ	स्काटलैण्ड	१	१०६५
मिसौरी	युनाइटेड् स्टेट्स	१	७८४
क्वीन्स बारो	,,	१	७४०
विलियम्सबर्ग	,,	१	६७६
मनहट्टन	,,	१	५२०
सस्कहाना	,,	१	३४५
ब्रूकलीन	,,	१	२४५

संसारके सबसे बड़े नगर

नाम	देश	आबादी
न्युयार्क	युनाइटेड् स्टेट्स	४७७००००
लंडन	इङ्गलैण्ड	४५२३०००
पेरिस	फ्रांस	२८०००००
शिकागो	युनाइटेड् स्टेट्स	२२०००००
टोकियो	जापान	२१६००००
बर्लिन	जर्मनी	२१०००००
वायना	आस्ट्रिया	२०५००००
सेंट पिट्सबर्ग	रशिया	१६०००००
फिलाडेलफिया	युनाइटेड् स्टेट्स	१५५००००
मास्को	रशिया	१५०००००
ओसाका	जापान	१३०००००
कैन्टन	चीन	१२५००००
ब्युनस् एयरस	अर्जेंटाइन	१२१००००
कलकत्ता	हिन्दुस्तान	१२६१०००
कुस्तुनतुनिया	टर्की	१००००००

वायुकी गति

शान्त (*Calm*)	० से ५ मील प्रति घंटा
हलकी हवा (*Light air*)	६ से १० " "
सूक्ष्म हवा (*Light breeze*)	११ से १५ " "
मन्द पवन (*Gentle breeze*)	१६ से २० " "
मध्यम पवन (*Moderate breeze*)	२१ से २५ " "
ताज़ी हवा (*Fresh breeze*)	२६ से ३० " "
प्रबल वायु (*Strong breeze*)	३१ से ३६ " "
मध्यम आँधी (*Moderate Gale*)	३७ से ४४ " "
प्रबल आँधी (*Strong Gale*)	४३ से ६० " "
पूरी आँधी (*Whole Gale*)	६१ से ६६ " "
तूफान (*Storm*)	७० से ८० " "
प्रबल तूफान (*Hurricane*)	८१ से अधिक " "

पदार्थोंका आनुतापिक भार (Weight)

पानी	१·००	पारा	१३·६
पानी (समुद्रका)	१·०३	सोना	१६·३
देवदार	·५	लोहा	७·५
कार्क	·२५	एलमूनियम	२·६५
सीसा	११·४	कांच	२·५

६ बहुमूत्र रोग

चतुर्वेदी रामजी शर्मा

मलेरिया और बहुमूत्र रोग हमारे देशके बड़े शत्रुओंमेंसे हैं। शिक्षित, अशिक्षित सभी श्रेणीके लोग मलेरियासे मरते हैं; किन्तु जो बहुमूत्र रोगसे मरते हैं, वे तो देश और समाजके प्राण हैं। यह रोग धीरे-धीरे समाजसे उन महान् आत्माओंको विलीन कर रहा है, जिनसे समाजको बड़ा ही लाभ पहुँचता, जिन्होंने अपने महान् कर्त्तव्यों द्वारा भारतजननीका मुख उज्ज्वल किया होता। यह रोग समाजका अंग भंग कर रहा है। बंगालको तो इससे बड़ी ही हानि पहुँच रही है। घर-घरसे वेदना-पूर्ण चीत्कार सुनायी पड़ता है। जो लोग हमारे देशके प्राण हैं, जिनकी योग्यतापर देशको गर्व है, जिनके भरोसे हम अन्य देशवासियोंको विद्या-बुद्धिमें आह्वान कर सकते हैं; उनकी मृत्युका कारण विशेषतः यही रोग है। भूदेव और बंकिम-सरीखी आत्माएँ इसीके कारण नष्ट हुई। कैसे-कैसे नररत्न इस भारत-भूमिसे, इसी रोगके कारण, उठ गये—सोचनेपर हृदय मसोस कर रह जाना पड़ता है। यह कितने दुःखकी बात है कि, लोग इसकी हानिका अनुभव करते हुए भी इससे मुक्त होनेका प्रयत्न नहीं करते। भला इस लापरवाहीका भी कुछ ठिकाना है! यह लेख विशेषतः उन लोगोंके लिये लिखा जाता है, जो देश, जाति तथा समाजकी सेवा करते हैं। यह रोग भी प्रायः उन्हीं लोगोंको होता है, जो पढ़ने-लिखनेका अथवा दिमागी काम करते हैं। जो मातृ-भूमि अथवा मातृ-भाषाकी सेवा करना चाहते हैं, उन्हें दीर्घजीवी होना आवश्यक है। बिना इसके उनके जीवनका व्रत पूरा नहीं हो सकता। अतः उन लोगोंसे—जिन्होंने साहित्यिक कार्य अपने हाथोंमें लिया है—निवेदन है कि, वे मानसिक परिश्रमके साथ-साथ थोड़ा शारीरिक परिश्रम भी किया करें। बहुमूत्र रोगकी यही सबसे बड़ी दवा है।

बहुमूत्र एक प्रचलित रोग है। यह उन लोगों-पर आक्रमण नहीं करता, जो मानसिक और शारीरिक परिश्रम समान रूपसे करते हैं। इसमें पुष्टिकारक पदार्थ खाना चाहिये। स्वास्थ्यपर सदा ध्यान रखना चाहिये। जब एक बार यह रोग शरीरके अन्दर प्रविष्ट हो जाता है, तब इसका निकलना बड़ा कठिन हो जाता है।

यह रोग दवाके बजाय पुष्टिकारक पदार्थोंके सेवनसे शीघ्र आराम हो जाता है। आपको पेशाब कई बार अथवा अधिक मात्रामें होता है; इसीसे मत समझ लें कि, हमें बहुमूत्र रोग हो गया है। इससे भी मत डरें कि, पेशाबमें चीनी आती है। चीनी उन लोगोंके भी पेशाबमें भी आती है, जो अधिक मीठा पदार्थ खाते हैं।

असाध्य बहुमूत्र रोगके निम्नलिखित छः कारण हैं—यदि ये एक ही समय दिखलायी दें।

१ पेशाबका अधिक मात्रामें होना।

२ पेशाबमें चीनी जाना।

३ शारीरिक शक्तिका ह्रास।

४ मांस अथवा चर्बीकी कमी।

५ शरीरमें सनसनाहट रहना।

६ खूब प्यास लगना।

पित्त निकालना तथा भोज्य पदार्थोंको पचाना, ये ही दो काम लीवरके नहीं हैं। यह तो शरीरका भाण्डारगृह (*Store keeper*) कहा जा सकता है। आलू, गेहूँ, चावल आदि जो कुछ भी वस्तु हम

लोग खाते हैं, वे इसके द्वारा चीनीके रूपमें परिवर्तित हो जाती है और यहीं जमा रहती है। आवश्यकता पड़नेपर यही शरीरके सब अंगोंमें पहुँचाता है। यदि किसी कारणवश लीवर खराब हो जाता है, तो वह उचित परिश्रममें सब अंगोंको चीनी नहीं पहुँचा सकता। खराब हो जानेके कारण यह अपने भाण्डार-गृहमें पानी जमा करनेके योग्य नहीं रह जाता। अतः फल यह होता है कि, खाद्य पदार्थोंसे तैयार सब चीनी रक्तमें मिल जाती है। चीनीका गुण है, मूत्र उत्पन्न करना; इसलिये इसका फल यह होता है कि, अधिक मात्रामें पेशाब होता है, खूब प्यास लगती है और शरीरमें बिजली-सी सनसनाहट बनी रहती है। भोजन का वह भाग, जो शरीरको पुष्ट करता है, पेशाबकी नली द्वारा शरीरके बाहर निकल जाता है। इस कारण शरीरकी चर्बी कम हो जाती है।

इस रोगका सबसे बड़ा कारण मानसिक चिन्ता है। उन लोगोंको भी इस रोगके होनेको सम्भावना है, जो बराबर चावल खाते हैं, पुष्टि-कारक पदार्थ नहीं खाते और शारीरिक परिश्रम नहीं करते। यह हमारा दृढ़ विश्वास है कि, जिन लोगोंका, साहित्य-सेवा करना ही काम है, यदि वे पुष्टिदायक पदार्थ खायँ तथा मानसिक और शारीरिक परिश्रममें समानता रखें, तो शीघ्र ही इस रोगसे मुक्त हो सकते हैं।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि, दवाके बनिस्बत यदि भोजनपर ध्यान दिया जाय, तो अधिक लाभ हो सकता है। अब प्रश्न यह है कि, वे कौनसे पदार्थ हैं, जिनका इस समय उपयोग किया जा सकता है। पहली बात यह है कि, मीठे पदार्थ, जिनसे चीनी उत्पन्न हो, न खाये जायँ। चावल, चीनी और माड़ी-दार (*Starchy*) वस्तुएँ आरम्भसे ही छोड़ दी जायँ। कुछ लोगोंका कहना है कि, बंगाली—जिनका कि, चावल ही प्रधान खाना है—कैसे इसके बिना रह सकेंगे? किन्तु यहाँ तो जीवन-मरणका प्रश्न है। यदि आप चावल नहीं छोड़ते हैं, तो जीवनसे हाथ धोना पड़ता है। जो इस रोगसे पीड़ित हैं, उनसे मेरी विनम्र प्रार्थना है कि, निम्नलिखित विवरणके अनुसार चलें—

(१) प्रतिदिन नियमसे शारीरिक परिश्रम (कसरत) करें। जो कसरत करनेके योग्य न हों, वे ३-४ मील प्रातःकाल पैदल घूमें।

(२) वही पदार्थ खावें, जिसमें चर्बी और नाइट्रोजन हो; जैसे मांस, मछली, अण्डा, घी, मक्खन, सब्जी, परवर, गूलर, कोहँड़ा, खीरा, केलेका फूल, केलेके पेड़के बीचका गोफा। खट्टे फल व्यवहारमें लाये जा सकते हैं; किन्तु मीठे फल अत्यन्त वर्जित हैं।

(३) कोई-कोई दूधका भी प्रयोग बतलाते हैं; किन्तु मैं इससे सहमत नहीं हूँ। मेरे एतराजका कारण है कि, दूधमें भी चीनीका अंश रहता है। वे लोग, जो अत्यन्त कठिन शारीरिक परिश्रम करते हैं, थोड़ा दूध भी पी सकते हैं। दुग्ध-चिकित्साकी भी प्रणाली है; परन्तु जो दूध इसमें इस्तेमाल किया जाता है, वह बिना मक्खनका होता है। दूधसे मक्खन निकाल लेनेपर जो अंश बच रहता है, वह लेक्टिक एसिड (*Lactic acid*) हो जाता है, जो बहुमूत्र रोगमें बहुत लाभ-दायक है।

४ खूब बारीक चनेका चक्कीमें आटा पिसवाया जाय और उसीकी रोटी खायी जाय। इससे बढ़कर इसके लिये दूसरा भोजन नहीं है।

५ प्रतिदिन प्रातःकाल ४, ५ औंस जलमें १०, १५ बूँद नीबूका रस डालकर पिया जाय।

६ प्रतिदिन ठंढे जलसे अपनी मूत्रेन्द्रियको एक बार धो डाला जाय !

७ वही भोजन किया जाय, जो शीघ्र पचनेवाला तथा पुष्टिकारक हो।

८ माठा (तक्र) के साथ नमक मिलाकर पिया जाय; यह अत्यन्त लाभदायक है।

९ यदि आप अपनी मानसिक शक्ति बढ़ाना चाहते हैं, तो साथ-साथ शारीरिक शक्ति भी बढ़ाइये।

ऊपर कहा जा चुका है कि, जो लोग पढ़ने-लिखने का अथवा दिमागका काम करते हैं, (जैसे लेखक, कवि, विद्यार्थी, वकील आदि) अधिकतर इस रोगके शिकार होते हैं। साधारणतः यह सभी जानते हैं कि, सरस्वतीके प्यारे अपनी सौतेली माँ लक्ष्मीसे प्रायः वंचित रहते हैं। लेखक-समाज प्रायः निर्धन होता है। अतः उसके लिये पुष्टिकारक तथा महँगा भोजन मिलना कठिन है; इसलिये मैं उससे प्रार्थना करता हूँ कि, वह शारीरिक परिश्रमके प्रति उदासीनता न दिखावे। वह मातृभूमि तथा मातृभाषाका सच्चा सेवक है; अतः उसे अकाल-मृत्युको अपेक्षा दीर्घजीवी होना अत्यावश्यक है। तभी वह मातृभाषा और मातृभूमिकी अच्छी सेवा कर सकता है। *

---

* उपर्युक्त लेख गोरखपुरसे निकलनेवाले अँग्रेजी मासिक "मेसेज" से लिया गया है। इसके लेखक हैं कलकत्ते के सुप्रसिद्ध डाक्टर विधानचन्द्र राय। पहले-पहल यह लेख बंगलाके "संजीवनी"में निकला था।

विज्ञान-विस्मय

चुम्बककी आकर्षण-शक्ति

श्रीयुत यदुनाथ तत्वनिधि

"चुम्बक-वाष्प" अद्भुत वस्तु है। इसके द्वारा सम्मोहकगण अद्भुत-अद्भुत कार्य कर डालते हैं। डा० बराडक इसे मनुष्यकी जीवनी-शक्ति कहते हैं। यह चुम्बक-वाष्प मेघकी तरह विचित्र होता है। इसकी तस्वीर उज्ज्वल नक्षत्रके सदृश कम्पायमान और लहरकी तरह मेखलायित होती है।

शरीर-विज्ञान बताता है कि, मानव-देहके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें शुभ्र और धूसर वर्णके दो पदार्थ रहते हैं। धूसर पदार्थके द्वारा ही बृहन्मस्तिष्कका मूल देश निर्मित हुआ है। वही विज्ञान यह भी बताता है कि, हम लोगोंके पृष्ठ-दण्डको छिन्न करनेसे दो तरहके स्नायुपदार्थ निकलते हैं, जिनमें एक शुभ्र वर्णका होता है और दूसरा धूसर वर्णका। शुभ्र पदार्थ बाहरमें और धूसर पदार्थ मध्यमें अवस्थित रहता है। हम लोगोंका हृदय, नाभि, कर्ण इत्यादि चक्र शुभ्र और धूसर पदार्थके हैं।

पेरिसके सलपेट्रियार अस्पतालके प्रसिद्ध डा० रीवट और उनके सहकारियोंने एक बार एक महिलाको सम्मोहित करके अत्यन्त आश्चर्य-जनक तत्त्वोंका आविष्कार किया था। सम्मोहितावस्थामें उस महिलाने बताया था कि, मेरे मस्तिष्ककी चारो तरफ धूसर वर्णका वाष्प-समूह विस्तृत है और मस्तिष्क-मण्डल स्पन्दित हो रहा है। बार-बार पूछे जानेपर भी उसने ऐसा ही बताया। उसने यह भी बताया था कि, धूसर वाष्प बृहन्मस्तिष्कसे क्षुद्र मस्तिष्कमें आता है और क्षुद्र मस्तिष्कसे पृष्ठ-दण्डमें आकर स्नायुकोषमें चला जाता है। पुनः उस जगहसे मेरुदण्डकी विभिन्न शाखा-प्रशाखाओं और ग्रन्थियोंमें भ्रमण करता है!

मि० डेली उज कहते हैं कि, चुम्बक-वाष्प ज्योतिर्मय पदार्थकी उज्ज्वल शिखाके सदृश प्रतिक्षण हम लोगोंके शरीरसे मण्डलाकार होकर निकलता रहता है। इसका कोई निर्दिष्ट प्रवाह या गति नहीं है! निकटस्थ आदमियोंपर इसका कैसा प्रभाव पड़ता है नहीं जाना जा सकता। हाँ, इच्छा-शक्तिके द्वारा यदि कोई इसे दूसरेपर परिचालित करता है, तो परिचालककी इच्छाके अनुसार दूसरोंपर इसके भले, बुरे, दोनों तरहके प्रभाव पड़ते हैं।

एडिनबरा-विश्वविद्यालयके रसायन-शास्त्राध्यापक डा० ग्रेगेरे कहते हैं कि, 'जो मनुष्य शीघ्र ही सम्मोहित होता है, वह सम्मोहनकारीकी अंगुलियोंसे चुम्बक-वाष्पको स्पष्ट निकलता हुआ देखता है।'

डा० ली भी कुछ ऐसी ही बातें बताते हैं। सम्मोहित व्यक्ति चुम्बक पत्थरसे और सम्मोहक

कारीके हस्त, चक्षु, मुख, कपाल और मस्तकसे एक प्रकारकी ज्योतिको निकलता हुआ देखता है। डा० डेसपाइन और डा० चार्पियन भी इस मतको समर्थित करते हैं।

"ताप-अलोक-वर्णतत्त्व" ग्रन्थके रचयिता डा० वैबिट कहते हैं कि, चुम्बक-रश्मि चक्षु और वाक्से तो निकलती ही है; परन्तु इच्छा-शक्तिको प्रकट करते समय, अन्य अङ्गोंकी अपेक्षा, हाथोंसे यह अधिक निकलती है!

"विटेल मैग्नेटिक् क्योर" ग्रन्थके निर्माता डा० जनैकने चुम्बक-किरणके निःसरणके विषयमें बताया है कि, मनुष्योंके दक्षिण हस्त या दक्षिण भागसे जो वाष्प निकलता है, वह ठंढा होता है तथा वाम भागसे जो वाष्प निकलता है, वह गर्म होता है; इसलिये कि, हृदय-यन्त्र इसी भागमें रहता है। धार्मिक व्यक्तिके शरीरसे जो वाष्प निकलता है, वह उज्ज्वल और और पवित्र होता है; इसलिये हिन्दू-धर्म-शास्त्रोंमें आर्य ब्राह्मण आदिके हाथोंका भोजन उत्तम माना जाता है।

बैरन रीचेन बैक एक अच्छे रासायनिक पण्डित हैं। इन्होंने चुम्बक, स्फटिक तथा खनिज पदार्थ आदिकी परीक्षा करके, अपना मत, १८९३ ई० में, "थियॉसफी ग्रीनर" पत्रिकामें यों प्रकाशित कराया था--"सब पदार्थोंका आलोक एक प्रकारका नहीं होता है।" वालस्टन साहब कहते हैं—"मोमबत्तीके आलोकसे सूर्यका आलोक ५५६० गुणा अधिक है"; किन्तु लेस्ली साहबके मतसे सूर्य-आलोक १२०० गुणा अधिक है। ये कहते हैं कि, सूर्यालोकमें अलकोहल, उड स्पिरिट, हाईड्रोजन, कार्बोलिक और ऑक-साइड गैस आदि वस्तुएँ नहीं हैं; क्योंकि यन्त्र आदिसे पता लगानेपर भी ये वस्तुएँ सूर्यालोकमें नहीं मिलतीं।

डा० असबारन साहब कहते हैं कि, पचासो आदमियोंने मेरे हाथों और अंगुलियोंसे चुम्बक-वाष्पको निकलते देखा है। सम्मोहितावस्थामें उसे जिन्होंने देखा है, उनका कहना है कि, वह उज्ज्वल और किञ्चित् नील वर्णका है!

अंगुलियोंसे जो चुम्बक-वाष्प निकला करता है, उसे संगृहीत करके चिकित्सक शीशियोंमें रख लेते हैं और रोगियोंको सुँघाकर निद्राभिभूत किया करते हैं।

चार्पिन साहब कहते हैं कि, जागृतावस्थामें भी बहुतेरोंने मेरी अंगुलियोंसे चुम्बक-वाष्पको निर्गत होते देखा है।

तरु, गुल्म, लता इत्यादि उद्भिदोंसे भी विभिन्न वर्णके आलोक निकला करते हैं। ऐसे बहुतेरे उद्भिद् हैं, जिनके एक ही अङ्गसे कई वर्णोंके वाष्प निकलते हैं। एक स्त्रीने परीक्षाके द्वारा इसका प्रत्यक्ष किया है। उसने देखा है—गुलाबके पौधोंसे, टहनियोंसे, पत्तोंसे तथा पुष्पोंसे विविध भाँतिकी ज्योतियाँ निकलती रहती हैं।

डा० हार्टमैनका कहना है कि, प्रत्येक जड़ पदार्थकी चारो तरफ एक मण्डलाकार पदार्थ विद्यमान रहता है, जो हम लोगोंके दृष्टिपथमें नहीं उतरता। हाँ, गन्धका अनुभव भले ही होता है। मणि, मुक्ता, हीरक आदिसे जिस तरहकी ज्योति निकलती है, उसी तरहकी ज्योति योगियों और सच्चे साधुओंके मस्तकसे निर्गत होती है।

उद्भिद् या मनुष्य अपनी प्रकृतिके अनुसार ज्योति विकीर्ण करते हैं। सच्चरित्रोंका चुम्बक-वाष्प शुभ्र,

नील, धूसर तथा गुलाबी रंगका होता है एवं पापियोंका घोर काले रंगका होता है।

हिन्दू-शास्त्रोंमें जो निषिद्ध आहार, दुष्ट-संसर्ग आदि वर्जित हैं, वह इन्हीं बातोंको लक्ष्यमें रख करके। मस्तिष्क-चक्र या ग्रन्थि धूसर पदार्थसे निर्मित हैं। यह धूसर पदार्थ वाष्पाकारमें शरीरके भीतर प्रवाहित एवं सतत बहिर्गत होता रहता है।

जन्तुओंके चुम्बक वाष्प एकसे नहीं होते और न सबके लिये फायदेमन्द ही। हाँ, यक्ष्मा, कास आदि रोगोंसे ग्रस्त मनुष्योंके लिये छाग, मेष, शशक, मृग आदिके वाष्पका ग्रहण हितकर होता है। इसीसे यह किंवदन्ती सुनी जाती है कि, चन्द्रदेव जबसे क्षय-रोगके शिकार हुए, तभीसे शश या मृगको अपने पास रखा करते हैं।

छुआछूतसे अवश्य हानि होती है; क्योंकि पाँच आदमी अगर किसी वस्तुको छूएँगे, तो निश्चय ही उनके मनोविकारके अनुसार चुम्बक-वाष्प निःसृत होकर उस वस्तुमें प्रविष्ट हो जायगा। मनोभावोंकी भिन्न-भिन्न अवस्थाओंमें चुम्बक-वाष्प भिन्न-भिन्न वर्णवाला हो जाता है। श्रीमती एनी बेसेंटने "*Riddles of life*" नामक ग्रन्थमें इसका अच्छा विवेचन किया है।

हिप्नॉटिज्म-क्रियाके अनुष्ठानमें रोगियोंके शरीरका स्पर्श किये विना पश्यक भी कामयाब नहीं हो सकता यानी यहाँ भी अपने शरीरके वाष्पको पश्यक रोगियोंके शरीरमें प्रविष्ट कराता है।

जैसे चुम्बकके एक प्रान्तमें आकर्षण-शक्ति और दूसरेमें विकर्षण-शक्ति रहती है, वैसे ही मानव शरीरमें चुम्बक-शक्ति रहती है। वैज्ञानिक एकको *Positive* और दूसरेको *Negative* कहते हैं। इस विषयमें ऋषियोंका कथन है कि, पुरुष-शरीरके दक्षिण भागमें आकर्षण-शक्ति और वाम-भागमें विकर्षण-शक्ति रहती है; किन्तु स्त्रियोंके शरीरमें इसके विपरीत है। इसीलिये स्त्रियोंका नाम 'वामा' है। पुरुषके वाम-भागमें स्त्रियोंके रहनेसे दोनोंकी दोनों शक्तियाँ परस्पर मिलित रहती हैं।

विनोद-बिन्दु

ससुरालकी सैर

(२)

बा० हरद्वारप्रसाद जालान

"अँय ! अँय ! यह क्या ! मुझे छोड़ दोगे—तलाक दे दोगे ?"

मैंने समझा कि, तलाकके मानी बीबीने सचमुच तलाक ही समझ लिये हैं। इस तरह डराने-धमकानेपर वे पूरे फैशनमें आ जायँ; इसलिये धमकाना ठीक समझकर मैंने कहा—"जी, और क्या, जब आप मेरे हुक्मके मुताबिक नहीं चलतीं, तब मैं अभी "डाइवोर्स" करता हूँ।"

बीबी गिड़गिड़ाकर बोलीं—"अरे मियाँ, तुम देशी आदमी हो। समझे !"

मैंने कड़ककर कहा—"मगर तबीयत विलायती है। बस, तुझे मेरी बात मंजूर हो तो ठीक है, नहीं तो बोरिया-बधना उठा। मैंने तुझे तलाक दे दिया।" "अच्छा, अच्छा, मैं तुम्हारी बातें मानूँगी। जो कहोगे, करूँगी; मगर ऊँची एड़ीदार जूता नहीं।" "नहीं, यह भी पहनना होगा। मैं तुझे पूरे फैशनमें सजाकर ससुराल ले चलूँगा। जानती है, तू मिसेज़ सिनहा है—ऐरे-गैरे नत्थू-ख़ैरेकी देशी बेगम नहीं !"

"हाँ हाँ, समझ गयी कि, तुम खुद भी ज़लील होगे, साथ ही मुझे भी कहीं आँखें उठाने लायक नहीं रखोगे।"

"उफ ! कौन तेरे ऊपर आँखें उठावेगा—मैं उसकी आँखें फोड़ डालूँगा। जानती है, मैं मिस्टर सिनहा हूँ। मेरे दोस्तोंमें कई डिप्टी-कलक्टर हैं।"

"खूब जानती हूँ कि, तुम पूरे भोंदू हो। खैर। तुम जो कहोगे, करूँगी ! मगर हुजूर किस ठाटमें चलेंगे !"

"बिलकुल इंगलिश फैशनमें। अभी-अभी मैं डाइनिंग और इवनिंग सूटोंका आर्डर "फ्रैन्सिस हैरिसन हैथवे" को देता हूँ।"

"भला डाइनिंग सूट क्या करोगे ?"

"क्यों ? क्या खानेके वक्त यह कोट-पैंट सजेगा। उस वक्त तो डाइनिंग सूट ही चाहिये।"

"तुम्हारा दिमाग पागल हो गया है। जाओ, जो मनमें आवे, करो। मैं कुछ नहीं करूँगी।"—कहकर बीबी मुँह लटकाये चली गयीं। मैं देखता ही रह गया। निहायत मलालसे तबीयत छोटी हो गयी। *God* को हाथ जोड़कर बोला—"*Lord* ! हिन्दुस्तानी औरतोंको अक्ल दो, जिसमें वे सभ्य बनें। जबतक इस जातिमें सभ्यता नहीं

फैलेगी—ये अप-टु-डेट नहीं होंगी, तबतक हिन्दुस्तानको "स्वराज" मिलना मुश्किल है!"

मैं इन्हीं खयालातोंमें हाथ उठाये हुए था कि, रजनधारी कमरेमें आ पहुँचा और मुझे इस हालतमें देखकर बोला—"क्यों मिस्टर सिनहा! आज इस तरह तुम जमनास्टिक क्यों कर रहे हो? बात क्या है? यह गमगीन सूरत क्यों बना रखी है!"

मैंने शेक हैण्ड करते कहा—"भाई, क्या पूछते हो। अपनी बीबीके खयालातसे तंग आ गया हूँ, तंग!"

रजनधारीने आँखें फाड़कर पूछा—"क्यों क्यों, क्या वजह हुई?"

"वजह? वजह क्या बताऊँ?"

"आखिर कोई बात भी है?"

"यही है कि, मैं कहता हूँ कि, एड़ीदार जूता पहनो और वह कहती हैं कि, मैं यह जूता पहन ही नहीं सकती। पहनते ही लड़खड़ाकर गिर पड़ूँगी!"

"उफ! इसके लिये घबरानेकी कौनसी बात है! मैं तरीका बताये देता हूँ, जिससे तुम्हारी बीबी एड़ीदार जूता भी पहनें और गिरें भी नहीं।"

इतनी बात सुनते ही मैंने उछलकर पूछा—"कैसे भई! यह बात कैसे होगी?"

"एक काम करना। एड़ीदार जूतेकी एड़ीमें खूब नुकीली कीलें लगवा देना, जिसमें जमीनपर पैर पड़ते ही कीलें जमीनमें घुस जायँगी। इधर-उधर एड़ा न छटकेगी। समझे? इसी तरहकी जूती पहले-पहल मेमोंको पहनाकर चलना सिखाया जाता है!"

मैंने खुशीके मारे पूछा—"कसम?"

"मैं क्या झूठ बोलता हूँ। तुम्हें वैसी जूती ला भी दूँगा!"

"मेरी कसम!"

"तुम्हारी कसम!"

"अच्छी बात है, मगर यार मुझे बीबीके साथ ससुराल जाना है। मेरे साले साहबकी शादी है। इसलिये जूती बढ़िया हो!"

"हाँ जी, एक नम्बरकी जूती दूँगा। ठीक तुम्हारे चेहरे-सी चमकदार—निहायत नफीस, खूबसूरत!"

"तुम तो यार दिल्लगी करते हो।"

"नहीं-नहीं, ईमानकी बात कर रहा हूँ। मैं कल कलकत्ते जा रहा हूँ। वहाँ खूब अच्छी देखकर लाऊँगा।"

"सचमुच कलकत्ते जा रहे हो?"

"हाँ जी, क्या मजाक करता हूँ?"

"तब तो एक काम करो। मुझे भी कई चीजें मँगानी हैं। बेहतर होता कि, तुम खुद अपनी आँखों देखकर ला देते।"

"हाँ हाँ, शौकसे। भला, तुम्हारा काम न करूँगा!"

"अच्छा, यह बताओ कि, ससुराल जानेके लिये और कौन-सी चीजें मेरे पास होनी जरूरी हैं।"

"तुम भी ससुराल जाओगे!"

"जी हाँ, यह तो पहले ही कह चुका।"

"कितने दिन ठहरोगे?"

"१४ दिन।"

"इंगलिश स्टाइलमें रहोगे?"

"जी हाँ?"

"और बीबी?"

"वह भी एजुकेटेड लेडीकी तरह—पूरे फैशनमें।"

"अच्छी बात है, तो लिखो।"

मैंने फाउंटेन पेन निकाली। रजनधारीने कहा—"पहले बीबीके लिये फेहरिस्त बना लो!"

"अच्छी बात है"—कहकर मैंने पैडपर हाथ रखा। रजनधारी बोलने लगा, "पाउडर पफ़ दो! क्रीम तीन!

लो चार ! वेसलिन पाँच ! लीपस्टिक छः ! 'पिंक' चश्मा सात !"

मैं कलम रोककर बोला—"नहीं भाई, चश्मा वह नहीं लगावेगी। धीरे-धीरे होने दो। अभी इतनी ही हो जाय, तो बहुत है।"

"फिर मजा ही क्या आवेगा !"

नहीं यार, ऐसा वह नहीं करेगी !"

"तब तो सारा गुड़ ही गोबर हो जायगा। आजकल तो लेडियोंके लिये चश्मा ही नया फैशन रह गया है।"

"खैर, तुम्हारी ऐसी ही मर्जी है, तो लेते आना। घरमें ही लगाकर हौसला मिटवा लेंगे। अच्छा, और बोलो !"

रतनधारी बोलने लगा, मैं लिखने लगा—"एयरफ्लूट या शैम्पू आठ, सोप नौ, लोशन दस, लेवेण्डर ग्यारह, सेंट बारह। इतनी चीजें तो गालों और बालोंकी खूबसूरतीके लिये हुईं। अब गहनोंकी फेहरिस्त लिखो।"

"हेयर क्लिप एक, हेयर पिन दो, बैंडेज तीन, कंघी चार, जूड़ा पाँच, एयररिंग छः, नकबेसर सात !"

मैंने कलम थामकर पूछा—"नकबेसर ! क्या इसे आजकल मेम लोग पहनती हैं ? यह तो हिन्दुस्तानी फैशन है। तुम्हारा दिमाग ठिकाने तो है ?"

रतनधारीने हँसते हुए कहा—"भाई, भूल गया था ! मुझे बंगालियोंका फैशन याद पड़ गया था। हाँ, तो लिखो—पैंडेंटस सात, ब्रूचेज आठ, सोनेकी चूड़ियाँ नौ !"

मैं—"यार, सोनेकी चूड़ियाँ, तो वह मरनेपर भी नहीं पहनेगी। उस कमबख्तको काचमें ही सोहाग दीखता है—सोनेमें नहीं !"

"ओह ! तो फिर उसे इंगलिश स्टाईलमें लाना फिजूल है !"

"यार, धीरे-धीरे सब हो जायगा। बढ़ाते चलो ! हाँ और क्या चाहिये ?"

"खैर, लिखो, रिस्टवाच नौ, घड़ीकी अँगूठी दस, पर्ल नेकलेश ग्यारह, लॉकेट बारह।"

"अच्छा, अब कपड़ेकी फेहरिस्त लिखो—

"जालीकी जरीदार चादर एक, मद्रासी, पारसी और बनारसी साड़ियाँ दो, शमीज तीन, जैकेट चार, अंडरवीयर पाँच, दस्ताने छः, कमरपेटी सात, अंडरवीयर पेंट आठ, मोजा नौ, मनीबेग दस, छाता ग्यारह और स्पञ्ज बारह।"

"स्पञ्ज किस लिये ?"

"इसी बूतेपर जेंटलमैनी करना चाहते हो। अजी, इसे मेमोंका 'तहबन' समझो !"

"अच्छा भाई, अबतक न समझा था; पर अब समझ जाऊँगा।"

"हाँ, और ?"

"और उनके लिये एड़ीदार जूते !"

"सही—और, मेरे लिये ?"

"तुम्हारे लिये आठ जूते—दो शू, दो पम्पशू, दो टेनिस शू और दो स्लीपर—समझे !"

"यार, तुम मुझसे दिल्लगी करते हो क्या ?" मैंने उदास होकर कलम रखते हुए कहा।

"लानत और सलामत है उस कम्बख्तपर, जो तुमसे मजाक करता हो। मैं तो जो बताता हूँ, वह बिलकुल सही बताता हूँ। दो पैसे कमानेवाले भी अगर ससुराल जाते हैं, तो बनठन कर। भला तुम्हारे जैसे लछमीके लाड़ले को तो रुपयेका पुल बँधवाकर ससुराल जाना चाहिये।"

मैंने खूब सोच विचार कर, फाउंटेन पेन उँगलीपर नचाते हुए, कहा—"बात तो ऐसी ही है। बीबीकी भी राय है कि, मैं इस ठाठ-बाटमें चलूँ, जिसमें देखनेवाले समझें कि, हाँ, कोई दामाद आया है ?"

रतनधारी बोला—"अजी दामाद साहबको देखकर अगर ससुरालवालेने आपको जेंटलमैन करार नहीं दिया—तो मैं यह सफाचट मूँछ—मूँछदार करा दूँगा।"

"मुझसे ही दिल्लगी!" कहकर मैंने रजनधारीको धौल जमा दिया। वह झटकते हुए हँसकर बोला—"लो, सच कहता हूँ, तो यह मार। अरे यार, मैं तुम्हें वह खासा जेंटलमैन बनाकर यहाँसे रवाना करूँगा कि, खुदा कसम, बिहिश्तसे तुम्हारे बाप भी इस बातका यकीन नहीं कर सकेंगे कि, तुम उनके नुत्फसे पैदा हो?"

"नुत्फ क्या?"

"अरे, जात-भाई।"

"अच्छा, बनाओ मत—फेहरिस्त लिखाओ।"

"अब कैसी फेहरिस्त?"

"मेरे लिये।"

"तुम्हारे लिये भी वही चीजें, जो तुम्हारी बीबीके लिये मैंने बताया हैं। खाली गहने, जाकेट, बॉडी, साड़ी छोड़ देना।"

"और सब चीजें बीबीवाली।"

"जी, और क्या? अँग्रेजी फैशनके रूल-रेगुलेशनमें—कंडीशनमें—मर्द और औरत बराबर हैं। समझे जनाब।"

"जी, खूब समझे। और क्या चाहिये?"

"पेंट तीन तरहके, कोट चार तरहके, हैट पाँच तरहकी चाहिये। इसके अलावा चश्मा, घड़ी, छड़ी, नेकटाई, कालर, कमीज, सेफ्टीपीन, मफलर, इवनिंग सूट, चेस्टर, कंघी और ऐना। ब्रश और कोबरा पालिश। इन्हीं चीजोंसे हो जाओगे जेंटलमैन निखालिस।"

"अच्छा, और?"

"और *Crocodile* का सूट केस, *Bed Binding*, इकमिक कुकर, दम चूल्हा, टिफिन बाक्स, *Water Carriere*! इतनी चीजें बिल्फैल तुम्हें चाहिये, फिर मैं कलकत्तेसे और कुछ पसन्दकी चीजें लेता आऊँगा।"

"अच्छी बात। तो ये सब चीजें कितनी-कितनी चाहिये?"

"कमसे कम कपड़े दो-दो दर्जन और गहने तो एक-एक ही। हाँ, छोटी-मोटी चीजोंकी फेहरिस्त तुम बना दो।"

"अच्छी बात है, मैं बीबीसे राय लेकर आज शामको तुम्हारे पास फेहरिस्त और इम्पीरियल बैंकका चेक भेज दूँगा। मेहरबानी कर चीजें लेता आना।"

"बहुत खूब। मगर यार, तुम्हारे साथ ससुराल मैं भी चलूँगा।"

वाह वाह, तब तो यार बात ही क्या है! खूब छनेगी।"

"जी, और दोस्त बनकर नहीं, बल्कि आपका 'बेहरा' बनकर।"

"हैं, तुम मेरे बेहरा होगे। नहीं-नहीं मैं ऐसा सलूक तुमसे नहीं करना चाहता। तुम मेरे दोस्त हो; तुम्हें खान-सामा बनाकर ले चलूँगा कैसे?"

"अरे यार, ले भी तो चलो। तुम्हारी खानसामागिरी भी मेरे लिये इज्जतकी चीज है। आखिर हूँ तो मैं गरीब ही। क्या हर्ज है। वहाँ कौन जानता है कि, ये ही रजन-धारी हैं हम खानसामा ही बनकर चलेंगे, मगर—चलेंगे जरूर।"

"बहुत खूब; आदाब।"

"बेवकूफ! इंगलिश एटीकेट सीख। गुड बाई कह।"

"अच्छी बात है। गुड बाई।"

रजनधारी चला गया और मैंने मूँछपर ताव देते हुए पुकारा—"अरी ओ केतकी, केतकी!"

"धत्तेरी केतकीकी ऐसी-तैसी। कमबख्त सुनती ही नहीं। बलासे, निगोडी चूल्हा फूँकती है; फूँकने दो! कमबख्तको लाख बार समझाया कि, जब मैं अन्दर रहूँ, तू मेरे पास खड़ी रहा कर। मगर एक नहीं सुनती! सूअरकी बच्चीकी किस्मत ही छोटी है। मालूम होता है कि, मुझे किसी मिसको खोजना पड़ेगा।"

इसी खयालमें गर्क होता हुआ मैं फेहरिस्त ठीक करने

लगा। कौन-सी चीजें कितनी मँगानी होंगी, इसकी पूरी लिस्ट बनाकर मैं, खुद मूँछोंपर ताव देता हुआ, बोला—बेशक! सभी दामादोंमें मेरा नम्बर बढ़-चढ़कर रहेगा। मेरी शान और लक़दक़के आगे सभीका सर झुक जायगा। जिस समय मेरा असबाब ससुरालके दरवाजेपर उतरेगा, उस समय उनके नौकरोंका सिर उठाते-उठाते घिस जायेगा। बेशक! इतनी चीजोंके पास रहते मैं पूरा जेंटलमैन हो जाऊँगा! जिसकी ओर आँख उठाकर देखूँगा; वही मुझे झुककर सलाम करेगा। जो औरत मुझे देखेगी, वही निहाल हो जायगी। डाह करेगी कि, ऐसा ही खसम मुझे भी मिलता। वहाँकी कुमारियाँ मनायेंगी कि, ऐसा हसबैंड मुझे मिले। ब्याही हुई चाहेंगी कि, एक दफा इनसे हँस-बोलकर मैं जीकी निकाल लेती! बस, मैं ही मैं नजर आऊँगा! वाह रे मैं? और वाह रे मेरी जेंटलमैनी! आ हा हा! सब मेरे ही नज़दीक रहेंगे! मैं ही मजलिसका मसाल रहूँगा। अंधेरे घरका चिराग रहूँगा। हर एककी जुबानपर मेरी जेंटलमैनीकी मिठास रहेगी।

वल्लाह! मेरी कदर सब दामादोंसे ज्यादा रहेगी। सालियाँ और सरहजें तो मुझे एक मिनट भी नहीं छोड़ेंगी। और, मैं भी उस वक्त परियोंके अखाड़ेमें गुलफाम नजर आऊँगा। बेशक! रहेगी; खूब रहेगी! बारात निकलेगी साले साहबकी; पर देखेंगे लोग मुझको! जिस वक्त दो-दो एडीकांगसे सिपाही मेरी अगल-बगल किरिच लगा कर चलेंगे, उस वक्त लोग यही समझेंगे कि, यही "लार्ड सिनहा" हैं! पीछे-पीछे दो दो बेहरा! वाह वाह! क्या बहारदार यह बारात होगी। कसम; मज़ा आयेगा! लोग मेरी शान-शौकतका अन्दाजा लगावेंगे और औरतें मेरी बीबीका भाग्य सराहेंगी। आ हा हा! सबकी आँखें, अन्दर-बाहर, हम दोनोंपर गड़ी रहेंगी। अन्दर बीबीका और बाहर मेरा बोल-बाला रहेगा। जिस वक्त वह पूरे फैशनमें सज-धजकर खड़ी होगी, उस वक्त एक तरफ औरतें पछाड़ खायँगी, दूसरी ओर मर्द गिरेंगे। अफसोस! कमबख्त इतनी गोरी होकर भी न मालुम क्यों फैशनसे नफ़रत करती है—तआज्जुब है! जैसे होगा, उसे ठीक करना ही होगा। नयी रोशनीमें उसे लाना ही होगा। यही सोचता हुआ मैं टेबुलपर आ बैठा और अपना चेहरा निहारने लगा!

यह क्या! मेरी मूँछके बाल मुँहमें क्यों घुसे जा रहे हैं! उफ! साले सूअरके बालोंकी तरह कड़े हैं बेहतर है कि, मैं उन्हें सफाचट ही करा डालूँ। बेशक! अँग्रेज लोग साइंसके पण्डित हैं। सचमुच बाल मुँहमें घुस-घुसकर जहर पैदा करते हैं। तभी तो जिस थालीमें बाल पड़ जाता है, उस थालीका लोग खाना नहीं खाते। हाँ, तो ठीक है। बस अभी नाईको बुलाता हूँ और मूँछें सफाचट कराता हूँ। अच्छी बात है। इतना सोचकर मैंने जोरसे घंटीपर हाथ पटका। अर्र्र्र्र! यह क्या! बजाय घंटीके टेबुल लैम्प भी जमीनपर बज गया!

इसी वक्त मेरा बेहरा, हाँफता हुआ, आ पहुँचा और मुँह बाकर टेबुलकी ओर देखने लगा। मैंने जोशमें आकर कहा—"*You damn*! काला आदमी! अभीतक टेबुलपरसे लैम्प क्यों नहीं उठाया?"

बेहरा—"जी-जी, जी जी जी जी……" कहता हुआ मुँह बाये खड़ा रहा। मैं और गुस्सेमें चूर होकर बोला—"वेल! हम तुम्हारा जीजी नहीं माँगता। हम तुमसे जबाब माँगता है। तुम अभीतक किस माफिक लैम्प नहीं उठा ले गया।"

बेहरा फिर डरता हुआ, सकपकाकर, बोला—"जी जी, हुजूरको……हुजूरकी……यही……!"

मैंने पैर पटककर कहा—"जी-जी हुजूरकी……जी-जी हुजूरकी……क्या बकता है? मेरे सवालका जबाब दो। तुम लैम्प किस माफिक नहीं ले गया?"

नौकर बोला—"जी-जी हुजूर, अन्दर...।"

"श्रोह ! तो तुम काहे नहीं घुस श्राया। मेम साहब तो था नहीं ?"

"जी-जी ! हूजूरने कहा था कि, मैं अन्दर रहूँ, तो तुम भीतर न आया करो। मैं बाहर निकल जाऊँ, तब भीतर जा सकते हो। इसलिये हजूर मैं...।"

"अच्छा, जाओ। आज हम तुमको माफ़ करता है। कलसे ऐसा गलती करनेसे तुमको जवाब मिलेगा।"

"जी-जी सरकार, अब गलती नहीं होगी।"

"अच्छा, यह लैम्प पीछे उठाना। पहले जाओ एक नाई बुला लाओ।"

"*Very well, sir !*" कहकर नौकर चला गया। मैं मन-ही-मन नौकरकी तारीफ करने लगा। जरूर यह बेहरा कलक्टर साहबका सिखाया-पढ़ाया हुआ है। तभी तो मेरे गुस्सेको ठंडा कर डाला। नहीं तो मेरी आँख कौन सह सकता है ? बेशक मैं जेंटलमैन हूँ। यही सोचता हुआ मैं तावड़तोड़ चक्कर काट रहा था कि, बेहरा एक नाई बुला लाया। नाई पूरा मैला-कुचैला गावदी जान पड़ता था। मैंने उसे देखकर बेहरासे पूछा—"क्यों, यह हजामत अच्छा बना सकेगा ?"

नाई खुद ही बोल उठा—"जी सरकार, एक नम्बर बनाईला !"

"अच्छी बात है, बनाओ !" कहकर मैं टेबुलपर बैठ गया ? नाई साज रखता हुआ बोला—"भूइँयाँ बैठीं सरकार। ई तेलङ्ग पर चढ़ले हजामत कइसे बनी ?"

मैंने चौंककर पूछा—"तेलङ्ग क्या बेहरा ?"

"इसे हिन्दीवाले गँवारू बोलीमें *Tripod* को कहते हैं !" बेहरा मुझे समझाकर फिर नाईसे बोला—"अइसही साहब हजामत बनइहे ? बनाव खड़े-खड़े ?"

"अच्छा" कहकर नाई उस्तरा लेकर चमड़ेकी पट्टीपर 'चट्ट-पट्ट' करता हुआ बोला—"का बनी सरकार, दाढ़ी कि सिरक बाल ?"

मैंने कहा,—"नहीं रे बदमाश मूँछ बनाऊगा !"

"त गाली काहे देतानी सरकार, भले आदमी लिया कह दीं, मोँछ देब !" कहकर नाईने कटोरी निकाली और शीशीसे पानी भी ! मेरे मुँहपर तावड़तोड़ पानी छापते हुए बोला—"उठाईं चेहरा, देखाईं मुँह !"

चेहरेपर उसके पानीका छपाका लगते ही मैं बिगड़ कर बोला—"अरे बेवक़ूफ़ ! *Shaving stick* निकाल—*shaving stick* !"

"शेविङ्ग स्टीकका हजूर !"

बेहरेने बीचमें ही कहा, "अरे साबुन लगाके, साबुन! अइसे दरद न होई ?"

यह बात सुनते ही नाई छातीपर हाथ पीटकर बोला—"ई का सरकार ! पुरखनके मोँछ देवेके बिन साबुन का लगावल जाई ! हम कईसे लगाईं ?"

मैं बिगड़कर उठ खड़ा हुआ और बोला—"उफ़! मेरा बाप नहीं मरा है, न कोई गमी ही हुई है। तू साबुन लगा। (बेहरासे) उफ ! तू मेरे हज्जामको क्यों नहीं लाया ?"

बेहरा—"हुजूर वह दूसरे गाँव गया है, कोई नहीं मिला इसलिये इसे लाना पड़ा।"

छुरेकी धार ढोता हुआ नाई बोला—

"सरकार. छमाही या बरखीके दिन भी साबुन लगाके मोँछ ना दिहल जाय ! समझ लीं !"

मैं बेहरेसे बोला—"वेल बेहरा, इस नाईको समझा दो कि, हम बापके गममें मोँछ नहीं देता। शौकसे मुड़ाता है।"

बेहरेने नाईसे कहा—"समझा ! साहब अपने बापके मूँछ नहीं देता। ससुराल जाता है !"

नाई—"तऊओ नाहीं चाही। ससुर-बाप बराबर होला ! हमरासे सुनीं।"

मैं अब नहीं सह सका। कह उस बेवकूफ नाईसे

छुरा छीन लिया और बेहराको देते हुए बोला—"बेहरा, तुम हमारा मोँछ उतार दो। इससे नहीं होगा।"

बेहरा सकपकाकर बोला,—"हुजूर, मैंने आजतक यह काम नहीं किया। मुझसे शायद इधर-उधर हो जाय! इसलिये......!"

"उफ़! जैसा होगा, तुम सीधा खीँच दो! इसमें कोई तारीफ़का बात नहीं है। लो, साबुन लगाओ!"

डरता हुआ बेहरा बोला—"मेरे हाथसे हुजूर कहीं लग जायगी। इससे ही बनवा लीजिये!"

मैंने कड़ककर कहा—"*no*,इस उर्टी मैवसे मैं नहीं बुलाता। तुम उस्तरा पकड़ो, मैं साबुन लगाता हूँ!" इतना कहकर मैंने अपनी शेविंग स्टिक निकाली और मूँछपर साबुन लगाना शुरू किया। मैंने मुँह बेहराकी ओर बढ़ा दिया। बेहरा डरता हुआ आगे आया और नाई अलग हो गया।

बेहरेने उस्तरा तो चलाया; पर मूँछका चमड़ा ही सफा-चट! हाय हाय, देखते-देखते साबुनका फेन लाल हो गया! बेहरेके हाथसे छुरा जा गिरा अलग; और, वह खुद भागा अलग!

मैं सर थामकर बैठ गया। डरता हुआ नाई बोला—"इजाजत हो, त सरकार, खून भी कमा देईं और मोँछ भी साफ कर देईं।"

दर्दके मारे कराहता हुआ मैं बोला—"कर भाई, कर। जैसे तेरे मनमें आवे, कर। इस वक्त मैं तेरे हाथमें हूँ।"

किसी तरह उसने मूँछ सफ़ाचट की। खून भी बहना बन्द हुआ। नाई विदा हुआ और मैं दर्दके मारे टेबुलपर सिर रखकर रोने लगा। इसी वक्त मेरी बीवी आ पहुँचीं। पीछेसे खड़ी होकर कन्धेपर हाथ रखती हुई बोलीं—"प्यारे!"

मैंने सर उठाकर आइनेमें, रोते हुए, देखा। बीवीसे चार आँखें होते ही बीवी अकचकाकर बोलीं—"हैं! यह क्या! तुम रोते क्यों हो?"

मैंने चेहरा उठाकर मूँछ दिखायी। अब तो बीवी और भी घबरा गयीं! छाती कूटकर बोलीं—"हे भगवान! यह क्या! नाथ! नाथ! यह मूँछ तुमने किसपर दी!! हाय हाय! कौन मर गया? बताओ! बताओ!! यह मैं क्या देखती हूँ!"

मैंने कोशिश की कि, कुछ बोलूँ; पर दर्दके मारे ज्योंही मुँह खुला कि, रुलाई आ गयी! अब तो बीवी भी रो पड़ीं। आँखें पोँछती बोलीं—"आह! बताओ तो कौन मर गया? तुम्हारा रोना देखकर मेरा कलेजा फटा जाता है! आह प्यारे!!" कहकर बीवी फिर साँसें भरने लगीं। मैं कलेजा थामकर किसी तरह इतना ही कह पाया कि, "हाय, क्या बताऊँ ससुरालके" कि, फिर खून गिरने लगा! मैं दर्दके मारे रोने लगा! इधर बीवी मेरे मुँहसे ससुराल का नाम सुनते ही चीख़ मारकर लोट गयी!

बहुत देरकी कोशिशके बाद वह उठीं, तो पुक्का फाड़ कर रोती हुई बोलीं—"हाय! हाय! बताओ तो मेरे यहाँ कौन मर गया! बाबूजी या माँ? हाय बताओ, कौन स्वर्गधाम सिधारे! हाय हाय! हे भगवन्! कहाँ तो मैं भइयाके ब्याहका सुख-स्वप्न देखती थी और यह कहाँ वज्रपात हो गया! हाय! हाय! मैं लुट गयी! आह! आह! बोलो, बोलो तो मेरा कौन मर गया?"

अब मैंने समझा कि, मुझसे कैसी बेवकूफी हुई। नाहक बीवीको परेशान किया। इस वक्त मुझे कुछ हँसी आ गयी! मैं हँसते हुए बोला—"नाहक न घबरा गयीं? अरे, दर असल, कोई मरा नहीं—मैंने......!"

"नहीं, नहीं तुम छिपाते हो। बिना अपशकुन हुए भला कोई मूँछ मुड़ाता है?"

"क्यों, इंगलिश फैशनवाले तो बराबर ही मूँछ मुँड़ाया करते हैं?"

"आग लगे तुम्हारी हँसीमें—मेरा तो इस वक्त बर

जल रहा है और तुम्हें हँसी सूझ रही है? सच बोलो, कौन मरे हैं, बाबूजी या माँ !"

"अरे कोई नहीं मरा है। मैंने दिल्लगी की है !"

"चूल्हेमें जाय ऐसी दिल्लगी ! यह भी कोई दिल्लगी है।"

"तुम्हारी कसम ! मैंने फैशनमें मूँछ मुँड़ायी है ?"

"आग लगे तुम्हारे फैशनमें ! राम राम ! इस तरह भी कोई धर्म गँवाता है।"

"चुप रह, धर्म-धर्म क्या चिल्लाती है। क्या मूँछ मुँड़ानेसे ही धर्म मुँड़ा जाता है !"

खैर, जाने दो, जो तुम्हारे मनमें आवे, करो, मैं कुछ नहीं कहूँगी।"

"अच्छा, यह देख, तेरे लिये कलकत्तेसे मैंने ये चीजें मँगानेकी यह फेहरिस्त बनायी है।"

इतना सुनते ही बीबी हँसती हुई फेहरिस्त पढ़ने लगीं। पूरी फेहरिस्त पढ़कर बोलीं—"तो तुम मुझे पूरी "बेसवा" बनाकर ले चलोगे ?"

"अच्छा, यही समझ ?"

"पर, येह चश्मा किस लिये ?"

" ऊपर चढ़ानेके लिये !"

"क्या कहा ?"

इस बार बीबीके कानमें मैंने खुलासे तौरपर सब समझा दिया। बीबी भला यह तरीका क्यों पसन्द करतीं; आँखें तरेरकर बोलीं—"मैं हर्गिज नहीं लगाऊँगी! आग लगे ऐसे लगानेमें। तुम्हें औंधी ही बातें सूझा करती हैं।" बीबी झुँझलाती हुई चली गयीं। मैं हाथ मलता रह गया ! लाख कोशिशें करनेपर भी मुराद पूरी नहीं हुई ! भूखेका भूखा रह गया !

आखिर लाचार होकर कोट पहना और छड़ी घुमाते हुए घरसे निकल पड़ा—ठण्ढी सड़ककी ओर हवा खाने और दिमाग ठीक करनेके लिये ! (क्रमशः)

संस्कृत-साहित्य-सौन्दर्य

नभोभूषा पूषा कमलवनभूषा मधुकरो
वचोभूषा सत्यं वरविभवभूषा वितरणम् ।
मनोभूषा मैत्री मधुसमयभूषा मनसिजः
सदोभूषा सूक्तिः सकलगुणभूषा च विनयः ॥

आकाशका भूषण सूर्य, कमलोंका भूषण भ्रमर, वचनका भूषण सत्यता, अतुल सम्पत्तिका भूषण दान, मनका भूषण मित्रता, वसन्तका भूषण कामदेव, सभाका भूषण उत्तम वचन और सब गुणोंका भूषण विनय है।

यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः ।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्—
सन्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥

जबतक यह शरीर स्वस्थ और नीरोग है, जबतक बुढ़ापा नहीं आता, जबतक इन्द्रियोंकी शक्ति प्रौढ़ है और जब तक उम्र नहीं ढली है, तभीतक विद्वान्को उचित है कि, वह अपने कल्याणके लिये पूरी चेष्टा करे; क्योंकि, घरमें आग लग जानेपर अर्थात् जरा आ पहुँचनेपर कूपका खनन व्यर्थ है।

मणिना वलयं वलयेन मणिः
मणिना वलयेन विभाति करः ।
कविना च विभुर्विभुना च कविः
कविना विभुना च विभाति सभा ॥
शशिना च निशा निशया च शशिः
शशिना निशया च विभाति नभः ।
पयसा कमलं कमलेन पयः
पयसा कमलेन विभाति सरः ॥

मणिसे वलय और वलयसे(हाथके भूषणसे) मणिकी शोभा है तथा मणि और वलयसे हाथकी शोभा है। इसी तरह कविसे राजाकी और राजासे कविकी शोभा है तथा कवि और राजा—दोनोंसे सभाकी शोभा है। रातसे चन्द्रमाकी और चन्द्रमासे रातकी शोभा है तथा रात और चन्द्रमा——दोनोंसे आकाशकी शोभा हैं। जलकी शोभा कमलसे और कमलकी शोभा जलसे है तथा जल और कमल दोनोंसे तालावकी शोभा है।

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः ।
वक्ता दशसहस्रेषु दाता भवति वा न वा ॥

सौ मनुष्योंमें एक वीर, हजारमें एक विद्वान् और दस हजारमें एक व्याख्यानदाता होता है; परन्तु हृदयवाला दाता दस हजारमें भी एक नहीं होता।

साहित्य-सरिता

१ साकेत

रचयिता, बाबू मैथिलीशरण गुप्त; प्रकाशक, साहित्य-सदन, चिरगाँव, झाँसी; खादीकी सुन्दर जिल्द; पृष्ठसंख्या ४४८; मूल्य ३); मोटा कागज; सुन्दर छपाई। आरम्भमें रचयिताके स्वर्गीय पिताका एक सादा चित्र।

हिन्दी और संस्कृतके बहुविध ललित-ललाम छन्दोंमें, रामचन्द्रके प्रथम राज्याभिषेक-उत्सवसे लेकर वनवास, सीताहरण, रावणवध और राज्याभिषेक तककी कथा इसमें, कविशैली द्वारा, वर्णित है। इसके कतिपय अंश "सरस्वती" में भी प्रकाशित हो चुके हैं। बारह सर्गोंमें यह पूर्ण हुआ है। प्रथम सर्गमें साकेत नगरीका वर्णन और उर्मिला तथा लक्ष्मणका सुखद आलाप है। दूसरेमें मंथरा-कैकेयीका षड्यन्त्र है। तीसरेमें वनगमन है। चौथेमें माताके साथ रामका संवाद है और वनगमनके लिये सीताका हठ। पाँचवेंमें प्रस्थान, गुह-मिलन, ग्रामवधू आदि कथाएँ हैं। छठेमें उर्मिलाका विरह-वर्णन और दशरथ-मरण है। सातवेंमें भरतका भ्रातृप्रेम है। आठवेंमे भरतमिलन है। नवेंमें उर्मिलाका विरहवर्णन है। दशम भी ऐसा ही है। एकादशमें भरत-माण्डवी-संवाद है। द्वादशमें उपसंहार है।

प्रबन्धगत दीर्घकालिक विप्रलम्भ शृंगार अङ्गी है—रसाभास भी कह सकते हैं। विधेयतया लक्ष्मण और उर्मिला नायक-नायिका हैं। उर्मिलाका चरित्र बड़ी सूक्ष्मतासे बखाना गया है, कहीं भी लचरपन नहीं है। इसके विरह-वर्णनको पढ़कर प्रस्तर-हृदय भी बे-रोये नहीं रह सकता; एक बार पढ़नेसे जी भी नहीं अघाता है। देखिये, विरहिणीका कितना सुन्दर उद्गार है—

"आ जा, मेरी निदिया, गूँगी!

प्रियके आनेपर आवेगी,

अर्द्धचन्द्र ही तो पावेगी!

पर यदि आज उन्हें लावेगी,

तो तुझसे ही लूँगी!!"

उर्मिला अधीर हो गयी है। प्रियके दर्शन होते ही नहीं—मनमें भी रूप नहीं आता। विकल हो रही है। सोचती है, शायद प्रियतम नींदमें मिल जायँ! पर नींद भी नहीं आती। बड़े प्यारसे वह नींदको बुलाती है, फिर मिलनकी आशा बँध जाती है। कहती है—"अरी निंदिया, आ जा, यही मौका है, तुझे खिलौने दूँगी; पर प्रियतमके आनेपर आयगी, तो सिवा तिरस्कारके और तुझे क्या कुछ मिल सकेगा!"

इस पुस्तककी जान उर्मिलाका विरह-वर्णन है। यों तो और भी कथानक कम-बेस अच्छे ही उतरे हैं, पर विरहवाला भाग गजबका है।

पुस्तकमें काव्यके सभी लक्षण मौजूद हैं। दसो दशाएँ, काल-ऋतु-गिरि-नदियाँ आदि सबके वर्णन हैं। कथा-भाग

भी अपनी इच्छासे बटाया-बढ़ाया गया है। प्राकृतिक वर्णनमें काव्यकी मर्यादाका संरक्षण उचित रीतिसे किया गया है। रस-परिपोषपर भी काफी ध्यान दिया गया है, एकाध जगह उखड़ गया है सही; पर तुरत फिर जमा भी दिया गया है। हाँ, भावकी बढ़तीमें कविने कहीं-कहीं कठिन शब्दों और कठिन वाक्ययोजनाओंको भी स्थान दे दिया है, जिससे सुन्दर भाव भी साधारण जनके लिये सहज-बोधगम्य नहीं रह सका है। पर इसका यह आशय नहीं है कि, "साकेत"में प्रसादगुणका एकबारगी ही अभाव है।

राष्ट्रीयता, सामाजिकता, साम्प्रदायिकता, भक्ति, भावुकता और प्राकृतिक सुन्दरताका भी पाठ "साकेत'के पाठक पढ़ सकेंगे, कल्पनाकी सार्थक उड़ान देख सकेंगे और पग-पगपर नवीनताका अनुभव कर सकेंगे।

"साकेत"की भाषाके विषयमें यद्यपि कुछ कहना मुनासिब नहीं होगा, क्योंकि गुप्तजीकी भाषा हिन्दी-संसारमें शुद्धताके लिये विश्रुत है। लोगोंकी धारणा है कि, हिन्दीमें गुप्तजी ही एक ऐसे कवि हैं, जिनकी भाषा, पद्यमें भी, व्याकरण-सम्मत होती है; तथापि दबी जबानसे मैं यह कहनेकी हिम्मत कर रहा हूँ कि, प्रस्तुत पुस्तकमें वह प्रौढ़ता निबाही नहीं गयी है। "अपि माषं मषं कुर्यात्" वाली बात बहुत जगह शब्दोंको तोड़-मरोड़ कर चरितार्थ की गयी है। बानगीमें मैं केवल प्रथम सर्गको ही पेश करता हूँ। पृष्ठ ११ में प्रेमपूर्णाकी जगह "प्रेमपूरित" और गोरापनकी जगह "गुराई" लिखा गया है। पृष्ठ ४ में "वह मरोंको मात्र पार उतारती" है। 'मात्र' प्रत्यय है, किसी शब्दके साथ व्यवहृत होता है। पृष्ठ २ में "धन्य दशरथ-जनक-पुण्योत्कर्ष है।" यहाँ 'दशरथ' समस्त पद हो जानेसे अविमृष्टविधेयांश दोषका भागी बन जाता है। पृष्ठ ९ में "दीखते उनसे विचित्र तरंग हैं।" तरङ्ग स्त्रीलिङ्ग है। 'दीखती' चाहिये। पृष्ठ १६ में "बज रही है द्वारपर जय-दुन्दुभी।" दुन्दुभि ह्रस्व इकारान्त पुल्लिङ्ग है। विराम-दोषसे किसी ही लाइनें पढ़नेमें भी जिह्वाको कष्टका अनुभव होता है। अस्तु।

पुस्तक साहित्य-प्रेमियोंके लिये एक अभिनव वस्तु है। बार-बार पढ़नेपर भी पढ़नेकी लालसा बनी ही रहती है। साहित्यिकोंसे मेरा अनुरोध है कि, वे एक बार इस सुन्दर पुस्तकको मँगा कर जरूर पढ़ें।

२—सावयधम्मदोहा

दिगम्बर-जैन-ग्रन्थमालाका द्वितीय पुष्प। सम्पादक, श्रीयुत हीरालाल जैन एम० ए०, एलएल० बी०; प्रकाशक सेठ गोपालदास जबेर, करंजा, बरार; पृष्ठसंख्या १२५; मूल्य सजिल्दका २॥); छपाई-सफाई साधारण।

शुरूमें ३६ पेजोंकी बड़ी-सी सारगर्भ भूमिका है, जिसका विषय है, इस पुस्तककी कहाँ-कहाँसे हस्त-लिखित प्रतियाँ लायी गयीं, किसका पाठ कैसा था, ग्रन्थकर्ता कौन थे, पुस्तकका पहले कैसा प्रचार था, इसपर कितनी टीका और टिप्पनियाँ हुई हैं तथा इसके व्याकरणका रूप कैसा है। अन्तमें तीन पेजोंका परिशिष्ट है, जिसमें केवल प्रक्षिप्त दोहे हैं। इसके बाद अकारादि क्रमसे दोहोंके सब शब्द, अर्थके साथ तथा दोहोंकी संख्याके साथ, शब्द-कोषकी तरह लिखे हैं। तदनन्तर बड़ी-सी टिप्पनी है और दोहोंकी वर्णानुक्रमणिका।

जैनधर्मावलम्बियोंके लिये यह पुस्तक बड़ी ही उपयोगिनी है। श्रावकोंके धर्म, व्रत, नियम, कर्तव्य आदिका छन्दोबद्ध भाषामें, २२४ दोहोंमें, विशद रूपसे वर्णन है। बहुतेरे उपदेश सार्वजनीन हैं और बड़े मार्केके—

"परतिय बहुबंधण ण पर अणु वि णरयणिसेणि।
विसकंदलि धारइ ण पर करइ वि पाणहं हाणि॥"

"परस्त्री बहुत बन्धन ही नहीं; परन्तु वह नरककी

सिलेनी भी है। विषकन्दली मूर्छित ही नहीं करती; किन्तु प्राणोंकी भी हानि कर डालती है।"

बाबू हीरालालजीने सब दोहोंका, बड़ी योग्यतासे, हिन्दीमें अनुवाद किया है और ऐसी कोशिश की है कि, जहाँतक हो मूल दोहेके ही शब्द रहें। इस कार्यमें इन्हें बहुत अधिक सफलता मिली है—एकदम शब्दानुवाद है; इससे भाषामें तनिक दुर्बोधता जरूर आयी है; पर वह विद्वानोंको नहीं खटकती!

दोहेकी भाषाको न मैं शौरसेनी कह सकता हूँ, न मागधी ही और न विशुद्ध प्राकृत ही कहनेकी हिम्मत बाँध सकता हूँ; क्योंकि सबका मिश्रण जो होता है, वही रूप इसका है। इसके मूल-लेखकके विषयमें भी बहुत विवाद है; प्रायः योगीन्द्रदेव ही इसके रचयिता हैं। इसके निर्माण-समयमें भी विवाद है। कोई इसे नवीँ और कोई दसवीँका मानता है।

जैनियोंके लिये यह पुस्तक एक बार अवश्य पठनीय है। धार्मिक बातोंका ज्ञान सरलतासे हो जाता है।

३—कलरव

रचयिता, प० जगन्नाथ मिश्र गौड़ "कमल" विद्यालङ्कार; प्रकाशक, हिन्दी-साहित्य एजेंसी, बाँकीपुर, पटना; पृष्ठसंख्या १२६; मूल्य १); छपाई-सफाई साधारण। कवरपर मुरलीमनोहरका एक तिरंगा चित्र। भूमिका-लेखक, प० अवध उपाध्याय और कविपरिचयके लेखक, प० कन्हैयालाल मिश्र "प्रभाकर" विद्यालङ्कार।

छोटी-छोटी ७६ कविताओंका यह संग्रह है। कहनेका ढंग एकदम सीधा-सादा और प्रसादगुण-पूर्ण है—पढ़ते जाइये और समझते जाइये। चार लाइनोंका छोटा-सा "समर्पण" बड़ा ही अच्छा बना है। "सपना" शीर्षक कविता भी कुछ अधिक मंजुलता और भावुकता लिये हुई है। "मिलनोत्सुक" शीर्षककी एक कविता देखिये—

"मुझे सुनाना होगा अपना
दिनभरका बीता इतिहास॥
आना होगा लौट कुटीमें—
देख उषाका क्षीण प्रकाश॥"

अपना दम्पतीका एकदम स्वाभाविक वर्णन है। उषाकालमें पत्नी पतिको विदा कर रही है और कहती है—'दिनभर तुम जो-जो काम करोगे, जैसे रहोगे, वह मुझे सुनाना होगा, ख़याल किये रहना। लेकिन देखो, यह जो उषा फैली है, दिन हुआ है, यह ज्यों ही खतम हो, मेरे पास लौट आना, तुम्हें दिन ही भरकी छुट्टी है।'

एक पद्य और देखिये—

"बस छिपे रहो पलकोंमें,
सौभाग्य समझ मैं गाऊँ॥
जो भाव उठें अन्तरमें,
संगीतोंमें प्रकटाऊँ॥"

इसी तरहके छोटे-छोटे पद्य एक-से-एक अच्छे हैं। परन्तु शब्दोंके चुनावमें 'कमल'जीने कमाल हासिल नहीं किया है। प्रयत्न करनेपर भी "कलरव"में स्थानके उपयुक्त बहुत शब्द प्रयुक्त नहीं हो सके हैं। शब्दोंकी भरमार भी हुई है।

४—विदेशकी बात

लेखक, प० कृपानाथ मिश्र एम० ए०; प्रकाशक, इण्डियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग; पृष्ठसंख्या ११८, छोटे चित्रोंकी संख्या २०; छपाई-सफाई साधारण; सजिल्द मूल्य १।)।

भारतसे विदेश क्योंकर जाया जाता है, किन सामानोंकी जरूरत पड़ती है, रास्तेमें कौन-कौन-से दर्शनीय स्थान मिलते हैं, कहाँ कितना खर्च पड़ता है इत्यादि बातें इसमें, रोचक ढंगसे, लिखी गयी हैं। अदन, लन्दन, पेरिस, बर्लिन, स्विट्ज़रलैंडतकका यात्रावृत्तान्त है। आगे

भावमयी और साहित्यिक है। स्थानों और वस्तुओंके वर्णनमें सजीवता है। पुस्तकके पढ़नेमें जी खूब लगता है और विदेशकी साहित्यिक स्थितिका भी ज्ञान बढ़ता है। "गङ्गा" के संरक्षक साहित्य-भूषण कुमार कृष्णानन्द सिंह बहादुरको पुस्तक समर्पित है।

५—हिन्दी-पत्र-शिक्षक

लेखक, प० रामनरेश त्रिपाठी; प्रकाशक हिन्दी-मन्दिर; प्रयाग; पृष्ठसंख्या ४०; मूल्य =)।

पत्र लिखना इन दिनों बहुत कम आदमी जानते हैं। थोड़ेमें अधिक बातें क्योंकर लिखी जा सकती हैं, किस प्रकार लिखनेसे विषय स्पष्ट हो सकते हैं इत्यादि विषय, नये ढंगसे, तीस प्रकारके पत्र लिखकर, स्पष्ट किये गये हैं। अन्तमें कानूनी कागजातके भी कुछ नमूने हैं। पुस्तक विद्यार्थियों तथा देहाती शिक्षकोंके कामकी है।

६—हिन्दी-पद्य-रचना

लेखक, प० रामनरेश त्रिपाठी; प्रकाशक, हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग; पृष्ठसंख्या १०६; मूल्य ॥)।

कवियोंके लिये पिङ्गल-सूत्रका ज्ञान परमावश्यक है। गणवृत्तमें या वर्णवृत्तमें केवल लघु-गुरुका ही ज्ञान पर्याप्त नहीं हो सकता, उनके लिये यति-गति आदिका भी ज्ञान होना चाहिये। उसी प्रकार केवल अलङ्कार-ज्ञान भी पूर्णता धारण नहीं करता; वह रीति-रस-दोष-गुण आदिके ज्ञानका भी मुखापेक्षी है। त्रिपाठीजीने थोड़ा-थोड़ा प्रकाश सब विषयोंपर डाला है। अलङ्कारको अपेक्षाकृत अधिक बताया है। छन्दोंका चुनाव अच्छा है, न अधिक है, न संक्षिप्त। लक्षण गद्यमें है। इससे विद्यार्थियोंको, स्मरण रखनेमें, कठिनता हो सकती है। पुरानी परिपाटीके अनुसार बहुतसे असामयिक विषय भी हैं, जैसे प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट इत्यादि। हाँ, संख्या-सूचक शब्द, वर्णन, उपमा और नख-शिख-वाला अंश विद्यार्थियोंके लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

७—मण्डन मिश्र

लेखक, प० कमलनारायण झा "कमलेश"; प्रकाशक, पुस्तक-भण्डार, लहेरियासराय; पृष्ठसंख्या ३७; मूल्य ।)।

इसका सारा मसाला "शङ्कर-दिग्विजय"से लिया गया है। आरम्भमें बाबू अच्युतानन्द दत्तकी एक छोटी-सी भूमिका है, जिसमें शङ्कर-मण्डनके स्थान, काल आदिका निर्णय है। लेखकने भी मण्डन मिश्रका, उभयभारतीका तथा शङ्कराचार्यका कुछ पौराणिक परिचय दिया है। शङ्कर-मण्डनके कुछ तर्कोंका प्रश्नोत्तर-रूपमें संकलन भी है। अन्तमें उभयभारती और शङ्करके शास्त्रार्थकी कुछ चर्चा है।

—साहित्याचार्य "मग"

× × × ×

८—भक्तिलहरी

निर्माता, प० ईश्वरीदत्त दौर्गादत्ति शास्त्री एम० ए०, एम० ओ० एल०; प्रकाशक, पुस्तकभण्डार, लहेरियासराय; पृष्ठसंख्या २६; आरम्भमें एच० एच० श्रीमन्नरेन्द्र शाह बहादुर सी० आई० ई०, शासक, टेहरी गढ़वाल स्टेटका एक सादा चित्र।

पण्डितराज जगन्नाथकी "गंगालहरी" को आदर्श मान कर "भक्तिलहरी"की रचना की गयी है। शिखरिणी वृत्तमें २७ श्लोक संस्कृतके हैं और सब श्लोकोंका भावानुवाद भी हिन्दीमें है, उसी छन्दमें। सरल अंग्रेजी अनुवाद है तथा कठिन पद्यांशोंकी संस्कृत-टिप्पनी भी।

पद्य सरस, कोमल और अनुप्रासालंकारसे विभूषित हैं। भावोंकी उड़ान बड़ी ऊँची है। देवता-विषयक रति—भाव—प्रधान है। पुत्ररूपसे जगदम्बिकाकी स्तुति है। कुछ पद्य तो बड़े ही सुन्दर उतरे हैं। दूसरे पद्यकी उत्तमताका निरीक्षण कीजिये—

"गिरीशात् सम्भूता गिरिशपरिणीता गिरिगुरौ—
वसन्ती चिन्वाना गिरिचरगिरीन्द्रैः परिचयम् ।
कठोरेशी जाता जगति जननि त्वं मम यतः
किशोरस्याक्रन्दं करुणमपि कर्णे न कुरुषे ॥"

पुत्र माताको उलहना देता है कि, मैं विपत्तिमें पड़ा हूँ रो रहा हूँ; फिर भी मेरी रुलाई तेरे कानोंतक नहीं पहुँच रही है। इतना संगदिल तुम्हारा क्यों है? मैं जानता हूँ कि, तेरा पत्थरपर ही जन्म हुआ है, पत्थरपर सोनेवालेके साथ ही ब्याह हुआ है, पत्थरपर ही रहती है और परिचय भी पहाड़ियोंसे ही है; इसीलिये क्या हृदय भी पत्थर-सा कठोर हो गया है, जो मेरी रुलाईसे भी नहीं पसीजता!

तेरहवें पद्यका भी भाव बड़ा मनोहर है। भक्त कवि कहते हैं कि, मैं पापके समुद्रमें मनमाना तैर रहा हूँ; पर क्या मजाल कि, मुझे यमराजका भय हो। वे करेंगे क्या! मेरे पापका लेखा उनसे लगेगा ही नहीं, जो दण्ड मेरे लिये तजवीज करें। झख मारकर वे तेरे ही पास मुझे विचारार्थ भेज देंगे। तब डर क्या रहेगा? तू तो मेरी अपनी ही है।

इसी प्रकार सब पद्योंके भाव भक्ति-भावमें सराबोर हैं। पुस्तक भावुकोंके लिये एक बार अवश्य पठनीय है। छन्दोभङ्गके भयसे हिन्दी-पद्योंमें कुछ त्रुटियाँ रह गयी हैं। आशा है, अगले संस्करणमें उनका संशोधन हो जायगा।

—गौरीनाथ झा (सम्पादक, "गंगा")

पागल?

"क्यों हो रहे तुम्हारे चंचल
दोनो आर्द्र दृगञ्चल?"
"सुखा रही है" कहा "वेदना—
अपना भीगा अञ्चल!!"
आँखोंमें हँसी छिपाकर
वे बोले—"तू पागल है!"
मैंने पूछा—"हृदयहीन!
ढूँढा भी अन्तस्तल है?"

—श्रीमद्भागवतप्रसाद वर्मा

सामयिक साहित्य

१ ब्राजिलमें साँपोंका खेत

"ब्राजिलमें साओ-पोलो नामका एक शहर है। उस शहरके एक उपनगरमें एक खेत है। खेत "साँपोंका खेत" के नामसे मशहूर है। उसमें हजारोंकी संख्यामें साँप रहते हैं।

"साँपोंका खेत" किसी फायदेके लिये नहीं बनाया गया है, बल्कि उस खेतमें साओपोलो स्टेटके साँपोंको ला-लाकर जमा किया जाता है—अर्थात् उक्त स्टेटको साँपोंसे खाली किया जा रहा है। साओपोलो स्टेटमें प्रतिवर्ष २००० आदमी साँपोंके काटनेसे मर जाते हैं!

जिस बागमें साँपोंको रखा जाता है, उसके चारो तरफ ३ फीट ऊँची दीवार है। यदि कोई व्यक्ति दीवारपरसे अन्दर दृष्टि डाले, तो उसे मधु-मक्खियोंके छत्तोंकी तरह छोटे-छोटे घोंसलेमें नजर आयँगे। उन घोंसलोंमें ऐसे-ऐसे साँप रहते हैं, जिनका काटा पानी भी नहीं माँगता!

जो प्रोफेसर उक्त "साँपोंके खेत"में काम करते हैं, वे साँपोंसे जहर उगलवाते हैं, जिससे दवाइयाँ बनायी जाती हैं!

साँपोंसे जहर उगलवाना बड़ा होशियारी और योग्यता-का काम है। प्रोफेसर लोग हाथमें ऐसी छड़ी लेते हैं, जिसके एक सिरेपर हुक लगा हुआ होता है। उस हुकसे साँपका मुँह पकड़ लिया जाता है। साँप झल्लाकर हुकपर फन मारता है और दाँत पीसता है। इस प्रकार साँपका जहर निकल आता है। नौकर प्याला हाथमें लिये हुए प्रोफेसरोंके साथ रहते हैं। जब जहर गिरने लगता है, तब वे उसे प्यालेमें ले लेते हैं!

स्टेटके किसान साँपोंको पकड़कर अपनी मर्जीसे खेतमें छोड़ जाते हैं। लगभग १२००० साँप प्रतिवर्ष खेतमें आ जाते हैं! जो किसान ४ साँप लाकर देता है, उसे जहरीले जानवरोंके काटनेकी दवाका एक डिब्बा मुफ्त दिया जाता है।"

—"भारत"

× × ×

२ चीनी डाकू

"दुनियामें चीन भी एक वैसा ही रहस्य-पूर्ण देश है, जैसा कि, अफ्रीका। चीनके सम्बन्धमें जिन लोगों-की जानकारी केवल अखबारोंके पढ़नेपर ही निर्भर है, वे समझते हैं कि, चीनमें नेशनल गवर्नमेंट है, जो सारे देशमें शान्ति स्थापित किये हुए है और लोग आरामके साथ जीवन व्यतीत करते हैं। लेकिन वास्तवमें चीनकी असली वर्तमान अवस्था इससे बिलकुल भिन्न है। चीनके एक बड़े हिस्सेमें इस समय डाकुओंका दौर-दौरा है। नेशनल गवर्नमेंट उतनी शक्तिशाली नहीं है, जितने कि, ये डाकू। देशको इन डाकुओंसे साफ करनेकी जो कोशिशें हकूमत कर रही है, वे अपर्याप्त हैं। डाकू सर-कारकी कोशिशोंको असफल बनानेका प्रयत्न कर रहे हैं। फलतः सारे देशमें एक प्रकारका गृह-युद्ध-सा छिड़ा हुआ है।

"डाकुओंके बड़े-सुव्यवस्थित गिरोह हैं। इनकी अपनी हुकूमतें हैं, अपनी अदालतें हैं और अपने बादशाह हैं। इन्हीं बादशाहोंके हुक्मसे डाकुओंने समस्त देशमें लूट-मारका बाजार गर्म किया है। इन डाकुओंकी सरगर्मियाँने न केवल हकूमतके लिये ही—बल्कि सर्वसाधारणके लिये भी वबाल जान हो रही हैं। इन डाकुओंको नष्ट करनेके लिये चीनी हुकूमतने कोई कसर उठा नहीं रखी। हुकूमतके कानूनके अनुसार जो आदमी पहली बार डाका डालनेके अपराधमें गिरफ्तार किया जाता है, उसके हाथ और पाँव काट दिये जाते हैं और आदी डाकूको जनताके सामने फाँसीपर लटका दिया जाता है! लेकिन इतनी सख्त सजाके होते हुए भी इस वक्त चीनमें डाकुओंकी संख्या २० लाखसे कम नहीं है!

"उत्तरी-पश्चिमी चीनमें डाकूका काम भी एक पेशा समझा जाता है और छोटे-छोटे लड़कोंको बाल्यकालसे ही इस पेशेके लिये तैयार किया जाता है। उन्हें आरम्भसे घोड़ेकी सवारी करना, यात्रीको देखकर उसके धनका अन्दाजा लगा लेना, लूटना, चोरी करना, हत्या करना आदि सब कुछ सिखा दिया जाता है!!

"चीनका एक प्रान्त मूनेन है। इसके मशहूर शहर "ताई"में चार वर्षतक डाकुओंके सरदार चांग-लियाका राज्य रहा। इसी प्रकार चीनके अन्य बड़े शहरोंमें भी डाकुओंकी धाक जमी हुई है; और, धनिक लोग पार्श्वरक्षकोंके विना घरोंसे बाहर नहीं निकलते; क्योंकि उन्हें डर रहता है कि, कहीं डाकू उन्हें उठाकर न ले जायँ। उक्त डाकुओंमें अधिक संख्या बरखास्तशुदा सिपाहियोंकी है और इनके कमांडर एक भूतपूर्व फौजी जनरल हैं। यह लोग डाकू इसलिये बन गये हैं कि, वे मजदूरी करके रोटी कमानेकी अपेक्षा डाके डालकर आनन्द उठाना अधिक सरल समझते हैं।

"यह तो रही पृथ्वीके डाकुओंकी कारिस्तानियाँ; किन्तु सामुद्रिक डाकुओंकी कारिस्तानियाँ भी इनसे कम नहीं हैं। जितना अधिक अत्याचार इन लोगोंने चीनी समुद्रमें मचा रखा है, उतना शायद ही और किसी जगह हो। चीनके तटका कोई भी भाग ऐसा नहीं, जहाँ ये लोग मौजद न हों। बहुधा ये लोग किसी अच्छेसे जहाजपर, जिसपर बहुत-सा कीमती माल भरा हुआ हो, मुसाफिर बनकर सवार हो जाते हैं। समुद्रमें पहुँचकर ये लोग जहाजके कप्तान और अफसरोंपर हमलाकर उनको काबूमें कर लेते हैं। फिर ये लोग जहाजको किसी दूर-स्थित टापूपर ले जाते हैं और वहाँ जहाजका तमाम सामान खाली करके जहाजको समुद्रमें छोड़ देते हैं। इन समुद्री डाकुओंका एक सरदार चान-पान है। इसके और कई नाम हैं। इसकी उम्र करीब ५० सालकी होगी; लेकिन इस उम्रमें भी यह अति बलवान् है। इसने समुद्री डाकुओंका एक बड़ा गिरोह बनाया है, जो चीनके तटपर १०० मीलतक राज्य करता है; और, हरएक जहाजसे, चाहे वह चीनी हो या विदेशी, टैक्स वसूल करता है। इस गरोहके मेम्बरोंकी संख्या ५-६ हजार है!

"चान-पानके जासूस चीनके हर एक बन्दरगाहपर रहते हैं और अमुक जहाजमें क्या-क्या माल भरा हुआ है, इस बातकी जरा-जरा-सी खबर चान-पानको मिलती रहती है।

"डाकुओंकी अपनी अदालत भी बड़ी विचित्र है, जहाँ उन डाकुओंको सजा दी जाती है, जो अपने गिरोहके कानूनोंकी अवहेलना करते हैं। इस अदा-

लतका प्रेसिडेंट एक डाकू है, जिसने किसी समय अँग्रेजी कानूनका अध्ययन किया था।"

—"अर्जुन"

❀ ❀ ❀

३ समुद्रके गर्भके दृश्य

"अमेरिकाके वैज्ञानिक डाक्टर विलियम बीबने बारमुडा द्वीपके निकटवर्ती समुद्रके नीचे, प्रायः आध मील, पैठकर बेतारके तार द्वारा चारो तरफ जो संवाद भेजा है, उससे न्यूयार्कवाले बड़े विस्मयमें पड़ गये हैं। अबतक समुद्रमें इतना नीचे और कोई नहीं पहुँच सका था। डाक्टर बीब समुद्रमें पैठकर निविड़-अन्धकार-वेष्टित पाताल-राज्यमें जो अद्भुत तथा विस्मय-कारक दृश्य देख सके हैं, उसका वर्णन करते हुए वह सागरके गम्भीरतम प्रदेशमें पहुँच गये हैं। उनके साथमें सिर्फ उनके एक साथी हैं, जो अमेरिकाके जादूघरके प्राकृतिक इतिहासके प्रोफेसर और 'वेथास्कायर' नामक यन्त्रके आविष्कारक हैं। यह यन्त्र साढ़े चार फीट का, सवा इञ्च मोटे लोहेका, बना हुआ है। इसमें तीन छेद हैं। इसमें भीतर बैठकर बाहरकी चीजें इन छिद्रों द्वारा अच्छी तरह देखी जा सकती हैं। यह लौहनिर्मित गोलक इस तरहका बना हुआ है कि, समुद्रके नीचेका जल-प्रवाह सहजमें ही उसे नष्ट नहीं कर सकता। इस गोलकमें चालीस गैलन ऑक्सिजन लेकर डाक्टर बीब और उनके साथी समुद्र-तलमें उतरे हैं। जलके भीतर वह प्रायः दो घण्टेतक ठहरे थे। पन्द्रह सौ फीट नीचे जाकर उन्होंने कहा—"मनुष्य-हीन एक नयी दुनियामें आ पहुँचा हूँ!"

"सत्रह सौ फीट नीचे जाकर उन्होंने कई प्रकारकी मछलियाँ देखीं, जिनके शरीरसे आलोक-रश्मियाँ प्रस्फुटित हो रही थीं। वह 'वेथास्कायर'की तरफ मुख करके दौड़ती थीं! उनका रंग नीला और पीला था। उन्नीस सौ फीट नीचे जाकर डाक्टर बीबने कहा—"मैं एक अद्भुत प्रकाशके राज्यमें आ पहुँचा हूँ।" दो हजार फीट नीचे जाकर उन्होंने, 'वेथस्कायर'की गति कम करके, चारो तरफ जो जीव-जन्तु प्रकाशमें घूम रहे थे, उनका फोटो लेना आरम्भ किया। इस स्थानका वर्णन करते हुए उन्होंने कहा है कि, 'यहाँका समुद्र ठीक असंख्य तारोंसे संयुक्त अमावास्याके आकाशकी तरह है!' सबसे बड़ी मछलियाँ, जो उन्हें दीख पड़ीं, वह प्रायः छः फीट लम्बी होंगी। इसके अतिरिक्त और भी कई अद्भुत जीव-जन्तु उन्होंने देखे हैं। इसके पहले किसीने इसकी कल्पना भी नहीं की थी। इसके फोटो और प्लेट तैयार हो जानेपर संसारके मनुष्य उन्हें देखकर विस्मित हो जायँगे। सबसे नीचे अर्थात् बाईस सौ फीट नीचे समुद्र-तलमें जानेपर ऊपर पाँच सौ टनका बोझ पड़ गया! 'वेथास्कायर'के भीतरका उत्ताप उस समय पचास डिगरी था। डाक्टर बीब गत १९३० सालमें प्रायः पौन मील समुद्रके नीचे जानेमें समर्थ हुए थे। समुद्रके ऊपर तैरते हुए जहाजके साथ 'वेथास्कायर'का टेलिफोनके साथ संयोग था। उसीकी सहायतासे डाक्टर बीब अपने सेक्रेटरीके साथ हर एक क्षण बातचीत करते थे। समुद्रके नीचे उनके लिये दो घण्टेके बीच ४० गैलन ऑक्सिजन खर्च हो गया था!"

—"श्रीकृष्ण"

❀ ❀ ❀

४ अफ्रीकामें लड़कियोंके दाम घटे

"संसारव्यापी आर्थिक संकटके कारण अफ्रीकाके मूल निवासी बड़े दुःखी हैं। अफ्रीकामें लड़कियाँ बेची जाती हैं। खबर है कि, स्त्रियोंका भाव करीब ६० फीसदी घट गया है। पहले जिस लड़कीके ५०-५० पौण्ड मिलते थे, वह अब १५-१६ पौण्डमें मिल जाती है। साधारण लड़कियाँ तो पाँच पौण्डमें भी मिल जाती हैं। अबतक जिस आदमीके लड़कियाँ अधिक होती थीं, वह धनवान् समझा जाता था; पर इस आर्थिक संकटके कारण वह बात नहीं रही। इसका कारण यह

है कि, लड़कीके बदलेमें अब भी गाय-बैल ही मिलते हैं और इनका मूल्य दिनों दिन घट रहा है।

५ दाढ़ीवाली लड़की

"कहते हैं, इंगलैण्डमें एक लड़की १६ वर्षकी आयुतक पूर्ण रूपसे स्त्री थी; पर उसके बाद उसे ज्ञात हुआ कि, मैं पुरुष बन रही हूँ। उसके शरीरका गठन बदल गया। हाथ-पैर, रंग-पुट्ठे, सभी पुरुषोंके-से हो गये। उसका रूप भी पुरुषोंका-सा हो गया। यहाँतक कि, उसके घनी दाढ़ी निकल आयी। लड़की इस परिवर्तनसे बड़ी लज्जित और दुःखी हुई। वह नित्य दाढ़ी बनाकर चुपचाप सबसे दूर रहा करती। २२ वर्षकी उम्रमें डाक्टर ब्रास्टरने उस लड़कीका आपरेशन किया और एक गाँठ निकाल दी। उसके बाद वह फिर पूर्ववत् लड़की हो गयी और उसकी घनी दाढ़ी भी आप-से-आप मिट गयी।

६ योगी या जलजीव

"ट्रावनकोरके करुनापल्ली नामक स्थानमें एक विचित्र योगी है, जो दिन-रात जलमें तैरा करता है। कुछ लोगोंने उसे डूबता हुआ जानकर एक बार बाहर निकाला। वह काँपने लगा और लोगोंसे जलमें छोड़ देनेका आग्रह किया। लोगोंने कुछ खिला-कर उसे जलमें सुला दिया। उसने पालथी मार ली और तैरता रहा। कुछ समय पश्चात् उसे पुलिस पकड़ने गयी। इसपर उस योगीने कहा कि, वह २० वर्षसे इसी प्रकार जलमें सोता, बैठता और तैरता रहा है। केवल भोजनार्थ उसे जलसे बाहर आना पड़ता है।

७ संसारमें आदमियोंकी बाढ़

"संसारकी आबादी २,०१,२०,००,००० है। राष्ट्रसंघने सभी देशोंके आँकड़ोंका पता लगाकर बतलाया है कि, संसारकी आबादी प्रति वर्ष २ करोड़ बढ़ती जा रही है।

८ आकाशमें किला बनेगा

"जर्मनीके एक वैज्ञानिकने एक पत्थरका आविष्कार किया है, जो सारी दुनियाको आश्चर्यमें डालनेवाला है। इस पत्थरमें सबसे बड़ी विशेषता यह है कि, चाहे जितनी ऊँचाईपर इसे ले जाकर छोड़ दीजिये, वहीं पड़ा रह जाता है। तेज हवाके बहने पर भी टससेमस नहीं होता। इस पत्थरकी परीक्षा करनेके लिये उस दिन कितने ही वैज्ञानिक एकत्र हुए और हवाई जहाज द्वारा आकाशमें उड़े। प्रायः दो मीलकी ऊँचाईपर कई पत्थर छोड़ दिये गये और वहीं पड़े रह गये। अब वे वैज्ञानिक इसी प्रकारके पत्थरोंसे आकाशमें किला बनानेका स्वप्न देख रहे हैं। उनका दावा है कि, इन पत्थरोंका बना हुआ किला भीषण आँधी और तूफानमें भी नहीं हिले-डुलेगा। यदि कहीं ऐसा किला जर्मनीके वैज्ञानिकोंने तैयार कर लिया, तो विज्ञान-संसारमें हलचल तो मच ही जायगी, "हवाई किले"की कहावत भी झूठी हो जायगी। विज्ञान जो न करे, थोड़ा है !!

९ पाँच वर्षके बच्चेका अपूर्व साहस

"भारतमें बच्चोंको साहसी और वीर न बनाकर जरा-जरासी बातसे डरना सिखाया जाता है। छोटे क्या बड़े-बड़े लड़कोंको भी घरसे बाहर अकेला नहीं जाने दिया जाता; किन्तु अन्य देशोंमें यह बात नहीं। सिडने (आस्ट्रेलिया) में होने वाली कृषिप्रदर्शिनी देखनेके लिये टापी उफी नामक पाँच वर्षका बालक भी गया था। घर लौटते समय उसने छः सौ मीलकी यात्रा एक खच्चरपर की। जिस समय इतनी लम्बी यात्रा सकुशल समाप्त कर वह घर पहुँचा, उसके गाँवके सभी लोगोंने उसका स्वागत किया। यही नहीं, बादको लार्ड मेयरने उसे टाउनहालमें मान-पत्र भी भेंट किया। ऐसे ही बालक आगे चलकर वाशिंगटन, नैपोलियन और नेल्सन बनते हैं।

१० संसारके सबसे बूढ़े मनुष्यकी मृत्यु

"हिन्दुस्तानके रहनेवालोंकी औसत उम्र करीव २३ साल होती है। परन्तु हिन्दुस्तानको ही यह गौरव भी प्राप्त है कि, संसारका सबसे वृद्ध मनुष्य भी यहीं रहता था। गत सप्ताह मद्रास प्रान्तमें श्रीमान् कुलन्दाई स्वामीका स्वर्गवास हो गया। आपका जन्म औरंगजेवके जमानेमें हुआ था! मरते समय आपकी उम्र २४५ सालकी कही जाती है!! आप कई बार मरणासन्न हुए और लोगोंको आपके जीवनसे निराशा हो गयी; पर बार-बार चंगे हो गये। इस दीर्घ जीवनका कारण स्वामी कुलन्दाईका सात्विक साधु जीवन था। आप सदा संयमपूर्वक रहते थे।

११ अमेरिकाकी स्त्रियाँ

"एक समय वह भी था, जब कि, स्त्रियोंका स्वतन्त्र व्यवसाय या नौकरी करना बहुत बुरा समझा जाता था; पर आज स्त्रियाँ हर तरहके पेशों और कारबारमें लग रही हैं। इस समय न्यूयार्क रियासतमें १० लाखसे अधिक स्त्रियाँ विविध प्रकारके कारबारमें नौकरी कर रही हैं। वहाँकी स्त्रियोंमेंसे आज कल ३,००० चित्रकार, १००० सम्पादक और रिपोर्टर, १००० चिकित्सक और १००० पादरी हैं। महिला वकीलोंकी संख्या सन् १९१० में जितनी थी, सन् १९२०में उससे दुगुनी हो गयी। लेन-देनका कारबार अबतक स्त्रियोंकी शक्तिसे बाहर समझा जाता था; पर न्यूयार्कमें इस समय ४०० महिलाएँ बैङ्कर और ६०० जायदादोंकी एजेण्ट हैं। इसके सिवा बहुत-सी महिलाएँ इंजीनियर, रासायनिक और नक्शानवीस आदिका कार्य करती हैं।

१२ कबूतर द्वारा समाचार-संग्रह

"शंघाईका एक चीनी समाचार-पत्र चीनकी राजधानी नानकिंगसे समाचार मँगानेका काम, विशेष अवसरोंपर, तारके बजाय कबूतरोंसे लेता है; क्योंकि इस प्रकार उसे समाचार जल्दी और निश्चित रूपसे मिल जाते हैं। ये कबूतर इंगलैंडसे मँगाये गये हैं। ये रेल द्वारा नानकिंग पहुँचाये जाते और वहाँ, विशेष घटना होनेपर, उसका समाचार लिखकर कागज इनकी टाँगोंमें बाँध दिये जाते हैं। ये दो घंटेके अन्दर शंघाईके दफ्तरमें पहुँच जाते हैं। तार मिलनेमें कभी-कभी घंटोंका समय लग जाता है और उनका मिलना बिलकुल निश्चित नहीं होता।"

—"प्रताप"

बिश्वास

संकटके सागरमें फँसकर जीवनकी यह तरी नितान्त।
विचलित, व्यथित, दुखित-सी पल-पल, बहती है होकर उद्भ्रान्त॥
निकट निराशा खड़ी-खड़ी भय दिखलाती है क्षण-क्षण हाय!
विकट वेग झंझाका लखकर विगत हुए हैं सर्व उपाय॥
किन्तु नहीं परवाह जरा है, जीवनधन जब हो अनुकूल!
पाकर दिव्य प्रसाद प्रणयका खिला रहेगा जीवन-फूल॥
प्रियतम प्रेम भरी आँखोंसे देखेगा जब मेरी ओर।
नश्वर तन अमरत्व लहेगा नाच उठेगा मानस मोर॥
दुर्गम पथ सब सुगम बनेगा पाकर करुणाका आभास।
उदधि तरेगी तरी सुगमतासे निर्मम हो—है विश्वास॥

प० गजानन्द चोटिया, शास्त्री

सम्पादकीय मन्तव्य

१—प्राचीनतम मुद्रित त्रिपिटक

२६ अक्टूबरकी, शंघाई (चीन)की, लिखी एक सज्जनको, कलकत्तेमें, एक ऐसा पत्र मिला है, जिससे एक अद्भुत बातका पता चलता है।

चीनमें जेनरल सी० एल० चू नामक सज्जन महान् योद्धा हैं। शत्रुओंके हाथोंसे, अनेक बार, चू महाशय अनन्त धनराशि, अग्राप्य निधि, चीन ले आये हैं, जिनसे चीनमें उनकी बड़ी प्रतिष्ठा हो गयी है। अबकी बार उन्होंने एक ऐसे त्रिपिटकका उद्धार किया है, जो त्रिपिटकका सबसे प्राचीन, लगभग सात सौ वर्षोंका, संस्करण है। इस ग्रन्थकी प्राप्तिसे यह बात अब एकदम सिद्ध हो गयी है कि, प्रेसका जन्मदाता ग्रीस नहीं, चीन ही है। सुई (सन् ५८७–६१८ तक) और टां (६१८–९०७ तक) नामके राजवंशोंके समयतक संस्कृत और पालीसे बौद्ध ग्रन्थोंका चीनी भाषामें हाथसे लिख-लिखकर अनुवाद किया जाता था। उस समय चीनी शिला-लिपियों द्वारा भी भगवान् बुद्धके उपदेशोंका प्रचार किया जाता था। सबसे पहले काठको काट-छेदकर चीनी अक्षर बनाये और छापे गये। उस समय सुं-राजवंश (९६० ई०)का राज्य था। ऐसे छः प्रकारके काठोंके ब्लाक थे और हर एक बौद्ध ग्रन्थ इन छहो ब्लाकोंमें छापा जाता था। यूनानवंश (१२८०) के राजत्व-कालमें, सारा त्रिपिटक, आठ वर्षोंमें छापा गया था। टिशा शहरमें छपा था; इसलिये उसका नाम "टिशा बौद्ध त्रिपिटक" रखा गया। यां यूयान नामकी एक बौद्ध भिक्षुणीने उस त्रिपिटकको मुद्रित कराया था। इसके लिये भिक्षुणीने घर-घर भीख माँगी थी। इन्हीं भिक्षुणीके परिश्रमका फल यह ग्रन्थ है। यह तीन भागोंमें विभक्त है।

विगत वर्ष चीनके जिस साँची सूबेमें भयंकर तूफान आया था, वहाँ चीन सरकारने एक बड़ी-सी स्वेच्छासेवक वाहिनीके साथ जेनरल सी० एल० चूको भेजा था। इस सूबेके सियान नामक शहरमें काई यूयान और लूं नामक मन्दिरोंमें चू साहबको उक्त भिक्षुणीका त्रिपिटक मिला। यह संस्करण ५६०० भागोंमें विभक्त है। प्रत्येक भागमें ५ पृष्ठ हैं, प्रत्येक पृष्ठमें ६ कालम हैं और प्रत्येक कालममें १७ चीनी अक्षर हैं। कौन भाग कब छपा, यह प्रत्येक भागमें छपा है। इस ग्रन्थ-रत्नके फोटो लेकर और उन फोटोग्राफोंसे मुद्रणकी व्यवस्था करनेके लिये अनेक बौद्ध विद्वानोंकी एक कमिटी बनी है। चीन भरके कुशलसे कुशल फोटोग्राफर फोटो ले रहे हैं। पहले इस ग्रन्थकी ५०० प्रतियाँ छापी जायँगी और इस कार्यमें कमसे कम तीन वर्षका समय लगेगा। लोग कहते हैं कि, संसारका सबसे प्राचीनतम मुद्रित ग्रन्थ यही त्रिपिटक है।

२—विज्ञान और मानवजीवन

रेल, एरोप्लेन, बेतारका तार आदि ही साधारण

लोगोंकी दृष्टिमें महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक आविष्कार हैं। बात भी एक प्रकारसे सही है परन्तु, लॉर्ड केल्विनका मत है कि, 'वैज्ञानिकोंका आश्चर्य-जनक आविष्कार नाविकोंके दिङ्निर्णय यन्त्र और प्रकृतिकी रहस्यमयी बातोंका पता लगाना है।'

वैज्ञानिकोंका एक और दल है, जो कहता है कि, मानवोंकी व्यवहारोपयोगिनी वस्तुओंका आविष्कार या निर्माण ही वैज्ञानिकोंके प्रधान कार्य हैं--जिस कार्यको करनेमें मनुष्यका पूरा वर्ष व्यतीत हो जाता है, वह कार्य एक ही दिनमें हो जाय और जहाँ एक पौधा उगता है, वहाँ दो पौधे उगें। व्यवसाय-वाणिज्यमें वैज्ञानिक प्रयोग करके लक्षपति, करोड़-पति होना ही इस दलका ध्येय है।

प्रथम दलवाले प्रकृतिके द्वारपरकी यवनिका हटा-हटाकर आनन्दित होते हैं। भारतमें भी आचार्य जगदीशचन्द्र वसु, अध्यापक रमण और अध्यापक मेघनाद साहा आदि इसी दलके हैं।

ढाका-विश्वविद्यालयके कनवोकेशनमें वक्तृता देते समय सर सी० वी० रमणने विज्ञानके सम्बन्धमें कहा था कि, 'साधारण मनुष्यके विचारसे विज्ञानकी वहीं सार्थकता है, जहाँतक वह लोकोपयोगिनी वस्तुका आविष्कार करे। किन्तु यह ठीक नहीं है। विज्ञान केवल मङ्गलजनक पदार्थोंकी ही सृष्टि नहीं करता; बल्कि अमङ्गलजनक पदार्थोंको भी सृष्टि नका गौण कार्य है। विज्ञानका मुख्य उद्देश जगत्‌के सम्बन्धमें नूतन ज्ञानको उन्मिषित करना, मानवोंकी उत्पत्ति और परिणतिके सम्बन्धमें यथार्थ तथ्यज्ञापन करना और प्रकृतिके सम्बन्धमें निर्णय करना है।'

रमणजीके मतसे विज्ञान नित्य-नूतन चिन्ता-सूत्रका आविष्कार करता है और नूतन कल्पना-राज्यकी सृष्टि करता है।

३—"गोरखापत्र"

विगत १६ अक्टूबरको उन हिज हाइनेस महाराजा युद्ध शमशेर जंग बहादुर राणा, के० सी० आई० ई०, ने नेपालके सिंहासनपर आरोहण किया है, जिनकी वीरताकी शतमुखसे प्रशंसा लार्ड किचनर जैसे वीरव्याघ्र भी करते थे और जिनके शौर्य-कौशलके सहारे गत महायुद्धमें "ब्रिटिश गोरखा रेजिमेंट"ने विश्वको चमत्कृत करनेवाली करामात दिखायी थी। आपके राज्याभिषेकके उपलक्ष्यमें नेपालसे निकलनेवाले "गोरखापत्र"ने अपना विशेषाङ्क निकाला है। इसमें अभिषेक-महोत्सवकी सारी बातें आ गयी हैं। महाराजकी शाही घोषणा, प्रजाके सुख-साधन की व्यवस्था, सरकारी कर्मचारियोंकी पदोन्नति, नगर-प्रद-क्षिणा आदिका पूरा विवरण है। आपकी घोषणाका सार मर्म दर्जनों भाषाओंमें छपा है। आपकी घोषणाका मर्म है—"प्रजाके सुख और स्वदेशकी समृद्धि बढ़ानेकी मेरी निरन्तर इच्छा रही है। उसकी पूर्तिके लिये मैं सदा तत्पर रहूँगा।" आपकी महत्त्व-पूर्ण घोषणाकी अन्यान्य उल्लेखनीय बातें ये हैं—

(१) राज्यभरके सब तरहके कैदियोंकी सजा छः महीने कम की जायगी।

(२) स्त्री कैदियोंको आगेसे हथकड़ी नहीं पहनायी जायगी।

(३) ५० वर्षसे अधिक उम्रके जिन लोगोंको काशीवास करनेकी इच्छा होगी, उन्हें खर्च दिया जायगा।

(४) कितने ही पुल और धर्मशालाएँ बनवायी जायँगी।

(५) वीरगंजसे नेपालतक जो टेलीफोन था, उसे पूर्वसे पश्चिमतक भी कर दिया जायगा।

(६) देशी कल-कारखानोंके अभ्युदयके लिये बिजलीका प्रबन्ध किया जायगा।

(७) नेपाली व्यापारियोंसे टैक्स नहीं लिया जायगा।

(८) यथायोग्य वेतन-वृद्धि की जायगी।

(९) कोटोंकी पक्की इमारतें बनेंगी।

(१०) कर्मचारियोंको पेन्शन मिलेगी।

इन घोषणाओंसे आपकी महत्ता और नेपाली प्रजाके अभ्युत्थानके आयोजनका अन्दाजा किया जा सकता है। ईश्वर करे, आपके प्रतापो साम्राज्यमें प्रजा फूले-फले।

४—भारतीय ग्रन्थमाला

हिन्दीके सुप्रसिद्ध लेखक बा० भगवानदास केलाने, १९१५ में, उक्त ग्रन्थ-मालाकी, वृन्दावनमें, स्थापना की थी। इसमें विशेषतः राजनीतिक और अर्थशास्त्रीय ग्रन्थोंके ही, सरल हिन्दीमें, सुमन गूँथे जाते हैं, जिनके कारण हिन्दीके आवश्यक अंगोंकी पूर्त्ति हो रही है। इस मालाके कई ग्रन्थोंपर पुरस्कार भी मिल चुका है। केलाजीके, ग्रन्थ-लेखनमें, सहायक हैं बा० जगनलाल गुप्त, प्रो० दयाशंकर दुबे एम० ए० और बा० शंकरसहाय सक्सेना एम० ए०। सामग्री-संकलनके लिये बीच-बीचमें केलाजी साहित्यिक यात्राएँ भी किया करते हैं। यद्यपि इस ग्रन्थ-मालाके कई धनकुबेर, १००) रु० देकर, संरक्षक बने हैं, फिर भी इसमें घाटा ही चला जा रहा है। यह ठीक ही है; क्योंकि हिन्दीमें किस्से-कहानियाँ और कविताएँ-कामशास्त्र पढ़नेवाले ही अधिक हैं—"विज्ञान", "भूगोल" और "भारतीय ग्रन्थमाला"का ग्राहक कौन बने? ऊलजुलूल साहित्य पढ़नेसे फुर्सत मिले, तब तो? हिन्दीभाषी समाजकी मनोवृत्तिका निदर्शन इससे अच्छा क्या होगा? ऐसी स्थितिमें जो सज्जन अपने श्रम और शक्तिका सद्व्यय करके राजनीति, अर्थशास्त्र, पुरातत्त्व, विज्ञान, भूगोल आदिके ग्रन्थोंका प्रकाशन कर रहे हैं, वे धन्य हैं! अब न सही, कुछ वर्षों बाद ही सही, हिन्दीकी उन्नति होनेपर, ऐसे ही सज्जन स्वनामधन्य समझे जायँगे। हम केलाजीके सत्साहसपर बधाई देते हैं और सुरुचिसम्पन्न जनतासे "भारतीय ग्रन्थमाला" (वृन्दावन) का स्थायी ग्राहक बनने का अनुरोध करते हैं।

५—पुरातत्त्वाङ्क

पुरातत्त्वाङ्कके लिये देश-विदेशसे कौन-कौन अमूल्य लेख आये हैं, कितना व्यय कर कितने प्रकारके ब्लाक बनवाये गये हैं, वह कितना बड़ा होगा, किसको मिल सकेगा, कब निकलेगा, उसमें क्या-क्या विलक्षणताएँ होंगी आदि-आदि बातें "गंगा"के दिसम्बरके अङ्कमें पढ़िये।

६—विद्यावारिधिजीकी जयन्ती

स्व० विद्यावारिधि प० ज्वालाप्रसाद मिश्र सनातनधर्मके उन उपदेशकोंमें थे, जिन्हें ईश्वरने वक्तृता और लेखन—दोनोंमें समान प्रतिभा दी थी। वेदसे लेकर तन्त्रतक, ऐसा कोई विषय नहीं, जिसकी आपने टीका न की हो। आपने तुलसीकृत रामायण और बिहारी सतसईकी भी टीका की थी। ये सब ग्रन्थ ही आपके यशःशरीरकी अमरताके निदर्शक हैं। वक्तृत्व-कलामें भी आपको गजबका कमाल हासिल था। आपका व्याख्यान सुनकर सैकड़ो नास्तिक आस्तिक बन गये, कितने ही उपदेशक तैयार हो गये। आपने न मालूम कितनी ही सनातनधर्म-सभाएँ स्थापित की थीं। आपका उपकार कभी भी सनातनी जनता नहीं भूल सकती। इसमें सन्देह नहीं कि, मिश्रजीकी अपरिमित शक्तिने सनातनधर्मका ऐसा कार्य न किया होता, तो सैकड़ो-हजारो सनातन धर्मसे विमुख हो गये होते या विधर्मी बन गये होते। ऐसे महापुरुषकी जो कार्तिक पूर्णिमाको सनातनी जनताने, धूम-धामसे, जयन्ती मनायी है, वह बहुत ठीक है। हम भी इस शुभ अवसरपर इन महापुरुषका अभिनन्दन करते महान् आनन्दका अनुभव करते हैं।

७—सर अली इमामका देहावसान

पटनेके प्रसिद्ध विद्वान् और विहारकी उन्नतिके पुरस्कर्त्ता सर अलीइमामका उस दिन राँचीमें देहावसान हो गया। आपके कुटुम्बकी विहारमें वही प्रतिष्ठा है, जो बंगालमें रवीन्द्रनाथ ठाकुरके परिवारकी। आपके परिवारपर लक्ष्मी और सरस्वती, दोनोंकी समान कृपा है। आपने भारतीय राष्ट्र और विशेषतः विहारके अभ्युदयके लिये घोर परिश्रम किया था। आपकी ऐसी परोपकार-वृत्ति और वक्तृत्व-शक्तिके कारण आपकी देश, विदेश, सब जगह बड़ी इज्जत थी। निजाम हैदराबादके प्रधान मंत्रीकी हैसियतसे आपने वहाँ अनेक लोकोपयोगी कार्य किये थे। सरकारी और गैरसरकारी—सभी महलोंमें आपकी बड़ी धाक थी। ऐसे प्रभावशाली मनुष्यके उठ जानेसे देशकी और विशेषतः विहारकी बड़ी भारी हानि हुई है। हम आपके अनुज मि० सैयद हसन इमाम और कुटुम्बसे समवेदना प्रकट करते और आपकी आत्माकी सद्गतिके लिये ईश्वरसे निवेदन करते हैं।

८—अँग्रेजीकी कुछ पत्र-पत्रिकाएँ

"गङ्गा" के कितने ही पाठक हमसे अँग्रेजी पत्र-पत्रिकाओंके पते बराबर पूछा करते हैं। उन्हें अलग-अलग जवाब देना पड़ता है। परन्तु इसमें समय और पैसेका निरर्थक व्यय होता है। इसलिये आज हम इकट्ठे ही अँग्रेजीकी कुछ चुनी हुई उपयोगिनी पत्र-पत्रिकाओंकी सूची प्रकाशित कर देते हैं। प्रत्येक पत्रका विषय और उपयोगिता उसके नाम और मूल्यसे विदित हो सकती है। ये सब पत्र-पत्रिकाएँ मेसर्स थैकर स्पिंक ऐण्ड कं०, कलकत्ता,के मार्फत प्राप्त की जा सकती हैं। इस कम्पनीके द्वारा संसार-भरकी समस्त पत्र-पत्रिकाएँ और सरकारी रिपोर्टें आदि भी प्राप्त की जा सकती हैं। थैकर स्पिंककी मार्फत इन पत्र-पत्रिकाओंको लेनेसे इनका वार्षिक मूल्य इस प्रकार पड़ेगा—

वार्षिक

एग्रिकल्चरल को-ऑपरेशन इयर बुक	७॥=)
ब्रिटिश जर्नल फोटोग्राफिक अलमनाक	२)
डेली मेल इयर बुक	॥)
गर्ल्स ओन ऐन्युअल	६।=)
इंडिया आफिस लिस्ट	२२॥)
केलीज वर्ल्ड डाइरेक्टरी आफ मर्चेन्ट्स	४८)
रेडियो इयर बुक	१=)
स्टेट्समैन्स इयर बुक	१५)
थैकर्स इंडियन डाइरेक्टरी	३२)
टाइम्स ऑफ इंडिया क्रिसमस ऐन्युअल	२)
टाइम्स ऑफ इंडिया इयर बुक	७॥)
ह्विटकर्स अलमनाक	४॥)
हू इज हू	३३॥)
इयर बुक जापानीज आर्ट	१२)
इयर बुक ऑफ दि सैंटिफिक एं० लर्नेड सोसायटीज	१३॥)
इयर बुक ऑफ दि यूनिवर्सिटीज ऑफ दि एम्पायर	९॥=)
एग्रिकल्चर ऐन्ड लाइफ स्टॉक इन इण्डिया	६)
ट्रॉपिकल डिजीज बुलेटिन्	१७)

त्रैमासिक

आर्मी क्वार्टर्ली	२२॥)
एशियाटिक रिव्यू	१५)
बेंगाल पास्ट ऐन्ड प्रेजेन्ट	२०)
ब्रिटिश एम्पायर रिव्यू	१॥।=)
ब्रिटिश जर्नल ऑफ सायकॉलॉजी	२७)
बुलेटिन ऑफ हायजिन	१७)
क्लैसिकल रिव्यू	३॥)

१३१४

एकानॉमिक जर्नल	२०)
इंडियन जर्नल ऑफ एकानॉमिक्स	१२)
इस्लामिक कल्चर	१०)
जर्नल ऑफ दि रॉयल आर्टिलरी	१८॥)
जर्नल ऑफ दि रॉयल एशियाटिक सोसायटी	३६)
लेडीज़ कैट्लग ऑफ फैशंस	१॥।=)
मैसूर एकानॉमिकल जर्नल	१२)
पोयट्री रिव्यू	६)
रूपम्	४०)
विश्वभारती	६)

मासिक

एकाउन्टेंट्स जर्नल	१४)
एडवर्टाइज़िंग वर्ल्ड	१६॥)
एयरफोर्स लिस्ट	१४)
एयर वेज	१०॥)
अमेरिकन जर्नल ऑफ सायंस	२८॥।=)
एनिमल वर्ल्ड	३)
एनाल्स एंड मेगज़िन ऑफ नेचरल हिस्ट्री	४४)
आर्किटेक्चरल रिव्यू	१८॥)
आर्मी लिस्ट मंथली	४६॥)
आसाम रिव्यू	६)
बिलियर्ड प्लेयर	३)
बुकमैन	१६॥
बुक्स ऑफ टु-डे एंड टु-मॉरो	३)
ब्रिटिश जर्नल ऑफ नर्सिंग	५॥।)
ब्रिटिश जर्नल ऑफ ऑफ्थेल्मॉलॉजी	३३)
ब्रिटिश ट्रेड रिव्यू	१०॥)
कलकत्ता रिव्यू	८॥)
चाइल्ड एजुकेशन	१०॥)
डान्सिंग टाइम्स	१२)

एम्पायर रिव्यू	१४॥)
इङ्गलिश रिव्यू	१५॥)
फोर्टनाइटली रिव्यू	३३॥)
ज्योग्रैफिकल जर्नल	२०)
गुड हेल्थ	३।=)
ग्रामोफोन	१०॥।=)
हिन्दू	१२)
हिन्दुस्तान रिव्यू	६)
होम फैशन्स	४)
इंडिया	४॥)
इंडियन एंटिक्वेरी	२०)
इंडियन ब्रैंडशॉ	१६॥)
इंडियन रिव्यू	७)
इग्लैंड पेंटर	२३॥)
इस्लामिक रिव्यू	८)
इंडस्ट्रियल केमिस्ट	६)
जर्नल ऑफ दि रॉयल एयरोनाटिकल सोसाइटी	१३॥)
जर्नल आफ आयुर्वेद	१०)
जर्नल आफ बोटनी	१५)
जर्नल आफ इंडियन बोटनिकल सोसाइटी	१६॥)
जर्नल आफ इंडियन हिस्ट्री	१०)
जर्नल आफ दि इन्स्टिट्यूट आफ बैंकर्स	११)
कल्पक	५)
कोडक मेगजिन	३)
लाइब्रेरी असिस्टेंट	६।=)
लाइब्रेरी वर्ल्ड	११)
मैटर्निटी एंड चाइल्ड वेल्फेयर	६।=)
मॉडर्न ऑस्ट्रॉलाजी	१०=)
मॉडर्न चर्चमैन	८॥=)
मॉडर्न रिव्यू	६)

मंथली म्युजिकल रेकार्ड ३॥)
मोटरशिप १२॥)
म्युजिकल टाइम्स ६)
नेचरलिस्ट १२)
नॉवेल मेगजिन ८।)
पेरेंट्स रिव्यू ७॥=)
फोनोग्राफिक मेगजिन ३॥)
फोटोग्राफिक जर्नल २६।)
फीजिकल कल्चर ११।)
पॉपुलर सायंस १३॥)
रिव्यू आफ रिव्यूज ६)
साइंटिफिक अमेरिकन २२॥)
सोशलिस्ट रिव्यू ३।=)
ट्रॉपिकल एग्रिकल्चरिस्ट १५)
वाइफ एंड होम ६।=)
वायलेंस मेगजिन ११॥=

पाक्षिक

जर्नल आफ दि रायल इंस्टिट्यूट आफ ब्रिटिश आर्किटेक्ट्स २३॥=)

साप्ताहिक

एकाउंटेंट २०॥)
ऐड्वान्स २५)
एड्वर्टाइजर वीकली १५)
एरोप्लेन २६।)
एलेंट्स जर्नल ६॥)
अमेचर वायलेंस १३=)
अमेरिकन एग्रिकल्चरिस्ट ६)
अमेरिकन मशीनिस्ट ४०)
ऐप्लर्स ६॥)
आर्किटेक्ट २०॥८)
आर्किटेक्ट्स जर्नल २१=)
आर्मी, नेवी एंड एयर फोर्स गजट २२॥)
एथ्लेटिक न्यूज ३॥)
वायस्कोप २४)
बॉक्सिंग ११॥=)
ब्वॉयज मेगजिन ८=)
बिल्डर ३१॥=)
कलकत्ता गज़ट ३७॥)
कलकत्ता म्युनिसिपल गज़ट ५)
कैपिटल ५४)
कार्पेन्टर एंड बिल्डर ६॥)
केमिकल एज २०)
सिनेमा २२॥)
कॉमर्स ३०
एडुकेशन ६॥)
एलेक्ट्रिकल रिव्यू ३२।)
इंजिनियर ४२)
फिशिंग गजट २२)
गार्डेनिंग ६॥)
गैस जर्नल ३१॥)
गैस वर्ल्ड २२॥)
गज़ट ऑफ इंडिया ५०)
ग्रैफिक ५०॥=)
ह्यूमरिस्ट १०॥=)
लंडन न्यूज़ ५३॥)
पुलिस न्यूज़ ६॥)
स्पोर्टिंग एंड ड्रामेटिक ५१=)
इंडियन प्लैंटर्स जर्नल एंड एग्रिकल्चरिस्ट २०)
इन्स्योरेंस रेकॉर्ड १०॥)
जर्नल ऑफ सोसायटी ऑफ आर्ट्स ४२।)

जज	२७)
जस्टिस ऑफ पीस	४८॥)
लेटर न्यूज	१३)
लॉ जर्नल	३६)
लाइफ	२६॥)
लाइफ ऑफ फेथ	१०)
लाइट	१६॥)
लिट्रेरी डाइजेस्ट	२२॥)
मद्रास मेल	११)
मद्रास वीक्ली नोट्स	१०)
महाबोधि	४)
मैंचेस्टर गार्जियन कॉमर्शियल	१३॥)
मांचेस्टर गार्जियन वीक्ली	६॥)
माइनिंग वर्ल्ड	२०॥)
मोटर	२६॥=)
मोटर न्यूज	६)
म्युनिसिपल जर्नल	१३)
नेचर	४२॥)
न्यू एज	२६)
न्यू लीडर	६॥)
न्यू स्टेट्समैन	२२॥)
न्यूज ऑफ दि वर्ल्ड	६॥)
नोट्स ऐण्ड क्वेरीज	२२॥)
नर्सिंग टाइम्स	६॥)
ऑबजर्वर	१३)
पीपुल	६॥)
पब्लिशर्स सर्कुलर	१६॥)
पब्लिशर्स वीक्ली	२७)
रेडियो टाइम्स	१२॥)
रेलवे गजट	३२॥)
रेलवे रिव्यू	६॥)

स्पेक्टेटर	
सण्डे टाइम्स	
टाइम्स लिटरेरी सप्लिमेंट	
ट्रिब्यून	
ट्रुथ	
वायर्लेस वर्ल्ड	

दैनिक

अमृत बाजार पत्रिका	२८)
बाम्बे क्रॉनिकल	२०)
सिविल ऐंड मिलिटरी गज़ट	२२॥=)
डेली क्रॉनिकल	३४)
डेली एक्सप्रेस	४८॥)
डेली ग्राफिक	४८॥)
डेली हेरल्ड	४८॥
डेली मेल	३४)
डेली मिरर	३४)
डेली न्यूज	३४)
डेली स्केच्	३४)
डेली टेलीग्राफ	७८)
फाइनान्शियल न्यूज	४८॥)
फाइनान्शियल टाइम्स	३४)
मद्रास मेल	४८॥)
मांचेस्टर गार्जियन	४८॥)
मॉर्निंग पोस्ट	३७)
स्टेट्समैन	२४)
स्वदेशमित्रम्	७८)
टाइम्स	२४)
टाइम्स ऑफ इंडिया	

लेख-मालिका

मधुयामिनी

गङ्गा

प्रवाह २, तरंग १२, पूर्ण तरंग २४ अग्रहायण, संवत् १९८९; दिसम्बर सन् १९३२

विभाति "गङ्गा"

आचार्य प० महावीरप्रसाद द्विवेदी

विशुद्धवर्णा सरसा मनोज्ञा
गुणातिरेकाद्बुधवन्दनीया ।
सन्दर्शनेनैव च मोददात्री
गंगेव "गंगा" नितरां विभाति ॥

भारत और ग्रीसके सम्बन्धकी सांस्कृतिक व्याख्या

पटना-विश्वविद्यालयका एक कला-कुमार

"पाश्चात्य देशोंकी सभ्यता ग्रीसवालोंकी संस्कृतिका ही विकसित रूप है; और, ऐसा कोई भू-भाग नहीं, जिसपर उसका प्रभाव न पड़ा हो।" ऐसा सोचते हुए यूरोपीय विद्वान् जब भारतमें ग्रीक-शासनकी क़ब्रपर खड़े होते हैं, तब स्वभावत: उनके मनमें एक प्रश्न उठता है—"सिकन्दरके युद्ध तथा मिनेन्दरके शासनका भारतपर क्या प्रभाव पड़ा? दो देशोंके पारस्परिक संघर्षका परिणाम क्या हुआ? क्या भारतकी संस्कृतिके विकासमें हमारा बहुत बड़ा प्रभाव सहायक नहीं हुआ?" आदि।

इतिहासके विद्यार्थियोंने इस प्रश्नके भिन्न-भिन्न उत्तर दिये हैं। जर्मन पुरातत्त्ववेत्ता हर नीसने "अपने" ग्रीसको विश्व-सभ्यताका स्रष्टा मानते हुए यह समझा कि, सिकन्दरके आक्रमणके बाद भारतीय सभ्यताकी जो वृद्धि हुई, उसका अंग-अंग ग्रीसका ऋणी है। मुख्तसरमें यह कि, आज हम भारतमें जो कुछ देख रहे हैं, वह ग्रीसका दिया हुआ है। परन्तु हैवेलने उनका पलड़ा ऊपर उठाकर कहा, "नहीं, आर्य्य-सभ्यता खुद ही विश्व-सभ्यताकी जननी है। अपने विकासके लिये इसे ग्रीसवालोंके प्रसादकी प्रतीक्षा करनेकी आवश्यकता न थी; बल्कि, उस समय भी भारतवर्ष विश्व-का धर्म्म-गुरु ही था।"

इतिहासकारोंकी इस रस्साकशीमें नीसकी बातोंपर विद्वानोंने बहुत ध्यान न दिया। हाँ, हैवेलके स्कूलमें कुमार स्वामी आदि कई प्रख्यात लोगोंने अपने नाम लिखाये। किन्तु ठीक रास्तेपर दोनों दलोंमेंसे कोई न था। नीसकी आँखोंपर विचार-संकोच और पक्षपातका चश्मा चढ़ा हुआ था और भावुक हैवेलको आचार्य भारतके सभ्यता-सूर्यकी प्रचण्ड रश्मियोंसे चकाचौंध-सी लग गयी थी। इन दो दलोंके कोलाहलको न सुनकर टार्न, स्पूनर, फर्गुसन और स्मिथ जैसे धीर, शान्त एवं वैज्ञानिक लेखक निष्पक्षताके मन्दिरमें सत्यका पता लगा रहे थे। उन्होंने अपने सिद्धान्त उद्घोषित भी किये हैं। मैं समझता हूँ, वे सत्यके बहुत बड़े अंशका पता लगानेमें समर्थ हुए हैं।

सिकन्दरकी चढ़ाई राजनीतिक तथा सांस्कृतिक, दोनों ही दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण थी। इसने पहली बार भारतकी महत्ताका द्वार यूरोपवालोंके लिये खोल दिया। यह सच है कि, भारतवासियोंके सामने सिकन्दरका कोई आदर्श समादृत न हो सका। लोगोंने उसकी चढ़ाईको एक साधारण घटनासे अधिक न समझा। यहाँतक कि, कोई बौद्ध, जैन अथवा हिन्दू लेखक इसका कुछ भी जिक्र नहीं करता है। पर, केवल इसी लिये हम उसकी चढ़ाईको साधारण समझ लें, यह उचित नहीं है। सिकन्दर भारतवर्षमें केवल उन्नीस महीने ही ठहर सका था। इस अत्यल्प अवधिमें उसके स्वप्नका चरितार्थ होना असम्भव था। उसके स्वप्न सत्य नहीं हो सके। किन्तु भारतसे लौट जानेपर भी भारत-का ग्रीसके साथ सम्पर्क बढ़ता ही गया और यही सम्पर्क भारतमें ग्रीसके आंशिक प्रभावके प्रवेशके लिये उत्तरदायी था। एक लेखकने सच कहा है—"*Though the obstacles thrown by hostile man and nature could stop the onward march of Macedonian phalanx, nothing could arrest*

the sure and world-wide progress of ideas and culture. This spread of Hellenic culture survived the transitory Empire (of Alexander and his successors) in Asia." प्रत्यक्ष तौरपर सिकन्दर-का भारतपर कोई प्रभाव न पड़ा। केवल लवण-पर्वतकी उपत्यकाके राजा सौभूतिके द्वारा सिकन्दरी सिक्कोंके अनुकरणको छोड़कर इसका कोई प्रमाण ही नहीं मिलता। तो भी उसकी चढ़ाई, बहुत अंशोंमें, सांस्कृतिक थी। उसके दलमें कोविद्, कवि, चित्रकार, निर्माता, दार्शनिक और विद्वान्—सभी थे। उसके लौट जानेपर भारतकी पश्चिमी चौखटपर ग्रीकोंने अपना राज्य स्थापित किया। इसके सिवा, मौर्यवंशके बाद, एंटियोकस, डिमिट्रियस, यूक्रेटाइड्स और मिनेन्दर आदि विजेताओंके चलते भारतका सम्बन्ध पश्चिमके साथ घना हो गया। इसका परिणाम वही हुआ, जो होना चाहिये था। दो सभ्यताओंके सम्पर्कसे बहुधा नये आन्दोलन खड़े हो जाते हैं। भारत और ग्रीसकी सभ्यताओंके संसर्गसे भी यही हुआ। एककी संस्कृतिने दूसरेकी संस्कृतिपर अपना प्रभाव डाला और जहाँ ग्रीसने भारतीय विचारोंके बीज पश्चिममें बोये, वहाँ *Conservative* भारत भी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका।

पहले मौर्य-कालको ही लीजिये। ग्रीसके प्रभावके प्रमाण हमें यहींसे मिलते हैं। स्मिथ साहबका कहना है कि, मौर्य भूपोंने विदेशियोंको दूर-किनारे ही रखा। तत्कालीन राजा विदेशी सिद्धान्तोंका प्रचार न तो अच्छा ही समझते थे और न इसके लिये उन्हें फुर्सत ही थी। स्मिथने लिखा है, "अशोक तो अपने सिद्धान्त एंटियोकस और टॉलमीको भी सुनानेको आतुर थे, वे ग्रीसदेशीय विचारोंका स्वागत कब कर सकते थे?" किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है। संस्कृति और विचार-धारा केवल आमन्त्रित होनेपर ही नहीं फैलतीं। दो देशोंमें किसी प्रकारका सघन सम्बन्ध होते ही संस्कृतिका प्रभाव पड़ने लगता है; और, सच पूछिये तो, मौर्यकालमें ग्रीसके प्रभावका एक पक्का प्रमाण भी मिलता है। जहाँतक हम जानते हैं, मौर्यकालके पहलेके मकान लकड़ियोंसे बनाये जाते थे। कमसे कम पथरीले महलोंके निर्माणका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। किन्तु मौर्यकालमें हम पत्थरोंके महल देखते हैं। हो सकता है कि, यह ग्रीसके संसर्गका ही फल हो। फर्गुसनका यह कहना शायद सच है कि, "*The sudden introduction of stone instead of wood, for the purpose of sculpture and architecture was the result of communication between the Empire of Alexander and Selukas and that of the Mauryan Dynasty.*"

मौर्यवंशके बाद कोई ढाई सौ वर्षों तक भारतवर्षकी पश्चिमी सीमापर ग्रीक जातिके राजा राज्य करते रहे। इतना ही नहीं, बल्कि लगभग ४०० ई० तक ग्रीससे व्यापारिक सम्बन्ध भी बना रहा। इसके बीच कई भारतीय शर्तें ग्रीसको गयीं और ग्रीसकी कई रीतियाँ भारतमें प्रचलित हुईं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि, ईसाई धर्मका जन्म एक ऐसे समयमें हुआ, जब अशोक जैसे भारतीय राजा, अधिकांश भूभागको, बौद्ध धर्मके पवित्र जलसे सींच चुके थे। यही कारण है कि, ईसाई धर्ममें हम बौद्ध धर्मका प्रत्यक्ष प्रभाव देखते हैं। ईसाइयोंका विश्वप्रेम बौद्ध धर्मकी मैत्रीका ही परिष्कृत रूप है। सामूहिक प्रार्थना (*Congregational Prayer*) की प्रथा बौद्धसंघोंसे उधार ली गयी है तथा पादरियोंकी लम्बी झूल (और यूरोपका *Academic gown* भी) बौद्धसंघों एवं विद्यालयोंके परिधानका अनुकरण मात्र

है। हैवेलने तो यहाँतक कह डाला है कि, जिस तरह ईसाई धर्म बौद्ध धर्मका पुत्र है, उसी प्रकार इस्लाम भी ईसाई मिशनसे जनमा है। इस तरह हम देखते हैं कि, सारे संसारका धर्म भारतसे ही फैला है।

कहते हैं, जिस समय ग्रीक शासक भारतपर राज्य कर रहे थे, उस समय भारतमें ग्रीक भाषा समझी भी जाती थी। प्रमाणमें कहा जाता है कि, भारतमें प्रचलित तत्कालीन ग्रीक-मुद्राओंपर ग्रीक-भाषा मिलती है। यह भी निश्चित है कि, कुछ दिन आगे चलकर सिक्कोंके एक ओर भारतीय भाषाएँ भी रखी जाने लगी थीं। अतः इस आधारपर हमें यह माननेका कोई अधिकार नहीं है कि, भारतमें ग्रीक भाषाका प्रचार था। वस्तुतः एक ही सिक्केपर दो भाषाओंका प्रयोग (*Bilingual*) यह बतलाता है कि, ग्रीक भाषा या *Legend* लोगोंमें नहीं समझी जाती थी। अगर ऐसा होता, तो सिक्केकी दूसरी ओर भारतीय *Legend* को क्यों स्थान दिया जाता? हो सकता है कि, ग्रीक भाषाएँ उन्हें सीखनी पड़ती हों, जो दरबारमें कर्मचारी थे। वे अपने मास्टरकी *Voice* का अनुकरण करते होंगे; किन्तु जनसाधारणका इससे कोई तअल्लुक न था।

तो भी, कई दूसरी-दूसरी बातोंसे पता चलता है कि, ग्रीक आदर्शोंका अनुकरण भारतमें शुरू हो गया था। बेसनगरका शिलालेख इस बातका प्रमाण है कि, ग्रीक कारीगर इस कामके लिये भारतीय राजाओंके यहाँ रहने भी लगे थे। उस समय भारतीय और ग्रीक लोगोंमें वैभिन्यकी कटरता बहुत थोड़ी-सी रह गयी थी। हमारे पूर्वज सिकन्दर और एन्टियोकसको लुटेरे भले ही समझे हुए रहे हों; पर डिमिट्रियस तथा मिनेन्दर भारतीयोंके अधिक निकट खिँच आये थे। कहते हैं, इनमें पहला राजा (*Demetrius*) तो ब्राह्मण-धर्ममें दीक्षित हो गया था और दूसरेने बौद्धमतको ग्रहण कर लिया था। अवश्य ही उन्होंने जनताकी कृपा प्राप्त करनेको ऐसा किया होगा, पर इससे यह मालूम होता है कि, वे लोग भारतीय नहीं, तो अजनबी लुटेरे भी नहीं समझे जाते थे। भारतीयों और ग्रीकोंके इसी सघन सम्बन्धको देखते हुए यूरोपीय विद्वानोंको यह शंका होती है कि, हो-न-हो, ग्रीसने भारतीय सभ्यतापर अत्यधिक प्रभाव डाला है। कुछ लेखकोंको छोड़कर सभीने प्रायः अत्युक्तिसे काम लिया है। जो उठा, उसीने कह दिया कि, भारतीयोंके ज्योतिष, गणित, नाटक, धर्म, दर्शन, कला, सिक्का आदि सभीका विकास ग्रीक प्रभावकी छायामें हुआ है। यह शायद अनुचित है।

यह सम्भव है कि, भारतीय सिक्कोंका परिष्कार ग्रीक आदर्शोंपर हुआ हो; पर यह कहना अत्यन्त असत्य है कि, बात-बातमें भारतीयोंने ग्रीकोंका अनुकरण किया है। भारतीय कलाओंकी उन्नति अपनी राहपर हुई है। उसमें विदेशियोंका आदर्श थोड़ा सहायक हुआ हो, यह हो सकता है; पर उनका जन्म भारतमें हुआ है और उनकी विकास-रेखाएँ भी भारतीय हैं, इसमें सन्देह नहीं। सबसे पहले नाटकको ही लीजिये। जमानेसे हल्ला हो रहा है कि, संस्कृत-नाटकोंका विकास ग्रीक आदर्शपर हुआ है। किन्तु अरस्तूकी *Poetics* को पढ़ जानेपर यह धारणा बहुत कुछ निर्मूल हो जाती है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि, ग्रीक नाटकोंके समय और स्थानकी एकताका सख्त प्रतिबन्ध, संस्कृत-नाटकोंमें, नामको भी नहीं है। इसके सिवा ट्रेजेडी और कॉमेडीका प्रत्यक्ष विभाग हमारे नाटकोंमें है ही नहीं। हमारे आदर्शके अनुसार तो रामकथाको भी परिवर्तित कर नाटकको सुखान्त बनाना जरूरी समझा गया है (जैसे, उत्तररामचरित)। भारतीय कविता, गीतिकाव्य और महाकाव्यमें भी पाश्चात्य आदर्शोंकी छन्द, शैली शास्त्रके पहले, कभी नहीं थी। प्रायः भारतकी सभी कलाएँ

नाम पाकर अपने-अपने मार्गपर बढ़ती जा रही थीं। उन्हें ग्रीक आदर्शोंकी सहायताकी प्रतीक्षा न करनी थी। हाँ, ग्रीकोंकी देखादेखी उनके विकासकी गतिमें तेजी आ गयी होगी।

ग्रीक आदर्शोंका सबसे बड़ा प्रभाव भारतीय गृह-निर्माण तथा मूर्त्ति-निर्माणकी कलाओंमें देखनेको मिलता है। भारतीय कलाओंमें आध्यात्मिकताकी मात्रा सदा ही अधिक रही है। हमारे कारीगर शरीरकी सजीवतापर नहीं, उसके मांसल सुगठित सौन्दर्यपर नहीं, प्रत्युत अन्तः-सौन्दर्य एवं भाव-चित्रणपर ध्यान देनेके आदी रहे हैं। हिन्दू-चित्रोंका आदर्श वेदान्तके रहस्योंसे संयुक्त है। अजन्ता-के चित्र और आज दिन हिन्दू-कवि रवीन्द्रनाथकी ऊँघती-सी तस्वीरें हिन्दू-आदर्शके अनुकूल हैं। इन बातोंको याद रखते हुए जब हम सारनाथका सिंह-चित्र देखते हैं, तब हमें उसमें यूरोपीय आदर्शोंका प्रत्यक्ष रूपसे सम्मिश्रण दृष्टि-गोचर होता है। यदि मैं भूल नहीं रहा हूँ, तो कैम्ब्रिज हिस्ट्रीके लेखकने भी इस चित्रको ग्रीक आदर्शपर ही देखा है।

अन्तमें गान्धार-कलाका जिक्र करते हुए इस निबन्धको समाप्त किया जाता है। इस कलाके अध्ययनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि, यह उन सभी कलाओंसे भिन्न है, जिनका जन्म और विकास भारतमें हुआ है। इसका विकास ईस्वी सन्‌के १०० वर्ष पूर्व तथा १०० वर्ष पश्चात्‌तक हुआ है। इसे देखनेसे ऐसा मालूम होता है कि, कुशान राजाओंने विदेशी कारीगरोंको बुलाकर इन्हें बनवाया है। इसकी विशेषता यह है कि, इसमें बौद्धसिद्धान्त ग्रीक ढाँचोंमें प्रकट किये गये हैं।

लेकिन भारतीय कलाओंसे भिन्न होते हुए भी कई विद्वान् इसे अभारतीय नहीं मानते। डाक्टर कुमार स्वामी ऐसे ही लोगोंमें हैं। आपका कहना है कि, कलाओंमें हमें ढाँचों और बाह्य रूपोंको नहीं देखना चाहिये। वरन् उस स्वरूपकी अन्तर्निहित आत्मापर विचार करना उचित है। भारतमें भिन्नताएँ बहुत हैं; पर सारे भारतमें एक आत्मा-का राज्य है। दक्खिन और उत्तरके हिन्दुओंके (रीति-भेद होते हुए भी) भाव एक हैं। यही बात कलाओंमें भी लागू है। वे कहते हैं, "*Just as through all Indian schools of thought there runs like a golden thread the fundamental idealism of the Upanishads, so in all Indian arts there is a unity which underlies all variety.*" इसी सिद्धान्तपर यह कहा जा सकता है कि, गान्धार-कलाके रूप (विदेशी होते हुए भी) की आत्मा भारतीय है; और, इस तरह वह भी भारतीय कलाका ही एक अंग है। किन्तु मैं तो कहूँगा कि, गान्धार-कला ग्रीकोंके आदर्शकी ओर है।

मुक्तिवादकी परीक्षा

श्रीयुत रजनीकान्त शास्त्री बी० ए०, बी० एल०

चार्वाक (वृहस्पति)को छोड़कर अन्य सभी भारतीय दार्शनिकोंका मत है कि, जीवात्मा अपने शुभाशुभ कर्मोंका फल भोगनेके लिये बार-बार जन्म लिया करता है; और, यदि किसी एक जन्मका कर्म-फल उसी जन्ममें नहीं भोगा गया, तो उसे भोगनेके लिये जीवात्माको दूसरा जन्म धारण करना पड़ता है। इस जन्म-मरणके झंझटसे छुटकारा पा जानेका नाम मुक्ति है। इसी मुक्तिको कोई मोक्ष, कोई कैवल्य, कोई अपवर्ग तथा कोई निर्वाण नामसे अभिहित करते हैं। जीव, ईश्वर तथा प्रकृतिके सम्यक् ज्ञानको तत्त्वज्ञान कहते हैं। इस तत्त्वज्ञान-का उदय होनेपर जीवका कर्म-बन्धन छूट जाता है और वह मुक्त हो जाता है। इस लेखमें यह दिखलाया जायगा कि, यह मत केवल भ्रान्त भारतीय दार्शनिकोंकी कोरी कल्पना है। इसमें सार कुछ भी नहीं।

पहले तो इस विषयमें यह प्रश्न उठता है कि, सृष्टिके आदिमें जो मनुष्यादि प्राणी उत्पन्न हुए, उनका जन्म किस पूर्व जन्मके कर्मका फल था? क्योंकि सृष्टिसे पूर्व कोई प्राणी था ही नहीं, जो अपना कर्म-फल भोगनेके लिये, सृष्टि होने-के समय, जन्म-मरण-रूपी घोर संकटमें न्यायपूर्वक घसीट लाया जाय। अतः जन्म किसी कर्मके अधीन न होकर एक स्वतन्त्र वस्तु है। इसपर एक प्रतिवादी कहता है—

प्रतिवादी—वर्तमान सृष्टिके पहले भी सृष्टि थी और उस सृष्टिसे भी पूर्व सृष्टि थी अर्थात् सृष्टिपरम्परा अनादि है; जीवात्मा पूर्व-पूर्व सृष्टियोंका कर्म-फल पश्चात्-पश्चात् सृष्टियोंमें भोगा करता है। सारांश यह कि, जन्म-मरणकी परम्परा अनादि है।

सिद्धान्ती—यदि जन्म-मरणकी परम्परा अनादि है, तो वह अनन्त भी होगी; क्योंकि जो पदार्थ अनादि हैं, वे अनन्त भी होते हैं; जैसे, ईश्वर अनादि है, तो वह अनन्त भी है; प्रकृति अनादि है, तो वह अनन्त भी है; जीवात्मा अनादि है, तो वह अनन्त भी है; आकाश अनादि है, तो वह अनन्त भी है; काल अनादि है, तो वह अनन्त भी है; परमाणु अनादि है, तो वह अनन्त भी है इत्यादि। अतः जन्म-मरणकी परम्परा-को अनादि माननेपर उसे अनन्त भी मानना पड़ेगा, जिस दशामें जीवको कभी भी मुक्ति नहीं मिलेगी और तुम्हारे सभी योग, जप आदि मुक्तिके साधन केवल धोखेकी टट्टी सिद्ध होंगे।

प्र०—जन्म-मरणकी परम्परा उक्त नियमका अपवाद है अर्थात् यह परम्परा "प्रागभाव" न्यायसे अनादि होती हुई भी सान्त है; जैसे, घटकी उत्पत्तिसे पूर्व उसका अभाव जो अनादि था, उसके बनते ही सान्त (नष्ट) हो गया। इसी प्रकार उक्त परम्परा भी अनादि होती हुई घटाभाववत् एक-न-एक दिन सान्त होगी और जीवात्माको मुक्ति मिलेगी।

सि०—तो उक्त जन्म-मरण-परम्पराका जो अन्त है, वही मुक्तिका आदि हुआ; और, यदि मुक्ति सादि हुई, तो वह अवश्य सान्त होगी अर्थात् वह एक-न-एक दिन अवश्य जाती रहेगी; क्योंकि सृष्टिमें सर्वत्र यही नियम देखनेमें आता

है कि, आदिमान् पदार्थ अवश्य अनन्तवान् होता है; जैसे घट, पट आदि । जो जीव अपने निःशेष कर्मोंका उच्छेद होनेसे मुक्त हुआ था, उसे फिर भी इस दशामें, विना किसी पूर्व कर्मके ही, अकारण संसार-चक्रमें लौटकर दुःख-सुख भोगना पड़ेगा और तुम्हारे ऊपर वही आपत्ति आयगी, जिसे मैंने पहले कहा था कि, सृष्टिके आदिमें पूर्व कर्मोंके अभावमें ही मनुष्यादि प्राणियोंका जन्म हुआ था । अतः अन्तमें फिर वही बात सिद्ध हुई कि, प्राणियोंका जन्म पूर्व कर्मोंके अधीन न होकर एक स्वतंत्र वस्तु है ।

प्र०—जो पदार्थ सादि है, वह सान्त भी है । इस साधारण नियमका, संख्या-क्रमवत्, मुक्ति भी एक अपवाद है । अतः वह सादि होती हुई भी अनन्त (निरवधि) है । जैसे संख्या-क्रम १ से प्रारम्भ होकर अनन्त है, वैसे ही मुक्ति भी जन्म-मरणकी परम्पराके अवसानसे प्रारम्भ होकर अनन्त है । इसका कभी खातमा नहीं; यह निरवधि है ।

सि०—संख्याओंका प्रारम्भ १ से मानना तुम्हारी भयंकर भूल है । १ संख्या-क्रमका प्रारम्भ नहीं; बल्कि मध्य है, जिसके पूर्व $\frac{1}{2}, \frac{1}{3}, \frac{1}{4}, \frac{1}{5}$ आदि तथा पश्चात् २, ३, ४, ५ आदि संख्याएँ हैं । वस्तुतः संख्या-क्रम अनादि होनेसे ही अनन्त है । तुम्हारा यह उदाहरण सादि मुक्तिको निरवधि नहीं सिद्ध करता; और, मुक्तिके सावधि सिद्ध होनेपर फिर वही आपत्ति आ जाती है कि, जन्म स्वतन्त्र वस्तु है, जिसे तुम इन्कार करना चाहते हो ।

प्र०—गीतामें भगवान्ने कहा है—"यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम" अर्थात् जीव जहाँ जाकर फिर नहीं लौटता, वही मेरा स्थान है । छान्दोग्योपनिषद्में भी यही लिखा है—"न च पुनरावर्त्तते, न च पुनरावर्त्तते" अर्थात् फिर नहीं लौटता, फिर नहीं लौटता । इन प्रमाणोंसे सिद्ध है कि, मुक्त जीव फिर नहीं लौटता; अतः मुक्ति निरवधि है ।

सि०—ये केवल आप्त-वचन हैं, जो तर्ककी कसौटीपर विना खरे उतरे नहीं माने जा सकते । यह वचन अमुक आचार्यका है; अतः अवश्य माननीय है, यह हठ केवल नामके विद्वानोंका है । प्रत्येक वस्तुपर वक्ताका कुछ भी लिहाज़ न कर, स्वतन्त्र-रूपसे, विचार करना यथार्थ विद्वानोंका धर्म है; क्योंकि आप्त-वचन प्रायः अन्योन्य-विरोधी भी मिला करते हैं । एक आप्त-वचन कुछ कहता है, तो दूसरा ठीक उसके प्रतिकूल अपना राग अलापता है । अतः यदि गीता और छान्दोग्यके आधारपर मुक्तिको निरवधि मानते हो, तो मुण्डकोपनिषद्के आधारपर उसे सावधि क्यों नहीं मान लेते ? वह वचन यह है—

"ते ब्रह्मलोके ह परान्तकाले
परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे ।"

आर्य-समाजके प्रवर्तक स्वामी दयानन्दने मुण्डकके इस वचनका यों अर्थ किया है—"वे मुक्त जीव मुक्तिमें प्राप्त होके ब्रह्ममें आनन्दको तबतक भोगके महाकल्पके पश्चात् मुक्ति-सुखको छोड़के संसारमें आते हैं । इति ।"

स्वामीजीने मुक्तिको उक्त प्रमाणके द्वारा सावधि मानते हुए एक और भी विलक्षण आविष्कार कर अपने चेलोंके आगे रख दिया है । आपने मुक्ति-काल भी ठीक-ठीक निकालकर अपनी कीर्तिको अजर-अमर बना डाला है । आपके उर्वर मस्तिष्कसे निकला हुआ यह अश्रुतपूर्व आविष्कार मुक्तिका भोग-काल महाकल्प अर्थात् ब्रह्मा बाबाकी पूर्ण आयुके तुल्य बतलाता है बूढ़े बाबाकी आयु उनके अपने वर्षोंसे १०० वर्षोंकी होती है, जिसमें ५० वर्ष (प्रथम परार्द्ध) बीत गये तथा द्वितीय परार्द्धके श्वेत वाराह कल्पमें ६ मन्वन्तर निकल गये । वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तरकी २७ चौ युगियाँ भी चली गयीं; और, इस २८ वीं चौ युगीके कलियुगका प्रारम्भ हुए वर्तमान विक्रम-संवत् १९८९ में ५३३ वर्ष भी हो गये । आपकी मृत्यु वि० सं० १९४० कार्तिक कृष्ण ३० मंगलवारको हुई; अतः यदि आपको मुक्ति मिली होगी, तो उसका पूर्ण आनन्द तो दूर रहा, उसके आधेसे भी कम आपको नसीब हुआ ! आप बहुत घाटेमें रहे । यदि कहिये कि, यहाँ

महाकल्पसे केवल तत्तुल्य कालका अभिप्राय है, न कि, ब्रह्मा बाबाके जीवनकालका, तो अच्छी दिल्लगी हुई; क्योंकि इस दशामें स्वामीजीकी मुक्तिका खातमा ब्रह्माजीके "राम नाम सत्य" हो जानेपर होगा, जिस समय सर्वत्र महाप्रलय विद्यमान रहेगा और आगामी सृष्टिके होनेमें सुदीर्घ कालका विलम्ब रहेगा। न मालूम स्वामीजीकी पवित्र आत्मा तब-तक किस अवस्थामें पड़ी रहेगी। अवश्य ही वह राजा त्रिशंकुकी तरह मुक्ति और सृष्टिके बीचमें लटकती रहेगी; क्योंकि इधर मुक्ति भी हाथसे निकल गयी और उधर अभी सृष्टि भी नहीं हुई, जिसकी वह शरण ले। यदि कहिये कि, आगामी सृष्टि तक स्वामीजी मुक्तावस्थामें ही रहेंगे, तो ऐसा हो नहीं सकता; क्योंकि उन्हें मुक्ति-भोग-कालका एक्सटेंशन (*Extension*) पाने तथा ठेकेसे अधिक मौज उड़ानेका कोई हक़ नहीं। वस्तुतः जन्मान्तरवाद और मुक्ति-वाद केवल निर्मूल कल्पना है।

प्र०—यदि जन्मान्तरवादको नहीं माना जाय, तो जीवोंकी भिन्न-भिन्न प्रकारकी सुख-दुःख-व्यवस्था करनेवाला ईश्वर महा-अन्यायी हो जाय। अतः यही मानना ठीक है कि, जैसा हम पूर्व जन्ममें करते हैं, वैसा ही फल ईश्वर हमें इस जन्ममें देता है।

सि०—जन्मान्तरवाद और मुक्तिवादको माननेवाले तुमने कौन-सी वाह-वाही लूट ली? जिस कलङ्कसे तुम ईश्वरको बचाना चाहते हो, वह कलङ्क तो अन्ततः उसे लग ही जाता है। मुक्ति निरवधि सिद्ध नहीं होती; क्योंकि सभी आदिमान् पदार्थ अन्तवान् होते हैं; और, मुक्तिके सावधि होनेसे पूर्वोक्त नाना प्रकारकी अड़चनें उपस्थित हो जाती हैं; जैसे, मुक्त जीवोंका आगामी सृष्टि तक सन्दिग्धावस्थामें रहना, फिर बिना किसी अपराधके इस दुःखमय संसार-कुण्डमें ढकेल दिया जाना इत्यादि। क्या ईश्वरका यह घोर अन्याय नहीं है?

प्र०—यदि पूर्वजन्म और परजन्म नहीं हैं, तो संसारमें कोई सुखी, तो कोई दुखी; कोई राजा, तो कोई रंक; कोई विद्वान्, तो कोई मूर्ख क्यों देखा जा रहा है; और, फिर कोई क्यों अच्छा काम करे और बुरे कर्मसे क्यों बचे?

सि०—जीवोंकी भिन्न-भिन्न अवस्था सृष्टिकी केवल विचित्रता है। इसका यही स्वभाव है कि, इसमें एक-सी चीजें नहीं उत्पन्न होतीं। हमें अच्छे कामोंको करना और बुरे कामोंसे बचना इसलिये चाहिये कि, जिसमें सृष्टिके सभी प्राणी सुख-शान्ति-पूर्वक अपनी जीवन-यात्रा कर सकें। इसीमें सभीका कल्याण है और यही मानव-जीवनका वास्तविक ध्येय है।

प्र०— जन्मके पहले जीव कहाँ था और मरनेके बाद कहाँ चला जाता है?

सि०—विश्वमें दो ही तत्त्व हैं—१ चेतन और २ जड़। चेतन व्यापक और जड़ व्याप्य है। चेतनका विकार जीवात्मा और जड़का विकार यह भौतिक शरीर है। जिस प्रकार बिजली सर्वत्र व्यापती हुई भी विद्युद्यन्त्र (*Battery*) के द्वारा विक-सित, उद्बोधित तथा अभिव्यक्त होती है और उक्त यंत्रके टूट जानेपर वह कहीं चली नहीं जाती, बल्कि वहींपर, अपने मूल तत्त्वमें, लीन हो जाती है; न वह कहींसे आती है और न कहीं जाती है; उसी प्रकार शरीर-यंत्रके द्वारा सर्वव्यापक एक ही चेतन-तत्त्वके आंशिक विकास, उद्बोधित और अभिव्यक्त होते हैं। जैसे बिजली उद्बोधित होकर आकर्षण, विकर्षण, प्रकाशन, घूर्णन आदि क्रियाएँ करने लगती है, वैसे ही शरीरस्थ चेतन-तत्त्व उद्बोधित होकर नाना प्रकारकी शारीरिक तथा मानसिक क्रियाएँ करने लग जाता है; और, मृत्युके बाद पञ्च-भूतात्मक शरीरकी तरह जीवात्मा भी वहींपर अपने मूल तत्त्वमें लीन हो जाता है। न कहींसे आता है और न कहीं जाता है। उसकी व्यक्तिता, शरीरपर निर्भर होनेके कारण, शरीरके साथ ही नष्ट हो जाती है।

प्र०—यदि यह चेतन-तत्त्व सर्व-व्यापी है, तो काष्ठ, पाषाण आदिमें भी चेतन-क्रियाएँ क्यों नहीं दीखतीं ?

सि०—काष्ठादिके परमाणु चेतन-क्रियाओंको उद्‌बोधित करने योग्य अवस्थामें नहीं रहते। इसी प्रकार मृतक शरीरके परमाणु उस सुव्यवस्थित तथा सुसंगठित रूपमें नहीं रहते, जिसमें वे मृत्युके पूर्व थे। इसी कारण मृतक शरीरके द्वारा कोई चेतन-क्रिया नहीं हो सकती, यद्यपि चेतन-तत्त्व उसमें भी छन्न रूप (*Latent form*) से मौजूद है।

प्र०—हमें अपने कर्मोंका फल जन्मान्तरका अभाव माननेपर किस प्रकार मिलता है ?

सि०—राजा, समाज, प्रकृति और आत्माके द्वारा। राजा कारागार आदि द्वारा, समाज बहिष्कार आदि द्वारा, प्रकृति रोगादि द्वारा तथा आत्मा(*Conscience*) चित्तकी ग्लानि आदि द्वारा हमारे कर्मोंके फल-दाता हैं। अन्य कोई नहीं। इसके अतिरिक्त सुख-दुःखका होना विश्वकी विचित्रता भी है।

निहोरा

स्व० बा० दामोदरसहाय सिंह एल०टी०, "कविकिंकर"

मुझको कहना है, बहुत थोड़ा, सुनो ऐ साहब !
उसको गम्भीर जरा होके गुनो, ऐ साहब !
आप ही दीन व दुनियाके अकेले मालिक,
इससे मालिक हो मेरे आप ही, सुन लो, साहब !
हूँ सदा खोज रहा तुमको बहुत जन्मोंसे,
नाथ ! अब भी तो दया करके दरस दो, साहब !
हूँ मुसीबतमें पड़ा, एक नजर भर प्यारे !
देख लेने दो मुझे, तुम भी सुजस लो, साहब !
मैं न भूलूँ कभी दुःख-सुखमें तुम्हें छन भर भी !
आजसे ही मुझे वरदान य दे दो, साहब !
नाता स्वामीमें व 'किंकर' में रहे खूब घना,
ऐसी तदबीर कोई अब भी निकालो, साहब !

सांख्य-सिद्धान्तका विकास

प० रामशरण शास्त्री

पूर्व मीमांसा प्रवृत्ति-प्रधान है। प्रवृत्ति सुखके लिये होती है। जिससे दुःख मिलता है, उससे छुटकारा पानेकी चेष्टा करना स्वाभाविक है। जीव, पुरुष, 'मैं' दुःख भोगते हुए विचार करते हैं कि, कब इसकी इतिश्री होगी। इसी आशासे प्रवृत्ति-प्रवाहमें 'मैं' दिन-रात बहता रहता है; परन्तु इसे लेनेके देने पड़ते हैं। दुःखकी शृङ्खला पहलेसे और दृढ़ हो जाती है। बन्दीकी दशामें 'मैं' रोता, सिर पीटता और अपने आपको बार-बार कोसता है। 'मैं' बन्धन नहीं चाहता। "मैं" स्वयं दुःखके पींजड़ेमें बन्द समझकर इससे निकलने और स्वतंत्र होनेके लिये सिरतोड़ परिश्रम करता है। न्यायके शब्दोंमें आत्मा, 'मैं'की प्रवृत्ति, कभी शारीरिक, कभी वाचनिक और कभी मानसिक सुख, दुःख तथा मोह (दोष) के कारण होती है। इससे 'मैं' शारीरिक, वाचनिक और मानसिक, तीनों दुःखोंका भागी होता है। इनकी चोटसे घायल हो 'मैं' मोक्षोपायकी खोज-पड़ताल करता है। 'मैं'के सामने दृष्ट, सांसारिक वा ऐहिलौकिक सुख रहता है। 'मैं'का संघर्ष पहले पहल इसीसे होता है। 'मैं' समझता है कि, इससे सुख, कल्याण, होगा; इसलिये 'मैं' धन, स्त्री, पुत्र, यश, लोक-सेवा, काव्य या शास्त्रमें आनन्द अनुभव करता है। 'मैं' इन्हें भोगनेको प्रवृत्त होता है। धीरे-धीरे अनुभव बतला देता है कि, ये सब परिणामी, नश्वर, हैं भोगमें रोग छिपा है या भोग ही रोगकी राहपर लाता है। 'मैं' इस रहस्यको जानकर निवृत्त होता है या पुनः सुख मिलनेकी आशासे अपनाता है। पर 'मैं' दुःखकी आवृत्ति तथा नष्ट दुःखकी पुनः उत्पत्तिसे बार-बार दुःखी होता है। सांख्यशास्त्र यहीं आरम्भ होता है। इसकी दृष्टिमें दृष्ट, सांसारिक, उपायोंसे दुःख नष्ट नहीं हो सकता। इसने दो कारण बतलाये हैं— नैकान्ताभाव और नात्यन्ताभाव। किसी तरह दुःखको दृष्टोपायसे दूर करें; पर वह जड़-मूलसे नष्ट नहीं होता। देखनेमें आता है कि, नष्ट दुःख फिर-फिर आ घेरता है। ऐसी दशामें कैसे कह सकते हैं कि, दुःखका अत्यन्त नाश हुआ—

"दृष्टे सापर्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात्।" सां० सू०।

'मैं' 'आज वा कल, कभी-न-कभी, इस जीवनमें सुख मिलेगा'के सिवा विचारता है कि, दूसरे जन्म, नया शरीर धारण करनेपर, स्वर्गमें अलौकिक सुख प्राप्त होगा। इसके लिये पूर्वमीमांसा-प्रतिपादित यज्ञ-यागादि इस आशासे करता है कि, स्वर्गमें सुख ही सुख प्राप्त होगा। श्रुति कहती है—

"अपाम सोममसृता अभूम"

सोमरस पान किया, बस अमृत हुए। 'स्वर्गकामो यजेत'—स्वर्गकी अभिलाषा हो, यज्ञ करो! स्वर्गमें दुःखकी निवृत्ति होती है। पर सांख्य स्वर्गीय सुखको भी दृष्टके समान कहता है। यज्ञमें पशुओं और बीजोंकी हिंसा होती है। इसका पाप निश्चय ही भोगना पड़ता है। पञ्चशिखाचार्यने कहा है—

"स्वल्पः संकरः सपरिहारः सप्रत्यमर्षः।"

फलतः स्वर्ग अविशुद्ध है।

कार्य अनित्य होता है। यज्ञ-विशेषके पुण्य-प्रभावसे स्वर्ग मिल जाय; पर वह नित्य नहीं होता। जैसे जैसे

संचित कर्म क्षीण होता है, वैसे ही स्वर्ग क्षीण होता है। इसलिये स्वर्ग अनित्य हुआ—

"तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयत एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते।" छा० उ० ८।१।६

अधिकारि-भेदसे स्वर्गीय आनन्दमें तारतम्य है। जो सुख इन्द्रको मिलेगा, दूसरेको नहीं। साधारण विशेष होना चाहता है। इस चाहकी राहमें बाधा आ पड़े, तो दुःख ही दुःख मालूम पड़ता है। स्वर्गीय सुखका तारतम्य है; अतः इसे सांख्यने "अतिशययुक्त" कहा है—

"दृष्टवदानुश्रविकः सह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः।" सां०

इह लोक और परलोकके विपरीत, उपर्युक्त दोषोंसे मुक्त, दिखलाकर सांख्यने (१) अविकृति, (२) प्रकृति-विकृति, (३) विकृति और (४) पुरुषको जाननेके लिये उपदेश किया है। अविकृति मूल प्रकृति है। प्रकृति-विकृति सात हैं—(१) बुद्धि, (१) अहङ्कार और (५) तन्मात्राएँ। ये सातो प्रकृति हैं और साथ ही विकृति भी। विकृति सोलह हैं—(५) कर्मेन्द्रियाँ, (५) ज्ञनेन्द्रियाँ (१) मन और (५) तन्मात्राएँ। ये सोलह न किसी, तत्त्वकी प्रकृति हैं और न इनसे किसी तत्त्वकी विकृति होती है। इनमें पञ्च तन्मात्राओंके विकार, पञ्च महाभूत और अहंकारके विकार, एकादश इन्द्रियाँ हैं। पुरुष उपर्युक्त तत्त्वोंका साक्षी है। न वह प्रकृति है और न विकृति। उसका परिणाम नहीं होता। इस तरह (१) प्रकृति, (७) प्रकृति-विकृति, (१६) विकृति और (१) न प्रकृति न विकृति (पुरुष) मिलाकर सांख्यके कुल पच्चीस तत्त्व हैं। सात प्रकृति-विकृतियों और सोलह विकृतियोंका समावेश प्रकृतिमें ही किया जाता है। तब दो ही तत्त्व (प्रकृति और पुरुष) रह जाते हैं। इसलिये सांख्यको द्वैतवादी कहते हैं। द्वैतवादी कहनेपर भी इसका उद्देश्य केवल, कैवल्य, अकेलापन, पुरुष-प्रकृति-भेद, 'मैं यह न' अद्वैत है। इस निबन्धमें पुरुषके लिये 'मैं' और प्रकृतिके लिये 'यह' प्रयोग किया गया है।

प्रमाणमें सांख्य वैशेषिक और न्यायके मध्यमें है। वैशेषिकने दो और न्यायने चार प्रमाण प्रतिपादित किये; परन्तु सांख्यने तीन—

"दृष्टमनुमानमाप्तवचनं च" सां० का० ४.

(१) प्रत्यक्ष, (२) अनुमान और (३) आप्तवचन या शब्द। तीन ही प्रमाण मनुको भी मान्य हैं—

"प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधागमम्।
त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सता॥"

मनुस्मृति १२-१०५

तीनों प्रमाणोंका लक्षण न्याय और सांख्यमें समान, कहीं-कहीं शब्द भी एक सा ही, है। बुद्धिका व्यापार अध्यवसाय, निश्चयात्मक ज्ञान, है। इसलिये नैयायिक भाषामें "इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानं व्यवसायात्मकम्" सांख्यका "प्रतिविषयाध्यवसायः" हुआ। इसे न्यायने प्रत्यक्ष और सांख्यने दृष्ट कहा है। सांख्यने "अव्यपदेश्यम्" और "अव्यभिचारि"का समावेश "अध्यवसायः"में ही कर दिया है। "अध्यवसायो बुद्धिः"को महाभारत और गीतामें "व्यवसायात्मिका बुद्धिः" कहा है। इससे अध्यवसायको छोड़कर व्यवसायात्मक पाठ न्यायमें आया है। शब्द कोई हो, तात्पर्यमें अन्तर नहीं पड़ने पाया है।

अनुमानके लक्षणमें भी बहुत समता है। "अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानम्" [न्याय १।१।५] "त्रिविधमनुमानम् आख्यातम् तद् लिङ्गलिङ्गि-पूर्वकम्" [सा० का० ५] चिह्नित शब्द एक दूसरेमें नहीं हैं। 'तत्' का स्पष्टीकरण उसके आगे 'लिङ्ग-लिङ्गी' लगाकर सांख्यने किया है। न्याय और सांख्यके अनुमानका लक्षण अक्षरशः समान है।

शब्दका लक्षण न्यायने "आप्तोपदेशः शब्दः" किया

है। इसे ही दूसरे शब्दोंमें सांख्यने "आसस्तुतिराप्तवचनं तु" कहा है। शब्द-लक्षणमें भी दोनोंमें अन्तर नहीं है।

न्यायके उपमानको सांख्यने अलग प्रमाण नहीं माना है। सांख्यने इसका समावेश अनुमान और आप्त-वचनमें किया है। उदाहरणार्थ, किसीको 'गवय' (नील गाय) नहीं मालूम थी। उसने विश्वास-पात्रसे पूछा कि, गवय कैसी होती है। उत्तर मिला कि, गोके सदृश गवय होती है। इससे उसे ज्ञान हुआ कि, "गवय शब्द" "गो-सदृश' का वाचक है। यह अनुमान हुआ। आप्तवचनसे प्रवृत्ति हुई। जंगलमें उसने "गोके सदृश" जीवको देखा। उसे प्रत्यक्ष हुआ कि, यही गवय है। इस तरह उपमानका समावेश सांख्यने अनुमान और आप्तवचनमें किया है।

न्यायने बारह प्रमेय गिनाये हैं। सांख्यके तीन प्रमेय हैं—१ व्यक्त, २ अव्यक्त और ३ ज्ञ। व्यक्तके दो भेद हैं—१ प्रकृति-विकृति और २ विकृति। प्रकृति-विकृति ७ और विकृति १६ हैं। दोनों मिला कर १६+७= २३ व्यक्त हुए। इनमें अव्यक्त और ज्ञको मिला कर २३+२ = २५ (प्रमेय) हुए। न्यायके १२ प्रमेयोंमेंसे शरीर, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख और अपवर्गको छोड़कर (१) आत्मा, (५) इन्द्रिय, (५) अर्थ, (१) बुद्धि और (१) मन—इन तेरह प्रमेयोंको सांख्यने प्रमेयमें लिया है। न्यायकी पञ्चेन्द्रियोंको सांख्यने बुद्धीन्द्रिय कहा है। सांख्यने इनके सिवा पाँच कर्मेन्द्रियोंको प्रमेयमें बढ़ाया है, जिनका उल्लेख वैशेषिक और न्यायमें नहीं किया गया है। अर्थको सांख्यने तन्मात्रा, पञ्चभूतोंकी प्रकृति, बतलाया है। बुद्धि और मन सांख्यमें अन्तः-करण हैं। सांख्यने इन दोनोंके मध्यमें अहंकारको रखा है। यह भी अन्तःकरण है।

व्यक्तका पर्याय दृष्ट है। इसके विपर्याय "विपरीतमव्यक्तम्" (सा० का० १०) अव्यक्त, अदृष्ट हैं। अदृष्ट मीमांसकोंका पारिभाषिक शब्द है। इसका पर्यायवाची अपूर्व प्रयोग किया जाता है। मीमांसकोंका कहना है कि, यज्ञसे अपूर्व, अदृष्ट, उत्पन्न होता है। यही अगले जन्ममें धर्माधर्म, सुख-दुःखका कारण होता है। नैयायिक इसे "कर्म" कहते हैं। इसको आचार्य गौतमने प्रमेयमें स्थान नहीं दिया है। प्रसंगवश शङ्का की गयी है कि, शरीर, सर्ग, पुरुष—कर्म-निमित्त है या भूतोंके संयोग मात्रसे अकर्म—निमित्त है? वात्स्यायनने न्यायभाष्य (३।२। ६१—७१ तक)से सिद्ध किया है कि, शरीर अकारण नहीं होता। अदृष्ट कर्म ही कारण है, जिससे जीव, 'मैं', भिन्न-भिन्न शरीर धारण करता, सुख-दुःख भोगता और कालका ग्रास बनता है। सांख्यने भी न्यायके समान "अदृष्ट कर्म"को कारण, अदृष्ट कर्मके स्थानमें अव्यक्त प्रयोग कर, "अव्यक्त कारण है" कहा है। अव्यक्त नैयायिकके अदृष्ट कर्म और मीमांसकोंके अदृष्ट, अपूर्व, सदृश ही नहीं; परन्तु वही है, पर्याय है। इसे न्यायने प्रमेयमें नहीं लिया है; पर सांख्यके प्रमेयमें इसका मुख्य स्थान है। इस तरह सांख्यने न्यायके कुछ प्रमेयोंको छोड़कर पञ्चकर्मेन्द्रिय, पञ्चमहाभूत, अहंकार और अव्यक्त, इन बारह प्रमेयोंको जोड़ा है।

वैशेषिकके पाँच कर्मोंको (उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन) न्यायने त्याग दिया। उसके स्थानमें प्रवृत्ति रखीगयी। सांख्यने वैशेषिकके पाँच कर्म लिये। वैशेषिकके कर्म नहीं हैं। ये पञ्चकर्मेन्द्रियोंके कर्म हैं। कर्म और इन्द्रियको जोड़कर 'कर्मेन्द्रिय' किया गया है—

"वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दाश्च पञ्चानाम्।"

सांख्यकारिका २८

(१) बोलना, (२) लेना, (३) चलना, (४) उत्सर्ग और (५) आनन्द करना कर्म हैं। ये कर्म पाँचों कर्मेन्द्रियोंसे किये जाते हैं।

सांख्य सत्कार्यवादका प्रतिपादक है। इसका कहना है कि, "कोई नयी वस्तु नहीं उत्पन्न होती।" यदि पदार्थकी उत्पत्ति मान ली जाय, तो कहना पड़ेगा कि, वह अभाव, शून्यसे उत्पन्न हुआ अर्थात् जिसका नाममात्र अस्तित्व न था, वह प्रकट हुआ। परन्तु ऐसा नहीं होता। बीजनाश होनेपर अंकुर होता है। इससे यह नहीं कहा जा सकता कि, नाश अंकुरका कारण है। ध्यान देकर देखें, तो पता चलेगा कि, यथार्थमें बीज ही अंकुरका कारण है।

सांख्यके विरुद्ध न्याय-वैशेषिक असत्कार्य-वादके प्रतिपादक हैं। दोनोंका कहना है कि, एक पदार्थका नाश होनेपर दूसरा पदार्थ उत्पन्न होता है। बीज नष्ट होनेपर अंकुर होता है। ऐसा ही मत बौद्धोंका भी है। सांख्य इसके प्रतिकूल है। यदि असत् या कार्यको पूर्व माना जाय, तो उससे सत् कभी नहीं हो सकता। लाखों तेली दिन-रात प्रयत्न कर बालूसे तेल नहीं निकाल सकते। देखा जाता है कि, कार्यमें कारणके गुण पाये जाते हैं। कार्य चाहे किसी अवस्थामें परिणत हो जाय, उसमें कारणके गुण अवश्य ही मिलते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि, कार्यका गुण किसी न किसी तरह कारणमें, सूक्ष्म रूपसे, रहना चाहिये। इसीको "सत्कार्यवाद" कहते हैं। इसकी पुष्टिके लिये सांख्यने और चार हेतु दिये हैं—(१) उपादान-ग्रहणात्, (२) सर्वसम्भवाभावात्, (३) शक्तस्य शक्य-करणात् और (४) कारणभावाच्च।

(१) बालूसे तेली तेल नहीं निकाल सकता; वह सरसों, तिल आदिसे ही तेल निकालता है। दही चाहने वाले उसके कारण दूधको ही ग्रहण करते हैं, पानी को नहीं। [२] यदि कोई अभीष्ट वस्तुके उपादानको छोड़कर चाहे कि, अन्य वस्तुसे सफल मनोरथ होऊँ, तो वह अपने काममें सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। थोड़ी देरके लिये मान लें कि, कार्यमें कारणके गुण नहीं होते, तो इसका उत्तर ढूँढ़े नहीं मिल सकता कि, क्यों दही दूधसे ही होता है? [३] जलसे ही स्रोत निकलता है, पत्थरसे नहीं। जलमें शक्ति है कि, स्रोतको अपनेमेंसे निकाल दे। प्रत्यक्ष देखा जाता है कि, सबसे प्रत्येक वस्तुकी उत्पत्ति नहीं होती। यदि होती, तो सीपसे हीरा और आकाशसे सुन्दर सुमन होते। (४) कारणसे ही कार्य उत्पन्न होता है।

इस तरह सत्कार्यवादसे असत्कार्य, अभावसे भाव, शून्यसे सृष्टि होना खण्डित हो जाता है। सांख्यने सत्का-र्यवादको अपनाकर स्पष्ट कहा है कि, कारण अव्यक्त है। अव्यक्त प्रत्यक्ष नहीं है; तब वह, क्योंकर कारण हो सकता है? इसका उत्तर सांख्य-कारिकाकार आठ युक्तियोंसे देते हैं कि, वस्तु रहनेपर भी तो प्रत्यक्ष नहीं होता—

(१) अति दूर होनेसे प्रत्यक्ष नहीं होता। उदाहरण—बहुत ऊँचे पहाड़से मनुष्य।

(२) अत्यन्त समीप होनेसे—आँखोंमें लगा काजल।

(३) इन्द्रियघातसे—अन्धोंको रूपादि।

(४) मनकी अव्यवस्थासे—बाजे-गाजेके साथ बारात निकल जानेपर भी भान नहीं होता।

(५) सूक्ष्म होनेसे—आकाश, परमाणु।

(६) व्यवधान होनेसे—नेपथ्यके समान।

(७) अभिभव होनेसे—सूर्याभिभवसे दिनमें तारे नहीं दिखाई पड़ते।

(८) समानाभिहारसे—बूँद और समुद्रकी अभिन्नता।

इन आठ उपपत्तियोंसे प्रत्यक्ष नहीं होनेपर भी सूक्ष्म होनेसे अव्यक्त है। सत्कार्यवादके नियमानुसार अव्यक्त अनुमानसे सिद्ध होता है। विकृतिको देखनेसे अनुमान होता है कि, इसका कारण है। वह कारण प्रकृति है।

वैशेषिकके साधर्म्य-वैधर्म्यको सांख्यने सारूप्य-वैरूप्य कहा है। दो कारिकाओंमें व्यक्त, अव्यक्त और ज्ञके सारूप्य-वैरूप्यपर प्रकाश डाला गया है। (१) हेतुवाद, (२) अनित्य, (३) अव्यापी, (४) सक्रिय, (५) अनेक, (६) लीन होनेवाला, (७) आश्रित, (८) सावयव

और (६) परतन्त्र व्यक्तके सारूप्य हैं। इनके विपरीत (१) अहेतुवाला, [२] नित्यादि अव्यक्तके सारूप्य हैं। व्यक्त और अव्यक्तके छः सारूप्य हैं—[१] त्रिगुण, [२] अविवेकी, [३] विषय, [४] सामान्य, [५] अचेतन और [६] प्रसवधर्मी। इनके विपरीत [१] अत्रिगुण, [२] विवेकी इत्यादि ज्ञके सारूप्य हैं। ज्ञ कुछमें व्यक्त और अव्यक्तसे सारूप्य तथा वैरूप्य दोनों है।

दो कारिकाओंमें कारिकाकारने व्यक्त, अव्यक्त, त्रिगुण और उनके स्वरूप बतलाये हैं। ये विचार महाभारतसे मिलते हैं। महाभारतके तीन श्लोकोंके भाव कारिकामें आ गये हैं। ये गुण वैशेषिकके गुण नहीं हैं। तीनों गुण परस्पर-विरुद्ध होनेपर भी चिरागमें बत्ती और अग्निके समान रहते हैं तथा कार्य निष्पादन कर प्रकाश करते हैं।

ईश्वरकृष्णने ११ कारणोंसे अव्यक्त और ५ हेतुओंसे पुरुष सिद्ध किया है। तीन युक्तियोंसे [१] जनन-मरण-करणके प्रति नियम, [२] प्रवृत्ति और [३] गुणके विपर्ययसे पुरुष अनेक हैं, यह सिद्ध किया गया है—

"तस्माच्च विपर्ययात्सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरुषस्य।
कैवल्यं माध्यस्थ्यं द्रष्टृत्वमकर्तृभावश्च॥"

—सांख्यकारिका १९

इस कारिकामें किसपर विचार किया गया? व्यक्त, अव्यक्त और ज्ञके विज्ञानके सिवा यह साक्षी, कैवल्यादि क्या है? इसका समावेश उपर्युक्त तीनोंमेंसे किसमें किया जाय? ये स्वाभाविक प्रश्न उठते हैं। कारिकाकारको अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार व्यक्त, अव्यक्त और ज्ञके विज्ञानपर विचार करना चाहिये। उन्होंने अपनी टेक उपर्युक्त कारिकाके ऊपरतक निभायी है। व्यक्त, अव्यक्त और ज्ञके स्वरूप, परस्पर सारूप्य-वैरूप्य युक्तियोंसे अव्यक्त और पुरुषको सिद्ध किया है। उनका काम यहाँ समाप्त हो जाता है; अब क्या शेष बचा, जिसपर उपर्युक्त कारिकासे विशेष प्रकाश डाला गया? यह कारिका व्यक्त-अव्यक्तके लिये नहीं है; क्योंकि वे अचेतन हैं, साक्षी नहीं। पुरुष भी नहीं है; क्योंकि पुरुष सिद्ध करते हुए "भोक्तृभावात्, कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च" इत्यादि हेतु दिये गये हैं, जो कैवल्य, साक्षी, अकर्तृभावादिसे मेल नहीं खाते।

हमारे मतानुसार कारिकाकारकी दृष्टिमें पुरुषसे जीव, 'मैं' तात्पर्य है। इसे दूसरी कारिकामें ज्ञ (क्षेत्रज्ञ), तीसरीमें पुरुष, ग्यारहवींमें पुमान् तथा सत्रहवीं, अठारहवीं कारिकाओंमें पुरुष कहा है। १८ वीं कारिका "पुरुषबहुत्वं सिद्धम्" से वैशेषिक सहमत है।

पीछे सांख्य-दर्शनकारने सांख्यकारिका और वैशेषिकको ध्यानमें रखकर दोनोंका समन्वय किया है—"पुरुषबहुत्वं व्यवस्थाभात् जन्मादिव्यवस्थातः पुरुष-बहुत्वम्"। वेदान्तमें इसे ज्ञ और कर्ता कहा गया है—"ज्ञोऽत एव", "कर्ता शास्त्रार्थवत्त्वात्"। कारिकामें इससे विपरीत साक्षी, कैवल्यादि है, कहा है। तस्माच्चके च से पहले सिद्ध किये हुए अव्यक्त और पुरुष हैं। इन दोनोंके विपरीत साक्षी, कैवल्यादि है। इसलिये कारिकाकारने इसे पुरुष न कहकर साक्षी, माध्यस्थ्य इत्यादि कहा है।

महाभारत, शान्तिपर्वके मोक्षपर्व, में जनक-पंचशिख-संवाद है। प्राचीन सांख्य-मत यहाँ वर्णित है। यहाँ साफ नहीं मालूम पड़ता कि, पंचशिखाचार्यको कितने तत्व अभिप्रेत हैं। आप एक श्लोकमें कह रहे हैं कि, "इनको संक्षेपमें अध्यात्मचिन्तक क्षेत्र और मनमें स्थित भावको क्षेत्रज्ञ कहते हैं।"

इस अध्यायमें क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका अभिप्राय स्पष्ट नहीं मालूम पड़ता। इस अध्यायमें सांख्यकारिकामें प्रयुक्त अहंकार, प्रकृति और पुरुष नहीं आये हैं। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ उस समय किस अर्थमें प्रचलित थे? इसी पर्वमें सांख्यपर एक और संवाद है। वहाँ एक श्लोक यह है—

"अन्यत्र देवक्षेत्रं स्यादन्यः क्षेत्रज्ञ उच्यते।
क्षेत्रमव्यक्तमित्युक्तं ज्ञातारं पञ्चविंशकम् ॥"
शा० प० ३०६-३९

क्षेत्रको अव्यक्त कहते हैं। क्षेत्रज्ञ, ज्ञ पचीसवाँ तत्त्व है। इस तरह क्षेत्र और क्षेत्रज्ञसे सांख्यकारिकाके अव्यक्त और पुरुष मिलते हैं। इसमें एक तत्त्व, अहङ्कार, छोड़ दिया गया है। गीतामें दोनों शब्द उपर्युक्त अर्थमें प्रयुक्त हुए हैं। क्षेत्रमें अन्य वस्तुओंका समावेश किया गया है। नीचेकी पंक्तियोंको देखिये—

"महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पंच चेन्द्रियगोचराः॥
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्॥" गी० १३-५.६

पञ्चशिखाचार्यके २४ तत्त्वमें अहंकार और चिन्हित पदार्थ जोड़े गये हैं। इनमें अहंकार ईश्वरकृष्णको अभिप्रेत है। गीताके १३.२ श्लोकमें सांख्यकारिकाके २५ तत्त्व आ गये हैं। चिन्हित पंक्तिको कारिकाकार "अन्तःकरणकी वृत्ति"में समावेश करते हैं।

सांख्य-सिद्धान्तकी उन्नति हुई। पचीस तत्त्वोंमें एक तत्त्व और जोड़ा गया। परन्तु उसे छब्बीसवाँ तत्त्व नहीं कहा गया। उदाहरणार्थ उपर्युक्त १८ वीं कारिका और शान्ति-पर्वके इन श्लोकोंको देखिये—

"बहवः पुरुषाः पुत्र त्वया ये समुदाहृताः।
एवमेतदतिक्रान्तं द्रष्टव्यं नैवमित्यपि॥
आधारं तु प्रवक्ष्यामि एकस्य पुरुषस्य ते।
बहूनां पुरुषाणां स यथैका योनिरुच्यते॥
तथान्तं पुरुषं विश्वं परमं सुमहत्तमम्।
निर्गुणं निर्गुणा भूत्वा प्रविशन्ति सनातनम्॥"
शा० पर्व० ३५०।२५-२७

बहुत पुरुषोंकी योनि एक पुरुष है। वही आधार है। पुरुष और विश्व (पुरुष और अव्यक्त अर्थात् २५ तत्त्व) उस परम सुमहत्तम सनातनमें निर्गुण होकर प्रवेश करते हैं। ऐसे ही श्रीकृष्ण पुरुषके पर्यायवाची क्षेत्रज्ञको बतला कर कहते हैं कि, "सब क्षेत्रोंमें मुझको क्षेत्रज्ञ जानो"—

"क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।"
गी० १३।२०

कारिकाकार पुरुषके पर्याय कैवल्य, अकर्त्तादि सिद्ध करते हैं। यहाँ उन्होंने व्यावहारिक भिन्नता दिखलाने के लिये पुरुष और कैवल्यादि प्रयुक्त किये हैं। प्रश्न हो सकता है कि, कैवल्यादिको उन्होंने छब्बीसवाँ तत्त्व क्यों नहीं कहा? व्यावहारिक दृष्टिसे प्रश्न ठीक है; पर तात्त्विक दृष्टिसे अयुक्त है। पुरुष-प्रकृतिसे तादात्म्य कर, इसके गुण-धर्म अपने आपमें समझ, सुख-दुःख के चक्करमें पड़, भटकना ही जीव, पुरुष, कर्त्ता, ज्ञ, 'मैं' है। वही पुरुष जब प्रकृतिके रहस्यको जानकर और इस चादर को उतारकर अपने आप स्वरूपमें प्रतिष्ठित होता है, तब यही उसका साक्षी, कैवल्य, है। कारिकाकारने कहा भी है—

"तस्मान्न बध्यतेऽद्धा न मुच्यते नाऽपि संसरति कश्चित्।
संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः॥
सां० का० ६२

अपने शुद्ध स्वरूपसे न वह बँधता, न मुक्त होता या न संसरण करता है। तीनों, बन्धन, संसरण और मुक्ति, नाना (पुरुष-बहुत्वं) पुरुषोंके आश्रयसे प्रकृतिको होते हैं। यही विचार शब्द-भेदसे १८ वीं और २१ वीं कारिकाओंमें प्रकट किये गये हैं।

इस तरह छब्बीसवाँ तत्त्व नहीं मानते हुए ईश्वरकृष्ण ने साक्षी इत्यादिसे महाभारत और गीताका समन्वय किया है। यह समन्वय ऐसा हुआ है कि, श्रुतियाँ इसके अनु-कूल हैं। ब्रह्मसूत्रके कितने ही सूत्र इसके समर्थक हैं—"यथा च तक्षोभयथा", "परात्तु तच्छ्रुतेः" इत्यादि। ब्रह्मसूत्र २

३-४०, ४१में सांख्यके प्रसिद्ध खण्डन कर्त्ता शंकराचार्यने सांख्यको "प्रधान मल्ल" कहकर प्रधान-कारणवादका प्रबल प्रतिषेध किया है। आप भी कारिकाकारके समन्वयसे सहमत हैं। जिस अंशमें सांख्य योग-स्मृति-श्रुतिसे विरुद्ध नहीं है, वह शंकरको इष्ट है। पुरुषकी सांख्यवाली असंगता शंकर मानते हैं।

सांख्यके सदृश कैवल्योपनिषद्में भी विचार आया है—

"त्रिषु धामसु यद्भोग्यं भोक्ता भोगश्च यद्भवेत् ।
तेभ्यो विलक्षणः साक्षी चिन्मात्रोऽहं सदाशिवः ।"

तीनों धामों (जागृत्, स्वप्न और सुषुप्ति)में जो भोग्य, भोक्ता और भोग होते हैं, उनसे विलक्षण साक्षी, चिन्मात्र, अहं (शुद्ध 'मैं,' कर्त्ता और ज्ञातासे रहित) शिव है। अहं और शिवकी समता बृ० १।४।१०, छा० ७।२५।१, माण्डूक्य ७। १२, तथा श्वेता० ४।१८ के श्लोकोंसे है। सांख्यमें भोग, भोक्ता और भोग्य, ये त्रिक् नहीं लिये गये हैं। इसमें भोग्य और भोक्ताके लिये पर्याय क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, प्रकृति-पुरुष, हैं।

साक्षी कार्यकारण-परंपरामें नहीं आता। इसके संयोगसे ही अव्यक्त, अचेतन, चेतनसा भासता है और स्वयं उदासीन होनेपर भी कर्त्ता, ज्ञ, 'मैं' सा होता है। इससे सृष्टि नहीं होती। सृष्टि प्रकृति-पुरुषके संयोगसे होती है। चेतनसी अचेतन प्रकृति, 'यह' और कर्त्ता, ज्ञाता, 'मैं' सी उदासीन अलग-अलग रहनेपर सृष्टि करनेमें असमर्थ है। दोनोंका संयोग होता है। ये दोनों अन्धे और पङ्गुकी युगल जोड़ी सृष्टिकी बागडोर अपने हाथमें लेती है। फिर क्या, प्रकृतिसे महत्, बुद्धि, उससे अहंकार और अहंकारसे १६ विकृतियाँ आविर्भूत होती हैं। इसे याज्ञवल्क्यके शब्दोंमें ऐसा कह सकते हैं—जहाँ निश्चय द्वैतसा होता है, वहाँ इतर इतरको देखता, सूँघता, स्वाद लेता, बोलता, सुनता, मनन करता, स्पर्श करता और जानता है।

पुरुष, 'मैं' की स्थिति विचित्र है। वह बुद्धि, अहंकार, तन्मात्रा और विकृति-सन्तानको जन्म दे ब्रह्माकी तरह स्वयं उनके प्रेम-पाशमें बँध जाता है। यही उसके पतन, दुःखका कारण, है। कभी वह तिर्यग्योनिमें गिरता है, कभी अपने आपको सम्हाल मनुष्य-कलेवर धारण कर नाना सुख-दुःखोंका शिकार होता है। भाग्यवश कभी उन्नत पथका पथिक हुआ, तो मनुष्य या देवयोनिमें सात्त्विक वृत्तिसे विभूषित होता है। वहाँ भी उसे चैन नहीं मिलता। तृणसे ब्रह्म तक दुःखके चक्करमें पड़कर पीड़ित होता है।

लोग जिस स्थानमें गिरते हैं, उसीके सहारे उठ सकते हैं। यह नियम है। यह विचार पुरुषको सहायता पहुंचाता है। वह प्रकृति और उसकी सन्तानोंको क्रमशः सम्हालता है और क्रमशः उनके सारे भेदोंको ताड़ लेता है। उनके गुप्त रहस्यको जानना ही उनके प्रेम-पाशको तोड़ना है। उनके मर्मको नहीं जाननेसे हाव-भाव भले मालूम होते हैं। जब गुह्य ज्ञान उसकी आँखें खोल देता है, तब प्रकृतिका खेल बदल जाता है। वह लजाने लगती है। पुरुषके सामने आना कठिन हो जाता है। प्रकृति कुलीनके घरकी स्त्रियोंकी तरह लज्जावती हो जाती है। अब वह अपना नग्न नृत्य पुरुषको नहीं दिखलाती। वह जान जाती है कि, मैं पुरुषसे भली भाँति, देख ली गयी। वह मेरे सब गुप्त भेदोंसे परिचित हो गया है। भला ऐसी परिस्थितिमें मैं उसके सामने कैसे इन्द्रजाल पसार सकती हूँ? जाल बिछाना तो दूर रहा, उसके सामने कैसे रह सकती हूँ? पुरुष उसे उपेक्षाकी दृष्टिसे देखने लगता है। प्रकृति पुरुषसे उपरत हो जाती है। उसके लिये सृष्टिका क्रम बन्द हो जाता है। भोग, सर्गका प्रयोजन लेश मात्र भी नहीं रह जाता।

प्रकृति-पुरुषका भेद-ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है। इस भेदको दूसरे शब्दोंमें प्रकट करें, तो उसका स्वरूप 'मैं यह न' होगा। 'मैं यह न' का सम्यग्ज्ञान होना यही सांख्यका सिद्धान्त है।

प्रकृति-पुरुषका संयोग छूट जाता है। कारणका नाश होने पर कार्यका नाश होता है। सम्यग्ज्ञान होनेपर संस्कार-शरीर शेष रहता है। तेल समाप्त होनेसे दीपक और इन्धन जल जानेसे अग्नि नष्ट हो जाता है। ऐसे ही अव्यक्त २४ तत्वके परिवर्जनसे ज्ञाता, कर्त्ता, पुरुष, 'मैं' नष्ट हो जाता है। यही कैवल्य है—

"तदा विशुद्धो भवति प्रकृतेः परिवर्जनात्।
अन्योऽहमन्येयमिति यदा बुद्धयति बुद्धिमान्॥"

महाभारत शा० प० ३०७-२०

जब बुद्धिमान् 'मैं' और 'यह' अन्य है, जानता है, तब प्रकृति ('यह')से छूटकर विशुद्ध होता है।,

पुरुष उपेक्षक हो जाता है। कर्म और ज्ञानसे निवृत्त हो कर्त्ता तथा ज्ञाताकी उपाधिसे मुक्त हो जाता है। वह उदासीन हो जाता है। वह स्वप्रतिष्ठित हो जाता है। बृहदारण्यकोपनिषद्में याज्ञवल्क्यने ठीक ही कहा है—"जहाँ केवल आत्मा ही हुआ, वहाँ कौन किसको देखे, सुने, रसास्वादन करे, बोले, मनन करे, स्पर्श करे और जाने! जिससे सब जाने जाते हैं, उसे कौन जाने! वह अगलित है, गलता नहीं। वह असंग है, संगरहित है। वह असित है, दुःखी नहीं होता और न नष्ट होता है। अरे! विज्ञाता किससे जाना जाय!"

सांख्य और ब्रह्म-सूत्रके अन्तिम तत्त्व एक हैं। भिन्नता केवल कारणमें है। सांख्य अव्यक्तको कारण कहता है। ब्रह्मसूत्रमें ब्रह्मको योनि या कारण कहा गया है। इसका समर्थन उपनिषद् करती है। ब्रह्मसूत्रका आधार उपनिषद् ही है। बादरायणाचार्यने ब्रह्मपर विचार करते हुए स्वीकार किया है कि, ब्रह्मके दो लिङ्ग पाये जाते हैं—(१) ब्रह्मयोनि और [२] अरूप ब्रह्म। इन दोनोंमें आप अरूप ब्रह्मको प्रधान कहते हैं।

आधुनिक पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक पण्डित और चित्त-विश्लेषण-विशारदोंने सिद्ध कर दिया है कि, अव्यक्तके खेल १हिस्टीरिया, २पागलपन, ३ स्वप्न, ४ दिवास्वप्न, ५ भूल, ६ दबाव और अनेक मानसिक रोग हैं। इनमें अव्यक्तका प्रथम स्थान है। यही कारण है। इसीलिये सांख्यमें अव्यक्तको कारण कहा गया है। जो हो, कारण कारिकाका उद्देश्य नहीं है। कैवल्य लक्ष्य है। इसमें ब्रह्म-सूत्रसे भिन्नता नहीं है। अधिकारी और प्रस्थानके भेदसे दर्शन-भेद होता है।

सांख्यकारिका ७० आर्याओंकी थी। आजकल ६९ कारिकाएँ ही पायी जाती हैं। एक कारिकाका पता नहीं चलता। लोकमान्य तिलकने गौड़पाद-सांख्य-कारिका-भाष्यके आधारपर एक कारिका बनायी है। यह कारिका पर-वाद-सूचक है। ईश्वरकृष्णने परवाद विवर्जित किया है। इस कारण लोकमान्यकी आर्या शेष कारिका नहीं हो सकती। षष्टितंत्र, जिसका नाम ईश्वरकृष्णने लिया है, नष्ट हो गया। राजवार्तिकमें केवल इसकी सूची मिलती है।

सांख्यमें एक २२ सूत्रोंका "तत्त्व-समास" मिलता है। कहा जाता है कि, यह कपिल द्वारा रचित है। कुछ सांख्य-सूत्र भी पाये जाते हैं। इनके कर्त्ताका नाम पञ्चशिखाचार्य लिया जाता है; परन्तु प्राचीन पोथियोंमें न दोनोंका नाम पाया जाता है और न किसी आचार्यने इन्हें अपनाया है।

कलाका उद्गम और विकास

श्रीयुत कामेश्वर शर्मा "कमल"

मानव-जीवनसे कलाका क्या सम्बन्ध है, इस बातको संस्कृत-कवि श्रीभर्तृहरिने अपने एक ही श्लोक द्वारा बता दिया है। उनकी रायमें जो मनुष्य साहित्य, संगीत और कलासे शून्य है, वह साक्षात् पशु है। वस्तुतः कलाका मनुष्य मात्रके साथ घना सम्बन्ध है। मानव-जीवनसे पृथक् कर देनेपर कलाका कोई मूल्य भी नहीं रह जाता। पर्सी ब्राउन नामक एक विद्वान् का कथन है कि, सौन्दर्यानुभूति और सौन्दर्य्य-सृष्टिकी चेष्टा मनुष्यके जन्मके साथ ही लगी है। शिक्षा और सभ्यताके साथ सौन्दर्यानुभूतिका उन्मेष और विकास होता है। अँग्रेजीमें जिस भावको *Art Impulse* कहते हैं, वह प्रत्येक व्यक्तिमें है। असभ्य जातियोंमें भी यह कला-वृत्ति विद्यमान है। कविता, संगीत और चित्रकलाके नमूने कन्दरामें निवास करनेवाली जातियोंमें भी पाये जाते हैं। अपनी सौन्दर्यानुभूतिको व्यक्त करनेकी यह स्वाभाविक चेष्टा ही कलाका मूल है।

अच्छा, तो कलाकारकी इस सौन्दर्यानुभूतिका अवलम्बन क्या है? उत्तर स्पष्ट और बिल्कुल छोटा है—प्रकृतिकी अनन्त और अक्षय्य सौन्दर्य-निधि। खिलते हुए विविध फूलोंको देखकर हृदयमें स्नेहका स्रोत, अविरल गतिसे, प्रवहमाण होने लगता है। सूर्य्यकी सुनहली रश्मि-मालाका अवलोकन कर हृदयमें भक्तिका उद्रेक होता है। अनन्त आकाशको निरखकर हृदयकी सम्पूर्ण संकीर्णता दूर हो जाती है। किन्तु इसका यह अर्थ न लगाना चाहिये कि, कला प्रकृतिकी एक मात्र प्रतिच्छाया है। नहीं, वह मनुष्यके अन्तःसौन्दर्यका प्रकट स्वरूप है। यह कैसे?

बाह्य विश्वके कलाविद्के हृदयमें प्रवेश करनेपर एक दूसरी ही दुनिया बन जाती है। उसमें केवल बाह्य जगत्के रंग, रूप, आकृति और ध्वनि आदि ही नहीं होते, प्रत्युत उसमें उसके अच्छे-बुरेका विश्लेषण भी मिला रहता है। कहनेका सारांश यह है कि, बाहरका भौतिक चित्र कलाकारके हृदय-रससे मिलकर एक दूसरा ही रूप ग्रहण करता है; और, चूँकि वह मानव-हृदयके रससे रंजित रहता है; इसलिये वह सर्व-साधारणके लिये सुलभ हो जाता है। वाल्ट ह्विटमैनने अपनी कृतिके विषयमें लिखा भी है—

> *"Comerado, this is no book.*
> *Who touches this touches a man."*

अर्थात् बन्धुवर, यह ग्रन्थ नहीं है। जो इसे छूता है, वह एक मनुष्यको स्पर्श करता है। इसी बातको महाकवि भवभूतिने भी 'वन्देमहि च तां वाणीममृतामात्मनः कलाम्' द्वारा प्रकट किया है। इन्होंने वाणीको, कविताको, अर्थात् कलाको "आत्माकी कला" कहा है। सचमुच, कलाकारके अन्तर्जगत्में दैवी प्रकृतिकी जो आनन्दायिनी मूर्ति है, वही उसकी कलामें प्रकट होती है। काव्य उसीकी भाषा है, संगीत उसीकी ध्वनि है और चित्र उसीकी छाया है। जो शिल्पी अंतर्जगत्में उस मूर्तिका दर्शन कर लेता है, उसीके शिल्पमें सत्य सौन्दर्य संनिहित रहता है। जिसका अंतःकरण संकुचित एवं मलिन है, उसकी कलामें कदापि सौन्दर्य का गम्भीर और विशद रूप प्रकट नहीं होगा। कलामें व्यक्तित्व (*Personality*) की यही प्रधानता है और उसीसे इसमें विभिन्नता आती है। परंतु इस विभिन्नतामें भी एकता है। वह है उसका मनुष्यत्व। सभी देशों और सभी समयोंमें मनुष्य मनुष्य ही रहेगा। किसी विशाल सम्पत्तिका स्वामी, अपने ऐश्वर्य्यके कारण, एक दरिद्र कृषकसे

अवश्य ही बड़ा है; परंतु, मनुष्यत्वके सम्बंधमें दोनों बराबर हैं। एक पुण्यात्मा अपने चरित्र-बलसे किसी भी पतित प्राणीसे उच्च स्थान प्राप्त करता है। किंतु मनुष्यत्वके रूपमें दोनों एक ही स्थानको ग्रहण करेंगे। यही मनुष्यत्व कलाका आदर्श है।

यदि उस मनुष्यत्वका वास्तविक चित्र कोई देखना चाहे, तो उसे उस मानसरोवरकी ओर जाना चाहिये, जहाँसे निखिल विश्वकी कला-कल्लोलिनी निःसृत होती है। साधारणतः कलाके पाँच प्रमुख विभाग किये जा सकते हैं—स्थापत्य, भास्कर्य, चित्रकला, संगीत और कविता। इन पाँचोंमें हमें सौंदर्यके दो रूप—दो पट मिलते हैं। एक विराट् रूप और दूसरा कोमल रूप। एक हिमाचल है, तो दूसरा मंदाकिनी है। सौंदर्यके विराट् रूपमें हम विराट् वासना, विराट् प्रतिहिंसा, विराट् क्षमता, विराट् आयोजन एवं विराट् आत्मत्याग देखते हैं और उसके कोमल रूपमें हम स्नेह दया, करुणा, ममता आदि भावोंकी प्रधानता पाते हैं। सभी समयों और समाजोंकी कलामें हमें यही बात दीखती है। अतः यह कहा जा सकता है कि, मनुष्यत्वमें महत्ता और कोमलता नामक दो गुणोंका संमिश्रण हुआ है। अतः कलाकी सार्थकता मनुष्योंके इन गुणोंको श्रेयस्कर पथपर ले जाना ही है। यदि किसी कलामें इस सम्बंधकी उपेक्षा की गयी है, तो वह श्रेष्ठ कला नहीं है। ऐसी कलासे मनुष्यकी सहानुभूति भी नहीं रहती।

कला की अभिवृद्धि भी तभी होती है, जब व्यक्तिगत स्वातंत्र्य प्राप्त रहता है। जब मनुष्यको यथेष्ट सुखोपभोगकी स्वतंत्रता रहती है, जब उसे अपने हृदयगत भावके दबानेकी जरूरत नहीं रहती, तभी वह सौंदर्य-सृष्टिमें लीन होता है। उल्लासके इस भावमें एक तरहकी स्वच्छंदता रहती है। जब यह स्वच्छंदता संयत हो जाती है, जब उस भावमें सामञ्जस्य प्रबल हो जाता है, तब कलाकी सृष्टि होती है। सौंदर्यकी अनुभूतिके लिये सभी स्वच्छंद हैं। पर कलाकारका कार्य शृंखलाबद्ध और प्रणाली-संगत होना उचित है। तात्पर्य यह है कि, सौंदर्यके उपभोगका सामर्थ्य तभी होता है, जब चित्त-वृत्ति स्वच्छंद रहती है। किंतु चित्तवृत्तिको सर्वथा निरंकुश न बनाकर संयत बनाना चाहिये। तभी सौंदर्यका उज्ज्वल रूप प्रकट होता है।

कुछ लोगोंका कहना है कि, जब समाज या जातिमें शान्तिका साम्राज्य रहता है, तभी कलाकी उन्नति होती है। किंतु यह विचार सर्वथा ग्राह्य नहीं है। कारण, बहुधा देखा गया है कि, अनेक जातियोंने कलाकी सृष्टि तभी की, जब कि, वह भीषण अशांतिका अनुभव कर रही थीं। वास्तवमें जिगीषाकी भावना तो मनुष्यमें तभी आती है, जब वह उथल-पुथलमें झूलता रहता है। इसके विपरीत, शांतिके समयमें, उसकी कर्मण्यता लुप्त हो जाती है। ऐसे समयमें वह अपने ज्ञान-विज्ञानकी भले ही खूब तरक्की कर ले; परंतु वह नूतन सृष्टि नहीं कर सकता। इसीलिये ग्रीसमें द्वंद्व और विप्लवके समयमें ही कलाकी वृद्धि हुई थी। यूरोपमें गाथिक [*Romantic*] कालका विकास इसी स्थितिमें हुआ था। यदि द्वंद्व-काल समुपस्थित नहीं होता, तो शायद यूरोपमें *Renaissance* भी नहीं आता। युद्ध-वृत्तिसे चित्तमें स्वतंत्रताका उदय होता है; और, जैसा कि, कहा जा चुका है, स्वतंत्रता कलाके लिये अत्यंत उपयोगी है। जो जाति गुलामीके बंधनमें ग्रस्त रहती है, उसकी चित्तवृत्तिका सारा स्वातंत्र्य लुप्त हो जाता है। विजयकी भावनासे उद्दीप्त हो जब मनुष्य अपनी शक्तिका अनुभव कर लेता है, तब वह प्रकृतिके ऊपर भी अपना कर्तृत्व प्रकट करनेकी चेष्टा करता है। तभी इच्छा होती है कि, प्राकृतिक सौंदर्यपर अपनी भावनाओंको प्रतिष्ठित कर किस तरह अधिकाधिक सुंदर बना दें। यही नहीं, यह सौंदर्यके साथ-साथ अनंत और अज्ञेयको भी अपनी कल्पनाके द्वारा अधिगम्य करना चाहता है: कहना नहीं होगा कि, वर्तमान हिंदी-साहित्यमें भी इसका प्रभाव परिलक्षित हो रहा है। जिस आंदोलनने आज भारतीय प्राणोंमें स्वतंत्रताकी भावना जाग्रत कर दी है, उसीसे हमारी कला भी आज लथ-पथ हो रही है। तभी तो भावुक कलाविद् पंतने अपनी

"पल्लव"की छायामें बैठकर वेदनाकी "वीणा"में "परिवर्तन"का राग अलापा है। प्रसादके "आँसू"में "यमुना" अपनी निराली छटा दिखला रही है। "भारतीय आत्मा"में "दिनकर"का दिव्यालोक अभिनव "प्रभात"की सृष्टि कर रहा है। अतः आशा ही नहीं, प्रत्युत पूर्ण विश्वास है कि, हमारी कला दिन-दूनी रात-चौगुनी अपनी उन्नतिकी "कर्म-भूमि"में अग्रसर होती जा रही है।

कलाके विकासमें धर्मका भी सहयोग आवश्यक है। प्रकृति-गत सौंदर्य्यमें जो अनंत रूप संनिहित है, उसे धर्म ही विश्वास और कल्पनाके द्वारा सर्वसाधारणके लिये अनुभव गम्य कर देता है। बालारुणकी लालिमा देखकर मनुष्य मुग्ध हो सकता है; परंतु उसका वह प्रभाव क्षणिक है—जबतक वह अरुणिमा है; तभीतक वह मोह है; परंतु धर्म उसको बतलाता है कि, इस प्रातःकालीन लालिमामें एक महान् शक्ति विद्यमान है —"तत्सवितुर्वरेण्यम्"। तब वह सौंदर्य-भावना शाश्वती और स्थायी हो जाती है। यदि समाजमें धर्मका भय है और धर्ममें सौंदर्यका, तो कलाकी वृद्धि अवश्य होगी। इसके उदाहरण देखनेके लिये हमें स्वयं अपनी पूर्व स्थितिपर विचार करना चाहिये। दूर जानेकी आवश्यकता नहीं।

विचित्र पूर्त्ति !

होती जो राहु, चन्द करती फिर ग्रास तुम्हें,
ग्राह हू जो होती रवि-छटा रोक लेती मैं।
जलजन्तु होती जाय बसती उदधि माँहि,
सिन्धु-मथन-आदि ही पान कर लेती मैं।
होती जो विधाता तो न रचती ही तुम्हें इन्दु,
मुनि हो अगस्त पुनि बन्धु जो गरल थी।
करती घमण्ड-खण्ड छार कर मिटा देती,
विरह-समस्या बस यों ही तो सरल थी॥

बाबू रामकृष्ण सहाय 'कुमुद'

कहानी

विधवाका भाग्य

साहित्याचार्य "मग",

महावीर-मन्दिरके पास एक विधवा युवती, कातर नयनोंसे, चारो ओर देख रही है। अभी-अभी इसके संगी किस ओर निकल गये, इसे मालूम नहीं। भीड़ जमी हुई थी। धक्के-मुक्केसे यह परेशान हो चली।

एक छोटी-सी चौकीपर भव्यमूर्त्ति महन्तजी माला जप रहे हैं। आगे इत्रदान, पानदानके सिवा एक युवती भी खड़ी है। महन्तजीका अभ्यासिद्ध हस्त जिस प्रकार चल रहा है, उसी प्रकार उनके मानस-मन्दिरमें उस युवतीका सहज सौन्दर्य भी थिरक रहा है।

युवती महन्तजीको देखकर ठिठक गयी। वह आशा-सूचक स्वरमें बोली—"बाबा, मैं अपने साथियोंसे बिछुड़ गयी हूँ, आप यहाँके महन्त हैं, कुछ उपकार करें। रामनाथ पंडेके यहाँ मेरा डेरा है, भीड़के बीचसे जानेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। कोई सीधी राह बता दें, जिससे मैं सदर सड़कतक चली जाऊँ।"

महन्तजीने उससे दो-चार मामूली बातें पूछकर एक ओर राह बता दी और उसके जाते ही आप भी उठ खड़े हुए। एक तो मन्दिरमें पड़े हुए लावारिस मालपर उनका सब तरहसे हक़ ठहरा, दूसरे घर आयी लक्ष्मीको कौन मूर्ख छोड़ता है!

२

नवल पढ़-लिखकर आ गये हैं। इनकी विद्याकी चर्चा दूर-दूरतक फैल रही है। इनके पिता फूले नहीं समाते। 'अब बिना हजारकी बात मुँहपर लाये इस लड़केको कौन लेगा,' यह बात मनमें लाते ही, खुशीसे इनकी बाँछें खिल जाती हैं। परन्तु थोड़े दिन बाद इन्हें मालूम हुआ कि, चौबीस वर्षके लड़केकी चाह समाजको नहीं है, चाहे वह विद्यावारिधि ही क्यों न हो। आशापर पानी फिरते देख जानकीनाथ सम्हल गये। अन्तमें अपनी गठरीसे ही कुछ दे-लेकर इन्होंने नवलकी शादी कर दी। इनके चलते एक गरीबको गौरीदान करनेका पुण्य मिल गया।

विवाह हो जानेके बाद नवल कुछ उदास दीख रहे हैं। इनका चित्त सांसारिक वासनासे धीरे-धीरे हट रहा है। इन दिनों इनके हाथमें सदा गीता या वेदान्त-की पोथी पड़ी रहती है। यद्यपि समयानुसार कार्य करनेमें इनसे अभीतक कोई चूक नहीं हुई है, जिससे घरवालोंको इनके विषयमें सन्देह हो; पर छिपे-छिपे इनके हृदयमें वैराग्यका बीज अंकुरित हो गया है।

इनकी सहधर्मिणी रोहिणी निरी बच्ची थी; अतः सांसारिक बन्धनमें उसकी बाहुवल्लरी भी इन्हें नहीं बाँध सकी। रोहिणी भविष्यकी चिन्तासे सर्वथा उन्मुक्त थी। उसे केवल गुड़ियोंसे मतलब था। वह नवलको कुछ भी नहीं समझती थी; क्योंकि गुड़ियोंके खेलमें वे शामिल नहीं होते थे! उसे सास-ससुरका दुलार चाहिये था, जो नयी-नयी गुड़ियाँ देकर उसे सदा सन्तुष्ट रखते थे।

नवल गार्हस्थ्य-सुखका आनन्द लूटना चाहते थे और रोहिणी शैशव-सुखका। गाड़ीका एक पहिया पूरब जाना चाहता था और दूसरा पच्छिम। नवलके हृदयोद्यानमें जो मधु-ऋतुका आगमन हुआ था, वहाँ झूला डालनेको रोहिणी जानती ही नहीं थी। वह गुड़ियोंके खेलमें व्यस्त रहती थी और नवलके कलेजे में कुढ़न पैदा करती थी।

एक दिन रोहिणीकी गुड़ियाका महल नवलके पैरकी ठोकर खाकर टूट गया। रोहिणीने देखा—उसे बर्दाश्त नहीं हुआ। उसने विना समझे-बूझे नवलके गालपर तमाचे जड़ दिये! नवलने क्रोधसे अपने गाल सहलायेतक नहीं!

३

आज अयोध्याजीसे, आनन्दनगरमें, साधुओंकी एक टोली उतरी है। गाँवमें खासी चहल-पहल मच गयी है। लोगोंमें कानाफूसी होने लगी है कि, यहाँ सबका मनोरथ पूर्ण हो जाता है। धधकती धूनीके पास ग्रामीण जनता जमने लगी। कोई भगत दम्मेकी जड़ीके लिये हाथ फैलाने लगे हैं; दूसरे मिरगीके लिये पगड़ीके कोनेमें भभूत रखकर गद्गद हो गये हैं!

महन्तजीका इन बातोंसे कोई सरोकार नहीं है। इनकी गद्दी दूर पड़ी रहती है। कोई भगत भी इनके पास बैठना पसन्द नहीं करता है; क्योंकि महन्तजी लल्लोचप्पोकी बातें नहीं करते और न लाल-गोपाल देनेकी हिम्मत ही रखते हैं। ये वेदान्तके निष्णात विद्वान् हैं तथा स्पष्ट वक्ता। इनकी उम्र करीब सत्तर सालकी है।

नवल इन्हींके पास बैठते हैं। महन्तजीको भी इनके सन्देहोंके निराकरणमें आनन्द आता है। विद्वानोंकी जोड़ीमें परस्पर प्रेम हो गया है। महन्तजी नवलकी शान्त प्रकृतिपर लट्टू हैं और नवल मुग्ध हैं महन्तजीकी अनुभवता तथा विद्वत्तापर।

दस-पाँच दिनोंतक आनन्दनगरमें साधुओंकी धाक जमी रही; लेकिन उचक्के साधु केवल तिलक-छापेकी मुहरसे ही अपना स्थायी प्रभाव ग्रामीणोंपर नहीं जमा सके। कलई खुल गयी। लोगोंने देखा, सोतेमें शङ्कर अहीरकी अंटीसे एक साधु रुपये निकाल रहा है! बस, सारा गुड़ गोबर हो गया। आदरके जगह फजीहत होने लगी। साधुओंने डेरा-डंडा उठा लिया। महन्तजी रो-कलप कर बिदा हुए।

महन्तजी चले गये। नवलकी उदासीमें बाढ़ आ गयी—विरक्तिमें बौरें लग आयीं। कहीं तसल्ली मिलनेकी उम्मीद रही ही नहीं। नवल हतप्रभ हो गये!

चतुर्दशीका व्रत था। कितनोंने, विधि-विधानसे, शिवलिङ्गकी पूजा करानेको, नवलको ही पकड़ा। इच्छा नरहते भी इन्हें मंजूर करना पड़ा।

नवल नदी-किनारे शिवलिङ्गकी पूजा करा रहे हैं और गौरसे किनारेकी झाड़ीको भी झाँक रहे हैं। पूजा हो गयी। व्रती एक-एक कर घर चले गये। नदीके किनारे फिर निस्तब्धताका राज्य छा गया। नवल पैर दबाकर झाड़ीके निकट पहुँच गये। मालूम नहीं, झाड़ीमें कौन-सी चीज थी, जिसे देखते ही इनके होंठों-पर मुस्कुराहट खेलने लगी।

छिन्नपक्ष गृध्रकी भाँति मरीचिमाली अस्ताचलके शिखरपर गिर रहे हैं। दूर, पूरबकी तरफ, अन्धकार काले लबादेके तहको खोल रहा है। नवल भी नदी-स्नानके लिये लोटा-धोती लेकर जल्दी-जल्दी पैर बढ़ा रहे हैं।

रात हो आयी। चार घड़ी मटककर जाने लगी; पर नवल नहाकर नदीसे नहीं लौटे। बुढ़े जानकीनाथ सारी रात टापते ही रह गये। सुबहकी सफेदी भी फैल गयी।

प्रातःकाल सबने देखा, किनारेपर नवलका लोटा पड़ा है और एक मुर्दा भी पड़ा है, सियारोंने जिसकी दशा बुरी कर रखी है। जो धोती नवल पहने हुए थे, वही धोती मुर्देकी कमरसें लिपटी है। इसके सिवा नवलकी अंगूठी भी मुर्देकी अँगुलीमें पड़ी है !

अब नवलकी मृत्युमें किसे सन्देह हो सकता था? चुपकेसे एक दूसरेका मुँह देखने लगे। जानकीनाथ अथाह शोकसागरमें डूब गये !

४

सावन-भादोकी रात एक तो यों ही डरावनी होती है; दूसरे मृतप्राय रोगीकी शय्याके निकट बैठना कुछ कम जीवटका काम नहीं है। पुत्रशोक-रूपी घूनने जानकीनाथके शरीरको खा डाला है। वे बरसोंसे खाटपर पकड़े हुए हैं। उनका जीवन-प्रदीप अब निर्वाणोन्मुख है। इतने दिनोंसे जो वे बच रहे हैं, वह केवल रोहिणीका मुँह देखकर ही। इधर दो दिनोंसे उनके ऊपर ज्वरका अधिक प्रकोप है।

रोहिणी अब बच्ची नहीं है। पन्द्रहवें वर्षमें उसने पाँव रखा है। गृहस्थीकी देख-रेख अब उसीके जिम्मे है। वह सांसारिक नियमोंसे बहुत-कुछ परिचित हो चुकी है। बूढ़े ससुरने भी उसे सुशिक्षिता बनानेमें कुछ कोर-कसर नहीं की है।

रात दोपहरसे कुछ ज्यादा जा चुकी है। जानकीनाथ अचेत पड़े हैं। आँचलसे रोहिणी उनका तलवा, धीरे-धीरे, सहला रही है। थोड़ी देर बाद वृद्धने कराहकर पानी माँगा। रोहिणी उन्हें पानी पिलाने लगी। पानी पीकर जानकीनाथ कुछ स्वस्थ हुए। बोले—"बेटी, तुम्हारे साथ मैंने बड़ा अन्याय किया है। मुझे प्रत्यक्ष फल मिल रहा है। वह पाप केवल एक जन्मके ही सुकृतसे नहीं सधेगा। कबतक मैं उद्धार पाऊँगा, नहीं जानता ! मेरी आत्माको तुम जैसी निर्दोष बालिकाकी हाय कभी भी स्वर्ग जाने नहीं देगी। मैं तुमसे क्षमा भी नहीं माँग सकता; क्योंकि ऐसा करना अन्याय होगा। मैं खूब जानता हूँ, बेटा नवलको वैराग्य क्यों उत्पन्न हुआ और उसने आत्महत्या क्यों कर डाली। बेटी, बे-जोड़ विवाहका यही परिणाम होता है।"

बूढ़ेकी अन्तर्वेदनाको रोहिणी चुपचाप सुनने लगी। बहुत-कुछ सोचनेपर भी उसे उत्तर नहीं सूझा ! थोड़ी देर विश्राम कर लेनेके बाद बूढ़ेने फिर कहा—"आओ बेटी, जरा समीप आ जाओ। मरते समय एक बार तुम्हें भरपेट देख लूँ। आज मेरी मृत्यु अवश्य हो जायगी। यह नियम है कि, बुझती बेर दिया जोरसे जल उठता है।

"कलसे तुमको अपने पैर खड़ा होना पड़ेगा। बूढ़ी सास तुम्हारे गले मढ़ी जायगी। सिरपर किसीकी भी छाया नहीं रहेगी। पापी होकर मैं तुम्हें धर्मोपदेश क्योंकर दे सकता हूँ; पर आशीर्वाद देनेके लिये मेरा मन न मालूम क्यों उतावला हो रहा है। जाओ बेटी, तुम्हारा भला हो !"

५

जानकीनाथको संसार छोड़े साल लग गया। कातिकका महीना भी आ पहुँचा। पके फलके बोझसे शस्यश्यामला वसुन्धरा शनैः-शनैः फलवती होने लगी। कीचड़का कहीं नामो निशान नहीं रहा। रास्ता साफ हो जानेके कारण तीर्थ-यात्रियोंकी टोली एक-एक कर हर गाँवसे निकलने लगी। आनन्दपुरसे भी प० श्यामाशङ्करका परिवार, खूब ठाट-बाटके साथ, यात्राके लिये तैयारी करने लगा। कमरमें रुपयोंकी पोटली उभाड़कर दो-चार ग्रामीण सज्जन भी इनके संगी बनने लगे। जिनके पास पैसे नहीं थे, वे "धनसे धरम" कहकर मन मसोसे रह गये !

रोहिणीकी सासके जीमें भी तीर्थ-यात्राकी बड़ी इच्छा थी; किन्तु धनाभाव होनेके कारण, वे कुछ बोलती नहीं थीं। रोहिणीसे सासका उतरा मुँह देखा नहीं गया। वह अगले सालके लिये तैयारी करने लगी। उसने एक गाय खरीदी, जिसके दूध-दहीसे खर्चका बहुत-कुछ बचाव होने लगा; दूसरे, बछड़ेके लालन-पालनमें उसे वात्सल्य-सुखकी भी अनुभूति होने लगी।

यद्यपि वह विधवा थी, तथापि ईश्वरने उसके शरीरको सधवाकी भाँति सजाना शुरू कर दिया था, विना माँगे ही उसके हृदयमें तरुणी-सुलभ वासनाका बीज बो दिया था। उस सम्प्राप्त-यौवनवती बालाके मनोमन्दिरमें मदन-महीपतिने भी अपनी डुगडुगी पीट दी थी; परन्तु हिन्दू-समाजके भयसे वह कहींको भी नहीं थी।

एकान्तमें बैठकर जब कभी वह चर्खा काता करती थी, तब उसे अनायास ही बाल्यावस्थाका स्मरण हो जाया करता था, हाथ रुक जाया करता था। पतिकी उपेक्षा-भरी दृष्टिका अर्थ आज वह बे-समझाये समझ रही थी। गुड़ियोंका महल टूटी-फूटी हालतमें पड़ा था; लेकिन उसके अन्दर रोहिणीका अतीत रहस्य छिपा हुआ था। एक दिन इसीको गिरते देखकर वह पतिको भी पीटती थी, यह खयाल करते ही, उसकी गण्डपालि लज्जावश लोहित हो जाती थी!

ज्यों-त्योंकर वह वर्ष भी बीत गया। रोहिणीके हाथमें कुछ रुपये जमा हो गये। एक दिन वह साससे बोली—"बीते वर्ष पण्डितजीका परिवार तीर्थ कर आया। हम लोगोंके पास पैसे नहीं थे। भगवान्की दयासे आपके जिम्मे अभी काफी रुपये हैं। कहें तो तीर्थयोग्य सामग्री जुटाऊँ। धर्म-कार्यके सिवा ये रुपये किस काममें आयेंगे!"

रोहिणीकी बात सुनकर उसकी सास मारे आनन्दके गद्गद हो गयीं! प्रेमाश्रुसे आँखें छलछला गयीं! वे बोलीं—"बेटी, मेरे लिये तुम इतना कष्ट क्यों उठाती हो! मेरी अभिलाषा पूर्ण कर क्या करोगी? निरत परिश्रम कर कष्टपूर्वक तुमने जो कुछ सञ्चय कर लिया है, उसे मेरी सुख-साधनामें क्यों वहा दोगी। मैं तो अब बूढ़ी हो गयी, आज-कलकी मेहमान हूँ; पर तुमको अभी संसारमें बहुत दिन रहना बाकी है। पासका पैसा ही केवल काम देता है।"

रोहिणी—"आपके लिये कष्ट नहीं उठाऊँ, तो किसके लिये उठाऊँ! आपके सिवा और मेरा कौन है! आपको दान-पुण्य नहीं करने दूँ, अपने लिये जुगाऊँ, ऐसा उपदेश मत दें। मैं भी तो विधवा हूँ; मेरा भी तो यही धर्म है।"

रोहिणीकी सास—"बेटी, ऐसा मत बोलो। मैं बूढ़ी हूँ, मेरा ऐसा धर्म भले ही हो सकता है; लेकिन तुम्हारा तो अभी दूधका दाँत भी नहीं टूटा है। तुम विधवा हो, तुम्हारा भी धर्म विधवावाला ही है, यह बात मेरे कलेजेको चीर रही है। तुम्हें तो शादीके वक्त कपड़ा पहननेका भी शऊर नहीं था, तुम भला विवाहका गूढ़ रहस्य क्या समझती? उस समयका पाप-पुण्य मेरे मत्थे मढ़ा जायगा। तुम तो सर्वथा निर्दोष हो। मैं सच कहती हूँ, भाँवर देनेके समय ही केवल तुम दोनोंका साथ हुआ था।"

रोहिणी—"इन बातोंसे क्या मतलब। आप सदा ऐसी चिन्ता क्यों करती रहती हैं। जिसके भाग्यमें जो लिखा रहता है, वही होता है। शनिबार नवमीको अच्छी यात्रा है। चाचाजी भी जानेको तैयार हैं। केवल आपकी सम्मति लेनी बाकी है।"

रोहिणीकी सास आज सबके समक्ष गर्वसे

रही हैं—"जिसका पुण्य सहायक होता है, वही तीर्थ-का नाम लेता है। सबके ऐसे भाग्य कहाँ!"

६

स्वामी ज्ञानानन्द गिरि महावीर-स्थानके महन्त हैं। दो वर्ष पहले ये बूढ़े महन्तजीके प्रिय शिष्य थे। इनका स्वभाव भी अच्छा था एवं मण्डली भरमें विशेष विद्वान् भी थे। इसी कारण इन्हें गद्दी मिली थी।

शराबका नशा एक निशासे ज्यादा नहीं रहता; पर दौलतका नशा इन्सानको पागल बनाकर छोड़ता है। हाथोंके पीले होते ही महन्तजी आपेसे बाहर हो गये; ऐशो-इशरतमें गर्क हो गये।

७

एक चौखूटे मकानके अन्दर अपूर्व षोड़शी युवती बेकसीकी हालतमें पड़ी है। दासीके बारम्बार कहनेपर यद्यपि वह प्राणकी रक्षाके लिये थोड़ासा दूध पी लेती है; तथापि उसका हृदय शान्त नहीं होता। बूढ़ी सास-की याद आते ही, बाहर जानेके लिये, वह छटपटाने लगती है; पर इस काल-कोठरीसे सही-सलामत निक-लनेकी राह उसे सूझती ही नहीं। महन्तजीके आनेपर, थोड़ी देरके लिये, द्वार खुल जाता है। वह पींजड़ेमें पड़ी सिंहनी-सी गम्भीर गर्जना करने लगती है। महन्त-जीके जाते ही फिर द्वार बन्द हो जाता है। वह महन्त जीको घृणाकी दृष्टिसे देखती है, उनकी बातोंका जवाब देनेमें भी पाप समझती है!

बाहर होनेका कोई उपाय न देख, एक दिन वह नजर बचाकर कोठेपर चढ़ गयी। नीचे कोई संन्यासी खड़ा था। वह गिड़गिड़ाकर बोली—"महा-राज, एक निःसहाय अबलाका उपकार करें, मैं यहाँ बन्दिनी हूँ।"

संन्यासी बाबाने इशारेसे धैर्य दिया। ये वे ही संन्यासी थे, जिन्हें गद्दी मिलनेकी पूरी आशा थी;

परन्तु ज्ञानानन्दने इनकी आशापर पानी फेर दिया था। इन्हें कोई मौका नहीं मिला था, जो ज्ञानानन्दको नीचा दिखाते। आज वैर साधनेकी कामना बलवती हो उठी।

महावीर-मन्दिरके सब संन्यासियोंने मिलकर युवतीको बाहर निकाला और महन्तजीके सामने ले आये। महन्तजी मारे लज्जाके गड़ गये। संन्या-सियोंकी चोटीली बातें उन्हें तीर-सी छेदने लगीं।

एक सन्यासी—"स्वामीजीको आप लोग व्यर्थ ही कलङ्कित करते हैं। ये आपकी तरह स्त्रीके मरनेपर संन्यासी नहीं हुए हैं; बल्कि पत्नीको घरमें रोते छोड़-कर धर्मवेदीपर अपनेको बलिदान किया है।"

दूसरा—"नहीं जी, धर्मवेदीपर नहीं, इस गद्दीपर, ऐसी तरुणीको पानेके लिये, अपनेको बलिदान किया है।"

तीसरा—"चुप रहो! इन बातोंसे क्या मतलब! (युवतीकी ओर) बेटी, तुम अपना परिचय दे जाओ। यहाँ तुम कैसे कैद हुई?"

युवती—"मैं तीर्थाटनके लिये अपनी सासके साथ यहाँ आयी हूँ। मेरा मकान आनन्दनगर है; पं० जानकीनाथकी मैं पतोहू हूँ। दर्शन करते समय कुछ विलम्ब हो गया, भीड़ ज्यादा थी। मैं छूट गयी। महन्तजीके पास सहायताके लिये गयी। इन्होंने राह बता दी; पर पीछे मालूम हुआ कि, मुझे धोखा दिया गया!"

सब तो कौतूहलवश उसकी बातें सुन रहे थे; लेकिन महन्तजीकी आँखें आँसूसे तर थीं। वे दौड़कर रोहिणीके पैरपर जा गिरे। बोले—"रोहिणी, सचमुच अमृतके धोखे मैंने तुम्हें हालाहल पिलाया है। तुम्हारा पति नवल मरा नहीं है; बल्कि अधम शरीर धारण किये तुम्हारे सामने खड़ा है!

वह लाश दूसरेकी थी। मैंने ही अपनी धोती उसकी कमरमें लिपटा दी थी और अपनी अँगूठी उसे पहना दी थी। विश्वास न हो, तो सुनो—तुम उस समय गुड़िया खेला करती थी। एक दिन मेरे पैरकी ठोकर खाकर महल गिर गया था। रंज होकर मने मेरे गालपर दो तमाचे जमा दिये थे। यह बात मेरे-तुम्हारे सिवा दूसरा कोई नहीं जानता।"

महन्तजी कुछ और कहनेको ही थे कि, एक बुड्ढी, शहरसे दौड़ती हुई, आयी और इन्हें छातीसे लगाकर सिर सूँघने लगी!

स्वयंसेवकोंका दल बाहर खड़ा देखता ही रह गया!

क्रीड़ाका कन्दुक

बा० ज्ञानपाल सेठिया

बन्धनसे जकड़ा बन्दी हूँ पाता हूँ मैं पीड़ा।
बेबस हूँ बना हुआ हूँ मैं निर्ममताकी क्रीड़ा॥
क्षुद्र दृश्यसा दृग-पथसे हूँ ओझल होता जाता।
इच्छित पथपर पल भी हा, विश्राम न हूँ अब पाता॥
हिम-निर्मित मेरे जीवनपर रवि-प्रकाश मँडराता।
क्षणके लिये न उड़ती बदलीका कर मुझपर छाता॥
हर्ष मुझे यदि प्रलङ्कर रवि भी नाचे जीवनपर।
पर अब करुणा जगे न तेरी ऐ मेरे करुणाकर॥

पुराण-परिचय

(२)

"गङ्गा"के प्रधान सम्पादक द्वारा

अष्टादश पुराण

(१) १८ पुराणोंमें पहला ब्रह्मपुराण है। शिव, श्रीमद्भागवत, नारद, देवीभागवत और ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार इसकी श्लोक-संख्या १०००० और मत्स्यपुराणके मतानुसार १३००० है; परन्तु इस समय, प्रचलित ब्रह्मपुराणमें, १३७८३ श्लोक पाये जाते हैं। इससे सूचित होता है कि, या तो इस पुराणमें लिपिकारोंने घटी-बढ़ी की है या राजाओंने सभा-पण्डितों द्वारा इसकी श्लोक-संख्यामें न्यूनत्वाधिक्य करा दिया है। पुराणज्ञाता पण्डितोंका अनुमान है कि, ११ वीं या १२वीं शताब्दीमें दाक्षिणात्य विद्वानोंने इसमें कई माहात्म्य-प्रकरण बढ़ा दिये हैं। विष्णुपुराणके अनुवादक प्रो० विलसन इस पुराणके रचनाकालके सम्बन्धमें बड़ी भ्रान्तिमें पड़ गये हैं। उनके मतानुसार इस पुराणकी रचना १३वीं शताब्दीमें हुई है। परन्तु बल्लालसेनके दानसागरमें (जिसकी रचना १२वीं सदीमें हुई है) ब्रह्मपुराणके कितने ही श्लोक उद्धृत हैं। इसी समयके निर्मित "ब्राह्मणसर्वस्व" और "हेमाद्रि" आदि ग्रन्थोंमें भी इस पुराणके श्लोक पाये जाते हैं। उड़ीसेके भुवनेश्वर-क्षेत्रमें, ११ वीं शताब्दीमें, भवदेवभट्टने अनन्त वासुदेवका मन्दिर बनवाया था। यद्यपि ब्रह्मपुराण में अनन्त वासुदेवका माहात्म्य है; परन्तु इस मन्दिरकी चर्चा नहीं है। यदि ११ वीं सदीके बाद ब्रह्मपुराण बना रहता, तो उसमें अवश्य ही माहात्म्यके साथ मन्दिरका भी उल्लेख रहता। पाश्चात्य और कितने ही पौरस्त्य पण्डितोंने वर्तमान महाभारतका काल ईसासे ५ सौ वर्ष पहले निश्चित किया है और इधर, महाभारतमें, इस ब्रह्मपुराणके कितने ही श्लोक उद्धृत हैं। महाभारतके अनुशासनपर्व, १४२।१६ और १८ के सहित पूरे १४३ से १४५ के अध्यायोंके साथ ब्रह्मपुराणके २२३ से २२५ तकके अध्यायोंको और महाभारतके अनुशासनपर्व १४६ अध्यायके साथ ब्रह्मपुराणके २२६ अध्यायको मिलाकर पढ़नेसे यह बात पुष्ट हो जाती है। वहाँ इस सन्देहका भी निराकरण हो जाता है कि, ब्रह्मपुराणसे ही ये श्लोक महाभारतमें उद्धृत हैं, महाभारतसे ब्रह्मपुराणमें नहीं। इसलिये केवल ऐतिहासिक विचारसे भी ब्रह्मपुराणका निर्माण-समय २५०० वर्षोंका मानना युक्तियुक्त बोध होता है। इसके सिवा ब्रह्मपुराणमें जो अत्यधिक आर्षप्रयोग और वैदिक उपाख्यान पाये जाते हैं, उनसे तो इसकी रचना दुर्गम्य कालकी विदित होती है।

(२) द्वितीय पद्मपुराण है। मत्स्य, नारद (नारदीय), श्रीमद्भागवत, देवीभागवत और शिवपुराणके अनुसार इसमें ५५००० तथा ब्रह्मवैवर्तपुराणके मतानुसार ५५७०० हजार श्लोक हैं; परन्तु पश्चिम भारतमें जो पद्मपुराण प्रचलित है, उसमें ४८४५२ ही श्लोक हैं। यह पुराण अत्यन्त प्राचीन है; क्योंकि इसका वचन आपस्तम्ब-धर्मसूत्रमें उद्धृत है; परन्तु परवर्ती कालमें इस पुराणमें बहुत-कुछ परिवर्तन-परिवर्द्धन भी कर दिये गये हैं।

(३) तृतीय विष्णुपुराण है। ब्रह्मवैवर्त, मत्स्य, देवीभागवत, नारद और शिवपुराणके मतानुसार इसकी श्लोक-संख्या २३०००, प्रो० विलसनके कथनानुसार ७०००

और श्रीधरस्वामीके विवेचनानुसार ६००० है। किसीके मतमें १०००० और किसीकी व्याख्यामें २००० ही हैं! "विष्णुधर्मोत्तर"नामक अंशको इस पुराणका उत्तर भाग कहा जाता है। अलबरूनी और नारदपुराणके वचनोंसे भी यही बात प्रमाणित होती है। परन्तु वर्तमान विष्णुपुराणमें विष्णुधर्मोत्तरके श्लोक मिलानेपर भी १६००० ही श्लोक होते हैं। हाँ, यह अवश्य है कि, विष्णुधर्मोत्तर भी खण्डित रूपमें ही मिलता है। यह पुराण अत्यन्त प्राचीन है, यह बात हम पहले ही कह चुके हैं। इसमें प्रक्षिप्त अंश और गद्य भी हैं। इसका अँग्रेजी अनुवाद प्रो० एच० एच० विलसनने किया है, जिसमें उन्होंने अठारहो पुराणोंकी आलोचना भी लिखी है। विलसन साहब विष्णुपुराणको सर्वश्रेष्ठ पुराण मानते हैं। प० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और लाला लाजपत राय आदि भी विष्णुपुराणको सर्वप्राचीन और प्रामाणिक मानते हैं। इसकी रचनाशैली अत्यन्त प्राचीन कालकी मानी जाती है।

(४) चतुर्थ शिवपुराण है। मत्स्य, नारद और देवीभागवतमें इसके स्थानमें वायुपुराणका नामोल्लेख है। "मुद्गल" नामक पुराणमें उक्त दोनों पुराणोंका नाम है। बहुत लोग कहते हैं, "इसका वास्तविक नाम वायुपुराण ही है; परन्तु प्रधानतः शिवतत्वकी व्याख्या होनेके कारण इसका नाम शिवपुराण भी पड़ गया।" विष्णु, पद्म, मार्कण्डेय, कूर्म, वाराह, भागवत, स्कन्द आदि पुराणोंमें शिवपुराणका ही नाम है, वायुपुराणका नहीं; परन्तु विचार करनेपर दोनों एक ही मालूम पड़ते हैं। शिवपुराण और वायुपुराण नामकी जो दो पुस्तकें छपी हैं, उनमें एकसे ही श्लोक हैं; कहीं-कहीं, नाम मात्रका, भेद है। देवीभागवतके अनुसार १०६०० और शिव, श्रीमद्भागवत, नारद, ब्रह्मवैवर्त तथा मत्स्यके मतानुसार इसकी श्लोक-संख्या २४००० है। मुद्रित शिवपुराणमें १८००० ही श्लोक पाये जाते हैं। वायुपुराणकी कुछ ऐसी संहिताएँ प्रचलित हैं, जिन्हें संयुक्त करनेपर चौबीस हजारवाली संख्या पूरी की जा सकती है। सातवीं शताब्दीमें बाणभट्टने वायुपुराणका उल्लेख किया था। छठी शताब्दीमें महाकवि कालिदास हुए थे, जिन्होंने शिवपुराण [ज्ञानसंहिता, ३ से २४ अ०] के आधारपर "कुमार-सम्भव"का निर्माण किया है। विलसन साहब इस पुराणको ईसाके सैकड़ो वर्ष पूर्व विरचित मानते हैं। इसका पारायण करनेपर श्लोकसंख्यामें भी घटी-बढ़ी देखी जाती है।

(५) पाँचवाँ भागवतपुराण है। शिव, देवीभागवत, श्रीमद्भागवत, नारद, ब्रह्मवैवर्त और मत्स्यपुराणके मतानुसार इसकी श्लोकसंख्या १८००० है। यही संख्या पायी भी जाती है। नारद, वैवर्त, श्रीमद्भागवत, श्रीधरस्वामी, मिताक्षरा-टीकाकार, काशीनाथ, पुराणार्णवकर्ता आदिके मतानुसार १८ पुराणोंमें श्रीमद्भागवत है और मत्स्य, शिव, कालिका, भागवत-कथा-संग्रह, दुर्जनमुखचपेटिका आदिके कथनानुसार देवीभागवत ही महापुराण [१८ के अन्तर्गत] है। उधर दोनोंमें स्कन्धों और श्लोकोंतककी संख्या समानसी है। इसे शिवपुराण नवाँ और देवीभागवत चौथा मानता है। श्रीमद्भागवतमें यह कहीं [१२।७।२३] आठवाँ और कहीं [१२।१३।५] पाँचवाँ माना गया है। जैसे विष्णुपुराण, वाजसनेयोपनिषद्, ब्राह्मणोपनिषद्, मुण्डकोपनिषद् आदिके कथनानुसार चार और शतपथ-ब्राह्मण तथा मनुस्मृति आदिके मतानुसार तीन वेद हैं, उसी तरह भागवतके सम्बन्धमें भी बहुत गड़बड़ है। एक भारी विचित्रता यह भी है कि, जिन श्रीकृष्णकी, कथासे श्रीमद्भागवतके पन्ने भरे पड़े हैं, उनकी सहधर्मिणी राधाका उसमें नामोल्लेखतक नहीं है; किन्तु ब्रह्मवैवर्तमें राधाकी पूरी माहात्म्य लिखा है और उधर देवीभागवतमें राधाकी पूरी कथा है। श्रीमद्भागवतमें जैसे दार्शनिक भावोंका प्राधान्य है, उसी तरह देवीभागवतमें तान्त्रिक भावोंका। इन्हीं तान्त्रिक भावोंके कारण कुछ लोग देवीभागवतको

आधुनिक कहते हैं; किन्तु नेपालमें एक ऐसा तारिश्रक ग्रन्थ पाया गया है, जो ईस्वी सन्‌के लगभग लिखा गया था। अत्यान्य ऐतिहासिक तथा कलकत्ता हाई कोटके मू० पू० चीफ जस्टिस उडरफ साहब आदि तन्त्रपद्धतिको बहुत प्राचीन मानते हैं। इसलिये इस दृष्टिसे देवीभागवतको अर्वाचीन नहीं माना जा सकता। देवीभागवतकी भाषासे श्रीमद्भागवतकी भाषाके साथ बड़ा भेद है। श्रीमद्भागवतकी भाषा परिमार्जित, प्राञ्जल, आलङ्कारिक, विविधछन्दोबद्ध और साहित्य-गुण-संवर्द्धित है। श्रीमद्भागवतके दार्शनिक भावोंको हृदयङ्गम करनेके लिये उत्कट पाण्डित्य अपेक्षित है। हमारे यहाँ यह कहावत ही प्रचलित है—"विद्यावतां भागवते परीक्षा।" जो हो; परन्तु मूल भागवत (महा-पुराण) कौन है—इसका निर्णय करना बहुत कठिन कार्य है। ऐसा कहा जाता है कि, मूल पञ्चम महापुराण (भागवत) के आधारपर ही वैष्णवों और शाक्तोंने अपने-अपने सम्प्रदायोंके मतानुसार दोनोंका अलग-अलग संकलन किया है। सम्भव है, मूल पुराण खण्डित हो जानेके कारण यह प्रयत्न किया गया हो; परन्तु यह तो अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा कि, अपने रचनावैभवके कारण श्रीमद्भागवतने, हिन्दू-समाजमें, पुराणोंमें, सर्वप्रथम स्थान अधिकृत कर रखा है। महाभारत और रामायणको छोड़कर इसकी-सी किसी भी पुराणकी प्रतिष्ठा नहीं है। इसका सप्ताह-पाठ घर-घर आनन्द-शान्तिकी विमल मन्दाकिनी बहा देता है। इस ग्रन्थ-रत्नकी लगभग ५० टीकाएँ अत्यन्त प्रचलित हैं। सम्मान और टीका-बहुलताकी दृष्टिसे इससे उतरकर विष्णु-पुराण है। देवीभागवत-पर भी "नीलकण्ठ स्वामी"की टीका है; परन्तु उसका कम प्रचार है। भागवत नामके एक उपपुराणका भी प्रचार देखनेमें आता है।

एक बात और। प्रो० विलसन और उनके अनुगामी यह अनुमान लड़ाते हैं कि, वोपदेव नामके पण्डितने श्रीमद्भागवतकी रचना की है; परन्तु यह बात निराधार है। ईसाकी १३वीं सदीमें हेमाद्रिके आश्रयमें वोपदेवने भागवतकी एक उपक्रमणिका बनायी थी। उन्होंने भागवतका रहस्य बतानेवाला "मुक्ताफल" नामका एक ग्रन्थ भी बनाया था। बस, इन्हीं ग्रन्थोंको देखकर कोलब्रुक आदि वोपदेवको भागवत-कर्त्ता मान बैठे! यह इन लोगोंकी जबर्दस्त भूल है। स्वयं वोपदेवके आश्रयदाता हेमाद्रिने भी श्रीमद्भागवतके कई वचन, अपने ग्रन्थमें, उद्धृत किये हैं।

(६) छठा नारद पुराण है। इसे ही नारदीय पुराण भी कहा जाता है। बृहन्नारदीय और लघुबृहन्नारदीय नामके दो पुराणोंका भी उल्लेख पाया जाता है; परन्तु जैसे बृहद्विष्णुपुराण अप्राप्य है, वैसे ही ये भी। मत्स्य, वैवर्त, शिव, देवीभागवत, श्रीमद्भागवत और स्वयं नारदीय पुराणके मतानुसार इसमें २५००० श्लोक हैं; परन्तु मुद्रित नारदपुराणमें २२००० श्लोक ही हैं। इस पुराणके सम्बन्धमें विलसन साहबको भारी भ्रम हुआ है। वे इस पुराणके उत्तर भाग (१—३७ अ०) को ही नारदपुराण मान बैठे हैं! इसीलिये उन्हें इसके ३००० श्लोक ही मिले हैं। मि० हाल द्वारा सम्पादित विलसनके "विष्णुपुराण" को देखनेसे यही बात पुष्ट होती है। यह हम पहले ही लिख आये हैं कि, १२वीं शताब्दीमें बल्लालसेन और ११ वीं में अलबरूनीने इस पुराणके वचन उद्धृत किये हैं। प्रत्येक पुराणका जैसा सुव्यवस्थित लक्षण इस पुराणमें पाया जाता है, वैसा किसीमें भी नहीं। पाश्चात्य विद्वान् इस सम्बन्धमें इसकी सर्वापेक्षा प्रतिष्ठा करते हैं। लिपिकारोंने भी इसमें बहुत रद्दोबदल कर डाला है।

(७) मार्कण्डेयपुराण सातवाँ पुराण माना गया है। श्रीमद्भागवत, देवीभागवत, शिव, नारद, वैवर्त और मत्स्य-पुराणके मतानुसार इसकी ९००० श्लोकसंख्या है; परन्तु प्रचलित मार्कण्डेयपुराणमें ६९०० ही श्लोक हैं। नारद-पुराणसे पता चलता है कि, इसका एक उत्तर खण्ड भी

है। सम्भव है, उसमें २१०० श्लोक हों। शङ्कराचार्य, मयूर, वाण आदिने इसके वचन उद्धृत किये हैं। इस पुराणमें कहीं भी साम्प्रदायिकपन नहीं है। घर-घर प्रचलित "सप्तशती" इसी पुराणकी है। इसे विलसन साहब अत्यन्त प्राचीन पुराण मानते हैं।

(८) आठवाँ आग्नेय पुराण है। मत्स्य, शिव और देवीभागवतके अनुसार इसमें १६००० श्लोक, श्रीमद्भागवत और वैवर्तपुराणोंके अनुसार १५८०० तथा नारदीयपुराणके मतमें १२००० हैं; परन्तु मुद्रित अग्निपुराणमें १५००० से कुछ अधिक श्लोक पाये जाते हैं। इसके प्रथम अध्यायमें ही, वेद-मंत्र द्वारा, अग्निका माहात्म्य कहा गया है। इसे विलसन साहब बहुत मूल्यवान् पुराण समझते हैं। इसमें नाट्यशास्त्र और भास्कर्य-विद्याके अनेक विषय हैं। एक अमुद्रित "वह्निपुराण" भी पाया जाता है। दोनोंके अनेक प्रतिपाद्य विषय एक ही हैं। इसमें भी बहुत परिवर्तन हुआ है। मत्स्यपुराणमें जो इसका लक्षण है, उसका इसमें बहुत-कुछ अभाव है।

(९) ९ वाँ भविष्यपुराण कहा गया है। नारदपुराणमें लिखा है कि, इसमें १४०८० श्लोक हैं; परन्तु शिव, मत्स्य, वैवर्त, देवीभागवत और श्रीमद्भागवतके कथनानुसार १४५०० श्लोक हैं। इस समय चार प्रकारके भविष्यपुराण पाये जाते हैं। इस बातका निर्णय करना बहुत ही दुरूह है कि, इनमें कौन-सा प्राचीन और कौन सा अर्वाचीन है। अन्यान्य पुराणोंमें जो इस पुराणके लक्षण हैं, वे प्रायः चारोंमें पाये जाते हैं। एक भविष्यपुराणमें उद्भिज्ज-विद्या या वनस्पतिशास्त्रका भी वृत्तान्त है, जो विज्ञान-सम्मत है। इसमें ज्योतिःशास्त्रकी भी अनेक बातें हैं। एकमें तान्त्रिक उपासना का आधिक्य है। हम पहले लिख आये हैं कि, आपस्तम्ब-धर्मसूत्रमें भविष्यपुराणका श्लोक उद्धृत है। एक भविष्यमें उक्त श्लोक-विषय भी है। इस पुराणमें एकाधिक भविष्य विषय वर्णित हैं। लिपिकारोंने जी खोलकर इसमें परिवर्तन-परिवर्द्धन किये हैं।

(१०) दसवें पुराणमें ब्रह्मवैवर्तपुराणकी गणना है। मत्स्य, वैवर्त, श्रीमद्भागवत, नारद, शिव और देवीभागवत पुराणके कथनानुसार इसमें १८००० श्लोक हैं; किन्तु मुद्रित वैवर्तमें यह संख्या नहीं पायी जाती। मत्स्य, शिव और नारद पुराणमें जो इसके लक्षण लिखे हैं, वे इसमें एकदम नहीं हैं इसमें तान्त्रिक विषयोंके सिवा कई आधुनिक जातियोंका भी (१०।१२१) उत्पत्ति-विवरण है। इसमें राधाकी पूरी कथा है। इसे कितने ही पाश्चात्य और एतद्देशीय पण्डित आधुनिक कहते हैं और दाक्षिणात्यमें प्रचलित ब्रह्मवैवर्त्तको ही मूल पुराण मानते हैं। निर्णयसिन्धुमें एक लघुवैवर्त पुराणका भी उल्लेख है; किन्तु वह अप्राप्य है।

(११) ग्यारहवें पुराणका नाम लिङ्गपुराण है। इस ग्रन्थमें अग्निलिङ्ग-मध्यस्थ होकर महादेवजीने चतुर्वर्गका उपदेश दिया है। सभी पुराणोंमें इसकी ११००० श्लोक-संख्या कथित है। हलायुधके "ब्राह्मणसर्वस्व"में बृहल्लिङ्ग पुराणसे श्लोक उद्धृत हैं; परन्तु उसका अब कहीं पता नहीं है। हाँ, वशिष्ठलिङ्ग नामका एक पुराण अवश्य पाया जाता है। बुद्ध निर्वाणके पश्चात् इसमें कुछ ऐसे श्लोक मिला दिये गये हैं, जिनसे विष्णुकी निन्दा होती है। अन्यान्य पुराणोंमें जो इसके लक्षण लिखे हुए हैं, वे सबके सब इसमें पाये जाते हैं। इसलिये इसका प्राचीन रूप बहुत कुछ प्रकृत है।

(१२) वाराहपुराण बारहवाँ पुराण माना गया है। सब पुराणोंमें इसकी श्लोक-संख्या २४००० बतायी गयी है। कलकत्तेकी एशियाटिक सोसाइटीने इसका पूर्व खण्ड छापा है, जिसमें १०५०० श्लोक हैं। उत्तर खण्ड छपनेपर, सम्भव है, चौबीस हजारवाली संख्या पूरी हो जाय। दाक्षिणात्यमें भी एक वाराहपुराण प्रचलित है। दोनोंमें उसी तरह पाठान्तर है, जिस तरह गौड़ीय और दाक्षिणात्य रामायणोंमें। हाँ, दोनों पुराणोंके आलोच्य विषय एक ही हैं। बर्लिन-राज-पुस्तकालयकी तालिकासे भी इस पुराणका परिचय पाया जाता है। हेमाद्रि, बल्लालसेन

आदिने इसके वचन उद्धृत किये हैं। इसमें बहुत कम क्षेपक हैं। मत्स्योक्त लक्षण भी इसमें पूरे घटते हैं।

(१३) तेरहवीं संख्या स्कन्दपुराणकी है। देवीभागवत, नारद और वैवर्तपुराणमें इसकी श्लोकसंख्या ८१०००, श्रीमद्भागवत और मत्स्यपुराणमें ८११०० तथा शिवपुराणमें ८४००० बतायी गयी है। इसकी छः संहिताएँ और सात खण्ड प्रचलित हैं। इन तेरहोंकी श्लोक-संख्या १ लाखसे भी अधिक है। महामहोपाध्याय प० हरप्रसाद शास्त्री और बेल्डन साहबने नेपालके राज-पुस्तकागारमें स्कन्दपुराणका अम्बिकाखण्ड देखा है। उसमें नन्दिकेश्वर-माहात्म्य (स्कन्दपुराणीय) भी है। यह पुस्तक ७वीं सदीकी लिखी हुई है। इस पुराणके काशी-खण्डकी एक हस्तलिखित प्रति "बँगला विश्वकोष"-कार्यालय (कलकत्ता) में भी है। इसी पुराणके रेवा-खण्डके अन्तर्गत सुप्रसिद्ध "सत्यनारायण-कथा" है। इस पुराणमें जगन्नाथ-(पुरीस्थ) माहात्म्य भी है। इसमें सन्देह नहीं कि, इस पुराणमें भी साम्प्रदायिकोंने बड़ा परिवर्द्धन किया है। आधुनिक जातियोंका भी इसमें वर्णन है।

(१४) वामनपुराण चौदहवाँ पुराण है। शिवपुराण आदि सभी पुराण इसमें १०००० श्लोक बताते हैं। इसका पूर्व भाग ही प्रकाशित हुआ है, उत्तर भाग नहीं। इसके उत्तर भागका नाम बृहद्वामन है। नारद-पुराणोक्त लक्षण भी इसमें पाये जाते हैं। ऋग्वेदोक्त त्रिविक्रमा-वतारकी कथाका इसमें प्राधान्य है।

(१५) कूर्मपुराण पन्द्रहवाँ पुराण माना जाता है। वैवर्त, शिव, नारद, देवीभागवत और श्रीमद्भागवतमें इसके १७००० और मत्स्यपुराणमें १८००० श्लोक माने गये हैं; परन्तु प्राप्त कूर्मपुराणमें ६००० ही श्लोक हैं। मत्स्यपुराण और नारदपुराणके कथित लक्षण इसमें पाये जाते हैं। इसमें व्यास-गीता, ईश्वर-गीता आदि कई गीताओंका उल्लेख है।

(१६) मत्स्यपुराण सोलहवाँ पुराण है। नारदपुराण इसमें १५००० श्लोक मानता है और शेष सब पुराण १४०००। परन्तु स्वयं मत्स्यपुराणके कथनानुसार इसमें २०००० श्लोक हैं। प्रकाशित मत्स्यपुराणमें प्रायः १५००० श्लोक हैं। इसी पुराण (५०।६६ से ६७) से पता चलता है कि, अधिसीमकृष्णके राजत्वकाल (आदि कलियुग) में इसका सङ्कलन हुआ है। स्मार्त रघुनन्दनने "वृषोत्सर्ग-तत्त्व" में इसका वचन उद्धृत किया है। इस पुराणमें भी उलट-फेर हुआ है।

(१७) सत्रहवें पुराणका नाम गरुडपुराण है। इस पुराणमें मत्स्यपुराण १८००० और शेष पुराण १६००० श्लोक मानते हैं। मत्स्य, नारद आदि पुराणोंमें कहे गये लक्षण इसमें पाये जाते हैं। इसमें अन्धक, गुप्त आदि वंशोंका विवरण नहीं है। इसके एक श्लोक (१४४।४२) से पता चलता है कि, इसका सङ्कलन जनमेजयके समयमें हुआ है। इसमें बुद्धदेवको २१ वाँ अवतार माना गया है। इस समयके गरुडपुराणमें ११००० ही श्लोक पाये जाते हैं। श्रीमद्भागवतको छोड़कर इस पुराणका सर्वाधिक प्रचार है। इसमें तान्त्रिक विषयोंका अभाव है।

(१८) अठारहवाँ पुराण ब्रह्माण्डपुराण है। इसके नामानुसार इसमें भूगोलविद्याका अधिक विवरण है। वैवर्त, नारद और श्रीमद्भागवतके कथनानुसार इसमें १२०००, देवीभागवतके मतानुसार १२१०० और मत्स्य तथा शिव-पुराणके अनुसार १२२०० श्लोक हैं। कितने ही विद्वान् शिवपुराण, विष्णुपुराण और ब्रह्माण्डपुराणको सर्वापेक्षा प्राचीन मानते हैं। मत्स्य, नारद और शिवपुराणमें जो ब्रह्माण्डपुराणके लक्षण हैं, वे सब इसमें पाये जाते हैं। प्रक्रिया, अनुषङ्ग, उपोद्घात, उपसंहार आदि चार पादोंमें यह परिपूर्ण है और इसके १२००० श्लोक भी प्रायः पाये जाते हैं। इसके उपसंहार-पादसे पता चलता है कि, अधिसीमकृष्णके समय इसका सङ्कलन हुआ है। इसमें अधिसीमकृष्णके पीछेके वंशों (भविष्य राजवंशों) की कथा भी नहीं है।

आज प्रायः डेढ़ हजार वर्ष हुए, कुछ हिन्दू महाभारत, रामायण और ब्रह्माण्डपुराणको लेकर जावा, बाली, (बृहत्तर भारत) आदि गये और वहीं रह गये। उन लोगोंका आचार-विचार इन्हीं तीनों ग्रन्थोंके ऊपर आश्रित हुआ और आजतक उनके यहाँ ये ग्रन्थ, वेदोंकी तरह, पूजे जाते हैं। उस समयके कुछ ही दिन पश्चात् जावा और बालीकी कवि-भाषामें ब्रह्माण्डपुराणका अनुवाद किया गया; जिसका विवरण डा० फ्रेडरिकने ओलन्दाज-(डच)-भाषामें प्रकाशित किया। भारत और बृहत्तर भारत (*Greater India*) में मुद्रित ब्रह्माण्डपुराणोंमें कुछ भी अन्तर नहीं है। हाँ, बृहत्तर भारत (जावा, बाली) में मुद्रित ब्रह्माण्डपुराणमें भविष्य राजवंशोंका कुछ परिचय नहीं है। कदाचित् राजाओंने अपनी कीर्ति स्थायिनी करनेके लिये वह प्रकरण पण्डितोंसे पुराण (या सभी पुराणों) में बढ़वा दिया हो। किन्तु श्रीमद्भागवत (१२।७।१२) से तो यह पता चलता है कि, भविष्य राजवंशोंका विवरण भी पुराणोंका एक लक्षण है। जो हो; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, ब्रह्मांडपुराणने बाली आदि द्वीपोंमें हिन्दूधर्मकी नींव दृढ़ कर दी है। बाली, जावा आदिके हिन्दुओंको (विशेषतः ब्राह्मणोंको) शैव-सिद्धान्त पर सुदृढ़ रखना इसी पुराणका कार्य है। वहाँ कितने ही ब्राह्मण तो ब्रह्माण्डपुराणके सिवा अन्य १७ पुराणोंका अस्तित्व भी स्वीकार नहीं करते! यहाँ यह बात भी ध्यानमें रखनेकी है कि, जावा, बाली, सुमात्रा आदिके हिन्दू जितनी श्रद्धा रामायण, ब्रह्माण्डपुराण और महाभारतपर रखते हैं, उतनी भारतके नहीं।

विविध पुराण

इन १८ पुराणोंके सिवा १८ उपपुराण भी हैं, जिनमें कइयोंका उल्लेख दानसागर (५२ वीं सदी), वेदार्थ-दीपिका [११ वीं सदी] और बल्लवस्मी [११ वीं सदी] ने किया है। १८ उपपुराण ये हैं—१ भागवत, २ माहेश्वर, ३ ब्रह्मांड, ४ आदित्य, ५ पराशर, ६ सौर, ७ नन्दिकेश्वर, ८ साम्ब, ९ कालिका, १० वारुण, ११ उशनस्, १२ मानव, १३ कापिल, १४ दुर्वासस्, १५ शिवधर्म, १६ बृहन्नारदीय, १७ नारसिंह, १८ सनत्कुमार। इनमें कितने ही अप्राप्य और खण्डित हो गये हैं। इनके अतिरिक्त १८ औपपुराण या अतिपुराण भी हैं, जिनमें कितने ही प्रकाशित भी हो चुके हैं— १ कार्तव, २ ऋजु, ३ आदि, ४ मुद्गल, ५ पशुपति, ६ गणेश, ७ सूर्य, ८ परमानन्द, ९ बृहद्धर्म, १० महाभागवत, ११ देवी, १२ कल्कि, १३ भार्गव, १४ वाशिष्ठ, १५ कौर्म, १६ गर्ग, १७ चण्डी और १८ लक्ष्मी। इन १८ औपपुराणोंमें किसी-किसीकी रचना बड़ी ही मार्मिक और हृदयग्राहिणी है। कितनोंमें ही ज्ञातव्य इतिहास भी है।

जैनियोंमें भी पुराण हैं। उनके २४ तीर्थङ्करोंके नामोंपर २४ पुराण प्रचलित हैं। इन पुराणोंको ईसाकी ६ ठी और ७ वीं शताब्दियोंमें विरचित माना जाता है। ये सब पुराण संस्कृतमें ही हैं। जैनियोंमें एक "पाण्डवपुराण" भी प्रचलित है। एक "महापुराण-टिप्पनी" नामका जैन-ग्रन्थ प्राकृत भाषामें है। जैनियोंके कई पुराण कनाड़ी भाषामें भी हैं। इनमें शान्तिनाथपुराण, चामुण्डरायपुराण, पुष्पदन्तपुराण, हरिवंश आदि अत्यधिक प्रचलित हैं।

नेपाली बौद्धोंमें नौ पुराण प्रचलित हैं, जिन्हें वे "नव-धर्म" संज्ञा देते हैं। इन नवोंके ये नाम हैं—१ प्रज्ञा-पारमिता, २ गण्डव्यूह, ३ समाधिराज, ४ लङ्कावतार, ५ तथागत गुह्यक, ६ सद्धर्म-पुण्डरीक, ७ ललित-विस्तर, ८ सुवर्णप्रभा, ९ दशभूमीश्वर। इन सबमें आख्यान, इतिहास, जीवनी, व्रत आदि वर्णित हैं। नेपाली बौद्धोंमें एक "स्वयम्भूपुराण" भी प्रचलित है, जिसे (८ म अध्याय) देखनेसे पता चलता है कि, शैवोंने बौद्धोंको ग्रास-सा कर लिया था। इस पुराणको कलकत्तेकी एशियाटिक सोसाइटीने प्रकाशित किया है।

पुराणका महत्त्व

वास्तवमें पुराण संस्कृत-साहित्यका अलंकार और हिन्दूधर्मका आधार है । संस्कृत-साहित्यसे पुराणको निकाल देनेसे वह निर्जीव हो जायगा और हिन्दूधर्मसे पुराणको बाहर कर देनेसे उसका हृदय विनष्ट हो जायगा। वैदिक साहित्य जटिल तथा दुरूह है और दर्शनसाहित्य तो भाषा-जटिलता तथा भाव-विकटताके लिये प्रसिद्ध ही है। इसलिये हम नहीं समझते कि, केवल वैदिक साहित्यका अध्ययन करनेसे तुरत किसीके हृदयमें भक्तिकी विमल मन्दाकिनी बहेगी या ज्ञानकी दिव्य ज्योत्स्ना खिलेगी। इसी तरह तर्क-वैभव या कल्पना-सम्पत्ति प्राप्त करनेके लिये दर्शनशास्त्र अद्वितीय साधन है; परन्तु उसमें साधारण जनके लिये वह सरसता, वह मृदुता और वह कवि-हृदय कहाँ, जो पुराणमें है? वेद और दर्शन कुछ अधिकारी पुरुषोंके लिये ही उपयोगी हैं; परन्तु पुराण प्राणि-मात्रके लिये सञ्जीवनी है। विदेशियों-विधर्मियोंको संस्कृत-साहित्यकी गरिमा-महिमा समझानेमें जितनी सहायता पुराण और उसके आधारपर विरचित काव्यग्रन्थोंने दी है, उतनी वेद या दर्शनने नहीं। हमारे विचारसे तो कठिनसे कठिन परिस्थितिमें भी पुराणने ही संस्कृत-साहित्यकी रक्षा की है।

पुराण हिन्दूधर्मका भव्य भवन है। अत्यन्त प्राचीन कालसे हिन्दूजातिमें जो धर्म-नियम प्रचलित हैं, उनका एक मात्र संग्रह पुराणमें है। साधारण धर्म, विशेष धर्म, आपद्धर्म—सबका रहस्य पुराणमें विवृत है। जातीयता, शिष्टता, नीति और प्रेम आदिका उद्गम-स्थान पुराण है। शिखा, सूत्र, पूजन, व्रत, उपवास, उत्सव, नृत्य, वाद्य, सन्ध्या, मूर्ति, आश्रम, वर्ण, तीर्थ, श्राद्ध, षोडश संस्कार आदि हिन्दू-धर्मके जितने अङ्गोपाङ्ग हैं, उन सबका जैसा मार्मिक तत्त्व पुराणमें बताया गया है, वैसा संस्कृत-साहित्यके किसी भी ग्रन्थमें नहीं। गोरक्षा और त्योहार-महोत्सवका एक मात्र विश्लेषण करनेवाला पुराण ही है। हिन्दू-जातिके संगठनका क्या रहस्य है, शुद्धिसे क्या लाभालाभ है; मनुष्य अछूत हो सकता है या नहीं, इन बातोंको समझना हो, तो एक मात्र पुराण ही आधार है। धर्ममें राजनीति अन्तर्भूत है या नहीं, पहलेके लोग समुद्र-यात्रा करते थे या नहीं, मांस और सुरा भक्ष्य या पेय है या नहीं, इन विषयोंका अन्तस्तल बतानेवाला पुराण है। मुसलमान, ईसाई, यहूदी, पारसी, अर्मनी आदिके धर्म प्रकृत हैं या नहीं, धर्ममें उपासना प्रधान है या कर्म, सत्य या अहिंसाका पालन कहाँतक उपयुक्त है, शरीरसे कहाँतक धर्मका सम्बन्ध है, धर्म-संकटमें हिन्दू क्या करते थे, किस धर्म-नियमके कारण आर्यों या हिन्दुओंने संसारमें विजय प्राप्त की थी इत्यादि इत्यादिका मर्म समझनेके लिये पुराण ही शरण है।

सूर्य-वंश और चन्द्र-वंशका क्रमिक इतिहास, खण्डित गाथाएँ और कीर्ति-कहानियाँ पुराणके सिवा संस्कृत-साहित्यके किसी भी ग्रन्थमें, व्यवस्थित रूपमें, नहीं हैं। वाल्मीकि-रामायण और महाभारतमें जो इन वंशोंकी लताएँ हैं, वे श्रृङ्खला-रहित हैं; परन्तु पुराणमें (विशेषतः विष्णुपुराणमें) बहुत कुछ व्यवस्थित और विश्वसनीय हैं। यदु, कुशध्वज, नहुष, तुर्वसु, धन्वन्तरि, जनमेजय, नन्द, अन्धक, गुप्त, शाक्य आदि-आदि वंशोंका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करनेका साधन एक मात्र पुराण है। इक्ष्वाकु, निमि, पुरुरवा, ययाति, द्रुह्यु, अनु, पुरु, कुश आदि-आदि प्रबल प्रतापी वंशोंका जो विवरण पुराणमें है, उसे देखकर कौन हिन्दू अपने प्राचीन गौरवसे नहीं फूल उठेगा? यदि पुराण नहीं रहता, तो हम इन वंशों या इनके अधिष्ठाताओंके विवरण नहीं पाते और कला-साहित्य-विहीन हब्शियोंमें गिने जाते! जिस जातिका इतिहास नहीं, वह असभ्य और मृत है: और इसमें सन्देह नहीं कि, पुराण हमारे जातीय इतिहासकी रक्षा कर हमें सभ्य और जीवित रखे हुए हैं। कथा-सरित्सागर, राजतरङ्गिणी, शिलालेखों और पृथ्वीराज-रासोसे भी हिन्दूजातिके इतिहासका ज्ञान होता

है; परन्तु बहुत कुछ अर्वाचीन कालका ही—प्राचीन कालका इतिहास बतानेवाला तो एक मात्र पुराण ही है। महाभारत और रामायण भी प्राचीन कालका इतिहास बतानेवाले ग्रन्थ हैं; परन्तु उनमें क्रम-विपरीत इतिहास ही अधिक हैं।

कोशल, मगध, पाञ्चाल, उज्जैन, कुरु, काशी आदि राज्योंकी सीमा, इतिहास, भूगोल, नद, नदी, आचार, विचार, शिक्षा और सम्पत्ति जाननेके लिये पुराण ही एक मात्र आश्रय-स्थल है। पहलेके किले कैसे होते थे, लोगोंके वस्त्राभूषण कैसे थे, मोर्चाबन्दी कैसे की जाती थी, अश्ववाहिनी कैसे कूच करती थी, धर्मयुद्ध कैसे किया जाता था, भारतवर्षमें पहले कौन भाग ऊपर था, कौन भाग समुद्र-गर्भमें, कौन-सा प्रदेश वनस्थली था और कौन-सा नगरमय, हमारे पूर्वज साहस और वीरताके कितने भक्त थे इत्यादि रहस्योंको खोलनेके लिये पुराण कुंजी है।

सृष्टि क्या है, प्रलय क्यों होता है, ईश्वर-तत्त्व क्या है, परलोक किसे कहा जाता है, चारो युगोंमें क्या होता है, अवतार कैसे सम्भव है, वेद और शास्त्र कैसे बने, यज्ञ और हवन क्यों किये जाते हैं, त्रिदेव क्या हैं, द्वीप कैसे बन गये, ग्रहगतिका क्रम क्या है, ब्रह्मचर्य, शम, दम, नियम, समाधि, मुक्ति, जन्मान्तर, ब्रह्माण्ड, आत्मा, जीवात्मा क्या हैं? इन सब जटिल रहस्योंका विश्लेषण करके तत्त्व-बोध करानेवाला केवल पुराण है। इन सब विषयोंको दृष्टान्तों और कथानकों द्वारा जैसा पुराणने बताया है, वैसा किसी भी हिन्दू-ग्रन्थ और हिन्दू-पुरुषने नहीं।

मुख्य बात यह है कि, आर्य-जातिकी शिक्षा, इतिहास, संस्कृति, सभ्यता, ज्ञान, त्याग, वीरता, विभूति, धर्म, कर्म, महत्त्व, वैभव, नीति, शिल्प, साहित्य आदि जो कुछ उच्च सम्पत्ति है, उसका एक मात्र सुधावाही सङ्गम-स्थल पुराण है। पुराणमें अनन्त कालके आर्य-हृदयोंकी गम्भीर ध्वनि, अनन्त गिरि-निर्झरोंको चीरती-फाड़ती, इकट्ठी हुई है। यदि पुराण नहीं रहता, तो सत्याग्रह-तत्त्वके जन्म-दाता प्रह्लादकी मधुमयी लाड़ली बाल्य-लीला और दानवदल-विध्वंसी प्रताप हमें कहाँ देखने-सुननेको मिलता? पुराण नहीं रहता, तो ध्रुवसे अचल, अटल भक्त बालकका हम हिन्दू-जातिमें कहाँ नाम सुन पाते? पुराण नहीं होता, तो हम मदालसा-सी आर्य-रमणीका कैसे दर्शन पाते? यदि पुराण नहीं होता, तो शर्मिष्ठा, सुकन्या, शैव्या आदि सती-सीमन्तिनी महिलाओंका पातिव्रत्य-तेज हम कैसे देख पाते? पुराण नहीं रहता, तो कालिदास, दण्डी, श्रीहर्ष आदि कवियोंकी प्रतिभाका प्रसाद हमें क्यों मिलता? पुराण नहीं रहता, तो हिन्दू-जातिका मस्तक ऊँचा करनेवाले संस्कृत-साहित्यमें दर्शनों दृश्य और श्राव्य काव्य कहाँ मिलते? सचमुच हिन्दूजातिकी नींव मजबूत करनेवाला पुराण ही है। जिस बौद्ध धर्मने चीन, जापान, मंगोलिया, बर्मा, लङ्का आदि देशोंको अपनेमें विलीन कर लिया, वह क्या अपने जन्मस्थानकी हिन्दू जातिको छोड़ता? अहिंसा-धर्मकी पताका फहरानेवाले जैन-धर्मके कराल कवलसे क्षमाशील हिन्दूजाति क्यों रहती? कभी नहीं। यदि पुराण नहीं रहता, तो अवश्य ही हिन्दू-जाति बौद्ध और जैन सम्प्रदायोंमें विलीन हो गयी होती। जिस मुसलमान धर्मने यूरोप और एशियाके अनेक देशोंको आत्मसात् कर लिया, उससे हिन्दू-देशको किसने बचाया? केवल पुराणने। घर-घर आदर्श कथाओंकी सुधाधारा बहाकर आजतक किसने हिन्दुत्वको जीवित रखा है? पुराणने। अनन्त कालसे उदात्त सामाजिक नियमोंकी, अनेकानेक बाधाएँ सहकर भी, किसने रक्षा की? पुराणने। इसीलिये हम कहते हैं कि, पुराण हिन्दू-धर्मका आधार और संस्कृत-साहित्यका अलंकार है। फलतः प्रत्येक हिन्दूको, प्रत्येक घरमें, पुराणका अविराम प्रचार करना चाहिये।

समालोचनाओंकी आलोचना

प्रो० कृपानाथ मिश्र एम० ए०

विलायतमें "स्टेज सोसायटी" नामक एक संस्था है। इसका उद्देश्य है उच्चतम नाटकोंका प्रचार और अभिनय करना। इसके सदस्योंमें बहुतेरे गण्य-मान्य साहित्यिक हैं। बर्नर्ड शा-की रचना सबसे पहले स्टेज सोसायटी द्वारा ही अभिनीत हुई। वे आजकल इस संस्थाके प्रमुख कार्यकर्त्ता हैं। अभी हालमें ही शेरीफ साहबका जर्नीज एन्ड नामक नाटक इसी संस्था द्वारा अभिनीत हुआ था। इस अभिनयके पहले शेरीफने बहुतेरे प्रकाशकों और रंगालयोंके मैनेजरोंके पास उक्त नाटकको, प्रकाशन या अभिनयके लिये, भेजा था। सबोंने नाटकको लौटा दिया। अन्तमें, स्टेज सोसायटीके अभिनयके बाद, शेरीफका भाग्य चमका। कुल मिलाकर उसे अबतक तीस लाख रुपये, केवल इसी नाटकके लिये, मिले हैं। और, मिली है ख्याति भी।

उसी स्टेज सोसायटीका मैं सदस्य था, हूँ भी। कुछ दिन पहले इसकी ओरसे एक छपा फार्म मेरे पास भेजा गया। फार्मपर संसारके प्रसिद्ध नाटककारोंके नाटकोंके सम्बन्धमें तत्कालीन आलोचकोंकी सम्मतियाँ छपी हैं। इन सम्मतियोंको पढ़कर हँसी आती है। इनके पाठसे लेखकों या नाटककारोंको एक बड़ी शिक्षा भी मिलती है। वह शिक्षा यह है, समसामयिक आलोचकोंकी आलोचनाओंका मूल्य कुछ भी नहीं। साहित्य-की समीक्षा समय करता है। लेखकोंको आलोचकोंकी प्रशंसा-पर भी उतना ही हँसना चाहिये, जितना उनके दूसनेपर।

आलोचकोंकी सम्मतियाँ इकट्ठी की जानेपर हँसीका जो फव्वारा छूटता है, उसमें द्वेष नहीं। इसीसे मैं आपको स्टेज सोसायटी द्वारा एकत्र सम्मतियोंका दौरा कराता हूँ। जर्नीज एण्ड से ही शुरू कीजिये—

JOURNEY'S END (R.C.SHERRIFF).

"The little war drama···lately done by the Stage Society."—London Calling.

"The author does not succeed in conveying the sense of universality and inevitability which would make it a work of art". —*Nation & Athenaeum.*

"This play gave me a bad headache."

—*"J. B. W." (New Statesman).*

लेखकके जीवन-कालमें ही संसारने सिद्ध कर डाला कि, ये आलोचक बेवकूफ थे। शेरीफकी रचनाका आदर हर जगह हुआ, भारतमें भी हुआ।

बर्नर्ड शाकी एक रचनापर आलोचकोंकी सम्मतियाँ हमें और भी हँसाती हैं—

MRS. WARREN'S PROFESSION.

(BERNARD SHAW).

"The author himself rightly describes the piece as 'unpleasant.' No further comment is called for."—Daily Telegraph.

"His seriousness is hard to take seriously." —*Daily Mail.*

"It is to be hoped that the Stage Society...intends to eschew dramatic garbage in future." —*St. james's Cazette.*

"Dramatically worthless."

—*Birmingham Post.*

शेक्सपीयरके बाद संसारका श्रेष्ठ साहित्यिक नाटककार एनरिक इब्सेन समझा जाता है। यह नारवेका रहनेवाला था और इसने बहुतेरे नाटक लिखे हैं। यथार्थवादका आरम्भ, कमसे कम नाटकोंमें, इसीने किया और इसलिये यह एक नयी नाट्य-प्रणालीका प्रवर्तक भी माना जाता है। बहुतोंका तो यह कहना है कि, इब्सेन शेक्सपीयरसे बढ़कर हुआ। बर्नर्ड शाका यही मत है और मेरा भी। इसी इब्सेनके एक नाटकके सम्बन्धमें आलोचकोंकी राय पढ़िये—

THE LADY FROM THE SFA (IBSEN).

"Can hardly be reckoned good art, even by the injudicious."—Daily Mail.

"*Incomprehensible. ... The opportunities for acting are slight.*"

—*Daily Express.*

इन अवतरणोंसे स्पष्ट है कि, आलोचकोंकी सम्मतियोंका मूल्य कुछ भी नहीं। लेकिन लेखक मनुष्य होते हैं और उनमें भी मनुष्योंकी दुर्बलताएँ रहती हैं। १९३१ के जूनमें "मणि गोस्वामी" नामक मेरी पहली नाट्य पुस्तक निकली पहले तो मौखिक रूपसे ही लोगोंने मुझे खूब फटकारा। जिन मित्रोंको कलाका उतना ही ज्ञान है, जितना मेढ़कको संगीतका, वे भी लगे मुझे डाँट बताने। मैं चुपचाप हँसता रहा। सोचा, हिन्दीके आलोचक मेरी प्रशंसा अवश्य करेंगे। बहुतोंने न की। करने लगे बे-सिर-पैर की बातें लिखने। यदि इन लेखकोंमें सभी मूर्ख होते [कुछ तो थे ही], तो मुझे किसी बातका क्षोभ नहीं होता। लेकिन इनमें कुछ विद्वान् थे; कमसे कम हिन्दी-वाले इन्हें ऐसा ही समझते हैं।

स्टेज सोसायटीकी ही तरह मैं भी अपने ही नाटकके सम्बन्धमें अखबारोंके कतरन पाठकोंके मनोरंजनार्थ दिये देता हूँ। कोई यह न समझे कि, मैं विज्ञापनके लिये ऐसा कर रहा हूँ। मैं सरकारी नौकर हूँ और किसी भी पुस्तकके मुनाफेमें मेरा हिस्सा नहीं रहता, नहीं रह सकता। मुझे जो कुछ लेना होता है, वह एक ही बार, सरकारकी अनुमतिसे, ले लेता हूँ। "मणि गोस्वामी"के लिये मुझे रुपये मिल चुके हैं। अतएव मेरा उद्देश्य विज्ञापन नहीं, कुछ और ही है। प्रथम उद्देश्य तो समालोचकोंकी बुद्धिहीनतापर दूसरोंको हँसाना है और दूसरा उद्देश्य है हिन्दीवालोंका ध्यान अच्छे समालोचकोंकी कमीकी ओर आकर्षित करना।

मेरे नाटकके दो अंग हैं। एक भूमिका, दूसरा मूल नाटक। मैं और भी एक तीसरा अंग मान लेता हूँ—भाषा। बस, इन्हीं तीन अंगोंपर कुछ समालोचकोंकी भिन्न-भिन्न सम्मतियाँ पढ़कर हँसिये। एक ओर नाटकके पक्षमें विद्वानोंकी रायें हैं, दूसरी ओर विपक्षकी आलोचनाएँ:—

भूमिका

पक्षमें—

"नाटकारम्भके पहले ही आपके जो तीन विद्वत्ता-पूर्ण वक्तव्य हैं, उनके पाठसे मुझे बहुत लाभ हुआ। उससे मेरी बहुत कुछ ज्ञानवृद्धि भी हुई और यह भी ज्ञात हुआ कि, आप नाट्यकलाके पारदर्शी पण्डित हैं।"

—प० महावीरप्रसाद द्विवेदी

"साधारणतः पुस्तकोंमें एक भूमिका होती है। यहाँ तीन भूमिकाएँ हैं। भूमिकाओंमें भी नवीनता ठसाठस भरी हुई है। आपने बहुत सच कहा है कि, "हम नाटकोंको केवल तमाशा समझते हैं, ज्ञानवृद्धि या भावोत्कर्षका उपकरण नहीं।"

—बाबू प्रेमचन्द ("हंस")

"आरम्भके तीनों "परिचय" पाण्डित्यपूर्ण और मार्केके हैं। उनमें बहुत-सी कामकी बातें हैं, जिनसे नाटक लिखनेवाले लाभ उठा सकते हैं।" —प० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी

विपक्षमें—

"अपनी अनधिकारपूर्ण और अनुभव-हीन भूमिकाको भरि-

तार्थ करनेके लिये लेखक इतना चिन्तित दिखाई देता है कि, घटनाके पूर्ण विकासकी उसे परवा ही नहीं रह जाती। उसे वह अनावश्यक समझते हुए एक विचित्र उलझनमें फँस जाता है और उसीमें उसकी सारी कल्पना समाप्त हो जाती है।"

—प० छविनाथ पाण्डेय ("जागरण")

"इसपर अत्यधिक विचार करनेपर यही सिद्ध होता है कि, लेखक महोदयने बड़े भद्दे और बुरे तरीकेसे भारतीय नाट्य-शास्त्राचार्योंकी आलोचना की है। वे (1) विपक्षमें उनकी शैली, विचार और शिक्षण-पद्धतिपर गौर करनेका कष्ट नहीं उठाया है। यदि वे उसके भीतर पैठकर उसमें निहित गुणोंपर दृष्टि फेरते, तो उन्हें यह सहज ही विदित हो जाता कि, इन लोगोंका नाटक अथवा काव्य लिखनेका क्या उद्देश्य होता था। और उसमें वे कहाँतक सफल हुए।"

—"शिक्षा"

मूल नाटक

पक्षमें—

"इस नवीन शैलीका अगुआ बननेके लिये बधाई है।"

—प० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी

"The aim of art is to entertain not by didactic teaching but by creating a live, 'tragically moved' soul. which is the soul of the dramatist. Verbosity is not the way to achieve this. The appeal of a really good style lies in its simplicity and restraint. With these ideals in view set forth in the introduction. The author of this six scene social drama has written a book which is an unprecedented performance in the field of Hindi dramatic literature.

"There are many powerful passages in this play such, for instance, as the ravings of the tormented old man, Mani Goswami, which remind us almost of that immortal old man in Shakespeare, King Lear, whose grief is also caused by the conduct of his children.

"Altogether this book breaks new ground and should arouse the keenest interest in the Hindi world."

"The Leader" (19.10.32)

पक्षमें—

"मैं आपको ऐसी सुन्दर पुस्तक लिखनेके लिये बधाई देता हूँ। आपने हिन्दी-नाटकके लेखकोंको बहुत पीछे छोड़ दिया है।"

—प० अवध उपाध्याय

"जब मैंने "मणि गोस्वामी" देखा, तो मेरा हृदय भी कीट्सके हृदयकी तरह फूल उठा, जब उसने पहले पहल चैपमैनका होमर पढ़ा था और मैं भी धीरेसे कह उठी—

"Silent, upon a peak in Darien".

"वास्तवमें, "मणि गोस्वामी" हिन्दी-नभका एक नया सितारा-सा है। मैं कोई कलाविद् नहीं, न समालोचिका ही हूँ; पर इसे देखनेपर मेरे हृदयमें जो जो भावनाएँ हुईं, उन्हें ही मैं व्यक्त करना चाहती हूँ। इसे मैं एक नया सितारा इसलिये कहती हूँ कि, हिन्दीनाट्य-साहित्यमें ऐसी रचना पहले नहीं हुई।"

—श्रीमती सुषमासुन्दरी ("युवक")

"इस सृष्टिमें वास्तविकता नहीं जाने पायी और नाटकका जो उद्देश्य है, वह भली भाँति पूरा होता है। उसमें गहराई है; प्रभाव है; व्यथा है।"

—बाबू प्रेमचन्द

"एक साँसमें मैंने उसे पढ़ा। और पढ़ते-पढ़ते कई जगह अकुला उठा। माया और बीरेन वाला दृश्य गजब है। आप ऐसे स्थलोंपर कमाल करते हैं। मैं उसे जब जरूरत होगी, तब-तब पढ़ लिया करूँगा।"

—श्रीयुत जैनेन्द्रकुमार

विपक्षमें—

"वास्तविक नाटक— जिसकी परिभाषाका आपनी लम्बी-चौड़ी भूमिकामें लेखकने इतना होहल्ला मचाया है—लिखकर भी तो दिखाना चाहिये था। आपने नाट्य-साहित्यमें एक नई प्रणालीका समावेश करनेका साहस तो किया; पर खेद है कि, आपके प्रयासका दिव्यालोक किसीको भी पथप्रदर्शकका काम नहीं दे सकेगा।

"पता ही नहीं लगता कि, किस अभिप्रायसे नाटक लिखा

विपक्षमें—

गया है—समाजको इससे क्या शिक्षा दी गई है—संसारके सामने कौन-सा आदर्श उपस्थित करना अभीष्ट है। नाटककार अपनी रचना द्वारा संसारके सामने एक आदर्श उपस्थित करता है, जनताको नैतिक शिक्षा देता है, साथ-ही-साथ कला की सृष्टि भी करता है। उद्देश्य-हीन, लक्ष्य-हीन नाटक निष्प्रयोजन हुआ करता है।"

—"जागरण"

भाषा

पक्षमें—

"*The book under notice is an attempt to write in Hindi a drama on up-to-date modern lines free from the pompous verbosity charactrestic of books written so far on the subject in Hindi. 'Mani Goswami' is composed in a language which is perfectly natural and colloquial. There is no artificiality about it either in language, or in acting or in the setting. It has got an easy flow and its action too is rapid. It moves naturally to the tragic end which overpowers the reader or the spectator with deep emotions.*"

—"*The Searchlight*"—(13 *th oct.* 31)

"*The easy natural flow of the dialogue is a refreshing contrast to the artificial and bookish language of most Hindi plays.*" —"*The leader*"

"इस नाटकमें एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि, पात्रों-के मुँहसे लम्बे-लम्बे व्याख्यान नहीं दिलाये गये हैं; बल्कि

पक्षमें—

एक ही दो वाक्योंमें उनके मनोभाव, बड़ी सरलतासे, व्यक्त करा दिये गये हैं। हिन्दीमें नाटककी यह लेखनशैली बिलकुल ही नयी कही जा सकती है।" —पं० रामनरेश त्रिपाठी

विपक्षमें—

"साहित्यिक दृष्टिसे तो यह पुस्तक अत्यन्त निकृष्ट प्रतीत होती है। पुस्तककी भाषा बड़ी ही लचर है। अपनी लम्बी भूमिकामें लेखकने इस बातपर बहुत जोर दिया है कि, नाटक की भाषा बोलचालकी होनी चाहिये। कुछ अंशमें हम इस बात-से सहमत होते हुए भी इसका विरोध इसलिये करते हैं कि, फिर उच्च साहित्यका निर्माण हम नहीं कर सकेंगे। हर जगह बोलचालकी भषाके फेरमें पड़े रहनेसे साहित्य कभी उन्नतिके शिखरपर पहुँच ही नहीं सकेगा।" —"जागरण"

"हम जानते हैं कि, लच्छेदार शब्द भावोंको अवश्य छिपा लेते हैं; पर सर्वत्र ये निन्दनीय भी नहीं। कारण, शब्द ही अर्थका प्रतिपादक एवं सभ्यता, सत्पात्रता और विचारका परिचायक है। शब्दोंकी मनोहरता, सुन्दरता और सुघरतामें आकर्षण रहता है, चित्तमें चाव पैदा करनेवाली चातुरी रहती है।" —"शिक्षा"

लेखक

पक्षमें—

"कृपानाथं वन्दे विबुधजनवन्द्यं गुणिवरम् ।"

—पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी

विपक्षमें—

लेखकपर सबसे श्रेष्ठ आक्षेप प्रयागसे निकलनेवाले जनाना अखबार "चाँद" ने किया था। पुस्तककी आलोचनामें कहा गया था कि, सभी दृष्टियोंसे वह निकृष्ट है। समालोचकको इस बातका हर्ष और संतोष था कि, लेखकने पुस्तक "अपनी सहधर्मिणी के लिये लिखी है। आशा है, वे इसे पढ़कर अवश्य खुश हुई होंगी।"

विपक्षमें—

अर्थात् लेखक बेवकूफ, उनकी स्त्री भी! इस समालोचनाके लेखक कोई मु० नवजादिकलाल थे।

पनिहारिन !

अजी ओ, मेरी सुकुमार !

पनघटपर जाती बेकार,

लादकर यौवनका भार !

अविरत छल-छल—

लचक-लचक कर—

बल खाती खुद लाखों बार !

उठाओगी घटका गुरु-भार!

जब नहीं सम्हलता नन्हा प्यार !

अजी ओ, मेरी सुकुमार !

—साहित्याचार्य 'मग'

स्वर्गीय "कविकिंकरजी"

बाबू रघुनप्रसाद सिंह बी० ए० (आनर्स)

बाबू दामोदरसहाय सिंह "कविकिंकर" का जन्म १४ दिसम्बर, १८७५ ई०, को बिहार प्रान्तान्तर्गत सारन जिलेके छपरा शहरमें हुआ था। आपका निवास-स्थान इसी जिलेके माँझी-थानान्तर्गत शीतलपुर नामक ग्राममें था। आप दूसरे श्रीवास्तव कायस्थ पांडेय वंशके थे। आपके पूर्वज चिरैयाकोटसे आकर शीतलपुरमें बसे थे। बचपनमें ही आपके माता-पिता आपको छोड़कर स्वर्ग सिधार गये और आपके चचेरे भाई मुंशी हीरालालजी मुख्तार आपके अभिभावक बने। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा ग्राम्य पाठशालामें हुई थी और आपने छपरा मिड्ल वर्नाक्युलर स्कूलसे मिड्लकी परीक्षा, छात्रवृत्तिके साथ, पास की। तत्पश्चात् छपरा जिला स्कूलसे एन्ट्रेंस और बी० एन० कालेज पटनासे आई० ए० पास किया। परन्तु पारिवारिक झंझटोंके कारण बी० ए० की परीक्षामें सफल न हो सके। कुछ दिनोंके बाद आप रिविलगंज (छपरा)के मिड्ल इंगलिश स्कूलमें हेड मास्टर नियुक्त हुए और फिर स्कूलोंके सब-इन्स्पेक्टर। इसके पहले आप कुछ दिनोंतक छपरा जिला स्कूलमें भी शिक्षण-कार्य कर चुके थे। स्कूल सब-इन्स्पेक्टरीका काम करते हुए आपको बिहारके अनेक जिलोंमें रहना पड़ा था। इस बीच, सन् १९१६ में, आपने एल० टी० की परीक्षा पास कर ली थी और सन् १९१९ में अफगानिस्तानकी तीसरी लड़ाईके अवसरपर गवर्नमेंटकी आज्ञासे आपको पेशावर जाकर छः महीनेतक सेंसर आफिसमें काम करना पड़ा था। फिर आप तरक्की पाकर स्कूलोंके डिपुटी इन्स्पेक्टर और डिस्ट्रिक्ट इन्स्पेक्टरतक हुए। परन्तु आप स्वतन्त्र-प्रकृति एवं विचारके मनुष्य थे। साइमन कमीशन भारतमें आया था। स्थान-स्थानपर उसके बहिष्कारके प्रस्ताव पास हो रहे थे। सारन जिला बोर्डमें भी इस प्रस्तावपर विचार हुआ। आप बोर्डमें एक सरकारी सदस्यकी हैसियतसे वर्तमान थे; परन्तु उसके विरुद्ध कुछ न बोले। फलतः उसी वर्ष आप डिस्ट्रिक्ट इंस्पेक्टरके पदसे हटाये जाकर डिपुटी इन्स्पेक्टर बना दिये गये। इसी पदपरसे आपको ४ नवम्बर १९३१ ई० को पेन्शन भी मिली।

कविकिंकरजीसे मेरा पिछले दस वर्षोंसे विशेष परिचय एवं सम्बन्ध था। ऐसे तो मैं उनके ही ग्रामका निवासी था; परन्तु एक तो नौकरीके कारण उन्हें प्रायः बाहर ही रहना पड़ता था, दूसरे मैं भी छोटा था। थर्ड क्लासमें पढ़ते समय "साहित्य-नवनीत" में आपकी "लंकादहनके पश्चात् हनुमानजीका पश्चात्ताप" शीर्षक कविता देख मुझे गर्व होता था और मुझे खूब स्मरण है कि, मैं अपने सहपाठियोंको दिखलाता चलता था कि, देखो, यह कविता मेरे ग्रामके एक आदमीकी बनायी हुई है। कविकिंकरजी बड़े धर्मपरायण व्यक्ति थे और इसीसे मेरा उनसे परिचय भी हुआ। मेरे एक मौसेरे भाई, बाबू बमबहादुरलाल, मेरे यहाँ आये हुए थे। वे भी धर्मात्मा जीव थे। उन दिनों मैं प्रायः दस बारह वर्षोंका रहा होऊँगा। बहुधा उन लोगोंमें धर्मविषयक वार्त्तालाप होता था। मैं भी एक मूक श्रोताकी भाँति वहाँ वर्तमान रहता था। उसी समयसे मेरी श्रद्धा कविकिंकरजीपर बढ़ी और मैं उन्हें एक आदर्श पुरुष गिनने लगा।

इसके कुछ दिनों बाद उनकी बदली छपरेमें हुई और, तब वे बहुधा घरपर आया करते थे। पुस्तक-संग्रहकी

राय बहादुर देवनन्दनप्रसाद सिंह
आप मुँगेरके सुप्रसिद्ध रईस, हिन्दीप्रेमी, धर्म-परायण और जाति-हितैषी हैं।

स्व० बा० दामोदरसहाय सिंह "कविकिंकर", एल०टी०
आपका परिचय अन्यत्र छपा है। आप बिहारके हिन्दीसेवकोंमें स्तम्भ थे।

उन्हें बहुत चाट थी। उनके पास अपना एक पुस्तकालय था। सन् १९२३ तक वह उनकी निजी वस्तु था। मुझे भी लड़कपनसे ही पुस्तक पढ़नेकी रुचि है। मुझे पता लगा कि, डिपुटी साहबके पास बहुत-सी पुस्तकें हैं। मैं अपने मित्र स्व० बाबू नागेश्वरप्रसादके साथ उनके यहाँसे पुस्तकें ले-लेकर पढ़ने लगा। हमें पुस्तकें देनेमें वे बहुत सावधानी रखते थे। कभी भी हमारे हाथों ऐसी पुस्तक न पड़ती थी, जिससे हमें शिक्षा न मिलती हो या जो किसी भी अंशमें विद्यार्थियोंके लिये आपत्तिकर हो। बल्कि पुस्तकालयको सार्वजनिक बनानेके बाद भी वे इस बातका सदा यत्न करते थे कि, ऐसी पुस्तकें विद्यार्थियों या कम उम्रके लड़कोंको न दी जायँ—बल्कि सोलह वर्षसे कम उम्रके लड़कोंके लिये पुस्तकोंकी एक सूची ही तैयार कर दी गयी थी।

पुस्तकालय (जिसका नाम पीछे "हिन्दी-मन्दिर" पड़ा) के कामोंमें काफी दिलचस्पी लेनेके कारण मेरी घनिष्ठता उनसे और बढ़ गयी। उनके पुत्र पाण्डेय जगन्नाथप्रसाद जिनसे भी मित्रता हुई और आगे चलकर तो उनके साथ मेरा कुछ सम्बन्ध भी स्थापित हो गया। छुट्टियोंमें प्रायः प्रतिदिन दो बार भेंट हो जाया करती थी। उस समय उनके वार्तालापका विषय प्रायः साहित्यिक ही रहता था। जब-तब सामाजिक प्रश्नोंपर भी वे अपने विचार प्रकट करते थे। आपके सामाजिक विचार बहुत ही उन्नत एवं उदार थे। नवयुवकोंसे बहुधा धर्मपर भी बहुत कुछ कहा करते थे, और, उन्हें आधुनिक धर्मान्धतासे हटानेका एवं धर्मके तथ्य बतलानेका यत्न किया करते थे। अपने पुत्रको तो वे नित्य पूजा-पाठ इत्यादि करनेको बाध्य करते थे। ग्रामके किसी भी धार्मिक समारोहके अवसरपर वे सदा अग्रणी होते थे। कभी किसी कथावाचककी डिपुटी साहबके दरवाजेपर कथा होती, तो कभी किसी धार्मिक विद्वान् एवं पण्डितका कुछ उपदेश होता। ऐसे अवसरोंपर वे अपने विचारोंको भी प्रकट करनेमें न चूकते थे। अपने ग्रामकी "संकीर्तन-सभा" के तो वे प्राण ही थे। वे सपत्नीक भारतके प्रायः सभी तीर्थोंमें भ्रमण कर आये थे।

हिन्दी भाषा और साहित्यसे आपको अत्यन्त प्रेम था। हम लोग जब कभी हिन्दी बोलनेमें बीच-बीचमें अंग्रेजी शब्दोंका प्रयोग करते थे, तब उन्हें बुरा मालूम होता था और हमें बीचमें ही टोक देते थे। वे सदा इस बातपर जोर देते थे कि, हिन्दी बोलनेमें अंग्रेजी शब्दोंको न घुसेड़ा जाय और अत्यावश्यक न होनेपर सदा हिन्दी भाषाका ही व्यवहार किया जाय। आपके स्वसंस्थापित हिन्दी-मन्दिरका यह प्रधान उद्देश्य है और उसके निःशुल्क सदस्योंको तो इस बातका एक प्रतिज्ञापत्र भी लिखना पड़ता है। कमसे कम हम लोगोंको तो उनके सामने खिचड़ी भाषा बोलनेका साहस न पड़ता था।

हिन्दीमें कुछ लिखनेके अभ्यासमें वे ही मेरे प्रोत्साहक थे। मुझे और जगन्नाथ, दोनोंको ही वे सदा कुछ लिखनेके लिये बहुत उत्साहित करते रहते थे। मैं तो प्रारम्भमें कुछ लिखकर जब उनको दिखलाता, तो वे सबसे पहले उसकी प्रशंसा ही करते थे; और, तब, समयानुसार उसकी भूलें सुधारते या उसपर अपने विचार प्रकट करते थे। उनके पुत्र जगन्नाथको काफी समय था। वे साहित्यसेवामें अपना बहुत समय दिया करते थे। इस समय भी वे साहित्यसेवामें पूर्ण रूपसे संलग्न हैं। बहुधा हम लोगोंमें कोई विवादास्पद विषय उठता, तो वे ही उसकी व्याख्या कर हमें समझाते।

कविकिंकरजीको काव्यसे बहुत प्रेम था। स्वयं तो कविता करते ही थे, प्राचीन कवियोंके काव्य भी बड़े प्रेमसे पढ़ा करते थे। कभी कभी मैं ऐसे ही अवसरोंपर उनसे मिलने जा धमकता था। उस समय वे उनके काव्योंको पढ़कर मुझे सुनाने तथा उनकी बारीकियोंको समझाते

लगते थे। गोसाईं तुलसीदासके वे बड़े भक्त थे। कई कविताएँ तो उन्होंने स्वयं तुलसीदासपर ही की हैं एवं उनके प्रायः सात सौ दोहोंपर कुंडलिया भी तैयार की है। कविवर बिहारीलालके कुछ दोहोंपर भी कविकिंकरजीने कुंडलिया रची है। आपके धार्मिक स्वभावकी झलक आपकी कविताओंमें स्पष्ट दीख पड़ती है। धार्मिक कविताओंमें आपकी प्रतिभा पूर्ण प्रस्फुटित है। हाँ, शृंगार रस और अन्य विषयोंकी कविताएँ भी कुछ घटिया नहीं हैं। उनका यह मत था कि, मनुष्यके केवल विचार ही धार्मिक न होने चाहिये, बल्कि उसके व्यवहार भी, कार्य भी अवश्य धार्मिक होने चाहिये।

समस्यापूर्तिका तो आपको व्यसन-सा था। कोई समस्या देखी नहीं कि, झट उसकी पूर्ति कर डाली और वह भी एक दो नहीं—दर्जनों। आपने "कल है" समस्या पर एक छोटी-सी पुस्तक ही रच डाली है! आप ब्रजभाषा और खड़ी बोली, दोनोंमें समान भावसे कविता करते थे। इनकी "सुधा-सरोज" नामक ब्रजभाषा-काव्य-संग्रह पुस्तकके सम्बन्धमें लिखते हुए स्वर्गीय रत्नाकरजीने लिखा था—"इस बातसे बड़ी प्रसन्नता हुई कि, इस समय भी कोई कोई महाशय ब्रजभाषा बेचारीके गुणग्राहक और सहायक विद्यमान हैं। रचना प्रतिभा-पूर्ण और सुकवियोंकी-सी है। कोई कोई कवित्त तो बहुत सुन्दर हैं और पुराने कवियोंका स्मरण कराते हैं।" उनकी कविताओंका रसास्वादन मैं कभी करा दूँगा। इस समय तो मुझे उनके ही विषयमें कुछ लिखना है।

कविकिंकरजी बड़े निर्भीक और स्पष्टवक्ता थे। किसीकी भी भूल सुझानेमें वे हिचकते न थे। हाँ, उसे वे अप्रिय सत्य बनाकर नहीं कहते थे। एक बारकी बात है; उस समय मैं मुजफ्फरपुर कालेजमें पढ़ता था और आप छपरामें डिस्ट्रिक्ट इन्स्पेक्टर थे। मुझे आपसे एक अत्यावश्यक बात पूछनी थी और लौटती डाकसे ही पत्रोत्तर मिलना मुझे निहायत जरूरी था। अतएव अपने पत्रमें मैंने एक आनेका टिकट रख दिया था। कविकिंकरजीने पत्रोत्तर उचित समयपर दिया और वह टिकट लौटाते हुए मुझे इस व्यवहारके लिये इस प्रकार फटकारा कि, वह बात मुझे अबतक नहीं भूली। कार्य-तत्परतामें आपके समान बहुत ही कम लोग मिलेंगे। आप सदा समयका ध्यान रखते एवं निश्चित समयपर निश्चित काम किया करते थे। कुछ दिन पूर्व आप श्रीमद्भगवद्गीताका समश्लोकी अनुवाद कर रहे थे। मैं देखता था कि, प्रातःकाल पूजासे उठकर उस फाइलको लेकर आप बैठ जाते थे और जबतक निश्चित श्लोकोंका अनुवाद नहीं कर लेते, नहीं उठते थे। उस समय हमलोग भी उन्हें टोकने या उनसे बातचीत करनेका साहस नहीं करते थे। इधर कुछ दिनोंसे आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था। अतएव उतना परिश्रम आपसे हो नहीं सकता था। फिर भी जब कभी मौका आता, आप सार्वजनिक हितके कार्योंके लिये अपने स्वास्थ्यका कुछ भी ध्यान नहीं रखते थे। इसके अलावे वे हम-लोगोंसे भी खोद-खोदकर काम करानेवाले थे। जब कभी हम लोग काम करनेमें कुछ आलस्य करते थे और उनको इस बातका पता चलता था, तब वे फौरन वहाँ जाकर हम लोगोंको जबर्दस्ती काममें जुटा देते थे। छुट्टीको वे अवकाशका समय नहीं मानते थे, बल्कि उनके लिये तो बहुमूल्य समय था। वे कहते थे कि, छुट्टियोंमें ही आफिसके झंझटोंसे छुटकारा पाकर कुछ काम करनेका समय मिलता है। उनकी अनेक रचनाएँ ऐसी-ऐसी छुट्टियोंमें ही हुई हैं। "सन्धि-संदेश" नामक अप्रकाशित खण्ड-काव्य ऐसी ही छुट्टियोंकी रचना है।

शिक्षा और बाल-साहित्य कविकिंकरजीके अपने विषय थे। उनके शिक्षा-सम्बन्धी विचार "शिक्षा-निबन्धावली" में संगृहीत हैं। आपने कई एक बालोपयोगी पुस्तकें भी लिखी हैं। बालकोपयोगी साहित्यको आप भाषाका एक प्रधान अंग समझते थे।

सार्वजनिक कार्यों एवं जनताके हितके लिये आप अपनी असुविधाओंका कुछ भी ध्यान नहीं रखते थे। हिन्दी-मन्दिरको सार्वजनिक बना देनेपर भी आपने स्थानाभावके कारण, स्वयं कष्ट करके भी, उसे अपने दालानमें ही स्थान दिया था और अब भी वह वहीं स्थित है। अपने जीवनके प्रत्येक कालमें वे इस संस्थाकी उन्नतिका ध्यान रखा करते थे। उनके पुत्र भी उन्हें इस काममें बराबर सहायता दिया करते थे। उन्हींके प्रयत्नसे इस समय हिन्दी-मन्दिरके पुस्तकालयमें लगभग तीन हजार हिन्दीकी और पाँच सौ अंगरेजीकी पुस्तकें हैं। मन्दिरसे सम्बद्ध एक नाट्य-समिति भी है, जो हिन्दी-मन्दिरके उत्सवोंपर उच्च कोटिके साहित्यिक नाटक खेला करती है। कई वर्ष पूर्व मित्रवर जगन्नाथजीके उद्योगसे हिन्दी-मन्दिरसे प्रकाशन-कार्य भी प्रारम्भ हुआ था और अबतक लगभग एक दर्जन बालकोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इन पुस्तकोंकी कद्र जनतामें खूब हुई है और विद्वानोंने भी इन्हें सराहा है। हिन्दी-मन्दिरका व्यायाम-विभाग भी कम महत्त्वकी चीज नहीं है। इस विभागका उद्देश्य जनतामें और विशेषकर नवयुवकोंमें देशी तथा विदेशी उपयोगी खेलोंका प्रचार करना है। शीतलपुरका यह हिन्दी-मन्दिर अपने जिलेमें शायद सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक संस्था है। यदि "गंगा"-संपादककी आज्ञा होगी, तो कभी इस संस्थाके ऊपर एक बृहत् लेख "गंगा"के पाठकोंकी भेंट करूँगा। इस समय पाठक इतने हीसे संतोष करें। गाँवका एक मन्दिर बहुत ही बुरी अवस्थामें हो गया था। यद्यपि मन्दिर बनानेवालेके उत्तराधिकारी अभी वर्तमान हैं, तथापि कविकिंकरजीने नये मन्दिरकी स्थापना न करके उसीकी मरम्मतको आवश्यक समझकर प्राचीन कीर्त्ति-की रक्षा की। अछूतोंके लिये आपके हृदयमें एक विशेष स्थान था। उनके टोलेमें आपने एक देवीस्थान और कुआँ भी बनवा दिया था। दीन-दुखियोंपर आप सदा कृपा रखते थे। किसीका दुःख यदि आपकी दृष्टिमें आता, तो आप यथाशक्ति उसे सहायता पहुँचानेका यत्न करते। कुछ दिनोंसे आपको प्रमेह रोगने घेर लिया था। अतएव आप सभी ऋतुओंमें प्रातःकाल स्वच्छ हवामें टहला करते थे। जब-तब मैं भी उनके साथ हो लिया करता था। एक दिन ग्रामका ही एक ब्राह्मण, सिर्फ एक धोती ओढ़े, जाड़ेसे ठिठुर रहा था। डिपुटी साहबने पूछा—"बाबाजी, जाड़ेमें क्यों काँप रहे हो?" उसने कहा "सरकार, कोई ओढ़ना नहीं है।" दूसरे दिन मैंने देखा कि, डिपुटी साहब घरसे एक कम्बल लिये चले आ रहे हैं। मैं समझ गया; क्योंकि मैं उनके इस स्वभावसे परिचित था। कम्बल उस गरीब ब्राह्मणको दे दिया गया। वह हजारों आशीर्वाद देने लगा।

कविकिंकरजीका स्वभाव बहुत ही कोमल एवं सुरुचिपूर्ण था। जो कोई आपसे मिलता, कभी वह आपसे असंतुष्ट नहीं हो सकता था। मधुरभाषी तो आप प्रारम्भसे ही थे। सम्बन्धियोंसे आप बहुत स्नेहयुत व्यवहार रखते थे।

मृत्युके कुछ दिन पूर्व आपको बा० शिवनंदनसहायजीके स्वर्गवासका दुःखद समाचार मिला था और आप उनकी एक सविस्तर जीवनी लिखनेकी तैयारी कर रहे थे। उक्त बाबू साहब कविकिंकरजीको बहुत मानते थे तथा कविकिंकरजी भी उनको गुरुवत् पूज्य समझते थे। अपने साहित्यिक मित्रोंसे बहुत प्रेमसे मिलते थे, बल्कि कइयोंसे तो उनका पारिवारिक सम्बन्ध जैसा चलता था। स्व० रत्नाकरजी, कविवर प० रामनरेश त्रिपाठी, प० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, प्रो० कृपानाथ मिश्र, बा० रामलोचन शरण बिहारी, स्व० प० ईश्वरीप्रसादशर्मा, राय बहादुर रामरणविजय सिंह, प० रामदहिन मिश्र, बा० रामधारीप्रसाद, बा० बामानन्दनप्रसाद, प० सकलनारायण शर्मा, बा० शिवपूजन सहाय, बा० व्रजनंदन सहाय, भुवनजी, नटवरजी, कंटकजी इत्यादि उनके

साहित्यिक मित्र एवं सुपरिचितोंमेंसे थे। प्रो० मिश्रजीका तो कहना है कि, "जब वे कभी हमसे मिलने आते थे, तब नम्रतायुत व्यवहार एवं वार्तालापसे मैं तो संकोचमें पड़ जाता था।" उनकी मृत्युसे उक्त सज्जनोंके सच्चे मित्रोंमेंसे एककी कमी हो गयी, इसमें संदेह नहीं।

कविकिंकरजीकी मृत्यु प्रायः आकस्मिक ही हुई। जूनके प्रारम्भमें मैं एक बारातमें गया था। लौटनेपर ज्ञात हुआ कि, आप बीमार थे; परन्तु उस समय वे अच्छे हो गये थे। ६ ठीकी दोपहरको मैं उनसे मिलने गया। उस समय वे बहुत अच्छे मालूम पड़ते थे। दूसरे दोपहरको अकस्मात् उनके गुमाश्ता बाबू महेशलाल मुझसे जगन्नाथको तार लिखवाने आये कि, 'तुम्हारे पिताजीकी अवस्था विशेष खराब है, शीघ्र आओ।' जगन्नाथ भाई इस समय पटना सेक्रेटरियटमें नौकरीपर थे। मुझे हालत खराब हो जानेका आकस्मिक पता नहीं था। मैं तार लिखकर एक आदमीको देकर शीघ्र उनके घर दौड़ा। देखा कि, वे कुछ विशेष व्याकुल थे और जगन्नाथकी माँ बहुत घबरायी हुई थीं। पहले मैंने उनको समझाया, फिर डिप्टी साहबसे हालत पूछी। उस समय उनके सिरमें विशेष पीड़ा एवं भीतरसे कुछ गरमी मालूम पड़ती थी। मैं संध्या तक वहाँ बैठा रहा। जब-तब वे कुछ बातें कर लेते थे। उस समयतक उनकी अवस्था विशेष चिन्ताजनक नहीं थी; परन्तु उसी दिन, रातको, प्रायः १० बजेसे अवस्था खराब होने लगी और दो बजे रातसे बोलचाल बन्द हो गया। कई एक वैद्य वहाँ मौजूद थे। पण्डित पाठ करने लगे। दान-दक्षिणा दी जाने लगी। प्रातःकाल ही जगन्नाथ बाबू एवं उनके चचा साहब भी आ गये। ८ वीं जून सन् १९३२ ई० को प्रायः १० बजे दिनमें सारे परिवार, ग्रामवासियों और परिचितोंको शोकसागरमें निमग्न कर आपने इस असार संसारको छोड़कर स्वर्गधामकी यात्रा कर दी! इस प्रकार बिहारके हिन्दीसाहित्याकाशका "रत्नाकर" सदाके लिये अस्त हो गया।

उषा

प० लोचनप्रसाद पाण्डेय

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा
यथा प्रसूता सवितुः सवाय एवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥

—ऋग्वेद १।११३

भावानुवाद—

यह सकल ज्योतियोंसे शुचि शुभ्र ललाम,
शुभ ज्योति उषाकी प्रकट हुई छबिधाम॥
सविताके चित्र-प्रकेतु दिवानिशि-सेतु,
स्वागत जागृति-सुख-बल प्रकाशके हेतु॥

छाया

बा० रौशनलाल "अम्बालवी" बी० ए०

(१)

नयी दिल्ली कुछ नया शहर नहीं है। जिस ख़ाकमें यह पैदा हुई है, उसमें कभी दुनियाके निहायत क़ाबिल आदमियोंका हाथ लग चुका है। जिस मुक़ामपर आज चौड़ी-चौड़ी स्याह सड़कें हैं, कभी उस मुकामपर खूबसूरत महलात होंगे। जहाँ अब बाग हैं, वहाँ तालाब होंगे और जिस घरमें इनसान रहते हैं, वह सदियों पहले वीरान मुकाम रहा होगा। दिल्ली कई दफा बनी और उजड़ी; लेकिन उजड़कर भी कुछ निशानात, अपनी याद दिलानेको, छोड़ गयी।

\+ + + +

जिस दिनसे मैंने इस अजीबो-गरीब शहरमें कदम रखा है, उसी दिनसे मैं यहाँके खँडहरोंका सर-आँखोंसे लगाकर एक-एक टूटा-फूटा पत्थर देखता हूँ—इससे इसके बनानेवालेका हाल पूछता हूँ; वह मुझसे बातें करता है और मैं भी उससे अकेलेमें बातें करता हूँ। जबतक गवर्नमेंटने हिन्दुस्तानी मुलाजिमोंके लिये क्वाटर नहीं बनवाये थे, मैं पुरानी दिल्लीमें ही रहता था। मगर जब क्वाटर बन गये, तो, मैं, आसानीकी गरजसे शहर छोड़कर काटरोंमें आबाद हो गया। इन काटरोंका नाम "ताल कटोरेके काटर" मशहूर हो गया; और, आम तौरपर "ताल कटोरे"के नामसे ही इन्हें पुकारने लगे; क्योंकि, सुना गया है कि, इस जगह ताल कटोरा नामका एक तालाब था; उसके किनारोंपर बाग था और पास ही इसी नामका एक गाँव भी था।

एक रोज, रातके बारह बजेसे कुछ ही पहले, शहरसे थियेटर देखकर आया। सोनेके कमरेमें जाकर कपड़े उतारे और अपने बिस्तरेमें गरम होने लगा। पासके ही गिरजेमें ठीक बारह बजेका घंटा बज रहा था। मुझे अपने कमरेमें निहायत बारीक आहट मालूम हुई और, देखते-ही-देखते, मेरे मकानकी सारी बिजली-बत्तियाँ आप-ही-आप रौशन हो गयीं। पाँच मिनटतक ऐसा मालूम हुआ कि, सूरज निकल आया; और, फिर, एकदम घटाटोप अँधेरा छा गया। सिर्फ वही चीज थी, जो मेरे कमरेमें चल रही थी—चलती रही। मैं डरसे पहले तो चकपका गया; मगर फिर उठना ही पड़ा। अन्दर गया, बाहर गया, तमाम रोशनी जलायी; मगर वहाँ क्या धरा था—बिलकुल सूनसान, पूरी खामोशी! मैंने सोचा, फिर वह लतीफ आहट किसकी थी—मेरे मकानमें रोशनी किसने की! तमाम स्विच बन्द थे, खुद-ब-खुद क्योंकर खुल गये!!

मैं खयालात और उनसे निकलनेवाली लहरोंका कायल जरूर हूँ। मायासे जो बातें हो सकती हैं, उनका माननेवाला भी हूँ—रूहको आत्मा और अनन्त मानता हूँ; लेकिन मैं भूत-प्रेतपर इतमिनान लानेवाला नहीं। इसलिये अब मुझे ताज्जुबने बेतरह घेरना शुरू किया। पहले तो मेरा इरादा हुआ कि, रातकी बात सुबह अपने

दोस्तोंको सुना दूँ। मगर फिर खयाल आया कि, लोग हँसी उड़ायँगे; इस लिये खामोश हो जाना ही बेहतर है।

दूसरे दिन, रातमें, मैं पलंगपर लेटा था। टालस्टायकी "रिशोरेक्शन्" मेरे हाथमें थी। एक तो मैं उसके पढ़नेमें इस कदर मस्त था कि, मुझे अपना भी होश न था, दूसरे मैं आज रात भी बारह बजेतक जरूर जागना चाहता था, वहमको पूरा करनेके लिये।

फिर गिरजेका घंटा बजा, ठीक रातके बारह बजे। हवा साँय-साँय कर रही थी। जनवरीकी रात थी। दाँतसे दाँत बजता था। मेरी आँखें दरवाजेपर लगी थीं। दरवाज़ा बन्द था। रौशनदान बन्द थे। मगर न मालूम वह आनेवाला—वह हल्की आहटसे चलनेवाला—सरसे पैरतक सफेद रेशमी पोशाक पहने, कहाँसे—किधरसे—कौनसे रास्तेसे—मेरे कमरेमें दाख़िल हुआ! मकानकी बत्तियाँ फिर रौशन हो गयीं!!

धीरे-धीरे मैं उसके पीछे चल पड़ा। मकानसे बाहर हुआ। सब्ज़ मख़मली घासपर वह जानेवाला, हवासे हल्का—ख़यालसे तेज़, बारीकसे बारीक जिस्मवाला आगे-आगे था और मैं पीछे-पीछे। करीब-करीब आध मील चलकर वह लाल कटोरेवाले बागमें पहुँचा—जिसका कुछ हिस्सा अबतक आबाद है; और, फिर, एक बारदरीमें चला गया। कुछ हिचकियों-सी आवाज़ मेरे कानोंमें आयी; फिर सन्नाटा छा गया!

मैं लौट आया—सीधे अपने क्वाटरमें। बिस्तरेपर लेट गया। रातभर करवटें बदलता रहा। मुझे नींद न आयी; डरके मारे नहीं, बल्कि इस फ़िक्रमें कि, माजरा क्या है—आनेवाला कौन है—उसके आनेपर मेरे मकानकी बत्तियाँ क्यों जल जाती हैं!!!

आज तीसरे दिन मैंने फिर बड़ी मुश्किलसे दिन गुज़ारा। सारा दिन सबसे इन्तज़ार किया कि, इस भेदको ज़रूर मालूम करनेकी कोशिश करूँगा।

फिर रातके बारह बजे वही गिरजेके घंटेकी आवाज़।

उस बारीक जिस्मसे ख़ामोश आवाज़ निकली! मेरे मकानकी बत्तियाँ फिर रौशन हो गयीं और किसीकी शक्ल मालूम हुई—सफ़ेद पोशाकमें!! मैं फिर पीछे-पीछे चल पड़ा। ठीक लाल पोखरके बाग़के दरवाज़ेपर पहुँचते ही मैंने पीछेसे जाकर उस जानेवालेका हाथ थाम लिया!

मुझे मालूम हुआ, मेरे बदनमें तेज़ बिजली दौड़ गयी! तमाम जिस्म काँप उठा! आँखोंके आगे अँधेरा छा गया! मैं गिर पड़ा! फिर, मुझे होश न रहा!

मेरे कानोंमें आवाज़ आयी—"अच्छा, न माने न! आख़िर हमें पकड़ ही लिया!!"

(२)

मैंने आँखें खोलकर देखा—एक आलीशान कमरा है, जिसके फ़र्शपर मैं लेटा हूँ; कमरेमें तेज रोशनी हो रही है, मानो सूरज निकल रहा हो; दीवारोंपर रंग-बिरंगी खूबसूरत तस्वीरें खिची हुई हैं; दरवाजोंपर मख़मली कामदार पर्दे लटक रहे हैं; छतमें भी कन्दीलें लटक रही हैं, जिनपर सोनेकी मीनाकारी की हुई है। ऐसा मालूम होता है कि, इन्द्रका ही महल है, जहाँ परियोंका नाच होनेवाला है! मैंने देखा कि, सामने, दीवारके पास, एक तख्तपर फ़र्श लगा है, जिसपर कोई भी बैठा दिखायी नहीं देता। हाँ, एक शमादानमेंसे हल्का-हल्का सफ़ेद रंगका खुशबूदार धुआँ निकल रहा है, जो कमरेकी हवामें ही मिला जाता है और जिससे दम नहीं घुटता!

मैंने चारो तरफ़ आँखें घुमाकर देखा, मगर बोलनेवालेकी शक्ल दिखायी न दी। मैंने समझा, कोई पर्देमें होगा। कहा—"मैं कहाँ हूँ!"

"कहाँ हो, क्या तुम देख नहीं सकते?"—आवाज़ आयी।

"देख रहा हूँ कि, किसी महलका एक कमरा है।"

"अहा हा—महल बताते हो! मालूम होता है, महल तुमने आजतक नहीं देखे!"

"जी नहीं, हमें महल देखनेका मौका भी कहाँ है,

और, फिर, आजकल महल कहाँ धरे हैं!"

मैंने सुना, किसीने लम्बी साँस ली। कुछ देरके बाद मैं बोला—"आप कौन हैं? कहाँसे बोल रहे हैं? मेरे सामने क्यों नहीं आते?"

"मुझे रोकनेका तुम्हारा मतलब क्या था!"

"क्या आपको मालूम नहीं?"

"नहीं, मुझको क्या पता!"

"मेरे मकानमें, रातको बारह बजे, हर रोज, खुद-बखुद रोशनी हो जाती है और कोई बारीक जिस्म निकलकर बाहर जाता है। बस, सिर्फ़ मुझे इतना ही मालूम करना है कि, ऐसा क्यों होता है!"

"तुम्हारा मकान..."

"जी हाँ, जिस सरकारी क्वाटरमें रहता हूँ।"

"क्या कह रहे हो...क्या क्वाटर...किसका क्वाटर?"

"क्या आपको मालूम नहीं कि, ताल कटोरेमें हजारों-की तादादमें सरकारी क्वाटर बने हैं, जिनमें लोग आबाद हैं।"

"क्या दिल्ली फिरसे आबाद हो गयी?"

"जी हाँ। पुरानी दिल्लीसे—जिसे शाहजहाँ बादशाहने बसाया था—चार मीलके फ़ासलेपर, दक्खिनके कोनेमें, नयी दिल्ली आबाद हो गयी!"

"अच्छा, ऐसा है, तो बस हमारा दौर-दौरा खतम हो गया। बाबा, अब हम न आया करेंगे। खुश रहें नयी दिल्लीवाले, मुबारक हों नये बाशिन्दोंको नये मकान। कभी हम भी नये मकानोंके रहनेवाले थे। उस वक्त...... हाँ, उस वक्त—जब हमारी दिल्ली बन रही थी......मगर अब दूसरोंकी है। अपनेको क्या मतलब, किसीकी हो। यह हरजाई किसीकी होकर न रही। उफ़.............!"

मैंने सहारा लेकर सर उठाया और कहा—"हुजूर, आप कोई भी क्यों न हों—रूह हों या किसीकी याद; मगर मुझपर रहम करके कुछ पुराने जमानेका हाल बता दीजिये—अपना राज समझा दीजिये। मैं दिल्लीमें अजीबो-गरीब बातें, पुराने जमानेकी, सुना करता हूँ; मगर बनावटी समझकर यकीन नहीं करता। क्या मेरी मुराद बर आवेगी?"

आवाज आयी—"ऐ इन्सान! मैं रूह नहीं हूँ। रूह सारी दुनियापर कब्जा रख सकती है। रूह पहचानी जा सकती है। वह आत्मा है—देखी नहीं जाती। वह बारीकसे बारीक और बड़ी ताकतवर होती है। मैं भी था......इन्सान......मेरी देह भी हाड़ और मांससे मिलकर बनी थी। अब क्या है! असली माया...ख्यालातोंका बारीक जिस्म, जो हमेशा कायम रहता है।"

"फिर?"—मैंने कहा।

आवाज आया—"मैं ढूँढनेवालेके हमेशा पास हूँ। जो मेरी तलाशमें रहता है, मैं उसको मिलता हूँ। तुमने ढूँढा, इसलिये तुम्हें मिल गया। मुझसे डरते क्यों हो? मैं सच्चेका दोस्त और झूठेका दुश्मन हूँ। मैं सामने रहकर भी नजरोंसे ओझल रहता हूँ। तुम मुझे सभी जगह पा सकते हो!"

"आखिर?"

"क्या बताऊँ कि, आखिर क्या है? यहाँ न आखिर है और न अंजाम; न शुरू है, न खतम। अब, चूँकि, तुम ढूँढ रहे हो; इसलिये मैं तुम्हें, तुम्हारे रंगमें ही, सब कुछ बताऊँगा। जैसा तुम मिजाज रखते हो, वैसी ही तस्वीर तुम देखोगे। जरा कान लगाकर सुनो कि, मैं कौन हूँ और किस तरहकी जिन्दगी बसर करता हूँ!"

कुछ देरके लिये वह आवाज बन्द हो गयी। अन्तको फिर इस तरह मुझे सुनायी दी—

"हिन्दू-सम्राट् महाराणा पृथ्वीराजसे भेंट हो जानेके बाद वह कौम, जिसका झंडा आसमानपर लहराता था—वह मुल्क, जिसके नामकी धूम सात समुद्र पारतक थी, बेदर्दी और बेरहमीसे पावोंतले रौंदे जाने लगे। कौमी झगड़े पैदा हो गये और चाँदीके चन्द टुकड़ोंपर लोगोंने ईमान बेचना शुरू कर दिया। इन्सान ही इन्सानका दुश्मन हो

गया! इन्सान ही इन्सानकी किस्मत पलटने लगा!

"दिल्लीका तख्त बरबाद होते ही आसपासके छोटे-छोटे राजा-महाराजा खुदसर हो गये। उनकी सल्तनतें जोर पकड़ गयीं। इसी दिल्लीके पासके रईस—जिन्हें "राजा"का खिताब था—महाराणा पृथ्वीराजके मारे जाते ही दुश्मनोंसे मिल गये और जयचन्दके नमकख्वारोंमें घुल-मिल गये। अब क्या था! जमीन काँप गयी; आसमान गूँज उठा! मांस और मदिराका दौरा चलने लगा! इन्साफकी गर्दनपर छुरी फेरी जाने लगी!

"मैं भी उन्हीं राजाकी फौजमें एक अफसर था। लोगोंके दिलपर मेरी बहादुरीका सिक्का बैठ चुका था।"

इसके बाद वह आवाज बन्द हो गया। मैंने अर्ज किया—"किस्सेको अधूरा न छोड़िये।"

ठंढी साँसकी आवाज मेरे कानोंमें आयी और मैंने सुना—"हमारे देशमें उस वक्त एक बूढ़ा और नेक वजीर भी था। उसकी एक नेक बेटी थी; नाम था माया। अपने पिताकी ही जिन्दगीमें मेरा आना-जाना वज़ीर साहबके घरमें था। तब मैं नौजवान और बेफिक्र था। मुझे दुनियाकी कुछ भी खबर न थी। प्रेम करना और कराना ही मैं धर्म समझता था। पिताके मरनेके बाद मैं मुलाजिम हो गया और बाहर, गावोंमें, भेज दिया गया। छोटी-सी फौज मेरे साथ थी। उसे लेकर मैं अपनी छावनीमें रहने लगा।

"मेरा दिल मायाके फेरेमें था। उसकी जुदाई मेरे लिये मौत और जिन्दगीका सवाल थी। एक रोज मौका पाकर, रातको, मैं अपने घोड़ेपर सवार हुआ और हवाकी तरह चलकर, आधी रात गये, मायाके मकानपर जा धमका।

"गर्मीके दिन थे। चाँदनी रातमें, चौमंजिले मकानकी छतपर, वह सो रही थी। तमाम मकानमें, मेरे सिवा, कोई न जागता था।

"बेधड़क तलाश करता हुआ मैं ऊपर, छतपर, पहुँच गया। वह बड़ी खूबसूरत दीख रही थी। सफेद बिस्तरेपर सोया हुई वह ऐसी जान पड़ती थी, मानों साफ पानीमें कमल खिल रहा हो! निहायत हल्का सफेद कपड़ा उसके जिस्मपर था, जिसमेंसे उसकी देहकी सुर्खी फूटी पड़ती थी। वह परीजाद चाँदनीके समुद्रमें तैर रही थी, मैं उसका रूप निहारते हुए एक अजीब नशेमें डूब रहा था।

"सामनेके बगीचेमें कोयलकी 'कुहू' सुनायी दी। इस आवाजका जवाब किसी मोरने दिया। सुन्दरीकी नींद उचट गयी। उसने सीपीका मुँह खोलकर सच्चे मोती चमका दिये। फिर, करवट बदलकर बोली—"कब आये हो जी तुम! कहा भी नहीं मुझसे?"

"चुप"—मैंने कहा—"खामोशी फैल रही है। सब जग जायँगे!"

"क्या बजा होगा?"

"आधी रात जा चुकी है।"

"आधी रात!"

"हाँ।"

"फिर क्यों आये तुम ऐसी सुनसान चाँदनी रातमें एक अकेली औरतके पास?"

"तुम्हें देखनेको आँखें तरस रही थीं!"

"मैं उसके पलंगपर बैठ गया। वह भी बैठ गयी। खूब चाँदनी थी; लेकिन बादलका एक टुकड़ा कुछ देखनेके लिये आ गया। हम दोनों अँधेरेमें डूब गये। मेरी गोदमें उसने अपना माथा झुका दिया। चाँदनी फिर खुल गयी। मैंने देखा—माया रो रही थी; उसके दोनों हाथ उसके चेहरेपर थे!

"क्या है माया?" मैंने कहा।

"क्या तुम वही जवान हो, जो बचपनसे आते थे?"

"मैं हैरान था।

"क्या तुम्हारी रगोंमें वही राजपूती खून है, जो राजा पृथ्वीराजकी रगोंमें था?"

"मैंने कुछ जवाब नहीं दिया।

"क्या तुम्हींको वीर कहलानेका फख्र हासिल है, जो अबलाओंको जुल्मके पंजेसे छुड़ाकर उनकी इज्जत बचाते

हो! अगर मेरे सवालका जवाब 'हाँ' में है, तो कहो कि, तुमने किन हाथोंसे—किन आँखोंसे—किस देहसे मेरी इज्जत लूट ली! एक कमजोर औरतकी कमजोरी-का फायदा उठाया! मैं अपने वशमें न थी—मेरा दिल काबूसे बाहर हो गया था। मैं कटी हुई पतङ्गकी तरह हवामें उड़ी जा रही थी। तुम्हें मुनासिब था कि, मुझे राहपर लाते, मेरी गलतियोंको दुरुस्त करते।"

"उसकी बातें सुनकर मैंने शर्मसे गर्दन नीची कर ली। सचमुच मैंने चाँदनी रातमें, चोरकी तरह आकर, एक नादान औरतको तबाह कर डाला!

"वह जख्मी शेरनीकी तरह झपटकर खड़ी हो गयी और बोली—"सुनो, जब मैं कामदेवकी तीर खा-खाकर बस्मी परिन्देकी तरह हवामें उड़ती हुई जमीनपर आ रही थी, उस वक्त तुम्हारे सिवा अगर कोई दूसरा होता...तो क्या होता?...भेद खुल जानेपर तुम मुझसे कैसा सुलूक करते? मैंने माना कि, तुम मुझसे व्याह कर लोगे, तो क्या अपनी पत्नीमें एक सच्चा पातिव्रत्य तुम पाओगे? धर्म-संकट हो गया। मोती टूटकर कङ्कड़ हो गया...ना... हर्गिज नहीं। एक धर्मसे गिरी हुई औरत कभी देवताओंकी रूबरू सच्ची सती होनेकी कसम नहीं खा सकती! मैं एक वीर पुरुषके हाथोंमें अपना हाथ देते वक्त धोका न ँगी। मैं वेश्या...जिसका धर्म—जिसकी अस्मत व्याहसे पहले ही ही खराब हो चुकी है! जाओ नाथ, किसी क्वारी कन्यासे व्याह कर लेना। मैं तुम्हारे योग्य न रही!"

"माया!" मैंने कहा।

"वह चुप हो रही।

"क्या कहती हो?"

"जो कभी एककी होकर नहीं रहती।"

"माया...माया ऐसा न कहो। मैंने तुम्हें आँखोंमें पाला है। तुम मेरी हो; मेरी होकर रहो। तुम्हें फिरसे आँखोंमें छिपा लूँगा।"

"स्वामी, तुम बेकुसूर हो। माया सचमुच कभी अपने असली रूपमें रह ही नहीं सकती। देखो, मायाकी तरह-तरहकी तस्वीरें नजर आ रही हैं। क्या यह मायाका असली रूप है? यह शरीर भी इसी तरह एक चादर है। मैं इस चादरको जल्दी-से-जल्दी बदल डालना चाहती हूँ। यह मैला हो चुका है।"

"इसी तरह रातभर बहस होती रही; मगर वह न मानी। सुबह मुझे छावनीमें पहुँचना था—गैरहाज़िरी मेरे लिये मौतका पैगाम थी। मैंने रुखसत हासिल की।

"मैं नीचे उतर आया। घोड़ा खोलकर छावनीका रास्ता लिया। मेरे दिलमें दर्द उठ रहा था; क्योंकि मैं जानता था कि, मायाकी हठ बेढब है।

"जमाना गुजरा। मैंने समझा, अब उसका गुस्सा हल्का हो गया होगा। मैं फिर, रातको, मायाके मकानकी तरफ रवाना हुआ।

"आधी रात गये मैं पहुँचा। उसी तरह ऊपर पहुँच गया, जिस तरह एक साल पहले, आज-सी ही चाँदनी रातमें, एक वाकया हो चुका था। मगर अफसोस, छत खाली थी! आज वहाँ मायाका पलंग न था!

"मुझे कुछ खौफ हुआ—कुछ रञ्ज हुआ—कुछ तअज्जुब हुआ! मैं उलटे पाँव वापिस आया।

"मायाके मकानमें एक बूढ़ा मुलाजिम भी रहा करता था। मैं उसकी कोठरीमें गया। वह सो रहा था। मैंने उसे आहिस्तेसे जगाया। जागते ही वह बोला—"अच्छा भैया तुम हो! कब आये?"

"आ ही तो रहा हूँ। माया कहाँ है?"

"जाने दो भैया, क्या करोगे पूछ कर। बस, समझ लो, वह मर गयी!"

"दादा, तुम्हें मेरी कसम! कहते क्यों नहीं!"

"भैया, रातके बारह बजे एक दिन वह आयी और घोड़ा खोलकर चल दी। उसके बदनसे खुशबू आ रही थी।"

"हूँ", मैंने समझा!"

"नहीं, तुम नहीं समझ सकते। मायाने नजर बागवालों से आँखें लड़ायीं और उस दिनसे आजतक नहीं आयी!"

"नजरबाग राजाकी खास बाग था। उसमें किसीको जानेकी इजाजत न थी। और, अगर, कोई भूलसे चला भी जाता, तो उसकी गर्दन उड़वा दी जाती थी। बात यह थी कि, उस बागमें उस पाजी राजाने नौजवान लड़कियाँ रखी थीं और शरीफ घरानोंकी बहू-बेटियोंकी बे-इज्जती की जाती थी। उस नजरबागमें राजाके मुँहचढ़े खुशामदी राजाको शराब और मांस खिलाकर—खुद भी खाकर—दीन और ईमानको कौड़ियोंके मोल बेच देते थे। वहाँ न बहनको भाईसे परहेज था और न माँको बेटेसे! वहाँ असमत जबह की जाती थी। इसी वजहसे राजाका सख्त हुक्म था कि, उस बागमें बिना उसकी मर्जीके कोई न जाने पावे। बस, यह मालूम करके राजाके नजरबागमें गयी है और वापिस नहीं आयी।

"मेरी आँखोंमें खून उतर आया। मैं जानता था कि, वहाँ जाकर मैं जिन्दा वापिस नहीं आ सकता। मगर माया ......आह माया! तुम्हें भी नजरबागमें नहीं छोड़ सकता!!

"जिस नजरबागमें मुहब्बतके मजे आ रहे होंगे, उस नजरबागमें अब मौतकी आवाज सुनायी देगी!" यह कहकर मैं नंगी तलवार चमकाता घोड़ेपर सवार हो गया और सीधे नजरबागका रास्ता लिया।

"घोड़ेकी पीठपर सवार होकर मैं नजरबागकी दीवारपर छलाँग भर गया। वहाँ जो कुछ देखा, उससे जिस्मके हर हिस्सेमें खून खौलने लगा। मेरी माया......मेरी माया हौजके किनारे—जवाहरातोंसे सजी हुई—मखमली फर्श पर उस बदमाश राजाके घुटनेपर सर रखे लेटी हुई है और वह अपने नापाक होठोंसे उसे चूम रहा है! आसपास कुछ मर्द हैं और हर एककी बगलमें एक खूबसूरत औरत है—सब नंगी! उफ, कलेजा काँप उठा—रोंगटे खड़े हो गये! ईश्वरके राज्यमें—सूरज और चाँदके सायेमें—ऐसे वक्त जब राजपूतके हाथमें तलवार बाकी थी...... पाप!......घोर पाप वहाँ नंगा होकर नाच रहा था! मेरी तलवार मेरे हाथमें काँप गयी! मैं उस मजलिसमें जा कूदा और कड़क कर बोला—"होशियार! आज तुम्हारी मौत तुम्हारे सामने है। दोजखी कुत्तो—राजपूती शानमें बट्टा लगानेवाले हिन्दुओ, उठो और मेरा वार सँभालो!

"उस पाजी राजाने इशारा किया। एक मुसाहबने सीटी बजा दी और बातकी बातमें पचासों हथियारबन्द सवार, न जाने कहाँसे, निकल आये!

"मैं अकेला और वे बेशुमार! तलवारें चलने लगीं। मैं गिर पड़ा। मगर मेरे खयालात; जो मेरे फना होनेवाली देहसे निकल चुके थे, न गिरे— एक बारीक सूरत अख्तियार कर ली; गलने-सड़नेवाला लिबास छोड़कर कायम सूरत हासिल कर ली। कुछ दिनों बाद, जब मैं आसमानमें हवा बनकर उड़ रहा था, मायाने भी अपना रूप बदल डाला। वह मुझसे दूर थी; मगर उसका असर जमानेपर छाया हुआ था। वह कहने लगी—"तलवार ही तलवारको काटती है। मैंने जान-बूझकर नजरबागका रास्ता लिया था। पर्देकी ओटमें जो पाप हो रहा था, उसे देख लिया था। फिर तुम भी मायाकी नजरसे क्योंकर बच सकते थे। मायाके रूपमें फँसकर इन्सान गुनाह कर बैठता है।"

"मुझे अब मायाका भेद मालूम हो गया कि, उसने किस तरह अपना बदला लिया।

"मेरे खूनकी बात तमाम फैल गयी। मुल्कमें बगावत हो गयी। रियाया राजाके खिलाफ हो गयी और नजरबागकी ईंटसे ईंट भिड़ा दी गयी। चारों तरफ आगके शोले बुलन्द हो गये। राजा बाल-बच्चों समेत तबाह हो गया!

"बस, मेरे दोस्त, यह किस्सा खतम हो गया। मैं अपने बारीक जिस्मको लेकर ठीक आधी रातको—बारह बजे—रौशनी करता हूँ, निकलता हूँ और उस पुराने नजरबागकी तरफ आकर देखता हूँ कि, कहीं फिरसे तो पाप नहीं जाग रहा है—कहीं मुझे फिर तो हाथों तलवार लेकर मायाका झगड़ा चुकाना न पड़ेगा!"

× × × +

आवाज बन्द हो गयी। मैंने करवट ली और वहाँसे सीधे अपने क्वाटरमें आ गया! उस दिनके बाद आजतक वह नेक रूह फिर नजर नहीं आया!!

इटली और यूरोपमें भारतीय साहित्य

पं० जगन्नाथ मिश्र गौड़ "कमल"

भारतकी प्राचीन सभ्यताका इतिहास अपना खास महत्त्व रखता है। इस सभ्यताके गौरवसे मैक्समूलर जैसे जर्मन विद्वान् परिचित हो चुके थे। मैक्समूलरकी गणना प्रसिद्ध वेदज्ञोंमें होती है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति या सभ्यताका इतिहास संस्कृतमें ही लिखा पाया जाता है। यही कारण है कि, संस्कृतके अध्ययनकी ओर यूरोपवालोंका ध्यान विशेष रूपसे आकृष्ट हुआ; क्योंकि जब उनका भारतमें आधिपत्य हुआ, तब उन्हें व्यावहारिक शासनके लिये संस्कृत सीखनेकी जरूरत पड़ी। भारतीय सभ्यताके गौरवसे यूरोपवालोंको परिचित करानेमें आज इटलीका भी महत्त्वपूर्ण भाग है। इटलीको इस सभ्यता और संस्कृतिका ज्ञान प्राप्त करानेमें बड़ा प्रेम है। वहाँके विश्वविद्यालयोंमें क्रमशः संस्कृतके अध्ययनके लिये सुविधाएँ की गयी हैं।

इटलीमें ऐसी अनोखी आदर्शवादिताका अस्तित्व है, जिसके कारण वहाँ इतिहास-ख्यात 'युगान्तर' हुआ था, जिससे प्रभावान्वित होकर यूरोपकी काया पलट गयी और वहाँ उन्नतिके युगका समावेश हुआ। उस आदर्शवादिताने वेदान्त-तत्त्वपूर्ण शब्द-शास्त्र द्वारा इटलीका प्राचीन और अर्वाचीन सभ्यताओंसे सम्पर्क कराया, जिससे इटालियनोंके हृदयमें प्रत्येक सिद्धांत और साहित्यके प्रति सहानुभूति-पूर्ण ज्ञान उत्पन्न होता है। भारतीयता-प्रेमी इटालियनोंकी परीक्षा उनकी लिखित पुस्तकोंसे नहीं हो सकती; क्योंकि वे लिखकर ग्रन्थ तैयार करनेकी अपेक्षा पठन-पाठनको ही अधिक उत्तम समझते हैं। उनकी परीक्षा स्वयं उनके व्यक्तित्वसे ही हो सकती है। उनमें उत्साह और ज्ञानानुभव-शक्तिका बाहुल्य होता है।

इटलीमें जितने बड़े-बड़े विद्वान् हो गये हैं, वे सभी साहित्यिक सुख अनुभव करनेमें निमग्न थे। उन्होंने कोई ग्रन्थ आदि लिखकर अपनी विद्वत्ताका परिचय देनेके लिये नहीं रख छोड़ा है। यदि कुछ लिखी पुस्तकें मिलती भी हैं, तो उन्हें पढ़कर विद्वत्ता या अध्ययनशीलताका पता लगाना दुष्कर है; किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, इटालियन कवि और लेखक प्राच्य विद्वानों द्वारा निर्धारित सिद्धान्तों और भावोंके अनुभव करनेमें विलीन थे। इतिहाससे पता चलता है कि, इटलीके तेजा ग्राममें एक विद्वान् रहते थे, जो विद्यामें प्रकाण्ड थे; उन्हें अनेक भाषाओंका सम्पूर्ण ज्ञान था; पर खोजनेपर उनकी विद्वत्ताके अनुकूल उनकी लिखी हुई कोई पुस्तक कहीं नहीं मिलती। इससे प्रकट होता है, इटलीके विद्वानोंमें साहित्यिक पिपासा न थी, जिसके कारण उन लोगोंने अपनी लेखनीको कुछ लिखनेमें नहीं लगाया।

एक प्रोफेसर महोदयका विचार है कि, इटलीके आचार्योंकी वृत्तियाँ प्रेम-भाव-पूर्ण हैं। इन आचार्योंने अन्य साहित्योंसे कहीं अधिक संस्कृत-साहित्यके अध्ययनमें रुचि दिखलायी थी। इटालियन विद्वान् गोरिसियो अत्यन्त छोटी अवस्थासे ही पेरिसमें रहकर संस्कृत-साहित्यका अध्ययन करते थे। उनके साहित्यिक जीवनका अधिक भाग रामायणका अनुवाद करनेमें लगा था। भारतीयोंको ज्ञात है, इटलीके दूसरे विद्वान् ऐंजेलोडीगुबरेनेटिस भारतमें वैदिक पुस्तकों और धर्मके अध्ययनके लिये आये थे। संस्कृत-साहित्यका उनपर इतना अधिक प्रभाव पड़ा था कि, उन्होंने भारतसे लौटकर रामायणके आधारपर एक नाटककी रचना की थी। भारतमें आये हुए इटालियन पादरियोंके जीवन और अध्ययनके सम्बन्धमें भी उनकी एक पुस्तक लिखी हुई है। वे भारतसे कुछ पुस्तकोंकी हस्तलिपि उठा ले गये थे, जो इटलीके किसी पुस्तकालयमें रखी गयी है। यूरोपमें प्रथम-प्रथम जो संस्कृत-व्याकरणकी

पुस्तक निकली है, उसके लेखक डाक्टर पौलिन नामक इटालियन हैं।

महाभारत और शकुन्तलाका पद्यानुवाद इटली-साहित्यकी उत्कृष्ट रचनाएँ समझी जाती हैं। इनके निर्माता प्रोफेसर करवेकर हैं। वे नेपल्स युनिवर्सिटीमें बहुत दिनोंतक प्रोफेसरके पदपर नियुक्त थे। उनके समयसे इटालियनोंका झुकाव और भी संस्कृत-साहित्य और आर्य्य-संस्कृतकी ओर हो गया है। प्रोफेसर सुआलीने न्याय और वैशेषिकके इतिहासपर बड़े अच्छे लेख लिखे हैं इटालियन कवि तेसीटोरी भारतीय भाषाओंके पक्के भक्त थे। प्रोफेसर वैलिनीने छन्दोनिरूपण-पर संस्कृतके आधारपर बहुमूल्य पुस्तक लिखी है। प्रोफेसर वेरोनोकीफिलीने स्वप्नवासवदत्ता, बृहदारण्यक उपनिषद्, कठोपनिषद्, नाचिकेत-उपाख्यान आदि संस्कृत-ग्रन्थोंका अनुवाद किया है और उनपर भाष्य लिखे हैं।

इस समय इटलीके विश्व-विद्यालयमें संस्कृतके अध्ययनकी पर्याप्त सुविधाएँ प्राप्त हैं। इटलीके मिलान, रोम, नेपल्स, फ्लारेन्स और ट्यूरिन विश्वविद्यालयोंमें कई विद्वान् संस्कृतके आचार्य्य हैं। उनमें वैलिनी, पेजागेली, पेविया सुआली, पीसा-फिलिपी, फरमोची, सिमिनो, फ्वोलिनी आदि प्रसिद्ध हैं।

सिकन्दरके आक्रमणके बाद ग्रीक लोगोंको भारतीय विद्यासे कुछ परिचय प्राप्त हुआ था। पाँचवीं या सातवीं शताब्दीमें अरब-के निवासियोंने भारतीय विज्ञानकी शिक्षाका प्रचार पाश्चात्य देशोंमें किया था। प्रायः इससे नव शताब्दियोंके बाद कुछ यूरोपियन मिशनरियोंने भी भारतीय भाषाओंका ज्ञान प्राप्त किया था भर्तृहरिके पद्योंका अनुवाद डच भाषामें अब्राहमरोजर नामक एक पाश्चात्य विद्वान्ने किया था। गवर्नर जेनरल हेस्टिंगसके समयमें चार्ल्स विल्किन्सने भगवद्गीता और हितोपदेशका अंग्रेजीमें रूपान्तर छपवाया था। उन्होंने बनारसमें रहकर संस्कृतका अध्ययन किया था। विलायतमें संस्कृतके और भी अनेक विद्वान् हो गये हैं। जैसे, सर विलियन जोन्स, टी० कोलबुक, अलेक्जेंडर हेमिल्टन आदि। सर विलियम जोन्सने महाकवि कालिदासके अभिज्ञान-शाकुन्तल, ऋतुसंहार तथा मनुस्मृतिका अनुवाद प्रकाशित कराया था। उन्हें संस्कृत भाषासे बड़ी अभिरुचि थी। उनकी इस अभिरुचिमें एक विलक्षण आकर्षण था, जिससे भारत-की प्राचीन भाषाओं तथा विद्याओंकी ओर अन्य व्यक्तियोंका भी ध्यान शीघ्र ही आकृष्ट हो आया। कोलब्रुक महोदयने संस्कृत-भाषाके प्रत्येक विषयका मन्थन, वैज्ञानिक ढंगसे, किया था। उन्होंने भिन्न-भिन्न विषयोंपर भिन्न-भिन्न लेख, अनुवाद तथा अन्य ग्रन्थ प्रकाशित कराये थे। अलेक्जेंडर हेमिल्टन उस समयके विद्वान् थे, जिस समय अंग्रेजों और फ्रांसीसियोंमें युद्ध जारी था। इस युद्धमें वे कैद कर लिये गये थे। वे जर्मनी और फ्रांसके विद्वानों तथा लेखकोंको संस्कृत पढ़ाते थे।

यूरोपमें वैदिक-शिक्षाका प्रचार एफ० रोजनने किया था। यह १८३८ ई० की बात है। उसके बादसे भारतके वैदिक साहित्यका अध्ययन करनेकी आकांक्षा यूरोपवालोंमें प्रबल हो गयी। फलतः यूरोपमें वेदों तथा अन्य प्रामाणिक संस्कृत-ग्रन्थोंके अनुवाद यूरोपकी विभिन्न भाषाओंमें निकलने लगे।

आजके इटालियन साहित्यिकोंकी मनोवृत्ति भारतवर्षके नवीन साहित्यकी ओर घूम रही है। वे तुलसी, कबीर और नानककी भाव-पूर्ण कृतियोंसे कुछ सीखना चाहते हैं। इन कृतियोंके अध्ययनके लिये वहाँके विद्वान् प्रयत्नशील हैं। सरकारसे इस बातकी अपील भी की गयी थी कि, भारतके वर्तमान साहित्यकी शैली और महत्तासे परिचित होनेके लिये इटलीके विश्वविद्यालयोंमें छात्रोंको सुविधाएँ दी जायँ।

यूरोप आधुनिक कालमें भारतीय-साहित्यके प्रकाशनकी ओर विशेष ध्यान दे रहा है।

श्रौत और तार्किक दर्शन

साहित्याचार्य श्रीयुत विधेन्द्र शास्त्री

जिससे जाना जाय अथवा जो जाना जाय, उसे दर्शन कहते हैं। कितनोंके मतमें ६, कुछके विचारमें १२ और कुछकी रायमें १६ दर्शन हैं। षड्दर्शन माननेवालोंके भी कई दल हैं। कोई न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्तको षड्दर्शन मानते हैं। दूसरे आस्तिक दर्शनोंमें मीमांसा, सांख्य और न्यायके साथ चार्वाक, बौद्ध तथा जैन आदि नास्तिक दर्शनोंको मिलाकर ६ की संख्या पूर्ण करते हैं। कोई वैभाषिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और माध्यमिक—इस प्रकार चार बौद्धोंके, एक चार्वाकोंका तथा एक जैनोंका मिलाकर ६ दर्शन बताते हैं। बारह दर्शन माननेवालोंकी दृष्टिमें आस्तिकोंके ६ दर्शन और नास्तिकोंके ६ दर्शन मिलाकर बारह होते हैं। सायणके मतसे चार्वाक, बौद्ध और जैन, इन तीनोंके नास्तिक दर्शनोंके साथ शेष १३ आस्तिक दर्शनोंको मिलानेसे १६ संख्या हो जाती है।

श्रुतियोंके ऊपर मीमांसा, वेदान्त तथा पाणिनि-दर्शनकी अत्यन्त आस्था है; अतः ये श्रौत दर्शन कहाते हैं। बाकी दर्शन मूल तत्त्वके अन्वेषण-कारक होनेसे तार्किक कहाते हैं। इसलिये कि, उनकी दृष्टिमें तर्क और श्रुतिका मूल्य समान है। जहाँ श्रुतिसे उनका मत-द्वैध होता है, वहाँ वे श्रुतिका अर्थ मनमाना कर लेते हैं। इस प्रकारके तार्किक छ हैं—न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, रामानुज और माध्व। वैशेषिक अनुमान द्वारा शब्दका प्रामाण्य मानता है। इसके विचारसे यद्यपि श्रुतिका प्रामाण्य है; तथापि श्रुतिकी अपेक्षा अनुमानका प्रामाण्य मुख्य है। हाँ, जहाँ श्रुतिसे अनुमानका विरोध होता है, वहाँ श्रुतिका अर्थ ही बदल दिया जाता है।

जो निरवयव है, वह नित्य है, जैसे परमाणु। इससे तार्किकोंके विचारमें आकाश नित्य हुआ; लेकिन श्रुति कहती है—"तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः सम्भूतः" यानी उस परमात्मासे आकाश उत्पन्न हुआ। उत्पन्न कहनेसे आकाश अनित्य हो जायगा। अतः तार्किक यहाँ अर्थ लगा लेते हैं "अभिव्यक्त" हुआ।

सृष्टिमें चेतन तथा अचेतनका भेद देखकर तार्किक अनुमान द्वारा यह सिद्ध करते हैं कि, प्रलयके अनन्तर भी पदार्थोंमें अनेकत्व और उनका भेद रहेगा तथा सृष्टिके पूर्व भी अनेकत्व तथा भेद था। लेकिन श्रुति कहती है—"यदयमात्मा" यानी यह सब दृश्यमान जगत् सिवा आत्माके और कुछ भी नहीं है। अतः तार्किक इस श्रुतिका अर्थ करते हैं कि, यह सब जगत् आत्माके अधीन है।

जगत्के मूल कारणके अन्वेषणके लिये सांख्य तथा योग अनुमानका ही आश्रय लेते हैं। वे कहते हैं, कारण तथा कार्यमें सारूप्य होना चाहिये; क्योंकि यह वर्तमान जगद्रूप कार्य सुख-दुख तथा मोहात्मक है; अतः इसका कारण भी इसी प्रकारका होना चाहिये और वह कारण है त्रिगुणात्मक प्रकृति।

इस जगत्का कारण परम सूक्ष्म है; तथापि यह सिद्ध वस्तु है। सिद्ध वस्तुमें जिस प्रकार शब्द-प्रमाणकी गति है, उसी प्रकार प्रमाणान्तरकी भी। श्रुति भी अनुमानके द्वारा ही मूल कारणका प्रतिपादन करती है—"नेदं मूलं भविष्यति।" यानी यह दृश्यमान कार्य-शरीर बिना कारणके नहीं बन सकता।

सांख्यका अनुमान ही आश्रय है। इसके मूल कारणकी चर्चामें अनुमान ही मुख्य अवलम्बन है। यह बात इससे

भी स्पष्ट होती है कि, सांख्य-प्रतिपादित जगत्कारण 'प्रधान' का दूसरा नाम ही अनुमान हो गया है।

योग जगत्कारणको सांख्यकी ही तरह अनुमान-सिद्ध मानता है। इसके सिवा श्रुतिके अन्य विषय भी इसके लिये अनुमान-सिद्ध हैं। जैसे ईश्वरकी सर्वज्ञता, उसकी नित्यता तथा उसका वेदोपदेशक होना इत्यादि।

रामानुज और माध्व भी वास्तवमें तार्किक ही हैं। "तत्त्वमसि"से इनके सिद्धान्तमें विरोध पड़ता है। बस, ये इसके सारसिक अर्थको छोड़कर मनमाना अर्थ लगा लेते हैं। फिर भी ये प्रच्छन्न तार्किक हैं।

श्रुतिमें जिनकी श्रद्धा मन्दतम है, ऐसे तार्किक नाकुलीश पाशुपत, शैव, प्रत्यभिज्ञ और रसेश्वर हैं। ये श्रुतिको अप्रमाण तो नहीं कहते; लेकिन श्रुतिकी बहुत अधिक उपेक्षा करते हैं। चार्वाक, बौद्ध और जैन, ये तीनों शुद्ध तार्किक हैं। तर्कके सामने किसीकी भी परवाह नहीं करते हैं। बल्कि तर्क-विरुद्ध श्रुतिवाक्यका स्थान-स्थानपर खण्डन भी करते हैं।

सामान्य रूपसे दर्शनोंको हम तीन भागोंमें विभक्त कर सकते हैं—श्रुतिके ऊपर पूर्ण श्रद्धा रखनेवाला, अपने सिद्धान्तके आगे श्रुतिके अर्थको बदल देनेवाला एवं श्रुतिकी कुछ भी परवाह नहीं करनेवाला।

प्रेम-भित्ति

पं० रामेश्वर झा एम० ए०, "द्विजेन्द्र"

कलित कुमुदिनीका खिल जाना,
निरख चारु चन्द्रिका ललाम।
विकसित हो जाना सरसिजका
देख दिवाकर-कर अभिराम ॥
प्रमुदित मनसे मृदुल मंजरी—
का मधुकरको देना दान।
कूद कूद कर दीप-शिखापर
शलभोंका होना बालदान ॥
वर वसन्तके शुभ स्वागतमें
कलकण्ठी कोयलका गान।
सदा शिखीका नील नीरधर—
को देना समुचित सम्मान ॥
शुद्धस्फटिक—समान सलिलका
कभी न करता है जो पान—
दृढ़प्रतिज्ञ चातकका केवल
"स्वातिबुन्द"पर तजना प्राण ॥
जन्मभूमिकी भव्य मूर्त्तिको
करके श्रद्धा-सहित प्रणाम।
अमर शहीदोंका इसके हित
हँस हँस कर होना कुर्बान ॥
अटल प्रेमकी भव्य भित्तिपर
अड़े हुए हैं ये सब काम।
नवल-नेह-निर्झरणी बहती—
रहती इनमें आठो याम ॥

सृष्टि और ज्योतिर्विज्ञान

प० रामनिवास शर्मा

यह हमारा सौर-मण्डल पहले किस दशामें था और इसकी उत्पत्तिकी पूर्वावस्थामें क्या था इत्यादि बातोंका विचार आजकलके पाश्चात्य पण्डितोंने, ज्योतिष् और विज्ञानके द्वारा, खूब किया है।

परन्तु यहाँ हमें यह देखना है कि, जिस समयको हम प्राचीन काल कहते हैं और जिस समयके मनुष्योंको हम जंगली या अर्ध सभ्य कहते हैं, उनके समयमें सौर मंण्डलके विषयमें लोगोंके क्या विचार थे। इस सम्बन्धमें सबसे पहले हमारी दृष्टि ऋग्वेदकी ओर जाती है; क्योंकि ऋग्वेद ही संसारकी सबसे पुरानी पुस्तक मानी गयी है। फलतः हम ऋग्वेदके मंत्रोंमें ही सौर-मण्डलकी इन दबी-छिपी बातोंका पता लगाना चाहते हैं। दबी-छिपीका तात्पर्य यह है कि, इन बातोंका पूरा वर्णन उसमें नही हैं, तथापि आंशिक संगतिका लग जाना भी अवश्य कुछ बात है।

यह बात आजकल अधिक स्पष्ट हो गयी है कि, एक समय था, जब यह संसार घोर अन्धकारमें छिपा हुआ था; अप्रत्यक्ष, अनुमान करनेके अयोग्य, अविज्ञात और घोर निद्रामें निद्रितके समान था। यह घोर निद्रा ही वास्तवमें ईश्वरीय निद्रा या प्रकृतिकी थकान या प्रकृतिके गुणोंकी समाना वस्था थी। इस अवस्थाके लिये भगवान् मनु लिखते हैं :—

"आसीदिदं तमोभूतम प्रज्ञातमलक्षणम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥"

इस अवस्थाका पता वेदके निम्न लिखित मंत्रसे लगाइये और इसपर विचार कीजिये कि, उस आदिम अवस्थाके मनुष्योंको भी कितना ज्ञान था—

"नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परोयत्।
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न राज्या अह आसीत्प्रकेतः ॥"

इससे यह विदित होता है कि, वेद-कालीन मनुष्यों-की सम्मतिमें सृष्टिके पूर्व न सत् था और न असत्, न मृत्यु थी न अमृत, था केवल एक 'तम' (अन्धकार)। परन्तु इस अन्धकार से यहअभिप्राय नहीं कि, उस समय प्रकृति अपने सूक्ष्म रूपमें भी न था; क्योंकि, वेदमें असत्से सत्की उत्पत्ति नहीं मानी गयी है। ऐसी दशामें यह मालूम होता है कि, कुछ था तो अवश्य; परन्तु वह विकासावस्थामें नहीं था; इसीलिये कुछ नहीं था, ऐसा कहा गया। वेदके मंत्रमें आया है कि, न सत् था और न असत्। इसका यह अभिप्राय हुआ क, जगत् सत्-असत्से विलक्षण दशामें था। सारांश यह है कि, प्रकृति अपनी परमाणु-रूप सूक्ष्मावस्थामें थी और उसमें शक्ति-रूप लयोन्मुख या विकासोन्मुख क्षोभ न था अर्थात परमाणु और शक्तिका सहयोग नहीं था। यही जगत्की स्वप्नावस्था है। इसके विरुद्ध परमाणु और शक्तिका सहयोग इसकी जाग्रदवस्था है।

विद्वानोंने इस स्वप्नावस्थामें परमाणुको शक्ति-रहित माना है। इस तरह परमाणु और शक्ति, ये दो

पदार्थ हैं। ऐसी दशामें परमाणुको अस्थि-युक्त अन्धा और शक्तिको अस्थि-रहित लूली बतलाया गया है। इसीपर यह बात गढ़ी गयी है कि, अस्थि-रहित लूली शक्तिने अस्थि-सहित अन्धे परमाणुसे कहा कि—"तू मुझे कन्धेपर चढ़ा ले और मैं तुझे रास्ता बता दूंगी। इस तरह हम दोनों गन्तव्य स्थानपर पहुँच जायँगे।" तात्पर्य यह है कि, अस्थि–रहित लूली शक्तिने अस्थि-युक्त अन्धे परमाणुका सहारा किया और अथि-युक्त अन्धे परमाणुने अस्थि-रहित लूली शक्तिका। इस तरह निष्क्रिय परमाणु क्रियाशील हो गया। अचल परमाणु शक्तिके योगसे प्रज्वलित और क्षुभित होकर गतिमान् हुआ और इस प्रज्वलन और क्षोभ–जनित गतिमत्वसे सृष्टि दृश्य रूपमें आयी। इस बातका पता ऋग्वेदके इस मंत्रसे लगता है:—

> *"को ददर्श प्रथमं जायमान-*
> *मस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति।"* ऋ०
> *"देवानां युगे प्रथमेऽसतः सद-*
> *जायतः तदाशा अन्वजायन्त....।"*

फिर परमाणु क्रमशः अपनी २ आकर्षण-शक्तिके द्वारा एकसे दो और दोसे तीन और इसी तरह अनन्त परमाणु इकट्ठे होकर गतिमान् हुए। इनके इस वाष्पमय रूपसे दसों दिशाएँ पूर्ण हो गयीं।

बृहस्पति ऋषिके मतसे यह वाष्प–समुद्र ही आकाश–समुद्र है और इसीका नाम पाञ्चभौतिक सृष्टिमें प्रथम तत्त्व है। इस आकाश–समुद्रकी दूसरी स्थूलावस्थाका नाम वायु, तीसरीका नाम तेज, चौथीका नाम जल और पाँचवींका नाम पृथ्वी है। इसके विषयमें ऋग्वेदके निम्न लिखित मंत्रपर ध्यान दीजिये:—

> *"यदेवा यततो यथा भुवनान्य पिन्वत*
> *अत्रासमुद्र आगूलध्मा सूर्यमजभर्तन॥"*

इसके बाद इस स्थूल वाष्पात्मक पञ्चभूतमय परमाणु-समूहके अन्तिम विकार पृथ्वी-तत्त्वसे तेजस्वी, अविनाशी, बन्धन-द्वारा रक्षित, अनन्त ज्योतिर्गोल उत्पन्न हुए, जिनके लिये वेदमें इस तरह लिखा है—

> *"अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्षया दुहिता तव।*
> *तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः॥"*

इन उक्त ज्योतिःपिण्डोंमेंसे अनेक आपसमें मिलकर नीहारिका-रूपमें परिणत हो घूमते रहे। फिर ये सब नीहारिकाएँ मिलकर एक बृहत्तरल गोलकके रूपमें परिणत हो गयीं और यह गोलक आकाशमें बड़ी शीघ्रतासे घूमने लगा। घूमते २ वेगके प्रभावसे इस नीहारिका-मय ज्योतिःपिण्डमेंसे अनेक ज्योतिर्मय रेणुकाएँ नृत्य करती हुई उचट-उचटकर निकलने लगीं। इसका वर्णन वेद इस तरह करता है—

> *"यदेवा अदः सलिले सुसंरब्धा अतिष्ठत।*
> *अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरपायत॥"*

यह बृहत्तरल गोलक ही वास्तवमें सौर जगत्का प्रसविता है और ये समस्त ज्योतिर्मय रेणुकाएँ सौर-जगत् हैं। फिर इनसे भी अनेक पिण्डोंका क्रमशः निर्माण हुआ है। इन ज्योतिर्मय रेणुकाओंमेंसे जो भी विस्फुलिङ्ग-रूप "ज्योति" रेणुकाएँ नृत्य करती निकलीं; वे अपने उपादानमूल पिण्डके ही चारों ओर, आकर्षणशक्ति द्वारा, घूमने लगीं। इस तरह नृत्य करती हुई क्षुद्रतम रेणुकाएँ ग्रह और उपग्रह कहलायीं और इनके उपादान सूर्य और उनका परस्पर जन्य–जनक भाव हुआ। इस तरह इनमें परस्पर गहरा आकर्षण उत्पन्न हुआ।

अबतक सौर-जगत्के जितने बड़े ज्योतिःपिण्ड मालूम हुए हैं, वे ये हैं—

सूर्य, बुध, शुक्र, पृथ्वी, मङ्गल, बृहस्पति, शनि, यूरेनस और नेपच्युन।

पहले पहल लोगोंने चन्द्रमाको भी ग्रह अर्थात् मूल ज्योतिःपिण्ड-रूप रेणुकासे निकला हुआ समझा था; परन्तु अन्तमें बृहस्पतिकी खोजसे यह बात सिद्ध हुई कि, वह मूल गोलक रेणुकासे न निकल कर रेणुका-स्वरूप गौण गोलक पृथ्वीसे निकला है। इसका वर्णन ऋग्वेदमें इस तरह हुआ है—

"ते हि प्रजाजाया अभरन्त विश्रवो
बृहस्पतिर्वृषभः सोमजाभयः।"

ये सूर्यसे निकलनेवाले रेणुका-स्वरूप ग्रह अपने जनक सूर्यके चारो ओर निर्दिष्ट पथपर घूमते रहते हैं; जैसा कि, "आकृष्टो न रजसा वर्तमानः" इस वेद-मंत्रमें भी कहा गया है।

ग्रहका अर्थ ग्रहण करना है; जो सूर्य द्वारा ग्रहण किये जाते हैं। ऋग्वेदके १०-६-७२ में सूर्यसे ग्रह और नक्षत्रादिका सम्बन्ध और जन्मका वर्णन है।

चन्द्रमामें प्रकाश नहीं है; वह सूर्यकी किरणोंसे प्रकाश पाता है। यह बात वेदके निम्न लिखित मन्त्रों-में कही गयी है—

"सधारय रपृथिवीं प्रपृथच्च सोमस्य तावत इन्द्रश्चकार।
अमीय ऋक्षा निहितास उच्चानलं ददृश्र कुहुचिद्दिवेयुः
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशश्चन्द्रमानलमेति॥"

ऋग्वेदमें पृथ्वी और चन्द्रमाको स्वर्भानु कहा है। इसका भी तात्पय यही है। स्वर्भानुका अर्थ आकाशसे प्रेरित प्रभा है।

इस तरह विचार करनेपर हमें वेदमें ज्योति-विज्ञानका बहुत कुछ अंश मिलता है।

आत्म-कथा

फूँक दे जो प्राणमें उत्तेजना
गुण न वह इस बाँसुरीकी तानमें।
जो चकित करके कँपा डाले हृदय
वह कला पायी न मैंने गान में॥१॥

जिस व्यथासे रो रहा आकाश यह
ओसके आँसू बहाकर फूलमें।
ढूँढ़ती उसकी दवा मेरी कला
विश्व-वैभवकी चिताकी धूलमें॥२॥

कूकती असहाय मेरी कल्पना
कब्रमें सोये हुओंके ध्यानमें।
खँडहरोंमें बैठ भरता सिसकियाँ
विरहिणी कविता सदा सुनसानमें॥३॥

देख क्षण क्षण मैं सहमता हूँ अरे,
व्यापिनी क्षणभंगुता संसारकी।
एक पल ठहरे जहाँ जग हो अभय
खोज करता हूँ उसी आधारकी॥४॥

बाबू रामधारी सिंह 'दिनकर'
बी० ए०

सामाजिक अत्याचार

गोस्वामी लक्ष्मणाचार्य (मथुरा)

प० रामचन्द्रजी शर्माने बड़ी कठिनता और तत्परतासे मिडिल पास किया। वे गरीब पिताकी सन्तान थे। आगे पढ़नेके लिये उन्हें पैसे नहीं मिल सके। आखिर बहुत कोशिश करके उन्होंने ट्रेनिंग पास किया। बड़ी दौड़-धूप करनेपर उन्हें स्कूलमें अध्यापकी मिली।

नौकरी मिलनेपर पण्डितजी कुछ सुखी हुए। घरमें वृद्ध पिताके सिवा कोई दूसरा नहीं था। कुछ-कुछ रुपये भी इकट्ठे होने लगे। साल दो साल बाद पण्डितजीने प० रामदास बोहरेकी कन्या कमलासे विवाह किया।

कमला रूपवती थी और विदुषी भी। वह अँग्रेजी मिडिल परीक्षामें उत्तीर्ण हो चुकी थी और हिन्दी तथा उर्दूका भी अच्छा ज्ञान रखती थी। पण्डितजीने कोशिश-पैरवी करके उसे किसी कन्या-पाठशालामें नियुक्त करा दिया। गृहस्थी सुखसे चलने लगी। कमलाको दो लड़के भी हुए।

पाठशालाकी अपेक्षा अस्पतालमें पैसे अधिक मिलते थे; इसलिये कमलाने अस्पतालकी नौकरी मंजूर कर ली। शर्माजीकी भी यही राय थी। कुछ हेरफेर नहीं हुआ, पहलेकी ही तरह सब एक जगह रहने लगे।

कुछ दिनोंके बाद कमलाकी बदली मथुरासे झाँसी हो गयी। पैसेके लिये शर्माजीने इस वियोग-दुःखको भी बर्दाश्त किया। लड़के दोनों पिताके ही पास रहे; क्योंकि वे स्वयं अध्यापक थे और पुत्रोंको पढ़ानेका काम एक प्रकारसे पिताका ही है।

कमला झाँसीसे रुपये भेज दिया करती थी। शर्माजी-को पुत्रोंके भरण-पोषणमें कुछ दिक्कत नहीं उठानी पड़ती थी। उन्हें अपनी छोटी तनखाहकी भी परवाह नहीं थी। हाँ, परवाह थी तो केवल कमलाकी जुदाईकी।

कमलाके पत्र बराबर आया करते थे, कुशल-क्षेम मालूम होता ही रहता था। कुछ दिनोंके बाद उसने लिखा कि, "यहाँ मेरे अधिक रुपये खर्च हो जाते हैं, इससे इतने रुपये नहीं भेज सकूँगी। क्षमा करें।" शर्माजी चुप हो रहे।

धीरे-धीरे कमलाने रुपया भेजना एकबारगी ही बन्द कर दिया! वह वहाँसे आती भी नहीं थी; केवल पत्र लिख-लिखकर शर्माजी भला उसका क्या कर सकते थे? इतने दिनोंमें वह केवल बड़े लड़केके यज्ञोपवीतके अवसरपर तीन महीनोंकी छुट्टी लेकर आयी थी; बस, फिर तबसे कभी नहीं!

झाँसीके अस्पतालमें कमलाकी खूब चलती थी। उसकी रहन-सहन और वेश-भूषा भी बड़ी भड़कीली थी। अँग्रेजी फैशनमें रहनेसे तो रुपयेका श्राद्ध हो ही जाता है। कमलाके हाथ भी पैसा नहीं बच सका।

नये फैशनमें स्वतंत्रताकी लाड़ली कमला पतिके दीर्घ-कालिक वियोगमें अपनेको सम्हाल न सकी—किसी गैरके साथ उसका मेल हो गया।

यह उड़ती खबर शर्माजीके कानोंतक भी पहुँची पहले तो उन्हें विश्वास नहीं हुआ; पर अन्तमें मन मारकर उन्हें सब बातें कुबूल करनी पड़ीं। कमलाको आनेके लिये उन्होंने पत्र लिखा; लेकिन वह क्यों आने लगी? उसने डपटकर पतिको लिख भेजा कि, "आपकी छोटी तनखाहसे तो आपका ही खर्च नहीं चलता है, मुझे

बुलाकर क्या खिलायँगे ?" शर्माजी अबकी भी चुप हो रहे। बात सच्ची ही थी। बेचारे रो-कलपकर किसी प्रकार घरका खर्च जुटा रहे थे। लड़कोंके जूते फट गये थे, टोपी नहीं थी, उनके कपड़े खुद चिथड़े-चिथड़े हो गये थे। तिसपर भला नयी रोशनीकी बीबीका खर्च कैसे चलता ?

शर्माजी स्कूलमें छः घण्टेकी कड़ी मेहनत कर जब घर आते थे, तब उन्हें रसोईकी भी चिन्ता सताने लगती थी। अधिक पैसे थे ही नहीं, जो रसोईदार रख लेते। बच्चोंको कुछ कह ही नहीं सकते थे। झख मारकर सब तकलीफ उन्हें अपने ही ऊपर उठानी पड़ती थी। सबसे बड़ा कष्ट तो उन्हें अपनी विधुरताका था। सब भूल उनकी ही थी। अब कोई चारा नहीं था। हाँ, प्रायश्चित्तमें मोतीके चार दाने उनकी आँखोंसे सुबह-शाम जरूर बिखर पड़ते थे।

शर्माजी बहुत रो-कलपकर जब कमलाको दो दिनके लिये भी आनेको लिखते थे, तब वह फौरन टका-सा जवाब दे देती थी कि, "बार-बार आने-जानेसे मेरी नौकरी छूट जायगी। मैं ऐसा करनेकी नहीं।" शर्माजी अपना सर ठोककर चुप हो जाते थे। क्या मजाल कि, अपनी प्रियतमा कमलाको कुछ कहते !

शारीरिक और मानसिक कष्टके कारण शर्माजी अत्यन्त खिन्न हो गये। उन्हें कठिन रोगने पकड़ लिया। दो ही चार दिनोंमें बचनेकी आशा नहीं रही।

शर्माजीने अपनी सहधर्मिणीको पत्र लिखा। आनेके लिये बड़ी विनती की। लड़कोंने भी बारा-बारीसे माँके पास पत्र लिखा; लेकिन कमलाके कानपर जूँ तक नहीं रेंगी ! वह तो आना चाहती थी; परन्तु उसके नये अभिभावककी इजाजत नहीं थी ! कमला नहीं आ सकी।

शर्माजीके मनमें मरती बेर भी पत्नीसे मिलनेकी आशा लगी रही थी। वे अपने पुत्रोंसे बार-बार पूछा करते थे कि, "झाँसीसे कोई पत्र आया है ?" बेचारे लड़के केवल "नहीं" कह दिया करते थे !

पत्नीसे मिलनेकी आशामें तड़प-तड़पकर शर्माजीने प्राण दे दिये; लेकिन कमला झाँसीसे नहीं आयी !

पिताकी मृत्युका समाचार लड़कोंने अपनी माँके पास भेज दिया; पर कमला नहीं आयी ! किसी तरह लड़कोंने पिताकी अन्त्येष्टि की।

जब यहाँ जीवन-निर्वाहका कोई उपाय लड़कोंको नहीं सूझा, तब उन्होंने माँको अपने पास रखनेके लिये पत्र लिखा। बहुत कुछ सोच-विचारकर कमलाने लड़कोंको अपने पास बुला लिया।

पतिके मर जानेसे कमला स्वतन्त्र हो गयी। उसने स्वतन्त्र रूपसे मथुरामें रहनेका इरादा किया। नौकरी छोड़कर वह मथुरा चली आयी और अपनी एक निजकी डिसपेंसरी खोल दी।

झाँसीसे उसके साथ एक नौकर भी आया था, जो हमेशा पूरे फैशनमें रहा करता था। जब कमला किसी रोगीको देखनेके लिये महीन बुकको धानी रंगकी साड़ी पहनकर, गालोंपर गुलाबी रंगका हल्का पाउडर मलकर, फ्रेंचकट बालोंको झाड़कर और एड़ीदार जूता पहनकर निकला करती थी, तब वह नौकर भी उसके पीछे-पीछे हैंड-बैग लिये घूमा करता था।

मुहल्ले-टोलेकी औरतोंको कमलाका यह व्यवहार बहुत बुरा लगता था। वे कमलाके ऊपर थूकती थीं, मुँह चिढ़ाती थीं। इधर घरमें भी लड़के कलह मचाते थे। मुहल्लेवाले लड़कोंके ही पक्षमें रहते थे। कमलाकी सब तरफसे फजीहत होने लगी। एक दिन वह डेरा-डंडा उठाकर दूसरे मुहल्लेमें चली गयी।

वहाँ भी वही हाल था। कोई उसे भली नजरसे नहीं देखता था। एक दिन विधवा-विवाह-कारिणी संस्थाके एजेंटने उससे कहा कि, "आप पुनर्विवाह कर लें।" कमला राजी हो गयी; पर उस फैशनवाले नौकरने एतराज किया। कमलाको पीटनेके लिये भी वह उतारू हो गया। घबराकर कमलाने अपना विचार बदल दिया।

अन्तको लाचार होकर लड़के माँका साथ छोड़कर अलग रहने लगे। कमला जीवन-पर्यन्त उसी नौकरके साथ रही

दीपावली

साहित्याचार्य रामदीन पाण्डेय एम० ए०, बी० एड्

इस बातको सभी जानते हैं कि, प्रत्येक दिन सूर्य उगता और अस्त होता है। यही सूर्यका नित्य उगना और डूबना दिन, मास, वर्ष, युग और कल्पके नामसे पुकारा जाता है। ये सेकेण्ड, मिनट, घण्टा, दिन, मास, ऋतु, वर्ष, युग, कल्प प्रभृति समयके अंग कहे जाते हैं। यह समय कबसे शुरू हुआ और कब इसका अन्त होगा, कोई नहीं बता सकता। हाँ, केवल इतना कहा जा सकता है कि, सृष्टिका प्रारम्भ और अन्त समयके अन्दर ही हुआ करता है। अतः समय अनादि और अनन्त है। समयकी इसी अनादि और अनन्त धारामें यह संसार अर्थात् हम, आप, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग, नदी, नाले, समुद्र, चर और अचर बह रहे हैं। संसारमें राम, कृष्ण, बुद्ध, शंकर, क्राइस्ट, महम्मद प्रभृति असंख्य आदर्श पुरुष हुए; पर वे भी इस अनन्त समयकी वेगवती धारामें बह गये। केवल धाराके समीपवर्ती बालुकामय तटपर उनके चरण-चिन्ह अवशिष्ट रह गये।

कहनेका तात्पर्य यह है कि, समय ब्रह्मस्वरूप, अनादि और अनन्त है। समयकी महत्ता समझकर इसकी उपासना करना ही परमात्माकी उपासना है। जिन २ लोगोंने समयके महत्त्वको समझकर इसका सदुपयोग किया, वे पूजनीय हो गये। वे वेदान्तके शब्दोंमें समयमें मिल गये। उनमें और समयमें अन्तर न रहा। इसी अनन्त कालको हम मनुष्योंने अपनी संकीर्ण बुद्धिके द्वारा दिनों, मासों और वर्षोंमें विभक्त कर रखा है, यद्यपि इसका विभाग करना उतना ही असंभव है, जितना आकाशके तारोंकी गणना करना।

प्रत्येक देशमें इस समयकी उपासना करनेके निराले उपाय हैं या यों कहिये कि, इस समयको व्यतीत करनेका विधान प्रत्येक देशमें विभिन्न रीतिसे किया गया है। भारतवर्ष ऋषियोंकी जन्मभूमि है। ऋषियोंसे मेरा आशय उन ज्ञानियों और तत्त्वजिज्ञासुओंसे है, जिनने स्वार्थकी तिलाञ्जलि देकर विश्वके हितमें अपना जीवन बलिदान कर दिया। इन ऋषियोंने हिन्दूजातिको वर्णाश्रम धर्मपर कायम रखा था। ये ही लोग कालान्तरमें ब्राह्मण कहलाये। इन ब्राह्मणोंको समस्त संसारसे सहानुभूति रहती थी और संसार भी इन्हें आदरकी दृष्टिसे देखता था। इसी वर्णाश्रम धर्ममें कुछ लोग ऐसे थे, जो देश और जातिको शत्रुओंसे बचाते थे, राष्ट्रमें शान्ति रखते थे और घोर विपत्ति आ पड़नेपर अपने जीवनको तलवारकी धारपर रखकर जातिकी मर्यादा रखते थे। ये ही लोग पीछे क्षत्रिय नामसे प्रसिद्ध हुए। इस वर्णाश्रम-संस्थामें कुछ लोग ऐसे थे, जो खेती और वाणिज्यमें लगे रहते थे। दूसरोंको खिलाकर आप अन्न ग्रहण करते थे। ये ही लोग पीछे वैश्यके नामसे प्रख्यात हुए। कुछ लोग इस वर्णाश्रममें ऐसे भी थे, जो प्रथम तीन वर्णोंकी मददके लिये अपनेको तैयार रखते थे। ये शूद्र कहलाये। इनमें घनिष्ठ सम्बन्ध था। एक दूसरेसे प्रेम रखता था। एकके अभावमें दूसरेका रहना असम्भव था। तभी तो पुरुषसूक्तमें लिखा मिलता है कि, ब्राह्मण,

क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र एक ही विराट् ब्रह्मके मुख, बाहु, जंघा और पाँव हैं।

ऐसी स्थितिमें यह कहना कि, मनुष्यका कौन अंग श्रेष्ठ है और कौन निकृष्ट, अति कठिन है। पैरके न रहनेसे स्वयं ब्रह्म ब्रह्म नहीं कहा जा सकता; क्योंकि ब्रह्म तो मुख, बाहु, जंघा और पादका समुच्चय हुआ। पादके अभावमें वह लँगड़ा हो जायगा; ऐसे ब्रह्म या जातिसे कुछ भी काम नहीं हो सकता। यदि जङ्घा न रहे, तो भी ब्रह्म या जाति बेकार है। अतः चारो वर्णोंकी व्यवस्था वैदिक कालमें आर्थिक भीत्ति (*Economic grounds*) पर हुई थी। इसके सिवा वैदिक कालमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र एक दूसरेका कार्य करनेमें भी स्वतन्त्र थे। ऋग्वेदके नवम मण्डल सू० ११२ में एक ऋषिका कहना है कि, मैं कवि हूं, मेरे पिता चिकित्सक हैं, तथा मामा शिल्पी। वहीँ पर यह भी लिखा मिलता है कि, मनुष्य अपनी-अपनी प्रवृत्तिके अनुसार वृत्तिका अनुसरण करते हैं। विस्तार-भयसे समस्त मंत्रोंको उद्धृत करना मैं उचित नहीं समझता।

मेरा यहाँ वक्तव्य कुछ वर्णाश्रमधर्मपर नहीं है। अतः इतना ही कह देना अलं होगा कि, भारतवर्ष-की वैदिक वर्ण-व्यवस्था मनुष्योंकी प्रवृत्ति(*Mental propensity*) तथा आर्थिक भीत्ति (*Economic grounds*) पर स्थित थी और इस प्रकारकी वर्ण-व्यवस्था जगत्‌के किसी भागमें न थी। आज यही वर्ण-व्यवस्था प्रत्येक सभ्य देशमें है और हिन्दुस्थान भी पुनः उसी पुरानी वर्णव्यवस्थाका अनुकरण करनेके लिये अग्रसर हो रहा है।

आधुनिक सभ्य जगत्‌में ज्ञानी ब्राह्मणोंके हाथों-मेंही राष्ट्र-संचालनकी बाग-डोर है; पर वे स्वयं अपनी रक्षा करनेमें उसी तरह असमर्थ हैं, जिस तरह हमारे ऋषि, मुनि और प्राचीन ज्ञानी ब्राह्मण राक्षसोंके आक्रमणोंसे अपनी रक्षा करनेमें असमर्थ थे। इन ज्ञानियोंकी सहायताके लिये सभ्य देशोंमें संगठित सेनाएँ तैयार रहती हैं और उन्हें खिलाने-पिलानेके लिये व्यापारी और गृहस्थ हैं, जो करके रूपमें राष्ट्र-को भोज्य पदार्थ देते हैं। उन सबोंकी सेवाके लिये मजदूर दल भी है। उसी प्रकार प्रत्येकमें प्रेम, विश्वास और सहानुभूति है, जिस प्रकार वैदिक कालमें भार-तके प्रत्येक वर्णमें स्नेह, सहानुभूति और विश्वासकी मन्दाकिनी बहती थी। यही वर्णाश्रमधर्म काल-क्रमसे जाति या जात (*caste*) के रूपमें परिणत हो गया।

जिन ऋषियोंने वर्ण-व्यवस्थाकी नींव डाली थी, उन्होंने इन ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रोंके लाभके लिये राष्ट्रीय या जातीय (*National*) व्रत, उत्सव और त्योहारका विधान किया था। इन व्रतों, उत्सवों और त्योहारोंका समाजसे घनिष्ठ सम्बन्ध था। उदाहरणके लिये दीपावली-उत्सवको ही लीजिये।

इस दीपावली-महोत्सव पर मैं नैतिक, धार्मिक और सामाजिक दृष्टिसे विचार करूँगा। यह स्मरण रखनेकी बात है कि, समाज, धर्म और गवर्न्मेन्टमें घनिष्ट सम्बन्ध है। धर्म और नीति या स्टेट, (राष्ट्र) दोनों ही समाजके लिये हैं। समाजके अभावमें धर्म और स्टेट, दोनोंका अभाव समझिये। समाज ही अपने कल्याणके लिये गवर्न्मेन्टका विधान करता है और समाजको ही सुव्यवस्थित रखनेके लिये धर्मकी आवश्यकता है। अतः हिन्दूजातिमें जो व्रत या उत्सव-की व्यवस्था है, उसे धर्म और स्टेटसे सम्पर्क है।

कहा जाता है कि, इस दीपावली-महोत्सवका पुरुषोत्तम श्रीरामके राज्याभिषेकसे सम्बन्ध है। भगवान् रामने आश्विन मासकी विजया-दशमीको राक्षस-राज रावणपर विजय प्राप्त की थी। विभीषणको लंकाकी राजगद्दीपर बैठाकर और पुष्पक-विमानपर

सवार होकर अपनी वानरी सेनाके साथ अवधको लौट आये। उनका राज्याभिषेक कार्त्तिक अमावस्याको हुआ था। इस उत्सवमें केवल कोशलकी प्रजाने ही भाग नहीं लिया, वरन् भारतके समस्त राष्ट्रोंमें रामके राज्याभिषेकके उपलक्ष्यमें दीपावली मनायी गयी। रामने ऐसे शत्रुका संहार किया, जो समस्त भारतको अपने अन्याय और दुराचारोंसे संतप्त कर रहा था। अतः राम जातीय योद्धा (*National Hero*) के रूपमें सम्मानित हुए। महान् पुरुष समस्त मानव-जातिकी सम्पत्ति है। अतः केवल आर्य-जातिही ने इस उत्सवको न मनाया वरन् अनार्य-जातिने भी भाग लिया था। वानरराज सुग्रीव, भल्लूकराज जाम्बवान् प्रभृति तो रामके सहायक ही थे। अतः भारतकी कोई ऐसी जाति न थी, जिसके यहाँ रामके राज्याभिषेककी तैयारी न हुई हो।

राम बड़े प्रजाप्रिय और प्रजाहितैषी थे। इनके जैसा आदर्श राजा जगत्में शायद ही कहीं हुआ हो। प्रजाके कल्याण तथा संतोषके लिये इनने अपनी प्रिय पत्नी सीताको भी निकाल दिया था। अतः प्रत्येक वर्ष रामके राज्याभिषेकका वार्षिकोत्सव मनाया जाने लगा और दीपावली-उत्सव हिन्दू-जातिके धर्म (कर्त्तव्य) का एक अंग-सा हो गया। इस अवसर टूटे-फूटे घरोंका जीर्णोद्धार भी होने लगा। मलमूत्रके स्थानतक स्वच्छ किये जाने लगे। सभी घरोंने म्युनिसिपलिटी, डिस्ट्रिक्टबोर्ड और पब्लिक वर्क्स डपार्टमेंटका काम अपने ऊपर ले लिया। वर्षमें लेन-देन जितने थे, उसकी भी सफाई, घरकी सफाईके साथ, होने लगी। राजाको भी कर चुकानेका समय यही निश्चित हुआ। भगवान् भूतभावन् सच्चिदानन्दके सौन्दर्य (लक्ष्मी) की भी पूजा होने लगी। कहनेका तात्पर्य यह है कि, इस अवसरपर केवल घर ही की सफाई न होने लगी, वरन् सब प्रकारकी सफाईका सूत्रपात हो गया।

यह तो इस महोत्सवका संक्षिप्त नैतिक इतिहास कहा जा सकता है; पर सामाजिक दृष्टिकोणसे जब मैं इस उत्सवपर विचार करता हूँ, तब प्रतीत होता है कि, इस उत्सवकी समाजको अति आवश्यकता थी। वर्षाकी अधिकताके कारण हिन्दुस्थानके सारे घर रद्दीसे प्रतीत होने लगते हैं। मिट्टीकी दीवालें गिर पड़ती हैं। उनमें छेद हो जाता है। पक्के घरोंमें भी काई पड़ जाती है। चूने और प्लास्टर गिर पड़ते हैं। पशुओंके रहनेके स्थान साफ किये जाने पर भी नरककी नाक काटते हैं। दुर्गन्धके मारे नाकमें दम आ जाता है। अतः समाजके ज्ञानियोंने इस उत्सवका सूत्रपात इस उद्देश्यसे किया कि, विजया-दशमीसे सोहराईतक सारे हिन्दू घरोंका जीर्णोद्धार हो जाय। इस उत्सवके आगमनके पन्द्रह दिन पहले हीसे सारी हिन्दू जाति अपने-अपने घरोंको साफ करने, जीर्णोद्धार करने और लीपने-पोतनेमें लग जाती है। किसी शासककी आज्ञाका पालन भी इस तत्परतासे नहीं किया जा सकता, जितनी तत्परतासे हिन्दू-जाति अपने-अपने घरोंको उचित अवस्थामें रखनेका प्रयत्न करती है। भारतमें शायद ही कोई ऐसा हिन्दू होगा, जो अपने घरोंको इस अवसरपर स्वच्छ न करता हो।

आप नगरके महलोंसे देहातकी झोपड़ियोंतक क्यों न जाइये, सभी जगह स्वच्छताकी झलक दीख पड़ेगी। आप देखेंगे कि, कार्त्तिककी कृष्ण प्रतिपदासे केवल घर ही पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है, वरन् गाय, बैल, भेंड़, भैंस प्रभृति पशु भी धोये जाते हैं। उनके सींगोंमें घृत लगाया जाता है। उन्हें नमक, खल्ली चोकर आदि खानेके लिये विशेष रूपसे मिलने लगते

हैं। पशुओंको संध्या समय बाँधकर चरवाहे दोनों कानोंमें अंगुली डालकर ग्राम्य-पशुसम्बन्धी गीत (महराई), उच्च स्वरसे, गाते हुए नाचते और उछलते हैं। अमावस्याके दिन जब दीप घरके कोने-कोनेमें प्रज्वलित होते हैं, तब प्रत्येक हिन्दू-घर देव मन्दिर-सा खिल उठता है। वाह रे हिन्दूजाति और वाह रे तेरा विधान !

हिन्दूजातिके. घरोंकी इस अलौकिक छटाको देखकर इस जातिके धर्म-स्थापकोंकी प्रसंसा किये बिना लेखनी आगे नहीं बढ़ती। यह सभी जानते हैं कि, जहाँ स्वच्छता है, पवित्रता है, वहीं लक्ष्मी बास करती हैं और जहां अस्वच्छता है, वहाँ दरिद्रता। स्वच्छतासे मेरा आशय केवल घर या बाह्य शरीर की स्वच्छतासे नहीं है, वरन् मनकी स्वच्छतासे भी है। संसारमें लक्ष्मी उन्हींके पीछे हाथ जोड़े चलती हैं, जिनके चरित्र निर्मल हैं, मन शुद्ध हैं, विचार उन्नत हैं और जो पापाचारोंसे कोसों दूर रहते हैं। अतः दीपावली-महोत्सवके वातावरणमें पर्यटन करता हुआ मनुष्य सहसा शोभा, सौन्दर्य या लक्ष्मीका उपासक बन बैठता है। ऐसे वायुमण्डल या वातावरण (*Invironment*) में विचरण करते हुए प्रत्येक व्यक्तिके हृदयमें यह प्रबल इच्छा जाग्रत होती है कि, वह लक्ष्मी-शोभा या सौन्दर्यका पुजारी बने। लक्ष्मीका अर्थ सौन्दर्य, शोभा या सम्पत् है। अतः सभी इस शोभा, सौन्दय या सम्पत्‌की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मीकी पूजा करते हैं।

सौन्दर्यकी अधिष्ठात्री देवीकी उपासना करना त्रैलोक्याधिपति ब्रह्माकी उपासना करना है। कारण, ब्रह्म एक है और उसके नाम भिन्न हैं। ऋग्वेदके पुरुष-सूक्तमें यह लिखा मिलता है कि, एक ही ब्रह्मके भिन्न-भिन्न नाम हैं—कोई उन्हें इन्द्र कहकर पुकारता है, कोई यम, कोई वरुण और कोई अग्नि। पर सभी ब्रह्मके पर्यायी शब्द हैं।

वस्तुतः लक्ष्मीकी पूजा करना भूतभावन भगवान्‌की पूजा करना है।

यह उत्सव यद्यपि भारतकी समस्त हिन्दूजाति का उत्सव है, तथापि वैश्योंके लिये बड़े महत्वका है। इनके व्यापारिक वर्ष (*Commercial year*) का प्रारम्भ दीपावली-महोत्सवके साथ ही होता है। कार्त्तिक शुक्ल प्रतिपदा उनके लिये उतने ही महत्व का है, जितना पहली जनवरीका दिवस कृस्तानोंके लिये है। मेरा तो विश्वास है कि, यह दिवस हमारे लिये 'न्यू इयर्स डे' से भी बढ़कर है।

साहित्यिकोंका आदर्श

महाराजकुमार दुर्गाशंकरप्रसाद सिंह

इधर प० बनारसीदासजी चतुर्वेदीके किसी लेखको लेकर, जिसमें उन्होंने यह बतानेकी चेष्टा की है कि, साहित्यिकोंको निर्दोष और चरित्रवान् होना ही चाहिये, हिन्दी-पत्र-पत्रिकाओंमें काफी धूम मच चुकी है। दुर्भाग्यसे मुझे वह मूल लेख तो देखनेको नहीं मिला; किन्तु जो आलोचनाएँ "विश्वमित्र" और "जागरण" में डा० हेमचन्द्र जोशी डी० लिट् तथा प० सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" द्वारा प्रकाशित करायी गयी हैं, उन्हें पढ़नेसे उस लेखका कुछ तात्पर्य समझमें अवश्य आया। प्रथम तो इस विषयको इतना महत्त्व न देकर मैं इधर कुछ उतना आकर्षित नहीं हुआ; किन्तु पीछे, कई आलोचनाओंको देखकर इसपर कुछ अपना विचार प्रकट करना उचित जान पड़ा।

आलोचनाएँ युक्तिपूर्वक लिखी गयी हैं; किन्तु उनमें विषय-प्रतिपादन और निष्पक्षताको उतना स्थान नहीं दिया गया है; जितना लेखककी धज्जी उड़ाने और संयत शब्दोंमें उन्हें अल्पज्ञ बतानेमें दिया गया है। आलोचनाएँ अवाञ्छनीय हैं। मैं मूल लेख या उसके बादके लेखको न पढ़नेके कारण यह नहीं कह सकता कि, उस पक्षका कैसा तर्क था; किन्तु जिस ढंगसे आलोचनाएँ की गयी हैं, उससे तो यही निष्कर्ष निकलता है कि, उस पक्षका कथन भी इन दोनों त्रुटियोंसे रहित नहीं होगा।

यह बात सत्य नहीं है कि, साहित्यिक निर्दोष और चरित्रवान् ही होते हैं। संसारके या किसी देश विदेशके साहित्यिकोंका इतिहास, निष्पक्ष रूपसे देखनेपर, दोनों तरहके व्यक्ति मिलेंगे। यह कहना कि, केवल चरित्रवान् ही साहित्य-सेवी हो सकते हैं या सेवाके अधिकारी हैं या साहित्यकोंको चरित्रवान् होना ही चाहिये, उचित नहीं, न यही कहना उपयुक्त है कि, साहित्यिक चरित्रहीन ही होते हैं, सदोष जीवन व्यतीत करना ही उनका लक्ष्य रहता है या सदोषता और विषयवासनासे ही उनकी साहित्यिक कीर्ति उत्पन्न होती है।

तुलसी, सूर, मीरा, कबीर आदिको कोई चरित्रहीन नहीं कह सकता और न केशव, हरिश्चन्द्र, देव, बिहारी, पद्माकर आदिको कोई चरित्रवान् कह सकता है। सभी भाषाके साहित्यिकोंकी सूची प्रायः ऐसी ही दी जा सकती है।

इससे यह निर्विवाद है कि, कुचरित्रता और सचरित्रता साहित्यिक होनेका प्रमाणपत्र नहीं है। साहित्यिक होनेका जो प्रमाणपत्र है, वह है उस व्यक्तिकी अमर कीर्ति, जिससे दोनों (चरित्रवान् और अचरित्रवान्) व्यक्ति उसको साहित्यिक माननेपर विवश होते हैं। संसारमें अन्य बातोंके साथ प्रतिभा भी एक ऐसी वस्तु है, जिसको धन, बल, पौरुषसे प्राप्त करना असम्भव है। कला सौन्दर्यका दूसरा नाम है और सौन्दर्य किसी खास व्यक्ति, जाति, आवरण या सीमाके अन्दर सीमित नहीं। कलाके एक विभागका नाम साहित्य है, जिसको हम काव्य कहते हैं। काव्यकी अनेक परिभाषाओंके बाद सर्वमान्य परिभाषा है—"साहित्यदर्पण"का "रसपूर्ण वाक्य"।

मनुष्यके मस्तिष्क या हृदयमें, जहाँ अनेक अनुभूतियोंका कुछ ऐसा सम्मिश्रण और सिलसिला, बीज रूपसे, केन्द्रित है कि, वह बाह्य परिस्थिति, समय, आचार-विचार तथा घात-प्रतिघातके प्रभावसे समय-समयपर स्वतः जागृत होता रहता है; किन्तु उस आग्रदवस्थाकी विधि अथवा सुचारु रूपसे अनुभव करनेकी गति केवल प्रतिभावानूको ही नसीब होती है, जनसा-

बाबू काशीप्रसाद जायसवाल एम० ए०, बार-ऐट-ला

आप भारतके प्राचीन इतिहास और हिन्दूराज्यतंत्रके विशेषज्ञ विद्वान हैं। आप हिन्दीके भी प्रतिभाशाली लेखक हैं। बिहार ओड़ीसा रिसर्च सोसाइटीके प्राण हैं। "पुरातत्त्वाङ्क"में आपका एक ऐसा मार्मिक गवेषणा-पूर्णलेख छपेगा, जो किसी अंग्रेजी पत्रमें भी आजतक नहीं छपा है।

धारणको नहीं। जिसमें जितनी ही उस स्वाभाविक अवस्थाको प्रकट करनेकी कुशलता होगी, उसमें उतनी ही अधिक प्रतिभाकी मात्रा होगी। उसकी कीर्तिमें उतना ही अधिक सौन्दर्य भी आवेगा; क्योंकि सभी स्वाभाविक वस्तुएँ सुन्दर होती हैं। और, हमको इसी सौन्दर्यसे काम है—कमलके रूप और गन्धसे मतलब है, उसके पङ्कगलित जड़से नहीं।

हमारे साहित्याचार्योंने स्वाभाविक हृदयानुभूतियोंका वर्गीकरण, सूक्ष्मातिसूक्ष्म दृष्टिसे, नव रसके नव स्थायी भावोंमें, विभेदोंके साथ, किया है, जिसको आज हम सूत्रकी तरह रटते हैं। प्रायः प्रत्येक प्रतिभावान् साहित्यिककी जीवनी पढ़नेसे यह बात प्रकट होती है कि, उसके जीवनमें एक आन्तरिक लगन या धुन, प्रवाह या गति ऐसी रहती है, जिसकी तरंग आजन्म जारी रहती है और वह इतनी तीव्र, तीक्ष्ण तथा आलोकित होती है कि, उससे उसको आन्तरिक उलझनों और वेदनाओं या आह्लादोंकी शृङ्खलाओंका अथवा संसारके व्यवहारोंका स्पष्टीकरण स्वतः होता जाता है और उसका शृङ्खलाबद्ध व्यक्त होना उस व्यक्तिकी अमर कीर्ति, काव्य या साहित्य है। साहित्यका आदर्श कोई भी मनुष्य स्थिर नहीं कर सकता। उसमें जो प्रतिभा है, वह समय और अवस्था, घटना और परिस्थितिके अनुसार, स्वयं उसे वहा ले जायगी और उसे अमर साहित्यिक बनाकर ही छोड़ेगी—वह चाहे जिस विषयका साहित्यिक हो और उसकी जीवनी साधारणसे साधारण घटनाओंसे ही क्यों न बनी हो? साहित्यिक स्वयं अपना आदर्श स्थिर नहीं कर सकता। उसका शासक तो उसकी प्रतिभा है। वह तो उसीसे अनुशासित होकर, नदीके पत्थरकी भाँति, भावोंसे ठोकर खाता हुआ, एक ओर निरन्तर प्रवाहित होता रहता है। कभी अनादि सत्यके विश्लेषणमें नाना भावोंका साक्षात् करता हुआ वह वहाँ जा रहता है, जहाँ सृष्टिकी अज्ञेयतामें उसकी आत्म-अज्ञेयता मिल जाती है और वह कह उठता है, "हम वहाँ हैं, जहाँसे हमको भी कुछ हमारी खबर नहीं आती।"❀ आचरण और दुराचरण, पाप और पुण्य समझनेके लिये न वहाँ अवकाश है, न आवश्यकता ही। वह कहता है—

"रिन्दे खराब हालको आहिद न छेड़ तू।
तुझको पराई क्या पड़ी अपनी निवेड़ तू।"

उसको किसी अज्ञेय या ज्ञेयके आन्तरिक तथा बाह्य घात-प्रतिघातोंकी उधेड़बुन और सत्य-विश्लेषणसे अवकाश कहाँ कि, वह आपके कथित आदर्शका पालन करे! उसके लिये—

"मतलब न कुफ्रसे है न इसलामसे गरज।
दिल देके ऐ सनम तुझे सबसे बरी हुए!"

पर एक बात अवश्य है। इन सब बातोंके साथ-साथ व्यक्ति-विशेषकी प्रकृतिकी प्रधानता अवश्य रहती है। प्रत्येक मनुष्यकी एक विशेष प्रकृति होती है, जो कुछ समयतक परिस्थिति, और व्यवहारसे उसके बाह्य जगत्में, भले ही छिपी हुई ज्ञात होती हो; किन्तु उसके आन्तरिक उद्गारमें वह कभी-न-कभी अवश्य ही प्रकट हो जाती है। जिसकी प्रकृति सात्त्विक होती है उसके उद्गार भी सात्त्विक होते हैं। रजोगुणवालेके उद्गार राजस और तमोगुण वालेके उद्गार तामस होते हैं। किन्तु यह प्रकृति प्रधानतया उस व्यक्तिकी प्रतिभाके प्रतिपादित विषयसे ही, सम्बन्ध रखती है, उसकी प्रतिभाके विकाशमें इसका कुछ हाथ नहीं रहता। विषय-विभेदसे हम किसी प्रतिभाकी तुलना नहीं कर सकते। विषय चाहे जो हो; हमको तो किसी काव्यमें यही देखना होगा कि, इसमें कैसी प्रतिभा है। विषयकी श्रेष्ठता और लघुतासे प्रतिभाकी श्रेष्ठता तथा लघुता नहीं जाँची जाती है। तुलसीकी कविता सात्त्विकी है और बिहारीकी राजसी; किन्तु इससे तुलसीकी प्रतिभा बिहारीसे ऊँची नहीं कही जा सकती! यही नियम *Noble Prize*के वितरण-कर्ताओंके आगे भी रहता है।

इस अवस्थामें यदि पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदीने अपनी सात्त्विक प्रकृतिके अनुकूल हिन्दी-साहित्यिकोंको कुछ सात्त्विक उपदेश सुनाये, तो क्या अतिशय किया! इससे दूसरे पक्षको इतना गर्म नहीं होना चाहिये। हाँ, चतुर्वेदीजीको भी यह अवश्य समझना चाहिये था कि, साहित्यिकोंको आदर्श दिखाना उचित नहीं। कोई भी साहित्यिक किसीके दिखाये आदर्शपर अपना आदर्श स्थिर नहीं कर सकता।

❀ गालिब

"खतरेकी घंटी"

प० जनकदेव पाठक

"गंगा" की २१ वीं तरंगमें बाबू मदनलालजी खेमका-का एक लेख, बाल-विवाहके विरोधमें, प्रकाशित हुआ है। पक्षमें मैं अपना थोड़ा-सा अध्ययन पाठकोंकी सेवामें उपस्थित कर रहा हूँ।

हिन्दुओंका प्राचीनतम धर्मग्रन्थ ऋग्वेद है। उसमें लिखा है कि, बाल-विवाह होना चाहिये। रोमशा अपनी भामीसे कहती हैं—

"उपोप मे परामृश मामे दभ्राणि मन्यथाः ।
सर्वाहमस्मि रोमशा गान्धारीणामिवाविका ।।"

१।१२६।७

अर्थात् मैं रोमशा हूँ। मेरी गान्धारी संज्ञा हो गयी। सङ्कल्प-विकल्प छोड़कर मेरा ब्याह कर दो।

महर्षि देवल गान्धारी उस कन्याको कहते हैं, जो दस वर्षकी हो चुकी है। वह गान्धारी तबतक रहती है, जबतक कि, यौवनवती न हो जाय।

मनु महाराजके विचारसे भी तीस वर्षका पुरुष बारह वर्षकी कन्यासे ब्याह करे और चौवीस वर्षवाला आठ वर्षकी कन्यासे। इसपर भी अगर धर्ममें खलल पड़ता हो, तो छोटी उम्रमें भी शादी कर सकता है।* धर्माचार्योंके विचारसे छोटी उम्रमें ही विवाह-संस्कारका हो जाना उत्तम है। परन्तु खेमका जी कहते हैं कि, "आज हजारों पण्डित बाल-विवाहको शास्त्रानुकूल बताकर जनताको बहका रहे हैं और समाजमें विधवाओंकी संख्या बढ़ाकर हानि पहुँचानेकी चेष्टा कर रहे हैं! ऐसे विवाहोंसे अपरिपक्व सन्तानोंकी ही भरमार हो रही है।"

मेरे विचारसे इनका यह कहना ठीक नहीं है; क्योंकि चौदहवें वर्षके पूर्व स्त्रियोंको विरला ही कहीं बच्चा होता है। फिर शारदा-बिलके मुताबिक भी अगर शादी होगी, तो क्या चौदहवें वर्षमें वे बच्चा नहीं जनेंगी? और, अगर चौदहवें वर्षमें बच्चा होता ही गया, तो कानून बनानेसे क्या लाभ? हिन्दूधर्मपर कुठाराघात करनेसे क्या फायदा?

बाल-विवाहसे विधवाओंकी संख्या भी नहीं बढ़ती है। इसका तो प्रधान कारण है, भयङ्कर रोगोंका प्रकोप और सात्त्विक भोजनोंका सर्वथा अभाव। भारतमें तो अन्य रोगोंके अतिरिक्त सिर्फ प्लेगसे ३० हजार और मलेरियासे १० हजार मनुष्य प्रतिसप्ताह मरा करते हैं। १९२१ में तो ६० लाख मनुष्य केवल इनफ्लूएँजासे मरे हैं। अब बताइये, मरनेवाले मरते रहें, तो बाल-विवाहका कुसूर?

सुन्दर, पौष्टिक भोजन नहीं मिलनेसे भी हमारे भारतवासी असमयमें ही काल-कवलित हो जाते हैं। सर जॉन उडरफ साहबने बताया है कि, भरतवासियोंको आदमी पीछे एक पावसे भी कम दूध मयस्सर होता है! घी और मक्खनकी तो बात ही चलानेकी जरूरत नहीं है।

सारी दुनियामें, १७९३—१९०० तकमें, युद्धोंमें कुल पचास लाख आदमी मारे गये हैं; किन्तु इस भारतमें, १८९१—१९०१ तकमें, केवल भूखकी आगमें भुनकर, एक करोड़ नब्बे लाख आदमी मर चुके हैं! इन आँकड़ोंको देखकर भी केवल बाल-विवाहको ही दोषी ठहराना कतनी जबर्दस्ती है!

---

* त्रिंशद्वर्षोद्वहेत् कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम्। अष्टवर्षाष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः ॥" —मनु-

हमारे किसान 'भर-पेट' भोजन किसे कहते हैं, जानते ही नहीं ! रोटीका ही सवाल हमेशा लगा रहता है, फिर भला इनके बच्चे क्या तन्दुरुस्त होंगे ? शहरोंमें जो फटे चिथड़ोंसे ढँकी हुई, मैली–कुचैली, कृशकलेवरा बालिकाएँ घास बेचती फिरती हैं, उनका स्वास्थ्य क्या कभी सुधरनेको है ? छोटे-छोटे सिसकते हुए बच्चे, जो सड़कों-पर कूड़ा-करकटमें लोटते रहते हैं, उन्हें भला शारदा बिल कैसे बचायगा ? खेमकाजी, यहाँ रोटीका सवाल है, रोटीका

हाँ, यह मैं नहीं कहता कि, संयमका आवश्यकता ? नहीं है। संयमसे लाभ तो होता ही है; लेकिन इन दिनोंका अधिक संयम कुटेव भी फैला देता है। जर्मनी, फ्रांस, अमेरिका, इंगलैंड आदि जिन देशोंमें बाल-विवाह कानूनन बन्द है, वहाँकी रिपोर्टें पढ़नेसे यह साफ जाहिर होता है कि, बहुत-सी कन्याएँ विवाहके पूर्व ही लुक-छिपकर गर्भ धारण कर लेती हैं !

अविवाहित लड़के भी जब कड़ी उम्रमें आवेंगे, तब अत्यन्त उच्छृङ्खल हो जाँयगे। इनके खुराफात तो सम्हाले भी नहीं सम्हलेंगे !

सुधारकोंको तो इस बातकी चिन्ता करनी चाहिये कि, वर्तमान पीढ़ी ऊपरली पीढ़ीसे निर्बल और दरिद्र क्यों है ? केवल बाल-विवाहके रोकनेसे ही क्या होगा ?

विवाह-संस्कार अलग है और गर्भाधान अलग। किसी श्लोक या मंत्रका पूर्वापर विचार कर अर्थ किया जाता है। गर्भाधानवाले वाक्यको विवाहमें लगाना भूल है। मनु महाराजकी आज्ञा (९।९०) आपद्धर्मके लिये है यानी तीन बरसोंतक जब ऋतुमती कन्या देख ले कि, मेरी शादी माता-पिता नहीं कर रहे हैं, तब वह स्वयंवर ढूँढ ले। इसका आशय यह है कि—

"रजस्वला च या नारी विशुद्धा पञ्चमे दिने
पीड़िता कामबाणेन ततः पुरुषमीहते ॥"

अर्थात् ऋतुमती स्त्री पाँचवें दिन, कामबाणसे पीड़ित होकर, पुरुष-सम्बन्ध चाहती है; अतः अपनी हानि देखकर ऋतुमती स्त्रीको तीसरे वर्ष स्वयं विवाह कर लेनेकी इजाजत दे दी है।

छोटी उम्रमें ही विवाह हो जानेसे बालक-बालिकाओंपर अंकुश पड़ जाता है। दोनोंके ऊपर धार्मिक भावका दबाव पड़ जाता है। दोनों उच्छृङ्खल हो जानेसे बच जाते हैं। अपवादसे भी बचे रहते हैं। स्व० बा० भूदेव मुखोपाध्याय सी० आई० ई० ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "पारिवारिक प्रबन्ध" में जो इस विषयका वैज्ञानिक विवेचन किया है, उसे खेमकाजीको पढ़ना चाहिये।

१—राजर्षि अशोक

श्रीयुत उमेश्वरप्रसाद

अशोक महान् पुरुष थे। उनकी विभूति, शौर्य और प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व अद्भुत थे। “यद्यपि अशोककी तुलना आज संसारके अन्यान्य सुप्रसिद्ध राजाओंसे की जाती है, तथापि उनका स्थान अद्वितीय ठहरता है।”*

कलिङ्ग-युद्धके भयावह दृश्यने अशोकके हृदयको एक बार ही द्रवित कर डाला—उसने एक नूतन, सूक्ष्म और अहिंसात्मक भावका सञ्चार कर अशोककी प्रवृत्तिको अकस्मात् बौद्ध धर्मकी ओर बढ़ा दिया और वे उसी समयसे 'बुद्ध'-के एकनिष्ठ उपासक हो गये। उसके बाद बौद्ध धर्मके प्रचार, प्रजामें धार्मिक भावनाओंकी जागृति तथा मानव-समाजमें शान्ति-स्थापनके लिये उन्होंने जिस तत्परता, धैर्य एवं उत्साहसे कार्य किया, वह वस्तुतः अभिनन्दनीय है।

शिलालेखोंको भी उन्होंने धर्म-प्रचारका साधन बनाया। इन्हींके द्वारा अशोकके इतिहासका बहुत कुछ पता लगता है। कलिङ्गसे पेशावर तथा मैसोरसे नेपालकी तराईतक अशोकके शिलालेख पाये जाते हैं। इससे उनके विशाल साम्राज्यका भी अन्दाज लगाया जा सकता है।

यद्यपि उन शिलालेखोंको खोदाये आज लगभग दो हजार वर्षसे अधिक हुए; किन्तु उनमें जरा भी परिवर्तन नहीं दीख पड़ता; उन्हें भली भाँति पढ़ लेनेमें कोई विशेष कठिनाई नहीं होती। सात भिन्न-भिन्न स्थानोंमें सात स्तूपोंपर १४ लेख खोदे गये और ये स्तूप पेशावरके शाहबाजगढ़ी स्थानके कपूर्दगिरि पहाड़ीपर, हाजरा जिलाके मनसेरामें, देहरादूनके कलसीमें, जूनागढ़के गिरनारपर, धौलीकी एक छोटी पहाड़ीपर, जगौदा तथा मैसोरमें पाये जाते हैं। ये शिला-लेख अंग्रेजीमें “*The fourteen Rock Edicts*” के नामसे प्रख्यात हैं। दश शिलालेख और भी पाये जाते हैं, जिनमें दो देहलीमें, कुछ नेपालके रास्तेमें, एक साँचीमें और एक सारनाथमें हैं। ये और उपर्युक्त “*Rock Edicts*” ही अशोकके प्रधान शिलालेख हैं।

इन लेखों द्वारा प्रजा तथा कर्मचारियोंके हृदयमें धर्मकी ओर श्रद्धा एवं पारस्परिक प्रेम-भाव उत्पन्न करना ही अशोकका एकमात्र उद्देश्य था। इसके अतिरिक्त विविध उपायोंका अवलम्बन कर उन्होंने विदेशोंमें भी बौद्ध धर्मका काफी प्रचार कराया और आज इसे संसारका एक सर्व-श्रेष्ठ धर्म बना देनेका श्रेय अशोकको ही प्राप्त है। “मानवजातिका तिहाई भाग आज गौतम बुद्धके बताये

---

* *Prof T. P. Bhattacharya.*

नियमोंका पालन करता है; यही सम्राट् अशोककी महत्ताका परिचायक है।"※

प्रायः सभी लेखोंमें धर्मकी परिभाषा की गयी है और साथ ही साथ उसका अनुसरण करनेके सरल उपाय भी बताये गये हैं। एक लेखमें लिखा है,—"धर्म ही सर्वोत्तम वस्तु है।" किन्तु धर्म है क्या? अल्प पाप, बहु कल्याण, दया, दान, सत्य और शौच। पशुवधको तो प्रायः उन्होंने बन्द ही करा डाला। द्वितीय शिलालेखमें लिखा है,—"मैंने धर्म-क्षेत्रको विस्तृत कर जनताको ज्ञान-मार्ग दिखाया है। पशु, पक्षी आदि सभी जीवोंको काफी स्वतंत्रता मिली है। सम्राट् प्रियदासके सूपकार-गृहमें पहले अनेक पशु-पक्षियोंकी हत्या की जाती थी; किन्तु अब, धर्म-लिपि लिखनेके समय, तीन ही जीवोंकी हत्या की जाती है—दो मोर और एक मृगकी। ये भी पीछे बन्द कर दिये जायगे।"

वस्तुतः यह एक आदर्श मनुष्यका कर्त्तव्य है। पंचम शिलालेखमें धर्ममहामात्रका उल्लेख किया गया है। अपनी प्रजामें ही धार्मिक भावना—धर्मनीतिको स्थायी रूप देना उचित न समझकर उन्होंने कम्बोज, गांधार आदि देशोंमें भी बौद्ध धर्मका प्रचार कराया। विशेषतः उनके धार्मिक महामण्डलोंने तो खूब ही प्रशंसनीय कार्य कर विश्व-सेवामें हाथ बँटाया। धर्म-राज्यकी सुदृढ़ नींव देकर अशोकने प्रेमकी ध्वनिसे विश्वको झंकृत कर डाला। यही कारण है कि, मानव-जातिके एक बृहत् अंशपर बौद्ध धर्मकी अमिट छाप पड़ गयी—लोग पापसे निवृत्त हो, पुण्य-पथकी ओर अग्रसर हो, अपने जीवनको सुखमय बनानेमें संलग्न हो गये। इस प्रकार उस धर्मवीरकी पुण्यमयी आवाजने सीरिया, मिश्र, ग्रीस आदि अर्थात् एशिया, अफ्रिका तथा यूरोप महाप्रदेशोंमें भी पहुँच कर जनतापर आश्चर्यजनक प्रभाव डाला।

※ Dr. R. C. Mazumdar M. A., P. R. S., Ph. D.

क्या मनुष्य, क्या पशु-पक्षी, सभीकी ओर उदार समदृष्टि डालकर अशोकने अपनी उन्नत और महान् आत्माका परिचय दिया। "यात्रियोंको कड़ी धूपसे बचानेके लिये सड़कके किनारे वृक्ष लगाये गये और हर आठ कोसपर कुओं एवं अतिथि-शालाओंका सुप्रबन्ध किया गया तथा जीव-हत्या बन्द करने एवं भिखारियोंको यथेष्ट भिक्षा देनेके लिये भी पूर्ण व्यवस्था की गयी।"※

"अशोकने जिस धर्मका उत्साहपूर्वक, पूर्ण शक्तिसे, प्रचार किया, वह वस्तुतः विश्व-धर्म था—विश्वकी शान्ति, सुख एवं प्रेमकी वृद्धिके निमित्त ही उसकी सृष्टि हुई थी। मानवसमाजको सुसंगठित, आनन्दमय और पापशून्य बनाना ही उसका मुख्य उद्देश्य था। बौद्ध होने पर भी उन्होंने अन्य धर्मावलम्बियोंके सुखकी ओर पूरा खयाल रखकर उन लोगोंके साथ प्रेमपूर्वक बर्त्ताव किया।"* इसीसे अशोकके विशाल तथा अगम्य हृदयका पता लग सकता है। माता-पिताका आज्ञापालन, हिंसानिवृत्ति, सत्यवादिता, गुरुभक्ति तथा ज्ञातिजनोंकी ओर उचित श्रद्धा आदि गुणोंपर उन्होंने विशेष दबाव डाला। सातवें लेखमें वे स्वयं कहते हैं,—"मनुष्यक स्वभाव भिन्न-भिन्न है। वह सम्पूर्ण अथवा अर्द्धरूपसे कर्त्तव्यका पालन करता है; किन्तु जिसमें आत्म-दमन, आन्तरिक पवित्रता, कृतज्ञता एवं निष्काम भक्ति नहीं है, वह वस्तुतः बड़ा ही नीच है।" साधारण धार्मिक त्योहारोंकी ओर उत्साह न दिखलाकर उन्होंने जनताका ध्यान "धर्म-मंगल" की ओर खींचा; क्योंकि इसीसे यथार्थ फलकी प्राप्ति होती है, आत्माका पूर्ण विकास होता एवं जीवन सुखमय तथा शान्तिपूर्ण हो जाता है। तृतीय लेखमें उन्होंने "उद्दण्डता, क्रोध, घृणा, ईर्ष्या एवं हृदयहीनता" को पाप कहा है। स्वर्गा-

※ Dr. R. C. Mazumdar M. A., P. R. S., Ph. D.

*Dr. R. C. Mazumdar M. A., P. R. S., Ph. D.

प्राप्ति ही उनका एकमात्र ध्येय था और लेखों द्वारा उन्होंने जनताको इसका सरल मार्ग भी बताया।

आध्यात्मिक तथा भौतिक उन्नतिके लिये जिन वस्तुओंकी महान् आवश्यकता है, उनका वर्णन प्रथम लेखमें यों है—"बिना धर्मकी ओर सुदृढ़ भक्ति, आत्म-परीक्षा अनन्त आज्ञापालन, महाभय तथा पूर्ण शक्ति लगाये इहलोक अथवा परलोकमें उन्नत होना अत्यन्त कठिन है।"

"(प्लेटोके आदर्शानुसार) अशोक एक आदर्श देशभक्त नरेश थे।" + निस्सन्देह उनकी कीर्त्तिका सुदृढ़ स्तम्भ उनकी धर्म-नीति ही नहीं है; किन्तु सुन्दर, उचित और आदर्श राज्य-प्रबन्धको भी इसका श्रेय प्राप्त है। "अशोकके राजनीतिक कार्य एवं शासनके विषयमें हमें उनके लेखों द्वारा मालूम होता है कि, वे कितने अच्छे और महान् सम्राट् थे।" ❀

अशोक स्वयं राज्य-कार्यकी देखभाल करनेपर भी प्रजाके विरुद्ध किसी भी काममें हाथ नहीं डालते थे। सम्पूर्ण साम्राज्यमें "परिषद्" की ही तूती बोलती थी और सम्राट् भी इसके मतका उल्लंघन कदापि नहीं करते थे। सुदूर प्रान्तोंका शासन-सूत्र राजकुमारोंके हाथमें था और इनके नीचे 'रायुक' की नियुक्ति होती थी, जिनके शासनमें लगभग हजार मनुष्य रहते थे। "नगर व्यावहारिक," "अन्तरमहामन्त्र," "प्रादेशिक," "प्रतिवेदक" आदिके हाथमें शासनकी बागडोर थी। इसके अतिरिक्त युक्त, अयुक्त, दूत और पुरुष आदि अन्यान्य कर्म्मचारी भी राज्य-कार्यमें संलग्न रहते थे। कौटिल्यके "अर्थशास्त्र"में इनका बड़ा ही विशद एवं सन्तोषप्रद वर्णन है। इस प्रकारका सुचारु रूपसे प्रबन्ध करनेपर भी अशोक स्वयं राज्य-कार्य करनेमें कदापि न चूकते थे। "उन्होंने बार-बार इस बातकी घोषणा की कि, 'मैं अपनी प्रजाको अपनी सन्तानके तुल्य समझकर उसकी भलाईके लिये सदैव तत्पर रहता हूँ'।'.........इस प्रकार उनका शासन मुख्यतः उपयुक्त एवं शान्तिप्रद था।" ❀

उनके सेना-विभागकी व्यवस्था भी अत्यन्त सन्तोषजनक थी। "मौर्य-सम्राट् अशोकके अधिकारमें एक खूब बड़ी सेना थी, जिसमें ६००००० पैदल, ३०००० घुड़सवार और ९००० हाथी थे। सेनाका शासन एक युद्ध-समितिके द्वारा होता था, जिसमें ३० सदस्य रहते थे। इस समितिके छः विभाग थे; प्रत्येकमें पाँच सदस्य होते थे"+

"अशोकके राजत्व-कालमें निस्सन्देह कलाकी आशातीत उन्नति—विशेष पारदर्शिता—हुई थी।"✠ "उन्होंने पाटलीपुत्रमें बड़े ही सुरम्य भवन बनवाये और स्तम्भों, स्तूपों आदिका निर्माण कराया। उनमेंसे अधिकांश तो समयके प्रभावसे नष्ट हो गये; किन्तु बचे हुओंसे भी तत्कालीन भारतकी अतीव उन्नत कलाका पर्य्याप्त ज्ञान हो जाता है।"×

ऐसे एक आदर्श भारतीय सम्राटकी मृत्यु ईसाके २३२ वर्ष पूर्वमें हुई; "किन्तु उनके अन्तिम दिवस अथवा मृत्युके विषयमें निश्चित रूपसे किसी भी बातका पता नहीं चलता।"÷ "इतिहासमें अशोक भारतके सर्वश्रेष्ठ शासकके नामसे विख्यात हैं। अपनी गम्भीर अनुभूति, रुचिर भाव एवं प्रभावशाली व्यक्तित्वमें वह सम्राटोंमें अतुलनीय—अद्वितीय हैं। उनकी सुदृढ़, सुव्यवस्थित शासन-प्रणाली भारतीय सभ्यताको उन्नत अवस्थाका एक उत्कृष्ट उदाहरण है।...उनकी ओर अगाध श्रद्धा एवं प्रेमके कारण ही उनके अन्तिम कालके विषयमें बहुत ही मनगढ़न्त कथाएँ सुनने में आती हैं।"=

× *U. N. Ball.*

❀ *R. C. Dutta, C.I.E.*

❀ *Dr. R. C. Mazumdar M. A., P. R. S., Ph. D.*

\+ *Vincent A. Smith—Asoka.*

✠ *V. A. Smith.*

× *Dr. R. C. Mazumdar M. A. etc.*

÷ *V. A. Smith.*

= *U. N. Ball.*

"यदि किसी मनुष्यकी कीर्त्तिका माप मनुष्योंके हृदयों और मुखोंकी गणनासे की जाय, तो सम्भव है, अशोक चार्ला मेगूने अथवा सीजरसे कहीं अधिक यशस्वी हैं;"* "क्योंकि, उनका नाम वोल्गा नदीसे जापान एवं साइबेरियासे लंका तक सादर, भक्तिपूर्वक लिया जाता है।"+ "संसारमें जहाँ-कहीं बौद्ध धर्मका प्रभाव है, वहीं अशोककी भी प्रतिष्ठा होती है।"÷

वस्तुतः ऐसे आदर्श सम्राट्की कीर्त्ति-गाथा सुनकर किस भारतीयका हृदय, गर्वसे, ऊँचा न हो उठता होगा? वास्तवमें, उन्हें हम अपनी मातृ-भूमिकी एक गौरवमयी विभूति—आभापूर्ण रत्नके रूपमें देखते और उनकी बार-बार प्रशंसा करनेपर भी परिक्लान्त नहीं होते।

२—मठोंके सम्बन्धमें

उपाध्याय रुद्रनारायण शर्मा

इतिहाससे यह बात छिपी हुई नहीं है कि, ईसाके लगभग ५०० वर्ष पूर्व भारतवर्षमें बौद्ध मतका प्रादुर्भाव हुआ था। इस धर्मके नियम ऐसे सरल, हृदयग्राही और लोकोपकारी थे कि, बड़े-बड़े राजा, सद्गृहस्थ और असंख्य लोगोंने अनुरक्त होकर बौद्ध-धर्मको ग्रहण किया। "भिक्षुसंघों"की स्थापना की गयी। लोक-सेवा-भावसे प्रेरित होकर भिक्षुगण "संघों"की संख्या बढ़ानेमें कटि-बद्ध हुए। अशोक जैसे ऐश्वर्य्यशाली राजाओंने इस धर्म्म-को बढ़ाने तथा दूर देशोंमें फैलानेके लिये पूरी सहानुभूति दिखलायी और वे धन-बलसे इसकी सहायता करने लगे। "भिक्षुसंघों"के भिक्षुओंके रहने तथा खाने-पीने आदिकी सुविधाओंके लिये स्थान-स्थानपर "विहारों" का निर्माण किया गया। इन "विहारों"में बौद्ध भिक्षु अपने महोपदेशकोंके साथ रहकर लोकसेवाकी शिक्षा पाते, आडम्बरविहीन सत्यका सन्देश लोगोंके घर-घर पहुँचाते और विश्व-प्रेमका पाठ पढ़ाते थे। उस समय बौद्ध धर्म्मका सूर्य्य मध्य गगनमें देदीप्यमान था और दक्षिणा-पथके कुछ अंशोंको छोड़कर प्रायः समस्त आर्य्यावर्त्तमें इस धर्म्मकी महत्ता समझी जाने लगी थी। विज्ञ, पराक्रमी और धनिक लोगोंकी सहायता पाकर इस धर्म्मने न केवल भारतवर्षमें; बल्कि एशिया महादेशके चीन, जापान, तिब्बत, लंका तथा फिलीपाइन आदि निकट एवं सुदूर-वर्त्ती देशों और द्वीपोंमें भी अपनी विजय-पताका फहरायी और सरल तथा मधुर उपदेशोंके डंकेकी चोटसे सबोंको सावधान किया। संसारके एक बड़े भूभागके लोगोंने आँखें खोलकर देखना आरम्भ किया। वास्तवमें यह धर्म्म सबोंका प्यारा था। इसके उपदेशोंका प्रभाव बड़ा ही मनो-रम तथा हृदयग्राही और समाजहितकरी प्रतीत होता था। परन्तु "नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण" के सिद्धान्तानुसार कालान्तरमें इस धर्म्मका प्रकाश क्षीण होने लगा। जो सूर्य्य मध्य गगनमें अपनी प्रखर किरणोंसे संसारको देदीप्यमान करनेमें समर्थ था, वही कुछ देरके बाद, सन्ध्या होनेपर, अपने तेजको गँवाकर, कृशित-कलेवर, विवर्णमुख और लज्जावनत होकर पश्चिमाकाशके क्षितिज प्रदेशोंमें डूब मरनेके समान व्यस्तचित्त एवं शोकसन्तप्त—सा दिखलाई पड़ता है। ठीक यही दशा परिवर्त्तन-कालमें सब किसीकी होती है और यही बौद्ध धर्म्मकी भी हुई। उत्थान और पतनकी जन्मदात्री लक्ष्मी या पूतना घरमें ही फूटती है।

दक्षिण भारतके महाराष्ट्र प्रदेशमें श्रीशंकराचार्य्यका जन्म हुआ। ये विद्वान् और ब्राह्मण-वंशके भूषण थे। वयस्क होनेपर श्रीयुत शंकराचार्यको उचित ब्राह्मण-धर्म्मकी शिक्षा दी गयी। वेद-वेदाङ्गोंके अध्ययनसे वे सहज ही वाक्पटुता और शास्त्रानुसन्धानमें

* Koppen.
+R. C. Dutta, C.I.E
÷ Proff. Mauna.

निपुण हो गये। इन्होंने महर्षि-प्रणीत ग्रन्थोंके आधारपर अपने हृदयमें निराकार ब्रह्मकी सत्ता अंकित की। बौद्ध धर्ममें इन्हें निरी नास्तिकता सूझ पड़ी। फिर क्या था! शास्त्रार्थ कर बौद्ध धर्मका मूलोच्छेद कर देनेका संकल्प कर लिया। सहज वाचाल, शास्त्र-विद्या-निपुण और प्रखर-प्रतिभाशाली शङ्करने आडम्बर-विहीन, सत्य, सरल बौद्ध धर्मोपदेशोंको प्रमाण-हीन, शुष्क तथा निरर्थक सिद्ध किया। एक बार शंकरने दिग्विजयके लिये समस्त भारतमें यात्रा की और मण्डन मिश्र आदि विहारके लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वानोंको शास्त्रार्थमें पराजित किया। इस प्रकार आर्ष ग्रन्थों और ब्राह्मणोंकी सहायतासे शंकराचार्य्यने भारतमें पुनः ब्राह्मणधर्मका उत्थान किया। बौद्धोंकी बढ़ती हुई शक्ति घटने लगी। यहाँ तक कि, कुछ समयमें चीन, जापान आदि देशोंको छोड़कर भारतसे बौद्ध धर्मने सदाके लिये विदा ले ली। शंकराचार्य्यने ब्रह्मचर्य्य-अवस्थामें ही संन्यास धारण कर लिया था। निराकार ब्रह्मका प्रतिपादन करनेमें ये सिद्धहस्त थे। अतः इन्होंने बहुत स्थानोंमें भाषण और शास्त्रार्थके द्वारा अपने प्राचीन धर्मको फैलाया। इनकी विचक्षण बुद्धि और तपोमय जीवन तथा ओजस्वी कान्तिको देखकर बहुत-से मनुष्य इनके शिष्य होने लगे। "भिक्षुसंघ" का नाम बदलकर "परिव्राजक-मंडल" रखा गया। बौद्धोंके "विहार" "मठ" कहे जाने लगे। इन "परिव्राजक-मण्डलों" और "मठों" का भी उद्देश्य जनतामें धर्म, परोपकार, सत्संगति और ज्ञानका प्रसार करना था। प्रारम्भमें शङ्कराचार्य्यने अपने शिष्योंकी सहायतासे भारतमें चार प्रसिद्ध "मठ" स्थापित किये थे। इनके शिष्य गिरि, पुरी, भारती, सरस्वती आदि दस उपनामोंसे प्रसिद्ध हुए। धीरे २ भारतमें ऐसे "मठों" की संख्या बढ़ने लगी और परिव्राजक-मण्डलका एक बृहत् सम्प्रदाय बन गया। आज भी भारतमें शंकराचार्यके अनुयायी परिव्राजकोंकी संख्या लाखोंसे अधिक है। भारतवर्षके केवल बिहार प्रान्तमें ही ऐसे "मठों" की आमदनी लाखों रुपयोंकी है।

"मठ" एक धार्मिक संस्थाको संचालित करनेका केन्द्र-स्थान है, जिसका उद्देश्य संसारमें धर्म और ज्ञानके भावका फैलाना, परोपकार करना, तथा अनाथों और गरीबों की सहायता करना है। ऐसे ही मनुष्य, जो विद्वान्, धर्मात्मा तथा परोपकारी होते थे, "मठाधीश" या महन्त बनाये जाते थे। महन्त विद्वानों तथा विचारवानोंके वातावरणमें रहा करते थे और अनाथों तथा गरीबोंकी सुविधाके लिये औषधालय, विद्यालय, पथिकालय एवं निःशुल्क भोजनालय का प्रबन्ध अपने "मठों" की ओरसे किया करते थे। वे देश-सेवाको अपना प्रधान धर्म्म मानते और उसके लिये अपनी जान तक भी अर्पण कर देनेमें नहीं हिचकते थे। अतः महन्त सब प्रकारसे श्रेष्ठ और हिन्दूधर्म्मके सर्वेसर्वा समझे जाते थे। "नमो नारायणाय" कह कर इन्हें उच्च वर्णके हिन्दू आज भी प्रणाम करते तथा उनके आगे सिर झुकाते हैं। परन्तु दुर्भाग्यवश अब ऐसे महन्तोंकी संख्या इनी-गिनी है। अब तो मुकुटमें रहनेवाला हीरा पृथ्वीपर फेंक कर ठुकराया जाने लगा और उसका स्थान रंग-विरंगे काचोंने छीन लिया। विद्वान् और तपस्वी महन्तोंकी गद्दीपर मूर्ख और दुराचारी तथा साधु नामधारी नरपशु शोभा पाने लगे और उनका पाखण्ड-प्रताप इस भारतभूमिपर हिन्दुओंको व्यथित करनेके लिये दिनोंदिन बढ़ने लगा। इस प्रकार धर्म्मके केन्द्र ये "मठ" दुष्ट और अपव्ययी महन्तोंके क्रीड़ास्थल बन गये। अब तो महन्त अपने "मठ" को, जिसके वे प्रबन्धकमात्र थे, अपना घर तथा उसकी सम्पत्तिको स्व-सम्पत्ति समझने लगे हैं। यही कारण है कि, आज कल मठोंकी आमदनी दुराचारी महन्तोंके प्रायः मुकदमे, वेश्यागमन, परदाराहरण और भोग-विलास आदिमें स्वाहा होती रहती है।

विशेष कर मूर्ख और दरिद्र मनुष्य उदरपूर्त्तिके लिये "मठों" में आकर शिष्य बनते हैं। कोई-कोई अपने परि-

वारसे झगड़कर भाग आते तथा "मठों"के धन-विभवको देखकर शिष्य बन जाते हैं। कितने ही अबोध बच्चोंको तो धनहीन माता-पिता, अपने स्वार्थके लिये, महन्तोंके हाथ बेंचकर अपनी संतानका भावी जीवन चौपट करनेमें जरा भी नहीं हिचकते! धनके साथ उनका अटूट सम्बन्ध होते ही अविचारका पर्दा आँखोंपर लद जाता है। दुर्व्यसनी और दुराचारी मनुष्योंकी संगति उन्हें मदान्ध बनाये रहती है। ऐसे मूर्ख मनुष्य युवावस्थामें भाग्यवश महन्ती पाकर बौखला उठते हैं। फिर तो ये क्या क्या अनर्थ नहीं कर डालते।

महन्तोंमें शिष्य बनाने (चेला मूँड़ने) की प्रथा है। वे न अपना विवाह करते और न स्वभार्य्याजात औरस पुत्रको अपनी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी ही मानते हैं। उनके शिष्य ही, उनके बाद, गद्दीके हकदार समझे जाते हैं। परन्तु जीवित दशामें ऐसे महन्त अपने शिष्योंको औरस पुत्रवत् प्यार नहीं करते। वे यह नहीं चाहते कि, मेरा शिष्य मेरे उचित-अनुचित कामोंमें टीका-टिप्पणी करे या मुझसे होते हुए अपव्ययोंमें हस्तक्षेप करे। महन्तकी इच्छाके विरुद्ध मुँह खोलनेवाला शिष्य "मठ"से निकाल बाहर किया जाता है। वह अनेक प्रकारसे, तिरस्कृत किया जाता है। कितने ही शिष्य महन्तोंके तिरस्कृत व्यवहारोंसे ऊबकर भाग भी जाते हैं।

मूर्ख और अविचारी साधु—नहीं-नहीं छद्मवेशी शृगाल-रूप नरपशु मनुष्योंको ठगनेके लिये नये-नये स्वांग बनाकर यत्र-तत्र जमे हुए हैं। भोली-भाली जनता धार्मिक श्रद्धा तथा "जो न करे लकीर, सो करे फकीर" आदि प्रचलित अन्धपरम्परापर विश्वास कर इन धूर्तों और ठगोंके चंगुलमें नित्य फँसा करती है और प्राकृतिक नियमोंके विपरीत इनके बताये हुए मार्गोंसे चलकर धोखा खाती, मुसीबतें उठाती तथा अपने स्वास्थ्य, धन और इज्जतसे हाथ धो बैठती है। इन दुष्टोंके द्वारा बालिका-अपहरणकी कथा तो बराबर ही सुनी जाती है तथा इनकी जड़ी-बूटियोंसे सोना-चाँदी बनवानेवाले धनिक अपने पासके हजारों लाखों गँवाकर सिर पीट-पीट कर रोते तथा पछताते हैं। जनताको इन ढोंगियोंसे सावधान रहना चाहिये। इन मूर्ख और ढोंगी साधुओंसे हमारे भारतवर्षका विशुद्ध धार्मिक वातावरण कलुषित और कष्टमय हो गया है। हमारे लिखनेका यह मतलब नहीं है कि, सभी महन्त दुराचारी होते हैं। नहीं, उनमें भी त्यागी, देशभक्त और धर्मप्राण महन्त अनेक हैं।

३—संसारकी जानने योग्य बातें

बा० कालीकुमारदास

(१) यूरोप

देश	शासन-प्रणाली	वर्गमीलमें क्षेत्रफल	राजधानी
आस्ट्रिया	साम्राज्य	११६०००	वायना
हंगरी	राज्य	१२५५००	बुडापेस्ट
बेलजियम	"	११४००	ब्रूसेल्स
बलगारिया	"	३७०००	सोफिया
डेनमार्क	"	१५५००	कोपेनहेगेन
फ्रान्स	प्रजातंत्र	२०७२२०	पेरिस
जर्मनी	साम्राज्य	२०६०००	बर्लिन
ग्रीस	राज्य	२५०००	एथेन्स
इटली	"	१११०००	रोम
लक्सेमबर्ग	" (ग्रेण्ड डची)	१०००	लक्सेमबर्ग
मांटिनिग्रो	"	३५००	सेटिंजे
नेदरलैण्ड्स	"	१२७००	हेग
नारवे	"	१२४०००	क्रिस्टियानिया
पोर्तुगाल	प्रजातन्त्र	३४५००	लिस्बन

रूमानिया	राज्य	५१०००	बुखारेस्ट
यूरोपीय-रशिया	सोवियट	२००००००	सेण्टपीटर्सबर्ग
सर्विया	राज्य	१९०००	वेल्ग्रेड
स्पेन	"	१९६०००	मैड्रिड
स्वीडेन	"	१७३०००	स्टाकहाल्म
स्वीजरलैण्ड	प्रजातन्त्र	१५५००	वर्न
यूरोपीय टर्की	प्रजातंत्र	६५५००	कुस्तुनतुनिया
बृटेनका संयुक्तराज्य	राज्य	१२१५००	लण्डन

(२) एशिया

देश	शासन-प्रणाली	वर्गमीलमें क्षेत्रफल	राजधानी
अफगानिस्तान	राज्य	२५००००	काबुल
भूटान	"	२.००००	पुनखा
चीन	प्रजातन्त्र	४३०००००	पेकिंग
हिन्दुस्तान	साम्राज्य	१९००००००	दिल्ली
जापान	"	२३६०००	टोकियो
नेपाल	राज्य	५४०००	काठमाण्डू
ओमन	"	८१०००	मसकत
फारस	"	६३००००	तेहरान
रूस	सोवियट	६४०००००	सेंटपीटर्सबर्ग
स्याम	राज्य	२२००००	बैंकाक
टर्की	प्रजातंत्र	६९४०००	कुस्तुनतुनिया

(३) अफ्रीका

देश	शासन-प्रणाली	वर्गमीलमें क्षेत्रफल	राजधानी
एबिसीनिया	साम्राज्य	३५००००	एडिसअब्बाबा
मिश्र	स्वायत्त शासन	३६३२००	कैरो
लाइबेरिया	प्रजातन्त्र	४८०००	मोनरोविया
मोरक्को	साम्राज्य	२२००००	फेज़
सूडान	स्वायत्त शासन	९५००००	खारतूम
यूनियन ऑफ— साउथ अफ्रीका	औपनिवेशिक स्वराज्य	४७००००	प्रीटोरिया

(४)—अमेरिका

देश	शासन-प्रणाली	वर्गमीलमें क्षेत्रफल	राजधानी
उत्तर अमेरिका			
कनाडा	औपनिवेशिक स्वराज्य	३७५००००	ओटावा
मेक्सिको	प्रजातंत्र	७६७०००	मेक्सिको
न्यूफाउण्डलैण्ड	औपनिवेशिक स्वराज्य	१६३१००	सेन्टजोन्स
युनाइटेड स्टेट्स	प्रजातन्त्र	३०२६७८९	वाशिंगटन
अलास्का	युनाइटेड स्टेट्स	६५०००	जूनो
मध्य अमेरिका			
कोस्टारिका	प्रजातंत्र	२३०००	शानजोसे
ग्वाटीमाला	"	४७५००	ग्वाटीमाला
हाण्डुरास	"	४२७००	टेगुसी गल्पा
निकारागुआ	"	५१६००	मानगुआ
पनामा	"	:१८९०	पनामा
सालपेडोर	"	७२५०	शान सालवेडोर
दक्षिण अमेरिका			
अर्जेंटाइन	"	१२;२०००	ब्यूनस एयरस
बोलीविया	"	५७००००	सुक्रे
ब्राजिल	"	३२२००००	रियो डी जानीरो
चिलि	"	२९१०००	सान्टिआगो
कोलम्बिया	"	४७३०००	बागोटा
इक्वेडोर	"	१२००००	क्वीटो
पारागुई	"	१७३०००	एसुनसियन
पेरू	"	७०००००	लीमा
उरुगुई	"	७२२००	मौंटेविडियो
वेनेजुएला	"	३६४०००	केराकस

(५) वेस्टइण्डीज

देश	शासन-प्रणाली	वर्गमीलमें क्षेत्रफल	राजधानी
क्यूबा	प्रजातन्त्र	४४०००	हैवाना
हेटी	"	१०२००	पोर्ट ओ प्रिन्स
सेण्टो डोमिंगो	"	१८०००	सैण्टो डोमिंगो

६—आस्ट्रेलेशिया

आस्ट्रेलिया औपनिवेशिक स्वराज्य ३०६३२३४ यासकैनवेरा
न्यूजीलैण्ड औपनिवेशिक स्वराज्य १०४७५१ वेलिंगटन

४—ईरानी आर्योंके प्रति

महन्त हरनामदास उदासी

१—संसारकी प्रथम उत्पत्तिके समय, जब समुद्र ऊपरसे नीचे आया, तबसे आजतक हिन्दू-धर्म अविच्छिन्न रूपसे वर्तमान है, जिसे सनातन-धर्म भी कहते हैं।

२—समुद्रकी पहली लहर पहाड़ोंसे टकराती हुई नीचे उतरी यानी नीचे पच्छिमकी तरफ आकर पानी खड़ा हुआ। इसीलिये पूर्व दिशा पहली और बड़ी कही जाती है। इससे यह भी साबित होता है कि, सृष्टि पहले पूर्व दिशामें ही हुई। सबूतमें यह बड़ी दलील है कि, सूर्य पूर्व दिशासे ही प्रकट होता है। वहाँकी बर्फ गर्मी पाकर गलने लगती है और नीचे गहरी जमीनमें उतरकर समुद्रका रूप धारण कर लेती है।

३—सृष्टिके समय ईश्वरसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश उत्पन्न हुए, जिनका अपना सिद्धान्त यज्ञोपवीत धारण करना, अग्नि आदि देवताका पूजन करना और वेद-विदित कार्य करना है।

४—दुनियाके तख्तेमें—पृथ्वी-मण्डलमें—पहले हिन्दू कौम ही हिन्दुस्थानमें आबाद हुई। ये हिन्दू (आर्य) सुधरे हुए थे, सभ्य थे। दूसरी तरफ जङ्गल और पहाड़के सिवा कुछ भी नहीं था। आदमी नहीं आबाद थे।

५—कौरवों और पाण्डवोंकी लड़ाईके खतम हो जानेपर श्रीकृष्णजी द्वारका चले गये। पीछे प्रभास-क्षेत्रकी लड़ाईमें यादवगण आपसमें ही लड़ पड़े। बहुतेरे यादव बेड़े बाँधकर समुद्रमें उतर पड़े। ये इङ्गलैंड, फ्रांस, जर्मनी और मिश्र आदि देशोंमें पहुँचे। मिश्रमें रहनेवाले यादवोंने अपनेको यहूदी कहा और यहूदियोंसे ही अँग्रेज हुए। फ्रांसके रहनेवाले यादवोंने अपनेको फ्रांसीसी कहा। वेदव्यासजीने कौरवोंको पश्चिम दिशाका राज्य पहले ही बाँट दिया था। ये फ्रांसमें पहलेसे ही थे और अपनेको फ्रांसीसी प्रसिद्ध कर चुके थे। ये भी यादवोंसे मिल गये और फ्रांसीसियोंकी संख्या अधिक हो गयी।

६—यादवोंसे मिलकर जो कौरव पच्छिमकी तरफ गये, उनमें कितने ही अपनेको कुरेशी कहने लगे, जिनसे मुसलमानी मजहब पैदा हुआ।

७—परीक्षितके पुत्र जनमेजयके समयमें, कौरवोंके वंशजोंके साथ, पाण्डवोंके वंशजोंका मिलाप हो गया। वेदव्यासजीने मुल्क बाँट दिये। सिन्धुकी पूर्व दिशाके भागमें, चीनके ऊपरतक, पाण्डवोंका राज्य हुआ और सिन्धुकी पश्चिम तरफ, मक्का-मदीनेतक, कौरवोंका राज्य हुआ। सिन्धु नदीसे परे मुल्कका नाम ईरान पड़ा।

८—समयके हेर-फेरसे जैसे-जैसे ईरानी आर्य कमजोर होते गये, वैसे-वैसे ईरानका नाम थोड़ा-थोड़ा घटता गया और; इस हदतक पहुँच गया, जहाँ अब है।

९—मुसलमान और ईरानवाले आपसमें लड़ने लगे। मुसलमानोंकी सल्तनत जम गयी। ईरानके स्थानको अरबने ले लिया।

१०—ईरानी आर्य और भारतीय आर्य एक ही हैं। जो ईरानी दूसरे मजहबके हो गये हैं, उन्हें चाहिये कि, अपने पहले मजहबको फिर कुबूल कर लें।

११—१३०० बरसोंसे जरथुश्तके मजहबको ईरानियोंने मंजूर किया है। अब भारतवासी जाग गये हैं। ये अपने भाइयोंको दूसरेके मजहबमें पड़े देखकर कहते हैं कि, "आप अपने बड़ोंके प्रथम धर्मपर फिर आइये।"

५—"समुद्र-यात्रा"

पं० त्रिवेणीदत्त त्रिपाठी

स्वीकृत कार्य चाहे शास्त्रानुकूल हो, चाहे शास्त्र-प्रतिकूल; किन्तु उसकी शास्त्रानुकूलता सिद्ध करके भोली-भाली

जनताको धोखा देना भी आजकलका एक फैशन है। यह प्रवृत्ति केवल कुछ 'सुधारकम्मन्य' नवयुवकोंमें पायी जाती है। श्रद्धेय तिलकजीने समुद्र-यात्रा की थी। किन्तु आपने शायद ही कभी समुद्र-यात्राके समर्थनके लिये कुछ कहने या लिखनेकी चेष्टा की हो? आप ऋषि-वाक्यको अतर्क्य मानते थे। पूज्य मालवीयजी भी शायद इसीलिये चुप हैं। किन्तु ठाकुर अच्युतानन्द सिंहजी समुद्र-यात्रा (शास्त्र-प्रतिकूल कार्य) को शास्त्रानुकूल सिद्ध किये बिना क्यों मानने लगे! आपने झट "गंगा" की दूसरी तरङ्गमें समुद्र-यात्रापर एक निबन्ध लिखकर समुद्र—यात्राको शास्त्र-सिद्ध किया तथा कुमार गंगानन्द सिंह साहबको बधाई दे डाली। जब मुल्ककी माली हालत खराब है, तब देश-सेवाके ब्याजसे गरीबोंका धन गोरोंकी जेबमें पहुँचाना कहाँतक युक्तियुक्त और धर्मसङ्गत हो सकता है?

ठाकुर साहबके लेखका खण्डन विद्वत्प्रवर न्याय-व्याकरणाचार्य प० महेश झाजीने "गंगा" की चौथी तरङ्गमें छपाया। उसपर ठाकुर साहबका जोश उमड़ पड़ा। लगे झाजीको उल्टी सीधी सुनाने। झाजीके लेखका प्रतिवाद "गंगा" की पाँचवीं तरङ्गमें छपा है। आइये पाठक, ठाकुर साहबकी शास्त्रज्ञानाटवीकी सैर कीजिये। ठाकुर साहबने झाजीके प्रति जो उद्गार प्रकट किये हैं, उनसे आपके विक्षुब्ध हृदयका अच्छा परिचय मिलता है। इतना ही नहीं, "गङ्गा"की आठवीं तरङ्गमें कोई "एक श्रोत्रिय" महाशयने भी दर्शन दिया है। आप शास्त्रार्थके लिये डबल चैलेञ्जका सन्देश लेकर आये हैं। ठाकुर साहबने नेपालके प्रधान मंत्री, जयपुर-नरेश, लोकमान्य तिलक, दरभङ्गा-नरेश प्रभृति सनातनियोंके उदाहरण देकर समुद्र-यात्राको वेदानुकूल सिद्ध करनेकी चेष्टा की है। पाठकवर्ग, क्या मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रका उदाहरण देकर कोई ब्राह्मण-वध सिद्ध कर सकता है? आपने लिखा है कि, "प्रति सप्ताह सैकड़ों हिन्दू जहाजसे बर्मा जाते हैं और प्रायश्चित्त-भागी नहीं होते।" वाह री तर्कशैली! सैकड़ों मनुष्य रोज झूठ बोलते हैं, तो क्या ठाकुर साहब अनृत भाषणको शास्त्र सिद्ध मानेंगे? आप लिखते हैं कि, "आपने (झाजीने) अपने लेखभरमें केवल पराशर और शौनककी सड़ी और अर्वाचीन स्मृतियोंके दो उदाहरण दिये हैं। वेद, दर्शन, श्रौत-सूत्र, धर्म-शास्त्र आदिमें आपको कोई प्रमाण नहीं मिला! आप न्याय-व्याकरणाचार्य हैं; इसलिये कमसे कम न्याय-व्याकरणके ही कुछ प्रमाण दे देते।" कितना सुन्दर तर्क है। साधुवादके लिये शब्द नहीं मिलते। ठाकुर साहब, प्राचीन स्मृतियाँ कौन-सी हैं? धर्मशास्त्रकी परिभाषा आप क्या करते हैं? कृपया आप ही वेद, दर्शन, श्रौत-सूत्र, धर्म-शास्त्रके प्रमाण दीजिये। कौनसे व्याकरण और न्यायमें समुद्र-यात्राका खण्डन अथवा मण्डन है। आपके वैदिक प्रमाणोंके नमूने भी देखे जाय!

"वेद नावः समुद्रियः। समुद्रमें जानेवाली नौका-का मार्ग वरुण जानते हैं। इससे विदित होता है कि, समुद्रमें नौकाओं द्वारा अहोरात्र आने-जानेके मार्ग (*Sea roads*) तक निश्चित हो गये थे। इस मंत्रमें झाजीके सेतुका नाम भी नहीं है। तो क्या नौकाओं द्वारा यातायात करने-वाले उन दिनोंके आर्य पतित थे?" शाबाश ठाकुर साहब, अबकी बार आप दूरकी कौड़ी लाये! पाठकवर्ग! आपने देखी ठाकुर साहबकी वेदज्ञता? अरे भाई! जल-देवता यदि जल-मार्ग जानते हैं, तो क्या इसके मानी हैं कि, समुद्र-यात्राकी जाय? स्थाली-पुलाक-न्यायेन इसी एक प्रमाण-से पाठक समझ लेंगे कि, ठाकुर साहब कितने पानीमें हैं। इसी प्रकार आपने एक वैदिक आख्यायिका पेश की है, जिससे समुद्रयात्राके समर्थनका विफल प्रयत्न किया है। मैं पूछता हू, ठाकुर साहब अगर आप ऐसी आख्यायिकाओंसे ही समुद्र-यात्रा सिद्ध करेंगे, तब तो शतपथ ब्राह्मणमें वर्णित आख्या-यिका (जिसमें इन्द्रके ब्रह्म-हत्या करनेकी कथा है) से ब्रह्म-हत्या भी वेदानुकूल सिद्ध होगी। इसी तरह आपने और दो-तीन प्रमाण उपस्थित किये हैं, जो कि बिलकुल निस्सार हैं। अतएव मैं उनकी समीक्षा करके पाठकोंका समय व्यर्थ

बरबाद न करूंगा। किसी कारण-विशेषसे समयानुकूल समुद्र-यात्रा प्रभृति शास्त्रविरुद्ध कार्य भी किये जाते हैं। यथा, रामका ब्राह्मण-वध, युधिष्ठिरका असत्य भाषण-प्रभृति। किन्तु उन्हें शास्त्रानुकूल सिद्ध करना ठाकुर साहब-सरीखे सज्जनोंका ही काम है। अन्तमें हम ठाकुर साहब और श्रोत्रिय महाशयको सप्रेम आमन्त्रित करते हैं कि, समुद्र यात्राकी वेदानुकूलताके सारे साधन लेकर मैदानमें आइये और सिद्ध कीजिये समुद्रयात्राकी वेदानुकूलता।

६—कलिमें गङ्गाकी स्थिति

प० प्रभुनाथझा

पिछले साल मैं "गंगा"के कई अङ्कोंमें इसी विषय पर लिख चुका हूँ। लिखनेकी इच्छा रखता हुआ भी कई कारणोंसे फिर मैं नहीं लिख सका था। ताँता टूट जानेसे मेरी कितनी ही बातें पाठकोंको पुनरुक्ति-सी मालूम पड़ेंगी; लेकिन लाचारी है। उन्हें विना लिखे फिर सिल-सिला नहीं मिल सकता।

पुराणोंमें जब यह है कि, "पृथिवी गङ्गया हीना भविष्यत्यन्तिमे कलौ" तब यह कैसे माना जा सकता है कि, पृथिवी अभी गङ्गासे हीन हो गयी! साफ तो कहा है कि, "अन्तिमे कलौ" यानी कल्पान्तस्थित कलिमें गंगा चली जायगी!

"द्वात्रिंशद्भिः सहस्रैश्च युक्तं लक्षचतुष्टयम्
प्रमाणं कलिवर्षाणां प्रोक्तं पूर्वैर्महर्षिभिः॥
युगानां कृतमुख्यानां क्रमान्मानं प्रजायते।
कलेर्मानं क्रमान्निघ्नं चतुस्त्रिद्विमितैस्तदा॥"

इस प्रमाणसे कलियुगकी आयु ४३२००० वर्षोंकी हुई। अभी अष्टाविंशतितम युग है, इससे इसका व्यतीत वर्ष, वर्तमान शकाब्दको ३१७६ में जोड़नेपर, ५०२३ होता है। आपका तो प्रमाण है—

"कलौ दशसहस्रान्ते हरिस्त्यक्ष्यति मेदिनीं।
तदर्द्धे जाह्नवीतोयं तदर्द्धे ग्रामदेवता॥"

जिससे गङ्गा प्रथम कलियुगमें ही चली गयी, ऐसा ज्ञात होता है; किन्तु अन्य पुराण-वाक्योंके साथ समन्वय करनेसे इस श्लोकका आशय भी कल्पान्त ही व्यक्त होता है। नहीं तो इन दिनों जब यह कलियुग गङ्गाहीन है, तब गङ्गास्नान-जन्य पुण्यका भागी कोई भी नहीं हो सकता; लेकिन इसी कलियुगमें गङ्गा द्वारा मोक्षके भागी कविवर पण्डितराज जगन्नाथ हुए हैं; जिनकी गङ्गालहरी घर-घर प्रचलित है। पद्माकर कविकी भी मुक्ति इसी कलि-युगमें इसी गङ्गाके द्वारा हुई है; तब "कलौदश"—इस श्लोकका समन्वय अन्य पुराणोंके आधारपर क्यों नहीं कल्पान्त कलियुगसे किया जाय? शिवपुराणमें लिखा है—

"गंगा गोदावरी चैव कावेरी ताम्रवर्णिका।
सिन्धुश्च सरयू रेवा सप्त गंगाः प्रकीर्तिताः।"

आग्नेय पुराणके १११ वें अध्यायमें लिखा है, "गङ्गा सर्वत्र नाकदा" तथा "गङ्गातोये नरस्यास्थि यावत्तावद्दिवि स्थितिः" यानी गङ्गाके जलमें जबतक आदमीकी हड्डी रहती है, तबतक वह स्वर्गमें रहता है।

सरस्वतीको जबतक रहना था, तबतक वह रही। आज उसका कौन प्रत्यक्ष करता है। मेरे विचारसे, अवधिके खतम हो जानेपर गङ्गा भी सरस्वतीका ही अनुकरण करेगी।

७—उपन्यास-लेखक

पाण्डेय जगन्नाथप्रसाद सिंह

वह मेरा अभिन्न मित्र था। पहले पहल उससे मुजफ्फरपुरमें भेंट हुई थी—हिन्दीसाहित्य-सम्मेलनके अवसरपर। उसके बाद फिर कभी मुलाकात नहीं हुई। यह लगभग पाँच व

पहलेकी बात है। इसके बाद उससे बराबर पत्र-व्यवहार रहा। वह बराबर एक जगह नहीं रहता था। कभी उसकी चिट्ठी आती कलकत्तेसे, कभी प्रयागसे और कभी काशीसे। वह लेखकोंसे बराबर दोस्ती पैदा किया करता था। परन्तु मुझसे केवल दोस्ती ही नहीं, बल्कि भाईका नाता उसने जोड़ रखा था। वह मेरी रचनाओंको बहुत पसंद करता था। जब कभी मेरी कोई रचना किसी मासिक पत्रिकामें छपती, तब उसका एक बधाईका पत्र आ पहुँचता। थोड़े ही समयमें उसने मेरे साथ बड़ी घनिष्ठता पैदा कर ली थी।

मैंने एक उपन्यास लिखा। वह मुझे बहुत पसंद आया। अनेक मित्रोंको मैंने उसके कई अंश पढ़कर सुनाये। मित्रोंने उसे खूब ही सराहा। उसे भी मैंने उसकी सूचना दे दी। तीसरे ही दिन उसका एक पत्र आया, जिसमें उसने लिखा था—मैं आपका वह उपन्यास देखनेके लिये आ रहा हूँ। दो दिनोंके बाद वह आ भी गया। उपन्यास उसने देखा, पढ़ा और तारीफोंके पुल बाँधे। इसके बाद कहा—"मैं दिल्लीसे पुस्तक-प्रकाशनका काम करना चाहता हूँ। पहले आपकी यही पुस्तक निकालूँगा।" मैंने भी अस्वीकार नहीं किया। वह जानेके समय कापी साथ लेता गया।

इसके बाद आठ महीनेतक उसका कोई पत्र नहीं आया। मेरे पत्रोंका उत्तर देना भी उसने जरूरी नहीं समझा। मैंने सोचा, शायद वह कहीं बाहर गया है या किसी आफतमें है अथवा बीमार पड़ गया है। मैं चिन्तामें पड़ गया।

उसी दिन सरस्वतीकी एप्रिलकी संख्या आयी। उसमें एक विज्ञापन देखा—

"हिन्दी-उपन्यास-जगत्में हलचल मचानेवाली हिन्दीका सर्वश्रेष्ठ मौलिक उपन्यास—

'सेवा'

मूल्य केवल चार रुपये
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग"

मुझे यह पुस्तक देखनेकी बड़ी उत्सुकता हुई; क्योंकि मैंने भी अपने उपन्यासका यही नाम रखा था। आर्डर भेज दिया।

एक सप्ताहके बाद पौने पाँच रुपयेकी वी० पी० आ पहुँची। उस समय मेरे लगभग सभी मित्र उपस्थित थे। मैंने उन्हें भोजनका निमन्त्रण दिया था। पुस्तककी वी० पी० मैंने छुड़ा ली। इसके बाद मित्रोंने उसे खोल डाला। उसे देखकर वे बोल उठे—"वाह भाई हरेश्वर! तुमने भी तो गजब कर दिया। जिस प्रकार बाबू धनपत राय "प्रेमचन्द" बन गये, उसी प्रकार क्या तुम भी हरेश्वरप्रसादसे "ज्ञानचंद" बन जाना चाहते हो?" मैंने कुछ नहीं समझा। उनके हाथसे उत्सुकतासे पुस्तक लेकर देखने लगा। बात समझते देर न लगी। यह मेरा वही उपन्यास था, जिसे "वह" ले गया था, प्रकाशित करनेके लिये। मैंने उस समय मुस्कुराकर बात टाल दी। मित्रगण भोजन करके चले गये। आठ-नव महीनोंसे उसका पत्र न आनेका रहस्य आज अच्छी तरह समझमें आ गया।

वैज्ञानिक चमत्कार
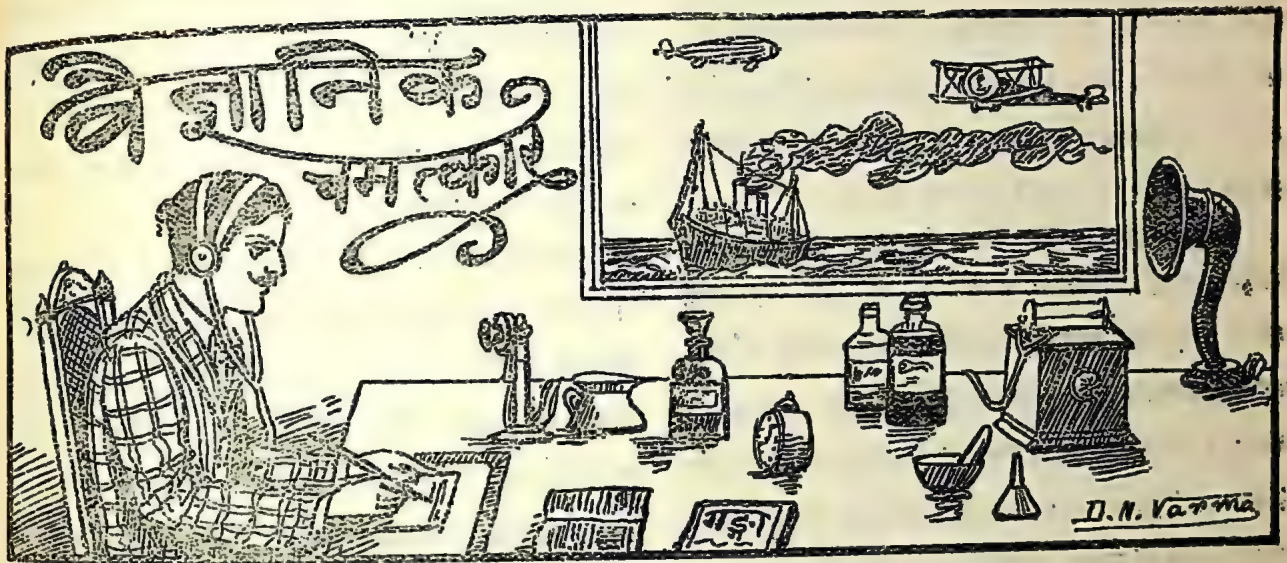
वैज्ञानिकोंकी दृष्टिमें ईश्वर

साहित्याचार्य "मग"

अज्ञात कालमें अन्धकार ही अन्धकार था। तब सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, जल, वायु आदि कुछ भी नहीं थे; क्योंकि उस समय आलोकका आविर्भाव ही नहीं हुआ था। कुछ कालके अनन्तर तिमिराच्छन्न नभोमण्डलमें छोटे-छोटे विद्युत्कण प्रकट हुए और निरुद्देश्य होकर इधर-उधर विचरण करने लगे। ये दो प्रकारके थे; एक पुरुष-जातिके, दूसरे स्त्री-जातिके (*Positive* और *Negative*)। इन्हींके स्पन्दन और गतिसे शुरू-शुरूमें आलोक उत्पन्न हुआ। इन्हींसे परमाणु (*Atom*) और परमाणुओंसे अणुओं (*Molecules*) की उत्पत्ति हुई। पश्चात्, शनैः शनैः, अणुओंके द्वारा सजीव और निर्जीव पदार्थोंकी भी पैदाइश हुई।

वैज्ञानिकोंके दृष्टिपथमें स्वयं प्रकाशमान सूर्यदेव पहले-पहल पुञ्जीभूत विद्युत्कणोंके समष्टिरूपमें आलोकित होते थे। समीपस्थ विद्युत्कण उनकी आकर्षण-शक्तिसे उनमें मिलते जाते थे और उनके आकारको विशद करनेमें अपनी सहायता पहुंचाते थे। ये विद्युत्कण गति तथा वेगके कारण धीरे-धीरे ९२ प्रकारके परमाणुओंमें परिणत हो गये। उस समय उनका आकार वाष्पमय था। कितने दिनोंतक ये परमाणु और सूर्य इस दशामें रहे, ठीक पता नहीं।

इस पृथ्वीकी उत्पत्तिके विषयमें वैज्ञानिक ऐसा ही बताते हैं। विद्युत्कण इकट्ठे हो-होकर अनन्त ब्रह्माण्डकी रचना कर चुके थे। ब्रह्माण्डोंको वेष्टन कर परिभ्रमण करनेवाले अनगिनत ग्रह, उपग्रह आदि भी बना चुके थे कि, एक दिन शून्याकाशमें भ्रमण करनेवाले अनन्त नक्षत्रोंमेंसे कोई एक घटना-चक्रमें पड़कर सूर्यके निकटवर्ती हो गया। सुतरां उस नक्षत्रके आकर्षणसे, सूर्यका वह अंश, जो कि, उसके सम्मुख पड़ता था, अत्यन्त स्फीत हो गया तथा सूर्यके उस भागका कुछ वाष्पमय अंश उसी नक्षत्रकी ओर चू गया; किन्तु इसी बीच वह नक्षत्र अपनी गतिके कारण बहुत दूर निकल गया था। अब वह सूर्य-विच्युत वाष्पपिण्ड, आधार न पानेके कारण, सूर्यकी चारो तरफ घूमने लगा। करोड़ों बरसोंके बाद उसे ही आज दिन हम पृथ्वीके रूपमें देखते हैं।

पृथिवीका आभ्यन्तर भाग अत्यन्त उत्तप्त था; उत्ताप डिग्रीका परिमाण दस लाखके करीब था। करोड़ों बरसोंतक

धीरे-धीरे ताप विकीर्ण करनेके बाद पृथ्वीका उपरितम भाग शीतल हुआ और वे ९२ परमाणु, जो पहले वाष्पाकार थे, अब रासायनिक क्रिया तथा जड़शक्तिकी क्रिया (*Physical force*) के कारण पृथिवीके अभ्यन्तरस्थ भिन्न-भिन्न कठिन स्तरोंमें, जल और वायुमें, परिणत हो गये।

विद्युत्कणोंमें पहलेसे ही जो जड़ और जड़शक्ति मिलित रूपमें विद्यमान थे, उन्हींसे ये जड़ और जीवजगत् बने हैं। प्राकृतिक नियमके वशवर्त्ती होकर उन्हींके ये मनुष्यादि क्रमविकास (*Evolution*) हैं। देश (*Space*) काल (*Time*) जड़ तथा जड़शक्ति (*Matter and its inherent force or energy*) ये ही सजीव और निर्जीव जगत्को उत्पन्न करनेमें कारण होते हैं।

एक दलके मतसे इनके अतिरिक्त आत्मा (*Soul*) भी एक पृथक् वस्तु है, जो केवल मनोविज्ञानके द्वारा ही जानी जा सकती है। निम्न श्रेणियोंके जीवोंकी अपेक्षा मानव-देह उन्नत है; क्योंकि अहंज्ञान (*Egotism*) केवल मनुष्योंको ही है। अहंज्ञान परमात्मा वा परमेश्वर है, जो इस संसारके जर्रे-जर्रेमें मौजूद है। उसकी इच्छा या अभिव्यक्ति के ही विद्युत्कण, परमाणु, अणु आदि हैं, जो किसी एक कानूनकेपावन्द होकर इस दृश्यमान जगत्के रूपमें प्रकाशित होते हैं। यह एक दलवालोंकी बात है।

हेकल कहता है—"जड़ वा जड़शक्तिसे पृथक् आत्मा या ईश्वरकी कल्पना पूरी भूल है। अगर ईश्वर तेजकी तरह है, तब तो निश्चय ही, अनन्तकाल बीतनेपर उसके तेज विकीर्ण हो गये होंगे और वह बर्फकी तरह ठण्ढा होकर जम गया होगा। धर्मग्रन्थोंने जैसा बखाना है, वैसा ही यदि ईश्वर है यानी दया, मन, ज्ञान और बुद्धि आदि मनुष्योचित गुणोंसे युक्त तथा सर्वत्र व्याप्त निराकार है, तब तो उसका रूप बड़ा ही विचित्र होगा अर्थात् उसका आकार होगा वाष्पमय मेरुदण्डके ऊपर मस्तिष्कसे विशिष्ट किसी अजीब प्राणीके समान। यदि ईश्वर शक्तिविशेष माना जाय, तो उस शक्तिका आधार क्या होगा? मस्तिष्कके बिना बुद्धि, दया आदि गुण दूसरी जगह रह ही नहीं सकते!"

वैज्ञानिकोंका यह दावा है कि, एक मात्र गति-शक्तिके ही द्वारा ताप, आलोक, रासायनिक क्रिया, वैद्युतिक क्रिया और चुम्बक क्रिया होती है। किसी भी एकको वे दूसरेमें परिवर्तित कर सकते हैं। ऐसा करनेपर भी उसकी शक्तिमें क्षय-वृद्धि नहीं होती है।

संसारमें जहाँ जड़ और जड़शक्ति है, सबमें आदि कालसे ही समष्टि है। जड़ और जड़शक्तिके परिवर्तन, गति तथा विश्रामके द्वारा ही संसारका कार्य चलता है। जड़की, विश्राम तथा गति, दोनों ही अवस्थाओंमें शक्ति एकरस रहती है। हाँ, गतिकी दशामें शक्ति कार्य करती है और विश्रामकी दशामें अवरुद्ध हो रहती है। किसी भी दशामें उसका कुछ भी ह्रास नहीं होता, केवल परिवर्तन होता है।

वैज्ञानिकोंके विचारसे प्राणियोंके प्राण, जड़ परमाणुओंकी गति तथा स्पन्दन द्वारा जो रासायनिक क्रिया होती है, उसीके परिणाम हैं। मस्तिष्क और जटिल-स्नायुमण्डलियोंके द्वारा ही मनुष्योंको अहंज्ञान होता है और यह अहंज्ञान तबतक होता रहता है, जबतक कि, मस्तिष्कवर्ती परमाणुओंका स्पन्दनके साथ रासायनिक क्रिया होती रहती है। मस्तिष्कके विकृत या दूषित हो जानेपर भी यह ज्ञान नहीं होता है।

वैज्ञानिक लोग साफ-साफ यह कहते हैं कि, जो जाना नहीं जा सकता, जो छूआ अथवा धरा नहीं जा सकता और जिसका स्वरूप केवल कल्पना मात्र है, उसके पीछे माथापच्ची करनेसे क्या फायदा! जितने वास्तव पदार्थ हैं, वे हमारे ज्ञेय हो सकते हैं; किन्तु जो अवास्तव हैं, वे हमारे क्या, किसीके भी ज्ञानगम्य नहीं हो सकते। कवि-कल्पनाकी ऊँची उड़ान विज्ञानका विषय नहीं है। वैज्ञानिकोंका ईश्वर तो वह है, जो सत्य, शिव और सुन्दर है।

सारांश यह कि, वैज्ञानिकोंके घर विद्युत्कण, परमाणु, अणु, जड़, जड़शक्ति तथा रासायनिक क्रिया, ये ही सर्वेसर्वा हैं। इन्हींके संश्लेषण-विश्लेषणसे सब बनता-बिगड़ता है। प्रकृतिकी भी जरूरत पड़ती है। बस, और ईश्वर आदि, कुछ नहीं।

विनोद-बिन्दु

ससुरालकी सैर

(२)

बा० हरद्वारप्रसाद जालान

गाड़ीकी बात

आज ससुरालकी सफर करनी है। बड़े तड़के उठा और आज पहले-पहल, चायका अभ्यास करनेके लिये, बिना मुँह धोये ही, गरम-गरम प्याला, बिस्तरे-पर ही पड़ा-पड़ा, पी लिया। फिर अँगड़ाई लेते हुए पुकारा, "डीयर ! डीयर !" बीबी करवट लेती हुई बोली—"सुबह ही सुबह ऐसा कोहराम ! अभी पड़े रहो !"

"अरे ससुराल चलना है !"

"अच्छा, चला जायगा।"

"उठो भी; मैं तो *Early Tea* उड़ा चुका ! बिस्तरा छोड़ो।"

"अच्छा, जरा देर और सही !"

"अरे उठो भी; गाड़ी छूट जायगी !"

"तो अभी क्यों बावेला मचाने लगे ? आखिर चलोगे, तो शामको ही न ?"

"आखिर वक्त ही कितना है ? कुल बारह घंटे ! इतने ही वक्तमें इतनी बड़ी तैयारी करनी है !"

"तो क्या ऊँट-हाथी बाँधोगे ? भले आदमी, अभी सोनेका वक्त है। और भी लोग ससुराल जाते हैं; मगर तुम्हारी तरह नहीं।"

"ठीक है; क्योंकि मैं खासा जेंटलमैन हूँ !"

"अच्छी बात है; मगर ससुरालमें तुम्हारी सारी जेंटलमैनी खाकमें न मिली, तो कहना।"

"अच्छा तुम पड़ी रहो; मैं तो उठकर कपड़े-लत्ते सहेजूँगा। तुम्हारे भरोसे तो मैं ससुराल जा चुका !"—कहकर मैं अँगड़ाई लेते हुए उठ खड़ा हुआ कपड़े-लत्ते सम्भालनेमें ग्यारह बज गये। इसी बीच बीवीने आकर कहा—"खाना तैयार है !"

"नहीं खाता ! अभी दो बाक्स और भरने हैं; पाँच भरे जा चुके।"

"मालूम होता है, तुम ससुराल नहीं चलते—घर बदलते हो ! रहना तो चौदह दिन ही है, आखिर इन सात बाक्सोंका वहाँ करोगे क्या ?"

"कमअक्ल, जानती नहीं, मिस्टर सिनहा साहबकी ससुरालकी सफर है—कुछ घसियारे-भटियारेकी नहीं, जो दुलाई ओढ़ी और धोती सरसे बाँधकर चलता हुआ।"

"अच्छा ! अच्छा ! सारा घर उठा ले चलो।"

"अच्छा ! अच्छा ! जाओ, तुम अपनी तैयारी करो। मैं फिर तुम्हें चार बजे अपने पास चाहता हूँ।"

"क्यों, उस वक्त मुझसे कौन काम है ?"

"मैं अपने हाथोंसे तुम्हें सजाऊँगा, बनाऊँगा और गले लगा ऊँगा! तब रेलपर चढ़ाऊँगा और फिर मायके पहुँचाऊँगा! समझी!"

"खूब अच्छी तरह समझी—तुम्हें गलेका हार बनाकर मैं जो इस बार आफतें उठाऊँगी, वह मैं ही जानती हूँ।"

"अच्छा अच्छा जाओ, जल्द तैयारी करो!"

"अरे मियाँ, कुछ खा भी लो; ससुराल जानेकी खुशीमें कबतक भूखे मरोगे?"

खैर भाई, बड़ी लेह-देह, खी चा-खी ची, "टग ऑफ वार" (*Tug of war*) के बाद मैंने हलकके नीचे कुछ पूरियाँ उतारीं! फिर आकर अपने काममें जुटा। खैर, किसी तरह चार बजेतक मैंने अपना सामान ठीक किया। सब कुछ ठीक कर लेनेपर मैंने साँस ली। इस बड़ी तैयारीको थकावट मिटानेके लिये मैंने सिगरेटका कश लेना शुरू किया। इसी वक्त रजनधारी आ पहुँचा। मैंने उठकर शेक-हैंड करते हुए कहा,—"सब ठीक है, जरा तुम सामानकी फेहरिस्त देख लो, कुछ भूला-भटका तो नहीं हूँ!"

रजनधारी लिस्ट देखकर बोला—"जी, सब चीजे हो गयीं; मगर एक चीज छूटी जाती है।"

"वह क्या?"

"उस्तरा!"

"*Oh yes.* मगर यार, मैं खुद हजामत बनाना नहीं जानता!"

"कोई परवाह नहीं, छूरा न सही, उसका भाई सेफ्टी रेजर ही लेते चलो—रास्तेमें हजामत बनानेकी दरकार पड़ेगी, तो नाई कहाँ खोजते फिरोगे और फिर जेंटलमैनोंका तो यही खास औजार, इस नामर्दी-के जमानेमें, रह गया है।"

"बेशक, ठीक ही कहा, बोलो, कितने रुपयेमें मिलेगा?"

"सुनहले बैलेटका दाम अन्दाजन सात रुपया होगा। लाइये, दस निकालिये।"

मैंने दस निकाल कर दे दिये। वह अपनी टेटमें रखता हुआ बोला,—"अच्छा अब अपनी बीबी साहबको तैयार कीजिये। गाड़ी आनेमें दो घंटे बाकी रह गये हैं।"

"अभी बुलाकर ठीक किया। मगर यार, हजामत तो आज मैं नहीं बना सकता। प्रस्थानके समय ऐसा करना मना है। उधर बीबी जिद किये हुए है।"

"खैर, क्या मुजायका है। बीबीकी खातिर इतनी बात मंजूर कर लो, गाड़ीमें ही सेफ्टी रेजर चला लेना। मगर यार, तुम अपनी बीबीको पूरी तौरसे सजा सकोगे या इस काममें मेरी भी जरूरत होगी।"

"जी, आपके सामने वह क्योंकर होगी, यह काम तो मुझे ही करना होगा।"

"मगर "पर्दा-सिस्टम" फिर कैसे उठाओगे?"

"उफ्! यह सब यहीं तक है। स्टेशनसे गाड़ी खुलनेपर बीबीका पर्दा स्वयं उठ जायगा।"

"यह बात!"

"और क्या!"

"अच्छा, तो मैं अपना भी बिस्तरा लेकर स्टेशनपर पहुँचता हूँ। सेफ्टी रेजर मैं भेज देता हूँ।"

"बहुत खूब"—कहकर रजनधारी कमरेसे निकला और मैंने पुकारा—"केतकी! केतकी!!"

बीबी बल खाती हुई आ पहुँची। हैं! यह क्या!! लहँगा पहने हुए!!! मैं तो ओढ़नी देखते ही भड़का और बोला—"यह लहँगा क्यों पहन लिया?"

"जी, मैं तैयार हूँ। आपका सामान ठीक हो गया?"

"तो क्या यह लहँगा-ओढ़नी पहनोगी?"

"और न तो कहो, हैट-पैन्ट लगा लूँ!"

"तो जब तुम्हें मेरी बातें मंजूर नहीं, तो कहो

मैं बिस्तरा खुलवाऊँ; ससुरालकी सफर रोक दूँ।" "नहीं, मैं चश्मा चढ़ाकर तुम्हारे साथ मायके नहीं चलूँगी!"

"तो तुम्हारा जाना नहीं होगा। कसम, मैं नहीं जाऊँगा।"

"तो क्या चाहते हो, बोलो?"

"यही कि, घूँघट छोड़कर मेरे साथ तमीजदार औरतकी तरह चलो। यह लहँगा-ओढ़नी फाड़ फेंको!"

"आखिर लोग क्या कहेंगे!"

"लोग क्या तुम्हारे अपने सगे हैं, जो उनकी बातें सुनना चाहती हो; तुम्हें तो मैं जो कहूँगा, वही करना पड़ेगा।"

"अच्छा, तो साड़ी पहन कर चलूँ!"

"जी, हाँ!"

"अच्छी बात है; साड़ी बदल कर आती हूँ।"

"और यह माथ क्या गुँथवा आयी! इसे भी खोलना होगा।"

"हाय, हाय! यह क्या कहते हो! इतनी मिहनत से तो गुँथवाया है—अब कैसे इतनी जल्दी खुलेगा?"

"तो क्या हर्ज है, दूसरी गाड़ीसे चलेंगे।"

"नहीं, मैं माथ नहीं खुलवाऊँगी!"

"तो मायके जानेसे हाथ धो लो!"

इतना कहनेपर बीबी झुँझला उठी, बोली,—"तो इतना डर क्या दिखाते हो, जाने दो, न भेजोगे, न जाऊँगी। बस, बात खतम?"

यह कहकर बीबी धम्मसे कुर्सीपर बैठ गयी। बच्चा भी झल्ला उठा और झट कपड़ेका बाक्स खोलता हुआ बोला—"कौन हरामीका पिल्ला ससुराल जायगा। लो, ससुराल जाना खतम हुआ!"

अभी इतनी बात खतम भी नहीं हुई थी कि, बीबी रोती हुई बोली,—"अच्छा, अच्छा, मुझे सब बातें मंजूर हैं, जो कहोगे, करूँगी। बोलो क्या कहते हो?"

मैं झल्लाते हुए ही बोला—

"कुछ नहीं, मैं अब ससुराल जाऊँगा ही नहीं।"

बीबी सचमुच डर गयी—गिड़गिड़ाकर बोली,—"तुम्हें मेरी कसम—चलना होगा—कसम, तुम जो कहोगे, सब करूँगी! कसम ले लो!"

मैं इतना सुनते ही उठ खड़ा हुआ और बोला—"अच्छा तो फौरन साबुनसे सिर धोकर मेरे पास आओ!"

"बहुत अच्छा"—कहकर मेरी बीबी झपटती हुई कमरेसे बाहर निकल गयी और पन्द्रह मिनटमें बाल खोले हुए आ पहुँची। मैं झट कंघी लेकर बीबीके बाल सवाँरनेको बैठ गया। पर अफसोस, बालोंपर कमबख्ती सवार थी, ज्यों-ज्यों मैं उन्हें बनानेकी कोशिश करता, त्यों-त्यों वे और बिगड़ते जाते थे। दाहिनी ओरका सुधारा, तो बाईं ओरका बिगड़ा और बाईं ओरका जो सुधारा, तो दाहिनी ओरका बिगड़ा! आखिर किसी तरह अगट-सगट घटिया-बढ़िया बाल बाँधा, तो गहनेका खयाल पड़ा। बीबी गहने लाना भूल गयी थी। खैर, गहने लानेके लिये उसे भेजा, तो दस मिनट लगाकर गहने लेकर लौटी; पर इस आने-जानेमें फिर उसके शिरके बाल घिसक गये! फिर सँवारा—फिर बाँधा! उसको गहने पहनाये। इसी वक्त खयाल आया कि, पाउडर तो नहीं लगाया—चट पूछा,—"पाउडरका डिब्बा लायी?"

बीबीने झुँझलाकर कहा—"रहने भी दो, आज अगर पाउडर नहीं लगाओगे, तो क्या बिगड़ जायगा!"

पर मैं भला कैसे राजी होता! डपट कर बोला—"न लगाऊँगा कैसे? आजके ही लिये तो इतना पैसा खर्च किया है। बस, फौरन ले आओ!"

मेरी लाल आँखें देखते ही बीबी समझ गयी कि, रङ्ग बेढब है। चुपचाप बुदबुदाती हुई बाहर

निकल गयी और पाउडर लाकर बोली—"लीजिये।"

मैंने पाउडर लेकर देखा, तो 'पफ' नहीं! पूछा—

"'पफ' नहीं लायी ?"

"'पफ क्या ?"

"वही लगाने वाला— जल्दी ले आओ!"

पफ लेकर किसी तरह वह दस मिनटमें लौटी।

मैंने बीबीके मुँहपर सामने पाउडर थोप दिया। पर अफसोस यही कि, पाउडर लगानेका मुहाविरा न होनेसे ठीक तरहसे पाउडर नहीं लगा—कहीं ज्यादा और कहीं कम हो गया।

मैं चारो ओर बराबर करनेके लिये तड़ातड़ 'पफ' को बीबीके गालोंपर रगड़ने लगा। इस क्रियामें आध घंटा गुजर गया, मगर बीबी भूतनीकी तरह बन गयी चेहरा बननेकी जगह बिगड़ता ही गया लिहाजा मल्ला कर मैंने जहाँ कम पाउडर था, वहाँ और ज्यादा लगाकर मलना शुरू किया! पर इसका नतीजा और भी बिगड़ने लगा। मैं बीबीको सुन्दर बनानेका जितना प्रयत्न करता, वह उतनी बदसूरत बनती गयी! तेलसे सने उसके बालोंमें पाउडर पड़कर उसे चूनेकी तरह सफेद बना दिया। मेरी इस सजावटके बाद जब वह आइनेमें अपना मुँह देखने गयी, तब उसका मुँह क्रोधसे तमतमा उठा।

कसम, उस समय उसके मारे मैं ऐसा बहरा बन गया कि, मुझे यह नहीं मालूम हुआ कि, बीबी मेरी एक ही दो पीढ़ियोंकी याद कर रही थी या ज्यादाकी! आखिर बीबीसे न रहा गया—मेरे कंधेपर खूब जोरसे हाथ मारना चाहा—पर बन्देको भी कुछ ऐन वक्तपर सूझ ही जाता है। आपही कहिये, बीबी और मेरे कंधे पर हाथ रख दे! एक औरत मर्दपर हाथ छोड़ दे! बस, झट मैं बैठ गया। इधर मेरे बैठते ही बीबीका हाथ जा बैठा टेबुलपर—तड़ाकसे तड़-तड़ चूड़ियाँ चनकीं अलग और मेरे सरपर तीन पाँववाली मेज गिरी अलग!

और लीजिये, मजा यह था कि, बीबीको मेरा सिर फूटनेका कुछ खयाल भी नहीं और चार अधेलेके काच' की चूड़ियोंको रोना इस तरह था कि, मानो आज ही मेरी बीबी विधवा हो गयी है! उसकी हिचकियाँ बँधने लगी, आखोंसे आँसुओंके कतरे गिरने लगे। खैर भाई, जो हो—बीबीकी इस हरकतसे एक बात तो रही। वह यह कि, पाउडर धुलने लगा—बरसाती मेह-से चूनेकी दीवारका रङ्ग धुलने लगा!

आखिर भाई, थी तो मेरे ही ससुरकी लड़की न! कहाँ तक उसका रोना देखता—किसी-किसी तरह बड़ी कोशिश करके हिम्मत बाँधी और लम्बी-लम्बी डेग भरकर बीबीके पास जा पहुँचा। पीछेसे खड़ा होकर बोला—"अजी मैं—अभी—मैं जिन्दा हूँ।"

"और न तो क्या मर गये? मैं समझती थी!"

बीबीके इस व्यङ्गपर मेरी हिम्मत बढ़ी और मैं उसे मनाने लगा। बड़ी आरजू और मिन्नतपर बीबी उठी और गुशलखानेमें जा बैठी। उसकी बाट देखते आधा घंटा बीत गया। खैर, बीबी बाल सुखाते हुए बाहर निकली। मैं तो उसे देखकर ताज्जुबमें हो गया। गाड़ी आनेमें कुल पन्द्रह मिनटकी देर थी और यहाँ बीबीका यह रङ्ग। मैंने कहा—"अजी फौरन तैयारी करो, नहीं तो गाड़ी छूट जायगी!"

बीबीने तनक कर कहा—"तो क्या इस गाड़ीसे चलनेकी उम्मीद रखते हैं?"

मैं,—"अजी, नहीं तो क्या? रिजर्व कम्पार्टमेंटसे तो इसीमें आ रहा है? चलोगी किसमें?"

"तो मैं इस गाड़ीसे नहीं जाती—यह सूना हाथ लेकर मैं मायके जाऊँ—लोग मुझे क्या कहेंगे।"

"कहेंगे क्या, जबतक मैं जिन्दा हूँ! बस तैयारी करो!"

"मैं बिना चूड़ियाँ पहने नहीं जाऊँगी। ऐसे अपशकुनका काम मुझसे नहीं होगा!"

"तो भली औरत, यह तो पहले ही न तुम्हें समझना चाहिये था कि, शौहरको मारना मुनासिब नहीं—क्यों हाथ चलाया था ?"

"मैंने आपपर कब हाथ चलाया—मैं तो कंधेपर हाथ रखने चली थी कि, आप बैठ गयें।"

"यह बात थी ? मैंने तो समझा था कि, मुझे मारनेपर उतारू हो गयी।"

"यही तो तुम्हारी इंग्लिश फैशनवाली बेवकूफीके लटके हैं !"

कहते हुए बीबी हँस पड़ी ! देखा यह तरीका ? मुझे बेवकूफ बनानेमें बीबीको खुशी होती है। खैर भाई, जीका मलाल भीतर ही रखा और घड़ीपर निगाह डाली। वक्त गुजर गया—गाड़ी स्टेशनसे पास कर गयी होगी ! अब ? अब तो सिवा मेलके और कोई गाड़ी नहीं आती थी। खैर, इस बार मैंने किसी तरह मन मसोसकर बीबीको खुद-ब-खुद सिंगार करनेके लिये कहा—और मैं बैठा-बैठा देखने लगा। मेरे मन मुताबिक सिंगार डेढ़ घंटेमें हुआ। बस, झटपट तैयारी करके, हमलोग स्टेशनपर चले; पर चलनेके वक्त बीबीने एड़ीदार जूता पहनना एकदम नाकबूल कर दिया। बड़ी मुश्किलों और मिन्नतोंपर बीबीने कहा कि, घरपरसे पहनकर न चलूँगी। हाँ, तुम्हारी ऐसी ही ख्वाहिश हो तो, स्टेशनपर चलते वक्त पहन लूँगी। खैर भाई, विवश होकर मैंने उसकी शर्त मंजूर कर ली और झट दोनों जूते अपने पैंटकी जेबमें डाल दिये; क्योंकि गाड़ीसे उतरते वक्त बाक्स खोलने-बन्द करनेमें तरद्दुत होगी, वह अलग और लोग जो बीबीको जूता पहनाते देखकर हँसेंगे, वह अलग ! (क्रमशः)

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

युध्यन्ते पक्षिपशवः पठन्ति शुकसारिकाः ।
दातुं शक्नोति यो वित्तं स शूरः स च पण्डितः ॥

यों तो पशु-पक्षी भी लड़ना जानते और मैना-तोते भी पढ़ना जानते हैं; किन्तु सच्चा शूर और विद्वान् वही है, जो किसीको अपनेमेंसे कुछ दे सकता हो ।

कर्णस्त्वचं शिबिर्मांसं जीवं जीमूतवाहनः ।
ददौ दधीचिरस्थीनि नास्त्यदेयं महात्मनाम् ॥

कर्णने चमड़ा, शिबिने मांस, जीमूतवाहनने जीव और दधीचिने हड्डियाँ दान कर दी थीं; इसलिये यह ठीक ही है कि, बड़े आदमियोंके लिये ऐसा कोई पदार्थ ही नहीं है, जो दिया नहीं जा सके ।

अनुकूले विधौ देयं यतः पूरयिता हरिः ।
प्रतिकूले विधौ देयं यतः सर्वं हरिष्यति ॥

यदि दैव अनुकूल है, तो दान देना चाहिये और यदि प्रतिकूल रहे, तब तो अवश्य ही दान दे; क्योंकि दैवके प्रतिकूल होनेपर तो आखिर सब खो देना ही होगा ।

गौरवं प्राप्यते दानान्न तु वित्तस्य संचयात् ।
स्थितिरुच्चैः पयोदानां पयोधीनामधः स्थितिः ॥

दान देनेसे ही ऊँचा स्थान मिल सकता है, धन-संचयसे नहीं; इसीलिये, दान देनेके कारण ही, बादल ऊपर रहते हैं और न देनेके कारण ही समुद्र नीचे पड़ा रहता है ।

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥

द्रव्य जानेके तीन मार्ग हैं—दान, भोग और नाश । इसलिये जो व्यक्ति न तो दान करता और न भोगता है, उसका द्रव्य नष्ट होता है ।

दातव्यं भोक्तव्यं सति विभवे सञ्चयो नैव कर्तव्यः ।
पश्येह मधुकरीणां संचितमर्थं हरन्त्यन्ये ॥

यदि धनैश्वर्य रहे, तो हाथ खोलकर दान करना चाहिये या उसे भोगना चाहिये—कभी भी संचय नहीं करना चाहिये; क्योंकि संचय करनेवाली मधुमक्खियोंका मधु दूसरा ही ले जाता है ।

कविता-कल्लोलिनी

प्रेम-पाश

श्रीयुत राय रामनारायण

ऊषा-दूती प्राचीसे जब करती है संकेत
दिवस-देवके शुभागमनके समयका
प्रियतमकी अगवानीके लिये—
पद्मा रानी,
उस समय—
बिहँस बिहँस करती है क्रीड़ा,
दूर हटा देती है—व्रीड़ा,
खोल स्वच्छ कर देती अपना कोमल हृदय-निकेत ।
साथ ही—
बंदी अलि-दलको बाहर कर,
मुक्त-मलयका मद्य पिलाकर,
विरुदावली गानेको करती नाना भाँति सचेत ।
सुनकर मनहर स्वागत-गान,
प्रियतमका मिटता है ध्यान,
नयन खोल हर्ष हो—
किरण-करोंको फैला कर है करता मधुरालिङ्गन;
प्रेयसी भी—
थिरक थिरक मुस्काने लगती,
प्रणय-पराग लुटाने लगती
कितना गद्‌गद हो जाता है, उसका मञ्जुल मन !

+ × ×

कितनी दूरी पर दोनों हैं !
एक शून्यमें करता विचरण,
एक सलिलमें करती हलचल,
केवल एक प्रेम-पाशमें दोनों उर हैं बँधे हुए
अहा ! पाश यह कितना पावन और पुण्य-सम श्वेत ॥

स्वार्थ

बा० मदनलाल खेमका

खिलने न पायी थीं कलियाँ प्रसूनकी
वेश बना बधिकका क्रूर काल आ गया ।
पराग अविकसित, भावरें न भरी भ्रमर
देख सुमन सूने दानव इठला गया ।
सुगन्ध ले समीर, समीप हूँ उड़ा नहीं
कुलिशसम कठोर कर नीचने बढ़ा दिया ।
भौंहें कमान देख कुसुम मूक भाषामें—
बोलो रे मूढ़ ! तू किसपर इतरा गया ?
रहेगा गुमान नाँहि अन्तकाल होयगा ही
थोड़े-से स्वार्थ-हेतु फिर क्यों ललचा गया ?

कर्त्तव्य-विमूढ़

प० सर्वानन्द पाठक, काव्यतीर्थ

भटक रहा हूँ कण्टक-मय,
इस विकट विपिनमें महाविकल ।
मुदित बनूँ कैसे मेरा
यह जीवन होता है निष्फल ॥१॥
इस अनन्त पथमें सहायता,
कोई भी न कभी करता ।
"जाऊँ कहाँ, करूँ क्या" इसका
मुझे उपाय नहीं मिलता ॥२॥

प्रकृति मुझे प्रेरित कर आगे—
को बढ़ने जब कहती है ।
इष्ट मार्गपर पहुँच-पहुँच, फिर,
वही निराशा मिलती है ॥ ३ ॥
जो साधक सहायताकी,
पहलेसे आशा थे देते ।
वे ही स्वार्थी अवसर आने—
पर मेरे बाधक होते ॥ ४ ॥
नैसर्गिक फलकी अभिलाषा-
से जितना प्रयत्न करता ।
मुझे अन्तमें उसका उतना ही,
उलटा है फल मिलता ॥ ५ ॥
जबतक मैं पूजन सकाम,
आराध्य देवका था करता ।
विफल-मनोरथ मुझे आज
वह तत्त्व-रहित-सा है लगता ॥६॥
यही कामना है अब मेरी,
सभी काम निष्काम करूँ ।
या मैं शून्य कुटीमें जाकर,
परम पिताका ध्यान धरूँ ॥७॥

अग्निबान !

बा० श्रीमद्भागवतप्रसाद वर्मा

हिमगिरिके—
चूड़ान्त चूड़पर बैठ
बजाऊँ अग्निबान !
तब—
चटख-चटख कर हो जाये—
यह पूर्ण खमण्डल
खण्ड तीन !!

२

पाषाण-हृदय
पर्वत उत्तुङ्गको, तोड़ जगे—
वह ज्वालमाल !
नभमें छा जाये अग्नि-शिखा
फुङ्कार उठे—
पाताल-व्याल !!

३

ताल-तालपर—
नाच उठे,
विक्षुब्ध-सिन्धु-उत्ताल-तरङ्ग !
झुलस उठें—
हाँ, प्रलय-कालके—
प्रलयङ्करके अङ्ग-अङ्ग !!

४

धू-धू कर यह उठे विश्व,
तटिनी-तड़ागमें—
उड़े धूल !
संस्कृतिका मग रुके, उठे—
हाँ,
चमक-चमक त्रिनयन त्रिशूल !!

५

मेरे प्रिय उस अग्निबीनसे—
निकले
वह दीपक, ज्वलन्त !
'जली-जली' कह उठे सृष्टि
अरु—
लहर उठे सब दिग्दिगन्त !!
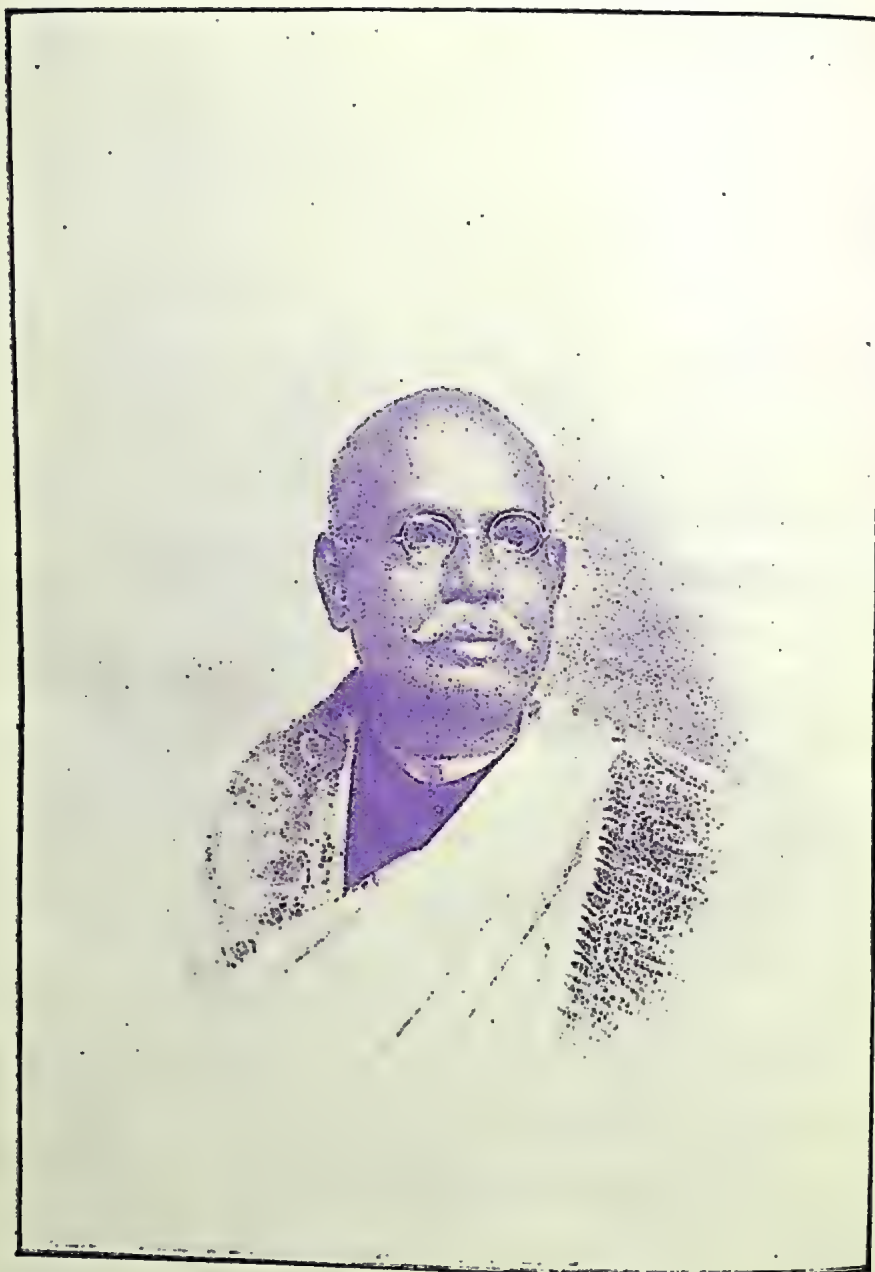
डा० अविनाशचन्द्र दास एम० ए०, पी-एच० डी०

आप प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति के प्रकाण्ड पण्डित हैं। आपकी "ऋग्वेदिक इण्डिया" और "ऋग्वेदिक कल्चर" नामक पुस्तकें विश्व-विख्यात हैं। आपकी "गङ्गा" पर बड़ी कृपा रहती है। आपका एक सुन्दर लेख "पुरातत्त्वाङ्क" में छपेगा।

सम्पादकीय विवेचन

D.N. Varma

गङ्गा

१ "पुरातत्त्वाङ्क"का प्रकाशन

विदेशी संस्कृति और सभ्यताके पक्षपाती कुछ भारतीयोंका मत है कि, "यूनानमें हिरोडोटस (४८४ बी० सी०) और थ्युकिडिडस (४७१ बी० सी०) तथा रोममें टसिटस (पहली शताब्दी) जैसे ऐतिहासिक हो गये हैं, जिन्होंने हजारो वर्षों का, अपने देशका, क्रमबद्ध इतिहास लिखा है; किन्तु भारतवर्षका न तो कोई क्रमबद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ पाया जाता है और न भारतवासी इतिहास लिखना ही जानते थे।" हमारे मतसे यह बात नहीं है। जिस जातिमें पाणिनि जैसे वैयाकरण और कपिल जैसे दार्शनिक हो सकते हैं और जिसमें नासदीय सूक्त जैसी विचार-धारा बह सकती है, उसमें इतिहास लिखनेकी क्षमताका न माना जाना अनुपयुक्त है। यह भले ही हो कि, आर्यलोग मनुष्यकी कहानियाँ लिखनेकी अपेक्षा मनुष्यके जन्मदाता विश्वपिताकी कहानियाँ लिखना ही अच्छा समझते हों। इसके सिवा जिस विशाल देशमें अनेक स्वतन्त्र राज्योंका उदय और अस्त होता रहा, उसका क्रमबद्ध इतिहास लिखा जाना सम्भव भी न था। तो भी यह निर्विवाद है कि, यहाँके लोगोंमें भी इतिहास-प्रेम था; क्योंकि संस्कृत और प्राकृतके अनेक ग्रन्थोंमें अनेक राजवंशों और विभिन्न जनपदोंका इतिहास पाया जाता है।

वेदोंमें आर्यजातिका थोड़ा-बहुत इतिहास पाया जाता है। ब्राह्मण-ग्रन्थों और उपनिषदोंसे भी हमारे इतिहासपर कुछ प्रकाश पड़ता है। पुराणोंमें सूर्यवंश और चन्द्रवंशका इतिहास है। कई पुराणोंमें शिशुनाग, नन्द, मौर्य, शुंग, कण्व, आन्ध्र आदि वंशोंके राजाओंकी नामावलियाँ और प्रत्येक राजाके राज्य-कालके वर्षों की संख्या तक दी हुई है। महाभारतमें कुरुवंशका और रामायणमें रघुवंशका सुन्दर इतिहास है। हर्षचरित, नवसाहसांकचरित, विक्रमांकदेवचरित, पृथ्वीराज-विजय, द्वयाश्रयकाव्य, कीर्त्तिकौमुदी, कुमारपालचरित, राजतरङ्गिणी, गौडवहो आदि ग्रन्थोंमें विभिन्न वंशोंके राजाओंका इतिहास पाया जाता है। संस्कृत और प्राकृतके अनेक ग्रन्थोंमें, प्रसंगवश, यत्र-तत्र, इतिहास पाया जाता है। ऐतिहासिक घटनाओंके आधारपर रचित कितने ही नाटक भी पाये जाते हैं। भाषाके पृथ्वीराजरासा, खुमाणरासा, राणारासा, रायमलरासा, हम्मीररासा, वीसलदेवरासासे भी अनेक ऐतिहासिक बातोंका पता चलता है। गुजरातीके कान्हडदे प्रबन्ध, विमलप्रबन्ध तथा तामिल-

के कासवलिनालपटु, कलिंगतुपरणी, विक्रमशीलतुला, राज-राजतुला आदिसे भी अनेक ऐतिहासिक तथ्योंका पता चलता है।

यदि हमारे अन्दर इतिहास लिखनेकी योग्यता न रहती या कुछ प्रेम न रहता, तो ये सब ग्रन्थ नहीं पाये जाते अथवा ऐतिहासिक बातोंकी ओर इनमें घृणा प्रकट की गया होती। शतपथ-ब्राह्मण (१४।२।४।१०) और अथर्ववेदमें इतिहासको एक कला माना गया है। छान्दोग्योपनिषद् और कौटिल्यके अर्थ-शास्त्रमें इतिहासको पञ्चम वेद माना गया है। महाभारत (१।१।८३)में इतिहासको मोहान्धकार दूर करनेवाला बताया गया है।

हाँ, यह अवश्य है कि, यूनान और रोमकी तरह हजारो वर्षोंका भारतका क्रमबद्ध इतिहास नहीं पाया जाता। परन्तु कुछ भारतीय इस बातके भी विरुद्ध हैं। उनके मतसे भारतका भी व्यवस्थित इतिहास-ग्रन्थ था, जो मुसलमानों द्वारा जला दिया गया। मुसलमानोंने कितने ही मठों, मन्दिरों, स्तूपों आदिमें लगे हुए प्रामाणिक शिला-लेख भी नष्ट कर दिये। कितने ही ताम्रपत्रोंको गला डाला! जो हो; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, विदेशियों-विधर्मियोंके लिखे कई ग्रन्थोंसे भी हमारे इतिहासपर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है।

पूर्वोक्त हिरोडोटसके ग्रन्थमें पञ्जाबका, पाचवीँ बी०सी का, कुछ जिक्र मिलता है। ईरानके केसियस (ईसासे ४०० वर्ष पूर्व) तथा यूनानके मेगास्थनीजके लिखे "इण्डिका" नामक ग्रन्थोंसे हमारे इतिहासपर प्रकाश पड़ता है। मिश्रके टालमी (दूसरी शताब्दी) के ग्रन्थमें चष्टन और पुलुमायी का उल्लेख है। इसी प्रकार मार्कोपोलो (ई० स० १२९४) और निकोलोटी (ई० स० १४२०) नामक इटालियनों तथा फर्नाओनुनीज (१६ वीँ सदी) नामक पोर्तुगीज लेखकके यात्रा-वृत्तान्तोंसे भी हमारे इतिहासपर प्रकाश पड़ता है। चीनके फाहियान (ई० स० ३९९) का "फो-को-की" नामक ग्रन्थ, सुंगयुन (ई० स० ५१८) के यात्रा-वृत्तान्त, हुएनसांग (ई० स० ६२९)के "सी-यु-की" नामकी यात्रा-पुस्तक और ईत्सिंग (ई० स० ६७१) की "न-न-है-चि-कुइ-ने-फा-चुयन" संज्ञक यात्रा-ग्रन्थसे भारतकी अनेक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाएँ विदित होती हैं। भारतका ऐतिहासिक तथ्य बतानेवाली ऐसी कई संस्कृत-पुस्तकोंका तो केवल चीनी अनुवाद ही मिलता है। तिब्बती बौद्ध भिक्षु कुंसजिग (ई० स० १६०८) की लिखी "भारतवर्षका बौद्ध-धर्म" नामकी पुस्तकमें हमारे इतिहाससे सम्बन्ध रखने-वाली अनेक घटनाओंका उल्लेख है। सीलोनवालोंकी लिखी दीपवंश (ई० स० ३००), महावंश (१८वीँ शताब्दी) और मलिंदपन्हो आदि ग्रन्थोंसे भारतकी सैकड़ो वर्षोंकी ऐतिहासिक बातें विदित होती हैं। मुसलमान लेखकोंकी लिखी सिलसिलातुत्तवारीख (ई० स० ८५१), मुरूजुलजहब (१० वीँ सदी), तहकीके हिन्द (ई० स० १०३०), चचनामा (१३वीँ सदी), तारीख यमीनी (ई० स० १०२०) आदि पुस्तकोंसे भी हमारे इतिहासकी अनेक महत्त्व-पूर्ण घटनाएँ विदित होती हैं। यूरोपियनोंकी लिखी ऐसी समस्त पुस्तकोंका सविवरण उल्लेख मि० मैकक्रिंडलने "ऐनशेंट इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड बाइ आदर क्लासिकल राइटर्स" नामक पुस्तकमें किया है। चीनी भाषामें अनूदित आदि ग्रन्थोंका विवरण बुन्युनंजियोकी "कैटलग आफ दि बुद्धिस्ट त्रिपिटक"में है। एच० एम० इलियटने अनेक अरबी और फारसी इतिहास-ग्रन्थोंका अपनी "हिस्ट्री आफ इण्डिया" (८ जिल्दोंमें) नामक विशाल पुस्तकमें सारांश या अनुवाद प्रकाशित किया है। इन सब ग्रन्थोंसे पता चलता है कि, विदेशियों-विधर्मियोंने हमारे प्राचीन इतिहासपर मार्मिक प्रकाश डाला है। इसके लिये उनके हम कृतज्ञ हैं।

परन्तु सबसे अधिक कृतज्ञ हम उन अंग्रेजोंके हैं, जिन्होंने प्राचीन खोजके लिये "आर्कियालाजिकल सर्वे" नामका महकमा कायम किया। इस क्षेत्रमें "अभिज्ञान-

शाकुन्तल"का अंग्रेजी अनुवाद कर संसारकी आँखोंमें हमारा गौरव प्रतिष्ठित करनेवाले सर विलियम जोन्सका नाम अमर रहेगा। इन्हींकी चेष्टासे, सन् १७८४ में, एशियाके इतिहास, साहित्य, शिल्प आदिकी खोजके लिये, कलकत्तेमें, "एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल" नामकी परिषद् स्थापित हुई। परिषद्की ओरसे, सन् १७८८ में, "एशियाटिक रिसर्चेज" नामकी ग्रन्थमाला निकली। १७९७ तक उसकी ५ जिल्दें निकलीं, जिनमें कितने ही गवेषणा-परायण विद्वानोंने एकसे एक मार्मिक लेख छपाये। इससे सारे संसारमें हलचल मच गयी। १८३६ तक इस ग्रन्थमालाकी २० जिल्दें निकलीं और कितनी ही जिल्दोंके कितने ही संस्करण भी निकले। १८३२से परिषद्की ओरसे "जर्नल आफ दि एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल" निकल रहा है। "एशियाटिक रिसर्चेज"का एम० ए० लवाम नामके फ्रेंच विद्वान्ने "रिसर्चेज एसियाटिक्स" नामसे फ्रेंच अनुवाद भी छाप डाला था, जिसकी बड़ी प्रशंसा हुई थी। बंगालकी एशियाटिक सोसाइटीके उद्देश्यको लेकर सन् १८२३ में लंडनमें "रायल एशियाटिक सोसाइटी" स्थापित हुई, जिसकी शाखाएँ बम्बई और सीलोनमें भी खोली गयीं। इनसे भी जर्नल (सामयिक पुस्तक) निकलते हैं। इन सोसाइटियों—विशेषतः बङ्गालकी सोसाइटीकी ओर आकृष्ट होकर कितने ही विद्वानोंने अपने ही व्ययसे प्राचीन शिलालेखों, दानपत्रों और सिक्कोंको टटोलना शुरू किया। प्राचीन भारतीय इतिहासकी खोजका यहीं श्रीगणेश हुआ। घोर परिश्रम कर चार्ल्स विलकिन्स, डा० बेबिंगटन, कप्तान टायर, डा० मिल, डब्ल्यू० एच० वाथन, जेम्स प्रिंसेप, जेम्स स्टिवन्सन, मि० मेसन, जनरल कर्निगहम आदिने शिलालेखों (अभिलेखों), दानपत्रों (ताम्रपत्रों) और मुद्राओं (सिक्कों) परकी गुप्तलिपि, तामिललिपि, ब्राह्मी-(पाली)-लिपि, खरोष्ठीलिपि आदिको पढ़कर वर्णमालाएँ तैयार कीं। अब तक इन विद्वानोंको सरकारी सहायता नहीं मिलती थी। १८४४ में "रायल एशियाटिक सोसाइटी" ने साहाय्यके लिये सरकारसे निवेदन किया और लार्ड हार्डिंजके प्रस्तावपर "बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स" ने खर्चकी मंजूरी दी। परन्तु सन्तोषजनक काम नहीं हुआ, यह देख कर १८६१ में यू० पी०के चीफ इञ्जिनियर कर्नल ए० कनिङ्गहमने एक नयी योजना तैयार कर गवर्नर जेनरल लार्ड कैनिंगके पास भेजी, जो स्वीकृत हुई और "आर्कियालाजिकल सर्वे" नामका महकमा कायम हुआ, जिसके अध्यक्ष कर्निगहम साहब ही नियत हुए। आपने उत्तरी भारत और डा० बर्जेसने दक्षिणी और पश्चिमी भारतमें खोजका काम कर कितनी ही रिपोर्टें छापीं। डा० बर्जेसने ही, १८७२ में, "इण्डियन एंटिक्वेरी" नामका मासिक पत्र निकाला, जो आजतक, बम्बईसे, प्रकाशित हो रहा है। बहुतोंके विचारसे "पुरातत्त्व" (आर्कियालाजी)का यही सर्वोत्तम पत्र है। आर्कियालाजिकल विभागकी ओरसे १८८८ से "एपिग्राफिया इण्डिका" नामक त्रैमासिक पत्र भी निकल रहा है, जिसमें केवल शिलालेख और दानपत्र छपते हैं। लार्ड कर्जनने इस विभागकी बड़ी उन्नति की, प्रत्येक प्रान्तके लिये सुपरिंटेंडेंट नियत किये और प्राचीन स्थानोंके संरक्षणका भी प्रबन्ध कर दिया। प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकोंकी खोजकी रिपोर्टें छापी गयीं, पुस्तकोंको संग्रह कर उन्हें प्रकाशित किया गया। बंगालकी एशियाटिक सोसाइटीकी "बिब्लिओथिका इण्डिका" नामकी ग्रन्थमालामें अनेक अलभ्य ग्रन्थ छपे हैं। बम्बई गवर्नमेंट तथा माइसोर, ट्रावंकोर और बड़ोदा सरकारोंकी संस्कृत ग्रन्थमालाओं, आनन्दाश्रम (पूना) की ग्रन्थमाला तथा काशीके "पण्डित" पत्रमें भी अनेक दुर्लभ ग्रन्थ छपे। अमेरिकाकी "हार्वर्ड ओरियेंटल सीरीज" तथा आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटीकी "एनेकडोटा आक्सोनिएन्सिया" नामकी ग्रन्थमालाओंमें भी अनेक ग्रन्थ छपे।

हमारे प्राचीन इतिहासको सबसे अधिक सहायता शिलालेखों और दानपत्रोंसे मिली है। शिलालेख चट्टानों,

गुफाओं, स्तम्भों, मन्दिरों, मठों, स्तूपों, तालाबों, बावड़ियों आदिमें लगी हुई या गाँवों अथवा खेतोंमें गाड़ी हुई शिलाओं, मूर्त्तियोंकी पीठों और आसनों तथा स्तूपोंके भीतर रखे हुए पाषाण आदिके पत्रोंपर खुदे हुए मिलते हैं। गद्य, पद्य, दोनोंमें शिलालेख मिलते हैं। ये विभिन्न भाषाओंमें पाये जाते हैं। इनकी प्राप्तिके लिये तक्षशिला, सारनाथ, मथुरा, पाटलीपुत्र, नालन्द, बसाढ़, पहाड़पुर आदि आदि स्थानोंकी, लाखों रुपये खर्चकर, आर्कियालाजिकल विभागकी ओरसे, खोदाइयाँ हुई। ये सारे भारतमें मिलते हैं—कहीं कम, कहीं अधिक। अबतक कई हजार मिल चुके हैं। ये कई तरहके होते हैं। कविताका आनन्द देनेके साथ ही ये हमारा अज्ञात इतिहास बताते हैं। कई शिलालेखोंपर तो पुस्तककी पुस्तक खोदी हुई मिली है! इनपर ऐसी कितनी ही पुस्तकें मिली हैं, जिनसे हमारा गौरवपूर्ण इतिहास विदित हुआ है।

राजाओं अथवा सामन्तोंकी ओरसे ब्राह्मणों, साधुओं, चारणों, धर्माचार्यों, मन्दिरों, मठों आदिको धर्मार्थ दिये हुए कुओं, गाँवों, खेतों आदिकी सनदें, चिरस्थायी रखनेके विचारसे, ताँबेके पत्रोंपर खोदकर, दी जाती थीं, जिन्हें दानपत्र या ताम्रपत्र कहते हैं। ये गद्य और पद्य, दोनोंमें मिलते हैं। इनमें कई बातें रहती हैं। कइयोंमें राजवंशोंकी नामावलीके सिवा राजाओंका राजत्व-काल भी दिया रहता है। इससे इतिहास-निर्माणमें बड़ी सहायता मिलती है। ये अनगिनत मिल चुके हैं।

एशियाटिक सोसाइटी और उसके जर्नलकी तरह हमारे इतिहासकी खोजके लिये फ्रांस, जर्मनी, नारवे, हालैंड, रूस, अमेरिका आदि आदिमें भी सोसाइटियाँ स्थापित हैं और उनसे जर्नल निकलते हैं, जिनमें असंख्य शिलालेखों और दानपत्रोंको, संचालकोंने, भारतसे संग्रह कर, छपाया है। ऐसोंमें ही अमेरिकन ओरियेण्टल सोसाइटी, विएना ओरियेंटल जर्नल, एक्टा ओरियेंट—लिया आदि हैं। इनमें कितने ही बड़े महत्त्व-पूर्ण शिलालेख और दानपत्र छपे हैं। भारतकी एपिग्राफिया कर्णाटिका (मैसोर), डा० फ्लीटके गुप्त इन्स्क्रिप्शन, जे० कनिंगहमके अशोक इन्स्क्रिप्शन, दक्षिण और पश्चिमी भारतकी आर्कियालाजिकल सर्वेकी रिपोर्टों, म० म० प० दुर्गाप्रसादकी प्राचीन लेखमाला आदिमें एकसे एक उपयोगी शिलालेख और दानपत्र छपे हैं।

सोने, चाँदी और ताँबेके अबतक हजारों सिक्के मिल चुके हैं। जिस प्रकार प्राचीन पुस्तकोंमें न पाये जानेवाले अनेक वंशोंके इतिहासका पता शिलालेखों अथवा दानपत्रोंसे लग जाता है, उसी प्रकार जिन राजवंशोंका पता शिलालेखों या दानपत्रोंमें नहीं है; उनका सिक्कों अथवा मुद्राओंमें लग जाता है। पञ्जाबके ग्रीक राजाओं और पश्चिमी क्षत्रपोंके शिलालेख नाम मात्रके हैं; सिक्कोंसे ही उनका इतिहास विदित होता है। गुप्तराजाओंके सिक्कोंपर तो पद्य भी मिलते हैं। जेम्स प्रिन्सेप, जनरल कनिंगहम, वाल्टर इलियट, पर्सी गार्डनर, जान एलेन, जे० रायसन आदिने हजारों सिक्कोंको छपवाया है।

प्राचीन मुद्राओं (मुहरोंसे तात्पर्य है)से भी प्राचीन इतिहासकी बातें जानी जाती हैं। मुहरोंमें भी लेख खुदे हुए हैं। नाम और वंशावलियाँ बहुधा हैं। पकाये हुए मिट्टीके गोलों, लौहवलयों, ताम्रपत्रों, विभिन्न धातुओंकी अंगूठियों आदिपर मुहरें खोदी गयी हैं। ऐसी असंख्य मुद्राओंकी कथा और चित्र पुरातत्त्वकी पुस्तकोंमें छपे हैं।

प्राचीन चित्रों, मन्दिरों, गुफाओं आदि स्थानोंसे भी इतिहास-प्रणयनमें सहायता मिलती है। १००० वर्षसे भी अधिक समयके अजन्ताकी गुफाओंके चित्रोंसे तत्कालीन समाजकी मानसिक प्रवृत्तिका पता मिलता है। हिन्दू, जैन, बौद्ध, मुसलमान आदिके प्राचीन स्थानों, स्तम्भों, मूर्त्तियों, मन्दिरों आदिसे उनकी जातीय उन्नतिका बहुत कुछ पता चलता है। उनके भी सविवरण चित्र

छपाये गये हैं। जान ग्रिफिथ, डा० बर्जेस, जे० फर्गुसन, वी० ए० स्मिथ, हावेल आदिने समालोचनाके साथ ऐसे चित्रोंको छपाया है। भिन्न-भिन्न समयोंकी ईंटोंसे भी इतिहासको कुछ-कुछ सहायता मिली है। कितनी ही ईंटों और मिट्टीके वर्त्तनोंसे तो अनेक संवतोंके प्रारम्भका भी निश्चय होता है।

शिलालेखों, दानपत्रों आदिके आधारपर दर्जनोंप्रामाणिक इतिहास लिखे गये हैं, दर्जनों राजवंशोंका व्यवस्थित इतिवृत्त तैयार किया गया है। इसके सिवा, खोज करते समय, विद्वानोंको संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी आदिके ऐसे कितने ही अमूल्य ग्रन्थरत्न भी मिल गये हैं, जिनके आधारपर कई भाषाओंका साहित्यिक इतिहास भी लिखा जा सकता है; लिखा भी गया है।

शिलालेखों, मूर्तियों, दानपत्रों, चित्रों और उत्तम शिल्पके नमूनोंके संग्रहों और संरक्षणके लिये अनेक सोसाइटियोंके सिवा प्रत्येक प्रान्तमें एक या अधिक म्युजियम, विचित्रालय या अजायबघर भी, सरकारकी ओरसे, स्थापित किये गये हैं। कितने ही प्राचीन सभ्यताके अभिमानी राजाओंने भी ऐसे अजायबघर कायम किये हैं; अपने अपने राज्योंमें आर्कियालाजिकल विभाग खोल रखे हैं। इस दिशामें मैसोर, हैदराबाद, चम्बा, बड़ोदा, भोपाल, ट्रावनकोर, जोधपुर आदिमें अच्छा काम होता है।

हमारे प्राचीन इतिहास, संस्कृति और सभ्यताके ये सब काम प्रायः विदेशी भाषाओंमें ही हुए हैं; अंग्रेजीमें ही अधिकांश पुस्तकें, रिपोर्टें, जर्नल आदि छपे हैं; तथापि म० म० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा, राय बहादुर हीरालाल बी० ए०, बा० काशीप्रसाद जायसवाल एम० ए०, साहित्याचार्य प० विश्वेश्वरनाथ रेउ, प० लोचनप्रसाद पाण्डेय, बा० वासुदेवशरण अग्रवाल एम० ए० आदि कई हिन्दी-लेखकोंने भी इस दिशामें यथेष्ट काम किया है; परन्तु, इनमेंसे एकाधको छोड़कर सभी अंग्रेजीमें ही अपने अन्वेषण और खोजका नतीजा लिखते हैं; क्योंकि अंग्रेजी भाषाके अनुरागी ही प्राचीन शोध-सम्बन्धी कामके प्रेमी हैं। जो हिन्दी राष्ट्रभाषा मानी जा चुकी है, उसके प्रेमियोंकी इस ओर काफी उदासीनता है। यह उदासीनता घातक और दुःखजनक है। यह अभाव लज्जाजनक है। इसी अभावको दूर करनेके विचारसे आज पन्द्रह महीनोंसे हम इस क्षेत्रमें पड़े हुए हैं। १५ महीने हुए "गङ्गा"के प्रधान संरक्षक, बनैलीराज्याधिपति, साहित्य-विभूषण कुमार कृष्णानन्द सिंह बहादुरसे परामर्श कर हम, इस विचारको लेकर, काशी गये। वहाँ प० गोपीनाथ कविराज एम० ए०, डा० मङ्गलदेव शास्त्री एम० ए०, डी० फिल, त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन और आचार्य नरेन्द्रदेव एम० ए०की सहायतासे "पुरातत्त्वाङ्क"में छपने योग्य निबन्धोंकी एक आनुमानिक सूची बनायी गयी—इस विचारसे कि, भारतीय पुरातत्त्व-विभाग (आर्कियालाजिकल सर्वे) की ओरसे अबतक जितना काम हुआ है और चीन, अमेरिका, यूरोप आदिके विद्वानोंने भारतीय पुरातत्त्वके सम्बन्धमें आजतक जो कुछ कार्य किया है, "गङ्गा"के निकाले जानेवाले "पुरातत्त्वाङ्क"में उन सबका संग्रह कर दिया जाय। सांकृत्यायनजी और नरेन्द्रदेवजीने कृपया सम्पादक होना स्वीकार किया। तबसे अबतक सामग्री-संग्रह करनेमें हमने कुछ भी उठा नहीं रखा है। यद्यपि "गङ्गा"पर यह बहुत बड़ा बोझ था; परन्तु हमने चिन्ता नहीं की। हिन्दू इतिहास, सभ्यता, संस्कृति आदिका प्रचार करना और हिन्दीमें साहित्यके जिस अंगका अभाव है, उसकी पूर्त्ति करना ही "गङ्गा"का लक्ष्य है—पिष्ट-पेषण नहीं। इसी लक्ष्यको ध्यानमें रखकर परसाल "वेदाङ्क" निकला गया और इस साल "पुरातत्त्वाङ्क" निकाला जा रहा है। यद्यपि ऐसे विशेषाङ्कोंमें—विशेषतः "पुरातत्त्वाङ्क"में—अत्यधिक व्यय पड़नेके कारण "गङ्गा"को बहुत घाटा उठाना पड़ रहा है और पड़ेगा; परन्तु अपने

उद्देश्यके सामने हमें इसकी परवाह नहीं—"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।"

अच्छा, तो "पुरातत्त्वाङ्क"के लिये लेखोंका मँगाना शुरू किया गया। हमें बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ा; क्योंकि जो विद्वान् इस क्षेत्रमें दिन-रात लगे हैं, उनमें अधिकांश विभिन्न-भाषाभाषी हैं और उनके पास समयका भी अभाव है। तो भी तकाजेपर तकाजा कर, अनुनय-विनय कर और अत्यधिक पुरस्कार देकर लेख मँगाये गये। अधिकांश लेख अँग्रेजीमें आये—कुछ बंगाल, ओड़िया, गुजराती, मराठी और फ्रेंचमें भी आये। अँग्रेजी लेखोंका नियमित अनुवाद करनेके लिये तो एक सज्जनको रख लिया गया; परन्तु अन्य भाषाओंका अनुवाद करानेमें एक खास परेशानी उठानी पड़ी। हजारों रुपये व्यय कर अनेकानेक शिलालेखों, दान-पत्रों, सिक्कों, मूर्त्तियों, मन्दिरों, स्तम्भों, प्रचीन शिल्प और चित्रविद्याके नमूनों आदिके ब्लाक बनवाये गये। और, अब, १ ली जनवरीसे यह छप रहा है। यह "गङ्गा"के तृतीय वर्षका प्रथम अंक होगा। इसमें सैकड़ों पृष्ठ होंगे।

उपरि लिखित पुरातत्वके सभी विषयोंका समावेश तो इसमें रहेगा ही, साथ ही उन विषयोंपर भी इसमें लेख रहेंगे, जिनका पुरातत्त्व (*Archaeology*) से सम्बन्ध है। ऐसे विषय हैं—भाषाविज्ञान (*Phylology*), भूगर्भविज्ञान (*Geology*), मानवविज्ञान (*Anthropology*), मानुषमिति (*Anthropometry*), मानवजननविज्ञान (*Ethnology*), मानववंशविज्ञान (*Ethnography*) और कपालमिति (*Craniometry*) आदि आदि। संसार भरके संवतों और वर्मा तथा सीलोनके पुरातत्त्वपर भी लेख रहेंगे। दो-एक लेखोंको छोड़ कर हमारे पास सब लेख आ गये हैं। आये हुए लेखोंकी सूची इस प्रकार है—

१ मोहञ्जोदारो—
डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप एम० ए०, डी० फिल् (आक्सन)

२ वेदकालीन शिरोभूषण और पदत्राण—
डाक्टर सुविमलचन्द्र सरकार एम० ए०, डी० फिल्

३ प्राचीन साहित्यमें नालन्द—
डाक्टर हीरानन्द शास्त्री एम० ए०, डी० लिट्

४ ग्रामीण बोलियोंके समुचित अध्ययनका महत्त्व—
डाक्टर बाबूराम सक्सेना एम० ए०, डी० लिट्

५ सिन्धु-उपत्यकाकी सभ्यता और मोहञ्जोदारो—
डाक्टर नरेन्द्रनाथ लाहा एम० ए०, पी-एच०डी०

६ ऋग्वेदोक्त आर्यनिवासका भौगोलिक वर्णन—
डा० अविनाशचन्द्र दास एम० ए०, पी-एच० डी०

७ पुरातत्त्व और इतिहास—
डा० कृष्णास्वामी आयंगर एम० ए०, पी-एच० डी०

८ कर्क सुवर्णवर्षका ब्राह्मणपल्ली दान-पत्र—
डाक्टर विनयतोष भट्टाचार्य एम० ए०, पी-एच० डी०

९ नागवंश और गङ्गा—
बा० काशीप्रसाद जायसवाल एम० ए०, बार-ऐट-ला

१० कलचुरि-राजा शङ्करगणके समयका शिलालेख—
राय बहादुर बा० हीरालाल बी० ए०

११ गुप्तवंश—सहित्याचार्य प० विशेश्वरनाथ रेउ

१२ कलिङ्गके प्राचीन राजवंश
१३ कलिङ्गका गङ्गराजवंश
१४ महाराजा इन्द्रवर्माका टेक्कलीस्थित ताम्रदानपत्र
१५ कलिङ्गके गङ्ग और केसरी राजाओंकी स्वर्णमुद्राएँ
१६ गङ्गराजवंशका विजय-राज्य-संवत्सर
१७ उत्कलका कपिल-संवत्
} राजा लक्ष्मीनारायण हरिचन्दन जगदेव बहादुर

भारतीय पुरातत्त्व-विषयक विभिन्न वस्तुओंकी रक्षा और संचय करनेवाले विचित्रालयों (अजायबघरों या म्युजियमों) तथा अन्यान्य संस्थाओंके सम्बन्धमें हमारे पास जो महत्त्वपूर्ण लेख आये हैं, वे ये हैं—

इनके सिवा सेन्ट्रल म्युजियम (लाहौर), वाट्सन म्युजियम (राजकोट), एन्थ्रोपोलाजिकल सोसाइटी (बम्बई), कामा इन्सटीच्यूट (बम्बई), गवर्नमेंट म्युजियम (नागपुर), पेशावर म्युजियम, दिल्लीके आर्कियालाजिकल म्युजियम, अजमेर म्युजियम, मथुरा म्युजियम आदि आदिपर भी लेख रहेंगे। भूगर्भ-विद्या और प्राणि-विद्याकी सभाओं तथा भारतकी विभिन्न ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक संस्थाओंपर भी लेख रहेंगे। भारत सरकारके पुरातत्त्व-विभागका प्रधान कार्यालय शिमला और दिल्लीमें है तथा उसके अधीन आठ प्रान्तीय पुरातात्त्विक सर्किल्स हैं। इन सबका भी पूरा परिचय रहेगा। अनेक दुर्लभ चित्रोंको

छापनेका भी आदेश भारत सरकारके पुरातत्त्व-विभागके अध्यक्ष महोदयने दे दिया है। इस तरह यह "पुरातत्त्वाङ्क" *Archaeology Number* पुरातत्त्व-विषयक गवेषणाओं, कलाओं, विद्याओं और विज्ञानोंका खजाना होगा और पुरातत्त्व-प्रेमियोंके लिये रेफरेन्स बुकका काम देगा।

हम इस अवसरपर "गङ्गा"के ग्राहकोंसे सहायता चाहते हैं। रुपये-पैसेकी सहायता नहीं, सिर्फ ग्राहकोंकी। "गङ्गा"के दयालु ग्राहक यदि कमसे कम दो-दो ग्राहक भी इस तृतीय वर्षमें बना देनेकी कृपा करें, तो "गङ्गा" को घाटा न लगे और उसे कुछ साहाय्य मिल जाय। ऐसी सहायतासे प्रोत्साहित होकर हम अगले वर्ष "गङ्गा"का एक सुन्दर "विज्ञानाङ्क" निकालनेकी चेष्टा करेंगे। विज्ञान-विषयक विशेषांककी विशेष बातें "पुरातत्त्वांक"में पढ़िये।

जो सज्जन "वेदाङ्क"से ग्राहक बने थे, उनका वार्षिक मूल्य इसी अंकसे समाप्त होता है। कृपा कर वे अगले वर्षका वार्षिक मूल्य ४) तुरत भेजनेका कष्ट करें। वी० पी० से भेजनेसे "पुरातत्त्वाङ्क"का कलेवर नष्ट होगा और ।) अधिक खर्च भी व्यर्थ पड़ेगा। जो सज्जन "पुरातत्त्वाङ्क"को रजिस्ट्रीसे मँगाना चाहें, वे ४।) भेजें, ४) ही नहीं।

२ जीवन-रहस्य

श्रीयुत विल डुरेन्ट अमेरिकाके एक प्रसिद्ध तत्त्वज्ञानी दार्शनिक हैं। दर्शन-सम्बन्धी आपके लेख बड़े चावसे पढ़े जाते हैं। लेखोंकी अन्तारराष्ट्रिय ख्याति भी है। आपने हालमें ही संसारके कुछ विशेष प्रसिद्ध, वयःप्राप्त एवम् प्रतिष्ठित सज्जनोंके पास "जीवनरहस्यकी मीमांसाके सम्बन्धमें" पत्र भेजे थे। उन सभी पत्रोंमें आपने स्पष्टतः यह बात पूछी थी—"मुझे आप बतलावें कि, जीवन-संग्राममें किस वस्तुके आधारपर आप खड़े हैं? यदि आपके जीवनमें धर्म सहायक है, तो किस प्रकार? आपके अभ्यान्तरिक उत्साह एवम् उत्प्रेरक शक्तिका उद्गम-स्थान कहाँ है? आपके इस अथक परिश्रमकी वह प्रवर्तक-शक्ति कहाँ है, जहाँ आपकी आत्माको सुख एवं सन्तोष प्राप्त होता है—जहाँ आप अन्तिम आश्रय प्राप्त कर अपने जीवनकी अमूल्य निधि पाते हैं?"

संसारके प्रत्येक देशसे श्रीयुत डुरेन्ट महोदयके पत्रका उत्तर आया। उत्तर-प्रेषक महात्मा गांधी, बर्ट्रेण्ड रसेल, बर्नर्डशा, सिंक्लेर लुइस, हेवलाक एलिस आदि अनेक प्रसिद्ध एवं गण्य-मान्य व्यक्ति थे। सभी उत्तर भिन्न-भिन्न बातों और सिद्धान्तोंके द्योतक थे। एकने लिखा, "जीवनका, मेरे सामने, कुछ अर्थ नहीं है। मैं तो उसी प्रकार काम करता जाता हूँ, जिस प्रकार मुर्गियाँ अंडे देती हैं। मैं तो जीवनको केवल एक कौतूहल समझता हूँ और मरनेके समय मुझे इस बातका सन्तोष होगा कि, मैं शून्यमें परिणत हो जाऊँगा।" दूसरेने लिखा, "इतिहासके विशाल नाटकपर जब मैं विचार करता हूँ, तब मुझे मालूम होता है कि, संसारके सारे दुःखों और अशान्तिमें भी मनुष्यकी आत्मा अपने बृहत् विकाशकी ओर अग्रसर हो रही है......।" तीसरेने लिखा, "मेरे सामने जो कार्य उपस्थित हो जाता है, उसे सम्पन्न करनेमें मुझे आनन्द आता है। मैं अपने गुरुजन एवं परिवारकी सेवा करनेमें सुख और सन्तोष प्राप्त करता हूँ। यहूदी धर्मने मेरी आध्यात्मिक शक्तिको ऊपर उठाकर मेरे अर्ध-जाग्रत् जीवनको दायित्वपूर्ण बना दिया है। इस बातपर मेरा दृढ़ विश्वास हो गया है कि, अनिर्वचनीय एवं अज्ञात भगवान्का निवास मेरे हृदयमें है तथा इस जीवनकी समाप्ति ही मेरे आध्यात्मिक जीवनकी समाप्ति नहीं है।"

इस प्रकार बहुत-से मनोरञ्जक उत्तर आये; परन्तु उन सभी उत्तरोंसे अधिक महत्त्वपूर्ण एवं मनोरञ्जक उत्तर महात्मा गांधीका है। महात्मा गांधीके उत्तरका आशय इस प्रकार है—

"मेरे लिये जीवन एक महान् सत्य है; कारण, वह भगवान्का एक स्फुलिङ्ग है। धर्म अपने रूढ़ि-रूपमें नहीं, वरन् अपने बृहत् अर्थमें मेरे लिये भगवान्की किंचित

अनुभूतिमें सहायक है। यह अनुभूति नैतिक शक्तिका पूर्ण विकाश हुए विना असम्भव है; इसलिये धर्म और नैतिकता मेरे लिये पर्यायवाची शब्द हैं। भगवान्की पूर्ण अनुभूतिकी उत्कण्ठा ही मेरे जीवनके सारे संघर्षोंकी भित्ति है। मेरे भीतर जो कुछ भी आभ्यन्तरिक उत्साह एवं उत्प्रेरक शक्ति है, उसका उद्गमस्थान सङ्घर्ष ही है। मेरे जीवनका सुख और सन्तोष सारे प्राणियोंकी सेवामें है; क्योंकि भगवान् सभी जीवोंका समष्टि-रूप है। अन्धकार एवं पापके विरुद्ध युद्ध करनेमें ही मेरे जीवनकी निधि, मेरे जीवनका सारा वैभव छिपा हुआ है, जहाँ मैं आश्रय लेता हूँ।"

महात्मा गांधीने जीवनके इस वृहत् रहस्यकी जो सूक्ष्म, परन्तु उपयुक्त एवं महत्त्वपूर्ण व्याख्या की है, उसका हम आदर करते हैं। वास्तवमें भगवान्की पूर्ण अनुभूति प्राप्त करनेके लिये ही हमारे जीवनके सारे आदान-प्रदान, सारी क्रिया-प्रतिक्रियाएँ एवम् सारे संघर्ष हैं। हमारे जीवनकी समस्त इच्छाएँ, हमारी सारी प्रवृत्तियाँ अज्ञात रूप, परन्तु अबाध गतिसे उसी विराट् सत्यके अनुसन्धानमें, उसी अनन्त देवकी विराट् व्यापकताकी अनुभुति करनेके निमित्त, प्रगतिशील हैं। हमारा जीवन सत्य है; परन्तु उसी अंशमें, जिस अंशमें यह अपने अन्तरके विराट् सत्यकी उपासनामें प्रगतिशील है; अन्यथा न तो इसका कुछ महत्त्व ही है और न इसकी सत्यताकी कोई रूप-रेखा ही।

संसारके सभी प्राणियोंकी अनवरत सेवा और उनके सुखके निमित्त अपने जीवनकी सारी उत्कण्ठाओंको प्रवृत्त कर देना मानव-जीवनका सबसे बड़ा धर्म है। आत्म-समर्पण भगवान् कृष्ण तथा भगवान् बुद्धके सांसारिक जीवनका एक व्यापक रहस्य था। महात्मा गांधी उसी रहस्यको अपने व्यक्तित्वमें प्रतिपादन करनेकी सतत चेष्टामें हैं। अन्धकार एवं पापकी शक्तियोंके विरुद्ध युद्धमें प्रवृत्त होना सुन्दर है—संसारके मंगलके लिये, सभी प्राणियोंके कल्याणके निमित्त, सेवाव्रत धारण करना इससे भी अधिक सुन्दर है। इसी कारण हम महात्मा गांधीके जीवन-रहस्यकी व्याख्याका हृदयसे समर्थन करते हैं।

३ वायुमण्डल

अबतककी खोजों और वैज्ञानिक परीक्षाओंके द्वारा वायुमण्डलके सम्बन्धमें जो ज्ञात हुआ है, वह संक्षेपमें यों है—

भूपृष्ठसे एवरेस्टकी ऊँचाई प्रायः ५॥ मील लम्बी है। इसके ऊपर भी प्रायः १ मीलतक मेघका अस्तित्व दीख पड़ता है। भूपृष्ठसे ६। मील तकके वायुमण्डलको *Troposphere* कहते हैं। इस मण्डलके ऊपर ठंढककी मात्रा क्रमशः अधिक रहती है। लेफ्टिनेन्ट साउकेक वायुयानके सहारे प्रायः ४३, १६६ फीट तककी सफर करनेमें सफलीभूत हुए थे। ६। से १८॥। मील तकके वायुमण्डलको *Stratosphere* कहते हैं। ७॥ मीलसे प्रायः १९ मीलतक तापकी मात्रा समान पायी जाती है। १२॥ मीलसे प्रायः १८॥। मीलतक ठंढककी मात्रा अधिक पायी जाती है। इसे हिममण्डल कह सकते हैं। *Strotosphere* के ऊपरी भागमें अर्थात् १९ मीलोंके ऊपर तापकी मात्रा बढ़ती रहती है। २५ मीलोंसे ३१ मीलोंतक तापकी मात्रा उतनी ही पायी जाती है, जितनी भूपृष्ठपर। ३१। मीलके बाद दिनमें *Heaviside Layer* के अस्तित्वका अनुभव होता है; किन्तु रातमें यह *Heaviside Layer* ५६ मील ऊपर उठ जाता है। ३१ मीलसे ३७ मीलोंतक तापकी मात्रा प्रायः गर्म जलके समान रहती है। इसी *Heaviside Layer* से टकरा कर बेतारका तार संसारका चक्कर लगा आता है। इस स्थानका वायुमण्डल तड़ित-परिचालन-क्रियाके लिये उत्तम होता है। ५० मीलके ऊपर सूर्य-रश्मि-शोषक ओजोन (*Ozone*) से वायुमण्डल परिपूर्ण है। ५७॥ मीलसे ७२॥ तकका वायुमण्डल प्रायः शून्य रहता है।

४ "टाइम्स" की आय

विलायतका "टाइम्स" नामक दैनिक पत्र समाचार-पत्रोंमें सर्व-श्रेष्ठ माना जाता है। इसकी जितनी खपत है, आय भी उतनी ही अधिक है। १९२८-२९ ई० में इसकी बचत थी २२६३७३ पाउन्ड अर्थात् लगभग ३१ लाख रुपये। १९२९-३० ई० में सब खर्च बाद देकर १३४३४१ पाउन्ड, लगभग १९ लाख रुपये बचे। १९३१-३२ ई० में बचत हुई ३१५२ पाउण्ड, लगभग ४४ हजार रुपये।

आजकल वाणिज्य-व्यवसायकी अवस्था कितनी नाजुक है, यह "टाइम्स"के क्रमिक आय-ह्राससे पाठकोंको भली भाँति मालूम हो सकती है। जो हो; पर हम लोगोंमें बहुत ऐसी हवाई कल्पना करनेवाले हैं कि, भारतमें भी संवाद-पत्रोंका प्रचार, खपत एवं उनकी आय विलायती "टाइम्स" के समान ही हो सकती है! पर ऐसी बात कोरी कल्पना ही है। ऐसी कल्पना करने-वाले यह नहीं सोचते कि, शिक्षामें विलायतसे भारत कितना पिछड़ा हुआ है! वहाँके सर्वसाधारण—स्त्री, पुरुष, बालक, युवक और वृद्ध, सबके सब—शिक्षित हैं। यहाँकी जनसंख्या ३५ करोड़ है, जिसमें लगभग ढाई या तीन करोड़ ही शिक्षित हैं। ऐसी हालतमें भारतीय समाचार-पत्र किस तरह विलायती "टाइम्स"की समता कर सकते हैं! तो भी हताश होनेकी आवश्यकता नहीं; यह प्यास तभी बुझाई जा सकती है, जब कि, विलायतके समान ही भारतमें भी शिक्षाका प्रचार हो जाय। इसके लिये हर एक शिक्षितका यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि, जिस तरह हो, वह शिक्षा-प्रचारका कार्य, मुस्तैदीसे, करे।

५ "द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रन्थ"

संस्कृतके विद्वान् जो प्रतिष्ठा भगवान् शंकराचार्यकी करते हैं, हिन्दीवाले वही प्रतिष्ठा आचार्य प० महावीर-प्रसाद द्विवेदीकी करते हैं। बात भी ठीक है। द्विवेदी-जीने हिन्दीकी बहुत समृद्धि की है। इसी प्रतिष्ठा-भावसे प्रेरित होकर काशीकी नागरी-प्रचारिणी-सभाकी ओरसे उसके प्रधान मन्त्री राय कृष्णदासजी "द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रन्थ" प्रकाशित कर रहे हैं। प्रयागमें "द्विवेदी-मेला" भी होने जा रहा है। ईश्वर करे, दोनों कार्य सफल हों।

राय साहबने "द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रन्थ"का एक "प्रगति-विवरण" छपाया है, जिसे देखनेसे विदित होता है कि, हिन्दीवाले अपने कर्त्तव्यका भली भाँति पालन नहीं कर रहे हैं। "ग्रन्थ" छपानेकी स्कीम तो बना ली गयी; परन्तु उसे प्रकाशित करनेके लिये १३ करोड़ हिन्दी-भाषियोंमेंसे "आर्थिक सहायता प्राप्त करनेमें बड़ी अड़चन पड़ी!" क्यों? "विषम आर्थिक परिस्थितिके कारण!" मानों करोड़ दो करोड़का चन्दा इकट्ठा करना था! क्या इस "परिस्थिति"के कारण हिन्दी-भाषी "बड़े लोगों" का कोई काम बन्द है? क्या बातकी बातमें, अपनी स्वार्थ-सज्जाके लिये, हजारों रुपये बहानेवालोंको यह अड़चन शोभा देती है? क्या केवल इस पवित्र "ग्रन्थ"के ही लिये "विषम परिस्थिति" है? क्या सभावालोंने रुपये-वालोंके पास पहुँचनेकी पूरी चेष्टा की है? खैर साहब, "सीतामऊके राजकुलने (सभावालोंका) हाथ बँटाया," नहीं तो "यह प्रस्ताव ही स्थगित कर देना पड़ता!" कैसी करुणाजनक कथा है! अच्छा, सीतामऊके "विद्वान् राजकुमारने" साढ़े छः सौ रुपये दिये-दिलाये; परन्तु "आवश्यकता बहुत बड़ी थी।" इसी बीच प्रयागके इंडियन प्रेसके स्वामी बा० हरिकेशव घोषने "ग्रन्थ" को निःशुल्क छाप देनेकी उदारता दिखायी। इस तरह एक विशाल धन-राशि देनेसे हिन्दी-भाषियोंका गला छूट गया! इंडियन प्रेसमें इन दिनों ग्रन्थ छप रहा है। यही है हिन्दीवालोंकी प्रतिष्ठा-भावना!

क्या "ग्रन्थका कुछ मूल्य भी रखा जायगा? यदि "हाँ," तो फिर बिक्रीकी आमदनी लेनेवाला प्रकाशक, बिना सहायताके ही, "ग्रन्थ" क्यों नहीं छपा देता? तब फिर "विषम परिस्थिति" और "अड़चन"के सवाल कैसे?

अच्छा, अब इस "ग्रन्थ"में छपनेवाले लेखोंकी बात सुनिये। हमारे विचारसे इसमें उन्हींका लेख छपना चाहिये, जो प्रौढ़ और प्रकाण्ड विद्वान् हैं। हिन्दीमें ऐसे लेखकोंकी कमी भी नहीं। ऐसे दर्जनों हिन्दीभाषी लेखक हैं, जिनके प्राञ्जल और पाण्डित्यपूर्ण लेखोंके कारण विभिन्न-भाषा-भाषी भी इस "ग्रन्थ"का यथेष्ट गौरव कर सकते हैं। इस ग्रन्थ-रत्नमें खोगीरकी भर्ती करना अनुपयुक्त होगा। राय साहबको जिन "सर्वश्री" लेखकोंसे लेख पानेकी आशा है, उनमें कुछ अवश्य ही सुयोग्य विद्वान् हैं; परन्तु "सर्वश्री" लोगोंमें कुछ ऐसोंके भी नाम छपे हैं, जिनकी रचनाओंसे इस "ग्रन्थ"का शोभा-वर्द्धन नहीं हो सकता। क्या राय साहबने सुयोग्य विद्वानोंसे मिलकर उनकी रचनाओंकी प्राप्तिके लिये चेष्टा की है? या, छपा हुआ निमन्त्रणपत्र भेज देना ही यथेष्ट समझा गया है? ईश्वर इस यज्ञको सानन्द समाप्त करे।

६ बधाई

विहार ओडीसा लेजिस्लेटिव कौंसिलके मेम्बर सोनबरसा-राज्यके अधिपति और हिन्दी तथा "गङ्गा"के परम अनुरागी श्रीमान् राव बहादुर रुद्रप्रतापनारायण सिंहजीकी १६।११।३२ को ४३ वीं वर्ष-गाँठ, सोनबरसा कचहरीमें, बड़ा धूमधामसे, मनायी गयी। दरबार लगा, खेल-तमाशे हुए, दान-दक्षिणा दी गयी। ठाकुर धनपतिसिंह उपदेशक और प० चतुर्भुज खाँके सुललित व्याख्यान हुए। लोगोंमें बड़ी उमंग और तरंग थी। दस हजारकी तादादमें प्रजाजन शत-शत साधुवाद दे रहे थे। हम भी इस मङ्गलमय अवसरपर श्रीमान्का अभिनन्दन करते और ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं कि, श्रीमान्के द्वारा हिन्दूधर्म, हिन्दूजाति और हिन्दीभाषाका अधिकाधिक कल्याण-साधन हो।

७ बा० नारायणप्रसाद वर्माका स्वर्गवास

दुःख है कि, "गङ्गा"-कार्यालयके नामी चित्रकार, उन्नतमना और सज्जनताकी मूर्त्ति बाबू नारायणप्रसाद वर्मा अब इस लोकमें नहीं रहे! आपके पिता बाबू ईश्वरीप्रसाद वर्मा कलकत्तेके गवर्नमेंट आर्ट स्कूलके अध्यापक थे और आपके छोटे भाई बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्मा, चित्र-कलाका विशेष अध्ययन करनेके लिये, आज दो वर्षोंसे लंडनका प्रवास कर रहे हैं। आपके सबसे छोटे भाई बा० महाप्रसाद वर्मा और बड़े पुत्र बा० श्यामनन्दन वर्मा भी अच्छे चित्रकार हैं। इस तरह आपका सारा घर ही इस कलामें निपुण और निष्णात है। इधर दो वर्ष हुए नारायण बाबू "माधुरी"-कार्यालयसे हमारे यहाँ आकर रह गये थे। उन पर कुमार बहादुरकी बड़ी कृपा रहती थी। अभी कुछ ही महीने हुए नारायण बाबूकी माताजीका देहान्त कृष्णगढ़में ही हुआ। तभीसे आप बीमार थे। अभी उस दिन, दवा कराने, यहाँसे आप कलकत्ते गये और वहीं आपका शरीरपात हो गया! हम आपकी आत्माकी शान्तिके लिये परमात्मासे विनय करते और आपके परिवारसे समवेदना प्रकट करते हैं।

८ आश्चर्यकी बात

नवम्बरकी "गङ्गा"में बा० केदारनाथ खन्नाका "मशायरा" नामका एक लेख छपा था। उसे देखकर प्रयागसे प० रामनरेश त्रिपाठीने लिखा कि, "वह (लेख) मेरी उर्दू कविता-कौमुदीसे अक्षरशः लिया गया है।" यदि ऐसी बात हो, तो बहुत ही आश्चर्य और परितापका विषय है। हम नहीं समझते कि, लेखक लोग ऐसी कारंवाई करके सम्पादकों और अपने साथ क्यों अन्याय करते हैं! क्या नाम छपानेकी धुन? तो क्या किसी पत्र-पत्रिकामें नाम छपानेसे ही कोई बड़ा हो जाता है? और, असली बात खुलनेपर बदनामी भी तो कम नहीं होती? हम लेखकोंसे ऐसा अन्याय न करनेकी प्रार्थना करते हैं।

९ आवश्यक सूचना

जिस प्रेसमें "गङ्गा" छपती थी, वह, मिथिला प्रेस, सुलतानगंजसे भागलपुर शहर चला गया। मशीनोंके जाने और उन्हें चालू करनेमें १५ दिनोंका समय लग गया; इस लिये "गङ्गा" कुछ विलम्बसे निकल रही है। इस अनिवार्य कारणके लिये हम पाठकोंसे क्षमा चाहते हैं। अब पहलेकी तरह ही नियमित रूपसे, "गङ्गा", सेवामें पहुँचा करेगी। सुन्दर छपाईके लिये नयी मशीन भी मँगा ली गयी है।